



ڈاکٹر ذاکر حسین لائبریری

DR. ZAKIR HUSAIN LIBRARY

JAMIA MILLIA ISLAMIA
JAMIA NAGAR

NEW DELHI

Rj
491-4303
CALL NO. --152-K5-431--
Accession No. 14130----

Rj
491-4303

152 K5 431

30

Ref

Call No. 4.91...4303

Acc. No. C.144.30...

152K54;1

19 MAY 1981

NO BOOK

Books must be returned to the library on the due date last stamped on the books. A fine of 5 P for general books, 25 P for text books and Re. 1.00 for over-night books per day shall be charged from those who return them late.



You are advised to check the pages and illustrations in this book before taking it out. You will be responsible for any damage done to the book and will have to replace it, if the same is detected at the time of return.

हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

चतुर्थ भाग

['ज' से 'दस्तंदाजी' तक, शब्दसंख्या-१६०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट	रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह	जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन	रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

संपूर्णानंद	कमलापति त्रिपाठी
मंगलदेव शास्त्री	धीरेंद्र वर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड़	नगेंद्र
हरवंशलाल शर्मा	रामधन शर्मा
शिवप्रसाद मिश्र	शिवनंदनलाल दत्त
गोपाल शर्मा	सुधाकर पांडेय
भोलाशंकर व्यास (सह० संयो०)	करुणापति त्रिपाठी (संयोजक संपादक)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री	विश्वनाथ त्रिपाठी
-------------------	-------------------

काशी नगरी प्रचारिणी सभा

हिंदी शब्दसागर के संशोधन संपादन का संपूर्ण तथा प्रथम एवं द्वितीय भाग के प्रकाशन का साठ प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया।



Ref 491.4303
152 15.4;1

14130



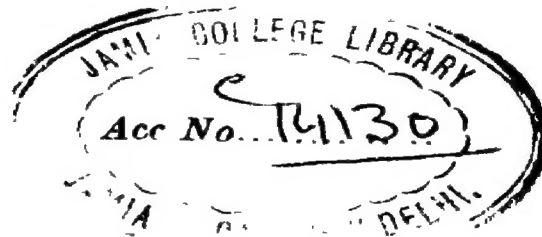
परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण

शकाब्द १८८६

सं० २०२४ वि०

१६९८ ई०

मूल्य २१), संपूर्ण दस भागों का २००)



14130

शंभुनाथ वाजपेयी द्वारा
नागरी मुद्रण, धाराणसी
में मुद्रित

प्रकाशिका

‘हिंदी शब्दसागर’ अपने प्रकाशनकाल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशक तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तंभ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खंड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुनः अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही, किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही, हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदीजगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—‘हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है। हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका वृहत् संस्करण निकालने की आवश्यकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।’

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—‘वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा संसार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके

और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणतः पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों में बीस बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।’

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुनःसंपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ १४—३१५४ एच० दिनांक ११/५/५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस संबंध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभविष्ठ विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के संपादन हेतु सिद्धांत स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरंतर पाँच वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय देता रहा और कोश के संशोधन, संवर्धन और पुनःसंपादन का कार्य लगातार होता रहा, परंतु इस अवधि में सारा कार्य निपटायानही जा सका। मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की संस्तुति की जो सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुनः उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ में पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भी भारत सरकार ने वहन किया है इसी लिये यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षा मंत्रालय के अधिकारियों का प्रशंसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदीजगत् के संमुख उपस्थित किया जा रहा है उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और

प्रयोग किया गया है, किन्तु हिंदी की ओर हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविक्रम भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रंथों के कालक्रम के प्राभाषिक निर्धारण के अभाव में वैसा कर सकना संभव नहीं हुआ। फिर भी यह कहने में हमें सकोच नहीं कि ग्रन्थतन प्रकाशित कोशों में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वान् इससे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हम हिंदीजगत् को यह भी नम्रापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का संकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और सशोधन के लिये कोशशिल्प संबंधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस संशोधित प्रवर्धित रूप में शब्दों की संख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल से नए सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनंदन एवं पुरस्का प्रथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से संकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह संशोधित परिवर्धित संस्करण कुल दस खंडों में पूरा होगा। इसका पहला खंड पोष, सवत् २०२२ वि० में छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतंत्र के प्रधान मंत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ पोष, २०२२ वि० (१८ दिसंबर, १९६५) को भव्य रूप से मजे हुए पंडाल में काशी, प्रयाग एवं अन्यत्र स्थानों के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियों, पत्रकारों तथा गणमान्य नागरिकों की उपस्थिति में संपन्न हुआ। समारोह में उपस्थित महानुभावों में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री प० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्मभूषण कविवर श्री प० सुमित्रानंदन जी पंत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि हैं। इस संशोधित संवर्धित संस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य में इसके समस्त संपादकों का एक एक काउंटेंट पेन, नामात्र और ग्रंथ की एक एक प्रति माननीय श्री आश्वी जी के करकमलों

द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने संक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की और कहा : 'सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढंग की अकेली संस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी संस्था ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयों पर जो पुस्तकें इस संस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढंग के अनूठे ग्रंथ हैं और उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढ़ा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ में लिए हैं जिनकी इस समय नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यह सभा अप्रतिम है'।

प्रस्तुत चतुर्थ खंड में 'ज' से लेकर 'दस्तदासी' तक के शब्दों का सचयन है। नए नए शब्द, उदाहरण, योगिक शब्द, मुहावरे, पर्यायवाची शब्द और महत्वपूर्ण ज्ञानव्य सामग्री 'विशेष' से संवलित इस भाग की शब्दसंख्या लगभग १६००० है। अपने मूल रूप में यह अंश कुल ५२६ पृष्ठों में था जो अपने विस्तार के साथ इस परिवर्धित संशोधित संस्करण में ५७६ पृष्ठों में आ पाया है।

संपादकमंडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण में योग दिया है। श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ नियमित रूप से नित्य सभा में पधारकर इसकी प्रगति को विशेष गंभीरतापूर्वक गति देते रहे और प० करुणापति त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन में प्रगाढ़ निष्ठा के साथ घर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी, पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य संपन्न होना संभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। संभव है, हम सबके प्रयत्न में त्रुटियाँ हों, पर मदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसकी ओर अधिका पूर्ण करते रहें क्योंकि ऐसे ग्रंथ का कार्य अस्थायी नहीं माना जा सकता है।

अंत में शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० श्यामसुंदरदास जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह संकल्प हम पुनः दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह निरंतर नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्य होता रहेगा।

ना० प्र० सभा, काशी ।
बिजया दशमी, २०२४ वि० }

सुधाकर पाठेय
प्रधान मंत्री

संकेतिका

[छद्मरूपों में प्रयुक्त संदर्भग्रंथों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं ।]

अंधेरे०	अंधेरे की झुल, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण	अध०	अर्धकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७	अष्टांग (शब्द०)	अष्टांगयोगसंहिता
अग्नि०	अग्निशक्त्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आधी	आधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६वीं सं०	आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग मंदिर, उन्नाव	आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, बाणी वितान, वाराणसी, प्र० सं०
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आश्रय अनु- क्रमणिका (शब्द०)	आश्रय अनुक्रमणिका
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०	आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौबे काश्यप, बाणी विहार, बनारस, प्र० सं० १९५३ ई०
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी युगलानंद बिहारी, वैकटेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०	आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)	आनंदधन (शब्द०)	कवि आनंदधन
अनेकार्थ०	अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्र-प्रसाद मिश्र, मुनिवसिठी आफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०	आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार संसद्, इलाहाबाद, प्र० सं०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग	आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, कौसी, प्र० सं०, १९८४ वि०
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०	आयं भा०	आयं कालीन भारत
अभिषक्त	अभिषक्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०	आयों०	आयों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९६७ वि०, प्र० सं०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३० ई०	इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर	इंद्रा०	इंद्रावती, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	इंशा०	इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा० बजरत्नदास, कमलमणि ग्रंथ-माला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नरेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१४ वि०	इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवीं सं०
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला-मंदिर, इलाहाबाद	इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय,' प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली
अर्थ०	अर्थशास्त्र, कीटिल्य, [५ खंड] संपा० आर० शामशास्त्री, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१६ ई०	इरा०	इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
		उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम सं०
		एकांत०	एकांतवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १८८६ वि०

कंकाल	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०	काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्	किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
कड़ी०	कड़ी में कोयला, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट मिर्जापुर, प्र० सं०	किशोर (शब्द०)	किशोर कवि
कबीर प्र०	कबीर ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी	कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कबीर० बानी	कबीर साहब की बानी	कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कबीर बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०	कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कबीर बी०	कबीर बीजक, संपा० हंसदास, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी २००७ वि०	कृषि०	कृषिशाल
कबीर मं०	कबीर मंथूर [२ भाग], वैकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, सन् १९०३ ई०	केशव (शब्द०)	केशवदास
कबीर० रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुहड़ी व रेस्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद	केशव प्र०	केशव ग्रंथावली, संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
कबीर० श०	कबीर साहब की शब्दावली [४ भाग] बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, सन् १९०८	केशव० घसी०	केशवदास की घसीघूँट
कबीर (शब्द०)	कबीरदास	कोई कवि (शब्द०)	अज्ञातनाम कोई कवि
कबीर सा०	कबीर सागर [४ भा०], संपा० स्वा० श्री युगलानंद बिहारी, वैकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई	कुलार्णव तंत्र (शब्द०)	कुलार्णव तंत्र
कबीर सा० सं०	कबीर साखी संग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०	कौटिल्य ग्र०	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
कमलापति (शब्द०)	कवि कमलापति	कवासि	कवासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बंबई, १९५३ ई०
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०	खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
कशं०	सेनापति कशं, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०	खालिक०	खालिकबारी, संपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
कविद (शब्द०)	कविद कवि	खिलीना	खिलीना (मासिक)
कविता की०	कविता कौमुदी [१-४ भा०], संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०	खुदारांम	खुदारांम और चंद हसीनों के खतूत, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, धौठवाँ सं०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, संपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग	खेती की पहली पुस्तक (शब्द०)	खेती की पहली पुस्तक
कानन०	काननकुसुम, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं०	गंग प्र०	गंग कवित्त [ग्रंथावली], संपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
कामायनी	कामायनी, जयशंकर प्रसाद, नवम सं०	गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
काया०	कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ६वाँ सं०	गबन	गबन, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वाँ सं०
काले०	काले कारनामे, 'निराला,' कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०	गालिब०	गालिब की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गौड़, वाराणसी, प्र० सं०
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद अच्युत सं०	गि०दा०, गि०दास (शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रांगेय राखव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं०, २०१२ वि०	गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुंडलियावाले)
		गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
		गुंजन	गुंजन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
		गुंघर (शब्द०)	गुंघर कवि
		गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
		गुलाब (शब्द०)	कवि गुलाब
		गुलाल०	गुलाल बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
		गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०

गोपाल उपासनी (शब्द०)	गोपाल उपासनी	छिताई०	छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)	छीत०	छीत स्वामी, संपा० ब्रजसूत्रण वर्मा, विद्या विभाग, प्रवृत्ताप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं०, संवत् २०१२
गोरख०	गोरखबानी, सं० डा० पीतांबरदास बड़वाल, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०	जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, प्र० सं०
ग्राम०	ग्राम साहित्य, संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०	जय० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती मंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	जनानी०	जनानी बंधोड़ी, अनु० यशपाल, प्रथोक प्रकाशन, लखनऊ
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, वृ० सं०	जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंदबुलारे वाजपेयी, भारती मंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९६५ वि०
घनानंद	घनानंद, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, बाणीबितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी	जयसिंह (शब्द०)	जयसिंह कवि
घाघ०	घाघ और भड्दरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद	जायसी प्र०	जायसी प्रभावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
घासीराम (शब्द०)	घासीराम कवि	जायसी प्र० (गुप्त)	जायसी प्रभावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५१ ई०
चंद	चंद हसीनों के खतूत, 'उष', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०	जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवी सं०	जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०	जुगलेश (शब्द०)	जुगलेश कवि
चरण (शब्द०)	चरणदास	ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका	ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	भरना	भरना, जयशंकर प्रसाद, भारती मंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवा सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ 'अशक', नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग प्र० सं०	भाँसी०	भाँसी की रानी, बुंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, भाँसी, द्वि० सं०
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति	टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
चिता	चिता, अजय सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, सन् १९४० ई०	ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
चितामणि	चितामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग	ठाकुर०	ठाकुर शतक, संपा० काशीप्रसाद, भारत-जीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
चितामणि (शब्द०)	कवि चितामणि त्रिपाठी	ठेठ०	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्यासिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	ढोला०	ढोला माक रा दुहा, संपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
चुभते०	चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि-श्रीधर', खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०	तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवा सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, " " "	तुलसी	तुलसीदास, 'निराशा', भारती मंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, अनु० सं०
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराशा', किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०		
छंद०	छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०		
छत्र०	छत्रप्रकाश, सं० विलियम ग्राइस, एडुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२६ ई०		

तुलसी ग्रं०	तुलसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय सं०	इंद्र०	इंद्रगीत, रामचारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक मंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
तुलसी श०, तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरसवाले) बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, १९११	द्वि० अमि० ग्रं०	द्विवेदी अमिनंदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर	द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
तेज०	तेजबिंदूपनिषद्	धरनी० बा०	धरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
तोष (शब्द०)	कवि तोष	धरम० शब्दा०, धरम० धूप०	धरमदास की शब्दावली धूप और धूपी, रामचारीसिंह 'दिनकर,' अजंता प्रेस, लि०, पटना ४
त्याग०	त्यागपत्र, जेनेद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०	नंद० ग्रं०, नंददास ग्रं०	नंददास ग्रंथावली, संपा० जजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
र० सागर	हरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०	नई०	नई पीथ, नागाजुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५३
रश्मिनी०	रश्मिनी का गद्य और पद्य, संपा० श्रीराम वर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०	नट०	नटनागर विनोद, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
दयानिधि (शब्द०)	दयानिधि कवि	नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय,' प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
हरिया० बानी	हरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०	नया०	नया साहित्य : नए प्रश्न, नंददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०
दश०	दशरूपक, संपा० डा० भोलाशंकर व्यास, चौखंभा विद्यामवन, वाराणसी, प्र० सं०	नरेश (शब्द०)	'नरेश' कवि
दशम० (शब्द०)	भाषा दशम स्कंध	नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
दहकते०	दहकते अंगारे, नरोत्तमप्रसाद नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद	नागरी (शब्द०)	नागरीदास कवि ।
दाहू०	श्री दाहूदयाल की बानी, सं० सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी	नाथ (शब्द०)	नाथ कवि
दाहूदयाल ग्रं०	दाहूदयाल ग्रंथावली	नाथसिद्ध०	नाथसिद्धों की बानियाँ, ना० प्र० सभा, वाराणसी प्र० सं०
दाहू० (शब्द०)	दाहूदयाल	नारायणदास (शब्द०)	नारायणदास
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश	निबंधमालादर्श (शब्द०)	निबंधमालादर्श (म० प्र० द्विवेदी)
दिल्ली	दिल्ली, रामचारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० सं०	नील०	नीलकुसुम, रामचारीसिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०	नेपाल०	नेपाल का इतिहास, पं० बलदेवप्रसाद, बेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९६१ वि०
दीन० ग्रं०	दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, संपा० श्याम-सुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	पंचवटी	पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झंसी, प्र० सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि	पजनेस०	पजनेस प्रकाश, संपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यंत्रालय, काशी, प्र० सं०
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०	पदमावत	पदमावत, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झंसी, प्र० सं०
दी० ज०, दीप ज०	दीप जलेगा, उपेन्द्रनाथ 'अशक,' नीलाश्रम प्रकाशन गृह, प्रयाग	पटु०, पटुमा०	पटुमावती, संपा० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह	पद्याकर ग्रं०	पद्याकर ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
देव० ग्रं०	देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	पद्याकर (शब्द०)	पद्याकर भट्ट
देव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवाले)		
देशी०	देशी नाममाला		
देनिकी	देनिकी, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झंसी, प्र० सं०, १९६६ वि०		
दो सी बावन०	दो सी बावन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग], शुद्धादित एकेडमी, काँकरोली, प्रथम सं०		

१० रा०, १० रासो	परमाल रासो, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०		रांगेय राघव, आत्माराम पेंड संस, दिल्ली, प्र० सं०, १०५३ ई०
परमानंद०	परमानंदसागर	प्रिय०	प्रियप्रवास, धर्मोद्यासिंह उपाध्याय 'हरिप्रोब', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, पृष्ठ सं०
परमेश (शब्द०)	परमेश कवि	प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथगार, लखनऊ, प्र० सं०	प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती मंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, पृ० सं०
पर्व०	पर्व की रानी, इलाहबाद, प्र० सं०, १९६६ वि०	प्रेम० श्रीर गोर्की	प्रेमचंद श्रीर गोर्की, संपा० शचीरानी गुर्दा, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
पलटू०	पलटू सहब की बानी [१-३ भाग], बेलवे-डियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०	प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९६६ वि०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०	प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० सं०	प्रेमाञ्जलि	प्रेमाञ्जलि, डा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
पारिजात०	पारिजातहरण	फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
पावेंती	पावेंती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीनंदन, मंगलभवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०	फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०	बंगाल०	बंगाल का काल, हरिवंश राय 'बच्चन', भारती मंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
पिंजरे०	पिंजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०	बाँकी० ग्रं०,	बाँकीदास ग्रंथावली [तीन भाग], संपा० राम-
पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारती मंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००६ वि०	बाँकीदास ग्रं०	नारायण दूगड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
पु० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खंड], संपा० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	बंदन०	बंदनवार, बेवेद सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४६ ई०
पु० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], स० कविराज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०	बद०	बदमाश बंधु, तेगधली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रं०, संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय अज्ञ साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०	बलवीर (शब्द०)	बलवीर कवि
प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, संपा० विजय-शंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	बाँगेदरा	बाँगेदरा
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र	बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
प्रबंध०	प्रबंधपथ, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०	बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', गंगा ग्रंथगार, लखनऊ, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती मंडार, लखनऊ, प्र० सं०	बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
प्राण०	प्राणसंगली, संपा० संत संपूरणसिंह, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	बी० रासो	बीसलदेव रासो, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
प्रा० भा० १०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा०	बीसल० रास	बीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
		बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपाल-सिंह धोरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
		बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
		बृहत्०	बृहत्संहिता
		बृहत्संहिता (शब्द०)	बृहत्संहिता
		बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
		बेला	बेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०

बेलि०	बेलि किसन रुक्मिणी री, सं० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०	भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदय-नारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०
बोधा (शब्द०)	कवि बोधा	मति० ग्रं०	मतिराम ग्रंथावली, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० सं०
ब्रज०	ब्रजविलास, संपा० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०	मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
ब्रज० ग्रं०	ब्रजनिधि ग्रंथावली, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	मधु०	मधुकलश, हरिवंशराय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३६ ई०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, संपा० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, तृ० सं०	मधुज्वाल	मधुज्वाल सुमित्रानंदन पंत, भारती मंडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३६ ई०
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०	मधु मा०	मधुमालती वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, बाराणसी, प्र० सं०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्रीभक्तिसुधाविदु स्वाव, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं०, १९८३ वि०	मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामीचरण, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६० वि०	मनविरक्त०	मनविरक्तकरण गुटका सार (चरणदास)
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६०	मनु०	मनुस्मृति
भगवतरसिक (शब्द०)	भगवत् रसिक	मन्नालाल (शब्द०)	कवि मन्नालाल
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यक्षपाल, विष्णुव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०	मल्लक० बानी	मल्लकदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
भा० इ० व०	भारतीय इतिहास की कपरेखा, जयचंद्र विद्यालंकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ वि०	मल्लक० (शब्द०)	मल्लकदास
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद भोष्ठा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०	मह्ना०	महाराणा का महत्त्व, जयशंकर प्रसाद, भारती मंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, बिरगाँव, झाँसी, नवम सं० ।	महावीर प्रसाद (शब्द०)	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी
भा० भू०, भारत० नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं० १९८७ वि०	महाभारत (शब्द०)	महाभारत
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान	महाराणा प्रताप (शब्द०)	महाराणा प्रताप
भारतेंदु ग्रं०	भारतेंदु ग्रंथावली [४ भाग], संपा० बजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, चतुर्थ सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम पेंड संस, दिल्ली, १९५३ ई०	माधवानल०	माधवानल कामकंदला, बोधा कवि, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १८९१ ई०
भाषा शि०	भाषा शिक्षण, पं० सीताराम चतुर्वेदी	मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
भिलारी ग्रं०	भिलारीदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी	मानव	मानव, कवितासंकलन, भगवतीचरण वर्मा
भीष्मा श०,	भीष्मा शब्दावली प्र० सं०	मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
भुवनेश (शब्द०)	भुवनेश कवि	मानस	मानसरोवर, संपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
सूषण ग्रं०	सूषण ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०	मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती मंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९६६ वि०
सूषण (शब्द०)	कवि सूषण त्रिपाठी	मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० सं०, १९५० ई०
		मुंशी अभि० ग्रं०	मुंशी अभिनंदन ग्रंथ, संपा० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
		मुबारक (शब्द०)	मुबारक कवि
		मुग०	मुगनयनी, बुधाधनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी
		मैला०	मैला आँचल, फणीश्वरनाथ 'रेणु,' समता प्रकाशन, पटना-४, प्र० सं०

मोहन०	मोहनबिनोद, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० सं०	राज० इति०	राजपुताने का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद प्रोक्ता, अजमेर, १९६७ वि०, प्र० सं०
बशी०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, काशी, प्र० सं०	रा० क०	राजरूपक, संपा० पं० रामकृष्ण, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
यामा	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० सं०	रा० वि०	राजविलास, संपा० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवां सं०
युगपथ	युगपथ " " "	रामकवि (शब्द०)	राम कवि
युगांत	युगांत, सुमित्रानंदन पंत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० सं०	राम० चं०	संक्षिप्त रामचंद्रिका, संपा० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ सं०
योग०	योगवाशिष्ठ (वैराग्य मुमुक्षु प्रकरण), गंगा-विष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी बेंकटेश्वर छापाखाना, कल्याण, बंबई सं० १९६७ वि०	राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहवल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथालय, लखनऊ प्र० सं०, १९८१ वि०	राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्म संग्रह, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहवल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रघु० क०	रघुनाथ रूपक गीतारो, संपा० महताबचंद्र खारैड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास	रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, संपा० पीतांबर-दत्त बड़वाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ	रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरबी, वाराणसी, १९३६ वि०
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवांनरेश	रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	रे० बानी	रेदास बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	लखलु (शब्द०)	लखलुलाल
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	लाल (शब्द०)	लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	वर्ण०, वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	विद्यापति	विद्यापति, संपा० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस, लि०, पटना
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	विनय०	विनयपत्रिका, टीका० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	विशाल	विशाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	वैशाली०, वै० न०	वैशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, बिल्ली, प्र० सं०
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
रघुनाथ	रजतशिल्लर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कीमुदी

व्यास (शब्द०)	अंबिकादत्त व्यास	बनारसीदास चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
वज्र (शब्द०)	वज्र (शब्द०)	सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)
सं० वि० (शब्द०)	शंकरादिविजय	सबल (शब्द०)
शंकर०	शंकरसंबंस्व, संपा० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद एंड संस, धागरा, प्र० सं०	सभा० वि० (शब्द०)
शंभु (शब्द०)	शंभु कवि	स० शास्त्र
शकुं०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भौसी	स० सप्तक
शकुंतला	शकुंतला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, चतु० सं०	सहजो०
शाहजहानामा (शब्द०)	शाहजहानामा	साकेत
शाङ्गंचर सं०	शाङ्गंचर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, संवत् १९७१	सागरिका
शिवर०	शिवर वंशोत्पत्ति, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, १९८५	साम०
शिवप्रसाद (शब्द०)	राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद	सा० दर्पण
शिवराम (शब्द०)	शिवराम कवि	सा० लहरी
शुक्ल० अभि० प्र०	शुक्ल अभिनदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन	सा० ममीक्षा
शृ० सत० (शब्द०)	शृंगार सतसई	साहित्य०
शृंगार सुधाकर (शब्द०)	शृंगार सुधाकर	सुंदर० ग्रं०
शेर०	शेर भी सुखन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	सुंदरीसिद्ध (शब्द०)
शैली	शैली, कल्याणपति त्रिपाठी	सुखदा
श्यामा०	श्यामास्वप्न, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	सुधाकर (शब्द०)
श्रद्धानंद (शब्द०)	स्वामी श्रद्धानंद	सुजान०
श्रीधर पाठक (शब्द०)	श्रीधर पाठक	सुनीता
श्रीनिवास ग्रं०	श्रीनिवास ग्रंथावली, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	सुंदर (शब्द०)
संतति०	चंद्रकांता संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी	सूत०
संत तुरसी०	संत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।	सूदन (शब्द०)
सं० दरिया, संत दरिया	संत कवि दरिया, सं० धर्मेश ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०	सूर०
संत र०	संत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ हरिद्वार, प्र० सं०	सूर० (शब्द०)
संतबाणी०, संत०सार०	संतबाणी सार संग्रह [२ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद	सूर० (राधा०)
संन्यासी,	संन्यासी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	सेवक (शब्द०)
संपूर्ण० अभि० प्र०	संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ, संपा० आचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, वाराणसी	सेवक श्याम (शब्द०)
स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	सेवासदन
सत्य०	कविरत्न सत्यनारायण जी की जीवनी, श्री	
		सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)
		सबल (शब्द०)
		सभा० वि० (शब्द०)
		स० शास्त्र
		स० सप्तक
		सहजो०
		साकेत
		सागरिका
		साम०
		सा० दर्पण
		सा० लहरी
		सा० ममीक्षा
		साहित्य०
		सुंदर० ग्रं०
		सुंदरीसिद्ध (शब्द०)
		सुखदा
		सुधाकर (शब्द०)
		सुजान०
		सुनीता
		सुंदर (शब्द०)
		सूत०
		सूदन (शब्द०)
		सूर०
		सूर० (शब्द०)
		सूर० (राधा०)
		सेवक (शब्द०)
		सेवक श्याम (शब्द०)
		सेवासदन
		सत्यार्थप्रकाश
		सबलसिंह चौहान [महाभारत]
		सभाविलास
		समीक्षाशास्त्र, पं० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०
		सतसई सप्तक, संपा० श्यामसुंदरदास, हिंदु-स्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
		सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०
		साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगांव, भौसी, प्र० सं०
		सागरिका, डा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
		सामधेनी, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल पटना, द्वि० सं०
		साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री भुव्युज्य प्रोद्योगिकी, लखनऊ, प्र० सं०
		साहित्यलहरी, संपा० रामलोचनशरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना
		साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
		साहित्यालोचन
		सुंदरदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता
		सुंदरी सिद्ध
		सुखदा, जैनैन्द्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
		महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी
		सुजानचरित (सूदनकृत), संपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०
		सुनीता, जैनैन्द्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं०
		सुंदर कवि
		सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
		सूदन कवि (भरतपुरवाले)
		सूरसागर [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय सं०
		सूरदास
		सूरसागर संपा० राधाकृष्णदास, बैकटेश्वर प्रेस, प्र० सं०
		'सेवक' कवि
		सेवक श्याम कवि
		सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं०

सैर कु०	सैर कुहसोर, पं० रतननाथ 'सरशार,' नवल- किशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०	हालाहल	हालाहल, हरिवंशराय बच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १९४६ ई०
सी अजान० (शब्द०)	सी अजान और एक सुजान, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	हिंदी भा० हि० का० प्र०	हिंदी भाषाशोधना हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पणजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	हि० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	हिंदी प्रदीप (शब्द०) हिंदी प्रेमगाथा	हिंदी प्रदीप हिंदी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३९ ई०
स्वामी हरिदास (शब्द०) हंस०	स्वामी हरिदास हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमगाथानक काव्य, डा० कमल कुलशेष्ठ, चौधरी भानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १९४८
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, प्र० संपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	हि० प्र० चि० हि० सा० भू०	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हनुमान (शब्द०) हनुमान कवि (शब्द०) हम्मीर०	हनुमन्नाटक हनुमान कवि (शब्द०) हम्मीरहठ, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर,' इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग	हिंदु० सभ्यता	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
ह० रासो०	हम्मीर रासो, संपा० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	हिम कि०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
हरिजन (शब्द०) हरिदास (शब्द०) हरिचंद्र (शब्द०) हरिसेवक (शब्द०) हरी वास०	कवि हरिजन स्वामी हरिदास भारतेंदु हरिचंद्र हरिसेवक कवि हरी वास पर अणु भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४९ ई०	हिम त० हिम्मत० हिल्लोल	हिम्मतबहादुर बिस्वावली, लाला भगवान- दीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं० हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०
हर्ष०	हर्षचरित् : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेव- शरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०, १९५३ ई०	हमार्थ हृदय०	हमार्थनामा, अनु० अजरतनदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं० हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अ०	अंग्रेजी	अव्य०	अव्यय
अ०	अरबी	इव०	इबरानी
अक० रूप	अकर्मक रूप	उ०	उदाहरण
अनु०	अनुकरण शब्द	उच्चा०	उच्चारण सुविधा
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक	उड़ि०	उड़िया
अनु० मू०	अनुकरणार्थमूलक	उप०	उपसर्ग
अनुर०	अनुरणनात्मक रूप	उभय०	उभयलिङ्ग
अप०	अपभ्रंश	एकव०	एकवचन
अर्ध भा०	अर्धमागधी	कहावत	कहावत
अल्पा०	अल्पार्थक	काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र
अव०	अवधी	[कौ०], [कौ०]	अन्य कोश

कौंक०	कौंकणी	फा०	फारसी
क्रि०	क्रिया	बँग०	बँगला भाषा
क्रि० ध०	क्रिया धर्मक	बरमी०	बरमी भाषा
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग	बहुव०	बहुवचन
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण	कुं० खं०	कुंदेलखंड की बोली
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक	बोल०	बोलचाल
कव०	कवचित्	भाव०	भाववाचक संज्ञा
गीत	लोकगीत	भू०	भूमिका
गुज०	गुजराती	भू० कृ०	भूत कृत
ची०	चीनी भाषा	मरा०	मराठी
छंद०	छंद	मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
जापा०	जापानी	मला०	मलायम भाषा
जावा०	जावा द्वीप की भाषा	मि०	मिलाइए
जी०, जीवन०	जीवनचरित्	मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
ज्या०	ज्यामिति	मुहा०	मुहावरा
ज्यो०	ज्योतिष	यू०	यूनानी
डि०	डिगल	यी०	योगिक
त०	तमिल	राज०	राजस्थानी
तर्क०	तर्कशास्त्र	लश०	लशकरी
ति०	तिब्बती भाषा	ला०	लाक्षणिक
तु०	तुर्की	लै०	लैटिन
दू०	दूहा या दूहला	व० कृ०	वर्तमान कृत
दे०	देखिए	वि०	विशेषण
देश०	देशज	वि० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक
देशी	देशी	वै०	वैदिक
धर्म०	धर्मशास्त्र	व्या०	व्याकरण
नाम०	नामधातु	(शब्द०)	शब्दसागर
ना० धा०	नामधातुज क्रिया	सं०	संस्कृत
नामिक घातु	नामिक घातु	संयो०	संयोजक अव्यय
ने०	नेपाली	संयो० क्रि०	संयोजक क्रिया
न्याय०	न्याय या तर्कशास्त्र	स०	सकर्मक
पं०	पंजाबी	सक० रूप	सकर्मक रूप
परि०	परिशिष्ट	सधु०	सधुक्की भाषा
पा०	पाली	सर्व०	सर्वनाम
पुं०	पुंलिंग	स्वे०	स्पेनी भाषा
पुस्तं०	पुस्तंगाली	स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
पृ० हि०	पुरानी हिंदी	स्त्री०	स्त्रीलिंग
पू० हि०	पूर्वी हिंदी	हि०	हिंदी
पु०	पुण्ड	५	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
प्रत्य०	प्रत्यय	>	व्युत्पन्न
प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना	†	प्रांतीय प्रयोग
प्रा०	प्राकृत	‡	ग्राम्य प्रयोग
प्रे०	प्रेरणार्थक रूप	✓	घातुबिह्न
फ०	फराँसीसी भाषा	*	संभाव्य व्युत्पत्ति
फकीर०	फकीरों की बोली	?	अनिश्चित व्युत्पत्ति

हिंदी शब्दसागर

ज

ज—हिंदी वर्णमाला में चवग के अंतर्गत एक व्यंजन वर्ण। यह स्पर्श वर्ण है और चवग का तीसरा अक्षर है। इसका बाह्य प्रत्यय संवार और नाव घोष है। यह अल्पप्राण माना जाता है। 'झ' इस वर्ण का महाप्राण है। 'च' के समान ही इसका उच्चारण तालु से होता है।

जंकशन—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह स्थान जहाँ दो या अधिक रेलवे लाइनें मिली हों। जैसे,—मुगलसराय जंकशन। २. वह स्थान जहाँ दो रास्ते मिले हों। संगम। जैसे,—कालेज स्ट्रीट और हैरिसन रोड के जंकशन पर गहरा दंगा हो गया।

जंग^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०, सं० जङ्ग] [वि० जंगी] लड़ाई। युद्ध। समर। उ०—असदखान करि हल्ल जंग दुहुँ मोर मचाइय। सनमुख प्ररि इट्टि सुभट बहु कट्टि हटाइय।—सुदन (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

थी०—जंगमावर। जंगजू।

जंग^२—संज्ञा स्त्री० [अं० जङ्ग] एक प्रकार की बड़ी नाव जो बहुत चौड़ी होती है।

क्रि० प्र०—खोलना।

जंग^३—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंग] १. लोहे का मुरचा। धातुजन्य मेल।

क्रि० प्र०—लगना।

२. घंटा। घड़ियाल (को०)। ३. हवणियों का देश (को०)।

जंगमावर—वि० [फ्रा०] लड़नेवाला घोड़ा। लड़ाका।

जंगजू—वि० [फ्रा०] लड़ाका। वीर। योद्धा। उ०—घोर सुना है प्रताप बड़े जोश के साथ फौज मुहम्मद कर रहा है और जंगजू राजपूत व भील बराबर आते जाते हैं।—महाराणा प्रताप (शब्द०)।

जंगम^१—वि० [सं० जङ्गम] १. चलने फिरनेवाला। चलता फिरता। चर। उ०—पुष्पराशि समान उसकी देख पावन कांति। भूप को होने लगी जंगम लता की आंति।—शकुं०, पृ० ७। २. जो एक स्थल से दूसरे स्थल पर लाया जा सके। जैसे, जंगम संपत्ति, जंगम विष। ३. गमनशील प्राणी से उत्पन्न या प्राणिजन्य।

जंगम^२—संज्ञा पुं० दाक्षिणात्य लिगायत शैव संप्रदाय के गुरु।

विशेष—ये दो प्रकार के होते हैं—विरक्त और गृहस्थ। विरक्त सिर पर जटा रखते हैं और कीपीय पहनते हैं। इन लोगों का लिगायती में बड़ा मान है।

३. गमनशील यति। जोगी। उ०—कहूँ जंगम तुं कौन नर क्यों भागम हूँ कौन।—पृ० रा०, ६। २२। ४. जाना। गमन। उ०—तिन रिधि पूछिय ताहि, कवन कारन इत भंगम। कवन पान, किहि नाम, कवन दिसि करिब सु जंगम।—पृ० रा०, १। ५६१।

जंगमकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्गमकुटी] छतरी (को०)।

जंगमगुल्म—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गमगुल्म] पैदल सिपाहियों की सेना।

जंगम विष—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गमविष] वह विष जो चर प्राणियों के दंश, आघात या विकार आदि से उत्पन्न हो।

विशेष—सुश्रुत ने सोलह प्रकार के जंगम विष माने हैं—दृष्टि, विश्वास, दंष्ट्रा, नख, मूत्र, पुरीष, शुक्र, लाला, भ्रातृव, भास (भाङ्ग), मुखसंदेश, अस्थि, पित्त, विशदित, शूक और शव या मृत वेह। उदाहरण के लिये जैसे, विष्य सर्प के ब्वास में विष; साधारण सर्प के दंशन में विष; कुत्ते, बिल्ली, बंदर, गेहूँ आदि के नख और दाँत में विष; बिच्छू, भिड़, सकुची मछली आदि के भाङ्ग में विष होता है।

जंगल—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गल] [वि० जंगली] १. जलमय भूमि। रेगिस्तान। २. वन। कानन। अरण्य।

मुहा०—जंगल खंगालना = जंगल में खाना। जंगल की जाँच पड़ताल करना या खानना। जंगल में भंगल = सुनसान स्थान में चहल पहल। जंगल जाना = टट्टी जाना। पालाने जाना।

३. मौस। ४. एकांत या निर्जन स्थान (को०)। ५. बंजर भूमि। ऊसर (को०)।

जंगल जलेबी—संज्ञा पुं० [हि० जंगल + जलेबी] १. गू। गलीज। गू का लेंड। २. बरियारे की जाति का एक पीसा जिसके पीसे रंग के फूल के अंदर कुंडलाकार लिपटे हुए बीज होते हैं। जलेबी।

जंगला^१—संज्ञा पुं० [पुस्तं० जंगला] १. लिङ्की, बरबाजे, बरामबे आदि में लगी हुई लोहे की छड़ों की पंक्ति। कटहरा। बाड़। २. खोखट या लिङ्की जिसमें जाली या छड़ लगी हों। जंगला।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. कुपट्टे आदि के किनारे पर काढ़ा हुआ बेल बूटा।

जंगला^२—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गल्य] १. संगीत के बारह मुकामों में से एक। २. एक राग का नाम। ३. एक मछली जो बारह इंच लंबी होती है और बंगाल की नदियों में बहुत मिलती है। ४. अन्न के वे पेड़ या बंठल जिनसे कूटकर अन्न निकाल लिया गया हो।

जंगली—वि० [हि० जंगल] १. जंगल में मिलने या होनेवाला। जंगल संबंधी। जैसे, जंगली लकड़ी, जंगली कंड़ा। २. आपसे आप होनेवाला (वनस्पति)। बिना बोए या लगाए उगनेवाला। जैसे, जंगली आम, जंगली कपास। ३. जंगल में रहनेवाला। बनीला। जैसे, जंगली आदमी, जंगली जानवर, जंगली हाथी। ४. जो घरेलू या पालतू न हो। जैसे, जंगली कबूतर। ५. असभ्य। उजड़। बिना खलीके का। जैसे, जंगली भाषणी।

जंगली बादाम—संज्ञा पुं० [हि० जंगली+बादाम] १. कतीले की जाति का एक पेड़। फूल। पिनार।

विशेष—यह वृक्ष भारतवर्ष के पश्चिमी घाट के पहाड़ों तथा मलबान और टनासरिन के ऊपरी भागों में होता है। इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है। यह पेड़ फागुन चैत में फूलता है और इसके फूलों से कड़ी दुर्गंध आती है। इसके फलों के बीज को उबालकर तेल निकाला जाता है। इन बीजों को महींगे के दिनों में लोग मूनकर भी खाते हैं। फूल और पत्तियाँ घोष के काम में आती हैं। इसे पून और पिनार भी कहते हैं।

२. हड की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह अरुमन के टापू तथा भारतवर्ष और बर्मा में भी उत्पन्न होता है। इसकी छाल से एक प्रकार का गोंद निकलता है और इसके बीज से एक प्रकार का बहुमूल्य तेल निकलता है जो गंध और गुण में बादाम के तेल के समान ही होता है। इसकी पत्तियाँ कसेली होती हैं और चमड़ा सिक्काने के काम में आती हैं। इसके बीज को लोग गजक की तरह खाते हैं और इसकी खली सुघरों को खिलाई जाती है। इसकी छाल, पत्ती, बीज, तेल आदि सब घोष के काम में आते हैं। लोग इसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को भी खिलाते हैं। इसे हिंदी बादाम और नट बादाम भी कहते हैं।

जंगली रेंड संज्ञा पुं० [हि० जंगली+रेंड] दे० 'बन रेंड'।

जंगा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगला] श्रृंखला का दाना। बोर।

जंगार—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगार] [वि० जंगारी] १. तबे का कसाव। तूतिया। २. एक प्रकार का रंग। उ०—सस्वीर वही शंगरफो जंगार में आया।—कबीर मं०, पृ० ३३०।

विशेष—यह तबे का कसाव है जिसे सिरकाकश लोग निकालते हैं। वे तबे के चूरा को सिरके के अर्क में डाल देते हैं। सिरके का बरतन रात भर मुँह बंद करके और दिन को मुँह खोल करके रखा रहता है। चौबीस घंटे के बाद सिरके को उस बरतन से निकालकर छिछले बरतन में सूखने के लिये रख देते हैं। जब पानी सूख जाता है तब उसके नीचे चमकीली नीले रंग की बुकनी निकलती है जो रंगाई के काम में आती है।

जंगारी—वि० [फ्रा० जंगार] नीले रंग का। नीला।

जंगाख—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगार] दे० 'जंगार'। उ०—और जंगाल रंग लेहि माई। येहि विधि पाँचो तत दरसाई।—घट०, पृ० २३८।

जंगाल^२—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गल] पानी रोकने का बाँध।

जंगाली—वि० [फ्रा० जंगार] दे० 'जंगारी'। उ०—स्याही सुरख सफेदी होई। जरद जाति जंगाली सोई।—घट०, पृ० ६७।

जंगाली^३—संज्ञा पुं० एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो चमकीले नीले रंग का होता है।

जंगालीपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० जंगारी+पट्टी] गंधा बिरोजा की बनी नीले रंग की पट्टी जो फोड़े फुंसियों पर लगाई जाती है।

जंगी^१—वि० [फ्रा०] १. लड़ाई से संबंध रखनेवाला। जैसे, जंगी जहाज, जंगी कानून। २. फौजी। सैनिक। सेना संबंधी। जैसे, जंगी साट, जंगी अफसर।

यौ०—जंगी साट = प्रधान सेनापति।

३. बड़ा। बहुत बड़ा। दीर्घकाय। जैसे, जंगी घोड़ा। ४. बीर। लड़ाका। बहादुर। जैसे, जंगी घादमी। ५. स्वस्थ। पुष्ट। जैसे, जंगी जवान।

जंगी^२—संज्ञा पुं० [दे०] (कहारों की बोलचाल में) घोड़ा। जैसे,—दाहने जंगी, बचा के।

जंगी^३—वि० [फ्रा०] जंघवार का। हथवा देश का। जैसे, जंगी हड़।

जंगी^४—संज्ञा स्त्री० जंघवार देश का निवासी। हथवा।

जंगी जहाज—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगी+प्र० जहाज] लड़ाई के काम का जहाज। युद्धपोत।

जंगी बेड़ा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगी+हि० बेड़ा] लड़ाकू जहाजों का समूह। युद्धपोतों का काफिला।

जंगी हड़—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जंगी+हि० हड़] काली हड़। छोटी हड़।

जंगुल—संज्ञा पुं० [सं० जंगुल] जहर। विष।

जंगे जरगरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जंगेजरगरी] केवल दिखावटी या झूठमूठ की लड़ाई। झूठयुद्ध [को०]।

जंगोला—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे चोरी, मामरी और कही भी कहते हैं। वि० दे० 'कही'।

जंगे—संज्ञा स्त्री० [हि० जंगी] बड़ी धुँधक लगी कमरपट्टी जिसे गहीर या घोड़ी अपने जातीय नाच के समय कमर में बाँधते हैं।

जंगोजदल—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जंगो+घ० जदल] रक्तपात। मारकाट। लड़ाई झगड़ा। उ०—नई हंसको हगिज है वह बल। ता उसके करें हम जंगोजदल।—दक्खिनी०, पृ० २२२।

जंगोजिवाल—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगो+घ० जिवाल] दे० 'जंगो-जदल'।

जंघ^१(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्घा] दे० 'जंघा'। उ०—जालु जंघ निभंग सुंदर कलित कंचन बंड। काखनी कटि पीत पट दुति, कमल केसर खंड।—सूर०, १। ३०७।

जंघ^२—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घा] जाँघ में पहनी जानेवाली जाँघिया।

जंघा—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्घा] १. पिडली। २. जाँघ। रान। उ०। ३. कैंची का दस्ता जिसमें फल और दस्ताने लगे रहते हैं। यह प्रायः कैंची के फलों के साथ ढाला जाता है पर कभी कभी यह पीतल का भी होता है।

जंघाकर, जंघाकार—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाकर, जङ्घाकार] हरकारा। धावक [को०]।

जंघात्राण—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध में जाँघों की रक्षा के काम में उपयोगी कवच [को०]।

जंघापथ—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घापथ] पैदल रास्ता [को०]।

जंघाफार—संज्ञा पुं० [हि० जंघा+फारना] कहारों की बोली में

वह छवि जो पत्तकी के उठानेवाले कहारों के रास्ते में पड़ती है।

जंघाबंधु—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाबन्धु] एक ऋषि का नाम [को०]।

जंघाबल—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाबल] दोड़ने की शक्ति। जंघि की ताकत [को०]।

जंघामथानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंघा + मथानी] छिनाल स्त्री। पंखली। कुलटा।

जंघार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंघा + भार] वह फोड़ा जो जंघि में हो।

विशेष—यह प्राकृति में संघा और कड़ा होता है और बहुत दिनों में पकता है। इसमें अधिक पीड़ा और जलन होती है।

जंघारथ—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घारथ] १. एक ऋषि का नाम। २. जंघारथ नामक ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

जंघारा—संज्ञा पुं० [देश० मयवा सं० जङ्ग (= लड़ना); या सं० जङ्ग (= युद्ध) + हिं० भार (प्रत्य०)] राजपूतों की एक जाति जो बड़ी भगड़ावू होती है। उ०—तब जंघारो बीर बर स्वामि सु मागे घाई।—पृ० रा०, ६१। २४००।

जंघारि—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घारि] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

जंघाल^१—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाल] १. घाबन। घावक। दूत। २. भावप्रकाश के अनुसार भ्रम की सामान्य जाति।

विशेष—इस जाति के प्रसंगत हरिण, एण, कुरंग, ऋष्य, पुषत, ग्यंकु, शंवर, राजीव, मुंडी आदि हैं। तामड़े रंग के हिरन को हरिण, कृष्णवर्ण को एण, कुछ ताम्र वर्ण लिए काले को कुरंग, नीलवर्ण को ऋष्य, हरिण से कुछ छोटे चंद्रविद्युत् को पुषत, बहुत से सींगवाले को भ्रम, ग्यंकु इत्यादि कहते हैं।

जंघाल^२—वि० वेग से दोड़नेवाला [को०]।

जंघिल—वि० [सं० जङ्घिल] शीघ्रगामी। फुर्तीला। प्रज्वी। तेजी से दोड़नेवाला [को०]।

जंघपूक—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घपूक] मंद स्वर से जप करनेवाला भक्त। उ०—जंघपूक गठरी सी बैठयो भुकी कमर सन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६।

जजबील—संज्ञा स्त्री० [सं० जजबील] सोंठ। सूखी अदरक। गुंठि [को०]।

जंजर^१—वि० [सं० जंजर] ३० 'जंजल'।

जंजर^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंजीर] शृंखला। जंजीर। उ०—तबई लगि दिह जंजर जेरी। मोह लोह की पादनि बेरी।—मंद० प्र०, पृ० २७३।

जंजरित^३—वि० [हिं० जं (= अनु) + सं० जटित, हिं० जरित] प्रथित सा। जड़ा हुआ सा। उ०—नयन उदय पुंडरिक प्रसन ममरीय सु राजै। गुंजहार जंजरित तड़ित बहुरि सु विराजै।—पृ० रा० २। ५१०।

जंजल^४—वि० [सं० जंजर, प्रा० जजजर] पुराना और कमजोर। बेकाम। भीयूं भीयूं।

जंजार^५—संज्ञा पुं० [हिं० जग + जाल] ३० 'जंजाल' उ०—कहा पड़ावे बावरे और सकल जंजार।—संत रा०, पृ० १४३।

जंजाल^६—संज्ञा पुं० [हिं० जग + जाल] [वि० जंजालिया, जंजाली] १. प्रपंच। भ्रंश। बखेड़ा। उ०—घस प्रभु दीनबंधु हरि, कारन रहित दयाल। तुलसिदास सठ ताहि भजु छाड़ि कपट जंजाल।—तुलसी (शब्द०)। २. बंधन। फँसान। उलझन। उ०—(क) भाजा लै के चन्वो नृपति बहै उत्तर दिशा विशाल। करि तप विप्र जनम जब लीन्हों, मिटयो जन्म जंजाल।—सूर० (शब्द०)। (ख) हृदय की कबहुँ न पीर घटी। दिन दिन होन छीन भई काया, दुख जंजाल जटी।—सूर० (शब्द०)।

मुहा०—जंजाल तोड़ना = बंधन या फँसाव को दूर करना। उ०—भव जंजाल तोरि तरु बन के पल्लव हृदय बिदान्यो।—सूर० (शब्द०)। जंजाल में पड़ना या फँसना = कठिनता में पड़ना। संकट में पड़ना। उलझन में फँसना।

३. पानी का भँवर। ४. एक प्रकार की बड़ी पलीलेदार बंदूक जिसकी नाल बहुत लंबी होती है। यह बहुत भारी होती है और दूर तक मार करती है। उ०—सूरज के सूरज गहि लुटिय। तुपक तेग जंजालन छुटिय।—सूदन (शब्द०)। ५. एक बड़े मुँह की तोप। इसमें कंकड़ पत्थर आदि भरकर फेंके जाते थे। यह बहुधा किले का धुस तोड़ने के काम में आती थी। ६. बड़ा जाल।

जंजालिया—वि० [हिं० जंजाल + ह्या (प्रत्य०)] १. जंजाल या जंजाल रचनेवाला। बखेड़ा करनेवाला। उ०—बाहू रे ईश्वर! तेरे सरीखा जंजालिया कोई जालिया भी न निकलेगा।—श्यामा०, पृ० ५। २. भगड़ावू। उपद्रवी। फसादी।

जंजाली^१—वि० [हिं० जंजाल] भगड़ावू। बखेड़िया। फसादी।

जंजाली^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंजाल] वह रस्सी और धिरनी जिससे पाल चढ़ाते या गिराते हैं।

जंजीर—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जंजीर] [वि० जंजीरी] १. साँकल। सिकड़ी। कड़ियों की लड़ी। जैसे, लोहे की जंजीर। उ०—तुम सु छुड़ावहु मंत कहू, बहुरि जरहु जंजीर।—पृ० रा०, ६। १६२। २. बेड़ी।

मुहा०—जंजीर डालना = पैर में बेड़ी डालना। बाँधना। बंदी करना। पैर में जंजीर पड़ना = (१) जंजीर में जकड़ा जाना। बंदी होना। (२) स्वच्छंदता का अपहरण होना। बाधा या विवशता। उ०—प्रीतम बसत पहार पर, हम जमुना के तीर। अब तो मिलना कठिन है, पाँव परी जंजीर।—(शब्द)।

३. किवाड़ की कुंडी या सिकड़ी।

मुहा०—जंजीर बजाना = कुंडी खटखटाना। जंजीर लगाना = कुंडी बंद करना।

जंजीरखाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंजीरखानह्] कारागृह। जेलखाना। कैदखाना [को०]।

जंजीरा—संज्ञा पुं० [हिं० जंजीर] एक प्रकार की सिलाई जो बेहने में जंजीर की तरह मासूम पड़ती है। यह फाँस डाल-

कर सी जाती है और यह केवल कसीबे और सूईकारी में काम आती है। लहरिया।

झि० प्र०—डालना।

जंजीरि^७—वि० [हि० जंजीर + ई] जंजीरदार। जिसमें जंजीर लगी हो।

जंजीरी—वि० [झा० जंजीरी] १. जंजीरदार। २. जंजीर में बंधा। बंदी [को०]।

मुहा०—जंजीरी गोला = तोप के वे गोले जो कई एक साथ जंजीर में लगे रहते हैं। ये साधारण गोलों की अपेक्षा अधिक म्यानक होते हैं।

जंजीरेदार—वि० [हि० जंजीरा + दार] जिसमें जंजीरा पड़ा हो। जंजीरा डाला हुआ। लहरियादार।

विशेष—यह केवल सिलाई के सिये प्रयुक्त होता है। जैसे, जंजीरे-दार सिलाई।

जंट—संज्ञा पु० [प्र० ज्वाइंट] जिला मजिस्ट्रेट के नीचे का सिविलियन मजिस्ट्रेट। जंट मजिस्टर।

जंटिलमैन—संज्ञा पु० [प्र०] १. भलामानुस। सभ्य पुरुष। २. प्रंगेजी बाल डाल से रहनेवाला आदमी। उ०—तुम लोग अभी जंटिलमैन से टूट करना बिल्कुल नहीं जानता।—मोमचन०, भा० २, पृ० ७६।

जंड—संज्ञा पु० [देश०] एक जंगली पेड़ जिसे सागर भी कहते हैं। इसकी फलियों का अचार बनाया जाता है। उ०—डेले, पीपू, आक और जंड के कुछमुड़ाए हुए।—ज्ञानदान, पृ० १०३।

जंडेल^१—वि० [हि० जंट + एल (प्रत्य०)] १. प्रधान। बड़ा। २. स्वस्थ। तंदुरुस्त। हट्टाकट्टा।

जंडेल^२—संज्ञा पु० [प्र० जनरल] सैनिक अफसर। नायक। उ०—मलकारी ने टोकने के उत्तर में कहा—हम तुम्हारे जंडेल के पास जाउता है।—भासी०, पृ० ४३५।

जंत^३—संज्ञा पु० [सं० जन्तु] प्राणी। जीव। जंतु। उ०—कर्महि करि उपजत ये जंत। कर्महि करि पुनि सबकों छंत।—नंद० प्र०, पृ० ३०६।

जी०—जीवजंत = जीव जंतु। उ०—(क) जीवजंत घन विघन बन जीव जीव बल छीन।—पृ० रा०, ६। २२। (ख) जा दिन जीव जंत नहीं कोई।—रामानंद, पृ० १२।

जंत^४—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र; प्रा० जंत] यंत्र। तांत्रिक यंत्र। जंतर।

जी०—जंत मंत = जंतर मंतर

जंतर—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र, प्रा० जंत्र] १. कल। घोजार। यंत्र। २. तांत्रिक यंत्र।

जी०—जंतर मंतर।

३. चौकोर या लंबी ताबीज जिसमें तांत्रिक यंत्र या कोई टोटके की वस्तु रहती है। इसे लोग अपनी रक्षा या सिद्धि के लिये पहनते हैं। उ०—जंतर टोना मूढ़ हिलावन ता कूं सच न मानो।—चरण० बानी, पृ० १११। ५. गले में पहनने का एक गहना जिसमें चाँदी या सोने के चौकोर या लंबे टुकड़े

पाट में गुंथे होते हैं। कटुला। ताबीज। ५. यंत्र जिससे वैद्य या रासायनिक तेल या आसब आदि तैयार करते हैं। ६. जंतर मंतर। मानमंदिर। आकाशलोचन। ७. पत्थर, मिट्टी आदि का बड़ा ढोंका। ८. बीणा। बीन नामक बाजा।

जंतर मंतर—संज्ञा पु० [हि० यन्त्र + मन्त्र] १. यंत्र मंत्र। टोना टोटका। जादू टोना। २. आकाशलोचन। मानमंदिर जहाँ ज्योतिषी नक्षत्रों की स्थिति, गति आदि का निरीक्षण करते हैं।

जंतरा—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्री] एक रस्सी जो गाड़ी के ढाँचे पर कसी या तानी जाती है। जंत्रा।

जंतरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्र] १. छोटा जंता जिसमें सोनार तार बढ़ाते हैं। वि० दे० 'जंता'—२।

मुहा०—जंतरी में खींचना = (१) तारों को जंते में डालकर पतला और लंबा करना। (२) सीधा करना। दुरुस्त करना। कज निकालना। टेढ़ापन दूर करना।

२. पत्र। तिथिपत्र। एक तरह का पंचांग। उ०—मेरे यहाँ की संग्रह की जंतरियों आदि को देखकर ही यह बात लिखी है।—सुंदर० प्र०, भा० १ (जी०), पृ० १२१।

जंतरी^२—संज्ञा पु० १. जादूगर। मानमती। २. बाजा बजानेवाला। वाद्यकुशल व्यक्ति। उ०—बिना जंतरी यंत्र बाजता गगन में।—पलटू०, पृ० ६४।

जंता^१—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र] [स्त्री० जंती, जंतरी] १. यंत्र। कल। जैसे, जंताघर। २. सोनारों और तारकसों का एक घोजार जिसमें डालकर वे तार खींचते हैं।

विशेष—यह घोजार लोहे की एक लंबी पट्टी होती है जिसमें बहुत से ऐसे छेद कई पंक्तियों में होते हैं जो क्रमशः छोटे होते जाते हैं। सोनार सोने या चाँदी के तारों को पहले बड़े छेदों में, फिर उससे छोटे छेदों में, फिर और छोटे छेदों में क्रमानुसार निकालकर खींचते हैं जिससे तार पतले होकर बढ़ते जाते हैं।

जंता^२—वि० [सं० यन्त्र (= यंता) यंत्रणा देनेवाला। बंड देनेवाला। आसन करनेवाला। उ०—साकिनी डाकिनी पूतना श्रेष्ठ बैताल भूत प्रथम लुप्य जंता।—तुलसी प्र०, पृ० ४६७।

जंता^३—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र] अश्वरथ का वाहक। सारथी उ०—जाकों तू भयो जात है जंता। घट्यों गर्भ सु वेरो हुंता।—नंद० प्र०, पृ० २२१।

जंता^४—संज्ञा पु० [सं० जनिट > जनिता] [स्त्री० जंती] पिता। बाप।

जंती^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जंता] छोटा जंता जिससे सोनार बारीक तार खींचते हैं। जंतरी।

जंती^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जनिट > जनिता, या हि० जमना] माता। माँ।

जंतु—संज्ञा पु० [सं०] १. जन्म लेनेवाला जीव। प्राणी। जानवर।

जी०—जीवजंतु = प्राणी। जानवर।

२. महाभारत के अनुसार सोमक राजा का एक पुत्र जिसकी चरबी

से होम करने के पीछे ही पुत्र हो गए । ३. आत्मा । जीवस्थ
आत्मा (को०) । ४. झुद्ध जीव । निम्न कोटि का जाववर । कीट
पतंग प्राणि (को०) ।

जंतुकुं—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुकुम्] १. शंख का कीड़ा । २. शंख ।

जंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुका] लाख । जंतुका । लाखा ।

जंतुघ्न^१—वि० [सं० जन्तुघ्न] प्राणिनाशक । कुमिघ्न ।

जंतुघ्न^२—संज्ञा पुं० १. विडंग । वायविडंग । २. ह्रींग । ३. बिजोरा
नीबू । ४. वह धोष जिसके संपर्क से कीड़े मर जाते हैं ।

जंतुघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुघ्नी] वायविडंग । विडंग ।

जंतुनाशक—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुनाशक] ह्रींग ।

जंतुपावप—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुपावप] कोशाग्र या कोसम नाम का
वृक्ष । वि० दे० 'कोसम' (को०) ।

जंतुफल—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुफल] उदुंबर । गुलर । ऊमर ।

जंतुमति—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुमती] पृथ्वी । धरती (को०) ।

जंतुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुमारी] नीबू ।

जंतुला—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुला] कांस नाम की चास ।

जंतुशाला—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुशाला] बिड़ियाघर ।

जंतुहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुहन्त्री] वायविडंग । जंतुघ्नी ।

जंत्र—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] १. कल । घोजार । २. तांत्रिक यंत्र ।

यौ०—जंत्रमंत्र ।

३. ताला । ४. तंत्र वाद्य । बाजा । वि० दे० 'यंत्र' । उ०—कबीर
जंत्र न बाजही, टूटि गया सब तार ।—कबीर सा० सं०,
पृ० ७६ ।

जंत्रना^१—क्रि० सं० [हि० जत्र] ताला लगाना । ताले के भीतर
बंद करना । जकड़बंद करना । उ०—सभा राउ गुरुमहिसुर
मंत्री । भरत भगति सबके मति जंत्री ।—तुलसी (शब्द०) ।

जंत्रना^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्रणा] दे० 'यंत्रणा' ।

जंत्रमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र-मन्त्र] दे० 'जंतर मंतर', 'यंत्र मंत्र' ।
उ०—जयति पर जंत्र मंत्राभिचार ससन, कारमनि कूट
कृत्पादि हुंता ।—तुलसी प्र०, पृ० ४६७ ।

जंत्रा—संज्ञा पुं० [हि० जतरा] दे० 'जंतरा' ।

जंत्रित—[सं० यन्त्रित] १. नियंत्रित । बंद । बंधा । उ०—जयति
निरुपाधि भक्तिभाव जंत्रित हृदय बंधु हित चित्रकूटादि
चारी ।—तुलसी (शब्द०) । २. ताला लगा हुआ । ताले में
बंद । उ०—नाम पाहुरू रासि दिन, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निजपद जंत्रित जाहि प्राण केहि बाट ।—मानस,
५ । ३० ।

जंत्री^१—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्रिक] वीणा आदि बजानेवाला । बाजा
बजानेवाला ।

जंत्री^२—वि० यंत्रित करनेवाला । बद्ध करनेवाला । जकड़बंद करने-
वाला ।

जंत्री^३—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्रिन] बाजा । उ०—बाजन दे बैजंतरा जग
जंत्री ना छेड़ । तुफे विरानी क्या पड़ी अपनी प्राप निवेर ।—
कबीर (शब्द०) ।

जंत्री^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक प्रकार का तिथिपत्र । पत्रा ।
जंतरी ।

जंबू^१—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंबू; मि० सं० छन्दस्] १. पारसियों का
प्रत्यंत प्राचीन धर्मग्रंथ ।

विशेष—इसकी भाषा वैदिक भाषा से मिलती जुलती है । इसके
इलोक को 'गाथा' या मंत्र (मि० सं० मंत्र) कहते हैं । इसके
छंद और देवता वेदों के छंदों और देवताओं से मिलते हैं ।

२. वह भाषा जिसमें पारसियों का जंबू प्रवेस्ता नामक धर्मग्रंथ
लिखा गया है ।

यौ०—जंबू प्रवेस्ता=अरयुस्त्र रचित पारसियों का धर्मग्रंथ ।

जंदरा—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र > हि० जंतर > जदरा] १. यंत्र ।
कल ।

मुहा०—जंदरा ढीला होना = (१) कल पुर्जे बेकार होना ।
(२) हाथ पैर सुस्त होना । थकावट घाना । नस
ढीली होना ।

२. जाँता । जैसे, कुछ गेहूँ गीले, कुछ जंदरे ढीले । † ३. ताला ।

जंदा^१—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र हि० जन्त्र] ताला । उ०—जिस विषम
कोठड़ी जंदे मारे । बिनु बीबी क्यों खूबहि ताले ।—प्राण०,
पृ० ३२ ।

जंघाला—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्राला] १२८ हाथ लंबी, १६ हाथ
चौड़ी और १२९ हाथ ऊँची नाव ।

जंपती—संज्ञा पुं० [सं० जम्पती] दंपती । पतिपत्नी ।

जंपना^१—क्रि० घ० [सं० जल्प; प्रा० जप्प, जप; सं० जल्पना]
कहना । कथन करना । उ० (क) हम जपे चंद बरदिया
कहा निषट्टे हय प्रली ।—पृ० रा० ५७ । २३६ । (ख)
सम बनिता बर बदि चंद जपिय कोमल कल ।—पृ० रा०,
१।३३ । (ग) यों कवि भूषण जंपत है लखि संपति को
अलकापति लाजे ।—भूषण (शब्द०) ।

जंब^१—संज्ञा पुं० [सं० जम्ब] कंदम । कीचड़ । पंक ।

जंब^२—संज्ञा पुं० [घ० जंब] पाप । दोष । गुनाह । उ०—नफस तेरा
जंब भती बोले है जान । लायक उस है बेजग पछान ।—
दक्खिनी०, पृ० ३८१ ।

जंबक^१—संज्ञा पुं० [घ० जंबक; तुल० सं० चम्पक] चंपा का
फूल (को०) ।

जंबक^२—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुक] जंबुक । उ०—ऐसा एक प्रचंभा
देखा । जंबक करे केहरि सूँ खेला ।—कबीर प्र०, पृ० १३५ ।

जंबाला—संज्ञा पुं० [सं० जम्बाल] १. कीचड़ । काँची । पंक । २.
सेवार । शौवाल । ३. काई । ४. केवड़ा ।

जंबाला—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बाला] केतकी का वृक्ष ।

जंबालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बालिनी] नदी । सरिता (को०) ।

जंबीर—संज्ञा पुं० [सं० जम्बीर] १. जंबोरी नीबू । २. मरुवा ।
३. सफेद या हल्के रंग की तुलसी । ४. बनतुलसी ।

जंबोरी नीबू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बीर] एक प्रकार का खट्टा नीबू ।

विशेष—इसका फल कागदी नीबू से बड़ा होता है। इसके फल के ऊपर का छिलका मोटा और उभरे महीन महीन दानों के कारण खुरदुरा होता है। कच्चा फल श्यामता लिए गहरा हरा होता है, पर पकने पर पीला हो जाता है। इसका पेड़ बड़ा और कंटीला होता है। बसंत ऋतु में इसमें फूल लगते हैं और बरसात में फल दिखाई पड़ते हैं जो कार्तिक के उपरांत खाने योग्य होते हैं। फल इसमें बहुत घाते हैं और बहुत दिनों तक रहते हैं।

जंबूली—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जम्बूल] झोली। पिटारी। टोकरी।

जंबू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बु] १. जंबू वृक्ष। जामुन। २. जामुन का फल। उ०—जुत जंबु फल चारि तकि सुख करौ हों।—बनारस०, पृ० ३५२। (५) ३. जांबवान्। उ०—बंघि पाज सागरह हुनुम भंगइ सुधीवह। नील जंबु सु जटाल बली राहुन भय जीवह।—पृ० रा०, २।२७१।

जंबुक—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुक] [स्त्री० जंबुकी] १. बड़ा जामुन। फरेंवा। २. श्योनाक वृक्ष। ३. सुवर्ण केतकी। केवड़ा। ४. शृगाल। गीदड़। ५. वरुण। ६. एक वृक्ष। ७. टेंदू का पेड़। सोना पाड़ा। ८. स्कंद का एक अनुचर। ९. नीच व्यक्ति। निम्न कोटि का भ्रातृमी। [को०]।

जंबूका (५)—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुक] शृगाल। गीदड़। जंबुक। उ०—धरनी यह मन जंबुका बहुत भोजन खात।—संत-बानी०, भा० १, पृ० ११६।

जंबुखंड—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुखण्ड] दे० 'जंबुद्वीप'।

जंबुद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुद्वीप] पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप।

विशेष—यह द्वीप पृथिवी के मध्य में माना गया है। पुराण का मत है कि यह गोल है और चारों ओर से खारे समुद्र से घिरा है। यह एक लाख योजन विस्तीर्ण है और इसके नी खंड माने गए हैं जिनमें प्रत्येक खंड नौ नौ हजार योजन विस्तीर्ण है। इन नौ खंडों को वर्ष भी कहते हैं। इलावृत खंड इन खंडों के बीच में बतलाया गया है। इलावृत खंड के उत्तर में तीन खंड हैं—रम्यक, हिरण्यमय, और कुरुवर्ष। नील, श्वेत और शृंगवान् नामक पर्वत क्रमशः इलावृत और रम्यक, रम्यक और हिरण्यमय तथा हिरण्यमय और कुरुवर्ष के मध्य में हैं। इसी प्रकार इलावृत के दक्षिण में भी तीन वर्ष हैं जिनके नाम हरिवर्ष, पुरुष और भारतवर्ष हैं; और दो दो वर्षों के बीच एक एक पर्वत है जिनके नाम निषध, हेमकूट और हिमालय हैं। इलावृत के पूर्व में मद्राक्ष और पश्चिम में केतुमाल वर्ष हैं; तथा गंधमादन और माल्य नाम के दो पर्वत क्रमशः इलावृत खंड के पूर्व और पश्चिम सीमारूप हैं। पुराणों का कथन है कि इस द्वीप का नाम जंबुद्वीप इसलिये पड़ा है कि इसमें एक बहुत बड़ा जंबु का पेड़ है जिसमें हाथी के इतने बड़े फल लगते हैं। बौद्ध लोग जंबुद्वीप से केवल भारतवर्ष का ही ग्रहण करते हैं।

जंबुध्वज—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुध्वज] जंबुद्वीप।

जंबूनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बूनदी] दे० 'जंबू नदी'।

जंबुप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुप्रस्थ] एक प्राचीन नगर।

विशेष—इस नगर का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है। भारत जब अपने ननिहाल कैकय देश से लौट रहे थे सब मार्ग में उन्हें यह नगर पड़ा था। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि घाबकल का जम्बू या जम्बू (काश्मीर) वही नगर है।

जंबुमत्—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमत्] १. एक नगर का नाम जिसे जांबवान् भी कहते हैं। २. पर्वत [को०]।

जंबुमति—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बुमति] एक अप्सरा का नाम।

जंबुमान—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमत्] दे० 'जंबुमत्' [को०]।

जंबुमाली—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमालिन्] एक राक्षस का नाम।

जंबुर (५)†—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंबूर] दे० 'जंबूर'। उ०—लासन मीर बहादुर जंगी। जंबुर कमाने तीर खदंगी।—जायसी (शब्द०)।

जंबुल—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुल] १. जंबू। जामुन। २. केतकी का पेड़। ३. कर्णपाली नामक रोग। इसमें कान को खी पक जाती है। सुपकनवा।

जंबुवनज—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुवनज] दे० 'जंबुवनज'।

जंबुस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० जंबुस्वामिन्] एक जैन स्थविर का नाम जिनका जन्म राजा श्रेणिक के समय में ऋषभदेव सेठ की स्त्री धारिणी के गर्भ से हुआ था।

जंबू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] १. जामुन। २. जामुन का फल। ३. नागदमनी। दोना। ४. काश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द स्त्री० है पर जामुन फल के अर्थ में बलीव भी है।

जंबू†—वि० बहुत बड़ा। बहुत ऊँचा।

जंबूका—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बूका] किशमिश।

जंबूखंड—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुखण्ड] दे० 'जंबुखंड'।

जंबूद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुद्वीप] दे० 'जंबुद्वीप'।

जंबूनद (५)†—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूनद] स्वर्ण। सोना। उ०—जंबूनद को मेरु बनायव। पंच वृक्ष सुर तहाँ गायव। दुतिय रजत गिरि जहाँ सुहायव। ताहि नाम कैलाश बरायव।—प० रासो, पृ० २२।

जंबूनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बूनदी] १. पुराणानुसार जंबुद्वीप की एक नदी।

विशेष—यह नदी उस जामुन के वृक्ष के रस से निकली हुई मानी जाती है जिसके कारण द्वीप का नाम जंबुद्वीप पड़ा है और जिसके फल हाथी के बराबर होते हैं। महाभारत में इस नदी को सात प्रधान नदियों में गिनाया है और इसे ब्रह्मचोक से निकली हुई लिखा है।

जंबूर—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंबूर] १. जंबूरा। २. तोप की चरख। ३. पुरानी छोटी तोप जो प्रायः ऊँटों पर लादी जाती थी। जंबूरक। ४. भिड़। बरं (को०)। ५. शहद की मक्खी (को०)। ६. एक बीजार (को०)।

जंबूरक—संज्ञा स्त्री० [जम्बूरक] छोटी तोप जो प्रायः ऊंटों पर लायी जाती है । २. तोप की चर्ख । ३. भवर कली ।

जंबूरशी—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंबूरशी] १. जंबूर नामक छोटी तोप का चलानेवाला । तोपची । बर्कदाज । सियाही । तुपकची ।

जंबूरा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंबूरहू] १. चर्ख जिसपर तोप चढ़ाई जाती है । २. भँवर कड़ी । भँवर कली । ३. सोने लोहे आदि धातुओं के भारीक काम करनेवालों का एक औजार जिससे वे तार आदि को पकड़कर ऐंठते, रेतते या घुमाते हैं ।

विशेष—यह काम के अनुसार छोटा या बड़ा होता है और प्रायः लकड़ी के टुकड़े में बड़ा होता है । इसमें चिमटे की तरह चिपककर बैठ जानेवाले दो चिपटे पत्ते होते हैं । इन पत्तों की बगल में एक पेंच रहता है जिससे पत्ते खुलते और कसते हैं । कारीगर इसमें बीजों को दबाकर ऐंठते, रेतते, तथा और काम करते हैं ।

४. लकड़ी का एक बराला जो मस्तूल पर आड़ा लगा रहता है और जिसपर पाल का ढाँचा रहता है ।—(लश०) ।

जंबूल—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूल] १. जामुन का वृक्ष । २. केवड़े का पेड़ ।

जंबूवनज—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूवनज] श्वेत जपा पुष्प । सफेद गुड़हल का फूल ।

जंभ—संज्ञा पुं० [सं० जम्भ] दाढ़ । चौभर । २. जबड़ा । ३. एक दैत्य का नाम जो महिषासुर का पिता था और जिसे इंद्र ने मारा था । उ०—इंद्र ज्यों जंभ पर, बाड़ी सुभंभ पर रावण । सदां पर रघुकुलराज है ।—भूषण (शब्द०) ।

जौं—जंघद्विज । जंभेदी । जंभरिपु=इंद्र का नाम ।

४. प्रह्लाद के तीन पुत्रों में से एक । ९. जंबीरी नीबू । ७. कंधा और हँसनी । ८. चक्षण । ९. जम्हाई ।

जंभक^१—संज्ञा पुं० [सं० जम्भक] १. जंबीरी नीबू । २. शिव । ३. एक राजा का नाम ।

जंभक^२—वि० १. जम्हाई या नींद लानेवाला । २. हिंसक । भक्षक । ३. कामुक ।

जंभका—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्भका] जम्हाई ।

जंभन—संज्ञा पुं० [सं० जम्भन] १. भक्षण । २. रति । संयोग । ३. जम्हाई ।

जंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्भा] जंभाई । जम्हुआई ।

जंभाराति—संज्ञा पुं० [सं० जम्भाराति] जंभ असुर के शत्रु इंद्र (की०) ।

जंभारि—संज्ञा पुं० [सं० जम्भारि] १. इंद्र । २. अग्नि । ३. बज्र । ४. विष्णु ।

जंभिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्भिका] जम्हाई । जभा (की०) ।

जंभी, जंभीर—संज्ञा पुं० [सं० जम्भिन्; जम्भीर] दे० 'जंबीरी नीबू' । उ०—कहूँ दाख दाड़िम सेब कटहल तूत घर जंभीर है ।—भूषण प्र०, पृ० ४ ।

जंभीरी—संज्ञा पुं० [सं० जम्भीर] दे० 'जंबीरी नीबू' ।

जंभूरा^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंबूरहू > जंबूरा] दे० 'जंबूरा' ।

जंभाजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बाजिनी] नदी ।

जंगरा—संज्ञा पुं० [दे०] उर्दू, मूँग इत्यादि के वे डंठल जो हाना निकाल लेने के बाद शेष रह जाते हैं । जंगरा ।

जंगरैत—वि० [हि० जंगर + ऐत (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जंगरैतिव] १. जंगरवाला । २. परिश्रमी । मेहनती ।

जंगला—संज्ञा पुं० [हि० जंगला] १. दे० 'जंगला' । २. दे० 'जंगला' ।

जंचना—क्रि० प्र० [हि० जांचना] १. जाँचा जाना । देख भाल करना । २. जाँच में पूरा उतरना । धृष्टि में ठीक या अच्छा ठहरना । उचित तथा अच्छा ठहरना । उचित या अच्छा प्रतीत होना । ठीक या अच्छा जान पड़ना । जैसे,—(क) हमें तो उसके सामने यह कपड़ा नहीं जंचता । (ख) मुझे उसकी बात जंच गई । ३. जान पड़ना । प्रतीत होना । निश्चय होना । मन में बैठना । जैसे,—मुझे तुम्हारी बात नहीं जंचती ।

जंचा—वि० [हि० जंचना] १. जंचा हुआ । सुपरीक्षित । २. धर्मयुक्त । प्रभूक । जैसे,—जाँचा हाथ ।

जंजाल(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० जंग + जाल] एक प्रकार की प्राचीन बंदूक । जंजाल । उ०—छुट्टी एक काले बिसाई जंजालें ।—हिम्मत०, पृ० १२ ।

जंजीरनी(पुं०)—वि० [हि० जंजीर] बाँधनेवाली । उ०—कच मेचक जाल जंजीरनी तू ।—प्रेमचन०, भाग १, पृ० २१० ।

जंतसरा—संज्ञा पुं० [हि० जाँत + सर (प्रत्य०)] [स्त्री० जंतसरी, जंतसारी] वह गीत जिसे स्त्रियाँ चक्की पीसते समय गाती हैं । जाँते का गीत ।

जंतसार—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्रशाला] जाँता गाढ़ने का स्थान । वह स्थान जहाँ जाँता गाढ़ा जाता है ।

जंताना—क्रि० प्र० [हि० जाँता] १. जाँते में पिस जाना । २. कुचल जाना । घूरघूर होना ।

जंबुर(पुं०)—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंबूर] एक प्रकार की तोप जो प्रायः ऊंटों पर चलती थी । जंबूरक । उ०—लाखन मार बहादुर जंभी । जंबुर, कमाने तीर खदंगी ।—जायसी प्र०, पृ० २२२ ।

जंभाई—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्भा] मुँह के खुलने की एक स्वाभाविक क्रिया जो निद्रा या भालस्य मालूम पड़ने, शरीर से बहुत अधिक खून निकल जाने या दुर्बलता आदि के कारण होती है । उबासी ।

विशेष—इसमें मुँह के खुलते ही साँस के साथ बहुत सी हवा धीरे धीरे पीठर की ओर खिंच आती है और कुछ क्षण ठहरकर धीरे धीरे बाहर निकलती है । यद्यपि यह क्रिया स्वाभाविक और बिना प्रयत्न के आपसे आप होती है, तथापि बहुत अधिक प्रयत्न करने पर दबाई भी जा सकती है । प्रायः दूसरे को जंभाई लेते हुए देखकर भी जंभाई आने लगती है । हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि जिस वायु के कारण जंभाई आती है उसे 'देवदत्त' कहते हैं । वैद्यक के अनुसार जंभाई आने पर उत्तम सुगंधित पदार्थ खाना चाहिए ।

क्रि० प्र०—माना ।—लेना ।

जैमाना—कि० प्र० [सं० जूमाण] जैमाई लेना ।

जैमाई—संज्ञा पु० [सं० जामातृ, प्रा० जामात, हि० जमाई] जामाता । जामाद ।

जैवारा—संज्ञा पु० [सं० यवाच या हि० जी] १. दे० 'जवारा' । २. नवरात्र । उ०—नेवरात को लोग जैवारा भी कहते हैं ।—मुक्कल अभि० प्र० (सा०), पृ० १३२ ।

जै—संज्ञा पु० [सं०] १. सृष्ट्युत्पत्ति । २. जन्म । ३. पिता । ४. विष्णु । ५. विष । ६. मुक्ति । ७. तेज । ८. पिशाच । ९. वंश । १. छंदशास्त्रानुसार एक गण जो तीन प्रसरों का होता है । जगण ।

विशेष—इसके आदि और अंत के वर्ण लघु और मध्य का वर्ण गुरु होता है (151) । जैसे, महेश, रमेश, सुरेश आदि । इस का देवता साँप और फल रोग माना गया है ।

जै—वि० १. बेगवान् । बेगित । तेज । २. जीतनेवाला । जेता ।

जै—प्रत्यय० उत्पन्न । जात । जैसे,—देवज, पित्तज, वातज, आदि ।

विशेष—यह प्रत्यय प्रायः लघुवर्ण समास के पदों के अंत में आता है । पंचमी लघुवर्ण आदि में पंचम्यंत पदों की विभक्ति लुप्त हो जाती है, जैसे, पावज, द्विज इत्यादि । पर सप्तमी लघुवर्ण में 'प्राबुद्', 'शरद्', 'काल' और 'यु' इन चार शब्दों के प्रतिरिक्त, जहाँ विभक्ति बनी रहती है (जैसे, प्राबुविज, शरद्विज, कालेज, दिविज) शेष स्थलों में विभक्ति का लोप विवक्षित होता है, जैसे, मनसिज, मनोज, सरसिज, सरोज इत्यादि ।

जै—अव्य० पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त । उ०—चंद्र सूर्य का गम नहीं जहाँ ज दर्शन पावे दास ।—रामानंद० पृ० १० ।

जै—कि० वि० [सं० यज] दे० 'जहाँ' । उ०—बालू ठोला देसणउ, जै पाणी कूँवेण ।—ढोला०, पृ० ६५७ ।

जै—संज्ञा स्त्री० [सं० जय, हि० जै] दे० 'जय' । उ०—निय भासा जपई, साहस कंपई, जह सूरज जह पाण्डीआ ।—कीर्ति०, पृ० ४८ ।

जै—वि० [सं० यादव] [अव्यय रूप जइसन, जइसे] दे० 'जैसा' । उ०—(क) गए दृपति हंसन की पीती । ता मध्ये उन जइस प्रजाती ।—बबीर सा०, पृ० ६५ । (ख) बेबि सरोवर ऊपर देखल जइसन दूतिअ चंदा ।—विद्यापति०, पृ० २४ । (ग) सुनइत रस कथा थापए चोत । जइसे कुरबिनी सुनए संगीत ।—विद्यापति०, पृ० ४०६ ।

जै—संज्ञा स्त्री० [सं० यज, प्रा० जय, हि० जी] १. जी की जाति का एक प्रस ।

विशेष—इसका पोषा जी के पोषे से बहुत मिलता जुलता है और जी के पोषे से अधिक बढ़ता है । जी, गेहूँ आदि की तरह यह प्रस भी वर्षा के अंत में बोया जाता है । बोने के प्रायः एक महीने बाद इसके हरे बंठल काट लिए जाते हैं जो पशुओं के चारे के काम आते हैं । काटने के बाद बंठल फिर बढ़ते हैं और थोड़े ही दिनों में फिर काटने के योग्य हो जाते हैं । इस प्रकार जै की फसल तीन महीने में तीन

बार हरी काटी जाती है और अंत में प्रस के लिये छोड़ दी जाती है । चौथी बार इसमें प्रायः हाथ भर या इससे कुछ कम लंबी बालें लगती हैं । इन्हीं बालों में जै के दाने लगते हैं । बोने के प्रायः साढ़े तीन या चार महीने बाद इसकी फसल तैयार हो जाती है । फसल पकने पर पीली हो जाती है और पूरी तरह पकने से कुछ पहले ही काट ली जाती है, क्योंकि अधिक पकने से इसके दाने भड़ जाते हैं और बंठल भी निकम्मे हो जाते हैं । एक बीघे में प्रायः बारह तेरह मन प्रस और छठारह मन बंठल होते हैं । इसके लिये दोमट भूमि अच्छी होती है और अधिक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है । इस देश में जै बहुधा चोड़ों आदि को ही खिलाई जाती है, पर जिन देशों में गेहूँ, जौ आदि अच्छे प्रस नहीं होते वहाँ इसके आटे की रोटियाँ भी बनती हैं । इसके हरे बंठल गेहूँ और जौ के भूसे से अधिक पोषक होते हैं और गीरे, भैंसें और घोड़े आदि उन्हें बड़े बाध से खाते हैं ।

२. जी का छोटा भंकर ।

विशेष—हिंदुओं के यहाँ नवरात्र में देवी की स्थापना के साथ थोड़े से जौ भी बोए जाते हैं । अष्टमी या नवमी के दिन वे भंकर उखाड़ लिए जाते हैं और ब्राह्मण उन्हें लेकर मंगल-स्वरूप अपने यजमानों की भेंट करते हैं । उन्हीं भंकरों को जै कहते हैं । इस अर्थ में इनके साथ 'देना' 'खोसना' आदि क्रियाओं का भी प्रयोग होता है ।

मुहा०—जै बालना = भंकर निकालने लिये किसी प्रस को भिगोना या तर स्थान में रखना । जै लेना = किसी प्रस को इस बात की परीक्षा के लिये बोना कि वह भंकरित होगा कि नहीं । जैसे,—धान की जै लेना, गेहूँ की जै लेना, आदि ।

४. उन फलों की बतिया या फली जिनमें बतिया के साथ फूल भी लगा रहता है । जैसे, खीरे की जै, कुम्हड़े की जै । उ०—(क) सरस बरजि तरजिए तरजनी कुम्हिलेई कुम्हड़े की जै है ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—लगना । उ०—बचन सुपन्न मुकुल अवलोकनि, गुननिधि पड़प मई । परस परम अनुराग सींचि मुख, लगी प्रमोद जई ।—सुर०, १०।१७६२ ।

जै—वि० [सं० जयिन्, प्रा० जई] दे० 'जयी' ।

जैफ—वि० [प्र० जईफ] [वि० स्त्री० जईफा] बुझा । धुँध ।

जैफ—संज्ञा स्त्री० [क्रा० जईफो] बुझापा । धुँधवस्था । उ०—जत्रानी का कमाया जैफो में काम धायगा ।—झीनिवास प्र०, पृ० ३४ ।

जैवन्—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना] दे० 'जमुना' । उ०—सब पिरयमी प्रसीसइ, जोरि जोरि के हाथ । गांग जैवन् जौ लहि जल, तो लहि प्रमर माथ ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १३० ।

जउवा—संज्ञा पु० [देश०] एक तरह का रोगकीट । उ०—जउवा नारु दुखित रोग ।—दरिया० बानी, पृ० ५० ।

जऊ—कि० वि० [सं० यदपि] जो । अगर । यदपि । यद्यपि ।

उ०—धन तन पानिप को जक, छकत रहे दिन राति । तऊ ललन लोयननि की, नैमुक प्यास न जाति ।—स० समक, पृ० २४७ ।

जकंद^(५)—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जकांड] छलाई। उछाल। चौकड़ी ।

जकंदना^(५)—क्रि० प्र० [हि० जकंद + ना (प्रत्य०)] १. कूदना । उछलना । उ०—सजोम जकंदत जात तुरंग । चढ़े रन सूरनि रंग उमंग ।—हम्मीर०, पृ० ५० । २. दूट पड़ना । उ०—जमन जोर करि घाइया तब भरत जकंदे । मानो राहु सपट्टिया भच्छन नू चंदे ।—सूदन (शब्द०) ।

जक^१—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जकल] १. धनरक्षक भूत प्रेत । यक्ष । २. कंजूस धादमी ।

जक^२—संज्ञा स्त्री० [हि० भक] [वि० भक्की] १. जिह्वा । हठ । प्रह । उ०—हुती जित्ती जग में प्रथमाई सो मैं सबै करी । प्रथम समूह उपारन कारन तुम जिय जक पकरी ।—सूर०, १।१२० ।

क्रि० प्र०—पकड़ना ।

२. धुन । रट । ज०—जदपि नाहि नाहि महीं बदन लगी जक जाति । तदपि मोह हाँसी भरिनु, हाँसी पै ठहराति ।—बिहारी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

मुहा०—जक बंधना = रट लगना । धुन लगना । उ०—तव पद चमक चकचकाने चंद्रचूर चख चितवत एक टक जक बंध गई है ।—चरण (शब्द०) ।

जक^३—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जक] १. हार । पराजय । उ०—यही हैं भकसर कजा के जिनसे फरिश्ते भी, जक उठा चुके हैं ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८५७ । २. हानि । घाटा । टोटा ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—पाना ।

३. पराभव । लज्जा । ४. डर । खौफ । भय ।

जक^४—संज्ञा स्त्री० [प्र० जका] सुख । शांति । चैन । उ०—सुख चाहे घर उद्यमी जक न परे बिन राति ।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० १७४ ।

जकड़^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जकड़ना] जकड़ने का भाव । कसकर बाँधना ।

मुहा०—जकड़बंद करना = (१) खूब कसकर बाँधना । (२) मज्बूती तरह फँसा लेना । पूरी तरह अपने अधिकार में कर लेना ।

जकड़ना^१—क्रि० प्र० [सं० युक्त + करण या भृङ्गल (= सिकड़ी)] कसकर बाँधना । जैसे,—उसके हाथ पैर जकड़ दो ।

संयो० क्रि०—देना ।—डालना ।

जकड़ना^२—क्रि० प्र० भकड़ने आदि के कारण धर्मों का छिलने डुलने के योग्य न रह जाना । जैसे, हाथ पैर जकड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—उठाना ।

४-२

जकन—संज्ञा पुं० [प्र० जकन] ठुड़ी । ठोड़ी । उ०—जब से बाहा है तेरा चाहे जकन, ब्रह्म चश्मो से मेरे जारी है ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २१ ।

जकना^(५)—क्रि० प्र० [हि० छक या चकपकाना प्रथवा देश०] [वि० चकित] प्रबंध में आना । मौचकका होना । चकपकाना । उ०—(क) तकि तकि चहूँ धोर जकि सी रही बकि, बकि बकि उठे छकि छेल की लगन में ।—दीनदयालु (शब्द०) । (ख) तरु बोउ घरनि गिरे भराराह ।……कोउ रहे आकाश देखत, कोउ रहे सिर नाह । घरिक लौं जकि रहे तहूँ तहूँ बेहू गति बिसराह ।—सूर०, १०।३८७ । (ग) बूत दबकाने, चित्रगुप्त हूँ चकाने सो जकाने जमलाल पापपुंज लुं ब लै गए ।—पद्माकर प्र०, पृ० २५६ ।

जकर—संज्ञा पुं० [प्र० जकर] शिपन । पुरुषेन्द्रिय । २. नर । ३. फोलाव [को०] ।

जकरना^(५)—क्रि० प्र० [हि० जकड़ना] दे० 'जकड़ना' । उ०—श्यामा तेरे नेह की धोर जकरि जिय मोर ।—श्यामा०, पृ० १७१ ।

जकरिया—संज्ञा पुं० [प्र० जकरिया] एक यहूदी पैगंबर या भविष्य-वक्ता जो भारे से बीरे गए थे । उ०—योहान जकरिया भविष्यवक्ता का पुत्र था ।—कबीर मं०, पृ० २६५ ।

जकात^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० जकात] दान । खैरात ।

क्रि० प्र०—देना ।—करना ।—पाना ।

जकात^२—[प्र० जका (= वृद्धि ?)] कर । महसूल । उ०—(क) उस समय उड़ीसा में कौड़ियों के द्वारा क्रय विक्रय होता था । यहाँ की मुख्य आय जमींदारी और जकात से थी ।—शुक्ल अभि० प्र० (इति०), पृ० ११५ ।

जकाती—संज्ञा पुं० [हि० जकात] दे० 'जपाती' ।

जकित^(५)—वि० [हि० चकित] चकित । विस्मित । स्तंभित । उ०—हरिमुख किषी मोहिनी माई ।……सुरदास प्रभु बदन बिलोकत जकित चकित चित भगत न जाई ।—सूर (शब्द०) ।

जकुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. मलयाचल । २. कुच्चा । ३. बैंगन का फूल । ४. जोड़ा । युग्म (को०) ।

जक्की^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] बुलबुल की एक जाति ।

विशेष—इस जाति की बुलबुल आकार में छोटी होती है और जाड़े के दिनों में उत्तर या पश्चिम हिंदुस्तान के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष में पाई जाती है । गरमी के महीनों में यह हिमालय पर चली जाती है ।

जक्की^२—वि० [हि० भक] दे० 'भक्की' ।

जक्त^(५)—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] दे० 'जगत' । उ०—धोर ते छोरे से एक रस रहत हैं, ऐसे जान जक्त में विरले प्राणी ।—कबीर० दे०, पृ० २७ ।

जक्त^(५)—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष] दे० 'यक्ष' ।

जखण—संज्ञा पुं० [सं०] मक्षण । भोजन । खाना । उ०—
सबु गन्द की सची जखण । नानक कहे उबासी लक्षण ।—
प्राण०, पृ० १६८ ।

जखमा—संज्ञा स्त्री० [सं० यक्ष्मा] दे० 'यक्ष्मा' या 'क्षयी' ।

जख्नी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जाका, हि० जक] सुख । चैन । उ०—उन
संतन के साथ से जिवड़ा पावे जख । दरिया ऐसे साथ के चित
चरनो ही रख ।—दरिया० बानी, पृ० २ ।

जखन—क्रि० वि० [हि० जिस + सं० क्षण] जिस समय । जब ।
उ०—जखने चलिय मुरतान लेख परि शेष जान को ।
—कीर्ति०, पृ० १६ ।

जखनी—संज्ञा स्त्री० [सं० यक्षिणी प्रा० जखिनी] दे० 'यक्षिणी'

जखनी—संज्ञा स्त्री० [प्र० यखनी] दे० 'यखनी' ।

जखम—संज्ञा पुं० [फ्रा० जखम, मि० सं० यक्ष्म] १. वह क्षत जो
शरीर में घाघात या घस्त्र घादि के लगने के कारण हो
जाय । घाव । २. मानसिक दुःख का घाघात । सदमा ।

क्रि० प्र०—करना ।—खाना ।—बेना ।—पूजना । भरना ।—
लगना ।—होना ।

मुहा०—जखम ताजा या हरा हो घाना = बीते हुए कष्ट का फिर
लौट घाना । गई हुई विपत्ति का फिर घा जाना । जखम पर
ममक छिडकना = दुःख बढ़ाना ।

जखमी—वि० [फ्रा० जखमी] जिसे जखम लगा हो । घायल । घुटखा ।

जखीर—संज्ञा पुं० [प्र० जखीरह्, हि० जखीरा] खजाना । कोष ।
संग्रह । उ०—किल्ला में पाया और जेता जखीर । सावक
ही खंडपुर नै कीनी बहीर ।—शिल्लर०, पृ० २३ ।

जखीरा—संज्ञा पुं० [प्र० जखीरह्] १. वह स्थान जहाँ एक ही
प्रकार की बहुत सी चीजों का संग्रह हो । कोष । खजाना ।
२. संग्रह । डेर । समूह । उ०—रहै जखीरा गढ़ के जेता ।—ह०
रासो, पृ० ५६ ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।

यौ०—जखीरा प्रबोज = दे० 'जखीरेबाज' । जखीराप्रबोजी
दे० 'जखीरेबाजी' ।

१. वह बाग का स्थान जहाँ बिक्री के लिये तरह तरह के पेड़ पीछे
और बीज घादि मिलते हों ।

जखीरेबाज—वि० पुं० [प्र० जखीरह् + फ्रा० बाज (प्रत्य०)] जखीरे-
बाजी करनेवाला । प्रभ्र घादि का प्रपसंचय करनेवाला ।

जखीरेबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जखीरेबाज + ई] प्रभ्र घादि या
उपयोग में आनेवाली और बिकनेवाली वस्तुओं का इस विचार
से संचय करना कि जब मँहगी होगी तब इसे बेचेंगे ।

जखेड़ा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जखीरह्, हि० जखीरा] १. दे० 'जखीरा' ।
२. जमाव । यूथ । समूह । ३. दे० 'बखेड़ा' ।

जखैया—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जख] एक प्रकार का
कल्पित भूत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह लोगों को
अधिक कष्ट देता है ।

जखल—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जख] दे० 'यक्ष' ।

जखम—संज्ञा पुं० [फ्रा० जखम] दे० 'जखम' ।

यौ०—जखमखुर्दा = घायल । जखमी । जखमेजगर = दिल की
चोट । हृषक का घाव । प्रेम की पीड़ा ।

जखंद—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जखंद] छलंग । चौकड़ी । कुशन [को०] ।

जग^१—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] १. संसार । विश्व । दुनिया । उ०—
तुलसी या जग घाह के सबसे मिलिए घाय । का जाने केहि
भेष में नारायण मिलि जाय ।—तुलसी (शब्द०) । २. संसार
के लोग । जनसमुदाय । उ०—साँच कहौ तो मारन घावे,
भूठे जग पतियाना ।—कबीर (शब्द०) ।

जग^२—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, प्रा० जाय, जग] दे० 'यज्ञ' । उ०—
सुन्यो इंद्र मेरी जग भेटा । यह मदमस्त नंद को बेटा । नंद०
ग्रं०, पृ० १८१ ।

जगकर—संज्ञा पुं० [हि० जग + कर] दे० 'जगकर्ता' ।

जगकर्ता—संज्ञा पुं० [हि० जग + कर्ता] संसार के निर्माता ।
ईश्वर । उ०—वे जगकर्ता सब कछु ग्रहहीं । वेद शास्त्र सब
तिन कहैं कहहीं ।—कबीर सा०, पृ० ४८२ ।

जगकारन—संज्ञा पुं० [हि० जग + कारन] जगत के कारणभूत ।
परमात्मा । उ०—जगकारन तारन भव भंजन धरनी धार ।
—मानस, ५११ ।

जगचख—संज्ञा पुं० [हि० जग + सं० चक्षु] दे० 'जगच्चक्षु' ।
उ०—घाहू ऊतन घाम प्रजोव्या जगचख वंस भंस हरि
जोषा ।—रा० ६०, पृ० ११ ।

जगचार—संज्ञा पुं० [हि० जग + चार (प्रत्य०)] लौकिक
रस्म । नेग । उ०—किया ज्यों जो संमुख हो जगचार प्रमीर ।
न ले कुच की जब फिर चल्या वह फकीर ।—दक्खिनी०,
पृ० १३७ ।

जगच्चक्षु—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + चक्षु] सूर्य ।

जगजंत—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + यन्त्र] जगतचक्र । उ०—
कृपा घन मानंद प्रघार जगजंत है ।—चनानंद, पृ० १६५ ।

जगजगा^१—संज्ञा पुं० [जगमग से अनु०] पीतल घादि का बहुत
पतला चमकीला तस्ता जिसके छोटे छोटे टुकड़े काटकर टिकुली
और ताजिये घादि पर चिपकाए जाते हैं । पन्नी ।

जगजगा^२—वि० चमकीला । प्रकाशित । जो जगमगाता हो ।

जगजगाना—क्रि० प्र० [अनु०] चमकना । जगमगाना ।

जगजननि—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + जननी] दे० 'जगज्जननी' ।
उ०—संग सती जगजननि भवानी ।—मानस ।

जगजामिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + यामिनी] भवनिशा ।
संसाररूपी रात्रि । उ०—एहि जगजामिनी जागहि जोगी ।
मानस, २१६३ ।

जगजाहिर—वि० [हि० जग + अ० जाहिर] व्यक्त । स्पष्ट । सर्व-
ज्ञात । सर्वविदित । उ०—क्यों वह जगजाहिर हो ।—सुनीता,
पृ० ३१० ।

जगजोनि—संज्ञा पुं० [सं० जगजोनिः] ब्रह्मा । उ०—सोक
कनकलोचन मति छोनी । हरी विमल गुनगन जगजोनी ।—
मानस, २१२६६ ।

जगज्जननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जगदंबिका । जगद्धात्री । पर-
मेश्वरी [को०] ।

जगज्जयी—वि० [सं० जगत् + जयिन्] विश्वविजयी [को०] ।

जगम्प—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े से मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा
जो प्राचीन काल में युद्ध में बजाया जाता था । आजकल भी
कहीं कहीं विवाह तथा पूजा आदि के अवसरों पर इसका
व्यवहार होता है ।

जगद्धातृ—संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्धवर । व्यर्थ का आयोजन ।

जगद्यु—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल शास्त्र के अनुसार तीन प्रकारों का
एक गण जिसमें मध्य का अक्षर गुह्य और आदि और अंत के
अक्षर लघु होते हैं । जैसे,—महेष्, रमेण, गगोम, हंसत ।

विशेष—दे० 'ज—१०' ।

जगत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । २. महादेव । ३. जंगम । ४.
विश्व । संसार ।

यो०—जगत्कर्ता; जगत्कारण, जगत्सारण, जगत्पति, जगत्पिता,
जगत्पुत्रा = परमेश्वर । ईश्वर । जगत्परायण = विष्णु ।
जगत्प्रसिद्ध = विश्वप्रसिद्ध । लोक में ख्यात ।

पर्या०—जगती । लोक । भुवन । विश्व ।

५. गोपाचदन ।

जगत^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जगति = घर की कुर्सी] कुर्से के ऊपर
चारों ओर बना हुआ चबूतरा जिसपर खड़े होकर पानी
भरते हैं ।

जगत^२—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] दे० 'जगत्' ।

यो०—जगतजनक = ईश्वर । जगतजननि = दे० 'जगज्जननी' ।
जगतारन = परमात्मा । जगतसेठ ।

जगतसेठ—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + श्रेष्ठ] बहुत बड़ा धनी महाजन,
जिसकी साख सारे संसार में मानी जाय ।

जगती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संसार । भुवन । २. पृथिवी । भूमि ।

यो०—जगतीचर = मानव । मनुष्य । जगतीजानि = राजा ।
भूपति । जगतीपति, जगतीपाल, जगतीभर्ता = दे० 'जगतीजानि' ।

१. एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह बारह अक्षर
होते हैं । ४. मनुष्य जाति । मानव जाति [को०] । ५. गऊ ।
गाय [को०] । ६. मकान की भूमि । गृह के निमित्त या घर
से संबद्ध भूमि [को०] । ७. जामुन के वृक्ष से युक्त स्थान ।
वह जगह जहाँ जामुन लगा हों [को०] ।

जगतीवत्—संज्ञा पुं० [सं०] पृथिवी । भूमि ।

जगतीचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बोधिसत्व । २. भूचर । पर्वत [को०] ।

जगतीरुह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष । पेड़ । पोषा [को०] ।

जगत्कर्ता—संज्ञा पुं० [सं० जगत्कर्तृ] १. ईश्वर । परमेश्वर । २.
धाता । विधाता । ब्रह्मा [को०] ।

जगत्प्रभु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पितृमह ब्रह्मा । २. नारायण । विष्णु ।
३. महेश । शंकर । शिव [को०] ।

जगत्प्राण—संज्ञा पुं० [सं०] समीरण । वायु । हवा [को०] ।

जगत्साक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जगत्साक्षिन्] भानु । सूर्य ।

जगत्सेतु—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर ।

जगदंतक—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + अन्तक] मृत्यु । काल ।

जगद्वा जगदंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + अम्बा; -अम्बिका]
दुर्गा । भवानी । उ०—(क) जगद्वा जहं भवतरी सो पुर
बरनि कि जाय ।—मानस, १ । ४ । (ख) जगदंबिका जानि
भव भामा ।—मानस, १ । १०० ।

जगद् मन्त्र पुं० [सं०] पालक । रक्षक ।

जगदात्म(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० जगदात्मन्] परमात्मा । परमेश्वर ।
उ०—जगदात्म महेश पुरारी ।—मानस, १ । ६४ ।

जगदात्मा—संज्ञा पुं० [सं० जगदात्मन्] १. परमात्मा । २. वायु [को०] ।

जगदादि—संज्ञा पुं० [सं० जगदादिः] १. ब्रह्मा । २. परमेश्वर

जगदादिज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०] ।

जगदाधार—संज्ञा पुं० [सं० जगदाधार] १. परमेश्वर । २. वायु ।
हवा । ३. काल । समय [को०] । ४. शेषनाग । जगत् को
धारण करनेवाले । उ०—(२) जय अनंत जय जगदाधारा ।
—मानस ६ । ७६ । (ख) जगदाधार शेष किंमि उठई चले
खिसियाइ ।—मानस, ६ । ५३ ।

जगदानंद—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + आनन्द] परमेश्वर ।

जगदायु—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + आयुः] वायु । हवा ।

जगदीश—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + ईश] १. परमेश्वर । २. विष्णु ।
३. जगन्नाथ ।

जगदीश्वर—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + ईश्वर] १. परमेश्वर । जगदीश ।
२. इंद्र । मधवा [को०] । ३. शिव का नाम [को०] । ४. राजा ।
भूपति [को०] ।

जगदीश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवती ।

जगद्गुरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर । २. शिव । ३. विष्णु
[को०] । ४. ब्रह्मा [को०] । ५. नारद । ६. अत्यंत पूज्य या
प्रतिष्ठित पुरुष जिसका सब लोग आदर करें । ७. शंकराचार्य
की गद्दी पर के महंतों की उपाधि ।

जगद्गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा देवी । २. मनसा देवी का
एक नाम ।

विशेष—यह नागों की बहन और जरस्काह ऋषि की पत्नी थी ।
जगदीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । २. महादेव । शिव । ३.
आदित्य । सूर्य [को०] ।

जगद्धाता—संज्ञा पुं० [सं० जगद्धातृ] [स्त्री० जगद्धात्री] १. ब्रह्मा ।
२. विष्णु । ३. महादेव ।

जगद्धात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा की एक मूर्ति । २. सरस्वती ।

जगद्धत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

जगद्बीज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०] ।

जगद्योनि^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । २. विष्णु । ३. ब्रह्मा ।
४. परमेश्वर ।

जगद्योनि^२—संज्ञा स्त्री० पृथिवी । धरा ।

जगद्बन्ध—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + बन्ध] श्रीकृष्ण का एक नाम [को०] ।

जगद्बन्ध—वि० संसार द्वारा पूजनीय या पूज्य ।

जगद्गहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी ।

जगद्विख्यात—वि० [सं० जगत् + विख्यात] लोकप्रसिद्ध । सर्वख्यात ।

जगद्विनाश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय काल ।

जगन—संज्ञा पुं० [सं० यजन्] दे० 'यज्ञ' । उ०—जोवैज गृहि गृहि जगन जागवे, जगनि जगनि कीजै तप जाप ।—बेलि, दू० ५० ।

जगनक—संज्ञा पुं० [सं० यजनक, अथवा देश०] महोबा के राजा परमाल के दरबार का प्रसिद्ध कवि ।

जगना—क्रि० प्र० [सं० जागरण] १. नींद से उठना । निद्रा त्याग करना । सोने की अवस्था में न रहना ।

क्रि० प्र०—उठना ।—जाना ।—पड़ना ।

२. सचेत होना । सावधान होना । खबरदार होना । ३. देवी देवता या भूत प्रेत आदि का अधिक प्रभाव दिखाना । ४. उत्तेजित होना । उमड़ना या उभड़ना । बेग से प्रकट होना । जैसे, शरीर में काम जगना । ५. (आग का) जलना । बलना । दहकना । जैसे, आग जगना । उ०—करि उपचार यकी सब चल उताल नंदनंद । चंदक चंदन चंद ते ज्वाल जगी चोचंद ।—शृ० संत० (शब्द०) । ६. जगमगाना । चमकना । जैसे, ज्योति जगना ।

जगन्निवास—संज्ञा पुं० [सं० जगन्निवास] दे० 'जगन्निवास' । उ०—जगन्निवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक विश्राम ।—मानस १ । १६१ ।

जगन्नीदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जग + नीदी] उनीदी । अर्धसुप्त । सोते जागते सी दशा । उ०—वह सोता तो रहा पर जग भी रहा था । सब पूछो, तो वह जगनीदी में पड़ा था ।—सुनीता, पु० ३०८ ।

जगनु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जगन्नु' [को०] ।

जगन्नाथ—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + नाथ] जगत् का नाथ । ईश्वर । २. विष्णु । ३. विष्णु की एक प्रसिद्ध मूर्ति जो उड़ीसा के अंतर्गत पुरी नामक स्थान में स्थापित है ।

विशेष—यह मूर्ति अकेली नहीं रहती, बल्कि इसके साथ सुभद्रा और बलभद्र की भी मूर्तियाँ रहती हैं । तीनों मूर्तियाँ चंदन की होती हैं । समय समय पर पुरानी मूर्तियों का बिसर्जन किया जाता है और उनके स्थान पर नई मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती हैं । सर्वसाधारण इस मूर्ति बदलने को 'नवकलेवर' या 'कलेवर बदलना' कहते हैं । साधारणतः लोगों का विश्वास है कि प्रति बारहवें वर्ष जगन्नाथ जी का कलेवर बदलता है । पर पंडितों का मत है कि जब आषाढ़ में मलमास और दो पूर्णिमाएँ हो, तब कलेवर बदलता है । कूर्म, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, नृसिंह, अग्नि, ब्रह्म और पद्म आदि पुराणों में जगन्नाथ की मूर्ति और तीर्थ के संबंध में बहुत से कथानक

और माहात्म्य दिए गए हैं । इतिहासों से पता चलता है कि सन् ३१८ ई० में जगन्नाथ जी की मूर्ति पहले पहल किसी जंगल में पाई गई थी । उसी मूर्ति को उड़ीसा के राजा ययाति-केसरी ने, जो सन् ४७४ में सिंहासन पर बैठा था, जंगल से ढूँढ़कर पुरी में स्थापित किया था । जगन्नाथ जी का वर्तमान भव्य और विशाल मंदिर गंगवंश के पाँचवें राजा भीमदेव ने सन् ११४८ से सन् ११६८ तक में बनवाया था । सन् १५६८ में प्रसिद्ध मुसलमान सेनापति काला पहाड़ ने उड़ीसा को जीतकर जगन्नाथ जी की मूर्ति आग में फेंक दी थी । जगन्नाथ और बलराम की आजकल की मूर्तियों में पैर बिलकुल नहीं होते और हाथ बिना पंजों के होते हैं । सुभद्रा की मूर्तियों में न हाथ होते हैं और न पैर । अनुमान किया जाता है कि या तो आरंभ में जंगल में ही ये मूर्तियाँ इसी रूप में मिली हों और या सन् १५६८ ई० में अग्नि में से निकाले जाने पर इस रूप में पाई गई हों । नए कलेवर में मूर्तियाँ पुराने आदर्श पर ही बनती हैं । इन मूर्तियों को अष्टिकांश भात और खिचड़ी का ही भोग लगता है जिसे महाप्रसाद कहते हैं । भोग लगा हुआ महाप्रसाद चारों बगों के लोग बिना स्पर्शास्पृशं का विचार किए ग्रहण करते हैं । महाप्रसाद का भात 'अटका' कहलाता है, जिसे यानी लोग अपने साथ अपने निवासस्थान तक ले जाते और अपने संबंधियों में प्रसाद स्वरूप बाँटते हैं । जगन्नाथ को जगदीश भी कहते हैं ।

यौ०—जगन्नाथ का अटका या भात = जगन्नाथ जी का महाप्रसाद ।

४. बंगाल के दक्षिण उड़ीसा के अंतर्गत समुद्र के किनारे का प्रसिद्ध तीर्थ जो हिंदुओं के चारों धर्मों के अंतर्गत है ।

विशेष—इसे पुरी, जगदीशपुरी, जगन्नाथपुरी, जगन्नाथ क्षेत्र और जगन्नाथ धाम भी कहते हैं । अष्टिकांश पुराणों में इस क्षेत्र को पुरुषोत्तम क्षेत्र कहा गया है । जगन्नाथ जी का प्रसिद्ध मंदिर यहीं है । इस क्षेत्र में जानेवाले यात्रियों में जातिभेद आदि बिलकुल नहीं रह जाता । पुरी में समय समय पर अनेक उत्सव होते हैं जिनमें से 'रथयात्रा' और 'नवकलेवर' के उत्सव बहुत प्रसिद्ध हैं । उन अवसरों पर यहाँ लाखों यात्री आते हैं । यहाँ और भी कई छोटे बड़े तीर्थ हैं ।

जगन्निधंता—संज्ञा पुं० [सं० जगन्निधन्तृ] परमात्मा । ईश्वर ।

जगन्निवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । परमेश्वर । २. विष्णु ।

जगन्नु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. जंतु । कीट । ३. पशु । जानवर (को०) ।

जगन्मय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

जगन्मयी—संज्ञा पुं० [सं०] १. लक्ष्मी । २. समस्त संसार को चलाने-वाली शक्ति ।

जगन्माता—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + मातृ] १. दुर्गा का एक नाम । २. लक्ष्मी [को०] ।

जगन्मोहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा । २. महाभाया ।

जगपतिनी^७—संज्ञा स्त्री० [सं० यज्ञपत्नी] याज्ञिकों की वे स्त्रियाँ जो कृष्ण को भोजन देने गई थीं । उ०—जगपतिनीन धनुषह दैन । बोले तब हरि कलना ऐन ।—नंद० प्र०, पृ० ३०० ।

जगप्रान^७—संज्ञा पुं० [जगत् + प्राण] वायु । समीरण । उ०—बावत ही हेर्मत तो कंपन लगे जहान । कोक कोकनद मे दुखी ग्रहित भए जगप्रान ।—दीन० प्र०, १६५ ।

जगबंध^७—वि० [सं० जगत् + बन्ध] जिसकी बंदना संसार करे । संसार द्वारा पूजित । जगद्वंद्व । उ०—आपनपी जु तज्यो जगबंध है ।—केशव (शब्द०) ।

जगबीती—संज्ञा स्त्री० [हि० जग + बीती] जगत् की चर्चा । लौकिक वृत्त ।

जगभिषक^७—संज्ञा पुं० [हि० जग + भिषक्] सौंठ ।—अनेकार्थ०; पृ० १०४ ।

जगमग^१—वि० [अनु०] १. प्रकाशित । जिसपर प्रकाश पड़ता हो । २. चमकीला । चमकदार । उ०—हंसा जगमग जगमग होई ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ६ ।

जगमग^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'जगमगाहट' ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जगमगना^७—वि० [हि० जगमग] जगमगानेवाला । जगमग करनेवाला । चमकनेवाला । उ०—फूलन के खंभा दोऊ फूलन के डाढ़ी चार, फूलन की चौकी बनी होरा जगमगना ।—नंद प्र०, पृ० ३७४ ।

जगमगा—वि० [हि० जगमग] दे० 'जगमग' । उ०—जगमगा चिकुर प्रतिहि सोहै राखे जैसे पुरसही ।—कबीर सा०, पृ० १०४ ।

जगमगाना—क्रि० प्र० [अनु०] किसी वस्तु का स्वयं ग्रथवा किसी का प्रकाश पड़ने के कारण खूब चमकना । झलकना । चमकना । उ०—तरनितनया तीर जगमगत ज्योतिमय पुहमि पै प्रगट सब लोक सिरताज ।—बनानंद, पृ० ४६२ ।

जगमगाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० जगमग] चमक । चमकमाहट । जगमगाने का भाव ।

जगमोहनी^१—संज्ञा पुं० [हि० जग + मोहन] मंदिर का बाहरी प्राण । उ०—सो वह ब्रह्मन तो बाहिर जगमोहन में प्रभुन की आज्ञा पाय के बैठयो ।—दो सो बावन०; भा० १, पृ० २११ ।

जगमोहन^२—वि० [सं० जगत् + मोहन] [वि० स्त्री० जगमोहिनी] विश्व को मुग्ध करनेवाला ।

जगर—संज्ञा पुं० [सं०] कवच । जिरहबकतर ।

जगरन^७—संज्ञा पुं० [सं० जागरण] दे० 'जागरण' उ०—जगन्नाथ जगरन कै भाई । पुनि दुवारिका जाइ नहाई ।—जायसी (शब्द०) ।

जगरनाथ^१—संज्ञा पुं० [सं० जगन्नाथ] दे० 'जगन्नाथ' ।

जगरमगर—संज्ञा पुं० [हि०] १. चकपकाहट । चकाचौध । २. भाया । दे० 'जगमग' । उ०—जगरमगर को खेल कोऊ नर पावई । लोक वेव की फेर जो सबै नचावई ।—गुलाल०, पृ० ६६ ।

जगरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० सर्करा] खजूर की खाड़ ।

जगल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिष्टी नामक सुरा । पीठी से बना हुआ मद्य । २. शराब की सीठी । कस्क । ३. मदन वृक्ष । मैत्री । ४. कवच । ५. घोमय । गोबर ।

जगल—वि० धूत । चालाक ।

जगवाना—क्रि० सं० [हि० जगना] १. सोते से उठवाना । निद्रा भंग करवाना । २. किसी वस्तु को अभिमंत्रित करके उसमें कुछ प्रभाव लाना ।

जगसूर^७—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + सूर] राजा (कव०) । उ०—बिनती कीन्ह घालि गिउ पागा । ए जगसूर ! सीउ मोहि लागा ।—जायसी (शब्द०) ।

जगहँसाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जग + हँसाई] लोकनिदा । बदनामी । कुख्याति । उ०—बेवफाई न कर खुदा सूँ डर । जगहँसाई न कर खुदा सूँ डर ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ५ ।

जगह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायगाह] १. वह अवकाश जिसमें कोई चीज रह सके । स्थान । स्थल । जैसे,—(क) उन्होंने मकान बनाने के लिये जगह ली है । (ख) यहाँ तिल धरने को जगह नहीं है ।

क्रि० प्र०—करना ।—छोड़ना ।—देना ।—निकालना ।—पाना ।—बनाना ।—मिलना, आदि ।

मुहा०—जगह जगह = सब स्थानों पर । सब जगह ।

२. स्थिति । पद ।

विशेष—कुछ लोग इस अर्थ में 'जगह' को क्रियाविशेषण रूप में बिना विभक्ति के ही बोलते हैं । जैसे,—हम उन्हें भाई की जगह समझते हैं ।

३. मौका । स्थल । अवसर । ४. पद । मोहदा । जैसे,—(क) दो महीने हुए उन्हें कलकटरी में जगह मिल गई । (ख) इस दफतर में तुम्हारे लिये कोई जगह नहीं है ।

जगहर—संज्ञा स्त्री० [हि० जगना] जगना । जगने की अवस्था । जगने का भाव ।

जगाजोती—संज्ञा स्त्री० [हि०] जगर मगर । जगमगाहट ।

जगाती^१—संज्ञा पुं० [सं० जगात] १. वह धन आदि जो पुण्य के लिये दिया जाय । दान । खेरात । २. महसूल । कर ।

जगाती^२—संज्ञा पुं० [हि० जगात या फ्रा० जकाती] १. महसूल या कर लगानेवाला कर्मचारी । वह जो कर वसूल करे । उ०—धर के लोग जगाती लागे छीन लेंय करधनिया ।—कबीर श०, भा० १, पृ० २२ । २. कर उगाहने का काम या भाव ।

जगाना—क्रि० सं० [हि० जागना या जगना का प्रे० रूप] नींद त्यागने के लिये प्रेरणा करना । जैसे,—वे बहुत देर से सोए हैं, उन्हें जगाओ । २. चेत में लाना । होश दिलाना । उद्वोधन कराना । चेतन्य करना । ३. फिर से ठीक स्थिति में लाना । ४. बुझती या बहुत धीमी आग को तेज करना । सुलगाना । ५. गाँज । आदि की अग्नि को तेज करना, जैसे, खिलम जगाना । ६.

यंत्र या सिद्धि आदि का साधन करना । जैसे,—यंत्र जगाना ।
भूत प्रेत जगाना ।

संयो० क्रि०—झालना ।—देना ।—रखना ।—लेना ।

जगामग—वि० [अनु०] दे० 'जगमग' । उ०—चमकत सूर जहूर
जगामग ढाके सकल सरीर । —भीष्मा० भा०, पृ० २४ ।

जगार—संज्ञा स्त्री० [हि० जग+आर (प्रत्य०)] जागरण । जागृति ।
उ०—नैना बोछे चोर सखी री । श्याम रूप निधि नेछे पाई
देखन गए भरी री । कहा लेहि, कह तबै, विवक्ष भय तेसी
करनि करी री । भोर भए मोरे सो हूँ गयो बरे जगार परी
री ।—सूर (शब्द०) ।

जगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मोर की जाति का एक पक्षी । जवाहिर
नाम का पक्षी ।

विशेष—यह शिमले के घासपास के पहाड़ों में मिलता है और
प्रायः दो हाथ लंबा होता है । नर के सिर पर लाल कलगी
होती है और मादा के सिर पर गुलाबी रंग की गाँठें होती
हैं । नर का सिर काला, गला लाल और पीठ गुलाबी रंग
की होती है और उसके पंखों पर गुलाबी चारियाँ होती हैं ।
उसकी दुम लंबी और काली होती है और छाती तथा पेट
के नीचे के पर भी काले होते हैं जिनपर लसाई की झलक
होती है और एक छोटी सफेद बिंदी भी होती है । मादा का
रंग कुछ मैला और पीलापन लिए होता है । यह पक्षी दस दस
बारह बारह के झुंड में रहता है । जाड़े के दिनों में यह
गरम देशों में भाकर रहता है । इसकी बोली बकरी के
बच्चे की तरह होती है और यह उड़ते समय चोत्कार करता
है । इसका चोत्कार बहुत दूर तक सुनाई पड़ता है । भोंगरेज
लोग इसका शिकार करते हैं । इसे जवाहिर भी कहते हैं ।

जगीरा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जागीर] दे० 'जागीर' । उ०—फाका
• जिकर किनात ये तीनों बात जगीर । —पलद्म०, भा० १,
पृ० १४ ।

जगीस—संज्ञा पुं० [हि० जग+ईस] दे० 'जगदीश' । उ०—
मिले सब पित्र सु दोन भसीस । भए सुप्र निरभय पित्र जगीस ।
रासो, पृ० ८ ।

जगीला—वि० [हि० जागना] जागने के कारण भ्रमसाया हुआ ।
उनीदा । उ०—दुरति दुराए ते न रति, बलि कुंकुम उर
मैन । प्रगट कहै पति रतजने जगी जगीले नैन ।—शृ०
सत० (शब्द०) ।

जगुरि—संज्ञा पुं० [सं०] जंगम ।

जगीया—वि० [हि० जागना] १. जागनेवाला । प्रबुद्ध करनेवाला ।
२. जागनेवाला ।

जगोटा—संज्ञा पुं० [हि० जोग+बाट] योग का भाग । जोगियों
का पंथ । उ०—कवन जगोटा कवन भवारी ।—प्राण०,
पृ० ७६ ।

जगौहा—वि० [हि० जागना] दे० 'जगीला' ।

जग्गा—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, प्रा० जग] दे० 'यज्ञ' । उ०—
आयी सु गंग तट काज जग्य ।—पृ० रा०, १ । ५७५ ।

जग्गा—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] संसार ।

जग्घ—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन । आहार । खाना । २. वह
स्थान जहाँ भोजन किया गया हो (को०) ।

जग्घ—वि० खाया हुआ । भुक्त । भक्षित (को०) ।

जगिघ—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खाने की क्रिया । भोजन । २. कई
प्राथमियों का साथ मिलकर खाना । सहभोजन ।

जग्मि—संज्ञा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

जग्मि—वि० जो चलता हो । जो गति में हो ।

जग्घ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] दे० 'यज्ञ' । उ०—पिता जग्घ
सुनि कछु हरषामी ।—मानस, १।६१ ।

यौ०—जग्यउपवीत = यज्ञोपवीत ।

जग्योपवीत—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञोपवीत] दे० 'यज्ञोपवीत' ।
कमलासन घासनह मंडि जग्योपवीत जुरि ।—पृ० रा०,
१ । २५५ ।

जघन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कटि के नीचे प्रागे का भाग । पेट । २.
नितंब । बूठड़ । उ०—सरस विपुल मम जघनन पर कल
किंकिनि कलश सजावो ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) । ३. सेना का
पिछला भाग । उपयोगार्थ संरक्षित सेन्यदल (को०) ।

यौ०—जघनकूप = दे० 'जघनकूपक' । जघनगौरव । जघनचपला ।

जघनकूपक—संज्ञा पुं० [सं०] बूठड़ पर का गड्ढा ।

जघनगौरव—संज्ञा पुं० [सं०] नितंब की गुरुता । नितंबभार (को०) ।

जघनचपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कामुकी स्त्री । २. कुलटा ।
३. भार्या छंद के सोलह भेदों में से एक । वह मात्रावृत्त
जिसका प्रथमार्ध भार्या छंद के प्रथमार्ध का सा और
द्वितीयार्ध चपला छंद के द्वितीयार्ध का सा हो ।

जघनी—वि० [सं० जघनिन्] बड़े नितंबों से युक्त (को०) ।

जघनेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटूमर ।

जघन्य—वि० [सं०] १. प्रतिम । चरम । २. गहित । श्याम्य ।
प्रत्यंत बुरा । ३. क्षुद्र । नीच । निकृष्ट । ४. निम्न कुलोत्पन्न ।
नीच कुल का (को०) ।

जघन्य—संज्ञा पुं० १. शूद्र । २. नीच जाति । हीन वर्ण । ३. पीठ
का वह भाग जो पुट्टे के पास होता है । ४. राजाओं के पवि
प्रकार के संकीर्ण अनुचरों में से एक ।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार ऐसा प्रादमी धनी, मोटी बुद्धि
का, हँसोड़ और क्रूर होता है और उसमें कुछ कवित्व शक्ति
भी होती है । ऐसे मनुष्य के कान प्रधंवाकार, शरीर के
जोड़ अधिक दृढ़ और उंगलियाँ मोटी होती हैं । इसकी छाती,
हाथों और पैरों में तलवार और लड़के आदि के से चिह्न
होते हैं ।

५. दे० जघन्यभ । ६. लिंग । शिश्न (को०) ।

जघन्यज—संज्ञा पुं० [सं०] १. शूद्र । २. भ्रंत्यज । ३. छोटा भाई (को०) ।

जघन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं० जघन्य+ता (प्रत्य०)] क्रूरता ।

सुप्रता । नीचता । उ०—अपने कुरूप मंदबुद्धि बालक के स्थान और स्वत्व को दूसरे के बालक को दे देना कैसी कुछ विचित्र मूर्खता और जघन्यता है ।—अमघन०, भा० २, पृ० २६६ ।

जघन्यम्—संज्ञा पुं० [सं०] भार्ता, प्रश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा, भरणी और शतभिषा ये छह नक्षत्र ।

जज्जि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो बध करता हो । २. वह भस्त्र जिससे बध किया जाय ।

जघ्नु—वि० [सं०] निहृता । प्रहारक । बधकारी (को०) ।

जघ्नि—वि० [सं०] १. सूँघनेवाला । २. अनुमानयुक्त (को०) ।

जज्वरी—संज्ञा स्त्री० [क्रा० जज्वरी] प्रसव की अवस्था । प्रसूतावस्था (को०) ।

जज्वना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'जज्वना' ।

जज्वा—संज्ञा स्त्री० [क्रा० जज्वह्] दे० 'जज्वा' ।

जज्वा—संज्ञा स्त्री० [क्रा० जज्वह्] प्रसूता स्त्री । वह स्त्री जिस तुरंत संतान हुई हो ।

विशेष—प्रसव के बाद चालीस दिनों तक स्त्रियाँ जज्वा कहलाती हैं ।

यौ०—जज्वाखाना = सूतिकागृह । सीरी । जज्वा बच्चा = प्रसूता और प्रसूत संतति । जज्वागरी, जज्वागोरी = बानी कर्म । बच्चा पैदा कराने का काम । कीमारभृत्य ।

जज्जु—संज्ञा पुं० [सं० यज्ज, प्रा० जज्ज, जज्ज] दे० 'यज्ज' । उ०—देखि विकट भट बड़ि कटकाई । जज्ज जीव लै गए पराई ।—मानस, १।१७६ ।

यौ०—जज्जपति । जज्जराज । जज्जेश ।

जज्जपति—संज्ञा पुं० [सं० यज्जपति] यज्ञों के स्वामी । कुबेर । उ०—अब तहँ रहहि सक के प्रेरे । रज्जक कोटि जज्जपति केरे ।—मानस, १।१७६ ।

जज'—संज्ञा पुं० [सं०] १. न्यायाधीश । विचारपति । न्याय करनेवाला । २. दीवानी और फौजदारी के मुकदमों का फैसला करनेवाला बड़ा हाकिम ।

विशेष—भारतवर्ष में प्रायः एक या अधिक जिलों के लिये एक जज होता है, जो डिस्ट्रिक्ट जज (जिला जज) कहलाता है । जिले के अंदर अंतिम अपील जज के यहाँ ही होती है ।

यौ०—दीरा या सेशंस (सेशन) जज = वह जज जो कई जिलों में घूम घूमकर कुछ विशेष बड़े मुकदमों का फैसला कुछ विशिष्ट अवसरों पर करें । सबजज = दे० 'सदराला' । सिविल जज = दीवानी की छोटी अदालत का हाकिम ।

जज^२—संज्ञा पुं० [सं०] योद्धा ।

जजन—संज्ञा पुं० [सं० यजन, प्रा० जजन] यज्ञ कार्य । यज्ञ करना । उ०—तीरथ व्रत आदि देवा पूजन जजन । सत नाम जाने बिना नर्क परन ।—भीखा० श०, पृ० २२ ।

जजना—क्रि० स० [सं० यजन] सम्मान करना । आदर करना । पूजा करना । उ०—कलि पुजै पाखंड को जजै न

भुति आचार । मागध नट विट दान दें तथा न द्विज कर प्यार ।—वीर० शं०, पृ० ७६ ।

जजबात—संज्ञा पुं० [सं० जजबह् का बहुव० जजबात] भावनाएँ । विचार । उ०—लेकिन जब आप लोग अपने हकों के सामने हमारे जजबात की परबाह नहीं करते तो—काया०, पृ० ४२ ।

जजमनिका—संज्ञा स्त्री० [हि० जजमान] पुरोहिती । उपरोहिती । यजमानी ।

जजमान—संज्ञा पुं० [सं० यजमान] दे० 'यजमान' ।

जजमानी—संज्ञा स्त्री० [हि० जजमान + ई (प्रत्य०)] दे० 'यजमानी' ।

जजमेंट—संज्ञा पुं० [सं०] फैसला । निर्णय । जैसे,—मामले की सुनवाई हो चुकी, अभी जजमेंट नहीं सुनाया गया ।

जजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिकार । बदला । प्रतिफल । परिणाम । उ०—किते दिन गुजर गए वने इस बजा । न पाया बुताँ ते उनेँ कुछ जजा ।—दक्खिनी०, पृ० २६५ ।

जजात—संज्ञा पुं० [सं० जजाति] दे० 'यजाति' । उ०—बलि वेणु धंभीर मानधाता प्रह्लाद कहिये कहाँ ली कथा रावण जजात की ।—राम० धर्म०, पृ० १४ ।

जजाल—संज्ञा स्त्री० [हि० जजाल] एक प्रकार की बंदूक । दे० 'जजाल'—४ । उ०—कितेक लंबघीव चढ़ि लै जजाल दगई ।—सुधान०, पृ० ३० ।

जजिमान—संज्ञा पुं० [सं० यजमान] दे० 'यजमान' ।

जजिया—संज्ञा पुं० [सं० जजियह्] १. दंड । २. एक प्रकार का कर जो मुसलमानों राज्यकाल में अन्य धर्मवालों पर लगता था ।

जजी—संज्ञा स्त्री० [हि० जज + ई (प्रत्य०)] १. जज की कचहरी । जज की अदालत । २. जज का काम । जज का पद या मोहदा ।

जजीरा—संज्ञा पुं० [सं० जजीरह्] टापू । द्वीप ।

यौ०—जजीरानुमा = जमीन का वह भाग जो तीन ओर पानी से घिरा हो ।

जजु—संज्ञा पुं० [सं० यजुष्, प्रा० जज, जजु] दे० 'यजुर्वेद' । उ०—चतुर वेद मति सब छोहि पाही । रिग यजु साम अथर्वन माही ।—जायसी शं० (गुप्त), पृ० १६१ ।

जजुर—संज्ञा पुं० [सं० यजुष्] दे० 'यजुर्वेद' । उ०—जजुर कहै सरगुन परमेसर, दस धोतार धराया ।—कबीर० शं०, भा० १, पृ० ५४ ।

जज्ज—संज्ञा पुं० [सं० जज] दे० 'जज' । उ०—फूलि न जो तू लै गयो राजा बाबू धामला जज्ज ।—भारतेंदु शं०, भा० २, पृ० ५५१ ।

जज्व—संज्ञा पुं० [सं० जज्व] १. आकषण । खिचाव । २. नेस्ती । ३. सोखना । आत्मसात् करना (को०) ।

जज्वा—संज्ञा पुं० [सं० जज्वह्] भावना । भाव । मनोवृत्ति । उ०—उ०—जोश और जज्वा का अंभा, ओ तूफान किसी ने फूँके ।—बंगाल०, पृ० ४४ ।

यौ०—जज्वाए इश्क = प्रेम का आकषण । जज्वाए विल = हृदय की भावना या आकषण ।

जम्बाती—वि० [प्र० जम्बाती] भावना में बहनेवाला । भावुक [कौ०] ।

जम्कना^७—क्रि० प्र० [धनु०] बिचकना । उम्कना । चौकना ।
उ०—जम्कत जम्कत लाल तरंगहि ।—माधवानल०,
पृ० १६४ ।

जम्करी—संज्ञा पुं० [हि० भरना] लोहे की चद्दर का तिकोना टुकड़ा जो उसमें से तवे काटने के बाद बच रहता है ।

जम्क^७—संज्ञा पुं० [सं० यज्] दे० 'यज्' । उ०—केन बारि समुझाने
भँवर न काटे बेध । कहँ मरी तै चितउर जज करो प्रसुमेध ।
—जायसी (शब्द०) ।

जम्कास^७—वि० [सं० जिज्ञासु] दे० 'जिज्ञासु' । उ०—जो कोई जम्कास
है, सदगुरु सरण जाइ । सुंदर ताहि कृपा करै ज्ञान कहै
समुझाइ ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ८१५ ।

जट^१—संज्ञा पुं० [देश० या हि० भाड] एक प्रकार का गोदना जो
झाड़ी के आकार का होता है ।

जट^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जाट' ।

जट^३—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा] दे० 'जटा' । उ०—मैं बड़ मैं बड़ मैं
बड़ माटी । मण दसना जट का दस गठी ।—कबीर प्र०,
पृ० १७६ ।

जौ०—जटजूट=जटाजूट । उ०—कोदंड कठिन चढाइ सिर
जटजूट बाधत सोहू हयौ ।—मानस, ३।१२ ।

जटना^१—क्रि० म० [हि० जाट] धोखा देकर कुछ लेना । ठगना ।
संयो० क्रि०—जाना ।—लेना ।

जटना^२—क्रि० स० [सं० जटन] जटना । ठोंककर लगाना ।
उ०—पाट जटी प्रति खेत सो हीरन की प्रवली ।—केशव
(शब्द०) ।

जटल—संज्ञा स्त्री० [सं० जटिल] व्यर्थ और झूठ मूठ की बात । गप ।
बकवाद । उ०—धपना बहुत समय.....इधर उधर की जटल
हँकने में लो बैठे हैं ।—शिक्षागुरु (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—मारना ।—हाँकना ।

जौ०—जटल काफिया = गपशप । बेतुकी बात । ऊटपटांग बात ।
जटलबाज = बकवादी । गप हाँकनेवाला ।

जटली—वि० [हि० जटल] गप्पी । जटलबाज ।

जटवा^७—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा] दे० 'जटा' । उ०—कनवा फड़ाव
जोगी जटवा बढ़ोले ।—कबीर० श०, भा० २, पृ० १५ ।

जटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक में उसभे हुए सिर के बहुत बड़े बड़े बाल,
जैसे प्रायः माधुप्रो के होते हैं ।

पर्या०—जटा । जटि । जटी । जूट । शट । कीटीर । हस्त ।

२. जड़ के पतले पतले सूत । झकरा । ३. एक में उसभे हुए
बहुत से रेशे आदि । जैसे, नारियल की जटा, बरगद की
जटा । ४. शाखा । ५. जटामासी । ६. जूट । पाट । ७.
कोछ । केवाँच । ८. शतावर । ९. रुद्रजटा । बालछड़ । १०.
वेदपाठ का एक भेद जिसमें मंत्र के दो या तीन पदों को
क्रमानुसार पूर्व और उत्तरपद को पुथक् पुथक् फिर मिला-
कर दो बार पढ़ते हैं ।

जटाऊ^७—संज्ञा पुं० [सं० जटायु] दे० 'जटायु' । उ०—प्राये मारण
रोक जटाऊ । मार गयो तिहि रावण राऊ ।—कबीर
सा०, पृ० ४० ।

जटाचीर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

जटाजिनी—संज्ञा पुं० [सं० जटाजिनिन्] जटा धीर भृगुचर्म धारण
करनेवाला ।

जटाजूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. जटा का समूह । बहुत से लंबे बड़े हुए
बालों का समूह । उ०—जटाजूट दृढ़ बाँधे माये ।—मानस,
६।८५ । २. शिव की जटा ।

जटाज्वाला—संज्ञा पुं० [सं०] दीप । चिराग [कौ०] ।

जटाटंक—संज्ञा पुं० [सं० जटाटङ्क] शिव । महादेव ।

जटाटीर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव ।

जटाधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । २. एक बुद्ध का नाम । ३.
दक्षिण के एक देश का नाम जिसका वर्णन बृहत्संहिता में
प्राया है । ४. जटाधारी । ५. संस्कृत के एक कोशकार का
नाम [कौ०] ।

जटाधारी^१—वि० [सं० जटाधारिन्] जो जटा रखे हो । जिसके
जटा हो । जटावाला ।

जटाधारी^२—संज्ञा पुं० १. शिव । महादेव । २. मरसे की जाति का
एक पोधा जिसके ऊपर कलगी के आकार के लहरदार लाल
फूल लगते हैं । मुर्गकेश । ३. साधु । बैरागी ।

जटाना^१—क्रि० स० [हि० जटना] जटने का प्रेरणार्थक रूप ।

जटाना^२—क्रि० प्र० [हि० जटना] बोले में आकर अपनी हानि कर
बैठना । ठगा जाना ।

जटापटल—संज्ञा पुं० [सं०] वेदपाठ करने का एक बहुत जटिल
प्रकार या क्रम । कहते हैं, यह क्रम हयग्रीव ने निकाला था ।

जटामंडल—संज्ञा पुं० [सं० जटामण्डल] जटाजूट । जूड़ा । जटापिंड
[कौ०] ।

जटामाली—संज्ञा पुं० [सं० जटामालिन्] महादेव । शिव ।

जटामांसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जटामासी' ।

जटामासी—संज्ञा स्त्री० [सं० जटामांसी] एक सुगंधित पदार्थ जो एक
वनस्पति की जड़ है । बालछड़ । बालूचर ।

विशेष—यह वनस्पति हिमालय में १७००० फुट तक की ऊँचाई
पर होती है । इसकी डालियाँ एक हाथ से डेढ़ दो हाथ तक
लंबी और सोंके की तरह होती हैं जिनमें घामने सामने डेढ़
दो अंगुल लंबी और भाँधे से एक अंगुल तक चौड़ी पत्तियाँ
होती हैं । इसके लिये पथरीली भूमि, जहाँ पानी पड़ा करता
हो या सर्दी बनी रहती हो, अधिक उत्तम है । इसमें छोटी
उँगली के बराबर मोटी काली भूरी पत्तियाँ होती हैं जिन-
पर तामड़े रंग के बाल या रेशे होते हैं । इसकी गंध तेज
और भीठी तथा स्वाद कड़वा होता है । वैद्यक में जटामासी
बलकारक, उत्तेजक, विषघ्न तथा उन्माद और कास, श्वास
आदि को दूर करनेवाली मानी गई है । लोगों का कथन है
कि इसे लगाने से बाल बढ़ते और काले होते हैं । खींचने से
इसमें से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो शीघ्र और

सुगंध के काम आता है। २० सेर जटामासी में से डेढ़ छटाक के लगभग तेल निकलता है। इसे बालछड़, बालूचर आदि भी कहते हैं।

जटायु—संज्ञा पुं० [सं०] रामायण का एक प्रसिद्ध गिद्ध।

विशेष—यह सूर्य के सारथी भरण का पुत्र था जो उसकी श्वेती नाम्नी स्त्री से उत्पन्न हुआ था। यह दशरथ का मित्र था और रावण से, जब वह सीता को हरण कर लिए जाता था, लड़ा था। इस लड़ाई में यह घायल हो गया था। रामचंद्र के आने पर इसने रावण के सीता को हार ले जाने का समाचार उनसे कहा था। उसी समय इसके प्राण भी निकल गए थे। रामचंद्र ने स्वयं इसकी प्रत्येष्टि क्रिया की थी। संघाति इसका भाई था।

२. गुग्गुलु।

जटाक्ष^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बटवृक्ष। बरगद। २. कछूर। ३. मुष्कक। मोखा। ४. गुग्गुलु।

जटाक्ष^२—वि० जटाधारी। जो जटा रखे हो।

जटाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

जटाष^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली मिट्टी जिससे कुम्हार बड़े भादि बनाते हैं। कुम्हरोटी।

जटाष^२—संज्ञा पुं० [हिं० जटना] जट जाने या जटने की क्रिया।

जटावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

जटाबल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रुद्रजटा। शंकरजटा। २. एक प्रकार की जटामासी जिसे गंधमासी भी कहते हैं।

जटामुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रसिद्ध राजस।

विशेष—यह द्रौपदी के रूप पर मोहित होकर ब्राह्मण के वेश में पांडवों के साथ मिल गया था। एक बार इसने भीम की अनुपस्थिति में द्रौपदी, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव को हरण कर ले जाना चाहा था, पर मार्ग में ही भीम ने इसे मार डाला था।

२. बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम।

जटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्लक्ष वृक्ष। पाकर का पेड़। २. बरगद का पेड़। ३. जटा। ४. समूह। ५. जटामासी।

जटित्स—वि० [सं०] जड़ा हुआ। जैसे, रत्नजटित।

जटियत्त—वि० [हिं० जटल] १. निकम्मा। रद्दी। २. नकली। दिखावटी। ३. जटनेवाला।

जटिल^१—वि० [सं०] १. जटावाला। जटाधारी। २. अत्यंत कठिन। जटा के उलझे हुए बालों की तरह जिसका सुझझना बहुत कठिन हो। दुरूह। दुर्बोध। ३. क्रूर। दुष्ट। हिंसक।

जटिल^२—संज्ञा पुं० १. सिंह। २. ब्रह्मचारी। ३. जटामासी। ४. शिव।

विशेष—जिस समय शिव के लिये पार्वती हिमालय पर तपस्या कर रही थीं, उस समय शिव जी जटिल वेश धारण करके उनके पास गए थे। उसी के कारण उनका यह नाम पड़ा।

५. बकरा (को०)। ६. साधु (को०)।

४-३

जटिलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन ऋषि का नाम। २. इस ऋषि के वंशज।

जटिलता—संज्ञा स्त्री० [सं० जटिल + ता (प्रत्य०)] कठिनाई। उलझन। पेचीदगी।

जटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्मचारिणी। २. जटामासी। ३. पिप्पली। पीपल। ४. बच्चा। बच्चा। ५. दीना। वमनक। ६. महाभारत के अनुसार गौतम वंश की एक ऋषिकन्या का नाम जिसका विवाह सात ऋषिपुत्रों से हुआ था। यह बड़ी धर्मपरायण थी।

जटी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाकर। २. जटामासी। ३. 'जटि'।

जटी^२—संज्ञा पुं० [सं० जटिन्] १. शिव। २. प्लक्ष या बट का वृक्ष। ३. वह हाथी जो साठ वर्ष का हो (को०)।

जटी^३—[सं० जटिन्] [वि० स्त्री० जटिनी] जटाधारी उ०—विमल जटी, तपसी भए मुनि मन गति भूली।—छीत०, पृ० २०।

जटी(५)—वि० [सं० जटित] ३. 'जटित'।—उ०—जो पै नहि होती ससिमुखी भृगुनैनी केहरि कटी, छवि जटी छटा की सी छटी रस लपटी छूटी छटी—ब्रज० प्र०, पृ० ६३।

जटुल—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के बमड़े पर का एक विशेष प्रकार का दाग या धब्बा जो जन्म से ही होता है। लोग इसे लक्षण या लक्षण कहते हैं।

जटुली^१(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बच्चों के केश। उ०—धूलि धूसर जटा जटुली हरि लियो हर भेष।—पोद्दार अभि० प्र० पृ० २५२।

जट्टा^१—संज्ञा पुं० [हिं० जाट] जाट जाति।

जट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जली तंबाकू। उ०—एक ही फूँक में चिबम की जट्टी तक चूस जाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८४।

जट्टू^१—वि० [हिं० जटना] ठगनेवाला। गैरबाजिब मूल्य लेनेवाला।

जठर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेट। कुक्षि।

यौ०—जठरगद। जठरज्वाल = भूख। जठरज्वाला। जठरयंत्रणा, जठरयातना = गर्भवास का कष्ट। जठराग्नि। जठरानल।

२. भागवत पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विशेष—यह मेरु के पूर्व उन्नीस हजार योजन लंबा है और नील पर्वत से निषध गिरि तक चला गया है। यह दो हजार योजन चौड़ा और इतना ही ऊँचा है।

३. एक देश का नाम।

विशेष—बृहत्संहिता के मत से यह देश श्लेषा, मघा और पूर्वा-फाल्गुनी के अधिकार में है। महाभारत में इसे कुक्कुर देश के पास लिखा है।

४. सुश्रुत के अनुसार एक उदर रोग।

विशेष—इस उदर रोग में पेट फूल जाता है। इसमें रोगी बलहीन और वर्णहीन हो जाता है तथा उसे भोजन से ग्रसि हो जाती है।

५. शरीर। देह। ६. मरकत मणि का एक बोध।

विशेष—कहते हैं कि इस दोषयुक्त मरकत के रखने से मनुष्य वरिष्ठ हो जाता है।

जठर^२—वि० १. बड़ा। बड़ा। २. कठिन। ३. बँधा हुआ (को०)।

जठरगद्—संज्ञा पुं० [सं०] घात की व्याधि (को०)।

जठरज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुधाग्नि। बुभुक्षा। भूख। २. उदर की पीड़ा। उदरभूख (को०)।

जठरनुत्—संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

जठराङ्ग—वि० [हि० जेठ या जठर] [वि० स्त्री० जेठरी] जेठा। बड़ा।

जठराग्नि^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जठराग्नि] दे० 'जठराग्नि'।

जठराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट की वह गरमी या अग्नि जिसमें अन्न पचता है।

विशेष—पित्त की कमी वेली से जठराग्नि चार प्रकार की मानी गई है, मंत्राग्नि, विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, और समाग्नि।

जठरानल—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जठराग्नि'।

जठरामय—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिसार रोग। २. जलोदर रोग।

जठल—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल का एक प्रकार का जलपात्र जिसका आकार उदर का सा होता था।

जठाणी^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जेठानी] दे० 'जेठानी'। उ०—देखि जठाणी, लागी छड़ जेठ।—वी० रासो, पृ० १६।

जठागनि^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जठराग्नि] दे० 'जठराग्नि'। उ०—कह लाय सिराय पचाय जठागनि दाय सहाय सबाय मरे।—राम० धर्म०, पृ० ३०५।

जठोड़ी—वि० [हि० जूठा + जोड़ी (प्रत्य०)] जूठा कर देनेवाला। जूठा करनेवाले स्वभाव का। (अमर)। उ०—चंचरीक चेटुवा को लागो है चरन, बुभि अग्रभाग तम मृदु मंजुल जठोड़ी को।—पञ्चनेस०, पृ० २१।

जठेरा—वि० [हि० जेठ या जठर] [स्त्री० जठेरी] जेठा। बड़ा। उ०—विप्रबधू कुलमान्य जठेरी।—मानस, २।४६।

जड—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० जड़ (को०)।

जडक्रिय—वि० [सं०] सुस्त। बीर्बसूची।

जडुल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जडुल' (को०)।

जडुलार्—संज्ञा पुं० [देश०] मारवाड़ में बच्चे के मुँडन संस्कार को जड़ना कहते हैं।—उ०—दाइ ही को सब शुभ और अशुभ कार्यों (विवाह, जन्म, जड़ना) में मानते हैं और स्मरण करते हैं।—सुंदर प्र० (जी०), भा० १ पृ० ८।

जड्ड^५—वि० [सं० जड] दे० 'जड़'। उ०—बाहर चेतन की रहन, भीतर जड्ड अचेत।—दरिया० बानी, पृ० ३४।

जड्डा^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा] दे० 'सटा'। उ०—न तिष्ठा गिर बज्र के पुंछन तिष्ठारे। कंध सु जड्डा केहरी नेना ज्यों तारे।—पृ० रा०, २४। १४६।

जड़^१—वि० [सं० जड] १. जिसमें चेतनता न हो। अचेतन। २. जिसकी इंद्रियों की शक्ति मारी गई हो। चेष्टाहीन। स्तब्ध। ३. मंदबुद्धि। नासमझ। मूर्ख। ४. सरदी का मारा या

ठिठुरा हुआ। ५. शीतल। ठंडा। ६. गूँगा। मूक। ७. जिसे सुनाई न दे। बहुरा। ८. अनजान। अनभिज्ञ। ९. जिसके मन में मोह हो। जो वेद पढ़ने में असमर्थ हो (दायभाग)।

जड़^२—संज्ञा पुं० [सं० जडम्] १. जल। पानी। २. बरफ़। ३. सीसा नाम की धातु। ४. कोई भी अचेतन पदार्थ (को०)।

जड़^३—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा (= वृक्ष की जड़)] वृक्षों और पौधों आदि का वह भाग जो जमीन के अंदर दबा रहता है और जिसके द्वारा उनका पोषण होता है। मूल। सोर।

विशेष—जड़ के मुख्य दो भेद हैं। एक मूल या डंडे के आकार की होती है और जमीन के अंदर सीधी नीचे की ओर जाती है; और दूसरी झुर्रा जिसके रेखे जमीन के अंदर बहुत नीचे नहीं जाते और थोड़ी ही गहराई में चारों तरफ फैलते हैं। सिंचाई का पानी और खाद आदि जड़ के द्वारा ही वृक्षों और पौधों तक पहुँचती है।

जौं—जड़मूल।

वह जिसके ऊपर कोई चीज स्थित हो। नींव। बुनियाद।

मुहा०—जड़ उखाड़ना, काटना या खोदना = किसी प्रकार की हानि पहुँचाकर या बुराई करके समूल नाश करना। ऐसा नष्ट करना जिसमें वह फिर अपनी पूर्वस्थिति तक न पहुँच सके। जड़ जमना = दृढ़ या स्थायी होना। जड़ पकड़ना जमना। दृढ़ होना। मजबूत होना। जड़ पड़ना = नींव पड़ना बुनियाद पड़ना। शुक्ल होना। जड़ बुनियाद से, जड़मूल से = आमूलतः। समूल। जड़ में पानी बेना या भरना = दे० 'जड़ उखाड़ना'। जड़ में मट्टा डालना = सर्वनाश का प्रयोग करना। जड़ सींचना = आधार को पुष्ट करना।

३. हेतु। कारण। सबब। जैसे,—यही तो सारे भगड़ों की जड़ है। ४. वह जिसपर कोई चीज अवलंबित हो। आधार।

जड़आमला—संज्ञा पुं० [हि० जड़ + आमला] भुईं आँवला।

जड़क्रिया—वि० [सं० जड़क्रिय] जिसमें कोई काम करने में बहुत देर लगे। सुस्त। बीर्बसूची।

जड़काळा—संज्ञा पुं० [हि० जाड़ा + सं० काल] सर्दियों के दिन। जाड़े का समय। उ०—लागेह माघ परै अब पासा। बिरहा काल भएउ जड़काळा।—जायसी प्र०, पृ० १५४।

जड़जगत—संज्ञा पुं० [सं० जड़ + जगत्] अचेतन पदार्थ। जड़प्रकृति।

जड़ता—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ का भाव, जड़ता] १. अचेतनता। २. मूर्खता। बेवकूफी। ३. साहित्यवर्षण के अनुसार एक संचारी भाव।

विशेष—यह संचारी भाव किसी घटना के होने पर चित्त के विवेकशून्य होने की दशा में होता है। यह भाव प्रायः घबराहट, दुःख, भय या मोह आदि में उत्पन्न होता है।

४ स्तब्धता। अचलता। चेष्टा न करने का भाव। उ०—निज जड़ता लोगन पर डारी। होहु हरुष रघुपतिहि निहारी।—तुलसी (शब्द०)

जड़ताई—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ + (वि०) तावि (प्रत्य०) भयवा हि०]
दे० 'जड़ता'। उ०—हृद बिधि बेगि जनक जड़ताई।—मानस,
१।२४६।

जड़त्व—संज्ञा पुं० [सं० जड़त्व] १. चेतनता का विपरीत भाव।
अचेतन पदार्थों का वह गुण जिससे वे जहाँ के तहाँ पड़े रहते
हैं और स्वयं हिल डोल या किसी प्रकार की चेष्टा आदि नहीं
कर सकते। २. स्थिति और गति की इच्छा का अभाव।
वैशेषिक के अनुसार परमाणुओं का एक गुण।

जड़ना—क्रि० स० [सं० जटन] [संज्ञा जड़िया, जड़ाई, वि० जड़ाऊ]
१. एक बीज को दूसरी बीज में पच्ची करके बैठाना। पच्ची
करना। जैसे, घोंगूरी में नग जड़ना। २. एक बीज को दूसरी
बीज में ठीक कर बैठाना। जैसे, कील जड़ना, नाल जड़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—रखना।

३. किसी वस्तु से प्रहार करना। जैसे, धोल जड़ना, चप्पड़ जड़ना।
४. चुगली या शिकायत के रूप में किसी के विरुद्ध किसी से
कुछ कहना। कान भरना। जैसे,—किसी ने पहले ही उनसे
जड़ दिया था, इसीलिये वे यहाँ नहीं आए।

संयो० क्रि०—देना। उ०—घोर बन्नों की सुनिए कि षट जा
के बेगम साहब से जड़ दी कि हुज़ूर, अब जरी गफलत न करें।
सेर कु०, पृ० २६।

जड़पदार्थ—संज्ञा पुं० [सं० जड़ + पदार्थ] भौतिक द्रव्य। अचेतन
पदार्थ।

जड़प्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ + प्रकृति] दे० 'जड़जगत'।

जड़भरत—संज्ञा पुं० [सं० जड़भरत] धर्मिरस गोत्री एक ब्राह्मण
जो जड़वत् रहते थे।

विशेष—भागवत में लिखा है कि राजा भरत ने अपने बानप्रस्थ
आश्रम में एक हिरन के बच्चे को पाला था और उसके साथ
उनका इतना प्रेम था कि मरते दम तक उन्हें उसकी चिता
बनी रही। मरने पर वे हिरन की योनि में उत्पन्न हुए, पर
उन्हें पुण्य के प्रभाव से पूर्व जन्म का ज्ञान बना रहा। उन्होंने
हिरन का शरीर त्याग कर फिर ब्राह्मण के कुल में जन्म
लिया। वह संसार की भावना से बचने के लिये जड़वत् रहते
थे इसीलिये लोग उन्हें जड़भरत कहते थे।

जड़लग—संज्ञा स्त्री० [देश०] तलवार। उ०—सभ सारत समधा
सब कोई। जड़लग वह गई संग जिनोई।—रा० क०,
पृ० २५५।

जड़वत्—वि० [सं० जड़ + वत्] जड़ के समान। चेतनारहित।
बेहोश। उ०—जड़वत् देख दोउ के संग। चेतन देख दोउ में
रंगा।—घट०, पृ० २५७।

जड़वाद—संज्ञा पुं० [सं० जड़ + वाद] वह दार्शनिक मत या विचार-
धारा जिसमें पुनर्जन्म और चेतन आत्मा का अस्तित्व मान्य
नहीं। उ०—जड़वाद जर्जरित जग में तुम अवतरित हुए
आत्मा महान।—गुनीत, पृ० ५७।

जड़वादी—वि० [सं० जड़वादिन्] जड़वाद का अनुगामी।

जड़बाना—क्रि० स० [हि० जड़ना] १. नग इत्यादि जड़ने के लिये

प्रेरणा करना। जड़ने का काम करना। २. कील इत्यादि
गड़वाना।

जड़बिज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० जड़ + विज्ञान] भौतिक विज्ञान।
जड़वाद।

जड़बी—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़] धान का छोटा पौधा जिसे जमे
हुए अभी बोड़ा ही समय हुआ हो।

जड़हन—संज्ञा पुं० [हि० जड़ + हनन (= गाड़ना)] धान का एक
प्रधान भेद जिसके पौधे एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह
बैठाए जाते हैं।

विशेष—यह धान असाढ़ में घना बोया जाता है। जब पौधे एक
या दो फुट ऊँचे हो जाते हैं, तब किसान इन्हें उखाड़कर ताल
के किनारे बीचे खेतों में बैठाते हैं। वह खेत, जिसमें इसके
बीज पहले बोए जाते हैं, 'बियाड़' कहलाता है, और पौधे के
बीज को 'बैहन' तथा बीज बोने को 'बैहन डालना' कहते हैं।
बीज को बियाड़ से उखाड़कर दूसरे खेत में बैठाने को 'रोपना'
या 'बैठाना' कहते हैं; और वह खेत जिसमें इसके पौधे रोपे
जाते हैं, 'सोई', 'डाबर', आदि कहलाता है। जड़हन पौधों
में कुम्हार के घत में बाल फूटने लगती है, और भगहन में
खेत पककर कटने योग्य हो जाता है। इस प्रकार के धान
की अनेक जातियाँ होती हैं जिनमें से कुछ के चावल मोटे
और कुछ के महीन होते हैं। यह कभी कभी तालों के किनारे
या बीच में भी बोड़ा पानी रहने पर बोया जाता है; और ऐसी
बोसाई को 'बोभारी' कहते हैं। भगहनी के प्रतिरिक्त धान
का एक और भेद होता है जिसे कुम्हारी कहते हैं। इस भेद के
धान 'भोसहन' कहलाते हैं।

जड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ा] १. मुई घाँवला। २. कीछ। केवाँच।

जड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़ना] १. जड़ने का काम। पच्चीकारी।
२. जड़ने का भाव। ३. जड़ने की मजदूरी।

जड़ाऊ—वि० [हि० जड़ना] जिसपर नग या रत्न आदि जड़े
हों। पच्चीकारी किया हुआ। जैसे, जड़ाऊ मंदिर।

जड़ान—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़ना] दे० 'जड़ाई'।

जड़ाना^१—क्रि० स० [हि० जड़ना] जड़ने का प्रेरणार्थक रूप।
जड़ने का काम दूसरे से कराना।

जड़ाना^२—क्रि० प्र० [हि० जाड़ा] १. जाड़ा सहना। ठंड खाना।
२. सरदी की बाधा होना। शीत लगना। उ०—पूँस जाड़
थरथर तन काँपा। मुरुज जड़ाइ लंक दिसि तापा।—जायसी
शं० (गुप्त), पृ० ३५८।

जड़ाव—संज्ञा पुं० [हि० जड़ना] जड़ने का काम या भाव। उ०—
पुनि भभरन बहु काड़ा, नाना भाँति जड़ाव। फेरि फेरि सब
पहिरिहि, जैस जैस मन भाव।—जायसी (शब्द०)।

जड़ावट—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़ना] जड़ने का काम या भाव।
जड़ाव।

जड़ावर—संज्ञा पुं० [(देशी जड़ा + सं० घा + √ वृ > घा वर,
अथवा हि० जाड़ा] जाड़े में पहनने के कपड़े। गरम कपड़े।

क्रि० प्र०—देना=स्वल्प वेतनभोगी कर्मचारियों को जाड़े के कपड़े या उसके विनिमय में धन देना ।—मिलना ।

जङ्गावलि—संज्ञा पु० [हि० जङ्गावर] दे० 'जङ्गावर' ।

जङ्गावलि—वि० [हि० जङ्गा] जङ्गाया हुआ । कवित ।

जङ्गित^५—वि० [हि० जङ्गना या सं० जङ्गित] जो किसी चीज में जङ्गा हुआ हो । २. जिसमें नग प्राप्ति जड़े हों ।

जङ्गिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्गिम्] १. जङ्गता । जङ्गत्व । २. एक भाव जिसमें मनुष्य को इष्ट धनित का ज्ञान नहीं होता और वह जङ्ग हो जाता है । ३. मोक्ष्य । मूर्खता ।

जङ्गिया—संज्ञा पु० [हि० जङ्गना] १. नगों के जङ्गने का काम करनेवाला पुरुष । वह जो नग जङ्गने का काम करता हो । कुंदनसाज । उ०—हकनाहक पकरे सकल जङ्गिया कोठीवाल । अर्थ०, पु० ४३ । २. सोनारों की एक जाति या वर्ग जो गहने में नग जङ्गने का काम करती है ।

जङ्गी—संज्ञा स्त्री० [हि० जङ्ग] वह वनस्पति जिसकी जड़ औषध के काम में लाई जाय । बिरई ।

ज्यो०—जङ्गी बूटी = जंगली औषधि या वनस्पति ।

जङ्गीभूत—वि० [सं० जङ्गीभूत] स्तब्ध । निश्चल । जङ्गभाव को प्राप्त । गतिहीन । उ०—गीतम ने जिस परिवर्तन के धमर सत्य को पहचाना था, क्या वही गतिशील होकर चल सका । लौटकर आया कहाँ जहाँ शाश्वत जङ्गीभूत स्थिरता का पाषाण आकाश जूमने का प्रयत्न कर रहा था ।—प्रा० भा० प०, पु० ४७५ ।

जङ्गीला^१—संज्ञा पु० [हि० जङ्ग + ईला (प्रत्य०)] १. वह वनस्पति जिसकी जड़ काम में आती हो । जैसे, मूली, गाजर । २. वह ऊँची उठी हुई जड़ जो रास्ते में मिले ।—(कहार) ।

जङ्गीला^२—जङ्गदार । जिसमें जड़ हो ।

जङ्गुआ—संज्ञा पु० [हि० जङ्गता] चाँदी का एक गहना जो छल्ले की तरह पैर के अंगूठे में पहना जाता है ।

जङ्गुल—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'जटुल' ।

जङ्गुयाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० जाङ्ग + ऐया (प्रत्य०)] वह बुझार जिसके आरंभ में जाङ्गा लगता हो । झुड़ी ।

जङ्गु—वि० [सं० जङ्ग] दे० 'जङ्ग' ।

जङ्गता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्गता] दे० 'जङ्गता' ।

जङ्गाना^१—क्रि० प्र० [हि० जङ्ग या जङ्ग] जङ्ग हो जाना । २. हठ करना । जिद करना । अपनी बात पर अड़े रहना ।

जता^५—वि० [सं० यत्] जितना । जिस मात्रा का ।

जत^२—संज्ञा पु० [सं० यति] बाघ के बारह प्रबंधों में से एक । होली का ठेका या ताल ।

जतना^५—संज्ञा पु० [सं० यत्न] दे० 'यत्न' । उ०—बार बार मुनि जतन कराहीं । भंत राम कहि भावत नाहीं ।—तुलसी (शब्द०) ।

जतना^१—क्रि० प्र० [यत्न, हि० जतन] यत्न करना । उ०—

धर के ऐसे जतन जती । विष्णुहि गमं बीच ही हती ।—मंद० प्र०, पु० २२२ ।

जतनी^१—संज्ञा पु० [सं० यत्न] १. यत्न करनेवाला । २. सुचतुर । चालाक ।

जतनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यत्न (= रक्षा)] वह रस्सी या डोरी जिसे चर्रों (रँहुठ) की पंथुरियों के किनारे पर माल के टिकाव के लिये बाँधते हैं ।

जतनु^५—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'यत्न' । उ०—करेहु सो जतनु विवेक विचारी ।—मानस १।५२ ।

जतरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] दे० 'यात्रा' । उ०—माँ और स्त्री को साथ लेकर वह जगन्नाथ जी की जतरा कर आया था ।—नई०, पु० १०७ ।

जतलाना^१—क्रि० प्र० [हि० जताना] दे० 'जताना' ।

जतसरा^१—संज्ञा पु० [हि० जाँता] दे० 'जैतसर' ।

जता^५—वि०, अर्थ० [सं० यत्] दे० 'जितना' । उ०—मेरे पास धन माल है होर मता । तुजे देऊगी मैं सारा जता ।—दक्खिनी०, पु० ३७६ ।

जताना^१—क्रि० प्र० [सं० ज्ञात] १. जानने का प्रेरणार्थक रूप । ज्ञात कराना । बतलाना । २. पहले से सूचना देना । आगाह करना ।

जताना^२—क्रि० प्र० [हि० जाँता] दे० 'जैताना' ।

जतारा^१—संज्ञा पु० [हि० जाति या सं० यूथ] वंश । खानदान । कुल । जाति । घराना ।

जति^१—क्रि० [सं० जेत्] जेना । जीतनेवाला । उ०—चरन पीठ उन्नत मत पालक, गूढ़ गुलुफ जंघा कदली जति ।—तुलसी प्र०, पु० ४१५ ।

जति^२—संज्ञा पु० [सं० यति] दे० 'यति' । उ०—स्वान खग जति न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रवीन । नीचु हति महिदेव बालक कियो मीचु बिहीन ।—तुलसी प्र०, पु० ४२२ ।

जती^१—संज्ञा पु० [सं० यति] संन्यासी । दे० 'यति' । उ०—जती पुरुष कहै ना गहै परनारी को हाथ ।—शकुंतला०, पु० ६७ ।

जती^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यति] छंद में विराम । दे० 'यति' ।

जतु^१—संज्ञा पु० [सं०] वृक्ष का निर्यास । गोद । २. लाख । लाह । ३. शिलाजतु । शिलाजीत ।

जतु^२—संज्ञा स्त्री० गेदुर । चमगादड़ [को०] ।

जतुक—संज्ञा पु० [सं०] १. हींग । २. लाख । लाह । ३. शरीर के चमड़े पर का एक विशेष प्रकार का चिह्न जो जन्म से ही होता है । इसे लच्छन या लक्षण भी कहते हैं ।

जतुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पहाड़ी नामक लता जिसकी पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं । २. चमगादड़ । ३. लाक्षा । लाख । लाह [को०] ।

जतुकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पपड़ी या पपड़ी नाम की लता ।

जतुकुल—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जतुकुल्या' [को०] ।

जतुकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका या पपड़ी नाम की लता ।

जतुगृह—संज्ञा पु० [सं०] घास फूस ऐसी चीजों का बना हुआ घर

जो जल्दी जल सके। २. लाख का बना घर जैसा बारणावत में
दुर्गोवन ने पांडवों को भस्म करने के लिये बनवाया था।
लाक्षागृह (को०)।

जतुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़।

जतुपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शतरंज का मोहरा। २. चौसर की
गोटी। ३. लाख का बना हुआ रूप या आकार (को०)।

जतुमणि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सूक्ष्म रोग जिसमें दाग पड़
जाता है। जटुल। जतुक।

जतुमुख—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का घान।

जतुरस—संज्ञा पुं० [सं०] लाख का बना हुआ रंग। झलकक। महावर।

जतू—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पक्षी का नाम। चमगादड़। २. लाख का
बना हुआ रंग।

जतूकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

जतूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जतुका'।

जतेक—क्रि० वि० [सं० यत् या हि० जितना + एक] जितना।
जिस मात्रा का। जिस संख्या का।

जतै—क्रि० वि० [सं० यत्, प्रा० जत्थ] जहाँ। उ०—ब्रजमोहन
मोह की मूरति राम जतै घनि रोहिनि पुन्य फली।—
घनानंद०, पृ० २००।

जत्था—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] बहुत से जीवों का समूह। झुंड। गरोह।
क्रि० प्र०—बांधना।

यौ०—जत्थावार, जत्थेदार=जत्था अर्थात् समूह का प्रधान
या नायक।

जत्र—क्रि० वि० [सं० यत्] जहाँ। जिस जगह। उ०—किते जीव
संमूह देखत भज्जै। मृग व्याघ्र भीते रिछं जत्र गज्जै।—
ह० रासो, पृ० ३६।

जत्रानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जाटों की एक जाति जो रहेलखंड में
बसती है।

जत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. गले के सामने की दोनों ओर की वह हड्डी
जो कंधे तक कमानी को तरह लगी रहती है। हँसली।
हँसिया। उ०—यज्ञोपवीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन
प्रस तति।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१५। २. कंधे और बांह
का जोड़।

जत्वश्मक—संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

जथ—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] जत्था। जूथ। यूथ। उ०—झाँक
झुकत करत घोर घंटा घहरि घने। घुँघरू घिरत फिरत
मिलि एक जथ।—भारतेंदु ग्रं०, भाग २, पृ० ४४७।

जथा^१—क्रि० वि० [सं० यथा] १. दे० 'यथा'। उ०—जथा भूमि
सब बीज में, नलत निवास अकास। रामनाम सब घरम में
जानत तुलसीदास।—तुलसी ग्रं०, भाग २, पृ० ८८।

यौ०—जथाजोग। जथायित। जथारवि=अपने इच्छानुसार।
उ०—बट्ट करि कीटि कुतर्क जथारवि बोलइ।—तुलसी ग्रं०,
पृ० ३४। जथालाभ=जो भी मिल जाय उसमें। जोभी प्राप्त
हो उससे। उ०—जथालाभ संतोष सदाई।—मानस, ७।४६।

जथा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथ] झंडली। गरोह। समूह। टोली।

क्रि० प्र०—बांधना।

जथा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० गथ] पूँजी। धन। संपत्ति।

यौ०—जमा जथा।

जथाजोग—क्रि० वि० [सं० यथायोग्य] दे० 'यथायोग्य'। उ०—
जथाजोग भेटे पुरवासी गए सूल, सुखसिंधु नहाए।—सूर०,
६।१६८।

जथाथित—क्रि० वि० [सं० यथास्थित] जैसा था वैसा ही।
ज्यों का त्यों। उ०—शिवहि विलोकि ससंकेत यारू। भयह
अथाथित सब संसार।—मानस, १।८६।

जथारथ—अभ्य० [सं० यथार्थ] दे० 'यथार्थ'। उ०—जे जन नियुत
जथारथवेदी। स्वारथ घर परमारथ भेदी।—नंद ग्रं०,
पृ० ३०२।

जथारथवेदी—वि० [सं० यथार्थ+वेदिन्] यथार्थवेत्ता। सच्चाई
को जाननेवाला।

जथावकास—क्रि० वि० [सं० यथावकाश] अवकाश के अनुसार।
उ०—जाके जठर मध्य जग जितौ। जथावकास रहत है
तितौ।—नंद ग्रं०, पृ० २२६।

जथासंखि—अभ्य० [सं० यथासंख्य] क्रम के अनुसार। जैसा
क्रम हो उसके अनुसार। उ०—वसं वरुण व्यास्यो जथासंखि
वासं। बहूँ आश्रमं यो तजं लोभ घासं।—ह० रासो,
पृ० १७।

जद^१—क्रि० वि० [सं० यदा] जब। जब कभी। उ०—(क) जब
जागूँ तब एकली, जब सोऊँ तब बेल।—ढोला०, दू० ५११।
(ख) ब्रजमोहन घनघनैव जानी जद बस्मों विच आया है।
—घनानंद०, पृ० १८१।

जद^२—अभ्य० [सं० यदि] अगर। यदि।

जद^३—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जद] १. आघात। चोट। २. लक्ष्य।
निशाना। ३. सामना (को०)।

जदनी—वि० [फ्रा० जदनी] मारने या बध करने योग्य।

जदपि—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि' उ०—जदपि अकाम
तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना।—
मानस, १।७६।

जदबद्धी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जदबद्ध'।

जदल—संज्ञा पुं० [घ०] १. युद्ध। संघर्ष। २. झगड़ा। हुज्रत (को०)।

जदवार, जदवार—संज्ञा पुं० [घ०] जहर के घसर को दूर करने-
वाली एक घास। निविषी।

जदा—वि० [फ्रा० जबहु] पीड़ित। संतप्त। मारा हुआ। जैसे,
गमजदा। मुसीबतजदा=विपत्ति का मारा।

जदि—अभ्य० [सं० यदि] अगर। जो।

जदीद—वि० [घ०] नया। हाल का। नवीन।

जदु—संज्ञा पुं० [सं० यदु] दे० 'यदु'।

जदुईस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जदुपति'।—अनेकार्य०, पृ० ६१।

जदुकुल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यदुवंश'।

जिदुनाथ^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यदुनाथ' उ०—बिनु सोन्हें ही देत
सूर प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं ।—सूर०, १।३।

जदुपति^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुपति] श्रीकृष्ण । उ०—कोऊ कोरिक
संघही कोऊ बाख हजार । यों संपति जदुपति सदा विपति
बिदारनहार ।—बिहारी (शब्द०) ।

जदुपाल^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुपाल] श्रीकृष्ण ।

जदुपुरी^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुपुरी] राजा यदु का नगर । यदुकुल
की राजधानी, मयुरा भयवा यदुओं की पुरी द्वारका । उ०—
दृष्टि पड़ी जदुपुरी सुहाई ।—नंद० प्र०, पृ० २१३ ।

जदुवंशी^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यदुवंशी' । उ०—कुंज कुटीरे
अमुना तीरे तू दिखता जदुवंशी ।—हिम कि०, पृ० २४ ।

जदुराष्ट्र^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] यदुपति । श्रीकृष्णचंद्र ।

जदुराज^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद्र ।

जदुराम^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुराम] यदुकुल के राम । बलदेव ।

जदुराय^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद्र ।

जदुवर^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुवर] श्रीकृष्णचंद्र ।

जदुवीर^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुवीर] श्रीकृष्णचंद्र ।

जह^५—वि० [अ० ज्यादह] अधिक । ज्यादा ।

जह^३—वि० [सं० योद्धा] प्रबल । प्रबल । उ०—छागसि चलेउ
समद रूप बलहद जह अति ।—गोपाल (शब्द०) ।

जह^३—संज्ञा पुं० [अ०] दादा । पितामह । बाप का बाप ।

जहपि^५—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि' ।

जहदह^५—संज्ञा पुं० [सं० यत्प्रवद्य भयवा हि० अनु०] अकथनीय बात ।
वह बात जो न कहने योग्य हो । दुर्वचन ।

जही^१—संज्ञा स्त्री० [अ०] चेष्टा । कोशिश । प्रयत्न । दौड़पूप [को०] ।

जही^२—वि० [अ०] मोहसी । बापदादे की [को०] ।

जहोजहद^५—संज्ञा स्त्री० [अ०] दौड़पूप । चेष्टा । प्रयत्न । उ०—
व्यक्ति विलीन दलों के दुमंद, जहोजहद में रदोबदल मे ।—
मिलन०, पृ० १७३ ।

जद्यपि—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि' । उ०—सहज सरल
रघुबर बचन, कुमति कुटिल फिर जान । चले जोंक जल
बकगति जद्यपि सलिल समान ।—तुलसी प्र०, पृ० १०१ ।

जनंगम—संज्ञा पुं० [सं० जनङ्गम] चांडाल ।

जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोक । लोग ।

यौ०—जनप्रवाद = अफवाह । लोकापवाद । उ०—जन अपवाद
गूँजता था, पर दूर ।—अपरा, पृ० १३६ । जन प्रादोलन =
उद्देश्यपूर्ति के लिये जनसमूह द्वारा किया हुआ सामूहिक
प्रयत्न या हलचल । जनजीवन = लोकजीवन । जनप्रवाद ।
जनक्षय । जनश्रुति । जनबल्लभ । जनसमूह । जनसमाज ।
जनसमुदाय । जनसमुद्र = जनसमूह । जनसाधारण । जनसेवक ।
जनसेवा, प्रादि ।

२. प्रजा । ३. गंधार । देहाती । ४. जाति । ५. वर्ग । गण ।
उ०—आर्य लोग इस समय अनेक जनो में विभक्त थे । प्रत्येक

जन एक पुष्पक राजनैतिक समूह मालूम होता है ।—हिंदु०
सभ्यता, पृ० ३३ । ६. अनुयायी । अनुचर । दास । उ०—
(क) हरिजन हंस दशा लिए डोलें । निर्मल नाम चुनी चुनि
डोलें ।—कबीर (शब्द०) । (ख) हरि भजुंन की निज जन
जाब । जे गए तहें ब जहाँ ससि मान ।—सूर०, १० ।
४३०६ । (ग) जन मन मंजु मुकर मन हरनी । किए
तिलक गुन मन बस करनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—हरिजन ।

७. समूह । समुदाय । जैसे, गुणजन । ८. भवन । ९. वह
जिसकी जीविका शारीरिक परिश्रम करके दैनिक वेतन लेने से
चलती हो । १०. सात महाव्याहृतियों में से पाँचवीं व्याहृति ।
११. सात लोकों में से पाँचवाँ लोक । पुराणानुसार बौद्ध
लोकों के अंतर्गत ऊपर के सात लोकों में से पाँचवाँ लोक
जिसमें ब्रह्मा के मातृसपुत्र और बड़े बड़े योगीन्द्र रहते हैं ।
१२. एक राजस का नाम । १३. मनुष्य । व्यक्ति ।

जन^२—संज्ञा स्त्री० [क्रा० जन] १. महिला । नारी । २. स्त्री ।
पत्नी । भार्या । उ०—मुसल्ला बिछा उसका जन बानियाज ।
—दक्खिनी०, पृ० २१५

जन^३—वि० [सं० जन्य] उत्पन्न । जनित । जात । उ०—सतसेवा
तुलसी सतर तम हरि पर पद देत । तुरत प्रबिद्या जन दुरित
बर तुल सम करि सेत ।—स० सप्तक, पृ० २५ ।

जनउ^५—संज्ञा पुं० [हि० जनेउ] दे० 'जनेऊ' । उ०—फोट चाट
जनउ तोड ।—कीर्ति०, पृ० ४४ ।

जनक^१—वि० [सं०] पैदा करनेवाला । जन्मदाता । उत्पादक ।

जनक^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिता । बाप । २. मियिला के एक
राजवंश की उपाधि ।

विशेष—ये लोग अपने पूर्वज निमि विदेह के नाम पर विदेह भी
कहलाते थे । सीता जी इस कुल में उत्पन्न सीरध्वज की पुत्री
थीं । इस कुल में बड़े बड़े ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न हुए हैं जिनकी
कथाएँ ब्राह्मणों, उपनिषदों, महाभारत और पुराणों में भरी
पड़ी हैं ।

३. सीता जी के पिता सीरध्वज का नाम ।

यौ०—जनकतनया = सीता । जनक की पुत्री । उ०—तात जनक-
तनया यह सोई ।—मानस, १।३३१ । जनकनन्दिनी । जनक-
दुलारी । जनकपुर । जनकसुता = दे० जनकात्मजा । उ०—
जनकसुता जगज्जननि जानकी ।—मानस, १।१८ ।

४. संवरासुर का चौथा पुत्र । ५. एक वृक्ष का नाम ।

जनकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पन्न करने का भाव या काम । २.
उत्पन्न करने की शक्ति ।

जनकदुलारी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जनक + हि० दुलारी] सीता ।
जानकी ।

जनकनन्दिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जनकनन्दिनी] सीता । जानकी ।
उ०—जनकनन्दिनी जनकपुर जब से प्रगटी आई । तब ते सब
सुख संपदा अधिक अधिक अधिकाइ ।—तुलसी प्र०, पृ० ८३ ।

जनकपुर—संज्ञा पुं० [सं०] मिथिला की प्राचीन राजधानी ।

विशेष—इसका स्थान धाजकल लोग नेपाल की तराई में बतलाते हैं । यह हिंदुओं का प्रधान तीर्थ है और हिंदू यात्री प्रति वर्ष वहाँ दर्शन के लिये जाते हैं ।

जनकात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता । जानकी (को०) ।

जनकारी—संज्ञा पुं० [सं० जनकारिन्] लाल का बना हुआ रंग । धानलक ।

जनकौर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जनक + कौरा (प्रत्य०)] १. जनक का स्थान । जनक नगर । उ०—बाजहि डोल निसाव सगुन सुभ पाइन्हि । सिय नेहरु जनकौर नगर नियराइन्हि ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६ । २. जनक राजा के वंशज या संबंधी । उ०—कोसलपति गति सुनि जनकौरा । मे सब लोक लोक बस बीरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

जनक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] महामारी । शोकनाश (को०) ।

जनखर्दो—संज्ञा पुं० [फा० जनख + दौ] ठोड़ी । चिबुक । उ०—जनखर्दो में तेरे मुँह बाहे कमजम का असर बिसता ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६ ।

जनखा—वि० [फा० जनख + या जनानह] १. जिसके हाव भाव आदि औरतों के से हों । २. होबड़ा । नपुंसक ।

जनगणना—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + गणना] महुँ मणुमारी । जनसंख्या की गिनती ।

जनगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मछली ।

जनघरा—संज्ञा पुं० [सं० जन + गृह] मंडप ।—(हिं०) :

जनचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० जनचक्षुस्] सूर्य ।

जनचर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोकवाद । सर्वसाधारण में फैली हुई बात ।

जनजल्पना—संज्ञा पुं० [सं० जनजल्पना] लोकचर्चा । झगड़ाह (को०) ।

जनजागरण—संज्ञा पुं० [सं० जन + जागरण] जनसमुदाय में स्वहित की दृष्टि से चेतना उत्पन्न होना ।

जनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जनन का भाव । २. जनसमूह । सर्वसाधारण ।

यौ०—जनता जनार्दन = जनसमूह रूपी ईश्वर । लोककपी ईश्वर ।

जनतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० जन + तन्त्र] जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का शासन । लोकतंत्र । प्रजातंत्र ।

यौ०—जनतंत्रवादी = लोकतंत्र को माननेवाला ।

जनसांख्यिक—वि० [सं० जन + सांख्यिक] जनतंत्र संबंधी । उ०—विजित हो रहा सांख्यिक मानव । निखर रहा जनसांख्यिक मानव ।—अणिमा, पृ० १२० ।

जनत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाता या इसी प्रकार की और कोई चीज जिससे धूप और वृष्टि से रक्षा हो ।

जनत्राता—संज्ञा पुं० [सं० जन + त्राता] सेवक की रक्षा करनेवाला । लोक का रक्षक । उ०—मह बन गएउ भलन जनत्राता ।—मानस, ७।११० ।

जनयोरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ककड़बेल । बेंदाल ।

जनजाति—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + जाति] जंगलों और पर्वतीय क्षेत्रों में रहनेवाली जाति या वर्ग ।

जनधन—संज्ञा पुं० [सं० जनधन] १. मनुष्य और संपत्ति । २. सार्वजनिक धन ।

जनधा—संज्ञा पुं० [सं०] धनि । धाम ।

जनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्पत्ति । उद्भव । २. जन्म । ३. प्राविर्भाव । ४. तंत्र के अनुसार मंत्रों के दस संस्कारों में से पहला संस्कार जिसमें मंत्रों का मानिका वर्णों से उद्धार किया जाता है । ५. यज्ञ आदि में दीक्षित व्यक्ति का एक संस्कार जिसके उपरांत उसका दीक्षित रूप में फिर से जन्म ग्रहण करना माना जाता है । ६. वंश । कुल । ७. पिता । ८. परमेश्वर ।

जनना—क्रि० प्र० [सं० जनन (= जन्म)] संतान को जन्म देना । प्रसव करना । उ०—(क) जनत पुत्र नभ बजे नगारा । तदपि जननि कर सोच अपारा ।—कबीर (शब्द०) । (ख) रंम संभ जंघन द्रुति ऐलत नशत जनम जग माही ।—रघुराज (शब्द०)

जननाशौच—संज्ञा पुं० [सं० जनन + अशौच] वह अशौच जो घर में किसी का जन्म होने के कारण लगता है । वृद्धि ।

जननि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जननि] दे० 'जननी' । समुक्ति महेस समाज सब, जननि जनक मुसुकाहि ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) हौं इहाँ तेरे ही कारण आयी । तेरी सौं सुनि जननि जसोदा मोहि गोपाल पठायी ।—सूर०, १०।४७८ ।

जननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पन्न करनेवाली । २. माता । माँ । उ०—(क) जननी जनकादि हितू भए भूरि बहोरि भई उर की जरनी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) करनी करुनासिंधु की मुख कहत न धावै । कपट हेत परसै बकी जननी गति पावै ।—सूर०, १।४ । ३. जूही का पेड़ । ४. कुटकी । ५. मजीठ । ६. जटामांसी । ७. अलता । ८. पपड़ी । पपरिका । ९. चमगावड़ । १०. दया । कृपा । ११. जनो नाम का गंधद्रव्य ।

जननेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० जनन + इन्द्रिय] १. वह इंद्रिय जिससे प्राणियों की उत्पत्ति होती है । भग । योगि । २. उपस्थ (को०) ।

जनपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. देश । २. सर्वसाधारण । निवासी । देववासी । प्रजा । लोक । ज्ञान । उ०—ज्यों हुलास रनिवाँस नरेशहि त्यों जनपद रखवासी ।—तुलसी (शब्द०) । ३. राज्य । ४. प्रांतीय क्षेत्र । ५. मनुष्य जाति (को०) ।

जनपदकल्याणी—संज्ञा स्त्री० [सं० जनपद + कल्याणी] गणतंत्र की सामान्य (जनभोग्या) विशिष्ट गणिका ।

जनपदी—संज्ञा पुं० [सं० जनपदिन्] देश, समाज, क्षेत्र का शासक (को०) ।

जनपदीय—वि० [सं०] जनपद का । जनपद संबंधी ।

जनपाल, जनपालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्यों का पोषण करनेवाला । सेवक या अनुचर का पालन करनेवाला ।

जनप्रवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोकप्रवाद । लोकनिदा । २. जनरव । झगड़ाह । किवंदंती ।

जनप्रिय^१—वि० [सं०] सबसे प्रेम रखनेवाला। सर्वप्रिय। सबका प्यारा।
जनप्रिय^२—संज्ञा पुं० १. बान्धव। बनिया। २. शोभाजन वृक्ष।
सहजन का पेड़। ३. महादेव। शिव।

जनप्रियता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सबके प्रिय होने का भाव। सर्वप्रियता।
लोकप्रियता।

जनप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुलहुल का साथ।

जनवगुल—संज्ञा पुं० [हि० जन + वगुल] एक प्रकार का वगुल।

जनम—संज्ञा पुं० [सं० जन्म] १. उत्पत्ति। जन्म। दे० 'जन्म'। उ०—
बहु विधि राम शिवहि समुझावा। पारवती कर जनम सुनावा।
—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—धारणा।—पाना।—लेना।—होना।

यौ०—जनमघूँटी। जनमपत्नी। जनमपत्नी।

१. जीवन। जिवनी। प्रायु। उ०—(क) होय न विषय बिराग,
भवन बसत या चोषण। हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ
हरि भगति बिनु।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तुलसीदास
मोको बड़ी सोच है तू जनम कवन बिधि जरि है।—तुलसी
(शब्द०)।

मुहा०—जनम गंवाना = व्यर्थ जनम या समय नष्ट करना।
जनम बिगड़ना = धर्म नष्ट होना। जनम करम के छोड़े =
जन्मना और कर्मणा उभय प्रकार से हीन। उ०—ऐसे जनम
करम के छोड़े, छोड़न हैं व्योहारत।—सूर०, १।२२। जनम
भरना = जीवन बिताना। उ०—नैहर जनमु भरब बर
जाई। जियत न करब सवति सेवकाई।—मानस, २।२१।
जनम भर जलना = प्राजीवन दुःख भोगना। उ०—वह
घनपढ़, गंवार, मूकट्ट, लोह लट्ट के पाले पढ़कर जनम भर
जला करे।—ठेठ०, पु० १०। जनम हारना = प्राजीवन
किसी की सेवा के लिये संकल्प धारण करना। उ०—घब
में जनम संभु सँ हारा।—मानस, १।८१।

जनमघूँटी—संज्ञा स्त्री० [हि० जनम + घूँटी] वह घूँटी जो बच्चों की
जन्मते समय से दो तीन वर्ष तक दी जाती है।

मुहा०—(किसी बात का) जनमघूँटी में पड़ना = जन्म से ही
(किसी बात की) भाव पड़ना। (किसी बात का) इतना
अभ्यस्त हो जाना कि उससे पीछा न छूट सके। जैसे,—भूट
बोलना तो इनकी जनमघूँटी में पड़ा है।

जनमजला—वि० [हि० जनम + जलना] [वि० स्त्री० जनमजली]
दुर्भाग्यग्रस्त। भाग्यहीन। धमना।

जनमत—संज्ञा पुं० [सं० जन + मत] सर्वसाधारण जनता की राय।
लोकमत। उ०—जनमत राजा को निकाल सकता था।—
प्रा० भा० प०, पु० १८६।

यौ०—जनमत संग्रह = जनता की राय का संकलन। लोकमत का
संकलन जिससे लोक की राय जानी जाय। उ०—जनमत
संग्रह के पूर्व सब दलों को अपने अपने मत के प्रचार का
अधिकार होगा।—भारतीय०, पु० २२६।

जनमदिन—संज्ञा पुं० [हि० जनम + दिन] दे० 'जन्मदिन'।

जनमधरतो—संज्ञा स्त्री० [हि० जनम + धरती] दे० 'जन्मभूमि'।

जनमना^१—क्रि० प्र० [सं० जन्म] १. पैदा होना। उत्पन्न होना।
जन्म लेना। उ०—(क) जे जनमे कलिकाल कराला।—
मानस, १।१२। (ख) के जनमत मरि गई एक दासी
घरवारी।—हम्मीर०, पु० ४५। २. चौसर आदि खेलों में
किसी नई या मरी हुई गोटी का, उन खेलों के नियमानुसार
खेले जाने के योग्य होना।

जनमना^२—क्रि० प्र० [सं० जन्म या हि० जनमाना] जन्म देना।
उत्पन्न करना। उ०—कैकय सुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत
जनमत भे छोऊ।—मानस, १।१६५।

जनमपत्नी—संज्ञा स्त्री० [हि० जनम + पत्नी] चाय कुतियों की बोलचाल
की भाषा में चाय की वह छोटी पत्नी या फुनगी जो पहले
पहल निकलती है।

जनमपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्मपत्नी] दे० 'जन्मपत्नी'।

जनमरक—संज्ञा पुं० [सं०] वह बीमारी जिससे थोड़े समय में बहुत
से लोग मर जायें। महामारी।

जनमर्यादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लौकिक आचार या रीति।

जनमसंगी—वि० [हि०] [वि० स्त्री० जनमसंगिनी] जिसका साथ
जनम भर रहे (पति या पत्नी)।

जनमसँघाती^①—संज्ञा पुं० [हि० जनम + संघाती] वह जिसका
साथ जन्म से ही हो। बहुत दिनों से साथ रहनेवाला मित्र।
२. वह जिसका साथ जन्म भर रहे।

जनमाना—क्रि० प्र० [हि० जनम] १. जनमने का काम कराना।
प्रमव कराना। २. दे० 'जनमना'।

जनमु^②—संज्ञा पुं० [सं० जन्म, हि० जनम] दे० 'जन्म'। उ०—
राम काज लागि जनमु जग, सुनि हरषे हनुमान।—तुलसी
ग्रं०, पृ० ८६।

जनमुरीद—वि० [फा० जन + मुरीद] पत्नीपरायण। पत्नीमत्त। जोरु
का गुलाम। उ०—पत्नी की सी कहता हूँ तो जनमुरीद की
उपाधि मिलती है।—मान०, भा० १, पृ० १५४।

जनमेजय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जन्मेजय'।

जनयिता^१—वि० [सं० जनयितृ] वि० स्त्री० जनयित्री] जन्मदाता। पैदा
करनेवाला।

जनयिता^२—संज्ञा पुं० पिता। बाप।

जनयित्री^१—वि० [सं०] जन्म देनेवाली। उ०—शीतलता, सरलता
महनी। द्विजपद प्रीति धरम जनयित्री।—मानस, ७।३६।

जनयित्री^२—संज्ञा स्त्री० माता। माँ।

जनयिष्णु—वि० [सं०] जन्मकर्ता। उत्पादक [की०]।

जनरंजन—वि० [सं० जन + रंजन] मनुष्यों को या सेवकों को सुख
पहुँचानेवाला [की०]।

जनरल^१—संज्ञा पुं० [अंग०] फौजों का एक बड़ा अधिकार जिसके
अधिकार में कई रेजिमेंट होती है। अंग्रेजी सेना का सेनापति
या सेनानायक।

जनरल^२—वि० साधारण। आम। जैसे, इंस्पेक्टर जनरल।

जनरल—संज्ञा पुं० [सं०] १. किबंदती। जनश्रुति। अफवाह। २.

लोकनिवा । बदनामी । ३. बहुत से लोगों का कोलाहल । हल्ला । शोरगुल ।

जनलोक—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर के सतलोकों में से पाँचवाँ लोक । दे० 'जन' ११ ।

जनवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जनुवरी] ग्रिगेरी साल का पहला महीना जो इकतीस दिनों का होता है ।

जनवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रिय रोहित का पेड़ । सफेद रोहिड़ा । २. जनप्रिय । लोकप्रिय ।

जनवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जनाना] दे० 'जवाई'-२ ।

जनवाह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जनव' ।

जनधाना^१—क्रि० स० [हि० जनना] जनने का प्रेरणार्थक रूप । प्रसव कराना । लड़का पैदा कराना ।

जनधाना^२—क्रि० स० [हि० जानना] समाचार दिलवाना । किसी दूसरे के द्वारा सूचित कराना ।

जनवास—संज्ञा पुं० [सं० जग्य + वास] १. सर्वसाधारण के ठहरने या ठिकने का स्थान । लोगों के निवास का स्थान । २. बरातियों के ठहरने का स्थान । वह जगह जहाँ कन्या पक्ष की ओर से बरातियों के ठहरने का प्रबंध हो । उ०—(क) सकल सुपास जहाँ दीन्हो जनवास तहाँ कीन्हो सम्मान दे हुलास र्यों समाज को ।—कबीर (शब्द०) । (ख) दीन्ह जाय जनवास सुपास किए सब । घर घर बालक बात कहन लागे सब ।—तुलसी (शब्द०) । ३. सभा । समाज ।

जनवासना—क्रि० स० [सं० जनवास + ना (प्रत्य०)] आगत जन को ठहरने या बैठने का स्थान देना । उ०—तोरन सुचारु आचार करि कै जनवासत मंडपहि ।—पु० रा०, ७।१७७ ।

जनवासा—संज्ञा पुं० [सं० जग्यवास] दे० 'जनवास'-२ । उ०—अति सुंदर बीन्हेड जनवामा । जहाँ सब कहूँ सब भाँति सुपासा ।—मानस, १।३०६ ।

जनव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] लोकप्रसिद्ध या लोक में प्रचलित चलन या रीति रिवाज [को०] ।

जनशून्य—वि० [सं०] जनहीन । निर्जन । सुनसान ।

जनश्रुत—वि० [सं०] प्रसिद्ध । विख्यात । मशहूर ।

जनश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह खबर जो बहुत से ओषों में फैली हुई हो पर जिसके सच्चे या झूठे होने का कोई निर्णय न हुआ हो । अफवाह । किंवदंती ।

क्रि० प्र०—उठना ।—फँसना

जनसंख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + संख्या] किसी स्थानविशेष पर बसने या रहनेवाले लोगों की गिनती । आबादी । जैसे,—(क) काशी की जनसंख्या दो लाख के लगभग है । (ख) कलकत्ते की जनसंख्या में बंबई की अपेक्षा इस बार कम वृद्धि हुई है ।

जनसंबाध—वि० [सं०] सबन बसा हुआ [को०] ।

जनसमूह—संज्ञा पुं० [सं० जन + समूह] सर्वसाधारण मनुष्यों का समुदाय । आम जनता का मजमा ।

जनसाधारण—संज्ञा पुं० [हि०] सामान्य जन । आम जनता ।

जनसेवक—वि० [सं० जन + सेवक] जनता की सेवा करनेवाला । जनता का हित । जनसेवा ।

जनसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + सेवा] सर्वसाधारण जनता के हित का काम ।

जनसेवी—वि० [सं० जन + सेविन्] दे० 'जनसेवक' ।

जनस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] दंडकारण्य । दंडकवन ।

जनहरण—संज्ञा पुं० [सं०] एक दंडक वृक्ष का नाम ।

विशेष—यह मुक्तक का दूसरा भेद है और इसके प्रत्येक खरण में तीस लघु और गुरु होता है । जैसे,—लघु सब गुरु एक तिसर न मन घर भजु नर प्रभु प्रघ जन हरण ।

जनहित—संज्ञा पुं० [सं० जन + हित] लोकोपकारी कार्य । लोक-कल्याण । उ०—कान कियो जनहित जदुराई ।—सूर०, १।६ ।

जनहीन—वि० [सं० जन + हीन] निर्जन । बिजन । जनशून्य ।

जनांत—संज्ञा पुं० [सं० जनान्त] १. वह प्रदेश जिसकी सीमा निश्चित हो । २. यम । ३. वह स्थान जहाँ मनुष्य न रहते हों ।

जनांत^२—वि० मनुष्यों का नाश करनेवाला ।

जनांतिक—संज्ञा पुं० [सं० जनान्तिक] १. दो प्राद्वियों में परस्पर वह सांकेतिक बातचीत जिसे और उपस्थित लोग न समझ सकें ।

विशेष—इसका व्यवहार बहुधा नाटकों में होता है ।

२. व्यक्ति का सामीप्य ।

जना^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पत्ति । पैदाइश । २. महिम्नती के राजा नीलध्वज की स्त्री का नाम । जैमिनी ।

विशेष—भारत के अनुसार पांडवों के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़नेवाला प्रवीर इसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । उस घोड़े के लिये प्रवीर और पांडवों में जो युद्ध हुआ था उसमें इसने (जैमिनी ने) अपने पुत्र को बहुत सहायता और उत्तेजना दी थी । जब युद्ध में प्रवीर मारा गया तब यह स्वयं युद्ध करने लगी । श्रीकृष्ण को इससे पांडवों की रक्षा करने में बहुत कठिनाता हुई थी ।

जना^२—संज्ञा पुं० [सं० जिना] दे० 'जिना' ।

जना^३—वि० [सं० जग्य] [वि० स्त्री० जनी] उत्पन्न किया हुआ । जन्माया हुआ ।

जना^४—संज्ञा पुं० [सं० जनी (= माता) का हि०पुं० रूप] उत्पन्न करनेवाला पिता । उ०—एकै जनी जना संसारा । कोव ज्ञान से भयउ ग्यारा ।—कबीर जी०, पु० १३ ।

जनाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जनना] १. जनावेवाजी । दाई । २. जनाने की उज्जल । पैदा कराई का हक या भेज । दाई की मजदूरी ।

जनाडा^५—संज्ञा पुं० [हि० जनाव] दे० 'जनाव' । उ०—अवध-नाथ चाहत जजब, भीतर करहु जवाड । भई प्रेम बस सचिव सुनि, विप्र सनासह राख ।—दुखसी (शब्द०) ।

जनाकर—वि० [सं० जन + आकर] मनुष्यों से भरा हुआ ।
जनाकीर्ण । उ०—ग्राम नहीं वे ग्राम आज भी नगर न नगर
जनाकर । ग्राम्या, पृ० ११ ।

जनाकार—वि० [प्र० जिनह् + फा० कार] बुरा काम करनेवाला ।
व्यभिचारी । उ०—कही मजमा है मर्दोजन जनाकार ।
—कबीर म०, नृ० ४७ ।

जनाकीर्ण—वि० [सं०] सघन आबादीवाला । आदमियों से भरा
हुआ । जनाकर । उ०—हबड़ा के जनाकीर्ण स्थान में उन
दोनों ने अपने को ऐसा छिपा लिया, जैसे मधुमक्खियों के
छत्ते में कोई मक्खी ।—तितली, पृ० २१६ ।

जनाचार—संज्ञा पुं० [सं०] देश या समाज आदि की प्रचलित
रीति । लोकाचार ।

जनाजा—संज्ञा पुं० [प्र० जनाजह्] १. मृतक शरीर । मुर्दा । शव ।
लाश । उ०—छुदी खूब की खोइ जनाजा जियतै करना ।—
पलटू, पृ० १४ । २. धरती या वह मंदूक जिसमें लाश को
रखकर गाड़ने, जलाने या और किसी प्रकार की अंतिम
क्रिया करने के लिये ले जाते हैं । उ०—छुटेंगे जीस्त के
फंदे से कौन दिन आतिश । जनाजा होगा कब अपना रवाँ नहीं
मायूम ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ३८१ ।

क्रि० प्र०—उठना । निकलना ।—रवाँ होना ।

जनातिग—वि० [सं०] प्रमाधारण । प्रसामाग्य । लोकोत्तर [को०] ।

जनाधिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । २. राजा ।

जनाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा । नरेश । २. विष्णु का एक
नाम [को०] ।

जनाती—संज्ञा पुं० [अथवा हि० जन (= यज्ञ = विवाह) + आती
(= पत्नी के)] कन्या पक्ष के लोग । धरती ।

जनानखाना—संज्ञा पुं० [प्र० जनान + फा० खानह्] घर का वह भाग
जिसमें स्त्रियाँ रहती हैं । स्त्रियों के रहने का घर । अंतःपुर
उ०—अब उन्हीं की संतान, जनानखानों में पतली छड़ी लिए
अंग्रेजी पूता की ऐंड़ी खटखटाते कुत्तों से मुकवाते ऐंठे चले जा
रहे हैं ।—प्रेमघन०, पृ० ७६ ।

जनाना^१—क्रि० प्र० [हि० जानना का प्रे० रूप] मातूम कराना ।
जताना । उ०—सोइ जानइ जेहिदेहु जनाई । जानत सुम्हहि
सुम्हइ होइ जाई ।—मानस, २।१२७ ।

संयो० क्रि०—देना ।—रखना ।

जनाना^२—क्रि० प्र० [हि० जनना का प्रेरणार्थक रूप] उत्पन्न
कराना । जनन का काम कराना ।

संयो० क्रि०—देना ।

जनाना^३—वि० [फा० जनानह्] [वि० स्त्री० जनानी] १. स्त्रियों का
स्त्री संबंधी । जैसे, जनाना काम, जनानी मूरत, जनानी
बोली । २. नामर्द । नपुंसक । होजड़ा । ३. निर्बल । डरपोक ।
४. धीरत । स्त्री । पत्नी ।

जनाना^४—संज्ञा पुं० १. जनता । मेहरा । २. अंतःपुर । जनानखाना ।

मुहा०—जनाना करना = पर्दा करना । स्थान को पर्देवाली स्त्रियों
के आने जाने योग्य करना ।

जनानापन—संज्ञा पुं० [फा० जनानह् + पन (प्रत्य०)] मेहरापन ।
स्त्रीत्व ।

जनानी—वि० स्त्री० [फा० जनानह्] दे० 'जनाना'^३ ।

जनाब—संज्ञा पुं० [प्र०] [स्त्री० जनाबा] १. बड़ों के लिये आदर सूचक
शब्द । महाशय । महोदय । जैसे, जनाब मोलवी साहब ।
२. पार्ष्व । पहलू (को०) । ३. आश्रम (को०) । ४. चौखट ।
देहली । इयोड़ी । ५. उपस्थिति । मौजूदगी (को०) ।

जनाबआली—संज्ञा पुं० [प्र०] मान्यवर । महोदय । प्रतिष्ठित
पुरुषों के लिये आदरसूचक संबोधन ।

जनार्दन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. शालग्राम की बटिया का
का एक भेद । ३. कृष्ण (को०) ।

जनार्दन—वि० लोगों को कष्ट पहुँचानेवाला । दुःखदायी ।

जनाब—संज्ञा पुं० [हि० जनाना] जनाने की क्रिया । सूचना । इतिला ।
उ०—चलत न काटुहि कियी जनाब । हरि प्यारी सो बाढ़यो
भाव । रास रसिक गुण गाइ हो ।—सूर (शब्द०) ।

जनाबना—क्रि० प्र० [हि० जनाना] सूचित करना । विदित
करना । जताना । जापित करना । उ०—तार्ते आप आगे
कहा जनावनो ? जो कोई न जानतो होइ तार्को जनाइए ।
दो—सो बावन०, भा० १, पृ० २३१ ।

जनाबर^१—संज्ञा पुं० [हि० जानवर] दे० 'जानवर' । उ०—घास
में कोई जनावर न रहन पावे ।—दो सो बावन०, भा०
१, पृ० २१० ।

जनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेड़िया । २. मनुष्यभक्षक । वह जो
आदमियों को खाता हो । ३. आदमियों को खाने का काम ।

जनाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] ठहरने का स्थान । धर्मशाला ।
मराय [को०] ।

जनाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्मशाला या सराय आदि जहाँ
यात्री ठहरते हैं । २. वह मकान या मंडप आदि जो किसी
विशेष कार्य या समय के लिये बनाया जाय । ३. साधारण
घर । मकान ।

जनि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पत्ति । जन्म । पैदाइश । २. जिससे
कोई उत्पन्न हो । नारी । स्त्री । ३. माता । ४. जनी नामक
गंधद्रव्य । ५. पुत्रवधू । पतोह । ६. भार्या । पत्नी । ७.
जनुका । ८. जन्मभूमि ।

जनि^२—क्रि० प्र० [हि० जानना] जानु । मानो । उ०—पीन पयोधर
अपरुष सुंदर ऊपर मोतिन हार । जनि कनकाचल उपर
विमल जल दुड बह सुरसरि धार ।—विद्यापति, पृ० ३६ ।

जनि^३—अव्य० [हि०] मत । नहीं । न (निषेधार्थक) ।
उ०—जनि लेहु मातु कलंक करना परिहरहु अवसर नहीं ।
—मानस, १।६७ ।

जनि^४—सर्व० [हि०] दे० 'जिस' । उ०—जनि का जन्म होइत हम
गैसहुँ ऐसहुँ तनिकर अंते ।—विद्यापति, पृ० २५२ ।

जनिक—वि० [सं०] उत्पन्न करनेवाला । जन्म देनेवाला [को०] ।

जनिका^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जनाना] पहेली । मुश्किल । बुझीबल ।

जनिका^२—वि० [सं०] दे० 'जनि' [को०] ।

जनित—वि० [सं०] १. उत्पन्न । जन्मा हुआ । उपजा हुआ ।
२. उत्पन्न किया हुआ ।

जनिता^१—संज्ञा पुं० [सं० जनितृ] पैदा करनेवाला । उत्पन्न करनेवाला । पिता ।

जनिता^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जनितृ] उत्पन्न करनेवाली । माता । प्रसूति । उ०—उद्दित प्रधान सुभ गातनह, जेम जलधि पुनिम बढ़हि । हुलसंत होय जे प्रीय त्रिय, जिम सु जोति जनिता बढ़हि ।—पृ० रा०, १ । १८४ ।

जनित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मस्थान । जन्मभूमि । २. मूल । आधार (को०) ।

जनित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पन्न करनेवाली । माता । माँ ।

जनित्व—संज्ञा पुं० [सं०] पिता (को०) ।

जनित्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता (को०) ।

जनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जनिमन्] १. उत्पत्ति । जन्म । २. संतान । संतति (को०) ।

जनिनीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का बड़ा पेड़ ।

जनियाँ^(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० जानि] प्रियतमा । प्राणुप्यारी । प्रिया । प्रेयसी ।

जनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जन] १. दासी । सेविका । अनुचरी । उ०—बाह, जनी, नाइन, नटी प्रगट परोसिनि नारि ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ६८ । २. स्त्री । ३. उदर करनेवाली । माता । ४. जन्माई हुई । कन्या । लड़की । पुत्री । उ०—प्यारी छवि की रासि बनी । जाहि विलोकि निमेष न लागत श्री वृषभानु जनी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५ ।

जनी^२—वि० स्त्री० उत्पन्न की हुई । पैदा की हुई । जनमाई हुई ।

जनी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० जननी] एक प्रकार की ओषधि जिसे पपंटी या पानड़ी भी कहते हैं ।

विशेष—यह शीतल, वर्णकारक, कसैली, कड़वी, हलकी, अग्नि-दीपक, रुचिकारक तथा रक्त, पित्त, कफ, रुधिरविकार, कोढ़, दाह, वमन, तृषा, विष, खुजली और त्रण का नाश करनेवाली कही गई है ।

जनीयर—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

जनु^१—क्रि० वि० [हि० जानना] [अन्य रूप-जनि, जनुक, जनु, जानो आदि] मानो । उ०—(क) छुटत गिलोला हृथ्य ते पारत छोट पयल्ल । कमलनयन जनु कामिनी करत कटाछ छयल्ल ।—पृ० रा०, १।७२८ । (ख) कामकंदला भई वियोगिनि । दुर्बल जनु वस की रोगिनि ।—माधवानल०, पृ० २०३ ।

जनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म । उत्पत्ति ।

जनुक—क्रि० वि० [हि० जनु + क (प्रत्य०)] जैसे । मानो ।

जनु^(७)—संज्ञा पुं० [जनुन] पागलपन । उन्माद । उ०—इतना एहसाँ और कर लिखाहु ए दस्ते जनु ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २४६ ।

जनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पत्ति । जन्म (को०) ।

जनुन—पुं० [सं० जनुन] [वि० जनुनी] पागलपन । सनक । उन्माद । लब्ध (को०) ।

जनुनी—वि० [सं० जनुनी] पागल । उन्मादी (को०) ।

जनुब—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जनुबी] दक्षिण । दक्षिण (को०) ।

जनुबी—वि० [सं०] दक्षिण संबधी । दक्षिणी । दक्षिण का (को०) ।

जनेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० जनेन्द्र] राजा ।

जने—संज्ञा पुं० [सं० जन्] व्यक्ति । आदमी । प्राणी । उ०—हममें दो जने का साभा तो निभता ही नहीं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८२ ।

यौ०—जने जने । जैसे, नाऊ की बरात में जने जने ठाकुर ।

जनेऊ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञोपवीत, प्रा० जन्मोवईय, अथवा सं० जन्म] यज्ञोपवीत । ब्रह्मसूत्र । उ०—वामन को जन्म जनेऊ मेलि जानि बूझि, जीभ ही बिगारिबे को याच्यो जन जन में ।—प्रकबरी०, पृ० ११५ ।

मुहा०—जनेऊ का हाथ = पटेबाजी या तलवार का एक हाथ जिसमें प्रतिद्वंद्वी की छाती पर ऐसा आघात लगाया जाता है जैसे जनेऊ पड़ा रहता है । इसे जनेव या जनेवा का हाथ भी कहते हैं ।

२ यज्ञोपवीत संस्कार । उ०—छोन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ।—मानस, १।२०४ ।

जनेत—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + हि० एत (प्रत्य०)] बरयात्रा । बरात । उ०—बीच बीच बर बास करि, मग लोगन सुख देत । अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आय जनेत ।—तुलसी (शब्द०) ।

जनेता—संज्ञा पुं० [सं० जनयिता या जनिता] पिता । बाप ।—(हि०) ।

जनेरा—संज्ञा पुं० [हि० जुमार] एक प्रकार का बाजरा जिसके पेड़ बहुत लंबे होते हैं । इसमें बाले भी बहुत लंबी आती हैं । जोन्हरी ।

जनेव—संज्ञा पुं० [हि० जनेऊ] दे० 'जनेऊ' ।

जनेवा—संज्ञा पुं० [हि० जनेऊ] १. लकड़ी आदि में बनाई या पड़ी हुई लकीर या घाँरी । २. एक प्रकार की ऊँची घास जिसे घोड़े बहुत प्रसन्नता से खाते हैं । ३. बाएँ कंधे से दाहिनी कमर तक शरीर का वह भ्रंश जिसपर जनेऊ रहता है । ४. तलवार या खार्चि का वह भाग जो जनेऊ की तरह काट करे । दे० मु० 'जनेऊ का हाथ' ।

जनेश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा । नरेश । भूपति ।

जनेष्ट—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जनेष्टा] जनप्रिय । लोकप्रिय (को०) ।

जनेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हल्दी । २. चमेली का पेड़ । ३. पपड़ी । पपंटी । ४. वृद्धि नाम की ओषधि ।

जनेस^(७)—संज्ञा पुं० [सं० जनेश] दे० 'जनेश' । उ०—गोतम की तीय तारी मेटे अघ भूरि भारी, लोचन अतिथि भए जनक जनेस के ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६० ।

जनैया—वि० [हि० जानना + ऐया (प्रत्य०)] जाननेवाला । जानकार । उ०—(क) बदले की बदली से जाहू । उनकी एक हमारी दे तुम बड़े जनैया आहू ।—सूर०, १०।४००१ ।

(क) तृण के सयान बनधाम राज त्याग करि पास्यो पितु
बचन जो जागत जवैया है।—पपाकर (शब्द०) (ग) जो
भायसु छब होइ स्वामिबी ल्यावहुं चाहि बेवाई। योगी बाबा
बड़ो जनैया छले हुँवर छुखवाई।—रघुराज (शब्द०)।

जनो^१—संज्ञा पुं० [हि० जनैठ] दे० 'जनेठ'।

जनो^२—क्रि० वि० [हि० जानना] मानो। बोया। उ०—(क)
तैही जनो पतिदेवत के गुन बौरि सबै गुनबौरि पढ़ाई।—
मति० प्र०, पृ० २७५ (क) कुंकुम मंडित प्रिया वदन जनो
रंजित नायक।—नंद० प्र०, पृ० ३६।

जनोपयोगी—वि० [सं० जनोपयोगिन्] जनसाधारण के व्यवहार
या उपयोग की।

जनो^३—क्रि० वि० [हि० जानना] मानो। जनो। उ०—(क)
जब भा वेत उठा बैरागा। बाहर जनो सोइ उठि जागा।—
जायसी (शब्द०)। (क) नर तो जनो प्रवृत्त ही पगे।—
नंद० प्र०, पृ० २३२। (ग) उनं तेग कट्टी। जनो बज
टट्टी।—पृ० १०, १०।२०।

जनौघ—संज्ञा पुं० [सं० जन + घोघ] मीड। जनसमूह [को०]।

जन्नत—संज्ञा पुं० [प्र०] १. उद्यान। वाटिका। बाग। २. विहित।
स्वर्ग। देवलोक। उत्तम लोक। उ०—हमको मालूम है
जन्नत की हकीकत लेकिन। दिल के लुश रखने को गालिब
ये जयाल प्रच्छा है।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४७४।
(क) जन्नत से कड़वा दिया गुरु में ही बेचारे आदम को।
—पृ०, पृ० ७३।

जन्नती—वि० [प्र०] १. स्वर्गवासी। स्वर्गीय। २. सदाचारी।
पुण्यात्मा। स्वर्ग के योग्य [को०]।

जन्म—संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्] १. गर्भ में से निकलकर जीवन
भारण करने की क्रिया। उत्पत्ति। पैदाइश।

यौ०—जन्मांध। जन्माष्टमी। जन्मतिथि। जन्मभूमि। जन्मपत्री।
जन्मपञ्ची। जन्मरोगी। जन्मदिनस = जन्मदिन। जन्म-
कुंडली। जन्ममरण। जन्मदाता। जन्मदात्री। जन्मनाम।
जन्मलग्न, आदि।

पर्यो०—जन्। जन। जनि। उद्भव। जनी। प्रभव। भाव।
भव। संभव। जन्। प्रजनन। जाति।

क्रि० प्र०—देना।—धारना।—लेना।

मुहा०—जन्म लेना = उत्पन्न होना। पैदा होना।

२. अस्तित्व प्राप्त करने का काम। आविर्भाव। जैसे,—इस वर्ष
कई नए पत्रों ने जन्म लिया है। ३. जीवन। जिवनी।

मुहा०—जन्म बिगड़ना = बेधम होना। धर्म नष्ट होना। जन्म
बिगाड़ना = (१) अशोभन और अनुचित कामों में लगे रहना।
(२) दे० 'जन्म हारना'। जन्म जन्म = सदा। नित्य।
जन्म जन्मांतर = सदा। प्रत्येक जन्म में। जन्म में धुकना =
वृणापूर्वक धिक्कारना। जन्म हारना = (१) व्यर्थ जन्म
खोना। (२) दूसरे का दास होकर रहना।

४. फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली का वह लग्न जिसमें
कुंडलीवाले जातक का जन्म हुआ हो।

जन्मअष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्माष्टमी] दे० 'जन्माष्टमी'।

जन्मकील—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विशेष—पुराणानुसार विष्णु की उपासना करने से मनुष्य का
मोक्ष हो जाता है और उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।
इसी से विष्णु को जन्मकील कहते हैं।

जन्मकुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्मकुण्डली] ज्योतिष के अनुसार
वह चक्र जिससे किसी के जन्म के समय में ग्रहों की स्थिति
का पता चले।

जन्मकुन्त—संज्ञा पुं० [सं०] पिता। जन्मदाता।

जन्मक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मभूमि। जन्मस्थान [को०]। ; ;

जन्मगत—वि० [सं० जन्म + गत] जन्म से ही प्राप्त। जन्मना प्राप्त
[को०]।

जन्मग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] उत्पत्ति।

जन्मजात—वि० [सं०] जन्म से ही प्राप्त या उत्पन्न।

जन्मतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जन्म की तिथि। जन्मदिन।
२. वर्षगांठ।

जन्मतुष्टा—वि० [हि० जन्म + तुष्टा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री०
जन्मतुष्टी] थोड़े दिनों का पैदा हुआ। नवात्पन्न। दुधमुहूर्त।

जन्मद—वि० [सं०] दे० 'जन्मदाता'।

जन्मदाता—संज्ञा पुं० [सं० जन्मदातृ] [स्त्री० जन्मदात्री] जन्म
देनेवाला। पिता [को०]।

जन्मदात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जननी। माता [को०]।

जन्मनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म समय का नक्षत्र।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार किसी को अपने जन्मनक्षत्र
में यात्रा न करनी चाहिए और हुआमत न बनवानी चाहिए,
उस दिन उसे कुछ दान पुण्य आदि करना चाहिए।

जन्मना^१—क्रि० सं० [सं० जन्म हि० ना (प्रत्य०)] १. जन्म
लेना। जन्म ग्रहण करना। पैदा होना। २. आविर्भूत होना।
अस्तित्व में आना।

जन्मना^२—क्रि० वि० [सं० जन्मन् का करण कारक] जन्म से।
जन्म द्वारा।

जन्मनाम—संज्ञा पुं० [सं० जन्मनामा] जन्म के १२ वें दिन रखा
गया नाम [को०]।

जन्मप—संज्ञा पुं० [सं०] १. फलित ज्योतिष में जन्मलग्न का
स्वामी। २. फलित ज्योतिष में जन्मराशि का स्वामी।

जन्मपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंडली में जन्मराशि का मालिक।
२. जन्मलग्न का स्वामी।

जन्मपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मपत्री। २. जन्म का विवरण।
जीवनचरित्। ३. किसी चीज का आदि से अंत तक
विस्तृत विवरण।

जन्मपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्मपत्री।

जन्मपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पत्र या खर्चा जिसमें किसी की
उत्पत्ति के समय के ग्रहों की स्थिति, उनकी दशा, अंतर्दशा,
आदि और फलित ज्योतिष के अनुसार उनके फल आदि
दिए हों।

जन्मपादप—संज्ञा पुं० [सं०] वंशवृक्ष [को०] ।

जन्मप्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माता । माँ । २. जन्म होने का स्थान ।

जन्मभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्म समय का लग्न । २. जन्म समय का नक्षत्र । ३. जन्म की राशि । ४. जन्मनक्षत्र के सत्रातीय नक्षत्र आदि ।

जन्मभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म की भाषा । मातृभाषा [को०] ।

जन्मभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जिस स्थान पर किसी का जन्म हुआ हो । जन्मस्थान । २. वह देश जहाँ किसी का जन्म हुआ हो ।

जन्मभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] जीव । प्राणी ।

जन्मयोग—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मपत्रिका । जन्मकुंडली [को०] ।

जन्मराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लग्न जिसमें किसी के उत्पन्न होने के समय चंद्रमा उदय हो ।

जन्मरोगी—वि० [सं० जन्मरोगिन्] जन्म से रुग्ण । जन्म से ही रोगग्रस्त [को०] ।

जन्मलग्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जन्मराशि' [को०] ।

जन्मवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० जन्मवर्त्मन्] योनि । भग ।

जन्मविधवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो बचपन में विवाह होने पर विधवा हो गई हो और अपने पति के साथ जिसका संपर्क न हुआ हो । अस्तयोनि विधवा ।

जन्मवृत्तांत—संज्ञा पुं० [सं० जन्म + वृत्तांत] दे० 'जन्मपत्र' ।

जन्मशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म से ही प्राप्त श्रेणियों या कर्तव्यों का परिशोधन [को०] ।

जन्मसिद्ध—वि० [सं० जन्म + सिद्ध] जिसकी प्राप्ति जन्म से ही सिद्ध या मान्य हो । जैसे,—स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है । उ०—बन जन्मसिद्ध गायिका, तन्वि, मेरे स्वर की रागिनी बह्नि ।—अपरा, पृ० १७७ ।

जन्मस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मभूमि । २. माता का गर्भ । ३. कुंडली में वह स्थान जिसमें जन्म समय के ग्रह रहते हैं ।

जन्मांतर—संज्ञा पुं० [सं० जन्मान्तर] दूसरा जन्म । अन्य जन्म । उ०—कारन ताको जानिए सुवि प्रगटी है धाय । जन्मांतर के सखन की जो मन रही समाय ।—शकुंतला, पृ० ८२ ।

यौ०—जन्मांतरबाध = पुनर्जन्म संबंधी विचारधारा ।

जन्मांध—वि० [सं० जन्मान्ध] जन्म का अंधा । जन्म से अंधा ।

जन्मा^१—संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्] वह जिसका जन्म हो । जन्मवाला । जैसे,—द्विजन्मा, शूद्रजन्मा ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार प्रायः समासांत में होता है ।

जन्मा^२—वि० उत्पन्न । जो पैदा हुआ हो ।

जन्माधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का एक नाम । २. जन्मराशि का स्वामी । ३. जन्मलग्न का स्वामी ।

जन्माना—क्रि० सं० [हिं० जन्मना] जन्मने का सकर्मक रूप । उत्पन्न करना । जन्म देना ।

जन्माष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों की कृष्णाष्टमी, जिस दिन भादों रात के समय भगवान् श्रीकृष्णचंद्र का जन्म हुआ था । इस दिन हिंदू व्रत तथा श्रीकृष्ण के जन्म का उत्सव करते हैं ।

विशेष—विष्णुपुराण में लिखा है कि श्रीकृष्णचंद्र का जन्म श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हुआ था । इसका कारण मुख्य चांद्रमास और गौण चांद्रमास का भेद मालुम होता है, क्योंकि जन्माष्टमी किसी वर्ष सौर श्रावण मास में होती है । और किसी वर्ष सौर भाद्रमास में होती है ।

जन्मास्पद—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मभूमि । जन्मस्थान ।

जन्मो^१—संज्ञा पुं० [सं० जन्मिन्] प्राणी । जीव ।

जन्मो^२—वि० जो उत्पन्न हुआ हो ।

जन्मेजय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुशवंशी प्रसिद्ध राजा परीक्षित के पुत्र का नाम ।

विशेष—यह बड़ा प्रतापी राजा था । इसने तक्षक नाग से अपने पिता का बख्शा लिया था और एक अश्वमेध यज्ञ भी किया था । वैशम्पायन ने इसे महाभारत सुनाया था । यह अर्जुन का प्रपितामह और अभिमन्यु का पोता था ।

२. विष्णु । ३. एक प्रसिद्ध नाग का नाम ।

जन्मेश—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मराशि का स्वामी ।

जन्मोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के जन्म के स्मरण का उत्सव तथा नवग्रह, अष्टदिग्बीजों और कुलदेवता आदि का पूजन । वरसगठि । २. जातक के छठे दिन या बारहवें दिन होनेवाला उत्सव या समारोह ।

जन्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जन्या] १. साधारण मनुष्य । जनसाधारण । २. किवंदती । अफगाह । ३. राष्ट्र या किसी देश के वासी । ४. सड़ाई । युद्ध । ५. हाट । बाजार । ६. निंदा । परिवाद । ७. वर । दूल्हा । ८. वर के संबंधी जन । वर पक्ष के लोग । ९. बराती । १०. जामाता । दामाद । ११. पुत्र । बेटा । उ०—अनुल अंबुकुल सा अमल भला कीन है जन्य । अंबुज जिसका जन्य तू धन्य धन्य ध्रुव धन्य ।—साकेत, पृ० २६३ । १२. पिता । १३. महादेव । १४. बेहू । शरीर । १५. जन्म । १६. जाति । १७. जन्म के समय होनेवाला शकुन या अप-शकुन [को०] ।

जन्य—वि० १. जन संबंधी । २. जो उत्पन्न हुआ हो । उद्भूत । ३. किसी जाति, देश, वंश या राष्ट्र से संबंध रखनेवाला । ४. देशिक । राष्ट्रीय । जातीय । ५. साधारण । सामान्य । गंवारा [को०] । ६. (समासांत में) किसी से या किसी के द्वारा उत्पन्न । जैसे, तजजन्य, दुःखजन्य ।

जन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म होने का भाव ।

जन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वधू की सहेली । २. वधू । ३. माता की सखी । ४. प्रीति । स्नेह । ५. सुख । आनंद [को०] ।

जन्त्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. ब्रह्मा । विधाता । ३. प्राणी । जीव । ४. जन्म । उत्पत्ति । ५. हरिवंश के अनुसार चौथे मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम ।

जप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जपतव्य, जपनीय, जपो, जप्य] १. किसी मंत्र या वाक्य का बार बार धीरे धीरे पाठ करना। २. पूजा या संध्या आदि में मंत्र का संख्यापूर्वक पाठ करना।

विशेष—पुराणों में जप तीन प्रकार का माना गया है—मानस, उपांशु और वाचिक। कोई कोई उपांशु और मानस जप के बीच 'जिह्वाजप' नाम का एक चौथा जप भी मानते हैं। ऐसे लोगो का कथन है कि वाचिक जप से दसगुना फल उपांशु में, शतगुना फल जिह्वा जप में और सहस्रगुना फल मानस जप में होता है। मन ही मन मंत्र का ग्रंथ मनन करके उसे धीरे धीरे इस प्रकार उच्चारण करना कि जिह्वा और घोंठ में गति न हो, मानस जप कहलाता है। जिह्वा और घोंठ को हिलाकर मंत्रों के ग्रंथ का विचार करते हुए इस प्रकार उच्चारण करना कि कुछ सुनाई पड़े, उपांशु जप कहलाता है। जिह्वाजप भी उपांशु के ही ग्रंथगत माना जाता है। भद केवल इतना ही है कि जिह्वा जप में जिह्वा हिलती है, पर घोंठ में गति नहीं होती और न उच्चारण ही सुनाई पड़ सकता है। वरुणों का स्पष्ट उच्चारण करना वाचिक जप कहलाता है। जप करने में मंत्र की संख्या का ध्यान रखना पड़ता है, इसलिये जप में माला की भी आवश्यकता होती है।

यौ०—जपमाला। जपयज्ञ। जपस्थान।

३. जपक। जपनेवाला। जैसे, करोंजप।

जपजी—संज्ञा पुं० [हि० जप] सिक्खों का एक पवित्र धर्मग्रंथ, जिसका नित्य पाठ करना वे अपना मुख्य धर्म समझते हैं।

जपतप—संज्ञा पुं० [हि० जप+तप] संध्या, पूजा, जप और पाठ आदि। पूजा पाठ। उ०—जपतप कछु न होइ तेहि काला। है विधि मिलइ कवन विधि बाला।—मानस, १।१३१।

जपत—संज्ञा पुं० [प्र० जप्त] दे० 'जप्त'। उ०—जपत करी बन की लता, जपत करी हुम साज। बुध बसंत को कहत है कहा। जानि ऋतुराज।—स० सप्तक, पृ० ३८२।

जपतव्य—वि० [सं०] दे० 'जपनीय'।

जपता—संज्ञा ली० [सं०] १. जप करने का काम। २. जप करने का भाव।

जपन—संज्ञा पुं० [सं०] जपने का काम। जप।

जपनी—क्रि० सं० [सं० जपन] १. किसी वाक्य या वाक्यांश को बराबर लगातार धीरे धीरे देर तक कहना या दोहराना। उ०—राम राम के जपे ते जाय जिय की जरनि।—तुलसी (शब्द०)। २. किसी मंत्र का संध्या, यज्ञ या पूजा आदि के समय संख्यानुसार धीरे धीरे बार बार उच्चारण करना। ३. खा जाना। जल्दी निगल जाना (बाजारू)।

जपना—क्रि० सं० [सं० यजन] यजन करना। अज्ञ करना। उ०—बहत महामुनि जाग जपो। नीच निसाचर देन दुसह दुख कस तनु ताप तपो।—तुलसी (शब्द०)।

जपनी—संज्ञा ली० [हि० जपना] १. माला। २. वह थैली जिसमें माला रखकर जप किया जाता है। गोमुखी। गुप्ती।

जपनीय—वि० [सं०] जप करने योग्य। जो जपने योग्य हो।

जपमाला—संज्ञा ली० [सं०] वह माला जिसे लेकर लोग जप करते हैं।

विशेष—यह माला संप्रदायानुसार, रुद्राक्ष, कमलाक्ष, पुत्रजीव, स्फटिक, तुलसी आदि के मनकों की होती है। इनमें प्रायः एक सौ आठ, चौवन या अट्ठाईस बाने होते हैं और बीच में जहाँ गाँठ होती है वहाँ एक सुमेरु होता है। हिंदुओं के अतिरिक्त बौद्ध, मुसलमान और ईसाई आदि भी माला से जप करते हैं।

जपयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] जपात्मक यज्ञ। जप। इसके तीन भेद वाचिक, उपांशु और मानसिक है।

विशेष—दे० 'जप-२'।

जपहोम—संज्ञा पुं० [सं०] जप। मंत्र का होमात्मक रूप में जप।

जपा—संज्ञा ली० [सं०] जवा पुष्प। मड़हुल। उ०—को इनकी छबि कहि सके, को इनकी छबि लाल। रोचन तै रोचन कहा, जावक, जपा, गुलाल।—स० सप्तक, पृ० ३८७।

यौ०—जपाकुसुम=मड़हुल का फूल।—अनेकार्थ०, पृ० ४१।

जपालक्त, जपालक—जपाकुसुम सा गहरा लाल महावर।

जपा—संज्ञा पुं० [सं० जप] वह जो जप करता हो। जप करनेवाला व्यक्ति। उ०—मठ मठप चहुँ पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे।—आयसी ग्रं०, पृ० १२।

जपाना—क्रि० सं० [हि० जप या जपना] जपने का प्रेरणार्थक रूप। जप कराना।

जपिया—वि० [हि०] जप करनेवाला।

जपो—संज्ञा पुं० [सं० जपिन् हि० जप + ई (प्रत्य०)] जप करनेवाला। वह जो जप करता हो।

जप्त—संज्ञा पुं० [प्र० जप्त] दे० 'जप्त'।

जप्तव्य—वि० [सं०] जो जपने योग्य हो। जपनीय।

जप्ती—संज्ञा ली० [प्र० जप्ती] दे० 'जप्ती'।

जप्य—वि० [सं०] जपने योग्य। जपनीय।

जप्य—संज्ञा पुं० मंत्र का जप।

जफर—संज्ञा ली० [प्र० जफर] जय। विजय। सफलता। उ०—दो तीन गरातिब वह लश्कर। जंग उससे किए नई पाए जफर।—दक्खिनी०, पृ० २२१।

जफर—संज्ञा पुं० [प्र० जफ] एक विद्या जिससे परोक्ष ज्ञान प्राप्त होता है (को०)।

जफा—संज्ञा ली० [फा० जफा] ग्रन्थाय और ग्रन्थाचारपूर्ण व्यवहार। सख्ती। उ०—गया बहाना भूल जफा में मुर गँवाया।—पलटू०, पृ० २०।

यौ०—जफाकार, जफाकेश, जफाशिशार=ग्रन्थाचारी। ग्रन्थायी। कूर। जालिम।

जफाकश—वि० [फा० जफाकश] १. सहिष्णु। सहनशील। २. मेहनती। परिश्रमी।

जफाकशी—संज्ञा ली० [फा० जफाकशी] सहिष्णु और परिश्रमी स्वभाव का होना (को०)।

जफीर—संज्ञा ली० [प्र० जफीर] दे० 'जफील'।

जफीरी—संज्ञा ली० [प्र० जफीर + फा० ई (प्रत्य०)] १. एक प्रकार की कपास जो मिस्र देश में होती है। २. सीटी (को०)।

जफील—अ० संज्ञा पु० [अ० जफील] १. सीटी का शब्द, विशेषतः उस सीटी का शब्द जो कबूतरबाज कबूतर उड़ाने के समय मुँह में धो उँगलियाँ रखकर बजाते हैं। २. वह जिससे सीटी बजाई जाय। सीटी।

क्रि० प्र०—बजाना।—देना।

जफीलना—क्रि० प्र० [हि० जफील] सीटी बजाना। सीटी देना।

जब—क्रि० वि० [सं० यावत्, प्रा० याव, जाव] जिस समय। जिस वक्त। उ०—जबते राम व्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—जब कभी = जब जब। जिस किसी समय। जब कि = जब। जब जब = जब कभी। जिस जिस समय। उ०—जब जब होइ घरम की हानी। बाढ़े असुर अघम अभिमानी। तब तब प्रभु धरि मनुज शरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा।—तुलसी (शब्द०)। जब तब = कभी कभी। जैसे,—जब तब वे यहाँ आ जाया करते हैं। जब होता है तब = प्रायः। अक्सर। बराबर। जैसे,—जब होता है, तब तुम मार दिया करते हो। जब देखो तब = सदा। सर्वदा। हमेशा। जैसे,—जब देखो तब तुम यहीं खड़े रहते हो।

जबड़ी—क्रि० वि० [हि० जब + ही] जिस किसी समय। उ०—जबई आनि परै तहाँ तबई ता सिर देहि।—नंद० प्र०, पु० १३५।

जबड़ा—संज्ञा पु० [सं० जम्भ] मुँह में दोनों ओर ऊपर ओर नीचे की वे हड्डियाँ जिनमें डाढ़े जड़ी रहती हैं। कल्ला।

मुहा०—जबड़ा फाड़ना = मुँह खोलना। मुँह फाड़ना। जबड़े की तान = गवैर्मी की एक तान जो उत्तम नहीं मानी जाती।

यौ०—जबड़ातोड़ = जबर्दस्त। बलवान। मुँहनीड़।

जबड़ी—संज्ञा अ० [देश०] एक प्रकार का घान जो स्टेल्खंड में पैदा होता है।

जबर^१—वि० [फ्रा० जबर] १. बलवान। बली। ताकतवर। २. मजबूत। दृढ़। ३. ऊँचा। ऊपरी।

जबर^२—क्रि० वि० ऊपर। उपरि।

जबर^३—संज्ञा पु० लूँ में ह्रस्व प्रकार का बोधक चिह्न।

जबरई^१—संज्ञा अ० [हि० जबर + ई (प्रत्य०)] अन्याययुक्त सत्ती। अत्याचार। उपादती।

जबरजंगी—वि० [हि० जबर + जंग] दे० 'जबरदस्त'।

जबरजद्, जबरजद्—संज्ञा पु० [अ० जबरजद्] एक प्रकार का पन्ना जो पोसापन लिए हरे रंग का होता है। पुष्परोज।

जबरजस्ती—वि० [फ्रा० जबरदस्त] दे० 'जबरदस्त'।

जबरजस्ती^१—संज्ञा अ० [फ्रा० जबरदस्ती] दे० 'जबरदस्ती'। उ०—किसी के कहने से नहीं छोड़ सकते। जबरजस्ती जो चाहे निकाल दे।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ७६४।

जबरदस्त—वि० [फ्रा० जबरदस्त] [संज्ञा जबरदस्ती] १. बलवान। बली। शक्तिशाली। २. दृढ़। मजबूत। पक्का।

जबरदस्ती^२—संज्ञा अ० [फ्रा० जबरदस्ती] अत्याचार। सीनाजोरी। प्रबलता। जियादती। अन्याय।

जबरदस्ती^३—क्रि० वि० बलपूर्वक। दबाव डालकर। इच्छा के विरुद्ध।

जबरन—क्रि० वि० [अ० जबरन] बलात्। जबरदस्ती। बलपूर्वक। उ०—एक तरह से जबरन ही उसे गाड़ी में बैठा लिया।—मस्माबुल०, पृ० ११।

जबरा^१—वि० [हि० जबर] बलवान। बली। प्रबल। जबरदस्त। जैसे—जबरा मारे रोने न दे।

जबरा^२—संज्ञा पु० [हि० जबर (= दृढ़)] छोड़े मुँह का एक प्रकार का कुठला या धनाज रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन।

जबरा^३—संज्ञा पु० [अ० जबरा] छोड़े ओर गढ़े के मध्य का एक बहुत सुंदर जंगली जानवर जो मटमैले सफेद रंग का होता है और जिसके सारे शरीर पर लंबी सुंदर और काली चारियाँ होती हैं।

विशेष—यह कंधे तक प्रायः तीन हाथ ऊँचा और छुरहरे, पर मजबूत बदन का होता है। इसके कान बड़े, गरदन छोटी और दुम गुच्छेदार होती है। यह बहुत चौकड़ा, चपल, जंगली और तेज दौड़नेवाला होता है और बड़ी कठिनाता से पकड़ा या पाला जाता है। यह कभी सवारी या लादने का काम नहीं देता। दक्षिण अफ्रीका के जंगलों और पहाड़ों में इसके झुंड के झुंड पाए जाते हैं। जहाँ तक हो सकता है, यह बहुत ही एकांत स्थान में रहता है और मनुष्यों आदि की आहूट पाकर तुरंत भाग जाता है। इसका शिकार बहुत किया जाता है जिससे इसकी जाति के शीघ्र ही नष्ट हो जाने की धारणा है।

जबराइल—संज्ञा पु० [अ० जिब्रील] एक फरिश्ता या देवदूत।

जबरूत—संज्ञा पु० [अ०] प्रतिष्ठा। श्रेष्ठता। बुजुर्गी (को०)।

जबरदस्त—वि० [हि०] दे० 'जबरदस्त'।

जबरदस्ती—संज्ञा अ० [हि०] दे० 'जबरदस्ती'।

जबल—संज्ञा पु० [अ०] पर्वत। पहाड़। उ०—तन दुख नीर तडाग, रोग बिहंगम रूखडो। बिमन सलीमुख बाग, जरा बरक ऊतर जबल।—बाँकी प्र०, भा० २, पृ० ४१।

जबह—संज्ञा पु० [अ० जबह, जिह्व] गला काटकर प्राण लेने की क्रिया। हिमा। उ०—भोले भाले मुलमानों की बर्गला कर जबह न कीजिए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६।

मुहा०—जबह करना = बहुत कष्ट देना। अत्यंत दुःख देना।

जबहा^१—संज्ञा पु० [हि० जीव] जीवट। माहस। हिम्मत। जैसे—उसने बड़े जबहे का काम किया।

जबहा^२—संज्ञा पु० [अ० जबह] १. दमवी नक्षत्र। मघा। २. लवाट। पेशानी। माथा।

यौ०—जबहासाई—माथा रगड़ना या घिसना। दैन्य प्रदर्शन।

जबाँ—संज्ञा अ० [फ्रा० जबाँ] दे० 'जबान'। उ०—जबाँ सड़के गाली ही मला आशिक को तुम दे दो।—मार्तण्ड प्र०, भा० २, पृ० ४२२।

यौ०—जबाँगीर। जबाँजद। जबाँदराज। जबाँदराजी। जबाँवाँ = भाषाविज्ञ। जबाँदानी। जबाँबंदी।

जबाँगीर—वि० [फ्रा० जबाँगीर] जासूस। गुप्तचर। भेदिया (को०)।

जबाँजद—वि० [फ्रा० जबाँजद] जो सबकी जबान पर हो। जन-प्रसिद्ध। विख्यात (को०)।

जबाँदाराज—वि० [फा० जबाँदाराज] दे० 'जबानदराज' ।

जबाँदाराजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जबाँदाराजी] दे० 'जबानदराजी' ।

जबाँदानी—संज्ञा स्त्री० [फा० जबाँदानी] किसी भाषा का पांडित्य या पूर्ण ज्ञान । उ०—सखनऊवाहि, जिन्हें अपनी जबाँदानी का अभिमान है ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० ४०६ ।

जबान—संज्ञा स्त्री० [फा० जबान] [वि० जबानी] । १. जीभ । जिह्वा । यौ०—जबानदराज । जबानबंदी ।

मुहा०—जबान कतरनी की तरह चलना = घृष्टतापूर्वक अनुचित अनुचित बातें कहना । उ०—ऐसी ढिठाई से खुदा समझे कि दोनों की जबान कतरनी की तरह चल रही है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३१३ । जबान को लगाम देना = अपना कथन समाप्त करना । चुप हो जाना । उ०—बस बस जरी जबान को लगाम दो ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३ । जबान घाना = किसी चूप्ते प्रायमी का बढ़कर बातें करना । उत्तर प्रत्युत्तर करना । उ०—शान खुदा, बेजबानों को भी हमारे लिये जबान घाई ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २७४ । जबान खींचना = बहुत अनुचित या घृष्टतापूर्ण बातें करने के लिये कठोर दंड देना । जबान खुलना = (१) मुँह से बात निकालना । (२) बच्चों का बोलने लगना । बोलने में समर्थ होना । जबान खुलवाना = टेढ़ी सीधी कुछ कहने को विवश करना । जबान खुलक होना = विपासित होना । प्यास से प्राकूल होना । जबान खोलना = मुँह से बात निकालना । बोलना । जबान घिस जाना या घिसना = कहते कहते हार जाना । बार बार कहना । जबान चलना = (१) मुँह से जल्दी जल्दी शब्द निकलना । (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना । (३) खाया जाना । मुँह चलाना । जबान चलाना = (१) बोलना, विशेषतः जल्दी जल्दी बोलना । (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना । जबान चलाए की रोटी खाना = खुशामद या चापलूसी द्वारा जीवनयापन करना । जबान चाटना = दे० 'घोंठ चाटना' । जबान टूटना = (बालक का) स्पष्ट उच्चारण प्रारंभ करना । † जबान डालना = (१) माँगना याचना करना । (२) पूछना । प्रश्न करना । जबान तक न हिलना = मौन रह जाना । कुछ न कहना । उ०—इतनी किरबिने बैठी हैं किसी की जबान तक नहीं हिली और हम प्रापस में कड़े मरते हैं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३ । जबान थामना या पकड़ना = बोलने न देना । कहने से रोकना । जबान पर धाना = कहा जाना । मुँह से निकलना । जबान पर या में ताला बन्दना = चुप रहने को विवश होना । जबान पर मुहर लगाना = बोलने या कहने पर रुकावट होना । जबान पर रखना = (१) किसी चीज को थोड़ी भाषा में खाकर उसका स्वाद लेना । चखना । (२) स्मरण रखना । याद रखना । जबान पर लाना = मुँह से कहना । बोलना । उ०—मरहूमा वगैरह जबान पर लाते थे और खुद ही झुक झुक कर सलाह करते थे ।—फिसाना०, भा० १, पृ० १ । जबान पलटना = कहकर बदल जाना । वचन भंग करना । जबान पर होना = हर वम याद रहना । स्मरण रहना ।

जबान बंद करना = (१) चुप होना । (२) बोलने से रोकना । (३) विवाद में हारना । जबान बंद होना = (१) मुँह से शब्द न निकलना । (२) विवाद में हार जाना । निग्रह स्थान में धाना । जबान बिगड़ना = (१) मुँह से अपशब्द निकलने का अभ्यास होना । ३. मुँह का स्वाद इस प्रकार खराब होना कि खाने की कोई चीज अच्छी न लगे । (३) जबान चटोरी होना । जबान में कंठ पड़ना = (१) जबान फटना । निनाबी होना । (२) किसी बात को रुककर रुक कहना । जबान में कीड़े पड़ना = अनुचित कथन या मिथ्या भावस्थ पर अनुचित कामना । जबान में खुजली होना = भगड़े की प्रभिलाषा होना । जबान में लगाम न होना = अनुचित बातें कहने का अभ्यास होना । सोच समझकर बोलने के प्रयोग्य होना । जबान रोकना = (१) जबान पकड़ना । (२) चुप करना । जबान संभालना मुँह से अनुचित शब्द न निकलने देना । सोच समझकर बोलना । जबान सीना । दे० 'मुँह सीना' । जबान निकालना = उच्चारण होना । बोला जाना । जबान से निकलना = उच्चारण करना । कहना । जबान हिलाना = बोलने का प्रयत्न करना । मुँह से शब्द निकालना । दबी जबान से बोलना या कहना = कमजोर होकर बोलना । अस्पष्ट रूप से बोलना । इस प्रकार से बोलना जिससे सुनने-वालों को उस बात के संबंध में संदेह रह जाय । बदजबानी = अनुचित और अशिष्ट बात । बरजबान = जो बहुत अच्छी तरह याद हो । कंठस्थ । उपस्थित । बेजबान = जो अधिक न बोलता हो । बहुत सीधा ।

२. जबान से निकला हुआ शब्द । बात । बोल । जैसे—मरद की एक जबान होती है ।

मुहा०—जबान बदलना = कही हुई बात से फिर जाना । दे० 'जबान पलटना' ।

३. प्रतिज्ञा । वादा । कील । करार ।

मुहा०—जबान देना या हारना = प्रतिज्ञा करना । वचन देना । वादा करना ।

४. भाषा । बोलचाल । जैसे, उर्दू जबान ।

जबानदराज—वि० [फा० जबानदराज] [संज्ञा जबानदराजी] १. जो बहुत सी न कहने योग्य और अनुचित बातें कहे । बहुत घृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करनेवाला । २. बढ़ बढ़कर बातें करनेवाला । शिखी या डींग हाँकनेवाला ।

जबानदराजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जबानदराजी] बहुत घृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करने की किया या भाव । घृष्टता । ढिठाई । गुस्ताखी ।

जबानबंद—संज्ञा पुं० [फा० जबानबंद] १. ताबीज या यंत्र । वह ताबीज जो शत्रु की जबान को रोकने के लिये बिछा जाय । २. वह साक्षी या इजहार जो बिछा हुआ हो ।

जबानबंदी—संज्ञा स्त्री० [फा० जबानबंदी] १. किसी घटना आदि के संबंध में साक्षी स्वरूप वह कथन जो लिख लिया जाय । लिखा जानेवाला इजहार । २. मौन । चुप्पी ।

जबानी—वि० [हि० जबान] जो केवल जबान से कहा जाय, पर कार्य प्रथवा और किसी रूप में परिणत न किया जाय। मौखिक। जैसे, जबानी जमाखर्च, जबानी संदेश।

जबाब—संज्ञा पुं० [अ० जबाब] दे० 'जवाब'।

यौ०—जबाबदेह = उत्तरदाता। जिम्मेदार। उ०—इस घुतन कविता आंदोलन के साथ मैं आज अपनी रचनाओं के लिये आलोचक के सामने पहले से कहीं अधिक जबाबदेह हूँ।
—बंजन०, पृ० २१।

जबारा—संज्ञा पुं० [अ० जबार] दे० 'जवार'। उ०—जबारा में ही हाई स्कूल खुल गया था।—नई०, पृ० ८।

जबाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्यकाम आबाल ऋषि की माता का नाम जो एक राक्षसी थी। इसकी कथा छांदोग्य उपनिषद् में है।

विशेष—दे० 'आबाल'।

जबूर—वि० [अ० जब्र] बुरा। खराब। अनुचित।

जबून—वि० [तु० जबून] बुरा। खराब। निकम्मा। निकट।
उ०—करत है राम जबून भला, हम बपुरा कौन सवारे।—
जग० शा०, पृ० ११४।

जबूर—संज्ञा पुं० [अ० जाबूर] वह आसमानी किताब जो हजरत दाऊद पर उतरी थी। एक मुसलमानी धर्मग्रंथ। उ०—जैसे तीरीत ऋग्वेद है वैसा ही जबूर सामवेद है।—कबीर मं०, पृ० २८८।

जब्त—संज्ञा पुं० [अ० जब्त] १. अधिकारी या राज्य द्वारा बंड-स्वरूप किसी अपराधी की संपत्ति का हरण। किसी अपराधी को दंड देने के लिये सरकार का उसकी जायदाद छीन लेना। २. अपने अधिकार में भाई हुई किसी दूसरे की चीज को धपना लेना। कोई वस्तु किसी के अधिकार से ले लेना। ३. धैर्य धारण करना। धीरतायुक्त होना। सहना (कौ०)। ४. प्रबंध। हंतजाम। व्यवस्था (कौ०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जब्ती—संज्ञा स्त्री० [अ० जब्त] जब्त होने की क्रिया। कुर्की।

मुह्ता०—जब्ती में आता = जब्त हो जाना।

जब्तार(५)†—वि० [फ़ा० जबर] शक्तिशाली। भारी। उ०—आलव लोटहि पोट चोट जब्तार उर लागी। कियो हियो दुःसार पीर प्रानधि मैं पायी।—बख० प्र०, पृ० १५।

जब्तार—वि० [अ०] जबरदस्ती करनेवाला। हाकतबर। शक्तिशाली। उ०—छुरकारा हुआ आब दस्ते जब्तार।—
कबीर मं०, पृ० ४७।

जब्तार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जब्तार'।

जब्र—संज्ञा पुं० [अ०] १. कठोर व्यवहार। ज्यादाती। सक्ती। २. लाचारी। मजबूरी (कौ०)।

जब्रन—क्रि० वि० [अ० जब्रन्] बलात्। बलपूर्वक। जबर-दस्ती।

जब्री—वि० [अ०] जबरदस्ती, बलपूर्वक या अनिवार्यतः कराया जानेवाला (कौ०)।

४-५

जब्रीया^१—क्रि० वि० [अ० जब्रीयह्] जबरदस्ती से।

जब्रीया^२—संज्ञा पुं० वह जो ईश्वरेच्छा या नियति को सर्वोपरि मानता हो (कौ०)।

जब्रील—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जब्रिल'।

जबह—संज्ञा पुं० [अ० जबह्] दे० 'जबह'।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जमन—संज्ञा पुं० [सं० यमन] मृत्यु। स्त्री-प्रसंग।

जम(५)—संज्ञा पुं० [सं० यम] दे० 'यम'। उ०—दरसन ही ते लागे जम मुख मसी है।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० १८१।

यौ०—जम अनुज्ञा = यमुना। जमकातर। जमघंट। जमघर। जमदिसा। जमपुर।

जमई—[फ़ा०] जो जमा हो। नगदी। जमा संबंधी।

विशेष—यह शब्द उस भूमि के लिये आता है जिसका लगान नगद लिया जाता है। जैसे, जमई खेत। अथवा इसका व्यवहार उस लगान के लिये होता है जो जिस के रूप में नहीं बटिक नगद हो। जैसे, जमई लगान, जमई बंदोबस्त।

जमक^१(५)—संज्ञा पुं० [सं० यमक] दे० 'यमक'।

जमक^२—संज्ञा पुं० [हि० जमक] दे० 'जमक'।

जमकना—क्रि० अ० [हि० जमकना] दे० 'जमकना'।

जमकात(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जमकातर'। उ०—बिजुरी चक्र फिरे बहु कैरी। श्री जमकात फिरे जम कैरी।—जायसी (शब्द०)।

जमकातर(५)^१—संज्ञा पुं० [सं० यम + हि० कातर] जैवर।

जमकातर^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + कर्तरी] १. यम का छुरा या लाड़ा। २. एक प्रकार की छोटी तलवार।

जमकाना—क्रि० सं० [हि० जमकना] जमकना का सकर्मक रूप। जमकाना।

जमघंट—संज्ञा पुं० [सं० यम + घण्ट] दे० 'यमघंट'। उ०—सब कछु जरि गयो होरी में। तब धूरहि घुर बखोरी, नाम जमघंट परोरी।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५०५।

जमघट—संज्ञा पुं० [हि० जमना + घट (= समूह)] मनुष्यों की भीड़ जिसमें लोग ठसाठस भरे हों और जिसे कोई आदमी सुगमता से पार न कर सके। बहुत से मनुष्यों का भीड़। ठट्ट। जमावड़ा। मजमा। उ०—घोर नर्तकियों का जमघट जमता था।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३३२।

क्रि० प्र०—जमना।—जमना।—लगाना।—होना।

जमघटा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जमघट'।

जमघट्ट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जमघट'।

जमघर(५)—संज्ञा पुं० [यम + घर] यमालय। उ०—दुनिया में भरमो मति हीना। जमघर आवगे नाम विहीना।—कबीर सा०, पृ० ८१४।

जमज(५)—वि० [सं० यमज] दे० 'यमज'।

जमजम—संज्ञा पुं० [अ० जमजम] मक्का का एक कुर्छा जिसका धानी मुसलमान लोग बहुत पवित्र मानते हैं। उ०—जनखर्चा

में तेरे मुक्त चाहे जमजम का घसर दिसता ।—कविता की०,
भा० ४, पृ० ६ ।

जमजोहरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जो ऋतुपरिवर्तन के समय रंग बदलती है ।

विशेष—यह चिड़िया जाड़े के दिनों में उत्तरपश्चिम भारत में दिखाई पड़ती है और गरमी में फारस और तुर्किस्तान को चली जाती है । यह प्रायः एक बालिशत लंबी होती है और ऋतुपरिवर्तन के समय रंग बदलती रहती है ।

जमडाढ़—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + दण्ड, प्रा० दण्ड, डण्ड, हि० डाढ़] कटारी की तरह का एक हथियार जिसकी नोक बहुत पनी और घागे की ओर झुकी हुई होती है । इसे शत्रु के शरीर में भोंकते हैं । जमघर ।

जमदग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रकार वैदिक ऋषि जिनकी गणना सप्तर्षियों में की जाती है । श्रृगुर्वशी ऋचीक ऋषि के पुत्र ।

विशेष—वेदों में जमदग्नि के बहुत से मंत्र मिलते हैं । ऋग्वेद के अनेक मंत्रों से जाना जाता है कि विश्वामित्र के साथ ये भी वशिष्ठ के विपक्षी थे । ऐतरेय ब्राह्मण हरिश्चंद्रोपाख्यान में लिखा है कि हरिश्चंद्र के नरमेष यज्ञ में ये अश्वयुं हुए थे । जमदग्नि का जिक्र महाभारत, हरिवंश और विष्णुपुराण में आया है । इनकी उत्पत्ति के संबंध में लिखा है कि ऋचीक ऋषि ने अपनी स्त्री सत्यवती, जो राजा गांधी की कन्या थी, तथा उनकी माता के लिये भिन्न गुणोंवाले दो चर तैयार किए थे । दोनों चर अपनी स्त्री सत्यवती को देकर उन्होंने बतला दिया था कि ऋतुस्नान के उपरान्त यह चर तुम ला लेना और दूसरा चर अपनी माता को खिला देना । सत्यवती ने दोनों चर अपनी माता को देकर उसके संबंध में सब बातें बतला दीं । उसकी माता ने यह समझकर कि ऋचीक ने अपनी स्त्री के लिये अधिक उत्तम गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चर तैयार किया होगा, उसका चर स्वयं खा लिया और अपना चर उसे खिला दिया । जब दोनों गर्भवती हुईं, तब ऋचीक ने अपनी स्त्री के लक्षण देखकर समझ लिया कि चर बदल गया है । ऋचीक ने उससे कहा कि मैंने तुम्हारे गर्भ से ब्रह्मनिष्ठ पुत्र और तुम्हारी माता के गर्भ से महाबली और क्षात्र गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चर तैयार किया था; पर तुम लोगों ने चर बदल लिया । इसपर सत्यवती ने दुःखी होकर अपने पति से कोई ऐसा प्रयत्न करने की प्रार्थना की जिससे उसके गर्भ से उग्र क्षत्रिय न उत्पन्न हो; और यदि उसका उत्पन्न होना अनिवार्य ही हो तो वह उसकी पुत्रवधू के गर्भ से उत्पन्न हो । तबनुसार सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि और उसकी माता के गर्भ से विश्वामित्र का जन्म हुआ । इसीलिये जमदग्नि में भी बहुत से क्षत्रियोचित गुण थे । जमदग्नि ने राजा प्रसेनजित् की कन्या रेगुका से विवाह किया था और उसके गर्भ से उन्हें रुमएवान्, सुपेण, बहु, विश्वाबहु और परशुराम नाम के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे । ऋचीक के चर के प्रभाव से उनमें से

परशुराम में सभी क्षत्रियोचित गुण थे । जमदग्नि की मृत्यु के संबंध में विष्णुपुराण में लिखा है कि एक बार हैहय के राजा कार्तवीर्य उनके आश्रम से उनकी कामधेनु ले गए थे । इस पर परशुराम ने उनका पीछा करके उनके हजार हाथ काट डाले । जब कार्तवीर्य के पुत्रों को यह बात मालूम हुई, तब लोगों ने जमदग्नि के आश्रम पर जाकर उन्हें मार डाला ।

जमदिसा—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + दिशा] दक्षिण दिशा जिसमें यम का निवास माना जाता है । उ०—मेष सिंह घन पुरुष बसे । बिरल मकर कन्या जम दिसै ।—जायसी (शब्द०) ।

जमघर—संज्ञा पुं० [हि० जमडाढ़] १. जमडाढ़ नामक हथियार । उ०—गहि हृथ्य एकन को गिराए मारि जमघर कमर में ।—हिम्मत०, पृ० २१ । २. एक प्रकार का बदामी कागज ।

जमघार—संज्ञा स्त्री० [हि० जम + घार] यम की सेना । काल की सेना । उ०—जमघार सरिस निहारि सब नर नारि चलिहुहि भाजि कै ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४ ।

जमन—संज्ञा पुं० [सं० जमन] १. भोजन करना । भक्षण । २. भोजन । भोज्य वस्तु [को०] ।

जमन—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना, तुल०, फ़ा० जमन] ३० 'यमुना' । उ०—सुर धान निगमबोधह सुरंग । जल जमन जाह राविस स्तमंग ।—पृ० रा०, १ । १५८ ।

जमन—संज्ञा पुं० [सं० यवन] स्लेच्छ । मुसलमान । यवन । उ०—(क) ब्याध सुरिच्छव भृग चरम, चरन बिए पहिराय । जमन सेन के भेद कहैं, बिहा किए तुपराय ।—प० रासो, पृ० १०४ । (ख) दोऊ तुप मिलि मंत्र करि जमन मिटवहु घास ।—प० रासो, पृ० १०४ ।

जमन—संज्ञा पुं० [सं० जमन] जमाना । काल । जगत् । संसार [को०] ।

जमना—क्रि० प्र० [सं० यमन (= जकड़ना), मि० प्र० जमा] १. किसी द्रव पदार्थ का ठंडक के कारण समय पाकर घबघा और किसी प्रकार गाढ़ा होना । किसी तरल पदार्थ का ठोस हो जाना । जैसे, पानी से बरफ जमना, दूध से दही जमना । २. किसी एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ पर दृढ़तापूर्वक बैठना । अच्छी तरह स्थित होना । जैसे, जमीन पर पैर जमना, चौकी पर आसन जमना, बरतन पर मैल जमना, सिर पर पगड़ी या टोपी जमना ।

मुहा०—दृष्टि जमना = दृष्टि का स्थिर होकर किसी ओर लगना । नजर का बहुत देर तक किसी चीज पर ठहरना । निगाह जमना = दे० 'दृष्टि जमना' । मन में बात जमना = किसी बात का हृदय पर घली भाँति धंकित होना । किसी बात का मन पर पूरा पूरा प्रभाव पड़ना । रंग जमना = प्रभाव दृढ़ होना । पूरा अधिकार होना ।

३. एकत्र होना । इकट्ठा होना । जमा होना । जैसे, भीड़ जमना, तलछठ जमना । ४. अच्छा प्रहार होना । खूब चोट पड़ना । जैसे, लाठी जमना, चप्पड़ जमना । ५. हाथ से होनेवाले काम का पूरा पूरा अभ्यास होना । जैसे,—लिखने में हाथ जमना । ६. बहुत से आदमियों के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक होना । बहुत से

भादमियों के सामने किसी काम का इतनी उत्तमता से होना कि सबपर उसका प्रभाव पड़े। जैसे, व्याख्यान जमना, गाना जमना, खेल जमना। ७. सर्वसाधारण से संबंध रखने-वाले किसी काम का अच्छी तरह चलने योग्य हो जाना। जैसे, पाठशाला जमना, दूकान जमना। ८. धोड़े का बहुत ठुमक ठुमककर चलना। उ०—जमत उड़त ऐंडत उछरत पैंजनी बजावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११।

जमना^२—कि० प्र० [सं० जन्म, प्रा० जन्म > जम + हि० ना (प्रत्य०)] उगना। उपजना। उत्पन्न होना। फूटना। जैसे, पोषा जमना, बाल जमना।

जमना^३—संज्ञा पु० [हि० जमना (= उत्पन्न होना)] वह घास जो पहली वर्षा के उपरांत खेतों में उगती है।

जमना^४—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना] दे० 'यमुना'।

जमनिका^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जवनिका] १. जवनिका। परबा। २. काई। उ०—हृदय जमनिका बहुविधि लागी।—तुलसी (शब्द०)।

जमनोत्तरी—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना + अवतार] गढ़वाल के निकट हिमालय की वह छोटी जहाँ से यमुना निकलती है।

जमनीता—संज्ञा पु० [प्र० जमानत + हि० प्रीता (प्रत्य०)] वह रकम जो कोई मनुष्य अपनी जमानत करने के बदले में जमानत करनेवाले को दे।

विशेष—मुसलमानी राज्यकाल में इस प्रकार की रकम देने की प्रथा प्रचलित थी। यह रकम प्रायः ५ रुपए प्रति सैकड़े के हिसाब से दी जाती थी।

जमनीतो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जमनीता] दे० 'जमनीता'।

जमपुर^२—संज्ञा पु० [सं० यमपुर] दे० 'यमपुर'। उ०—स्वामी को संकट परे, जो तजि भाजै कूर। लोक भजस, परलोक में जमपुर जात जरूर।—हम्मीर०, पृ० ४७।

जमरस्सी—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + हि० रस्सी] चोरी नाम का वृक्ष जिसकी जड़ साँप के काटने की बहुत अच्छी औषधि समझी जाती है।

जमरा^३—संज्ञा पु० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—विष्णु ते अधिक और कोउ नाही। जमरा विष्णु की चेरा माही।—कबीर सा०, पृ० ३६५।

जमराई^४—संज्ञा पु० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—जो कोई सत्त पुरुष गहे भाई। ता कहँ देखे बरे जमराई।—कबीर सा०, पृ० ८१५।

जमराण^५—संज्ञा पु० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—जमराणा सौहो करी वानेइ लेज्यों मेल।—ढोला०, पृ० ६१०।

जमरुद्—संज्ञा पु० [?] एक प्रकार का छोटा लंबोतरा फल।

जमल^६—वि० [सं० यमल, प्रा० जमल] दे० 'यमल'। उ०—जमल कमल कर पद बदन जमल कमल से नैन।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ७४८।

यौ०—जमलतर = दे० 'यमलाजुन'। उ०—मुनि सराप तै भए जमलतर तिन्ह हित भापु बंधाए हो।—सूर०, १।७।

जमवट—संज्ञा स्त्री० [हि० जमना] पहिए के धाकार का लकड़ी का वह गोल चक्कर जो कुर्सी बनाने में भगाड़ में रखा जाता है और जिसके ऊपर कोठी की जोड़ाई होती है।

जमवार^७—संज्ञा पु० [सं० यमवार] यम का द्वार। उ०—(क) सिंहल द्वीप भए छोटाहू। जंबूद्वीप जाइ जमवारहू।—जायसी (शब्द०)। (ख) उ०—अरि जमवार वहै जहँ रहा। जाइ न मेठा ताकर कहा।—पदमावत, पृ० २६२।

जमरोद—संज्ञा पु० [फ़ा०] ईरान का एक प्राचीन शासक।

विशेष—कहा जाता है, इसके पास एक ऐसा प्याला था जिससे उसे संसार भर का हाल ज्ञात होता था।

जमहूर—संज्ञा पु० [प्र० जुमहूर] जनता। सर्वसाधारण [को०]।

जमहूरियत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जुमहूरियत] जनतंत्र। प्रजातंत्र [को०]।

जमहूरी—वि० [प्र० जुमहूरी] सार्वजनिक [को०]।

जमा^१—संज्ञा पु० [प्र० जमा] जमाना। काला। समय। संसार। दुनिया [को०]।

जमा^२—वि० [प्र०] १. जो एक स्थान पर संग्रह किया गया हो। एकत्र। इकट्ठा।

मुहा०—कुल जमा या जमा कुल = सब मिलाकर। कुल। सब। जैसे,—वह कुल जमा पाँच रुपए लेकर चले थे।

२. जो जमानत के तौर पर या किसी खाते में रखा गया हो। जैसे,—(क) उनका सौ रुपया बैंक में जमा है। (ख) तुम्हारे चार धान हमारे यहाँ जमा हैं।

जमा^३—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. भूज धन। पूँजी। २. धन। रुपया पैसा। जैसे,—उसके पास बहुत सी जमा है।

यौ०—जमाजथा। जमापूँजी।

मुहा०—जमा मारना = अनुचित रूप से किसी का धन ले लेना। बेइमानी से किसी का माल हजम करना। जमा हजम करना = दे० 'जमा मारना'। उ०—चुरन सभी महाजन खाते, जिससे जमा हजम कर जाते।—भारतेन्दु प्र०, भा० १, पृ० ६६२।

३. भूमिकर। मालगुजारी। लगान।

यौ०—जमाबंदी।

४. संकलन। जोड़ (गणित)। ५. वही आदि का वह भाग या कोष्ठक जिसमें आए हुए धन या माल आदि का विवरण दिया जाता है।

यौ०—जमाखर्च।

जमाअत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. दे० 'जमात'—१। उ०—यह खबर हमको भूँभगू की नागा जमाअत के बयोवृद्ध भडारी बान-मुकुंद जी से मिली।—सुंदर प्र० (भू०), भा० १, पृ० ४।

जमाअती—वि० [प्र०] जमात संबंधी। सामुदायिक [को०]।

जमाई^१—संज्ञा पु० [सं० जामातृ] दामाद। जंवाई। जामाता।

जमाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जमना] १. जमने की क्रिया। २. जमने का भाव।

जमाई^३—संज्ञा स्त्री० [हि० जमाना] १. जमाने की क्रिया। जमाने का भाव। ३. जमाने की मजदूरी।

जमाखर्च—संज्ञा पुं० [प्र० जमप्र + फा खर्च] धन्य और व्यय ।
जमाजथा—संज्ञा स्त्री० [हि० जमा + गथ (= पूँजी)] धनसंपत्ति ।
 नगदी और माल । जमापूँजी ।

जमात—संज्ञा स्त्री० [प्र० जमाघत] १. बहुत से मनुष्यों का समूह ।
 आदमियों का गिरोह या जत्था । जैसे, साधुओं की जमात ।
 उ०—सालों की नहिं बोरियाँ साधु न चले जमात । संत-
 बाणी०, पृ० २८ । २. कक्षा । श्रेणी । दरजा । जैसे,—वह
 लड़का पाँचवीं जमात में पढ़ता है । ३. पंक्ति । कतार ।
 लाइन । जैसे, सिपाहियों की जमात ।

जौ०—जमातबंदी = गिरोहबंदी । बलबंदी । उ०—जिसके कारण
 समाज की जमातबंदी भी बदलती गई । —भा० ६० क०,
 पृ० ४२२ ।

जमादार—संज्ञा पुं० [फा० या प्र० जमाघत + दार] [संज्ञा जमादारी]
 १. कई सिपाहियों या पहरेदारों आदि का प्रधान । वह जिसकी
 अधीनता में कुछ सिपाही, पहरेदार या कुली आदि हों । २.
 पुलिस का वह बड़ा सिपाही जिसकी अधीनता में कई और
 साधारण सिपाही होते हैं । हेड कांस्टेबल । ३. कोई सिपाही
 या पहरेदार । ४. नगरपालिका का वह कर्मचारी जो भंगियों
 के काम का निरीक्षण करता है ।

जमादारी—संज्ञा स्त्री० [हि० जमाबार + ई (प्रत्य०)] १. जमादार
 का पद । २. जमादार का काम ।

जमानत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जमानत] वह जिम्मेदारी जो कोई मनुष्य
 किसी अपराधी के ठीक समय पर न्यायालय में उपस्थित होने,
 किसी कर्जदार के कर्ज भुगत करने अथवा इसी प्रकार के किसी
 और काम के लिये अपने ऊपर ले । वह जिम्मेदारी जो जबानी
 या कोई कागज लिखकर अथवा कुछ रुपया जमा करके ली
 जाती है । प्रतिभूति । जामिनी । जैसे,—(क) वे सौ रुपये
 की जमानत पर छूटे हैं । (ख) उन्होंने हमारी जमानत पर
 • उनका सब माल छोड़ दिया है ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—होना ।

जौ०—जमानतदार = प्रतिभू । जामिनी । जिम्मेदार । जमा-
 नतमामा ।

जमानतनामा—संज्ञा पुं० [प्र० जमानत + फा० नामह्] वह कागज
 जो जमानत करनेवाला जमानत के प्रमाणस्वरूप लिख
 देता है ।

जमानती—संज्ञा पुं० [प्र० जमानत + फा० ई (प्रत्य०)] जमानत करने-
 वाला । वह जो जमानत करे । जामिन । जिम्मेदार (श्व०) ।

जमानबीस—संज्ञा पुं० [प्र० जमप्र + फा० बीस] कचहरी का
 एक अहलकार ।

जमाना^१—क्रि० स० [हि० 'जमाना' का स० रूप] १. किसी द्रव
 पदार्थ को ठंडा करके अथवा किसी और प्रकार से गाढ़ा
 करना । किसी तरल पदार्थ को ठोस बनाना । जैसे, चाशनी
 से बरफी जमाना । २. किसी एक पदार्थ को दूसरे पर दृढ़-
 पूर्वक बैठाना । अच्छी तरह स्थित करना । जैसे, जमीन पर
 पैर जमाना ।

मुहा०—दृष्टि जमाना = दृष्टि को स्थिर करके किसी और

लगाना । (मन में) बात जमाना = हृदय पर बात को
 असी भाँति प्रकट करा देना । रंग जमाना = अधिकार दृढ़
 करना । पूरा पूरा प्रभाव डालना ।

३. प्रहार करना । चोट लगाना । जैसे, हथौड़ा जमाना, थप्पड़
 जमाना । ४. हाथ से होनेवाले काम का अभ्यास करना ।
 जैसे,—धभी तो वे हाथ जमा रहे हैं । ५. बहुत से आदमियों
 के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक
 करना । जैसे,—व्याख्यान जमाना । ६. सर्वसाधारण से
 संबंध रखनेवाले किसी काम को उत्तमतापूर्वक चलाने योग्य
 बनाना । जैसे, कारखाना जमाना, स्कूल जमाना । ७. धोड़े
 को इस प्रकार चलाना जिससे वह ठुमुक ठुमुककर पैर रखे ।
 ८. उदरस्थ करना । खा जाना । जैसे, भंग का गोला
 जमाना । ९. मुँह में रखना । मुखस्थ करना । जैसे, पान
 का बीड़ा जमाना ।

जमाना^२—क्रि० स० [हि० जमाना (= उत्पन्न होना)] उत्पन्न
 करना । उपजाना । जैसे, पीषा जमाना ।

जमाना^३—संज्ञा पुं० [फा० जमानह्] १. समय । काल । वक्त । २.
 बहुत अधिक समय । मुद्त । जैसे,—उन्हें यहाँ भाए जमाना
 हुआ । ३. प्रताप या सौभाग्य का समय । एकबाल के दिन ।
 जैसे,—भाजकल आपका जमाना है । ४. दुनिया । संसार ।
 जगत् । जैसे,—सारा जमाना उसे गाली देता है । ५. राज्य-
 काल । राज्य करने की अवधि (कौ०) । ६. किसी पद पर
 या स्थान पर काम करने का समय । कार्यकाल (कौ०) ।
 ७. निरंतर । देर । अतिकाल (कौ०) ।

मुहा०—जमाना उलटना = समय का एकबारगी बदल जाना ।
 जमाना छानना = बहुत खोजना । जमाना देखना = बहुत
 अनुभव प्राप्त करना । तजरबा हासिल करना । जैसे—प्राप
 बुजुर्ग हैं, जमाना देखे हुए हैं । जमाना पलटना या बबलना =
 परिवर्तन होना । अच्छे या बुरे दिन आना ।

जौ०—जमानासाज । जमानासाजी । जमाने की गदिश = समय
 का फेर ।

जमानासाज—वि० [फा० जमानह् + साज] १. जो अपने स्वार्थ
 के लिये समय समय पर अपना व्यवहार बदलता रहता है ।
 अपना मतलब साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखनेवाला ।
 २. भुतफन्नी । धूर्त । छली (कौ०) ।

जमानासाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जमानह् + साजी] अपना मतलब
 साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखना । अपने स्वार्थ के लिये
 समयानुसार अनुचित रूप से अपना व्यवहार बदलना ।

जमापूँजी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जमाजथा' ।

जमाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पटवारी का एक कागज जिसमें
 असामियों के नाम और उनसे मिलनेवाले लगान की रकमें
 लिखी जाती हैं ।

जनामरद^(१)—संज्ञा पुं० [फा० जवाँमद] दे० 'जवाँमद' । उ०—भाए
 हैं जनामरद ग्यान कर करव लै, दरद न जाखी भव जिन
 दिन पार रे । —अव० बं०, पृ० १३३ ।

जमामार—वि० [हि० जमा + मारना] अनुचित रूप से दूसरों का धन दबा रखने या ले लेनेवाला ।

जमाख—संज्ञा पुं० [घ०] सौंदर्य । कोमा । खूबि । रूप । उ०—
कनक बिंदु सुरकी रुकुम, बंदन मिळत जमाल । बंदन तिलक
विए भई, तिलक चौगुनी भाल ।—स० सतक, पृ० २५३ ।

जमाखगोटा—संज्ञा पुं० [सं० जयमाल (= जमाल) + गोटा] एक
पीधे का बीज जो अत्यंत रेचक है । जयपाल । दंतोफल ।

विशेष—यह पीधा करोटन की जाति का है और समुद्र से ३०००
फुट की ऊँचाई तक परती भूमि में होता है । यह पीधा दूसरे
वर्ष फलने लगता है । इसका फल छोटी इलायची के बराबर
होता है जिसके भीतर सफेद गरी होती है । गरी में तेल का
पंथ बहुत अधिक होता है और उसे खाने से बहुत दस्त आते
हैं । गरी से एक प्रकार का तेल निकलता है जो बहुत तीक्ष्ण
होता है और जिसके लगाने से बदन पर फफोला पड़ जाता
है । तेल गाढ़ा और साफ होता है और औषध के काम में
आता है । इसकी कली बाह के खेत की मिट्टी में मिलाने से
पीधों में बीमक और दूसरे बीड़े नहीं लगते । इसके पैड़ कहने
के पैड़ के पास छाया के लिये भी लगाए जाते हैं ।

जमाखी—वि० [घ०] सुंदर रूपवाला । स्वरूपवान् । सौंदर्य-
युक्त [को०] ।

जमाव—संज्ञा पुं० [हि० जमाना] १. जमाने का भाव । २. जमाने
का भाव । ३. भीड़ भाड़ । जमावड़ा ।

जमावट—संज्ञा स्त्री० [हि० जमाना] जमाने का भाव । ३० 'जमाव'

जमावड़ा—संज्ञा पुं० [हि० जमाना (= एकत्र होना)] बहुत से लोगों
का समूह । भीड़ । उ०—इन लोगों का भारी जमावड़ा वहीं
हूमा करता है ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० ७३० ।

जमी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जमी] ३० 'जमीन' । उ०—गिरकर न उठे
काफिर बबकार जमी से, ऐसे हुए गारत ।—भारतेंदु ग्रं०,
भा० १, पृ० ५३० ।

जमीकंद—संज्ञा पुं० [फ्रा० जमीन + कंद] सूरन । धोल ।

जमीदार—संज्ञा पुं० [फ्रा० जमीनदार] जमीन का मालिक । भूमि
का स्वामी ।

विशेष—मुसलमानों के राजत्वकाल में जो मनुष्य किसी छोटे
प्रांत, जिले या कुछ गावों का भूमिकर लगाने और सरकारी
खजाने में जमा करने के लिये नियुक्त होता था, वह जमींदार
कहलाता था और उसे उगाढ़े हुए कर का दसवां भाग पुरस्कार
स्वरूप दिया जाता था । पर, जब अंत में मुसलमान शासक
कमजोर हो गए तब वे जमींदार अपने अपने प्रांतों के स्वतंत्र
रूप से प्रायः मालिक बन गए । अंगरेजी राज्य में जमींदार
लोग अपनी अपनी भूमि के पूरे पूरे मालिक समझे जाते थे
और जमींदारी पैतृक होती थी । ये सरकार को कुछ निश्चित
वार्षिक कर देते थे और अपनी जमींदारी का संपत्ति की भांति
जिस प्रकार चाहें, उपयोग कर सकते थे । काश्तकारों आदि
को कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार वे अपनी जमीन स्वयं ही
जोतने बोनो आदि के लिये देते थे और उनसे लगान आदि

लेते थे । भारत के स्वतंत्र हो जाने पर लोकतांत्रिक सरकार
ने जमींदारी प्रथा का वैधानिक उन्मूलन कर दिया है ।

जमींदारी—संज्ञा पुं० [फ्रा० जमींदारी] ३० 'जमींदारी' ।

जमींदारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जमींदारी] जमींदार की वह जमीन
जिसका वह मालिक हो । २. जमींदार होने की दशा या
अवस्था । ३. जमींदार का हक या स्वत्व ।

जमींदोज—वि० [फ्रा० जमींदोज] १. जो गिरा, तोड़ा या उखाड़कर
जमीन के बराबर कर दिया गया हो । २. ३० 'जमीनदोज' ।

जमी—वि० [सं० यमिन्] इन्द्रियनिग्रही । उ०—देखि लोग सकुचात
जमी से ।—मानस, २।२१४ ।

जमीन—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जमीन] १. पृथ्वी (ग्रह) । जैसे,—जमीन
बराबर सूरज के चारों तरफ घूमती है । २. पृथ्वी का वह
ऊपरी ठोस भाग जो मिट्टी का है और जिसपर हम लोग रहते
हैं । भूमि । धरती ।

मुहा०—जमीन घासमान एक करना = किसी काम के लिये बहुत
अधिक परिश्रम या उद्योग करना । बहुत बड़े बड़े उपाय
करना । जमीन घासमान का फरक = बहुत अधिक अंतर ।
बहुत बड़ा फरक । आकाश पाताल का अंतर । उ०—मुकाबिला
करते हैं तो जमीन घासमान का फर्क पाते हैं ।—फिसाना०,
भा० ३, पृ० ४३६ । जमीन घासमान के कुलावे मिलाना =
बहुत डींग हाँकना । बहुत शेली मारना । उ०—बाहे इश्वर
की दुनियाँ उधर हो जाय, जमीन घासमान के कुलावे मिल,
जाय, तूफान आए, भूचाल आए, मगर हम जरूर आएँगे ।—
फिसाना०, भा० ३, पृ० ५१ । जमीन का पैरों तले से निकल
जाना = सन्नाटे में आ जाना । होश हवास जाता रहना ।
जमीन घूमने लगना = इस प्रकार गिर पड़ना कि जिसमें जमीन
के साथ मुहँ लग जाय । जैसे,—जरा से धक्के से वह जमीन
घूमने लगी । जमीन दिखाना = (१) गिराना । पटकना । जैसे,
एक पहलवान का दूसरे पहलवान को जमीन दिखाना । (२)
नीचा दिखाना । जमीन देखना = (१) गिर पड़ना । पटका
जाना । (२) नीचा देखना । जमीन पकड़ना = जमकर
बैठना । जमीन पर पड़ना = (१) थोड़े का पैर धोड़ने का
अभ्यास होना । (२) किसी कार्य का अभ्यस्त होना । जमीन
पर पैर या कदम न रखना = बहुत इतराना । बहुत अभिमान
करना । उ०—ठाकुर साहब ने बारह चौदह हजार रुपया
नकद पाया तो जमीन पर कदम न रखा ।—फिसाना०, भा०
३, पृ० १९६ । जमीन पर पैर न पड़ना = बहुत अभिमान
होना । जमीन में गड़ जाना = अत्यंत लज्जित होना ।

३. सतह, विशेषकर कपड़े, कागज या तख्ते आदि की वह सतह
जिसपर किसी तरह के बेल बूटे आदि बने हों । जैसे,—काली
जमीन पर हरी बूटी की कोई छोट मिले तो लेते आना । ४.
वह सामग्री जिसका व्यवहार किसी द्रव्य के प्रस्तुत करने में
आधार रूप से किया जाय । जैसे, अंतर खींचने में बंदन की
जमीन, फुलेल में मिट्टी के तेल की जमीन । ५. किसी कार्य के
लिये पहले से निश्चय की हुई प्रणाली । पेशबंदी । भूमिका ।
आयोजन ।

मुहा०—जमीन बदलना = आधार का परिवर्तन होना । स्थिति का बदल जाना । जैसे,—अब जमीन ही बदल गई ।—
प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४० । जमीन बाधना = किसी कार्य के लिये पहले से प्रणाली निश्चित करना ।

जमीनदोज—वि० [फ्रा० जमीनदोज] १. धरती के नीचे या नीचे । भूगर्भिक । उ०—घोर तब जमीनदोज किले बनने लगे ।—भा० ६० क०, पृ० १४१ । २. दे० 'जमींदोज' ।

जमीनी—वि० [फ्रा० जमीनी] जमीन संबंधी । जमीन का ।

जमोमा—संज्ञा पुं० [अ० जमोमह्] १. क्रोधपत्र । अतिरिक्त पत्र । २. पूरक । परिशिष्ट [को०] ।

जमीयत—संज्ञा स्त्री० [अ० जमीयत] गोष्ठी । दल । परिषद् । जमाअत । समुदाय । उ०—प्रत्येक सरदार के अपनी जमीयत के साथ प्रतिबंध तीन महीने तक दरबार की सेवा में उपस्थित रहने की जो रीति चली आ रही है वह जारी रखी जायगी ।—राज० इति०, पृ० १०४६ ।

जमोर—संज्ञा पुं० [अ० जमोर] १. अंतःकरण । हृदय । मन । २. विवेक । ३. (व्या०) सर्वनाम [को०] ।

यौ०—जमीरफरोश = धारमविक्रेता । धवसरवादी ।

जमील—वि० [अ०] [वि० स्त्री० जमीला] रूपवान । सुंदर । हसीन [को०] ।

जमुआ^१—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूक] दे० 'जामुन' ।

जमुआ^२—संज्ञा पुं० [सं० यम, हि० जम+उमा (प्रत्य०), अथवा हि० जमना (= पैदा होना)] एक प्रकार का घातक बालरोग ।

जमुआरा^३—संज्ञा पुं० [हि० जमुआ+आर (प्रत्य०)] जामुन का जंगल ।

जमुकना^४—क्रि० प्र० [?] पास पास होना । सटना । उ०—जब जमुक्यो कछु प्यु तनय, तब तरंग तहें छोड़ि । भयो पुरवर प्रलख उर, सबयो न सम्मुख दीड़ि ।—रघुराज (शब्द०) ।

जमुन^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जमुना] दे० 'यमुना' । उ०—(क) उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम ।—मानस, २। १०१ (ख) मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत होलै ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४५५ ।

जमुना—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना, प्रा० जमुणा, जऊणों] यमुना नदी । वि० दे० 'यमुना' ।

जमुनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनिका] दे० 'यवनिका' । उ०—आगत स्वप्न सु जमुनिका सुषुपति भई पिटार सुंदर । बाजीगर जुदो खेल दिखावन हार ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ७८५ ।

जमुनियाँ^६—संज्ञा पुं० [हि० जामुन+ईया (प्रत्य०)] १. जामुन का रंग । जामुनी । २. जामुन का वृक्ष । ३. यम का यय । यमपाश (लास०) । उ०—जमुनियाँ की छार मोरी तोड़ देव हो ।—घरम० प्र०, पृ० २६ ।

जमुनियाँ^७—वि० जामुन के रंग का । जामुनी रंग का ।

जमुरका^८—संज्ञा पुं० [फ्रा० जमूर] कुलाबा ।

जमुरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जमूर] १. चिमटी के आकार का नाल-

बंदों का एक घोजार जिससे वे चोड़ों के नाल काटते हैं । २. चिमटी । सेंडरी ।

जमुर्दी^९—वि० [अ० जमुर्दीन, हि० जमुर्दी] १. दे० 'जमुर्दी' । उ०—जमुर्दी जरी के काम—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६ ।

जमुर्द^{१०}—संज्ञा पुं० [अ०] [अ०] पन्ना नामक रत्न ।

जमुर्दी^{११}—वि० [अ० जमुर्दीन] जमुर्द के रंग का हरा । जो मोर की गर्दन की तरह नीलापन लिए हुए हरे रंग का हो ।

जमुर्दी^{१२}—संज्ञा पुं० जमुर्द का रंग । नीलापन लिए हुए हरा रंग ।

जमुर्दा^{१३}—संज्ञा पुं० [हि० जमुदा] जामुनी । जामुन का रंग ।

जमुहाना—क्रि० प्र० [सं० जम्भण] दे० 'जम्हाना' ।

जमूरक^{१४}—संज्ञा पुं० [फ्रा० जमूरक] एक प्रकार की छोटी तोप जो छोड़े या ऊँट पर रहती है । उ०—सबके आगे सुतर सवार अपार सिंगार बनाए । धरे जमूरक तिन पीठन पर सहित निशान मुहाये ।—रघुराज (शब्द०) ।

जमूरा^{१५}—संज्ञा पुं० [फ्रा० जमूरक, हि० जमूरक] दे० 'जमूरक' ।

जमूरा^{१६}—संज्ञा पुं० [अ० जह्म+फ्रा० मुहह्] दे० 'जह्म-मोहरा' । उ०—जुगति जमूरा पाइ कै, सर पे लपटाना । बिष वा के बेधे नहीं, गुरु गम्भ समाना ।—कबीर० प्र०, भा० ३, पृ० १४ ।

जमैयत—संज्ञा स्त्री० [अ० जमीयत] १. दल । समुदाय । २. सभा । गोष्ठी । परिषद् [को०] ।

यौ०—जमैयतुल उलेमा = बिद्वानों की सभा या गोष्ठी ।

जमोगा^{१७}—संज्ञा पुं० [हि० जमोगना] १. जमोगने अर्थात् स्वीकार कराने की क्रिया । सरेख । २. किसी दूसरे की बात का किसी तीसरे के द्वारा समर्थन । सामने का निश्चय । तसदीक । ३. देहाती लेनदेन की एक रीति जिसके अनुसार कोई जमींदार किसी महाजन से ऋण लेने के समय उसके चुकाने का भार उस महाजन के सामने अपने काश्तकारों पर छोड़ देता है और काश्तकारों से लगान के मद्धे उसका स्वीकार करा देता है ।

यौ०—सही जमोग ।

जमोगदार—संज्ञा पुं० [अ० जमा+सं० योग] वह व्यक्ति जो जमोग की रीति से जमींदार को रुपया देता है ।

जमोगना^{१८}—क्रि० सं० [अ० जमा+सं० योग] १. हिसाब किताब की जाँच करना । २. व्याज को मूल धन में जोड़ना । ३. स्वयं किसी उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिये किसी दूसरे को उसका भार सोपना और उससे उस उत्तरदायित्व को स्वीकृत कराना । सरेखना । ४. किसी को किसी दूसरे के पास ले जाकर उससे अपनी बात का समर्थन कराना । तसदीक कराना ।

जमोगनाना^{१९}—क्रि० सं० [हि० जमोगना] जमोगने का काम किसी दूसरे से कराना । सरेखवाना ।

जमोगा^{२०}—संज्ञा पुं० [हि० जमोगना] दे० 'जमोगा' ।

यौ०—सही जमोगा ।

जमोआ^{२१}—वि० [हि० जमाना] जमाया हुआ । जमाकर बनाया हुआ ।

जन्म^१—संज्ञा पुं० [सं० जन्म] दे० 'जन्म' ।

यौ०—जन्मराजा = जन्मराज । उ०—मनो जीव पापीन की जन्मराजा द्विती दंड सोई सब धूम धोटे ।—हम्मीर०, पृ० ५

जन्म^२—संज्ञा पुं० [सं० जन्म, प्रा० जन्म] जन्म । उत्पत्ति ।

जन्मण^३—संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्, प्रा० जन्मण] उत्पत्ति । जन्म । पैदाइश । उ०—तन माहि मनुषा जो ठहिरावे । जन्मण मरण भित्त घर दोजख ताके निकट न आवे ।—प्राण०, पृ० ६० ।

जन्मना^४—क्रि० घ० [हि०] उत्पन्न होना । पैदा होना । जन्म मरे न विनसे सोइ ।—प्राण०, पृ० २ ।

जन्मभूमि^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्म, प्रा० जन्म + सं० भूमि] दे० 'जन्मभूमि' । उ०—पन्नविघ्न जन्मभूमि को मोह छोड़िय, बनि छोड़िय ।—कीर्ति०, पृ० २२ ।

जन्मू—संज्ञा पुं० [सं० जन्मू] काश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर । जंबू ।

जम्हाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जम्हाई' ।

जम्हाना—क्रि० घ० [हि०] दे० 'जम्हाना' । उ०—बार बार रूपि जात जम्हान, लगत, नीके ताकी चोपनि धुकन न पाए हो । बनानं०, पृ० ४८८ ।

जम्हूर—संज्ञा पुं० [म०] जनता । जनसमूह । उ०—कर उसकी बुजुर्गी लखे जम्हूर के प्रागे ।—कबीर मं०, पृ० ४६६ ।

जयंत^१—वि० [सं० जयन्त] [वि० स्त्री० जयंती] १. विजयी । २. बहुलिया । अनेक रूप धारण करनेवाला ।

जयंत^२—संज्ञा पुं० १. एक रुद्र का नाम । २. इंद्र के पुत्र उपेंद्र का नाम । ३. संगीत में ध्रुवक जाति में एक ताल का नाम । ४. स्कंद । कार्तिकेय । ५. वरुण के एक पुत्र का नाम । ६. अक्रूर के पिता का नाम । ७. भीमसेन का उस समय का बनावटी नाम जब वे विराट नरेश के यहाँ अज्ञातवास करते थे । ८. दशरथ के एक मंत्री का नाम । ९. एक पर्वत का नाम । जयंतिका की पहाड़ी । १०. जैनों के अनुचर देवों का एक भेद । ११. फलित ज्योतिष में यात्रा का एक योग ।

विशेष—यह योग उस समय पड़ता है जब चंद्रमा उच्च होकर यात्री की राशि से ग्यारहवें स्थान में पहुँच जाता है । इसका विचार बहुधा युद्धादि के लिये यात्रा करने के समय होता है, क्योंकि इस योग का फल शत्रुपक्ष का नाश है ।

जयंतपुर—संज्ञा पुं० [सं० जयन्तपुर] एक प्राचीन नगर का नाम जिसे निमिराज ने स्थापित किया था और जो गौतम ऋषि के आश्रम के निकट था ।

जयंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्तिका] दे० 'जयंती' ।

जयंती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्ती] १. विजय करनेवाली । विजयिनी । २. ध्वजा । पताका । ३. हलदी । ४. दुर्गा का एक नाम । ५. पार्वती का एक नाम । ६. किसी महात्मा की जन्मतिथि पर होनेवाला उत्सव । वर्षगांठ का उत्सव । ७. एक बड़ा पेड़ जिसे जैत या जैता कहते हैं ।

विशेष—इस पेड़ की डालियाँ बहुत पतली और पत्तियाँ अगस्त की पत्तियों की तरह की, पर उनसे कुछ छोटी होती हैं । फूल अरहर की तरह पीले होते हैं । फूलों के झड़ जाने पर बिलो सवा बिलो लंबी पतली फलियाँ लगती हैं । फलियों के बीज उत्तेजक और संकोचक होते हैं और दस्त की बीमारियों में औषध के रूप में काम में आते हैं । खाज का मरहम भी इससे बनता है । इसकी पत्तियाँ फोड़े या सूजन पर बाँधी जाती हैं और गिलटियों को गलाने का काम करती हैं । इसकी जड़ पीसकर बिच्छू के काटने पर लगाई जाती है । यह जंगली भी होता है और लोग इसे लगाते भी हैं । इसका बीज जेठ असाढ़ में बोया जाता है । इसकी एक छोटी जाति होती है, जिसे 'बक्रभेद' कहते हैं । इसके रेशे से जाल बनता है । बंगाल में इसे लोग अम्रल, मई में बोते हैं और सितंबर, अक्टूबर में काटते हैं । पीछा सन की तरह पानी में सड़ाया जाता है । पान के भीटों पर भी यह पेड़ लगाया जाता है ।

८. जैन्ती का पीछा । ९. ज्योतिष का एक योग । जब श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी की आधी रात के समय और शेष दंड में रोहिणी नक्षत्र पड़े, तब यह योग होता है । ११. जो के छोटे पीछे जिन्हें विजयादशमी के दिन ब्राह्मण लोग यजमानों को मंगल द्रव्य के रूप में भेंट करते हैं । जई । खरई । १२. अरणी ।

जय—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्ध, विवाद आदि में विपक्षियों का पराभव । विरोधियों को दमन करके स्वत्व या महत्त्व स्थापन । जीत ।

विशेष—संस्कृत में जय शब्द पुलिग है किंतु 'जीत, विजय' अर्थ में हिंदी में इसका प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में ही मिलता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—जय मनाना = विजय की कामना करना । समृद्धि चाहना । जय हो = आशीर्वाद जो ब्राह्मण लोग प्रणाम के उत्तर में देते हैं ।

विशेष—आशीर्वाद के प्रतिरिक्त इस शब्द का प्रयोग देवताओं की अभिवंदना सूचित करने के लिये भी होता है और जिसमें कुछ याचना का भाव मिला रहता है । जैसे, जय काली की, रामचंद्र जी की जय । उ०—जय जय जगजनि देवि, सुरनर मुनि अमुर सेव्य, भुक्ति भुक्ति दायिनी जय हरणि कालिका ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—जय गोपाल । जय ओङ्कण । जय राम, आदि (अभिवंदन वचन) ।

२. ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति के प्रोष्ठपद नामक छठे युग का तीसरा वर्ष ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इस वर्ष में बहुत पानी बरसता है और क्षत्रिय, वैश्य आदि को बहुत पीड़ा होती है ।

३. विष्णु के एक पार्षद का नाम ।

विशेष—पुराणों में लिखा है कि सनकादिक ने भगवान के पास जाने से रोकने पर क्रोध करके इसे और इसके भाई

विजय को शाप दिया था। उसी से जय को संसार में तीन बार हिरण्यनाभ, रावण और शिशुपाल का ध्वस्तार तथा विजय को हिरण्यकशिपु, कुम्भकर्ण और कंस का वध ग्रहण करना पड़ा था।

४. महाभारत या भारत ग्रंथ का नाम। ५. जयंती या जैत के पेड़ का नाम। ६. लाव। ७. युधिष्ठिर का उस समय का बनावटी नाम जब वे विराट के यहाँ अज्ञातवास करते थे। ८. अयन। ९. वशीकरण। १०. एक मान का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है। ११. आनन्द के अनुसार इससे मन्वंतर के एक ऋषि का नाम। १२. विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। १३. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। १४. राजा संजय के एक पुत्र का नाम। १५. उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न परवसु के एक पुत्र का नाम। १६. वह मकान जिसका दरवाजा दक्षिण की तरफ हो। १७. सूर्य। १८. घरछी या अग्निमंथ नाम का पेड़। १९. हंज। २०. हंज का पुत्र जयंत।

विशेष—पुराणों आदि में भी बहुत से 'जय' नामक पुरुषों के वर्णन आए हैं।

जय^२—वि० (समास में प्रयुक्त) विजयी। जीतनेवाला। जैसे, मृत्युंजय (= मृत्यु को जीतनेवाला)।

जयकंकण—संज्ञा पुं० [सं० जय + कंकण] वह कंकण जो प्राचीन काल में वीर पुरुषों को किसी युद्ध आदि के विजय करने की वधा में आवश्यक प्रदान किया जाता था।

जयक—वि० [सं०] विजेता। जीतनेवाला [को०]।

जयकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौपाई नामक एक छंद का नाम।

जयकार—संज्ञा पुं० [सं० जय + कार] जयघोष।

जो०—जयजयकार।

जयकोलाहल—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का लूना खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयचंद्र—संज्ञा पुं० [हि० जय + चंद्र] १. कान्यकुब्ज का एक प्रसिद्ध राजा। २. देशद्रोही व्यक्ति (लाक्ष०)।

विशेष—यह महर्षिबालवंश का अंतिम नरेश था। इसका राज्यकाल सन् ११७० से ११८१ ई० तक रहा। अपने राज्यकाल के आखिरी वर्ष में यह महर्षिबाल गौरी से पराजित होकर मारा गया।

जयखाता—की० पुं० [हि० जय (= नाम) + खाता] बजियों की एक बही जिसमें वे वित्त व्यय भुनाफा या लाभ आदि लिखा करते हैं।—(व०)।

जयघोष—संज्ञा पुं० [सं०] जय + घोष] जय जय की आवाज उ०—पा गया जयघोष घगलित पंख।—साहित, पृ० १८५

जयजयवंती—संज्ञा स्त्री० [हि० जय + जयवंती] संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी जो धूसरी, विलासक और सोरठ के योग से बनती है।

विशेष—इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं और यह रात को ६ बंद से १० बंद तक गाई जाती है; पर वर्षाऋतु में लोग इसे सभी समय गाते हैं। कुछ लोग इसे मेघ राग की आर्या मानते हैं और कुछ लोग मालकोश का सहचरी भी बताते हैं।

जयजीव—संज्ञा पुं० [हि० जय + जी] एम प्रकार का अभिवादन जिसका अर्थ है—जय हो और जियो। इसका प्रयोग प्रणाम आदि के समान होता था।—उ० कहि जयजीव सोस तिनहु नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए।—तुलसी (शब्द०)।

जयदंका—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा ढोल। जोत का डका।

जयत्—संज्ञा पुं० [सं० जयेत्] दे० 'जयति'।

जयतकल्याण—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो कल्याण और जयतिश्री को मिलाकर बनता है। यह रात के पहले पहर में गाया जाता है।

जयताल—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

विशेष—यह सातताला ताल है और इसमें क्रम से एक लघु, एक गुरु, दो लघु, दो द्रुत और एक प्लुत होता है। इसका बोल यह है—ताहूं। तत्परि परिचास ताहूं। ताहूं। तत० या० तत्पा तापरि परिचोस।

जयति—संज्ञा पुं० [सं० जयेत्] एक संकर राग जो मोरी और ललित के मेल से बनता है। कोई कोई इसे पूरिया और कल्याण के योग से बना भी मानते हैं। वि० दे० 'जयेत्'।

जयतिश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो दीपक राग की आर्या मानी जाती है।

जयती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयेती] श्री राग की एक रागिनी।

विशेष—यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। कोई कोई इसे टोड़ी, विभास और गहना के योग से बनी हुई बताते हैं। कितने लोग इसे पूरिया, सामंत और ललित के मेल से बनी मानते हैं। वि० दे० 'जयेती'।

जयतु—कि० वि० [सं०] जय हो (आशीर्वादसूचक)।

जयत्सेन—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञातवास के समय नकुल का नाम [को०]।

जयदुंदुभी—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + दुंदुभी] जीत का डंका। विजय की भेरी।

जयदुर्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार दुर्गा की एक मूर्ति।

जयदेव—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के प्रसिद्ध काव्य 'गीतगोविंद' के रचयिता प्रसिद्ध वैष्णव भक्त एवं कवि।

विशेष—इनका जन्म आज से प्रायः आठ तीस वर्ष पहले बंगाल के वर्तमान बीरभूम जिले के अंतर्गत केदुविल्व नामक ग्राम में हुआ था। ऐसा प्रसिद्ध है कि ये गौड़ के महाराज लक्ष्मणसेन की राजसभा में रहते थे। इनका वर्णन भक्तमाध में भी आया है।

जयद्रथ—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार सिंधुसौवीर या शौराष्ट्र का राजा जो दुर्योधन का सहचर था।

विशेष—इसने एक बार जंगल में द्रौपदी को छेकी पाकर हार से जाने का प्रयत्न किया था। उस समय भीम और धर्मजुन ने इसकी बहुत दुई की थी। यह महाभारत के युद्ध में लड़ा था और चक्रव्यूह के युद्ध में धर्मजुन के पुत्र अभिमन्यु का वध इसी ने किया था। दूसरे दिन भयंकर युद्ध के अनंतर सायंकाल यह धर्मजुन के हाथों मारा गया।

जयद्वल—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञातवास के समय सहदेव का नाम [को०]।

जयध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. तालजंघा के पिता का नाम जो भवन्ती के राजा कार्तवीर्यार्जुन का पुत्र था। २. जयपताका। जयंती।

जयध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयधोष'।

जयन—संज्ञा पुं० [सं० जयनम्] १. जय। जीत। २. हाथी, घोड़े आदि की सुरक्षा के लिये एक प्रकार का जिरहबस्तर [को०]।

जयना(उ)—क्रि० प्र० [सं० जयन] जीतना। उ०—(क) भरत धन्य तुम जग जस जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ। —तुलसी (शब्द०)। (ख) से जात यवन मोहि करिके जयन। —भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५०२।

जयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इन्द्र की कन्या।

जयपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो पराजित पुरुष अपने पराजय के प्रमाण में विजयी को लिख देता है। विजयपत्र। उ०—मम जयपत्र सकारि पुनि सुंदर मुहि अपनाय। —भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६०८। २. वह राजाशा जो पक्षी प्रत्यक्षी के बीच विवाद के निबटारे के लिये लिखी जाय। वह कागज जिसपर राजा की ओर से किसी विवाद का फैसला लिखा हो।

विशेष—प्राचीन काल में ऐसे पत्र पर वादी और प्रतिवादी के कथन, प्रमाण और घमंशास्त्र तथा राजसभा के सभ्यों के मत लिखे हुए होते थे और उसपर राजा का हस्ताक्षर और मोहर होती थी।

जयपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री।

जयपराजय—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + पराजय] दे० 'जयाजय'।

जयपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. जमालगोटा। २. ब्रह्मा का एक नाम [को०]। ३. विष्णु। ४. राजा।

जयपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का जुमा खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा विराट के भाई का नाम। २. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

विशेष—इसमें एक लघु, एक गुरु और सब फिर एक लघु होता है। यह तिताला ताल है और इसका बोल यह है—ताहं। धिधिकिट ताहं गन थों।

जयफर—संज्ञा पुं० [हि० जयफल] दे० 'जायफल'। उ०—जयफर लौंघ सुपारि छोड्यार। मिरिच होइ जो सदैव न झारा। —जायसी (शब्द०)।

जयभेरी—संज्ञा पुं० [सं०] विजय डक्का। जीत का बगाड़ा [को०]।

जयमंगल—संज्ञा पुं० [सं० जयमङ्गल] १. वह हाथी जिसपर राजा विजय करने के उपरांत सवार होकर निकले। २. राजा के सवार होने योग्य हाथी। ३. ताल के साठ भेदों में एक।

विशेष—यह भुंगार और बीर रस में बजाया जाता है। यह चोताला ताल है और इसका बोल यह है—तकि तकि। दांतकि। धिमि धिमि। थों।

४. ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त आयुर्वेदीय जयमंगल नामक रस [को०]। ५. विजय की खुशी। जय का आनंद [को०]।

जयमस्तार—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

जयमार(उ)—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + मास्य] दे० 'जयमाल'। उ०—का कहें देउ ऐस जिउ दोन्हा। जेइ जयमार जीति रन लीन्हा। —जायसी प्र०, पृ० १२२।

जयमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० जयमाला] वह माला जो विजयी को विजय पाने पर पहनाई जाय। २. वह माला जिसे स्वयंवर के समय कन्या अपने बरे हुए पुरुष के गले में डालती है। उ०—उ०—गावहि छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली। —मानस, १। २६४।

जयमाला—संज्ञा स्त्री० [हि० जयमाल] दे० 'जयमाल'। उ०—सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला। —मानस, १। २६४।

जयमाल्य—संज्ञा पुं० [सं० जय + मास्य] दे० 'जयमाल'।

जययज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ।

जयरात—संज्ञा पुं० [सं०] कलिंग देश के एक राजकुमार का नाम जो कौरवों की ओर से महाभारत के युद्ध में लड़ा था और भीम के हाथ से मारा गया था।

जयलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयश्री'।

जयलेख—संज्ञा पुं० [सं० दे० 'जयपत्र'।

जयवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इंद्राणी। शची। २. विजय करने वाली सेना [को०]।

जयशाली—संज्ञा पुं० [सं० जय + शाली] यादव वंश के प्रसिद्ध राजा जिन्होंने जैसलमेर नगर बसाया और वहाँ का किला बनवाया था।

विशेष—अपने पिता के सबसे बड़े पुत्र होने पर भी पहले इन्होंने राजसिंहासन नहीं मिला था। पर अपने छोटे भाई के मर जाने पर इन्होंने शहाबुद्दीन गोरी से सहायता लेकर अपने भतीजे भोजदेव को मारा और राज्याधिकार प्राप्त किया था। सिंहासन पर बैठने के बाद संवत् १२१२ में इन्होंने जैसलमेर नगर बसाया और किला बनवाया था।

जयशृंग—संज्ञा पुं० [सं० जयशृङ्ग] विजय की घोषणा के निमित्त बजाया जानेवाला सींग का बाजा [को०]।

जयश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विजय की अधिष्ठाता देवी। विजयलक्ष्मी। २. विजय। जीत। ३. ताल के मुख्य साठ भेदों में से एक। ४. देशकार राग से भिन्नती जुलती संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो संध्या के समय गाई जाती है। कुछ लोग इसे देशकार राग की रागिनी मानते हैं।

जयस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० जयस्तम्भ] वह स्तंभ जो विजयी राजा किसी देश का विजय करने के उपरांत अपनी विजय के स्मारक स्वरूप बनवाता है। विजयसूचक स्तंभ।

जयस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० जयस्वामिन्] १. शिव का एक नाम। २. छांदोग्य सूत्र तथा आश्वलायन ब्राह्मण के व्याख्याता [को०]।

जया'—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा का एक नाम। २. पार्वती का

एक नाम । ३. हरी दूब । ४. घरणी नामक वृक्ष । ५. जयंती या जत का पेड़ । ६. हरीतकी । हड़ । ७. दुर्गा की एक सहस्ररी का नाम । ८. पताका । ध्वजा । ९. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार दोनों पक्षों की तृतीया, षष्ठमी और ज्योदशी तिथियाँ । १०. सोलह मातृकाओं में से एक । ११. माघ शुक्ल एकादशी । १२. एक प्राचीन राजा जिसमें बजाने के लिये तार बगे होते थे । १३. जया पुष्प । गुड़हल का फूल । धड़हल । १४. भाग । १५. जमीवृक्ष । छोंकर ।

जया^१—वि० [सं०] जय दिलानेवाली । विजय करानेवाली । उ०—तीज षष्ठमी तेरसि जया । चौथी चतुरदसि नोभी रखया । —जायसी (शब्द०) ।

जयाजय—संज्ञा पु० [सं०] जय और पराजय । जीत हार [को०] ।

जयादित्य—संज्ञा पु० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन राजा का नाम जो काशिकावृत्ति के कर्ता थे ।

जयाद्वय—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती और हड़ ।

जयानीक—संज्ञा पु० [सं०] १. हुपब राजा के एक पुत्र का नाम । २. राजा विराट के एक भाई का नाम ।

जयापीड़—संज्ञा पु० [सं०] काश्मीर के एक प्रसिद्ध राजा जो ईसवी आठवीं सताब्दी में हुए थे ।

विशेष—ये एक बार दिग्विजय करने के लिये निकले थे; पर रास्ते में सैनिक इन्हें छोड़कर भाग गए । इसपर ये प्रयाग चले गए थे जहाँ इन्होंने ६६६६६ घोड़े बान किए थे ।

जयावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम । २. एक संकर रागिनी जो धवसश्री, बिलावल और सरस्वती के योग से बनती है ।

जयावह—वि० [सं० जय + आवह] जय प्राप्त करानेवाला [को०] ।

जयावहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मद्रदंती का वृक्ष ।

जयाजया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जरई घास ।

जयाश्व—संज्ञा पु० [सं०] राजा विराट के एक भाई का नाम ।

जयाह्वा, जयाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयावहा' ।

जयिष्णु—वि० [सं०] जयशील । जो जीतता हो ।

जयी^१—वि० [सं० जयिन्] [वि० स्त्री० जयिनी] विजयी । जयशील ।

जयी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यव] दे० 'जरई' ।

जयेंद्र—संज्ञा पु० [सं० जयेन्द्र] काश्मीर के राजा विजय के पुत्र का नाम जो आजानुबाहु थे ।

जयेत्—संज्ञा पु० [सं०] वाइव जाति के एक राज का नाम जो पूरिया और कल्याण के योग से बनता है । इसमें पंचम स्वर नहीं लगता ।

जयेद्गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० सं० जयेत् + गौरी = जयेद्गौरी] एक संकर रागिनी जो जयेत् और गौरी के मेल से बनती है ।

जयेती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो गौरी और जयत्श्री के मेल से उत्पन्न होती है । यह सामंत, ललित और पूरिया धयवा टोड़ी, सहाना और विभास राग के योग से भी बन सकती है ।

जय्य—वि० [सं०] जय करने योग्य । जो जीतने योग्य हो ।

जरंढ—वि० [सं० जरठ] क्षीण । वृद्ध । पुराना [को०] ।

जरंत—संज्ञा पु० [सं० जरन्त] १. वृद्ध व्यक्ति । बूढ़ा आदमी । २. महिष । भैंसा [को०] ।

जर^१—संज्ञा पु० [सं० जरा] जरा । बुढ़ावस्था ।

जर^२—वि० [सं०] १. क्षय होने या जीर्ण होनेवाला । २. क्षीण । वृद्ध । पुराना । ३. क्षय या जीर्ण करनेवाला [को०] ।

जर^३—संज्ञा पु० [सं०] १. नाश या जीर्ण होने की क्रिया । २. जैन दर्शन के अनुसार वह कर्म जिससे पाप, पुण्य, कलुष, राग-द्वेषादि सब शुभाशुभ कर्मों का क्षय होता है ।

जर^४—संज्ञा पु० [सं० जवर] दे० 'जवर' । उ०—सने संताप सीत जर जाइ । की उपचरथ संदेह न छाड़ि ।—विद्यापति०, पु० १३७

जर^५—संज्ञा पु० [दे०] एक तरह का समुद्री सवार । कचहरा ।—(संज्ञा०) ।

जर^६—संज्ञा स्त्री० [हि० जर] दे० 'जर' ।

जर^७—संज्ञा पु० [फा० जर] १. सोना । स्वर्ण ।

यौ०—जरकस = दे० 'जरकस' । जरकार = (१) स्वर्णकार । सुनार । (२) सोने का काम की हुई वस्तु । जरगर । जरदोजी । जरनिगार । जरनिगारी । जरवपस । जरवापसा । जरदोज ।

२. धन । दौलत । रुपया । उ०—जर ही मेरा भस्लाह है जर राम हमारा ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पु० ५१५ ।

यौ०—जरअस्ल = मूलधन । जरखरोद । जरगर । जरडिगरी = डिगरी की रकम । जरदार । जरबद्द = रोकड़ । नकद । रुपया । जरमीखान = नीलामी से प्राप्त धन । जरपेशगी = अग्रिम धन । बयाना ।

जरई—संज्ञा स्त्री० [हि० जर] धान आदि के वे बीज जिनमें अंकुर निकले हों ।

विशेष—धान को दो दिन तक दिन में दो बार पानी से भिगोते हैं, फिर तीसरे दिन उसे पयाल के नीचे ढककर ऊपर से पत्थरों से दबा देते हैं जिसे 'भारना' कहते हैं । फिर एक दिन तक उसे उसी तरह पड़ा रहते देते हैं, दूसरे या तीसरे दिन फिर खोलते हैं । उस समय तक बीजों में से सफेद सफेद अंकुर निकल आते हैं । फिर उन्हें फैला देते हैं और कभी कभी सुखाते भी हैं । ऐसे बीजों को जरई और इस क्रिया को 'जरई करना' कहते हैं । यह जरई खेत में बोने के काम आती है और शीघ्र जमती है । कभी कभी धान की मुजारी भी बंद पानी में डाल दी जाती है और दो तीन दिन तक वैसे ही पड़ी रहती है, चौथे दिन उसे खोलते हैं । उस समय वे बीज जरई हो जाते हैं । कभी कभी इस बात की परीक्षा के लिये कि बीज जम गया या नहीं, भिन्न भिन्न धानों की भिन्न भिन्न रीति से जरई की जाती है ।

२. दे० 'जरई' ।

जरकटी—संज्ञा पु० [दे०] एक शिकारी पक्षी । उ०—जुराँ बाज बसि कुही बहरी लगर सोने, दोने जरकटी त्यों शपान सान पार है ।—रघुराज (शब्द०) ।

जरकस, जरकसी—वि० [फ्रा० जरकस] १. जिसपर सोने आदि के तार लगे हों। उ०—(क) छोटिए अनुहियाँ पनहियाँ पगम छोटी, छोटिए कछोटी कटि छोटिए तरकसी। लसत भोगूनी भीनी दामिनि की छबि छीनी सुंदर बदन सिर पगिया जरकसी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जब भक्ति भक्ति भुकी उभक्ति भरोखे ऐन। कैसे कंधुकी जरकसी लसी बंसी हो नैन।—शुं० सत० (शब्द)।

जरकसि०—वि० [हि०] ३० 'जरकसी'। उ०—पहिरै जरकसि पर माभूषण भोग भोग नैति रिभाय।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४६।

जरखरीद—वि० [फ्रा० जरखरीद] नकद दाम देकर खरीदी हुई जमीन जायदाद जिसपर खरीददार का पूर्ण अधिकार हो। उ०—जब देखो सब तू तैं—चुप ! गोया बेटा नहीं जरखरीद गुलाम है।—खराबी; पृ० १७१।

जरखेज—वि० [फ्रा० जरखेज] उपजाऊ। जिसमें खूब अन्न पैदा होता है। उर्वरा (जमीन का विशेषण)।

जरखेजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जरखेजी] उर्वरता। उपजाऊपन।

जरगर—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरगर] स्वर्णकार। सुनार (को०)।

जरगह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जर + जियाह] एक घास जिसे चौपाये बड़े स्वाद से खाते हैं।

विशेष—यह घास राजपूताने आदि में बहुत बोई जाती है। किसान इसे खेतों में कियारियाँ बनाकर बोते हैं और छठे सातवें दिन पानी देते हैं। पंद्रह बीस दिन में यह काटने लायक हो जाती है। एक बार बोने पर कई महीनों तक यह बराबर पंद्रहवें दिन काटी जा सकती है। यह दाने की तरह ही जाती है और बैल घोड़े इसके खाने से जल्दी तैयार हो जाते हैं।

जरगा—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जर + जियाह] ३० 'जरगह'।

जरज—संज्ञा पुं० [देश०] एक कंद जिसकी तरकारी बनाई जाती है।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है। एक की जड़ गाजर या मूली की तरह होती है और दूसरे की जड़ शलजम की तरह होती है।

जरजर०—वि० [सं० जरजर] [वि० स्त्री० जरजरी] ३० 'जरजर'। उ०—(क) सविषम खर शरे भोग मैल जरजर कहते के पतियाह।—विद्यापति, पृ० ४८२। (ख) नाव जरजरी भार बहु खेवनहार गंवार।—दीन० ग्रं०, पृ० ११३।

जरजराना—क्रि० प्र० [सं० जरजर] जरजरित होना। जीर्ण होना।

जरजरी०—संज्ञा स्त्री० [हि० जर + जड़ी] जड़ी बूटी। सुनहरी जड़ी। उ०—नाग दबनि जरजरी, राम सुमिरन बरी, मनत रैदास चेत निमैता।—रे० बानी, पृ० २०।

जरझारि—वि० [हि० जरना + सं० झार] १. भस्मीभूत। २. नष्ट।

जरजाक—संज्ञा पुं० [सं० जर + फ्रा० जलुक (= गोली, छुरी)] छोड़े के तारों में बंधे हुए बहुत से फल छुरी इत्यादि जो तोप में भर के छोड़े जाते हैं। उ०—लिप पुपक जरजाक जमुरे। खरि दाम बल पूरे।—हम्मीर०, पृ० ३०।

जरठ^१—वि० [सं०] १. कंकल। कठिन। २. बूढ़। बुढ़ा। उ०—जरठ भयउं जब कहै रिछेसा।—मानस, ४।२६। ३. जीर्ण। पुराना। ४. पांडु। पीलापन लिये सफेद रंग का।

जरठ^२—संज्ञा पुं० बुढ़ापा।

जरठाई०—संज्ञा स्त्री० [सं० जरठ] बुढ़ापा। बुढ़ावस्था। जीर्ण अवस्था।

जरडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घास का नाम जिसे खाने से गाय में अधिक दूध देती है।

विशेष—वैद्यक में इसे मधुर, शीतल, दाहनाशक, रक्तशोधक और रुचिर माना है।

पर्या०—गर्मोटिका। सुनाला। जमाधया।

जरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. हींग। २. जीरा। ३. काला नमक। शोबर्चल। ४. कासमदं। कसोजा। ५. जरा। बुढ़ापा। ६. बस प्रकार के ग्रहणों में से एक जिसमें पश्चिम से मोक्ष होना प्रारंभ होता है। ७. सुफेद जीरा।

जरणदुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. सालू का वृक्ष। सागौन का पेड़।

जरण—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काला जीरा। २. बुढ़ावस्था। बुढ़ापा। ३. स्तुति। प्रशंसा। ४. मोक्ष। मुक्ति।

जरत्^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जरना] १. बुढ़ा। बूढ़। २. बहुत दिनों का।

जरत्^२—संज्ञा पुं० बूढ़ व्यक्ति। पुराना आदमी (को०)।

जरत—संज्ञा पुं० [सं०] १. बूढ़ व्यक्ति। पुराना आदमी। २. सड़ (को०)।

जरता बलता^१—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'जलना' के अंतर्गत 'जलता बलता'।

जरतार०—संज्ञा पुं० [फ्रा० जर + तार] सोने या चांदी आदि का तार। जरी। उ०—बीच जरतारन की हीरन के हार की जगमगी ज्योतिन की मोतिन की झलरै।—देव (शब्द०)।

जरतारा^१—वि० [हि० जरतार] [वि० स्त्री० जरतारी] जिसमें सुनहले या रुपहले तार लगे हों। जरी के काम का। उ०—जरतारी मुख पै सरस सारी सोहत सेत। सरद जलद भिद जलज पर सहज किरन छबि देत।—सं० सतक, पृ० ३४५।

जरतुआ^१—वि० [हि० जलना] जो दूसरों को देखकर बहुत बलता या बुरा मानता हो। ईर्ष्या करनेवाला।

जरतिका, जरतो—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुढ़ा स्त्री। बूढ़ी महिला।

जरतुश्त—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरतुश्त] ३० 'जरदुश्त'।

जरत्करण—स्त्री० पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

जरत्कार^१—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिन्होंने वासुकि नाग की कन्या से व्याह किया था। पास्तिक मुनि इनके पुत्र थे।

जरत्कार^२—संज्ञा [सं०] जरत्कार ऋषि की स्त्री जो वासुकि नाग की कन्या थी। इसका नाम मनसा भी था।

जरद—वि० [फ्रा० जार्द] पीला। जर्द। पीत। उ०—छोड़े जरद दुसाला यारों केसर की सी कयारी हैं।—घनानंद, पृ० १७६।

जरद अंछी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जर्द, हि० जरद + अंछी] काली

ग्रंथी की तरह की एक प्रकार की बड़ी झाड़ी जिसकी लंबी टहनियों के सिरों पर कांटे होते हैं।

विशेष—यह देहरादून से भूटान और असिया की पहाड़ी तक ७००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। दक्षिण में कनाडा (कनारा, कन्नड़) और संका तक भी होती है। इसमें फागुन चैत में फूल लगते हैं जो कच्चे भी खाए जाते हैं और अचार बनाने के काम आते हैं।

जरदक—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरदक] जरदा या पीलू नाम का पक्षी।

जरदष्टि—वि० [सं०] १. बुढ़ा। बुढ़ा। २. दीर्घजीवी। बहुत दिनों तक जीनेवाला।

जरदष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुढ़ापा। बुढ़ावस्था। २. दीर्घ-जीवन।

जरदा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरदह] १. एक प्रकार का व्यंजन जिसे प्रायः मुसलमान लोग खाते हैं।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है कि चावल में पहले हल्की डालकर उसे पानी में उबालते हैं। फिर उसमें से पानी पसा लेते हैं और उसे दूसरे बर्तन में धी डालकर शक्कर के शर्बत में पकाते हैं। पीछे से इसमें लोंग, इलायची आदि सुगंधित द्रव्य और मसाले छोड़ दिए जाते हैं।

२. एक विशेष क्रिया से बनाई हुई खाने की सुगंधित सुरती।

विशेष—यह प्रायः काले रंग की होती है और पान दोहरा, आदि के साथ खाई जाती है। यह पीले और लाल रंग की भी बनाई जाती है। वाशिंग्टन इसका एक प्रमुख व्यापार-केंद्र है।

ज्यो—जरदाफरोश = जरदा बेचनेवाला।

३. पीले रंग का का घोड़ा। उ०—जरदा जिरही जाँग सुनीची

ऊँदे खंजन।—सुजान०, पृ० ८। ४. पीली घाल का कबूतर।

५. पीले रंग की एक प्रकार की छीट।

जरदा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरदक] एक प्रकार का पक्षी। पीलू।

विशेष—इसकी कनपटी पीली, पीठ लाली, पेट सफेद और चौंच तथा पैर पीले होते हैं। इसे पीलू भी कहते हैं।

जरदार—वि० [फ्रा० जर + दार] धमीर। धनवान। उ०—हुषा मालूम यह गुंवे से हमको। जो कोई जरदार है मो तंग दिल है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३०।

जरदालू—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरदालू] खूबानी नाम का मेवा।

विशेष—३० 'खूबानी'।

जरदी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जरदी] पिलाई। पीलापन।

मुहा०—जरदी छाना—किसी मनुष्य के शरीर का रंग बहुत दुर्बलता, खून की कमी या किसी दुर्घटना आदि के कारण पीला हो जाना।

२. ग्रंथ के भीतर का वह चैप जो पीले रंग का होता है।

जरदुश्त—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरदुश्त; मि० सं० जरदष्टि (= दीर्घजीवी, बुढ़ा); अथवा सं० जरद्वष्ट (= एक ऋषि)] फारस देश के प्राचीन पारसी धर्म के प्रतिष्ठाता एक आचार्य।

विशेष—ये ईसा से ६ सौ वर्ष पूर्व ईरान के साहू गुप्ताशप के समय में हुए थे। इन्होंने सूर्य और अग्नि की पूजा की प्रथा चलाई थी और पारसियों का प्रसिद्ध धर्मग्रंथ 'जंद अवस्था' (जंद अवस्ता) बनाया था। ये 'मीनू चेन्न' के वंशज और यूनान के प्रसिद्ध हकीम 'फीसा गोरस' के शिष्य थे। साहूनामे में लिखा है कि जरदुश्त तूरानियों के हाथ में मारे गए थे। इनको जरतुश्त और जरयुश्त भी कहते हैं।

जरदोज—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरदोज] [संज्ञा जरदोजी] वह मनुष्य जो कपड़ों पर कलावत्तू और गलमे सितारे आदि का काम करता हो। जरदोजी का काम करनेवाला।

जरदोजी—संज्ञा पुं० [फ्रा०] एक प्रकार की दस्तकारी जो कपड़ों पर सुनहले कलावत्तू या सलमें सितारे आदि में की जाती है। उ०—सुबरन साज जीन जरदोजी। जगमगात तन अगनित भोजी।—हम्मीर०, पृ० ३।

जरदुगव—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुढ़ा बैल। २. बृहत्संहिता के अनुसार एक वीथी जिसमें विशाखा, अनुगवा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं। यह चंद्रमा की वीथी है।

जरदुगव—वि० जीर्ण। प्राचीन।

जरद्विष—संज्ञा पुं० [सं०] जल।

जरन(उ)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'जलन'।

जरनल—संज्ञा पुं० [अं०] वह सामयिक पत्र या पुस्तक जिसमें क्रम से किसी प्रकार की घटनाएँ आदि लिखी हों। सामयिक पत्र।

जरनल—संज्ञा पुं० [अं० जेनरल] ३० 'जनरल'।

जरनलिस्ट—संज्ञा पुं० [अं० जर्नलिस्ट] ३० 'पत्रकार'।

जरना—क्रि० अ० [हि० जलना] ३० 'जलना'। उ०—देखि जरनि जड नारि की रे जरति प्रेत के संग।—सूर०, १।३२५।

जरना(पु)—क्रि० अ० [सं० जटन, हि० जडना] ३० 'जडना'। उ०—नग कर मरम सो जरिया जाना। जरे जो अस नग हीर पखाना।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४१।

जरनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० जरना (= जलना)] १. जलने की पीड़ा जलन। उ०—पानी फिरे पुकारती उपजी जरनि अपार। पावक आयो पूछने सुंदर बाकी सार—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७२८। २. व्यथा। पीड़ा। उ०—(क) ताँत हीं देत न दूखन तोहें। राम बिगोषी उर कठोर ते प्रगत कियो है विधि मोहें। सुंदर सुखद सुसील सुषान्ति जरनि जाय जेहि जोए। विष वाकणी बंधु कहियत विधु नातो मिटत न घोए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आपनि दारुन दीनता कहउं सर्वाह सिर नाह। देखे बिन रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाइ—तुलसी (शब्द०)। (ग) देखि जरनि जड नारि की रे जरति प्रेत के संग। चिता न चित फीकी भयो रे रबी जु पिय के रंग।—सूर०, १।३२५।

जरनिगार—वि० [फ्रा० जरनिगार] सुनहरे कामवाला। सुनहरे रंग का।

जरनिगारी—संज्ञा [फ्रा० जरनिगारी] सुनहरा काम। सोने का पामी। मुलम्मा।

जरनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वलन] जलन । ताप । अग्नि ।
उषाला । उ०—बिछुरी मनी संग तेँ हिरनी । चितवत
रहत अकित चारों दिसि उपजि बिरह तन जरनी ।—
सूर०, १।७३ ।

जरनैल^१—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'जनरल' ।

जरनैल^२—संज्ञा पुं० [अं० जनल] दे० 'जनल' ।

जरपरस्त—वि० [फ्रा० जरपरस्त] अर्पणपिशाच । सूम । लोभी ।
कंचूस [को०] ।

जरपोस—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरपोस] जरी का कपड़ा । जरी की
पोशाक । उ०—सबज पोस जरपोस करि लीनी लाल लुगाइ ।
भाइ भाइ फिर भाइ करि करति बाइ पर घाइ ।—म० सप्तक,
पृ० ३८३ ।

जरफ—वि० [अ० जरफ] साफ । स्वच्छ । निर्मल उ०—सब
सहर नारि शृंगार कीन । अप्र अप्र भुंड़ मिलि बलि नवीन ।
अपि कनक चार भरि द्रव्य दूब । पटकूल जरफ जरकसी
ऊब ।—पृ० १।०, १।७१३ ।

जरब—संज्ञा स्त्री० [अं० जरब] आघात । चोट ।

यो०—जरब खफीफ = हलकी चोट । जरब गदीद = भारी चोट ।

मुहा०—जरब देना = चोट लगाना । आघात करना । पीटना ।
उ०—दगा देत दूतन चुनीती बिचगुम देत जम को जरब देत
पापी सेत शिवलोक ।—पद्माकर (शब्द०) ।

२. तबले मृदंग आदि पर का आघात । थाप जो दो तरह की
होती है, एक खुली और दूसरी बंद । ३. गुणा (गणित) ।
कपड़े पर छपी या काढ़ी हुई बेल ।

जरबकस—वि० [फ्रा० जरबकस] उदार । दाता । दानी ।
धन देनेवाला ।

उ०—तुम जरबकस जराब मोती ही लाल जवाहिर नहि गनता ।
—स० दरिया, पृ० ६४ ।

जरबफ्त—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरबफ्त] वह रेशमी कपड़ा जिसकी
बुनावट में कलाबत्तू देकर कुल बेल बूटे बनाए जाते हैं ।

जरबाफ—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरबाफ] सोने के तारों से कपड़े पर
बेलबूटे बनानेवाला कारीगर । जरदोज ।

जरबाफी^१—वि० [फ्रा० जरबाफी] जरबाफ के काम का । जिस-
पर जरबाफ का काम बना हो ।

जरबाफी^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'जरदोजी' ।

जरबीली^१—वि० [फ्रा० जरब + हि० ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री०
जरबीली] जो देखने में बहुत भड़कीला और मुँदर हो ।—
उ०—अवश भुके भुमका अति लोल कपोल जराइ जरे
जरबीले ।—गुमान (शब्द०) । (ख) आयो तहँ भावतो
कहँ पायो सीर सोरह में पीठ पीछे चीन्हें चीन्हें पोति जरबीली
की ।—रघुराज (शब्द०) ।

जरबुलंद—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरबुलंद] कोपत का एक भेद जिसके
गुलबूटे, जिनपर सोने या चाँदी की कलई होती है, बहुत
उमड़े रहते हैं ।

जरब्बी^१—वि० [अ० जरब] घाव करनेवाला । चोट पहुँचानेवाला

उ०—लियँ सँड तेगं सुघल्लै जरब्बी । कटे सेन बहुवान मानहु
करब्बी ।—प० रासो, पृ० ८४ ।

जरबुलमसल—संज्ञा स्त्री० [अ० जरबुलमसल] कढ़ावत । लोकोक्ति ।
जरमन^१—संज्ञा पुं० [अं०] १. जरमनी देश का निवासी । वह जो
जरमनी देश का हो ।

जरमन^२—संज्ञा स्त्री० जरमनी देश की भाषा ।

जरमन^३—वि० जरमनी देश संबंधी । जरमनी का । जैसे, जरमन
माल, जरमन सिलवर ।

जरमन सिलवर—संज्ञा पुं० [अ०] एक सफेद धीरे चमकीली
योगिक धातु जो जस्ते, ताँबे और निकल के संयोग से
बनती है ।

विशेष—इसमें आठ भाग ताँबा, दो भाग निकल और तीन से
पाँच भाग तक जस्ता पड़ता है । निकल की मात्रा बढ़ा देने
से इसका रंग अधिक सफेद और अच्छा हो जाता है । इस
धातु के बरतन और गहने आदि बनाए जाते हैं ।

जरमनी—संज्ञा पुं० [अं०] मध्य यूरोप का एक प्रसिद्ध देश ।

जरमुआ^१—वि० [हि० जरना + मुआना [वि० स्त्री० जरमुई] जल-
मरनेवाला । बहुत इर्ष्या करनेवाला ।

जरर—संज्ञा पुं० [अ० जरर] १. हानि । नुकसान । क्षति । उ०—
जब जुल्मी जरर मुल्क मुलेमान में देखा ।—कबीर मं०, पृ०
३८८ । २. आघात । चोट ।

क्रि० प्र०—घाना । पहुँचना ।—पहुँचाना ।

३. आफत । मुसीबत ।

जरख—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बारहमासी घास जो मध्य प्रदेश
और बुंदेलखंड में बहुत होती है । इसे 'सेवाती' भी कहते हैं ।

जरवाना^१—क्रि० सं० [हि० जलना] दे० 'जलवाना' । उ०—न
जोगी जोग से ध्यावै । न तपसी देह जरवावै ।—कबीर० शं०,
भा० ३, पृ० ७ ।

जरवारा^१—वि० [फ्रा० जर + हि० वाला (प्रत्य०)] खपए पैसेवाला ।
धनी । उ०—ते धन जिनकी ऊँची नजर है । कहक बनाय
दिए जरवारे जिनकी कतहँ नजर है ।—देवस्वामी (शब्द०) ।

जरस^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] घंटा । घड़ियाल । उ०—जब जी पर
टंगाती हूँ मैं एक जरस । फिर आए सफर कर तू जब हो
सरस ।—दक्खिनी० पृ०, १४६ ।

जरस^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की समुद्र की घास ।—(लश०)

जरहरि^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] जल का खेल । जलक्रीडा । उ०—
रुहिर तरंगिणि तीर भूत गए जरहरि खेल्लइ ।—कीर्ति०,
पृ० १०८ ।

जराकुश—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञकुश] मूँज के प्रकार की एक सुगंधित
घास जिसमें नीबू की सी सुगंध आती है ।

विशेष—यह कई प्रकार की होती है । दक्षिण भारत में यह
बहुत अधिकता से होती है । इससे एक प्रकार का तेल निक-
लता है जिसे नीबू का तेल कहते हैं और जो साबुन तथा
सुगंधित तेन आदि बनाने में काम आता है ।

जरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुढ़ापा । वृद्धावस्था ।

यौ०—जराग्रस्त । जरामरण ।

२. पुराणानुसार काल की कन्या का नाम । विस्रसा । ३. एक राजसी का नाम जो मगध देश की गृहदेवी थी । इसी को पत्नी भी कहते हैं । जरा नाम की एक राजसी जिसने जरासंध को जोड़ा था । दे० 'जरासंध' । उ०—जरा जरासंध की संधि खोरपी हुती भीम ता संध की चीर डरयो ।—सूर०, १०।४२१५ । ४. खिरनी का पेड़ । ५. प्रायना । प्रवसा । श्लाघा ।

यौ०—जराबोध ।

६. पावन शक्ति (की०) । ७. वृद्धावस्था की शिथिलता (की०) ।

जरा^२—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्याघ्र का नाम ।

विशेष—इसी के बाण से भगवान् कृष्णचंद्र देवलोक सिधारे थे ।

जरा^३—वि० [भ० जरह] थोड़ा । कम । जैसे,—जरा से काम में तुमने इतनी देर लगा दी ।

यौ०—जरा जरा=थोड़ा थोड़ा । जरामना=कमवेश । थोड़ा बहुत । जरा सा ।

जरा^४—क्रि० वि० थोड़ा । कम । जैसे,—जरा दोड़ो तो सही ।

मुहा०—जरा चलेगी = जरा बात बड़ेगी । तकरार होगी । उ०—
मैं तो समझी थी कि जरा चलेगी ।—तेर० कु०, पृ० २४ ।

जराग्रत^१—संज्ञा स्त्री० [भ० जिराग्रत] दे० 'जिराग्रत' ।

जराग्रस्त—संज्ञा स्त्री० [भ० जराग्रत] १. रुदन । क्रंदन । २. विनती । मित्तत (की०) ।

जराङ्ग^५—वि० [हि०] दे० 'जड़ाऊ' । उ०—पाँवरि कबम जराङ्ग पाऊं । दोहि असीस भाइ तेहि ठाऊं ।—जायसी (शब्द०) ।

जराकुमार—संज्ञा पुं० [पुं०] जरासंध ।

जराग्रस्त—वि० [सं०] बुढ़ा । वृद्ध ।

जराजीर्ण—वि० [सं० जरा + जीर्ण] बुढ़ापे के कारण दुर्बल । बुढ़ा बुढ़ । उ०—हो मलते कलेजा पड़े, जरा जीर्ण, निनिमेष नयनों से ।—अपरा, पृ० १५२ ।

जराति^५—संज्ञा स्त्री० [भ० जिराग्रत] खेती । फसल । समृद्धि । उ०—रेती बादशाही की जराति उजड़ंगा । देवीसिध तेरा जोर देवना पड़ेगा ।—शिखर०, पृ० ६४ ।

जराती—संज्ञा पुं० [हि० जलना] वह कोरा जो चार बार उड़ाया गया हो ।

जरातुर—वि० [सं०] जरा से जर्जर । जराग्रस्त । वृद्ध । बूढ़ा (की०) ।

जराद—संज्ञा पुं० [भ०] टिट्टो ।

जराना^५—क्रि० सं० [हि० जरना] दे० 'जलाना' । उ०—पवन की पूत महाबल जोषा पल में लंक जराई ।—सूर०, ६१४० ।

जरापुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम ।

जराफ्त—संज्ञा स्त्री० [भ० जराफ्त] जरीफ होने का भाव । मसखरापन । परिहासप्रियता । उ०—उसके मिलाज में जराफत जियादा है ।—प्रेमधन०, भाग २, पृ० १०२ । २. हँसी-मजाक । परिहास ।

यौ०—जराफतपसंद = विनोदप्रिय । हँसोड़ । जराफत की पोट = हँसी की पोटखी । हँसोड़ ।

जराफा—संज्ञा पुं० [भ० जराफ] दे० 'जिराफा' ।

जराबोध—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जो स्तुति करके प्रज्वलित की गई हो ।—(वेदिक) ।

जराबोधोय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम ।

जराभीत, जराभीरु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव (की०) ।

जराभीस—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

जरायणि—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम ।

जराय(ु)—वि० [हि०] दे० 'जराव' ।

जरायम—संज्ञा पुं० [भ० 'जरीमह' का बहु व०] पाप । दोष । गुनाह । अपराध (की०) ।

जरायमपेशा—वि० [फ्रा० जरायम पेशह] जो अपराधी स्वभाव का हो । अपराधी । दोष या गुनाह करनेवाला । जुर्म करनेवाला ।

जरायु—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जरायुज] १. वह भिल्ली जिसमें बच्चा बँधा हुआ उत्पन्न होता है । घावल । खेड़ी । उत्ख । २. गर्भाशय । ३. योनि । ४. जटायु । ५. अग्निज्वर या समुद्र-फल नामक वृक्ष । ६. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम । ७. साँप की केबुल (की०) ।

जरायुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्राणी जो घावल या खेड़ी में लिपटा हुआ अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न हो । पिंडज ।

जरार—वि० [भ० जरर] क्रूर । हानि पहुँचानेवाला । उ०—बड़ा जरार भादमी है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२५ ।

जराव^५—वि० [हि० जड़ना] जडाऊ । जिसमें नगीने आदि जड़े हो । जड़ा हुआ । उ०—(क) बंदी जराव लिलार दिए गहि बोरी दोऊ पटिया पहिराई ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) । (ख) सुंदर सूधी सुगोल रची बिधि कोमलता प्रति ही सरसात है । र्यों हरिप्रोध जराव जरे खरे कंकन कंचन के दरसात है ।—अयोध्या० (शब्द०) ।

जराशोष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शोष रोग जो लोगों को वृद्धावस्था में हो जाता है ।

विशेष—इस शोष रोग में रोगी दुर्बल हो जाता है, उसे भोजन से भरवि हो जाती है और बल, वीर्य तथा बुद्धि का क्षय हो जाता है ।

जरासंध—पुं० [सं० जरासन्ध] महाभारत के अनुसार मगध देश का एक राजा । यह बृहद्रथ का पुत्र और कंस का श्वसुर था ।

विशेष—पुराणों के अनुसार यह दो टुकड़ों में उत्पन्न हुआ और 'जरा' नाम की राजसी द्वारा दोनों टुकड़ों को जोड़कर सजीव किया गया । इसलिये इसका नाम जरासंध, जरासुत आदि पड़ा । कृष्ण द्वारा अपने श्वसुर कंस के मारे जाने पर इसने मयुरा पर अठारह बार आक्रमण किया था । युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अर्जुन और भीम को साथ लेकर कृष्ण इसकी राजधानी गिरिबज में ब्राह्मण के देश में गए और उन राजाओं को छोड़ देने के लिये कहा जिन्हें उसने परास्त कर कैद

कर लिया था, किंतु जरासंध ने नहीं माना। अंततः भीम के साथ युद्ध करने की माँग स्वीकार कर ली। कहते हैं कई दिनों तक मल्ल युद्ध होने के बाद भी जब यह पराजित नहीं हुआ तब एक दिन कृष्ण का संकेत पाकर भीम ने द्वा द्व युद्ध में जरा राक्षसी द्वारा जोड़े गए भ्रंग के दोनों विभागों को चीरकर इसे मार डाला था।

जरासिंध^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जरासंध'।

जरासुत—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध।

यौ०—जरासुतजित् = जरा राक्षसी के पुत्र जरासंध को जीतनेवाला। भीम।

जराह—संज्ञा पुं० [प्र० जरह] दे० 'जरह'।

जरियो—वि० स्त्री० [स्त्री० जरिन्] बूढ़ा। बूढ़ी (स्त्री०)

जरित^१—वि० [सं०] १. बूढ़। जईफ। २. क्षीण। दुर्बल। कृष (स्त्री०)।

जरित^२—वि० [हि० जरना, प्र० हि० जरना] दे० 'जड़ित'।—
उ०—पट्टी करनि कंठ कटुला बन्धो, केहरि नख मनि जरित कराए।—तुलसी प्र०, पु० २८६।

जरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जरिमन्] बुढ़ापा। जरा। बूढ़ावस्था।

जरिया^१—संज्ञा पुं० [हि० जरिया] दे० 'जरिया'। उ०—नग कर मरम सो जरिया जाना। जरे जो अस नग हीर पखाना।—जायसी प्र० (गुप्त), पु० २४१।

जरिया—वि० [हि० जरना] जो जलाने से उत्पन्न हो। जलाकर बनाया या तैयार किया हुआ। जैसे, जरिया शोरा, जरिया नमक।

यौ०—जरिया शोरा = एक प्रकार का शोरा जो भाप उड़ाकर बनाया जाता है। जरिया नमक = वह लारा नमक जो घाँव से तैयार किया जाता है।

जरिया^२—संज्ञा पुं० [प्र० जरियह् या जरीअह्] १. संबंध। लगाव। द्वार। जैसे,—उमके यहाँ अगर भापका कोई जरिया हो तो बहुत जल्दी काम हो जायगा। २. हेतु। कारण। सबब। ३. उपाय। साधन। तदबीर। उ०—ती पाई जरिया सिर पर धरिया, विष ऊर्षारिया तन तिरिया।—सुंदर० प्र०, भा० १, पु० २३१।

जरिष्क—संज्ञा पुं० [प्रा० जरिष्क] दाहलुमदी।

जरी^१—वि० पुं० [सं० जरिन्] [वि० स्त्री० जरिणी] बूढ़ा। बूढ़।

जरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जरी] जड़ी। बूटी। उ०—तब सो जरी ध्रुत भेद पाया। जो मरे हुत तिन्ह छिरिकि जियावा।—जायसी (शब्द०)।

जरी—संज्ञा स्त्री० [प्रा० जरी] १. ताश नामक कपड़ा जो बादले से बुना जाता है। २. सोने के तारों आदि से बना हुआ काम।

जरी^३—वि० सोने का। स्वर्णम। स्वर्णमय।

जरीद—संज्ञा पुं० [प्र०] १. पत्रवाहक। कासिद। २. जासूस। गुप्तचर (स्त्री०)।

जरीदा—संज्ञा पुं० [प्र० जरीदह्] १. एकाकी व्यक्ति। अकेला आदमी। २. समाचारपत्र। अखबार (स्त्री०)।

जरीनाल—संज्ञा स्त्री० [हि० जरी+नाल (= ठोकर)] कहाँ की बोलचाल में वह स्थान जहाँ इंटों और रोड़े पड़े हों।

जरीफ वि० [प्र० जरीफ] परिहास करनेवाला। मसखरा। ठट्टे-बाज। मखौलिया।

जरीब—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] माप जिससे भूमि नापी जाती है।

विशेष—हिंदुस्तानी जरीब ५५ गज की और अंग्रेजी जरीब ६० गज की होती है। एक जरीब में २० गट्टे होते हैं।

यौ०—जरीबकश। जरीबकशी = (१) जरीब द्वारा खेतों की पैमाइश। (२) जरीब खींचने का काम।

मुहा०—जरीब डाकना = भूमि को जरीब से नापना।

२. लाठी। छड़ी।

जरीबकश—संज्ञा पुं० [प्रा०] वह मनुष्य जो भूमि नापने के समय जरीब खींचने का काम करता है।

जरीबपत^७—संज्ञा पुं० [प्रा० जरबपत] दे० 'जरबपत'। उ०—जरीबपत भी छोड़े ताँसे, ताहि समुक्ति के धरना।—सं० दरिया०, पृ० १४५।

जरीबाना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुरमाना'। उ०—घागे तो जरीबाना, फेर जहलखाना रे हरी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५६।

जरीबी—वि० [प्रा०] (भूमि) जो जरीब से नापी हुई हो।

जरीमाना^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुरमाना'।

जरीली—वि० स्त्री० [हि० जरना + ईला (प्रत्यय०)] सोने के तारों से निमित। जड़ावदार। जिसपर जड़ाव का काम हो। उ०—कहें प्रभा श्यामल इंदनीसी। मोती छरी सुंदर ही जरीली।—श्यामा०, पृ० ३८।

जरुमा^१—संज्ञा पुं० [सं० जरा] जरावस्था। बूढ़ावस्था। बुढ़ापा। उ०—जोबन बाल बूढ़ अवस्था। जोबन हारिमा जरुमा जिता।—प्राण०, पृ० २४२।

जरुथ^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मांस। गोश्त।

जरुथ^२—वि० कटुभाषी। कटुभाषी।

जरुर^१—क्रि० वि० [प्र० जरुर] [वि० जरुरी। संज्ञा जरुरत] अवश्य। निःसंदेह। निश्चय कर्त्तव्य।

यौ०—जरुर जरुर = अवश्यमेव।

जरुर^२—संज्ञा पुं० [प्र० जरुर] दवा की बुकनी जो जरुम या घाँव में छोड़ी जाय (स्त्री०)।

जरुरत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जरुरत] आवश्यकता। प्रयोजन।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

यौ०—जरुरतमंद = (१) इच्छुक। आकांक्षी। (२) दीन। दण्ड। मुंहताज। (३) भिक्षुक। मित्तारी।

जरुरतन्—क्रि० वि० [प्र० जरुरतन] आवश्यकतावश। कारणवश। जरुरत से।

जरुरियात—संज्ञा स्त्री० [प्र० जरुरी का बहुव०] आवश्यक चीजें।

जरुरी—वि० [प्रा० जरुरी] १. जिसकी जरुरत हो। जिसके बिना

काम न चले। प्रयोजनीय। २. जो आवश्यक होना चाहिए।
आवश्यक। आवश्यक।

जरूसा^१—वि० [सं० जटा + हि० वाला (प्रत्य०)] अथवा हि० रुड +
ऊला (प्रत्य०)] १. गर्भकासीन केशोंवाला। गर्भोत्पन्न केश
या जटा से युक्त। उ०—नित ही ब्रजजन हित अनुकूलो।
जसुदा जीवन लला जरूनी।—घनानन्द०, पृ० २३२। २.
जटुल। जन्मजात लक्षण चिह्नों से युक्त।

जरोटन—संज्ञा स्त्री० [सं० जलाटनी] जोक। उ०—कोर कजरारी
कैधो फरकत फेर फेर, सूकत जरोटन की धिरक यकैसी सी।
—पजनेस०, पृ० ६।

जरोल—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत
होती है।

विशेष—यह इमारत, जहाज और तोपों के पहिए बनाने के काम
आती है। यह बंगाल में, विशेषकर सिलहट के कछार में,
चटगाँव और उत्तरी नीलगिरि में बहुत होता है।

जरौट^१—वि० [हि० जड़ना] जड़ाऊ। उ०—कोऊ कजरौट जरौट
लिए कर कोड मुरछल कोऊ छाता।—रघुराज (शब्द०)।

जर्कबर्क—वि० [फ्रा० जर्क बर्क] जिसमें खूब तड़क भड़क हो।
भड़कीला। चमकीला। भड़कदार।

जर्जर^१—वि० [सं०] १. जीर्ण। जो बहुत पुराना होने के कारण
बेकाम हो गया हो। २. फूटा। टूटा। खंडित। ३. बूढ़।
बुढ़ा। ४. (ध्वनि) जो किसी पात्र के टूटने से हो (को०)।

जर्जर^२—संज्ञा पुं० १. छरीला। बुढ़ना। पस्थरफूल। २. ईद्र की
पताका (को०)।

जर्जरानना—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्जराना] एक मात्रिका का नाम जो
कार्तिकेय की अनुचरी है।

जर्जरता—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्जर + हि० ता (प्रत्य०)] पुरानापन।
जीर्णता। उ०—स्मृति चिह्नों की जर्जरता में। निष्ठुर कर
की बबरता में।—सहर, पृ० ३४।

जर्जरित—वि० [सं० जर्जरित] १. जीर्ण। पुराना। २. टूटा। फूटा।
खंडित। ३. पूर्णतः प्राकृत या अभिभूत।

जर्जरीक—वि० [सं०] १. बहुत बूढ़। बुढ़ा। २. जिसमें बहुत से छेद
हो गए हों। घने छिद्रवाला।

जर्णी^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. (घटता हुआ या कृष्ण पक्ष का) चंद्रमा।
२. झल। पेड़।

जर्णी^२—वि० जीर्ण। पुराना। क्षीण।

जर्णी—संज्ञा, स्त्री० [हि० जलना, पुं० हि० जरना] विरह। वियोग।
जलन। जैसे, जर्णी को घग।

जर्त्त^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी। २. योनि।

जर्त्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन बाहीक देश का एक नाम। २.
उक्त देश का निवासी।

जर्त्तिल—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली तिल। बनतिलवा।

जर्त्त^२—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जर्त'।

जर्द^१—वि० [फ्रा० जर्द] पीला। पीले रंग का। पीत।

यौ०—जर्दगोश=छली। धूर्त। मक्कार। जर्दधरम=(१)
श्वेन जाति के शिकारी पक्षी। (२). पीली भाँखोंवाला।
जर्दचोब=हरिद्रा। हल्दी।

जर्दी—संज्ञा पुं० [फ्रा० जर्दी] दे० 'जरदा'।

जर्दालू—संज्ञा पुं० [फ्रा० जर्दालू] एक मेवा। जरदानू। लुबानी।

विशेष—दे० 'लुबानी'।

जर्दी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] पीलापन। पीलाई। वि० दे० 'जरदी'।

जर्दोज—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरदोज] दे० 'जरदोज'।

जर्दोजी—संज्ञा स्त्री० [जरदोजी] दे० 'जरदोजी'।

जर्नल—संज्ञा पुं० [अंग०] दे० 'जरनल'।

जर्नलिस्ट—संज्ञा पुं० [अंग०] दे० 'पत्रकार'।

जर्फ—संज्ञा पुं० [अंग० जर्फ] १. धरतन। भाजन। पात्र। २.
योग्यता। पात्रता। ३. सहनशीलता। गंभीरता (को०)।

जर्नी^१—संज्ञा पुं० [अंग० जर्नी] १. अणु। २. वे छोटे छोटे कण
जो सूर्य के प्रकाश में उड़ते हुए दिखाई देते हैं। ३. जो का
सीवाँ भाग। ४. बहुत छोटा टुकड़ा या खंड।

जर्नी^२—वि० दे० 'जरा'।

जर्नी^३—संज्ञा स्त्री० सपत्नी। सीत। सीकन।

जर्नीक—वि० [अंग० जर्नीक] धूर्त। मुहदेखी कहनेवाला। द्विजिह्व।

यौ०—जर्नीकखाना=धूर्तवास। धूर्तों की बैठक।

जर्नीद—वि० [अंग० जर्नीद] जिरहबस्तर बनानेवाला। शस्त्र
निर्माता।

यौ०—जर्नीदखाना=शस्त्रागार।

जर्नीफ—वि० [अंग० जर्नीफ] १. हँसोड़। दिल्लगीबाज। २.
प्रतिभाशील (को०)।

जर्नीर—वि० [अंग०] [संज्ञा जर्नीरी] १. बलिष्ठ। प्रबल। २.
लड़ाका। बहादुर। वीर। ३. विशाल। भारी (सेना या
भीड़)।

जर्नीरा—संज्ञा पुं० [अंग० जर्नीर] १. बहुत विशाल सेना। २. एक
भयकर विबैला बिच्छू जिसकी पूँछ जमोन पर घिसटती
चलती है (को०)।

जर्नीही—संज्ञा स्त्री० [अंग० जर्नीर + ई (प्रत्य०)] बहादुरी।
वीरता। सूरमापन।

जर्नीह—संज्ञा पुं० [अंग०] [संज्ञा जर्नीही] चीर फाड़ का काम
करनेवाला। फोड़ों आदि को चीरकर चिकित्सा करनेवाला।
शल्यचिकित्सक। शल्यचिकित्सक।

जर्नीही—संज्ञा स्त्री० [अंग०] चीर फाड़ का काम। चीर फाड़ की
सहायता से चिकित्सा करने का काम। शल्यचिकित्सा।
शल्यचिकित्सा।

जर्वर—संज्ञा पुं० [सं०] नागों के एक पुरोहित का नाम जिसने एक
बार यज्ञ करके सर्पों की रक्षा की थी।

जर्हिल—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली तिल। जतिल।

जलंग^१—संज्ञा पुं० [सं० जलङ्ग] महाकाल नाम की एक लता।

जलंग^२—वि० जलसंबंधी। जलीय। जल का।

जलंगम—संज्ञा पु० [सं० जलङ्गम] बाँडाल

जलंतो^(१)—वि० [हि० जलना] जलनेवाली। जलती हुई। प्रज्वलित। उ०—तन भीतर मन मानिया बाहर कहूँ न लाग। उवाला ते फिर जल भया बुझी जलंतो भाग।—कबीर सा० सं०, पृ०, ४५।

जलंधर—संज्ञा पु० [सं० जलन्धर] १. एक पौराणिक राक्षस का नाम जो शिव जी की कोपाग्नि से गंगा-समुद्र-संगम में उत्पन्न हुआ था।

विशेष—पद्म पुराण में लिखा है कि यह जनमते ही इतने जोर से रोने लगा कि सब देवता व्याकुल हो गए। उनकी ओर से जब ब्रह्मा ने जाकर समुद्र से पूछा कि यह किसका लड़का है तब उसने उत्तर दिया कि यह मेरा पुत्र है, आप इसे ले जाएँ। जब ब्रह्मा ने उसे अपनी गोद में लिया तब उसने उनकी दाढ़ी इतने जोर से खींची कि उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ा। इसी लिये ब्रह्मा ने इसका नाम 'जलंधर' रखा। बड़े होने पर इसने इंद्र की नगरी अमरावती पर अधिकार कर लिया। अंत में शिव जी इंद्र की ओर से उससे लड़ने गए। उसकी स्त्री वृंदा ने, जो कालनेमि की कन्या थी, अपने पति के प्राण बचाने के लिये ब्रह्मा की पूजा आरंभ की। जब देवताओं ने देखा कि जलंधर किसी प्रकार नहीं मर सकता तब अंत में जलंधर का रूप धारण करके विष्णु उसकी स्त्री वृंदा के पास गए। वृंदा ने उन्हें देखते ही पूजन छोड़ दिया। पूजन छोड़ते ही जलंधर के प्राण निकल गए। वृंदा क्रुद्ध होकर शाप देना चाहती थी पर ब्रह्मा के बहुत कुछ समझाने बुझाने पर वह सती हो गई।

२. एक प्राचीन ऋषि का नाम। ३. योग का एक बंध।

जलंधर^२—संज्ञा पु० [हि० जलोदर] दे० 'जलोदर'।

जलंबल—संज्ञा पु० [सं० जलम्बल] १. नदी। २. अंजन।

जल^१—वि० [सं०] १. स्फूर्तिहीन। ठंडा। जड़। २. सूढ़। हतज्ञान [को०]।

जल—संज्ञा पु० [सं०] १. पानी। २. उशीर। जलस। ३. पूर्वाषाढा नक्षत्र। ४. ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली में चौथा स्थान। ५. सुगंधवाला। नेत्रवाला। ६. धर्मशास्त्र के अनुसार एक प्रकार की परीक्षा या दिव्य। वि० दे० 'दिव्य'।

जलमलि—संज्ञा पु० [सं०] १. पानी का भँवर। २. एक काला कीड़ा जो पानी पर तैरा करता है। पैरोवा। भीतुमा। उ०—भरत दशा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जल मलि गति बैसी।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसकी बनावट खटमल की सी होती है, परंतु आकार में यह खटमल से बहुत बड़ा होता है। इसका स्वभाव है कि यह प्रायः एक ओर घूम घूमकर तैरता है। जलप्रवाह के विरुद्ध भी यह तेजी से तैर सकता है।

जलई—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़ना या बीजल] वह काँटा जिसके दोनों ओर दो झंझुके होते हैं और दो तश्तियों के जोड़ पर जड़ा जाता है। यह प्रायः नाव के तश्तियों को जड़ने में काम आता है।

जलकंटक—संज्ञा पु० [सं० जलकण्टक] १. सिंघाड़ा। २. कुंभी।

जलकंडु—संज्ञा पु० [सं० जलकण्डु] एक प्रकार की खुजली जो पानी में बहुत काल तक लगातार रहने से पैरों में उत्पन्न होती है।

जलकंद—संज्ञा पु० [सं० जलकन्द] १. केला। कदली। २. काँदा। जलकंदरा।

जलकंदरा—संज्ञा पु० [सं० जल + कन्दली] काँदा नामक गुल्म जो प्रायः तालों के किनारे होता है।

जलक—संज्ञा पु० [सं०] १. शंख। २. कौड़ी।

जलकपि—संज्ञा पु० [सं०] शिशुमार या सूँस नामक जलजंतु।

जलकपोत—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया जो पानी के किनारे होती है।

जलकना^(१)—क्रि० प्र० [हि० झलकना] चमकना। जगमगाना। देदीप्यमान होना। उ०—झिलवत से निकल जलकते दरबार मे आया।—कबीर मं०, पृ० ३९०।

जलकरंक—संज्ञा पु० [सं० जलकरङ्क] १. नारियल। २. पद्म। कमल। ३. शंख। ४. लहर। तरंग। जललता।

जलकर—संज्ञा पु० [हि० जल + कर] १. वह पदार्थ जो जलाशयों आदि में हो और जिसपर जमींदार की ओर से कर लगाया जाय। जैसे, मछली, मिछाडा, कवलगट्टा आदि। २. इस प्रकार के पदार्थों पर का कर। ३. वह द्रव्य या कर जो नगरों में पानी देने के बदले में नगरपालिकाएँ वसूल करती हैं। पानी का कर।

जलकल—संज्ञा पु० [हि०] पानी पहुँचाने की कल। पानी का नल। यौ०—जलकल विभाग=दे० 'वाटर वर्क्स'।

जलकल्क—संज्ञा पु० [सं०] १. सेवार। २. कीचड़। काई।

जलकल्मष—संज्ञा पु० [सं०] समुद्रमंथन में निकला हुआ विष [को०]।

जलकष्ट—संज्ञा पु० [सं० जल + कष्ट] जल का अभाव। पानी की कमी।

जलकांक्ष—संज्ञा पु० [सं० जलकाङ्क्ष] [स्त्री० जलकांक्षी] हाथी।

जलकांत—संज्ञा पु० [सं० जलकान्त] वायु। हवा। पवन।

जलकांतार—संज्ञा पु० [सं० जलकान्तार] वरुण।

जलकाँदा—संज्ञा पु० [हि० जल + काँदा] दे० 'काँदा'।

जलकाक—संज्ञा पु० [सं०] जलकौघा नामक पक्षी।

पर्याय—दास्यूह। कालकंटक।

जलकामुक—संज्ञा पु० [सं०] १. सूर्यमुखी। २. कुटुंबिनी नाम का गुल्म [को०]।

जलकाय—संज्ञा पु० [सं०] धैन शास्त्रानुसार वह शरीरधारी जिसका जल ही शरीर है।

जलकिनार—संज्ञा पुं० [हि० जल + किनारा] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

जलकिराट—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राह या नाक नामक जलजंतु।

जलकुंतल—संज्ञा पुं० [सं० जलकुन्तल] सेवार।

जलकुंभी—संज्ञा स्त्री० [हि० जल + कुम्भीर] कुंभी नाम की वनस्पति जो जलाशयों में पानी के ऊपर होती है।

विशेष—दे० 'कुंभी'—८।

जलकुंकुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलकुंकुरी] एक जलपक्षी। मुर्गाबी।
उ०—जैसे जल मई रहै जलकुंकुरी, पंख लिस जल नाहि।—
जग० श०, भा० २, पृ० ८६।

जलकुंकुट—संज्ञा पुं० [सं०] मुरगाबी। उ०—कट्टु कारंढव उड़त
कहै जलकुंकुट आवत।—भारतेंतु प्र०, भा० १, पृ० ४५६।

जलकुंकुम्भ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की जल की चिड़िया।
कुकुम्भी। बनमुर्गी।

पट्यां०—कोयल। शिलरी।

जलकुञ्जक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेवार। २. काई।

जलकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कूपी। कूप। २. तालाब। सर।
३. जलावत। भावत। भँवर [को०]।

जलकूर्म—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार या सूँस नामक जलजंतु।

जलकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पुच्छल तारा जो पश्चिम में उदय होता है।

विशेष—इसकी चोटी या शिखा पश्चिम की ओर होती है और
स्निग्ध तथा मूल में मोटी होती है। यह देखने में स्वच्छ होता
है। फलित ज्योतिष के अनुसार इसके उदय से नौ मास तक
सुभिक्ष रहता है।

जलकेलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलक्रीडा'।

जलकेश—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार।

जलकौआ—संज्ञा पुं० [हि० जल + कौआ] एक प्रकार का जलपक्षी।

विशेष—इसकी गर्दन सफेद, चौंच झुरी और शेष सारा शरीर
काला होता है। मादा के पेर नर से कुछ विशेष बड़े होते
हैं। यह चिड़िया सारे यूरोप, एशिया, अफ्रीका और उत्तरी
अमेरिका में पाई जाती है। इसकी संबाई हो से तीन
हाथ तक होती है और यह एक बार में चार से छह तक
अंडे देती है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस खाने में स्निग्ध,
भारी, वातनाशक, शीतल और बलवर्धक होता है।

जलक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] देव और पितृ आदि का तपण।

जलक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रीड़ा जो जलाशयों आदि में की
जाय। जलविहार। जैसे, तैरना, एक दूसरे पर पानी फेंकना।

जलखग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जो पानी के किनारे
रहता है।

जलखर—संज्ञा पुं० [हि० जल + खर] दे० 'जलखरी'।

जलखरी—संज्ञा स्त्री० [हि० जल + काढ़ना, या खारी] रस्सी या

तागे की जाल की बनी हुई पैली या झोली जिसमें लोग फल
आदि रखकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं।

जलखावा—संज्ञा पुं० [हि० जल + खाना] जलपान। कलेवा।

जलगर्द—संज्ञा पुं० [सं० जल + गर्द] पानी में रहनेवाला साँप।
हेडहा।

जलगर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध के प्रधान शिष्य ध्यानंद का पूर्वजन्म
का नाम।

जलगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी में का भँवर। २. कछुआ।
३. वह देश जिसमें जल कम हो। ४. चौकोर तालाब (को०)।

जलघड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० जल + घड़ी] एक यंत्र जिससे समय का
ज्ञान होता है।

विशेष—इसमें पानी पर तैरता हुआ एक कटोरा होता है जिसके
पेदे में छेद होता है। यह कटोरा पानी के नाँव में पड़ा रहता
है। पेदी के छेद से धीरे धीरे कटोरे में पानी जाता है और
कटोरा एक घंटे में भरता और डूब जाता है। डूबने के बाद
फिर कटोरे को पानी से निकालकर खाली करके पानी की
नाँव में डाल देते हैं और उसमें फिर पहले की तरह पानी भरने
लगता है। इस प्रकार एक एक घंटे पर वह कटोरा डूबता
है और फिर खाली करके पानी के ऊपर छोड़ा जाता है।

जलघरा—संज्ञा पुं० [हि० जल + घरा] वह स्थान जहाँ जल आदि
रखा जाता है। बहाने का स्थान। उ०—ताकों श्रोनाथ जी
के जलघरा में स्नान कराइये की सेवा सौपी।—बो सो बावन०,
भा० १, पृ० २०६।

जलधुमर—संज्ञा पुं० [हि० जल + धूमना] पानी का भँवर। जला-
वत। चक्कर।

जलचत्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह देश जिसमें जल कम हो। २.
चौकोर तालाब (को०)।

जलचर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचरी] पानी में रहनेवाले
जंतु। जलजंतु। जैसे, मछली, कछुआ, मगर, आदि। उ०—
जलचर पलचर नभचर नामा। जे जड़ चेतन जीव सहाना।
—मानस, १।३।

यौ०—जलचरकेतु(७) = मीनकेतु। कामदेव। उ०—सहित
सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरष हिय जलचर केतू।—
मानस, १।१२५।

जलचरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मछली। उ०—मधुकर मो मन अधिक
कठोर। बिगसिन गयो कुंभ काँचे लों बिछुरत नंदकिसोर।
हमतें असो जलचरी बपुरी अपनो नेह निबाहो। जल तें
बिछुरि तुरत तन त्याग्यो पुनि जल ही को चाह्यो।—सूर०,
१०।३७२६।

जलचादर—संज्ञा स्त्री० [सं० जल + हि० चादर] किसी ऊँचे स्थान से
होनेवाला जल का झीना और विस्तृत प्रवाह। उ०—सहज
सेत पचतोरिया पहिरत अति छवि होति। जलचादर के दीप
लौ जगमगाति तन जोति।—बिहारी र०, दो० ३४०।

विशेष—प्रायः घनवानों और राजाओं आदि के स्थानों में शोभा
के लिये इस प्रकार जल का प्रवाह कराया जाता है, जिसे जल-

चादर कहते हैं। कभी इसके पीछे घाले बनाकर उनमें दीपक की पंक्ति भी जलाई जाती है जिससे रात के समय जलचादर के पीछे जगमगाती हुई दीपावली बहुत शोभा देती है।

जलचारी—संज्ञा पुं० [सं०] [जी० जलचारिणी] जल में रहनेवाला जीव। जलचर।

जलचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] कुंभीर या नाक नामक जलजंतु।

जलचौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चौलाई'।

जलजंतु—संज्ञा पुं० [सं० जलयन्त्र, प्रा० जलजंत] कुहारा। दे० 'जलयंत्र'। उ०—जलजंत छुट्टि महाराज भाय। रानीन जुक्त मन मोद पाय।—प० रासो, पृ० ४०।

जलजंतु—संज्ञा पुं० [सं० जलजन्तु] जल में रहनेवाले जीवजंतु। जलचर।

जलजंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जनन-तुहा] जोर।

जलजंत्र—संज्ञा पुं० [सं० लयन्त्र; प्रा० जलजत्र, जलजत] भरना। कुहारा। उ०—चट्टी और सघन पर्वत सुगंध। जलजंत्र छुटे उच्चे संबंध।—ह० रासो, पृ० ६३।

जलजंबुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजम्बुका] जलजामुन जो साधारण जामुन से छोटा होता है। दे० 'जलजामुन'।

जलजंबूका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजम्बूका] दे० 'जलजंबुका'।

जलज^१—वि० [सं०] जल में उत्पन्न होनेवाला। जो जल में उत्पन्न हो।

जलज^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। २. शंख। ३. मछली। ४. पनीहा नाम का वृक्ष। ५. सेवार। ६. प्रबुद्ध। जलवेत। ७. जलजंतु। ८. सामुद्रिक या लोनार नमक। ९. मोती। १०. कुचले का पेड़। ११. चौलाई।

जलजन्म—संज्ञा पुं० [सं० जलजन्मन्] कमल [को०]।

जलजन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

जलजला^१—वि० [सं० ज्वल + जल > जज्वल] कोषी। बीस होने वाला। बिगड़ल।

जलजला^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० जलजनल] धूकप। भूडोल।

जलजलाना—क्रि० प्र० [सं० ज्वल, प्रा० जल, भाल, भल] भल भल करना। चमकना। उ०—वे हिलकर रह जाते हैं, उजली धूप जलजलाती हुई नाचती निकल जाती है।—आकाश०, पृ० १३३।

जलजात^१—वि० [सं०] जो जल में उत्पन्न हो। जलज।

जलजात^२—संज्ञा पुं० पद्म। कमल।

जलजान—संज्ञा पुं० [सं० जलजान] दे० 'जलयान'। उ०—इहुप, पोत, नतका, पलन, तरि, वहित्र, जलजान। नाम नाँव चढ़ि भव उदधि केते तरे प्रजान।—नंद० प्र०, पृ० ६१।

जलजामुन—संज्ञा पुं० [हिं० जल + जामुन] एक प्रकार का जामुन जिसके वृक्ष जंगलों में नदियों के किनारे प्रायः प्राय उगते हैं। इसके फल बहुत छोटे और पत्तें कनेर के पत्तों के समान होते हैं।

जलजाबलि—संज्ञा स्त्री० [सं० जलज + जबलि] मोतियों की माला। उ०—कट लोल कपोल कलोल करे, कल कंठ बनी जलजाबलि

है। धंग धंग तरंग उठे दुति की परिहै मनो रूप प्रवेवर वी।
—धनानंद, पृ० ५८५।

जलजासन—संज्ञा पुं० [सं०] कमल पर बैठनेवाले, ब्रह्मा।

जलजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] नक्र। नाक। घड़ियाल [को०]।

जलजीवी—संज्ञा पुं० [सं० जलजीविन्] मत्लाह। मछुप्रा [को०]।

जलजोनि—संज्ञा पुं० [सं० जल (= कृपीट) + योनि, प्रा० जोणि] अग्नि। पावक। उ०—जातवेद जलजोनि हरि बिप्रमान बृहमान।—अनेकार्य०, पृ० ४।

जलडमरूमध्य—संज्ञा पुं० [सं०] भूगोल में जल की वह पतली प्रणाली जो दो बड़े समुद्रों या जलों के मध्य में हो और दोनों को मिलाती हो।

जलडिब्ब—संज्ञा पुं० [सं० जलडिम्ब] शंबूक। घोंघा।

जलतरंग—संज्ञा पुं० [सं० जलतरङ्ग] १. जल का हिलोर। जल की लहर। २. एक प्रकार का बाजा।

विशेष—यह बाजा धातु की बहुत सी छोटी बड़ी कटोरियों को एक क्रम से रखकर बनाया और बजाया जाता है। बजाने के समय सब कटोरियों में पानी भर दिया जाता है और उन कटोरियों पर किसी हलकी मुंगरी से आघात करके तरह तरह के ऊँचे नीचे स्वर उत्पन्न किए जाते हैं।

जलतरन—संज्ञा पुं० [सं० जल + तरण, हिं० तरना] पानी में तैरने की विद्या। उ०—पसुभाषा श्री जलतरन, धातु रसाइन जानु। रतन परख श्री चातुरी, सकल धंग सग्यानु।—माधवानल०, पृ० २०८।

जलतरोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + तरोई] मछली। (हास्य)।

जलताडन—संज्ञा पुं० [सं०] पानी पीटना। जल को पीटने का काम। २. (लाक्ष०) निरर्थक कार्य। व्यर्थ का काम [को०]।

जलतापिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे हिनसा, हेलसा कहते हैं।

जलतापी—संज्ञा पुं० [सं० जलतापिन्] दे० 'जलतापिक'।

जलताल—संज्ञा पुं० [सं०] सलई का पेड़ [को०]।

जलसिक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सलई का पेड़।

जलत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छाता। २. वह कुटी जो एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान तक पहुँचाई जा सके।

जलत्रास—संज्ञा पुं० [सं०] वह भय जो कुत्ते, भृगाल आदि जीवों के काटने पर मनुष्य को जल देखने प्रयत्न उसका नाम सुनने से उत्पन्न होता है। अंग्रेजी में इसे 'हाइड्रोफोबिया' कहते हैं।

जलथंभ—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भ, जलस्तम्भन्] मंत्रों आदि से जल का स्तंभन करने या उसे रोकने की क्रिया। जलस्तंभन। उ०—बिरह बिधा जल परस बिन बसियत मो मन ताल। कछु जानत जलथंभ विधि दुर्जोधन लौ लाल।—बिहारी र०, दो० ४१४।

जलद^१—वि० [सं०] जब देखेवाला। जो जल दे।

जलद^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. मोषा। ३. कपूर। ४. पुराणानुसार शाकडीप के अंतर्गत एक वर्ष का नाम।

जलदकाल—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाऋतु । बरसात ।

जलदक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] शरद ऋतु ।

जलदसिताला—संज्ञा पुं० [हि० जल्दी + तिलाला] वह साधारण तिताला ताल जिसकी गति साधारण से कुछ तेज हो । यह कौवाली से कुछ विलंबित होता है ।

जलदुर्—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य (को०) ।

जलदस्यु—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री डाकू । समुद्री जहाजों पर डकैती करनेवाले व्यक्ति ।

जलदाता—संज्ञा पुं० [सं० जलदात्] तर्पण करनेवाला । देव, ऋषि और पितृ गणों को पानी देनेवाला (को०) ।

जलदान—संज्ञा पुं० [सं०] तर्पण (को०) ।

जलदाशन—संज्ञा पुं० [सं०] सागू का पेड़ ।

विशेष—प्राचीन काल में प्रवाद था कि बादल सागू की पत्तियाँ खाते हैं, इसी से सागू का यह नाम पड़ा ।

जलदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग जो चारों ओर नदी, झील आदि से सुरक्षित हो ।

जलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्वाषाढ़ा नाम का नक्षत्र । २. वरुण जो जल के देवता है ।

जलदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण ।

जलदोदो—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पीछा जो काई की तरह पानी पर फैलता है । इसके शरीर में लगने से खुजली पैदा होती है ।

जलद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ता, शंख आदि द्रव्य जो जल से उत्पन्न होते हैं ।

जलद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोन, जिससे खेत में पानी देते या नाव का पानी उलीचते हैं ।

जलद्विप—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्तनपायी जलजंतु । कि० हे० 'जलहस्ती'

जलधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल । २. मुस्ता । ३. समुद्र । ४. तिनिस । तिनिस का पेड़ । ५. जलाशय । तालाब । झील । उ०—बहुता दिन बीजह पछह राति पड़ती देखि । रोही भक्ति डेरा किया ऊजल जलधर देखि ।—ढोला०, दू० ५६८ ।

जलधर केदारा—संज्ञा पुं० [सं० जलधर+हि० केदारा] एक संकर राग जो मेघ और केदारा के योग से बनता है ।

जलधरमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बादलों की श्रेणी । २. बारह भक्षरों की एक वृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, भगण, सगण और मगण (SSS, SH, HGS, SSS) होते हैं । जैसे—मो भासे मोहन हृषको दं योगा । ठानो ऊधो उन कुबजा सों भोगा । साँचो ग्वालागन कर नेहा देखी । प्रेमाभक्ती जलधरमाला लेखी ।

जलधरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्थर का या धातु आदि का बना हुआ वह भर्षा जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है । जलहरी ।

जलधार—संज्ञा पुं० [सं०] शाकद्वीप का एक पर्वत ।

जलधार^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जलधारा] हे० 'जलधारा' ।

जलधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी का प्रवाह । [पानी की धारा । २. एक प्रकार की तपस्या जिसमें तपस्या करनेवाले पर कोई मनुष्य बराबर धार बाँधकर पानी डालता रहता है ।

जलधारी—वि० [सं० जलधारिन्] [वि० स्त्री० जलधारिणी] पानी को धारण करनेवाला । जलधारक ।

जलधारी^१—संज्ञा पुं० बादल । मेघ । उ०—श्रवण न सुतत, चरण गति वाके नैन भये जलधारी ।—सूर ।

जलधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । उ०—बाँध्यो बननिधि नीर-नीधि जलधि सिंधु बारीस । सत्य तोयतिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस ।—मानस, ६।५ । २. एक संख्या जो दस शंख की होती है और कुछ लोगों के मत से दस नील की । ३. चार की संख्या (को०) ।

जलधिगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मी । २. नदी । दरिया ।

जलधिज—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

जलधिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी (को०) ।

जलधिरशना—संज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र रूपी करधनीवाली अर्थात् पृथिवी (को०) ।

जलधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक प्रकार की कल्पित धेनु ।

विशेष—इस धेनु की कल्पना जल के घड़े में दान के लिये की जाती है । इस दान का विधान अनेक प्रकार के महापातकों से मुक्त होने के लिये है, और इस दान का लेनेवाला भी सब प्रकार के पातकों से मुक्त हो जाता है ।

जलन—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वलन, हि० जलना] १. जलने की पीड़ा या दुःख । मानसिक वेदना या ताप । दाह । २. बहुत अधिक ईर्ष्या या दाह ।

मुहा०—जलन निकालना=द्वेष या ईर्ष्या से उत्पन्न इच्छा पूरे करना ।

जलनकुल—संज्ञा पुं० [सं०] ऊबबिलाव ।

जलना—क्रि० प्र० [सं० ज्वलन] १. किसी पदार्थ का अग्नि के संयोग से झंगारे या लपट के रूप में हो जाना । दग्ध होना । भस्म होना । बलना । जैसे, लकड़ी जलना, मशाल जलना, घर जलना, दीपक जलना ।

यौ०—जलता बलता=होलिकाष्टक या पितृपक्ष का कोई दिन जिसमें कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता ।

मुहा०—जलती आग=मथानक विपत्ति । जलती आग में कूटना=जान बूझकर भारी विपत्ति में फँसना ।

२. किसी पदार्थ का बहुत गरमी या घाँच के कारण भाफ या कण्डेले घाँच के रूप में हो जाना । जैसे, सबेरे पर रोटो जलना, कड़ाही में घी जलना, घूप में घाँस या पीछे का जलना । ३. घाँच लगने के कारण किसी अंग का पीड़ित और विकृत होना । भुलसना । जैसे, हाथ जलना ।

मुहा०—जले पर नमक छिड़कना या लगाना=किसी दुःखी या व्यथित मनुष्य को और अधिक दुःख या व्यथा पहुँचाना ।

जले फफोड़े फोड़ना = दुःखी या व्यथित व्यक्ति को किसी प्रकार, विशेषकर अपना बखला चुकाने की इच्छा से, और अधिक दुःखी या व्यथित करना। जले पाँव की बिल्ली = जो स्त्री हरदम घूमती फिरती रहे और एक स्थान पर न ठहर सके।

४. बहुत अधिक डाह। ईर्ष्या या द्वेष आदि के कारण कुढ़ना। मन ही मन संतप्त होना।

यौ०—जलना भुनना = बहुत कुढ़ना।

मुहा०—जली कटी या जली भुनी बात = वह सगती हुई बात जो द्वेष, डाह या क्रोध आदि के कारण बहुत व्यथित होकर कही जाय। जल मरना = डाह या ईर्ष्या आदि के कारण बहुत कुढ़ना। द्वेष आदि के कारण बहुत व्यथित हो उठना। उ०—तुम्हें अपनायो सब जनिही जब मनु फिरि परिहैं। हरखिहैं न प्रति आदरे निदरे न जरि मरिहैं।—तुलसी (शब्द०)।

जलनाडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलनाली'।

जलनाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी बहने का मार्ग। प्रणाली। नाली। मोरी [को०]।

जलनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. चार की संख्या।

जलनिर्गम—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का निकास।

जलनीम—संज्ञा स्त्री० [हि० जल + नीम] एक प्रकार की कोनिया जो कड़ई होती है और प्रायः जलाशयों के निकट दलदली भूमि में उत्पन्न होती है।

जलनीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार। शैवाल।

जलनीली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलनीलिका'।

जलपंडर(५)—संज्ञा पुं० [सं० जल + देश० पंडुर] जलसर्प। पानी का साँप। उ०—सहजाँ सोई सुमिरिये आलस ऊँघ न आन। जन हरिया तन पेखणों ज्यो जमपंडर जान।—राम० धर्म०, पृ० ५८।

जलपक(५)—वि० [सं० जलपक्व] जल में पकनेवाला। जल में पका हुआ। उ०—धीपक जलपक जेते गने। कटुवा बटुवा ते सब बने।—चित्रा०, पृ० १०३।

जलपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जलपक्षिन्] वह पक्षी जो जल के पास रहता हो।

जलपटल—संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ [को०]।

जलपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. समुद्र। ३. पूर्वाषाढा नक्षत्र।

जलपथ—संज्ञा पुं० [सं०] नाली या नहर जिसमें से पानी बहता हो।

जलपना(५)—क्रि० प्र०, क्रि० सं० [हि०] दे० 'जल्पना'।

जलपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नहर। नाला। जलपथ [को०]।

जलपाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] रुद्राक्ष की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय के उत्तरपूर्वीय भाग में तीन हजार फुट की ऊँचाई पर होता है और उत्तरी कनारा और ट्राबनकोर के जंगलों में भी मिलता है। यह रुद्राक्ष के पेड़ से छोटा होता है। इसका फल गुदेदार होता है और 'जंगली बैतून' कहलाता

है। इसके कच्चे फलों की तरकारी और अचार बनाया जाता है और पके फल यों ही खाए जाते हैं।

जलपाटल—संज्ञा पुं० [हि० जल + पटल] काजल। उ०—कज्जल जलपाटल मुखो नाग दीपयुत सोच। लोपाजन दग लै खली ताहि न देखे कोय।—नंददास (शब्द०)।

जलपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी का बर्तन। २. जल पीने का बर्तन [को०]।

जलपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह थोड़ा और हलका भोजन जो प्रातः-काल कार्य आरंभ करने से पहले अथवा संध्या को कार्य समाप्त करने के उपरांत साधारण भोजन से पहले किया जाता है। कलेवा। नाश्ता।

यौ०—जलपानगृह = वह सार्वजनिक स्थान जहाँ जलपान की मामूली मिलती हो तथा बैठकर खाने पीने की व्यवस्था हो।

जलपाराबत—संज्ञा पुं० [सं०] जलरूपोत् नाम की बिड़िया जो जलाशयों के किनारे रहती है।

जलपिंड—संज्ञा पुं० [सं० जलपिंड] अग्नि। प्राग।

जलपित्त—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

जलपिप्पलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल।

जलपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल नाम की औषधि।

जलपीपल—संज्ञा स्त्री० [सं० जलपिप्पली] पीपल के आकार की एक प्रकार की गंधहीन औषधि।

विशेष—इसका पेड़ खड़े पानी में उत्पन्न होता है। पत्तियाँ बेंत की पत्तियों से मिलती जुलती और कोमल होती हैं। इसके तने में पास पास बहुत सी गाँठें होती हैं और इसकी डालियाँ दो ढाई हाथ लंबी होती हैं। इसके फल पीपल के फल की तरह होते हैं, पर उनमें गंध नहीं होती। यह खाने में तीखी, कड़ुई, कसैली और गुण में मलशोधक, दीपक, पाचक और गरम होती है। इसे 'गंगतिरिया' भी कहते हैं।

पर्या०—महाराष्ट्री। शारदी। तोयवल्लरी। मत्स्यादिनी। मत्स्यगंधा। लागली। शकुलादनी। चित्रपत्री। प्राणदा। तृणशीता। बहुशिला।

जलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. लज्जावती की तरह का एक पौधा जो दलदली भूमि में उत्पन्न होता है। २. कमल आदि फूल जो जल में उत्पन्न होते हैं।

जलपृष्ठजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार।

जलपोत—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का जहाज।

जलप्पना(५)—क्रि० प्र० [सं० जल्प] दे० 'जल्पना'। उ०—बीर भद्र अरु रुद्र जलप्पिय। कही सत्त संकर वन अप्पिय।—पृ० रा०, २५। ४८२।

जलप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेत या पितर आदि की उदकक्रिया। तर्पण।

जलप्रदानिक—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में स्त्रीपर्व के अंतर्गत एक उपपर्व का नाम।

जलप्रपा—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ सर्वसाधारण को पानी पिलाया जाता हो। पीसरा। सबील। प्याऊ।

जलप्रपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी नदी आदि का ऊँचे पहाड़ पर से नीचे स्थान पर गिरना। २. वह स्थान जहाँ किसी ऊँचे पहाड़ पर से नदी नीचे गिरती हो। ३. वर्षाकाल। प्राबुद् ऋतु। जलदागम (को०)।

जलप्रलय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलप्लावन'।

जलप्रवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी का बहाव। उ०—भरत दसा तेहि भवसर कैसी। जल प्रवाह जलमालि गति बैसी।—मानस, ३। २३३। २. किसी के भाव को नदी आदि में बहा देने की क्रिया या भाव। ३. किसी पदार्थ को बहते हुए जल में छोड़ देना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जलप्रांत—संज्ञा पुं० [सं०] नदी या जलाशय के आसपास का स्थान।

जलप्राय—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदेश या स्थान जहाँ जल अधिकता से हो। मनुष्य देश।

जलप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. मछली। २. चातक। पपीहा।

जलप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चातकी। २. पावेंती। दुर्गा। दासायणी। [को०]।

जलप्रेत—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो जल में डूबकर मरने से प्रेत योनि प्राप्त करे।

जलप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलप्लावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी की बाढ़ जिससे आसपास की भूमि जल में डूब जाय। २. पुराणानुसार एक प्रकार का प्रलय जिसमें सब देश डूब जाते हैं।

विशेष—इस प्रकार के प्लावन का वर्णन अनेक जातियों के धर्मग्रंथों में पाया जाता है। हमारे यहाँ के शतपथ ब्राह्मण, महाभारत तथा अनेक पुराणों में वर्णित, वैवस्वत मनु का प्लावन तथा मुसलमानों और ईसाइयों के हजरत नूह का तूफान इसी कोटि का है।

जलफल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

जलबन्ध—संज्ञा पुं० [सं० जलबन्ध] मछली।

जलबन्धक—संज्ञा पुं० [सं० जलबन्धक] पत्थर मिट्टी आदि का बाँध जो किसी जलाशय का जल रोक रखने के लिये बनाया जाता है।

जलबन्धु—संज्ञा पुं० [सं० जलबन्धु] मछली।

जलबालक—संज्ञा पुं० [सं०] विद्याचल पर्वत।

जलबालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली।

जलबिंदुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० जलबिंदुजा] याबनाल शर्करा नाम की दस्तावर घोषि जिसे फारसी में शीरखिस्त कहते हैं।

जलबिंब—संज्ञा पुं० [सं० जलबिम्ब] पानी का बुलबुला।

जलबिंबाल—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलबिल्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह देश जहाँ जल कम हो। २.

केड़ा। ३. कच्छप। कछुआ (को०)। ४. बीकोर झील या तालाब (को०)।

जलबुद्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का बुल्ला। बुलबुला।

जलबेत—संज्ञा पुं० [सं० जलवेतस् या जलवेत्र] जलाशयों के निकट की भूमि में पैदा होनेवाला एक प्रकार का बेत।

विशेष—इस बेत का पेड़ लता के आकार का होता है। इसके पत्ते बाँस के पत्तों की तरह होते हैं और इसमें फल फूल भाते ही नहीं। कुरसियाँ, बेचे इत्यादि इसी बेत के छिलके से बुनी जाती है।

जालबेली—संज्ञा स्त्री० [सं० जलवल्ली] जल में या जल के कारण उत्पन्न होनेवाली लताएँ। उ०—भय दिवाह प्राहुट्ट कुचि तपसरनी की कोप। जलबेली बिहु बागनिष ते जिन भए अलोप।—पृ० रा०, १। ४६५।

जलब्रह्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलमोची या हुरहुर का साग।

जलब्राह्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलब्रह्मी'।

जलभँगरा—संज्ञा पुं० [हि० जल+भँगरा] एक प्रकार का भँगरा जो पानी में या पानी के किनारे होता है।

जलभँवरा—संज्ञा पुं० [हि० जल+भँवरा] काले रंग का एक कीड़ा जो पानी पर बड़ी शीघ्रता से दोड़ता है। इसे भँवरा भी कहते हैं।

जलभाजन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलपात्र'।

जलभालू—संज्ञा पुं० [हि० जल+भालू] सील की जाति का एक जंतु।

विशेष—यह आकार में घाठ नी हाथ लंबा होता है और इसके सारे शरीर में बड़े बड़े बाल होते हैं। यह झुंडों में रहता है और इसकी सत्तर में बस्ती तक मादाओं के झुंड में एक ही नर रहता है। यह पूर्व तथा उत्तरपूर्व एशिया और प्रशांत महासागर के उत्तरी भागों में अधिकता से पाया जाता है।

जलभीति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलत्रास'।

जलभू—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। २. एक प्रकार का कपूर। ३. जलचोलाई। ४. वह स्थान जहाँ जल एकत्र कर रखा जाता है (को०)।

जलभू—संज्ञा स्त्री० वह भूमि जहाँ जल अधिक हो। जलप्राय भूमि। कच्छ। मनुष्य।

जलभू—वि० जलीय। जल में उत्पन्न (को०)।

जलभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

जलभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. एक प्रकार का कपूर। ३. जल रखने का पात्र या बरतन।

जलमंडल—संज्ञा पुं० [सं० जलमण्डल] एक प्रकार की बड़ी मकड़ी जिसके निच के संसर्ग से मनुष्य मर जा सकता है। चिरिया बुदकर।

जलमंडूक—संज्ञा पुं० [सं० जलमण्डूक] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा। जलदुर्।

जलमर्—संज्ञा पुं० [सं० जलम; पुं० हि० जनम] दे० 'जन्म'।

जलमयिका—संज्ञा पुं० [सं०] जलनिवासी एक कीट [को०] ।

जलमग्न—वि० [सं०] जल में डूबा हुआ । जल में निमग्न [को०] ।

जलमद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] एक जलपक्षी । मछरंग । कीड़ित्वा ।

जलमधूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलमहुषा' ।

जलमय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. शिव की एक मूर्ति ।

जलमय^२—वि० जल से पूर्ण या जलनिर्मित [को०] ।

जलमर्कट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलकपि' ।

जलमल—संज्ञा पुं० [सं०] फेन । आग ।

जलमसि—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल । मेघ । २. एक प्रकार का कपूर ।

जलमहुषा—संज्ञा पुं० [सं० जलमधूक] एक प्रकार का महुषा जो दक्षिण में कोंकण की ओर जलाशयों के निकट होता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ उत्तरी भारत के महुए की पत्तियों से बड़ी होती हैं और फूल छोटे होते हैं । वैद्यक में यह ठंडा, ऋणनाशक, बलवीर्यवर्धक तथा रसायन और वमन को दूर करनेवाला माना गया है ।

पय^१—दीर्घपत्रक । ह्रस्वपुष्पक । स्वातु । गोलिका । मधूलिका । क्षौद्रप्रिय । पतंग । कीरेष्ठ । गौरकाश । मांगल्य । मधुपुष्प ।

जलमातंग—संज्ञा पुं० [सं० जलमातङ्ग] दे० जलहृस्ती [को०] ।

जलमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की देवियाँ जो जल में रहनेवाली मानी गई हैं । ये गिनती में सात हैं । इनके नाम हैं—(१) मत्सी; (२) कूर्मी; (३) वाराही; (४) दुर्गा; (५) मकरि; (६) जलूका और (७) जंतुका ।

जलमानुष—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलमानुषी] परीरू नामक एक कल्पित जलजंतु जिसकी नाभि से ऊपर का भाग मनुष्य का सा और नीचे का मछली के ऐसा होता है । उ०—तुरत तुरंगम देव चढ़ाई । जलमानुष अग्रुमा मंग लाई ।—

जलमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलपथ' [को०] ।

जलमार्जार—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊदविलाव ।

जलमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघमाना । बादलों का समूह । उ०—बादल काला बरसिया अत जलमाला घाँस । काम लग्यो चासा करण मतवाला रंग मीण ।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ७ ।

जलमुक^(१)—संज्ञा पुं० [सं० जलमुक, जलमुक्] मेघ । बादल । दे० 'जलमुक्' । उ०—नीरद छोरेद अंबुवह बारिद जलमुक नहि ।—अनेकार्यं, पृ० ८२ ।

जलमुष्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल । मेघ । २. एक प्रकार का कपूर ।

जलमुर्गा—संज्ञा पुं० [हि०] जलकुक्कुट । मुर्गाबी ।

जलमुलेठी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलयष्टि] जलाशय के तट पर पैदा होनेवाली मुलेठी ।

जलमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

जलमूर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] करका । भोला ।

जलमोद—संज्ञा पुं० [सं०] उशीर । खस ।

जलयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० जलयन्त्र] १. वह यंत्र (रहट, चरखी आदि) जिससे कुएँ आदि नीचे स्थानों से पानी ऊपर निकाला या उठाया जाता है । २. जलघड़ी । ३. फुहारा । फीफारा ।

यो०—जलयंत्रगृह = फुहारा घर । वह घर जिसमें फुहारे लगे हों । जलयंत्रमंदिर = दे० 'जलयंत्रगृह' ।

जलयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह यात्रा जो अभिषेक आदि के निमित्त पवित्र जल लाने के लिये की जाती है । २. राजपुताने में प्रचलित एक उत्सव ।

विशेष—यह देवोत्थापिनी एकादशी के बाद चतुर्दशी को होता है । उस दिन उदयपुर के राणा अपने सरदारों के साथ सज्ज-कर बड़े समारोह से किसी हव के पास जाकर जल की पूजा करते हैं ।

३. वैष्णवों का एक उत्सव जो छयेष्ट की पूर्णिमा को होता है । इस दिन विष्णु की मूर्ति को खूब ठंडे जल से स्नान कराया जाता है ।

जलयान—संज्ञा पुं० [सं०] सवारी जो जल में काम आती है । जैसे, नाव, जहाज आदि ।

जलयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० जल + युद्ध] पानी में होनेवाली लड़ाई । जलपोतों द्वारा युद्ध ।

जलरंक—संज्ञा पुं० [सं० जलरङ्ग] बक । बगुला ।

जलरङ्कु—संज्ञा पुं० जलरङ्ग । बनमुर्गी । जलकुक्कुट । मुर्गाबी ।

जलरञ्ज—संज्ञा पुं० [सं० जलरञ्ज] एक प्रकार का बगुला ।

जलरंढ—संज्ञा पुं० [सं० जलरण्ड] १. आवर्त । भँवर । २. पानी की बूँद । जलकण । ३. साँप । सर्प ।

जलरख^(१)—संज्ञा पुं० [सं० जल+हि० रख] यज्ञ । जल के रखवारे । वरुण के सिपाही । उ०—तूझ तुरंगी दान रा हिमनिर तलहटियाँ । गाने गीत तुरंगमुख जलरख जल बटियाँ ।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ६ ।

जलरस—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्री या साँगर नमक । २. नमक ।

जलराक्षसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल में रहनेवाली राक्षसी जिसका नाम सिंहिका या और जो आकाशवासी जीवों की छाया से उन्हें अपनी ओर खींच लेती थी ।

जलराशि—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कर्क, मकर, कुम्भ और मीन राशियाँ । २. समुद्र ।

जलरास^(१)—संज्ञा पुं० [सं० जलराशि] समुद्र । जल का पुंजीभूत रूप । सागर । उ०—जैसे नदी समुद्र समावे द्वैत भाव तजि हूँ जलरास ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० १५६ ।

जलरुंढ—संज्ञा पुं० [सं० जलरण्ड] दे० 'जलरंढ' ।

जलरुह—संज्ञा पुं० [सं०] कमल ।

जलरूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकर राशि । २. नक्र । मकर (को०) ।

जललता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी की सहर । तरंग ।

जललोहित—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम ।

जलवरंट—संज्ञा पुं० [सं० जलवरण्ट] जल के अधिक संसर्ग से होने-
वाली एक प्रकार की पिटिका या व्रण [को०] ।

जलवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेष का एक भेद । उ०—सुनत
मेषवर्तक साजि सैन ले भाये । जलवर्त, वारिवर्त पवनवर्त,
बीजुवर्त, प्रागिवर्तक जलद सग ल्याये ।—सूर (शब्द०) ।
२. दे० 'जलावर्त' ।

जलवर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जलपक्षी [को०] ।

जलवल्कल—संज्ञा पुं० [सं०] जलकुंभी ।

जलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंघाड़ा ।

जलवा—संज्ञा पुं० [प्र० जल्वह] १. शोभा । दीप्ति । तड़क भड़क ।
उ०—जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है । उसी
का सब है जलवा जो जहाँ मे भाषाकारा है ।—भारतेंदु
प्र०, भा० २, पृ० ८५१ । २. प्रदर्शितन । नुमाइश । ३. दोहार ।
दर्शन [को०] ।

यो०—जलवागर = प्रकट । प्रत्यक्ष । उ०—हुमा जब भाइने मे
जलवागर में तब लिया बोसा । जो आया अपने काबू में तो
फिर मुँह देलना क्या है ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २६ ।

जलवाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक बाजा । उ०—जलाघात, जलवाद,
विनययोग्य मालाप्रथन ।—वर्ण०, पृ० २० ।

जलवाना—क्रि० सं० [हि० जलाना] जलाने का प्रेरणात्थक रूप ।
जलाने का काम दूसरे से कराना ।

जलवानोर—संज्ञा पुं० [सं०] जलवेत । मंजुवेतस् ।

जलवायस—संज्ञा पुं० [सं०] कीड़ित्वा पक्षी ।

जलवायु—संज्ञा पुं० [सं० जल + वायु] भावहवा । मौसम ।

जलवालुक—संज्ञा पुं० [सं०] विषय पर्वत श्रेणी [को०] ।

जलवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. उशीर । लस । २. विष्णुकद ।

जलवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेष । वारिवाह । २. वह व्यक्ति जो
जल ढोता हो [को०] । ३. एक प्रकार का कपूर [को०] ।

जलवाहक, जलवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] जल ढोनेवाला व्यक्ति ।
पनहरा । जलवाहिका [को०] ।

जलविंदुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० जलविन्दुजा] दे० 'जलविंदुजा' ।

जलविषुव—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक योग जो सूर्य
के कन्या राशि से मिलकर तुला राशि में सक्रिय होने के
समय होता है । तुला सक्रांति ।

जलवोर्य—संज्ञा पुं० [सं०] भरत के एक पुत्र का नाम ।

जलधूरिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] भीमा मछली ।

जलवेत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलवेत' ।

जलवेतस्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलवेत' ।

जलवैकृत—संज्ञा पुं० [सं०] एक अनुष्ठान योग । पानी या जलाशय
में प्राकृतिक विकार या अद्भुत बातों का दिखाई पड़ना ।

विशेष—वृहत्संहिता के अनुसार नगर के पास से नदी का सरक
जाना, तालाबों का अचानक एकबारगी सूख जाना, नदी के
पानी में तेल, रक्त, मांस आदि बहना, जल का अकारण मैला

हो जाना, कुएँ में बुझाई, ज्वाला आदि देखा पड़ना, उसके पानी
का खीलने लगना या उसमें से रोने, गाने, गर्जने आदि के
शब्दों का सुनाई पड़ना, जल के गंध, रस आदि का अचानक
बदल जाना, जलाशय के पानी का बिगड़ जाना, इत्यादि इस
योग में होते हैं । यह अनुष्ठान माना गया है और इसकी शांति
का कुछ विधान भी उसमें दिया गया है ।

जलव्यथ जलव्यध—स्त्री० पुं० [सं०] कंकमोट या कीपा नाम
की मछली ।

जलव्याघ्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलव्याघ्री] सील की जाति का
एक जंतु जो बड़ा क्रूर और हिंसक होता है ।

विशेष—डोल डोल में यह जलभालू से कुछ ही बड़ा होता है
पर इसके शरीर पर के बाल जलभालू के बालों की तरह
बहुत बड़े नहीं होते । इसके शरीर पर चीते की तरह धाग
या धारियाँ होती हैं । यह प्रायः दक्षिण सागर में सेटलैंड
नामक टापू के पास होता है ।

जलव्याल—संज्ञा पुं० [सं०] जलगर्द । पानी में का साँप ।

जलशय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

जलशयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलशय' ।

जलशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्षापल । करका । ओला [को०] ।

जलशायी—संज्ञा पुं० [सं० जलशायिन्] विष्णु ।

जलशुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोंघा [को०] ।

जलशुनक—संज्ञा पुं० [सं०] जल का नकुल । ऊँखिलाव [को०] ।

जलशूक—संज्ञा पुं० [सं०] रेवार । काई

जलशूकर—संज्ञा पुं० [सं०] कुभीर या नाक नामक जलजंतु ।

जलशोष—संज्ञा पुं० [सं०] सूखा । अनावृष्टि [को०] ।

जलसंध—संज्ञा पुं० [सं०] भूतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि इसने सात्यकि के साथ
भीमराज युद्ध करके तोमर से उमका बायाँ हाथ तोड़ दिया
था । अंत में यह सात्यकि के हाथ से मारा गया था ।

जलसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. नहाना । स्नान करना । २. धोना ।
पखारना । ३. मुँह को जल में बहा देना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जलसमाधि—पञ्चा स्त्री० [सं०] योग के अनुसार जल में डूबकर
प्राणत्याग ।

क्रि० प्र०—लेना ।

२. शव आदि को जल में डुबाना या तिरोहित करना ।

क्रि० प्र०—देना ।

जलसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से अंतिम
समुद्र ।

जलसर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलसा—संज्ञा पुं० [प्र० जलसह] १. आनंद या उत्सव मनाने
के लिये बहुत से लोगों का एक स्थान पर एकत्र होना,
विशेषतः लोगों का वह जमावड़ा जिसमें खाना पीना,
गाना बजाना, नाच रंग और आमोद प्रमोद हो । जैसे,—
कल रात को सभी लोग जलसे में गए थे । २. सभा,

समिति प्रादि का बड़ा प्राधिवेशन जिसमें सर्वसाधारण सम्मिलित हों। जैसे,—परसों आर्य समाज का सालाना जलसा होगा।

जलसाई(५)—संज्ञा पुं० [सं० जलसायो] भगवान् विष्णु। उ०—नींद, भूख प्रर ध्यास तजि करती हो तन राख। जलसाई बिन पूजिहैं क्यों मन के अभिलाख।—मति० प्र०, पृ० ४४५।

जलसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] [श्री० जलसिंह] सील की जाति का एक जंतु।

विशेष—यह जंतु, पाँच सात गज लंबा होता है और इसके सारे शरीर में ललाई लिए पीले रंग के या काले भूरे बाल होते हैं। इसकी गर्दन पर सिंह की तरह लंबे लंबे बाल होते हैं। यह अत्यंत बली और शांत प्रकृति का होता है। यह अमेरिका और एशिया के बीच 'कमबटका' उपद्वीप तथा 'ब्यूरायल' प्रादि द्वीपों के आस पास मिलता है। यह कुंड में रहता है। इसकी गरज बड़ी भयानक होती है और तंग किए जाने पर यह भयंकर रूप से आक्रमण करता है।

जलसिक्त—वि० [सं०] जल से लीचा हुआ। गीला। आर्द्र [को०]।

जलसिरस—संज्ञा पुं० [सं० जलशिरस] जल में या जलाशय के प्रति निकट पैदा होनेवाला एक प्रकार का सिरस वृक्ष जो साधारण सिरस वृक्ष से बहुत छोटा होता है। इसे कहीं कहीं ढाढोन भी कहते हैं।

जलसीप—संज्ञा श्री० [सं० जलशुक्ति] वह सीप जिसमें मोती होता है।

जलसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। जलज। उ०—जलसुत प्रीतम जानि तास सम परम प्रकासा। अहिरिपु मध्य किपी जनि निश्चल बासा।—सुंदर प्र०, भा० १, (जी०), पृ० ११०।

यौ०—जलसुत प्रीतम = सूर्य।

२. मोती। मुक्ता। उ०—श्याम हृदय जलसुत की माला, प्रतिहि अमृपम छाजै (री)। मनहूँ बलाक भाँति नव धन पर, यह उपमा कछु भाजै (री)।—सूर०, १०।१८०७।

जलसूचि—संज्ञा पुं० [सं०] सूँस। शिशुमार। २. बड़ा कछुपा। ३. जोंक। ४. एक प्रकार का पौधा जो जल में पैदा होता है। ५. कोषा। ६. कंकमोट या कोषा नाम की मछली। ७. सिंघाड़ा।

जलसूत—संज्ञा पुं० [सं०] नहरमा रोग।

जलसूर्य, जलसूर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पाषी में व्यक्त सूर्य का प्रतिबिंब [को०]।

जलसेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सींचना। पानी देना। जल का छिड़काव।

जलसेचन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलसेक'।

जलसेना—संज्ञा श्री० [सं०] वह सेना जो जहाजों पर चढ़कर समुद्र में युद्ध करती हो। जहाजी बेड़ों पर रहनेवाली फौज। नौसेना। समुद्री सेना।

जलसेनापति—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेनापति जिसकी अधीनता में जलसेना हो। समुद्री सेना का प्रधान अधिकारी जिसकी अधीनता में बहुत से लड़ाई के जहाज और जलसैनिक हों। जल या नौसेना का प्रधान या अध्यक्ष। नौसेनापति।

जलसेनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

जलस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भ] एक देवी घटना जिसमें जलाशयों या समुद्र में आकाश से बादल झुक पड़ते हैं और बादलों से जल तक एक मोटा स्तंभ सा बन जाता है। सूँड़ी।

विशेष—यह जलस्तंभ कभी कभी सौ सवा सौ गज तक व्यास का होता है। जब यह बनने लगता है, तब आकाश में बादल स्तंभ के समान नीचे झुकते हुए दिखाई पड़ते हैं और थोड़ी ही बेर में बढ़ते हुए जल तक पहुँचकर एक मोटे खंभे का रूप धारण कर लेते हैं। यह स्तंभ नीचे की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है। यह बीच में भूरे रंग का, पर किनारे की ओर काले रंग का होता है। इसमें एक केंद्रेखा भी होती है जिसके आस पास भाप की एक मोटी तह होती है। इससे जलाशय का पानी ऊपर को खिंचने लगता है और बड़ा शोर होता है। यह स्तंभ प्रायः घंटों तक रहता है और बहुधा बढ़ता भी है। कभी कभी कई स्तंभ एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। स्थल में भी कभी कभी ऐसा स्तंभ बनता है जिसके कारण उस स्थान पर जहाँ वह बनता है, गहरा कुंड बन जाता है। जब यह नष्ट होने को होता है, तब ऊपर का भाग तो उठकर बादल में मिल जाता है और नीचे का पानी हो कर पानी बरस पड़ता है। लोग इसे प्रायः अशुभ और हानिकारक समझते हैं।

जलस्तंभन—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भन] मंत्रादि से जल की गति का अवरोध करना। पानी बाधना।

विशेष—दुर्योधन को यह विद्या आती थी अतएव वह शल्य के मारे जाने के बाद द्विषायन हृद मे जल का स्तंभन करके पड़ा था। इसका विशेष विवरण महाभारत में शल्य पर्व के २६वें अध्याय में द्रष्टव्य है।

जलस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] जल थल। जल और जमीन।

जलस्था—संज्ञा श्री० [सं०] गंडदूर्वा।

जलस्थान, जलस्थाय—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का स्थान। जलाशय। तालाब [को०]।

जलस्नाह—संज्ञा पुं० [सं०] एक नेत्ररोग [को०]।

जलस्रोत—संज्ञा पुं० [सं०] जल का सोता। चरमा। जलप्रवाह [को०]।

जलह—संज्ञा पुं० [सं०] जल के फोवारीवाला छोटा स्थान। वह स्थान जहाँ फुहारा सगा हो [को०]।

जलहड्डी—संज्ञा पुं० [हि० जल + हड्डी] मोती। उ०—तै सो लाख समापिया रावल लालच छड्डु। साँसण सीचाँणा जिसा, जेय हुलै जलहड्डु।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ८०।

जलहर' (५)—वि० [हि० जल + हर] जलमय। जल से भरा हुआ।

उ०—दाढ़ करता करत निमिष में जल माँहि बल थाप । बल माँ है जलहर करै, ऐसा समरथ थाप ।—बाढ़ (शब्द०) ।

जलहर^१—संज्ञा पुं० [सं० जलधर, प्रा० जलहर] १. मेघ । बादल । उ०—बिजुलियाँ नीलजिज्याँ जलहर तूँ ही लज्जि । सूनी सेज बिदेस प्रिय मधुरइ मधुरइ गज्जि ।—ढोला०, दू० ५० । २. ताबाब । सरवर । जलाशय । उ०—(क) बिरह जलाई मैं जल जलती जलहर जाउ । मों देखे जलहर जल मंतों कहा बुझाउ ।—कबीर (शब्द०) । (ख) नैना भए धनाथ हमारे । मदन गोपाल वहाँ ते सजनी सुनियत दूर सिधारे । वे जलहर हम मीन बापुरी कैसे जियाहि नितारे ।—सूर (शब्द०) । (ग) सुंदर सोल सिंगार सजि गई सरोवर पाख । चंद मुलक्यउ जल हंस्यउ जलहर कपी पाल ।—ढोला०, दू० ३६४ ।

जलहरण—संज्ञा पुं० [सं०] बर्तीस घड़ियों की एक वृणुत्ति या घंटा जिसके घंटे में दो लघु पड़ते हैं । इसमें सोलहवें वण पर पति होती है । जैसे,—भरत सदा ही पूजे पादुका चले सनेम, इसे राम सिय बंधु सहित सिधारे बन । सूपनखा के कुकप मारे खल भुंड घने, हरी दससीस सीता राघव विकल मन ।

जलहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलधरी] १. पत्थर या बागु घाघि का वह धर्मा जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है । उ०—लिंग जलहरी घर घर रोपा ।—कबीर सा०, पृ० १५८१ । २. एक बर्तन जिसमें नीचे पानी भरा रहता है । लोहार इसमें लोहा गरम करके बुझाते हैं । ३. मिट्टी का घड़ा जो गरमी के दिनों में शिवलिंग के ऊपर टांगा जाता है । इसके नीचे एक बारीक छेद होता है जिसमें से दिन रात शिवलिंग पर पानी टपका करता है ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढाना ।

जलहस्ती—संज्ञा पुं० [सं०] सील की जाति का एक जलजंतु जो स्तनपायी होता है ।

विशेष—यह प्रायः छह से आठ गज तक लंबा होता है और इसके शरीर का चमड़ा बिना बालों का और काले रंग का होता है । इसके मुँह में ऊपर की ओर ११ और नीचे की ओर १४ दाँत होते हैं । यह प्रायः दक्षिण महासागर में पाया जाता है, पर जब वहाँ अधिक सरबी पड़ने लगती है, तब यह उत्तर की ओर बढ़ता है । नर की नाक कुछ लंबी और सूँड़ की तरह घागे को निकली हुई होती है और वह प्रायः १५-२० घाघाघों के भुंड में रहता है । गरमी के दिनों में इसकी मादा एक या दो बच्चे देती है । इसका मांस काले रंग का और चरबी मिला होता है और बहुत गरिष्ठ होने के कारण खाने योग्य नहीं होता । इसकी चरबी के लिये, जिससे मोमबत्तियाँ आदि बनती हैं, इसका शिकार किया जाता है । प्रयत्न करने पर यह पाला भी जा सकता है ।

जलहाद—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलहरी] पानी भरनेवाला । पनिहारा ।

जलहारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलहार' ।

जलहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी भरनेवाली । पनिहारिन । २. नाली । जल के निकास की प्रणाली (स्त्री०) ।

जलहारी—संज्ञा पुं० [सं० जलहारिन्] [स्त्री० जलहारिणी] पनिहारा । जलहारक ।

जलहालम—संज्ञा पुं० [सं० जल + देश० हालम] एक प्रकार का हालम या चंसुर वृक्ष जो जलाशयों के निकट होता है । इसकी पत्तियाँ सलाह या मसाले की तरह काम में आती हैं और बीजों का उपयोग औषध में होता है ।

जलहास—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाग । फेन । २. समुद्र का फेन । समुद्रफेन ।

जलहोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का होम जिसमें वैश्वदेवादि के उद्देश्य से जल में प्राहुति दी जाती है ।

जलाञ्चल—संज्ञा पुं० [सं० जलाञ्चल] १. पानी की नहर । पानी का सोता । २. भरना । निर्भर (स्त्री०) । ३. सेवार । काई (स्त्री०) ।

जलाञ्जल—संज्ञा पुं० [सं० जलाञ्जल] १. सेवार । २. सोता । स्रोत ।

जलाञ्जलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी भरी घंजुली । २. पितरों या प्रेतादिक के उद्देश्य से घंजुली में जल भरकर देना ।

मुहा०—जलाञ्जलि देना—त्याग देना । छोड़ देना । कोई संबंध न रखना ।

जलाटिक—संज्ञा पुं० [सं० जलाष्टक] मगर । नक । नाक (स्त्री०) ।

जलांतक—संज्ञा पुं० [सं० जजान्तक] १. सात समुद्रों में से एक समुद्र २. हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र का एक पुत्र जो सत्यभामा गर्भ से उत्पन्न हुआ था ।

जलांबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलाम्बिका] कूप । कुम्भी ।

जलाक—संज्ञा स्त्री० [हि० जलना] १. पेट की जलन । २. तीक्ष्ण धूप की लपट । ३. लू ।

जलाकर—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र, नदी, कूप, स्रोत, जलाशय आदि जो जलयुक्त हों ।

जलाकांक्ष—संज्ञा पुं० [सं० जलाकाङ्क्ष] हाथी ।

जलाकांक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जलाकाङ्क्षिन्] दे० 'जलाकांक्ष' ।

जलाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलाकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल में आकाश का प्रतिबिंब । २. जलगत आकाश या शून्य (स्त्री०) ।

जलाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल । जलपिप्पली ।

जलाखु—संज्ञा [सं०] ऊदबिलाव ।

जलाजल^(५)—संज्ञा पुं० [हि० भलाभल] गोटे आदि की भालर । भलाभल । उ०—गति गयंब कुच कुंभ किकिणी मनहुं घंट भहनावे । मोतिन हार जलाजल मानो खुमीबंत भलकावे ।—सूर (शब्द०) ।

जलाटन—संज्ञा पुं० [सं०] कंक नामक पक्षी ।

जलाटनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलाटीन—संज्ञा पुं० [सं० जेलाटीन] एक प्रकार की सरस । दे० 'जेलाटीन' ।

जलातक—संज्ञा पुं० [सं० जलातक] जलनास नामक रोग ।

जलातन—वि० [हि० जलना + तन] १. कोषी । बिगड़ल । बदमिजाज । २. ईर्ष्यालु । डाही ।

जलात्मिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जोंक । २. कुर्मा । कूप ।

जलात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा की समाप्ति का काल । शरत् काल ।

जलाद^(५)—संज्ञा पुं० [अ० जलाद] दे० 'जलाद' । उ०—हो मन राम नाम को गाहक । बीरासी लख जिया जोनि लख भटकत फिरत घनाहक । करि हियाव सो सो जलाद यह हरि के पुर ले जाहि । घाट बाट कहुं भटक होय नहि सब कोउ देखि निबाहि ।—सूर० (शब्द०) ।

जलाधार—संज्ञा पुं० [सं०] जल का आधारभूत स्थान । जलाशय [को०] ।

जलाधिदैवत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण । २. पूर्वाषाढा नक्षत्र ।

जलधिप^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण । २. फनित ज्योतिष के अनुसार वह ग्रह जो संवत्सर में जल का अधिपति हो ।

जलाना^१—क्रि० स० [हि० 'जलना' का सक० रूप] १. किसी पदार्थ को अग्नि के संयोग से भंगारे या लपट के रूप में कर देना । प्रज्वलित करना । जैसे, भ्राम जलाना, दीया जलाना । २. किसी पदार्थ को बहुत गरमी पहुँचाकर या आँच की सहायता से भाप या कोयले आदि के रूप में करना । जैसे, भंगारे पर रोटी जलाना, काढ़े का पानी जलाना । ३. धाँच के द्वारा विकृत या पीड़ित करना । भुलसाना । जैसे—भंगारे से हाथ जलाना । ४. किसी के मन में डाह, ईर्ष्या या द्वेष आदि उत्पन्न करना । किसी के मन में संताप उत्पन्न करना ।

मुहा०—जला जलाकर मारना = बहुत दुःख देना । खूब तंग करना ।

जलाना^(५)—क्रि० उ० [हि० जल + आना (प्रत्य०)] जलमय होना । जलमय होना । उ०—महा प्रलय जब होवे जाई । स्वर्ग घृत्यु पाताल जलाई ।—कबीर सा०, पृ० २४३ ।

जलापा^१—संज्ञा पुं० [हि० √जल + पापा (प्रत्य०)] डाह या ईर्ष्या आदि के कारण होनेवाली जलन ।

क्रि० प्र०—सहना ।—होना ।

जलापा^२—संज्ञा पुं० [अ० जलप पाउडर] एक विलायती घोषध जो रेचक होती है ।

जलापास—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत ऊँचे स्थान पर से नदी आदि के जल का गिरना । जलप्रपात ।

जलामई^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० जलमय] जलमय । जल से परिपूर्ण । उ०—समुद्र मध्य दूबि के उधारि नैन दीजिए । बसो दिशा जलामई प्रत्यक्ष ध्यान दीजिए ।—सुंदर भं०, भा० १, पृ० ५४ ।

जलायुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलार्णव—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्षाकाल । बरसात । २. समुद्र । सागर [को०] ।

जलार्द्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. गीला वस्त्र । २. जलसिक्त पंखा । ३. जल से भीगा हुआ पदार्थ या स्थान [को०] ।

जलाल—संज्ञा पुं० [अ०] १. तेज । प्रकाश । उ०—खुदायंद का जलाल रहकती आग के सटल दिखलाई देता था ।—कबीर मं०, पृ० २०१ । २. महिमा के कारण उत्पन्न होनेवाला प्रभाव । आतंक ।

जलाक्षत—संज्ञा स्त्री० [अ० जलालत] तिरस्कार । अपमान । बेइज्जती । उ०—कुछ देर बाद मसूवा पलटा । बंबई के कारनामे याद आए । जलालत से नसों में खून दीड़ने लगा, मोखा क्या बंबई में मुँह दिखाएँ ।—काले०, पृ० ३७ ।

जलाली—वि० [अ०] प्रकाशित । वीर । आतंकयुक्त । उ०—किया उस उपर एक जलाली नजर, जो हैवत सूँ पानी हुआ सर बसर ।—दक्खिनी०, पृ० ११७ । २. ईश्वरीय । उ०—रुह जलाली करत हलाली, क्यों दोजल आगी जलता है ।—कबीर शं०, भा० २, पृ० १७ । ३. पराक्रमी । दुर्दम । अजेय । उ०—ऐसी सेन जलाली बर घोरंगजेब ।—नट०, पृ० १६७ ।

जलालुक—संज्ञा पुं० [सं०] कमल की जड़ । भसींड ।

जलालुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलालोका—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलालुका' [को०] ।

जलावत^(५)—वि० [सं० जलवन्त] पानीवाला । जल से परिपूर्ण । उ०—जलावत एक सिध भगम है मुखमन सूरत लाया । उसट पलट के यह मन गरजे गगन मंडल घर पाया ।—पलटू०, पृ० ८१ ।

जलाव—संज्ञा पुं० [हि० जलना + आव (प्रत्य०)] १. खमीर या घाटे आदि का उठना ।

क्रि० प्र०—आना । पतला शीरा ।

२. वह घाटा जो उठाया हो । खमीर । ३. किबाम ।

जलावतन—वि० [अ०] [संज्ञा स्त्री० जलावतनी] जिसे देश निकाले का दंड मिला हो । निर्वासित ।

जलावतनी—संज्ञा स्त्री० [अ० जलावतन + ई] बंडस्वरूप किसी अपराधी का शासक द्वारा देश से निकाल दिया जाना । देश-निकाला । निर्वासन ।

जलावतार—संज्ञा पुं० [सं०] नदी का वह स्थान जहाँ उतरने बढ़ने के लिये नाव आदि लगाई जाती है । घाट [को०] ।

जलावन—संज्ञा पुं० [हि० जलाना] १. लकड़ी, कंठे आदि जो जलाने के काम में आते हैं । ईंधन । २. किसी वस्तु का वह प्रश्न जो भाग में उसके ठपाए, जलाए या गलाए जाने पर जल जाता है । जलता ।

क्रि० प्र०—जाना ।—निकलना ।

३. मौसिम से कोल्हू के पहले पहल चलने का उत्सव । मंडरव ।

विशेष—इसमें वे सब कार्तकार जो उस कोल्हू से अपनी ईख पेरना चाहते हैं, अपने अपने खेत से थोड़ी थोड़ी ईख लाकर वहाँ पेरते हैं और उसका रस ब्राह्मणों, भिक्षारियों आदि को पिताते तथा उससे गुड़ बनाकर बाँटते हैं ।

जलावर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का भँवर । नाल ।

जलाशय^१—वि० [सं०] १. जल में रहने या शयन करनेवाला । २. मूर्ख । जड़ [को०] ।

जलाशय^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ पानी जमा हो । जैसे,—गडहवा, तालाब, नदी, नाला, समुद्र आदि । २. उत्तीर । खम । ३. सिंघाड़ा । ४. लामज्जक नामक वृक्ष । ५. मत्स्य । मछली (को०) ।

जलाशया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंदला । नागरमोथा ।

जलाशयोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] नए बने कूप या तालाब आदि की प्रतिष्ठा । दे० 'जलोत्सर्ग' ।

जलाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृत्तगुंड या दीर्घनाल नाम का वृक्ष । २. जलाशय (को०) । ३. सारस । बक (को०) ।

जलाश्रया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूली घास ।

जलाश्रीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा घोर चौकोर तालाब (को०) ।

जलासुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलाहल^१—वि० [हि० जलाजल, या सं० जलस्थल] जलमय । उ०—प्रानप्रिया प्रसुप्रान के नीर पनारे भए बहिके भए नारे । नारे भए ते भई नदियाँ नदियाँ नद ह्वै गए काटि किनारे । बेगि चलौ लू चलौ ब्रज को नंदनंदन चाहत चेत हमारे । वे नद चाहत सिधु भए अब सिधु ने ह्वै है जलाहल सारे ।—(शब्द०) ।

जलाहल^२—वि० [हि० भलाभल] भलभलता हुआ । चमक दमक । वाला । देदीप्यमान । उ०—कंठसरो बहु क्रांति, मिली मुक्ता-हला ।—बांकी० प्र०, भा० ३, पृ० ३६ ।

जलाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल । २. कुमुद । कुई ।

जलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जली—वि० [सं०] प्रकट । व्यक्त । स्पष्ट । प्रकाशमान । उ०—जिन्हे जली नित ऐसा याद हर दम भल्ला नाँव । य हर आजा बरतन पूरे नासून पावे ठाँव ।—बकिशनी०, पृ० ५५ ।

जलील—वि० [सं० जलील] १. तुच्छ । बेकदर । २. जिसे नीचा दिखाया गया हो । अपमानित । तिरस्कृत ।

जलुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलू, जलूक—संज्ञा स्त्री० [फा० जलू, जलूक] जलीका । जोंक (को०) ।

जलूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलूस—संज्ञा पुं० [सं० जुलूस] बहून से लोगों का किसी उत्सव के उपलक्ष में सज धजकर, विशेषतः किसी सवारी के साथ किसी विशिष्ट स्थान पर जाने या नगर की परिक्रमा करने के लिये चलना ।

कि० प्र०—निकलना । —निकालना ।

२ जलसा । धूमधाम । उ०—जोबन जलूस फूस लाये लों नसाय कहा पाप समुदाय मान मानो सान धरि कै ।—दीन० प्र०, पृ० १३८ ।

जलेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० जलेन्द्र] १. वरुण । २. महासागर । ३. शिव (को०) ।

जलेंधन—संज्ञा पुं० [सं० जलेधन] १. बाइबागिन । २. वह पदार्थ जिसकी गरमी से पानी सूखता है । जैसे, सूर्य, विद्युत् आदि ।

जलेचर—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] जलचर ।

जलेच्छया—संज्ञा पुं० [सं०] हाथीसूँड़ नाम का पीछा जो पानी में उत्पन्न होता है ।

जलेज—संज्ञा पुं० [सं०] कमल । जलज ।

जलेवन—वि० [हि० जलना + तन] १. जिसे बहुत जल्दी क्रोध आ जाता हो । जिसमें सहनशीलता बिलकुल न हो । २. जो डाह, ईर्ष्या आदि के कारण बहुत जलता हो ।

जलेबा—संज्ञा पुं० [हि० जलेबी] बड़ी जलेबी । वि० दे० 'जलेबी' ।

जलेबी—संज्ञा स्त्री० [हि० जलाव (= खमीर या शोरा)] १. एक प्रकार की मिठाई जो कुंडलाकर होती है और खमीर उठाए हुए पतले मैदे से बनाई जाती है ।

विशेष—इसके बनाने की पद्धति यह है कि पतले उठे हुए मैदे को मिट्टी के किसी ऐसे बरतन में भर लेते हैं जिसके नीचे छेद होता है । जब उस बरतन को घी की कड़ाही के ऊपर रखकर इस प्रकार घुमाते हैं कि उसमें से मैदे की चार निकलकर कुंडलाकार होती जाती है । एक घुक्ने पर उसे घी में से निकालकर शीरे में थोड़ी देर तक डुबो देते हैं । मिट्टी के बरतन की जगह कभी कभी कपड़े की पोटली का भी व्यवहार किया जाता है ।

२. बरियारे की जाति का एक प्रकार का पीछा ।

विशेष—यह पीछा चार पाँच हाथ ऊँचा होता है और इसमें पीले रंग के फूल लगते हैं । इसके फूल के अंदर कुंडलाकार लिपटे हुए बहुत से छोटे छोटे बीज होते हैं ।

३. गोल धेरा । कुंडली । लपेट । ४. एक प्रकार की आतिशबाजी जो मिट्टी के कसोरे में कुछ मसाले आदि रखकर और ऊपर कागज चिपका कर बनाई जाती है ।

यौ०—जलेबीदार = जिसमें कई धेरे हों ।

जलेभ—संज्ञा पुं० [सं०] जलहस्ती ।

जलेरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूरजमुखी नाम के फूल का पीछा । २. एक गुल्म । कुटुंबिनी (को०) ।

जलेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम ।

जलेबाह—संज्ञा पुं० [सं०] पानी में गोता लगाकर बीजे निकालने-वाला मनुष्य । गोताखोर ।

जलेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण । २. समुद्र । जलाधिप ।

जलेशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. मछली । २. विष्णु का एक नाम ।

विशेष—जिस समय सृष्टि का लय होता है, उस समय विष्णु जल में सोते हैं इसी से उनका यह नाम पड़ा है ।

जलेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. वरुण ।

जल्लोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलोच्छ्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलाशयों में उठनेवाली लहरें जो उनकी सीमा का उल्लंघन करके बाहर गिरती हैं । जल का उमड़कर अपनी सीमा से बाहर गिरना या बहना । २. वह प्रयत्न जो किसी स्थान से जल को बाहर निकालने अथवा उसे किसी स्थान में प्रविष्ट करने के लिये किया जाय ।

जलोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ताल, कुर्मा या बाबली आदि का विवाह ।

जलोदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें नाभि के पास पेट के चमड़े के नीचे की तह में पानी एकत्र हो जाता है ।

विशेष—इस रोग में पानी इकट्ठा होने से पेट फूल जाता है और आगे की ओर निकल पड़ना है । वैद्यों का मत है कि घृतादि पान करने और वस्ति कर्म, रेचन और वमन के पश्चात् चटपट ठंडे जल से स्नान करने से शरीर की जलवाहिनी नसे दूषित हो जाती हैं और पानी उतर आता है । इसमें रोगी के पेट में शब्द होता है और उसका शरीर कांपने लगता है ।

जलोद्धतिगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बारह अक्षरों की एक वराण्ण्ति जिसके प्रत्येक चरण में जगण सगण, जगण और सगण होता है (1 S 1, 11 S 1 S 1, 11 S) । जैसे—जु साजि सुपनी हरी हि सिर मे । अमे जु बसुदेव रैन जन में । प्रभू चरण को छुपा जमुन मे । जलोद्धति गति हरी छिनक में । २. जल बढ़ने की स्थिति ।

जलोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुँदला । २. छोटी ब्राह्मी ।

जलोद्भूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुँदला नाम की घास ।

जलोद्भाद—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम ।

जलोरगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलौकस—संज्ञा पुं० [सं०] जलौका । जोंक ।

जलौका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलौकस्] जोंक ।

जल्द—क्रि० वि० [प्र०] [संज्ञा जल्दी] १. शीघ्र । चटपट । बिना विलंब । २. तेजी से ।

जल्दबाज—वि० [फा० जल्दबाज] [संज्ञा जल्दबाजी] जो किसी काम के करने में बहुत, विशेषतः आवश्यकता से अधिक, जल्दी करता हो । बहुत अधिक जल्दी करनेवाला ।

जल्दबाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जल्दबाजी] उतावली । शीघ्रता ।

जल्दी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] शीघ्रता । फुरती ।

जल्दी—क्रि० वि० [प्र० जल्द] दे० 'जल्द' ।

जल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. कथन । कहना । २. बकवाद । व्यर्थ की बात । प्रलाप । ३. न्याय के अनुसार सोलह पदार्थों में से एक पदार्थ ।

विशेष—यह एक प्रकार का वाद है जिसमें वादी छल, जाति और निग्रह स्थान को लेकर अपने पक्ष का मंडन और विपक्षी के पक्ष का खंडन करता है । इसमें वादी का उद्देश्य तत्त्व-निर्णय नहीं होता किंतु स्वपक्ष स्थापन और परपक्ष खंडन मात्र होता है । वाद के समान इसमें भी प्रतिज्ञा, हेतु आदि पाँच अवयव होते हैं ।

जल्पक—वि० [सं०] बकवादी । वाचाल । बातूनी । उ०—तब सोनित की प्यास तृषित राम सायक निकर । तजौ तोहि तेहि त्रास कटु जल्पक निसिचर अधम ।—मानस, ६ । ३२ ।

जल्पन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बकवाद । प्रलाप । गपगप । व्यर्थ की बातें । २. बहुत बढ़कर कही हुई बात । डींग ।

जल्पन—वि० [सं०] बातूनी । जल्पक [क्रि०] ।

जल्पना—क्रि० प्र० [सं० जल्पन] व्यर्थ बकवाद करना । बहुत बढ़ बढ़कर बातें करना । डींग मारना । सीटना । उ०—(क) कट जल्पसि जड़ कपि बल जाके । बल प्रताप कुषि तेज न ताके ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ विलोकु भम बाहु । लोकपाल बल बिपुल ससिप्रसन हेतु सब राहु ।—तुलसी (शब्द०) ।

जल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल्पन । बकवाद । डींग । उ०—मजि रघुपति कइ हित आपना । छाड़हु नाथ तृषा जल्पना ।—मानस, ६ । ५५ ।

जल्पाक—वि० [सं०] व्यर्थ की बहुत सी बातें करनेवाला । जल्पक । बकवादी । वाचक ।

जल्पित—वि० [सं०] १. जो (बात) वास्तव में ठीक न हो । मिथ्या । २. कथित । उक्त । कहा हुआ ।

जल्ला—संज्ञा पुं० [हि० भील] १. भील ।—(लक्ष०) । २. ताल । ३. होज । हृद ।

जल्लाद—संज्ञा पुं० [प्र०] वह जिसका काम ऐसे पुरुषों के प्राण लेना हो, जिन्हें प्राणदंड की आज्ञा हो चुकी हो । घातक । बधुमा ।

जल्लाद—क्रि० कूर । निर्दय । बेरहम ।

जल्हु—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

जल्वा—संज्ञा पुं० [प्र० जल्वह्] दे० 'जलवा' । उ०—बिना उसके जल्वा के बिलती कोई परी या हूर नहीं । सिवा यार के दूसरे का इस दुनिया में नूर नहीं ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १६४ ।

यो—जल्वागार = दे० 'जलवागर' । जल्वागाह = प्रदर्शनगृह । उ०—भोरों सा रस लेता रहता गाता फिरता तू राहों में । रूप और रस राग भरी इन जीवन की जल्वागाहों में । दीप ज०, पृ० १५३ ।

जल्वागाय—[फा० जल्वागाह] दे० 'जल्वागाह' । उ०—जब इस बज्र छब की उरूसी दिखाय । तो जोहर हो ज्यों दिप मने जल्वागाय ।—दक्खिनी०, पृ० १३८ ।

जल्सा—संज्ञा पुं० [प्र० जल्सह्] दे० 'जलसा' उ०—रेल में, जहाज में, खाने पीने के जल्सों में, पास बैठने में और बातचीत करने में जानपहचान नहीं समझी जाती ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३३० ।

जब—संज्ञा पुं० [सं०] वेग ।

जव—संज्ञा पुं० [सं० यव] जौ ।

जवन—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जवनी] वेगवान् । वेग-युक्त । तेज ।

जवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेग । २. स्कंद का एक सैनिक । ३. घोड़ा ।

जवन—संज्ञा पुं० [सं० यवन] दे० 'यवन' । उ०—पृथ्वीराज जैचंद कलह करि जवन बुलायो ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५०७ ।

जवन—संज्ञा पुं० [सं० यः पुनः] प्रा० अवण, या हि०] दे०

‘जीन’ अथवा ‘जित’ । उ०—जवन विधि मनुष्य मरे सोई भीति सम्हारो हो ।—चरम०, पु० ६ ।

जवननाल—संज्ञा पु० [सं० यवननाल] जो का डंठल । २० ‘यवननाल’ ।

जवनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पर्दा । २० ‘यवनिका’ । उ०—(क) मोहन काहूँ न उगिलो माटी । बड़ी बार भई लोचन उघरे भरम जवनिका फाटी । सूर निरखि नैदरानि भ्रमित भई कहति न मोठी छाटी ।—सूर०, १०।२५४ (क) द्वार भरो-खनि जवनिका रुचि से छुटकाऊँ ।—चनानंद, पु० ३१३ । २. कनात । घेरा (को०) । ३. नाव की पाल (को०) ।

जवनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जवनिमन्] गति । वेग । क्षिप्रता (को०) ।

जवनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवाहन । प्रजवायन । २. तेजो । वेग ।

जवनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] २० ‘जवनिका’ (को०) ।

जवनी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनी] यवनी । यवन स्त्री । मुसलमान स्त्री । उ०—भूषण यों भवनी जवनी कहैं ।—कोऊ कहै सरजा सो हहारे । तू सबको प्रतिपालन हार बिचारे भतार न मार हमारे ।—भूषण प्र०, पु० ५१ ।

जवस्—संज्ञा पु० [सं०] वेग ।

जवस—संज्ञा पु० [सं०] चास ।

जवर्—संज्ञा पु० [फ़ा०] जवान का योगिक रूप । युवक । युवा ।

यौ०—जवामर्द । जवामर्दी । जवामर्द = भागवान् । सोभाग्य-शाली । जवामर्द = युवक । नई उमर का ।

जवामर्द—वि० [फ़ा०] [संज्ञा जवामर्दी] १. मूर्खी । बहादुर । २. स्वेच्छापूर्वक सेना में भरती होनेवाला सिपाही । वालेंटियर ।

जवामर्दी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वीरता । बहादुरी । मर्दानगी ।

जवा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] २० ‘जवा’ ।

जवा^२—संज्ञा पु० [सं० यव] १. एक प्रकार की सिलाई जिसमें तीन बखिया लगाते हैं और इस प्रकार सिलाई करके बर्ज को चीर-कर दोनों ओर सुरप देते हैं । २. लहसुन का एक दाना ।

जवाहन—संज्ञा स्त्री० [सं० यवानिका, यवानी; हि० प्रजवाहन] प्रज-वाहन । जवाहन ।

जवाई—संज्ञा स्त्री [हि० जाना, पुँह जाना] १. वह धन जो जाने के उपलक्ष में दिया जाय । २. जाने की क्रिया । गमन । ३. जाने का भाव ।

यौ०—जवाई जवाई = आवागमन । जाना जाना ।

जवाखार—संज्ञा पु० [सं० यवखार] एक प्रकार का तमक जो जो के धार से बनता है । वैद्यक में यह पाचक माना गया है ।

जवाद्—संज्ञा पु० [अ० जवाद] २० ‘जवादि’ । उ०—मृग नद जवाब सब चरचि भ्रंग । कसमीर अगर सुर रहिय भ्रंग ।—पु० रा०, ६।११२ ।

जवाद्^२—वि० [अ०] मुक्तहस्त । शानी । यशस्वी । वदान्य । कैयाज । उ०—पुनि कूरम सौं विरचियी छोड़ति देखि प्रजाद । बचन जीत तासों भयो सूरज प्रापु जवाद ।—सुजान०, पु० ३३ ।

जवादानो—संज्ञा स्त्री० [सं० यव > हि० जवा + दाना] चंपाकली नामक गहना जो गले में पहना जाता है ।

जवादि—संज्ञा पु० [अ० जवाद, जवाब; तुल० सं० जवादि] एक सुगंधित द्रव्य जो गंधमार्जार से निकाला जाता है । उ०—पहिले तजि धारस धारसी देखि घरीक बसे घनसारहि लै । पुनि पौछि गुलाब तिलोछि फुलेल भंगोछे में छोछे भंगोछन कै । कहि केशव भेद जवादि सो मांजि हते पर घांजि में भंजन है । बहुते हरि देखी ती देखी कदा सखि लाज ते लोचन लागे दहैं ।—केशव (शब्द०) ।

विशेष—राजनिघंटु में इसके गुणों का वर्णन प्राप्त होता है । यह पाले रंग की एक बिकनी लसदार चीज है जो कस्तूरी की तरह महकती है । इसे गौरासार, मृगधर्मज आदि भी कहते हैं । वि० २० ‘गंधबिलाव’ ।

जवादि कस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [अ० या सं०] २० ‘जवादि’ ।

जवाधिक—संज्ञा पु० [सं०] बहुत तेज दौड़नेवाला घोड़ा ।

जवान^१—वि० [फ़ा०] १. युवा । तरुण ।

यौ०—जवामर्द । जवामर्दी ।

२. बीर । बहादुर । पराक्रमी ।

जवान^२—संज्ञा पु० १. मनुष्य । पुरुष २. सिपाही । ३. बीर पुरुष ।

जवानिल—संज्ञा पु० [सं०] तीव्रगामी वायु । तेज हवा । घाँधी । तूफान (को०) ।

जवानी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवाहन । प्रजवायन ।

जवानी^२—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. यौवन । तरुण्य । युवावस्था । २. मस्ती । मद ।

मुहा०—जवानी उठना या जवानी उभड़ना = यौवन का प्रारंभ होना । तरुण्य का प्रारंभ होना । जवानी उतरना = उमर ढलना । बुढ़ापा आना । जवानी चढ़ना = (१) यौवन का आगमन होना । तरुण्य का प्रारंभ होना । (२) मद पर आना । मदमत्त होना । जवानी ढलना = उमर लसकना । जवानी उतरना । बुढ़ापा आना । जवानी पर आना = मस्ती में आना । यौवन के मद से मत्त होना । जवानी फटी पड़ना = जवानी का पूर्ण विकास पाना । उठती जवानी = यौवनारंभ । चढ़ती जवानी । उतरती जवानी = यौवनावसान । उमर लसकने की अवस्था । चढ़ती जवानी = यौवनारंभ । जवानी का प्रारंभ होना । उठती जवानी । चढ़ती जवानी माझा ढीला = भरी जवानी में उत्साह की जगह प्रशक्तता या कम-जोरी दिखाना ।

जवाब—संज्ञा पु० [अ०] १. किसी प्रश्न या बात को सुन अथवा पढ़-कर उसके समाधान के लिये कही या लिखी हुई बात । उत्तर ।

यौ०—जवाबदाश । जवाबदारी । जवाबदेही ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—माँगना ।—मिलना ।—लिखना ।

मुहा०—जवाब तलब करना = किसी घटना का कारण पूछना । कैफियत माँगना । जवाब मिलना या कोरा जवाब मिलना = निषेधात्मक उत्तर मिलना ।

२. वह जो कुछ किसी के परिणाम स्वरूप या बदले में किया जाय । कार्यरूप में दिया हुआ उत्तर । बदला । जैसे,—जब उधर से गोलियों की बौछार प्रारंभ हुई, तब इधर से भी

उसका जवाब दिया गया। ३. मुकाबले की चीज। जोड़। जैसे,—इस तस्वीर के जवाब में इसके सामने भी एक तस्वीर होनी चाहिए। ४. इनकार। मस्वीकार। नहीं करना। ५. नौकरी छूटने की आशा। मोकूफी। जैसे,—कल उन्हें यहाँ से जवाब हो गया।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

जवाबतलब—वि० [प्र०] जिसके संबंध में समाधानकारक उत्तर माँगा गया हो। उत्तर या जवाब माँगने सायक।

जवाबतलबी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जवाबतल+फा० ई (प्रत्य०)] जवाब माँगनी। उत्तर माँगना [की०]।

जवाबदारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जवाब+फा० दारी (प्रत्य०)] जवाब-देही। उत्तरदायित्व। उ०—यदि आज भारत की किसी भाषा या साहित्य के सामने जवाबदारी का विराट् प्रश्न उपस्थित है तो वह हिन्दीभाषा और हिन्दी साहित्य के सामने है।—शुक्ल अग्नि० प्र० (जी०), पृ० १३।

जवाबदावा—संज्ञा पुं० [प्र० जवाब+हि० दावा] वह उत्तर जो वादी के निवेदन पत्र के उत्तर में प्रतिवादी लिखकर अदालत में देता है।

जवाबदिही—संज्ञा स्त्री० [प्र० जवाब+फा० दिही] दे० 'जवाब-देही'। उ०—(क) उससे जवाबदिही करने के लिये भी कपे चाहियेंगे।—श्रीनिवास प्र०, पृ० २४३। (ख) मदन मोहन की ओर से साला ब्रजकिशोर जवाबदिही करते हैं।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३५७।

जवाबदेह—वि० [प्र० जवाब+फा० दिह०] जिसपर किसी बात का उत्तरदायित्व हो। जिम्मेदार।

जवाबदेही—संज्ञा स्त्री० [प्र० जवाब+फा० दिही] १. उत्तर देने की क्रिया। २. उत्तरदायित्व। उत्तर देने का भाव। जिम्मेदारी। जैसे,—मैं अपने ऊपर इतनी बड़ी जवाबदेही नहीं लेता।

जवाबसवाल—संज्ञा पुं० [प्र० जवाब+सवाल] १. प्रश्नोत्तर। २. वाद विवाद।

जवाबी—वि० [प्र० जवाब+फा० ई (प्रत्य०)] जवाब संबंधी। जवाब का। जिसका जवाब देना हो। जैसे, जवाबी तार, जवाबी कार्ड।

जवार^१—संज्ञा पुं० [प्र०] १. पड़ोस। २. आसपास का प्रदेश।

जवार^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जवार] एक अन्न। वि० दे० 'जुमार'।

जवार^३—संज्ञा पुं० [प्र० जवाल] १. अवनति। बुरे दिन। २. जजाल। भ्रष्ट। भार।

जवार^४—संज्ञा पुं० [हि० जवाहर] दे० 'जवाहर'। उ०—सो सज्जन सूरें पूरे हैं। हीरे रतन जवार। तुलसी श०, पृ० २१०।

जवारा—संज्ञा पुं० [हि० जो] जो के हरे हरे अंकुर जो दशहरे के दिन स्त्रियाँ अपने भाई के कानों पर खोसती हैं या श्रावणी और विजया दशमी में ब्राह्मण अपने यजमानों के हाथों में देते हैं। जई।

जवारिश—संज्ञा स्त्री० [प्र०] वह हकीमी या यूनानी औषध जो मक्खेह या घटनी जैसी होती है [की०]।

जवारिस^(५)—संज्ञा स्त्री० [प्र० जवारिश] दे० 'जवारिश'। उ०—संत जवारिस सो जन वीर, जा की ज्ञान प्रगासा।—धरम०, पृ० ५।

जवारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जव] एक प्रकार का हार जिसमें जो, छुहारे, मोती आदि मिलाकर गुंथे हुए होते हैं और जिसे कुछ जातियों में विवाह के उपरांत समुर अपनी बहू को पहनाता है।

जवारी^२—संज्ञा स्त्री० १. सितार, तंबूरे, सारंगी आदि तारवाले बाजों में लकड़ी या हड्डी आदि का छोटा टुकड़ा जो उन बाजों में नीचे की ओर बिना जुड़ा हुआ रहता है और जिसपर होकर सब तार खूंटियों की ओर जाते हैं। यह टुकड़ा सब तारों को बाजे के तल से कुछ ऊपर उठाए रहता है। छोड़ी। २. तारवाले बाजों में बड़का तार।

क्रि० प्र०—खोलना।—बढ़ाना।—बाँधना।—लगाना।

जवाल—संज्ञा पुं० [प्र० जवाल] १. अवनति। उतार। घटाव।

क्रि० प्र०—घाना।—पहुँचना।

ज० २. जंजाल। आफत। भ्रष्ट। बखेड़ा। उ०—छाँड़ के जवाल जाल महि तू गोपाल लाल तातें कहि दीनचाल फंद क्यों फँसातु है।—दीन० प्र०, पृ० १७०।

मुहा०—जवाल में पड़ना या फँसना=आफत में फँसना। भ्रष्ट या बखेड़े में फँसना। जवाल में डालना=आफत में फँसाना।

जवाशीर—संज्ञा पुं० [फा० जावशीर] एक प्रकार का गंधाबिरोजा।

विशेष—यह कुछ पीले रंग का और कुछ पतला होता है। इसमें से ताड़पौन की गंध आती है। इसका व्यवहार प्रायः औषधों में होता है। वि० दे० 'गंधाबिरोज'।

जवास—संज्ञा पुं० [सं० यवासक प्रा०, यवासम] एक कंदीला धूप जिसकी पत्तियाँ करोड़े की पत्तियों के समान होती हैं। उ०—अर्क जवास पात बिनु भएऊ। जस सुराज खल उद्यम गएऊ।—मानस, ४।१५।

विशेष—यह धूप नदियों के किनारे बलुई भूमि में घापसे घाप उगता है। बरसात के दिनों में इसकी पत्तियाँ गिर जाती हैं। वर्षा के बीत जाने पर यह फलता फूलता है। वैद्यक में इसको कडवा, कसेला, हलका और कफ, रक्त, पित्त, खाँसी, तृष्णा तथा ज्वर का नाशक और रक्तशोधक माना गया है। कहीं कहीं गरमी के दिनों में खस की तरह इसकी दृष्टियाँ भी लगाते हैं।

पर्या०—यास। यवासक। अनता। बालपत्र। अधिककंटक। दूर-मूल। समुपांत। दीर्घमूल। मट्ठूख। कटकी। वनदर्भ। सूक्ष्मपत्रा।

जवासा—संज्ञा पुं० [सं० यवासक, प्रा० जवासम] दे० 'जवास'।

जवाही—संज्ञा पुं० [?] [वि० जवाही] १. घाँस का एक रोग जिसमें पसक के भीतर की ओर किनारे पर बाल जम जाते हैं। प्रवाल। परवाल। २. बेलों की घाँस का एक रोग जिसमें उनकी घाँस के नीचे मांस बढ़ जाता है।

जवाहड़—संज्ञा स्त्री० [हि० जवा (=दाना)+हड़] बहुत छोटी हड़।

जवाहर—संज्ञा पुं० [घ०] रत्न । मणि ।

जवाहरखाना—संज्ञा पुं० [घ० जवाहर + फ्रा० खानह] वह स्थान जिसमें बहुत से रत्न और आभूषण आदि रहते हैं । रत्नकोष । तोषाखाना ।

जवाहरात—संज्ञा पुं० [घ०, जवाहर का बहुवचन रूप] बहुत से या अनेक प्रकार के रत्न और मणि आदि । जैसे,—अब उन्होंने कपड़े का काम छोड़कर जवाहरात का काम शुरू किया है ।

जवाहिर—संज्ञा पुं० [घ०] १० 'जवाहर' । उ०—जटिल जवाहिर आभरन छाँव के उठत तरंग । लपट गहत कर लपट सी लपट लगी सब संग ।—स० सप्तक, पृ० ३७३ ।

यौ०—जवाहिरखाना = १० 'जवाहरखाना' ।

जवाहिरात—संज्ञा पुं० [घ०] जवाहिर का बहुवचन । १० 'जवाहरात' ।

जवाही—वि० [हि० जवाह] १. जिसकी छाँव में जवाह रोग हुआ हो । २. जवाह रोग युक्त । जैसे, जवाही छाँव ।

जबिन—वि० [सं०] वेगवान । गतिशील [को०] ।

जबी—वि० [सं० जविन्] वेगयुक्त । वेगवान् ।

जबी^२—संज्ञा पुं० १. थोड़ा । ऊँठ ।

जबीय—वि० [सं० जबीयस्] अत्यंत वेगवान् । बहुत तेज ।

जबैयाँ—वि० [हि० जाना + ऐया (प्रत्य०)] जानेवाला । गमनशील ।

जशन—संज्ञा पुं० [फ्रा० जशन, मि० सं० यजन] १. धार्मिक उत्सव । २. किसी प्रकार का उत्सव । नाचगान । जलसा । ३. आनंद । हर्ष ।

क्रि० प्र०—करना । मनाना । होना ।

४. वह नाच और गाना जिसमें कई वेगवाएँ एक साथ संमिलित हों । यह बहुधा महफिल या जलसे की समाप्ति पर होता है । उ०—बयो भाई अब आज जशन होगा न ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५२५ ।

जरन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १० 'जशन' । उ०—एक जशन सा वहाँ जमेगा, मदिराओं के दौर चलेंगे । सेठ हमारे बुने गए हैं, अबकी कौंसिल के मेंबर ।—मानव, पृ० ६८ ।

जस^१—क्रि० वि० [सं० यादश > जइस > जस, प्रा० जहा] जैसा । उ०—जस जस मुरसा बदन बढ़ावा । तासु दुगुन कपि रूप देखावा ।—तुलसी (शब्द०) ।

जस^२—संज्ञा पुं० [सं० यश] १० 'यश' ।

जसद—संज्ञा पुं० [सं०] जस्ता ।

जसवान^३—वि० [सं० यशस्वान्] यशस्वी । जिसका यश चारों ओर फैला हो । उ०—बड़े सूर सार्वत सब, रूपवान जसवान ।—हम्मीर०, पृ० ५० ।

जसामत—संज्ञा स्त्री० [घ०] १. लंबाई, चौड़ाई और मोटाई, गहराई या ऊँचाई । २. मोटापा । स्थूलता [को०] ।

जसारत—संज्ञा स्त्री० [घ०] १. शूरता । बहादुरी । २. घृष्टता [को०] ।

जसी—वि० [सं० यशी] कीर्तिवाला । यशवाला । यशस्वी । उ०—जाति की जान देख जोखों में, जो जसी लोग जान पर खेलें ।—चुमते०, पृ० ७ ।

जसीम—वि० [घ०] मोटा । स्थूल । पीवर । पीन [को०] ।

जसु^४—संज्ञा स्त्री० [सं० यशोदा] नंद की पत्नी । यशोदा । उ०—थोरोई दुध पुत के हितही । राखति जसु जमाइ नित नित ही ।—नंद० प्र०, पृ० २४८ ।

जसुरि—संज्ञा पुं० [सं०] बज्र ।

जसुदा, जसोदा^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'यशोदा' ।

जसूद—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष ।

विशेष—इस वृक्ष के रेशों से रस्से आदि बनते हैं । इसकी लकड़ी मुलायम होती है और मेज कुर्सी आदि बनाने के काम में आती है । इसे नताउल भी कहते हैं । वि० १० 'नताउल' ।

जसोमति^६—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'यशोदा' ।

जसोबा, जसोवै^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'यशोदा' । उ०—सो तुम मातु जसोवै, मोहि न जानहु बार । जहँ राजा बलि बांधा छोरो पैठ पतार ।—जायसी (शब्द०) ।

जस्टिफाई—संज्ञा पुं० [अंग० जस्टिफाई] कंपोज किए हुए मैटर को इस सहायित से बैठाना या कसना कि कोई लाइन या पंक्ति छोटी बड़ी या कोई अक्षर इधर उधर न होने पाए । जैसे,—इस पेज का जस्टिफाई ठीक नहीं हुआ है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जस्टिस^८—संज्ञा स्त्री० [अंग०] न्याय । इन्सार्फ [को०] ।

जस्टिस—संज्ञा पुं० वह जो न्याय करने के लिये नियुक्त हो । न्याय-मूर्ति । विचारपति । न्यायाधीश । जैसे—जस्टिस सुंदरलाल ।

विशेष—हिंदुस्तान में हाईकोर्ट के जज जस्टिस कहलाते हैं ।

जस्टिस आफ दि पीस—संज्ञा पुं० [अंग०] [सक्षिप्त रूप जे० पी०] स्थानीय छोटे मैजिस्ट्रेट जो शांतिरक्षा, छोटे मोटे मामलों आदि का विचार करने के लिये नियुक्त किए जाते हैं । शांति-रक्षक । जैसे, ग्रानरेरी मैजिस्ट्रेट ।

विशेष—बंबई में कितने ही प्रतिष्ठित भारतीय जस्टिस आफ दि पीस हैं । इन्हें ग्रानरेरी मैजिस्ट्रेट ही समझना चाहिए । जज, मैजिस्ट्रेट आदि भी जस्टिस आफ दि पीस कहलाते हैं । अपने महस्ले या आस पास दगा फसाद होने पर वे जस्टिस आफ दि पीस या शांतिरक्षक की हैसियत से शांतिरक्षा की व्यवस्था करते हैं ।

जस्त—संज्ञा पुं० [सं० जसद] १० 'जस्ता' ।

जस्त—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] छलौंग । कुलौच । जैसे,—शिकार का आहट पाते ही वह जस्त मारने को तैयार हो जाती ।—संन्यासी, पृ० ५० ।

जस्तई—वि० [हि० जस्ता] जस्ते के रंग का । खाकी ।

जस्ता—संज्ञा पुं० [सं० जसद] कालापन लिए सफेद या खाकी रंग की एक धातु ।

विशेष—इस धातु में गंधक का अंश बहुत होता है । इसका

व्यवहार अनेक प्रकार के कार्यों में, विशेषतः सोहे की चादरों पर, उन्हें मोरचे से बचाने के लिये कलई करने, बैटरी में बिजली उत्पन्न करने तथा बरतन बनाने आदि में होता है। भारत में इसकी सुराहियाँ बनती हैं जिनमें रखने से पानी बहुत जल्दी धीरे खूब ठंडा हो जाता है। इसे ताँबे में मिसाने से पीतल बनता है। जर्मन सिलवर बनाने में भी इसका उपयोग होता है। विशेष रासायनिक प्रक्रिया से इसका क्षार भी बनाया जाता है, जिसे 'सफेदा' कहते हैं और जिसका व्यवहार धोवणों तथा रंगों में होता है। पहले यह धातु भारत और चीन में ही मिलती थी पर बाद में बेल्जियम तथा प्रुशिया में भी इसकी बहुत सी खानें मिलीं। यूरोपवालों को इसका पता बहुत हाल में लगा है।

जहंम^१—[अ० जहम, हि० जहनुम] दे० 'जहनुम'। उ०—जगत जहंम राखिया, झूठे कुल की लाज। तन बिनसे कुल बिनसिहै, गह्यो न राम जिहाज।—कबीर ग्रं०, पृ० ४७।

जहँ^२—क्रि० वि० [सं० यत्, प्रा० जय्य, अप० जहँ] दे० 'जहाँ'। उ०—अग गयो गिरि निकट विकट उद्यान भयंकर। जहँ न खबरि दिसि बिदसि बहुत जहँ जीव खयंकर।—पृ० रा०, ६।६४।

यौ०—जहँ जहँ=जहाँ जहाँ। जिस जिस जगह। उ०—जहँ जहँ चरण पड़े संतन के तहँ तहँ बंटाधार।—कहावत (शब्द०)। जहँ तहँ=जहाँ तहाँ। यत् तत्। उ०—जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा।—मानस, २।१६८।

जहँगीरी—संज्ञा स्त्री० [फा० जहाँगीरी] कलाई का एक आभूषण। वि० दे० 'जहाँगीरी'।

जहँङना^१—क्रि० अ० [सं० जहन, हि० जहँङना] १. घाटा उठाना। हानि उठाना। उ०—हिंदू गूंगा गुरु कहै, मुसलिम गोयमगोय। कहै कबीर जहँङे शोक, मोह नींद में सोय।—कबीर० (शब्द०)। २. घोड़े में घाना। भ्रम में पड़ना। उ०—अब हम जाना हो हार बाजी को खेल। डंक बजाय देखाय तमाशा बहुरि सो तेल सकेल। हरि बाजी सुर नर मुनि जहँङे माया चेटक लाया। घर में डारि सबन अरमाया हृदया ज्ञान न पाया।—कबीर (शब्द०)।

जहँङना^२—क्रि० अ० [सं० जहन] १. हानि उठाना। २. घोड़े में पड़ना। उ०—सबै लोग जहँङा दयो अंधा सभै भुलान। कहा कोई नहि मानहि सब एकै माहँ समान।—कबीर (शब्द०)।

जहँक^३—संज्ञा स्त्री० [हि० झकना] १. कुड़न। चिड़। स्त्रीक। २. आवेश। उत्तेजना।

जहँक^४—वि० [सं०] छोड़ने या त्याग करनेवाला। [क्रि०]।

जहँक^५—संज्ञा पुं० १. समय। २. बालक। शिशु। ३. साँप की केचुल [क्रि०]।

जहँकना^६—क्रि० अ० [हि० जहकना] १. मस्त होना। प्रसन्न होना। आनंद से सराबोर होना। उ०—आजु कुंज मंदिर में

छके रंग दोऊ बैठे, केलि करे लाज छोड़ि रंग सौ जहँक जहँक।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १५०। २. उम्भरा होना। प्रभसा होना। उ०—जहँकन लागीं कूर कोइलें प्रमंथ चंद लखि चहुँ ओर सो चकोर लागे जहँकन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २२८।

जहँकना^७—क्रि० स० [हि० झकना] १. चिड़ना। कुठना।

जहँका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जंतु। कटास। कटार [क्रि०]।

जहँतिया^८—संज्ञा पुं० [हि० जगत (=कर)] जगत उगाहनेवाला। भूमिकर या लगान वसूल करनेवाला। उ०—साँचो सो लिख-बार कहावे। काया ग्राम मसाहत करिके जमा बाँधि ठहरावे। मन्मथ करे कैद अपनी मे जान जहँतिया लावे। माँझि माँझि खरिहान क्रोध को फोता भजन भरावे।—सूर (शब्द०)।

जहँतियार्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें पद या वाक्य अपने वाच्यार्थ को छोड़कर अभिप्रेत अर्थ को प्रकट करता है। जैसे, 'मम घर गंगा माहि' यहाँ 'गंगा माहि' से 'गंगा के बीच' अर्थ नहीं है, किंतु 'गंगा के किनारे' अर्थ है। इसे अहलक्षणा भी कहते हैं।

जहँजहल्लक्षण^९—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें एक या एक से अधिक देश का त्याग और केवल एक देश का ग्रहण किया जाय। वह लक्षणा जिसमें बोलनेवाले को शब्द के वाच्यार्थ से निकलनेवाले कई एक भावों में से कुछ का परित्याग कर केवल किसी एक का ग्रहण अभिप्रेत होता है। जैसे, यह वही देवदत्त है, इस वाक्य से बोलनेवाले का अभिप्राय केवल देवदत्त से है, न कि पहले के देवदत्त से या बाद के देवदत्त से। इसी प्रकार छांदोग्य उपनिषद् में आया हुए 'तत्त्वमसि श्वेतकेती' अर्थात् 'हे श्वेतकेतु! वह तू ही है', आया है। इस वाक्य से कहनेवाले का अभिप्राय ब्रह्म के सर्वज्ञत्व और श्वेतकेतु के अल्पज्ञत्व या ब्रह्म की सर्वव्यापिता और श्वेतकेतु की एकदेशिता को एक ठहराने का नहीं है किंतु दोनों की चेतनता ही की ओर लक्ष्य है।

जहँदना—क्रि० अ० [हि० जहदा] १. कीचड़ होना। दलदल हो जाना।

संयो० क्रि०—जाना।—उठाना।

२. शिथिल पड़ना। थक जाना। हाँफ जाना।

जहँदा^{१०}—संज्ञा पुं० [?] दलदल। बहुत अधिक कीचड़। उ०—जग जहँदा में राखिया झूठे कुल की लाज। तन दीजे कुल बिनसिहै रटे न नाम जहाज।—कबीर (शब्द०)।

जहँदम^{११}—संज्ञा पुं० [अ० जहनुम] दे० 'जहनुम'।

जहँन—पुं० [फा० जेहन, जेहन] समझ। बुद्धि। धारणा। उ०—बादल नीचे हो और इनसान ऊँचे पर यह बात उनके जहँन में नहीं आती थी।—सर कुं०, पृ० १२।

जहँना^{१२}—क्रि० स० [सं० जहन] १. त्यागना। छोड़ना। परित्याग करना। २. नाश करना। नष्ट करना। उ०—जहि पर दोष अस्त भो कैसे। फिरहै अब उलूक सुखमै से। (शब्द०)।

जहन्नम—संज्ञा पुं० [घ०] दे० 'जहन्नम' ।

जहन्नम—संज्ञा पुं० [घ०] १. नरक । दोजख ।

मुहा०—जहन्नम में जाना (१) नष्ट या बर्बाद होना, (२)

घातों से दूर होना । जहन्नम में जाय । हमें कोई संबंध नहीं ।

विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग दुःखजनित उदासीनता प्रकट करने के लिये होता है । जैसे,—अब वह मानता ही नहीं, तब जहन्नम में जाय ।

२. वह स्थान जहाँ बहुत दुःख और कष्ट हो ।

जहन्नमरसीद—वि० [फा०] नरक में गया हुआ । दोजखी ।

मुहा०—जहन्नमरसीद करना = नष्ट करना । नामनिशान मिटा देना । जहन्नमरसीद होना = नष्ट या बरबाद होना ।

जहन्नमी—वि० [फा०] जहन्नम में जानेवाला । नारकिक । नरकगामी ।

जहमत—संज्ञा स्त्री० [घ० जहमत] १. आपत्ति । मुसीबत । आफत ।

मुहा०—जहमत उठाना = दुःख भोगना । मुसीबत सहना ।

२. झंझट । बखेड़ा । तरबुद ।

मुहा०—जहमत में पड़ना = झंझट में फँसना । बखेड़े में पड़ना ।

जहर^१—संज्ञा स्त्री० [फा० जहर] १. वह पदार्थ जो शरीर के अंदर पहुँचकर प्राण ले ले अथवा किसी अंग में पहुँचकर उसे रोगी कर दे । विष । गरम ।

यौ०—जहरदार । जहरबाद । जहरमोहरा ।

मुहा०—जहर डगलना = (१) मर्मभेदी बात कहना जिससे कोई बहुत दुःखी हो । (२) द्वेषपूर्ण बात कहना । जली कटी कहना । जहर करना या कर देना = बहुत अधिक नमक मिर्च आदि डालकर किसी खाद्यपदार्थ को इतना कड़वा कर देना कि उसका खाना कठिन हो । जाय जहर का घूँट = बहुत कड़वा । बेसवाद या कड़वा होने के कारण न खाने योग्य ।

जहर का घूँट पीना = किसी अनुचित बात को देखकर क्रोध को मन ही मन दबा रखना । क्रोध को प्रगट न होने देना । जहर का बुझाया हुआ = जो बहुत अधिक सपटव या अनिष्ट कर सकता हो । जहर की गाँठ = विष की गाँठ । किसी पर जहर खाना = किसी बात या घादमी के कारण ग्लानि, ईर्ष्या, लज्जा आदि से आत्महत्या पर उतार होना । जैसे,—अपने इस काम पर तो उन्हें जहर खा लेना चाहिए । जहर देना = जहर मिलाना या खिलाना । जहर मार करना = अनिच्छा या अस्वीकार होने पर भी जबरदस्ती खाना । जैसे,—कचहरी जाने की जल्दी थी; किसी तरह वो रोटियाँ जहर मार करके खलते बने । जहर मारना = विष के प्रभाव या शक्ति को दबाना या शांत करना । जहर में बुझाना = तीर, छुरी, तलवार, कटार आदि हथियारों को विषाक्त करना ।

विशेष—ऐसे हथियारों से जब वार किया जाता है, तब उससे बायल होनेवाले मनुष्य के शरीर में उनका विष प्रविष्ट हो जाता है जिसके प्रभाव से घादमी बहुत जल्दी मर जाता है ।

२. अप्रिय बात या काम । वह बात या काम जो बहुत नागवार मालूम हो । जैसे,—हमारा यहाँ भाना उन्हें जहर मालूम हुआ ।

मुहा०—जहर करना या कर देना = बहुत अधिक अप्रिय या असह्य कर देना । बहुत नागवार बना देना । जैसे,—उन्होंने हमारा खाना पीना जहर कर दिया । जहर मिलाना = किसी बात को अप्रिय कर देना । जहर में बुझाना = किसी बात या काम को अप्रिय बनाना । जैसे,—आप जो बात कहते हैं, जहर में बुझाकर कहते हैं । जहर लगना = बहुत अप्रिय जान पड़ना । बहुत नागवार मालूम होना ।

जहर^२—वि० घातक । मार डालनेवाला । प्राण लेनेवाला ।

२. बहुत अधिक हानि पहुँचाने वाला । जैसे,—ज्वर के रोगी के लिये भी जहर है ।

जहर^३(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० जीहर] दे० 'जीहर' । उ०—ग्यारह पुत्र कटाह बारहे अजय बचायो । साजि जहर व्रत नारि धर्म धर्म कुल रखायो ।—राधाकृष्ण दास (शब्द०) ।

यौ०—जहर व्रत = जीहर का व्रत । जीहर का कार्य रूप में परिणयन ।

जहरगत—संज्ञा स्त्री० [हि० जहर + गति] नाच की एक गत जिसमें घूँघट काढ़कर नाचा जाता है ।

जहरदार—वि० [फा० जहरदार] जहरीला । विषाक्त ।

जहरबाद—संज्ञा पुं० [फा० जहरबाद] रक्त के विकार के कारण उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का बहुत भयंकर और विषाक्त फोड़ा ।

विशेष—इस फोड़े के आरंभ में शरीर के किसी अंग में सूजन और जलन होती है और तदुपरांत उस अंग में फोड़ा होकर बढ़ने लगता है । इसका विष शरीर के भीतर ही भीतर शीघ्रता से फैलने लगता है और फोड़ा बड़ी कठिनता से अच्छा होता है । यह रोग मनुष्यों आदि को भी होता है । कहते हैं, इस फोड़े के अच्छे हो जाने पर भी रोगी अधिक दिनों तक नहीं जीता ।

जहरमोहरा—संज्ञा पुं० [फा० जहरमोहराह] १. काले रंग का एक प्रकार का पत्थर जिसमें साँप काटने के कारण शरीर में चढ़े विष को खींच लेने की शक्ति होती है ।

विशेष—यह पत्थर शरीर में उस स्थान पर रखा जाता है जहाँ साँप ने काटा हो । कहते हैं, यह पत्थर उस स्थान पर आपसे आप चिपक जाता है, और जबतक सारा विष नहीं खींच लेता, तबतक वहाँ से नहीं छूटता । यह भी प्रवाद है कि यह पत्थर बड़े मेढ़क के सिर में से निकलता है ।

२. हरे रंग का एक प्रकार का पत्थर जो कई तरह के विषों को खींच लेता है ।

विशेष—यह बहुत ठंडा होता है, इसलिये गरमी के दिनों में लोग इसे घिसकर शरबत में मिलाकर पीते हैं । खून देना का यह पत्थर, जिसे 'जहरमोहरा खताई' कहते हैं, बहुत अच्छा होता है ।

जहरी—वि० [हि० जहर + ई (प्रत्य०)] १. जहरवाला । विषाक्त । उ०—कुछ बापूतमयी, कुछ कुछ जहरी, कुछ मिल-

मिलसी, कुछ कुछ गहरी, वह घाती ज्यों नभगंधार मेरी बीछा में एक तार । — क्वासि, पु० ७४ । २. अत्यधिक मादक या नशीली वस्तु पीनेवाला । ३. कसर रखनेवाला । डाही । ईर्ष्यालु ।

जहरीला—वि० [हि० जहर + ईला (प्रत्य०)] जिसके जहर हो । जहरदार । विषाक्त । जैसे, जहरीला फल, जहरीला जानवर ।

जहल^१—संज्ञा पुं० [अ० जहल] नासमभी । मूर्खता । बुद्धिहीनता । उ०—गेर उसकी हुकम सू करना भमल । नफा नई नुकसान है जानो जहल । —दक्खिनी०, पु० १६२ ।

जहला^२—संज्ञा पुं० [अ० जेल] कारागार । बंदीगृह ।

यौ०—जहलखाना = जेलखाना । बंदीगृह । उ०—फेर जहल-खाना रे हरी । — प्रेमघन०, भा० २, पु० ३५६ ।

जहलक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जहलस्वार्था' ।

जहवाँ^३—क्रि० वि० [सं० यत्र] दे० 'जहाँ' ।

जहाँ—क्रि० वि० [सं० यत्र, पा० यत्थ, प्रा० जह] १. स्थान-सूचक एक शब्द । जिस स्थान पर । जिस जगह । उ०—अन्य सो देस जहाँ सुरसरी । अन्य नारि पतिव्रत अनुसरी । —तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—जहाँ का तहाँ = अपने पहले के स्थान पर । जिस जगह पर हो, उसी जगह पर । जहाँ का तहाँ रह जाना = (१) दब जाना । आगे न बढ़ना । (२) कुछ कारवाई न होना । जहाँ तहाँ = इतस्ततः । इधर उधर । उ०—जहँ तहँ गई सकल तब सीता कर मन सोच । मास दिवस बीते मोहि मारिहि निसिचर पोच । —तुलसी (शब्द०) ।

२. सब जगह । सब स्थानों पर । उ०—रहा एक दिन अरबि कर प्रति आरत पुर लोग । जहँ तहँ सोचहि नारि नर कृश तनु राम वियोग । —तुलसी (शब्द०) ।

जहाँ^२—संज्ञा पुं० [फ्रा०] जहान । संसार । लोक ।

विशेष—इस रूप में इस शब्द का व्यवहार केवल कविता या बोधिक शब्दों में होता है । जैसे,— (क) जहाँ में जहाँ तक जगह पाइए । इमारत बनाते चले जाइए । (ख) जहाँगीरी । जहाँपनाह ।

यौ०—जहाँआरा । जहाँगद = संसार में घूमनेवाला । घुमकड़ । जहाँगर्दी = विश्वभ्रमण । संसारपर्यटन । जहाँगीर = विश्वविजयी । विश्व का शासक । जहाँदीद । जहाँदीदा । जहाँगीरी । जहाँपनाह ।

जहाँआरा—वि० [फ्रा०] संसार को शोभित करनेवाला [को०] ।

जहाँगीर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] मुगल सम्राट् अकबर का पुत्र ।

जहाँगीरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. हाथ में पहनने का एक प्रकार का जड़ाऊ गहना ।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है । साधारणतः हाथ में पहनने की सोने की वे पटरियाँ जहाँगीरी कहलाती हैं, जिन-पर नग जड़े होते हैं । कहीं कहीं पटरियों में कोई भी जड़े होते हैं

जिनमें बहुत छोटे छोटे पुष्पों के फूल के आकार के गुच्छे पिरो दिए जाते हैं । इन पटरियों को भी जहाँगीरी कहते हैं ।

२. हाथ में पहनने की लाख की एक प्रकार की चूड़ी ।

जहाँदीद—वि० [फ्रा०] जिसने दुनियाँ को देखकर बहुत कुछ तजस्बा किया हो । अनुभवी ।

जहाँदीदा—वि० [फ्रा० जहाँदीदह्] दे० 'जहाँदीद' ।

जहाँपनाह—संज्ञा पुं० [फ्रा०] संसार का रक्षक ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल बहुत बड़े राजा के लिये ही किया जाता है ।

जहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंजी ।

जहाज—संज्ञा पुं० [अ० जहाज] बहुत अधिक बड़ी नाव जो बहुत गहरे जल विशेषतः समुद्र में चलती है । पोत ।

विशेष—भाजकल के जहाजों का अधिकांश भाग लोहे का ही होता है और उनके चलाने के लिये भाप के बड़े बड़े इंजनों से काम लिया जाता है । यात्रियों को ले जाने, माल ढोने, देशों की रक्षा करने, लड़ने भड़ाने आदि कामों के लिये साधारण जहाजों की लंबाई छह सौ फुट तक होती है ।

यौ०—जहाज का कोषा या कागा । जहाज का पंछो = दे० ; जहाजी कोषा । उ०—(क) सीतापति रघुनाथ जू तुम लग मेरी दोर । जैसे काग जहाज को सुझा और न दोर । —तुलसी (शब्द०) । (ख) मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै । जैसे उड़ि जहाज को पंछो फिर जहाज पै पावै । —सूर० १ । १६७८ ।

जहाजरान—संज्ञा पुं० [फ्रा० जहाज + फ्रा० रान (प्रत्य०)] जहाज चलानेवाला । पोत का चालक [को०] ।

जहाजरानी—संज्ञा स्त्री० [अ० जहाज + फ्रा० रानी (प्रत्य०)] जहाज चलाने का कार्य या पेशा । जहाज खलाना ।

जहाजी—वि० [अ० जहाज + फ्रा० ई (प्रत्य०)] जहाज से संबंध रखनेवाला । जैसे, जहाजी बेड़ा ।

यौ०—जहाजी इत्र = एक प्रकार का निकुट इत्र जो कन्नीज में बनता है । जहाजी कोषा = (१) वह कोषा या कोई पक्षी जो किसी जहाज के छूटने के समय उत्सार बैठ जाता है । और जहाज के बहुत दूर समुद्र में निकल जाने पर जब वह उड़ता है, तब चारो ओर कहीं स्थल न देखकर फिर उसी जहाज पर आ बैठता है । साधारणतः इससे ऐसे मनुष्य का अभिप्राय लिया जाता है जिसे अपने ठहरने या कोई काम करने के लिये एक के सिवा और कोई दूसरा स्थान न मिलता हो । (२) बहुत बड़ा धूलें । भारी चालाक । जहाजी डाकू = वे डाकू जो समुद्रों में अपना जहाज लेकर घूमते रहते हैं और साधारण जहाजों के यात्रियों को लूट लेते हैं । समुद्री डाकू । जहाजी सुपारी = एक प्रकार की सुपारी जो साधारण सुपारी से लगभग दूनी बड़ी होती है ।

जहान—संज्ञा पुं० [फ्रा०] संसार । लोक । जगत् । जैसे,—जान है तो जहान है (कहावत) ।

विशेष—कविता और योगिक शब्दों में इस शब्द का रूप 'जहाँ' हो जाता है । वि० दे० 'जहाँ' (अक्ष०) ।

जहानक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय ।

जहाज—संज्ञा स्त्री० [ज०] भ्रमण । भ्रमता । भ्रमना ।

जहिया^१—क्रि० वि० [सं० प्रद + हिया] जिस समय । जिसदिन ।

जब । उ०—(क) कहूँ कबीर कुछ भयलो न जहिया ।

हरि बिरवा प्रतिपालेस तहिया ।—कबीर (शब्द०) ।

(ख) भुजबल विश्व जितव तुम जहिया । धरिहै विष्णु

मनुज तनु तहिया ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—जहिया तहिया = जिस किसी समय ।

जही^२—क्रि० वि० [सं० यत्र, पा० यत्थ] १. जहाँ ही । जिस

स्थान पर । उ०—सत्त खड सात ही तरंगिनी बहै जहीं ।

सोह रूप ईश को विशेष जंतु सेवही ।—केशव (शब्द०) ।

यौ०—जही जहीं तहीं तहीं । उ०—जहीं जही विराम लेत

राम छ तही तहीं अनेक भाति के अनेक भोग भाग सौ बढ़े ।—

केशव (शब्द०) ।

२. ज्यों ही । उ०—सीय जहीं पहिराई । रामहि माल सुहाई ।

हुंहुमि देव बजाए । फूल तहीं बरसाए ।—केशव (शब्द०) ।

जहीन—वि० [ज० जहीन] १. बुद्धिमान । समझदार । २. धारणा

शक्तिवाला । मेधावी ।

जहु—संज्ञा पुं० [सं०] संताप । संतति । धोलाद ।

जहूर—संज्ञा पुं० [ज० जहूर या जहूर] प्रकाश । दीप्ति । उ०—

जबपि रही है भावतो सकल जगत मरपूर । बस लैये वा

ठोर की जहूँ हूँ करे जहूर ।—स० सप्तक, पृ० १७८ ।

मुहा०—जहूर में घाना = प्रकट होना । जहूर में लाना = प्रकट

करना ।

जहूरा^३—संज्ञा पुं० [ज० जहूर या जहूर] १. देखावा । दृश्य ।

उ०—ये सब यार प्यार लख पूरा । रूप न रेल जहूरा । २.

ठाठ । ३. लड़का ।—(बाजारू) ।

जहेज—संज्ञा पुं० [ज० जहेज मि० सं० दायज] वह धन संपत्ति जो

कन्या के विवाह में पिता की ओर से वर को भ्रथवा उसके

वरवालों को दी जाती है । दहेज ।

जहू—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. एक राजर्षि का नाम ।

विशेष—(१) पुराणों के अनुसार जब भगीरथ गंगा को लेकर आ

रहे थे, तब जहू ऋषि मार्ग में यज्ञ कर रहे थे । गंगा के कारण

यज्ञ में विघ्न होने के भय से उन्होंने उनकी पी लिया था ।

भगीरथ जी के बहुत प्रार्थना करने पर उन्होंने फिर गंगा को

कान से निकाल दिया था । तभी से गंगा का नाम जहूसुता,

जाहूवी आदि पड़ा । (२) इस शब्द के साथ कन्या, सुता, तनया

आदि पुत्रीवाचक शब्द लगाने से गंगा का अर्थ होता है ।

यौ०—जहूजा । जहूकन्या । जहूतनया । जहूसप्तमी ।

जहूसुता ।

जहूकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

जहूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा । उ०—जो पृथ्वी के विपुल

सुख की माधुरी है विपाशा । प्राणी सेवा अनित सुख की प्राप्ति

तो जहूजा है ।—प्रिय०, पृ० २४४ ।

जहूसनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

जहूसप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ला सप्तमी । कहते हैं,

इसी दिन जहू ने गंगा को पान किया था । गंगासप्तमी ।

जहूसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

जहू—संज्ञा पुं० [ज० जहू] विष । जहर [को०] ।

जांगल^४—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गल] १. तीतर । २. मांस । ३. वह

देश जहाँ जल बहुत कम बरसता हो, धूप और गरमी अधिक

पड़ती हो, हरे वृक्षों या घास आदि का अभाव हो, करीब

मदार, बेल और शमी आदि के पेड़ हों और बारहसिंधे तथा

हिरन आदि पशु रहते हों । ४. ऐसे प्रदेश में पाए जानेवाले

हिरन और बारहसिंधे आदि जंतु जिनका मांस मधुर, रुखा,

हलका, दीपन, रुचिकारक, शीतल और प्रमेह, कठमाला तथा

श्लोषक आदि रोगों का नाशक कहा गया है ।

जांगल^५—वि० जंगल संबंधी । जंगली ।

जांगलि—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गलि] १. सँपेरा । सँप पकड़नेवाला ।

मदारी । २. विषवेद्य । सँप का जहर उतारनेवाला ।

जांगलिक—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गलिक] दे० 'जांगलि' ।

जांगली—संज्ञा स्त्री० [सं० जाङ्गली] कौंछ । केंवाच ।

जांगलू—वि० [फा० जंगल] गँवार । जंगली । उजहू ।

जांगी—संज्ञा पुं० [फा० जंग ?] नगाड़ा ।—(डि०) ।

जांगुल—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गुल] १. तोरई । तोरोई । २. विष ।

३. दे० 'जंगुल' ।

जांगुलि—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गुलि] सँप पकड़नेवाला । गादड़ो ।

सँपेरा ।

जांगुलिक—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गुलिक] दे० 'जांगुलि' ।

जांगुली—संज्ञा स्त्री० [सं० जाङ्गुली] सँप का विष उतारने की विद्या ।

जांगिक—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गिक] १. उष्ट्र । ऊँट । २. एक प्रकार का

भृगु जिसे शिकारी भी कहते हैं । ३. वह जिसकी जीविका बहुत

दोड़ने आदि से ही चलती है । जैसे, हरकारा ।

जांतव—वि० [सं० जान्तव] जंतु संबंधी । जंतुजन्य ।

जांब^६—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बव] जामुन का फल या वृक्ष ।

जांबवंत—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवंत > जाम्बवन्त] दे० 'जांबवान्' ।

उ०—(क) महाधीर संभीर वचन सुनि जांबवंत समझाए ।

बढ़ी परस्पर प्रीति रीति तब भूषण सिया दिखाए ।—सूर

(शब्द०) । (ख) जांबवंत सुतासुत कहाँ मम सुता बुद्धि

वंत पुरुष यह सब संभारे ।—सूर (शब्द०) ।

जांबव—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बव] १. जामुन का फल । जंबू फल । २.

जामुन के फल से बनी हुई शराब । जामुन का बना मद्य । ३.

जामुन का सिरका । ४. सोना । स्वर्ण ।

जांबवक—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवक] दे० 'जांबव' ।

जांबवत्—संज्ञा पुं० [पुं० जाम्बव] दे० 'जांबवान्' ।

जांबवती—संज्ञा स्त्री० [सं० जाम्बवती] १. जाम्बवान् की कन्या

जिसके साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था । उ०—(क)

जांबवती घरपी कन्या भरि मणि राखी समुहाय । करि हरि ध्यान गए हरिपुर को जहाँ योगेश्वर जाय ।—सूर (शब्द०) । (ख) रिच्छराज बहु मनि तासों से जांबवती को दीन्हीं । जब प्रसेन को बिलंब भई तब सन्नाजित सुष लीन्हीं ।—सूर०, १० । ४१६० ।

विशेष—भागवत में लिखा है कि श्रीकृष्ण जब स्वयंतक मणि की खोज में जंगल में गए थे, तब वहीं उन्होंने जांबवान् को परास्त करके वह मणि पाई थी और उसकी कन्या जांबवती से विवाह किया था ।

२. नागदमनी । नागदोन ।

जांबवान्—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] सुषीव के मंत्री का नाम जो ब्रह्मा का पुत्र माना जाता है ।

विशेष—इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह रीछ थे । रावण के साथ युद्ध करने में त्रेता युग में इन्होंने रामचंद्र को बहुत सहायता दी थी । भागवत में लिखा है कि द्वापर युग में इसी की कन्या जांबवती के साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था । यह भी कहा जाता है कि सतयुग में इन्होंने वामन अवतार की परिक्रमा की थी । इस कथा का उल्लेख रामचरितमानस (किष्किष्ठा कांड, दोहा २८) में भी है; यथा—बलि बाँधत प्रभु बाँधेउ सो तनु बरनि न जाय । उभय घरी महुँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाय ।

जांबवि—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवि] वज्र ।

जांबवी—संज्ञा स्त्री० [सं० जाम्बवी] १. जांबवान् की पुत्री । जांबवती । २. नागदमनी ।

जांबवोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवोष्ठ] जांबवोष्ठ नामक छोटा अस्त्र जिससे प्राचीन काल में फोड़े आदि जलाए जाते थे ।

जांबीर—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बीर] जंबीरी नीबू । जंबीरी नीबू ।

जांबील—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बील] १. पैर के घुटनेवाली गोल हड्डी । २. जंबीरी नीबू (को०) ।

जांबुक—वि० [सं० जाम्बुक] जंबुक संबंधी । शृगाल संबंधी (को०) ।

जांबुमाली—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुमालिन्] प्रहस्त नामक राक्षस के पुत्र का नाम जिसे अशोक वाटिका उजाड़ते समय हनुमान ने मार डाला था ।

जांबुवत्—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुवत्] दे० 'जांबवान्' ।

जांबुवान्—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुवान्] दे० 'जांबवान्' ।

जांबू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] दे० 'जंबू' (द्वीप) । ४०—जांबू और पलाश है शालमली कुश चारि । कौष संकला द्वीप पट पुष्कर सात विचारि —(शब्द०) ।

जांबूनद—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बूनद] १. धतूरा । २. सोना । ३. स्वर्ण-भूषण (को०) ।

जांबोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बोष्ठ] प्राचीन काल का एक प्रकार का छोटा अस्त्र जिससे फोड़े आदि जलाए जाते थे ।

जाँ^१—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं० जा] दे० 'जा' ।

जाँ^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जा] प्राण । जान ।

जाँ^३—वि० [सं० जा] दे० 'जा' ।

जाँउनि^४—संज्ञा स्त्री० [हि० जामुन] दे० 'जामुन' ।

जाँग^५—संज्ञा पुं० [देश०] बोंहों की एक जाति । उ०—जरवा, जिरही, जाँग, सुनोही, ऊदे खंजन । कर रकवाहे कवल गिलमिली गुलगुल रंजन ।—सूदन (शब्द) ।

जाँग^६—संज्ञा स्त्री० [हि० जाँघ] दे० 'जाँघ' ।

जाँगड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] राजाओं का यश गानेवाला । भाट । बंदी ।

जाँगड़िया—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जाँगड़ा' । उ०—(क) जाँगड़िया दूहा दिऐ सिवू राग मझार ।—बाँकी० पं०, भा० २, पृ० ६६ । (ख) कुण पूछे ढोलाकणो जाँगड़िया नूँ जाब ।—बाँकी० पं०, भा० २, पृ० १० ।

जाँगर^७—संज्ञा पुं० [हि० जान या जाँघ > जान + का० गर (प्रत्य०)] १. शरीर । देह । २. हाथ पैर । ३. पोरुष । बल । शक्ति ।

यौ०—जाँगरचोर=जो काम करने से जी चुराता हो । घालसी । डीलहराम । जाँगरतोड़=मेहनत करनेवाला । मेहनती । जैसे, जाँगरतोड़ घादमी, जाँगरतोड़ काम ।

मुहा०—जाँगर टूटना, जाँगर धकना=शरीर शिथिल होना । पोरुष या श्रमशक्ति का जबाब देना ।

जाँगर^८—संज्ञा पुं० [देश०] खाली डंठल जिसमें से अन्न झाड़ लिया गया हो । उ०—तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सोज संपदा अकेलि चाकि राखी रासि जाँगर जहान भो ।—तुलसी (शब्द०) ।

जाँगरा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जाँगड़ा' । उ०—करें जाँगे घालाप बिरद कलाप भूप प्रताप । धतिभय मित्राजी चढ़े बाजी करत धरि उर ताप—रघुराज (शब्द०) ।

जाँगलू—वि० [हि० जंगल] दे० 'जांगलू' ।

जाँगी—संज्ञा पुं० [सं० जंग] नगाड़ा ।—(डि०) ।

जाँघ—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्घ (=पिंडली)] घुटने और कमर के बीच का अंग । ऊर ।

जाँघा—संज्ञा पुं० [देश०] १. हक ।—(पूरबी) । २. कुएँ के ऊपर गड़ारी रखने का खम्भा । ३. लकड़ी या लोहे का वह धुरा जिसमें गड़ारी पहनाई हुई होती है ।

जाँघिया—संज्ञा पुं० [हि० जाँघ + इया (प्रत्य०)] १. लंगोट की तरह पहनावे का जाँघ को ढकने का एक प्रकार का सिला हुआ वस्त्र । काछा ।

विशेष—यह पायजामे की तरह का कमर में पहनने का एक प्रकार का सिला हुआ पहनावा है जिसकी खुस्त मोहरियाँ घुटनों के ऊपर कमर और पैर के जोड़ तक ही रहती हैं । इसमें पूरी रान दिखाई पड़ती है । इसे प्रायः पहलवान और नट आदि लंगोटे के ऊपर पहनते हैं ।

२. मालखंभ की एक प्रकार की कसरत ।

विशेष—इसमें बेंत को पैर के घँघूँठे और दूसरी उँगली से पकड़कर पिंडली में लपेटते हुए दूसरी पिंडली पर भी लपेटते

हैं और सब दूसरे पैर के घँगूटे से बेंत को पकड़कर नीचे की ओर सिर करके लटक जाते हैं।

जौघिला^१—संज्ञा पुं० [हि० जाँघ] वह बेल जिसका पिछली पैर चलने में लच खाता हो।

जौघिला^२—वि० जिसका पैर चलने में लच खाता हो।

जौघिला^३—संज्ञा पुं० [देश०] १. खाकी रंग की एक बिड़िया।

विशेष—इसकी गरदन लंबी होती है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है और उसी के लिये इसका शिकार किया जाता है।

२. प्रायः एक बालिशत लंबी एक प्रकार की छोटी बिड़िया।

विशेष—इसकी छाती और पीठ सफ़ेद, पर कासे, चोंच और सिर पीला, पैर खाकी और दुम गुलाबी रंग की होती है।

जौच—संज्ञा स्त्री० [हि० जाँचना] १. जाँचने की क्रिया या भाव। परीक्षा। परख। इम्तहान। आजमाइश। २. गवेषणा। तहकीकात।

यौ०—जौच पश्ताज = खोज के साथ किसी बात का पता लगाना। छानबीन।

जौचका^१—संज्ञा पुं० [सं० याचक] दे० 'जाचक' या 'याचक'। उ०—जौचक पै जाँचक कहँ जाँचे? जो जाँचे तो रसना हारी।—सूर, १।३४।

जौचकता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० याचकता] दे० 'जाचकता' या 'याचकता'। उ०—(क) जेहि जाँचत जाँचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुख दीनता दुखी इनके दुख जाँचकता प्रकुलानी।—तुलसी (शब्द०)।

जौचकताई^१—संज्ञा स्त्री [हि० जाँचक + ताई (प्रत्य०)] दे० 'जाचकता'।

जौचना—क्रि० सं० [सं० याचना] १. किसी विषय की सत्यता या असत्यता प्रथवा योग्यता या अयोग्यता का निर्णय करना। सत्यासत्य आदि का अनुसंधान करना। यह देखना कि कोई चीज ठीक है या नहीं। जैसे, हिसाब जौचना, काम जौचना।

संयो० क्रि०—देखना।—रखना।—ढालना।

२. किसी बात के लिये प्रार्थना करना। माँगना। उ०—(क) जिन जाँच्यों जाइ रस नंदराय ठरे। मानो बरसत मास प्रसाद दादुर मोर रेरे।—सूर (शब्द०)। (ख) रावन मरन मनुज कर जाँचा। प्रभु विधि बचन कीन्ह चहुँ साँचा।—तुलसी (शब्द०)। (ग) यही उधर के कारने जग जाँच्यो निसि याम। स्वामिपनो सिर पर चढ्यो सरयो न एको काम।—कबीर (शब्द०)।

जौजरा^१—वि० [सं० जर्जर, प्रा० जज्जर] [वि० स्त्री० जाजरी] जो बहुत ही जीर्ण हो। जर्जर। जीर्ण शीर्ण। उ०—लाग्यो यह दोष जु मैं रोष हूँ। घनुष तोरी जाँजरो, पुरानो हो मैं जानो गयो काम सो।—हनुमान (शब्द०)।

जौम^१—संज्ञा पुं० [सं० भ्रूम्भा] वह वर्षा जिसके साथ तेज हवा भी हो।

जौम्मा^१—संज्ञा पुं० [सं० भ्रूम्भा] दे० 'जौम'।

जौट—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसे रिया भी कहते हैं।

जौत—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] घाटा पीसने की बड़ी चक्की। जौता। उ०—धरती सरग जौत पट दोऊ। जो तेहि बिच जिठ राख न कोऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० ६३।

जौता—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] १. घाटा पीसने की पत्थर की बड़ी चक्की जो प्रायः जमीन में गड़ी रहती है।

क्रि० प्र०—चलाना।—पीसना।

२. सुनारो और तारकशों आदि का एक औजार।

विशेष—यह हस्तात या फोलाद लोहे की एक पटरी होती है जिसमें क्रमशः बड़े छोटे अनेक छेद होते हैं। उन्हीं में कोई धातु की बत्ती या मोटा तार आदि रखकर उसे खींचते खींचते लंबा और महीन तार बना लेते हैं। इसे जंती भी कहते हैं।

जौद—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के पेड़ का नाम।

जौन^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान] ज्ञान। जानकारी। उ०—सखे जोब जेतें सु केते जहानिं। अमै जत्र तत्र सु पावै न जानिं।—ह० रासो, पृ० ३५।

जौन^२—संज्ञा पुं० [सं० ध्यान] गमन। जाना।

यौ०—आवाजौन = आवागमन। उ०—त्रिवेणी कर प्रसनां। तेरा मेट जाय आवाजौन।—रामानंद०, पृ० ६।

जौन^३—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्यान, यात्रा] बारात। उ०—ब्रदावन बैसाख पर सोहे जान ससोह।—रा० क०, पृ० ३४७।

जौपना—क्रि० सं० [अप० चंप, चप्प] दे० 'चाँपना'।

जौपनाही—संज्ञा पुं० [फ़ा० जहाँपनाह] दे० 'जहाँपनाह'।

जौब^१—संज्ञा पुं० [सं० जम्बा] जबू फल। जामुन। जाम। उ०—(क) काहू गही अरब की डारा। कोई बिरछ जाँब अति छारा।—जायसी (शब्द०)। (ख) श्याम जाँब कस्तूरी बोवा। अरब जो ऊँच हृदय तेहि रोवा।—जायसी (शब्द०)।

जौबरशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] प्राणधान। जीवनदान। उ०—हुज़ूर यह गुनाम का लड़का है। हुज़ूर इसकी जौबरशी करें, हुज़ूर का पुराना गुलाम हूँ।—कामा०, पृ० १६५।

जौबाज—वि० [फ़ा० जौबाज] प्राण निखावर करनेवाला। जान की बाजी लगा देनेवाला। साहसी। उ०—जिसके लिये जौबाज है परवाने बेखौफ।—कबीर म०, पृ० ४६७।

जौबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जौबाजी] जान की बाजी। प्राणों का दाँव। साहम। उ०—पै एतो हूँ हम सून्यो, प्रेम प्रजूबो खेल। जौबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल से मेल।—रसखान०, पृ० ११।

जौमल^१—वि० [सं० यमल] दो। दोनों। उ०—भूप द्वार प्रसक्त भंडारी, हेमराज जौमल हितकारी।—रा० क०, पृ० ३१५।

जौयौ—वि० [फ़ा० जा] मुनासिब। वाजिब। उचित।

यौ०—बेजौयें। जौयें बेजौयें।

जौवत^१—अव्य० [सं० यावत्, हि०, जावत्] दे० 'यावत्'। उ०—जौवत जग साखा बन ठाँखा। जौवत केस रोम पखि पाँखा।

—जायसी (शब्द०) । (ख) पुन रूपवत बलानो काहा ।
जावत जगत सई सुख चाहा । —जायसी (शब्द०) ।

जौवर^५—संज्ञा पुं० [हि० जाना] गमन । प्रस्थान । जाना । उ०—
नव नव साइ लड़ाइ लड़िल नाहीं नाहीं कहूँ बज जावरो ।
—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

जा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माता । माँ । २. देवरानी । देवर की स्त्री ।
जा^२—वि० स्त्री० [सं० तुल्य० प्रा० (प्रत्य) जा (= उत्पन्न करनेवाला)]
उत्पन्न । संभूत । जैसे, गिरिजा, जनकजा ।

जा^३^५—सर्व० [हि० जो] जो । जिस । उ०—(क) जाकर जा-
पर सत्य सनेह । सो तेहि मिलहि न कछु संदेह । —तुलसी
(शब्द०) । (ख) एक समान जब हैं रहत लाज काम
ये दोइ । जा तिय के तन में तबहि मध्या कहिए सोइ ।
—पद्माकर पं०, पृ० ८७ । (ग) मेरी भवबाधा हरी राधा
नागरि सोइ । जा तन की भाँई परे स्यामु हरितदुति होइ ।
—बिहारी रं०, दो० १ ।

जा^४—वि० [फ्रा०] मुनासिब । उचित । वाजिब । जैसे,—भापकी
बात बहुत जा है
यौ०—बेजा = नामुनासिब । जो ठीक न हो ।

जा^५—संज्ञा पुं० स्थान । जगह । उ०—कुछ देर रहा हक्का बक्का
भीचक्का सा घा गया कहीं । क्या कलें यहाँ जाऊँ किस जा ।
मिलन०, पृ० ११० ।

जाइंट—संज्ञा पुं० [अंग० ज्वाइंट] १. जोड़ । पैबंद । २. गिरह । गाँठ ।
(मिस्तरी) । ३. दे० 'ज्वाइंट' ।

जाइ^५—वि० [हि० जाना] व्यर्थ । बृथा । निष्प्रयोजन । बेफायदा ।
उ०—सुमन सुपन अरपन लिए उपवन ते घर स्याइ । घरनी
घरि हरि तक कहो हाइ भयो भ्रम जाइ । —(शब्द०) ।

जाइफल—संज्ञा पुं० [अंग० जातीफल] दे० 'जायफल' ।

जाइफल—संज्ञा पुं० [अंग० जातीफल] दे० 'जायफल' ।

जाइस—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जायस' ।

जाई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जा (= उत्पन्न)] कन्या । बेटो । पुत्री ।
उ०—खुणहाली हुई बाप होर माई कुँ । तुलबखन हुमा
पूत उस जाई कुँ । —दक्खिनी०, पृ० ३६० ।

जाई^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जाती] जाती । बमेली ।

जाईनि^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जामुन] दे० 'जामुन' ।

जाउर^५—संज्ञा पुं० [हि० चाउर (= चावल)] मोठा धीर चावल
डालकर पकाया हुआ दूध । खीर ।

जाएला^५—संज्ञा पुं० [देश०] दो बार जोता हुआ खेत ।

जाएस—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जायस' ।

जाक^५—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्क, जक्क] यक्ष ।

जाकट—संज्ञा पुं० [अंग० जैकेट] दे० 'जैकेट' ।

जाकड़—संज्ञा पुं० [हि० जाकर; अथवा हि० जकड़ना (= बाँधना)]
१. दुकानदार के यहाँ से कोई माल इस शर्त पर ले जाना कि
यदि वह पसंद न होगा, तो फेर दिया जायगा । पक्का का

उलटा । २. इस प्रकार (शर्त पर) लाया हुआ माल ।

यौ०—जाकड़ बही ।

जाकड़बही—संज्ञा स्त्री० [हि० जाकड़ + बही] वह बही जिसमें
दुकानदार जाकड़ पर दिए हुए माल का नाम, किस्म और
वाम आदि टांक लेते हैं ।

जाकिटा^५—संज्ञा स्त्री० [अंग० जैकेट] दे० 'जैकेट' ।

जैकेट—संज्ञा स्त्री० [अंग० जैकेट] कुर्तों या सदरी की तरह का एक
प्रकार का अंग्रेजी पहनावा ।

जाख^५—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्क] दे० 'यक्ष' । उ०—
कोरी मटुकी बहो जमायो जाल न पूजन पायो । तिहि
घर देव पिठर काहे को जा घर कान्हूर आयो ।
—सूर०, १०।३४६ ।

जाखना^५—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहिए के आकार का गोल चक्कर
जो कुर्शों की नींव में दिया जाता है । जमवट । गैचार ।

जाखिनी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० यक्षिणी, प्रा० जक्खिणी] दे०
'यक्षिणी' । उ०—राघव करै जाखिनी पूजा । वही सो भाव
देखावै पूजा । —जायसी (शब्द०) ।

जाग^१—संज्ञा पुं० [अंग० यज्ञ] यज्ञ । मख । उ०—(क) तप कीन्है सो
बैहै धाग । ता सेती तुम कीजौ जाग । जज्ञ किये गंधर्वपुर
जैहो । तहाँ भाइ मोको तुम पैहो । —सूर०, १।२ ।
(ख) दक्ख सिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग ।
नैवते सादर सकल सुरे जे पावत मख भाग । —तुलसी
(शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना । —जागना । —जयना । उ०—बहुत महा
मुनि जाग जयो । नीच निसाचर देत दुसह दुख कस तनु ताप
तयो । —तुलसी (शब्द०) ।

जाग^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जगह] १. जगह । स्थान । ठिठाना ।
उ०—(क) तुहिकी न मुहिकी कहीं लुहिकी रही न जाग,
भाग कुल धीर तोपखाना बाघ व्यावा है । —सूदन (शब्द०) ।
(ख) कुदरत वाकी भर रही रसनिधि सबही जाग । ईधन
बिन बनियो रहै ज्यों पाहन में धाग । —रसनिधि (शब्द०) ।
२. गृह । घर । मकान । —(डि०) ।

जाग^३—संज्ञा स्त्री० [हि० जागना] जागने की क्रिया या भाव ।
जागरण । उ०—घटती होइ जाहि ते अपनी ताको कीजे
त्याग । धोखे कियो बास मन भीतर धव समझे भइ जाग ।
—सूर (शब्द०) ।

जाग^४—संज्ञा पुं० [देश०] वह कबूतर जो बिलकुल काले रंग का हो ।

जाग^५—संज्ञा पुं० [अंग० जक] जहाज का मांडाररक्षक ।

जागती—संज्ञा पुं० [सं०] जगती छंद ।

जागता—वि० [सं० जाग्रत] [वि० स्त्री० जागती] १. सजग । सचेत ।
२. तेजस्वी । अमरकारिक ।

मुहा०—जागता = प्रत्यक्ष । साक्षात् । जैसे, जागती जोत, जागती
कला । उ०—जाहिरै जागति सो जमुना जब बूझै बहै उमहै
वह बेनी । —पद्माकर (शब्द०) ।

जागतिक—वि० [सं०] जगत्संबन्धी । सांसारिक [को०] ।

जागती कला—संज्ञा स्त्री० [हि० जागना + कला] दे० 'जागती जोत' ।

जागती जोत—संज्ञा स्त्री० [हि० जागना + सं० ज्योति] १. किसी देवता विशेषतः देवी की प्रत्यक्ष महिमा या चमत्कार । २. चिराग । दीपक ।

जागना^१—क्रि० प्र० [सं० जागरण] १. सोकर उठना । नींद त्यागना । उ०—भाइ जगावहि चेला जागहु । भाषा गुरु पाय उठि लागहु ।—जायसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—पड़ना ।

२. निद्रारहित रहना । जाग्रत अवस्था में होना । ३. सजग होना । चेतन्य होना । सावधान होना । उ०—जरठाई दसा रवि काल उयो भजहै जड़ जीव न जागहि रे ।—तुलसी (शब्द०) । ४. उबित होना । चमक उठना । उ०—(क) भागत भभाग धनुरागत विराग भाग जागत भालस तुलसी से निकाम कै ।—तुलसी (शब्द०) । (क) निश्चय प्रेम पीर एहि जागा । कसै कसोडी कंचन लागी ।—जायसी (शब्द०) । ५. सघृद्ध होना । बड़ चढ़कर होना । उ०—पचाकर स्वादु सुषा तें सरें मधु तें महु माधुरी जागती है ।—पचाकर (शब्द०) । ६. जोर जोर से उठना । समुत्थित होना । जैसे, लोकमत का जागना । ७. प्रज्वलित होना । जलना । ८. प्रादुर्भूत होना । अस्तित्व प्राप्त करना । ९. प्रसिद्ध होना । मशहूर होना । उ०—जायो खोंबि माँगि में तेरो नाम लिया रे । तेरे बल बलि प्राजु लौ जग जागि जिया रे ।—तुलसी (शब्द०) ।

जागना^२—क्रि० प्र० [सं० यजन] यज्ञ करना । उ०—पयसि पयागे जाग सत जागइ सोइ पावए बहु भागी ।—विद्यापति, पृ० ४१० ।

जागनील—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का हथियार ।

जागबल्लिक—संज्ञा पुं० [सं० याज्ञवल्क्य] एक ऋषि । दे० 'याज्ञवल्क्य' । उ०—जागबल्लिक जो कथा सुहाई । भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

जागद—संज्ञा पुं० [सं०] १. जागरण । जाग । जागने की क्रिया । उ०—सुनि हरिदास यहै जिय जानी सुपने को सो जागर ।—हरिदास (शब्द०) । २. कवच । भंगत्राण । जिरह बस्तर । ३. घतःकरण की वह अवस्था जिसमें उसकी सब वृत्तियाँ (मन, बुद्धि, महंकार आदि) प्रकाशित या जाग्रत हों ।

जागरक—वि० [सं०] जाग्रत । चेतन्य [को०] ।

जागरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निद्रा का अभाव । जागना । २. किसी व्रत, पर्व या धार्मिक उत्सव के उपलक्ष में अथवा इसी प्रकार के किसी और अवसर पर भगवद्भजन करते हुए सारी रात जागना । उ०—वासर ध्यान करत सब बीर्यो । निशि जागरन करन मन भीर्यो ।—सूर (शब्द०) ।

जागरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जागरण' [को०] ।

जागरित^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. नींद का न होना । जागरण । २. सांख्य और वेदांत के मत से वह अवस्था जिसमें मनुष्य की

इंद्रियों द्वारा सब प्रकार के व्यवहारों और कार्यों का अनुभव होता रहे ।

जागरित^२—वि० जागा हुआ । चेतन्य । सचेत ।

जागरित स्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वह आत्मा जो जागरित स्थिति में हो ।

जागरितांत—संज्ञा पुं० [सं० जागरितान्त] वह आत्मा जो जागरित स्थिति में हो । जागरित स्थान ।

जागरिता—वि० [सं० जागरित] [वि० स्त्री० जागरित्री] जागा हुआ । चेतन्य ।

जागरी—वि० [सं० जागरिन्] दे० 'जागरिता' ।

जागरूक^१—संज्ञा पुं० [देश० जागर + हि० कृ (प्रत्य०)] १. भूसा आदि मिला हुआ वह खराब भन्न जो देवाई के बाद अच्छा भन्न निकाल लेने पर बच रहता है । २. भूसा ।

जागरूक^२—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जाग्रत अवस्था में हो । चेतन्य ।

जागरूक^३—वि० जागता हुआ । निद्रारहित । सावधान ।

जागरूप—वि० [हि० जागना + रूप] जो बहुत ही प्रत्यक्ष और स्पष्ट हो ।

जागर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जागरण । जाग्रति । २. चेतनता ।

जागर्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जागर्ति' [को०] ।

जागा^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जगह] दे० 'जगह' ।

जागाह^२—संज्ञा स्त्री० [फा० जायगाह, हि० जगह] स्थान । जगह । उ०—कोई ऋद्धे अपनी जागाह पर, यह मेरी है यह तेरी है ।—राय० धर्म० (सं०), पृ० ६२ ।

जागा^३—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, अथवा देशज, जागड़ा, जागरा] भाट ।

जागीर—संज्ञा स्त्री० [फा०] ऐसी भूमि जो राजा, बादशाह, नबाब आदि किसी को प्रदान करते हैं । वह गाँव या जमीन आदि जो किसी राज्य या शासक आदि की ओर से किसी को उसकी सेवा के उपलक्ष में मिले । सेवा के पुरस्कार में मिली हुई भूमि । जमीन । मुद्राफी । तमल्लुका । परगना ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।

यौ०—जागीर खिदमतगी=सेवा के बदले में मिली जागीर ।

जागीर मनसबी=वह जागीर जो किसी मनसब, किसी पद के कारण प्राप्त हो ।

जागीरदार—संज्ञा पुं० [फा०] वह जिसे जागीर मिली हो । जागीर का मालिक ।

जागीरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'जागीरी' ।

जागीरी^१—संज्ञा स्त्री० [फा० जागीर + ई (प्रत्य०)] १. जागीरदार होने का भाव । २. अमीरी । रईसी । उ०—भागता सो बुझिया पीठ जो लागा धाय । जागीरी सब ऊतरी धनी न कहसी भाव ।—कबीर (शब्द०) । ३. जागीर के रूप में मिली मिजकियत ।

जागुड—संज्ञा पुं० [सं० जागुड] १. केसर । २. एक प्राचीन देश का नाम । ३. इस देश का निवासी ।

जागृति—संज्ञा स्त्री० [सं० जागर्ति] दे० 'जागरण' ।

जागृषि—संज्ञा पुं० [सं०] १. राधा । २. घाग । ३. जागरण (को०) ।
जाग्रत^१—वि० [सं० जाग्रत्] १. जो जागता हो । सजब । सावधान ।
२. व्यक्त । प्रकाशमान । स्पष्ट (को०) ।

जाग्रत^२—संज्ञा पुं० वह प्रवस्था जिसमें शब्द, स्पर्श आदि सब बातों का परिज्ञान और ग्रहण हो ।

जाग्रति—संज्ञा स्त्री० [सं० जाग्रत] जागरण । जागने की क्रिया ।

जाघनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऊर । जाँघ । जंघा । २. पुच्छ । पूँछ (को०) ।

जाचक^१—संज्ञा पुं० [सं० याचक] १. माँगनेवाला । वह जो माँगता हो । भिक्षुक । मंगल । भिक्षारी । उ०—(क) नर नाम सुरासुर जाचक जो सुम्ह सों मन भावत पायो न कै । —तुलसी (शब्द०) । (ख) नंद पीरि जे जाँचन आए । बहुरो फिरि जाचक न कहाए । —१०।३२ । २. भीख माँगने-वाला । भिक्षुमंगल । उ०—दोऊ बाह भरे कसू बाहत कछो कहै न । नहि जाचक सुनि सुम लो बाहर निकसत बैन । —बिहारी (शब्द०) ।

जाचकता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० याचकता] १. माँगने का भाव । भीख माँगने की क्रिया । भिक्षुमंगी । उ०—जेहि जाचे सो जाचकता बस फिरि बहु नाच न नाच्यो । —तुलसी (शब्द०) ।

जाचना^१—क्रि० सं० [सं० याचन] माँगना । उ०—जेहि जाचे सो जाचकता बस फिरि बहु नाच न नाच्यो । —तुलसी (शब्द०) ।

जाजन^१—क्रि० सं० [सं० याजन] यज्ञ कराना । उ०—जजन जाजन जाप रटन तीरथ दान ओषधी रसिक घटपूज देता । —रे० बानी, पृ० २ ।

जाजना^१—क्रि० सं० [हि० जाना] जाना । जाने की क्रिया या भाव । उ०—भालेंब न और जगदीस कह्यो जाजे कही, भागि के तो दावे प्रति भागि ही सिराहिगे । —सुंदर० ग्रं०, (जी०), भा० १ पृ० ६६ ।

जाजना^२—क्रि० सं० [हि० जाजन] पूजा करना । सपासना करना । उ०—स्वयं देव की सेवा जाजे, तो देव दृष्टि है सकल पछाने । —बक्सरी०, पृ० १४ ।

जाजम—संज्ञा स्त्री० [तु० जाजम] एक प्रकार की चादर जिसपर बेल बूटे आदि छपे होते हैं और जो फर्श पर बिछाने के काम में आती है ।

जाजमलार—संज्ञा पुं० [देश०] १० 'जाजमलार' ।

जाजर^१—वि० [सं० जर्जर] [वि० स्त्री० जाजरि, जाजरी] दुर्बल । कृश । जीर्ण । उ०—चरन गिरिह कर कंपमान जाजर वेह गिरन । प्राण०, पृ० २५२ ।

जाजरा^१—वि० [सं० जर्जर,] जर्जर । जीर्ण । उ०—(क) ज्यों धुन लागई काठ को लोहूई लागई काँठ । काम किया घट जाजरा दाहू बारह बाट । —दाहू (शब्द०) । (ख) बाँधरो प्रथम जड़ जाजरो जरा जवन सूकर के सावक ठका ठकेल्यो मग में । —तुलसी (शब्द०) ।

जाजरी—संज्ञा पुं० [देश०] बहेलिया । चिड़ीमार ।

जाजरा—संज्ञा पुं० [फा० जाजर] १० 'जाजर' ।

जाजर—संज्ञा पुं० [फा० जा + ज० जर] शीघ्र किया करने का स्थान । पास्ताना । टट्टी ।

जाजल—संज्ञा पुं० [सं०] मयवंश की एक शाखा का नाम ।

जाजलि—संज्ञा [सं०] एक प्रवरप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

जाजा^१—वि० [सं० जियावहू, हि० जयादा] बहुत । अधिक । उ०—जाय जोगन बंद जाजा, प्रजुण बन्दी करे प्राजा । बहण भावष होम बाजा, रुपि बराजा रोस । —रघु० क०, पृ० २०७ ।

जाजात^१—संज्ञा स्त्री० [फा० जायदाद] १० 'जायदाद' ।

जाजामलार—संज्ञा पुं० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । इसे जाजमलार भी कहते हैं ।

जाजिम—संज्ञा स्त्री० [तु० जाजम] १. एक प्रकार की छपी हुई चादर जो बिछाने के काम में आती है । २. गलीचा । कालीन ।

जाजी—संज्ञा पुं० [सं० जाजिन्] योद्धा । वीर (को०) ।

जाजुल^१—वि० [सं० जाज्वल्य] दीप्तिमान । प्रकाशमान । प्रदीप्त । उ०—इसकंठ सेन सिंघार दाखल, मार मययकुमार । तो जो-घार जो ओधार जाजुल रामरो जोधार । —रघु० क०, पृ० १६४ ।

जाजुलित^१—वि० [हि० जाजुल + इत (प्रत्य०)] १० 'जाजुल' ।

जाज्वल्य—वि० [सं०] १. प्रज्वलित । प्रकाशयुक्त । २. तेजवान् ।

जाज्वल्यमान—वि० [सं०] १. प्रज्वलित । दीप्तिमान् । २. तेजस्वी । तेजवान् ।

जाट^१—संज्ञा पुं० [सं० यष्टि अथवा सं० यादव, > जादव > जाडव > जाडध > जाटध > जाट] १. भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध जाति जो समस्त पंजाब, सिंध, राजपुताने और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में फैली हुई है ।

विशेष—इस जाति के लोग संख्या में बहुत अधिक हैं और भिन्न भिन्न प्रदेश में भिन्न भिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं । इस जाति के अधिकार भाषा व्यवहार आदि राजपूतों से मिलते जुलते होते हैं । कहीं कहीं ये लोग अपने को राजपूतों के अंतर्गत भी बतलाते हैं । राजपूतों के ३६ वंशों में जाटों का भी नाम आया है । कुछ देशों में जाटों और राजपूतों का विवाह संबंध भी होता है । पर कहीं कहीं के जाटों में विषवा विवाह और सगाई की प्रथा भी प्रचलित है । जाटों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं । कोई कहता है कि इनकी उत्पत्ति शिव की जटा से हुई; और कोई जाटों को यदुवंशी और जाट शब्द को यदु या यादव से संबंध बतलाता है । अधिकार जाट खेती बारी से ही अपना निर्वाह करते हैं । पंजाब, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान में बहुत से मुसलमान जाट भी हैं ।

२. एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना ।

जाट^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि, हि० जाट] १० 'जाट' ।

जाटलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पलाश की जाति का एक पेड़। इसे मोरवा या भाटलि भी कहते हैं।

जाटलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

जाटिकायन—संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद में एक ऋषि का नाम।

जाटू—संज्ञा पुं० [हि० जाट] हिसार, करनाल और रोहतक के जाटों की बोली जिसे बांगड़ या हरियानी भी कहते हैं।

जाठ—संज्ञा पुं० [सं० यष्टि] १ लकड़ी का वह मोटा घोर ऊँचा लट्ठा जो कोल्हू की कूँड़ी के बीच में लगा रहता है और जिसके घूमने और जिसका दाब पड़ने से कोल्हू में डाली हुई चीजें पेरी जाती हैं। २. किसी चीज, विशेषतः तालाब आदि के बीच में गड़ा हुआ लकड़ी का ऊँचा घोर मोटा लट्ठा। साठ।

जाठर^१—संज्ञा पुं० [सं० जठर] १. पेट। उदर। २. पेट की वह अग्नि जिसकी सहायता से खाया हुआ अन्न पचता है। जठराग्नि। ३. भूल। क्षुधा।

जाठर^२—वि० १. जठर संबंधी। २. जो जठर से उत्पन्न हो (संतान)।

जाठराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जठराग्नि'।

जाठरानल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जठराग्नि'।

जाठि^५—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि] दे० 'जाठ'।

जाड़^१—संज्ञा पुं० [सं० जड़, हि० जाड़ा] दे० 'जाड़ा'। उ०—जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अमागा।—मानस, १।३६।

जाड़^२—वि० [हि० उपादा] अत्यंत। बहुत। अधिक।

जाड़^५—संज्ञा पुं० [सं० जाड्य] जड़ता।

जाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० जड़] १. वह ऋतु जिसमें बहुत ठंडक पड़ती हो। शीतकाल। सरदी का मौसम।

विशेष—भारतवर्ष में जाड़ा प्रायः अगहन के मध्य से धारंभ होता है और फागुन के धारंभ तक रहता है।

२. सरदी। शीत। पाला। ठंड।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

जाड्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ जड़ का भाव। दे० 'जड़ता'। २. जीम का कुठित, बेकार होना या स्वाद ग्रहण न करना।

जाड्यारि—संज्ञा पुं० [सं०] जंबीरी नीबू।

जाणराइ^५—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान + हि० राय] ईश्वर। ब्रह्म। उ०—दादू जुषा खेले जाणराइ ताकी लखै न कोय। सब जग बैठा जीति करि काहुँ लिप्त न होइ।—दादू० बानी, पृ० ४५६।

जाणविजजाण^५—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान + विज्ञान] ज्ञान और विज्ञान। उ०—जाणविजजाण की गम्म कैसे लहै शुद्ध बुधि आपणी सार सूका।—राम० धर्म०, पृ० १३६।

जात^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्म। २. पुत्र। बेटा। ३. चार प्रकार के पारिभाषिक पुत्रों में से एक। वह पुत्र जिसमें उसकी माता के से गुण हों। ४. जीव। प्राणी। ५. वर्ग। श्रेणी। जाति (स्त्री०)। ६. समूह। ग्रूप (स्त्री०)।

जात^२—वि० १. उत्पन्न। जन्मा हुआ। जैसे, जलजात। उ०—देखत उदधिजात देखि देखि निज गात चंपक के पात कपू लिक्यो है बनाइ के।—केशव (शब्द०)। २. व्यक्त। प्रकट। ३. प्रशस्त। अच्छा। ४. जिसने जन्म ग्रहण किया हो। जैसे, नवजात।

जात^३—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति] दे० 'जाति'।

यौ०—जात पात।

जात^४—संज्ञा स्त्री० [सं० जात] १. शरीर। देह। काया। जैसे,—उसकी जात से तुम्हें बहुत फायदा होगा।

२. कुल। वंश। नस्ल (स्त्री०)। ३. व्यक्तित्व (स्त्री०)। ४. जाति। कौम। बिरादरी। ५. अस्तित्व। हस्ती (स्त्री०)।

जात^५—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] तीर्थयात्रा। किसी देवस्थान, तीर्थ आदि के निमित्त की जानेवाली यात्रा। उ०—इहि बिधि बीते मास छ सात। बने समेत सिखर की जात।—अर्थ०, पृ० ६।

जातक^१—वि० [सं०] उत्पन्न। पैदा हुआ। जात (स्त्री०)।

जातक^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. बच्चा। उ०—(क) तुलसी मन रंजन रंजित अंजन। नयन सु खंजन जातक से। सजनी ससि में समसील उभे नव नील मरोरुह से विकसे।—तुलसी ग्रं०, पृ० १५६। (ख) जानै कहाँ बाँझ व्यावर दुल जातक जनहि न पीर है कैसी।—सूर (शब्द०)। २. कारंजी। बत। ३. भिक्षु। ४. फलित ज्योतिष का एक भेद जिसके अनुसार कुंडली देखकर उसका फल कहते हैं। ५. एक प्रकार की बौद्ध कथाएँ जिनमें महात्मा बुद्धदेव के पूर्वजन्मों की बातें होती हैं। महात्मा बुद्ध के बोधिसत्व रूप पूर्व जन्मों की कथाएँ। ७. जातकर्म संस्कार। वि० दे० 'जातकर्म'। ८. एकजातीय वस्तुओं का समूह (स्त्री०)।

यौ०—जातकचक्र = नवजात संतति के शुभाशुभ ग्रहों की स्थिति का बोधक चक्र। जातकध्वनि = जलका। जौक।

जातक^३—संज्ञा पुं० [हि०] हींग का पेड़।

जातकरम^५—संज्ञा पुं० [सं० जातकर्म] दे० 'जातकर्म'। उ०—तब नंदीमुख आढ करि जातकरम सब कीन्ह।—तुलसी (शब्द०)।

जातकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के दस संस्कारों में से चौथा संस्कार जो बालक के जन्म के समय होता है। उ०—जातकर्म करि पूजि पितर सुर दिए महिदेवन दान। तेहि ओसर सुत तीन प्रगट भए मंगल, मुद, कल्यान।—तुलसी ग्रं० पृ० २६४।

विशेष—इस संस्कार में बालक के जन्म का समाचार सुनते ही पिता मना कर देता है कि अभी बालक की नाल न काटी जाय। तदुपरांत वह पहने हुए कपड़ों सहित स्नान करके कुछ विशेष पूजन और वृद्ध आढ आदि करता है। इसके अनंतर ब्रह्मचारी, कुमारी, गर्भवती या विद्वान् ब्राह्मण द्वारा धोई हुई सिस पर लोहे से पीसे हुए चावल और जौ के चूर्ण को ग्रेण्डे

घोर धनामिका से लेकर मंत्र पढ़ता हुआ बालक की बीभ पर मलता है। दूसरी बार वह सोते से धी लेकर मंत्र पढ़ता हुआ उसकी बीभ पर मलता है और तब नाल काटने और दूध पिलाने की आज्ञा देकर स्नान करता है। आजकल यह संस्कार बहुत कम लोग करते हैं।

जातकलाप—वि० [सं०] पूँछवाला। पूँछ से युक्त। जैसे, मोर।

जातकाम—वि० [सं०] प्राप्त। अनुक्त। [को०]

जातक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जातकर्म'।

जातज्ञातरोग—संज्ञा पु० [सं०] वह रोग जो बच्चे को गर्भ ही से माता के कुपथ्य आदि के कारण हो।

जातना^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० यातना] दे० 'यातना'। उ०—गर्भ बास दुख रासि जातना तोत्र बिपति बिसरायो—तुलसी (शब्द०)।

जातमन्मथ—वि० [सं०] दे० 'जातकाम'।

जातदन्त—वि० [सं० जातदन्त] (बालक) जिसके दाँत निकल चुके हो [को०]।

जातदोष—वि० [सं०] जिसमें दोष हो। दोष युक्त [को०]।

जातपक्ष—वि० [सं०] जिसके पक्ष निकल आए हों [को०]।

जातपाँत—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + पङ्क्ति] जाति। बिरादरी। जैसे,—जात पाँत पूछे नहीं कोई। हरि को भजे सो हरि का होइ।

जातपाश—वि० [सं०] जो बंधन में हो। बंधनयुक्त। बद्ध [को०]।

जातपुत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने संतान को जन्म दिया हो। पुत्रवती स्त्री [को०]।

जातप्रत्यय—वि० [सं०] जिसके मन में विश्वास उत्पन्न हो गया हो। प्रतीतियुक्त [को०]।

जातमात्र—वि० [सं०] जन्मतुष्टा। तुरंत का जन्मा [को०]।

जातमृत—वि० [सं०] जन्म लेते ही मर जानेवाला [को०]।

जातरा—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] दे० 'यात्रा'।

जातरूप^१—संज्ञा पु० [सं०] १. सुवर्ण। सोना। उ०—जातरूप मनि रचित भटारी। नाना रंग हचिर गच ढारी।—मानस, ७। २७। २. धतूरा। पीला धतूरा।

जातरूप^२—वि० सुंदर। सौंदर्ययुक्त [को०]।

जातबिभ्रम—वि० [सं०] किकर्तव्यविमूढ़। घबड़ाया हुआ [को०]।

जातवेद—संज्ञा पु० [जातवेदस्] १. अग्नि। २. चित्रक वृक्ष। नीते का पेड़। ३. अंतर्धामी। परमेश्वर। ४. सूर्य।

जातवेदसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

जातवेदा—संज्ञा पु० [सं० जातवेदस्] दे० 'जातवेद'।

जातवेश्म—संज्ञा पु० [सं० जातवेश्मन्] वह घर जिसमें बालक का जन्म हो। सोरी। मूर्तिकागार।

जाता^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। पुत्री।

जाता^२—वि० स्त्री० उत्पन्न।

जाता^३—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र] दे० 'जाँता'।

जाता^४—वि० [सं० जाता] जाता। जानकार। निष्णात। उ०—

किते पुरान प्रधीन किते जोतिस के जाता। किते वेदविधि निपुन किते सुवृत्तन के जाता।—सुजान०, पृ० २६।

जाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंदुओं में मनुष्य समाज का वह विभाग जो पहले पहल कर्मानुसार किया गया था, पर पीछे से स्वभावतः जन्मानुसार हो गया। उ०—कामी क्रोधी लालची इनपै भक्ति न होय। भक्ति करे कोई सूरमा जाति वरन कुल लोय—कबीर (शब्द०)।

विशेष यह जातिविभाग प्रारंभ में वर्णविभाग के रूप में ही था, पर पीछे से प्रत्येक वर्ण में भी कर्मानुसार कई शाखाएँ हो गईं, जो प्रागे चलकर भिन्न भिन्न जातियों के नामों से प्रसिद्ध हुईं। जैसे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, सोनार, लोहार, कुम्हार आदि।

२. मनुष्य समाज का वह विभाग जो निवासस्थान या वंश-परंपरा के विचार से किया गया हो। जैसे, अंग्रेजी जाति, मुगल जाति, पारसी जाति, आर्य जाति आदि। ३. वह विभाग जो गुण, धर्म, प्राकृति आदि की समानता के विचार से किया जाय। कोटि। वर्ग। जैसे,—मनुष्य जाति, पशु जाति, कीट जाति। वह अच्युती जाति का बोड़ा है। यह दोनों ग्राम एक ही जाति के हैं। उ०—(क) सकल जाति के बंधे तुरंगम रूप प्रनूप विशाला।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—न्याय के अनुसार द्रव्यों में परस्पर भेद रहते हुए भी जिससे उनके विषय में समान बुद्धि उत्पन्न हो, उसे जाति कहते हैं। जैसे, घटत्व, मनुष्यत्व, पशुत्व आदि। 'सामान्य' भी इसी का पर्याय है।

४. न्याय में किसी हेतु का वह अनुपयुक्त खंडन या उत्तर जो केवल साधर्म्य या वैधर्म्य के आधार पर हो। जैसे,—यदि वादी कहे कि आत्मा निष्क्रिय है, क्योंकि यह आकाश के समान विभु है और इसपर प्रतिवादी यह उत्तर दे कि विभु आकाश के समान धर्मवाला होने के कारण यदि आत्मा निष्क्रिय है, तो क्रियाहेतुगुणयुक्त लोष्ठ के समान होने के कारण वह क्रियावान् क्यों नहीं है, तो उसका यह उत्तर साधर्म्य के आधार पर होने के कारण अनुपयुक्त होगा और जाति के अंतर्गत आएगा। इसी प्रकार यदि वादी कहे कि शब्द अनित्य है क्योंकि वह उत्पत्ति धर्मवाला है और आकाश उत्पत्ति धर्मवाला नहीं है और इसके उत्तर में प्रतिवादी कहे कि यदि शब्द उत्पत्ति धर्मवाला और आकाश के समान होने के कारण अनित्य है, तो वह घट के सामान होने के कारण नित्य क्यों नहीं है, तो उसका यह उत्तर केवल वैधर्म्य के आधार पर होने के कारण अनुपयुक्त होगा और जाति के अंतर्गत आ जायगा।

विशेष—न्याय में जाति सोलह पर्यायों के अंतर्गत मानी गई है। नैयायिकों ने इसके और भी सूक्ष्म २४ भेद किए हैं, जिनके नाम ये हैं—(१) साधर्म्य सम। (२) वैधर्म्य सम। (३) उत्कर्ष सम। (४) अपकर्ष सम। (५) वार्य सम। (६) अवार्य सम। (७) विकल्प सम। (८)

साध्य सम । (६) प्राप्ति सम । (१०) अप्राप्ति सम ।
 (११) प्रसंग सम । (१२) प्रतिष्ठात सम । (१०)
 अनुत्पत्ति सम । (१४) संशय सम । (१५) प्रकरण सम ।
 (१६) हेतु सम । (१७) अर्थापत्ति सम । (१८) अविवेक
 सम । (१९) उपपत्ति सम । (२०) उपलब्धि सम ।
 (२१) अनुपलब्धि सम । (२२) नित्य सम । (२३)
 अनित्य सम, और (२४) कार्य सम ।

५. बर्ण । ६. कुल । ७. वंश । ८. गोत्र । ९. जन्म । १०. ग्रामलकी ।
 छोटा गाँवला । १०. सामान्य । साधारण । ग्राम । ११.
 जमेली । १२. जावित्री । १३. जायफल । जातीफल । १४. वह
 पक्ष जिसके चरणों में मान्नाओं का नियम हो । मानिक छंद ।

जातिकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'जातिकर्म' ।

जातिकोश, जातिकोष—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिकोशी, जातिकोषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री ।

जातिचरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार जातीय रहन सहन
 तथा प्रथा ।

जातिच्युत—वि० [सं०] जाति से गिरा या निकाला हुआ । जो
 जाति से अलग या बाहर हो ।

जातित्व—संज्ञा पुं० [सं०] जाति का भाव । जातीयता ।

जातिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. जाति या वर्ण का धर्म । २. ब्राह्मण,
 क्षत्रिय और वैश्य आदि का अलग अलग कर्तव्य । जिस
 जाति में मनुष्य उत्पन्न हुआ हो, उसका विशेष आचार या
 कर्तव्य ।

विशेष—प्राचीन काल में अभियोगों का निर्णय करते हुए जाति-
 धर्म का आदर किया जाता था ।

जातिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जातिपत्री] जावित्री ।

जातिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री ।

जातिपति—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + हि० पति > सं० पटित्] जाति
 या वर्ण आदि । उ०—जाति पति उन सम हम नहीं । हम
 निर्गुण सब गुण उन पाहीं ।—सूर (च० ६०) ।

जातिफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिवैर—संज्ञा पुं० [सं० जातिवैर] स्वाभाविक शत्रुता ।
 सहज वैर ।

विशेष—महाभारत में जातिवैर पाँच प्रकार का माना गया है,—
 (१.) स्त्रीकृत । (२.) वास्तुज । (३.) वाग्ज ।
 (४.) सापत्न और (५.) अपराधज ।

जातिब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जिसका केवल जन्म किसी
 ब्राह्मण के घर में हुआ हो और जिसने तपस्या या वेद अध्ययन
 आदि न किया हो ।

जातिभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] जातिच्युत होने का भाव ।
 जातिभ्रष्टता [को०] ।

जातिभ्रंशकर—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार नौ प्रकार के पापों
 में से एक प्रकार का पाप जिसका करनेवाला जाति और
 आश्रम आदि से भ्रष्ट हो जाता है ।

विशेष—इसके अंतर्गत बाह्याणों को पीड़ा देना, मदिरा पीना
 अथवा अस्वाच्छ पदार्थ खाना, कपट व्यवहार करना और
 पुरुषमैथुन आदि कई निन्दनीय काम हैं । यह पाप यदि अनजान
 में हो तो पापी को प्राजापत्य प्रायश्चित्त और यदि जानकारी
 में हो तो संतपन प्रायश्चित्त करना चाहिए ।

जातिभ्रष्ट—वि० [सं०] जातिच्युत । जातिबहिष्कृत [को०] ।

जातिमान्—वि० [सं० जातिमान्] सत्कुलोत्पन्न । कुलीन [को०] ।

जातिस्मरण—संज्ञा स्त्री० [सं०] जातिसुषक भेद । जातीय
 विशेषता [को०] ।

जातिवाचक—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्याकरण में संज्ञा का एक भेद ।
 २. जाति को बता देनेवाला शब्द [को०] ।

जातिविद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] जातियों का पारस्परिक वैर । जातिगत
 वैर । [को०]

जातिवैर—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'जातिवैर' ।

जातिवैरी—संज्ञा पुं० [सं०] स्वाभाविक शत्रु [को०] ।

जातिव्यवसाय—संज्ञा पुं० [सं०] जातिगत पेशा । जातीय धंधा या
 काम । जैसे, सोनारी, लोहार आदि ।

जातिरास्य—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिसंकर—संज्ञा पुं० [सं० जातिसंकर] दो जातियों का मिश्रण ।
 वर्णसंकरता । दोगलापन ।

जातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिस्मर—वि० [सं०] जिसे अपने पूर्वजन्म का इतिवृत्त याद हो ।
 जैसे,—जातिस्मर शिशु । जातिस्मर शुक । जातिस्मर मुनि ।

जातिस्तृत—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल । जातीफल ।

जातिस्वभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का भ्रंशकार जिसमें
 भावुकता और गुण का वर्णन किया जाता है । २. जातिगत
 स्वभाव, प्रकृति या लक्षण ।

जातिहीन—वि० [सं०] १. नीची जाति का । निम्न जाति का ।
 उ०—जातिहीन अथ जन्म महि मुक्त कोहि अथ नारि ।
 महामंद मन सुख कहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ।—मानस,
 ३।३० । २. जातिभ्रष्ट । जातिच्युत (को०) ।

जाती^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जमेली । २. ग्रामलकी । छोटा गाँवला ।
 ३. मासती । ४. जायफल ।

जाती^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति] ३० 'जाति' । उ०—(क) सादर
 बोले सकल बराती । विष्णु बिरंचि देव सब जाती ।—मानस,
 १।६६ । (ख) दीन हीन मति जाती ।—मानस, ६।११५ ।

जाती^३—संज्ञा पुं० [देश०] हाथी । हस्ती (हि०) ।

जाती^४—वि० [अ० जाती] १. व्यक्तिगत । २. अपना । निज का ।


जातीकोश—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातीकोष—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'जातिकोष' ।

जातीपत्री—संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री । जायपत्री ।

जातीपूरा—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातीफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातीय—वि० [सं०] जातिसंबंधी । जाति का । जातिवाला ।
 जातीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जाति का भाव । जातित्व । २. जाति की समता । ३. जाति ।
 जातीयरस—संज्ञा पुं० [सं०] बोल नामक गंधद्रव्य ।
 जातु—प्रत्य० [सं०] १. कदाचित् । कभी । २. संभवतः । शायद ।
 जातुक—संज्ञा पुं० [सं०] हींग ।
 जातुज—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भवती स्त्री की इच्छा । दोहद ।
 जातुधान—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस । निशाचर । असुर ।
 जातुष—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जातुषी] १. जल या लाल का बना हुआ । २. चिपकनेवाला । चिपचिपा । लसदार (को०) ।
 जातू—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र ।
 जातूकर्णी—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपस्मृति बनानेवाले एक ऋषि का नाम । हरिवंश के अनुसार इनका जन्म षट्साईसवें ढापर में हुआ था । २. शिव का एक नाम (को०) ।
 जातूकर्णी—संज्ञा पुं० [सं०] महाकवि भवभूति के पिता का नाम ।
 जातेष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जातकर्म' ।
 जातोत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह बैल जो बहुत ही छोटी अवस्था में बधिया कर दिया गया हो ।
 जात्यंध—वि० [सं० जात्यन्ध] जन्मांध (को०) ।
 जात्य—वि० [सं०] १. उत्तम कुल में उत्पन्न । कुलीन । २. श्रेष्ठ । ३. जो देखने में बहुत अच्छा हो । सुंदर ।
 जात्य त्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज क्षेत्र जिसमें एक समकोण हो । जैसे  ।
 जात्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] तात्रिकों का एक आसन ।
 विशेष—इस आसन में हाथ और पैर जमीन पर रखकर चलते हैं । कहते हैं कि इस आसन के सिद्ध हो जाने से पूर्वजन्म की सब बातें याद हो आती हैं ।
 जात्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में वह दूषित उत्तर जिसमें व्याप्ति स्थिर हो । यह घटारह प्रकार का माना गया है ।
 जात्यारोह—संज्ञा पुं० [सं०] खगोल के प्रक्षाल की गिनती में वह दूरी जो मेघ से पूर्व की ओर प्रथम भंश से ली जाती है ।
 जात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] तीर्थयात्रा । यात्रा । उ०—
 हुतो घाढय तब कियो असद्व्यय करी न ब्रज बन जात्र ।
 —सूर०, १।२।१६ ।
 जात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] दे० 'यात्रा' ।
 जात्री—संज्ञा पुं० [सं० यात्री] दे० 'यात्री' ।
 जाथका—संज्ञा स्त्री० [सं० जूथिका] ढेरी । ढेर । राशि ।
 जादपति—संज्ञा पुं० [सं० यादवपति] श्रीकृष्ण । विष्णु । उ०—
 कमला ग्रह जादपति बारी । ताको है मुकता रखवारी ।—
 इंद्रा०, पृ० १५६ ।
 जादरसार—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का वस्त्र । उ०—पाटे
 बइठा दुई राजकुमार । पहिरी वस्त्र जादर सार ।—बी०
 रासो, पृ० २२ ।
 जादू—संज्ञा पुं० [सं० यादव] यादव । यदुवंशी ।

जादूपति—संज्ञा पुं० [सं० यादवपति] श्रीकृष्णचंद्र ।
 जादूसंपति—संज्ञा पुं० [सं० यादवसाम्पति] जलजंतुओं का स्वामी ।
 वरुण ।
 जादूसंपती—संज्ञा पुं० [सं० यादवसाम्पति] दे० 'जादूसंपति' ।
 जादू—वि० [सं० जियादह, हिं० ज्यादा] दे० 'ज्यादा' ।
 जादुई—वि० [फ्रा० जादू] इंद्रजाल संबंधी । जादू के प्रभाववाला ।
 उ०—इन चित्रों में जादुई आकर्षण है जिसकी सुहानी सीति
 हमारी चेतना पर छा जाती है ।—प्रेम० और गोकर्ण पृ० १ ।
 जादू—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. वह अद्भुत और आश्चर्यजनक कृत्य
 जिसे लोग अलौकिक और अमानवी समझते हैं । इंद्रजाल ।
 तिलस्म ।
 विशेष—प्राचीन काल में संसार की प्रायः सभी जादियों के लोग
 किसी न किसी रूप में जादू पर बहुत विश्वास करते थे । उन
 दिनों रोगों की चिकित्सा, बड़ी बड़ी कामनाओं की सिद्धि
 और इसी प्रकार की अनेक दूसरी बातों के लिये अच्छे अच्छे
 जादूगरों और सयानों से अनेक प्रकार के जादू ही कराए जाते
 थे । पर अब जादू पर से लोगों का विश्वास बहुत अंशों में
 उठ गया है ।
 क्रि० प्र०—चलना । —करना ।
 मुहा०—जादू उतरना=जादू का प्रभाव समाप्त होना । जादू
 चलना=जादू का प्रभाव होना । किसी बात का प्रभाव होना ।
 जादू काम करना=प्रभाव होना । उ०—उसमें न किसी का
 जादू काम कर रहा है और न किसी का टोना ।—चुभते०
 (प्रा०) पृ० ३ । जादू जगाना=प्रयोग प्रारंभ करने से पहले
 जादू को चेतन्य करना ।
 २. वह अद्भुत खेल या कृत्य जो दर्शकों की दृष्टि और बुद्धि को
 धोखा दे कर किया जाय । ताश, मंगूठी, चड़ी, छुरी और
 सिक्के आदि के तरह तरह के बिलक्षण और बुद्धि को चकराने-
 वाले खेल इसी के अंतर्गत हैं । बाजीगरी का खेल । ३. टोना ।
 टोटका । ४. दूसरे को मोहित करने की शक्ति । मोहिनी ।
 जैसे,—उसकी भाँखों में जादू है ।
 क्रि० प्र०—करना । —ढालना ।
 जादू—संज्ञा पुं० [सं० यादव] दे० 'जादो' । उ०—पूरब दिसि
 गढ़ गढ़नपति समुद्र सिलर भाति दृग्ग । तहें सु विजय सुर
 राजपति जादू कुलह अभग्ग ।—पृ० रा०, २० । १ ।
 जादूगर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] [स्त्री० जादूगरनी] वह जो जादू करता
 हो । तरह तरह के अद्भुत और आश्चर्यजनक कृत्य करने-
 वाला मनुष्य ।
 जादूगरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. जादू करने की क्रिया । जादूगर
 का काम । २. जादू करने का ज्ञान । जादू की विद्या ।
 जादूनजर—संज्ञा पुं० [फ्रा० जादूनजर] दृष्टि मात्र से मोहित कर
 लेनेवाला । देखते ही मन लुभानेवाला । जिसके नेत्रों में
 जादू हो ।
 जादूनिगाह—वि० [फ्रा०] दे० 'जादूनजर' ।

जादूबयान—वि० [फा०] जिसकी बाणी बचीभूत करनेवासी हो ।
जिसकी बाणी में जादू वैसी शक्ति हो [की०] ।

जादूबयानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] जादू वैसी शक्ति या प्रभाववाली बाणी । उ०—आपकी जादूबयानी तो इस दम अपना काम कर गई ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५ ।

जादो(१)—संज्ञा पुं० [सं० यादव] दे० 'जादो' । उ०—दुरजोधन को गर्ब घटायो जादो कुल नास करी ।—कबीर रा०, पृष्ठ ४० ।

जादो(२)—संज्ञा पुं० [सं० यादव] १. यदुवंशी । यदुवंश में उत्पन्न । उ०—सुमति विचारहि परिहरहि दल सुमनह संप्राम । सकल गए तन बिनु भए साक्षी जादो काम ।—तुलसी (शब्द०) । २. नीच जाति । नीच कुलोत्पन्न ।

जादौराह(१)—संज्ञा पुं० [सं० यादवराज] श्रीकृष्णवंश । उ०—गई मारन पूतना कुछ कालकूट लगाइ । मातु की गति दई ताहि कृपाल जादौराह ।—तुलसी (शब्द०) ।

जान^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जान] १. जान । जानकारी । जैसे,—हमारी जान में तो कोई ऐसा धावसी नहीं है । २. समझ । अनुमान । खयाल । उ०—मेरे जान इन्हि बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट हतोरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

यो०—जान पहचान=परिचय । एक दूसरे से जानकारी । जैसे,—(क) हमारी उनकी जान पहचान नहीं है । (ख) उनसे तुमसे जान पहचान होगी ।

मुहा०—जान में=अनकारी में । जहाँ तक कोई जानता है वहाँ तक ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समास में या 'में' विभक्ति के साथ ही होता है । इसके लिये के विषय में भी मतभेद है । पुलिग और स्त्रीलिंग दोनों में प्रयोग प्राप्त होते हैं ।

जान^२—वि० सुजान । जानकार । जानवान । चतुर । उ०—(क) जानकी जीवन जान न जान्यो तो जान कहावत जान्यो कहा • है ।—तुलसी रा०, पृ० २०७ । (ख) प्रेम समुद्र रूप रस गहिरै कैसे लागे घाट । बेकान्यो है जान कहावत जानपनी कि कहा परी बाट ।—हरिदास (शब्द०) ।

यो०—जानपन । जानपनी । जानपनी(१) । जानराय । जानसिरोमनि = जानवानों में श्रेष्ठ । उ०—(क) तुम्हें परिपूरन काम जान सिरोमनि भाव प्रिय । जनगुन गाहक राम दोषदलन करुणायतन ।—मानस, २३२ । (ख) प्रभु की देखी एक सुभाइ । प्रति गभीर तदार उदधि हरि जान सिरोमनि राइ ।—सुर०, १ । ८ ।

जान^३—संज्ञा पुं० [सं० जानु] दे० 'जानु' ।

जान^४—संज्ञा पुं० [सं० यान] दे० 'यान' ।

जान^५—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. प्राण । जीव । प्राणवायु । दम । जैसे,—जान है तो जहान है ।

मुहा०—जान घामा = जी ठिकाने होना । चित्त में धैर्य होना । चित्त स्थिर होना । शांति होना । जान का गाहक = (१) प्राण लेने की इच्छा रखनेवाला । मार डालने का यत्न करनेवाला । शत्रु (२) बहुत संग करनेवाला पोछा । न छोड़नेवाला । जान का रोग = ऐसा दुःखायी व्यक्ति या वस्तु जो

पीछा न छोड़े । सब दिन कष्ट देनेवाला । जान का सागू = दे० 'जान का गाहक' । जान के लाले पड़ना = प्राण बचना कठिन दिखाई देना । जी पर घा बनना । (अपनी) जान को जान न समझना = प्राण जाने की परवाह न करना । अत्यंत अधिक कष्ट या परिश्रम सहना । (दूसरे की) जान को जान न समझना = किसी को अत्यंत कष्ट या दुःख देना । किसी के साथ निष्ठुर व्यवहार करना । (किसी की) जान को रोना = किसी के कारण कष्ट पाकर उसका स्मरण करते हुए दुःखी होना । किसी के द्वारा पहुँचाए हुए कष्ट को याद करके दुःखी होना । जैसे,—तुमने उसकी जीविका ली, वह अबतक तुम्हारी जान को रोता है । जान खाना = (१) संग करना । बार बार घेरकर दिक करना । (२) किसी बात के लिये बार बार कहना । जैसे,—चलते हैं, क्यों जान खाते हो । जान खोना = प्राण देना । मरना । जान चुराना = दे० 'जी चुराना' । जान छुड़ाना = (१) प्राण बचाना । (२) किसी झगड़ से छुटकारा करना । किसी अप्रिय या कष्टदायक वस्तु को दूर करना । संकट टालना । छुटकारा करना । निस्तार करना । जैसे,—(क) जब काम करने का समय आता है तब लोग जान छुड़ाकर भागते हैं । (ख) इसे कुछ देकर अपनी जान छुड़ाओ । जान छूटना = किसी झगड़ या आपत्ति से छुटकारा मिलना । किसी अप्रिय या कष्टदायक वस्तु का दूर होना । निस्तार होना । जैसे,—बिना कुछ दिए जान नहीं छूटेगी । जान जाना = प्राण निकलना । मृत्यु होना । (किसी पर) जान जाना = किसी पर अत्यंत अधिक प्रेम होना । जान जोखों = प्राण का भय । प्राणहानि की आशंका । जीवन का संकट । प्राण जाने का डर । जान डालना = शक्ति का संचार करना । उ०—हम बेजान में जान डाल देते थे ।—धुमते० (दो दो०), पृ० २ । जान तोड़कर = दे० 'जी तोड़कर' । जान दूभर होना = जीवन कटना कठिन जान पड़ना । भारी मालूम होना । दुःख पड़ने के कारण जीने की इच्छा न रह जाना । जान देना = प्राण त्याग करना । मरना । (किसी पर) जान देना = (१) किसी के किसी काम से कष्ट या दुःखी होकर मरना । किसी के किसी काम से कष्ट या दुःखी होकर मरना । (२) किसी पर प्राण न्योछावर करना । किसी को प्राण से बढ़कर चाहना । बहुत ही अधिक प्रेम करना । (किसी के लिये) जान देना = किसी को बहुत अधिक चाहना । (किसी वस्तु के लिये या पोछे) जान देना = किसी वस्तु के लिये अत्यंत अधिक व्यग्र होना । किसी वस्तु की प्राप्ति या रक्षा के लिये बेचैन होना । जैसे,—वह एक एक पैसे के लिये जान देता है; उसका कोई कुछ नहीं दबा सकता । जान निकलना = (१) प्राण निकलना । मरना । (२) भय के मारे प्राण सूखना । डर लगना । अत्यंत कष्ट होना । घोर पीड़ा होना । जान पड़ना = दे० 'जान घामा' । जान पर घा बनना = (१) प्राण का भय होना । प्राण बचना कठिन दिखाई देना । (२) आपत्ति घाना । चित्त संकट में पड़ना । (३) हेरानी होना । नाक में दम होना । गहरी व्यग्रता होना । जान पर खेसना = प्राणों को भय में डालना । जान को जोखों में डालना ।

अपने आपको ऐसी स्थिति में डालना जिसमें प्राण तक जाने का भय हो। जान पर नीबत घाना = ३० 'जान पर घा बनना'। जान बचना = (१) प्राणरक्षा करना। (२) पीछा छुड़ाना। किसी कष्टदायक या अप्रिय वस्तु या व्यक्ति को दूर रखना। निस्तार करना। जैसे,—हम तो जान बचाते फिरते हैं, तुम बार बार हमें धाकर घेरते हो। जान मारकर काम करना = जी तोड़कर काम करना। अत्यंत परिश्रम से काम करना। जान मारना = (१) प्राणहत्या करना। (२) सताना। दुःख देना। तंग करना। दिक करना। (३) अत्यंत परिश्रम कराना। कड़ी मेहनत लेना। जैसे,—उनके यहाँ कोई काम करने क्या जाय, दिन भर जान मार डालते हैं। जान में जान घाना = धैर्य बँधना। डारस होना। वित्त स्थिर होना। व्यग्रता, घबराहट या भय आदि का दूर होना। जान लेना = (१) मार डालना। प्राणघात करना। (२) तंग करना। दुःख देना। पीड़ित करना। जैसे,—क्यों धूप में दौड़ाकर उसकी जान लेते हो। जान सी निकलने लगना = कठिन पीड़ा होना। बहुत दुःख होना। जान सूखना = (१) प्राण सूखना। भय के मारे स्तब्ध होना। होश हवाण उड़ना। जैसे,—घोर को देखते ही उसकी तो जान सूख गई। (२) बहुत अधिक कष्ट होना। (३) बहुत बुरा लगना। खलना। जैसे,—किसी को कुछ देते देख तुम्हारी क्यों जान सूखती है। जान से जाना = प्राण खोना। मरना। जान से मारना = मार डालना। प्राण ले लेना। जान से जाना। जान हलाकान करना = सताना। तंग करना। दिक करना। हैरान करना। जान हलाकान होना = तंग होना। दिक होना। हैरान होना। जान होठों पर घाना = (१) प्राण कंठगत होना। प्राण निकलने पर होना। (२) अत्यंत कष्ट होना। घोर पीड़ा होना।

२. बल। शक्ति। वृत्ता। सामर्थ्य। जैसे,—अब किसी में कुछ जान नहीं है जो तुम्हारा सामना करने आवे। ३. सार। तत्त्व। सबसे उत्तम अंश। जैसे,—यही पद तो उस कविता की जान है। ४. अच्छा या सुंदर करनेवाली वस्तु। शोभा बढ़ानेवाली वस्तु। मजेदार करनेवाली चीज। चटकीला करनेवाली चीज। जैसे,—ममाला ही तो तरकारी की जान है।

मुहा०—जान घाना = धोप चढ़ना। शोभा बढ़ना। जैसे,—रंग फेर देने से इस तस्वीर में जान घा गई है।

जान^१—संज्ञा पुं० [ज्ञा० या सं० यान] बारात। उ०—(क) कर जोड़े राजा कहूँ, चालव चउरासी राय की जान।—बी० रासी, पृ० १०। (ख) जान पराई में ग्रहमक बन्वे, कपड़े भी फट्टे देह भी टूट्टे। (कहावत)।

जानकार—वि० [हि० जानना + कार (प्रत्य०)] १. जाननेवाला अभिज्ञ। २. विज्ञ। चतुर।

जानकारी—संज्ञा स्त्री० [हि० जानकार + ई (प्रत्य०)] १. अभिज्ञता। परिचय। वाकफियत। २. विज्ञता। निपुणता।

जानकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जनक की पुत्री। सीता।

जानकीकंत—संज्ञा पुं० [सं० जानकीकन्त] राम। उ०—प्रवे जानकीकंत, तब छूटै संसारदुख।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६६।

जानकीजानि—संज्ञा पुं० [सं०] (जिसकी स्त्री जानकी है) रामचंद्र। उ०—बाहुबल विपुल परिमित पराक्रम अतुल गूढ़ गति जानकीजानि जानी।—तुलसी (शब्द०)।

जानकीजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र। उ०—जानकीजीवन को जन हूँ जरि जाहु सो जीह जो जांचत भीरहि।—तुलसी (शब्द०)।

जानकीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] जानकी के पति, श्रीराम। उ०—सो बातन की एकै बात। सब तजि भजी जानकीनाथ।—सूर (शब्द०)।

जानकीप्राण—संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र। उ०—निज सहज रूप में संयत जानकीप्राण बोले।—ग्रनामिका, पृ० १५६।

जानकीमंगल—संज्ञा पुं० [सं०] गोस्वामी तुलसीदास का बनाया हुआ एक ग्रंथ जिसमें श्रीराम जानकी के विवाह का वर्णन है।

जानकीरमण—संज्ञा पुं० [सं०] जानकी के पति—श्रीरामचंद्र।

जानकीरचन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जानकीरमण] ३० 'जानकीरमण'।

जानकीवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र [को०]।

जानदार(पु)^१—वि० [फा०] १. जिसमें जान हो। सजीव। जीवधारी। २. उत्कृष्ट। धोपदार। जैसे, जानदार मोती। जानदार चीज या वस्तु।

जानदार^२—संज्ञा पुं० जानवर। प्राणी।

जाननहार(पु)—वि० [हि० जानना + हार (प्रत्य०)] जानने या समझनेवाला। जाननिहार। उ०—सुखसागर सुख नींद बस सपने सब करतार। माया मायानाथ की को जग जाननहार।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२३।

जानना—क्रि० सं० [सं० जान] १. किसी वस्तु की स्थिति, गुण, क्रिया या प्रणाली इत्यादि निदिष्ट करनेवाला भाव धारण करना। ज्ञान प्राप्त करना। बोध प्राप्त करना। अभिज्ञ होना। वाकफ होना। परिचित होना। अनुभव करना। मालूम करना। जैसे,—(क) वह व्याकरण नहीं जानता। (ख) तुम तैरना नहीं जानते। (ग) मैं उसका घर नहीं जानता। संयो० क्रि०—जाना।—पाना।—लेना।

यो०—जानना बूझना = जानकारी रखना। ज्ञान रखना।

मुहा०—जान पड़ना = (१) मालूम पड़ना। प्रतीत होना। (२) अनुभव होना। संवेदना होना। जैसे—जिस समय मैं गिरा था, उस समय तो कुछ नहीं जान पड़ा; पर पीछे बड़ा दर्द उठा। जानकर अनजान = किसी बात के विषय में जानकारी रखते हुए भी किसी को चिढ़ाने, धोखा देने या अपना मतसब निकालने के लिये अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना। जान बूझकर = सूले से नहीं। पूरे संकल्प के साथ। नीयत के साथ। अनजान में नहीं। जैसे,—तुमने जान बूझकर यह काम किया है। जान रखना = समझ रखना। ध्यान में रखना। मन में बैठाना। हृदयंगम करना। जैसे,—इस बात को जान रखो कि अब वह नहीं आया। किसी का कुछ जानना =

किसी का सहायतायें दिया हुआ बन या किया हुआ उपकार स्मरण रखना । किसी के किए हुए उपकार के लिये कृतज्ञ होना । किसी का एहसानग्रह होना । जैसे,—क्यों मुझे कोई दो बात कहे, मैं किसी का कुछ जानता हूँ । (.....) तो मैं जानूँ = (१) (.....) तो मैं समझूँ कि बड़ा भारी काम किया या बड़ी घनहोनी बात हो गई । जैसे,—(क) यदि तुम इतना कुछ जानो तो मैं जानूँ । (ख) यदि वह दो दिन में इसे कर लाए तो जानूँ । (२) (.....) तो मैं समझूँ कि बात ठीक है । जैसे,—सुना तो है कि वे घानेवाले हैं; पर भा जायें तो जानें ।

विशेष—इस मुहावरे के प्रयोग द्वारा यह अर्थ सूचित किया जाता है कि कोई काम बहुत कठिन है या किसी बात के होने का निश्चय कम है । इसका प्रयोग 'मैं' और 'हम' दोनों के साथ होता है ।

(.....) तो मैं नहीं जानता = (.....) तो मैं जिम्मेदार नहीं । तो मेरा बोध नहीं । जैसे,—उसपर चढ़ते तो हो; पर यदि गिर पड़ोगे तो मैं नहीं जानता । मैं क्या जानूँ ? तुम क्या जानो ? वह क्या जाने ? = मैं नहीं जानता, तुम नहीं जानते, वह नहीं जानता । (बहुवचन में भी यह मुहावरा बोला जाता है) । जाने घनजाने = जान बूझकर या बिना जाने बूझे ।

२. सूचना पाना । खबर पाना या रखना । प्रसन्न होना । पता पाना या रखना । जैसे,—हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे घानेवाले हैं । ३. अनुमान करना । सोचना । जैसे,—मैं जानता हूँ कि वे कल तक भा जाएंगे ।

जाननिहारा ५—वि० [हि० जाननि + हार (प्रत्य०)] जाननेवाला । समझनेवाला । उ०—(क) और तुम्हीं को जाननिहारा । —मानन, २।१२७ । (ख) भूत भविष्य को जाननिहारा । कहतु है बन शुभ गवन की बारा । —नंद० ग्रं०, पृ० १५६ ।

जानपति ५—वि० [सं० जान + पति] ज्ञानियों में प्रधान । जानकारों में श्रेष्ठ । उ०—जानपति दानपति हाड़ा हिंदुवान पति दिल्लीपति दलपति बलाबंधपति है । —मति० ग्रं०, पृ० ३६ ।

जानपद—संज्ञा पु० [सं०] १. जनपद संबंधी वस्तु । २. जनपद का निवासी । जन । लोक । मनुष्य । ३. देश । ४. कर । माल-गुजारी । ५. मितानारा के अनुसार लेख्य (दस्तावेज) के दो अंशों में से एक ।

विशेष—इस लेख्य (दस्तावेज में) लेख प्रजावर्ग के परस्पर व्यवहार के संबंध में होता है । यह दो प्रकार का होता है—एक अपने हाथ से लिखा हुआ, दूसरा दूसरे के हाथ से लिखा हुआ । अपने हाथ से लिखे हुए में साक्षी की आवश्यकता नहीं होती थी ।

जानपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वृत्ति । २. एक ऋषिसरा ।

विशेष—इस ऋषिसरा को इंद्र ने शरद्वान् ऋषि का तप भंग करने के लिये भेजा था । शरद्वान् ऋषि ने मोहित होकर जो शुक-पात किया, उससे कृप और कृपीय की उत्पत्ति हुई । महाभारत आदिपर्व में यह आख्यान वर्णित है ।

जानपनी ५—संज्ञा पु० [हि० जान + पनी (प्रत्य०)] जानकारी । अभिज्ञता । चतुराई । होशियारी । उ०—बेकान्यो है जान

कहावत जानपनी की कहा परी बाट ।—हरिदास (शब्द०) ।

जानपनी ५—संज्ञा स्त्री० [हि० जान + पनी (प्रत्य०)] बुद्धिमानी । जानकारी । चतुराई । होशियारी । उ०—(क) जानपनी की गुमान बड़ो तुलसी के विचार गंवार महा है ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जानी है जानपनी हरि की प्रथ बाँधिएगी कछु मोठ कला की ।—तुलसी (शब्द०) । (घ) दम दान दया नहि जानपनी । जड़ता पर वंचन ताति घनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानबाज—संज्ञा पु० [फ़ा० जान + बाज] बल्लमटेर । वालंटियर । जान १/२ खेल जानेवाला (लश०) ।

जानमनि ५—संज्ञा पु० [हि० जान + सं० मणि] ज्ञानियों में श्रेष्ठ । बड़ा ज्ञानी पुरुष । बहुत बुद्धिमान मनुष्य । उ०—रूप सील सिंधु गुन सिंधु बंधु दीन को, दयानिधान जानमनि बीर बाहु बोल को ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०० ।

जानमाज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जानमाज] एक पतला कालीन या घासन जिसपर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं । नमाज पढ़ने का फर्श ।

जानराय—संज्ञा पु० [हि० जान + राय] जानकारों में श्रेष्ठ । अत्यंत ज्ञानी पुरुष । बड़ा बुद्धिमान मनुष्य । सुजान । उ०—जागिए कृपानिधान जानराय रामचंद्र जननी कहै बार बार भोर भयो प्यारे ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानवर १—संज्ञा पु० [फ़ा०] १. पशु । जीव । जीवधारी । २. पशु । जंतु । हैवान ।

मुहा०—जानवर खसना = जानवरों का घाना जाना या दिव्वाई पड़ना । उ०—और वहाँ जंगलों में दरिंद जानवर लगते हैं और आदिमियों को खा जाते हैं ।—सैर कु०, पृ० १६ ।

जानवर २—वि० मूर्ख । ग्रहमक । जड़ ।

जानशीन—संज्ञा पु० [फ़ा० जानशीन] १. वह जो दूसरे की स्वीकृति के अनुसार उसके स्थान, पद या अधिकार पर हो । २. वह जो व्यवस्थानुसार दूसरे के पद या संपत्ति आदि का अधिकारी हो । उत्तराधिकारी ।

जानहार ५^१—वि० [हि० जाना + हार (प्रत्य०)] १. जानेवाला । २. खो जानेवाला । हाथ से निकल जानेवाला । ३. मरनेवाला । नष्ट होनेवाला ।

जानहार ५^२—संज्ञा पु० [हि० जानना + हार (प्रत्य०)] वह जो जाननेवाला हो । जाननेवाला या समझनेवाला व्यक्ति । इ० 'जाननिहार' ।

जानहार ३—वि० जाननेवाला ।

जानहु ५^१—अव्य [हि० जानना] मानो । जैसे । उ०—घनि राजा अस समा सेंवारी । जानहु फूल रही फुलवारी ।—जायसी (शब्द०) ।

जानाँ—संज्ञा पु० [फ़ा०] प्रिय । माणूक । प्यारा । उ०—दिन का हुजरा साफ कर जानाँ के घाने के लिये ।—तुलसी० सा०, पृ० ४ ।

जाना^१—क्रि० घ० [सं० √ जा (हि० जा) + या (=जाना)]

१. एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्राप्त होने के लिये गति में होना । गमन करना । किसी ओर बढ़ना । किसी ओर प्रसर होना । स्थान परिवर्तन करना । जगह छोड़कर हटना । प्रस्थान करना । जैसे,—(क) वह घर की ओर जा रहा है । (ख) यहाँ से जाओ ।

मुहा०—जाने दो=(१) क्षमा करो । माफ करो । (२) त्याग करो । छोड़ दो । (३) चर्चा छोड़ो । प्रसंग छोड़ो । जा पड़ना=किसी स्थान पर अकस्मात् पहुँचना । जा रहना=किसी स्थान पर जाकर वहाँ ठहरना । जैसे,—मुझे क्या, मैं किसी घमंशाला में जा रहूँगा । किसी बात पर जाना=किसी बात के अनुसार कुछ अनुमान या निश्चय करना । किसी बात को ठीक मानकर उसपर चलना । किसी बात पर ध्यान देना । जैसे,—उसकी बातों पर मत जाओ अपना काम किए चलो ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में प्रायः सब क्रियाओं के साथ केवल पूर्णता आदि का बोध कराने के लिये होता है । जैसे, चले जाना, घा जाना, मिल जाना, लो जाना, हूब जाना, पहुँच जाना, हो जाना, दौड़ जाना, खा जाना इत्यादि । कहीं कहीं जाना का अर्थ भी बना रहता है । जैसे, कर जाना—इनके लिये भी कुछ कर जाओ । कर्मप्रधान क्रियाओं के बनाने में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है । जैसे, किया जाना, खा जाना । जहाँ 'जाना' का संयोग किसी क्रिया के पहले होता है, वहाँ उसका अर्थ बना रहता है । जैसे, जा निकलना, जा डटना, जा भिड़ना ।

२. अलग होना । दूर होना । जैसे,—(क) बीमारी यहाँ से न जाने कब जायगी । (ख) सिर जाय तो जाय, पीछे नहीं हटेंगे । ३. हाथ या अधिकार से निकलना । हानि होना ।

मुहा०—क्या जाता है ? = क्या व्यय होता है ? क्या लपटा है ? क्या हानि होती है ? जैसे,—उनका क्या जाता है, नुकसान तो होगा हमारा । किसी बात से भी गए ? = इतनी बात से भी बंचित रहे ? इतना करने के भी अधिकारी या पात्र न रहे ? इतने में भी चूकनेवाले हो गए । जैसे,—उसने हमारे साथ इतनी बुराई की तो हम कुछ कहने के भी गए ?

४. खोना । गायब होना । चोरी होना । गुम होना । जैसे,—(क) पुस्तक यहाँ से गई है । (ख) जिसका माल जाता है, वही जानता है । ५. बीतना । व्यतीत होना । गुजरना (काल, समय) । उ०—(क) बार दिन इस महीने में भी गए और रुपया न पाया । (ख) गया वक्त फिर हाथ आता नहीं । ६. नष्ट होना । बिगड़ना । सत्याबाध या बरबाद होना । जैसे,—यह घर भी बच गया ।

मुहा०—गया घर=दुर्दशाप्राप्त घराना । वह कुल जिसकी समृद्धि नष्ट हो गई हो । गया बीता=(१) दुर्दशाप्राप्त । (२) निकट ।

७. मरना । मृत्यु को प्राप्त होना (की०) । जैसे,—उसके दो बच्चे जा चुके हैं । न. प्रकाश के रूप में कहीं से निकलना । बहना ।

४-११

जारी होना जैसे, धाँच से पानी जाना, खून जाना, घात जाना, इत्यादि ।

जाना^२—क्रि० सं० [सं० जनय] उत्पन्न करना । जन्म देना । पैदा करना । उ०—(क) मेरा मोहि दाऊ बहुत खिलायो । मोर्सा कहत मोल की, लीन्ही तू असुमति कत आयो ।—सूर०, १०।२१५ । (ख) कोशलेन दशरथ के जाए । हम पितु बचन मानि बन आए ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । भार्या । जैसे, जानकीजानि । उ०—सो भय दोन्ह रावनहि जानी । होइहि जातुधानपति जानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समासों में होता है और यह ह्रस्व इकारांत हो रहता है ।

जानि^२—क्रि० [सं० जानी] जानकार । जाननेवाला । उ०—यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ । जानि सिरोमनि कोसलराऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानिब—संज्ञा स्त्री० [घ०] तरफ । ओर । दिशा । उ०—कोइ उरशाक देख हुर जानिब । नाजनी साहबे दिमाग हुषा ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ७ ।

जानिबदार—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] तरफदार । पक्षपाती । हिमायती । जानिबदारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] पक्षपात । हिमायत । तरफदारी । जानी^३—संज्ञा पुं० [घ० जानी] विषयलंपक व्यवहारी व्यक्ति [को०] ।

जानी^१—वि० [फ्रा०] १. जान से संबंध रखनेवाला । प्राणों का । २. अनिष्ट । गहरा (की०) ।

यौ०—जानी दुश्मन=जान लेने की तैयार दुश्मन । प्राणों का ग्राहक शत्रु । जानी दोस्त=दिली दोस्त । अनिष्ट मित्र । प्रिय दोस्त । प्राणप्रिय मित्र ।

जानी^२—वि० स्त्री० [फ्रा० जान] प्राणप्यारी । प्राणेश्वरी । प्रिया । जानीबासउ^३—संज्ञा [हि० जनबासा] जनबासा । बारात ठहरने का स्थान । उ०—बार नग्री आयो बीसल राव, जानीबासउ बीयो तिणि ठाव ।—बी० रासो, पृ० १६ ।

जानु^१—संज्ञा पुं० [सं०] जाँघ और पिछली के मध्य का भाग । घुटना । उ०—(क) श्याम की सुंदरताई । बड़े विषाख जानु लौं पहुँचत यह उपमा मन भाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जानु टेकि कपि सुमि न गिरा । उठा संभारि बहुत रिस भरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानु^२—संज्ञा पुं० [सं० जानु, तुल० फ्रा० जानू] जाँघ । रान । उ०—जान है फाबत धाक के मान है कबली विपरीत उठानु है ।... का न करै यह सोतिन के पर प्राण से प्यारी सुजान की जानु है ।—तोष (शब्द०) ।

जानु^३—अव्य० [हि० जानना] दे० 'जानो' । उ०—तरिबर फरे फरे फरहरी । फरे जानु इँडासन पुरी ।—जायसी (शब्द०) ।

जानुदन्—वि० [सं० जानु + दन् (दन्त प्रत्यय)] घुटने तक गहरा या घुटनों तक ऊँचा [को०] ।



जानुपाणि—क्रि वि० [सं०] घुटवों। पैया पैया। घुटनों और हाथों के बल (चलना जैसे बच्चे चलते हैं)।

जानुपानि^(५)—क्रि० वि० [सं० जानुपाणि] दे० 'जानुपाणि'। उ०—
(क) जानुपानि बाए मोहि धरना। श्यामल गात, धरन कर धरना।—तुलसी (शब्द०) (ख) पीत अंगुलिया तनु पहिराई। जानुपानि बिचरन मोहि भाई।—तुलसी (शब्द०)।
(ग) राबत सिधु रूप राम सकल गुन निकाय धाम, कौतुकी कृपालु बह्य जानुपानि चारी।—तुलसी (शब्द०)।

जानुप्रहृतिक—संज्ञा पुं० [सं०] मल्ल युद्ध या कुश्ती का एक ढंग जिसमें घुटनों का व्यवहार विशेष होता था।

जानुफलक—संज्ञा पुं० [सं०] घुटने की वह हड्डी जो जाँघ और पिढली को जोड़ती है [को०]।

जानुमंडल—संज्ञा पुं० [सं० जानुमण्डल] दे० 'जानुफलक'।

जानुर्वा—संज्ञा पुं० [सं० जानु + हि० वाँ (प्रत्य०)] एक रोग जो हाथी के घायले पिछले पैर के जोड़ों में होता है और जिसमें कभी कभी घुटने की हड्डी उभर आती है।

जानुबिजानु—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के २२ हाथों में से एक।

जानु—संज्ञा पुं० [फ्रा० जावू] जंघा। जाँघ।

जानो—प्रत्य० [हि० जावना] मानो। जैसे। ऐसा जान पड़ता है कि।

जान्य—संज्ञा पुं० [सं०] हरिश्चंद्र के अनुसार एक ऋषि का नाम।

जाप^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी मंत्र या स्तोत्र आदि का बार बार मन में उच्चारण। मंत्र की विधिपूर्वक आहुति। उ०—
अनमिल आक्षर अर्थ न जापू। प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू।—
तुलसी (शब्द०)। २. भगवान् के नाम का बार बार स्मरण और उच्चारण।

जाप^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जप] मंत्र या नाम आदि बपने की माला।
उ०—बिरहु भभूत जटा बैरागी। छाला कौष जाप कंठ भागी।—जायसी (शब्द०)।

जापक—संज्ञा पुं० [सं०] जपकर्ता। जप करनेवाला। जपनेवाला।
उ०—(क) राम नाम नरकेशरी कनककसिपु कलि कालु। जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दसि सुरसालु।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत। राम नाम जप जापकहि तुलसी अग्रिमत देत।—
तुलसी (शब्द०)।

जापता^(५)—संज्ञा पुं० [फ्रा० जाबितह्] कायदा। नियम। श्रुति। आस्ता। उ०—सार्द या लिखावति जापता सूँ मेल होनी। सारा कामलान्घि ने बुलास्याँ धाम सीनी।—शिक्षर०, पृ० ५६।

जापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जप। २. निवर्तन।

जापा—संज्ञा पुं० [सं० जपन] सौरी। प्रसूतिका गृह।

जापान—संज्ञा पुं० [जा० निप्पां; धं० जापान] एक द्वीपसमूह जो चीन के पूरब है।

जापानी—संज्ञा पुं० [धं० जापान + हि० ई (प्रत्य०); या देश०] जापान द्वीपसमूह का निवासी। जापान का रहनेवाला :

जापानी^२—वि० जापान का। जापान का बना। जैसे, जापानी बियासलाई, जापानी भाषा।

जापिनी^(५)—वि० [हि०] जपनेवाली। उ०—बीरं बधू ही पापिनी बीर बधू हरि सहि। और पीर कहीं जापिनी पीर पपीहा देहि।—स० सप्तक, पृ० २३४।

जापी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० जापिन्] जापक। जप करनेवाला।
उ०—माधव पू मोते और न पापी। लंपट धूत पूत दमरी की विषय जाप की जापी।—सूर० १।१४०।

जाप्य—वि० [सं०] (मंत्र या स्तुति) जप करने योग्य [को०]।

जाफा—संज्ञा पुं० [धं० जा' फ़, जो' फ़] १. बेहोशी। २. घुमरी। मूर्च्छा। ३. बकावट। शिथिलता। निर्बलता।

क्रि० प्र०—आना।—होना।

जाफत—संज्ञा स्त्री० [धं० जियाफ़त] भोज। दावत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—खाना।—खिलाना।—देना।

जाफरान—संज्ञा पुं० [धं० जाफ़रान] १. केसर। २. अफगानिस्तान की एक तातारी जाति।

जाफरानी—वि० [धं० जाफ़रानी] केसरिया। केसर के रंग का। केसर का सा पीला। जैसे, जाफरानी रंग, जाफरानी कपड़ा।

जाफरानी तौबा—संज्ञा पुं० [धं० जाफ़रानी + हि० तौबा] पीलापन लिए हुए उत्तम तौबा जो जो चाँदी सोने में मेल देने के काम में आता है।

जाफा—संज्ञा पुं० [धं० इजाफ़ह्] बुद्धि। बढ़ती। उ०—एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो कोई जाफा कैसे करे।—गोदान, पृ० २७।

जाब^१^(५)—संज्ञा पुं० [धं० जवाब] उत्तर। जवाब। उ०—दिए जाब उनकू अलेकुल सलाम, ऐ जिब्रैल, नेकइल नेक नाम।—बक्सिनी०, पृ० ३४५।

जाब^२—संज्ञा पुं० [धं० जाब] १. धंधा। काम। २. द्रव्य के बदले में किया हुआ कार्य।

यौ०—जाब बर्क। जाब प्रेस।

जाब^३—संज्ञा पुं० [धं० ज़ब्त, हि० जाबा'] बैलों के मुँह पर लगाने की जाली। उ०—बैलों की मुँह पर 'जाब' लगा दिया जाता है।—मैला०, पृ० ६७।

जाबजा—क्रि० वि० [फ्रा० जा + बजा] जगह जगह। इधर उधर

जाबड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जबड़ा'।

जाबता—संज्ञा पुं० [फ्रा जाबितह्] दे० 'जाबता'।

जाब प्रेस—संज्ञा पुं० [धं०] काटें, नोटिस आदि छोटी छोटी चीजों के छापने की कल।

जाबर^१—संज्ञा पुं० [देश०] घीए के महीन टुकड़ों के साथ पका हुआ खाद्य।

जाबर^२—वि० [सं० जर्जर] घुट। बुढ़ा। जर्झ।—(हि०)।

जाबर^३—वि० [फ्रा० जबर] बलवान्। ताकतवर। अधिक बलवाला।

आबाज—संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि जिनकी माता का नाम आबाला था ।

विशेष—छांदोग्य उपनिषद् में इनके संबंध में यह व्याख्यान आया है कि जब ये ऋषियों के पास वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिये गए, तब उन्होंने इनका गोत्र तथा इनके पिता का नाम आदि पूछा । ये न बतला सके और अपनी माता के पास पूछने गए । माता ने कहा कि मैं जवानी में बहुतों के पास रही और उसी समय तू उत्पन्न हुआ । मैं नहीं जानती कि तू किसका पुत्र है । आ और कह दे कि मेरी माता का नाम आबाला है और मेरा आबाज है । जब आचार्य ने यह सुना तब उन्होंने कहा कि 'हे आबाज ? समझा लाओ, मैं तुम्हारा यशोपवीत करूँ; क्योंकि ब्राह्मण के प्रतिरिक्त कोई ऐसा सत्य नहीं बोल सकता' । इनका एक नाम सत्यकाम भी है ।

आबाजि—संज्ञा पुं० [सं०] कथपत्रशीय एक ऋषि जो राजा दशरथ के गुरु और मंत्रियों में से थे ।

विशेष—इन्होंने चित्रकूट में रामचंद्र को बन से लौट जाने और राज्य करने के लिये बहुत समझाया था, यहाँ तक कि अपने उपदेश में इन्होंने चावोंक से मिलते जुलते मत का आभास देकर भी राम को बनगमन से विमुख करने का प्रयत्न किया था ।

आबित—वि० [प्र० आबित] १. जस्त करनेवाला । सहनशील । २. प्रबंधक ।

आबिता—संज्ञा पुं० [प्र० आबितह] दे० 'आबिता' ।

आबिर—वि० [फ्रा०] १. जल करनेवाला । प्रत्याचार करनेवाला । जबरदस्ती करनेवाला । २. जबरदस्त । प्रबल ।

आब्ला—संज्ञा पुं० [प्र० आब्ला] नियम । कार्यदा । व्यवस्था । कानून । जैसे, आब्ले की कारंवाई, आब्ले की पाबंदी ।

यौ०—आब्ला आबालत = प्रबालत संबंधी कार्यविधि । प्रबालती व्यवहार । आब्ला दीवानी = सर्वसाधारण के परस्पर अधिक व्यवहार से संबंध रखनेवाला कानून या व्यवस्था । आब्ला फौजदारी = संवनीय अपराधों से संबंध रखनेवाला कानून । आब्ला माल = प्रबालत माल का व्यवहार या पद्धति ।

जाम^१—संज्ञा पुं० [सं० जाम] पहर । प्रहर । ७३ घड़ी या तीन घंटे का समय । उ०—(क) गए जाम जुग भूपति धावा । घर घर उत्सव बाज बधावा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दुलिय जाम संगीत उल्लव रस कित्ति काव्य जगि ।—पु० रा०, ६ । ११ । (ग) उ०—जाम निसा रहि और की, अलहन सुप्न सु होय ।—प० रासो, पु० १७० ।

जाम^२—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. प्याला । २. प्याले के आकार का बना हुआ कटोरा ।

जाम^३—संज्ञा पुं० [अनु० जम (=जल्दी)] जहाज की दीड़ (लश०) ।

जाम^४—संज्ञा पुं० [प्र० जैम] १. जहाज का दो चट्टानों या और किसी वस्तु के बीच घटकाव । फँसाव (लश०) ।

क्रि० प्र०—घाना ।—करना ।—होना ।

२. मुरब्बा । चालनी में पागे हुए फल ।

जाम^५—वि० कका हुआ । भवकट । जैसे, दो गाड़ियों के लड़ जाने से रास्ता जाम हो गया ।

जाम^६—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] जामुन ।

जामगिरी—संज्ञा पुं० [?] बंदूक का फलीता (लश०) ।

जामगी—संज्ञा पुं० [?] बंदूक या तोप का फलीता । उ०—जोत जामगिन में जगी लागे नषत दिखान । रन असमान समान और रन समान असमान ।—लाल (शब्द०) ।

जामणी—संज्ञा पुं० [सं० जम्भ] उत्पत्ति । जन्मना । जन्म होना । पैदाइश । उ०—हरि रस माते मगन भए सुमिरि सुमिरि भए मतवाले, जामण भरण सब भूलि गए ।—दादू, पु० ५१६ ।

यौ०—जामणभरण = जन्म और मृत्यु ।

जामदग्न्य—संज्ञा पुं० [सं०] जमदग्नि के पुत्र । परशुराम ।

जामदानी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जामहूवानी > जामादानी] १. कपड़ों की पैटी । जमड़े का सडूक जिसमें पहनने के कपड़े रखे जाते हैं । २. एक प्रकार का कड़ा हुआ फूलदार कपड़ा । बूटीदार महीन कपड़ा । ३. शीशे या धबक की बनी हुई छोटी सडूकची जिसमें बच्चे अपनी खेलने की चीजें रखते हैं ।

जामन^१—संज्ञा पुं० [हि० जमाना] वह थोड़ा सा दही या और कोई खट्टा पदार्थ जो दूध में उसे जमाकर बही बनाने के लिये डाला जाता है । उ०—केरि कछु करि पीरि तैं फिरि चितई मुसुकाय । माई जामन लेन कौं नैं चली जमाय ।—बिहारी (शब्द०) ।

जामन^२—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] १. जामुन । २. घालू बुखारे की जाति का एक पेड़ । पारस नाम का वृक्ष ।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय पर पंजाब से लेकर सिक्किम और भूटान तक होता है । इसमें से एक प्रकार का गोद तथा जहरीला तेल निकलता है जो दवा के काम में आता है । इसके फल खाए जाते हैं और पत्तियाँ चौपायों को खिलाई जाती हैं । लकड़ी से खेती के सामान बनाए जाते हैं । इसे पारस भी कहते हैं ।

जामन^३—संज्ञा पुं० [सं० जन्म, पुं० हि० जामण] जन्म । उ०—सुनिए धनुषधारी, घरबी हमारी यह मेट दीजै भय भारी जामन मरन को ।—रघु० रू०, पु० २८५ ।

जामना^४—क्रि० प्र० [हि० जमना] दे० 'जमना' । उ०—ऊपर बरसे तृण नहि जामा ।—तुलसी (शब्द०) ।

जामनि^५—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] रात्रि । यामिनी । निशा ।

जामनी—वि० [सं० यावनी] दे० 'यावनी' ।

जाम बेतुआ—संज्ञा पुं० [हि० जाम + बेत] एक प्रकार का बाँस ।

विशेष—यह बाँस प्रायः बरमा, आसाम और पूर्वी बंगाल में होता है । यह बाँस दट्टर बनाने, छत पाटने आदि के लिये बहुत अच्छा होता है ।

जामल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तंत्र । वि० दे० 'यामल' जैसे, रज जामल ।

जाम्बवत—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] दे० 'जाम्बवान्' । उ०—जाम्बवत के बचन सुहाए । सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ।—मानस, ५।१।

जाम्बान—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] दे० 'जाम्बवान्' । उ०—जाम्बवान् अथवा सुग्रीव तथा कोउ रावन ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४३।

जामा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जामह] १. पहनावा । कपड़ा । वस्त्र । उ०—सत के सेल्ही जुगत के जामा छिमा ढाल ठनकाई ।—कबीर श०, भा० २, पृ० १३२ । २. एक प्रकार का घुटने के नीचे बड़े घेरे का पुराना पहनावा । उ०—हिंदू घुटने तक जामा पहनते हैं और सिर और कंधों पर कपड़ा रखते हैं ।—भारतेंदु प्र०, भा० १ पृ० २४६ ।

विशेष—इस पहनावे का नीचे का घेरा बहुत बड़ा और सहेंगे की तरह चुननदार होता है । पेज के ऊपर इसकी काट बगलबंदी के ढंग की होती है । पुराने समय में लोग दरबार आदि में इसे पहनकर जाते थे । यह पहनावा प्राचीन कंबुक का रूपांतर जान पड़ता है जो मुसलमानों के आने पर हुषा होगा, क्योंकि यद्यपि यह शब्द फारसी है, तथापि प्राचीन पारसियों में इस प्रकार का पहनावा प्रचलित नहीं था । हिंदुओं में अबतक विवाह के अवसर पर यह पहनावा दुखहे को पहनाया जाता है ।

मुहा०—जामे से बाहर होना = भापे से बाहर होना । अत्यंत क्रोध करना । जामे में फूला न समाना = अत्यंत अनिंदित होना ।

यौ०—जामाजेब = वह जिसके शरीर पर वस्त्र ओभा पाता हो । जामादार = कपड़ों की देखभाल करनेवाला नोकर । जामापोश = वस्त्रयुक्त परिधानयुक्त ।

जामात—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दे० 'जामाता' ।

जामाता—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] १. दामाद । कन्या का पति । उ०—सादर पुनि भेटे जामाता । रूपसील गुननिधि सब आता ।—तुलसी (शब्द०) । २. हुरदुर का पीषा । हुलहुल ।

जामातु—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दे० 'जामाता' ।

जामातृक—संज्ञा पुं० [सं०] जामाता । दामाद [क्रो०] ।

जामानी—वि० [हि०] दे० 'जामुनी' । उ०—कहीं बेंगनी जामानी तो कहीं कसई कहीं सुरमई । इन रंगों में रूखो गई मन, संख्या पावस की ।—मिट्टी०, पृ० ७६ ।

जामि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहिन । भगिनी । २. लड़की । कन्या । ३. पुत्रवधू । बहू । पतोहू । ४. अपने संबंध या गोत्र की स्त्री । ५. कुल स्त्री । घर की बहू बेटी ।

विशेष—मनुस्मृति में यह शब्द प्राया है जिसका अर्थ कुलतृक ने भगिनी, सपिंड की स्त्री, पत्नी, कन्या, पुत्रवधू आदि किया है । मनु ने लिखा है कि जिस घर में जामि प्रतिपूजित होती है; उसमें सुल की वृद्धि होती है, और जिसमें अपमानित होती है, उस कुल का नाश हो जाता है ।

जामि^२—संज्ञा पुं० [सं० याम] दे० 'याम' और 'याम' उ०—प्रथम जामि निसि रज्ज कज्ज हैगै दिव्यत लागि । दुतिय जाम समीत उखव रस किति काव्य जगि ।—पृ० रा०, ६।११।

जामिक—संज्ञा पुं० [सं० यामिक] पहरपा । पहरा देनेवाला । रक्षक । उ०—बरन पीठ कनानिधान के । अनु जुग जामिक प्रया प्राण के ।—तुलसी (शब्द०) ।

जामित्र—संज्ञा पुं० [सं०] विवाहादि शुभ कर्म के काल के लग्न से सातवीं स्थान ।

जामित्र वेध—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक योग जिसमें विवाह आदि शुभ कर्म दूषित होते हैं ।

विशेष—शुभ कर्म का जो काल हो, उसके नक्षत्र की राशि से सातवीं राशि पर यदि सूर्य, शनि या मंगल हो, तब जामित्र-वेध होता है । किसी किसी के मत से सप्तम स्थान में पापग्रह होने से ही जामित्रवेध होता है । किंतु यदि चंद्रमा अपने मूल त्रिकोण या क्षेत्र में हो, अथवा पूर्ण चंद्र हो या पूर्ण चंद्र अपने या शुभ ग्रह के क्षेत्र में हो तो जामित्रवेध का दोष नहीं रह जाता ।

जामिन^१—संज्ञा पुं० [सं० यामिन] १. जिम्मेदार । जमानत करनेवाला । इस बात का भार लेनेवाला कि यदि कोई विशेष मनुष्य कोई विशेष कार्य करेगा या न करेगा, तो मैं उस कार्य की पूर्ति करूँगा या दंड सहूँगा । प्रतिभू । उ०—तो मैं आपको उनका जामिन समझूँगी ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६५१ ।

कि० प्र०—होना ।

२. दो अंगुल लंबी एक लकड़ी जो नैचे की दोनों नलियों को भलग रखने के लिये बिलमयई और बूल के बीच में बांधी जाती है । ३. धूष जमाने की वस्तु । दे० 'जामन' ।

जामिन^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'यामिनी' । उ०—काम सुबध बोली सब कामिन । च्यार जाम गई जागत जामिन ।—पृ० रा०, १।४१० ।

जामिनदार—संज्ञा पुं० [फ्रा० जामिनदार] जमानत करनेवाला ।

जामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'जामिनी' । उ०—सुखद सुहाई सरद की कैसी जामिनी जात ।—प्रनेकायं०, पृ० ८३ ।

जामिनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'यामिनी' ।

जामिनी^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा] जमानत । जिम्मेदारी ।

जामी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यामी] १. दे० 'यामी' । २. दे० 'जामि' ।

जामी^२—संज्ञा पुं० [हि० जमना या जमना] बाप । पिता (हि०) ।

जामुन—संज्ञा पुं० [सं० जम्बु] गरम देशों में होनेवाला एक सदाबहार पेड़ । जाम । जंबू ।

विशेष—यह वृक्ष भारतवर्ष से लेकर बरमा तक होता है और दक्षिण अमेरिका आदि में भी पाया जाता है । यह नदियों के किनारे कहीं कहीं आपसे आप उगता है, पर प्रायः फलों के लिये बस्ती के पास लगाया जाता है । इसकी लकड़ी का छिलका सफेद होता है और पत्तियाँ आठ दस अंगुल लंबी और तीन चार अंगुल चौड़ी तथा बहुत चिकनी, मोटे दस की और चमकीली होती हैं । बैसाख जेठ में इसमें मंजरी लगती है जिसके फल जाने पर गुच्छों में सरसों के बराबर फल दिखाई

पड़ते हैं जो बढ़ने पर दो तीन अंगुल संवे बेर के आकार के होते हैं। बरसात लगते ही ये फल पकने लगते हैं और पकने पर पहले बैंगनी रंग के और फिर खूब काले हो जाते हैं। ये फल कासेपन के लिये प्रसिद्ध हैं। लोग 'जामुन सा काला' प्रायः बोलते हैं। फलों का स्वाद कसेलापन लिए मीठा होता है। फल में एक कड़ी गुठली होती है। इसकी लकड़ी पानी में सड़ती नहीं और मकानों में लगाने तथा खेती के सामान बनाने के काम में आती है। इसका पका फल खाया जाता है। फलों के रस का सिरका भी बनता है जो तिल्ली, यकृत रोग आदि की दवा है। गोष्ठा में इससे एक प्रकार की शराब भी बनती है। इसकी गुठली बहुमूल्य के रोगी के लिये अत्यंत उपकारी है। बौद्ध लोग जामुन के पेड़ को पवित्र मानते हैं। वैद्यक में जामुन का फल माह्वी, रुखा तथा कफ, पित्त और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—जवू। सुरभिप्रभा। नीलफला। श्यामला। महास्कषा। राजार्हा। राजफला। शुक्रप्रिया। मोदमादिनी। जवुल।

जामुनी—वि० [हि० जामुन] जामुन के रंग का। जामुन की तरह बैंगनी या काला। जैसे, जामुनी रंग।

जामेय—संज्ञा पुं० [सं०] भागियेय। मांजा। बहिन का लड़का।

जामेवार—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का दुशाला जिसकी सारी जमीन पर बेलबूटे रहते हैं। २. एक प्रकार की छोट जिसकी बूटी दुशाले की चाल की होती है।

जायंट—वि० [अ०] साथ में काम करनेवाला। सहयोगी। संयुक्त। जैसे, जायंट सेक्रेटरी। जायंट एडीटर।

जायंट मैजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [अ०] फौजदारी का वह मैजिस्ट्रेट या हाकिम जिसका बर्जा जिला मैजिस्ट्रेट के नीचे होता है और जो प्रायः नया सिविलियन होता है। जंट।

जायँ^१—क्रि० वि० [अ० जायम्] व्यर्थ। बूया। निष्फल।

जायँ^२—अव्य० [फ्रा जा (= ठीक)] वाजिब। मुनासिब। ठीक। उचित। जैसे,—तुम्हारा कहना जायँ है।

जाय^३—अव्य० [अ० जायम् (= बूया)] बूया। निष्फल। व्यर्थ। बेकार। उ०—(क) जाय जीव बिनु देह सुहाई। यदि मोर सब बिनु रघुराई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तात जाय जिन करहु गलानी। ईस अचीन जीव गति जानी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) जेहि देह सनेह न राखे सो ऐसी देह धराइ जो जाय जिए।—तुलसी (शब्द०)।

जाय^४—संज्ञा स्त्री० [देश०] चने और उड़द की भूनकर पकाई हुई दाल।

जाय^५—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० 'जा' का योगिक रूप] जगह। स्थान। मोका।

यौ०—जायनमाज। जायपनाह, जायरहाइश = निवास स्थान।

जाय^६—वि० [सं० जात] जन्मा हुआ। पैदा। उत्पन्न। जैसे—चल जा दासी जाय तेरा उत्साह बिलाना निष्फल हुआ।

जायक—संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन।

जायका—संज्ञा पुं० [अ० जाइकह, जायकह] खाने पीने की चीजों का मजा। स्वाद। सज्जत।

क्रि० प्र०—लेना।

जायकेदार—वि० [अ० जायकह् + फ्रा० दार] स्वादिष्ट। मजेदार। जो खाने या पीने में अच्छा काम पड़े।

जायचा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जायचह्] जन्मकुंडली। जन्मपत्री।

जायज—वि० [अ० जायज्] यथार्थ। उचित। मुनासिब। ठीक। वाजिब।

क्रि० प्र०—रखना।

जायजा—संज्ञा पुं० [अ० जायजह्] १. जाँच। पड़ताल।

मुहा०—जायजा देना = हिसाब समझाना। जायजा लेना = पड़ताल करना। जाँचना।

२. हाजिरी। गिनती।

जायजरूर—संज्ञा पुं० [फ्रा० जा + अ० जरूर] टट्टी। पाखाना।

जायद—वि० [फ्रा० जायद] १. ज्यादा। अधिक। २. फालतू। प्रतिरिक्त।

जायदाद—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] भूमि, धन या सामान आदि जिसपर किसी का अधिकार हो। संपत्ति।

विशेष—कापून के अनुसार जायदाद दो प्रकार की है, मनकूला और गैरमनकूला। मनकूला जायदाद उसे कहते हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाई जा सके। जैसे, बरतन, कपड़ा, बसबाब आदि। गैरमनकूला जायदाद उसे कहते हैं जो स्थानांतरित न की जा सके। जैसे, मकान, बाग, खेत, कुर्मा आदि।

जायदाद गैरमनकूला—संज्ञा स्त्री० [फ्रा जायदाद + अ० गैरमनकूलह्] वह संपत्ति जो हटाई बढ़ाई न जा सके। स्थावर संपत्ति। दे० 'जायदाद' शब्द का विशेष।

जायदाद जौजियत—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायदाद + अ० जौजियत] वह संपत्ति जिसपर स्त्री का अधिकार हो। स्त्रीधन।

जायदाद मककूला—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायदाद + अ० मककूलह्] वह संपत्ति जो किसी प्रकार रेहन या बंधक हो।

जायदाद मनकूला—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायदाद + अ० मनकूलह्] चल संपत्ति। जंगम संपत्ति। दे० 'जायदाद' शब्द का विशेष।

जायदाद मुतनाजिआ—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायदाद + अ० मुतनाजिआह] वह संपत्ति जिसके अधिकार आदि के विषय में कोई झगड़ा हो। विवादग्रस्त संपत्ति।

जायदाद शौहरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] वह संपत्ति जो स्त्री को उसके पति से मिले।

जायनमाज—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायनमाज्] वह छोटी दरी, कालीन या इसी प्रकार का और कोई बिछौना जिसपर बैठकर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं। बहुधा इसपर बना या छपा हुआ मसजिद का चित्र होता है। मुसल्ला।

जायपनाह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] आश्रय या पनाह का स्थान। आश्रय-गृह [को०]।

जायपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जातिपत्री] दे० 'जावित्री'।

जायफरी—संज्ञा पुं० [सं० जातिफल, जासीफल] दे० 'जायफल' ।

जायफल—संज्ञा पुं० [सं० जातीफल, प्रा० जाइफल] मखरोट की तरह का पर उससे छोटा, प्रायः जामुन के बराबर, एक प्रकार का सुगंधित फल जिसका व्यवहार औषध और मसाले आदि में होता है । जातीफल ।

पर्या०—कोषक । सुपनफल । कोश । जातिशस्य । शालुक । मालती-फल । मज्जसार । जातिसार । पुट ।

विशेष—जायफल का पेड़ प्रायः ३०, ३५ हाथ ऊँचा और सदा-बहार होता है, तथा मलाका, जावा और बटेविया आदि द्वीपों में पाया जाता है । दक्षिण भारत के नीलगिरि पर्वत के कुछ भागों में भी इसके पेड़ उत्पन्न किए जाते हैं । ताजे बीज बोकर इसके पेड़ उत्पन्न किए जाते हैं । इसके छोटे पौधों की तेज धूप आदि से रक्षा की जाती है और गरमी के दिनों में उन्हें निर्य सीबने की आवश्यकता होती है । जब पौधे डेढ़ दो हाथ ऊँचे हो जाते हैं तब उन्हें १५-२० हाथ की दूरी पर अलग अलग रोप देते हैं । यदि उनकी जड़ों के पास पानी ठहरने दिया जाय अथवा व्यर्थ घासपात उगने दिया जाय तो ये पौधे बहुत जल्दी मर जाते हैं । इसके नर और मादा पेड़ अलग अलग होते हैं । जब पेड़ फलने लगते हैं तब दोनों जातियों के पेड़ों को अलग अलग कर देते हैं और प्रति घाट दस मादा पेड़ों के पास उस और एक नर पेड़ लगा देते हैं जिधर से हवा अधिक घाती है । इस प्रकार नर पौधों का पुंपराग उड़कर मादा पेड़ों के स्त्री रज तक पहुँचता है और पेड़ फलने लगते हैं । प्रायः सातवें वर्ष पेड़ फलने लगते हैं और पंद्रहवें वर्ष तक उनका फलना बराबर बढ़ता जाता है । एक अच्छे पेड़ में प्रतिवर्ष प्रायः डेढ़ दो हजार फल लगते हैं । फल बहुधा रात के समय स्वयं पेड़ों से गिर पड़ते हैं और सवेरे चुन लिए जाते हैं । फल के ऊपर एक प्रकार का छिलका होता है जो उतारकर अलग सुखा लिया जाता है । इसी सूखे हुए ऊपरी छिलके को जाविनी कहते हैं । छिलका उतारने के बाद उसके अंदर एक और बहुत कड़ा छिलका निकलता है । इस छिलके को तोड़ने पर अंदर से जायफल निकलता है जो छाँह में सुखा लिया जाता है । सूखने पर फल उस रूप में हो जाते हैं जिस रूप में वे बाजार में बिकने जाते हैं । जायफल में से एक प्रकार का सुगंधित तेल और शरक भी निकाला जाता है जिसका व्यवहार दूसरी चीजों की सुगंध बढ़ाने अथवा औषधों में मिलाने के लिये होता है । जायफल की बुकनी या छोटे छोटे टुकड़े पान के साथ भी खाए जाते हैं । भारतवर्ष में जायफल और जाविनी का व्यवहार बहुत प्राचीन काल से होता आया है । वैद्यक में इसे कड़ु, पा, तीक्ष्ण, गरम, रेचक, हलका, चरपरा, अग्निदीपक, मलरोधक, बलवर्धक तथा त्रिदोष, मुख की बिरसता, खाँसी, वमन, पीनस और हृद्‌रोग आदि को दूर करनेवाला माना है ।

जायरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी भाड़ी जो बुंदेलखंड और राजपूताने की पथरीली भूमि में नदियों के पास होती है ।

जायल—वि० [फ्रा० या अ० जाइल] जिसका नाश हो चुका हो । विनष्ट । समाप्त । बरबाद ।

जायस—संज्ञा पुं० रायबरेली जिले की एक तहसील तथा प्रसिद्ध

प्राचीन और ऐतिहासिक नगर जहाँ बहुत दिनों से सूफी फकीरों की गद्दी है । उ०—जायस नगर धरम अस्थान । तहाँ भाइ कबि कीन्ह बखानु । —जायसी ग्रं०, पृ० ६ ।

विशेष—यहाँ मुसलमान विद्वान् बहुत दिनों से होते आए हैं । बहुत सी जातियाँ अपना आदि स्थान इसी नगर को बताती हैं । पद्मावत या पद्मावती ग्रंथ के रचयिता प्रसिद्ध सूफी कवि मलिक मुहम्मद यही के निवासा थे और यही उन्होंने पद्मावत की रचना की थी । उनका प्रसिद्ध संक्षिप्त नाम 'जायसी' इसी शब्द से बना है ।

जायसवाल—संज्ञा पुं० [हि० जायस] १. जायस का रहनेवाला व्यक्ति । २. बनियों की एक शाखा ।

जायसी^१—वि० [हि० जायस] जायस का रहनेवाला । जायस संबंधी । जायस का ।

जायसी^२—संज्ञा पुं० १. जायस का व्यक्ति या पदार्थ । २. प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी का संक्षिप्त नाम ।

जाया^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विवाहिता स्त्री । पत्नी । जोर । विशेषतः वह स्त्री जो किसी बालक को जन्म दे चुकी हो । उ०—जरा मरन ते रहित अमाया । मात पिता सुत बंधु न जाया । —सूर (शब्द०) । २. उपजाति वृत्त का सतवाँ भेद जिसके पहले तीन चरणों में (ज त ज ग ग) ११, ११, ११, ११, ११ और चौथे चरण में (त त ज ग ग) ११, ११, ११, ११, ११ होता है । ३. जन्मकुंडली में लग्न से सातवाँ स्थान जहाँ से पत्नी के संबंध की गणना की जाती है ।

जाया^२—वि० [अ० जाये या फ्रा० जायह] खराब । नष्ट । व्यर्थ । खोया हुआ ।

क्रि० प्र०—करना । —जाना । —होना ।

जायाघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में ग्रहों का एक योग ।

विशेष—यह योग उस समय होता है जब जन्मकुंडली में लग्न से सातवें स्थान पर मंगल या राहु ग्रह रहता है । जिस मनुष्य की कुंडली में यह योग पड़ता है फलित ज्योतिष के अनुसार उस मनुष्य की स्त्री नहीं जीती ।

२. वह मनुष्य जिसकी कुंडली में यह योग हो । ३. शरीर में का तिल ।

जायाजीव—संज्ञा पुं० [सं०] १. बगला पत्नी । २. अपनी जाया (स्त्री) के द्वारा जीविका उपाजित करनेवाला । नट । वेश्या का पति ।

जायानुजीवी—संज्ञा पुं० [सं० जायानुजीविन्] दे० 'जायाजीव' ।

जायो—संज्ञा पुं० [सं० जायिन्] संगीत में ध्रुपद की जाति का एक प्रकार का ताल ।

जायु^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. औषध । दवा । २. वैद्य । भिषग ।

जायु^२—वि० जीतनेवाला । जेता ।

जार्^१—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसके साथ किसी दूसरे की विवाहिता स्त्री का प्रेम या अनुचित संबंध हो । उपपति । पराई स्त्री से प्रेम करनेवाला पुरुष । यार । प्राणना ।

जार्^२—वि० मारनेवाला । नाश करनेवाला ।

जार्^३—संज्ञा पुं० [लै० सीजर] कस के सम्राट् की उपाधि ।

जार^१—संज्ञा पुं० [सं० जाल] दे० 'जाल' । उ०—कहाँह कबीर पुकारि के, सबका उहे विचार । कहा हमार मानै नहि, किम छूटे भ्रम जार ।—कबीर बी०, पृ० १६५ ।

जार^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० जार] स्थान । जगह [को०] ।

जार^३—संज्ञा पुं० [घ०] घँचर आदि रखने का मिट्टी, चीनी मिट्टी या सीसे का बर्तन ।

जारक—वि० [सं०] १. जलानेवाला । क्षीण या नष्ट करनेवाला । २. पाचक [को०] ।

जारकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] व्यभिचार । छिनाला ।

जारज—संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्त्री की वह संतान जो उसके जार या उपपति से उत्पन्न हुई हो । दोगली संतति ।

विशेष—धर्मशास्त्रों में जारज संतान दो प्रकार के माने गए हैं । जो संतान स्त्री के विवाहित पति के जीवनकाल में उसके उपपति से उत्पन्न हो वह 'कुंड' और जो विवाहित पति के मर जाने पर उत्पन्न हो वह 'गोलक' कहलाती है । हिंदू धर्मशास्त्रानुसार जारज पुत्र किसी प्रकार के धर्म कार्य या पिंडदान आदि का अधिकारी नहीं होता ।

जारजन्मा—वि० [सं० जारजन्मन्] जार से उत्पन्न । जारज [को०] ।

जारजयोग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में किसी बालक के जन्मकाल में पड़नेवाला एक प्रकार का योग जिससे यह सिद्धांत निकाला जाता है कि वह बालक अपने असली पिता के धर्म से नहीं उत्पन्न हुआ है बल्कि अपनी माता के जार या उपपति के धर्म से उत्पन्न है । उ०—चित पितमारन जोगु गनि भयो भएँ सुत सोगु । फिर हुलस्यो जिय जोइसी समझै जारज जोगु ।—बिहारी र०, धो० ५७५ ।

विशेष—बालक की जन्मकुंडली में यदि लग्न या चंद्रमा पर बृहस्पति की दृष्टि न हो अथवा सूर्य के साथ चंद्रमा युक्त न हो और पापयुक्त चंद्रमा के साथ सूर्य युक्त हो तो यह योग माना जाता है । द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथि में रवि, शनि या मंगलवार के दिन यदि कृत्तिका, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा और पूर्वाभाद्रपद में से कोई एक नक्षत्र हो तो भी जारज योग होता है । इसके अतिरिक्त इन अवस्थाओं में कुछ अपवाद भी हैं जिनकी उपस्थिति में जारज योग होने पर भी बालक जारज नहीं माना जाता ।

जारजात—संज्ञा पुं० [सं०] जारज ।

जारजेंट—संज्ञा स्त्री० [घं० जार्जेंट] एक प्रकार का महीन तथा बढ़िया कपड़ा ।

जारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारे का भारहवा संस्कार । २. जलाना । भस्म करना । ३. धातुओं को फूँकना ।

विशेष—वैद्यक में सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, पारा आदि धातुओं को औषध के काम के लिये कई बार कुछ विशेष क्रियाओं से फूँककर भस्म करने को 'जारण' कहते हैं ।

जारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा जीरा । सफेद जीरा ।

जारदुग्धाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में मध्यमार्ग की एक वीधा का नाम जिसमें बराहमिहुर के अनुसार श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा तथा विष्णुपुराण के अनुसार विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं ।

जारना—संज्ञा पुं० [सं० जारण या हिं० जलाना] १. जलाने की लकड़ी । ईंधन । २. जलाने की क्रिया या भाव ।

जारना—क्रि० सं० [सं० जारण, हिं० 'जलाना'] दे० 'जलाना' ।

जारभरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपपति रखनेवाली स्त्री । परपुरुष से संबंध रखनेवाली स्त्री [को०] ।

जारा^१—संज्ञा पुं० [हिं० जलाना] सोनार आदि की मट्टी का वह भाग जिसमें भाग रहती है और जिसमें रखकर कोई चीज गलाई या तपाई जाती है । इसके नीचे एक एक छोटा छेद होता है जिसमें से होकर भाथी की हवा जाती है ।

जारा^२—संज्ञा पुं० [हिं० जाला] दे० 'जाला' । उ०—रोमराजि घण्टावस जारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ।—मानस, ६।१५ ।

जारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका किसी दूसरे पुरुष के साथ अनुचित संबंध हो । दुश्चरित्रा स्त्री ।

जारित—वि० [सं०] १. गलाया हुआ । पचाया हुआ । २. (धातु) षोधी हुई । मारी हुई [को०] ।

जारी^१—वि० [घ०] १. बहता हुआ । प्रवाहित । जैसे, खून का जारी होना । २. चलता हुआ । प्रचलित । जैसे,—वह प्रख-बार जारी है या बंद हो गया ?

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

जारी^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० जारी (= रोना)] १. एक प्रकार का गीत जिसे मुहर्रम में ताजियों के सामने स्त्रियाँ गाती हैं । २. रुबन । विलाप ।

यौ०—गिरिया व जारी = रोना पीटना । विलाप ।

जारी^३—संज्ञा पुं० [देश०] भरबेरी का पोषा ।

जारी^४—संज्ञा स्त्री० [सं० जार + ई (प्रत्यय)] परस्त्री गमन । जार की क्रिया या भाव ।

जारी^५—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जाली' । उ०—जारी घटारी, भरोखन, मोखन भाँकत दुरि दुरि ठोर ठोर तँ परत काँकरी ।—तंद० प्र०, पृ० ३४३ ।

जारुथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक प्राचीन नगरी का नाम ।

जारुधि—संज्ञा पुं० [सं०] मागवत के अनुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु पर्वत के छत्ते का केसर माना जाता है ।

जारुथ्य—संज्ञा पुं० [सं० जारुथ्य] दे० 'जारुथ्य' ।

जारुथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह अवस्था जिसमें त्रिगुनी दक्षिणा दी जाय ।

जारोब—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] झाड़ । बोहारी । कूँचा ।

जारोबकश^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] झाड़ू देनेवाला व्यक्ति ।

जारोबकश^२—वि० झाड़ू देनेवाला ।

कारोवकरी—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] आकू देने का काम [को०] ।

आर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धृग ।

आलंघर—संज्ञा पुं० [सं० आलम्बर] १. एक ऋषि का नाम । २. अलंघर नाम का देश । ३. पंजाब प्रांत का एक नगर ।

आलंघरी बिद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० आलम्बर (= एक देश)] मायिक बिद्या । माया । इंद्रजाल ।

आल—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी प्रकार के तार या सूत आदि का बहुत दूर दूर पर बुना हुआ पट जिसका व्यवहार मछलियों और चिड़ियों आदि को पकड़ने के लिये होता है ।

विशेष—जाल में बहुत से सूतों, रस्सियों या तारों आदि को बड़े धीरे धीरे फैलाकर इस प्रकार बुनते हैं कि बीच में बहुत से बड़े बड़े छेद छूट जाते हैं ।

क्रि० प्र०—बनाया ।—बुनना ।

जाल—जालकर्म = मछुप का बंधा या पेशा । जालप्रतिभा = जाल में फँसा हुआ । जालजीवी ।

मुहा०—जाल डालना या फँसाना = मछलियाँ आदि पकड़ने, कोई वस्तु निकालने अथवा इसी प्रकार के किसी और काम के लिये जाल में जाल छोड़ना । जाल फैलाना या बिछाना = चिड़ियों आदि को फँसाने के लिये जाल लगाना ।

२. एक में धोतप्रोत बुने या गुथे हुए बहुत से तारों या रेशों का समूह । ३. वह युक्ति जो किसी को फँसाने या बंध में करने के लिये की जाय । जैसे,—तुम उनके जाल से नहीं बच सकते ।

मुहा०—जाल फैलाना या बिछाना = किसी को फँसाने के लिये युक्ति करना ।

४. मकड़ी का जाला । ५. समूह । जैसे,—पयजाल । ६. इंद्र-जाल । ७. गवाक्ष । झरोखा । ८. अहंकार । अभिमान ।

• ९. वनस्पति आदि को जलाकर उसकी राख से तैयार किया हुआ ममक । क्षार । क्षार । १०. कदम का पेड़ । ११. एक प्रकार की तोप । उ०—जाल जंजाल हुयनाल गयनाल है बान नीसान फहरान लागे ।—सूदन (शब्द०) । १२. फूल की कली । १३. दे० 'जाली' । १४. वह भिल्ली जो जलपक्षियों के पंजे को युक्त करती है (को०) । १५. बालों का एक रोग (को०) ।

जाल^१—संज्ञा पुं० [सं० जाल] जाला । सपट । उ०—धर्म जाल किन वन उठत किन तन तन बरसे मेह । अक्षयवन अंदर के केसन कंकर खेह ।—पृ० रा०, ६।५६ ।

जाल^२—संज्ञा पुं० [अ० जाल । मि० सं० जाल] वह उपाय या कृत्य जो किसी को धोखा देने या ठगने आदि के अविश्रय से हो । फरेब । धोखा । झूठी कार्रवाई ।

क्रि० प्र०—करना ।—बनाना ।—रखना ।

जाल^३—संज्ञा स्त्री० [देशी जाड़ (= गुल्म)] राजस्थान में होनेवाला एक वृक्षविशेष । उ०—यस मध्यह्न जल बाहिरी, तूँ काँह नीली जाल । काँह तूँ सींची सज्जणो, काँह बूठउ अग्यालि ।—दोला०, पृ० ३६ ।

जालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जाल । २. कली । ३. समूह । ४. गवाक्ष । झरोखा । ५. मोतियों का बना हुआ एक प्रकार का आभूषण । ६. केला । ७. चिड़ियों का घोंसला । ८. गर्व । अभिमान ।

जालकारक—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ा ।

जालकि—संज्ञा पुं० [सं०] १. शस्त्रों से अपनी जीविका निर्वाह करने-वाला मनुष्य ।

जालकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड़ी ।

जालकिरब—संज्ञा स्त्री० [हि० जाल + किरब] परतला मिली हुई वह पेटी जिसके साथ तलवार भी लगी हो ।

जालकी—संज्ञा पुं० [सं० जालकिन्] बादल (को०) ।

जालकीट—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकड़ा । २. वह कीड़ा जो मकड़ी के जाले में फँसा हो ।

जालगर्दभ—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का क्षुद्र रोग ।

विशेष—इसमें किसी स्थान पर कुछ सूजन हो जाती है और बिना पके ही इसमें जलन उत्पन्न होती है । इस रोग में रोगी को ज्वर भी हो जाता है ।

जालगोशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दही मचने की हाडी (को०) ।

जालजीवी—संज्ञा पुं० [सं० जालजीविन्] धीवर । मछुप ।

जालदार—वि० [सं० जाल + हि० दार] जिसमें जाल की तरह पास पास छेद हो । जालवाला । जालीदार । २. फंदेवाला । फंदेदार (को०) ।

जालना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जलाना' । उ०—दाहू केह जाले केह जालिये, केह जालन जाहि । केह जालन की केरे, दाहू जीवन नाहि ।—दाहू बानी, पृ० ३६७ ।

जालनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जालिनी' ४. उ०—जालनी यह तीव्र दाह करके संयुक्त और मांस के जाल से व्याप्त होती है ।—माधव०, पृ० १८७ ।

जालपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. हंस । २. जाबालि ऋषि के एक शिष्य का नाम । ३. एक प्राचीन देश का नाम । ४. वह पशु या पक्षी जिसके पैर की उँगलियाँ जालदार भिल्ली से ढँकी हों ।

जालप्राया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कवच । जिरह बकतर । संजोपा ।

जालबंद—संज्ञा पुं० [हि० जाल + फ्रा० बंद] एक प्रकार का गलीचा जिसमें जाल की तरह बेलें बनी होती हैं ।

जालबुर्क—संज्ञा पुं० [सं०] बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसमें छोटी छोटी बालियाँ होती हैं ।

जालम^१—वि० [हि०] दे० 'जालिम' । उ०—विघन करत है चपेट पकड़ फेट काल की । नामा दर्जी जालम बिठू राजा का गुलाम ।—दक्खिनी०, पृ० ४५ ।

जालरंध—संज्ञा पुं० [सं० जालरन्ध्र] घर में प्रकाश आने के लिये झरोखे में लगी हुई जाली या उसके छेद । उ०—जालरंध मग अँगनू

को कुछ उजास तो पाह। पीठि बिए जगस्यो रह्यो डीठि
भरोसैं चाह।—बिहारी (शब्द०)।

जालब—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दैत्य का नाम जो बलवल
का पुत्र था और जिसका बलदेव जी ने बध किया था।

जालसाज—संज्ञा पुं० [ध० जघ्न + प्रा० साज] वह जो दूसरों
को धोखा देने के लिये झूठी कार्रवाई करे।

जालसाजी—संज्ञा स्त्री० [जाल + साजीध० जघ्न + प्रा० साजी]
फरेब या जाल करने का काम। दगाबाजी।

जाला^१—संज्ञा पुं० [सं० जाल] १. मकड़ी का बुना हुआ बहुत पतले तारों
का वह जाल जिसमें वह अपने खाने के लिये मक्खियों और
दूसरे कीड़ों मकोड़ों आदि को फँसाती है। वि० दे० 'मकड़ी'।

विशेष—इस प्रकार के जाले बहुधा गंदे मकानों की दीवारों और
छतों आदि पर लगे रहते हैं।

२. माल का रोग जिसमें पुतली के ऊपर एक सफेद परदा या
फिल्ली सी पड़ जाती है और जिसके कारण कुछ कम दिखाई
पड़ता है।

विशेष—यह रोग प्रायः कुछ विशेष प्रकार के मूल आदि के
जमने के कारण होता है, और ज्यों ज्यों फिल्ली मोटी होती
जाती है, त्यों त्यों रोगी की दृष्टि नष्ट होती जाती है।
फिल्ली अधिक मोटी होने के कारण जब यह रोग बढ़ जाता
है, तब इसे माड़ा कहते हैं।

३. सूत या सन आदि का बना हुआ वह जाल जिसमें घास घूसा
आदि पदार्थ बंधे जाते हैं। ४. एक प्रकार का सरपत जिससे
चीनी साफ की जाती है। ५. पानी रखने का मिट्टी का बड़ा
बरतन। ६. दे० 'जाल'।

जाला^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला] दे० 'ज्वाला'। उ०—इक मुखस
अगि जाला उठंत, इक परहु देह बरिखा उठंत।—पु० रा०,
६। ४५।

जालाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] भरोखा। गदाक्ष।

जालाष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की तरल ओषधि [को०]।

जालिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. कैवर्त। जाल बुनवैवाला व्यक्ति।

२. जाल से मृगादि जंतुओं को फँसानेवाला व्यक्ति। ककठक।

३. इन्द्रजालिक। मबारी। बाजीगर। ४. मकड़ी (हि०)।

५. प्रदेश आदि का प्रधान शासक (को०)।

जालिक^२—वि० जाल से जीविका अर्जित करनेवाला (को०)।

जालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाख। फंदा। २. जाली। ३. बिषवा
स्त्री। ४. कवच। जिरह। बकतर। खंजीपा। ५. मकड़ी।
६. लोहा। ७. समूह। उ०—प्रनतजन कुमुदवन इंदुकर
जालिका। जालसि अभिमान माहिषेस बहु कामिका।
—तुलसी (शब्द०)। ८. स्त्रियों के मुख पर डालनेवाला
आवरण या परदा। मुख पर डाली जानेवाली जाली (को०)।
९. जोंक (को०)। १०. केला (को०)। ११. एक प्रकार का
वस्त्र (को०)।

जालिनी^१—संज्ञा स्त्री [सं०] १. तरौई। घिया। २. वह स्थान
जहाँ चित्र बनते हैं। चित्रशाला। ३. परबल की लता। ४.
पिट्टिका रोग का एक भेद।

विशेष—इसमें रोगी के शरीर के मांसल स्थानों में दाहयुक्त
फुंसियाँ हो जाती हैं। यह केवल प्रमेह के रोगियों को
होता है।

जालिनी^२—वि० [हि० जालना] जलानेवाली।

जालिनीफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. तरौई। २. घिया।

जालिम—वि० [ध० जालिम जो बहुत ही अन्यायपूर्ण या निर्दयता
का व्यवहार करता हो। जुल्म करनेवाला। भत्याचारी।

जालिमाना—वि० [ध० जालिम, फा० जालिमानह] भत्याचार
संबंधी [को०]। जालसाज। फरेब या धोखा देनेवाला।

जालिया^१—वि० [हि० जाल = (फरेब) + हया (प्रत्य०)] जाल फरेब
करने या धोखा देनेवाला।

जालिया^२—संज्ञा पुं० [हि० जाल + हया (प्रत्य०)] जाल की
सहायता से मछली पकड़नेवाला। धोवर।

जाली^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरौड़ी। २. परबल।

जाली^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जाल] १. किसी चीज, विशेषतः लकड़ी
पत्थर या धातु आदि, में बना हुआ बहुत से छोटे छोटे छेदों
का समूह।

क्रि० प्र०—काटना।—बनाना।

२. कसीदे का एक प्रकार का काम जिसमें किसी फूल या
पत्ती आदि के बीच में बहुत से छोटे छोटे छेद बनाए
जाते हैं।

क्रि० प्र०—काटना।—निकालना।—डालना।—भरना।
—बनाना।

३. एक प्रकार का कपड़ा जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद होते
हैं। ४. वह लकड़ी जो चारा काटने के गड़ाई के दस्ते पर
लगी रहती है। ५. कच्चे आम के धंवर गुठली के ऊपर का
वह तंतुसमूह जो पकने से कुछ पहले उत्पन्न होता और पीछे
से कड़ा हो जाता है। इसके उत्पन्न होने के उपरांत आम के
फल का पकना प्रारंभ होता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

६. दे० 'जाला'।

जाली^३—संज्ञा स्त्री० [ध०] एक प्रकार की छोटी नाव।

जाली^४—वि० [ध० जघ्न + हि० ई (प्रत्य०)] नकली। बनाबटी।
झूठा। जैसे, जाली सिक्का, जाली दस्तावेज।

यौ०—जाली नोट = नकली नोट।

जालीदार—वि० [देश०] जिसमें जाली बनी या पड़ी हो।

जालीलेट—संज्ञा पुं० [हि० जाली + लेट] एक प्रकार का कपड़ा
जिसकी सारी बुनावट में बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं।

जालीलोट^१—संज्ञा पुं० [हि० जाली + लोट] दे० 'जालीलेट'।

जालीलोट^२—संज्ञा पुं० [हि० जाली + मं० नोट] दे० 'जाली नोट'।

आक्षीर^५—संज्ञा पुं० [सं०] कश्मीर में बिहार या अक्षहार का नाम [को०] ।

आक्षी^१—वि० [सं०] १. पामर । नीच । २. मूर्ख । बेवकूफ । ३. क्रूर । कठोर । निष्ठुर [को०] ।

आक्षी^२—संज्ञा पुं० १. दुष्ट, धूर्त या कपटी व्यक्ति । १. निर्धन या पदभ्रष्ट व्यक्ति । ३. बुरा पाठ या वाचन करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

आक्षीक^३—संज्ञा पुं० [सं०] [बी० आत्मिका] १. वह जो अपने मित्र, गुरु या बाह्यण के साथ द्वेष करे । २. नीच या अधम या तुच्छ व्यक्ति ।

आक्षी^४—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

आक्षी^५—वि० आल में फँसाए जाने योग्य [को०] ।

आक्षी^६—संज्ञा पुं० [सं० यावत्] लाह से बना हुआ पैरों में लगाने का लाल रंग । प्रलता । महावर ।

आक्षी^७—क्रि० सं० [हि०] ३० 'जावत्' । उ०—आक्षीत जगति हस्ति धी बाँटा । सब कहँ भुगुति रात दिन बाँटा । —जायसी शं० (गुप्त), पृ० १२३ ।

आक्षी^८—अव्य० [सं० यावत्] ३० 'यावत्' ।

आक्षी^९—संज्ञा पुं० [हि० जावना] जाने की क्रिया या भाव । जाना । उ०—नंगे हि जावन बंगे हि जावन झूठी रबिया बाजी । या दुनिया में जीवन छोड़ा नवँ करे सो पाजी । —कबीर शं०, भा० २, पृ० ४८ ।

आक्षी^{१०}—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जामन' । उ०—(क) नई दोहनी पौछि पखारी घरि निर्धम खीर पर लायों । तामें मिलि मिश्रित मिश्री करि है कपूर पुट जावन नायो ? —सूर (शब्द०) । (ख) तोष मरत तब छमा जुड़ावह । धृति सम जावन देह जमावह —तुलसी (शब्द०) ।

आक्षी^{११}—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'जाना' । उ०—ऊँपर बीठा जावता, हलहल करह ककर । एराकी ओखनिया, जहसह कैती दूर । —डोला०, पृ० ६४१ ।

आक्षी^{१२}—क्रि० प्र० [हि० जनना] जन्म लेना । उत्पन्न होना । उ०—कहँ कि हमरे बालक जावे, बड़ी भयुबल होई । —चरण० बानी, पृ० ७३ ।

आक्षी^{१३}—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेग । तेजी । २. तीव्रता [को०] ।

आक्षी^{१४}—संज्ञा पुं० [देश०] १. ऊख के रस में पकाई गई खीर । बखीर । २. कद्दू के साथ पकाया हुआ चावल ।

आक्षी^{१५}—संज्ञा पुं० पूर्वी एशिया का एक द्वीप । यवद्वीप ।

आक्षी^{१६}—संज्ञा पुं० [हि० जामन या जमना] वह मसाला जिससे करारा बुझाई जाती है । बेसवार । जाया ।

आक्षी^{१७}—संज्ञा स्त्री [सं० जातिपत्री] आयफल के ऊपर का छिलका जो बहुत सुगंधित होता है और मोषष के काम में आता है । दे० 'जायफल' ।

विशेष—वैद्यक में इसे हलका, चरपरा, स्वादिष्ट, गरम, रुचिकारक और कफ, खाँसी, बमन हवास, तृषा, कुमि तथा विष का नाशक माना जाता है ।

आक्षी^{१८}—संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन ।

आक्षी^{१९}—[हि०] दे० 'यक्षिणी' । उ०—राघो करी आक्षी पूजा । चहे सुभाव दिखावे दूजा । —जायसी (शब्द०) ।

आक्षी^{२०}—संज्ञा स्त्री [हि० जावनी] नटिनी । उ०—गीति गरवि आक्षी मत्त भए मतरुफ गावह । —कीर्ति०, पृ० ४२ ।

आक्षी^{२१}—वि० [सं० यस्य, प्रा० जस्स] जिसका ।

आक्षी^{२२}—संज्ञा पुं० [देश०] वे पान जो उस अफीम में मिलाने के लिये काटे जाते हैं जिससे मदक बनता है ।

आक्षी^{२३}—वि० [हि० जासु] दे० 'जासु' ।

आक्षी^{२४}—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त रूप से किसी बात विशेषतः अपराध आदि का पता लगानेवाला । भेदिया । मुखबिर । खुफिया ।

आक्षी^{२५}—संज्ञा स्त्री [हि०] गुप्त रूप से किसी बात का पता लगाने की क्रिया । जासुस का काम ।

आक्षी^{२६}—सर्व० [हि०] जिससे । उ०—नंददास दृष्टि आक्षी तनु की तरुनि पर ता ऊपर चंद बारों करति प्रारति नित । —नंद० शं०, पृ० ३७७ ।

आक्षी^{२७}—वि० [सं० ज्यादती से देश० रूप] अधिक । ज्यादा । उ०—गिरी ऐसी बमदार की कि पाव भर तीलते तो छह से जास्ती सुपारी नहीं बढ़ा पाते तराजू पर । —नई०, पृ० ७८ ।

आक्षी^{२८}—संज्ञा स्त्री ज्यादती ।

आक्षी^{२९}—संज्ञा पुं० [सं०] जामाता । जेवाई । दामाद ।

आक्षी^{३०}—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. पद । १. मान । प्रतिष्ठा । ३. गौरव [को०] ।

आक्षी^{३१}—संज्ञा स्त्री [सं० ज्या] घनुष की डोरी । प्रत्यंघा । उ०—वास हाथ लीध बाहु जीमणो कसीस जाह । —रघु० ६०, पृ० ७६ ।

आक्षी^{३२}—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिरमिट । २. जोंक । ३. बिछोना । बिस्तर । ४. चाँचा ।

आक्षी^{३३}—वि० [फ्रा०] १. प्रतिष्ठा का लोभी । २. पदलोलुप । ३. बड़े लोभों या अमीरों की भक्ति करनेवाला [को०] ।

आक्षी^{३४}—वि० [सं० जाहिर] दे० 'जाहिर' ।

आक्षी^{३५}—संज्ञा पुं० [सं० जाहिर] धर्मनिष्ठ । उ०—नही है जाहिरों को मे सेंती काम । लिखा है उनकी पेशानी में सिरका । —कविता को०, भा० ४, पृ० १६ ।

आक्षी^{३६}—वि० [सं० जाहिर] १. जो छिपा न हो । जो सबके सामने हो । प्रगट । प्रकाशित । खुला हुआ । २. विदित । जाना हुआ ।

यौ०—आक्षी जहूर=आक्षी । आक्षीपरस्त=ऊपरी बातों पर दृष्टि रखनेवाला ।

आक्षी^{३७}—संज्ञा स्त्री [सं० जाति] मालती लता तथा उसका फूल ।

आक्षी^{३८}—क्रि० वि० [सं०] देखने में । प्रगट रूप में । प्रत्यक्ष में । जैसे,—आक्षी तो यह बात नहीं मालूम होती आने ईश्वर जाने ।

आक्षी^{३९}—वि० [सं०] १. मुख । अनाड़ी । अज्ञान । नासमझ । २. अनपढ़ । विद्याहीन । जो कुछ पढ़ा लिखा न हो ।

जाही—संज्ञा स्त्री० [सं० जाती] १. चमेली की जाति का एक प्रकार का सुगंधित फूल । २. एक प्रकार की आतिशबाजी ।

जाहुष—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्यक्ति का नाम जिसकी रक्षा अश्विन करते हैं (को०) ।

जाहूषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जहू, ऋषि से उत्पन्न, गंगा ।

जि०—सर्व [हि० जिन] जिसने । जो ।

विशेष—'जिन' का यह रूप प्राचीन हिंदी काव्य में मिलता है ।

जिक—संज्ञा स्त्री० [प्र० जिक] जस्ते का धार ।

विशेष—यह धार देखने में सफेद रंग का होता है और रंग रोगन और दवा के काम में आता है । यह क्लोराइड आफ जिक, वा सल्फेट आफ जिक को सोडियम, बेरियम वा कैल्सियम सल्फाइड में घोलने या हल करने से बनता है । सल्फाइड के नीचे तलछट बैठ जाती है जिसे निकालकर सुखाने के बाद लाल धाँच में तपाकर ठंडे पानी में बुझा लेते हैं । इसके बाद वह खरल में पीसी जाती है और बाजारों में बिकती है । इसे सफेदा भी कहते हैं । गुलाबजल या पानी में घोलकर इसे धाँचों में डालते हैं जिससे धाँच की जलन और दर्द दूर हो जाता है ।

यौ०—जिक प्राक्साइड ।

जिगनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गनी] जिगिन का पेड़ ।

जिगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गिनी] दे० 'जिगनी' ।

जिगी—संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गी] मजीठ (को०) ।

जिजर—संज्ञा पुं० [प्र०] अदरक से बनी एक प्रकार की पेय ।
उ०—खन्ना ने जिजर का ग्लास खाली करके सिगार सुलगाई ।—गोदान, पृ० १२७ ।

जिद^१—संज्ञा पुं० [प्र० जिन या जिन्न] भूत प्रेत । मुसलमान भूत । दे० 'जिन' ।

जिद^२—संज्ञा पुं० [हि० जंद] दे० 'जंद' ।

जिद^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'जिदगी' । उ०—दे गिरंद गिरंवा हूवा बे जिद असाही छीनी है ।—घनानंद, पृ० १८० ।

जिदगानी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] जीवन । जिदगी ।

जिदगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. जीवन ।

मुहा०—जिदगी से हाथ धोना = जीने से निराश होना ।

२. जीवनकाल । आयु ।

मुहा०—जिदगी का दिन पूरा करना वा भरना = (१) दिन काटना । जीवन बिताना । (२) मरने को होना । आसन्नमृत्यु होना । जिदगी का दुश्मन होना = जिदगी देना । मौत के मुँह में जाना । उ०—हाथी आया ही चाहता है क्यों जिदगी के दुश्मन हो गए ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८९ ।

जिदा—वि० [फ्रा० जिदह] १. जीवित । जीता हुआ ।

यौ०—जिदादिल । जिदाबाद = अमर हो ।

२. सक्रिय । सचेष्ट (को०) । ३. हरामरा (को०) ।

जिदादिल—वि० [फ्रा० जिदहदिल] [संज्ञा जिदादिली] बुद्ध-मिजाज । हंसोड़ । दिव्यगीबाज । विनोदप्रिय ।

जिदादिली—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जिदहदिली] प्रसन्न रहने और मनो-विनोद करने का भाव ।

जिदाबाद—अव्य० [फ्रा० जिदहबाद] चिरंजीवी हो । जीवित हो ।

यौ०—इबकबाज जिदाबाद = क्रांति चिरंजीवी हो ।

जिस—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. प्रकार । किस्म । भाँति । २. वस्तु । द्रव्य । ३. सामग्री । सामान । ४. अनाज । गन्ना । रसद ।

यौ०—जिसवार ।

५. आभरण । गहना (को०) । ६. लिंग (को०) । ७. जाति (को०) । ८. परिवार (को०) । ९. वर्ग (को०) । १०. पण्य द्रव्य या व्यापारिक वस्तु (को०) । ११. असबाब (को०) । १२. व्यवहार गणित (अंकगणित) ।

यौ०—जिसवाना = मंडारगृह ।

जिसवार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] पटवारियों का एक कागज जिसमें वे अपने हलके के प्रत्येक खेत में बोए हुए अन्न का नाम परताल करते समय लिखते हैं ।

जिबाना—क्रि० सं० [हि० जेवना का सक० रूप] दे० 'जिमाना' ।

जि—संज्ञा पुं० [सं० जिः] पिशाच (को०) ।

जिअ०—संज्ञा पुं० [सं० जीव, प्रा० जिअ] दे० 'जी' । उ०—राम भगति भूषित जिअ जानी । सुनिहहि सुजन सराहि सुबानी ।—मानस, १।६ ।

जिअन०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जीवन' । उ०—मरन जिअन एही पंथ एही आस निरास । परा सो गया पतारहि तिरा सो गया कविलास ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२६ ।

जिसोलगान—संज्ञा पुं० [हि० जिसी + लगान] जिस के रूप में ली जानेवाली लगान । फसल के रूप में ली जानेवाली लगान ।

जिअन०—संज्ञा पुं० [सं० जीवन] जीवन । जीवन की पद्धति । उ०—जिअन मरन फलु बसरथ पावा । अंड अनेक अमल असु छावा ।—मानस, २।१५६ ।

जिअना—संज्ञा पुं० [सं० जीवन] जीवन ।

जिअना०—क्रि० प्र० [हि० जीना] दे० 'जीना' ।

जिअना०—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जिलाना' । उ०—तासीं वैर कबहुं नहि कीजे । मारे मरिय जिअए जीजे ।—तुलसी (शब्द०) ।

जिउं०—अव्य० [सं० यथा; अण० जिवे] दे० 'ज्यो' या 'जिमि' । उ०—ऊँची बड़ि चातुंगि जिउं, मागि निहालह मुग्ध ।—ढोला०, पृ० १६ ।

जिउं—संज्ञा पुं० [सं० जीव] दे० 'जीव' ।

जिउका—संज्ञा स्त्री० [सं० जीविका] 'जीविका' ।

जिउकिया—संज्ञा पुं० [हि० जीविका वा जिउका] १. जीविका करनेवाला । रोजगारी । २. पहाड़ी लोग जो दुर्गम जंगलों और पर्वतों से अनेक प्रकार की व्यापार की वस्तुएँ, जैसे,—बैर, कस्तूरी, शिलाजीत, शेर के बच्चे, तथा जड़ी बूटी आदि ले आकर नगरों में बेचते हैं ।

जिउ संत०—संज्ञा पुं० [सं० जीव + तत्त्व] जी का तत्त्व । जी की बात । उ०—जेति नारि हसि पूर्वाह्न अमिय बचन जिउ-संत ।—जायसी ग्रं०, पृ० १६४ ।

जिहतिया—संज्ञा स्त्री० [हि० जूतिया > सं० जीवितपुत्रिका] एक व्रत जो माशिवन कृष्णाष्टमी के दिन होता है। दे० 'जिताष्टमी'।

विशेष—इस व्रत को वे स्त्रियाँ जिनके पुत्र होते हैं, करती हैं। इसमें गले में एक चागा बाँधा जाता है जिसमें घनंत की तरह गठि होती है। कहीं कहीं यह व्रत माशिवन शुक्लाष्टमी के दिन किया जाता है।

जिहति—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जिवनार'। उ०—भोजन श्वपच कीन्ह जिहतिनारा। सात बार चंटा भनकारा।—कबीर मं०, पृ० ४६३।

जिहलेवा—वि० [हि० जीव + सेवा] दे० 'जिवलेवा'।

जिकड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] बज का एक लोकगीत, जिसमें दो दल बनाकर प्रश्नोत्तर होता है।

जिकर—संज्ञा पुं० [हि० जिकिर] दे० 'जिकिर'। उ०—फिरे गैब का छत्र जिकर का मुस्क लगाई।—पलटू०, भा० १, पृ० १०६।

जिका^(५)—सर्व० [हि० जिसका या जिनका का सक्षिप्त रूप] दे० 'जिसका'। उ०—घावी सब रत घामलो, त्रिया करइ सिणगार। जिका हिया न फाटही, दूर गया भरतार।—ढोला०, पृ० ३०३।

जिक्र—संज्ञा पुं० [सं० जिक्र] १. चर्चा। बातचीत। प्रसंग।

क्रि० प्र०—माना।—करना।—चलना।—चलाना।—छिड़ना।—छिड़ना।

यौ०—जिक्र मजकूर = बातचीत। चर्चा। जिक्रे—खैर = कुशल-चर्चा। शुभ चर्चा उ०—अतः सबसे पहले क्यों न कविसम्मेलनों ही का जिक्रे खैर किया जाय।—कुंकुम। (भू०), पृ० २।

२. एक प्रकार का जप (को०)।

जिग^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यज्ञ'। उ०—हृण ताड़का निज ठहरा। जिग मांड भारंभ जाहरा।—रघु० क०, पृ० ६७।

जिगलु^(५)—वि० [सं०] क्षिप्रगामी। तेज चलनेवाला (को०)।

जिगलु^(५)—संज्ञा पुं० प्राणवायु। श्वास (को०)।

जिगिन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जिगिन'।

जिगमिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाने की इच्छा (को०)।

जिगमिषु—वि० [सं०] जाने का इच्छुक (को०)।

जिगर—संज्ञा पुं० [फा० मि० सं० यकृत] [वि० जिगरी] १. कलेजा।

यौ०—जिगर कुल्फ = जिगर का ताला। हृदयरूपी ताला।

उ०—मुसकानि ओ सटकीली बानि मानि दिल में डोले। असके हलके हलके जिगर कुल्फ को जु खोखे।—बज्ज० शं०, पृ० ४१।

जिगर खराश = (१) जिगर की छोलनेवाला। (२) अग्रिय। दुःखदायी। जिगर शोशा। जिगरबंद = पुत्र (मा०)। जिगर-सोज = (१) दिल जलानेवाला। (२) दिल का जला।

मुहा०—जिगर कबाब होना = (१) कलेजा पक जाना या जलना। (२) दुरी तरह कुदना। जिगर के टुकड़े होना = कलेजे पर सदमा पड़ना। मारी दुःख होना। जिगर धाँक कर बैठना = असाध्य दुःख से पीड़ित होना।

२. चित्त। मन। जीव। ३. साहस। हिम्मत। ४. गुदा। सप्त।

सार। ५. मध्य। सार भाग। जैसे, लकड़ी का जिगर। ६. पुत्र। लड़का (प्यार से)।

जिगरकीड़ा—संज्ञा पुं० [फा० जिगर + हि० कीड़ा] भेड़ों का रोग जिसमें उनके कलेजों में कीड़े पड़ जाते हैं।

जिगरा—संज्ञा पुं० [हि० जिगर] साहस। हिम्मत। जीवट।

जिगरी—वि० [फा०] १. दिली। भीतरी। २. अत्यंत घनिष्ठ। अभिन्नहृदय। जैसे, जिगरी दोस्त।

जिगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० जिगिनी] एक ऊँचा जंगली पेड़।

विशेष—इसके पत्ते महुए या तुन के पत्तों के समान होते हैं और टहनी में जोड़ के रूप में इधर इधर लगते हैं। यह पहाड़ों और तराई के जंगलों में होता है। इसके फूल सफेद और फल बेर के बराबर होते हैं। वैद्यक में इसका स्वाद चरपरा और कसैला लिखा है। इसकी प्रकृति गरम बतलाई गई है और वात, व्रण, अतीसार, और हृदय के रोगों में इसका प्रयोग लाभकारी कहा गया है। इसकी दतवन अच्छी होती है और मुख की दुर्गंध को दूर करती है।

पर्या०—जिगिनी। भिगिनी। भिगी। सुनियांसा। प्रमोदिनी। पाबंती। कृष्णशाल्मली।

जिगीषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जय की इच्छा। विजय प्राप्त करने की कामना। २. उद्योग। धधा। व्यवसाय। ३. लड़ने की इच्छा। युद्ध करने की इच्छा। (को०)। ४. प्रतिस्पर्धा। लाग डाँट (को०)। ५. प्रमुखता (को०)।

जिगीषु—वि० [सं०] १. युद्ध की इच्छा रखनेवाला। २. विजय का इच्छुक (को०)।

जिगुरन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चोटीदार चकोर जो हिमालय में शङ्खवाल से हजारों तक मिलता है।

विशेष—इसे जकी, सिंग मोनाल, और जेवर भी कहते हैं। इसकी मादा बादल कहलाती है।

जिहलु—वि० [सं०] बध की इच्छा रखनेवाला। शत्रु (को०)।

जिहत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूल। खाने की इच्छा। २. प्रयास करना (को०)।

जिहत्सु—वि० [सं०] भूखा। भोजन की इच्छा रखनेवाला (को०)।

जिघांसक—वि० [सं०] मारनेवाला। बध करनेवाला (को०)।

जिघांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मारने की इच्छा। २. प्रतिहिंसा। उ०—जिघांसा की घृति प्रबल हुई तो छोटी छोटी सी बातों पर प्रचवा खाली संदेह पर ही दूसरों का सत्यानाश करने की इच्छा होगी।—श्रीनिवास शं०, पृ० १६०।

जिघांसु—वि० [सं०] दे० 'जिघांसक'।

जिघृत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पकड़ने की इच्छा (को०)।

जिघृक्षु—वि० [सं०] पकड़ने की इच्छा रखनेवाला (को०)।

जिघ्र—वि० [सं०] १. संदेही। संदेह या शंका करनेवाला। २. सूँघनेवाला। ३. समझनेवाला (को०)।

जिच—संज्ञा स्त्री० वि० [?] दे० 'जिच्च'।

जिच्च—संज्ञा स्त्री० [?] १. बेबसी। तंगी। मजबूरी। २. शतरंज

में शाह की वह अवस्था जब उसे चलने का कोई घर न हो और न भदंर में देने को मोहरा हो। ३. शतरंज के खेल की वह अवस्था जिसमें किसी एक पक्ष का कोई मोहरा चलने की जगह न हो।

जिज्ज^३—वि० विवश। मजबूर। तंग।

जिज्जमान^४—संज्ञा पु० [हि० जजमान] दे० 'जजमान'। उ०—मनु समगन लियो जोति चंद्रमा सोतिन मध्य बंध्यो है। कै कवि निज जिज्जमान लूय में सुंदर भाइ बस्यो है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५।

जिजिया^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जीजी] बहन।

जिजिया^६—संज्ञा पु० [प्र० जिजियह्] १. कर। महसूल। २. वह कर या महसूल जो मुसलमानी अमलदारी में उन लोगों पर लगता था जो मुसलमान नहीं होते थे।

जिजीविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीने की इच्छा [को०]।

जिजीविषु—वि० [सं०] जीने की इच्छा रखनेवाला [को०]।

जिज्ञापयिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जताने या ज्ञापन की इच्छा [को०]।

जिज्ञापयिषु—वि० [सं०] जताने का इच्छुक [को०]।

जिज्ञासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानने की इच्छा। ज्ञान प्राप्त करने की कामना। २. पूछताछ। प्रश्न। परिप्रश्न। तहकीकात। क्रि० प्र०—करना।

जिज्ञासित—वि० [सं०] जिसकी जिज्ञासा की गई हो। पूछा हुआ [को०]।

जिज्ञासितव्य—वि० [सं०] जिज्ञासा योग्य। पूछने योग्य [को०]।

जिज्ञासु—वि० [सं०] १. जानने की इच्छा रखनेवाला। ज्ञान-प्राप्ति के लिये इच्छुक। खोजी। २. मुमुक्षु [को०]।

जिज्ञासु—वि० [सं० जिज्ञासु] दे० 'जिज्ञासु'।

जिज्ञास्य—वि० [सं०] जिसकी जिज्ञासा की जाय। जिसे जानना हो। जिसके संबंध में पूछताछ की जाय।

जिठाई^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जेठाई'।

जिठानी^८—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जेठानी'।

जिणि^९—सर्व० [हि० जिन] दे० 'जिस'। उ०—जिणि देसे सज्जन बसइ, तिणि बिसि वज्जठ बाउ। उभां लगे मो लगसी, ऊ ही लाख पसाउ।—ढोला०, दृ० ७४।

जित^{१०}—वि० [सं०] जीतनेवाला। जेता।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द समासांत में आता है। जैसे, इंद्रजित्, शत्रुजित्, विश्वजित् इत्यादि।

जित^{११}—वि० [सं०] जीता हुआ। पराजित। जिसे दूसरे ने जीता हो।

जित^{१२}^४—क्रि० वि० [सं० यत्र] जिधर। जिस ओर। उ०—जात है जित बाजि केशी जात है तित लोग।—केशव (शब्द०)।

यौ०—जित तित = जहाँ तहाँ। वि० दे० 'जहाँ' के मुहावरे। उ०—सम विषम बिहुर वन सघन बन तहाँ सख्य जित तित हुष। भूत्यो सुसंग कवियन वनह और नहीं जन संग दुष।—पृ० २१०, ६।१३।

मुहा०—जित कित होकर जाना = अव्यवस्थित जाना। इधर

उधर जाना। उ०—पसु घर पसुप हवानल माहीं। थकित भए जित कित हूँ जाही।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१०।

जितक^{१३}—वि० [हि० जित] दे० 'जितना'। उ०—भवतारी भव-तार बरब भर जितक बिभूती। इस सब आश्रय के प्रसार जग जिहि की उती।—नंद० ग्रं०, पृ० ४४।

जितना^{१४}—वि० [हि० जिस + तना (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जितनी] जिस मात्रा का। जिस परिमाण का। जैसे,—जितना मैं बोड़ता हूँ उतना तुम नहीं बोड़ सकते।

विशेष—संज्ञा सूचित करने के लिये बहुवचन रूप 'जितने' का प्रयोग होता है। 'जितना' के पीछे 'उतना' का प्रयोग संबंध पूरा करने के लिये किया जाता है। जैसे, जितना मीठा वह आम था उतना यह नहीं है।

जितकोप, जितक्रोध—वि० [सं०] जिसने क्रोध को जीत लिया हो।

जितनेमि—संज्ञा पु० [सं०], पीपल का दड़ या डंठा [को०]।

जितमन्यु—वि० [सं०] दे० 'जितकोप' [को०]।

जितरा^{१५}—संज्ञा पु० [हि० जिता] वह हलवाहा जिसे बेतन वा मजदूरी नहीं दी जाती बल्कि खेत जीतने के लिये हल बैल दिए जाते हैं।

जितलोक—वि० [सं०] जिसने पुण्य कर्म से स्वर्गादि लोक प्राप्त किया हो।

जितवना^{१६}—क्रि० सं० [सं० ज्ञात] जताना। प्रकट करना। उ०—चितवत जितवत हित हिए किए तिरीछे नैन। भीजे तन दोऊ कैं क्यों हूँ जप निबरे न।—बिहारी (शब्द०)।

जितवाना—क्रि० सं० [हि० जीतना का प्रे० रूप] जीतने देना। जीतने में समर्थ या उद्यत करना। जीतने में सहायक होना।

जितवार^{१७}—वि० [हि० जीतना] जीतनेवाला। विजयी। उ०—जह हो बजेशकुमार। रनभूमि को जितवार।—सूदन (शब्द०)।

जितवैया^{१८}—वि० [हि० जीतना + वैया (पु० प्रत्य०)] १. जीतने-वाला। २. जितानेवाला। किसी को विजयी बनानेवाला।

जितशत्रु—वि० [सं०] विजयी। जो शत्रु को पराजित कर चुका हो [को०]।

जितश्रम—वि० [सं०] जो श्रम या थकान का अनुभव न करता हो।

जितसंग—वि० [सं० जितसङ्ग] भासक्ति या भाकर्षण से मुक्त [को०]।

जितस्वर्ग—वि० [सं०] पुण्य के प्रभाव से जो स्वर्ग जीत चुका हो [को०]।

जिता^{१९}—संज्ञा पु० [हि० जीतना वा जीतना] वह सहायता जो किसान लोग खेत की जोताई बोझाई में एक दूसरे को देते हैं।

जिता^{२०}—वि० [हि०] [वि० स्त्री० जिती] दे० 'जितना'।

जिताक्ष—वि० [सं०] जितेंद्रिय [को०]।

जिताक्षर—वि० [सं०] बढ़िया पढ़ने लिखनेवाला [को०]।

जितात्मा—वि० [सं० जितात्मन्] जितेंद्रिय।

जिताना—क्रि० सं० [हि० जीतना का प्रे० रूप] जीतने में समर्थ या उद्यत करना। उ०—ताही समे खेल छल कीन्हों है छबोखी

संघ, देव बिपरीत बसि ब्रूत पहली बात। पूछे जो पियारी ताहि जानत भजान विय, भापु पूछी प्यारी को जताइ के जिताई जात ।—देव (शब्द०) ।

जितारि—वि० [सं० जित्वर] १. जीतनेवाला। विजयी। २. बली। जो जीत सके। ३. अधिक। भारी। बजनी।

विशेष—प्रायः पक्षे पर रखी हुई वस्तु के संबंध में बोलते हैं।

जितारि—वि० [सं०] १. शत्रुजित्। २. कामादि शत्रुओं को जीतनेवाला।

जितारि—संज्ञा पु० बुद्धदेव का नाम।

जिताष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंदुओं का एक व्रत जिसे पुत्रवती स्त्रियाँ करती हैं।

विशेष—यह व्रत भाद्रपद कृष्णष्टमी के दिन पड़ता है। इस दिन स्त्रियाँ सायंकाल जलाशय में स्नान कर जीमूतवाहन की पूजा करती हैं और भोजन नहीं करती। इस व्रत के लिये उष्यातिथि ली जाती है। इसको जित्तिया भी कहते हैं।

जिताहार—वि० [सं०] भूख पर विजय प्राप्त करनेवाला (को०)।

जिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीत। विजय।

जितिक—वि० [हि०] दे० 'जितिक'। उ०—जितिक हूँ न ब्रज गो, बछ, बाछी। तेल हरद करि बाछी काछी।—नंद० प्र०, पृ० २३५।

जित्ती—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'जितिक'। उ०—ब्रह्मादिक बिभूति जग जित्ती। मंड मंड प्रति दिखियत तित्ती।—नंद० प्र०, पृ० २६७।

जित्तीक—वि० [हि०] दे० 'जितिक'। उ०—पुनि जित्तीक गोपीजन साईं। ते रोहिनी सबहि पहिराई।—नंद० प्र०, पृ० २३५।

जितुम—संज्ञा पु० [य० डिटुमाई] मिथुन राशि।

जितेंद्रिय—वि० [सं० जितेंद्रिय] १. जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया हो।

विशेष—मनुस्मृति में ऐसे पुरुष को जितेंद्रिय माना है जिसे सुनने, छूने, देखने, खाने और सूँघने से हर्ष या विषाद न हो। २. शांत। समबुद्धिवाला।

जिते—वि० [हि० जिस + ते] जितने (संख्यासूचक)। उ०—कंत बिदेस रहे हो जिते दिन देह तिते मुकुतानि की माला।—पद्माकर (शब्द०)।

जितेक—वि० [हि० जिते] जितना। उ०—नगनि मध्य नग हुते जितेक। लै लै ऊपर बैठे तितेक।—नंद० प्र०, पृ० ३१४।

जितै—क्रि० वि० [सं० यत्, प्रा० यत्] जिधर। जिस ओर। उ०—लाल जितै जितवै तिय पै, तिय त्यों त्यों वितोति सखीन की ओरी।—देव (शब्द०)।

जितैया—वि० [सं० जित् + ऐया (प्रत्य०)] जितवैया। जितवार। जेता। उ०—प्रबल प्रतीक सुप्रतीक के जितैया रैया रख भाव-सिंह तेरे दान के दुरद हैं।—मति० प्र०, पृ० ४२७।

जितैला—वि० [हि० जीत + ऐला (प्रत्य०)] जीतनेवाला। बिजेता। उ०—जमींदार ने कहा, तुम किसी जमींदार का

राज यों नहीं दे सकते। यह राज जितैला है। अगर ऐसा ही करना है तो उस जमींदार को बुला लामो।

जितो—क्रि० वि० [हि० जिस] जितना (परिमाणसूचक)। उ०—(क) बैठि सदा सतसंग ही में विष मानि विषय रस कीति सदाहीं। त्यों पद्माकर झूठ जितो जग जानि सुजानहि के प्रवगाहीं।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) नख सिख सुंदरता अवलोकत, कह्यो न परत सुख होत जितो री।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—संख्या सूचित करने के लिये बहुवचन रूप 'जिते' का प्रयोग होता है।

जितो—क्रि० वि० जिस मात्रा से। जितना।

जितना—क्रि० सं० [हि० जीतना] दे० 'जीतना'। उ०—(क) हावस हृथ मयद वर भिडपाल लिय मारि। जब बहु कर सिधनि गहै को जितै नृप नारि।—प० रासो, पृ० १४। (ख) रहत प्रबोकी नित हो ध्यान सु रावरो। अब मन लीनो जितै नयो प्रीति सों बावरो।—ब्रज० प्र०, पृ० ३८।

जित्तम—संज्ञा पु० [य० डिटुमाई] मिथुन राशि।

जित्थू—अव्य० [प०] जहाँ। उ०—अहो अहो घन आनंद जानी जित्थू तित्थू जाँदा है।—घनानंद, पृ० १८१।

जित्य—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० जित्या] १. बड़ा हल। २. हेगा। पटेला। सरावन (को०)।

जित्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हींग। २. सरावन। पटेला (को०)।

जित्वर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जित्वरी] जेता। जीतनेवाला। विजयी।

जित्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशीपुरी का एक प्राचीन नाम (को०)।

जियनी—सर्व० [?] जिससे। जिसका। उ०—तुका सज्जन तिन सुँ कहिये जियनी प्रेम दुनाय।—दखिनी०, पृ० १०८।

जिद्—संज्ञा स्त्री० [अ० जिद] [वि० जिद्दी] १. उलटी बात या वस्तु। विरुद्ध वस्तु या बात। २. वैर। शत्रुता। वैमनस्य।

क्रि० प्र०—करना।—बाँधना।—रखना।

३. हठ। झड़। दुराग्रह।

क्रि० प्र०—घाना।—करना।—बाँधना।—रखना।

मुहा०—जिद पर घाना = हठ करना। झड़ना। जिद चढ़ना = हठ धरना। बिद पकड़ना = हठ करना।

जिदियाना—संज्ञा स्त्री० [अ० जिद से नामिक घातु] हठ करना। दुराग्रह करना। झड़ना। झड़ जाना।

जिद्दी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिद्] दे० 'जिद'।

जिद्द—क्रि० वि० [अ०] जिद् करते हुए। हठ करते हुए। जिद के कारण। (को०)।

जिद्दी—वि० [अ० जिद् + फा० ई (प्रत्य०)] १. जिद करनेवाला। हठी। झड़नेवाला। जैसे, जिद्दी लड़का। २. दुराग्रही। दूसरे की बात न माननेवाला।

जिधर—क्रि० वि० [हि० जिस + धर (प्रत्य०)] जिस ओर। जहाँ।

विशेष—समन्वय में इसके साथ 'उधर' का प्रयोग होता है। जैसे,

जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।

यौ०—जिधर तिधर = (१) जहाँ तहाँ। इधर उधर।

विशेष—अब इसका कम प्रयोग है।

(२) बैठकाने। बिना ठोर ठिकाने।

मुहा०—जिधर चाँद उधर सलाम = अवसरवादिता। उ०—शर्मा जी डीटते हैं, जिधर चाँद उधर सलाम।—मैला०, पृ० ३४४।

जिर्धा^१—अव्य [देश०] जहाँ। उ०—पिछे चलये थे दस भायाँ मिलाकर। जिर्धा पिछे वो जगल बीच यकसर।—दमिसनी०, पृ० ३३८।

जिन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. सूर्य। ३. बुद्ध। ४. जैन के तीर्थंकर।

यौ०—जिन सदन = जिनसदा। जैन मंदिर।

जिन^२—वि० १. जीतनेवाला। जयी। २. राग द्वेष आदि जीतनेवाला। ३. बुद्ध [को०]।

जिन^३—वि० [सं०] 'जिस' का बहुवचन।

जिन^४—सर्व० [हिं०] 'जिस' का बहुवचन।

जिन^५—संज्ञा पुं० [अ०] भूत।

मुहा०—जिन का साया = जिन लगना। जिन चढ़ना, जिन सवार होना = क्रोध के आवेश में होना। क्रोधांध होना।

जिन^६—अव्य० [हिं०] जिन] मत। उ०—सोच करो जिन होह सुखी मतिराम प्रवीन सबै नरनारी। मंजुल बंजुल कुंजन में धन, पुंज सखी ससुरारि तिहारी।—मति० प्र०, पृ० २६०।

जिन^७—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की शराब। उ०—जिन का एक देग।—वो दुनिया, पृ० १४२।

जिनगानी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] जिनगानी] दे० 'जिदगानी'।

जिनगी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जिदगी'। उ०—यकडोस दूल्हा के साथ किस तरह अपनी जिनगी काटेगी।—मई०, पृ० २६।

जिनस^१—संज्ञा स्त्री० [अ०] जिस] १. प्रकार। जाति। किस्म। उ०—बहु जिनस प्रेत पिसाच जोमि जमात बरनत नहि धनै।—मानस, १। ३३। २. दे० 'जिस'।

जिना—संज्ञा पुं० [अ०] जिना] अभिचार। छिनाला।

हिं० प्र०—करमा।

यौ०—जिनाकार। जिनाकारी। जिनाबिलज्ज।

जिनाकार—वि० [अ०] जिना + कार] [संज्ञा जिनाकारी] अभिचारी।

जिनाकारी—संज्ञा स्त्री० [अ०] जिना + कारी] पर-स्त्री-गमन। अभिचार।

जिनाबिलज्ज—संज्ञा पुं० [अ०] किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा और सम्मति के विरुद्ध बलात् संयोग करना।

जिनावर^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जानवर'। उ०—कहै श्री हरिदास पिजरा के जिनावर सों, तरफराइ रहयो उड़िबे को कितोऊ करि।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ३६०।

जिनि^१—अव्य० [हिं०] जनि] मत। नही। दे० 'जनि'। उ०—

(क) यह उज्जल रसमाल कोटि जतनन के पोई। सावधान

हूँ पहिरी यहि तोरी जिनि कोई।—नंद० प्र०, पृ० २५।

(ख) जिनि कटार गर सावसि समुभि देखु मन भाप। सकति औठ जो काटै महा दोष भौ पाप। जायसी—(सब्द०)।

जिनि^२—सर्व० [हिं०] जिन] जिन्होंने।

जिनिसा^१—संज्ञा स्त्री० [अ०] जिस] दे० 'जिस'।

जिनिसवारी^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जिसवार'।

जिनेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं०] जिनेन्द्र] १. एक बुद्ध। २. एक जैन संत [को०]।

जिन्न—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जिन' [को०]।

जिन्नात—संज्ञा पुं० [अ०] जिन का बहुत ब०] भूत प्रेतादि।

जिन्नी^१—वि० [अ०] जिन या भूत संबंधी [को०]।

जिन्नी^२—संज्ञा पुं० बहु व्यक्ति जिसके बश में भूत प्रेत हो [को०]।

जिन्ह^१—सर्व० [हिं०] जिन] दे० 'जिन'।

जिन्ह^२—संज्ञा पुं० [अ०] जिस] दे० 'जिन' (भूत प्रेत)।

जिन्हार—अव्य० [क्रा०] जिनहार] हुगिंज। बिलकुल। उ०—कहे उस शतं से ऐ नेक अतवार। खिलाफ इसमें न करना तुमें जिन्हार।—इकिखनी, पृ० ३२५।

जिप्सी—संज्ञा पुं० [अ०] १. एक घुमती फिरती रहनेवाली जाति-विशेष। २. उक्त जाति का व्यक्ति।

जिबह^१—संज्ञा पुं० [अ०] ज़बह] दे० 'जबह'। उ०—मुरगी मुल्ला से कहै, जिबह करत है मोहि। साहिब लेखा मंगसो, संकट परि-है तोहि।—संतवाणी०, पृ० ६१।

जिब्हा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिह्वा] दे० 'जिह्वा'।

जिब्हा^२—संज्ञा पुं० [सं०] जिह्वा] दे० 'जिह्वा'।

जिभला^१—वि० [हिं०] जीभ + ला (प्रत्य०)] चटोरा। चट्ट।

जिभ्या^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिह्वा] दे० 'जिह्वा'।

जिम^१—अव्य० [हिं०] दे० 'जिमि'। उ०—ले बण एही संपजह, तउ जिम ठल्लइ जाइ।—ढोसा०, पृ० ४५६।

जिमखाना—संज्ञा पुं० [अ०] जिमनास्टिक का संक्षिप्त रूप जिम + हिं० खाना] वह सांख्यनिक स्थान जहाँ लोग एकत्र होकर व्यायामादि करते हैं। व्यायामशाला।

जिमनार—संज्ञा स्त्री० [हिं०] जिमाना] भोज। समष्टिभोज। उ०—जहाँ गए ब्रह्मभोज, साधु जिमनार यथेच्छ करते।—सुंदर प्र० (जी०), भा० १, पृ० १४२।

जिमनास्टिक—संज्ञा पुं० [अ०] वे कसरतें जो काठ के दोहरे बल्लों या छड़ों आदि के ऊपर की जाती हैं। अंग्रेजी कसरत।

जिमाना—क्रि० सं० [हिं०] जीमना] खाना खिलाना। भोजन कराना।

जिमि^१—क्रि० वि० [हिं०] जिस + इमि] जिस प्रकार से। जैसे। यथा। उ०—कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।—मानस, ७। १३०।

विशेष—समन्वय सूचित करने के लिये इस लब्ध के आगे तिमि का प्रयोग होता है।

जिमित—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन [को०]।

जिमींदार—संज्ञा पुं० [हि० जमींदार] दे० 'जमींदार'।

जिम्मा—संज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह्] १. इस बात का भारग्रहण कि कोई बात या कोई काम अवश्य होगा और यदि न होगा तो उसका दोष भार ग्रहण करनेवाले के ऊपर होगा। किसी ऐसी बात के होने या न होने का दोष अपने ऊपर लेने की प्रतिज्ञा जिसका संबंध अपने से या दूसरे से हो। उत्तरदायित्व-पूर्ण प्रतिज्ञा। जबाबदेही। जैसे,—(क) मैं इस बात का जिम्मा लेता हूँ कि कम आपको बीज मिल जाएगी। (क) इस बात का जिम्मा मेरा है कि ये एक महीने के भीतर आपका रुपया चुका देंगे। (ग) क्या रोज रोज सिनाभे का मैंने जिम्मा लिया है।

क्रि० प्र०—करना। —लेना।

मुद्दा—कोई काम किसी के जिम्मे करना = किसी काम को करने का भार किसी के ऊपर होना। किसी के जिम्मे रुपया आना, निकलना या होना = किसी के ऊपर रुपया ऋणस्वरूप होना। देना। ठहराना। जैसे,—हिस्सा करने पर ५) रु० तुम्हारे जिम्मे निकलते हैं। किसी के जिम्मे रुपया डालना = किसी के ऊपर ऋण या देना ठहराना।

विशेष—जिम्मा और वादा में यह अंतर है कि वादा अपने ही विषय में किया जाता है और जिम्मा दूसरे के विषय में भी होता है।

२. सुपुर्वगी। देखरेख। संरक्षा। जैसे,—ये सब चीजें मैं तुम्हारे जिम्मे छोड़ जाता हूँ, कहीं इधर उधर न होने पाएँ।

* जिम्मादार—संज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह् + का० दार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मादारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जिम्मह् + दारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जिम्मावार—संज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह् + का० + वार (प्रत्य०)] वह जो किसी बात के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो। जबाबदेह। उत्तरदाता।

जिम्मावारी—संज्ञा पुं० [हि० जिम्मावार + ई (प्रत्य०)] १. किसी बात को करने या किए जाने का भार। उत्तरदायित्व। जबाबदेही। २. सुपुर्वगी। संरक्षा। उ०—हम इन चीजों को तुम्हारी जिम्मावारी पर छोड़ जाते हैं।

जिम्मी—संज्ञा पुं० [प्र० जिम्मी] इसलामी राज्य का लब्ध कर जिसे गैर मुसलमान होने के कारण देना पड़ता था [को०]।

जिम्मीजर—संज्ञा स्त्री० [का० जमी + जर] जर जमीन। उ०—पाखंड डंड रत्न नहीं। जिम्मीजर ककर बरा। संभरिय काल कटक हनी ता पाछे गुजजर बरा। —पृ० रा०, १२। १२८।

जिम्मेदार—संज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह् + का० दार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मेदारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जिम्मह् + का० दारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जिम्मेवार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जिम्मावार'। उ०—जिस गाँव के ये हैं, वहाँ का जमींदार जिम्मेवार होगा। —काले०, पृ० ५।

जिम्मेवार—संज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह् + का० दार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मेवारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जिम्मह् + का० दारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जिया—संज्ञा पुं० [सं० जीव] मन। चित्त। जी। उ०—(क) इस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई। —तुलसी (शब्द०)। (स) प्रसन चंद सम जतिय दिप्र हक मंत्र हष्ट जिय। इह आराधत भट्ट प्रगट पंचास बीर बिय। —पृ० रा०, ६। २६।

यौ०—जियबधा = हत्या करनेवाला। जन्नाब।

जियन(पु)—संज्ञा पुं० [हि० जीवन] जीवन। जिवगी।

जियनि—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन] १. जीवन। २. जीवन का ढंग। रहन चहुन। आचरण।

जियरा(पु)—संज्ञा पुं० [हि० जीव] १. जीव। मन। चित्त। उ०—मेरो स्वभाव चित्तै के माई री आल निहारि के इंसी बजाई। वा दिन तें मोहि बागी ठगोरी सी लोग कहैं कोउ बाबरी भाई। यों रसखानि धिरयो सगरो ब्रज जानत के कि मेरो जियरा ई। जो कोउ चाहै भलो अपने तो सनेह न काहु सो कीजिए भाई। —रसखान (शब्द०)। २. प्राण। उ०—जियरा जावगे हम जानी। पाँच तत्व को बनो है पिजरा जिसमें यस्तु बिरानी। आवत जावत कोइ न देखा हूब गया बिन पानी। —कबीर श०, भा०, पृ०।

जियाँकार—वि० [का० जियाँकार] १. हानि पहुँचानेवाला। २. बदमाश। बुरा आचरण करनेवाला [को०]।

जियाँ—संज्ञा स्त्री० [प्र० जिया] १. सूर्य का प्रकाश। २. चमक। आभा। कान्ति [को०]।

जियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० दाई या धाय] दूध पिलानेवाली दाई।

जियाँ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जी' और 'मन'।

जियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० जीजी या बीबी] बड़ी बहन।

जियाजंतु—संज्ञा पुं० [हि० जीवजंतु] दे० 'जीवजंतु'।

जियादत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जियादत] १. आधिक्य। अतिशयता। २. अत्याचार। जुर्म [को०]।

जियादती—संज्ञा स्त्री० [प्र० जियादत + हि० ई (प्रत्य०)] दे० 'ज्यादती'।

जियादा—वि० [प्र० जियादह्] दे० 'ज्यादा'।

जियान—संज्ञा पुं० [का० जियाच] घाटा। टोटा। नुकसान। हानि। क्षति।

क्रि० प्र०—उठाना। —होना। —करना।

जियाना(पु)—क्रि० सं० [हि० जीना] १. जिलाना। उ०—अबहूँ करि माया जिव केरी। मोहि जियाव देहु पिय मोरी। —जायसी (शब्द०)। २. पालना। पोसना। उ०—बाघ बछानि को गाय जियावत, बाघिनी पे सुरभी सुत चोर्व। —गुमान (शब्द०)।

जियापोता—संज्ञा पुं० [हि० जिलाना + पूत] पुत्रजीवा का पेड़ । पतजिव ।

जियाफत—संज्ञा स्त्री० [अ० जियाफत] १. आतिथ्य । मेहमानदारी । २. भोज । दावत ।

मुहा०—जियाफत करना = (१) आदर सत्कार करना । (२) खाना खिलाना । भोज देना ।

जियार^१ (उ०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जियरा' । उ०—जावे बीत जियार, जेहल पछतावे जिके । —बांकी० अ०, भा० ३, पृ० १६ ।

जियार^२—वि० [हि०] साहसी । हिम्मती । जीवटवाला ।

जियारत—संज्ञा स्त्री० [अ० जियारत] १. दर्शन । २. तीर्थदर्शन । क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—जियारत लगना = मेला लगना । दर्शन के लिये दर्शकों की भीड़ होना ।

जियारतगाह—संज्ञा पुं० [अ० जियारत + फा० गाह] १. पवित्र स्थान । तीर्थ । २. दरबार । दरगाह । ३. दर्शकों की भीड़ या जमघट ।

जियारती—वि० [अ० जियारत + फा० ई (प्रत्य०)] १. दर्शक । २. तीर्थयात्री ।

जियारा^१—संज्ञा पुं० [हि०] १. जिलाना । जीवित रखना । पालना पोसना । २. आहार । चारा । ३. जीविका । ४. साहस । हियाव ।

क्रि० प्र०—डालना ।—देना ।

जियारी (उ०)—संज्ञा स्त्री० [?] १. जीवन । जिंदगी । उ०—उनको ले मान जियो याही में अमान भयो दयो जो पै जाइ तो ही तौ जियारी है ।—प्रिया० (शब्द०) । २. जीविका । उ०—राका पति बाँका सिया बसे पुर पंडुर में उर में न बाह नेकुरीति कछु न्यारिये । करीन बीन करि जीविका नवीन करे, घरे हरि रूप हिये, ताही सो जियारिये ।—प्रिया (शब्द०) । ३. जीवट । जियारा । हृदय की छद्मता । साहस ।

जियास—संज्ञा पुं० [हि० जी] विश्वास । धैर्य । उ०—सांम कमंधा सांपनी उर अपनो जियास । —रा० रू०, पृ० २६७ ।

जिरगा—संज्ञा पुं० [फा० जिरगह] १. झुंड । गरोह । २. मंडली । ३. पठानों की पंचायत (को०) ।

जिरण—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा (को०) ।

जिरह^१—संज्ञा पुं० [अ० जरह] १. हुज्जत । खुरुर । २. फेर फार के प्रश्न जिनसे उत्तरदाता घबड़ा जाय और सच्ची बात छिपान सके । ऐसी पूछताछ जो किसी से उसकी कही हुई बातों की सत्यता की जाँच के लिये की जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—जिरह काटना या निकालना = खोद बिनोद करना । बहुत अधिक पूछताछ करना । बात में बात निकालना । खुरुर निकालना ।

३. वह सूत की डोरी जो बैसर में ऊपर नीचे बय के गीछने के लिये लगी रहती है (जुलाहे) । ४. चीरा । चाव (को०) ।

४-१३

जिरह^२—संज्ञा स्त्री० [फा० जिरह] लोहे की कड़ियों से बना हुप्रा कवच । वर्म । बकतर ।

यौ०—जिरहपोश = जो बकतर पहने हो । कवची ।

जिरही^१—वि० [फा० जिरही] जो जिरह पहने हो । कवचधारी ।

जिरही^२—संज्ञा पुं० सैनिक (को०) ।

जिराअत—संज्ञा स्त्री० [अ० जिराअत] खेती । कृषि कर्म ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—जिराअत पेसा = खेतिहर । किसान । कृषक ।

जिराता^१—संज्ञा स्त्री० [अ० जिराअत] दे० 'जिराअत' ।

जिराफ—संज्ञा पुं० [अ० जिराफ या ज़राफ] घास के मैदानों का एक वन्य पशु ।

विशेष—यह अफ्रीका तथा दक्षिण अमरीका के घास के मैदानों में झुंडों में फिरा करता है । इसके पैरों में खुर होते हैं और इसका भगला घड़ पिछले से भारी होता है । गरदन इसकी ऊँट की सी संबी होती है । यह भठारह फुट ऊँचा होता है । इसमें सिर पर दो छोटे छोटे सींग होते हैं जो रोएदार चमड़े से ढके रहते हैं । इसकी आँखें सुंदर और उभड़ी होती हैं, जिनसे यह बिना सिर मोड़े पीछे देख सकता है । इसकी नाक की बनावट कुछ ऐसी होती है कि यह जब चाहे उसे बंद कर सकता है । जोभ इसकी हतनी लंबी होती है कि यह उसे मुँह से सत्रह इंच बाहर निकाल सकता है । इसके शरीर पर हिरन के से रोए और बड़ी बड़ी चित्तियाँ होती हैं । यह ताड़ों और खजूरों की पत्तियाँ खाता है ।

जिरायता^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जिराअत' ।

जिरिया—संज्ञा पुं० [हि० जीरा] एक प्रकार का घान जो जीरे की तरह पतला और लंबा होता है ।

जिलवा—वि० [अ० जल्वह] आत्मप्रदर्शन । हावभाव । शोभा । उ०—नरेशों की संमान लालसा पग पग पर अपना जिलवा दिखाती थी ।—काया०, पृ० १७० ।

जिला^१—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. चमक दमक । घोष । पानी ।

मुहा०—जिला करना या देना = किसी वस्तु को मौजकर तथा रोगन आदि बढ़ाकर चमकाना । सिकली करना । जैसे,—हथियारों पर जिला देना, तलवार पर जिला देना ।

यौ०—जिलाकार = सिकलीगर ।

२. मौजकर तथा रोगन आदि बढ़ाकर चमकाने का कार्य । झलकाने की क्रिया । घोष देने का कार्य ।

जिला^२—संज्ञा पुं० [अ० जिलम] १. प्रांत । प्रदेश । २. भारतवर्ष में किसी प्रांत का वह भाग जो एक कलक्टर या डिप्टी कमिश्नर के प्रबंध में हो । ३. किसी इलाके का छोटा विभाग या भूभाग ।

यौ०—जिलादार ।

४. किसी जमींदार के इलाके के बीच बना हुप्रा वह मकान जिसमें वह या उसके आदमी तहसील वसूल आदि के लिये ठहरते हैं ।

जिला जज—संज्ञा पुं० [प्र० जिलम + प्र० जज] जिले का प्रधान न्यायाधीश । जिलाधीश ।

जिलाट—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जिसपर चमड़ा मड़ा होता था और जो बाप से बजाया जाता था ।

जिलादार—संज्ञा पुं० [प्र० जिलम + फ्रा० दार (प्रत्य०)] १. सरबराहकार । मजबूत । २. वह अफसर जिसे जमींदार अपने दलाके के किसी भाग में लगान वसूल करने के लिये नियत करता है । ३. वह छोटा अफसर जो नहर, अफीम आदि संबंधी किसी हलके में काम करने के लिये नियत हो ।

जिलादारी—संज्ञा स्त्री० [हि० जिलादार + ई (प्रत्य०)] जिलेदार का काम या पद ।

जिलाधीश—संज्ञा पुं० [प्र० जिलम + सं० अधीश] दे० 'जिला मैजिस्ट्रेट' ।

जिलाना—क्रि० सं० [हि० जीना का सक रूप] १. जीवन देना । जी डालना । जिदा करना । जीवित करना । जैसे, मुर्दा जिलाना । २. पालना । पोसना । जैसे, तोता जिलाना, कुत्ता जिलाना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्रायः ऐसे ही पशुओं या जीवों के लिये होता है जिनसे मनुष्य कोई काम नहीं लेता, केवल मनोरंजन के लिये पालता है । जैसे,—कुत्ता, बिल्ली, तोता, शेर आदि । घोड़े, हाथी, ऊँट, गाय, बैल आदि के लिये इसका प्रयोग नहीं होता ।

३. मरने से बचाना । मरने न देना । प्राणरक्षा करना । जैसे,—सरकार ने अकाल में लाखों बादमियों को जिला लिया । ४. धातु के भस्म को फिर धातु के रूप में लाना । मूछिन धातु को पुनः जीवित करना ।

जिला बोर्ड—संज्ञा पुं० [प्र० जिला + प्र० बोर्ड] किसी जिले के करदाताओं के प्रतिनिधियों की वह सभा जिसका काम अपने अधीनस्थ ग्रामबोर्डों की सहायता से गाँवों की सड़कों की मरम्मत कराना, स्कूल और चिकित्सालय चलाना, चक्क के टीके और स्वास्थ्योन्नति का प्रबंध आदि करना है ।

विशेष—म्युनिसिपैलिटी के समान ही जिलाबोर्ड के सदस्यों का भी हर तीसरे साल चुनाव होता है ।

जिला मैजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [प्र० + प्र०] जिले का बड़ा हाकिम जो फौजदारी मामलों का फैसला करता है । जिला हाकिम ।

विशेष—हिंदुस्तान में जिले का कमिश्नर और मैजिस्ट्रेट एक ही मनुष्य होता है जो अपने दो दो पदों के कारण दो नामों से पुकारा जाता है । मालगुजारी संबंधी कार्यों का अध्यक्ष (प्रधान) होने से कमिश्नर और फौजदारी मामलों का फैसला करने के कारण वह मैजिस्ट्रेट कहलाता है ।

जिलासाज—संज्ञा पुं० [प्र० जिला + फ्रा० साज] सिकलीगर । हथियारों पर घोष चढ़ानेवाला ।

जिलाह—संज्ञा पुं० [प्र० जल्लाह ?] अत्याचारी । उ०—ज्वाला की जलूसन, जलाक जग जालन की, जोर की जमा है ओम जुलुम जिलाहे की ।—पदाकर प्र० पु० २२८ ।

जिलिबदार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जिलेदार' । उ०—अर्धी लिखी फौजदार ले पाँचे जिलिबदार । जाके देव दरबार चोपदार के कहिने ।—दक्खिनी०, पु० ४६ ।

जिलेदार—संज्ञा पुं० [हि० जिलादार] दे० 'जिलादार' ।

जिलेबी—संज्ञा स्त्री० [हि० जलेबी] दे० 'जलेबी' ।

जिलो—संज्ञा पुं० ? अनुचर । उ०—अया बादशाहभों बड़ा नाम-दार । जिलो में चले उसके कई ताजदार ।—दक्खिनी०, पु० १६८ ।

जिल्द—संज्ञा स्त्री० [प्र०] [वि० जिल्दी] १. खाल । चमड़ा । खलड़ी । २. ऊपर का चमड़ा । त्वचा । जैसे, जिल्द की बीमारी । ३. वह पट्टा या दपती जो किसी किताब की सिलाई जुजबंदी आदि करके उसके ऊपर उसकी रक्षा के लिये लगाई जाती है ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—बाँधना ।

यौ०—जिल्दबंद । जिल्दसाज ।

४. पुस्तक की एक प्रति ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग उस समय होता है जब पुस्तकों का ग्रहण संख्या के अनुसार होता है । जैसे,—दस जिल्द पद्यावत, एक जिल्द रामायण ।

५. किसी पुस्तक का वह भाग जो पृष्ठ सिला हो । भाग । खंड । जैसे,—दादूदयाल की बानी दो जिल्दों में छपी है ।

जिल्दगर—संज्ञा पुं० [प्र० जिल्द + फ्रा० गर (प्रत्य०)] जिल्दबंद ।

जिल्दबंद—संज्ञा पुं० [प्र० जिल्द + फ्रा० बंद (प्रत्य०)] वह जो किताबों की जिल्द बाँधता हो । जिल्द बाँधनेवाला ।

जिल्दबंदी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जिल्द + फ्रा० बंदी (प्रत्य०)] पुस्तकों की जिल्द बाँधने का काम । जिल्द साजी ।

जिल्दसाज—संज्ञा पुं० [प्र० जिल्द + फ्रा० साज (प्रत्य०)] संज्ञा जिल्दसाजी] जिल्दबंद । जिल्द बाँधनेवाला ।

जिल्दसाजी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जिल्द + फ्रा० साजी (प्रत्य०)] जिल्दबंदी । किताबों पर जिल्द बाँधने का काम ।

जिल्दी—वि० [प्र० जिल्द + फ्रा० ई (प्रत्य०)] त्वक संबंधी । त्वचा या चमड़े से संबंध रखनेवाला । जैसे, जिल्दी बीमारी ।

जिल्लत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जिल्लत] १. अनादर । अपमान । तिरस्कार । बेइज्जती ।

मुहा०—जिल्लत उठाना = १. अपमानित होना । २. तुच्छ होना । हेठा ठहरना । जिल्लत देना = (१) अपमानित करना । (२) सज्जित करना । हतक करना । हेठा ठहराना । जिल्लत पाना = अपमानित होना ।

२. दुर्गति । दुर्दशा । हीन दशा । जैसे, जिल्लत में पड़ना या फँसना ।

जिल्ली—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बीस ।

विशेष—यह घासाम में होता है और घर की छाजन आदि में लगता है ।

जिल्वा—संज्ञा पुं० [प्र० जल्वाह] दे० 'जल्वा' । उ०—एक दिन ऐसा

आवेगा जब तमाम दुनिया में ईमान का जिल्हा होगा।—
भा० प्र०, भा० १, पृ० ५२६।

जिल्होर—संज्ञा पु० [देश०] एव प्रकार का धान जो भगहन में
काटा जाता है।

जिव—संज्ञा पु० [सं० जीव] दे० 'जीव'।

जिवडा—संज्ञा पु० [सं० जीव + डा (प्रत्य०)] दे० 'जीव'।
उ०—ऐसा जिवडा न मिलाए जो फरक विधोर।—कबीर
मं०, पृ० ३२५।

जिवमार—वि० [हि० जीव + मार] जान मारनेवाला। उ०—
जल नहि, थल नहि, जीव ओर सृष्टि नहि, काल जिवमार
नहि संसय सताया।—कबीर रे०, पृ० ३३।

जवरिया—संज्ञा स्त्री० दे० 'जवरी'। उ०—घादि ग्रंत जो कोउ न
पावे। तनक जिवरिया कित फिर आवे।—नंद० प्र०,
पृ० २५०।

जिवाना—संज्ञा पु० [हि०] दे० १. 'जिमाना'। २. 'जिवाना'।

जिवाजिव—संज्ञा पु० [सं०] चक्रो पक्षी।

जिवाना—क्रि० सं० [हि० जीव (= जीवन)] जीवित करना।
जिलाना। उ०—हहि काँटे मो पाइ गड़ि लीनी भरति
जिवाइ। प्रीति जनावति भीति सो मीत जु काटयो घाद।
—बिहारी रे०, दो० ६०५।

जिवारी—वि० [हि० जिय] जिलानेवाली। उ०—सोभा समूह
भई धनग्रानंद मूरति भग अनंग जिवारी।—घनानंद,
पृ० १०६।

जिवाला—संज्ञा पु० [मरा० जिवाला] जीवन। उ०—जिव का
बी मो जिवाला रूपों में रूप घाला। सबके ऊपर है बाला
नित हस्त रस तू मीरी।—दक्खिनी, पृ० ११०।

जिवावना—क्रि० सं० [जिवावा ?] जिलाना। जियाना। उ०—
घानंदघन भघ भोचबहावन सुदृष्टि जिवावन बेद भरत है
मामी।—घनानंद, पृ० ४१८।

जिवैया—वि० [हि०] जीमनेवाला। खानेवाले। उ०—तुम्हारे सिवाय
और कोई जिवैया नहीं बैठा है।—मान भा०, ५, पृ० २७।

जिष्ट—वि० [सं० ज्येष्ठ] दे० 'ज्येष्ठ'। उ०—ब्रह्म अभूत सु
उन्नत जिष्टं। वंदन भर कि बद्ध मनु पिष्ट।—पृ० रा०,
१। २५७।

जिष्णु—वि० [सं०] जीतनेवाला। विजय प्राप्त करनेवाला। विजयी।

जिष्णु—संज्ञा पु० [सं०] १. विष्णु। २. इंद्र। ३. अर्जुन। ४. सूर्य।
५. वस्तु।

जिस—वि० [सं० यस्य, प्रा० जस्स, हि० जिस] 'जो' का वह रूप
जो उसे विभक्तियुक्त विशेष्य के साथ ग्राने से प्राप्त होता है।
जैसे, जिस पुरुष ने, जिस लड़के को, जिस छड़ी से। जिस घोड़े
पर, जिस घर में, इत्यादि।

जिस—सर्व० 'जो' का वह अंगरूप, विकारीरूप जो उसे विभक्ति
लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे, जिसने, जिसको, जिससे,
जिसका, जिस पर, जिनमें।

विशेष—संबंध पूरा करने के लिये 'जिस' के पीछे 'उस' का
प्रयोग होता है। जैसे,—जिसको देगे उससे लेगे। पहले 'उस'
के स्थान पर 'तिस' का प्रयोग होता था।

जिसउ—वि० [श०] जैसा। उ०—साहू कुँवर सुपति जिसउ,
रूपे अधिक अनूप। लाखों बगसद माँगया, लाख भँगा सिर
भूप।—ढोला०, दू० ६३।

जिसनू—संज्ञा पु० [सं० जिष्णु] दे० 'जिष्णु'—३। उ०—पह
मिकुंटी धनुक समानू। है बहनी जिसनू के बानू।—इंदा०,
पृ० ६०।

जिसा—वि० [हि०] दे० 'जैसा'। उ०—मोकु दोम न होय्यो
कोई, जिसा करम भुगताऊँ सोई।—रामानंद०, पृ० २६।

जिसिम—संज्ञा पु० [अ० जिस्म] दे० 'जिस्म'।

जिसौह—क्रि० वि०, वि० [हि० जिसउ] जैसा। उ०—तुसिह
विराजत सिह जिसौह। विभीषन भा कयमाम जिसौह।
—पृ० रा०, ५। ३६।

जिस्का—वि० [हि०] जिसका। दे० 'जिस'। उ०—उन्होने ऐसा
प्रेम लगाया जिस्का पागवार नहीं।—श्यामा०, पृ० १२१।

विशेष—पुराने लेखक 'जिस्का' को इसी प्रकार लिखते थे।

जिस्ता—संज्ञा पु० [हि० जस्ता] दे० 'जस्ता'।

जिस्ता—संज्ञा पु० [हि० दस्ता] दे० 'दस्ता'।

जिस्म—संज्ञा पु० [अ०] शरीर। देह।

जिस्मानो—वि० [अ०] शरीर संबंधी। शारीरिक [की०]।

जिस्मी—वि० [अ० जिस्म + फ्रा० ई (प्रत्य०)] दे० 'जिस्मानो' [की०]।

जिह—संज्ञा स्त्री० [फा० जह, सं० ज्या] चिल्ला। रोदा। ज्या।
धनुष की प्रत्यचा। उ०—तिय कित कमनेती पढी बिन जिह
भोह कमान! बित खल बेभे चुकति नहि बज बिनोकिनि
बान।—बिहारी (शब्द०)।

जिह—सर्व० [हि०] दे० 'जिस'।

जिहन—संज्ञा पु० [अ० जिह्न] समझ। बुद्धि। धारणा।

मुहा०—जिहन खुबना=बुद्धि का विकास होना। जिहन
लडना=बुद्धि का काम करना। बुद्धि पहुँचना। जिहन
लडाना=सोचना। बुद्धि दोडना। ऊहापोह करना।

जिहाज—संज्ञा पु० [हि० जहाज] मरुभूमि का जहाज
अर्थात् ऊँट। उ०—ऊमर बिच छेती घणी, घाते गयउ
जिहाज। चारण ढोलइ साँपुहुउ, घाइ कियउ सुमराज।
—ढोला०, दू० ६४३।

जिहाद—संज्ञा पु० [अ०] [वि० जिहादी] १. धर्म के लिये युद्ध।
मजहबी लड़ाई। धार्मिक युद्ध। २. वह लड़ाई जो मुसलमान
लोग अन्य धर्मावलंबियों से अपने धर्म के प्रचार आदि के
लिये करते थे।

मुहा०—जिहाद का झंडा=वह पताका जो मुसलमान लोग
भिन्न धर्मवालों से युद्ध करने के लिये लेकर चलते थे।
जिहाद का झंडा खड़ा करना=मजहब के नाम पर लड़ाई
खेड़ना।

जिहान^१—संज्ञा पुं० [फा० जहान] संसार । जहान । उ०—मेक सयत संपल में, पैतीसे जसराज । मैं हरिबाम जिहान तज, हिंदुसयान जिहान ।—रा० क०, पृ० १७ ।

जिहान^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. जाना । गमन । २. पाना । प्राप्त करना [को०] ।

जिहानक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय [को०] ।

जिहालत—संज्ञा स्त्री० [अ० जिहालत] मूर्खता । अज्ञानता

जिहासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्याग करने की इच्छा ।

जिहासु—वि० [सं०] त्याग करने की इच्छा करनेवाला ।

जिहीर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरने की इच्छा । लेने की इच्छा । हरण करने की कामना ।

जिहीर्षु—वि० [सं०] हरण करने की इच्छा रखनेवाला ।

जिहेज—संज्ञा पुं० [अ० जिहेज] दे० 'जहेज' [को०]

जिह्म^१—वि० [सं०] १. वक्र । टेढ़ा । २. दुष्ट । क्रूर प्रकृतिवाला । ३. कुटिल । कपटी । ४. अप्रसन्न । खिन्न । ५. मंद । ६. पीला । पीतवर्ण का [को०] ।

जिह्म^२—संज्ञा पुं० १. तगर का फूल । २. अघर्ष । ३. कपट [को०] । ४. बेईमानी । मिथ्यात्व [को०] ।

जिह्मग^१—वि० [सं०] १. कुटिल गतिवाला । टेढ़ी चाल चलनेवाला । २. मब गति । धीमा । ३. कुटिल । कपटी । चालबाज ।

जिह्मग^२—संज्ञा पुं० साँप ।

जिह्मगति^१—वि० [सं०] टेढ़ा मेढ़ा चलनेवाला [को०] ।

जिह्मगति^२—संज्ञा पुं० साँप [को०] ।

जिह्मगामी—वि० [अ० जिह्मगामिन्] [वि० स्त्री० जिह्मगामिनी] १. टेढ़ा चलनेवाला । २. कुटिल । कपटी । चालबाज । ३. मंदगामी । सुस्त । धीमा ।

जिह्मता—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. टेढ़ापन । वक्रता । २. मंदता । धीमापन । ३. कुटिलता । कपट । चालबाजी ।

जिह्ममेहन—संज्ञा पुं० [सं०] मेढक ।

जिह्मयोधी^१—वि० [अ० जिह्मयोधिन्] कपट युद्ध करनेवाला [को०] ।

जिह्मयोधी^२—संज्ञा पुं० भीम [को०] ।

जिह्मशल्य—संज्ञा पुं० [अ०] खेर । खदिर । कट्या ।

जिह्माक्ष—वि० [सं०] ऐचा ताना [को०] ।

जिह्मित—वि० [सं०] घूमा हुआ । फिरा हुआ । चकित । विस्मित ।

जिह्मोक्त—वि० [सं०] झूठा हुआ । टेढ़ा किया हुआ ।

जिह्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिह्वा ।

विशेष—इसका प्रयोग समस्त पदों में मिलता है । जैसे, द्विजिह्व । २. तगरमूल [को०] ।

जिह्वक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें जीभ में काँटे पड़ जाते हैं, रोगी से स्पष्ट बोला नहीं जाता, जीभ लड़खड़ाती है ।

विशेष—इसकी अवधि १६ दिन की है । इसमें श्वास कास आदि

भी हो जाते हैं । इस रोग में रोगी प्रायः गूँगे या बहरे हो जाते हैं ।

जिह्वल—वि० [सं०] जिभला । चट्ट । चटोरा ।

जिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जीभ । २. भाग की लपट [को०] । ३. वाक्य [को०] ।

जिह्वाम^१—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ की नोक । टूँड ।

मुहा०—जिह्वाम फरना = कठस्थ करना । जबानी याद करना । किसी विषय को इस प्रकार रटना या घोखना कि उसे जब चाहे तब कह डाले । जिह्वाम होना = जबानी याद होना ।

जिह्वाम^२—वि० याद रखनेवाला या वाली (जीभ या ग्रंथ) ।

जिह्वाच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ काटने का दंड ।

विशेष—जो लोग माता, पिता, पुत्र, भाई, आचार्य या तपस्वियों आदि को गाली देते थे उनको यही दंड दिया जाता था ।

जिह्वाजप—संज्ञा पुं० [अ०] तंत्रानुसार एक प्रकार का जप जिसमें जिह्वा हिलने का विधान है ।

जिह्वानिलेखन—संज्ञा पुं० [सं०] जामो [को०] ।

जिह्वानिलेखनिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जिह्वानिलेखन' ।

जिह्वाय—संज्ञा पुं० [सं०] वे पशु जो जीभ से पानी पिया करते हैं । जैसे, कुत्ते, बिल्ली, सिंह आदि ।

जिह्वामल—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ पर बैठा हुआ मूल [को०] ।

जिह्वामूल—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जिह्वामूलीय] जीभ की जड़ या पिछला स्थान ।

जिह्वामूलीय^१—वि० [सं०] जो जिह्वा के मूल से संबंध रखता हो ।

जिह्वामूलीय^२—संज्ञा पुं० वह वर्ण जिसका उच्चारण जिह्वामूल से हो । विशेष—शिक्षा के अनुसार ऐसे वर्ण अथोगवाह होते हैं और वे संज्ञा में दो हैं—क और ख । क और ख के पहले विसर्ग आने से जिह्वामूलीय हो जाते हैं । कोई कोई वैयाकरण कवर्ग मात्र को जिह्वामूलीय मानते हैं ।

जिह्वारद—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी ।

जिह्वारोग—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ का रोग ।

विशेष—सुश्रुत के मत से यह पाँच प्रकार का होता है । तीन प्रकार के कंठक जो वात, पित्त और कफ के प्रकोप से जीभ पर पड़ जाते हैं, चौथा अलास जिसमें जिह्वा के नीचे सूजन हो जाती है और पाँचवाँ उपजिह्विका जिसमें जिह्वा के मूल में सूजन हो जाती है और लार टपकती है । इन पाँचों में अलास असाध्य है । इसमें जीभ के तले की सूजन बढ़कर पक जाती है ।

जिह्वालिह—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता ।

जिह्वालौल्य—संज्ञा पुं० [सं०] चटोरापन । स्वादलोपता [को०] ।

जिह्वाशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] खदिर । खेर का पेड़ । कट्या ।

जिह्वास्तंभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जिह्वारोग जिसमें वायु स्वरवाहिनी नाड़ियों में प्रवेश करके उन्हें स्तंभित कर देता है ।—भाषव, पृ० १४२ ।

जिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीभी ।

जिह्वोल्लेखनिका, जिह्वोल्लेखनी—संज्ञा जी० [सं०] जीमी [की०] ।

जीगना—संज्ञा पु० [सं० जूगण] खद्योत । जुगनू । उ०—बिरह जरी लखि जीगननि कही सुबह के बार । धरी घाट उठि मोतरे बरसति घाज गोगार ।—बिहारी (शब्द०) ।

जी—संज्ञा पु० [सं० जीव] १. मन । दिल । तबीयत । चित्त । उ०—(क) कहत नसाइ होइ हिम नीकी । रीकत राम जानि जन जीकी । मानस, १।२८ । २. हिम्मत । दम । जीवट । ३. संकल्प । विचार । इच्छा । चाह ।

मुहा०—जी भच्छा होना = चित्त स्वस्थ होना । रोग आदि की पीड़ा या बेचैनी न रहना । नीरोग होना । जैसे,—दो तीन दिन तक बुखार रहा, आज जी भच्छा है । किसी पर जी आना = किसी से प्रेम होना । हृदय का किसी के प्रेम में अनुरक्त होना । जी उक्ताना = चित्त का उछाट होना । चित्त न लगना । एक ही अवस्था में बहुत काल तक रहते रहते परिवर्तन के लिये चित्त व्यग्र होना । तबीयत घबराना । जैसे,—तुम्हारी बातें सुनते सुनते तो जी उक्ता गया । जी उचटना = चित्त न लगना । चित्त का प्रवृत्त न होना । मन हटना । किसी कार्य, वस्तु या स्थान आदि से विरक्ति होना । जैसे,—प्रब तो इस काम से मेरा जी उचट गया । जी उठना = दे० 'जी उचटना' । जी उठाना = चित्त हटाना । मन फेर लेना । विरक्त होना । अनुरक्त न रहना । जी उड़ जाना = भय, आशंका आदि से चित्त सहसा व्यग्र हो जाना । चित्त चंचल हो जाना । धैर्य जाता रहना । जी में घबराहट होना । जैसे,—उसकी बीमारी का हाल सुनते ही मेरा तो जी उड़ गया । जी उदास होना = चित्त खिन्न होना । जी उलट जाना = (१) मन का वश में न रहना । चित्त चंचल और अव्यवस्थित हो जाना । चित्त विक्षिप्त हो जाना । होश हवास जाता रहना । (२) मन फिर जाना चित्त विरक्त होना । जी करना = (१) हिम्मत करना । होसला करना । साहस करना (२) जी चाहना । इच्छा होना । जैसे,—प्रब तो जी करता है कि यहाँ से चल दें । जी कांपना = भय आशंका आदि से कलेजा धक धक करना । हृदय धराना । डर लगना । जैसे,—वहाँ जाने का नाम सुनते ही जी कांपता है । जी का बुखार निकालना = हृदय का उद्वेग बाहर करना । क्रोध, शोक, दुःख आदि के वेग को रो कलपकर या बक भककर शांत करना । ऐसे क्रोध या दुःख को शब्दों द्वारा प्रकट करना जो बहुत दिनों से चित्त को संतप्त करता रहा हो । जी का बोझ या भार हलका होना = ऐसी बात का दूर होना जिसकी चिंता चित्त में बराबर रहती आई हो । खटका मिटना । चिंता दूर होना । जी का अमान माँगना = प्राण रक्षा की प्रतिज्ञा की प्रार्थना करना । किसी काम के करने या किसी बात के कहने के पहले उस मनुष्य से प्राणरक्षा करने या अपराध क्षमा करने की प्रार्थना करना जिसके विषय में यह निश्चय हो कि उसे उस काम के होने या उस बात को सुनने से अवश्य दुःख पहुँचेगा । जैसे,—यदि किसी राजा से कोई अप्रिय बात करनी हुई तो लोग पहले यह कह लेते हैं कि 'जी का अमान पाऊँ तो कहूँ' । जी का आ लगना = प्राणों पर आ

बनना । प्राण बचाना कठिन हो जाना । ऐसे भारी झंझट या संकट में फँस जाना कि पीछा छुड़ाना कठिन हो जाय । जी की निकालना = (१) मन की उमंग पूरी करना । दिल की हवस निकालना । मनोरथ पूरा करना । (२) हृदय का उदगार निकालना । क्रोध, दुःख, द्वेष आदि उद्वेग को बक भक कर शांत करना । बदला लेने की इच्छा पूरी करना । जी का जी में रहना = मनोरथों का पूरा न होना । मन में ठानी, सोची या चाही हुई बातों का न होना । जी की पड़ना = प्राण बचाने की चिंता होना । प्राण बचाना कठिन हो जाना । ऐसे भारी झंझट या संकट में फँस जाना कि पीछा छुड़ाना कठिन हो जाय । उ०—सब असबाब दाढ़ो मैं न काढ़ो तैन काढ़ो तैन काढ़ो जिय की परी सभारे सहन भंडार को ।—तुलसी (शब्द०) । जी का = जीवटवाला । जिगरेवाला । साहसी । हिम्मतवर । दमदार । उ०—घनी धरनी के नीके आपुनी घनी के सग घाबै जुरि जी के मो नजीके गरजी के सों ।—गोपाल (शब्द०) । (किसी के) जी को समझना = किसी के विषय में यह समझना कि वह भी जीव है, उसे भी कष्ट होगा । दूसरे के कष्ट को समझना । दूसरे को क्लेश न पहुँचाना । दूसरे पर दया करना । जी को मारना = (१) मन की इच्छाओं को रोकना । चित्त के उत्साहों को न पूरा करना । (२) मतोष धारण करना । जी को न लगना = (१) चित्त में अनुभव होना । हृदय में वेदना होना । सहानुभूति होना । जैसे—दूसरों की पीड़ा आदि किसी के जी को नहीं लगती । (२) प्रिय लगना । भाना । भच्छा लगना । जी खटकना = (१) चित्त में खटका या सदेह उत्पन्न होना । (२) हानि आदि की आशंका से (किसी काम के करने से) जी हिचकना । (किसी से या किसी ओर से) जी खट्टा करना = मन फेर देना । चित्त में घृणा या विरक्ति उत्पन्न कर देना । चित्त विरक्त करना । हृदय में दुर्भाव उत्पन्न करना । जैसे,—तुम्हीं ने मेरी ओर से उनका जी खट्टा कर दिया है । (किसी से या किसी ओर से) जी खट्टा होना = चित्त हट जाना । मन फिर जाना या विरक्त होना । अनुराग न रहना । घृणा होना । जैसे,—उसी एक बात से उनकी ओर से मेरा जी खट्टा हो गया । जी खपाना = (१) चित्त तन्मय करना । (किसी काम में) जी लगाना । नितात इत्त-चित्त होना । जी तोड़कर किसी काम में लग जाना । (२) प्राण देना । अत्यंत कष्ट उठाना । जी खुलना = संकोच छूट जाना । षडक खुल जाना । किसी काम के करने में हिचक न रह जाना । जी खोलकर = (१) बिना किसी संकोच के । बिना किसी प्रकार के भय या लज्जा के । बिना हिचके । बेधड़क । जैसे,—जो कुछ तुम्हें कहना हो, जी खोलकर कहो । (२) जितना जी चाहे । बिना अपनी ओर से कोई कमी किए । मनमाना । यथेष्ट । जैसे,—तुम हमें जी खोलकर गालियाँ दो, चिंता नहीं । जी रँवाना = प्राण देना । जान खोना । जी गिरा जाना = जी बैठ जाना । तबीयत सुस्त होती जाना । शिथिलता आती जाना । जी घबराना = (१) चित्त व्याकुल होना । मन व्यग्र होना । (२) मन न लगना । जी ऊबना । जी चलना =

(१) जी चाहना । इच्छा होना । (२) जी घाना । चित्त मोहित होना । जी चला = (१) बोर । दिलेर । बहादुर । शूर । शूरमा । (२) दानवीर । दाता । दानी । उदार । दान-शूर । (३) रसिक । सहृदय । जी चलाना = (१) इच्छा करना । मन दोड़ाना । चाह करना । (२) हिम्मत बाँधना । साहस करना । होसला बढ़ाना । जी चाहना = मनोभिन्नाय होना । मन चलना । इच्छा होना । जी चाहे = यदि इच्छा हो । यदि मन में भावे । जी चुराना = किसी काम या बात से बचने के लिये होला हवाली करना या युक्ति रचना । किसी काम से भागना । जैसे,—यह नौकर काम से जी चुराता है । जी छुपाना = (१) दे० 'जी चुराना' । जी छुटना = (१) हृदय की दृढ़ता न रहना । साहस दूर होना । ना उम्मेदी होना । उत्साह जाता रहना । (२) पकावट घाना । शिथिलता घाना । जी छोटा करना = (१) हृदय का उत्साह कम करना । (२) हृदय संकुचित करना । मन उदास करना । दान देने का साहस कम करना । उदारता छोड़ना । कंजूसी करना । जी छोड़ना = (१) प्राण त्याग करना । (२) हृदय की दृढ़ता खोना । साहस गँवाना । हिम्मत हारना । जी छोड़कर भागना = हिम्मत हारकर बड़े वेग से भागना । एकदम भागना । ऐसा भागना कि दम लेने के लिये भी न ठहरना । जी जलना = (१) चित्त संतप्त होना । हृदय में संताप होना । चित्त में कुड़न और दुःख होना । क्रोध घाना । गुस्सा लगना । (१) ईर्ष्या होना । डाह होना । जी जलाना = (१) चित्त संतप्त करना । हृदय में क्रोध उत्पन्न करना । कुड़ाना । चिड़ाना । (२) हृदय में दुःख उत्पन्न करना । रंज पहुँचाना । दुःखी करना । चित्त व्यथित करना । सताना । (३) ईर्ष्या या डाह उत्पन्न करना । जी जानता है = हृदय ही अनुभव करता है, कहा नहीं जा सकता । सही हुई कठिनाई, दुःख या पीड़ा वर्णन के बाहर है । जैसे,—(क) मार्ग में जो जी कष्ट हुए कि उसे जी ही जानता होगा । ('जी जानता होगा' भी बोला जाता है ।) जी जान से लगना = हृदय से प्रयुक्त होना । सारा ध्यान लगा देना । एकाग्र चित्त होकर तत्पर होना । जैसे,—वह जी जान से इस काम में लगा है । किसी को जी जान से लगी है = कोई हृदय से तत्पर है । किसी की धोर इच्छा या प्रयत्न है । कोई सारा ध्यान लगाकर उद्यत है । कोई बराबर इसी चित्त और उद्योग में है । जैसे,—उस जी जान से लगी है कि मकान बन जाय । जी जान लड़ाना = मन लगाना । दत्त चित्त होना । जी जुगोना = (१) किसी तरह प्राणरक्षा करना । कठिनाई से दिन बिताना । जैसे तैसे दिन काटना । (२) बचना । अलग रहना । तटस्थ रहना या होना । जी जोड़ना = (१) हिम्मत बाँधना या करना । (२) तैयार होना । उद्यत होना । जी टेंगा रहना या होना = चित्त में ध्यान या चिन्ता रहना । जी में खटका बना रहना । चित्त चिंतित रहना । जैसे,—(क) जब तक तुम नहीं प्राप्तिोगे, मेरा जी टेंगा रहेगा । (ख) उसका कोई पत्र नहीं आया, जी टेंगा है । जी टूट जाना = उत्साह भंग

हो जाना । उमंग या होसला न रह जाना । निराश्व होना । उदासीनता होना । जैसे,—उनकी बातों से हमारा जी टूट गया, अब कुछ न करेंगे । जी ठंडा होना = (१) चित्त शांत और संतुष्ट होना । अभिलाषा पूरी होने से हृदय प्रफुल्लित होना । चित्त में संतोष और प्रसन्नता होना । जैसे,—वह यहाँ से निकाल दिया गया; अब तो तुम्हारा जी ठंडा हुआ ? जी ठुकना = (१) मन को संतोष होना । चित्त स्थिर होना । (२) चित्त में दृढ़ता होना । साहस होना । हिम्मत बाँधना । दे० 'छाती ठुकना' । जी डरना = शंका या आशंका होना । भय होना । जी डालना = (१) शरीर में प्राण डालना । जीवित करना । (२) प्राणरक्षा करना । मरने से बचाना । (३) हृदय मिलाना । प्रेम करना । (४) उत्साहित करना । बढ़ावा देना । जी डूबना = (१) बेहोशी होना । मूर्च्छा घाना । चित्त विह्वल होना । (२) चित्त स्थिर न रहना । घबराहट और बेचैनी होना । चित्त व्याकुल होना । जी डोलना = (१) विचलित होना । चंचल होना । (२) लुब्ध होना । अनुरक्त होना । (३) मन न करना । न चाहना । जी दहा जाना = दे० 'जी बैठ जाना' । जी तपना = चित्त क्रोध से संतप्त होना । जी जलना, क्रोध चढ़ना । उ०—मुनि गज सह अधिक जिउ तपा । सिंह जात कहुँ रह नहि छपा । —जायसी (शब्द०) । जी तरसना = किसी वस्तु या बात के अभाव से चित्त व्याकुल होना । किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये चित्त अधीर या दुःखी होना । किसी बात की इच्छा पूरी न होने का कष्ट होना । जैसे,—(क) तुम्हारे दर्शन के लिये जी तरसता था । (ख) जब तक बंगाल में थे, रोटी के लिये जी तरस गया । जी तोड़ काम, परिश्रम या मिहनत करना = जान की बाजी लगाकर किसी काम को करना । जी तोड़ना = (१) दिल तोड़ना । निराश करना । हतोत्साह करना । (२) पूरी शक्ति से काम करना । काम करने में कुछ भी न उठा रखना । जी दहलना = भय या आशंका से चित्त डीवाडोल होना । डर से हृदय काँपना । डर के मारे जी ठिकाने न रहना । अत्यंत भय लगना । जी-दान = प्राण दान । प्राणरक्षा । जी दार = जीवटवाला । दृढ़ हृदय का । साहसी । हिम्मतवर । बहादुर । कड़े दिल का । जी दुखना = चित्त को कष्ट पहुँचाना । हृदय में दुःख होना । जैसे,—ऐसी बात क्यों बोलते हो जिससे किसी का जी दुखे । जी दुखाना = चित्त व्यथित करना । हृदय को कष्ट पहुँचाना । दुःख देना । सताना । जैसे,—व्यर्थ किसी का जी दुखाने से क्या लाभ ? जी देना = (१) प्राण खोना । मरना । (२) दूसरे की प्रसन्नता या रक्षा के लिये प्राण देने को प्रस्तुत रहना । (३) प्राण से बढ़कर प्रिय समझना । अत्यंत प्रेम करना । जैसे,—वह तुम पर जी देता है और तुम उससे भगे फिरते हो । जी दीड़ना = मन चलना । इच्छा होना । लालसा होना । जी घँसा जाना = दे० 'जी बैठ जाना' । जी धड़कना = (१) भय या आशंका से चित्त स्थिर न रहना । कलेजा धक धक करना । डर के मारे हृदय में घबराहट होना । डर लगाना । (२) चित्त में दृढ़ता न होना । साहस न पड़ना । हिम्मत न पड़ना । जैसे,—चार पैसे पास से निकालते जी धड़-

कता है। जी धक्कधक्क करना = कलेजे का मय आदि के भावेग से जोर जोर से उछलना। जी धक्कना = डर लगना। जी धक्कधक्क होना = १० 'जी धक्कधक्क करना'। जी निकलना = (१) प्राण छूटना। प्राण निकलना। मृत्यु होना। (२) चित्त व्याकुल होना। डर लगना। प्राण सूखना। जैसे,—अब तो उधर जाते इसका जी निकलता है। (३) प्राणांत कष्ट होना। कष्टबोध होना। जैसे,—तुम्हारा रूपया तो नहीं जाता है, तुम्हारा क्यों जी निकलता है? जी निठाल होना = चित्त का स्थिर न रहना। चित्त ठिकाने न रहना। चित्त विह्वल होना। हृदय व्याकुल होना। जी पक जाना = किसी अप्रिय बात को नित्य देखते देखते या सुनते सुनते चित्त दुखी हो जाना। किसी बार बार होने-वाली बात का चित्त को असह्य हो जाना। और अधिक सुनने का साहस चित्त में न रहना। जैसे,—नित्य तुम्हारी जली कटी बातें सुनते सुनते जी पक गया। जी पड़ना = (१) शरीर में प्राण का संचार होना। जैसे—गर्भ के बालक को जी पड़ना। (२) मृतक के शरीर में प्राण का संचार होगा। मरे हुए में जान आना। जी पकड़ लेना = कलेजा धामना। किसी असह्य दुःख के वेग को दबाने के लिये हृदय पर हाथ रख लेना। जी पकड़ा जाना = मन में संदेह पड़ जाना। माया ठनकना। कोई भारी खटका पैदा हो जाना। चित्त में कोई भारी आशंका उठना। (स्त्रि०)। जैसे,—तार घाते हो मेरा तो जी पकड़ा गया। जी पर घा बनना = प्राणों पर घा बनना। प्राण बचाना कठिन हो जाना। ऐसे भारी संकट या भ्रम में फँस जाना कि पीछा छोड़ना कठिन हो जाय। जी पर खेचना = प्राण को संकट में डालना। जान को आफत में डालना। जान पर जोखों उठाना। ऐसा काम करना जिसमें जान जाने का भय हो। जी पानी करना = (१) लहू पानी एक करना। प्राण देने और लेने की नीबत लाना। भारी आपत्ति खड़ी करना। (२) चित्त कोमल या दयार्द्र करना। जी पानी होना = चित्त कोमल या दयार्द्र होना। जी पिघलना = (१) दया से हृदय द्रवित होना। चित्त का दयार्द्र होना। (२) हृदय का प्रेमार्द्र होना। चित्त में स्नेह का संचार होना। जी पीछे पड़ना = दिल बहलना। चित्त बँटना। मन का किसी ओर बँट जाना जिसमें दुःख की बात कुछ भूल जाय। (स्त्री०) जी फट जाना = हृदय मिला न रहना। चित्त में पहले का सा सद्भाव या प्रेमभाव न रह जाना। प्रीति भंग होना। प्रेम में अंतर पड़ जाना। चित्त विरक्त होना। किसी की ओर से चित्त खिन्न हो जाना। जी फिर जाना = मन हट जाना। चित्त विरक्त हो जाना। चित्त अनुरक्त न रहना। हृदय में घृणा या अरुचि उत्पन्न हो जाना। जैसे,—जब किसी ओर से जी फिर जाता है तब फिर वह बात नहीं रह जाती। जी फिसलना = चित्त का किसी की ओर) आकर्षित होना। मन खिचना। हृदय अनुरक्त होना। मन मोहित होना। मन लुभाना। जी फोका होना = १० 'जी खट्टा होना'। जी बँटना = (१) चित्त का किसी ओर इस प्रकार लग जाना कि किसी प्रकार की

दुःख या चिंता की बात भूल जाय। जी बहलाना। (२) चित्त का एकाग्र न रहना। चित्त का एक विषय में पूर्ण रूप से न लगा रहना, दूसरी बातों की ओर भी वसा जाना। ध्यान स्थिर न रहना। ध्यान भंग होना। मन उचटना। जैसे,—काम करते समय यदि कोई कुछ बोलने लगता है तो जी बँट जाता है। (३) एकाग्र प्रेम न रहना। एक व्यक्ति के प्रतिरिक्त दूसरे व्यक्ति से भी प्रेम हो जाना। अनन्य प्रेम न रहना। जी बंद होना = १० 'जी फिरना'। जी बढ़ना = (१) चित्त प्रसन्न या उत्साहित होना। हीसला बढ़ना। (२) साहस बढ़ना। हिम्मत आना। जी बढ़ाना = (१) उत्साह नढ़ाना। किसी विषय में प्रवृत्त करने के लिये उत्तेजित करना। प्रशंसा पुरस्कार आदि द्वारा किसी काम में रुचि उत्पन्न करना। हीमला बढ़ाना। जैसे,—सड़कों का जी बढ़ाने के लिये इनाम दिया जाता है। (२) किसी कार्य की सफलता की आशा बँधाकर अधिक उत्साह उत्पन्न करना। किसी कार्य में होनेवाली बाधा या कठिनाई के दूर होने का निश्चय दिलाकर उसकी ओर अधिक प्रवृत्ति उत्पन्न करना। साहस दिलाना। हिम्मत बँधाना। जी बहलना = (१) चित्त का किसी विषय में लगकर आनंद अनुभव करना। चित्त का आनंदपूर्वक लीन होना। मनोरंजन होना। जैसे,—चोड़ी देर तक खेलने से जी बहल जाता है। (२) चित्त के किसी विषय में लग जाने से दुःख या चिंता की बात भूल जाना। जैसे,—मित्रों के यहाँ आ जाने से कुछ जी बहल जाता है नहीं तो दिन रात उस बात का दुःख बना रहता है। जी बहलाना = (१) रुचि के अनुकूल किसी विषय में लगकर आनंद अनुभव करना। मनोरंजन करना। जैसे,—कभी कभी जी बहलाने के लिये ताश भी खेल लेते हैं। (२) चित्त को किसी ओर लगाकर दुःख या चिंता की बात भूल जाना। जी दिखरना = (१) चित्त ठिकाने न रहना। मन विह्वल होना। (२) मूर्च्छा होना। बेहोशी होना। जी बिगड़ना = (१) जी मचलाना। मतली छूटना। कै करने की इच्छा होना। (२) भटकना। घृणा करना। घिन मालूम होना। जी बुरा करना = कै करना। उलटी करना। बमन करना। (किसी की ओर से) जी बुरा करना = किसी के प्रति अछछा भाव न रखना। किसी के प्रति बुरी धारणा रखना। किसी के प्रति घृणा या क्रोध करना। (किसी की ओर से दूसरे का) जी बुरा करना = (१) दूसरे का ख्याल खराब करना। बुरी धारणा उत्पन्न करना। (२) क्रोध, घृणा या दुर्भाव उत्पन्न करना। जी बुरा होना = (१) कै होना। उलटी होना। (२) ख्याल खराब होना। (३) चित्त में दुर्भाव या घृणा उत्पन्न होना। जी बैठ जाना = (१) चित्त विह्वल होना जाना। चित्त ठिकाने न रहना। चेतन्य न रहना। मूर्च्छा सी आना। जैसे,—आज न जाने क्यों बड़ी कमजोरी जान पड़ती है ओर जी बैठा जाता है। (२) मन भरना। उदासी होना। जी भटकना = चित्त में घृणा होना। घिन मालूम होना। जी भरना (क्रि० प्र०) = (१) चित्त तुष्ट होना। तुष्टि होना। तृप्ति होना। मन अधाना। और अधिक

की इच्छा न रह जाना। जैसे,—(क) जब जी भर गया और न खाएँगे। (ख) तुम्हारी बातों से ही जी भर गया, जब जाते हैं। (ग) मन की अभिलाषा पूरी होने से प्रानन्द और संतोष होना। जैसे,—लो, मैं, आज यहाँ से चला जाता हूँ, जब तो तुम्हारा जी भरा। (३) रुचि के अनुकूल होना। मन में धृष्टा न होना। जैसे,—ऐसे गंदे बरतन में पानी पीते हो, न जाने कैसे तुम्हारा जी भरता है। जी भरकर = जितना और जहाँ तक जी चाहे। मनमाना। यथेष्ट। जैसे,—तुम हमें जी भरकर गालियाँ दो, कोई परवाह नहीं। जी भरना (क्रि० सं०) = चित्त विश्वासपूर्वक करना। चित्त से किसी बात की बुराई या खोसा आदि खाने की प्रार्थना दूर करना। खटका मिटाना। इतमीनान करना। दिलजमई करना। जैसे,—यों तो बोझ में कोई ऐब नहीं है पर आप दस आदमियों से पूछकर अपना जी भर लीजिए। जी भर आना = हृदय का कण्ठा या शोक के आवेग से पूर्ण होना। चित्त में दुःख या कण्ठा का उद्रेक होना। दुःख या दया उमड़ना। हृदय में इतने दुःख या दया का वेग उठना कि प्राणों में घाँस आ जाय। हृदय का कण्ठा में बिह्वल होना। जी भरभरा उठना = रोमांच होना। हृदय के किसी प्राकृतिक आवेग से चित्त का बिह्वल हो जाना। (घपना) जी भारी करना = चित्त खिन्न या दुखी करना। जी भारी होना = तबीयत अच्छी न होना। किसी रोग या पीड़ा आदि के कारण मुस्ती जान पड़ना। गरीब अच्छा न रहना। जी भुरभुराना = किसी की ओर चित्त आकर्षित होना। मन लुभाना। मन मोहित होना। जी मचलना = किसी वस्तु या व्यक्ति की ओर आकृष्ट होना। जी मचलाना = १० 'जी मतलाना'। जी मचलाना = चित्त में उलटी या कै करने की इच्छा होना। वमन करने को जी चाहना। जी मर जाना = मन में उमंग न रह जाना। हृदय का उत्साह नष्ट होना। मन उदास हो जाना। जी मलमलाना = चित्त में दुःख या पछतावा होना। अफमोस होना। जैसे,—गाँठ के चार पैसे निकालते जी मलमलाता है। जी मारना (१) चित्त की उमंग को रोकना। हृदय का उत्साह नष्ट करना। (२) संतोष धारण करना। मग्न करना। जी मचलाना = २० 'जी मतलाना'। (किसी से) जी मिलना = चित्त के भाव का परस्पर समान होना। हृदय का भाव एक होना। समान प्रवृत्ति होना। एक मनुष्य के भावों का दूसरे मनुष्य के भावों के अनुकूल होना। चित्त पटना। जी में आना = (१) मन में भाव उठना। चित्त में विचार उत्पन्न होना। (२) मन में इच्छा होना। जी चाहना इरादा होना। संकल्प होना। जैसे,—तुम्हारे जो जी में आवे, करो। जी में घर करना = (१) मन में स्थान करना। हृदय में किसी का ध्यान बना रहना। (२) याद रहना। कोई बात या व्यवहार मन में बराबर रहना। जी में गड़ना या खुभना = (१) चित्त में जम जाना। हृदय में गहरा प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) हृदय में प्रकृत हो जाना। चित्त में ध्यान बना रहना। उ०—माधव मूर्ति जी में खुभी।—

सूर (शब्द०)। जी में जलना = (१) हृदय में क्रोध के कारण संताप होना। मन में कुड़ना। मन ही मन ईर्ष्या करना। डाह करना। जी में जी आना = चित्त ठिकाने होना। चित्त की घबराहट दूर होना। चित्त शांत और स्थिर होना। चित्त की चिंता या व्यग्रता दूर होना। किसी बात की प्रार्थना या भय मिट जाना। जैसे, जब वह उम स्थान से सकुशल लौट आया तब मेरे जी में जी आया। जी में जी डालना = (१) चित्त संतुष्ट और स्थिर करना। चित्त का खटका दूर करना। चिंता मिटाना। (२) विश्वास दिलाना। इतमीनान करना। दिलजमई करना। जी में डालना = मन में विचार लाना। सोचना। जैसे,—तुम्हारे साथ कोई बुराई कहेगा ऐसी बात कभी जी में न डालना। जी में घरना = (१) मन में लाना। चित्त में किसी बात का इसलिये ध्यान बनाए रहना जिसमें प्रागे चलकर कोई उसके अनुसार कार्य करे। क्याल करना। (२) मन में बुरा मानना। नाराज होना। बैर रखना। जी में पैठना = (१) चित्त में जम जाना। हृदय पर गहरा प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) ध्यान में प्रकृत होना। बराबर ध्यान में बना रहना। चित्त से न हटना या भूतना। जी में बैठना = (१) मन में स्थिर होना। चित्त में निश्चय होना। चित्त में निश्चित धारणा होना। मन में सत्य प्रतीत होना। जैसे,—उन्होंने जो बातें कही वे मेरे जी में बैठ गईं। (२) हृदय पर गहरा प्रभाव करना। (३) हृदय में प्रकृत हो जाना। ध्यान में बराबर बना रहना। जी में रखना = (१) चित्त में विचार धारण करना। ध्यान बनाए रखना जिसमें प्रागे चलकर उसके अनुसार कोई कार्य करे। (२) मन में बुरा मानना। बैर रखना। द्वेष रखना। कीना रखना। जैसे,—उसे चाहे जो कहो वह कोई बात जी में नहीं रखता। (३) हृदय में गुम रखना। हृदय के भाव को बाहर न प्रकट करना। मन में लिए रहना। जैसे,—इस बात को जी में रखो, किसी से कहो मत। (किसी का) जी रखना = (किसी का) मन रखना। किसी के मन की बात होने देना। मन की अभिलाषा पूरी करना। इच्छा पूरी करना। उत्साह भंग न करना। प्रसन्न करना। संतुष्ट करना। जैसे,—जब वह बार बार इसके लिये कहता है तो उसका जी रख दो। जी रकना = (१) जी घबराना। (२) जी हिलकना। चित्त प्रवृत्त न होना। जी लगना = चित्त तत्पर होना। मन का किसी विषय में योग देना। चित्त प्रवृत्त होना। दत्तचित्त होना। जैसे,—पढ़ने में उसका जी नहीं लगता। (किसी से) जी लगाना = चित्त का प्रेमासक्त होना। किसी से प्रेम होना। जी लगाना = चित्त तत्पर करना। किसी काम में दत्तचित्त बनना। जी लगा रहना या लगा होना = (१) चित्त में ध्यान बना रहना। (२) जी में खटका लगा रहना। चित्त चिंतित रहना या होना। जैसे,—बहुत दिनों से कोई पत्र नहीं आया, जो लगा है। (किसी से) जी लगाना = किसी से प्रेम करना। जी लटना = पस्त होना। हिम्मत टूटना। उ०—इस

जगत का जीव वह है ही नहीं। लुट गए धन जी लटा जिसका नहीं।—बोले०, पृ० २२। जी लड़ाना = (१) प्राण जाने की भी परवाह न करके किसी विषय में तत्पर होना। (२) मन का पूर्ण रूप से योग देना। पूरा ध्यान देना। सारा ध्यान लगा देना। जी तरजना = दे० 'जी काँपना'। जी ललचना = (१) जी में लालच होना। चित्त में किसी बात के लिये प्रबल इच्छा होना। किसी वस्तु की प्राप्ति आदि की गहरी लालसा होना। (२) किसी चीज के पाने के लिये तरसना। जैसे,—वहाँ की सुंदर सुंदर वस्तुओं को देखकर जी ललच गया। (३) चित्त आकर्षित होना। मन लुभाना। मन मोहित होना। जी ललचाना = (१) (क्रि० प्र०) दे० 'जी ललचना'। (२) (क्रि० सं०) दूसरे के चित्त में लालच उत्पन्न करना। किसी बात के लिये प्रबल इच्छा उत्पन्न करना। किसी वस्तु के लिये जी तरसाना। जैसे,—दूर से दिखाकर क्यों उसका जी ललचाते हो, देना हो तो दे दो। (३) मन लुभाना। मन मोहित करना। जी लुटना = मन मोहित होना। मन मुग्ध होना। हृदय प्रेमासक्त होना। जी लुभाना = (१) (क्रि० सं०) चित्त आकर्षित करना। मन मोहित करना। हृदय में प्रीति उपजाना। सौंदर्य आदि गुणों के द्वारा मन लीचना। (२) (क्रि० प्र०) चित्त आकर्षित होना। मन मोहित होना जैसे,—उसे देखते ही जी लुभा जाता है। जी लुटना = मन मोहित करना। जी लेना = जी चाहना। जी करना। चित्त का इच्छुक होना। जैसे,—वहाँ जाने के लिये हमारा जी नहीं लेता। (दूसरे का) जी लेना = प्राण हरण करना। मार डालना। जी छोटाना = जी छटपटाना। किसी वस्तु की प्राप्ति या और किसी बात के लिये चित्त व्याकुल होना। चित्त का अत्यंत इच्छुक होना। ऐसी इच्छा होना कि रहा न जाय। जी सन हो जाना = भय, आशंका आदि से चित्त स्तब्ध हो जाना। जी घबरा जाना। डर के मारे चित्त ठिकाने न रहना। होश उड़ जाना। जैसे,—उसे सामने देखते ही जी सन हो गया। जी सनसाना = (१) चित्त स्तब्ध होना। भय, आशंका, क्षीणता आदि से शरीर की गति शिथिल हो जाना। (२) चित्त विह्वल होना। जी सौंय सौंय करना = दे० 'जी सनसाना'। जी से = जी लगाकर। ध्यान देकर। पूर्ण रूप से। दत्तचित्त होकर। जैसे,—जी से जो काम किया जायगा वह क्यों न अच्छा होगा। (किसी वस्तु या व्यक्ति का) जी से उतर जाना = दृष्टि से गिर जाना। (किसी वस्तु या व्यक्ति की) इच्छा या चाह न रह जाना। किसी व्यक्ति पर स्नेह या श्रद्धा न रह जाना। (किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति) चित्त में विरक्त हो जाना। भला न जँचना। हेय या तुच्छ हो जाना। बेकबर हो जाना। जी से उतारना या जी से छतार देना = किसी वस्तु या व्यक्ति की उपेक्षा या अवहेलना करना। कदर न करना। जी से जाना = प्राणविहीन होना। मरना। जान लो बैठना। जैसे,—बकरी अपने जी से गई, खानेवाले को स्वाद ही न मिला। जी से जी

जिलना। (१) हृदय के भाव परस्पर एक होना = एक के चित्त का दूसरे के चित्त के अनुकूल होना। मैत्री का व्यवहार होना। (२) चित्त में एक दूसरे से प्रेम होना। परस्पर प्रीति होना। (किसी व्यक्ति या वस्तु से) जी हट जाना = चित्त प्रवृत्त या अनुरक्त न रह जाना। इच्छा या चाह न रह जाना। जैसे,—(क) ऐसे कामों से अब हमारा जी हट गया। (ख) उससे मेरा जी एकदम हट गया। जी हवा हो जाना = किसी भय, दुःख या शोक के सहमा उपस्थित होने पर चित्त स्तब्ध हो जाना। चित्त विह्वल हो जाना। जी घबरा जाना। चित्त व्याकुल हो जाना। (किसी का) जी हाथ में रखना = (१) किसी का भाव अपने प्रति अच्छा रखना। राजी रखना। मन मिला न होने देना। (२) जी में किसी प्रकार का खटका पैदा न होने देना। दिलासा दिए रहना। जी हाथ में लेना = दे० 'जी हाथ में रखना'। जी हारना = (१) किसी काम से घबराना या ऊब जाना। हैरान होना। पस्त होना। (२) हिम्मत हारना। साहस छोड़ना। जी हिलना = (१) भय से हृदय काँपना। जी बहलना। (२) करुणा से हृदय धुंध होना। दया से चित्त उद्विग्न होना।

जी^२—अव्य० [सं० जित् प्रा० जिव (= विजयो) या सं० (श्री) युत् प्रा० जुक, हि० जू] एक संमानसूचक शब्द जो किसी नाम या शब्द के आगे लगाया जाता है अथवा किसी बड़े के कथन, प्रश्न या संबोधन के उत्तर रूप में जो संक्षिप्त प्रतिसंबोधन होता है उसमें प्रयुक्त होता है। जैसे,—(क) श्री रामचंद्र जी, पंडितजी, पिपाठी जी, लाला जी इत्यादि। (ख) कथन—ये ग्राम कैसे मीठे हैं। उत्तर—जी हाँ। वेशक। (ग) तुम वहाँ गए थे या नहीं? उत्तर—जी नहीं। (घ) किसी ने पुकारा—रामदास? उत्तर—जी हाँ? (या केवल) जी।

विशेष—प्रश्न या संबोधन में जी का प्रयोग बड़ों के लिये नहीं होता। जैसे किसी बड़े के प्रति यह नहीं कहा जाता कि (क) क्यों जी! तुम कहाँ थे? अथवा (ख) देखो जी! यह जाने न पावे। स्वीकार करने या हामी भरने के अर्थ में 'जी हाँ' के स्थान पर केवल 'जी' बोलते हैं, जैसे, प्रश्न—तुम वहाँ गए थे? उत्तर—जी! (अर्थात् हाँ)। उच्चारण भेद के कारण जी से तात्पर्य पुनः कहने के लिये होता है। जैसे,—किसी ने पूछा—तुम कहाँ जा रहे हो? उत्तर मिला 'जी'? अर्थ से स्पष्ट है कि श्रोता पुनः सुनना चाहता है कि उससे क्या कहा गया है।

जी^३—नि० [अ० जी] वाला। सहित। युक्त [को०]।

जी^४—जीशऊर = शऊरवाला। तमीजदार। (२) समझदार। जीशान = शानवाला।

जीअ^५—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जी', 'जीव'।

जीअन^६—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जीवन'।

जीब^७—संज्ञा पु० [सं० जीव] दे० 'जीव'।

जीऊ^८—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जिउ'। उ०—बिभु जल मीन तपी तस जीऊ। चात्रिक भई कहत पिउ पीऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३३४।

जीकाद—संज्ञा पुं० [घ० जीकाद] हिजरी सन् के ग्यारहवें महीने का नाम [को०] ।

जीको^④—सर्व० [हि०] जिसका । उ०—ताहि जतावत मरम हिये को निपट मन मिली जीको ।—घनानंद, पृ० ४६४ ।

जीगन^④—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिरिज्जण, देशी जोइंगण, हि० जीगन] दे० 'जुगनू' । उ०—बिरह जरी लखि जीगननु कही न उहि के बार । धरी घाउ भजि भीतरी बरसतु भाज भंगार ।—बिहारी (शब्द०) ।

जीगा—संज्ञा पुं० [फा० जीगह] १. तुरी । सिरपेच । कलेंगी । २. पगड़ी में बांधने का एक रत्नजटित आभूषण (को०) । ३. कोलाहल । शोर (को०) ।

जीजा—संज्ञा पुं० [हि० जीजी] बड़ी बहिन का पति । बड़ा बहनोई ।

जीजी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी, हि० देई, प्रा० दीदी अथवा देश० (= बड़ी बहिन)] उ०—कीजै कहा जीजी नू ! सुमित्रा परि पायें कहै तुलसी सहजै बिधि सोई सहियतु है ।—तुलसी (शब्द०) ।

जीजूराना—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिट्ठिया का नाम ।

जीटा—संज्ञा स्त्री० [हि०] डींग । संबी चौकी बात ।

मुहा०—जीट उड़ाना= डींग हलकना उ०—अपनी सहसिलदारी की ऐसी जीट उड़ाई कि रानी की सुख हो गई ।—काया, पृ० ५८ । जीट मारना= दे० 'गप मारना' ।

जीण^④—संज्ञा पुं० [सं० जीवन] जीवन । उ०—सरसति सामणी तू जग जीण । हंस चढ़ी लटकाव बीण ।—बी०, रासो, पृ० ४ ।

जीत^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जिति, वैदिक जीति] १. युद्ध या लड़ाई में विपक्षी के विरुद्ध सफलता । जय । विजय । फतह ।
क्रि० प्र०—होना ।

२. किसी ऐसे कार्य में सफलता जिमें दो या अधिक विरुद्ध पक्ष हो । जैसे, मुकदमे में जीत, खेल में जीत, बाजी में जीत । ३. लाभ । फायदा । जैसे,—तुम्हारी तो हर तरह से जीत है, इधर से भी, उधर से भी ।

जीत^२—संज्ञा स्त्री० [?] जहाज में पाल का बुताम ।—(लण०) ।

जीत^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जीति' ।

जीतनहार—वि० [हि० जीतना + हार (प्रत्य०)] जीतनेवाला । विजय करनेवाला । उ०—क्यों न फिर सब जगत में करत दिगिबिभार । जाके हन सामंत हैं कुवलय जीतनहार ।—मति० प्र०, पृ० ३६६ ।

जीतना—क्रि० सं० [हि० जीत + ना (प्रत्य०)] १. युद्ध या लड़ाई में विपक्षी के विरुद्ध सफलता प्राप्त करना । शत्रु को हराना । विजय प्राप्त करना । जैसे, लड़ाई जीतना, शत्रु को जीतना । उ०—रिपु रन जीति मुजस मुर गावत । सीता अनुज सहित प्रभु भावत ।—मानस ७ । २ । २. किसी ऐसे कार्य में सफलता प्राप्त करना जिसमें दो या दो से अधिक परस्पर विरुद्ध पक्ष हों । जैसे, मुकदमा जीतना, खेल में जीतना, बाजी जीतना, जुए में रुपया जीतना ।

जीतव^④—संज्ञा पुं० [सं० जीवितव्य] जीवन । जीवित रहना ।

उ०—ताते लोमस नाम है मोरा । करो समाध जीतव है मोरा ।—कबीर सा०, पृ० ४३ ।

जीता—वि० [हि० जीना] [वि० जी० जीती] १. जीवित । जो मरा न हो । २. तील या नाप में ठीक से कुछ बढ़ा हुआ । जैसे,—जरा जीता तीलो ।

जीताखू—संज्ञा पुं० [सं० घालु] घारारोट ।

जीता लोहा—संज्ञा पुं० [हि० जीना + लोहा] चुंबक । मेकतानीस ।

जीति^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लता का नाम ।

विशेष—यह जमुना किनारे से नेपाल तक तथा अरब, बिहार और छोटा नागपुर में होती है । इसके रेणु बहुत मजबूत होते हैं और रस्सी बनाने के काम आते हैं । इन रेणुओं को टोंगुस कहते हैं । इन रेणुओं से धनुष की डोरी बनती है ।

जीति^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विजय । उ०—जीति उठि जाइयो अजीत पंडु पूतनि की, सूप ठुरजोवन की भीति छठि जाइयो ।—रत्नाकर, भा० २. पृ० १४२ । २. अथ । हासि (को०) । ३. ह्रास की अवस्था । वृद्धावस्था (को०) ।

जीने^१—संज्ञा पुं० [फा० जीन] १. धोड़े की पीठ पर रखने की गद्दी । चारजामा । काठी ।

यौ०—जीनपोश ।

२. पलाम । कजाया । ३. एक प्रकार का बहुत मोटा सूती कपड़ा ।

जीन^२—वि० [सं०] १. जीर्ण । पुराना । जर्जर । कटा फटा । २. वृद्ध । ३. क्षीण (को०) ।

जीन^३—संज्ञा पुं० चमड़े का पैला (को०) ।

जीनत—संज्ञा स्त्री० [सं० जीनत] १. शोभा । छवि । खुबसूरती । २. मजावट । शृंगार ।

क्रि० प्र०—देना = शोभा देना ।—बखाना = शोभा या सौंदर्य बढ़ाना ।

जीनपोश—संज्ञा पुं० [फा० जीनपोश] जीन के ऊपर ढकने का कपड़ा । काठी का ढंकना ।

जीनसवारी—संज्ञा स्त्री० [फा० जीन + सवारी] धोड़े पर जीन रखकर चढ़ने का कार्य । जैसे,—यह घोड़ा जीनसवारी में रहता है ।

जीनसाज—संज्ञा पुं० [फा० जीनसाज] जीन बनानेवाला कारीगर चारजामा बनानेवाला ।

जीना—क्रि० सं० [सं० जीवन] १. जीवित रहना । सजीव रहना । जिंदा रहना । न मरना । जैसे,—यह घोड़ा अभी मरा नहीं है जीता है । (ख) वह अभी बहुत दिन जीएगा । उ०—अरविह सो धानन रूप मरद अनंदित लोचन भृंग पिए । मन मों न बस्यो ऐसी बालक जो तुलसी जग में फल कोन जिए ?—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

२. जीवन के दिन बिताना । जिवनो काटना । जैसे,—ऐसे जीने से तो मरना अच्छा ।

मुहा०—जीना मारी हो जाना = जीवन कष्टमय हो जाना । जीवन

का सुख और आनंद जाता रहना। जीता जागता = जीवित और सचेत। भला बंरा। जीता खूह = देह से ताजा निकला हुआ खून। जीती मक्खी निगलना = (१) जान बूझकर कोई अन्याय या अनुचित कर्म करना। सरासर बेईमानी करना। जैसे,—उससे रुपया पाकर मैं कैसे इनकार करूँ? इस तरह जीती मक्खी तो नहीं निगली जाती। (२) जान बूझकर बुराई में फँसना। जान बूझकर आपत्ति या संकट में पड़ना। जीते जी = (१) जीवित अवस्था में। ज़िंदगी रहते हुए। उपस्थिति में। बने रहते। छाछत। जैसे,—(क) मेरे जीते जी तो कभी ऐसा न होने पाएगा। (ख) उसके जीते जी कोई एक पैसा नहीं पा सकता। (२) ज़बतक जीवन है। ज़िंदगी भर। जैसे,—मैं जीते जी आपका उपकार नहीं भूल सकता। जीते जी मर जाना = जीवन में ही मृत्यु से बढ़कर कष्ट भोगना। किसी भारी विपत्ति या मानसिक आघात से जीवन भारी होना। जंवन का सारा सुख और आनंद जाता रहना। जीवन नष्ट होना। जैसे,—(क) पोते के मरने से तो हम जीते जी मर गए। (ख) इस चोरी से जीते जी मर गए। जीते जी मर मिटना = (१) तुरी दशा को पहुँचना। (२) अत्यंत आसक्त होना। उ०—मैं तो जीते जी मर मिटा पारो कोई तबदीर ऐसी बताओ कि विसाल नसीब हो जाय।—फिसाना०, भा० १, पृ० ११। जीते रहो = एक आशीर्वाद जो बड़ों की ओर से छोटी को दिया जाता है। जब तक जीना तब तक सीना = ज़िंदगी भर किसी काम में लगे रहना। उ०—पेट के बेट बेगारहि में जब ली जियना तब ली सियना है।—पद्माकर (शब्द०)।

३. प्रसन्न होना। प्रफुल्लित होना। जीते,—उसके नाम से तो वह जी उठता है।

संयो० क्रि०—उठना।

मुहा०—अपनी खुशी जीना = अपने ही सुख से आनंदित होना।

जीप—सब्बा की० [अ०] एक प्रकार की छोटी मोटर जो कार से अधिक मजबूत होती है तथा उसके चारों पहिए इंजन द्वारा चंचालित होते हैं। उ०—बहुत जल्द मैं चाहता हूँ जीप का रास्ता निकाल दिया जाय।—किन्नर०, पृ० ११।

जीपण०—वि० [हि० जीपना] जीतनेवाले। उ०—उदर सुमित्र लक्षण जीपण परि, घरे शेष अवतार धुरंधर।—रघु० ७०, पृ० ६०।

जीपना—क्रि० सं० [हि० जीतना] जीतना। उ०—अवसांण प्राए छत्री पोरस सरसावे। यह लोक जीप परलोक मोल पावे।—रा० ७०, पृ० ११४।

जीपना०—क्रि० अ० [हि० जीवना] जीवित रहना। जीवन धारण करना। उ०—मैं गद्दी तेग पति साहू सौं धरि जाहु-जोन जीबो चहै। ह०, रासो, पृ० ८६।

जीबो०—संज्ञा पु० [हि० जीवना] दे० 'जीवन'। उ०—साहिन में सरजा समर्थ सिंदराज, कवि भूषण कहत जीबो तेरोई सफल हैं।—भूषण प्र०, पृ० ६३।

जीभ—संज्ञा की० [सं० जिह्वा, प्रा० जिभ] १. मुँह के भीतर

रहनेवाली लंबे चिपटे भासपिंड के आकार की वह इंद्रिय जिससे कटु, म्ल, तिक्त इत्यादि रसों का अनुभव और शब्दों का उच्चारण होता है। जबान। जिह्वा। रसना।

विशेष—जीभ मांसपेशियों और स्नायुओं से निर्मित है। पीछे की ओर यह नास के आकार की एक नरम हड्डी से जुड़ी है जिसे जिह्वास्थि कहते हैं। नीचे की ओर यह दाढ़ के मांस से संयुक्त है और ऊपर के भाग की अपेक्षा अधिक पतली भिल्ली से ढकी है जिसमें से बराबर लार छूटती रहती है। नीचे के भाग की अपेक्षा ऊपर का भाग अधिक छिद्रयुक्त या कोशमय होता है और उसी पर वे उभार होते हैं जो काँटे कहलाते हैं। ये उभार या काँटे कई आकार के होते हैं, कोई अर्धचंद्राकार कोई चिपटे और कोई नोक या शिखा के रूप के होते हैं। जिन मांसपेशियों और स्नायुओं के द्वारा यह दाढ़ के मांस तथा शरीर के और भागों से जुड़ी है उन्हीं के बल से यह इधर उधर हिल बोल सकती है। स्नायुओं में जो महीन महीन शाखा स्नायु होती हैं उनके द्वारा स्पर्श तथा श्रोत, उष्ण आदि का अनुभव होता है। इस प्रकार के सूक्ष्म स्नायुओं का जाल जिह्वा के अग्र भाग पर अधिक है इसी से वहाँ स्पर्श या रस आदि का अनुभव अधिक तीव्र होता है। इन स्नायुओं के उत्तेजित होने से ही स्वाद का बोध होता है। इसी से कोई अधिक मीठी या सुस्वादु वस्तु मुँह में लेकर कभी लोग जीभ चटकारते या दबाते हैं। द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न एक प्रकार की रासायनिक क्रिया से इन स्नायुओं में उत्तेजना उत्पन्न होती है। १२८ अंश गरम जल में एक मिनट तक जीभ डुबोकर यदि उसपर कोई वस्तु रखी जाय तो खट्टे मीठे आदि का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। कई वृक्ष ऐसे हैं जिनकी पत्तियाँ चवा लेने से भी यह ज्ञान थोड़ी देर के लिये नष्ट हो जाता है। वस्तुओं का कुछ अंश काटों में लगकर और घुनकर छिद्रों के मार्ग से जब सूक्ष्म स्नायुओं में पहुँचता है तभी स्वाद का बोध होता है। अतः यदि कोई वस्तु सूखी, कड़ी है तो उसका स्वाद हमें जल्दी नहीं जान पड़ेगा। दूसरी बात ध्यान देने का यह है कि घ्राण का रसना के स्वाद से घनिष्ठ संबंध है। कोई वस्तु खाते समय हम उसकी गंध का भी अनुभव करते हैं। जिस स्थान पर जीभ सारयुक्त मारु आदि से जुड़ी रहती है वहाँ कई सूत्र या बंधन होते हैं जो जीभ की गति नियत या स्थिर रखते हैं। इन्हीं बंधनों के कारण जीभ की नोक पीछे की ओर बहुत दूर तक नहीं पहुँच सकती। बहुत से बच्चों की जीभ में यह बंधन आगे तक बढ़ा रहता है जिससे वे बोल नहीं सकते। बंधनों को हटा देने से बच्चे बोलने लगते हैं। रसास्वादन के अतिरिक्त मनुष्य की जीभ का बड़ा भारी कार्य कंठ से निकले हुए स्वर में अनेक प्रकार के भेद डालना है। इन्हीं विभेदों से वर्णों की उत्पत्ति होती है जिनसे भाषा का विकास होता है। इसी से जीभ को वाणी भी कहते हैं।

पर्या०—जिह्वा। रसना। रसज्ञ। रसाल। रसिका। साधुलवा। रसबा। रसांका। रसना।

मुहा०—जीभ करना = बहुत बढ़कर बोलना । ठिठाई से उत्तर देना । जीभ खोलना = मुँह से कुछ बोलना । शब्द निकालना । जैसे,—प्रब जहाँ जीभ खोली कि पिटे । जीभ खलना = मिन्न-मिन्न वस्तुओं का स्वाद लेने के लिये जीभ का हिलना डोलना । स्वाद के अनुभव के लिये जिह्वा चंचल होना । चटोरेपन की इच्छा होना । उ० जीभ चले बल ना चले वहे जीभ जरि जाय ।—(शब्द०) । जीभ थोड़ी करना = कम बोलना । बकवाद कम करना । अधिक न बोलना । उ०—मेरो गोपाल तनक सो कहा करि जानै वधि की चोरी । हाथ नचावति भावति भालिन जीभ न करही थोरी ।—सूर (शब्द०) । जीभ निकालना = (१) जीभ बाहर करना । (२) जीभ खीचना । जीभ उखाड़ लेना । जीभ पड़ना = बोलने न देना । बोलने से रोकना । जीभ बढ़ाना = चटोरेपन की भावत होना । जीभ बढ़ होना = बोलना बढ़ करना । जबान न खोलना । चुप रहना । जीभ हिलाना = मुँह से कुछ न बोलना । छोटी जीभ = गलशुडी । किसी की जीभ के नीचे जीभ होना = किसी का अपनी कही हुई बात को बदल जाना । एक बार कही हुई बात पर स्थिर न रहना ।

२. जीभ के आकार की कोई वस्तु । जैसे,—निब ।

मुहा०—कलम की जीभ = कलम का वह भाग जो छीलकर नुकीला किया रहता है ।

जीभा—संज्ञा पुं० [हि० जीभ] १. जीभ के आकार की कोई वस्तु जैसे, कोल्हू का पच्चर । २. चौपाया की एक बीमारी जिसमें उनकी जीभ के कटे सूज या बढ़ जाते हैं और उनसे खाते नहीं बनता । बेहली । मयार । ३. बैलो की आँख की एक बीमारी जिसमें आँख का मांस बढ़कर लटक आता है ।

जीभी—संज्ञा स्त्री० [हि० जीभ] धातु की बनी एक पतली लचीली और धनुषाकार वस्तु जिसमें जीभ छीलकर साफ करते हैं ।

२. मैल साफ करने के लिये जीभ छीलने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।

३. निब । ४. छोटी जीभ । गलशुडी । ५. चौपायों का एक रोग । दे० 'जीभा' । ६. लगाम का एक भाग ।

जीभो भाभा—संज्ञा पुं० [हि० जीभ + भाभना] चौपायो का एक रोग । दे० 'जीभा' ।

जीमट—संज्ञा पुं० [सं० जीमूत (= पोषण करनेवाला)] पेड़ों और पौधों के घड़, शाखा और टहनियों आदि के भीतर का गुदा ।

जीमना—क्रि० सं० [सं० जेमन] भोजन करना । आहार करना । खाना । उ०—काबा फिर काशी भया राम जो भया रहीम मोटा चुन मैदा भया बैठ कबीरा जीम ।—कबीर (शब्द०) ।

जीमूत—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत । २. मेघ । बादल । ३. मुस्ता । मोथा । नागर मोथा । ४. देवताङ्ग वृक्ष । ५. इद्र । ६. पोषण करनेवाला । रोजी या जीविका देनेवाला । ७. घोषा लता । ८. सूर्य । ९. एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है । १०. एक मल्ल का नाम जो विराट की सभा में रहता था और भीम के द्वारा मारा गया था । ११. हरिवंश के अनुसार वशाह के पौत्र का नाम । १२. ब्रह्मांड पुराण में

शाल्मली द्वीप के एक राजा जो वपुष्मत् के पुत्र थे । १३. शाल्मली द्वीप के एक वर्ष का नाम । १४. एक प्रकार का दंडक वृक्ष जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और ग्यारह रण होते हैं । यह प्रचित के अंतर्गत है ।

जीमूतमुक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघ से उत्पन्न मोती ।

विशेष—रत्नपरीक्षा विषयक प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार के मोती का वर्णन है । बृहत्संहिता, अग्निपुराण, गरुडपुराण, युक्ति-कल्पतरु आदि ग्रंथों में भी इस मुक्ता का विवरण मिलता है, पर ऐसा मोती आज तक देखा नहीं गया । बृहत्संहिता में लिखा है कि मेघ से जिस प्रकार मोले उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार यह मोती भी उत्पन्न होता है । जिस प्रकार मोले बादल से गिरते हैं उसी प्रकार यह मोती भी गिरता है पर देवता लोग इसे बीच ही में उड़ा लेते हैं । सारांश यह है कि यह मुक्ता मनुष्यों को अलभ्य है । न देखने पर भी प्राचीन आचार्य लक्षण बतलाने से नहीं चूके हैं और उन्होंने इसे मुरझी के घड़े की तरह गोख, ठोस और वजनी बतलाया है । इसकी काति सूर्य की किरण के समान कही गई है । इसे यदि तुच्छ से तुच्छ मनुष्य कभी पा जाय तो सारी पृथ्वी का राजा हो जाय ।

जीमूतवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. इन्द्र । २. शालिवाहन राजा का पुत्र ।

विशेष—प्राशिवन कृष्ण ८ को पुत्रकामनावाली स्त्रियाँ इनका पूजन करती हैं ।

३. जीमूतवैतु राजा का पुत्र जो प्रसिद्ध नाटक नागानंद का नायक है । ४. धर्मरत्न नामक स्मृतिसंग्रहकार ।

जीमूतवाही—संज्ञा पुं० [सं० जीमूतवाहिन] भूमि । धुवाँ ।

जीय पुं०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जीव', 'जी' ।

मुहा०—जीय घरना = दे० 'जी' में 'घरना' । उ०—माधव जू जो जन ते बिगरे । तउ कृपालु करुणामय केशव प्रभु नहि जीय घरे ।—सूर (शब्द०) ।

जीयट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जीवट' ।

जीयति पुं०—संज्ञा स्त्री० [हि० जीना] जीवन । जिंदगी । उ०—तोहि सोहि आखिनि सो आखि मिली रहें जीयति को यहै लहा ।—हरिदास (शब्द०) ।

जीयदान—संज्ञा पुं० [सं० जीवदान] प्राणदान । जीवनदान । प्राणरक्षा । उ०—बालक काज धर्मं जनि छोड़ो राय न ऐसी कीजै हो । तुम मानी वसुदेव देवकी जीयदान इन दीजै हो ।—सूर (शब्द०) ।

जीये पुं०—वि० [प्रा० जेव, जेम] दे० 'जिमि' या 'ज्यों' । उ०—जीये तेम तिलप्रि में जीये गधि फुलिप्रि ।—संतवाणी०, पृ० ८५ ।

जीर'—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीरा । २. फूल का जीरा । केसर । उ०—रघुराज पंकज को जीर नहि बेधे हरि धरौ किमि घीर पावै पीर मन मोर है ।—रघुराज (शब्द०) । ३. खड्ग । तलवार । ४. अणु ।

जीर^२—वि० मित्र । तेज । जल्दी चलनेवाला ।

जीर^३—संज्ञा पुं० [फ्रा० जिरह] जिरह । कबच । उ०—कुंडल के ऊपर कड़ाके उठे ठोर ठोर, जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गान के ।—सूषण (शब्द०) ।

जीर^४—वि० [सं० जीर्य] पुराना । जर्जर । उ०—मनहू मरी इक बर्ष की भयो तासु तन जीर । करषत कर महि पर गिरी गयो सुखाय शरीर ।—रघुराज (शब्द०) ।

जीरक^१—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा ।

जीरक^२—वि० [फ्रा० जीरक] १. प्रवीण । प्रतिभाशाली । २. होशियार । चालक ।

जीरण^१—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा ।

जीरण^२—वि० [सं० जीर्य] २० 'जीर्य' ।

जीरह^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० जिरह] । ग्रंथत्राण । सप्ताह । उ०—जान तखी साजति करउ । जीरह रंगावली पहहरज्यो टोप ।—बीरल० रास०, पृ० ११ ।

जीरा—संज्ञा पुं० [सं० जीरक, तुलनीय फ्रा० जीरह] डेढ़ दो हाथ ऊँचा एक पोधा ।

विशेष—इसमें सौंफ की तरह फूलों के गुच्छे लंबी सीको में लगते हैं । पत्तियाँ बहुत बारीक और दूब की तरह लंबी होती हैं । बंगाल और आसाम को छोड़ भारत में यह सर्वत्र अधिकता से बोया जाता है । लोगों का अनुमान है कि यह पश्चिम के देशों से लाया गया है । मित्र देश तथा भूमध्य सागर के माल्टा आदि टापुओं में यह जगली पाया जाता है । माल्टा का जीरा बहुत अच्छा और सुगंधित होता है । जीरा कई प्रकार का होता है पर इसके दो मुख्य भेद माने जाते हैं—सफेद और स्याह अथवा श्वेत और कृष्ण जीरक । सफेद या साधारण जीरा भारत में प्रायः सर्वत्र होता है, पर स्याह जीरा जो अधिक महीन और सुगंधित होता है । काश्मीर लद्दाख, बलूचिस्तान तथा गढ़वाल और कुमाऊँ में पाता है । काश्मीर और अफगानिस्तान में तो यह खेतों में और तुरणों के साथ उगता है । माल्टा आदि पश्चिम के देशों से जो एक प्रकार का सफेद जीरा आता है वह स्याह जीरे की जाति का है और उसी की तरह छोटा और तीव्र गंध का होता है । वैद्यक में यह कटु, उष्ण, दीपक तथा अतीसार, गृहणी, कृमि और कफ वात को दूर करनेवाला माना जाता है ।

पर्या०—जरण । प्रजाजी । कणा । जीर्य । जीर । दीप्य । जीरण । प्रजाजिका । बह्विशिख । मागध । दीपक ।

मुहा०—ऊँट के मुँह में जीरा=खाने की कोई चीज मात्रा में बहुत कम होना ।

२. जीरे के आकार के छोटे छोटे महीन और लंबे बीज । ३. फूलों का केसर । फूलों के बीज का महीन सूत ।

जीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशपत्री नाम की घास ।

जीरी—संज्ञा पुं० [हिं० जीरा] एक प्रकार का धान जो अग्रहृत में तैयार होता है ।

विशेष—इसका चावख बहुत दिनों तक रह सकता है । यह

पंजाब के करनाल जिले में अधिक होता है । इसके दो भेद हैं—एक रमाली, दूसरा रामजमानी ।

जीरीपटन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फूल ।

जीर्य—वि० [सं०] १. बहुत बुढ़ा । बुढ़ापे से जर्जर । २. पुराना । बहुत दिनो का । जैसे, जीर्य ज्वर । ३. जो पुराना होने के कारण टूट फूट गया होगा । कमजोर हो गया हो । फटा पुराना । उ०—का क्षति लाभ जीर्य धनु तोरे ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—जीर्य शीर्य = फटा पुराना । टूटा फूटा ।

४. पेट में अच्छी तरह पचा हुआ । जठराग्नि में जिसका परिपाक हुआ हो । परिपक्व । जैसे,—जीर्य भ्रम, भ्रजीर्य ।

जीर्य—संज्ञा पुं० १. जीरा । २. बुढ़ा व्यक्ति (को०) । ३. वृद्ध (को०) । ४. शिलाजतु (को०) । ५. वृद्धावस्था । बाधवय (को०) ।

जीर्यक—वि० [सं०] प्रायः शुष्क या कुम्हालाया हुआ (को०) ।

जीर्यज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराना बुखार । वह ज्वर जिससे रहते बारह दिन से अधिक हो गए हों ।

विशेष—किसी किसी के मत से प्रत्येक ज्वर अपने प्रारंभ के दिन से ७ दिन तक तरण, १४ दिनों तक मध्यम और २१ दिनों तक पीछे, जब रोगी का शरीर दुर्बल और रूखा हो जाय तथा उसे धुंधला नयन और उसका पेट सदा भारी रहे 'जीर्य' कहलाता है ।

जीर्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुढ़ापा । बुढ़ाई । २. पुरानापन ।

जीर्यदारु—संज्ञा पुं० [सं०] वृद्धदारक वृक्ष । विषारा ।

जीर्यपत्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] पट्टिका लोभ । पठनी लोभ ।

जीर्यपर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. कदब का पेड़ । २. पुराना पत्ता (को०) ।

जीर्यफज्जी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीर्यफज्जी] विधारा (को०) ।

जीर्यबुध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जीर्यपर्य' ।

जीर्यवज्ज—संज्ञा पुं० [सं०] वंशत मणि ।

जीर्यवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] फटा पुराना कपड़ा (को०)

जीर्यवस्त्र—वि० जो फटे पुराने कपड़ों में हो (को०) ।

जीर्यवाटिका—संज्ञा पुं० [सं०] खंडहर (को०) ।

जीर्या—वि० [सं०] बुढ़ा । बुढ़िया ।

जीर्या—संज्ञा स्त्री० काली जीरी ।

जीर्णास्थिमृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हड्डी को गला सड़ाकर बनाई हुई मिट्टी ।

विशेष—ऐसी मिट्टी बनाने की विधि शब्दार्थ चिन्तामणि नामक ग्रंथ में इस प्रकार लिखी है,—जहाँ शिलाजीत निकलता हो वहाँ एक गहरा गड्ढा खोदे और उसे जानवरों और मनुष्यों की हड्डियों से भर दे । ऊपर से सज्जीखार नमक, गंधक और गरम जल ६ महीने तक डालता जाय । इसके पीछे फिर पत्थर की मिट्टी दे । तीन वर्ष में ये सब वर्गएँ एक सिल के रूप में जम जायेंगी । उस सिल को लेकर बुकनी कर डाले और उसका पात्र बनावे । ऐसे पात्र में भोजन करना बहुत अच्छा है ।

भोजन यदि विष आदि द्वारा दूषित होगा तो ऐसे पान में पता चल जायगा। यदि साधारण होगा तो उसमें छोटे आदि पड़ जायेंगे।

जीर्णोद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] फटी पुरानी, टूटी फूटी वस्तुओं का फिर से सुधार। पुनःसंस्कार। मरम्मत।

विशेष—पूर्वस्थापित शिवलिंग या मंदिर आदि के जीर्णोद्धार की विधि आदि अग्निपुराण में विस्तार से दी हुई है।

जीर्णोद्धान—संज्ञा पुं० [सं०] पुराना हो जाने से अथवा देखरेख के अभाव से शुष्कप्राय उजड़ा सा उद्धान [को०]।

जील—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जीर] १. घीमा शब्द। मध्यम स्वर। नीचा सुर। २. तबले या ढोल का बायाँ। उ०—जात कहूँ ते कहूँ को चलो सुर टीप न लागत तान घरे की। आखर सो समुझे न परे मिल ग्राम रहे जति जील परे की।—रघुनाथ (शब्द०)।

जीलानी—वि० [ग० भिल्ली] [वि० जी० जीली] १. भीना। पतला। २. महीन। उ०—भिल्ली ते रसोली जीली रटिहूँ की रटलीली स्यारि तें सवाई भूतभावनी ते भागरी।—केशव (शब्द०)।

जीलानी—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का लाल रंग।

विशेष—यह बबूल, भरबेरी, मजीठ, पतंग, और लाह को बराबर लेकर और पानी में उबालकर बनाया जाता है।

जीलानी—वि० जीलान नामक स्थान संबंधी [को०]।

जीवजीव—संज्ञा पुं० [जीवज्जीव] १. चकोर पक्षी। २. एक वृक्ष का नाम।

जीवन्त—संज्ञा पुं० [सं० जीवन्त] १. प्राण। जीवन। २. ओषधि। ३. जीवशाक।

जीवन्त—वि० १. जीताजागता। संप्राण। प्राणवान्। २. दीर्घायु [को०]।

जीवन्तक—संज्ञा पुं० [सं० जीवन्तक] जीवशाक [को०]।

जीवन्तता—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन्त + ता (प्रत्य०)] संप्राणता का भाव। तेजस्विता।

जीवन्तिक—संज्ञा पुं० [सं० जीवन्तिक] १. चिड़ीमार। बहेलिया। २. जीवशाक [को०]।

जीवन्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन्तिका] १. एक प्रकार की वनस्पति या पौधा जो दूसरे पेड़ के ऊपर उत्पन्न होता है और उसी के आहार से बढ़ता है। बाँदा। २. गुरुव। गुडूची ३. जीवशाक। ४. जीवन्ती लता। ५. एक प्रकार की हड़ जो पीले रंग की होती है। ६. शमी।

जीवन्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन्ती] १. एक लता जिसकी पत्तियाँ ओषध के काम में आती हैं।

विशेष—इसकी टहनियों में दूध निकलता है। फल गुच्छों में लगते हैं। यह तीन प्रकार की होती है—बृहज्जीवन्ती, पीली जीवन्ती और तिल जीवन्ती। तिल जीवन्ती को छोड़ी कहते हैं।

२. एक ताल जिसके फूलों में भीठा मधु या मकरंद होता है।

३. एक प्रकार की हड़ जो पीली होती है।

विशेष—यह गुजरात काठियावाड़ की ओर से आती है। इसका गुण बहुत उत्तम माना जाता है।

४. बाँदा। ५. गुडूची। ६. शमी।

जीव—संज्ञा पुं० [म०] प्राणियों का चेतन तत्त्व। जीवात्मा। आत्मा। २. प्राण। जीवन तत्त्व। जान। जैसे,—इस हिरन में अब जीव नहीं है। ३. प्राणी। जीवधारी। इन्द्रियविशिष्ट। शरीरी। जानदार। जैसे, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि। जैसे,—किसी जीव को सताना अच्छा नहीं। उ०—जे जड़ चेतन जीव जहाना।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—जीव जतु = (१) जानवर। प्राणी। (२) कीड़ा मकोड़ा।

४. जीवन। ५. विष्णु। ६. बृहस्पति। उ०—पढी विरचि, मोन वेद जीव सोर छेडि रे। कुवर, बेर कै कहौ न यच्छु भीर मडि रे।—राम चं०, पृ० १११। ७. अश्लेषा नक्षत्र। ८. बकायन का पेड़। ९. जीविका। व्ययसाय [को०]। १०. एक मरुत् [को०]। ११. कर्ण का एक नाम [को०]। १२. लिगदेह [को०]। १३. पुण्य नक्षत्र [को०]।

जीवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राण धारण करनेवाला। २. आयुर्वेद के एक प्रसिद्ध आचार्य जो बौद्ध परंपरा के अनुसार ईस्वी पूर्व चौथी या तीसरी शताब्दी में थे। ३. क्षपणक। ४. संपेरा। ५. सेवक। ६. व्याज लेकर जीविका करनेवाला। सुदखोर। ७. पीतसाल का वृक्ष। ८. एक अड़ी या पोधा।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार यह पोधा हिमालय के शिखरों पर होता है। इसका कंद लहसुन के कंद के समान और इसकी पत्तियाँ महीन और सारहीन होती हैं। इसकी टहनियों में बारीक काँटे होते हैं और दूर निपलता है। यह अष्टवर्ग ओषध के अंतर्गत है और इसका कंद मधुर, बलकारक और कामोद्दीपक होता है। ऋषभ और जीवक दोनों एक ही जाति के गुल्म हैं, भद केवल इतना ही है कि ऋषभ की आकृति बैल की सींग की तरह होती है और जीवक की भाँड़ू की सी।

पर्या०—कृष्णशीर्ष। मधुरक। शृंग। तृस्वांग। जीवन। दीर्घायु प्राणद। भृंगाल। चिरजीवी। मगल। आयुष्मान्। बलद।

जीवकोश—संज्ञा पुं० [म०] लिंग शरीर [को०]।

जीवगृह—संज्ञा पुं० [सं० जीवगृहम्] शरीर। काया। [को०]।

जीवग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] वह बड़ा जो जीवित गिरफ्तार किया गया हो [को०]।

जीवघन—संज्ञा पुं० [म०] ब्रह्मा [को०]।

जीवधारी—वि० [सं० जीवधातिन्] हिंसक। प्राणहारी [को०]।

जीवज—वि० [म०] जो सजीव या संप्राण पेदा हो [को०]।

जीवजगत्—संज्ञा पुं० [म०] प्राणधारी समुदाय [को०]।

जीवजीव—संज्ञा पुं० [सं०] चकोर पक्षी।

जीवजीवक—संज्ञा पुं० [म०] चकोर पक्षी [को०]।

जीवट—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवथ] हृदय की दृढ़ता। जिगरा। साहस। हिम्मत। मरदानगी।

जीवन्त—वि० [सं०] [वि० जी० जीवती जीवित] जिदा। जीता हुआ [को०]।

जीवतोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके बच्चे जीवित हों [को०]।

जीवसोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी संबन्धि जीती हो ।
जीवत्पुत्रिका ।

जीवत्पति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो ।
सधवा स्त्री । सोभाग्यवती स्त्री ।

जीवत्पत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जीवत्पति' [स्त्री०] ।

जीवत्पितृक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका पिता जीवित हो ।

विशेष—ऐसे मनुष्य के लिये अमात्यनान, गयाश्राद्ध, दक्षिणमुख भोजन तथा मूछे मुडाने आदि का निषेध है । ऐसा मनुष्य यदि निरग्न ब्राह्मण है तो उसे वृद्धि छोड़ और कोई श्राद्ध करने का अधिकार नहीं है । साग्निक जीवत्पितृक सब श्राद्ध कर सकता है ।

जीवत्पुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो । २. आश्विन कृष्ण अष्टमी का व्रत [स्त्री०] ।

जीवत्पुत्रिका व्रत—संज्ञा पुं० [सं०] संतान की कल्याणकामना से स्त्रियों द्वारा आश्विन कृष्ण अष्टमी को रखा जाने वाला व्रत ।

जीवथ^१—संज्ञा [पुं० जीवथ] १. प्राण । २. सद्गुण । ३. मयूर । ४. मेघ । ५. कछुआ ।

जीवथ^२—वि० [सं० जीव + थ] १. धार्मिक । २. दीर्घायु । चिरंजीवी ।

जीवद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवनदाता । २. वैद्य । ३. जीवक पोषा । ४. जीवती । ५. शत्रु ।

जीवदया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवों के प्राणरक्षणार्थ की जानेवाली दया [स्त्री०] ।

जीवदशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मर्त्य जीवन [स्त्री०] ।

जीवदान—संज्ञा पुं० [सं०] अपने वश में आए हुए शत्रु को न मारने या छोड़ देने का कार्य । प्राणदान । प्राणरक्षा । उ०—
खंग लै ताहि भगवान मारन चले रुक्मिणी जोरि कर विनय कीयो । दोष इन कियो मोहि क्षमा प्रगु कीजिए भद्र करि शीश जिवदान दीयो ।—मुर (शब्द०) ।

जीवद्वर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो ।

जीवद्वत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो [स्त्री०] ।

जीवधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह संपत्ति जो जीवों या पशुओं के रूप में हो । जैसे, गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट आदि । २. जीवनधन । प्राणप्रिय । प्यारा ।

जीवधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सब जीवों की आधारस्वरूपा, पृथ्वी । धरती ।

जीवधारी—संज्ञा पुं० [सं० जीवधारिन्] प्राणी । जानवर । चेतन जंतु ।

जीवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जीवित] १. जीवित रहने की अवस्था । जन्म और मृत्यु के बीच का काल । वह दशा जिसमें प्राणी अपनी इन्द्रियों द्वारा चेतन व्यापार करते हैं । जिंदगी । जैसे,—अपने जीवन में ऐसी घटना मैंने कभी नहीं देखी थी

यौ०—जीवनचरित् । जीवनचर्या ।

मुहा०—जीवन भरना = जीवन व्यतीत करना । जिंदगी के दिन काटना ।

२. जीवित रहने का भाव । जीने का व्यापार या भाव । प्राणधारण । जैसे,—अन्न से ही तो मनुष्य का जीवन है ।

यौ०—जीवनदाता । जीवनधन । जीवनमूर्ति ।

३. जीवित रखनेवाली वस्तु जिसके कारण कोई जीता रहे । प्राण का अवलंब । जैसे,—जल ही मनुष्य का जीवन है ।

४. प्राणाधार । परमप्रिय । प्यारा । ५. जल । पानी । उ०—
जगत जीवन हेतु जीवन (जल) बिंदु की वर्षा होती ।—
प्रेमचन०, भा० २, पृ० ३३४ । ७. मज्जा । ८. वात । वायु । ९. ताजा घी या मक्खन । १०. जीवक नामक औषध । ११. पुत्र । १२. परमेश्वर । १३. गंगा । १४. शुद्ध फल नाम का पोषा [स्त्री०] ।

जीवनक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. आहार । खाद्य । २. अन्न [स्त्री०] ।

जीवनक^२—वि० जीवित करवाला या रखनेवाला [स्त्री०] ।

जीवनक्रम—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + क्रम] रहन सहन का ढंग । जीवनपद्धति । जीवनप्रणाली [स्त्री०] ।

जीवनचरित्—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवन का वृत्तांत । जीवन में किए हुए कार्यों का विवरण । जिंदगी का हाल । २. वह पुस्तक जिसमें किसी के जीवन भर का वृत्तांत हो ।

जीवनचरित्र—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + चरित्र] दे० 'जीवनचरित्' ।

जीवनचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + चर्या] दे० 'जीवनक्रम' ।

जीवनतत्त्व—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + तत्त्व] जीवन का मर्म । जीवन का रहस्य ।

जीवनतरु—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + तरु] १. जीवन रूपी वृक्ष । २. वह वृक्ष जो प्राणधारण का कारण हो । उ०—राम सुना हुआ कान न काऊ । जीवनतरु जिमि जोगवद् राऊ ।—मानस, २।२०० ।

जीवनतल—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + तल] जीवननिर्वाह का स्तर या स्थिति । उ०—और यहाँ की खनिज संपत्ति को निकालकर जनता के जीवनतल को ऊँचा उठाना चाहती है ।—किन्नर०, पृ० ६० ।

जीवनद्—वि० [सं०] जीवनदाता [स्त्री०] ।

जीवनदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + दर्शन] जीवन विषयक सिद्धांत उ०—गांधी जी के जीवनदर्शन का मूलमंत्र असत्य पर सत्य, अंधकार पर प्रकाश तथा मृत्यु पर जीवन द्वारा विजय पाने का था ।—भारतीय०, पृ० १७५ ।

जीवनदान—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + दान] १. शत्रु या अपराधी के प्राण न हरण करना । प्राणदान । उ०—देना चाहते हो मोगलों को तुम जीवनदान ।—अपरा, पृ० ८२ । २. किसी ऊँचे उद्देश्य के लिये आजीवन कार्य करते रहने का व्रत पालन करना ।

जीवनधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवन का सर्वस्व । जीवन में सबसे प्रिय वस्तु या व्यक्ति । २. प्राणाधार । प्यारा । प्राणप्रिय ।

उ०—सुकवि सरद नम मन उडुगन से । राम भगत जन जीवनधन से ।—तुलसी (शब्द०) ।

जीवनधर^१—वि० [सं० जीवन + धर] जीवनरक्षक । जीवनदायक जीवनप्रद [को०] ।

जीवनधर^२—संज्ञा पु० जलधर । मेघ । बादल [को०] ।

जीवनवृत्ती—संज्ञा स्त्री [सं० जीवन + हि० वृत्ती] १. एक पोषा या वृत्ती । मजीवनी ।

विशेष—इसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह मरे हुए घादमी को भी जिला सकती है ।

२. प्रति प्रिय वस्तु या व्यक्ति ।

जीवनमरण—संज्ञा पु० [सं०] जीवन और मरण । जितनी और मोत ।

जीवनमुक्त—वि० [सं०] जो जीवन में ही सर्वबंधनों से मुक्त हो चुका हो [को०] ।

जीवनमुक्ति—संज्ञा स्त्री [सं०] जीवनकाल में ही प्राप्त निर्बंधता [को०] ।

जीवनमूरि—संज्ञा स्त्री [सं० जीवन + मूल] १. संजीवनी नाम की जड़ी । २. अत्यंत प्रिय वस्तु या व्यक्ति । प्यारी । प्राणप्रिया ।

जीवनमूलि^१—संज्ञा स्त्री [सं० जीवनमूल] संजीवनी वृत्ती । उ०—जीवन को जे का करी, पायो जीवनमूलि । भक्ति को सार यह ।—नव० प्र०, पु० १८८ ।

जीवनयापन—संज्ञा पु० [सं० जीवन + यापन] जीवननिर्वाह । जीवन व्यतीत करना ।

जीवनवृत्त—संज्ञा पु० [सं०] जीवनचरित् । जीवनवृत्तांत । जीवनी ।

जीवनवृत्तांत—संज्ञा पु० [सं० जीवनवृत्तांत] जीवनचरित । जितनी भर का हाल । जीवनी ।

जीवनवृत्ति—संज्ञा स्त्री [सं० जीविका] जीवनीपाय । प्राणरक्षा के लिये उद्यम । रोजी ।

जीवनसंप्राप्त—संज्ञा पु० [सं० जीवन + संप्राप्त] जीवन की संश्लेष्य परिस्थितियों का सामना । सघर्षों में जीवनयापन का प्रयत्न ।

जीवनहेतु—संज्ञा पु० [सं०] जीवनरक्षा का साधन । जीविका । रोजी ।

विशेष—गुरुपूजा में इस प्रकार की जीविका बतलाई गई है—विद्या, शिल्प, भूमि, सेवा, गौरक्षा, विपणि कृषि, वृत्ति, मिथा और कुशीद ।

जीवनांत—संज्ञा पु० [सं० जीवनांत] जीवन की समाप्ति । मरण । मृत्यु [को०] ।

जीवना^१—संज्ञा स्त्री [सं०] १. महोषध । २. जीवन्ती लता । उ०—जीवन प्रिरतक होइ रहै, तजे खलक की छास ।—संत-बाणी०, पु० ४८० ।

जीवना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'जीना' ।

जीवना^३—क्रि० प्र० दे० 'जीमना' ।

जीवनाघात—संज्ञा पु० [सं०] विष । प्राणघाती जहर [को०] ।

जीवनाधार^१—संज्ञा पु० [सं०] जीवन का अवसंबंध या सहारा [को०] ।

जीवनाधार^२—वि० परम प्रिय । प्राणाधार [को०] ।

जीवनांतर—क्रि० वि० [सं० जीवनांतर] जीवन के बाद ।

जीवनावास^१—वि० [सं०] जल में रहनेवाला ।

जीवनावास^२—संज्ञा पु० १. वरुण । २. देह । शरीर ।

जीवनि^१—संज्ञा स्त्री [सं० जीवनी] १. संजीवनी वृत्ती । २. जिलाने-वाली वस्तु । प्राणाधार । ३. अत्यंत प्रिय वस्तु । उ०—गहली गरब न कीजिए, समय सुहागिनि पाय । जिय की जीवनि जेठ सो, माह न छाहि सुहाय ।—बिहारी (शब्द०) ।

जीवनी^१—संज्ञा स्त्री [सं०] १. काकोली । २. तित्त जीवन्ती । डोड़ी । ३. मेद । ४. महामेद । ५. लूही ।

जीवनी^२—संज्ञा स्त्री [सं० जीवन + हि० ई (प्रत्यय०)] जीवन भर का वृत्तांत । जीवनचरित् । जितनी का हाल ।

जीवनीय^१—वि० [सं०] १. जीवनप्रद । २. जीविका करने योग्य । बरतने योग्य ।

जीवनीय^२—संज्ञा पु० १. जल । २. जयन्ती वृक्ष । ३. दूध (हि०) ।

जीवनीयगण—संज्ञा पु० [सं०] वैद्यक में बलकारक औषधियों का एक वर्ग ।

विशेष—इसके अंतर्गत अष्टवर्ग पण्डिनी, जीवन्ती, मरु, और जीवन हैं । वाग्भट्ट के मत से जीवनीय गण ये हैं—जीवन्ती, काकोली, मेद, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, ऋषभक, जीवक और मधूक ।

जीवनीया—संज्ञा स्त्री [सं०] जीवन्ती लता ।

जीवनेत्री—संज्ञा स्त्री [सं०] संहन्ती वृक्ष ।

जीवनोत्तार—वि० [सं०] जीवन के बाद का ।

जीवनोत्सर्ग—संज्ञा पु० [सं० जीवन + उत्सर्ग] जीवन की बलि । जीवन का दान । उ०—यौवन की मांसल, स्थस्थ गंध नव युग्मों का जीवनोत्सर्ग ।—युगांत, पु० ४७ ।

जीवनोपाय—संज्ञा पु० [सं०] जीवनरक्षा का उपाय । जीविका । वृत्ति । रोजी ।

जीवनौषध—संज्ञा स्त्री [सं०] वह औषध जिससे मरता हुआ भी जी जाय ।

जीवन्मुक्त—वि० [सं०] जो जीवित दशा में ही आत्मज्ञान द्वारा सांसारिक मायाबंधन से छूट गया हो ।

विशेष—वेदांतसार में लिखा है कि जिसने अखंड चैतन्य स्वरूप ज्ञान द्वारा अज्ञान का नाश करके आत्मरूप अखंड ब्रह्म का साक्षात्कार किया हो और जो ज्ञान तथा अज्ञान के कार्य, पाप पुण्य एवं संशय, क्रम आदि के बंधन से निवृत्त हो गया हो वही जीवन्मुक्त है । सांख्य और योग के मत से पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान होने से जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है अर्थात् जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि यह प्रकृति जड़, परिणामिनी और त्रिगुणमयी है और मैं निश्च और चैतन्यस्वरूप हूँ तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है ।

जीवन्मुक्त—वि० [सं०] जो जीते ही मरे के तुल्य हो । जिसका जीवन और मरना दोनों बराबर हों । जिसका जीवन सायंक और

सुखमय न हो। उ०—यहाँ धकेला मानव हो रे बिबर विषण्ण
जीवन्युत।—प्राण्या, पु० १६।

विशेष—जो, अपने कर्तव्य से विमुक्त और अकर्मण्य हो, जो सदा
ही कष्ट भोगता रहे, जो बड़ी कठिनाता से अपना पोषण कर
सकता हो, जो प्रतिपि आदि का सत्कार न करता हो, ऐसा
मनुष्य धर्मशास्त्र में जीवन्युत कहलाता है।

जीवन्यास—संज्ञा पु० [सं०] मृतियों की प्राणप्रतिष्ठा का मंत्र।

जीवपति^१—संज्ञा पु० [सं०] धर्मराज।

जीवपति^२—संज्ञा स्त्री० वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सधवा
स्त्री। सोभाग्यवती स्त्री। सुहागिनी स्त्री।

जीवपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो।
सधवा स्त्री।

जीवपत्र—संज्ञा पु० [सं०] नया पत्ता [को०]।

जीवपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवती।

जीवपितृक—वि० [सं०] जिसका पिता जीवित हो [को०]।

जीवपुत्रक—संज्ञा पु० [सं०] १. पुत्रजीव वृक्ष। जियापोता का पेड़।
२. इंगुदी का वृक्ष।

जीवपुत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो [को०]।

जीवपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बृहज्जीवन्ती। बड़ी जीवन्ती।

जीवप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हड़।

जीवबन्धु^(१)—संज्ञा पु० [सं०] जीवबन्धु [सं०] 'जीवबन्धु'।

जीवबन्धु^(२)—संज्ञा पु० [सं०] जीवबन्धु [सं०] गुल दुपहरिया। बंधुजीव।
बंधूक।

जीवबलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पशु आदि की बलि [को०]।

जीवबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीव + बुद्धि [सं०] सामान्य प्राणियों की
समझ। लौकिक बुद्धि। उ०—परि छिन एक में जीवबुद्धि सौं
बिगरि गई।—दो सो बावन०, भा० १, पु० १३५।

जीवभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन्ती लता।

जीवमंदिर—संज्ञा पु० [सं०] जीवमन्दिर [सं०] देह। शरीर [को०]।

जीवमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी, धनदा, नंदा, विमला, मंगला,
बला और पद्मा नाम की सात देवियाँ जो जीवों का पालन
और कल्याण करती हैं। (विधान पारिजात)।

जीवयाज—संज्ञा पु० [सं०] पशुओं से किया जानेवाला यज्ञ।

जीवयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सजीव सृष्टि। जीवजंतु। जानवर।

जीवरक्त—संज्ञा पु० [सं०] स्त्रियों का रक्त जो गर्भधारण के उपयुक्त
हूमा हो।

विशेष—मुश्रुत के अनुसार यह पंचभौतिक होता है अर्थात् जिन
पंचभूतों से जीवों की उत्पत्ति होती है वे इसमें होते हैं।

जीवरा^(१)—संज्ञा पु० [हि०] जीव। प्राण। उ०—साई सेती
चोरिया, चोरा सेती जुभक्त। तब जानेगा जीवरा भार परंगी
तुभक्त।—कबीर (शब्द०)।

जीवरिः—संज्ञा पु० [सं०] जीव या जीवन [सं०] जीवन। प्राणधारण
की शक्ति। उ०—बी मन भाली मदन धूर भालबास बयो।

प्रेम पय सींज्यों पहिल ही सुभग जीवरि दयो।—सूर
(शब्द०)।

जीवत्ता—वि० [सं०] १. जीवनमय। २. जीवनपूर्ण। ३. सजीव
करनेवाला। सप्राण करनेवाला [को०]।

जीवत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेहली। २. सिंहपिप्पली।

जीवतोक—संज्ञा पु० [सं०] भूलोक। पृथ्वीतल। मर्त्यलोक।

जीवधत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका बच्चा जीवित
हो [को०]।

जीववल्ली—संज्ञा संज्ञा [सं०] क्षीरकाकोली।

जीवविज्ञान—संज्ञा पु० [सं०] जीव + विज्ञान [सं०] जीव जंतुओं विषयक
शारीरिक विज्ञान [को०]।

जीवविषय—संज्ञा [सं०] जीवा या जीवन का विस्तार [को०]।

जीववृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीव का गुण या व्यापार। २. पशु
पालने का व्यवसाय।

जीवशाक—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का शाक जो मालवा देश
में अधिक होता है। सुसना।

जीवशुक्ला—संज्ञा स्त्री [सं०] क्षीरकाकोली।

जीवशेष—वि० [सं०] जिसका केवल प्राण बचा हो। प्राणशेष।
[को०]।

जीवशोणित—संज्ञा पु० [सं०] सजीव या स्वस्थ रक्त [को०]।

जीवश्रेष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवभद्रा [को०]।

जीवसंक्रमण—संज्ञा पु० [सं०] जीवसङ्क्रमण [सं०] जीव का एक
शरीर से दूसरे शरीर में गमन।

जीवसंज्ञ—संज्ञा पु० [सं०] कामवृद्धि वृक्ष।

जीवसाधन—संज्ञा पु० [सं०] धाम्य। धान।

जीवसुत—संज्ञा पु० [सं०] जीव + सुत [सं०] वह जिसका पुत्र जीवित
हो [को०]।

जीवसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीता हो।

जीवसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी संतति जीती हो।
जीवतुका।

जीवस्थान—संज्ञा पु० [सं०] वह स्थान जहाँ जीव रहता है। मर्म-
स्थान। हृदय।

जीवहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राणियों का वध। २. प्राणियों
के वध का दोष।

जीवहिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राणियों की हत्या। जीवों का वध।

जीवहीन—वि० [सं०] १. मृत। जीवनरहित। २. प्राणहीन।
जहाँ कोई जीव न हो [को०]।

जीवांतक—संज्ञा पु० [सं०] जीवान्तक [सं०] जीवों का वध करनेवाला।
२. व्याध। बहेलिया।

जीवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह सीधी रेखा जो किसी चाप के
सिरे से दूसरे सिरे तक हो। ज्या। २. धनुष की डोरी।

१. जीवन्ती । ४. बालवध । वधा । ५. भूमि । ६. जीवन ।
७. जीवनीपाय । जीविका । ८. जीवन (को०) । ९. आभरण
की लक या झनक (को०) ।

जीवाजून—संज्ञा पु० [म० जीवयोनि] जीवजंतु । प्राणीमात्र । पशु, पक्षी,
कीट, पतंग आदि । उ०—पौ फाटी पगरा हुआ जागे जीवाजून ।
सब काहू को देत है चोंच समाना चून ।—कबीर (शब्द०) ।

जीवाणु—संज्ञा पु० [म० जीव + णु] प्रति सूक्ष्म जीव । क्षुद्रतम
जीव । उ०—ऐसा होता है कि जीवाणु कई पुरुषों तक बिना
विकसित हुए प्रवाहित रहें । —पा० सा० सि०, पृ० ११२ ।

जीवाणु—संज्ञा पु० [सं०] १. खाद्य । आहार । २. जीवन ।
प्रतिरूप । ३. पुनर्जीवन । ४. जीवनदायक औषध (को०) ।

जीवातुमत्—संज्ञा पु० [सं०] आशुष्काम यज्ञ का एक देवता जिससे
आयु की प्रार्थना की जाती है । (आश्वथीत सूत्र)

जीवात्मा—संज्ञा पु० [जीवात्मन्] प्राणियों की चेतन वृत्ति का
कारणस्वरूप पदार्थ । जीव । आत्मा । प्रत्यगात्मा ।

विशेष—अनेक धार्मिक और दार्शनिक मतों के अनुसार शरीर
से भिन्न एक जीवात्मा है । इसके अनेक प्रमाण शास्त्रों में
दिए गए हैं । सांख्य दर्शन में आत्मा को 'पुरुष' कहा है
और उसे नित्य, त्रिगुणशून्य, चेतन स्वरूप, साक्षी, कूटस्थ,
द्रष्टा, विवेकी, सुख-दुःख-शून्य, मध्यस्थ और उदासीन माना
है । आत्मा या पुरुष अकर्ता है, कोई कार्य नहीं करता,
सब कार्य प्रकृति करती है । प्रकृति के कार्य को हम अपना
(आत्मा का) कार्य समझते हैं । यह भ्रम है । न आत्मा
कुछ कार्य करता है, न सुख दुःखादि फल भोगता है । सुख
दुःख आदि भोग करना बुद्धि का धर्म है । आत्मा न बढ़
होता है, न मुक्त होता है । कठोपनिषद् में आत्मा का परि-
माण अंगुष्ठमात्र लिखा है । इसपर सांख्य के भाष्यकार
विज्ञानभिक्षु ने बतलाया है कि अंगुष्ठमात्र से अभिप्राय
अत्यंत सूक्ष्म से है । योग और वेदांत दर्शन भी आत्मा को
सुख दुःख आदि का भोक्ता नहीं मानते । न्याय, वैशेषिक और
मीमांसा दर्शन आत्मा को कर्मों का कर्ता और फलों का भोक्ता
मानते हैं । न्याय वैशेषिक मतानुसार जीवात्मा नित्य, प्रति
शरीरभिन्न और व्यापक है । शांकर वेदांत दर्शन में जीवात्मा
और परमात्मा को एक ही माना गया है । उपाधियुक्त होने से
ही जीवात्मा अपने को पृथक् समझता है, पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने
पर यह भ्रम मिट जाता है और जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप हो जाता
है । सांख्य, वेदांत योग आदि सभी जीवात्मा को नित्य मानते
हैं । बौद्ध दर्शन के अनुसार जैसे सब पदार्थ क्षणिक है उसी
प्रकार आत्मा भी । जीवात्मा एक क्षण में उत्पन्न होता है और
दूसरे क्षण में नष्ट हो जाता है । अतः क्षणिक ज्ञान का नाम
ही आत्मा है । जिसकी धारा चलती रहती है और एक क्षण
का ज्ञान या विज्ञान नष्ट होता है और दूसरा क्षणिक विज्ञान
उत्पन्न होता है । इसे पूर्ववर्ती विज्ञानों के संस्कार और ज्ञान
प्राप्त होते रहते हैं । इस क्षणिक ज्ञान के अतिरिक्त कोई नित्य
या स्थिर आत्मा नहीं । सांध्यमिक शास्त्र के बौद्ध तो इस
क्षणिक विज्ञान रूप आत्मा को भी नहीं स्वीकार करते; सब

कुछ शून्य मानते हैं । वे कहते हैं कि यदि कोई वस्तु सत्य होती
तो सब अवस्थाओं में बनी रहती । योगाचार शास्त्र के बौद्ध
आत्मा को क्षणिक विज्ञान स्वरूप मानते हैं और इस
विज्ञान को दो प्रकार का कहते हैं—एक प्रवृत्ति विज्ञान
और दूसरा आलस्य विज्ञान । जाग्रत और मुक्त अवस्था
में जो ज्ञान होता है उसे प्रवृत्ति विज्ञान कहते हैं और मुषुति
अवस्था में जो ज्ञान होता है उसे आलस्य विज्ञान कहते हैं । यह
ज्ञान आत्मा ही को होता है । जैन दर्शन भी आत्मा को चिर,
स्थायी और प्रत्येक प्राणी में पृथक् मानता है । उपनिषदों
में जीवात्मा का स्थान हृदय माना है पर आधुनिक परीक्षाओं
से यह बात अच्छी तरह प्रगट हो चुकी है कि समस्त चेतन
व्यापारों का स्थान मस्तिष्क है । मस्तिष्क को ब्रह्मांड भी
कहते हैं । दे० 'आत्मा' ।

पर्या०—पुनर्भवी । जीव । अणु—मान् । सत्व । वेहभृत् । चेतन ।

जीवादान—संज्ञा पु० [सं०] वेहेशी । मूर्छा । संज्ञाशून्यता (को०) ।

जीवाधार—संज्ञा पु० [सं०] आत्मा का आश्रयस्थान । हृदय ।

विशेष—उपनिषदों में जीव का स्थान हृदय माना गया है ।

जीवानां—क्रि० प्र० दे० 'जिलाना' । उ०—तातें या वैष्णव को मरत
तें जीवायो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३२३ ।

जीवानुज—संज्ञा पु० [सं०] गर्गाचार्य मुनि, जो बृहस्पति के वंश में
हुए हैं । किसी के मत से ये बृहस्पति के छोटे भाई भी कहे
जाते हैं । उ०—भाषत हम जीवानुज बानी । जा महें होइ
सकल दुख हानी ।—गोपाल (शब्द०) ।

जीवास्तिकाय—संज्ञा पु० [सं०] जैन दर्शन के अनुसार कर्म का
करनेवाला, कर्म के फल को भोगनेवाला, किए हुए कर्म के
अनुसार शुभाशुभ गति में जानेवाला और सम्यक् ज्ञानादि के
वश से कर्म के समूह को नाश करनेवाला जीव ।

विशेष—यह तीन प्रकार का माना गया है,—अनादिसिद्ध, मुक्त और
बद्ध । अनादिसिद्ध अर्हत् हैं जो सब अवस्थाओं में अविद्या आदि
के बंधन से मुक्त तथा अणिमादि सिद्धियों से संपन्न रहते हैं ।

जीविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह वस्तु या व्यापार जिससे जीवन
का निर्वाह हो । अरण पोषण का साधन । जीवनीपाय ।
वृत्ति । उ०—जीविका विहीन लोग सीधमान, सोच बस कहैं
एक एकन सों कहाँ जाई का करी ? — तुलसी प्र० पृ०, २२१ ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—जीविकार्जन=जीवन निर्वाह के साधन का संग्रह । उ०—उसे
अपने जीविकार्जन की एक मशीन बना रहा है । —स० दर्शन
पृ० ८८ ।

मुहा०—जीविका लपना=अरण पोषण का उपाय होना । रोजी का
ठिकाना होना । जीविका लगाना=अरण पोषण का उपाय करना ।
जीवन निर्वाह का उपाय करना । रोजी का ठिकाना करना ।

२. जीवनदायी तत्व अर्थात् जल (को०) । ३. जीवन (को०) ।

जीवित—वि० [सं०] १. जीता हुआ । जिवा । संप्राप्त । उ०—
उस समय सत्यगुरु का वेष जीवित साधु के समान था ।
—कबीर मं०, पृ० ८१ । २. जो जीव या प्राणयुक्त हो

गया हो (को०) । १३. सजीव या सप्राण किया हुआ (को०) ।
४. बतमान। उपस्थित (को०) ।

जीवित^२—संज्ञा पुं० १. जीवन । प्राणधारण ।

यौ०—जीवितेश ।

२. जीवन भवधि । आयु (को०) । ३. जीविका । रोजी (को०) ।
४. प्राणी (को०) ।

जीवितकाल—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनकाल । जीवित रहने का समय ।
आयु (को०) ।

जीवितज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धमनी (को०) ।

जीवितनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] पति (को०) ।

जीवितव्य^१—वि० [सं०] जीवित रहने या रखने योग्य (को०) ।

जीवितव्य^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवन । २. जीवित रहने की
संभावना । ३. पुनर्जीवित होने की संभावना ।

जीवितव्यय—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनोत्सर्ग । जीवन की माहुति (को०) ।

जीवितसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] जान का खतरा (को०) ।

जीवितान्तक—संज्ञा पुं० [सं० जीवितान्तक] शिव । शंकर । महा-
देव (को०) ।

जीवितेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राणनाथ । प्यारा व्यक्ति । प्राणों से
बढ़कर प्रिय व्यक्ति । २. यमराज । ३. इंद्र । ४. सूर्य । ५.
देह में स्थित इडा और पिंगला नाडी । ६. एक जीवनदायिनी
शोधधि जो मृतक को जीवित करनेवाली कही गई है (को०) ।

जीवितेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव (को०) ।

जीवी—वि० [सं० जीविन्] १. जीनेवाला । प्राणधारक । २. जीविका
करनेवाला । जैसे,—श्रमजीवी । शस्त्रजीवी ।

विशेष—सामान्यतया इसका प्रयोग समस्त पदों के अंत में होता
है । जैसे,—बुद्धिजीवी ।

जीवेधन—संज्ञा पुं० [सं० जीवेधन] जलती हुई लकड़ी या ईंधन (को०) ।

जीवेश—संज्ञा पुं० [सं०] परमात्मा । ईश्वर ।

जीवोपाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रत इन तीनों
भवस्थाओं को जीव की उपाधि कहते हैं ।

जीव्य—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन (को०) ।

जीव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवोपाय । जीविका (को०) ।

जीस्त—संज्ञा स्त्री० [फा० जीस्त] जिदगी । जीवन । उ०—जीस्ते
नहीं है सरासर बस सरगर्दानी वह है । —भारतेदु प्र०,
भा० २, पृ० ५६६ ।

जीह^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जीम, सं० जिह्वा] जीम । जबान । उ०—
(क) जन मन मंजु कंजु मधुकर से । जीह जसोमति हर
हलधर से । —तुलसी (शब्द०) । (ख) राम नाम मनि दीप धर
जीह देहरी द्वार । तुलसी भीतर बाहरी जो बाहसि उजियार ।
—तुलसी (शब्द०) । (ग) नाम जीह जपि जागहि जोगी ।
तुलसी (शब्द०) ।

जीहि^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जीह] दे० 'जीह' ।

जुंग—संज्ञा पुं० [सं० जुङ्ग] बुद्धद्वारक वृक्ष । विषारा ।

जुंगित^१—संज्ञा पुं० [सं० जुङ्गित] परित्यक्त । बहिष्कृत (को०) ।

जुंगित^२—वि० नीच जाति का व्यक्ति । चांडाल (को०) ।

जुंही—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जुहरी', 'ज्वार' ।

जुंदर—संज्ञा पुं० [?] बदर का बच्चा (कलंदरों की बोली) ।

जुंवाई—वि० [फा० जु'वाई] कपायमान । हिलता हुआ (को०) ।

जुंविश—संज्ञा स्त्री० [फा० जु'विश] चाल । गति । हरकत । हिलना
डोलना ।

मुहा०—जुंविश खाना = हिलना डोलना ।

जुंझाँ—संज्ञा पुं० [सं० यूका] दे० 'जू' ।

जुई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जुई' ।

जुंबलो—संज्ञा स्त्री० [हि० दुंबा] एक प्रकार की पहाड़ी भेड़ ।

जु'पु—वि० [हि०] दे० 'जो' । उ०—करत लाल मनुहारि, पै तू न
लखति रहि धोर । ऐसो उर जु कठोर तो उचितहि उरख
कठोर । —मति० प्र०, पृ० ४०८ ।

जु'पु—संज्ञा पुं० [हि० जू] दे० 'जू' ।

जुअतो^१—संज्ञा स्त्री० [सं० युवती] दे० 'युवती' ।

जुअल^२—वि० [सं० युगल, प्रा० जुअल] दे० 'युगल' । उ०—एम
कोपिष सुनिष सुरुतान, रोमञ्चिष भुषा जुअल ।—कीर्ति०,
पृ० ६० ।

जुआँ—संज्ञा पुं० [सं० यूका, प्रा० जूआ] [स्त्री० मत्पा० जुई] एक
छोटा कीड़ा जो मैलेपन के कारण सिर के बालों में पड़ जाता
है । जूँ । डील ।

जुआँरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जुआँ] जुआँ । छोटी जुआँ ।

जुआँरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ज्वार' ।

जुआँ—संज्ञा पुं० [सं० जूत, पा० जूत] वह खेल जिसमें जीतनेवाले
को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है । रुपए पैसे की बाजी
लगाकर खेला जानेवाला खेल । किसी घटना की संभावना
पर हार जीत का खेल । जूत । उ०—आखो जनम प्रकारय
गायो । करी न प्रीति कमललोचन सों जन्म जुआ ज्यों हारयो
—सूर (शब्द०) ।

विशेष—जुआ कोड़ी, पासे, ताश आदि कई वस्तुओं से खेला
जाता है पर भारत में कोड़ियों से खेलने का प्रचार आजकल
विशेष है । इसमें बित्ती कोड़ियों को लेकर फेकते हैं और बित्त
पड़ी हुई कोड़ियों की सख्या के अनुसार दांवों की हार जीत
मानते हैं । सोलह चित्ती कोड़ियों से जो जुआ खेला जाता है
उसे सोरही कहते हैं ।

क्रि० प्र०—खेलना ।—जीतना ।—हारना ।—होना ।

जुआ^३—संज्ञा पुं० [सं० युज (= जोड़ना)] १. गाड़ी, छकड़े, हल आदि
की वह लकड़ी जो बैलों के कंध पर रहती है । २. जिते की
चक्की या मूँठ ।

जुआ^४—संज्ञा पुं० [हि० जुआ] दे० 'युवा' । उ०—बाल बुद्ध जुआ
नर नारिन की एक संग ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८६ ।

जुआखाना—संज्ञा पुं० [हि० जुआ + फा० खाना] वह स्थान जहाँ
जुआ खेला जाता हो । जुआ खेलने का मझा ।

जुआचोर—संज्ञा पुं० [हि० जुआ + चोर] १. वह जुमारी जो अपना

दाँव जीतकर खिसक जाय। २. धोखेबाज। धोखा देकर दूसरों का माल उड़ा लेनेवाला। ठग। बंचक।

जुआचोरो—संज्ञा स्त्री० [हि० जुआ + चोरी] ठगी। धोखेबाजी। बंचकता।

क्रि० प्र०—करना।

जुआठा—संज्ञा पुं० [हि० जुआ + काठ] दे० 'जुआठा'।

जुआठा—संज्ञा पुं० [सं० युग + काठ] हल में लगनेवाला वह लकड़ी का ढाँचा जो बैलों के कंधों पर रहता है।

जुआड़ी—संज्ञा पुं० [हि० जुआरी] दे० 'जुआरी'।

जुआनी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुवान'।

जुआनी—संज्ञा स्त्री० [हि० जुआन + ई (प्रत्य०)] दे० 'जुवानी'।

जुआब (पु)—संज्ञा पुं० [फा० जवाब] दे० 'जवाब'। उ०—घावे जाड़ जनावे तुषार, हिए बिरहानस जुआब भए की।—हिंदी प्रेमा, पृ० २७१।

जुआर—संज्ञा पुं० [हि० ज्वार] दे० 'ज्वार'। उ०—जाएखने दितहु घालिगन गाड़। जनि जुआर परसे खेलपाड़।—विद्यापति, पृ० ३४३।

जुआर (पु)—संज्ञा पुं० [हि० जुआ + मार (प्रत्य०)] जुआ खेलनेवाला व्यक्ति। जुआड़ी। उ०—संशय सावज शरीर महें, संगहि खेल जुआर।—कबीर बी०, पृ० ८८।

जुआर—संज्ञा स्त्री० [हि० ज्वार] दे० 'ज्वार'।

जुआरदासी—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का पोषा जो फूलों के लिये लगाया जाता है।

जुआर भाटा—संज्ञा [हि० ज्वारभाटा] दे० 'ज्वार भाटा'।

जुआरा—संज्ञा पुं० [हि० जोतार] उतनी शरती जितनी एक जाड़ी बैल एक दिन में जोत सके।

जुआरो—संज्ञा पुं० [हि० जुआ] जुआ खेलनेवाला।

जुईना—संज्ञा पुं० [सं० यून (= बधन या जोड़)] घास या फूस की ऐंठकर बनाई हुई रस्सी जो बोझ बाँधने के काम में आती है।

जुई—संज्ञा स्त्री० [हि० जु] १. छोटी जुआ। २. एक छोटा कीड़ा जो मटर, सेम इत्यादि की फलियों में लगकर उन्हे नष्ट कर देता है।

जुई—संज्ञा स्त्री० [?] बरछी के आकार का काठ का बना वह पात्र जिससे हवन में घी छोड़ा जाता है। भुवा।

जुई—संज्ञा स्त्री० [सं० यूपी, हि० जुही] दे० 'जुही'।

जुकति (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत'। उ०—उकति जुकति रसभरी उठाऊँ। भागमरी को हरष बढ़ाऊँ।—घनानंद, पृ० २४२।

जुकाम—संज्ञा पुं० [हि० जुह + घाम वा घ० जुकाम; तुलनीय सं० यक्ष्मन्, *जख्म, > जुखाम] अस्वस्थता या बीमारी जो सरदी लगने से होती है और जिसमें शरीर में कफ उत्पन्न हो जाने के कारण नाक और मुँह से कफ निकलता है, ज्वराग्र रहता है, सिर भारी रहता और दर्द करता है। सरदी।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—जुकाम बिगड़ना = जुकाम का सूख जाना। मेढकी को जुकाम होना = किसी मनुष्य में कोई ऐसी बात होना जिसकी

उसमें कोई संभावना न हो। किसी मनुष्य का कोई ऐसा काम करना जो उसने कभी न किया हो या जो उसके स्वभाव या अवस्था के विरुद्ध हो।

जुकुट—संज्ञा पुं० [म०] १. कुत्ता। २. मलय पर्वत (को०)।

जुक्ति (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] १. मिलनयोग। उ०—तन चंपक कुंदन मनो के केसर रंग जुक्ति।—पृ० रा०, ६। ५४। २. उपाय। यत्न। उ०—श्रुत मन बास पास मनि तेहि माँ, करि सो जुक्ति बिलगावा।—जबानी, पृ० ४७।

जुग—संज्ञा पुं० [म० युग] १. युग।

मुहा०—जुग जुग = चिर काल तक। बहुत दिनों तक। जैसे,—जुग जुग जोषो।

२. दो। उभय। उ०—बाला के जुग कान मैं बाला सोभा देत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३८८। ३. जप्ता। गृह। दल। गोल।

मुहा०—जुग टूटना = (१) किसी समुदाय के मनुष्यों का परस्पर मिला न रहना। अलग अलग हो जाना। दल टूटना। मंडली तितर बितर होना। जैसे,—सामन शत्रु सेना के दल खड़े थे, पर आक्रमण होते ही वे इधर उधर भागने लगे और उनके जुग टूट गए। (२) किसी दल या मंडली में एकता या मेल न रहना। जुग फूटना = जोड़ा खंडित होना। साथ रहनेवाले दो मनुष्यों में से किसी एक का न रहना।

३. चौसर के खेल में दो गोठियों का एक ही कोठे में इकट्ठा होना। जैसे, छग छूटा कि गोटी मरी। ४. वह डोरा जिसे जुलाहे तारों को अलग अलग रखने के लिये ताने में डाल देते हैं। ५. पुस्त। पीढ़ी।

जुगजुगाना—क्रि० प्र० [हि० जगना (= प्रज्वलित होना)] १. मंद मंद और रह रहकर प्रकाश करना। मंद ज्योति से चमकना। टिमटिमाना। जैसे, तारो का जुगजुगाना। उ०—कोठरी के कोने में एक दीया जुगजुगा रहा था। २. ध्वनत या होन दशा से क्रमशः कुछ उन्नत दशा को प्राप्त होना। कुछ कुछ उभरना। कुछ कीर्ति या समृद्धि प्राप्त करना। कुछ बढ़ना या नाम करना। जैसे,—वे इधर कुछ जुगजुगा रहे थे कि चल बसे।

जुगजुगी—संज्ञा स्त्री० [हि० जुगजुगाना] एक चिड़िया जिसे शकर-खोरा भी कहते हैं।

जुगत—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] १. युक्ति। उपाय। तदबीर। बंग। उ०—सद्द मस्कला करे जान का कुर्रंड लगावे। जोग जुगत से मलै दाग तब मन का जावे।—पलटू, भा० १, पृ० २।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—जुगत भिड़ाना या मिलाना या लगाना = जोड़ तोड़ बैठाना। बंग रचना। उपाय करना। तदबीर करना।

२. व्यवहारकुशलता। चतुराई। हथकंडा। ३. चमत्कारपूर्ण उक्ति। चुटकुला।

जुगति (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] उपाय। तदबीर। उ०—जोष-जुगति सिखए सबै मनो महामुनि मैं। बाहृत पिय प्रह्वैतवा काननु सेवत नैन।—बिहारी र०, दो० १३।

जुगती^१—वि० [हि० जुगत + ई (प्रत्य०)] स्पायी । युक्ति-कुशल । जोड़ तोड़ बैठा लेने में कुशल

जुगती^२—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] युक्ति । उपाय । उ०—कोई कहे जुगती सब जानूँ कीह कहे मैं रहती । घातम देव सों पारथो नहीं यह सब झूठी कहनी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० १०१

जुगनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जीगना] दे० 'जुगनू' ।

जुगनी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का गाना जो पंजाब में गाया जाता है ।

जुगनी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का घासूषण । वि० दे० 'जुगन' २. । उ०—गल में कटवा, कंठा, हँसली, उर में हुमेल कस चंपकली, जुगनी चौकी, मूँगे नकली ।—ग्राम्या०, पृ० ४० ।

जुगनू—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिरिङ्गण, प्रा० जोहंगण अथवा हि० जुग-जुगाना] १. गुबरेले की जाति का एक कीड़ा जिसका पिछला भाग प्रायः की चिनगारी की तरह चमकता है । यह कीड़ा बरसात में बहुत दिखाई पड़ता है । खद्योत । पटबीजना ।

विशेष—तितली, गुबरेले, रेशम के कीड़े प्रायः की तरह यह कीड़ा भी ढोले के रूप में उत्पन्न होता है । ढोले की अवस्था में यह मिट्टी के घर में रहता है और उसमें से उस दिन के उपरात रूपांतरित होकर गुबरेले के रूप में निकलता है । इसके पिछले भाग से फासफरस का प्रकाश निकलता है । सबसे चमकीले जुगनू दक्षिणी अमेरिका में होते हैं जिनसे कहीं कहीं लोग दीपक का काम भी लेते हैं । इन्हें सामने रखकर लोग महीन से महीन अक्षरों की पुस्तकें भी पढ़ सकते हैं ।

२. स्त्रियों का एक गहना जो पान के आकार का होता है और गले में पहना जाता है । रामनामी ।

जुगम^१—वि० [सं० युग्म] दे० 'युग्म' । उ०—ररो ममु जुगम अंश बाकी रह्या ।—रघु० ६०, पृ० ५७ ।

जुगल—वि० [सं० युगल] दे० 'युगल' । उ०—लाल कंचुकी मैं उगे जीवन जुगल लखात ।—भारतेंदु श्र०, भा० १, पृ० ३८७ ।

जुगलस्वरूप^१—संज्ञा पुं० [सं० युगल + स्वरूप] १. नियामक प्रकृति पुरुष के रूप में मान्य युग्म विग्रह । २. राधाकृष्ण । उ०—तब युगल स्वरूप ने बा कोठी में ही दरसन दीनो ।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० ७८ ।

जुगलिया—संज्ञा पुं० [?] जैन कथाओं के अनुसार वह मनुष्य जिसके ४०६६ बाल मिलकर आजकल के मनुष्यों के एक बाल के बराबर हों ।

जुगवना—क्रि० सं० [सं० योग + वचना (प्रत्य०)] १. संचित रखना । एकत्र करना । जोड़ जोड़कर रखना कि समय पर काम आए । २. द्विफाजत से रखना । सुरक्षित रखना । यत्न और रक्षापूर्वक रखना ।

जुगाड़ी—संज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० योग (= योजन) + हि० घाड़ (प्रत्य०)] १. व्यवस्था । कार्यसाधन का मार्ग । २. युक्ति ।

क्रि० प्र०—करना । बंठाना ।

जुगादरी—वि० [सं० युगान्तरीय] बहुत पुराना । बहुत दिनों का ।

जुगाना^१—क्रि० सं० [हि० जुगवना] दे० 'जुगवना' । उ०—जस सुबंगम मणि जुगावे अस शिष्य गुरु आज्ञा गहे ।—कबीर सा० पृ० २१२ ।

जुगारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'जुगाली' उ०—बैठे हिरन सुहावने जिन पै करत जुगार ।—शकुंतला, पृ० ११६ ।

जुगालना—क्रि० प्र० [सं० उद्दिगलन (= उगलना)] सींगवाले चौपायों का निगले हुए चारे को थोड़ा थोड़ा करके गले से निकाल मुँह में लेकर फिर से धीरे धीरे चबाना । पागुर करना ।

जुगाली—संज्ञा स्त्री० [हि० जुगालना] सींगवाले चौपायों की निगले हुए चारे को गले से थोड़ा थोड़ा निकाल निकाल फिर से चबाने की क्रिया । पागुर । रोमथ ।

क्रि० प्र०—करना ।

जुगी^१—संज्ञा पुं० [सं० योगी] योग करनेवाला । योगी । उ०—रिषि संत जनी जगम जुती रहहि ध्यान प्रारंभ मह ।—पु० रा०, १२।८६ ।

जुगी^२—वि० [हि० युगी] युग से संबंध रखनेवाला । युग का । विशेष—इसका प्रयोग समास में ही मिलता है । जैसे सतयुगी, कलयुगी ।

जुगुत^१—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत' ।

जुगुति—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत' । उ०—हीत डमरु कर लीमा संख । जोग जुगुति गिम भरल माथ ।—विद्यापति, पृ० ३६७ ।

जुगुप्सक—वि० [सं०] व्यर्थ दूसरे की निंदा करनेवाला ।

जुगुप्सन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जुगुप्स, जुगुप्सित] निंदा करना । दूसरे की बुराई करना ।

जुगुप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निंदा । गर्हणा । बुराई । २. भयदा । घृणा ।

विशेष—साहित्य में यह बीभत्स रस का स्थायी भाव है और शांत रस का व्यभिचारी । पतंजलि के अनुसार शौच या शुद्धि लाभ कर लेने पर अपने अंगों तक से जो घृणा हो जाती है और जिसके कारण सांसारिक प्राणियों तक का संसर्ग अच्छा नहीं लगता, उसका नाम 'जुगुप्सा' है ।

जुगुप्सित—वि० [सं०] निंदित । घृणित ।

जुगुप्सु—वि० [सं०] निषक । बुराई करनेवाला ।

जुगुप्सू—वि० [सं०] दे० 'जुगुप्सु' ।

जुगुत—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'युक्ति' । उ०—जोग जुगुत ते भरम न छूटे जब लग घापन सुभे । कहे कबीर सोइ सतगुरु पूरा जो कोइ समझै बूझै ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५२ ।

जुग्म—वि० [सं० युग्म] दे० 'युग्म' ।—अनेकार्थ०, पृ० ३३ ।

जुज^१—संज्ञा पुं० [प्र० जुज, मि० सं० युज्] १. कागज के ८ पृष्ठों या १६ पृष्ठों का समूह । एक फारम ।

यौ०—जुजबंदी ।

२. प्रश्न । टुकड़ा । उ०—जुज से कुल कतरे से दरिया बन जावे । अपने को खोये तब अपने को पावे ।—भारतेंदु श्र०, भा० २, पृ० ५६७ ।

जुज^१—अर्थ० [फ्रा० जुज] ...को छोड़कर । ...के सिवा । बिना ।
बगैर [को०] ।

जुजदान—संज्ञा पु० [अ० जुज + फ्रा० दान] बस्ता । वह धेला
जिसमें लड़के पुस्तकें आदि रखते हैं ।

जुजबंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० जुज + फ्रा० बंदी] किताब की सिलाई
जिसमें घाठ घाठ वा सोलह मोलह पन्ने एक साथ सिए
जाते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।

जुजरस—वि० [अ० जुजरस] १. सूक्ष्मदर्शी । तीव्र बुद्धिवाला ।
२. मितव्ययी । ३. कंशुग । कृपण [को०] ।

जुजरसी—संज्ञा स्त्री० [अ० जुजरसी] १. सूक्ष्मदर्शिता । २. मित-
व्ययिता [को०] ।

जुज ब कुल—संज्ञा पु० [अ० जुज ब कुल] अंग और संपूर्ण ।
संपूर्ण । कुल [को०] ।

जुजबी—वि० [अ० जुजबी] १. बहुत मे से कोई एक । बहुत कम ।
कुछ थोड़े से । २. बहुत छोटे अंश का । जैसे, जुजबी
हिस्सेदार ।

जुजाम—संज्ञा पु० [अ० जजाम] कुष्ठ रोग । कोढ़ । उ०—फिर
फोर हुआ है उसको जुजाम । जीने में किया उसको नाकाम ।
—दक्खिनी०, पृ० २२६ ।

जुजीठल^७—संज्ञा पु० [सं० युधिष्ठिर] राजा युधिष्ठिर ।
(हि०) ।

जुज्झ^७—संज्ञा स्त्री० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ] युद्ध । लड़ाई ।
उ०—छमा तरवार से जग को बसि करे, प्रेम की जुज्झ
मैदान होई ।—पल्लव०, भा० २, पृ० १५ ।

जुज्झाना^७—क्रि० ग० [हि० जुझाना] १. लड़ने के लिये
प्रोत्साहित करना । लड़ा देना । २. लड़ाकर मरवा डालना ।

जुझाऊ—वि० [हि० जुझ, झूझ + आऊ (प्रत्य०)] १. युद्ध का ।
युद्ध संबंधी । जिसका व्यवहार रणक्षेत्र में हो । लड़ाई में
काम आनेवाला । उ०—बाजे बिहद जुझाऊ बाजे । निरसे
मग तुरग गज गाजे ।—हम्मीर०, पृ० ५१ । २. युद्ध के
लिये उत्साहित करनेवाला । जैसे, जुझाऊ बाजा, जुझाऊ
राग । उ०—बाजहिं होज निसान जुझाऊ । सुनि सुनि
होय भटन मन चाऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।

जुझाना—क्रि० सं० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ] १. लड़ा देना । युद्ध
के लिये प्रेरित करना । २. युद्ध में मरवा डालना ।

जुझार^७—वि० [हि० जुझ + झार (प्रत्य०)] लड़ाका ।
सूरमा । वीर । बाँकुरा । बहादुर । उ०—सकन सुरासुर
जुरहिं जुझार । रामहिं समर को जीतनहार ।—तुलसी
(शब्द०) ।

जुझावर—वि० [हि० जुझ + आवर (प्रत्य०)] जुझानेवाला ।
उ०—जहाँ बजे जुझावर बाजा, सब कारर उठि उठि भाजा ।
—कबीर श०, भा० ३, पृ० २० ।

जुट—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्त, प्रा० जुत्त अथवा सं० जुट ?] १. जो

परस्पर मिली हुई वस्तुएँ । एक साथ के दो आदमी या वस्तु ।
जोड़ी । जुग । २. एक साथ बंधी या लगी हुई वस्तुओं का
समूह । लाट । थोक । ३. गुट । मंडली । जत्था । दल । ४.
ऐसे दो मनुष्य जिनमें खूब मेल हो । जैसे,—उन दोनों की
एक जुट है । ५. जोड़ का आदमी या वस्तु ।

जुटक—संज्ञा पु० [सं०] १. जटा । २. गुंथी । खोटी । लूहा [को०] ।

जुटना—क्रि० अ० [सं० युक्त, प्रा० जुत्त + ना (प्रत्य०) या सं० जुट्,
बांधना] १. दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार
मिलना कि एक का कोई पार्श्व या अंग दूसरे के किसी
पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे । एक वस्तु
का दूसरी वस्तु के साथ इस प्रकार सटना कि बिना
प्रयास या आघात के अलग न हो सके । दो वस्तुओं का
बंधने, चिपकने, मिलने या जड़ने के कारण परस्पर मिलकर
एक होना । संबद्ध होना । सश्लिष्ट होना । जुड़ना । जैसे,—
इस खिलौने का टूटा सिर गोद से नहीं जुटता, गिर गिर
पड़ता है ।

संयो० क्रि०—जाना ।

विशेष—मिलकर एक रूप हो जानेवाले द्रव या चूर्ण पदार्थों
के संबंध में इस क्रिया का प्रयोग नहीं होता ।

२. एक वस्तु का दूसरी वस्तु के इतने पास होना कि दोनों के
बीच अवकाश न रहे । दो वस्तुओं का परस्पर इतने निकट
होना कि एक का कोई पार्श्व दूसरे के किसी पार्श्व से छू
जाय । भिड़ना । सटना । लगा रहना । जैसे,—मेज इस प्रकार
रखो कि चारपाई से जुटी न रहे । ३. लिपटना । चिमटना ।
गुथना । जैसे—दोनों एक दूसरे से जुटे हुए खूब लात धूँसे चला
रहे हैं । ४. संभोग करना । प्रसंग करना । ५. एक ही
स्थान पर कई वस्तुओं या व्यक्तियों का आना या होना ।
एकत्र होना । इकट्ठा होना । जमा होना । जैसे,—भीड़
जुटना, आदमियों का जुटना, सामान जुटना । ६. किसी कार्य
में योग देने के लिये उपस्थित होना । जैसे,—आप निश्चित
रहे, हम मोके पर जुट जायेंगे । ७. किसी कार्य में जी जान
से लगना । प्रवृत्त होना । तत्पर होना । जैसे,—ये जिस काम
के पीछे जुटते हैं उये कर ही के छोड़ते हैं । ८. एकमत
होना । अभिसंधि करना । जैसे,—दोनों ने जुटकर यह उपद्रव
लड़ा किया है ।

जुटली—वि० [सं० जुट] लड़ेवाला । जिसे लंबे लंबे बालों की
लट हो । उ०—सखी री नदनंदनु देखु । धूरि धूसर जटा
जुटली हरि किए हर भेनु ।—सूर (शब्द०) ।

जुटाना—क्रि० सं० [हि० जुटना] १. दो या अधिक वस्तुओं को
परस्पर इस प्रकार मिलाना कि एक का कोई पार्श्व या अंग
दूसरे के किसी पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे ।
जोड़ना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. एक वस्तु को दूसरी के इतने पास करना कि एक का कोई

भाग दूसरे के किसी भाग से छू जाय। भिड़ना। सटाना।
३. इकट्ठा करना। एकत्र करना। जमा करना।

जुटाव—संज्ञा पुं० [हि० जुट + प्राव (प्रत्य०)] जमाव। बटोर।

जुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शिक्षा। बुंदी। चुटिया। २. गुच्छा।
सट। जुड़ी। जुट्टी। ३. एक प्रकार का कपूर।

जुट्टा^१—संज्ञा पुं० [हि० जुटना] १. घास, पत्तियों या टहनियों का एक में बँधा पूला। घाँटी। २. एक समूह या जुट में उगनेवाली घास जाति की कोई वनस्पति। जैसे, सरपत का जुट्टा, काँस का जुट्टा।

जुट्टा^२—वि० परस्पर मिला या सटा हुआ।

जुट्टा^३—संज्ञा स्त्री० [हि० जुटना] १. घास, पत्तियों या टहनियों का एक में बँधा हुआ छोटा पूला। अँटिया। जूरी। जैसे, तंबाकू की जुट्टी, पुबोने की जुट्टी। २. मूरन आदि के नए कल्ले जो बँधे हुए निकलते हैं। ३. तले ऊपर रखी हुई एक प्रकार की कई बिपटी (पत्तर या परत के आकार की) वस्तुओं का समूह। गड्डी। जैसे, रोटियों की जुट्टी, रुपयों की जुट्टी, पैसों की जुट्टी। ४. एक पकवान जो शाक या पत्तों को बेसन, पीठी आदि में लपेटकर तलने से बनता है।

जुट्टी^२—वि० जुटी या मिली हुई। जैसे, जुट्टी भाँ।

जुठारना—क्रि० सं० [हि० जूठा] १. खाने पीने की किसी वस्तु को कुछ खाकर छोड़ देना। खाने पीने की किसी वस्तु में मुँह लगाकर उसे अपवित्र या दूसरे के व्यवहार के अयोग्य करना। उच्छिष्ट करना।

विशेष—हिंदू आचार के अनुसार जूठी वस्तु का खाना निषिद्ध समझा जाता है।

संयो० क्रि०—डालना। देना।

२. किसी वस्तु को भोग करके उसे किसी दूसरे के व्यवहार के अयोग्य कर देना।

जुठिहारा—संज्ञा पुं० [हि० जूठा + हारा] [स्त्री० जुठिहारी] जूठा खानेवाला। उ०—मूरदास पशु नदनदन कहै हम ग्वालन जुठिहारे।—सूर (शब्द०)।

जुठैला—वि० [हि० जूठा + ऐल (प्रत्य०)] उच्छिष्ट। जूठा।

जुठौला—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटे पैरोंवाली बादामी रंग की एक चिड़िया जो समूह में रहती है।

जुड़गी—संज्ञा स्त्री० [हि० जुड़ना + गंग] धति निकट का संबंध। भंग और भंगी जैसी घनिष्टता।

जुड़ना—क्रि० प्र० [हि० जुटना या सं० जुड (= बाँधना)] १. दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार मिलना कि एक का कोई पार्श्व या भंग दूसरे के किसी पार्श्व या भंग के साथ छड़तापूर्वक लगा रहें। दो वस्तुओं का बँधने, बिपकने, सिलने, या जड़े जाने के कारण परस्पर सिलकर एक होना। संबद्ध होना। संश्लिष्ट होना। संयुक्त होना।

क्रि० प्र०—जाना।

२. संयोग करना। संभोग करना। प्रसंग करना। ३. इकट्ठा होना। एकत्र होना। ४. किसी काम में योग देने के लिये

उपस्थित होना। ५. उपलब्ध होना। प्राप्त होना। मिलना। मयस्सर होना। जैसे, कपड़े लते जुड़ना। उ०—उसे तो चने भी नहीं जुड़ते। ६. गाड़ी आदि में बैल लगना। जुतना।

जुड़पत्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० जूड़ + पत्ति] शीत और पित्त से उत्पन्न एक रोग जिसमें शरीर में खुजली उठती है और बड़े बड़े चकत्ते पड़ जाते हैं।

जुड़वाँ^१—वि० [हि० जुड़ना] जुड़े हुए। यमल। गर्भकाल से ही एक में सटे हुए। जैसे, जुड़वाँ बच्चे।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग गर्भजात बच्चों के लिये ही होता है।

जुड़वाँ^२—संज्ञा पुं० एक ही साथ उत्पन्न दो या अधिक बच्चे।

जुड़वाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जुड़वाना] दे० 'जोड़वाई'।

जुड़वाना^१—क्रि० सं० [हि० जुड़] १. ठंडा करना। सुखी करना। जैसे, छाती जुड़वाना।

जुड़वाना^२—क्रि० सं० [हि० जोड़वाना] दे० 'जोड़वाना'।

जुड़ाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ाई] दे० 'जोड़ाई'।

जुड़ाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जुड़ाना] ठंडक। शीतलता। जाड़ा। उ० जो करि कष्ट जाइ पूति कोई। जातहि नौद जुड़ाई होई।—मानस, १। ३६।

जुड़ाना^१—क्रि० प्र० [हि० जूड़] १. ठंडा होना। शीतल होना। २. शांत होना। तृप्त होना। प्रसन्न होना। संतुष्ट होना। संयो० क्रि०—जाना।

जुड़ाना^२—क्रि० सं० १. ठंडा करना। शीतल करना। २. शांत और संतुष्ट करना। तृप्त करना। प्रसन्न करना। उ०—खोजत रहेउ तोहि सुतघासी। भाजु निपाति जुड़ावट्ट छाती।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

जूड़ाना^१—क्रि० सं० [हि० जुड़ना का क्रि० सं० रूप] जोड़ने का काम किसी और से कराना।

जूड़ावना^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जूड़ाना'।

जूड़ावाँ—वि०, संज्ञा पुं० [हि० जूड़वाँ] दे० 'जूड़वा'।

जूड़ीशाल—वि० [प्र०] दीवानी या फौजदारी संबंधी। न्याय संबंधी।

जुत^१—वि० [सं० युत] दे० 'युत'। उ०—(क) जानी जाति नारिन दवारि जुत बन में।—मतिराम (शब्द०)। (ख) जननद जुत नरवर लई घर लज्जन अपार। दबोहा पारेछ लह, रैयत करी पुकार।—प० रामो, पृ० ८८।

जुतना—क्रि० प्र० [सं० युक्त, प्र० जुत] १. बैल, घोड़े आदि का गाड़ी में लगना। नधना। २. किसी काम में परिश्रमपूर्वक लगना। किसी परिश्रम के वायें में तत्पर या मग्न होना। जैसे,—वह दिन भर काम में जुता रहता है। ३. लड़ाई में लगना। युधना। जुटना। ४. जोता जाना। हल चलने के कारण जमीन का खुदर भुरभुरी हो जाना। जैसे,—यह खेत दिन भर में जुत जायगा।

जुतवाना—क्रि० सं० [हि० जोतना] १. दूसरे से जोतने का काम करवाना। दूसरे से हल चलवाना। जैसे, जमीन जुतवाना, खेत जुतवाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. बेल, घोड़े आदि को गाड़ी, हल आदि में खींचने के लिये लगवाना। नधवाना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग जो पशु जोते जाते हैं तथा जिस वस्तु में जोते जाते हैं, दोनों के लिये होता है। जैसे, घोड़े जुतवाना, गाड़ी जुतवाना।

संयो० क्रि०—देना।

जुताई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोताई'।

जुताना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जोताना'।

जुतियाना—क्रि० सं० [हि० जूता से नामिक धातु] १. जूता मारना। जूतों से मारना। जूते लगाना। २. अत्यंत निराश्वर करना। अपमानित करना।

जुतियौबल—संज्ञा स्त्री० [हि० जूतियाना + औबल (प्रत्य०)] परस्पर जूतों की मार।

क्रि० प्र०—होना।

जुत्थ(५)—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] दे० 'यूथ'।

जुथौकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटी बिड़िया।

विशेष—इसकी छाती और गरदन का कुछ अंश सफेद और बाकी भूरा होता है।

जुदा—वि० [फा०] [स्त्री० जुदी] १. पृथक्। अलग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जुदा करना = नौकरी से छुड़ाना। काम से अलग करना। २. भिन्न। निराला। ३. अन्य। दूसरा (को०)। ४. विरही। विरहग्रस्त (को०)।

जुदाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] बिछोह। वियोग। दो व्यक्तियों का एक दूसरे से अलग होने का भाव। विरह।

क्रि० प्र०—होना।

जुदागाना—क्रि० वि० [फा० जुदागानह] अलग अलग। पृथक्-पृथक्। उ०—हर मुल्क की चाल चलन, लिबास, पोशाक और रस्मों रिवाज जुदागाना होता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५७।

जुदी—वि० स्त्री० [फा० जुदी] दे० 'जुदा'।

जुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध] दे० 'युद्ध'। उ०—साहब दी सुरतनां आह गज जुद्ध निरखिय।—पृ० रा०, १६। १०२।

जुध(५)—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध] दे० 'युद्ध'। उ०—हैं ब्रह्म राय जुष करन जोग। जुष आजि जाउ तो परे सोग।—पृ० रा०, १। ४५५।

जुधवान्(५)—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध + हि० वान (प्रत्य०)] योद्धा। युद्ध करनेवाला व्यक्ति।

जुनब्बी(५)†—संज्ञा स्त्री० [अ० जनब] जनब नगर की निमित्त तलवार। उ०—जगि जोर जुनब्बी फहरत फरबे मुंइनि गब्बी फर पाटे।—पद्याकर ग्रं० पृ० २७।

जुना†—वि० [हि० जूना] दे० 'जीण'। उ०—जो जुने थिगले सिया है इस बजा। कुछ अजब तेरी कदर है भी कजा।—बक्सरी०, पृ० १७५।

जुनारदार—वि० [अ० जुनार + फा० दार] १. बाह्य। २. जनेऊ धारण करनेवाला। उ०—केसोबास मारु भरि हरम कमठ कटी जैन खां जुनारदार मारे एक नीर के।—अकबरी० पृ० ११६।

जुनिपर—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का अंग्रेजी फूल जो कई रंगों का होता है।

जुनू—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जूनून'। उ०—जंजीर जुनू कड़ी न पड़ियो। दीवाने का पाँव दरमियाँ है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०६।

जुनून—संज्ञा पुं० [अ०] पागलपन। सनक। झूक। उन्माद।

जुनूनी—वि० [अ०] विक्षिप्त। सनकी। उन्मत्त (को०)।

जुनूब—संज्ञा पुं० [अ० जुनूब] दक्षिण। दक्खिन (को०)।

जुन्नार—संज्ञा पुं० [अ०] यज्ञोपवीत। जनेऊ। उ०—बा तजरबये तसबीहो जुन्नार झुका।—कबीर मं०, पृ० ४६८।

जुन्हरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल] ज्वार नाम का अन्न।

जुन्हाई†—संज्ञा [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा] १. चाँदनी। चंद्रिका। उ०—सुमन बास स्फुटत कुसुम निकर तैमी है शरद जैसी रेन जून्हाई।—अकबरी०, पृ० ११२। २. चंद्रमा।

जुन्हारी—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल] ज्वार नाम का अन्न।

जुन्हैया†—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा, हि० जोन्ही + ऐया (प्रत्य०)] १. चाँदनी। चंद्रिका। चंद्रमा का उजाला। २. चंद्रमा। उ०—अहित अनेमो ऐसो कीत उगहास याते सोचन खरी मैं परी जोवति जुन्हैया को।—पद्याकर (शब्द०)

जुम्त—संज्ञा पुं० [फा० जुम्त] १. गुम्त। जोड़ा। २. सम संख्या जो दो से बँट जाय। ३. जूता (को०)।

जुबक(५)—संज्ञा पुं० [सं० युवक] दे० 'युवक'। उ०—प्रातः समय नित न्हाय जुबक जोधा जित आए।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २३।

जुबति(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'युवति'। उ०—अवलि निम्न जातीय जुबति जन जुरि जहँ जाही।—प्रेमघन०, पृ० ४८।

जुबन(५)—संज्ञा पुं० [सं० योवन] दे० 'योवन'। उ०—जुबन रूप संग सोभा पावे। सोह कुरूप संग बदन दुरावे।—तंद० ग्रं०, पृ० ११७।

जुबराज(५)—संज्ञा पुं० [सं० युवराज] दे० 'युवराज'।

जुबल्लो—संज्ञा स्त्री० [अ० या इब्रानी योबल] किसी महत्वपूर्ण घटना का स्मारक महोत्सव। जश्न। बड़ा जलसा।

जुषा(५)—संज्ञा पुं० [सं० युवन] युवावस्था। उ०—बालपना भोले गयो, और जुबा महमंत।—कबीर सा०, पृ० ७६।

जुषाद(५)—संज्ञा पुं० [अ० जुषाद] एक प्रकार का मधुद्रव्य जो मधु-माजूर से निकाला जाता है (को०)।

जुवान—संज्ञा स्त्री० [फा० जवान] दे० 'जवान'।

जुबानी—वि० [फ्रा० ज़बानी] दे० 'जबानी' ।

जुब्बन^१—संज्ञा पुं० [सं० यौवन, प्रा० जुत्वन] दे० 'यौवन' ।
उ०—जुब्बन क्यों बसि होई छक्क मैमंत की । —सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३६३ ।

जुब्बा—संज्ञा पुं० [अ० जुब्बह्] फकीरों का एक प्रकार का लंबा पहनावा । झुब्बा । लंबा धरगला । योगा । उ०—जो एक सोजन कू लाघो होर तागा । सिधो मेरे जुब्बे में एक दो टांका । —दक्खिनी०, पृ० ११५ ।

जुमकना^१—क्रि० प्र० [हि० जमना] १. जमकर लड़ा होना । झड़ना । २. एकत्र होना । जोम में आना । उ०—जीतत जुमकि पीन मग संगनि । —पद्माकर ग्रं०, पृ० ६ ।

जुमना^१—संज्ञा पुं० [देश०] खेत में पौस या खाद देने का एक ढंग जिसके अनुसार कटी हुई झाड़ियों और पेड़ पौधों को खेत में बिछाकर जला देते हैं और बची हुई राख को मिट्टी में मिला देते हैं ।

जुमना^२—क्रि० प्र० [अ० जोम] जोश में आना । झड़ना । उ०—जबानी जुमी जमाल सूरति देखिए पिर नाहि बे । —दे० बानी, पृ० ३२ ।

जुमला^१—वि० [अ० जुम्लह्] सब । कुल । सबके सब ।

जुमला^२—संज्ञा पुं० १. वह पूरा वाक्य जिससे पूरा अर्थ निकलता हो । २. जोड़ (को०) ।

जुमहूर—संज्ञा पुं० [अ० जुम्हूर] जनता । जनसाधारण । सर्वसाधारण (को०) ।

जुमहूरियत—[अ० जुम्हूरियत] गणतंत्र । जनतंत्र । प्रजातंत्र (को०) ।

जुमहूरी—वि० [अ० जुम्हूर+फ्रा० ई (प्रत्य०)] सार्वजनीन । लोकसंचालित (को०) ।

जुमहूरी सत्तनत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुम्हूर+फ्रा० ई (प्रत्य०) + अ०] सत्तनत गणतंत्र राज्य । जनतंत्र शासन । प्रजातंत्र राष्ट्र (को०) ।

जुमा—संज्ञा पुं० [अ० जुमम] शुक्रवार ।

यौ०—जुमा मसजिद ।

जुमा मसजिद—संज्ञा स्त्री० [अ० जुमम मस्जिद] वह मसजिद जिसमें जमा होकर मुसलमान लोग शुक्रवार के दिन दोपहर की नमाज पढ़ते हैं ।

जुमिल—संज्ञा पुं० एक प्रकार का घोड़ा । उ०—गुरी गुंठ जुमिल दरियाई । —रघुनाथ (शब्द०) ।

जुमिला^१—वि० [अ० जुम्लह्] सब । समस्त । संपूर्ण । उ०—श्री नयपाल जुमिला के छितिपाल । —मूषण ग्रं०, पृ० ५२ ।

जुमिल्ला—संज्ञा पुं० [?] वह खूँटा जो लपेटन की बाईं ओर गड़ा रहता है और जिसमें लपेटन लगी रहती है । (जुलाहों की बोली) ।

जुमुकना—क्रि० प्र० [सं० यमक] १. निकट आ जाना । पास आ जाना । २. जुड़ना । इकट्ठा होना ।

जुमेरात—संज्ञा स्त्री० [अ० जुमरात] बृहस्पतिवार । शुक्रवार । बीके ।

जुमेराती—वि० [अ० जुमरात+फ्रा० ई (प्रत्य०)] जो जमेरात को पैदा हुआ हो ।

विशेष—मुसलमानों में इस प्रकार के नाम जमेरात को पैदा बच्चों के रखे जाते हैं ।

जुम्मा^१—संज्ञा पुं० [अ० जुमम] दे० 'जुमा' ।

जुम्मा^२—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मह्] दे० 'जिम्मा' ।

जुम्मा^३—वि० [अ० जमम] कुल । सब । संपूर्ण ।

मुहा०—जुम्मा जुम्मा आठ दिन = (१) थोड़े दिन । कुछ दिन । चंदरोज । (२) कुल मिलाकर आठ दिन । कुल मिलाकर इने गिने दिन ।

जुयांग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जंगली जाति ।

विशेष—इस जाति के लोग सिंहभूमि के दक्षिण उड़ीसा में पाए जाते हैं और कोलों से मिलते जुलते होते हैं ।

जुर^१—संज्ञा दे० [सं० ज्वर] दे० 'ज्वर' । उ०—अपने कर जु बिरह जुर ताते । मति भुरि बाहि डरति तिय पाते । —नंद० ग्रं०, पृ० १३२ ।

जुरअत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुअत] साहस । हिम्मत । हियाव । जबहा ।

जुरफुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वर या ज्वृति + हि० भरभराना] १. हलकी गरमी जो ज्वर के आदि में जान पड़ती है । ज्वरांश । हराश । २. ज्वर के आदि की कंपकंपी । शीत कंप ।

जुरना^१—क्रि० सं० [हि० जुड़ना] दे० 'जुड़ना' । उ०—(क) पौव रोपि रहै रण माहि रजपूत कोऊ हय गज गाजत जुरत जहाँ दल है । —सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० १०८ । (ख) दग मरुक्त दूटत कूटुम जुरत बतुर बित प्रीति । परति गाँठि दुरजन हिप बई नई यह रीति । —बिहारी (शब्द०) ।

जुरबाना^१—संज्ञा पुं० [हि० जुरमाना] दे० 'जुरमाना' ।

जुरमाना—संज्ञा पुं० [अ० जुम, फ्रा० जुमानह्] अर्थबंड । धनबंड । वह बंड जिसके अनुसार अपराधी को कुछ धन देना पड़े ।
क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—खेना ।—लगना ।—होना ।

जुरर^१—संज्ञा पुं० [हि० जुरी] दे० 'जुरी' । उ०—जुरर बाज बहु कुहो कुहेल । —प० रासो, पृ०, पृ० १८ ।

जुररा^१—संज्ञा पुं० [हि० जुरी] दे० 'जुरी' । उ०—जुररा सिकार तीतर बटेर । पेलंत सरित ठह बइ बबेर । —पृ० रा०, ५।१६ ।

जुराना^१—क्रि० प्र० दे० 'जुड़ाना' । उ०—कंत थोक सीमंत की बैठी गाँठ जुराह । पेखि परोसी कों, पिया घूँघुट में मुसिक्याह । —मति० ग्रं०, पृ० ४४४ ।

जुराना^२—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जुड़ाना' ।

जुराफा—संज्ञा पुं० [अ० जिराफ] अफरीका का एक जंगली पशु ।

विशेष—इसके खुर बैज के रंग, हाँ में और गर्दन ऊँट की सी लंबी, सिर हिरन का सा, पर बहुत छोटे छोटे घीर पूँछ गाय की सी होती है । इसके चमड़े का रंग नारंगी का सा होता है जिसपर बड़े बड़े काले धब्बे होते हैं । संसार भर में सबसे ऊँचा पशु यही है । १५ या १६.

फुट तक की ऊँचाई तक के तो सब ही होते हैं पर कोई कोई १८ फुट तक की ऊँचाई के भी होते हैं। इसकी आँखें ऐसी बड़ी और उभरी हुई होती हैं कि बिना सिर फेरे हुए ही यह अपने चारों ओर देखा सकता है। इसी से इसका पकड़ना या शिकार करना बहुत कठिन है। इसके मथुनों की बनावट ऐसी विशिष्ट होती है कि जब यह चाहे उन्हें बंद कर ले सकता है। इसकी जीभ १७ इंच तक लंबी होती है। यह प्रायः वृक्षों की पत्तियों खाता है और मैदानों में झुंड बांधकर रहता है। चरते समय झुंड के चारों ओर चार जुराफे घूरे पर रहते हैं जो शत्रु के आने की सूचना तुरंत झुंड को दे देते हैं। शिकारी लोग घोड़ों पर सवार होकर इसका शिकार करते हैं, परंतु बहुत निकट नहीं जाते, क्योंकि इसके लात की बोट बहुत कड़ी होती है। इसका चमड़ा इतना सख्त होता है कि उसपर गोली प्रसर नहीं करती। इसका मांस खाया जाता है।

यह पशु झुंड बांधकर परिवारिक रीति से रहता है, इसी से हिंदी कवियों ने इसके छोड़े में अत्यंत प्रेम मानकर इसका काव्य में उल्लेख किया है परंतु समझने में कुछ भ्रम हुआ है और इसको पशु की जगह पक्षी समझा है। जैसे,—(क) मिलि बिहरत बिछुरत मरत संपति प्रति रसलीन। नूतन विधि हेमंत की जगत् जुराफा कीन।—बिहारी (शब्द०)। (ख) जगह जुराफा हूँ जियत तज्यो तेज निज भानु। रूप रहे तुम पूस में यह घौ कोन सयानु।—पद्याकर (शब्द०)।

जुराब—संज्ञा स्त्री० [हि० जुराब] दे० 'जुराब'। उ०—उसकी ऊनी जुराब में एक छेद हो जाय।—अभिषम, पृ० १३८।

जुराबना(०)।—क्रि० स० [हि० जुड़ावना] दे० 'जुड़ाना'।

जुराबरी(०)।—वि० फा० [जोराबरी] दे० 'जोराबरी'। उ०—सुंदर काल जुराबरी ज्यों जागूं स्थों लेह। कोटि जतन जो तू करे तोहूँ रहन न देह।—सुंदर० बं०, भा० २, पृ० ७०३।

जुरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जूति (=ज्वर)] बीमा ज्वर। हुरारत।

जुरी^२—वि० [हि० जुटना] १. जुटी। जुटाई हुई। २. प्राप्त। उ०—जो निबाहो नेह के नाते न तुम जो न रोटी बाँटकर खाओ जुरी।—बुभुते०, पृ० ३५।

यौ०—जुरी कुरी=(१) अजित या प्राप्त संपूर्ण शक्ति। २. परिजन और कुल।

जुर्म—संज्ञा पुं० [अ०] अपराध। वह कार्य जिसके दंड का विधान राजनियम के अनुसार हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—जुर्म खफीफ = छोटा या सामान्य अपराध। जुर्म गहीब = गंभीर अपराध। भारी अपराध।

जुर्माना—संज्ञा पुं० [फा० जुर्माना] अर्थदंड। वह रकम जो किसी अपराध के दंड में चुकानी पड़े।

जुरत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुरमत] दे० 'जुरमत' [क्रि०]।

जुरी—संज्ञा पुं० [फा०] नर बाज। उ०—बुझों पर जुरे, बाज, बहरी इत्यादि।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

जुरीब—संज्ञा स्त्री० [अ०] मोजा। पायताबा।

जुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० जुरी] बाज। मावा बाज।

जुल—संज्ञा पुं० [सं० छल ?] धोखा। दम। भाँसा। पट्टी। छल छंद। चकमा।

क्रि० प्र०—देना।—में आना।

यौ०—जुलबाज। जुलबाजी।

जुलकरन(०)।—संज्ञा पुं० [अ० जुल्करन] सम्राट् सिकंदर की उपाधि जिसके दोनों कंधों पर बालों की लटें पड़ी रहती थीं। उ०—भये मुरीद जुलहा के आई। तबही जुलकरन नाम धराई।—कबीर सा०, पृ० १५१।

जुलकरनैन—संज्ञा पुं० [अ० जुल्करनैन] सुप्रसिद्ध यूनानी बादशाह सिकंदर की एक उपाधि जिसका अर्थ लोग भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं। कुछ लोगों के मत से इसका अर्थ दो सींगोंवाला है। वे कहते हैं कि सिकंदर अपने देश की प्रथा के अनुसार दो सींगोंवाली टोपी पहनता था। इसी प्रकार कुछ लोग 'पूर्व और पश्चिम दोनों कोनों को जीतनेवाला', कुछ लोग '२० वर्ष राज्य करनेवाला' और कुछ लोग 'दो उच्च ग्रहों से युक्त' अर्थात् भाग्यवान् भी अर्थ करते हैं।

जुलना—क्रि० स० [हि० जुड़ना] १. मिलना अर्थात् संमिलित होना। २. मिलना अर्थात् मेट करना।

विशेष—यह क्रिया प्रकृत प्रकली नहीं बोली जाती है। जैसे,—(क) मिल जुलकर रहो। (ख) जिससे मिलना हो, मिल जुल आओ।

जुलफ(०)।—संज्ञा स्त्री० [हि० जुल्फ] दे० 'जुल्फ'। उ०—जुलफ में कुलुफ करी है मति मेरी छलि, एरी अलि कहा करों कल ना परति है।—दीन० ग्रं०, पृ० १०।

जुलफिकार—संज्ञा पुं० [अ० जुल्फिकार] मुसलमानों के बीच खलीफा अली की तलवार का नाम [क्रि०]।

जुलफी—संज्ञा पुं० [हि० जुल्फ] दे० 'जुल्फ'। उ०—दाढ़ी झारत कोऊ, कोऊ जुलफीन सँवारत।—प्रेमघन० भा० १, पृ० २३।

जुलबाज—वि० [हि० जुल+फा० बाज] धोखेबाज। छली। धूर्त। चालाक।

जुलबाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० जुलबाज] धोखेबाजी छल। धूर्तता। चालाकी।

जुलबाना(०)।—वि० [अ० जुल्म+फा० आनह] अत्याचारी। जुल्मी। क्रूर। उ०—जम का फौज बढ़ा जुलबाना पकरि मरोरे काला।—सं० दरिया, पृ० १५२।

जुलमा—संज्ञा पुं० [हि० जुल्म] दे० 'जुल्म'। उ०—जुलम के हेत हलकारे, मनी मगरूर मतवारे। पकड़ जम जूतियों मारे, बहुर बिलकुल नरक डारे।—संत तुरसी०, पृ० २६।

जुलहा—संज्ञा पुं० [हि० जुलहा] दे० 'जुलहा'। उ०—चार वेद

ब्रह्मा ने ठाना । जुलहा झूल गया अभिमाना ।—कबीर सा०, पृ० ८१४

जुलहाई—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक मंगरेजी महीना जो जेठ या अषाढ़ में पड़ता है । यह मंगरेजी का सातवाँ महीना है और ३१ दिनों का होता है । इस मास की १३वीं या १४वीं तारीख को कर्क की संक्रांति पड़ती है ।

जुलाब—संज्ञा पुं० [अ० जुल्लाब, फ़ा० जुलाब] १. रेचन । दस्त ।
क्रि० प्र०—लगना ।

२. रेचक औषध । दस्त लानेवाली दवा ।

क्रि० प्र०—देना । —लेना ।

मुहा०—जुलाब पचना = किसी दस्त लानेवाली दवा का दस्त न लाना बरन् पच जाना जिससे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं ।

विशेष—विद्वानों का मत है कि यह शब्द वास्तव में फ़ा० गुलाब से अरबी साँचे में ढालकर बना लिया गया है । गुलाब दस्तावर दवाओं में से है ।

जुलाल—वि० [अ०] मोठा पानी । स्वच्छ पानी । निथरा हुआ जल । उ०—के डोने में जूँ है श्री फूलों की फाख । यों कसि में जूँ है आबे जुलाल ।—दक्खिनी०, पृ० १५० ।

जुलाहा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जीलाह] १. कपड़ा बुननेवाला । तंतुबाध । तंतुकार ।

विशेष—भारतवर्ष में जुलाहे कहलानेवाले मुसलमान हैं । हिंदू कपड़ा बुननेवाले कोली आदि निम्न भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं ।

मुहा०—जुलाहे का तीर = झूठी बात । जुलाहे की सी दाढ़ी = छोटी या नोकदार दाढ़ी ।

२. पानी पर तैरनेवाला एक बीड़ा । ३. एक बरसाती कीड़ा जिसका शरीर गावदुम और मुँह मटर की तरह गोल होता है ।

जुलित—वि० [सं० ज्वलित] जलता हुआ । उ०—जुलित पावक तेज लोचन मारी । सैक दिष्ट को देव दानं सहारी ।—पु० रा०, १०।१६० ।

जुलफ़—संज्ञा स्त्री० [हि० जुल्फ] दे० 'जुल्फ' । उ०—जुलफ़ निसैनी पै चढ़े हग धर पलकें पाइ ।—स० सप्तक, पृ० १८५ ।

जुलफ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० जुल्फ] दे० 'जुल्फ' ।

जुलम—संज्ञा पुं० [हि० जुल्म] दे० 'जुल्म' । उ०—जोर जुलम अकस आवे तोहि कहो को बचावे ।—गुलाल०, पृ० ११७ ।

जुल्मी—वि० [हि० जुल्मी] १. जुल्म करनेवाला । १. अत्यधिक प्रभावित या मोहित करनेवाला ।

जुलूस—संज्ञा पुं० [अ०] १. सिंहासनारोहण ।

क्रि० प्र०—करना । —फरमाना ।

२. राजा या बादशाह की सवारी । ३. उत्सव और समारोह की यात्रा । धूमधाम की सवारी । ४. बहुत से लोगों का किसी विशेष उद्देश्य के लिये जत्था बनाकर निकलना ।

क्रि० प्र०—निकलना । —निकासना ।

जुलोक—संज्ञा पुं० [सं० जुलोक] वैकुण्ठ । स्वर्ग ।

जुल्फ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जुल्फ] सिर के वे लंबे बाल जो पीछे की ओर लटकते हैं । पट्टा । कुल्ले ।

जुल्फी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जुल्फ] जुल्फ । पट्टा ।

जुल्म—संज्ञा पुं० [अ० जुल्म] [वि० जुल्मी] १. अत्याचार । अन्याय । अनीति । जबरदस्ती । धमेल ।

क्रि० प्र०—करना । —होना ।

यौ०—जुल्मदोस्त = अत्याचार पसंद करनेवाला । जुल्मपसंद = अत्याचारी । जुल्मरसीदा = अत्याचार पीड़ित । जुल्मोसितम = अत्याचार ।

मुहा०—जुल्म टूटना = माफ़त या पड़ना । जुल्म ढाना = (१) अत्याचार करना । (२) कोई अद्भुत काम करना । जुल्म-तोड़ना = अत्याचार करना ।

३. माफ़त ।

जुल्मत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुल्मत] अंधकार की कालिमा । अंधेरा । अंधकार । उ०—इस हिंद से सब दूर हुई कुफ की जुल्मत । —भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५३० ।

जुल्मात—संज्ञा पुं० [अ० जुल्मात] [जुल्मत का बहुव०] १. अंधीर अंधेरा । उ०—दूब्या जाके मगरिब के जुल्मात में । लगे दीपने ज्यों बिबे रात में ।—दक्खिनी०, पृ० ८३ । २. बहुत घोर अंधकार जो सिकंदर को अमृतकुंड तक पहुँचने में पड़ा था (को०) ।

जुल्मी—वि० [अ० जुल्म + फ़ा० ई (प्रत्य०)] अत्याचारी ।

जुल्लाब—संज्ञा पुं० [अ० जुलाब] १. रेचन । दस्त ।

क्रि० प्र०—लगना ।

२. रेचक औषध । वि० दे० 'जुलाब' ।

क्रि० प्र०—देना । —लेना ।

जुव—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'युवक' । उ०—बाहर से फगुहार जुरे जुव जन रस राते ।—अमघन०, भा० १, पृ० ३८३ ।

जुव—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'युवती' । उ०—परम मधुर मादक सुनाद जिहि ब्रज जुव मोही ।—नद०, पृ० ४० ।

जुवती—संज्ञा स्त्री० [सं० युवती] दे० 'युवती' ।—अनेकार्थ०, पृ० १०४ ।

जुवराज—संज्ञा पुं० [सं० युवराज] दे० 'युवराज' । उ०—जाइ पुकारे ते सब बन तजार युवराज । सुनि सुषीव हरष कपि करि पाए प्रभु काज ।—मानस, ५।२८ ।

जुवा—संज्ञा पुं० [सं० जूत, हि० जुवा] दे० 'जुवा' । उ०—जुवा खेल खेलन गई जोषित जोबन जोर । क्यों न गई तैं मति गई सुन सुरही के सोर ।—स० सप्तक, पृ० ३६४ ।

जुवा—संज्ञा स्त्री० [सं० युवा] दे० 'युवती' । उ०—साजि साज कुंजन गई लखी न नंबकुमार । रही ठीर ठाढ़ी ठगो जुवा जुवा सी द्वार ।—स० सप्तक, पृ० ३८८ ।

जुवा—वि० [हि० जुवा] दे० 'जुवा' । उ०—मन मिलि मोड़ा तिका माढ़बा, जीम करे लिए माहि जुवा ।—बांकी० प्र०, भा० ३, पृ० १०३ ।

जुवा—वि० [हि०] दे० 'युवा' । उ०—गावति गीत सबे मिलि सुंदरि, नेव जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं ।—तुलसी प्र०, पृ० १५६ ।

जुवाड़ी—संज्ञा पुं० [हि० जुवारी] दे० 'जुवारी' । उ०—घोर, बाकू, जुवाड़ी वा दुष्ट हो।—प्रेमवन०, भा० २, पृ० १८६ ।

जुवाना—संज्ञा पुं० [सं० युवन्, हि० जवान] दे० 'जवान' ।

जुवानी—संज्ञा पुं० [हि० जवानी] दे० 'जवानी' ।

जुवान्—संज्ञा पुं० [सं० युवन्, हि० जवान] तरुण । जवान । उ०—लक्षि हिय हँसि कह कृपानिधान । सरिस स्वान मधवान जुवान् ।—मानस, २।३०१ ।

जुवावा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जवाब' । उ०—सा पत्र का जुवाब श्री गुसाई जी ने वा बैणाय को कृपा करिके यह सिख्यो ।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० २६१ ।

जुवारा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ज्वार' । उ०—लह लह जोति जुवार की घर गँवार की होति ।—मति० प्र०, पृ०, ४४४ ।

जुवारी—संज्ञा पुं० [हि० जुवारी] दे० 'जुवारी' । उ०—पृथ गँवाइ ज्यों बले जुवारी ।—हि० क० का०, पृ० २१४ ।

जुष—वि० [सं०] १. भोग करनेवाला । चाहनेवाला । २. जानेवाला । ग्रहण करनेवाला । पहुँचनेवाला ।

विशेष—समस्त पदों के अंत में इसका प्रयोग मिलता है । जैसे, परलोकजुष, रजोजुष ।

जुष्कक—संज्ञा पुं० [सं०] भात का रसा या जूस [को०] ।

जुष्ट^१—संज्ञा पुं० [सं०] उच्छिष्ट । छूटन [को०] ।

जुष्ट^२—वि० १. तृप्त । तुष्ट । २. सेवित । युक्त । ३. समन्वित । युक्त । ४. इष्ट । वांछित । ५. पूजित । ६. अनुकूल [को०] ।

जुष्य^१—वि० [सं०] पूजनीय । सेवनीय [को०] ।

जुष्य^२—संज्ञा पुं० सेवा [को०] ।

जुसाँदा—संज्ञा पुं० [हि० जोसाँदा] दे० 'जोसाँदा' ।

जुस्तजू—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तलाश । खोज । उ०—गरचे आज तक तेरी जुस्तजू खासो आम सब किया किए ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १६६ ।

जुहना^(५)—क्रि० प्र० [हि० जूह (=यूप) से नामिक धातु] दे० 'जुड़ना' । मिलना । उ०—कहो कहूँ कान्ह जुहे तुम संग ।—पृ० २।०, २।३५७ ।

जुहाना^(५)—क्रि० सं० [सं० यूथ, प्रा० जूह + हि० आना (प्रत्य०)] १. एकत्र करना । २. संचित करना । जोड़ जोड़कर एक जगह रखना ।

संयो० क्रि०—देना । लेना ।

जुहार—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रवहार (=युद्ध का रुकना या बंद होना ?) राजपूतों या क्षत्रियों में प्रचलित एक प्रकार का प्रणाम । अभिवादन । सलाम । बंदगी ।

जुहारना—क्रि० सं० [सं० प्रवहार (=पुकार या बुलावा)] १. किसी से कुछ सहायता माँगना । किसी का एहसान लेना । २. सलाम या बंदगी करना । उ०—यदि कोई मिले भी तो बुलाने पर भी मत बोलना । जुहारे तो सिर भर हिला देना ।—ध्यामा०, पृ० ६६ ।

जुहावना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जुहाना' ।

जुही—संज्ञा स्त्री० [सं० यूयी] एक छोटा भाड़ या पीघा जो बहुत घना होता है और जिसकी पत्तियाँ छोटी तथा ऊपर नीचे मुकीली होती हैं । दे० 'जूही' । उ०—खिली मिलि जूथन जूष जुही ।—घनानंद, पृ० १४६ ।

विशेष—यह अपने सफेद सुगंधित फूलों के लिये बगीचों में लगाया जाता है । ये फूल बरसात में लगते हैं । इनकी सुगंध चमेली से मिलती जुलती बहुत हलकी और मीठी होती है ।

जुहुराण^१—संज्ञा पुं० [सं० जुहुराणः] चंद्रमा [को०] ।

जुहुराण^२—वि० [सं०] वक्र बनानेवाला । वक्रतापूर्वक कार्य करने-वाला [को०] ।

जुहुवान—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. वृक्ष । ३. कठोर हृदय-वाला व्यक्ति । क्रूर व्यक्ति [को०] ।

जुहु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलाश की लकड़ी का बना हुआ एक अर्ध-चंद्राकार यज्ञपात्र जिससे घृत की आहुति दी जाती है । २. पूर्वं दिशा । ३. अग्नि की जिह्वा । अग्निशिखा [को०] ।

जुहुरा—संज्ञा पुं० [प्र० जुहर] प्रकट होना । जाहिर होना । आविर्भाव । उत्पत्ति । उ०—यह माहूद ठीका जो पूरा हुआ । तो यमजाल का फिर जुहुरा हुआ ।—कबीर मं०, पृ० १३४ ।

जुहुराण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वमुं । २. अग्नि । ३. चंद्रमा [को०] ।

जुहुवाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जुहुराण' [को०] ।

जुहुवान्—संज्ञा पुं० [सं० जुहुवत्] पावक । अग्नि [को०] ।

जुहुता—संज्ञा पुं० [सं० जुहुवत्] यज्ञ में आहुति देनेवाला ।

जू^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यूका] एक छोटा स्वेदज कीड़ा जो दूसरे जीवों के शरीर के आश्रय से रहता है ।

विशेष—ये कीड़े बालों में पड़ जाते हैं और काले रंग के होते हैं । आगे की ओर इनके छह पैर होते हैं और इनका पिछला भाग कई गंडों में विभक्त होता है । इनके मुँह में एक सूँड़ी होती है जो नोक पर झुकी होती है । ये कीड़े उसी सूँड़ी को जानवरों के शरीर में चुभोकर उनके शरीर से रक्त चूसकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं । चोखर भी इसी की जाति का कीड़ा है पर वह सफेद रंग का होता है और कपड़ों में पड़ता है । जू बहुत घंडे देती हैं । ये घंडे बालों में चिपके रहते हैं और दो ही तीन दिन में पक जाते और छोटे छोटे कीड़े निकल चढ़ते हैं । ये कीड़े बहुत सूक्ष्म होते हैं और थोड़े ही दिनों में रक्त चूसकर बड़े हो जाते हैं । भिन्न भिन्न आदमियों के शरीर पर की जू भिन्न भिन्न आकृति और रंग की होती हैं । लोगों का कथन है कि कीड़ियों के शरीर पर जू नहीं पड़ती ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

यौ०—जूँमुहाँ ।

मुहा०—कानों पर जूँ रँगना = चेत होना । स्थिति का ज्ञान होना । सतर्कता होना । होश होना । कानों पर जूँ न रँगना = होश न होना । बात ध्यान में न आना । जूँ की चाल = बहुत बीसी चाल । बहुत सुस्त चाल ।

जूँ^१—प्रव्य० [हि०] दे० 'जूँ' । उ०—माख खायर सहर जूँ
हिवड़े ब्रव काढ़त ।—ढोला०, पृ० ६१२ ।

जूँठ^१—वि०, संज्ञा पु० [सं० जुष्ट, हि० जूठ] दे० 'जूठा' ।

जूँठन—संज्ञा स्त्री० [हि० जूठन] दे० 'जूठन' । उ०—तब से रेडां
सगरी श्री गुसाईं जी की टहल करे और महाप्रसाद श्री गुसाईं
जी की जूँठन लेई ।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० ६२ ।

जूँठा—वि०, संज्ञा पु० [सं० जुष्ट, हि० जूठा] दे० 'जूठा' ।

जूँड़िहा—संज्ञा पु० [हि० भुंड] वह बैल जो बैलों के भुंड के भागे
चलता है ।

जूँदन—संज्ञा पु० [देश०] [स्त्री० जूँदनी] बंदर । (मदारी) ।

जूँमुँहाँ—वि० [हि० जूँ + मुँह] वह जो देखने में सीधा सादा पर
वास्तव से बड़ा भूत हो ।

जूँ—प्रव्य० [सं० (श्री) युक्त] १. एक प्रादरसूचक शब्द जो
ब्रज, बुंदेलखंड, राजपूताना प्रादि में बड़े लोगों के नाम के
साथ लगाया जाता है । जी । जैसे, कन्हैया जूँ । २. संबोधन
का शब्द । दे० 'जी' ।

जूँ^२—प्रव्य० [देश०] एक निरर्थक शब्द जो बैलों या भैसों को
खड़ा करने के लिये बोला जाता है ।

जूँ—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती । २. वायुमंडल । वायु । ३.
बैल या घोड़े के मस्तक पर का टीका ।

जूँ^३—वि० [वै० सं०] तेज । वेगवान् (को०) ।

जूँझा^१—संज्ञा पु० [सं० युग] १. रथ या गाड़ी के भागे हरस में
बाँधी या जड़ी हुई वह लकड़ी जो बैलों के कंधे पर रहती है ।
क्रि० प्र०—बाँधना ।

†२. जुझाठा । ३. चक्की में लगी हुई वह लकड़ी जिसे पकड़कर
वह फिराई जाती है ।

जूँझा^२—संज्ञा पु० [सं० दूत, प्रा० जुझा] वह खेल जिससे जीतने-
वाले को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है । किसी घटना
की संभावना पर हार जीत का खेल । दूत । वि० दे० 'जुझा' ।

क्रि० प्र०—खेलना ।—जीतना ।—हारना ।—हीना ।

जूँझाखाना—संज्ञा पु० [हि० जुझा + खाना] वह प्रह्ला, घर
या स्थान जहाँ लोग जुझा खेलते हैं ।

जूँझाघर—संज्ञा पु० [हि० जुझा + घर] दे० 'जूझाखाना' ।

जूँझाचोर—संज्ञा पु० [हि० जुझा + चोर] दे० 'जुझाचोर' ।

जूँक—संज्ञा पु० [यूना० ज्यून्स] तुला राशि ।

जूँग^१—संज्ञा पु० [सं० युग] दे० 'युग' । उ०—तोहे जसो परे हीत
उदासिन जूँग पलटि न गेल ।—विद्यापति, पृ० ३२४ ।

जूँजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कर्णपासी । कान की सलरी या सीर ।
उ०—कोई अपनी जूँजी छेदकर कड़ा पहन लेता और कोई
उसको काटकर फेंक देता है ।—कबीर मं०, पृ० ३६१ ।

जूँजू—संज्ञा पु० [अनु०] एक कल्पित भयंकर जीव जिसका नाम लोग
सड़कों को डराने के लिये लेते हैं । हाऊ ।

जूँझ—संज्ञा स्त्री० [सं० युद्ध, प्रा० जुझ] युद्ध । लड़ाई । झगड़ा ।

उ०—(क) पाई नहीं जूँझ हठ कीन्है । जे पावा ते प्रापुहि
चीन्है ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कोने परा न छूटिहै सुन
रे जीव झूँझ । कबिर माँड़ मैदान में करि इंदिन सों झूँझ ।
—कबीर (शब्द०) ।

जूँझना^१—क्रि० प्र० [सं० युद्ध या हि० झूझ] १. लड़ना । २.
लड़कर मर जाना । युद्ध में प्राणत्याग करना । उ०—जूँझे
सकल सुभट करि करनी । बंधु समेत परधो नृप धरनी ।—
तुलसी (शब्द०) ।

जूँटी^१—संज्ञा पु० [सं०] १. जटा की गाँठ । जूँडा । २. लट । जटा ।
३. शिव की जटा ।

जूँटी^२—संज्ञा पु० [सं०] १. पटसन । २. पटसन का बना कपड़ा ।

यौ०—जूँटी मिल = वह मिल जहाँ पटसन के रेसो या धागों से
बोरे, टाट आदि बनते हैं । चटकल ।

जूँटना^१—क्रि० म० [हि० जुटना] मिलाना । जोड़ना ।
जुटाना ।

जूँटना^२—क्रि० प्र० [हि० जुटना] १. प्रवृत्त होना । लग जाना ।
२. एकत्र होना । उ०—जवना हार थई रग जूँटे । फिरियो
सेख नगारे फूटे । रा० रू०, पृ० २५६ ।

जूँटी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० जुड] १. मेल । २. सधि । ३. जोड़ी ।

जूँटी^४—वि० स्त्री० [सं० जुष्ट] दे० 'जूठी' । उ०—चाट रहे हैं जूँठी
पत्तल कभी सड़क पर पड़े हुए हैं ।—अपरा, पृ० ६६ ।

जूँठी^१—वि० [सं० जुष्ट] १. दे० 'जूठन' । २. दे० 'जूठा' ।

जूँठन—संज्ञा स्त्री० [हि० जूठ] १. वह खाने पीने की वस्तु जिसे
किसी ने खाकर छोड़ दिया हो । वह भोजन जिसे किसी ने
खाकर छोड़ दिया हो । वह भोजन जिसमें से कुछ अंश किसी
ने मुँह लगाकर खाया हो । किसी के भागे का बचा हुआ
भोजन । उच्छिष्ट भोजन ।

क्रि० प्र०—खाना ।

२. वह पदार्थ जिसका व्यवहार किसी ने एक दो बार कर
लिया । हो । भुक्त पदार्थ । दे० 'जूठा' ।

जूँठी^२—वि० [सं० जुष्ट, प्रा० जुष्ट] [वि० स्त्री० 'जूठी' । क्रि०
जूठारना] १. (भोजन) जिसे किसी ने खाया हो । जिसमें
किसी ने खाने के लिये मुँह लगाया हो । किसी के खाने से
बचा हुआ । उच्छिष्ट । जैसे,—जूठा अन्न, जूठा भात, जूठी
पत्तल । उ०—विनती राय प्रवीन की, सुनिए साह सुजान ।
जूठी पातरि भखत हैं बारी, बायस स्वान ।—(शब्द०) ।

विशेष—हिंदू आचार के अनुसार जूठा भोजन खाना निषिद्ध है ।
२. जिसका स्पर्श मुँह अथवा किसी जूठे पदार्थ से हुआ हो ।
जैसे, जूठा हाथ, जूठा बरतन ।

मुहा०—जूठे हाथ से कुत्ता न मारना = बहुत अधिक कसूस होना ।

३. जिसे किसी ने व्यवहार करके दूसरे के व्यवहार के अयोग्य
कर दिया हो । जिसे किसी ने अपवित्र कर दिया हो । जैसे,
जूठी स्त्री ।

जूठा^१—संज्ञा पुं० खाने पीने की वह वस्तु जिसे किसी ने खाकर छोड़ दिया हो। वह भोजन जिसमें से कुछ किसी ने मुँह लगाकर खाया हो। किसी के भागे का बचा हुआ भोजन। जूठन। उच्छिष्ट भोजन।

क्रि० प्र०—खाना।—चाटना।

जूठियाना^१—क्रि० सं० [हि० जूठ + हयाना (प्रत्य०)] १. जूठा कर देना। उ०—साखी काहु के हाथ न आवे। गंध सुगंध सबे जूठियावे।—सं० दरिया, पृ० ५।

जूठी^१—वि०, संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जूठा'।

जूड़ा^१—वि० [सं० जड़] [क्रि० जुड़ाना, जुड़वाना] ठंडा। शीतल। उ०—घोसा डाइन डर से डरपे जहर जूड़ हो जाई। विषघ्न मन में कर पछिन वा बहुरि निकट नहि आई।—कबीर ज०, भा० २, पृ० २८।

जूड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० जूड़ा] दे० 'जूड़ा'।

जूड़ना^१—संज्ञा पुं० [देश०] पहाड़ी बिच्छू जो आकार में बड़ा और काले भूरे रंग का होता है।

जूड़ा^१—संज्ञा पुं० [सं० जूट अथवा सं० जूड़ा] १. सिर के बालों की वह गाँठ जिसे स्त्रियाँ अपने बालों को एक साथ लपेटकर अपने सिर के ऊपर बाँधती हैं। उ०—काको मन बाँधत न यह जूड़ा बाँधनहार।—इमामा०, पृ० २६।

विशेष—जटाधारी साधु लोग भी जिन्हें अपने बालों की सजावट का विशेष ध्यान नहीं रहता अपने सिर पर इस प्रकार बालों को लपेटकर गाँठ बनाते हैं।

क्रि० प्र०—बाँधना।—सोलना।

२. चोटी। कलंगी। जैसे, कबूतर या बुलबुल का जूड़ा। ३. पगड़ी का पिछला भाग। ४. मूँज आदि का पूला। गुँजारी। ५. पानी के घड़े के नीचे रखने की पास आदि की लपेटकर बनाई हुई गड़री।

जूड़ा^२—संज्ञा पुं० [हि० जूड़] [स्त्री० जूड़ी] बच्चों का एक रोग जिसमें सरकी के कारण साँस जल्दी जल्दी चलने लगती है और साँस लेते समय कोख में गड़गड़ाहट पड़ जाता है। कभी कभी पेट में पीड़ा भी होती है और बच्चा सुस्त पड़ा रहता है।

जूड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जूड़] एक प्रकार का उबर जिसमें उबर माने के पहले रोगी को जाड़ा मालूम होने लगता है और उसका शरीर घटोँ बाँपा करता है। उ०—जो काहु की सुनहि बड़ाई। स्वास लेहि अनु जूड़ी आई।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह उबर कई प्रकार का होता है। कोई नित्य आता है, कोई दूसरे दिन, कोई तीसरे दिन और कोई चौथे दिन आता है। नित्य के इस प्रकार के उबर को जूड़ी, दूसरे दिन आनेवाले को भँवर, तीसरे दिन आनेवाले को तिजरा और चौथे दिनवाले को चौथिया कहते हैं। यह रोग प्रायः मलेरिया से उत्पन्न होता है।

क्रि० प्र०—आना।

जूड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जुड़ना] जुट्टी।

जूड़ी^३—वि० [हि० जूड़] ठंडी। शीतल। उ०—किंतु बँगसे के

कमरे में घुसते ही शीतल जूड़ी छाया ने अपना असर किया।—किन्नर०, पृ० ७।

जूया^(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'।

जूत^१—संज्ञा पुं० [हि० जूता] १. जूता। २. बड़ा जूता।

जूत^१—वि० [सं०] १. घाग्रह किया हुआ। २. लींचा हुआ। ३. दिया हुआ। प्रवृत्त। ४. गया हुआ। गत (को०)।

जूता—संज्ञा पुं० [सं० युक्त, प्रा० जुत] चमड़े आदि का बना हुआ पैरों के आकार का वह ढाँचा जिसे दोनों पैरों में लोच कटि आदि से बचने के लिये पहनते हैं। जोड़ा। पनही। पादधारण। उपानह।

विशेष—जूता दो या दो से अधिक चमड़े के टुकड़ों को एक में सीकर बनाया जाता है। वह भाग जो तलवे के नीचे रहता है तला कहलाता है। ऊपर के भाग को उपल्ला कहते हैं। तले का पिछला भाग एंडी या एंड्र और अगला भाग नोक या ठोकर कहलाता है। उपल्ले के वे अंश जो पैर के दोनों ओर खड़े उठे रहते हैं, दीवार कहलाते हैं। वह चमड़े की पट्टी जो एंडी के ऊपर दोनों दीवारों के जोड़ पर लगी रहती है, लंगोट कहलाती है। देशों जूते कई प्रकार के होते हैं। जैसे,—पंजाबी, दिल्लीवाल, सलीमशाही, गुरगावी, पेतला, चट्टी इत्यादि। अंग्रेजी जूतों के भी कई भेद होते हैं। जैसे, बूट, स्लिपर, पप इत्यादि।

महाभारत के अनुशासन पर्व में छाते और जूते के प्राविष्कार के संबंध में एक उपाख्यान है। युधिष्ठिर ने भीम से पूछा कि आदम प्रादि कर्मों से छाता और जूता दान करने का जो विधान है उसे किसने निकाला। भीष्म जी ने कहा कि एक बार जमदग्नि ऋषि क्रोधावश धनुष पर बाण चढ़ा चढ़ाकर छोड़ते थे और उनकी पत्नी रेणुका फँके हुए बाणों को ला लाकर उन्हें देती थी। धीरे धीरे दोपहर हो गई और कड़ी धूप पड़ने लगी। ऋषि उसी प्रकार बाण छोड़ते गए। पतिव्रता रेणुका जब बाण लाने गई तब धूप से उसका सिर चकराने लगा और पैर जलने लगे। वह झिझिल होकर कुछ देर तक एक वृक्ष की छाया के नीचे बैठ गई। इसके उपरान्त वह बाणों को एकत्र करके ऋषि के पास लाई। ऋषि कुछ होकर देर होने का कारण बार बार पूछने लगे। रेणुका ने सब व्यवस्था ठीक ठीक कह सुनाई। तब तो जमदग्नि जी सूर्य पर अत्यंत क्रुद्ध हुए और धनुष पर बाण चढ़ाकर सूर्य को मार गिराने पर तैयार हुए। इसपर सूर्य बाह्यण के वेश में ऋषि के पास आए और कहने लगे सूर्य ने आपका क्या बिगाड़ा है जो आप उन्हें मार गिराने को प्रस्तुत हुए हैं। सूर्य से लोक का कितना उपकार होता है? जब इसपर भी ऋषि का क्रोध शांत न हुआ तो बाह्यण वेशधारी सूर्य ने कहा कि सूर्य तो सदा वेद के साथ चलते रहते हैं। आप का लक्ष्य ठीक कैसे बैठेगा? ऋषि ने कहा कि जब मध्याह्न में कुछ क्षण विश्राम के लिये वे ठहर जाते हैं तब मैं मारूँगा। इसपर सूर्य ऋषि की शरण में आए। तब ऋषि ने कहा कि 'अच्छा? अब कोई ऐसा उपाय बतलाओ जिसमें हमारी पत्नी को धूप का कष्ट न हो।' इस

पर सूर्य ने एक जोड़ा जूता धीरे एक छाता देकर कहा कि मेरे ताप से सिर धीरे धीरे की रक्षा के लिये ये दोनों पर्याय हैं, इन्हें ध्याप ग्रहण करें। तब से छाते और जूते का दान बड़ा फलदायक माना जाने लगा।

यौ०—जूताखोर।

मुहा०—जूता उठाना = मारने के लिये जूता हाथ में लेना। जूता मारने के लिये तैयार होना। (किसी का) जूता उठाना = (१) किसी का वासत्व करना। किसी की हीन से हीन सेवा करना। (२) खुशामद करना। चापलूसी करना। जूता उछलना या बलना = (१) जूतों से मारपीट होना। (२) लड़ाई दंगा होना। झगड़ा होना। जूता खाना = (१) जूतों की मार खाना। जूतों का प्रहार सहना। २. बुरा भला सुनना। ऊँचा नीचा सुनना। तिरस्कृत होना। जूता गँठना = (१) फटा हुआ जूता सीना। (२) बमार का काम करना। नीचा काम करना। जूता चाटना = अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान न रखकर दूसरे की शुभ्रुषा करवा। खुशामद करवा। चापलूसी करवा। जूता पड़ना = जूता मारना। जूता देना = जूता मारना। जूता पड़ना = (१) जूतों की मार पड़ना। उपानह प्रहार होना। (२) मुँह तोड़ जबाब मिलना। किसी अनुचित बात का कड़ा धीरे मर्मभेदी उत्तर मिलना। ऐसा उत्तर मिलना कि फिर कुछ कहते सुनते न बने। (३) घाटा होना। नुकसान होना। हानि होना। जैसे,—बैठे बैठे (१०) का जूता पड़ गया। जूता पहनना = (१) पैर में जूता डालना। (२) जूता मोल लेना। जूता पहनना = (१) दूसरे के पैर में जूता डालना। (२) जूता मोल ले देना। जूता खरीद देना। जूता बरसना = १० 'जूता पड़ना' (१)। जूता बैठना = जूते की मार पड़ना। १० 'जूता पड़ना'। (२) जूता मारना = (१) किसी अनुचित बात का ऐसा कड़ा उत्तर देना कि दूसरे से फिर कुछ कहते सुनते न बने। मुँह तोड़ जबाब देना। (२) जूते से मारना। जूता लगना = (१) जूते की मार पड़ना। (२) मुँह तोड़ जबाब मिलना। (३) किसी अनुचित कार्य का बुरा फल प्राप्त होना। जैसा बुरा काम किया हो तत्काल वैसा ही बुरा फल मिलना। किसी अनुचित कार्य का तुरंत ऐसा परिणाम होना जिधसे उसके करनेवाले को खिन्न होना पड़े। (४) प्रतिज्ञा हानि उठाना। जूता लगाना = जूते से मारना। जूते का धावसी = ऐसा धावसी जो बिना जूता खाए ठीक काम न करे। बिना कठोर दंड या शासन के उचित व्यवहार न करने वाला मनुष्य। जूते से खबर लेना = जूते से मारना। जूतों दाब बँटना = धावप में लड़ाई झगड़ा होना। परस्पर वैर विरोध होना। घनबन होना। जूतों से घाना = जूते से मारना। जूने लगाना। जूते से मारे के लिये तैयार होना। जूतों से बात करना = जूते से मारना। जूता लगाना।

जूताखोर—वि० [हि० जूता+फा० खोर] १. जो जूता खाया करे। २. जो निलंजता के कारण मार या माला की कुछ परवाह न करे। निलंज। बेहया।

जूति—संज्ञा पु० [सं०] १. वेग। तेजी। २. अग्रसर होना। आगे बढ़ना

(कौ०)। ३. प्रवाह गति या प्रवाह (कौ०)। ४. उरोजना। प्रेरणा (कौ०)। ५. प्रवृत्ति। मुकाव (कौ०)। ६. मन की एकाग्रता (कौ०)।

जूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तरह का कपूर (कौ०)।

जूती—संज्ञा स्त्री० [हि० जूता] १. स्त्रियों का जूता। २. जूता।

यौ०—जूतीकारी। जूतीखोर। जूतीछुपाई। जूतीपैजार। उ०—जूती पैजार और लाठी डंडों तक की नौबत धाती है।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० ३४५।

मुहा०—जूतियाँ उठाना = नोक सेवा करना। दासत्व करना। जूती कीनोक पर मारना = कुछ न समझना। तुच्छ समझना। कुछ परवाह न करना। जैसे,—ऐसा रूपया मैं जूती की नोक पर मारता हूँ। जूती की नोक खफा हीना = परवा न करना। किन्न न करना। उ०—खफा काहे को होती हो बेगम? हमारी जूती की नोक खफा हो।—सैर कु०, भा० १, पृ० २१। जूती की नोक से = बला से। कुछ परवाह नहीं। (स्त्री०)। उ०—वह यहाँ नहीं धाती है तो मेरी जूती की नोक से। जूती के बराबर = अत्यंत तुच्छ। बहुत नाबीज। (किसी की) जूती के बराबर न होना = किसी की अपेक्षा अत्यंत तुच्छ होना। किसी के सामने बहुत नाबीज होना। (खुशामद या नम्रता से भी कभी कभी लोग इस वाक्य का प्रयोग करते हैं। जैसे,—मैं तो धावकी जूती के बराबर भी नहीं हूँ)। जूती चाटना = खुशामद करना। चापलूसी करना। जूती डाल बँटना = १० 'जूतियाँ डाल बँटना'। उ०—छेड़खानी करती है, धावो पड़ोसन हम तुम लड़ें। दूसरी बोली लड़ें मेरी जूती। उसने कहा जूती लगे तेरे सर पर। वह बोली, तेरे होते सोतो पर। खजो बस जूती डाल बठने लगी।—सैर कु० भा० १, पृ० ३८। जूती देना = जूती से मारना। जूती पर जूती पड़ना = यात्रा का आगम दिखाई पड़ना। (जब जूती पर जूती चढ़ने लगती है तब लोग यह समझते हैं कि जिसकी जूती है उसे कही यात्रा करनी होगी)। जूती पर मारना = १० 'जूती की नोक पर मारना'। जूती पर रखकर रोटी देना = अपमान के साथ रोटी देना। निरादर के साथ रखना या पालना। जूती पहनना = (१) जूती में पैर डालना। (२) नया जूता मोल लेना। जूती पहनाना = (१) किसी के पैर में जूती डालना। (२) नया जूता मोल ले देना। जूती से = १० 'जूती की नोक से'। जूतियाँ खाना = (१) जूतियों से पिटना। (२) ऊँचा नीचा सुनना। भला बुरा सुनना। कड़ी बातें सहना। (३) अपमान सहना। जूतियाँ गँठना = (१) फटी हुई जूतियों को सीना। (२) बमार का काम करना। अत्यंत तुच्छ काम करना। निकृष्ट व्यवसाय करना। जूतियाँ चटकाते फिरना = (१) दीनतावश इधर-उधर मारा मारा फिरना। दुर्दशाग्रस्त होकर घूमना। (फटे पुगने जूते की घसीटने से चट चट शब्द होता है)। (२) व्यर्थ इधर उधर घूमना। जूतियाँ डाल बँटना = धावप में लड़ाई झगड़ा होना। वैर विरोध होना। फूट होना। जूतियाँ पड़ना = जूतियों की मार पड़ना। जूतियाँ बगल

में बचाना = जूतियाँ उतारकर भागना जिसमें पैर की धाहट न सुनाई दे। चुपचाप भागना। धीरे से चलता बनना। खिसकना। जूतियाँ मारना = (१) जूतियों से मारना। (२) कड़ी बातें कहना। अपमानित करना। तिरस्कृत करना। (३) कड़ा उत्तर देना। मुँह तोड़ जवाब देना। जूतियाँ लगना = जूतियों से मारना। जूतियाँ सीधी करना = प्रत्यंत नीच सेवा करना। दासत्व करना। जूतियों का सदका = चरणों का प्रयोग (विनम्र कृतज्ञता ज्ञापन)।

जूतीकारी—संज्ञा स्त्री० [हि० जूती + कार] जूतों की मार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जूतीखोर—वि० [हि० जूती + खोर] १. जो जूतों की मार खाया करे। २. जो निलंज्जता से मार और गाला की परवाह न करे। निलंज्ज। बेहया।

जूती छुपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जूती + छुपाना] १. विवाह में एक रस्म।

विशेष—स्त्रियाँ कोहबर से घर के बजते समय घर का जूता छिपा देती हैं और तबतक नहीं देती हैं जबतक वह छूने के लिये कुछ दैग न दे। यह काम प्रायः वे स्त्रियाँ करती हैं जो नाते में बधू की बहन होती हैं।

२. वह दैग जो घर स्त्रियों को जूती छुपाई में देना है।

जूती पैजार—संज्ञा स्त्री० [हि० जूती + फा० पैजार] १. जूतों की मार पीट। घोल घण्ट। २. लड़ाई दंगा। कलह। झगड़ा।

क्रि० प्र०—करना।

जूथ^५—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] दे० 'यूथ'। उ०—भयो पंक अति रंग को तामै गज को जूग फँसोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०४।

यौ०—जूथ जूथ = झुंड का झुंड। समूहबद्ध। उ०—जूथ जूथ मिलि बली सुभासिनि। निज छबि निदरहि मदन विलासिनी।—मानस, १।३४५।

जूथका—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथिका] दे० 'यूथिका'।

जूथिका—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथिका] दे० 'यूथिका'।

जूद^१—वि० [अ०] क्षीप्त। स्वरित। तुरंत। जल्दी।

यौ०—जूदफ़हम = कोई बात तुरंत समझनेवाला। तीव्रबुद्धि।

जूद^२—वि० [फा०] तेज। द्रुत [को०]।

जून^१—संज्ञा पुं० [सं० जून् = सूर्य ग्रहण देख०] समय। काल। बेला।

जून^२—संज्ञा पुं० [सं० जून् (= पुराना)] पुराना। उ०—का छति लाख जून धनु तोरे। देखा राम नये के धोरे।—सुनसी (शब्द०)।

जून^३—संज्ञा पुं० [सं० (जून् = एक तृण)] तृण। घास। तिनका।

जून^४—संज्ञा पुं० [अ०] अंग्रेजी वर्ष का छठा महीना जो जेठ के लगभग पड़ता है।

जून^५—संज्ञा पुं० [सं० यून ?] एक जाति जो सिंधु और सतलज के बीच के प्रदेशों में रहती है और गाय बैल, ऊँट आदि पाखती है।

जूना^१—संज्ञा पुं० [सं० जून् (= एक तृण)] १. घास या फूस को बटकर बनाई हुई रस्सी जो बोझ आदि बाँधने के काम में आती है। २. घास फूस का लच्छा या पूला जिससे बरतन मँजते या मसते हैं। उसकन। उबसन। उ०—रंग ज्यादा गोरा तो नहीं, सँवले से कुछ निखरा हुआ है। हाथ में जूना है और बरतन मँजते मँजते वह खीझ उठी।—बहकते०, पृ० ६३।

जूना^२—वि० [सं० जीर्ण] [वि० स्त्री० जूनी] दे० 'जीर्ण'। उ०—जूना गीत दोहा चारणों भी के सुनाया।—शिखर०, पृ० ४७।

जूनी—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'। उ०—सतगुरु से जोगी जोगु पाया। अस्थिर जोगी फिर जूनी न आया।—प्राण०, पृ० १११।

जूनियर—वि० [अ०] काल क्रम से पिछला। जो पीछे का हो। छोटा।

यौ०—जूनियर हाई स्कूल = वह हाई स्कूल जिसमें कक्षा छह से आठ तक पढ़ाई होती है। पूर्व माध्यमिक विद्यालय।

जूनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जूना] दे० 'जूना'। उ०—जूनी से कनाता सेव सींची घागि जाली।—शिखर०, पृ० ५२।

जूनी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'। उ०—फिर फिर जूनी संकट आवै। गर्भवास में बहु दुख पावै।—सहस्र०, पृ० ८।

जूप^१—संज्ञा पुं० [सं० जूत, प्रा० जूष्ठा या जूथ] १. जूष्ठा। जूत। उ०—जैसे, घंघ रूप, विनु गठि घन जूथ की जमों हीन गुण घाथ है न कप जल पान की।—हनुमान (शब्द०)। २. विवाह में एक रीति जिसमें घर की बधू परस्पर जूष्ठा खेलते हैं। पासा। उ०—कर कपै कंगन नहि छूटै। खेलत जूथ जुगल जुवतिन में हारे रघुपति जीति जनक की।—सूर (शब्द०)।

जूप^२—संज्ञा पुं० [सं० यूप] दे० 'यूप'।

जूम^१—संज्ञा पुं० [अ०] धूक। पीक। उ०—सुरती का जूम पिब से जमीन पर गिरा।—नई०, पृ० ३०।

जूमना^५—क्रि० प्र० [अ० जमा] इकट्ठा होना। जुटना। एकत्र होना। उ०—(क) जागो हुतो हाट एक मदन धनी को जहाँ गोपिन को बूँद रह्यो जूमि बहूँधाई में।—देव (शब्द०)। (ख) गिरिधरदास भूमि जूमि आसु वदि, बाज लोँ दराज लेहि परन दबाय के।—गोपाल (शब्द०)।

जूमना^१—क्रि० प्र० [हि० भूमना] दे० 'भूमना'।

जूर^५—संज्ञा पुं० [हि० जूरना] जोड़। संख्य। उ०—बान चाहि सब दरबक जूर। बान नाम होइ बाँचि मूरु।—जायसी (शब्द०)।

जूरना^५—क्रि० प्र० [हि० जोड़ना] जोड़ना। उ०—घबध में ससन रहूँ दूरि। बधु सखा गुरु कहत राम को नाते बहुतेक जूरि।—देव स्वामी (शब्द०)।

जूरना^५—क्रि० प्र० [हि० जोड़ना] इकट्ठा होना। जुटना।

जूरर—संज्ञा पुं० [अ०] पंच। न्यायसभ्य। जूरो का सदस्य।

जूरा^१—संज्ञा पुं० [हि० जूड़ा] दे० 'जूड़ा'।

जूरिस्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो कानून, विशेषकर दीवानी कानून में पारंगत हो। व्यवहार-शास्त्र-निपुण।

जूरिस्टिक्शन—संज्ञा पुं० [सं०] वह सीमा या विभाग जिसके अंदर शक्ति या अधिकार का उपयोग किया जा सके। जैसे, वह स्थान इस हाई कोर्ट के जूरिस्टिक्शन के बाहर है।

जूरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जुरना] १. घास, पत्तों या टहनियों का एक बंधा हुआ छोटा पूला। जुट्टी। जैसे, तमाखू की जूरी। २. सूरन आदि के नए कल्ले जो बंधे हुए निकलते हैं। ३. एक पकवान जो पोथों के नए बंधे हुए कल्लों की गीले बेसन में लपेटकर तलने से बनता है। ४. एक प्रकार का पोषा या झाड़ जिससे क्षार बनता है।

विशेष—यह पोषा गुजरात, कराची आदि के खारे बलदलों में होता है।

जूरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] वे कुछ व्यक्ति जो अदालत में जज के साथ बैठकर खून, डाकाजनी, राजद्रोह, षड्यंत्र आदि के संगीन मामलों को सुनते और अंत में अभियुक्त या अभियुक्तों के अपराधी या निरपराध होने के संबंध में अपना मत देते हैं। पंच। सालिस। जैसे,—जूरी ने एकमत होकर उसे बोर बताया तदनुसार जज ने उसे छोड़ दिया।

विशेष—जूरी के लोग नागरिकों में से चुने जाते हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता। खर्च भर मिलता है। इन्हें निष्पक्ष रहकर न्याय करने की शपथ करनी पड़ती है। जब तक किसी मामले की सुनवाई नहीं हो लेती, इन्हें बराबर अदालत में उपस्थित होना पड़ता है। और देशों में जज इनका बहुमत मानने को बाध्य है और तदनुसार ही अपना फैसला देता है। पर हिंदुस्तान में यह बात नहीं है। हाई कोर्ट और चीफ कोर्ट को छोड़कर, जिले के दौरा जज जूरी का मत मानने के लिये बाध्य नहीं हैं। जूरी से मतैक्य न होने की अवस्था में वे मामले हाई कोर्ट या चीफ कोर्ट भेज सकते हैं।

जूरीमैन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जूरी'।

जूरू—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जूर'।

जूरण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण।

पर्या०—उलूक। उलप।

जूर्णाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृणविशेष। २. कुश। दभं [को०]।

जूर्णाक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवधान्य।

जूर्णि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेग। २. आदिस्थ। ३. वेह। ४. ब्रह्मा। ५. क्रोध। ६. स्त्रियों का एक रोग। ७. आग्नेयास्त्र [को०]।

जूर्णि^२—वि० १. वेगयुक्त। वेगवान। तेज। २. द्रवित। गला हुआ। ३. ताप देनेवाला। ४. स्तुति करने में कुशल।

जूर्ति—संज्ञा स्त्री [सं०] १. खर। २. ताप। गरमी [को०]।

जूलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० जुलाई] दे० 'जुलाई'।

जूषला—संज्ञा पुं० [देश०] पैर। उ०—इम पतसाह मुणै प्रकुलायो। भद्रिजाणै जुबल तल प्रायो।—रा० ६०, पृ० ६४।

जूषा^१—संज्ञा पुं० [हि० जूषा] दे० 'जूषा'। उ०—टाँड़ा तुमने लादा भारी। बनिज किया पूरा बेपारी। जूषा खेला पूँजी हारी। प्रब चलने की भई तयारी।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६।

जूषा^२—वि० [हि०] दे० 'जूषा'। उ०—नामरूप गुण जूषा जूषा पुनि व्यवहार भिन्न ही टाट।—सुंदर श०, भा० १, पृ० ७३।

जूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी उबाली या पकाई हुई वस्तु का पानी। भोल। रसा। २. उबाली या पकाई हुई दाल का पानी।

जूषण—संज्ञा पुं० [सं०] घाय नामक पेड़ जो फूलों के लिये लगाया जाता है।

जूस^१—संज्ञा पुं० [सं० जूष] १. मूँग अरहर आदि की पकी हुई दाख का पानी जो प्रायः रोगियों को पच्य रूप में दिया जाता है।

मुहा०—जूस देना = उबली हुई दाल का पानी पिलाना। जूस लेना = (१) उबली हुई दाल का पानी पीना। (२) रोगी का सशक्त होकर खाने पीने लायक होना।

२. उबली हुई चीज का रस। रसा।

क्रि० प्र०—काड़ना। निकालना।

जूस^२—संज्ञा पुं० [फा० जुप्न, तुलनीय सं० युक्त] १. युग्म संख्या। सम संख्या। ताक का उलटा। जैसे,—२, ४, ६, ८।

यो०—जूस ताक।

जूस ताक—संज्ञा पुं० [हि० जूस + फा० ताक] एक प्रकार का जुषा जिसे लड़के खेलते हैं।

विशेष—एक लड़का अपनी मुट्ठी में छिपाकर कुछ कौड़ियाँ ले लेता है और दूसरे से पूछता है—'जूस कि ताक?' अर्थात् कौड़ियों की संख्या सम है या विषम? यदि दूसरा लड़का ठीक बूझ लेता है तो जीत जाता है और यदि नहीं बूझता तो उसे हारकर उतनी ही कौड़ियाँ बुझानेवाले को देनी पड़ती हैं जितनी उसकी मुट्ठी में होती हैं।

जूस ताखा—संज्ञा पुं० [हि० जूस + फा० ताक] दे० 'जूस ताक'। उ०—बसन के दाग धोवै, नखछत एक टोवै, जूर सै बुरी को खेलै एक जूस ताख है।—भारतेंदु शं०, भा० २, पृ० १६१।

जूसी—संज्ञा स्त्री० [हि० हस] बड़ गाढ़ा लसीस रस जो ईख के पक्के रस को गुड़ के रूप में ठोस होने के पहले उतारकर रख देने से उसमें से छूटता है। लीड का पमेव। चोटा। छोटा।

जूह—संज्ञा पुं० [सं० यूथ, प्रा० जूह] झुड़। समूह। उ०—(क) डह डह बजै डमरु, जूह जुगिनि जुरि नाची।—हम्मीर०, पृ० ५८। (ख) एकहि बार तामु पर छाईन्हि गिरि तरु जूह।—मानस, १।६५।

जूहर—संज्ञा पुं० [फा० जोहर या हि० जीव + हर] राजपूतों की एक प्रथा जिसके अनुसार दुर्ग में शत्रु का प्रवेश निश्चित जान लियी चिता पर बैठकर जल जाती थी और पुरुष दुर्ग के बाहर लड़ने के लिये निकल पड़ते थे। वि० दे० 'जोहर'।

जूहारना—क्रि० सं० [हि० जूहारना] दे० 'जूहारना'। उ०—सासू जूहारवा बाल्यो छह राई।—बी० रासो, पृ० २६।

जूहिया—वि० [हि० जूही + हया (प्रत्य०)] जूही बीसी । उ०—
हेमंती घास की जूहिया नमी भीतर पहुँच रही थी ।—नई०,
पृ० ४२ ।

जूही^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथी] १. फैलनेवाला एक झाड़ या पौधा
जो बहुत घना होता है और जिसकी पत्तियाँ छोटी तथा ऊपर
नीचे नुकीली होती हैं । उ०—जाही जूही बगुचन लावा ।
पुष्प सुदरसन लाग मुहावा ।—जायसी श्र०, पृ० १३ ।

विशेष—यह हिमालय के पंजाल में घाघरे घाघ उगता है । यह
पौधा फूलों के लिये बगीचों में लगाया जाता है । इसके फूल
सफेद चमेली से मिलते जुलते पर बहुत छोटे होते हैं । सुगंध
इसकी चमेली ही की तरह हलकी मीठी और मनभावनी होती
है । ये फूल बरसात में लगते हैं । जूही को कहीं कहीं पहाड़ी
चमेली भी कहते हैं । पर जूही का पौधा देखने में चमेली से
नहीं मिलता, कूंद से मिलता है । चमेली की पत्तियाँ सीकें के
दोनों ओर पत्तियों में लगती हैं पर इसकी नहीं । जूही के फूल
का घतर बनता है ।

२. एक प्रकार की घासबाजी जिसके छूटने पर छोटे छोटे फूल
से भड़ते दिखाई पड़ते हैं ।

जूही^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यूक] एक प्रकार का कीड़ा जो सेम, मटर
आदि की फलियों में लगता है । जूही ।

जूंभ—संज्ञा पुं० [सं० जूम्भ] [स्त्री० जूंभा, वि० जूंभक] १. जँभाई ।
जमुहाई । २. आलस्य । ३. प्रस्फुटन । विकास । खिलना (को०)
४. विस्तार । फैलाव (को०) । ५. एक पत्ती (को०) ।

जूंभक^१—वि० [सं० जूम्भक] जँभाई लेनेवाला ।

जूंभक^२—संज्ञा पुं० १. रक्त गणों में एक । २. एक घस जिससे
खलाने में शत्रु निद्राप्रस्त होकर लड़ाई छोड़ जँभाई लेने लगते,
सो जाते या शिथिल पड़ जाते थे ।

विशेष—जब राम ने ताड़का घाघि को मारा था तब विश्वामित्र
ने प्रसन्न होकर मंत्र सहित यह घस उन्हें दिया था । विश्वामित्र
को यह घस घोर तपस्या के उपरांत अग्नि से प्राप्त
हुआ था ।

जूंभकाख—संज्ञा पुं० [सं० जूम्भकारख] दे० 'जूंभक' २ ।

जूंभण^१—संज्ञा पुं० [सं० जूम्भण] १. जँभाई लेना । २. धंगों को
फैलाना (को०) । ३. खिलना । विकास (को०) ।

जूंभण^२—वि० १. जँभाई लेनेवाला (को०) ।

जूंभमान—वि० [सं० जूम्भमत्] १. जँभाई लेता हुआ या जँभाई
लेनेवाला । २. प्रकाशमान । खिलता हुआ । विकासमान ।

जूंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० जूम्भा] १. जँभाई । २. आलस्य या प्रमाद
से उत्पन्न जड़ता । ३. एक शक्ति का नाम । ४. खिलना ।
विकास (को०) ५. विस्तार । फैलाव (को०) ।

जूंभिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जूम्भिका] १. आलस्य । २. जूंभा ।
३. एक रोग जिससे मनुष्य शिथिल पड़ जाता है और बार
बार जँभाई लिया करता है ।

विशेष—यह रोग निद्रा का अवरोध करने से उत्पन्न होता है ।

जूंभिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० जूम्भिणी] एलापर्णी लता (को०) ।

जूंभिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जूम्भिणी] एलापर्णी लता ।

जूंभित^१—वि० [सं० जूम्भित] १. चेष्टित । २. प्रबुद्ध । फैला या
फैलाया हुआ । ४. जिसने जँभाई ली हो (को०) ।

जूंभित^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. रंभा । २. स्फोटन । ३. स्त्रियों की
ईहा या इच्छा ।

जूंभी—वि० [सं० जूम्भिन्] १. जँभाई लेनेवाला । २. खिलने-
वाला (को०) ।

जेंटिलमैन—संज्ञा पुं० [शं०] सम्प्र पुरुष । भद्रजन । संभ्रांत व्यक्ति
जेंटू—संज्ञा पुं० [?] १. हिंदू । २. हिंदुओं की भाषा ।

विशेष—पहले पहल पुर्तगालियों ने भारत के मूर्तिपूजकों के लिये
इस शब्द का प्रयोग किया था । बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के
समय ईश्वरेश सोम उक्त धर्म में इस शब्द का प्रयोग करने लगे ।

जेंताक—संज्ञा पुं० [सं० जेन्ताक] रोगी के शरीर में पसीना लाकर दूषित
घंघ और बिकार आदि निकालने की एक क्रिया । भकारा ।

जे गना(१)—संज्ञा पुं० [प्रा० बोइंगण] दे० 'जुगुगू-१' । उ०—सुंदर
कहत एक रवि के प्रकास बिभु जेगना की ज्योति, कहा रजनी
बिलात है ।—संत वाणी०, भा० २, पृ० १२३ ।

जे गरा—संज्ञा पुं० [देश०] उवं, मूंग, मोथी, उवार, बाजरे आदि के
बंछ जो बाना बिकाल लेने के बाद थोड़ा रक्ष जाते हैं । जेंगरा ।

जे ग्रा—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जह्रा' । उ०—चाल सखी तिण मंदिरई,
सज्जण रहियउ जेंग । कोइक सोठउ बोलइइ, लागो होसइ
सैंग । ठोला०, पृ० ३५६ ।

जे ना—क्रि० सं० [सं० जेमनम्] दे० 'जेवना' ।

जे वना^१—संज्ञा पुं० [हि० जेवना] भोजन । खाने की वस्तु ।

जे वना^२—क्रि० सं० [सं० जेमन] भोजन करना । खाना । भक्षण
करना । उ०—(क) जो प्रभु निगम अगम करि गाए । जेवन
भिस ते हम पे गाए ।—नंद० श्र०, पृ० ३०४ । (ख) भानंद-
घन ब्रज जीवन जेवत हिलिमिल पवार तोरि पतानि ठाक ।
—धनार्णव, पृ० ४७३ ।

जे वना^३—संज्ञा पुं० भोजन । भोजन । खाने का पदार्थ । वह जो कुछ
खाया जाय ।

जे वनार—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जेवनार' । उ०—चट्ट प्रकार
जेवनार भई बहुत भतिम्ह ।—तुलसी श्र०, पृ० ६० ।

जे वाना—क्रि० सं० [हि० जेवना] भोजन कराना । खिलाना ।
जिमाना ।

जे(१)—सर्व० [सं० जे] १. 'जो' का बहुवचन । २. दे० 'जो' ।
उ०—जलचर बलचर नभचर नाना । जे जइवेतन जीव
जहाना ।—मानस, १।३ ।

जे(२)—सर्व० [सं० एतत्] यह का बहुवचन । उ०—माई, जे
दोऊ, कौन गोष के छोटा । इनकी बात कहा कही तोसों,
गुनन बड़े, देखन के छोटा ।—नंद० श्र०, पृ० ३४१ ।

जे(३)—सर्व० [सं० इदम्] यह । उ०—आगामिनी जामिनी जुग
ही । प्रजामिनीन सो जे कही ।—नंद० श्र०, पृ० ३१७ ।

जेई(१)—सर्व० [हि०] दे० 'जो' । उ०—हमिबंत बीर संक जेई

जारी । परबत मोहि रहा रखवारी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५६ ।

जेड^१—सर्व० [हि०] दे० 'जो' ।

जेड^२—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जो' । उ०—टपके महुव घासु तस परई । होइ महुवा बसंत जेउं भरई ।—जायसी ग्रं०, पृ० २५६ ।

जेड, जेऊ^१—सर्व० [हि०] दे० 'जो' ।

जेऊ^२—संज्ञा स्त्री० [हि० भेर] देर । विलंब । उ०—जन रामा धब जेज न कीजे सतगुर जान जगावै हो ।—राम० धर्म०, पृ० २४८ ।

जेऊ^३—संज्ञा स्त्री० [हि० भेर] विलंब । देरी । उ०—धरी बात धाँसा जेऊ बिसरी जिए सायत ।—राम० क०, पृ० ३३६ ।

जेड^४—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथ] १. समूह । यूथ । देर । २. रोटियों की तही । ३. मिट्टी के बरतनो का वह समूह जिसमें वे एक दूसरे के ऊपर रखे हों । ४. गोद । कोरा ।

जेड^५—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का वायुयान ।

जेडो—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी या समुद्र के किनारे पर बना हुआ वह बड़ा चबूतरा जिसपर से जहाजों का माल चढ़ाया और उतारा जाता है ।

जेडसा—संज्ञा पु० [सं० ज्येष्ठ + संज्ञा] पैतृक संपत्ति में बड़े भाई का बड़ा हिस्सा ।

जेडसा—वि० [सं० ज्येष्ठानिन्] पैतृक संपत्ति में बड़े भाई की हैसियत से बड़े हिस्से का अधिकारी ।

जेठ—संज्ञा पु० [सं० ज्येष्ठ] १. एक चांद्र मास जो बैसाख और असाढ़ के बीच में पड़ता है ।

विशेष—जिस दिन इस मास की पूर्णिमा होती है उस दिन चंद्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र में रहता है, इसी से इसे ज्येष्ठ या जेठ कहते हैं । यह प्रीष्म ऋतु का पहला और संवत् का तीसरा मास है । सौर मास के हिसाब से जेठ वृष संक्रांति से आरंभ होकर मिथुन संक्रांति तक रहता है ।

२. [स्त्री० जेठानी] पति का बड़ा भाई । असुर ।

जेठ^१—वि० अग्रज । बड़ा । उ०—जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुल रीति सुहाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

जेठउत—संज्ञा पु० [हि० जेठ + उत (प्रत्य०)] पति का बड़ा भाई ।

जेठरा—वि० [हि० जेठ + रा (प्रत्य०)] दे० 'जेठ' (वि०) ।

जेठरैत—संज्ञा पु० [हि० जेठरा + ऐत (प्रत्य०)] गाँव का मुखिया ।

जेठरैता—वि० ज्येष्ठ । बड़ा ।

जेठरैयत—संज्ञा पु० [हि० जेठ + यत (प्रत्य०)] गाँव का मुखिया, जिसकी संमति के अनुसार गाँव के सब लोग कार्य करते हों ।

जेठबा—संज्ञा पु० [हि० जेठ] एक प्रकार की कपास जो जेठ में तैयार होती है । इसे झुलवा भी कहते हैं । वि० दे० 'झुलवा' ।

जेठा—वि० [सं० ज्येष्ठ] [वि० स्त्री० जेठी] १. अग्रज । बड़ा । २. सबसे उत्तम । सबसे अच्छा ।

मुहा०—जेठा रंग = वह रंग जो कई बार की रंगाई में सबसे अंतिम बार रंगा जाय ।

जेठाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जेठा] जेठ होने का भाव या दशा । बढ़ाई । जेठापन ।

जेठानी—संज्ञा स्त्री० [हि० जेठ] जेठ की स्त्री । पति के बड़े भाई की स्त्री ।

जेठी^१—वि० [हि० जेठ + ई (प्रत्य०)] १. जेठ संबंधी । जेठ का । जैसे, जेठी धान । जेठी कपास । २. बड़ी । पहली ।

जेठी^२—संज्ञा स्त्री० १. एक प्रकार की कपास जो जेठ में पकती और फूटती है ।

विशेष—इसे बरार या विदर्भ में टिकड़ी या लूड़ी और काठियावाड़ में गंगरी कहते हैं ।

२. जेठानी । उ०—जेठी पठाई गई दुलही हंसि हेरि हरं मतिराम बुलाई ।—इतिहास, पृ० २५४ ।

जेठी^३—संज्ञा पु० बोरो नाम का धान जो चैत में नदियों के किनारे बोया और जेठ में काटा जाता है ।

जेठी मधु—संज्ञा स्त्री० [सं० षष्ठिमधु] मुलेठी ।

जेठुआ—वि० [हि०] दे० 'जेठी' ।

जेठौत—संज्ञा पु० [सं० ज्येष्ठ + पुत्र] [स्त्री जेठौतो] १. जेठ का लड़का । पति के बड़े भाई का पुत्र । जेठानी का पुत्र । २. पति का बड़ा भाई । असुर ।

जेठौता—संज्ञा पु० [हि० जेठौत] दे० 'जेठौत' ।

जेता—वि० [हि०] दे० 'जितना' । उ०—जेत बरानी श्री भगवारा । माए मोर सब चाल निहारा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३११ ।

जेतक^१—वि० [हि०] दे० 'जितना' । उ०—जेतक नेम धरम किए री में बहु बिधि भंग भंग भई मैं तो खवन मई री ।—नद० ग्रं०, पृ० ३४५ ।

जेतना^१—वि० [हि० जितना] दे० 'जितना' । उ०—'बधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेनेहि काज । मागे वारिद देखि जल रामचंद्र के राज ।—मानस, ७/२३ ।

जेतवार^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जैतवार' ।

जेता^२—वि० [सं० जेतृ] १. जीतनेवाला । विजय करनेवाला । विजयी ।

जेता^३—संज्ञा पु० [सं०] विष्णु ।

जेता^४—क्रि० वि० [सं० भाषण] जितना ।

जेता^५—वि० [हि० जिस + तना (प्रत्य०)] जिस यात्रा का । जिस परिमाण का । जितना । उ०—सकल दीप मई जेनी रानी । तिन्ह मई दीपक बारह बानी ।—जायसी (शब्द०) ।

जेतार^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जेता' ।

जेति^१—वि० [हि० जितना] जितना । उ०—हूँ रंग बहु जानति सहुरै जेत समुंद । ये पिय को चतुराई सकिउं न एको बुद । जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० ३४१ ।

जेतिक ④+—क्रि० वि० [हि० जितना] जितना । जिस कदर । जिस मात्रा में । जिस परिमाण में ।

जेतिक—वि० दे० 'जितना' । उ०—जेतिक भोजन बज ते आयी । गिरि रूपी हरि सिगरी खायो ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०७ ।

जेती ④+—वि० श्री० [हि० जेता] जितनी । उ०—जेती लहर समुद्र की तेती मन की दीग । सहज हीरा नीपज जो मन भावै ठौर ।—कबीर सा०, पृ० ५५ ।

जेती ④+—क्रि० वि० [हि०] जितना । जिस कदर । उ०—धीरज जान सयान सबै, गंग जेतीई सारत तेतोई ढ है ।—गंग०, पृ० ७७ ।

जेती—वि० दे० 'जितना' ।

जेती—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जेती' ।

जेती ④+—वि० दे० 'जितना' । उ०—घर वह रूप अनूपम जेती । नैनन गहरी गयो नही तेतो ।—नंद० ग्रं०, पृ० १२८ ।

जेन केन ५+—क्रि० वि० [सं० येन + केन] जैसे तैसे । उ०—जेन केन परकार होइ आत कृष्ण मगन मन । घनाकर्ण चैतन्य कछु न चितवै माधन तन । नंद० ग्रं०, पृ० ४६ ।

जेनरल—वि० [प्रं०] १. ग्राम । सामान्य ।

यौ०—जेनरल इलेक्शन—ग्राम चुनाव । साधारण निर्वाचन ।

जेनरल सर्वेंट = सामान्य उपयोग के सामान का विक्रेता ।

२. बड़ा । प्रधान ।

यौ०—जेनरल सेक्रेटरी = संस्था, संस्थान या विभाग का प्रधान मंत्री । जेनरल रटाफ = सेनापति का सहकारी मडल ।

जेनरल—संज्ञा पु० [प्रं०] फौजी प्रफसर का एक पद जो सेनापति के अधीन होता है [को०] ।

जेना—क्रि० म० [सं० जेमन] दे० 'जीमना' ।

जेन्य—वि० [म०] १. अगिजात । कुलीन । २. असली । सच्चा । ३. धिजेना [को०] ।

जेन्यावसु—संज्ञा पु० [म०] १. इन्द्र । २. अग्नि ।

जेपाक्ष—संज्ञा पु० [सं०] एक ओषधोपयोगी पौधा । जैपाल । जमाल-गोटा [को०] ।

जेप्लिन—संज्ञा पु० [जर्मन] एक विशेष प्रकार का बहुत बड़ा हवाई जहाज ।

विशेष—इसका आविष्कार अमेरी के काउंट जेप्लिन साहब ने किया था । इसका ऊपरी भाग सिगार के आकार का लंबोतरा होता है जिसके खानों में गैस से भरी हुई बहुत बड़ी बड़ी थैलियाँ होती हैं । बड़े लंबांगरे चौखटे में नीचे की ओर एक या दो संदूक लटकते हुए लगे रहते हैं जिनमें आदमी बैठते हैं और तोपें रखी जाती हैं । सब प्रकार के आकाशयानों से इसका आकार बहुत बड़ा होता है ।

जेब—संज्ञा पु० [प्रं०] पहनने के कपड़े (कोट, कुरते, कमीज, धांगे आदि) में बगल या सामने की ओर लगी वह छोटी थैली या खर्ता जिसमें रुमाल, कागज आदि चीजें रखते हैं । खीसा । खीता । पाकेट ।

क्रि० प्र० कतरना ।—काटना ।

यौ०—जेबकट । जेबखर्च । जेबघड़ी ।

मुहा०—जेब कतरना = जेब काटकर रुपए पैसे का प्रपहरण ।

जेब खाली होना = पास में पैसा न होना । जेब भरी होना = पास में काफी रुपया होना ।

जेब—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेब] शोभा । सौंदर्य । फबन ।

मुहा०—जेब तन बढ़लना = पहनना । धारण करना । जेब देना = शोभित होना ।

यौ०—जेबदाब = तर्जवार । अच्छा । सुंदर ।

जेबकट—संज्ञा पु० [फ्रा० जेब + हि० काटना] वह मनुष्य जो चोरी से दूसरों के जेब से रुपया पैसा लेने के लिये जेब काटता हो । जेबकतरा । गिरहकट ।

जेबकतरा—संज्ञा पु० [हि० जेब + कतरना] दे० 'जेबकट' ।

जेबखर्च—संज्ञा पु० [फ्रा० जेबखर्च] वह धन जो किसी को निज के खर्च के लिये मिलता हो और जिसका हिमाब लेने का किसी को अधिकार न हो । मांजन, वस्त्र आदि के व्यय से भिन्न, निज का और ऊपरी खर्च ।

जेबखास—संज्ञा पु० [फ्रा० जेब + प्र० खाम] राज्यकोष से राजा या बादशाह के निजी खर्च के लिये दिया जानेवाला धन ।

जेबघड़ी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेब + हि० घड़ी] वह छोटी घड़ी जो जेब में रखी जाती है । जेबी घड़ी । वाच ।

जेबदार—वि० [फ्रा० जेबदार] सुंदर । शोभायुक्त ।

जेबरा—संज्ञा पु० [प्रं० जेबरा] जेबरा नाम का जंगली जानवर । दे० 'जेबरा' ।

जेबा—वि० [फ्रा० जेबा] सुंदर । मनोरम । शोभनीय । अनित [को०] ।

मुहा०—जेबा देना = शोभा देना । सुंदर लगना ।

जेबी—वि० [फ्रा०] १. जेब में रखने योग्य । जो जेब में रखा जा सके । जैसे, जेबी घड़ी ।

२. बहुत छोटा ।

जेबीजीनत—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेब + प्र० जीनत] बनाव सिगार । वेश भूषा । ठाट बाट । शृंगार । सजावट [को०] ।

जेमन—संज्ञा पु० [सं०] १. भोजन करना । जीमना । २. आहार । खाद्य [को०] ।

जेय—वि० [सं०] जीतने योग्य । जो जीता जा सके ।

जेर—संज्ञा स्त्री० [देश०] झील । वह झिल्ली जिसमें गर्भगत बालक रहता और पुष्ट होता है ।

जेर—अव्य० [फ्रा० जेर] नीचे । तले [को०] ।

जेर—वि० [फ्रा० जेर] [देश० जेरबरी] १. परास्त । पराजित । २. जो बहुत दिक् किया जाय । जो बहुत तंग किया जाय ।

क्रि० प्र०—करना = हराना । पछाड़ना ।

जेर—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेर] अरबी और फारसी के अक्षरों के नीचे लगनेवाला एक संकेत चिह्न जो इ, ई, और ए की मात्राओं का सूचक होता है ।

जेर—संज्ञा पु० [देश०] एक पेड़ ।

विशेष—यह सुंदरबन में अधिकता से होता है । इसके हीर की लकड़ी लाठी लिए सफेद होती है और मजबूत होने के कारण इसकी लकड़ी से मेज, कुरती, घालमारी इत्यादि बनती हैं ।

जेरजामा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेरजामह्] १. अधोवस्त्र । कटिवस्त्र ।
२. घोड़े की जीन के नीचे पीठ पर डाला जानेवाला कपड़ा [को०] ।

जेरतजबीज—वि० [फ्रा० जेर + ज० तजबीज] विचाराधीन [को०] ।

जेरदस्त—वि० [फ्रा० जेरदस्त] अधीन । बशीभूत । असहाय [को०] ।

जेरनजर—क्रि० वि० [फ्रा० जेर + ज० नजर] धाँसों में । दृष्टि में ।
क्रि० प्र०—पढ़ना ।—होना ।

जेरनाउ—क्रि० स० [हि० जेर] तंग करना । सताना । उत्पीड़ित करना ।

जेरपाई—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेरपाई] १. स्त्रियों के पहनने की जूती । स्लीपर । २. साधारण जूता ।

जेरपेच—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेरपेच] पगड़ी के नीचे पहनी जानेवाली छोटी पगड़ी या टोपी [को०] ।

जेरबंद—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेरबार] घोड़े की मोहरी में लगा हुआ वह कपड़ा या चमड़े का तस्मा जो तंग में फँसाया जाता है ।

जेरबार—वि० [फ्रा० जेरबार] १. जो किसी विशेष आपत्ति के कारण बहुत तंग और दुखी हो । आपत्ति या दुःख की बोझ से लदा हुआ । २. क्षतिग्रस्त । जिसकी बहुत हानि हुई हो ।

जेरवारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेरवारी] १. आपत्ति या क्षति के कारण बहुत दुखी होने की क्रिया । तंगी । २. हैरानी । परेशानी ।
क्रि० प्र०—होना ।—सहना ।

जेरिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० जेरी २. और ३. ।

जेरी—संज्ञा स्त्री० [?] १. दे० 'जेरी' । २. वह लाठी जो चरवाहे कंटोली भाड़ियाँ इत्यादि हटाने या दबाने के लिये सदा अपने पास रखते हैं । उ०—उतहि सखा कर जेरी लीन्हें गारी देहि सकुच तोरी की । इतहि सखा कर बाँस लिए बिच माह मखी भोग मोरी की । —सूर (शब्द०) । ३. खेती का एक औजार जो फरई के प्रकार का काठ का होता है । इसका व्यवहार भ्रम्र दौबने के समय पुष्पल हटाने में होता है । सिचाई के लिये दोरी चलाने में भी यह काम में आता है ।

जेरेखाक—क्रि० वि० [फ्रा० जेरेखाक] १. मिट्टी के नीचे । २. कब्र में [को०] ।

क्रि० प्र०—जाना ।—होना ।

जेरे नजर—क्रि० वि० [फ्रा० जेर + ज० नजर] दे० 'जेरनजर' ।

जेरेसाया—वि० [फ्रा० जेरेसायह्] किसी का आश्रित । किसी की छाया में [को०] ।

जेरे हिरासत—वि० [फ्रा० जेरे + ज० हिरासत] गिरफ्तारी में पड़ा हुआ [को०] ।

क्रि० प्र०—होना ।

जेरे हुकूमत—वि० [फ्रा० जेर + ज० हुकूमत] शासन के अधीन । मातहत देश [को०] ।

जेरोजबर—क्रि० वि० [फ्रा० जेरोजबर] नीचे ऊपर उबल पुबल । अस्तव्यस्त [को०] ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जेर^१—संज्ञा पुं० [ज०] वह स्थान जहाँ राज्य द्वारा दंडित अपराधी यादि कुछ निश्चित समय के लिये रखे जाते हैं । कारागार । बंदी गृह ।

मुहा०—जेल काटना, जाना या भोगना = जेल में रहकर दंड भोगना ।

जेल^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेर] जंजाल । हैरानी या परेशानी का काम । उ०—खेलत खेल सहेलिन में पर खेल नवेली को जेल सों लागे ।—मतिराम (शब्द०) ।

जेलखाना—संज्ञा पुं० [ज० जेल + फ्रा० खानह्] कारागार । वि० दे० 'जेल' ।

जेलर—संज्ञा पुं० [ज०] जेलखाने का अध्यक्ष । जेल का भफसर ।

जेलाटीन—संज्ञा स्त्री० [ज०] जानवरों विशेषतः कई प्रकार की मछलियों के मांस, हड्डी खाल आदि को उबालकर तैयार की हुई एक बहुत साफ और बढ़िया सरेस जिसका व्यवहार फोटोग्राफी और चिट्टियों आदि की तकल करने के लिये पैदा बनाने में होता है ।

विशेष—यह पशुओं की खिलाई भी जाती है । पर इसमें पोषक द्रव्य बहुत ही थोड़े होते हैं । खूब साफ की हुई जेलाटीन से घोषों की गोलियाँ भी बनाई जाती है ।

जेखी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जेरी] घास या भूसा इकट्ठा करने का औजार । पाँचा ।

जेखी^२—संज्ञा स्त्री० [ज०] एक प्रकार की विदेशी मिठाई या गाढ़ी मोठी चटनी जो फली आदि द्वारा चीनी के साथ उबालकर बनाई जाती है । इसे गाढ़ा या कड़ा कर देते हैं ।

जेखड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जेवरी' ।

जेखना—क्रि० स० [हि०] दे० 'जीमना' ।

जेखनार—संज्ञा स्त्री० [हि० जेखना] १. बहुत से मनुष्यों का एक साथ बैठकर भोजन करना । भोज । २. रसोई । भोजन ।

जेखर^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेवर] धातु या रत्नों आदि की बनी हुई वह वस्तु जो शोभा के लिये घरों में पहनी जाती है । गहना । आभूषण । अलंकार । आभरण ।

जेखर^२—पुं० [देश०] एक प्रकार का महोख पक्षी जिसे जधी या धिब मोनाल भी कहते हैं ।

विशेष—यह शिमले में बहुत पाया जाता है ।

जेखर^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जेवरी' ।

जेखरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योरा' ।

जेखरात—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेखरात] जेवर का बहुवचन ।

जेखरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी ।

जेष्ठ^१—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ] १. जेठ मास । २. जेठ । पति का बड़ा भाई ।

जेष्ठ^२—वि० [सं० ज्येष्ठ] अग्रज । जेठा । बड़ा ।

जेष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्येष्ठा] दे० 'ज्येष्ठा' ।

जेह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जिह (= चिल्ला), तुलनीय सं० जया] १. कमान की डोरी में वह स्थान जो बाँध के पास लगाया जाता है और

जिसकी सीध में निशान रहता है। चित्ना। उ०—तिथ कत कमनैती पड़ी बिन जेह भोह कमान। चित चले बेधे चुकति नहि, बंक बिलोकनि बान।—बिहारी (शब्द०) २. दोवार में नीचे की ओर दो तीन हाथ की ऊँचाई तक पलस्तर या मिट्टी आदि का वह तैप जो कुछ अधिक मोटा और उसके तल से अधिक उभरा हुआ होता है। उ०—गदा, पदम औ चक्र संख घसि, पंचतत्व सूचक समुक्त। अरु, इन पाँचन की गति हरि के बस यही जगन की जेह। भस्म गग लोचन अहि उमरु पंचतत्व अरु भोळ, हर के बस पाँचइ यह पंवरु जिनसे पिड डरेह।—देव्यामी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उतारना।—निकालना।

जेहड़—संज्ञा स्त्री० [हि० जेट + षट्] एक पर एक रखे हुए पानी से भरे हुए बहुत से घड़े।

जेहन—संज्ञा पुं० [प्र० जेह] [प्रि० जहीन] बुद्धि। धारणाशक्ति।

जेह्यदार—वि० [प्र० जेह + दा० दार (प्रत्य०)] धारणा शक्ति-वाला। बुद्धिमान [को०]।

जेहरा—पञ्चा स्त्री० [?] पैर में पहनने का पुँछलदार पाजैब नाम का जेवर।

जेहरि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जेहर] दे० 'जहर'। उ० (क) पग जेहरि सिंघियन की भमकनि चलत परस्पर बाजत।—सूर (शब्द०)। (स) पग जेहरि अजीर्न जकन्यो यह उपमा कछु पावै।—सूर (शब्द०)। (ग) भूमिल सुमिल सीढ़ी मदन सदन की कि जगमग पग पुग जेहरि जराय की।—केशव (शब्द०)।

जेहली^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० जेहली] [प्रि० जेहली] हठ। जिद।

जेहली^२—संज्ञा पुं० [प्र० जेहली] दे० 'जेह'।

जेहलखाना—संज्ञा पुं० [हि० जेहलखाना] दे० 'जेहलखाना' या 'जेहल'।

जेहली—वि० [प्र० जेहली] जो ममझाने से भी किसी बात की भलाई बुराई न समझे और अपनी हठ न छोड़े। हठी। जिद्दी।

जेहि^१—सर्व० [सं० यस्य, प्रा० जस्स, जिस, जेहि] जिसको। उ०—जेहि सुमिरत गिरि होय गण-नायक कारवर वदन।—तुलसी (शब्द०)।

जेह—संज्ञा पुं० [प्र० जेह] बुद्धि। धारणा शक्ति।

जैता^१—संज्ञा पुं० [सं० जयन्ती] जैत का पेड़।

जै^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जय'।

जै^२—वि० [सं० जायत्, प्रा० जाव] जितने। जिस सख्या में।

जैकरी^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जयकरी'।

जैकार^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जयकार'।

जैकारा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जयकार'।

जैगीषव्य—संज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र के वेत्ता एक मुनि का नाम।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा विस्तार से लिखी है। असित देवल नामक एक ऋषि आदित्य तीर्थ में निवास करते थे। एक दिन उनके यहाँ जैगीषव्य नामक एक ऋषि आए और उन्होंने

के यहाँ निवास करने लगे। थोड़े ही दिनों में जैगीषव्य योग साधन द्वारा परम सिद्ध हो गए और असित देवल सिद्धि लाभ न कर सके। एक दिन जैगीषव्य कहीं से धूमते फिरते भिक्षुक के रूप में देवल के पास आकर बैठे। देवल यथाविधि उनकी पूजा करने लगे। जब बहुत दिन तक पूजा करते हो गए और जैगीषव्य झटल भाव से बैठे रहे, कुछ बोलेवाले नहीं तब देवल ऊबकर आकाश पथ से स्नान करने चले गए। समुद्र के किनारे उन्होंने जाकर देखा तो जैगीषव्य को स्नान करते पाया। आश्चर्य से क्षणित होकर देवल जल्दी से आश्रम को लौट गए। वहाँ पर उन्होंने जैगीषव्य को उसी प्रकार झटल भाव से बैठे पाया। इसपर देवल आकाश मार्ग में जाकर उनकी गति का निरीक्षण करने लगे। उन्होंने देखा कि आकाशचारी अनेक सिद्ध जैगीषव्य की सेवा कर रहे हैं, फिर देखा कि वे नाना मार्गों में स्वेच्छा-पूर्वक भ्रमण कर रहे हैं। ब्रह्मलोक, गोलोक, पतिव्रत लोक इत्यादि तक ता बेचैन पीछे गए पर इसके भाग वे न देख सके कि जैगीषव्य कहाँ गए। रातों से पूछने पर मालूम हुआ कि वे सायस्वन व्रतनाक में गए हैं जहाँ कोई नहीं जा सकता। इस पर देवल घर लौट आए। वहाँ जैगीषव्य की ज्यों का त्यों बैठे देख उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इसके बाद वे जैगीषव्य के शिष्य हुए और उनसे योगशास्त्र की शिक्षा ग्रहण करके गिद्ध हुए।

जैचंद^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जयचंद'।

जैजैकार—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जयजयकार'।

जैजैवंती—पञ्चा स्त्री० [सं० जयजयवंती] भैरव राग की एक रागिनी जो सबरे गाई जाती है।

जैठक—संज्ञा पुं० [सं० जय + ठक्का] एक प्रकार का बड़ा ढोल। विजय ढोल। जंगी ढोल।

जैत^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जैत्र] विजय। जीत। फतह।

जैत^२—संज्ञा पुं० [प्र०] जैतून वृक्ष। २ जैतून की लकड़ी।

जैत^३—संज्ञा पुं० [सं० जयन्ती] जयन्त की तरह का एक पेड़।

विशेष—इसमें पीले फूल और लवी फलियाँ लगती हैं। इन फलियों की तस्कारी होती है। पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं।

जैतपत्र^१—संज्ञा पुं० [सं० जयति + पत्र] जयपत्र। जीत की सनद।

जैतवार^१—वि० [हि० जैत + वार (प्रत्य०)] जीतनेवाला। विजयी। विजिता। उ०—सत्ता को सपूत राव सगर को सिंह सोहै, जैतवार जगत करेरी किरवान को।—सति० पं०, पृ० ३७७।

जैतश्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जयनिश्री] एक रागिनी।

जैती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्तिका] एक प्रकार की घास जो रबी की फसल में खेतों में आप से आप उगती है।

जैतून—संज्ञा पुं० [प्र०] एक सदावहार पेड़।

विशेष—यह अरब, फारस आदि से लेकर यूरोप के दक्षिणी भागों तक सर्वत्र होता है। इसकी ऊँचाई अधिक से अधिक ४० फुट तक होती है। इसका आकार ऊपर गोलाई लिए होता है।

पत्तियाँ इसकी नरकट की पत्तियों से मिलती जुलती, पर उनसे छोटी होती हैं। ये ऊपर की ओर हरी ओर नीचे की ओर सफेदी लिए होती हैं। फूल छोटे-छोटे होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। फल कचरी के से होते हैं। पश्चिम की प्राचीन जातियाँ इसे पवित्र मानती थी। रोमन और यूनानी विजेता इसकी पत्तियों की माला सिर पर धारण करते थे। घरबवाले भी इसे पवित्र मानते थे जिसमें मुसलमान लोग अबतक इसकी लकड़ी की तसवीह (माला) बनाते हैं। इस पेड़ के फल और बीज दोनों काम में आते हैं। फल पकने पर नीलापन लिए काले होते हैं। कच्चे फलों का मुरब्बा और अचार पड़ता है। बीजों से तेल निकलता है। लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। इसकी लकड़ी धूप के चिटकवी नहीं।

जैन—वि० [सं०] [वि० बी० जैत्री] १. विजेता। विजयी। उ०—
चारु बल चक्र चित्रित विचित्रित परम जगत विजयी जयति
कृष्ण को जैन रथ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४४७।

यौ०—जैत्ररथ = विजयी।

१. सर्वोच्च (को०)।

जैन^२—संज्ञा पु० १. पारा। २. शोध। ३. विजयी व्यक्ति। विजेता पुरुष (को०)। ४. विजय (को०)। ५. सर्वोच्चता (को०)।

जैत्री—संज्ञा बी० [सं०] जयंती वृक्ष। जैत्र का पेड़।

जैन—संज्ञा पु० [सं०] १. जिन का प्रवर्तित धर्म। भारत का एक धर्म संप्रदाय जिसमें अहिंसा को परम धर्म माना जाता है और कोई ईश्वर या सृष्टिकर्ता नहीं माना जाता।

विशेष—जैन धर्म कितना प्राचीन है ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। जैन ग्रंथों के अनुसार महावीर या वर्धमान ने ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था। इसी समय से पीछे कुछ लोग विशेषकर युरोपियन विद्वान् जैन धर्म का प्रचलित होना मानते हैं। उनके अनुसार यह धर्म बौद्ध धर्म के पीछे उसी के कुछ तत्त्वों को लेकर और उनमें कुछ ब्राह्मण धर्म की शैली मिलाकर खड़ा किया गया। जिस प्रकार बौद्धों में २४ बुद्ध हैं उसी प्रकार जैनों में भी २४ तीर्थंकर हैं। हिंदू धर्म के अनुसार जैनों ने भी अपने ग्रंथों को आगम, पुराण आदि में विभक्त किया है पर प्रो० जेकोबी आदि के आधुनिक अन्वेषणों के अनुसार यह सिद्ध किया गया है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से पहले का है। उदयगिरि, जूनागढ़ आदि के शिलालेखों से भी जैनमत की प्राचीनता पार्ई जाती है। ऐसा जान पड़ता है कि यज्ञों की हिंसा आदि देख जो विरोध का सूत्रपात बहुत पहले से होता आ रहा था उसी ने आगे चमकर जैन धर्म का रूप प्राप्त किया। भारतीय ज्योतिष में यूनानियों की शैली का प्रचार विक्रमीय संवत् से तीन सौ वर्ष पीछे हुआ। पर जैनों के मूल ग्रंथ ग्रंथों में यवन ज्योतिष का कुछ भी आभास नहीं है। जिस प्रकार ब्राह्मणों की वेद संहिता में पंचवर्षात्मक युग है और कृत्तिका से नक्षत्रों की गणना है उसी प्रकार जैनों के अग ग्रंथों में भी है। इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। जैन लोग सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानते, जिन या अहंत् को ही ईश्वर

मानते हैं। उन्हीं की प्रार्थना करते हैं और उन्हीं के निमित्त मंदिर आदि बनाते हैं। जिन २४ हुए हैं, जिनके नाम ये हैं—ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपाश्व, चंद्रप्रभ, सुविशनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांस-नाथ, वामपुज्य स्वामी, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथनाथ, धरनाथ, भर्त्सनाथ, मुनिसुप्रत स्वामी, नमिनाथ, नेमिनाथ, पाशवंनाथ, महावीर स्वामी। इनमें से केवल महावीर स्वामी ऐतिहासिक पुरुष हैं जिनका ईसा से ५२७ वर्ष पहले होना ग्रंथों से पाया जाता है। शेष के विषय में अनेक प्रकार की अलौकिक और प्रकृतिविरुद्ध कथाएँ हैं। ऋषभदेव की कथा भागवत आदि कई पुराणों में आई है और उनकी गणना हिंदुओं के २४ अवतारों में है। जिस प्रकार काल हिंदुओं में मन्वंतर कल्प आदि में विभक्त है उसी प्रकार जैन लोगो में काल दो प्रकार का है—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में चौबीस चौबीस जिन पा तीर्थंकर होते हैं। ऊपर जो २४ तीर्थंकर गिनाए गए हैं वे वर्तमान अवसर्पिणी के हैं। जो एक बार तीर्थंकर हो जाते हैं वे फिर दूसरी उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी में जन्म नहीं लेते। प्रत्येक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी में नए नए जीव तीर्थंकर हुआ करते हैं। इन्हीं तीर्थंकरों के उपदेशों को लेकर गणधर लोग द्वादश ग्रंथों की रचना करते हैं। ये ही द्वादशांग जैन धर्म के मूल ग्रंथ माने जाते हैं। इनके नाम ये हैं—आचारंग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवती सूत्र, ज्ञाताधर्मकथा, उपासक दशांग, अंतकृत दशांग, अनुत्तारोपपातिक दशांग, प्रश्न व्याकरण, विपाकश्रुत, दृष्टिवाद। इनमें से ग्यारह अंग तो मिलते हैं पर बाह्यर्वा दृष्टिवाद नहीं मिलता। ये सब अंग अर्धभागधी प्राकृत में हैं और अधिक से अधिक बीस बाईस सौ वर्ष पुराने हैं। इन आगमों या अंगों को श्वेतांबर जैन मानते हैं। पर दिगंबर पूरा पूरा नहीं मानते। उनके ग्रंथ संस्कृत में अलग हैं जिनमें इन तीर्थंकरों की कथाएँ हैं और २४ पुराण के नाम से प्रसिद्ध हैं। यथार्थ में जैन धर्म के तत्त्वों को संग्रह करके प्रकट करनेवाले महावीर स्वामी ही हुए हैं। उनके प्रधान शिष्य इंद्रगुप्ति या गौतम थे जिन्हें कुछ युरोपियन विद्वानों ने भ्रमवश शाक्य मुनि गौतम समझा था। जैन धर्म में दो संप्रदाय हैं—श्वेतांबर और दिगंबर। श्वेतांबर ग्यारह अंगों को मुख्य धर्म मानते हैं और दिगंबर अपने २४ पुराणों को। इसके अतिरिक्त श्वेतांबर लोग तीर्थंकरों की मूर्तियों को कच्छु या लंगोठ पहनाते हैं और दिगंबर लोग नंगी रहते हैं। इन बातों के अतिरिक्त तत्त्व या सिद्धांतों में कोई भेद नहीं है। अहंत् देव ने संसार को द्रव्यात्मिक नय की अपेक्षा से अनादि बताया है। जगत् का न तो कोई कर्ता हर्ता है और न जीवों को कोई सुख दुःख देनेवाला है। अपने अपने कर्मों के अनुसार जीव सुख दुःख पाते हैं। जीव या आत्मा का मूल स्वभान शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानंदमय है, केवल पुद्गल या कर्म के आवरण से उसका मूल स्वरूप आच्छादित हो जाता है। जिस समय यह पीद्गलिक भार हट जाता है उस समय आत्मा परमात्मा की उच्च दशा को प्राप्त होता है। जैन मत स्याद्वाच

के नाम से भी प्रसिद्ध है। स्याद्वाद का अर्थ है अनेकांतवाद अर्थात् एक ही पदार्थ में निरूपत्व और अनित्यत्व, सादृश्य और विरूपत्व, सत्त्व और असत्त्व, अभिलाष्यत्व और अनभिलाष्यत्व आदि परस्पर भिन्न धर्मों का सापेक्ष स्वीकार। इस मत के अनुसार प्राकाश से लेकर दीपक पर्यंत समस्त पदार्थ नित्यत्व और अनित्यत्व आदि उभय धर्म युक्त हैं।

२. जैन धर्म का अनुयायी। जैनी।

जैनी—संज्ञा पुं० [हि० जैन] जैन मतावलंबी।

जैनु^१—संज्ञा पुं० [हि० जैवना] भोजन। आहार। उ०—इहाँ रही जहँ जूठनि पावै ब्रजवासी के जैनु।—सूर (शब्द०)।

जैपत्र^२—संज्ञा पुं० [सं० जयपत्र] दे० 'जयपत्र'।

जैपाल—संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।

जैबो, जैबौ—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'जाना'। उ०—बनत नहीं जमुना की पेबी। मुँदर स्याम घाट पर ठाढ़े, कही कौन बिध जैबी।—सूर०, १०। ७७६।

जैमंगल—संज्ञा पुं० [सं० जयमङ्गल] १. एक वृक्ष जिसकी लकड़ी मजबूत होती है।

विशेष—इसकी लकड़ी से मेज, कुर्सी आदि सजावट की चीजें बनाई जाती हैं।

२. खास राजा की सवारी का हाथी। ३. संगीत में एक ताल (को०)। ४. जयकार (को०)।

जैमाल^३—संज्ञा स्त्री० [सं० जयमाल] दे० 'जयमाल'।

जैमाला^४—संज्ञा स्त्री० [सं० जयमाला] दे० 'जयमाल'।

जैमिनि—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वमीमांसा के प्रवर्तक एक ऋषि जो व्यास जी के ४ मुख्य शिष्यों में से एक थे।

विशेष—कहते हैं, इनकी रची एक भारतसंहिता भी थी जिसका अर्थ केवल अश्वमेध पर्व ही मिलता है। यह अश्वमेध पर्व व्यास के अश्वमेध पर्व से बड़ा है, पर कई नई बातों के समावेश के कारण इसकी प्रामाणिकता में संदेह है।

जैमिनीय^१—वि० [सं०] १. जैमिनि संबंधी। २. जैमिनि प्रणीत।

३. जैमिनि का अनुयायी (को०)।

जैमिनीय^२—संज्ञा पुं० १. जैमिनिवृत्त ग्रंथ।

जैयट—संज्ञा पुं० [देश०] महाभाष्य के तिलककार कैयट के पिता।

जैयट्—वि० [प्र०] १. बड़ा भारी। घोर। बहुत बड़ा। जैसे, जैयट् बेवकूफ। जैयट् प्रालिप्त। ३. बहुत धनी। भारी मालदार। जैसे, जैयट् प्रसामी।

जैल^१—संज्ञा पुं० [प्र० जैल] १. दामन। २. नीचे का स्थान। निम्न भाग। ३. पक्ति। सफ। समूह। ४. हलाका। हलका।

यौ०—जैलदार।

जैल^२—अव्य० नीचे।

जैलदार—संज्ञा पुं० [प्र० जैल + दार (प्रत्य०)] वह सरकारी अधिकारी जिसके अधिकार में कई गांवों का प्रबंध हो।

जैव^१—वि० [सं०] १. जीव संबंधी। २. बृहस्पति संबंधी।

जैव^२—संज्ञा पुं० १. बृहस्पति के क्षेत्र में धनु राशि और मीन राशि।

२. पुष्प नक्षत्र। ३. जीव अर्थात् बृहस्पति के पुत्र कव (को०)।

जैवातृक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपूर। २. चंद्रमा। ३. ग्रीष्म।

४. किसान (को०)। ५. पुत्र (को०)।

जैवातृक^२—वि० १. [वि० स्त्री० जैवातृकी] दीर्घायु। २. दुबला पतला।

जैवात्रिक^३—संज्ञा पुं० [सं० जैवातृक] दे० 'जैवातृक'।

जैविक—वि० [सं०] दे० 'जैव'।

जैवेय—संज्ञा पुं० [सं०] जीव अर्थात् बृहस्पति के पुत्र कव (को०)।

जैसा^१—वि० [हि० जैसा] दे० 'जैसा'। उ०—(क) धरतिहि जैस गगन सों नेहा। पलहि भाव बरषा ऋतु मेहा।—जायसी (शब्द०)। (ख) कोई भल जस भाव तुलारा। कोई जैस वैख गरिमारा।—जायसी ग्रं०, (गुप्त) पृ० २२६।

जैसन^२—वि० [हि० जैसा] दे० 'जैसा'। उ०—मय भाजु काज न राज ग्राम सों, बससि निजपुर जैसनं।—द० सागर, पृ० १७।

जैसवार—संज्ञा पुं० [हि० जायस + वाला] कुरमियों और कलवारों का एक भेद।

जैसा^३—वि० [सं० यादश, प्रा० जारिस, पैशाची जहस्मो वि० स्त्री० जैसी] १. जिस प्रकार का। जिस रूप रंग, आकृति या गुण का। जैसे,—(क) जैसा देवता वैसी पूजा। (ख) जैसा राजा वैसी प्रजा। (ग) जैसा कपड़ा है वैसी ही सिलाई भी होनी चाहिए।

मुहा०—जैसा चाहिए = ठीक। उपयुक्त। जैसा उचित हो। जैसा तैसा = दे० 'जैसे तैसे'। जैसे,—काम जैसा तैसा चल रहा है। जैसे का तैसा = ज्यों का त्यों। जिसमें किसी प्रकार की घटती बढ़ती या फेरफार आदि न हुआ हो। जैसा पहले था, वैसा ही। जैसे—(क) दरजी के यहाँ अभी कपड़ा जैसे का तैसा रखा है, हाथ भी नहीं लगा है। (ख) खाना जैसे का तैसा पका है, किसी ने नहीं खाया। (ग) वह साठ वर्ष का हुआ पर जैसे का तैसा बना हुआ है। जैसे को तैसा = (१) जो जैसा हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करनेवाला। (२) जो जैसा हो उसी प्रकृति का। एक ही स्वभाव और प्रकृति का। उ०—जैसे को तैसा मिले, मिले नीच को नीच। पानी में पानी मिले, मिले कीच में कीच।—(शब्द०)।

२. जितना। जिस परिमाण का या मात्रा का। जिस कदर। (इस अर्थ में केवल विशेषण के साथ प्रयुक्त होता है।) जैसे,—जैसा अच्छा यह कपड़ा है, वैसा वह नहीं है।

विशेष—संबंध पूरा करने के लिये जो दूसरा वाक्य आता है वह वैसा शब्द के साथ आता है।

३. समान। सदृश। तुल्य। बराबर। जैसे,—उस जैसा आदमी हूँ न मिलेगा।

जैसा^४—क्रि० वि० [हि०] जितना। जिस परिमाण या मात्रा में। जैसे,—जैसा इस लड़के को याद है वैसा उस लड़के को नहीं।

जैसी—वि० [हि०] 'जैसा' का स्त्री०। दे० 'जैसा'।

जैसे—क्रि० वि० [हि० जैसा] जिस प्रकार से । जिस ढंग से । जिस तरीके पर ।

मुहा०—जैसे जैसे = जिस क्रम से । ज्यों ज्यों । उ०—जैसे जैसे रोग कम होता जायगा वैसे ही वैसे शरीर में शक्ति भी घाता जायगी । जैसे तैसे = किसी प्रकार । बहुत यत्न करके । बड़ी कठिनता से । उ०—खैर जैसे तैसे उनकी यहाँ ले आना । जैसे बने, जैसे हो = जिस प्रकार संभव हो । जिस तरह हो सके । उ०—जैसे बने वैसे कल शाम तक चले आधो । जैसे कंवा घर रहे वैसे रहे विदेश = जिसके रहने या न रहने से काम में कोई भ्रंतर न पड़े । निरर्थक व्यक्ति । जैसे मिया काठ, वैसी सन की दाढ़ी = अनुपयुक्त व्यक्ति के लिये अनुपयुक्त वस्तु ही उपयुक्त होती है ।

जैसो^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जैसा' । उ०—प्रब कैसे पैयत सुख मांगे । जैसोइ बोहये तैसोइ लुनिए कर्मन भोग भभागे । —सूर०, १।६१।

जैसो^२—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जैसा' ।

जो'ग—संज्ञा पु० [सं० जोङ्ग] भ्रमर । भ्रमर ।

जो'गक—संज्ञा पु० [सं० जोङ्गक] दे० 'जोग' ।

जो'गट—संज्ञा पु० [सं० जोङ्गट] दे० 'दोहड़' [को०] ।

जो'ताला—संज्ञा स्त्री० [सं० जोन्ताला] देवघान्य । पुनेरा ।

जों—क्रि० वि० [हि० ज्यों] ज्यों । जैसे । जिस प्रकार से । जिस तरह से । जिस भाँति ।

विशेष—दे० 'ज्यों' ।

जोंक—संज्ञा स्त्री० [सं० जलोकस्] १. पानी में रहनेवाला एक प्रसिद्ध कीड़ा जो बिलकुल यैनी के आकार का होता है और जीवों के शरीर में बिपककर उनका रक्त चूसता है ।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ हैं जिनमें से अधिकांश तालावों और छोटी नदियों आदि में, कुछ तर घासों में और बहुत थोड़ी जातियाँ समुद्र में होती हैं । साधारण जोंक बड़े दो इंच लंबी होती है पर किसी किसी जाति की समुद्री जोंक ठाई फुट तक लंबी होती है । साधारणतः जोंक का शरीर कुछ चिपटा और कालापन मिले हरे रंग का या भूरा होता है गिनपर या तो बारियाँ या बुँदकियाँ होती हैं । भालें इसे बहुत सी होती हैं, पर काटने और लहू चूसने की शक्ति केवल आगे, मुँह की ओर ही होती है । आकार के विचार से साधारण जोंक तीन प्रकार की मानी जाती है—कामजी, मझोली और भेंसिया । सुश्रुत ने बारह प्रकार की जोंकें गिनाई हैं—कृष्णा, प्लगर्हा, इन्द्रायुधा, गोबंदना, कबुरा और सामुद्रिक ये छह प्रकार की जोंकें जहरीली और कपिला, पिगला, शंकुमुखी, मूषिका, पुँडरीक-मुखी और सावरिका ये छह प्रकार की जोंकें बिना जहर की बतलाई गई हैं । जोंक शरीर के किसी स्थान में बिपककर खून चूसने लगती है और पेट में खून भर जाने के कारण खूब फूल उठती है । शरीर के किसी अंग में फोड़ा फुँसी या गिलटी

आदि हो जाने पर वहाँ का दूषित रक्त निकाल देने के लिये लोग इसे बिपका देते हैं और जब वह खूब खून पी लेती है तब उसे उँगलियों से खूब कसकर दुड़ लेते हैं जिससे सारा खून उसकी गुदा के मार्ग से निकल जाता है । भारत में बहुत प्राचीन काल से इस कार्य के लिये इसका उपयोग होता आया है । कभी कभी पशुओं के जल पीने के समय जल के साथ जोंक भी उनके पेट में चली जाती है ।

पर्या०—रक्तपा । जलूका । जलोरगी । तीक्ष्णा । बमनी । वेधनी । जलसपिणी । जलसूची । जलाटनी । जलाका । पटालुका । वेणीवेधनी । जलाश्मिका ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—लगवाना ।

२. वह मनुष्य जो अपना काम निकालने के लिये बेतरह पीछे पड़ जाय । वह जो बिना अपना काम निकाले रिह न छोड़े । १. सेवार का बनाया हुआ एक प्रकार का छनना जिससे चीनी साफ की जाती है ।

जोंकी—संज्ञा स्त्री० [हि० जोंक] १. वह चलन जो पशुओं के पेट में पानी के साथ जोंक उतर जाने के कारण होती है । २. लोहे का एक प्रकार का काँटा जो दो तल्लों को मजबूती के साथ जोड़ने के काम में आता है । ३. एक प्रकार का लाल रंग का कीड़ा जो पानी में होता है । ४. दे० 'जोंक' ।

जों जों—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ज्यों ज्यों' ।

जों तों—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ज्यों त्यों' ।

मुहा०—जों तों करके = बड़ी कठिनाई से । उ०—गरज जों तों करके दिन तो काटा ।—लल्लू (शब्द०) ।

जोंदरा—संज्ञा पु० [हि०] 'जोंधरी' ।

जोंदरी—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जोंधरी' ।

जोंधरा—संज्ञा पु० [सं० जूरण] १. बड़े दानों की ज्वार । २. जोंधरी का मूला इँठल । करपी । लकठा ।

जोंधरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जूरण] १. छोटी ज्वार । छोटे दानों की ज्वार । २. बाजरा (कवचित्) ।

जोंधिया—संज्ञा स्त्री० [सं० जोरस्ता, हि० जोधैया] चाँदनी । चंद्रिका ।

जो^१—सर्व० [सं० यः] एक संबंधवाचक सर्वनाम जिसके द्वारा कही हुई संज्ञा या सर्वनाम के वस्तुन में कुछ और वस्तुन की योजना की जाती है । जैसे—(क) जो घोड़ा आपने भेजा था वह मर गया । (ख) जो लोग कल यहाँ आए थे, वे गए ।

विशेष—पुरानी हिंदी में इसके साथ 'सो' का व्यवहार होता था । अब भी लोग प्रायः इसके साथ 'सो' बोलते हैं पर अब इसका व्यवहार कम होता जा रहा है । जैसे,—जो बोवेगा सो काटेगा । आजकल बहुधा इसके साथ 'वह' या 'वे' का प्रयोग होता है ।

जो^२—अव्य० [सं० यद्] १. यदि । प्रगर । उ०—(क) जो करनी समुझे प्रभु मोरी । नहि निस्तार कल्प शत कोरी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जो बालक कछु प्रनुचित करहीं । गुद, पितु मासु मोद मन भरहीं ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इस अर्थ में इसके साथ 'तो' का व्यवहार होता है।

जैसे,—इसमें पानी देना हो तो अभी दे दो।

२. यद्यपि। अगच्छे। (शब्द०)। उ०—पौरि पौरि कोतवार जो बैठा। पेमक लुबुध सुरंग होइ पैठा।—जायसी (शब्द०)।

जोषडा^५—संज्ञा पुं० [सं० युवन्] जवान। युवा। उ०—जोषडा धावहि सुरय रावावहि बोलहि गाडिम बोला।—कीर्ति० पृ० ६४।

जोषण^५—संज्ञा पुं० [सं० योजन, प्रा० जोषण] दे० 'योजन'। उ०—सिधु परइ सत जोषणो, खिविया बीजलियाहि। सुरहउ लोद महकिया, भीनी ठोवड़ियाहि।—ढोला०, दू० १६०।

जोषना^५—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जोवना'।

जोड^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जाया] जोर। पत्नी। भार्या। स्त्री। उ०—विरध मरु विभाग हू को पतित जो पति होइ। जऊ मुरख होइ रोमी तजै नाही जोड।—सूर (शब्द०)।

जोडा^५—सर्व० [हि०] दे० 'जो'।

यौ०—जोइ सोइ जो सो। जो जी में आए। उ०—जसोदा हरि पालने भुजावै। हसरवै दुलराइ मल्हवै जोइ सोइ कलु गावै।—सूर०, १०।६६१।

जोइ^५—वि० [सं० योग्य, प्रा० जो, जोष, जोष] योग्य। उचित। उ०—राजा राणी नूँ कहइ, बात विचारउ जोइ।—ढोला०, दू० ७।

जोइन^५—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि, हि० जोनि] दे० 'योनि'। उ०—तीन लोक जोइन धीतारा। भावागमन में फिरि फिरि पारा।—कबीर सा०, पृ० ८०६।

जोइसी^५—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—चित पितु मारक जोग गनि भयो भये सुत सोगु। फिरि हलस्यो जिय जोइसी समुझें जारज जोग।—बिहारी (शब्द०)।

*जोड—सर्व० [हि०] दे० 'जो'।

जोक^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जोक] दे० 'जोक'।

जोक^५—संज्ञा पुं० [प्रा० जोक] उ०—मंगे जीव तो घर बुला भेज उसूँ। करे जोक फूलाँ सूँ, भर सेज कूँ।—दक्खिनी०, पृ० ८७। २. श्मान। चस्का। उ०—कुशियाँ हारत जोक दायम सो नित नित शहा के मंदिर में टिमटिम्याँ बजाय।—दक्खिनी०, पृ० ७३।

जोखा^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] जोखने का कार्य या भाव। तोल।

जोखता^५—संज्ञा स्त्री० [सं० योपिता] स्त्री। लुगाई।

जोखना^५—क्रि० सं० [सं० जुष (= जॉखना)] तोलना। वजन करना।

जोखना^५—क्रि० प्र० [सं० जुष = जॉखना] विचार करना। सोचना। उ०—काह साथ न तन गा, सकति मुए सब पोखि। मोछ पूर तेहि जानब जो घिर आवत जोखि।—जायसी (शब्द०)।

जोखमा^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोखिम'।

जोखी^५—संज्ञा पुं० [हि० जोखना] १. लेखा। हिसाब।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार बहुधा योगिक में ही होता है। जैसे, लेखा जोखा।

२. तोलने का काम करनेवाला भावमी।

जोखा^५—संज्ञा स्त्री० [सं० योषा] स्त्री। लुगाई।

जोखाई^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जोखना] १. जोखने का काम। तोलाई।

२. जोखने या तोलने का भाव। ३. तोलने की मजदूरी।

जोखि^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जोखिम] दे० 'जोखिम'। उ०—तुम सुखिया अपने घर राजा। जोखिउ एत सहहु केहि काजा।—जायसी (शब्द०)।

जोखिम—संज्ञा स्त्री० [?] १. भारी अनिष्ट या विपत्ति की आशंका अथवा संभावना। भौकी। जैसे,—इस काम में बहुत जोखिम है।

मुहा०—जोखिम उठाना या सहना = ऐसा काम करना जिसमें भारी अनिष्ट की आशंका हो। जोखिम में पड़ना = जोखिम उठाना। जान जोखिम होना = प्राण जाने का भय होना।

२. वह पदार्थ जिसके कारण भारी विपत्ति आने की संभावना हो, जैसे, रुपया, पैसा, जेवर आदि। जैसे,—तुम्हारी यह जोखिम हम नहीं रख सकते।

जोखुआ^५—संज्ञा पुं० [हि० जोखना + आ (प्रत्य०)] तोलनेवाला। बया।

जोखुवा^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोखुआ'।

जोखौ^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोखिम'।

मुहा०—जान जोखौ होना = प्राण का संकट में होना।

जोगंधर—संज्ञा पुं० [सं० योगन्धर] एक युक्ति जिसके द्वारा शत्रु के चलाए हुए भस्त्र से अपना बचाव किया जाता है। यह युक्ति श्री रामचंद्र जी को विश्वामित्र ने सिखलाई थी। उ०—पद्मनाभ मरु महानाभ दोउ इंदहु सुनाभा। ज्योति निकुंत निराश विमल युग जोगंधर बड़ आभा।—रघुराज (शब्द०)।

जोग^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योग'।

यौ०—जोगमुद्रा = योग की मुद्रा। जोग समाधि = योग की समाधि।

जोग^५—अव्य० [सं० योग्य] १. के जिये। वास्ते। उ०—अपने जोग लागि प्रस लेला। गुरु मएउ प्रापु कीन्ह तुम चेला।—जायसी (शब्द०)। २. की। के निकट। (पृ० हि०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग बहुधा पुरानी परिपाटी की चिट्ठियों के प्रारंभिक वाक्यों में होता है। जैसे,—'स्वस्ति श्री भाई परमानंद जी जोग लिखा काशी से सीताराम का राम राम बाचना।' बहुधा यह द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर काम में आता है। जैसे,—इनमें से एक साड़ी भाई कृष्णचंद्र जी जोग देना।

जोगड़ा—संज्ञा पुं० [हि० जोग + ड़ा (प्रत्य०)] बना हुआ योगी। पाखंडी। जैसे,—घर का जोगी जोगड़ा भान गांव का सिद्ध। (कहा०)।

जोगता^५—संज्ञा स्त्री० [सं० योग्यता] दे० 'योग्यता'।

जोगन^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोगिन'।

जोगनिया^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोगिनी'।

जोगनिया^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोगिविया'।

योगमाया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'योगमाया' ।

जोगवना—क्रि० सं० [सं० योग + वना (प्रत्य०)] १. किसी वस्तु को यत्न से रखना जिसमें वह नष्ट न हो पाए। रक्षित रखना। उ०—बिजन मुरि भिमि जोगवत रहऊँ। वीप बाति नहि टारन कहऊँ।—तुलसी (शब्द०)। २. संचित करना। बटोरना। ३. लिहाज रखना। आदर करना। उ०—ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तन मम कुभाउ।—तुलसी (शब्द०)। ४. दर गुजर करना। जाने देना। कुछ ख्याल न करना। उ०—खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत मनट अपाउ।—तुलसी (शब्द०)। ५. पूरा करना। पूर्ण करना। उ०—काय न कलेस सेस लेत मानि मन की। सुमिरे सकुचि वचि जोगवत जन की।—तुलसी (शब्द०)।

जोगसाधन—संज्ञा पुं० [सं० योगसाधन] तपस्या।

जोगा—संज्ञा पुं० [देश०] अफीम का खुदक। वह मूल जो अफीम को छानने से बच रहती है।

जोगानल—संज्ञा स्त्री० [सं० योगानल] योग से उत्पन्न आग। उ०—हर विरह जाइ बहोरि पितु के जग्य जोगानल जरी—तुलसी (शब्द०)।

जोगिंद—संज्ञा पुं० [सं० योगीन्द्र] १. योगिराज। योगिश्रेष्ठ। २. महादेव (हि०)।

जोगि—संज्ञा स्त्री० [हि० योगी] दे० 'योगी'।

जोगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० योगिनी] १. योगी की स्त्री। २. विरक्त स्त्री। साधुनी। ३. पिशाचिनी। ४. एक प्रकार की राक्षसी जो रात में कटे मरे मनुष्यों के हड्डियों को देखकर भ्रान्त-वित होती है और मुंडों को गेंद बनाकर खेलती है। ५. एक प्रकार का भाड़ीदार पौधा जिसमें नीले रंग के फूल लगते हैं। ६. दे० 'योगिनी'।

जोगिनिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. लाल रंग की एक प्रकार की ज्वार। २. एक प्रकार का आम। ३. एक प्रकार का धान जो भगहन में तैयार होता है।

विशेष—इसका आवल वर्षों ठहर सकता है।

जोगिनी^१—संज्ञा [सं० जोगिनी] १. दे० 'योगिनी'। उ०—भूमि प्रति जगमगी जोगिनी सुनि जगी सहस्र फन शेष सो सीस काँधी।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'जोगिन'।

जोगिनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योतिरिङ्गण, प्रा० जोङ्गण] जुगुप्सु। लज्जित।

जोगिया^१—वि० [हि० जोगी + हया (प्रत्य०)] १. योगी संबंधी। योगी का। जैसे, जोगिया भेष। २. गेरू के रंग में रंगा हुआ। गैरिक। ३. गेरू के रंग का। मटमैलापन लिए लाल रंग का।

जोगिया^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० १. 'जोगड़ा'। दे० २. 'जोगी'। ३. एक रागिनी।

जोगीन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० योगीन्द्र] १. योगिराज। बड़ा योगी। योगिश्रेष्ठ। २. शिव। महादेव।

जोगी—संज्ञा पुं० [सं० योगिन्] १. वह जो योग करता हो। योगी। २. एक प्रकार के भिक्षुक जो सारंगी लेकर भृंगुरि के गीत पाते और भीख मांगते हैं। इनके कपड़े गेरू रंग के होते हैं।

जोगीड़ा—संज्ञा पुं० [हि० जोगी + डा (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का चलता गाना जो प्रायः बसंत ऋतु में ढोलक पर गाय जाता है। २. गाने बजानेवालों का एक समाज।

विशेष—इस समाज में एक गानेवाला लड़का, एक ढोलक बजानेवाला और दो सारंगी बजानेवाले रहते हैं। इनमें गानेवाले लड़के का भेष प्रायः योगियों का सा होता है और वह कुछ भ्रमंकार आदि भी पहने रहता है। इसका गाना देहातों में सुना जाता है।

३. इस समाज का कोई आदमी।

जोगीश्वर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योगीश्वर'।

जोगीश्वर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योगीश्वर'। उ०—जोगी-स्वरन के ईश्वर राम। बहुरूपी जदपि आत्माराम।—नद० प्र०, पृ० ३२१।

जोगेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० योगेश्वर] १. श्रीकृष्ण। २. शिव। ३. देवहोत्र के पुत्र का नाम। ४. योग का अधिकारी। योग का ज्ञाता। सिद्ध योगी।

जोगेसर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योगेश्वर'। उ०—यूँ कंमलज्ज धरे धूँ अंबर। यूँ गंगा मेले जोगेसर।—रा० क०, पृ० ७६।

जोगेश्वर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योगेश्वर'। उ०—जोग मार्गं जोगेंद्र जोगि जोगेश्वर जानें।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ३८४।

जोगोटा^१—वि० [हि० जोगी] जोग या योग करनेवाला।

जोगोटा^२—संज्ञा पुं० [हि० जोगोटा] दे० 'जोगोटा'।

जोगौटा—संज्ञा पुं० [सं० योगपट्ट] १. योगी का वस्त्र। कोपीन। लंगोट। २. झोली। उ०—मेखल सिंगी जक घंघारी। जोगौटा दहाख अघारी। कंथा पहिरि बंड कर गहा। सिद्ध होइ कहैं गोरख कहा।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २०५।

जोग्य—वि० [हि०] दे० 'योग्य'।

जोजन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योजन'। उ०—कह मुनि तात भएउ अंधियारा। जोजय सत्तारि नगर तुम्हारा।—मानस, १।५६।

जोजनगंधा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'योजनगंधा'।

जोट^१—संज्ञा पुं० [सं० योटक] १. जोड़ा। जोड़ी। २. साथी। संघाती।

जोट^२—वि० समान। बराबरी का। मेल का।

जोटा^१—संज्ञा पुं० [सं० योटक] १. जोड़ा। युग। उ०—(क) ए दोऊ दशरथ के ठोटा। बाल मरननि के कल जोटा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सवन बन जोटा।—तुलसी (शब्द०)। २. टाट का बना हुआ एक बड़ा दोहरा थैला जिसमें अनाज भरकर बैलों पर लादा जाता है। गीना। खुरजी।

जोटिंग—संज्ञा पुं० [सं० जोटिङ्ग] १. महादेव। शिव। २. अत्यंत कठिन तपस्या करनेवाला साधक [जो]।

जोटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जोट] १. जोड़ी। युग्मक। उ०—काँची धूस पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी। सूरदास

बिरजीबहु बोऊ हरि हसधर की जाटी । —सूर (शब्द०) । २. बराबरी का । जोड़ का । समान । ३. जो गुण आदि में किसी दूसरे के समान हो । जिसका मेल दूसरे के साथ बैठ जाता हो ।

जोड़—संज्ञा पुं० [सं०] बंधन [जी०] ।

जोड़—संज्ञा पुं० [सं० योग] १. गणित में कई संख्याओं का योग । जोड़ने की क्रिया । २. गणित में कई संख्याओं का योगफल । वह संख्या जो कई संख्याओं को जोड़ने से निकले । मीजान । ठीक । टोटल ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

३. वह स्थान जहाँ दो या अधिक पदार्थ या टुकड़े जुड़े अथवा मिले हों । जैसे, कपड़े में सिलाई के कारण पड़नेवाला जोड़, लोटे या घाली आदि का जोड़ ।

मुहा०—जोड़ उखड़ना । जोड़ का ढोला पड़ जाना । सधि स्थान में कोई ऐसा विकार उत्पन्न होना जिसके कारण जुड़े हुए पदार्थ भलग हो जायें ।

४. वह टुकड़ा जो किसी चीज में जोड़ा जाय । जैसे,—यह चाँदनी कुछ छोटी है इसमें जोड़ लगा दो । ५. वह चिह्न जो दो चीजों के एक में मिलने के कारण सधि स्थान पर पड़ता है । ६. शरीर के दो अंगों का सधि स्थान । गाँठ । जैसे, कंधा, घुटना, कलाई, पोर आदि ।

मुहा०—जोड़ उखड़ना = किसी अवयव के मूल का अपने स्थान से हट जाना । जोड़ बैठना = अपने स्थान से हटे हुए अवयव के मूल का अपने स्थान पर आ जाना ।

७. मेल । मिलान । ८. बराबरी । समानता । जैसे,—तुम्हारा और उनका कौन जोड़ है ?

विशेष—प्रायः इस अर्थ में इस शब्द का रूप जोड़ का भी होता है । जैसे,—(क) यह गमला उसके जोड़ का है । (ख) इसके जोड़ का एक लप से आघात ।

९. एक ही तरह की अवयव साथ साथ काम में आनेवाली दो चीजें । जोड़ा । जैसे, पहलवानों का जोड़, कपड़ों (धोती और दुपट्टे) का जोड़ ।

मुहा०—जोड़ बाँधना = (१) कुश्ती के लिये बराबरी के दो पहलवानों को चुनना । (२) किसी काम पर भलग भलग दो दो आदमियों को नियत करना । (३) चौपट से दो गोदियाँ एक ही घर में रखना ।

१०. वह जो बराबरी का हो । समान धर्म या गुण आदिवाला । जोड़ । ११. पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक । जैसे,—उनके पास चार जोड़ कपड़े हैं । १२. किसी वस्तु या कार्य में प्रयुक्त होनेवाली सब आवश्यक सामग्री । जैसे, पहनने के सब कपड़ों या अंग प्रत्यंग के आभूषणों का जोड़ । १३. जोड़ने की क्रिया या भाव । १४. छल । दाँब ।

यौ०—जोड़ तोड़ = (१) दाँब पेच । छल कपट । (२) किसी कार्य विशेष युक्ति । ढग ।

विशेष—बहुधा इस अर्थ में इसके साथ 'लगाना' । 'भिड़ना' क्रियाओं का व्यवहार होता है ।

१५. दे० 'जोड़ा' ।

जोड़ती—संज्ञा स्त्री [हि० जोड़ + ती (प्रत्य०)] १. गणित में कई संख्याओं का योग । जोड़ । २. गणना । गिनती । शुमार ।

जोड़न—संज्ञा स्त्री [हि० जोड़] १. जोड़ने की क्रिया या भाव । २. वह पदार्थ जो दही जमाने के लिये दूध में डाला जाता है । जाबन । जामन ।

जोड़ना—क्रि० सं० [सं० जुड़ (= बाँधन) या सं० युक्त, प्रा० जुह] १. दो वस्तुओं को सीकर, मिलाकर, बिपकाकर अथवा इसी प्रकार के किसी और उपाय से एक करना । दो चीजों को मजबूती से एक करना । जैसे, संबाई बढ़ाने के लिये कागज या कपड़ा जोड़ना । २. किसी टूटी हुई चीज के टुकड़ों को मिला कर एक करना । ३. द्रव्य या सामग्रियों को क्रम से रखना, लगाना या स्थापित करना । जैसे, अक्षर जोड़ना, ईंट या पत्थर जोड़ना । ४. एकत्र करना । एकट्ठा करना । संग्रह करना । जैसे, रुपए जोड़ना । कुनबा जोड़ना, सामग्री जोड़ना । ५. कई संख्याओं का योगफल निकालना । मीजान लगाना । ६. वाक्यों या पदों आदि की योजना करना । वस्तु प्रस्तुत करना । जैसे, कहानी जोड़ना, कविता जोड़ना, बात जोड़ना, तूमार या तूफान जोड़ना (= झूठा दोषारोपण करना) । ७. प्रज्वलित करना । जलाना । जैसे, आग जोड़ना, दीआ जोड़ना । ८. संबंध स्थापित करना । ९. संबंध करना । संबंध उत्पन्न करना । जैसे, दोस्ती जोड़ना । † १०. जोतना ।

संयो० क्रि०—देना ।

जोड़ना—वि० [हि० जोड़ + ला (प्रत्य०)] एक ही गर्भ से एक ही समय में जन्मे हुए दो बच्चे । यमज ।

जोड़वाँ—वि० [हि० जोड़ + वाँ (प्रत्य०)] वे दो बच्चे जो एक ही समय में और एक ही गर्भ से उत्पन्न हुए हों । यमज ।

जोड़वाई—संज्ञा पुं० [हि० जोड़वाणा] १. जोड़वाने की क्रिया । २. जोड़वाने का भाव । ३. जोड़वाने की मजदूरी ।

जोड़वाना—क्रि० सं० [हि० जोड़ना का प्र० रूप] दूसरे को जोड़ने में प्रवृत्त करना । जोड़ने का काम दूसरे से कराना ।

जोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० जोड़ना] [स्त्री० जोड़ी] दो समान पदार्थ । एक ही सो दो चीजें । जैसे, धोतियों का जोड़ा, तम्बीरो का जोड़ा, गुलदानों का जोड़ा ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

विशेष—जोड़े में का प्रत्येक पदार्थ भी एक दूसरे का जोड़ा कहलाता है । जैसे, किसी एक गुलदान को उसी तरह के दूसरे गुलदान का जोड़ा कहेंगे ।

२. दोनों पैरों में पहनने के जूते । उपानह । ३. एक साथ या एक मेल में पहने जानेवाले दो कपड़े । जैसे, अंगे और पेजामे का जोड़ा, कोट और पतलून का जोड़ा, लहंगे और छोटनी का जोड़ा । ४. पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक । जैसे,—(क) उनके पास चार जोड़े कपड़े हैं । (ख) हम तो थोड़े जोड़े से तैयार हैं, तुम्हारी ही देर थी ।

यौ०—जोड़ा जामा = (१) वे सब कपड़े जो विवाह में वर पहनता है । (२) पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक ।

क्रि० प्र०—पहनना ।—बढ़ाना ।

५. स्त्री और पुरुष । जैसे, वर कन्या का जोड़ा । ६. नर और मादा (केवल पशु और पक्षियों आदि के लिये) । जैसे, सारस का जोड़ा कबूतर का जोड़ा, कुत्तों का जोड़ा ।

विशेष—अंक ५ और ६ के अर्थों में स्त्री और पुरुष अथवा नर और मादा में से प्रत्येक को भी एक दूसरे का जोड़ा कहते हैं ।

क्रि० प्र०—मिलाना ।—लगाना ।

मुहा०—जोड़ा खाना = संभोग करना । मैथुन करना । जोड़ा लिखाना = संभोग में प्रवृत्त करना । मैथुन कराना । जोड़ा लगाना = नर और मादा को मैथुन में प्रवृत्त करना ।

७. वह जो बराबरी का हो । जोड़ा । ८. दे० 'जोड़' ।

जोड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ना+आई (प्रत्य०)] १. दो या अधिक वस्तुओं को जोड़ने की क्रिया या भाव । २. जोड़ने की मजदूरी । ३. दीवार आदि बचाने के लिये ईंटों या पत्थरों के टुकड़ों को एक दूसरे पर रखकर जोड़ने की क्रिया । ४. घातुओं, पीतल, ताँबा, लोहा आदि जोड़ने का काम ।

जोड़ासंदेश संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बँगला मिठाई जो छेदने से बनती है ।

जोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ा] १. दो समान पदार्थ । एक ही सी दो चीजें । जोड़ा । जैसे, शाल की जोड़ी, तस्वीरों की जोड़ी, किवाड़ों की जोड़ी, घोड़ों या बैलों की जोड़ी ।

क्रि० प्र०—मिलाना ।—लगाना ।

यौ०—जोड़ीदार = जोड़वाला । जो किसी के साथ में हो । (किसी काम पर एक साथ नियुक्त होनेवाले दो आदमी परस्पर एक दूसरे को अपना जोड़ीदार कहते हैं ।)

विशेष—जोड़ी में प्रत्येक पदार्थ को भी परस्पर एक दूसरे की जोड़ी कहते हैं । जैसे,—किसी एक तस्वीर को उसी तरह की दूसरी तस्वीर की 'जोड़ी' कहेंगे ।

२. एक साथ पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक । जैसे,—उनके पास चार जोड़ी कपड़े हैं । ३. स्त्री और पुरुष । जैसे वर बधू की जोड़ी । ४. नर और मादा (केवल पशुओं और पक्षियों के लिये) । जैसे, घोड़ों की जोड़ी, सारस की जोड़ी, मोर की जोड़ी ।

विशेष—अंक ३ और ४ के अर्थ में स्त्री और पुरुष अथवा नर और मादा में से प्रत्येक को एक दूसरे की जोड़ी कहते हैं ।

५. दो घोड़ों या दो बैलों की गाड़ी । वह गाड़ी जिसे दो घोड़े या दो बैल खींचते हो । जैसे,—जब से समुराल का माल आपको मिला है तबसे आप जोड़ी पर निकलते हैं । ६. दोनों मुगदर जिनसे कसरत करते हैं ।

क्रि० प्र०—फेरना ।—भाँजना ।—हिखाना ।

यौ०—जोड़ी की बैठक = वह बैठकी (कसरत) जो मुगदरों की जोड़ी पर हाथ टेककर की जाती है । मुगदरों के अभाव में दो लकड़ियों से भी काम लिया जाता है ।

७. मजोरा । ताल ।

यौ०—जोड़ीवाल = जो गाने बजानेवालों के साथ जोड़ी या मँजीरा बजाता हो ।

८. वह जो बराबरी का हो । समान धर्म या गुण आदि वाला । जोड़ ।

जोड़ुआँ—संज्ञा पुं० [हि० जोड़ा + आ (प्रत्य०)] पैर में पहनने का चाँदी का एक प्रकार का गहना ।

विशेष—इसमें एक सिकरी में छोटे बड़े दो छल्ले लगे रहते हैं । बड़ा छल्ला घँगूटे में और छोटा सबसे छोटी उँगली में पहना जाता है । सिकरी बीच की उँगलियों के ऊपर रहती है ।

जोड़—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोड़' ।

जोत^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जोतना अथवा सं० योक्त्र, प्रा० जोत] १. वह चमड़े का तस्मा या रस्सी जिसका एक सिरा घोड़े, बैल आदि जोते जानेवाले जानवरों के गले में और दूसरा सिरा उस चीज में बँधा रहता है जिसमें जानवर जोते जाते हैं । जैसे, एकके की जोत, गाड़ी की जोत, मोट या चरसे की जोत ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।—लगाना ।

२. वह रस्सी जिसमें तराजू की डंडी से बंधे हुए उसके पल्ले लटकते रहते हैं । ३. वह छोटी सी रस्सी या पगड़ी जिसमें बैल बाँधे जाते हैं और जो उन्हें जोतते समय जुघाटे में बाँध दी जाती है । ४. उतनी भूमि जितनी एक किसान को जोतने बोन के लिये मिली हो । ५. एक क्रम या पलटे में जितनी भूमि जोती जाय ।

जोत^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] १. दे० 'ज्योति' । २. दे० 'जोति' ।

जोत^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] समतल पहाड़ी । उ०—यद्यपि वहाँ पहुँचने के लिये कुल्लू से दो जबर्दस्त जोतें पार करनी पड़ेगी ।—किन्नर०, पृ० १४ ।

जोत^४—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' । उ०—अनग पुहवै नरेस व्यास जग जोत बुलाइय । लगन लिद्धि अमुजा सुत नाम चिह्न चक्क चलाइय ।—पृ० रा०, १ । ६८६ ।

जोतक^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' । उ०—माता पूछे पडिता जोतक पढ़हि अनेक । जो बिधि ने लिख पाया को बूझै न जान विवेक ।—प्राण०, पृ० २११ ।

जोतखी^६—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' । उ०—जोतखी जी ठीक कहते हैं । गाँव के ग्रह अच्छे नहीं हैं ।—मैला०, पृ० २६ ।

जोतगी^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' । उ०—तब बुलाय सब जोतगी, कही सुपनफल सत्य । दिवस पंच के अंतर, होय सु दिल्लीपत ।—पृ० रा०, ३ । ११ ।

जोतड़िया^८—संज्ञा स्त्री० [हि० जोत] दे० 'ज्योति' । उ०—ऊँची पउड़ी ले गगनतरि चढ़ीया । अनहद बीचार चमकी जोतड़िया ।—प्राण०, पृ० २२३ ।

जोतदार—संज्ञा पुं० [हि० जोत+दा (प्रत्य०)] वह किसान जो जोतने बोन के लिये कुछ जमीन (जोत) मिली हो ।

जोतना—क्रि० सं० [सं० योजन, पा० युक्त, प्रा० जुप्त + हि० ना (प्रत्य०)] १. रथ, गाड़ी, कोल्लू, चरसे आदि को चलाने के लिये उसके आगे बैल, घोड़े आदि पशु बाँधना । जैसे,—घोड़ा जोतना । २. गाड़ी या रथ आदि को उनमें घोड़े बैल आदि को जोतकर चलने के लिये तैयार करना । जैसे, गाड़ी जोतना । ३. किसी को जबर्दस्ता किसी काम में लगाना । ४. हल चलाकर

खेती के लिये जमीन की मिट्टी जोड़ना। हल चलाना जैसे, खेत जोतना।

जोवनी—संज्ञा स्त्री० [हि० जोत या जोतना] १. वह छोटी रस्सी जो जुए में जुते हुए जानवर के घले के नीचे दोनों ओर बंधी होती है। २. जुताई। जोतने का काम।

जोवसी—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] १० ज्योतिषी।

जोवति—संज्ञा स्त्री० [हि० जोतना] खेत की मिट्टी की ऊपरी तह। (कुम्हार)।

जोता—संज्ञा पुं० [हि० जोतना] १. जुगाड़े में बंधी हुई वह पतली रस्सी जिससे बैलों की गरदन फँसाई जाती है। २. जुलाहों की परिभाषा में वे दोनों खोरियाँ जो करघे पर फैलाए हुए ताने के अंतिम सिरे पर उसके सूतों को ठीक रखनेवाली कमाची या अंजनी के दोनों सिरों पर बंधी हुई होती हैं। इन दोनों खोरियों के दूसरे सिरे घापस में भी एक दूसरे से बंधे और पीछे की ओर ताने होते हैं। ३. करघे में सूत की वह खोरी जो बरोछी में बंधी रहती है। ४. वह बहुत बड़ी धरन या गह्वरी जो एक ही पक्ति में लगे हुए कई खलों पर रखी जाती है और जिसके ऊपर बीवार उठाई जाती है। ५. वह जो हल जोतता हो। खेती करनेवाला। जैसे, हरजोता।

जोताई—संज्ञा स्त्री० [हि० जोतना + आई (प्रत्यय)] १. जोतने का काम। २. जोतने का भाव। ३. जोतने की मजदूरी।

जोतास—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० जोतति।

जोति—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] १. धी का वह धिया जो किसी देवी या देवता आदि के आगे प्रणम्य उसके उद्देश्य से जलाया जाता है।

क्रि० प्र०—जलाना।—बारना।

ज्यो—ज्योतिभोग—किसी देवता के सामने जोति जलाने और भोग लगाने आदि की क्रिया।

* २. १० 'ज्योति'।

जोति०—संज्ञा स्त्री० [हि० जोतना] जोतने बोलने योग्य भूमि। उ०—एतजि देवो क्रिया देखि जग बुरो होत जोति बहु रई दाम राम मति सानिए।—प्रिया० (शब्द०)।

जोसिक०—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'ज्योतिष'। उ०—विद्या पढ़ेउं करन संगीता। सामुद्रिक जोतिक गुन गीता।—माधवानल०, पृ० २०८।

जोसिखी—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'ज्योतिषी'।

जोसिम०—संज्ञा पुं० [हि०] १. ज्योतिष शास्त्र। उ०—न रह बात जोतिग घटै मनस भूष धिरताव।—पृ० १०, ३१३। २. ज्योतिषी। उ०—जोगनैर जोतिग कहै, प्रभु सु होय प्रयुराव। पृ० १०, ३१३।

जोसिमय०—वि० [हि०] १० 'ज्योतिर्मय'। उ०—रतनपुत्र रुपनाथ रतन जिमि ललित जोतिमय।—मति० प्र०, पृ० ४१४।

जोसिलिंग—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'ज्योतिर्लिंग'।

जोतिषंत०—वि० [सं० ज्योतिषन्] ज्योतिष्युक्त। चमकदार। उ०—

पावक पवन मणि पद्म पतंग पितृ जेते जोतिषंत जग ज्योतिषिन गए हैं।—केजव (शब्द०)।

जोतिषः—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'ज्योतिष'।

जोतिषटोम—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषटोम] १० 'ज्योतिषटोम'।

जोतिषी—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'ज्योतिषी'।

जोतिस०—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'ज्योतिष'।

जोतिसना—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'ज्योतिसना'।—प्रने०, पृ० १०१।

जोतिहा—संज्ञा पुं० [हि० जोतना] जोतनेवाला किसान। जोता।

जोती—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. १० 'ज्योति'। उ०—बदन पै सलिल कन जगमगास जोती। इंदु सुधा तामें मतीं धमी मय मोती।—तंद० प्र०, पृ० ३४७। २. १० 'जोति'।

जोती—संज्ञा स्त्री० [हि० जोतना] १. तगाड़ के परलों की खोरी जो डोड़ी से बंधी रहती है। जोत। २. घोड़े की रास। लगाम। ३. चक्की में की वह रस्सी जो बीच की कीली और हस्त्य में बंधी रहती है। इस कमरे या खोली करने से चक्की हलकी या भारी चलती है और चीज मोटी या महीन पिसती है। ४. वे रस्मियाँ जिनमें खेत में पानी खींचने की खोरी बंधी रहती है।

जोत्सना—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्सना] १० 'ज्योत्सना'।

जोध०—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'योद्धा'। उ०—कवि लखन प्रबला कहत, सबला जोष कहंत।—हमिर रा०, पृ० २७।

जोधन—संज्ञा स्त्री० [सं० योग + धन] वह रस्सी जिससे बैल के जुए की ऊपर नीचे की लकड़ियाँ बंधी रहती हैं।

जोधा—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'योद्धा'। उ०—(क) प्रगट कपाट बहे दीने है बहु जोधा रखवारे।—सूर (शब्द०)। (ख) सूर प्रभु सिंह ध्वनि करत जोधा सकल जहाँ तहें करन लागे सराई।—सूर (शब्द०)।

जोधा—संज्ञा पुं० [हि०] जोता नाम की रस्सी जो जुगाड़े में बंधी रहती है और जिसमें बैलों के सिर फँसाए जाते हैं।

जोधार०—संज्ञा पुं० [सं० योद्धा] योद्धा। सूर। उ०—नकं कुंठ मे ना पड़ूँ जीतू मन जोधार। ऐसी मुक्त उपदेश दी सतगुरु कर उपकार।—राम० धर्म०, पृ० ३१३।

जोनी—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] १० 'योनि'।

जोनराज—संज्ञा पुं० [देश०] राजनरंगिणी के द्वितीय लेखक जिन्होंने स० १२०० के बाद का हाल लिखा है। इनका लिखा हुआ 'पृथ्वीराजविजय' नामक एक ग्रंथ और 'किरातार्जुनीय' की एक टीका भी है।

जोनरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] ज्वार नामक घस।

जोना—क्रि० स० [हि०] देखना। उ०—रइबारी डोलउ कहइ करहुउ छाछउ जोइ।—डोला०, पृ० ३०६। (ख) प्रेम के पथ सु प्रीति की पैठ मे पैठत ही है बसा यह जो ले।—पद्याकर ग्रं०, पृ० १७३।

जोमि—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] १० 'योनि'। उ०—जेहि जेहि जोनि करम बस अमहीं। तहें तहें ईशु देउ यह हमही।—मानस, २।२४।

जोनी^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'योनि' । उ०—कवन पुरुष जोनी बिना कवन मोत बिना काल । —रामानंद०, पु० ३३ ।

जोन्हा^७—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोएह] १. जुन्हाई । चंद्रिका । चांदनी । ज्योत्स्ना । २. चंद्रमा ।

जोन्हरी^७—संज्ञा स्त्री० [देशी जोएहलिआ] उबार नामक घन ।

जोन्हाई^७—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोएहा] १. चंद्रिका । चांदनी । चंद्रज्योति । २. चंद्रमा ।

जोन्हार^७—संज्ञा पुं० [हि०] उबार नामक घन ।

जोप^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यूप' ।

जोपे^७—अव्य० [हि० जो + पर प्रत्यया सं० यछपि] १. यदि । अगर । २. यद्यपि । अगरचे ।

जोफ—संज्ञा [प्र० जोफ] १. बुढ़ापा । बुढ़ावस्था । २. सुस्ती । निबंलता । कमजोरी । नाताकनी ।

यौ०—जोफ जगर = (१) जगर का ठीक ठीक काम न करना । (२) जगर या यकृत की कमजोरी । जोफ दिमाग = दिमाग की कमजोरी । जोफ मेदा = पाचन की कमजोरी । मंदागि । अजीर्ण ।

जोवन—संज्ञा पुं० [सं० योवन] १. युवा होने का भाव । योवन । उ०—वन जोवन अधिमान मत्प जल कहै कूर आपुनी बोरी । सूर (शब्द०) ।

मुहा०—जोवन लूटना = (किसी स्त्री की) युवावस्था का भ्रान्त लेना ।

२. सुंदरता, विशेषतः युवावस्था अथवा मध्यकाल की सुंदरता । रूप । खूबसूरती ।

क्रि० प्र०—छाना । —पर छाना ।

मुहा०—जोवन उतरना = युवावस्था समाप्त होना । जोवन चढ़ना = युवावस्था का सौंदर्य घाना । जोवन ढलना = दे० 'जोवन उतरना' ।

३. रीनक । बहार । ४. कुब । स्तन । छाती । उ०—जुघ दुहें जोवन सौ लागी ।—जायसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—उठना ।—उभरना ।—ढलना ।

५. एक प्रकार का फूल ।

जोवना^७—क्रि० सं० [हि० जोवना] दे० 'जोवना' ।

जोम—संज्ञा पुं० [प्र० जोम] १. उर्मंग । उरसाह । २. जोश । उद्वेग । आवेश । ३. अहंकार । अभिमान । घमंड ।

क्रि० प्र०—दिखाना ।

४. धारणा । खयाल (को०) । ५. प्रबलता (को०) । ६. समूह (को०) ।

जोय^७—संज्ञा स्त्री० [सं० जाया] जोर । स्त्री । पत्नी ।

जोय—सर्व० पुं० [हि०] जो । जिस ।

जोयना^७—क्रि० सं० [हि० जोवना (जैसे, दीया जोड़ना)] १. बांधना । जलाना । उ०—चौसठ दीया जोय कै चोदह चंदा माहि । तिहि घर किसका चांदना जिहि घर सतगुर नाहि ।—कबीर (शब्द०) । २. दे० 'जोवना' ।

जोयसी^७—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी' ।

जोर—संज्ञा पुं० [फा० जोर] बल । शक्ति । ताकत ।

क्रि० प्र०—आजमाना । —देखना । —दिखाना । —लगना । —लगाना ।

मुहा०—जोर करना = (१) बल का प्रयोग करना । ताकत लगाना । (२) प्रयत्न करना । कोशिश करना । जोर दूटना = बल घटना या नष्ट होना । प्रभाव कम होना । शक्ति घटना । जोर डालना = बौझ डालना । दे० 'जोर देना' । जोर देना = (१) बल का प्रयोग करना । ताकत लगाना । (२) शरीर आदि का) बौझ डालना । भार देना । जैसे,—इस जंगल पर जोर मत दो नहीं तो वह टूट जाएगा । किसी बात पर जोर देना = किसी बात को बहुत ही आवश्यक या महत्वपूर्ण बतलाना । किसी बात को बहुत जरूरी बतलाना । जैसे,—उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि सब लोग साथ चलें । किसी बात के लिये जोर देना = किसी बात के लिये आग्रह करना । किसी बात के लिये हठ करना । जोर देकर कहना = किसी बात को बहुत अधिक दृढ़ता या आग्रह से कहना । जैसे,—मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि इस काम में आपको बहुत फायदा होगा । जोर मारना या लगाना = (१) बल का प्रयोग करना । ताकत लगाना । (२) बहुत प्रयत्न करना । खूब कोशिश करना । जैसे,—उन्होंने बहुतेरा जोर मारा पर कुछ भी नहीं हुआ ।

यौ०—जोर जुलम = अत्याचार । ज्यादाती ।

२. प्रबलता । तेजी । बढ़ती । जैसे, भाँग का जोर, खुलार का जोर ।

विशेष—कभी कभी लोग इस अर्थ में 'जोर' शब्द का प्रयोग 'से' विभक्ति उढ़ाकर विशेषण की तरह और कभी कभी 'का' विभक्ति उढ़ाकर क्रिया की तरह करते हैं ।

मुहा०—जोर पकड़ना या बाँधना = (१) प्रबल होना । तेज होना । जैसे,—(क) अभी से इलाज करो नहीं तो यह बीमारी जोर पकड़ेगी । (ख) इस फोड़े ने बहुत जोर बाँधा है । (२) दे० 'जोर में घाना' । जोर करना या मारना = प्रबलता दिखलाना । जैसे,—(क) रोग का जोर करना । बाम का जोर करना । (ख) आज आपकी मुहब्बत ने जोर मारा, तभी आप यहाँ आए हैं । जोर में घाना = ऐसी स्थिति में पहुँचना जहाँ घना-यास ही उन्नति या वृद्धि हो जाय । जोर या जोरों पर होना = (१) पूरे बल पर होना । बहुत तेज होना । जैसे,—(क) आजकल शहर में चेचक बहुत जोरों पर है । (ख) इस समय उन्हें खुलार जोरों पर है । (२) खूब उन्नत बंधा में होना ।

३. वश । अधिकार । इत्तियार । काबू । जैसे,—हम क्या करें, हमारा उनपर कोई जोर नहीं है ।

क्रि० प्र०—चलना । —चलाना । —जताना । —होना ।

मुहा०—जोर डालना = किसी काम के लिये कुछ अधिकार जत लाते हुए विशेष आग्रह करना । दबाव डालना ।

४. वेग । आवेश । झोंक ।

मुहा०—जोरों पर = बड़े वेग से। बड़ी तेजी से। जैसे, गाड़ी का जोरों पर जाना, नदी का ओरों पर बहना।

५. मरोसा। घासरा। सहारा। जैसे,—घास किसके जोर पर कूवते हैं ?

मुहा०—शतरंज में किसी मोहरे पर जोर देना या पहुँचाना = किसी मोहरे की सहायता के लिये उसके पास कोई ऐसा मोहरा ला रखना जिसमें उस पहले मोहरे के मारे जाने की संभावना न रह जाय अथवा यदि उस पहले मोहरे को विपक्षी अपने किसी मोहरे से मारना चाहे तो उसका मोहरा भी तुरंत उस मोहरे से मार लिया जा सके जिससे पहले मोहरे को जोर पहुँचाया गया है। शतरंज के मोहरे का जोर पर होना = मोहरे का ऐसी स्थिति में होना जिसमें यदि उसे विपक्षी का कोई मोहरा मारना चाहे तो वह स्वयं भी मारा जा सके। किसी के जोर पर कूदना = किसी को अपनी सहायता पर देखकर अपना बल दिखाना। बेजोर = जिसकी सहायता पर कोई न हो।

६. परिश्रम। मेहनत। जैसे,—घोंघरे में पढ़ने से आँखों पर जोर पड़ता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

७. ध्यायाम। कसरत।

जोरई—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़] १. एक ही में बँधे हुए लंबे लंबे धीरे मजबूत दो बाँध जिनके निरों पर मोटी रस्सी का एक फंदा लगा रहता है और जिसका उपयोग कोलू घने के समय जाठ को रोकने और उसे कोलू में से निकालकर अलग करने में होता है।

विशेष—जाठ का ऊपरी भाग इसके फंदे में फँसा दिया जाता है और तब जाठ का निचला भाग दोनों बाँधों की सहायता से उठाकर कोलू के ऊपरी भाग पर रख दिया जाता है।

२. एक प्रकार का हरे रंग का कीड़ा जो फमल की डालियाँ और पत्तियाँ खा जाता है।

विशेष—चने की फसल को यह अधिक हानि पहुँचाता है।

जोरदार—वि० [फा० जोरदार] जिसमें बहुत जोर हो। जोरवा।

जोरना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोड़ना'। उ०—जोरन दे तब दही जमाई।—सं० दरिया, पृ० ९।

जोरना—क्रि० सं० [हि०] १. दे० 'जोड़ना'। उ०—रति रण जानि धनं ग नृपति धाप नृपति राजति बल जोरति।—सूर (शब्द०)। २. जोतना। जानवर को जुए में नाँधना। ३. किसी दूटी चीज के टुकड़ों को मिलाकर एक करना। उ०—जो बति प्रिय तो करिय लपवाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलवाई।—तुलसी (शब्द०)।

जोरशोर—संज्ञा पुं० [फा० जोरशोर] बहुत अधिक जोर। बहुत अधिक प्रबलता या प्रवृत्तता। जैसे,—कल शाम को जोर शोर से घाँघी आई थी।

जोरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोड़ा'।

जोराजोरी—संज्ञा स्त्री० [फा० जोर] जबरदस्ती। धीगा धीधी।

जोराजोरी—क्रि० वि० जबरदस्ती। बलपूर्वक।

जोरावर—वि० [फा० जोरावर] बलवान्। ताकतवर। जबरदस्त।

जोरावरी—संज्ञा स्त्री० [फा० जोरावरी] १. जोरावर होने का भाव। २. जबरदस्ती। धीगा धीधी।

जोरिल्ला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गंधबिलाव।

जोरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. समानता। समता। दे० 'जोड़ी'। उ०—स्वयं सूर मभि करे जोरी। तेहि ते अधिक देउ केहि जोरी।—जायसी (शब्द०)। २. सहेली। साथिन। दे० 'जोड़ी'। उ०—पूछत है रुक्मिणी इनमें को वृषभानु किशोरी। बारेक हूँ दिखाओ अपने बालपने की जोरी।—सूर (शब्द०)। ३. दे० 'जोड़ी'।

जोरी—संज्ञा स्त्री० [फा० जोर] जोरावरी। जबरदस्ती। उ०—जोरी मारि भजत उतही को जास यमुन के तीर। इक घावत पोछे उनही के पावत नही अधीर।—सूर (शब्द०)।

जोरू—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ा] स्त्री। पत्नी। भार्या। घरवाली।

मुहा०—जोरू का गुलाम = स्त्री का भक्त या उसके वश में रहने-वाला। स्त्रैण।

यौ०—जोरू जाता = गृहस्थो। परिवार। घर बार।

जोल—संज्ञा पुं० [हि०] मेल। मिलाप।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः मेल के साथ होता है। जैसे, मेल जोल।

जोल—संज्ञा पुं० [हि० जोड़] समूह। संघ। जमघट। उ०—कहा करी बारिज मुख उपर, बिथके पद जोल। सूरस्याम करि ये उत्तरण, बस कीन्ही बिनु मोल।—सूर०, १०।१७६२।

जोलहटो—संज्ञा स्त्री० [हि०] जुलाहों की बस्ती।

जोलहा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुलाहा'।

जोलाहना—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला] ज्वाला। अग्नि। भाग। उ०—रोम रोम पावक शिखा जगी जोलाहल जोर।—रघुराज (शब्द०)।

जोलाहा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुलाहा'।

जोलाही—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. जोलाहे की स्त्री। उ०—काशी में जोलाहा जोलाही हुए।—कबीर मं०, पृ० १०३। २. जोलाहे का काम या धंधा।

जोली—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ी] वह जो बराबरी का हो। जोड़। जोड़ी।

यौ०—हमजोली।

जोली—संज्ञा स्त्री० [हि०] जाली या किरमिच आदि का बना हुआ एक प्रकार का लटकौआ बिरतार।—(लश०)।

विशेष—इसके दोनों सिरों पर अद्वान की तरह कई रस्सियाँ होती हैं। दोनों ओर की ये रस्सियाँ दो कड़ियों में बँधी होती हैं और दोनों कड़ियाँ दो तरफ खूंटियों आदि में लटका दी जाती हैं। बीच का बिस्तरवाला हिस्सा लटकता रहता है जिसपर आदमी सोते हैं। इसका व्यवहार प्रायः जहाजी लोग जहाजों में करते हैं।

२. वह रस्सी जो तूफान के समय जहाजों में पास बढाने या उतारने के काम में आती है। — (सं०) । ३. एक प्रकार की गाँठ जो रस्से के एक सिरे पर उसकी लड़ों से बनाई जाती है।

जोषना(५) — कि० सं० [सं० जुषण (= सेवन), अथवा प्रा० जो (जोव = देखना)] १. जोहना । देखना । तकना । २. हूँटना । तलाश करना । ३. घासरा देखना । रास्ता देखना । उ० — रेणु बिहाणी जोवती दिन भी बीतो जाय । रामदास बिरहिन भुरे पोव न पाया जाय । — राम० धर्म०, पृ० १६३ ।

जोषसी(५) — संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी' । उ० — सुं दिन कहे रुड़ा जोवसी । चतुर नागर ईसउ प्राण ज्यों बंध । — बी० रासो०, पृ० १ ।

जोवारी — संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मैना जिसका रंग बहुत कमकीला होता है ।

विशेष — यह बहुत अच्छी तरह कई प्रकार की बोलियाँ बोल सकती है, इसीलिये लोग इसे पासले और बोलना सिखाते हैं । यह ऋतुपरिवर्तन के अनुसार भिन्न भिन्न देशों में घूमा करती है । फूलों और घनाजों को बहुत हानि पहुँचाती है और टिड्डियों का खूब नाश करती है । इसके अंडे बिना चित्ती के और नीले रंग के होते हैं । इसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है ।

जोश — संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. किसी तरल पदार्थ का घाँच या गरमी के कारण उबलना । उफान । उबाल ।

मुहा० — जोश खाना = सबलना । उफनना । लौलना । जोश देना = पानी के साथ उबालना । जैसे, — इस दवा का जोश देकर पीओ । जोश मारना = उबलना । मथना ।

यो० — जोशाँदा = क्वाथ । काढ़ा ।

२. चित्त की तीव्र वृत्ति । मनोवेग । आवेश । जैसे, — उन्होंने जोश में आकर बहुत ही उलटी सीधी बातें कह बाजी ।

मुहा० — जोश खाना = आवेश में आना । जोश देना = आवेश में लाना या करना । जोश मारना = उमड़ना । जोश में आना = उत्तेजित हो उठना । आवेश में आना । खून का जोश = प्रेम का वह वेग जो अपने वंश या कुल के किसी मनुष्य के लिये उत्पन्न हो । जैसे, — खून के जोश से उन्हें रहने न दिया, वे अपने भाई की मदद के लिये उठ दौड़े ।

यो० — जोश खरोश = अधिक आवेश । जोशे जवानी = जवानी का जोश । जोशे जुनून = पायलपन का दौर । उन्माद का दौर । समक ।

जोशन — स्त्री० पुं० [फ्रा०] १. भुजाओं पर पहनने का चाँदी या सोने का एक प्रकार का पहना ।

विशेष — इसमें छह पहल या आठ पहलवाले संबोतरे पोछे दानों की पाँच, छह या सात जोड़ियाँ संबाई में रेशम या सूत आदि के डोरे में पिरोई रहती हैं । दोनों बाँहों पर दो जोड़ियाँ पहने जाते हैं ।

२. बिरह बकतर । कवच । चार भाईना ।

४-१६

जोशाँदा — संज्ञा पुं० [फ्रा० जोशाँदह] दवा के काम के लिये पानी में उबाली हुई जड़ या पत्तियाँ आदि । क्वाथ । काढ़ा ।

जोशिरा — संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] उत्साह । जोश [को०] ।

जोशी — संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोषी' ।

जोशीला — वि० [फ्रा० जोश + हि० ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जोशीली] जोश से मरा हुआ । जिसमें खूब जोश हो । आवेश-पूर्ण । जैसे, — उन्होंने कल बड़ी जोशीली वक्तृता दी थी ।

जोष^१ — संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रीति । प्रेम । २. सुख । आराम । ३. सेवा । ४. संतोष (को०) । ५. मौन (को०) ।

जोष^२ — संज्ञा स्त्री० [सं० योषा] स्त्री । नारी ।

जोष^३ — संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोष' । उ० — चढ़े न चातिक चित्त कबहुं प्रियपयोद के दोष । तुलसी प्रेम पयोधि की ताँसें माप न जोष । — तुलसी (शब्द०) ।

जोषक — संज्ञा पुं० [सं०] सेवक ।

जोषण — संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रीति । प्रेम । २. सेवा । ३. दे० 'जोष' (को०) ।

जोषणा — संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जोषण' [को०] ।

जोषा — संज्ञा स्त्री० [सं०] नारी । स्त्री ।

जोषिका — संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलियों का स्तवक या गुच्छा । २. नारी । स्त्री [को०] ।

जोषित — संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री [को०] ।

जोषित — संज्ञा स्त्री० [सं० जोषित्] दे० 'जोषिता' । उ० — जुवा खेल खेल गई जोषित जोबन जोर । — सं० समक, पृ० ३६४ ।

जोषिता — संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । नारी । औरत । उ० — जबपि जोषिता धन अधिकारी । दासी मन कम बचन तुम्हारी । — मानस, १ । ११० ।

जोषी — संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] १. गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति । २. महाराष्ट्र ब्राह्मणों की एक जाति । ३. पहाड़ी ब्राह्मणों की एक जाति । ४. ज्योतिषी । गणक — (कव०) ।

जोष्य — वि० [सं०] कमनीय । प्रिय । प्यारा [को०] ।

जोसां — संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोष' ।

जोसना(५) — संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्सना] दे० 'ज्योत्सना' । उ० — इह बरनी तुम जोष बंद जोसवा वान वृत्त । — पृ० रा०, २५ । १८६ ।

जोसी(५) — संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिष, ज्योतिषी, जोहसी, जोसी] ज्योतिषी । उ० — पांड्या तोहि बोलावहि हो राय । ले पतझो जोसी देयो तुं प्राई । — बी० रासो, पृ० १ ।

जोह(५) — संज्ञा स्त्री० [हि० जोहना] १. खोज । तलाश ।

क्रि० प्र० — खगाना ।

२. इंतजार । प्रतीक्षा । ३. बजर । दृष्टि । विशेषतः कृपायुक्त दृष्टि ।

क्रि० प्र० — रखना ।

जोहड़^५—संज्ञा पुं० [देश०] कच्चा तालाब ।

जोहन^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जोहना] १. देखने या जोहने की क्रिया । उ०—सचन कला तर तर मनमोहन । दक्षिण चरन चरन पर धीन्हें तनु त्रिभंज मृदु जोहन ।—सूर (शब्द०) । २. उलाश । खोज । ढूँढ़ । ३. प्रतीक्षा । इंतजार ।

जोहना^५—क्रि० स० [सं० जुषण (= सेवन) अथवा प्रा० जोव (= देखना)] १. देखना । अवलोकन करना । ताकना । निहारना । उ०—(क) दर्शन शाह भीत तहें लावा । देखों जोहि ऊरोखे घावा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जो सन ठौर खम हूँ होहि । कछो प्रह्लाद चाहि तूँ जोहि ।—सूर (शब्द०) । २. जोजना । ढूँढ़ना । पता लगाना । उ०—शकटोप तेहि प्रागे सोहा । बसिस लख योजन कर जोहा ।—विश्वाम (शब्द०) । ३. राह देखना । इंतजार देखना । प्रतीक्षा करना । घासरा देखना । उ०—फूलन सेजरिया कोठरिया बिछोले बलबिरवा जोहेला तोरी बाट ।—बलबीर (शब्द०) ।

जोहर^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जोहड़] बाधली । छोटा तालाब ।

जोहर^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोहर' । उ०—जोहर करि देह त्यागी ।—ह० रासो, पृ० १६० ।

जोहार^५—संज्ञा स्त्री० [देश०] अभिवादन । वंदन । प्रणाम । नमस्कार ।

जोहार^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोहर' ।

जोहारना^५—क्रि० घ० [हि०] प्रणाम या नमस्कार आदि करना । अभिवादन करना ।

जोहारी—संज्ञा स्त्री [हि० जोहार] नमस्कार । प्रणाम । उ०—एक एक बाण भेज्यो सकल नृपति पे मानी सब साथ कीन्हे जोहारी ।—सूर (शब्द०) ।

जौ^५—अव्य० [हि० ज्यो] यदि । जो ।

जौ^५—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ज्यो' ।

जौकना^५—क्रि० स० [अनु०] झटना । डपटना । क्रुद्ध होकर ऊँचे स्वर से कुछ कहना ।

जौची^५—संज्ञा स्त्री० [देश०] गेहूँ या जौ की फसल का एक रोग जिनसे बाल काली हो जाती है और उसमें दाने नहीं पड़ते ।

जौड़ा^५—संज्ञा पुं० [हि० जोरा] दे० 'जोरा' ।

जौरा^५—संज्ञा पुं० [सं० जवर, प्रा० हि० जोरा] १. जवर । लूड़ी । ताप । २. व्याघ्र । उ०—जाप करत जोरा टल्या, सुंदर साधी लोच ।—सत ब्राह्मी०, पृ० १०८ ।

जौराभौरा^५—संज्ञा पुं० [देश०] किले या महलों के भीतर का वह महारा तहखाना जिसमें गुप्त खजाना आदि रहता है ।

जौराभौरा^५—संज्ञा पुं० [हि० जोडा + भौरा] १. दो बालकों का जोड़ा ।—(प्यार का शब्द) । २. दो घनिष्ठ मित्रों का जोड़ा ।

जौरे^५—क्रि० वि० [फा० जवार] निकट । समीप । घासपास ।

जौ^५—संज्ञा पुं० [सं० यव] १. चार पाँच महीने रहनेवाला एक पोषा जिसके बीज या दाने की गिनती घनाजो में है ।

विशेष—यह पोषा पृथ्वी के प्रायः समस्त उष्ण तथा समप्रकृतिस्थ स्थानों में होता है । भारत का यह एक प्राचीन धान्य और

हविष्यान्न है । भारतवर्ष में यह मैदानों के अतिरिक्त प्रायः पहाड़ों पर भी १४००० फुट की ऊँचाई तक होता है । इसकी बोवाई कार्तिक अगहन में होती है और कटाई फागुन चैत में होती है । इसका पोषा बहुत कुछ गेहूँ का सा होता है । अंतर इतना होता है कि इसमें जड़ के पास से बहुत से डंठल निकलते हैं जिन्हें कमी कभी छूटकर अलग करना पड़ता है । इसमें दूँददार बाल लगती है जिसमें कोश के साथ बिलकुल चिपके हुए दाने पत्तियों में गुछे रहते हैं । दानों के ऊपर का नुकीला कोश कठिनाई से अलग होता है इसी से यह घनाज कोश सहित बिकता है, पर काश्मीर में एक प्रकार का जो प्रिम नाम का होता है जिसके दाने गेहूँ की तरह कोश से अलग रहते हैं । गेहूँ के समान जो के या जौ की गूरी के भी घाटे का व्यवहार होता है । भूसी रहित जौ या उसके मैदा का प्रयोग रोगियों के लिये पथ्य के काम आता है । सुखे हुए पोषे का भूसा होता है जो चौपायों को प्रिय, लाभकर है और उनके के खाने के काम में आता है । यूरोप में और अब भारतवर्ष के भी कई स्थानों में जौ से एक प्रकार की शराब बनाई जाती है । जौ कई प्रकार के होते हैं । इस अन्न को मनुष्य जाति अत्यंत प्राचीन काल से जानती है । वेदों में इसका उल्लेख बराबर है । अब भी हवन आदि में इस अन्न का व्यवहार होता है । ईसा से २७०० वर्ष पहले चीन के बादशाह शिनंग ने जिन पाँच अन्नों को बोझाया था उनमें एक जौ भी था । ईसा से १०१५ वर्ष पहले सुलेमान बादशाह के समय में भी जौ का प्रचार खूब था । मध्य एशिया के करहंग नामक स्थान के खंडहर के नीचे दबे हुए जौ स्टीन साहब को मिले थे । इस खंडहर के स्थान पर सातवीं शताब्दी में एक अच्छा नगर था जो बालू में दब गया । वैद्यक में जौ तीन प्रकार के माने गए हैं—शूक, निःशूक और हरित वर्ण । शूक को यव, निःशूक को अतियव और हरे रंग के यव को स्तोत्र्य कहते हैं । जौ शीतल, रुखा, वीर्यवर्धक, मसरोधक तथा पित्त और कफ को दूर करने-वाला माना जाता है । यव से अतियव और अतियव से स्तोत्र्य (धोड़ई भी) हीन गुणवाला माना जाता है ।

पर्या०—यव । मेघ्य । सितशूल । दिव्य । अन्न । कंचुकि । धान्यराज । तीक्ष्णशूक । तुरगप्रिय । शक्नु । ह्येष्ट । पवित्र धान्य ।

मुहा०—जौ जौ बढ़ना=धीरे धीरे बिना लक्षित हुए बढ़ना या विकसित होना । तिल तिल बढ़ना । क्रमशः बढ़ना । जौ बराबर=जौ के दाने के बराबर सबा । जौ भर=जौ के दाने के परिमाण का । खाए पिए सो सो हिसाब करे जौ जौ, या दे ले सो सो हिसाब करे जौ जौ—अधिक से अधिक सामूहिक ध्यय करे पर हिमाब पाई पाई या पैसे पैसे का रखे ।

२. एक पोषा जिसकी लंबाई लहानियों से पंजाब में टोकरे भाड़ आदि बनते हैं । मध्य एशिया के प्राचीन खंडहरों में यकान के परदों के रूप में इसकी टट्टियाँ पाई गई हैं । ३. एक तील जो ६ राई (खरदल) के बराबर मानी जाती है ।

जौ^५—अव्य० [सं० यद्] यदि । अगर । उ०—जौ सरिका कछु

अनुचित करहीं। 'गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं।—तुलसी (शब्द०)।

जौ^३—क्रि० वि० [हि०] जब।

जौ०—जो लौं, जो लगि, जो लहि=जब तक।

जौक^१—संज्ञा पुं० [तु० जूक] १. सेना। २. कतार। ३. झुंड। गिरोह। उ०—तुजे देखता था बड़ा हम कूँ जौक। तुजे देक पाए हजारा सूँ जौक।—दक्खिनी०, पृ० ३४५।

जौक^२—संज्ञा पुं० [प्र० जौक] स्वाद। मजा। शोक। धानंद [की०]।

जौकराई—संज्ञा स्त्री० [हि० जौ+कराव] मटर मिला हुआ जौ।

जौख^५—संज्ञा पुं० [तु० जूक] १. झुंड। जत्था। २. फौज। सेना। ३. पक्षियों की श्रेणी। उ०—बनी गोख वे जौख की मोख सोहे। पताकानु केकी पिकी ही प्ररोहे।—सूदन (शब्द०)। ४. धावमियों का गोल। समूह। भीड़।

जौगढ़वा—संज्ञा पुं० [हि० जौगढ़ (= कोई स्थान) + वा (प्रत्य०)] एक प्रकार की खन।

विशेष—यह अगहन के महीने में तैयार होता है और इसका वावल सैकड़ों वर्ष तक रह सकता है।

जौचनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] चना मिला हुआ जौ।

जौजा—संज्ञा स्त्री० [प्र० जौजह] जोरु। भार्या। पत्नी।

जौजोयत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जौजोयत] पत्नीत्व।

जौड़ा—संज्ञा पुं० [हि० जेवरी या जेवड़ी] मोटा रस्सा। उ०—कूम क जौड़ा दूर करि, उयँ बहुरि न लागे लाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० ७१।

जौतुक—संज्ञा पुं० [सं० योतुक] दे० 'योतुक'।

जौधिक^५—संज्ञा पुं० [सं० योद्धिक] तलवार या खड्ग के ३२ हाथों में से एक। उ०—पूछत प्रथित जौधिक प्रथित ये हाथ जानी बतिते।—रघुराज (शब्द०)।

जौना^१^५—सर्व० [सं० यः पुनः (कः पुनः) कोन के साम्य पर बना] जो।

जौन^२^५—क्रि० जो। उ०—जौन ठौर मोहि प्राज्ञा होई। ताहि ठौर रेहीं मैं जोई।—सूर (शब्द०)।

जौन^३^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यवन'।

जौनाल—संज्ञा स्त्री [सं० यव + नाल] १. वह जमीन जिनपर जौ प्रादि रबी की फसल बोई जाय। रबी का खेत। २. जौ का ढंठल।

जौन्ह^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोन्ह'।

जौपै^५—प्रत्य० [हि० जौ + पै] अगार। यदि।

जौषति^५—संज्ञा स्त्री० [सं० युवती] दे० 'युवती'।

जौवन^५—संज्ञा पुं० [सं० यौवन] दे० 'यौवन'।

जौम—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोम'।

जौर—संज्ञा पुं० [प्र०] धर्याधार। जुल्म। उ०—अब तलक लींच लींच बीरो जफा। हर तरह बोस्ती निबाही है।—कविता की०, भा० ४, पृ० १७।

जौरा^१—संज्ञा पुं० [हि० जूरा] वह अनाज जो गाँवों में नाऊ बारी प्रादि पौनियों की उनके काम के बदले में दिया जाता है।

जौरा^२—संज्ञा पुं० [सं० ज्या + वर अथवा हि० जेवरी] बड़ा रस्सा।

जौनावर^५—क्रि० [हि०] दे० 'जोनावर'। उ०—जोनावर कोई न बवि, रावण या दशकंधा।—कबीर सा०, पृ० ८८७।

जौलाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जुलाई'।

जौलाऊ—संज्ञा पुं० [हि० जौलाय (= बारह)] प्रति रुपया बारह पैसे। फी रुपया तीन आना। (दलाली)।

जौलानी^५—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. तेजी। फुर्ती। उ०—जराब मंगाओ तो अक्ल की ओर जौलानी हो।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० ८८। २. छोड़ा (की०)। ३. शराब का प्याला (की०)। ४. मनोरंजन (की०)।

जौलाय—क्रि० [हि० जौलाय] बागह। (दलाल)।

जौशन—संज्ञा पुं० [फा०] बाहु पर पहनने का एक आभूषण। दे० 'जोशन'।

जोहर^१—संज्ञा पुं० [फा० जोहर का अरबी रूप] १. रत्न। बहुमूल्य पत्थर। २. सार वस्तु। साराश। तत्व।

क्रि० प्र०—निकालना।

३. तलवार या और किसी सोहे के धारदार हथियार पर वे सूक्ष्म चिह्न या धारियाँ जिनसे सोहे की उत्तमता प्रकट होती है। हथियार की धोप। ४. गुण। विशेषता। उत्तमता। खूबी। तारोफ की बात। जैग.—(क) धुलने पर इस रूपके का जोहर देखिएगा। (ख) मैदान में वे अपना जोहर दिखाएँगे।

क्रि० प्र०—खुलना।—दिखाना।

मुहा०—जोहर खुलना = (१) गुण का विकास होना। गुण प्रकट होना। खूबी जाहिर होना। (२) करतब प्रकट होना। भेद खुलना। गुप्त कार्रवाई जाहिर होना। जोहर खोलना = गुण प्रकट करना। उत्कर्ष दिखाना। खूबी जाहिर करना। करतब दिखाना।

३. भाईने की श्रमक।

जोहर^२—संज्ञा पुं० [हि० जीव + हर] १. राजपूतों में युद्ध के समय की एक प्रथा जिसके अनुसार नगर या गढ़ में शत्रु के प्रवेश का निश्चय हान पर उनकी स्त्रियाँ और बच्चे दहकती हुई चिता में जल जाते थे।

विशेष—राजपूत लोग जब देखते थे कि वे गढ़ की रक्षा न कर सकेंगे और शत्रुओं का अवश्य अधिकार होगा तब वे अपनी स्त्रियों और बच्चों से विदा लेकर और उन्हें दहकती चिता में भस्म होने का आदेश देकर आप युद्ध के लिये मुमज्जित होकर निकल पड़ते थे। स्त्रियाँ भी शृंगार करके बड़े भारी दहकते कुंड में कुदकर प्राण विमर्जन करती थीं। प्रसिद्ध है कि जब अलाउद्दीन ने बिस्तोरगढ़ की घेरा था तब महारानी पद्मिनी सोलह हजार स्त्रियों को लेकर भस्म हुई थी। इसी प्रकार जब जैसलमेर का दुर्ग घिरा था तब नगर की समस्त स्त्रियाँ और बच्चे अर्थात् २४००० प्राणियों के लगभग क्षण भर में जल मरे थे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जोहर होना = चिता पर जल मरना। उ०—जोहर भई सब स्त्री पुरुष अप संग्राम।—जायसी (शब्द०)।

२. आत्महत्या । प्राणत्याग ।

क्रि० प्र०—करना ।

३. वह चिता जो दुर्ग में स्त्रियों के जलने के लिये बनाई जाती थी ।
उ०—(क) जोहर कर साजा रनिवास । जेहि सत हिये कहाँ
तेहि भासू ।—जायसी (शब्द०) । (ख) अणहूँ जोहर साज
के कीन्ह चही रजियार । होरी खेलत रन कठिन कोठ न
समेटी छार ।—जायसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—साजना ।

जोहरी—संज्ञा पुं० [क्रा०] १. हीरा, लाल आदि बहुमूल्य पत्थर बेचने-
वाला । रत्नविक्रेता । २. रत्न परखनेवाला । जवाहिरात की
पहचान रखनेवाला । पारखी । परखेया । जेबेया । ३. किसी
वस्तु के गुण दोष की पहचान रखनेवाला । ४. गुण का आबर
करनेवाला । गुणग्राहक । कदरदान ।

ज्ञान्मन्य—वि० [सं० ज्ञान्मन्य] अपने आपको जानी माननेवाला [क्रि०] ।

ज्ञा^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्ञान । बोध । २. जानी । जाननेवाला ।
जैसे, शास्त्रज्ञ, सर्वज्ञ, कार्यज्ञ, निमित्तज्ञ । ३. ब्रह्मा । ४. बुद्ध
ग्रह । ५. सांख्य के अनुसार निष्क्रिय निर्विकार पुरुष जिसको
जाम लेने से बंधन कट जाते हैं । ६. मंगल ग्रह । ७. ज और व
के संयोग से बना हुआ संयुक्त अक्षर ।

ज्ञा^२—वि० १ जाननेवाला । जैसे, शास्त्रज्ञ । २. बुद्धिमान् । जैसे, विज्ञ ।

ज्ञापित—वि० [सं०] १. जाना हुआ । २. मारा हुआ ३. सुष्ट किया
हुआ । ४. तेज किया हुआ । बोला किया हुआ । ५. जिसकी
स्तुति या प्रशंसा की गई हो ।

ज्ञप्त—वि० [सं०] जाना हुआ ।

ज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जानकारी । २. बुद्धि । ३. कारण । ४.
तोषण । तुष्टि । ५. स्तुति । ६. जताने की क्रिया ।

ज्ञाबार—संज्ञा पुं० [सं०] बुधवार । बुध का दिन ।

ज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानकारी ।

ज्ञात^१—वि० [सं०] विदित । जाना हुआ । अवगत । मालूम ।

ज्ञात^२—संज्ञा पुं० ज्ञान ।

ज्ञातजीवना पुं०—[सं० ज्ञात + जीवना] ३० 'ज्ञातजीवना' । उ०—
निज तनु जीवन आगमन जानि परत है जाहि । कबि कोविद
सब कहत है ज्ञातजीवना ताहि ।—मति० पं०, पृ० २७६ ।

ज्ञातनन्दन—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञातनन्दन] जैनों के तीर्थंकर महावीर
स्वामी का एक नाम ।

ज्ञातयौवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुग्धा नायिका का एक भेद । वह
मुग्धा नायिका जिसे अपने यौवन का ज्ञान हो । इसके दो
भेद हैं—नबोढ़ा और विश्रब्धनबोढ़ा ।

ज्ञातव्य—वि० [सं०] जो जाना जा सके । जिसे जानना हो अथवा
जिसे जानना उचित हो । ज्ञेय । वेद्य । बोधगम्य ।

विशेष—श्रुति उपनिषद् आदि में आत्मा को ही एक मात्र ज्ञातव्य
माना है । उसे जान लेने पर फिर कुछ जानना बाकी नहीं
रह जाता ।

ज्ञाता—वि० [सं० ज्ञात] [वि० स्त्री० ज्ञात्री] जाननेवाला । ज्ञान रखने
वाला । जानकार ।

ज्ञाति—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही गोत्र या वंश का मनुष्य । गोती ।
भाई । बंधु । बांधव । सपिठ समानोदक आदि । उ०—ते
भोहि मिले जात घर अपने में बूझी तब जात । हंसि हंसि दोरि
मिले अंकम भरि हम तुम एकै जाति ।—सूर (शब्द०) ।
(ख) अहिर जाति छोड़ी मति कीन्ही । अपनी जाति प्रकट
करि दीन्ही ।—सूर (शब्द०) ।

ज्ञातिपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोत्रज का पुत्र । २. जैन तीर्थंकर
महावीर स्वामी का नाम ।

ज्ञातृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] जानकारी । अभिज्ञता ।

ज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्तुओं और विषयों की वह भावना जो
मन या आत्मा को हो । बोध । जानकारी । प्रतीति ।

क्रि० प्र०—होना ।

विशेष—न्याय आदि दर्शनों के अनुसार जब विषयों का इंद्रि-
यों के साथ, इंद्रियों का मन के साथ और मन का आत्मा
के साथ संबंध होता है तभी ज्ञान उत्पन्न होता है । मान
लीजिए, कहीं पर एक घड़ा रखा है । इंद्रियों ने उस घड़े
का साक्षात्कार किया, फिर उस साक्षात्कार की सूचना मन
को दी । फिर मन ने आत्मा को सूचित किया और आत्मा ने
निश्चित किया कि यह घड़ा है । ये सब व्यापार इतने शीघ्र
होते हैं कि इनका अनुमान नहीं हो सकता । एक ही साथ दो
विषयों का ज्ञान नहीं हो सकता । ज्ञान सदा अयुगपद होता
है । जैसे,—मन यदि एक ओर है और दूसरी भाँति किसी
दूसरी ओर है तो इस दूसरी वस्तु का ज्ञान नहीं होगा । न्याय
में जो प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द, ये चार प्रमाण
माने गए हैं उन्हीं के द्वारा सब प्रकार का ज्ञान होता है ।
चक्षु, श्रवण आदि इंद्रियों द्वारा जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष
कहलाता है । व्याप्य पदार्थ को देख व्यापक पदार्थ का जो
ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं । कभी कभी एक वस्तु
(व्याप्य) के होने से दूसरी वस्तु (व्यापक) का अभाव नहीं
हो सकता, ऐसे अवसर पर अनुमान से काम लिया जाता
है । जैसे, धुएँ को देखकर अग्नि का ज्ञान । अनुमान तीन
प्रकार का होता है—पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोष्ट ।
कारण को देख कार्य के अनुमान को पूर्ववत् (कारणलिंगक)
अनुमान कहते हैं । जैसे, बादलों का उमड़ना देख होने-
वाली घुष्टि का ज्ञान । कार्य को देख कारण के अनुमान
को शेषवत् (या कार्यलिंगक) अनुमान कहते हैं । जैसे,
नदी का जल बढ़ता हुआ देख घुष्टि का ज्ञान । व्याप्य को
देख व्यापक के ज्ञान को सामान्यतोष्ट अनुमान कहते
हैं । जैसे, धुएँ को देख अग्नि का ज्ञान, पूर्ण चंद्रमा को
देख शुक्ल पक्ष का ज्ञान इत्यादि । प्रसिद्ध या ज्ञात वस्तु के
साध्याय द्वारा जो दूसरी वस्तु का ज्ञान कराया जाता है, उसे
उपमान कहते हैं । जैसे,—गाय ही ऐसी नीलगाय होती है ।
दूसरों के कथन या शब्द के द्वारा जो ज्ञान होता है उसे शब्द
कहते हैं । जैसे गुह का उपदेश आदि । सांख्य शास्त्र प्रत्यक्ष,
अनुमान और शब्द ये तीन ही प्रमाण मानता है उपमान को
इनके अंतर्गत मानता है । ज्ञान दो प्रकार का होता है—अमा

अर्थात् यथार्थ ज्ञान और अप्रमा या अयथार्थ ज्ञान । वेदांत में ब्रह्म को ही ज्ञानस्वरूप माना है अतः उसके अनुसार प्रत्येक का ज्ञान पृथक् नहीं हो सकता । एक वस्तु से दूसरी वस्तु में या एक के ज्ञान से दूसरे के ज्ञान में जो विभिन्नता दिखाई देती है, वह विषय रूप उपाधि के कारण है । वास्तविक ज्ञान एक ही है जिसके अनुसार सब विभिन्न दिखाई पड़नेवाले पदार्थों के बीच में केवल एक चित् स्वरूप सत्ता या ब्रह्म का ही बोध होता है ।

पाश्चात्य दर्शन में भी विषयों के साथ इंद्रियों के संयोग रूप ज्ञान को ही ज्ञान का मूल अथवा प्रथम रूप माना है । किसी एक वस्तु के ज्ञान के लिये भी यह भावना आवश्यक है कि वह कुछ वस्तुओं के समान और कुछ वस्तुओं से भिन्न है अर्थात् बिना साधर्म्य और वैधर्म्य की भावना के किसी प्रकार का ज्ञान होना असंभव है । इस साक्षात्करण रूप ज्ञान से भागे चलकर सिद्धांत रूप ज्ञान के लिये संयोग, सहकालत्व आदि की भावना भी आवश्यक है । जैसे,—‘बहु पेड़ नदी के किनारे है’ इस ज्ञान का ज्ञान केवल पेड़ ‘नदी’ और किनारा का साक्षात्कार मात्र नहीं है बल्कि इन तीन पृथक् भावों का समाहार है ।

प्राणिविज्ञान के अनुसार खोपड़ी के भीतर जो मज्जा-तंतु-जाल (नाड़ियाँ) और कोश हैं, चेतन व्यापार उन्हीं की क्रिया से संबंध रखते हैं । इनमें क्रिया को ग्रहण करने और उत्पन्न करने दोनों की शक्ति है । इंद्रियों के साथ विषयों के संयोग द्वारा संचालन नाड़ियों के द्वारा भीतर की ओर जाता है और कोशों को प्रोत्साहित करके परमाणुओं में उत्तेजना उत्पन्न करता है । सूतवादियों के अनुसार इन्हीं नाड़ियों और कोशों की क्रिया का नाम चेतना है, पर अधिकांश लोग चेतना को एक स्वतंत्र शक्ति मानते हैं ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुद्रा०—ज्ञान छोटना = अपनी विद्या या जानकारी प्रकट करने के लिये सबी चौड़ी बातें करना ।

२. यथार्थ ज्ञान । सम्यक् ज्ञान । तत्त्वज्ञान । आत्मज्ञान । प्रमा । केवलज्ञान ।

विशेष—मीमांसा को छोड़कर प्रायः सब दर्शनों ने ज्ञान से मोक्ष माना है । न्याय में ज्ञान द्वारा मिथ्या ज्ञान का नाश, मिथ्या ज्ञान के नाश से दोष का नाश, दोष न रहने पर प्रवृत्ति से निवृत्ति, प्रवृत्ति के नाश से जन्म से निवृत्ति और जन्म की निवृत्ति से दुःख का नाश, दुःख के नाश से मोक्ष माना जाता है । सांख्य ने पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान प्राप्त होने से जब प्रकृति हट जाती है तब मोक्ष का ज्ञान होना बतलाया है । वेदांत का मोक्ष ऊपर लिखा जा चुका है ।

ज्ञानकाण्ड—संज्ञा पु० [सं० ज्ञानकाण्ड] वेद के तीन कांडों या विभागों में से एक जिसमें ब्रह्म आदि सूक्ष्म विषयों का विचार है । जैसे,— उपनिषद् ।

ज्ञानकृत—वि० [सं०] जो पाप ध्यान बूझकर किया गया हो, मूल से न हुआ हो ।

विशेष—ज्ञानकृत पापों का प्रायश्चित्त होना लिखा गया है ।

ज्ञानगम्य—संज्ञा पु० [सं०] ज्ञान की पहुँच के भीतर । जो जाना जा सके ।

ज्ञानगर्भ—वि० [सं०] ज्ञान से पूर्ण या भरा हुआ [को०] ।

ज्ञानगोचर—वि० [सं०] ज्ञानेन्द्रियों से जानने योग्य । ज्ञानगम्य ।

ज्ञानधन—संज्ञा पु० [सं०] शुद्ध ज्ञान । केवल ज्ञान [को०] ।

ज्ञानचक्षुः—संज्ञा पु० [सं० ज्ञानचक्षुस्] ज्ञान के नेत्र । अंतर्दृष्टि [को०] ।

ज्ञानचक्षुः—वि० ज्ञान की दृष्टि से देखनेवाला । पंडित [को०] ।

ज्ञानज्येष्ठ—वि० [सं०] जो ज्ञान में बढ़कर हो [को०] ।

ज्ञानतः—क्रि० वि० [सं० ज्ञानतस्] ज्ञान बूझकर । जानकारी में । समझ बूझकर ।

ज्ञानतत्त्व—संज्ञा पु० [सं० ज्ञानतत्त्व] यथार्थ ज्ञान [को०]

ज्ञानतपा—वि० [सं० ज्ञानतपस्] शुद्ध ज्ञान के लिये तप करने-वाला [को०] ।

ज्ञानद—संज्ञा पु० [सं०] ज्ञान देनेवाला । गुरु [को०] ।

ज्ञानदग्धदेह—संज्ञा पु० [सं०] वह जो ऋतुयं आश्रम में हो । संन्यासी ।

विशेष—संस्कृतियों में लिखा है कि संन्यासी जीवित अवस्था ही में देह अर्थात् सुख दुःख आदि को ज्ञान द्वारा दग्ध कर डालता है अतः मृत्यु हो जाने पर उसके दाह कर्म की आवश्यकता नहीं । उसके शरीर को एक गड्ढा खोदकर प्रणव मंत्र के उच्चारण के साथ गाड़ देना चाहिए ।

ज्ञानदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती । [को०] ।

ज्ञानदाता—संज्ञा पु० [सं० ज्ञानदातृ] ज्ञान देनेवाला मनुष्य । गुरु ।

ज्ञानदात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान देनेवाली देवी । सरस्वती [को०] ।

ज्ञानदुर्बल—वि० [सं०] ज्ञान में दुर्बल या असमर्थ [को०] ।

ज्ञानधन—वि० [सं०] ज्ञानी । तत्त्वविद् । उ०—क्रिया समाहित चित्त ज्ञानधन तुम्हें जानकर ।—अपरा, पृ० १६३ ।

ज्ञानधाम—वि० [सं० ज्ञानधामन्] परम ज्ञानी । उ०—खोजें सो कि अज्ञ इन नारी । ज्ञानधाम श्रीपति असुरारी ।—मानस, १ । ११ ।

ज्ञाननिष्ठ—वि० [सं०] १. अवण, मनन, निदिध्यासन, आदि ज्ञान साधनोंवाला । २. तत्त्वज्ञानी [को०] ।

ज्ञानपिपासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा । ज्ञान की प्यास [को०] ।

ज्ञानपिपासु—वि० [सं०] ज्ञानप्राप्ति की इच्छावाला । जिज्ञासु [को०] ।

ज्ञानप्रभ—संज्ञा पु० [सं०] एक तथ्यागत का नाम ।

ज्ञानमद्—संज्ञा पु० [सं०] ज्ञान का अभिमान । ज्ञानी या जानकार होने का घमंड ।

ज्ञानमुद्र—वि० [सं०] ज्ञानी । ज्ञानवाला [को०] ।

ज्ञानमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रसार के अनुसार राम की पूजा की एक मुद्रा ।

विशेष—इसमें दाहिने हाथ की तर्जनी को अंगूठे से मिलाकर हाथ

में रखते हैं और बाएँ हाथ की उँगलियों को कमलसंयुक्त के आकार की करके उनसे सिर से लेकर बाएँ जंघे तक रक्षा करते हैं।

ज्ञानयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा का परमात्मा में हुक्म अर्पित आत्मा और परमात्मा का संयोग या अभेदज्ञान। ब्रह्मज्ञान।

ज्ञानयोग—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान की प्राप्ति द्वारा मोक्ष का साधन। उ०—एक ज्ञानयोग विस्तरे। ब्रह्म जानि सबसों हित करे।—सूर (शब्द०)।

ज्ञानलक्षण—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. व्याय में अलौकिक प्रत्यक्ष का एक भेद।

विशेष—नैयायिकों ने प्रत्यक्ष के दो भेद माने हैं, लौकिक। और अलौकिक। अलौकिक प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं, सामान्य-लक्षण, ज्ञानलक्षण और योगज। ज्ञानलक्षण वह है जिसमें विशेषण के ज्ञात होने पर विशेष्य का ज्ञान होता है। जैसे, घटत्व का ज्ञान होने पर घट शब्द से घड़े का ज्ञान।

२. ज्ञान का निर्देशक, सकेतक साधन या उपाय (को०)।

ज्ञानलक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ज्ञानलक्षण' (को०)।

ज्ञानधान—वि० [सं०] जिसे ज्ञान हो। ज्ञानी।

ज्ञानवापी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशीस्थित एक प्रसिद्ध तीर्थ।

ज्ञानविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १. विभिन्न प्रकार का या पवित्र ज्ञान। २. वेद, उपवेद सहित उसकी शाखाओं का ज्ञान (को०)।

ज्ञानवृद्ध—वि० [सं०] ज्ञान में बड़ा। जिसकी जानकारी अधिक हो।

ज्ञानशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] विविध का विचार अथवा कथन करने वाला शास्त्र (को०)।

ज्ञानसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. इन्द्रिय। २. ज्ञानप्राप्ति का प्रयत्न।

ज्ञानांजन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञानाञ्जन] तत्त्वज्ञान। ब्रह्मज्ञान (को०)।

ज्ञानाकर—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

ज्ञानापोह—संज्ञा पुं० [सं०] भूल जाना। ज्ञान न रहना। विस्मरण (को०)।

ज्ञानावरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्ञान का परदा। ज्ञान का बाधक। २. वह पाप कर्म जिससे ज्ञान का यथार्थ लाभ जीव को नहीं होता है।

विशेष—यह पाँच प्रकार का है,—(१) मतिज्ञानावरण। (२) श्रुतिज्ञानावरण। (३) अवविज्ञानावरण। (४) मनःपर्याय ज्ञानावरण और (५) केवलज्ञानावरण। (जैन)।

ज्ञानावरणीयकर्म—उ० [सं०] दे० 'ज्ञानावरण'।

ज्ञानासन—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रयामल के अनुसार योग का एक आसन।

विशेष—इससे योगाभ्यास में शीघ्र सिद्धि होती है। इसमें दाहिनी जाँघ पर बाएँ पैर के तलवे को रखना पड़ता है। इससे पैर की नसें ढीली हो जाती हैं।

ज्ञानी—वि० [सं०] ज्ञानिन् १. जिसे ज्ञान हो। ज्ञानवान् । जानकार। २. आत्मज्ञानी। ब्रह्मज्ञानी।

ज्ञानेन्द्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञानेन्द्रिय] वे इंद्रियाँ जिनसे जीवों को विषयों का बोध या ज्ञान होता है। ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं,—दर्शनेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना और स्पर्शेन्द्रिय।

विशेष—इन इंद्रियों के मोलक या आधार क्रमशः आँख, कान, जीभ,

नाक और त्वक् हैं। इन पाँचों के प्रतिरिक्त कोई कोई छठी इंद्रिय मन या प्रतःकरण मानते हैं पर मन केवल ज्ञानेन्द्रिय नहीं है कर्मेन्द्रिय भी है अतः उसे दार्शनिकों ने उभयात्मक माना है।

ज्ञानोदय—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान का उदय (को०)।

ज्ञापक^१—वि० [सं०] १. जतानेवाला। जिससे किसी बात का बोध या पता चले। सूचक। व्यञ्जक (वस्तु)। २. बतानेवाला। सूचित करनेवाला (व्यक्ति)।

ज्ञापक^२—संज्ञा पुं० १. गुरु। आचार्य। २. प्रभु। स्वामी (को०)।

ज्ञापन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि०] ज्ञापित, ज्ञाप्य] जताने या बताने का कार्य।

ज्ञापयिता—वि० [सं०] ज्ञापयितृ] सूचक। बतानेवाला। ज्ञापक (को०)।

ज्ञापित—वि० [सं०] जताया हुआ। बताया हुआ। सूचित।

ज्ञाप्य—वि० [सं०] जताने या सूचित करने योग्य (को०)।

ज्ञोप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानने की इच्छा (को०)।

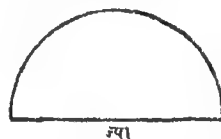
ज्ञेय—वि० [सं०] १. जिसका जानना योग्य या कर्तव्य हो। जानने योग्य।

विशेष—ब्रह्मज्ञानी लोग एकमात्र ब्रह्म को ही ज्ञेय मानते हैं, जिसको जाने बिना मोक्ष नहीं हो सकता।

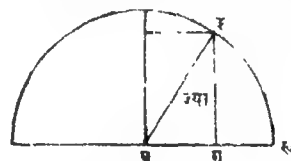
२. जो जाना जा सके। जिसका जानना संभव हो।

ज्याना(^१)—क्रि० सं० [हि०] जिमाना, जेबाना] खिलाना। उ०—सुमग सुस्वाद सुविजन आनि। जननी ज्ययि अपने पानि।—नंद० पृ०, पृ० २७८।

ज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धनुष की डोरी। २. वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक हो।



३. वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से उस व्यास पर लंब रूप से गिरी हो जो चाप के दूसरे सिरे से होकर गया हो।



४. त्रिकोणमिति में केंद्र पर के कोण के विचार से ऊपर बतलाई हुई रेखा (क ग) और त्रिज्या (क घ) की निष्पत्ति। ५. पृथ्वी। ६. माता। ७. किसी वृत्त का व्यास। ८. सर्वोच्च शक्ति (को०)। ९. अत्यधिक माँग (को०)। १०. एक प्रकार की छड़ी। शम्भा (को०)। १०. सेना का पुष्ट भाग (को०)।

ज्याग(^२)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'याग'। उ०—जेहा केहा ज्याग ह्वर राखोडा ह्वै।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० १४।

ज्याघात—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की डोरी के स्पर्श या रगड़ से होने वाला उर्मिलियों पर का निशान या चिह्न (को०)।

यौ०—ज्याघातवारण = धनुषों द्वारा पहना जानेवाला अंगुलिवाण।

ज्यापोष—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की टंकार (को०)।

ज्यादती—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० ज्यादती] १. अधिकता । बहुतायत । अधिकारी । २. जुलूम । अत्याचार ।

ज्यादा—क्रि० वि० [फ्रा० ज्यादा] अधिक । बहुत ।

ज्यान^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० जियान] नुकसान । हानि । घाटा । उ०—हूँके अजान जु कान्हू सों कीनो सु मान भयो वहे ज्यान है जी को ।—पद्याकर ग्रं०, पृ० ११६ ।

ज्यान^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जान] ३० 'जान' । उ०—(क) पातसाहू की ज्यान बलसीस करो ।—ह० रासो, पृ० १५६ । (ख) घरे इस्क ऐसा बुरा, फिर लेता है ज्यान ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ४८ ।

ज्याना^१—क्रि० स० [हिं०] ३० 'जियाना' । उ०—ज्याइए तो जानकी रमन जन जानि जिय, मारिए तो माँगी मीचु सूँघिए कह्यु हो ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४० ।

ज्यानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वृद्धावस्था । जरा । बुढ़ापा । २. क्षय । ३. त्याग । परित्याग । ४. नदी । ५. अत्याचार । उत्पीड़न । ६. हानि [को०] ।

ज्यानी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्यानि, तुलनीय फ्रा० जियान] हानि । घाटा । उ०—ता दिन तें ज्यानी सी बिकानी सी दिसानी बिलसानी सी बिलानी राजधानी जमराज की ।—पद्याकर ग्रं०, पृ० २६३ ।

ज्याफत—संज्ञा स्त्री० [अ० जियाफत] १. दावत । भोज । २. मेह-मानी । आतिथ्य ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।

ज्यामिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गणित विद्या जिससे भूमि के परिमाण, भिन्न भिन्न क्षेत्रों के षणों आदि के परस्पर संबंध तथा रेखा, कोण, तल आदि का विचार किया जाता है । क्षेत्र गणित । रेखागणित ।

विशेष—इस विद्या में प्राचीन यूनानियों (यवनों) ने बहुत उत्पत्ति की थी । यूनान देश के प्राचीन इतिहासवेत्ता हेरोडोटस के अनुसार ईसा से १३५७ वर्ष पूर्व सिसोस्ट्रस के समय में मिस्र देश में इस विद्या का आविर्भाव हुआ । राजकर निर्धारित करने के लिये जब भूमि को नापने की आवश्यकता हुई तब इस विद्या का सूत्रपात हुआ । कुछ लोग कहते हैं कि नील नदी के बढ़ाव उतार के कारण लोगों की जमीन की हद मिट जाया करती थी, इसी से यह विद्या निकली गई । इरकिलड के टीकाकार प्रोक्लस ने भी लिखा है कि थेल्स ने मिस्र में जाकर यह विद्या सीखी थी और यूनान में इसे प्रचलित की थी । धीरे धीरे यूनानियों ने इस विद्या में बड़ी उन्नति की । पाइथागोरस ने सबसे पहले इसके संबंध में सिद्धांत स्थापित किए और कई प्रतिज्ञाएँ निकालीं । फिर तो प्लेटो आदि अनेक विद्वान् इस विद्या के अनुशीलन में लगे । प्लेटो के अनेक शिष्यों ने इस विद्या का विस्तार किया जिनमें मुख्य अरस्तू (एरिस्टाटिल) और इडोक्सस थे । पर इस विद्या का प्रधान आचार्य इरकिलड (इरकलेडस) हुआ जिसका नाम रेखागणित का पयपि स्वरूप हो गया । यह ईसा से २८४ वर्ष पूर्व जीवित था और इसकंदरिया (अलेग्जेंड्रिया, जो मिस्र में है) के विद्यालय में गणित की शिक्षा देता था । वास्तव में इरकिलड ही यूरप में

ज्यामिति विद्या का प्रतिष्ठापक हुआ है और इसकंदरिया ही इस विद्या का केंद्र या पीठ रहा है । जब अरबवालों ने इस नगर पर अधिकार किया तब भी वहाँ इस विद्या का बड़ा प्रचार था । प्राचीन हिंदू भी इस विद्या में बहुत पहले अभ्यसर हुए थे । वैदिक काल में आयों की यज्ञ की वेदियों के परिमाण, प्राकृति आदि निर्धारित करने के लिये इस विद्या का प्रयोजन पड़ा था । ज्यामिति का आभास शुल्वसूत्र, कात्यायन श्रौतसूत्र, शतपथ ब्राह्मण आदि में वेदियों के निर्माण के प्रकरण में पाया जाता है । इस प्रकार यद्यपि इस विद्या का सूत्रपात भारत में ईसा से कई हजार वर्ष पहले हुआ पर इसमें यहाँ कुछ उत्पत्ति नहीं की गई । यूनानियों के संसर्ग के पीछे बहुगुण और भास्कराचार्य के ग्रंथों में ही ज्यामिति विद्या का विशेष विवरण देखा जाता है । इस प्रकार जब हिंदुओं का ज्ञान यवनों के संसर्ग से फिर इस विद्या की ओर हुआ तब उन्होंने उसमें बहुत से नए निरूपण किए । परिधि और व्यास का सूक्ष्म अनुपात ३ : १४१६ : १ भास्कराचार्य को विदित था । इस अनुपात को अरबवालों ने हिंदुओं से सीखा, पीछे इसका प्रचार यूरप में (१२वीं शताब्दी के पीछे) हुआ ।

ज्यायस—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ज्यायसी] १. ज्येष्ठ । बड़ा । २. संध्येष्ठ । ३. विशाल । महत् । ४. जो नाबालिग न हो । प्रौढ़ । ५. वयोवृद्ध । वृद्ध । ६. क्षीण । क्षयशील । ७. उत्तम । शक्तिशाली । वरेण्य [को०] ।

ज्यायिष्ठ—वि० [सं०] १. सर्वश्रेष्ठ । २. प्रथम । सर्वप्रथम [को०] ।

ज्यारना^१—क्रि० प्र० [हिं०] ३० 'जियाना', 'जिलाना' । उ०—आयो फिरि विप्र नेह खोजहूँ न पायो कहूँ सरसायो दाँत ले दिलायो स्याम ज्यारिये ।—प्रिया० (शब्द०) ।

ज्यारना^२—क्रि० स० [हिं० जारना (= जलाना)] ३० 'जारना' । उ०—चिता वाहूँ ममता ज्याहूँ ।—दक्खिनी०, पृ० १३४ ।

ज्यावना^१—क्रि० स० [हिं०] ३० 'जिलाना' ।

ज्युति—संज्ञा स्त्री० [म०] ज्योति [को०] ।

ज्यु^१—अव्य० [हिं०] ३० 'ज्यों' ।

ज्येष्ठ^१—वि० [सं०] १. बड़ा । जेठा । जैसे, ज्येष्ठ भ्राता । २. वृद्ध । बड़ा । वृद्धा ।

यौ०—ज्येष्ठ तात = बाप का बड़ा भाई । ज्येष्ठ वर्ण = ब्राह्मण । ज्येष्ठ श्वश्रू = परनी की बड़ी बहन । बड़ी साली ।

ज्येष्ठ^२—संज्ञा पुं० १. जेठ का महीना । वह महीना जिसमें ज्येष्ठा नक्षत्र में पूर्णिमा का चंद्रमा उदय हो । यह वर्ष का तीसरा और ग्रीष्म ऋतु का पहला महीना है । २. वह वर्ष जिसमें बृहस्पति का उदय ज्येष्ठा नक्षत्र में हो ।

विशेष—यह वर्ष कंगनी और सावाँ को छोड़ और अश्वि के लिये हानिकारक माना जाता है । इसमें राजा घमंज होता है और श्रेष्ठता जाति, कुल और धन से होती है ।—(बृहत्संहिता)

३. सामगान का एक भेद । ४. परमेश्वर । ५. प्राण ।

ज्येष्ठता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ज्येष्ठ होने का भाव । बड़ाई । २. श्रेष्ठता ।

ज्येष्ठपञ्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेव नाम की बड़ी जो धीवध के काम में जाती है।

ज्येष्ठसामग—संज्ञा पुं० [सं०] अरण्याक साम का पढ़नेवाला।

ज्येष्ठसामा—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठसामन्] ज्येष्ठ सामवेद का पढ़नेवाला।

ज्येष्ठांशु—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठांशु] १. चावलों का धोवन। २. माँड़ (को०)।

ज्येष्ठांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़े भाई का हिस्सा या धंधा। २. पैतृक संपत्ति में बड़े भाई को मिलनेवाला अधिक धंधा। ३. उत्तम धन या हिस्सा [को०]।

ज्येष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. २७ नक्षत्रों में से अठारहवाँ नक्षत्र जो तीन तारों से बने कुंजल के आकार का है। इसके देवता चंद्रमा हैं। २. वह स्त्री जो औरों की अपेक्षा अपने पति को अधिक प्यारी हो। ३. छिपकली। ४. मध्यमा जंगली। ५. गंगा। ६-पद्मपुराण के अनुसार बालकमी देवी।

विशेष—ये समुद्र मंथने पर लक्ष्मी के पहले निकली थीं। जब इन्होंने देवताओं से पूछा कि हम कहाँ निवास करें तब उन्होंने बतलाया कि जिसके घर में सदा कलह हो, जो नित्य गंदी या बुरी बातें बके, जो अशुचि रहे इत्यादि उसके पहाँ रहो। शिवपुराण में लिखा है कि जब देवताओं में से किसी ने इन्हे प्रहण नहीं किया तब दुःसह नामक तेजस्वी ब्राह्मण ने इन्हे पत्नी रूप से प्रहण किया।

ज्येष्ठा—वि० स्त्री० बड़ी।

ज्येष्ठाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तमाश्रम। गृहस्थाश्रम।

ज्येष्ठाश्रमी—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठाश्रमिन्] गृहस्थ। गृही।

ज्येष्ठो—संज्ञा स्त्री० [सं०] गृहगोष्ठा। पत्नी। छिपकली। बिस-तुइया।

ज्यों—क्रि० वि० [सं० या + इव] १. जिस प्रकार। जैसे। जिस ढंग से। जिस रूप से। उ०—(क) तुलसिदास जगद्वज्र जवाह ज्यों अनघ प्राणि लागे बाढ़न।—तुलसी (शब्द०)। (ख) करी न प्रीति प्रियम सुंदर सो जन्म जुभा ज्यों हा-न्यो।—सूर (शब्द०)।

विशेष—अब पद्य में इस शब्द का प्रयोग प्रकृति नहीं होता केवल कविता में सारथ्य दिखलाने के लिये होता है।

मुहा०—ज्यों त्यों = (१) किसी व किसी प्रकार। किसी ढंग से। अंभट और बसेड़े के साथ। (२) घरुचि के साथ। अच्छी तरह नहीं। ज्यों त्यों करके = (१) किसी न किसी प्रकार। किसी ढंग से। किसी सपाय से। जिस प्रकार हो सके उस प्रकार। जैसे—ज्यों त्यों करके उसे हमारे पास ले आओ। (२) अंभट और बसेड़े के साथ। विरक्त के साथ। कठिनाई के साथ। जैसे—रास्ते में बड़ी गहरी छाँधी छाई, ज्यों त्यों करके घर पहुँचे। ज्यों का त्यों = (१) जैसा का तैसा। उसी रूप रंग का। तद्रूप। सहस्र। (२) जैसा पहले था वैसा ही। जिसमें कुछ फेर फार या बदली बढ़ती न हुई हो। जिसके साथ

कुछ क्रिया न की गई हो। जैसे—सब काम ज्यों का त्यों पड़ा है कुछ भी नहीं हुआ है।

विशेष—वाक्य का संबंध पूरा करने के लिये इस शब्द के साथ 'त्यों' का प्रयोग होता है पर गद्य में प्रायः नहीं होता।

२. जिस क्षण। जैसे ही। जैसे—(क) ज्यों मैं आया कि पानी बरसने लगा। (ख) ज्यों ही मैं पहुँचा, वह उठकर खड़ा गया।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग 'ही' के साथ अधिक होता है।

मुहा०—ज्यों ज्यों = जिस क्रम से। जिस मात्रा से। जितना।

उ०—जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न। त्यों त्यों सुकृत सुमह कसि भूपति निदरि लगे बहि काढ़न।—तुलसी (शब्द०)।

ज्योतिःपुंज—वि० [सं० ज्योतिःपुञ्ज] प्रखर या दिव्य प्रकाशवाला। जिसमें प्रकाश भरा हो। उ०—खग को ज्योतिःपुंज प्राप्त हो।—भारवना, पृ० ८।

ज्योतिःशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष।

ज्योतिःशिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लघु गुरु वर्णों की गणना के अनुसार विषम वर्णवृत्तों का एक भेद जिसके पहले दल में १२ लघु और दूसरे दल में १६ गुरु होते हैं।

ज्योति—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योतिस्] १. प्रकाश। उजाला। द्युति। २. अग्निबिम्बा। जपठ। ली।

मुहा०—ज्योति जगना = (१) प्रकाश फैलना। (२) किसी देवता के सामने दीपक जलाना।

३. प्रति। ४. सूर्य। ५. नक्षत्र। ६. मेथी। ७. संगीत में अष्टताल का एक भेद। ८. धर्म की पुतली व गन्ध का वह बिंदु या स्थान जो बर्षान का प्रधान साधन है। ९. दृष्टि। १०. अग्नि-ष्टोम यज्ञ की एक संख्या का नाम। ११. विष्णु। १२. वेदांत में परमात्मा का एक नाम।

यौ०—ज्योतिर्मयी = प्रकाश से भरी हुई। ज्योतिर्मूल = ज्योति का मूल।

ज्योतिक—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'ज्योतिषी'। उ०—बार बार ज्योतिक सो घरी ब्रूँकि पावे। एक जाह पहुँचे नहि और एक पठावे।—सूर (शब्द०)।

ज्योतित—वि० [सं० ज्योति + हि० त (प्रत्य०)] प्रकाशित। उद्भासित। ज्योति है पूर्ण। उ०—मा! तब तूवै मुझे दिखाई अपनी ज्योति छटा अपार।—वीणा, पृ० ५५।

ज्योतिर्लिङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिर्लिङ्ग] जुगनु।

ज्योतिर्लिङ्गण—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिर्लिङ्गण] जुगनु।

ज्योतिर्मय—वि० [सं०] प्रकाशमय। द्युतिपूर्ण। जगमगाता हुआ।

ज्योतिर्लिङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिर्लिङ्ग] १. महादेव। शिव।

विशेष—शिवपुराण में लिखा है कि जब विष्णु की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए तब वे घबड़ाकर कमलनाभ पर हजर के उभर घूमने लगे। विष्णु ने कहा कि तुम सृष्टि बनाने के लिये उत्पन्न किए गए हो। इसपर ब्रह्मा बहुत क्रुद्ध हुए और कहने लगे कि तुम कौन हो, तुम्हारा भी तो कोई कर्ता है? जब दोनों

में घोर युद्ध होने लगा तब भगड़ा निपटाने के लिये एक कालाग्नि सट्ट ज्योतिर्लिंग उत्पन्न हुआ जिसके चारों ओर भयंकर ज्वाला फैल रही थी। यह ज्योतिर्लिंग भावि, मध्य और अंत रहित था। इस कथा का अभिप्राय ब्रह्मा और विष्णु से शिव को श्रेष्ठ सिद्ध करना ही प्रतीत होता है।

२. भारतवर्ष में प्रतिष्ठित शिव के प्रधान लिंग जो बारह हैं। वैद्यनाथ साहाय्य में इन बारह लिंगों के नाम इस प्रकार हैं। सोमनाथ सौराष्ट्र में, मल्लिकार्जुन श्रीशैल में, महाकाल उज्जयिनी में, धौंकार नर्मदा तट पर (अमरेश्वर में), केदार हिमालय में, श्रीमशंकर ढाकिनी में, विश्वेश्वर काशी में, अंबक गोमती किनारे, वैद्यनाथ चित्तौड़ में, नागेश्वर द्वारका में, रामेश्वर सेतुबंध में, घृणेश्वर शिवालया में।

ज्योतिर्लोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कालचक्र प्रवर्तक ध्रुव लोक। २. उस लोक के अभिपति परमेश्वर या विष्णु।

विशेष—भागवत में इस लोक को सप्तर्षि मंडल से १३ लाख योजन और दूर लिखा है। यहीं उत्सामपाद के पुत्र ध्रुव स्थित हैं जिनकी परिक्रमा इंद्र कक्षप प्रजापति तथा ग्रह नक्षत्र आदि बराबर करते रहते हैं।

ज्योतिर्विद्—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष जाननेवाला। ज्योतिषी।

ज्योतिर्विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या।

ज्योतिर्विज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

ज्योतिर्विज्ञा—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्र और राशियों का मंडल।

ज्योतिष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह विद्या जिससे अंतरिक्ष में स्थित ग्रहों नक्षत्रों आदि की परस्पर दूरी, गति, परिमाण आदि का निश्चय किया जाता है।

विशेष—भारतीय ग्रंथों में ज्योतिष विद्या का ज्ञान अत्यंत प्राचीन काल से था। यज्ञों की तिथि आदि निश्चित करने में इस विद्या का प्रयोजन पड़ता था। अयन चलन के क्रम का पता बराबर वैदिक ग्रंथों में मिलता है। जैसे, पुनर्वसु के मृगशिरा (ऋग्वेद), मृगशिरा के रोहिणी (ऐतरेय ब्रा०), रोहिणी से कृत्तिका (तैत्ति० सं०) कृत्तिका से भरणी (वेदोक्त ज्योतिष)। तैत्तिरीय संहिता से पता चलता है कि प्राचीन काल में वासंत विषुवद्दिन कृत्तिका नक्षत्र में पड़ता था। इसी वासंत विषुवद्दिन से वैदिक वर्ष का आरंभ माना जाता था, पर अयन की गणना माघ मास से होती थी। इसके पीछे वर्ष की गणना शारद विषुवद्दिन से आरंभ हुई। ये दोनों प्रकार की गणनाएं वैदिक ग्रंथों में पाई जाती हैं। वैदिक काल में कभी वासंत विषुवद्दिन मृगशिरा नक्षत्र में भी पड़ता था। इसे पंडित बाल गंगाधर तिलक ने ऋग्वेद से अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है। कुछ लोगों ने निश्चित किया है कि वासंत विषुवद्दिन की यह स्थिति ईसा से ४००० वर्ष पहले थी। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि ईसा से पाँच छह हजार वर्ष पहले हिंदुओं को नक्षत्र अयन आदि का ज्ञान था और वे यज्ञों के लिये पत्रा बनाते थे। शारद वर्ष के प्रथम मास का नाम अग्रहायण था जिसकी पूर्णिमा मृगशिरा

नक्षत्र में पड़ती थी। इसी से कृष्ण ने कहा है कि 'महीनों में मैं सार्धशोष हूँ'। प्राचीन हिंदुओं ने ध्रुव का पता भी अत्यंत प्राचीन काल में लगाया था। अयन चलन का सिद्धांत भारतीय ज्योतिषियों ने किसी दूसरे देश से नहीं लिया; क्योंकि इसके संबंध में जब कि युरोप में विवाद था, उसके सात आठ सौ वर्ष पहले ही भारतवासियों ने इसकी गति आदि का निरूपण किया था। बराहमिहिर के समय में ज्योतिष के संबंध में पाँच प्रकार के सिद्धांत इस देश में प्रचलित थे—सौर, पैतामह, वासिष्ठ, पोलिश और रोमक। सौर सिद्धांत संबंधी सूर्य सिद्धांत नामक ग्रंथ किसी और प्राचीन ग्रंथ के आधार पर प्रणीत जान पड़ता है। बराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त दोनों ने इस ग्रंथ से सहायता ली है। इन सिद्धांत ग्रंथों में ग्रहों के भ्रमण, स्थान, युति, उदय, अस्त आदि जानने की क्रियाएँ सविस्तर दी गई हैं। अक्षांश और देशांतर का भी विचार है। पूर्व काल में देशांतर संका या उज्जयिनी से लिया जाता था। भारतीय ज्योतिषी गणना के लिये पृथ्वी को ही केंद्र मानकर चलते थे और ग्रहों की स्पष्ट स्थिति या गति लेते थे। इससे ग्रहों की कक्षा आदि के संबंध में उनकी और आज की गणना में कुछ अंतर पड़ता है।

क्रांतिकृत पहले २८ नक्षत्रों में ही विभक्त किया गया था। राशियों का विभाग पीछे से हुआ है। वैदिक ग्रंथों में राशियों के नाम नहीं पाए जाते। इन राशियों का यज्ञों से भी कोई संबंध नहीं है। बहुत से विद्वानों का मत है कि राशियों और दिनों के नाम यवन (यूनानियों के) संपर्क के पीछे के हैं। अनेक पारिभाषिक शब्द भी यूनानियों से लिए हुए हैं, जैसे,—होरा, दुष्काण केंद्र, इत्यादि।

ज्योतिष के आजकल दो विभाग माने जाते हैं—एक सिद्धांत या गणित ज्योतिष, दूसरा फलित ज्योतिष। फलित में ग्रहों के शुभ अशुभ फल का निरूपण किया जाता है।

२. अस्त्रों का एक संहार या रोक जिससे चलाया हुआ अस्त्र निष्फल जाता है।

विशेष—इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है।

ज्योतिषिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करने-वाला। ज्योतिषी।

ज्योतिषिक^२—वि० ज्योतिष संबंधी।

ज्योतिषी^१—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषिन्] ज्योतिष शास्त्र का जानने-वाला मनुष्य। ज्योतिर्विद्। देवज्ञ। गणक।

ज्योतिषी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा। ग्रह। नक्षत्र।

ज्योतिष्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रह, तारा, नक्षत्र आदि का समूह।

२. मेथी। ३. चित्रक वृक्ष। ४. मनीयारी का पेड़।

५. मेघ पर्वत के एक शृंग का नाम। ६. जैन मतानुसार देवताओं का एक भेद जिसके अंतर्गत चंद्र, तारा, ग्रह, नक्षत्र और भक्ष हैं।

ज्योतिष्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी।

ज्योतिष्टोम—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें १६ अक्षिक् होते थे। इस यज्ञ के समापनांत में १२०० गोदान का विधान था।

ज्योतिष्पथ—संज्ञा पु० [सं०] आकाश।

ज्योतिष्पुंज—संज्ञा पु० [सं०] नक्षत्रसमूह।

ज्योतिष्मती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मालकंगनी। २ रात्रि। ३ एक नदी का नाम। ४. एक प्रकार का वैदिक छंद। ५ सारंगी की तरह का एक प्राचीन बाजा। ६ सत्त्वगुणप्रधान मन की शांत अवस्था (की०)।

ज्योतिष्मान्—वि० [सं० ज्योतिष्मत्] प्रकाशयुक्त। ज्योतिर्मय।

ज्योतिष्मान्—संज्ञा पु० [सं०] १ सूर्य। २ प्लक्ष द्रोप के एक पर्वत का नाम। ३ ब्रह्मा का तृतीय पाद या चरण (की०)। ४. प्रलयकाल में उदित होनेवाले सात सूर्यों में से एक (की०)।

ज्योतिस्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्षुति। ज्युति। प्रकाश। २. परम ज्योति। ब्रह्मा की ज्योति। ३. विद्युत्। बिजली। ४ दिव्य सत्ता। ५ नक्षत्र। तारा आदि। ६ आकाशीय प्रकाश (तमस् का विलोम)। ७. सूर्य चंद्र। ८. दिव्य प्रकाश या बुद्धि। ९. ग्रह नक्षत्र संबंधी शास्त्र या विज्ञान। वि० दे० 'ज्योतिष'। १०. देखने की शक्ति। ११. दिव्य जगत्। १२ गाय (की०)।

ज्योतिस्—संज्ञा पु० १ सूर्य। २ अग्नि। ३ विष्णु (की०)

ज्योतिषास्त्र—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योतिःशास्त्र'। उ०—ज्योतिषास्त्र अति हृदी ज्ञान। ताके तुम ही बीज निदान।—नंद० ग्रं०, पृ० २४४।

ज्योतिस्ना—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ज्योत्स्ना'।—अनेकार्थ०, पृ० ३१।

ज्योतिस्नात—वि० [सं० ज्योतिः+रनात] प्रकाशपूर्ण। उ०—ज्योतिस्नात जीवनपथ पर अब चरण चार गतव्य एक हो।—अग्नि०, पृ० ३५।

ज्योतिहीन—वि० [सं० ज्योतिः+हीन] प्रकाश से रहित। प्रभाहीन। उ०—उत्का बज्र व धूमादि से हृत विषणं ज्योतिहीन होने पर।—बृहत्संहिता, पृ० ८२।

ज्योतीरथ—संज्ञा पु० [सं०] ध्रुव (जिसके आश्रित ज्योतिषवक्त्र हैं)।

ज्योतीरस—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का रत्न जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण और बृहत्संहिता में है।

ज्योत्स्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चंद्रमा का प्रकाश। चांदनी। २. चांदनी रात। ३ सफेद फूल की तोरई। ४ सौंफ। ५ दुर्गा का एक नाम (की०)। ६ प्रकाश। उजाला (की०)।

ज्योत्स्नाकाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार सोम की कन्या जो बरुण के पुत्र पुष्कर की पत्नी थी।

ज्योत्स्नाघौत—वि० [सं०] दे० 'ज्योत्स्नास्नात'।

ज्योत्स्नाप्रिय—संज्ञा पु० [सं०] चकोर।

ज्योत्स्नावृत्त—संज्ञा पु० [सं०] दीपाधार। दीवट। फनीलसोज।

ज्योत्स्नास्नात—वि० [सं०] चांदनी में नहाया हुआ। चांदनी से पूर्ण।

ज्योत्स्निका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चांदनी रात। २ सफेद फूल की तोरई।

ज्योत्स्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ज्योत्स्निका'।

ज्योत्स्नेश—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा (की०)।

ज्योनार—संज्ञा स्त्री० [सं० जेमन (= खाना).] १. पका हुआ भोजन। रसोई।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. भोज। दावत। ज्याफत।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

मुहा०—ज्योनार बैठना = प्रतिपियों का भोजन करने बैठना।

ज्योनार लगाना = प्रतिपियों के सामने रखने के लिये व्यंजनों को क्रम से लगाना या रखना।

ज्योवन—संज्ञा पु० [सं० योवन] दे० 'जोवन'। उ०—तन धन ज्योवन कछु नहि भावत हरि सुखदाई री।—दक्खिनी०, पृ० १३२।

ज्योरा—संज्ञा पु० [देश०] वह पनाज जो फसल तैयार होने पर गाँवों में नाइयों चमारों आदि को उनके कामों के बदले में दिया जाता है।

ज्योरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी। रज्जु। डोरी।

ज्योरू—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोरू'। उ०—माँ बाप बेटे ज्योरू लड़के सब देखत लोकन सरीखे।—दक्खिनी, पृ० १२२।

ज्योहता—संज्ञा पु० [सं० जीव + हत] आत्महत्या। जोहर। उ०—केश गहि करखि जमुना धार डारिहै, सुन्यो नृप नारि पनि कृष्ण मारयो। भई व्याकुल सबै हेतु रोवन लगी मरन को नुरत ज्योहत विचारयो।—सूर (शब्द०)।

ज्योहरा—संज्ञा पु० [सं० जीव + हर] राजपूतों की एक प्रथा जिसके अनुसार उनकी मिथ्या गढ़ के शत्रुओं से धिर जाने पर चिता में जलकर मरम हो जाती थी। दे० 'जोहर'।

ज्यौ—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ज्यों'।

ज्यौ—अर्थ० [सं० यदि] जो। यदि। उ०—जो न जुगुति पिय मिलन की पूर मुकृति मोहि दीन। ज्यौ लहिये संग सजन तो चरक नरक हू की न।—बिहारी (शब्द०)।

ज्यौ—संज्ञा पु० [सं० जीव, प्रा० जीम, जीय] दे० 'जीव'। उ०—बृहत् ज्यौ घनानंद सोचि, बई बिधि व्याधि असाधि नई है।—घनानंद, पृ० ५।

ज्यौ—संज्ञा पु० [सं०] बृहस्पति ग्रह (की०)।

ज्यौतिष—वि० [सं०] ज्योतिष संबंधी।

ज्यौतिषिक—संज्ञा पु० [सं०] ज्योतिषी।

ज्यौत्स्न—वि० [सं०] चंद्रकिरणों से प्रकाशित (की०)।

ज्यौत्स्न—संज्ञा पु० शुक्ल पक्ष। उजाला पाल (की०)।

ज्यौत्स्निका, ज्यौत्स्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णिमा की रात (की०)।

ज्यौनार—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योनार'।

ज्यौरा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योरा'।

ज्वर—संज्ञा पु० [सं०] १. शरीर की वह गरमी या ताप जो स्वाभाविक से अधिक हो और शरीर की अस्वस्थता प्रकट करे। ताप। बुखार।

विशेष—सुप्त, चरक आदि ग्रंथों में ज्वर सब रोगों का राजा और घाठ प्रकार का माना गया है—वातज, पित्तज, कफज, वात-पित्तज, वातकफज, पित्तकफज, सांनिपातिक और आगंतुज। आगंतुज ज्वर वह है जो चोट लगने, विष खाने आदि के कारण हो जाता है। इन सब ज्वरों के लक्षण और आचार भिन्न भिन्न हैं। ज्वर से उठे हुए, क्रुश या मिथ्या आहार विहार करनेवाले मनुष्य का शेष या रहा सहा दोष जब वायु के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होकर आमाशय, हृदय, कंठ, सिर और संधि इन पाँच कफ स्थानों का आश्रय लेता है तब उससे अंतरा, तिजरा और चौथिया आदि विषम ज्वर उत्पन्न होते हैं। प्रलेपक ज्वर से शरीरस्थ धातु सूख जाती है। जब कई एक दोष कफ स्थान का आश्रय लेते हैं तब विषय्य नाम का विषम ज्वर उत्पन्न होता है। विषय्य ज्वर वह है जो एक दिन न आकर दो दिन बराबर आवे। इसी प्रकार आगंतुक ज्वर के भी कारणों के अनुसार कई भेद किए गए हैं। जैसे, कामज्वर, क्रोधज्वर, भयज्वर इत्यादि। ज्वर अपने आरंभ दिन से सात दिनों तक तरुण, १४ दिनों तक मध्यम २१ दिनों तक प्राचीन और २१ दिनों के उपरांत जीर्णज्वर कहलाता है। जिस ज्वर का वेग अत्यंत अधिक हो, जिससे शरीर की कांति बिगड़ जाय, शरीर शिथिल हो जाय, नाड़ी जल्दी न मिले उसे कालज्वर कहते हैं। वैद्यक में गुठच, चिरायता, पिप्पली, नीम आदि कटु वस्तुएँ ज्वर को दूर करने के लिये दी जाती हैं।

पाश्चात्य मत के अनुसार मनुष्य के शरीर में स्वाभाविक गरमी 98° और 99° के बीच होती है। शरीर में गरमी उत्पन्न होते रहने और निकलते रहने का ऐसा हिसाब है कि इस मात्रा की उष्णता शरीर में बराबर बनी रहती है। ज्वर की अवस्था में शरीर में इतनी गरमी उत्पन्न होती है जितनी निकलने नहीं पाती। यदि गरमी बहुत तेजी से बढ़ने लगती है तो रक्त त्वचा से हटने लगता है जिसके कारण जाड़ा लगता है और शरीर में कँपकँपी होती है। ज्वर में यद्यपि स्वस्थ दशा की अपेक्षा गरमी अधिक उत्पन्न होती है पर उतनी ही गरमी यदि स्वस्थ शरीर में उत्पन्न हो तो वह बिना किसी प्रकार का अधिक ताप उत्पन्न किए उसे निकाल सकता है। अस्वस्थ शरीर में गरमी निकालने की शक्ति उतनी नहीं रह जाती, क्योंकि शरीर की धातुओं का जो क्षय होता है वह पूति की अपेक्षा अधिक होता है। ज्वर में शरीर क्षीण होने लगता है, पेशाब अधिक आता है, नाड़ी और श्वास जल्दी जल्दी चलने लगता है, प्रायः कोष्ठबद्ध भी हो जाता है, प्यास अधिक लगती है, भूख कम हो जाती है, सिर में दर्द तथा अगो में विलक्षण पीड़ा होती है। विषले कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश और वृद्धि, अंगों की सूजन, घृष आदि के ताप तथा कभी कभी नाड़ियों या स्नायुओं की अव्यवस्था से भी ज्वर उत्पन्न होता है।

ज्वर के संबंध में हरिवंश में एक कथा मिली है। जब कृष्ण के पीन अनिरुद्ध बाणासुर के यहाँ बंधी हो गए तब कृष्ण और

बाणासुर में धीरे संग्राम हुआ था। उसी अवसर पर बाणासुर की सहायता के लिये शिव ने ज्वर उत्पन्न किया। जब ज्वर ने बलराम आदि को गिरा दिया और कृष्ण के शरीर में प्रवेश किया तब कृष्ण ने भी एक वैष्णव ज्वर उत्पन्न किया जिसने माहेश्वर ज्वर को निकालकर बाहर किया। माहेश्वर ज्वर के बहुत प्रार्थना करने पर कृष्ण ने वैष्णव ज्वर समेट लिया और माहेश्वर ज्वर को ही पृथ्वी पर रहने दिया। दूसरी कथा यह है कि दक्ष प्रजापति के अपमान से क्रुद्ध होकर महादेव जी ने अपने श्वास से ज्वर को उत्पन्न किया।

क्रि० प्र०—माना।—होना।

मुहा०—ज्वर उतरना = ज्वर का जाता रहना। बुखार दूर होना। (किसी को) ज्वर चढ़ना = ज्वर आना। ज्वर का प्रकोप होना।

२. मानसिक क्लेश। दुःख। शोक (को०)।

ज्वरकुटुम्ब—संज्ञा पु० [सं० (ज्वर कुटुम्ब)] ज्वर के साथ होनेवाले उपद्रव, जैसे, प्यास, श्वास, अर्चि, हिचकी इत्यादि।

ज्वरघ्न—संज्ञा पु० [सं०] १. गुठच। २. बुध्वा।

ज्वरचिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [म०] ज्वर का उपचार या इलाज (को०)।

ज्वरप्रतीकार—संज्ञा पु० [सं०] ज्वर का उपचार (को०)।

ज्वरराज—संज्ञा पु० [सं०] ज्वर की एक शोषण जो पारे, माक्षिक, मैगनेसियम, हरताल, गंधक तथा भिलार्थ के योग से बनती है।

ज्वरहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वरहंत्री] मंजीठ।

ज्वरहर^१—वि० [सं०] ज्वर को दूर करनेवाला (को०)।

ज्वरहर^२—संज्ञा पु० ज्वर का चिकित्सक (को०)।

ज्वरांकुश—संज्ञा पु० [सं० ज्वरांकुश] १. ज्वर की एक शोषण जो पारे, गंधक, प्रत्येक विष और धतूरे के बीजों के योग से बनती है। २. कुश की तरह की एक सुगंधित घास।

विशेष—यह उत्तरी भारत में कुमायूँ गढ़वाल से लेकर पेशावर तक होती है। इसकी जड़ में से नीबू की सी सुगंध आती है। यह घास चारे के काम की उतनी नहीं होती। इसकी जड़ और ठठलों से एक प्रकार का सुगंधित तेल निकाला जाता है जो शरबत आदि में डाला जाता है।

ज्वरांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वरांगी] भद्रदती नाम का पोषा।

ज्वरांतक—संज्ञा पु० [सं० ज्वरांतक] १. चिरायता। २. अमलतास।

ज्वरा^१—संज्ञा पु० [सं०] मृत्यु। मोत। उ०—लिये सब आधिन व्याधिन जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।—केशव (शब्द०)।

ज्वरा^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वर।

ज्वरापह—वि० [सं०] ज्वर को दूर करनेवाला।

ज्वरापहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेलपत्री।

ज्वरार्त—संज्ञा [सं०] ज्वरपीड़ित।

ज्वरित—वि० [सं०] ज्वरयुक्त। जिसे ज्वर चढ़ा हो।

ज्वरी—वि० [सं० ज्वरिन्] [वि० स्त्री० ज्वरिणी] जिसे ज्वर हो।

ज्वरी—संज्ञा पुं० [हि० ज्वरी] दे० 'ज्वरी' । उ०—ज्वरी बाज बाँसे कुहरी बहरी सगर लोने, टोने जरकटी स्थीं शबान सानवारे हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

ज्वलंत—वि० [सं० ज्वलन्त] १. जलता हुआ । प्रकाशमान् । दीप्त । देदीप्यमान् । २. प्रकाशित । अत्यंत स्पष्ट । जैसे, ज्वलंत दृष्टांत, ज्वलंत प्रमाण ।

ज्वल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्वाला । अग्नि । २. दीप्ति । प्रकाश ।

ज्वलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निशिला । भाग की लपट । लौर ।

ज्वलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलने का कार्य या भाव । जलन । दाह । उ०—(क) अघर रसन पर लाली भिसी मलूम । मदन ज्वलन पर सोहति, मानहु धूम ।—(शब्द०) । (ख) सुदसा ज्वलन सनेहवा कारन तोर । अंजन सोइ उर प्रगटत लागि हग कोर ।—रहीम (शब्द०) । २. अग्नि । भाग । ३. लपट । ज्वाला । ४. चित्रक वृक्ष । चीता ।

ज्वलन—वि० १. प्रकाश करनेवाला । प्रकाशयुक्त । २. दाहक [को०] ।

ज्वलनांत—संज्ञा पुं० [सं० ज्वलनान्त] बौद्ध ग्रंथों के अनुसार दस हजार देवपुत्रों का नायक जिसने बौद्ध मठ में प्रवेश करते ही बोधिज्ञान प्राप्त कर लिया था ।

ज्वलित—वि० [सं०] १. जला हुआ । दग्ध । २. उज्ज्वल । दीप्ति-युक्त । चमकता या झलकता हुआ ।

ज्वलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्वा लता । मुरी । मरोड़फली ।

ज्वलिनी सीमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो गाँवों के बीच की सीमा जो ऊँचे पेड़ लगाकर बनाई गई हो ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि पीपल, बड़, साल, ताड़ तथा ढाक के वृक्ष गाँव की सीमा पर लगाए ।

ज्वाइन—संज्ञा स्त्री० [हि० अजवाइन] एक प्रकार का पौधा जिसके बीज औषध और मसाले के काम में आते हैं । अजवाइन । उ०—बिसूचित तन नहि सकै समारि । पीपल मूल ज्वाइन सारि ।—प्राण०, पृ० १५० ।

यौ०—ज्वाइनसारि = अजवाइन का सत्त ।

ज्वानी—वि० [फ़ा० जवान] दे० 'जवान' ।

ज्वानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जवानी] दे० 'जवानी' ।

ज्वाबी—संज्ञा पुं० [अ० जवाब] दे० 'जवाब' । उ०—को रक्खे या भुंमि पर, रक्खि करे को ज्वाब ।—ह० रासो, पृ० ४८ ।

ज्वार—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल, यवाकार या ज्वर] १. एक प्रकार की घास जिसकी बाल के दाने मोटे घनाजों में गिने जाते हैं ।

विशेष—यह घनाज संसार के बहुत से भागों में होता है । भारत, चीन, अरब, अफ्रीका, अमेरिका आदि में इसकी खेती होती है । ज्वार सूखे स्थानों में अधिक होती है, सीढ़ लिए हुए स्थानों में उतनी नहीं हो सकती । भारत में राज-पूताना, पंजाब आदि में इसका व्यवहार बहुत अधिक होता है । बंगाल, मद्रास, बरमा आदि में ज्वार बहुत कम बोई जाती है । यदि बोई भी जाती है तो दाने अच्छे नहीं पड़ते । इसका पौधा नरकट की तरह एक डंठल के रूप में सीधा

५-६ हाथ ऊँचा जाता है । डंठल में सात सात घाठ घाठ मंगुल पर गाँठ होती हैं जिनसे हाथ डेढ़ हाथ लंबे तलवार के आकार के पत्ते दोनों ओर निकलते हैं । इसके सिरे पर फूल के जौरे और सफेद दानों के गुच्छे लगते हैं । ये दाने छोटे छोटे होते हैं और गेहूँ की तरह खाने के काम में आते हैं । ज्वार कई प्रकार की होती है जिनके पौधों में कोई विशेष भेद नहीं दिखाई पड़ता । ज्वार की फसल दो प्रकार की होती है, एक रबी, दूसरी खरीफ । मक्का भी इसी का एक भेद है । इसी से कहीं कहीं मक्का भी ज्वार ही कहलता है । ज्वार को जोन्हरी, जुंड़ी आदि भी कहते हैं । इसके डठल और पौधे को चारे के काम में लाते हैं और खरी कहते हैं । इस अन्न के उत्पत्ति-स्थान के संबंध में मतभेद है । कोई कोई इसे अरब आदि पश्चिमी देशों से आया हुआ मानते हैं और 'ज्वार' शब्द को अरबी 'दूरा' से बना हुआ मानते हैं, पर यह मत ठीक नहीं जान पड़ता । ज्वार की खेती भारत में बहुत प्राचीन काल से होती आई है । पर यह चारे के लिये बोई जाती थी, अन्न के लिये नहीं ।

२. समुद्र के जल की तरंग का चढ़ाव । लहर की उठान । भाटा का उलटा ।

विशेष—दे० 'ज्वारभाटा' ।

ज्वारभाटा—संज्ञा पुं० [हि० ज्वार + भाटा] समुद्र के जल का चढ़ाव उतार । लहर का बढ़ना और घटना ।

विशेष—समुद्र का जल प्रतिदिन दो बार चढ़ता और दो बार उतरता है । इस चढ़ाव उतार का कारण चंद्रमा और सूर्य का आकर्षण है । चंद्रमा के आकर्षण में दूरत्व के वर्ग के हिसाब से कमी होती है । पृथ्वी जल के उस भाग के अणु जो चंद्रमा से निकट होगा, उस भाग के अणुओं की अपेक्षा जो दूर होगा, अधिक आकर्षित होंगे । चंद्रमा की अपेक्षा पृथ्वी से सूर्य की दूरी बहुत अधिक है; पर उसका पिंड चंद्रमा से बहुत ही बड़ा है । अतः सूर्य की ज्वार उत्पन्न करनेवाली शक्ति चंद्रमा से बहुत कम नहीं है २ के लगभग है । सूर्य की यह शक्ति कभी कभी चंद्रमा की शक्ति के प्रतिकूल होती है; पर अभावस्था और पूर्णिमा के दिन दोनों की शक्तियाँ परस्पर अनुकूल कार्य करती हैं; अर्थात् जिस अंश में एक ज्वार उत्पन्न करेगी, उसी अंश में दूसरी भी ज्वार उत्पन्न करेगी । इसी प्रकार जिस अंश में एक भाटा उत्पन्न करेगी दूसरी भी उसी में भाटा उत्पन्न करेगी । यही कारण है कि अभावस्था और पूर्णिमा को और बिनों की अपेक्षा ज्वार अधिक ऊँची उठती है । सप्तमी और अष्टमी के दिन चंद्रमा और सूर्य की आकर्षण शक्तियाँ प्रतिकूल रूप से कार्य करती हैं, अतः इन दोनों तिथियों को ज्वार सबसे कम उठती है ।

ज्वारी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुवारी' ।

ज्वाला—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निशिला । लो । लपट । आँच । उ०—बिता ज्वाल करीर बन बाबा लागि लागि आय ।—गिरिवर (शब्द०) । २. मसाल (को०) ।

ज्वाला^२—वि० जलता हुआ । प्रकाशयुक्त [को०] ।

ज्वालामाली—संज्ञा पुं० [सं० ज्वालामालिन्] सूर्य ।

ज्वाला—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निशिला । लपट । २. विष आदि की गरमी का ताप । ३. गरमी । ताप । जलन ।

मुहा०—ज्वाला फूटना = (१) गरमी उत्पन्न करना । शरीर में दाह उत्पन्न करना । (२) प्रचंड क्रोध आना ।

४. दग्धान्न । भुना हुआ चावल । ५. महाभारत के अनुसार तक्षक की पुत्री ज्वाला जिससे ऋक्ष ने विवाह किया था ।

ज्वालाजिह्वा—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । भाग । २. एक प्रकार का चित्रक वृक्ष ।

ज्वालादेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शारदापीठ में स्थित एक देवी ।

विशेष—इनका स्थान काँगड़ा जिले के अंतर्गत देरा तहसील में है । तंत्र के अनुसार जब सती के शव को लेकर शिव जी घूम रहे थे तब यहाँ पर सती की जिह्वा गिरी थी । यहाँ की देवी 'अंबिका' नाम की और भैरव 'उन्मत्त' नामक हैं । यहाँ पर्वत के एक दरार से भूगर्भस्थ अग्नि के कारण एक प्रकार की जलनेवाली भाप निकला करती है जो दीपक दिखलाने से जलने लगती है । इसी को देवी का ज्वलंत मुख कहते हैं ।

ज्वालाध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

ज्वालामालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी का नाम ।

ज्वालामाली—संज्ञा पुं० [सं० ज्वालामालिन्] शिव । महादेव [को०] ।

ज्वालामुखी पर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] वह पर्वत जिसकी चोटी के पास गहरा गड्ढा या मुँह होता है जिसमें धुआँ, राख तथा पिघले

या जले हुए पदार्थ बराबर अथवा समय समय पर बराबर निकला करते हैं ।

विशेष—ये वेग से बाहर निकलनेवाले पदार्थ भूगर्भ में स्थित प्रचंड अग्नि के द्वारा जलते या पिघलते हैं और संचित भाप के वेग से ऊपर निकलते हैं । ज्वालामुखी पर्वतों से राख, ठोस और पिघली हुई चट्टानें, कीचड़, पानी, धुआँ आदि पदार्थ निकलते हैं । पर्वत के मुँह के चारों ओर इन वस्तुओं के जमने के कारण कंगूरेदार ऊँचा किनारा सा बन जाता है । कहीं कहीं प्रधान मुख के प्रतिरिक्त बहुत से छोटे छोटे मुख भी इधर उधर दूर तक फैले हुए होते हैं । ज्वालामुखी पर्वत प्रायः समुद्रों के निकट होते हैं । प्रशांत महासागर (पैसिफिक समुद्र) में जापान से लेकर पूर्वीय द्वीप समूह तक अनेक छोटे बड़े ज्वालामुखी पर्वत हैं । अकेले जावा ऐसे छोटे द्वीप में ४६ टीले ज्वालामुखी के हैं । सन् १८८३ में कटोआ टापू में ज्वालामुखी का जैसा भयंकर स्फोट हुआ था, वैसा कभी नहीं देखा गया था । टापू के आसपास प्रायः चालीस हजार आदमी समुद्र की घोर हलचल से डूबकर मर गए थे ।

ज्वालाध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

ज्वालाहृत्—संज्ञा स्त्री० [हिं०] रंगने की एक हलदी ।

ज्वेहर^१—संज्ञा पुं० [अ० जवाहिर] वेशकीमत पत्थर । रत्न । जवाहर । उ०—हीरे रत्न ज्वेहर लाल । सधु सूची साची टकसाख ।—प्राण०, पृ० १६७ ।

अ

अ—हिंदी व्यंजन वर्णमाला का नवौं और अवर्ग का चौथा वर्ण जिसका स्थान तालु है । यह स्पर्श वर्ण है और इसके उच्चारण में संवार, नाद और घोष प्रयत्न होते हैं । अ, आ, इ, और ए इसके सवर्ण हैं ।

अ—संज्ञा पुं० [अनु०] १. वह शब्द जो धातुखंडों के परस्पर टकराने से निकलता है । २. हथियारों का शब्द ।

अंकना—क्रि० प्र० [हिं०] ३० 'भीखना' ।

अंकाङ्—संज्ञा पुं० [हिं०] ३० 'अंसाङ्' ।

अंकार—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कार] १. अंमनाहुट का शब्द जो किसी धातुखंड से निकलता है । अन् अन् शब्द । अलंकार । जैसे, पाजेब की अंकार, अंकि की अंकार । उ०—शुभे, बन्ध अंकार है धाम में, रहे किंतु टंकार संग्राम में ।—साकेत, पृ० ३०५ । २. भीगुर आदि छोटे छोटे जानवरों के बोलने का शब्द जो प्रायः अन् अन् होता है । अलंकार । जैसे, भिल्लियों की अंकार । ३. अन् अन् शब्द होने का भाव ।

अंकारना^१—क्रि० प्र० [सं० अङ्कार] धातुखंड आदि में से अलंकार शब्द उत्पन्न करना । जैसे, अंकि अंकारना ।

अंकारना^२—क्रि० प्र० अन् अन् शब्द होना । जैसे, भिल्लियों का अंकारना ।

अंकारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कारिणी] गंगा । भागीरथी [को०] ।

अंकारित^१—संज्ञा पुं० [पुं० अङ्कारित] ३० 'अंकार' [को०] ।

अंकारित^२—वि० अंकार करता हुआ । अंकृत [को०] ।

अंकारी—वि० [सं० अङ्कारिन्] अंकार करनेवाला । अन् अन् करनेवाला । अंकार-गुण-युक्त [को०] ।

अंकृत^१—वि० [सं० अङ्कृत] अंकार करता हुआ । अंकारयुक्त [को०] ।

अंकृत^२—संज्ञा पुं० धीरे धीरे होनेवाली मधुर ध्वनि । अंकार [को०] ।

अंकृता—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कृता] तंत्र के अनुसार दस महाविद्या में से एक । देवी तारा [को०] ।

अंकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कृति] अंकार । मधुर ध्वनि [को०] ।

अंखन—संज्ञा स्त्री० [देशी / अंख, हिं० अंखना] भीखना । रोना-धोना । दुःख का प्रकाशन । उ०—अंखन भुरवन सबही छोड़ो । कमकि करो गुरु सेव ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २५ ।

अंखना—क्रि० प्र० [हिं० खीजना] बहुत अधिक दुखी होकर पड़तापड़ा और कुड़ना । भीखना । उ०—(क) बरस दिवस

बन रोय के द्वार परी धित भंख ।—जायसी (शब्द०) । (ख)
पवि तख का बना पीजरा तामें मुनियौ रहती । उड़ि मुनियौ
हारी पर बैठे भंखन लागे सारी दुनिया ।—कबीर (शब्द०) ।

भंखर—संज्ञा पुं० [देशी भंखर] शुष्क वृक्ष । उ०—बल भूरा बन
भंखरा नहीं सु चपउ जाइ । गुण सुगंधी मारवी, महकी सह
बणराइ ।—टोला०, दू० ४६८ ।

भंखाट—वि० [हि० भंखाड़] दे० 'भंखाड़' ।

भंखाड़—संज्ञा पुं० [हि० 'भाड़' का धनु०] १. घनी घोर कटिदार
भाड़ी का पोधा । २. ऐसे कटिदार पोथों या भाड़ियों का घना
समूह जिसके कारण भूमि या कोई स्थान ठंढ जाय । उ०—
ऊंचे भाड़, कंटीले भंखाड़ो ने वन मग छाया ।—कवासि,
पृ० ७२ । ३. वह वृक्ष जिसके पत्ते झड़ गए हों । ४. व्यर्थ की
घोर रद्दी, विशेषतः काठ की चीजों का समूह ।

भंखरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दरा या देश०] १. गुफा । कंदरा । उ०—
मिले सिध गिर भंखरी, सो एकलो सदीव । रच टोली
फिरता रहै, जटै तठ बन जीव ।—बिकी० ग्रं०, पृ० २७ ।
२. घनी भाड़ी ।

भंखार—संज्ञा पुं० [हि० जंजाल] जंजाल । मायाजाल । दुःख ।
उ०—इनके चरन सरन जे आए मिटे सकल भंखार । छीत
स्वामी गिरिधरन श्री विठ्ठल सकल वेद को सार ।—छीत०,
पृ० १४ ।

भंभकार—संज्ञा पुं० [सं० भङ्गार] भंकार । भन् भन् की मधुर
ध्वनि । उ०—निगम चारि उतपति भयो चतुरानन मुख वैन ।
ज्वरेउ शब्द बनाहुदा भंभकार मद ऐन ।—संत० दरिया,
पृ० ४० ।

भंभ—संज्ञा पुं० [भन् भन् से धनु०] दे० 'भंभ' । उ०—कोउ
बीणा मुरली पटह चंग मृदंग उपग । भालरि भंभ बजाई के
गावहि तिनके संग ।—(शब्द०) ।

भंभ^२—वि० [देश०] खाली । रीता । शुष्क । रहित ।

भंभट—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. व्यर्थ का भगड़ा । टटा । बखेड़ा । २.
प्रपंच । परेशानी । कठिनाई ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—में पड़ना ।—में फंसना ।

भंभटियाँ, भंभटियाँ—वि० [हि० भंभट] दे० 'भंभटी' ।

भंभटी—वि० [हि० भंभट] १. भंभट करनेवाला । २. भंभट से
भरा हुआ (काम) ।

भंभन—संज्ञा पुं० [सं० भञ्जन] धातुध्वनि की भंकार । भुन भुन की
मधुर ध्वनि (को०) ।

भंभनानी—क्रि० सं० [सं० भञ्जन] भन भुन का शब्द करना ।
भंकार करना । भंकारना ।

भंभनाना—क्रि० प्र० १. भंकार होना । २. कोई बात इस ढंग से
कहना जिसमें खीभ और भल्लाहट भरी हो । भल्लाना ।

भंभर—संज्ञा पुं० [सं० भञ्जर] दे० 'भञ्जर' ।

भंभरी—संज्ञा स्त्री० [हि० भंभरी] दे० 'भंभरी' ।

भंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० भञ्भा] १. वह तेज घाँधी जिसके साथ

वर्षा भी हो । उ०—मन को मसूसी मनभावन सों रुसि सखी
वामिन को दूषि रही रभा भुकि भभा सी ।—देव (शब्द०) ।

यौ०—भंभानिल । भंभामधु । भंभामांसत = दे० 'भंभावात' ।

२. तेज घाँधी । अघड़ । ३. बड़ी बड़ी बूँदों की वर्षा । ४. भंभ ।

५. खोई हुई वस्तु । हिराई हुई चीज (को०) ।

भंभा^(३)—वि० प्रचंड । तीखा । तेज ।

भंभानिल—संज्ञा पुं० [सं० भञ्भानिल] १. प्रचंड वायु । घाँधी ।
२. वह घाँधी जिसके साथ वर्षा भी हो ।

भंभार—संज्ञा पुं० [सं० भञ्भा] धाग की वह लपट जिसमें से कुछ
अव्यक्त शब्द के साथ धुंआ और चिनगारियाँ निकलें । उ०—
(क) अति अगिनि भार भमार, धुंधार करि, उचटि अंगार
भंभार छायो ।—सूर०, १० । ५६६ । (ख) लाल तिहारे
विरह की लागी अगिनि भवार । सरसै बरसै नीरहूँ मिटै न
भर भंभार ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ४६५ ।

भंभावात—संज्ञा पुं० [सं० भञ्भावात] १. प्रचंड वायु । घाँधी ।
२. वह घाँधी जिसके साथ पानी भी बरसे ।

भंभी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. कूटी कोड़ी । २. दलाली का धन ।
भञ्भी । (दलालों की बोली) ।

भंभोरना^(३)—क्रि० सं० [हि० भंभोरना] दे० 'भंभोड़ना' ।

भंभोटी, भंभोटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक राग । दे० 'भंभोटी' ।
उ०—तीसरे ने कहा बाह भंभोटी है ।—श्रीनिवास ग्रं०,
पृ० २०४ ।

भंभोरना^(३)—क्रि० सं० [हि० भंभोरना] दे० 'भंभोड़ना' । उ०—
विषम वायु जिम लता मोरि मास्त भंभोरे । (कै) चित्र
लिखी पुत्तरी जोरि जोरंत निहोरे ।—पृ० २१०, २१३४८ ।

भंभोटी—संज्ञा स्त्री० [देशी] छोटे घोर उठे हुए बाल । भौंटा ।

भंभ—संज्ञा पुं० [सं० जट, या देशी] १. छोटे बालकों के मुँह के
पहले के केश । २. करील ।

भंभा—संज्ञा पुं० [सं० जयन्ता या देश०] १. तिकोने या चौकोर कपड़े का
टुकड़ा जिसका एक सिरा लकड़ी आदि के बंदे में लगा रहता है
और जिसका व्यवहार चिह्न प्रकट करने, संकेत करने, उत्सव
आदि सूचित करने अथवा इसी प्रकार के अन्य कामों के लिये
होता है । पताका । निशान । फरहरा । ध्वजा ।

मुहा०—भंभे तले की दोस्ती = बहुत ही साधारण या राह चलते
की जान पहचान । भंभे पर चढ़ना = बदनाम होना ।
अपने सिर बहुत बदनामी लेना । भंभे पर चढ़ाना = बहुत
बदनाम करना ।

१. ज्वार, बाजरे आदि पोथों के ऊपर का नर फूल । जीरा ।

भंभा कप्तान—संज्ञा पुं० [हि० भंभा + सं० कैप्टन] १. उस जहाज
का प्रधान जिसपर प्रतीकात्मक ध्वजा रहती है (नौसेनिक) ।
२. वह व्यक्ति जिमपर संस्था के प्रतीकात्मक ध्वज की
जिम्मेदारी हो ।

भंभा जहाज—संज्ञा पुं० [हि० भंभा + सं० जहाज] बड़े का प्रधान
जहाज जिसपर बड़े का नायक रहता है ।

भंभा दिवस—संज्ञा पुं० [हि० भंभा + सं० दिवस] वह दिन जब

किसी कार्य से प्रेरित होकर लोगों से सहायता या चंदा लिया जाता है और बिना स्वरूप सहायता देनेवाले को भंडी भी जाती है (नीसैनिक) ।

भंडाबरदार—संज्ञा पुं० [हि० भंडा + बरदार] वह व्यक्ति जो किसी राज्य या संस्था का भंडा लेकर चलता है ।

भंडी—संज्ञा स्त्री० [हि० 'भंडा' का स्त्री० शब्दा०] छोटा भंडा जिसका व्यवहार प्रायः संकेत आदि करने और कभी कभी सजावट आदि के लिये होता है ।

मुहा०—भंडी दिखाना = भंडी से संकेत करना ।

भंडीदार—वि० [हि० भंडी + दा० दार] जिसमें भंडी लगी हो । भंडीवाला ।

भंडोसोलन—संज्ञा पुं० [हि० भंडा + सं० उसोलन] भंडा फहराना ध्वज फहराने का कार्य ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—होना ।

भंष—संज्ञा पुं० [सं० भम्प] १. उछाल । फलंग । कुदान ।

मुहा०—भंष देना = कूटना । उ०—करि अपनों कुल नास बनहि सो अगिन भंष दे आई ।—सूर (शब्द०) ।

७† २. हाथियों और घोड़ों आदि के गले का एक आभूषण । गलभंष ।

भंषण—संज्ञा पुं० [भंष०] धातुओं को आधा खुनी रखना । नेत्रों का अर्धोन्मीलन ।—महा पुं०, भा० १, पृ० १२ ।

भंषणी—संज्ञा स्त्री० [देशी] बरनी । बरनी । पदम ।

भंषन—संज्ञा पुं० [सं० भम्पन] १. उछलने की क्रिया । उछाल । २. भौका । उ०—निराशा सिकता कुपय में अग्रमरेखा सी सुभ्रंकि । वायु भंषन मे अञ्जल से हिमशिलर सी तुम अक्रंकि ।—कवारी०, पृ० ६६ ।

भंषन—संज्ञा पुं० [सं० आच्छादन; प्रा० भंषण, हि० भंषना] छिपाने की क्रिया । आवरित करने का कार्य । उ०—तिहि अवसर लालन आई गए उपमा कवि ब्रह्म कही नहि जाई । कंचन कुंभ के भंषन को भुकि भपत चंद भलवकत आई ।—अकबरी०, पृ० ३४६ ।

भंषना—संज्ञा पुं० [सं० आच्छादन, प्रा० भंषण] छिपाना । ढकना । आच्छादित करना । उ०—कंचन कुंभ के भंषन को भुकि भपत चंद भलवकत आई ।—अकबरी०, पृ० ३४६ ।

भंषाक—संज्ञा सं० [सं० भम्पाक] [स्त्री० भंषाकी] वानर । बंदर [को०] ।

भंषानी—संज्ञा पुं० [सं० भम्प या देश०] १. दे० 'भंषान' । २. कुदान । उछाल ।

भंषापात—संज्ञा पुं० [सं० भम्प + पात] ऊँचाई से गहरे पानी में भ्रम से कूद जाना । कूदकर प्राणत्याग करना । उ०—(क) जोग जज अपतप तोरथ ब्रनादि और, भंषापात लेत जाइ हिवारं गरत हैं ।—सुंदर०, प्र०, भा० १, पृ० ४५५ । (ख) कौ बूढ़े भंषापाती, इंद्रिय बसि करि न जाती ।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० १४७ ।

भंषापाती—वि० [हि० भंषापात] बहुत ऊँचाई से नदी में गिरकर प्राणत्याग करनेवाला ।

भंषावना—संज्ञा पुं० [सं० भम्पन] १. हिलाना । कंपना । उ०—भनभनात भिस्ली, भंषावत भरना भर भर भाड़ी ।—श्यामा०, पृ० १२० । २. उछालना । कुदान । उ०—फागुण मासि वसंत रत धायउ जइ न सुगोसि । आचरिकइ मिस खेलती होली भंषावेसि ।—ढोला०, पृ० १४५ ।

भंषाव—संज्ञा पुं० [सं० भम्पाव] वानर । बंदर [को०] ।

भंषित—वि० [सं० भम्प] ढंका हुआ । छिपा हुआ । आच्छादित । छाया हुआ ।

भंषी—वि० [सं० भम्पिन्] कपि । भंषाक । बंदर [को०] ।

भंष—संज्ञा पुं० [सं० स्तबक या हि० भम्बा] भौपा । गुच्छा । स्तबक [को०] ।

भंषना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भौकना' । उ०—ब्रज जुवतिन को दपन जोई । तामे मुँह भंषि आई सोई ।—नंद० प्र०, पृ० १२६ ।

भंषा—संज्ञा [हि०] दे० 'भौका' ।

भंषिया—संज्ञा स्त्री० [हि० भौकना] १. छोटी लिङ्की । भरोसा । २. भंषरी । जाली ।

भंषोरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भंषोरा' ।

भंषोरना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भंषोरना' ।

भंषोरना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भंषोरना' ।

भंषोला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भंषोरा' ।

भंषना—संज्ञा पुं० [हि० भंषना] दे० 'भंषना' । उ०—(क) श्रीकृत प्रात समय दोउ बीर । साखन मांगत, बात न मानत, भंषत जसोदा जननी तीर ।—सूर०, १० । १६१ । (ख) सूरज प्रभु आवत हैं हलधर को नहि लखत भंषति कहति तो होते संग दोऊ ।—सूर (शब्द०) ।

भंषरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बस का जालदार गोल भाँपा जिसे बोरा भी कहते हैं ।

भंषा—संज्ञा पुं० [हि० भगा] दे० 'भगा' । उ०—(क) नव नील कलेवर पीत भंगा भलकै पुलकै रुप गोद जिए ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) भाव लाल ऐसे महु पीजै तेरी भंगा मेरी अंगिया धीर ।—हरिदास (शब्द०) ।

भंषिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भंगुली' ।

भंषुआ—संज्ञा पुं० [देश०] मठिया नामक गहने में की, कुहनी की ओर से तीसरी चूड़ी । दे० 'मठिया' ।

भंषुला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भगा' ।

भंषुलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० 'भगा' का शब्दा०] छोटे बालकों के पहनने का भगा या ढोला कुरता । उ०—(क) पुट्टन चलत कनक प्रांगन में कोशिल्या छवि देखत । नील नलिन तनु पीत भंषुलिया घन दामिनि द्युति पेखत ।—सूर (शब्द०) ।

भंषुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भंगुलिया' । उ०—(क) जठि कह्यो भोर भयो भंगुली दे मुदित महिर लखि घालुरताई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कोठे भंगुली कोछ मृदुल बढनिया कोठे लावै रचि ताजा ।—रघुराज (शब्द०) ।

मैगुली ①—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'मैगुलिया', 'मैगुली' । उ०—
कुलही बिज बिजिन मैगुली । निरखहि मातु मुदित मन
फुली ।—गुलसी प्र०, पृ० २८५ ।

मैगनना—क्रि० प्र० [धनु०] भन भन शब्द होना । भनक भनक
शब्द होया । भंकारना । उ०—नेकु रही मति बोलो भवे मनि
पायनि पैजनिया भंभनैगी ।—(शब्द०) ।

मैभरा—संज्ञा पुं० [सं० अजंर (= छिद्रयुक्त), प्रा० अज्जर, या हि०]
मिट्टी का जालीदार ढँकना जो खोले हुए दूध के बतन पर
रखा जाता है ।

मैभरा—वि० [स्त्री० भंभरी] जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों ।
झीना ।

मैभरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अजंर, हि० भर भर से धनु०] १. किसी
बीज में बहुत से छोटे छोटे छेदों का समूह । जाली ।
उ०—(क) भंभरी के भरोखनि द्वे के भकोरति राबटी हें मैं
न जात सही ।—देव (शब्द०) । (ख) भंभरी फूट बूर
होई जाई । तबहि काल उठि बला पराई ।—कबीर मं०,
पृ० ५९४ । २. दोवारों प्रादि में बनी हुई छोटी जालीदार
खिड़की । ३. लोहे का वह गोल जालीदार या छेददार टुकड़ा
जो दमचूल्हे प्रादि में रहता है और जिसके ऊपर सुलगते हुए
कोयले रहते हैं । जले हुए कोयले की राख इसी के छेदों में से
बीचे गिरती है । दमचूल्हे की जाली या भरना । ४. लोहे
प्रादि की कोई जालीदार चादर जो प्रायः खिड़कियों या
बरामदों में लगाई जाती है । ५. घाटा छानने की छलनी ।
६. घाग प्रादि उठाने का भरना । ७. दुपट्टे या घोसी प्रादि
के प्राचल में उसके बाने के सूतों का, सुंदरता या शोभा के
लिये बनाया हुआ छोटा जाल, जो कई प्रकार का होता है ।

मैभरी—वि० स्त्री० [हि० भंभरा का धत्पा० स्त्री०] २० 'भंभरी' ।

• **मैभरीदार**—वि० [हि० भंभरी + प्रा० दार] जालीदार । सूरखदार ।
जिसमें भंभरी या जाली हो ।

मैभरना ①—क्रि० स० [सं० भंभन] २० 'भंभोड़ना' । उ०—
देखौ भक्त प्रधान जब राजा जाग्यो नाहि । सुंदर संक करी
नहीं पकरि भंभरी बाहि ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ७६१ ।

मैभोटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'भंभोटी' ।

मैभोड़ना—क्रि० स० [सं० भंभन] १. किसी बीज को बहुत वेग
धोर भटके के साथ हिलाना जिसमें वह टूट फूट जाय या नष्ट
हो जाय । भकभोरना । जैसे,—वे सोए हुए थे, इन्होंने जाते
ही उन्हें सूख भंभोड़ा । २. किसी जानवर का अपने से छोटे
जानवर को मार डालने के लिये दाँतों से पकड़कर खूब
भटका देना । भकभोरना । जैसे, कुत्ते या बिल्ली का बूहे को
भंभोड़ना ।

मैभोरा—संज्ञा पुं० [देश०] कचनार का पेड़ ।

मैभोटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'भंभोटी' ।

मैभूलना—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'भंभूला' ।

मैभूला—वि० [हि० भंभ + ऊला (प्रत्य०)] १. जिसके सिर पर

गर्भ के बाल हों । जिसका मुँह न संस्कार न हुआ हो । गर्भ के
बालोंवाला (बालक) । २. मुँह न संस्कार के पहले का ।
गर्भ का (बाल) । उ०—हर बचनहीं कंठ कटुला भंभूले
केस मेढ़ी सटकन मसिबिदु मुनि मनहर ।—गुलसी प्र०,
पृ० २८६ ।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द प्रायः बहुवचन रूप में बोला जाता
है । जैसे, भंभूले केस, भंभूले बार । उ०—उर बचनहीं कंठ
कटुला, भंभूले बार, बेनी सटकन मसि बुंदा मुनि मनहर ।
सूर १०।१५१ ।

१. बनी पतियोंवाला । सघन ।

मैभूला—संज्ञा पुं० १. वह बालक जिसके सिर पर गर्भ के बाल हों ।
वह लड़का जिसके गर्भ के बाल अभी तक मुँह न हों ।
२. मुँह न संस्कार से पहले का बाल । गर्भ का बाल जो अभी
तक मुँह न गया हो । ३. बनी पतियोंवाला घुल ।
सघन घुल ।

मैपकना—क्रि० प्र० [हि० भपकना] २० 'भपकना' ।

मैपकी—संज्ञा स्त्री [हि० भपकी] २० 'भपकी' ।

मैपताल—संज्ञा पुं० [हि० भपताल] २० 'भपताल' ।

मैपक—संज्ञा पुं० [सं० भप्पाक] बंदर ।

मैपना—क्रि० प्र० [सं० भप्प] १. ढँकना । छिपना । घाड़ में
होना । २. उछलना । कुदना । लपकना । भपकना । उ०—
(क) छकि रसास सौरभ सने मधुर माधुरी गंध । ठौर ठौर
भीरत भैपत भीरं भोग मधु ग्रंध ।—बिहारी (शब्द०) ।
(ख) जबहि भैपति तबहि कंपति विहंसि लगति उरोज ।—
सूर (शब्द०) । ३. टूट पड़ना । एक दम से घा पड़ना ।
उ०—जागत काल सोवत काल काल भैपे प्राई । काल चलत
काल फिरत कबहूँ ले जाई ।—दादू (शब्द०) । ४. भैपना ।
लज्जित होना ।

मैपना ②—क्रि० स० पकड़कर दबा लेना । छोप लेना । ढाँक
लेना । उ०—नीची मैं नीची निपट लौं बीठि कुही बौरि ।
उठि ऊँचे नीची दियो मनु कुजिगु भैपि भीरि ।—बिहारी
(शब्द०) ।

मैपरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० भैपना (= ढँकना)] पालकी को
ढाँकने की खोली । गिलाफ । मोहार । उ०—घाठ कोठरिया
नौ दरवाजा दसयें लागि केवरिया । खिड़की खोलि पिया ह्रम
देखस ऊपर भैपि भैपरिया ।—कबीर (शब्द०) ।

मैपरी—संज्ञा स्त्री० [हि० भैपरिया] २० 'भैपरिया' ।

मैपाक—संज्ञा पुं० [सं० भप्पाक] बंदर । कपि ।

मैपान—संज्ञा पुं० [सं० भप्प] सवारी के लिये एक प्रकार की खटोली
जिसमें दोनों ओर दो लंबे बाँस बंधे होते हैं । भप्पान ।

विशेष—इन बाँसों के दोनों ओर बीच में रस्सियाँ बंधी होती हैं,
जिनमें छोटे छोटे दो ओर बाँस पिरोए रहते हैं । इन्हीं बाँसों
को चार घादमी कंधों पर रखकर सवारी ले चलते हैं । यह
सवारी बहुधा पहाड़ की चढ़ाई में काम आती है ।

अपोजा—संज्ञा पुं० [हि० अपि + पोला (प्रत्य०)] [स्त्री० अत्पा० अपोली, अपोलिया] छोटा अपि या आवा। छावड़ा।

अफानी—संज्ञा पुं० [सं० अफ] कातिहीन होना। समाप्त या नष्ट होना। गलित होना। उ०—रूप रंग ज्यों फूलड़ा तन तरवर ज्यों पान। हरिया भोलो काल को अड़ि अड़ि हुए अफान। —राम० धर्म०, पृ० ६७।

अवकार^(१)—[हि० अवला + काला] कृष्ण वरों का। अवले रंग का। कुछ कुछ काला। उ०—गड़ गयं जरे भए कारे। ओ बन मिरग रोम अवकारे।—जायसी (शब्द०)।

अवराना—क्रि० प्र० [हि० आवर] १. कुछ काला पड़ना। २. कुम्हलाना। सुखना। फीका पड़ना।

अवा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आवा'। उ०—अमकत हिये गुलाब के अवा अवावति पाय।—बिहारी (शब्द०)।

अवाना^१—क्रि० प्र० [हि० आवा] १. अवि के रंग का हो जाना। कुछ काळा पड़ जाना। जैसे, धूप में रहने के कारण चेहरा अवा जाना। २. अग्नि का मंद हो जाना। आग का कुछ ठंडा हो जाना। ३. किसी चीज का कम हो जाना। घट जाना। ४. कुम्हलाना। मुरझाना। ५. अवि से रगड़ना जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

अवाना^२—क्रि० स० १. अवि के रंग का कर देना। कुछ काला कर देना। जैसे,—धूप ने उनका चेहरा अवा दिया। २. अग्नि को मंद करना। आग ठंडी करना। ३. किसी चीज को कम करना। उ०—जान को अभिमान किए मोको हरि पठयो। मेरोई भजन थावि माया सुख अवायो।—सूर (शब्द०)। ४. कुम्हलाना देना। मुरझाना देना। ५. अवि से रगड़ना। ६. अवि से रगड़वाना।

अवावना^(१)—क्रि० स० [हि० अवाना] अवि से रगड़ना या रगड़वाना। उ०—अमकत हिये गुलाब के अवा अवावति पाय।—बिहारी (शब्द०)।

असना—क्रि० स० [अनु०] १. मिर या तलुग आदि में में नेल या धीर कोई चिकना पदार्थ लगाकर हुयेकी से उसे बार बार रगड़ना जिसमें बहु उस घंग के घंवर समा जाय। जैसे—मिर मे कदबु का तेल असने मे तुम्हारा सिर दर्द दूर होगा।

संयो० क्रि०—देना।

२. किसी को बहुकाकर या अनुचित रूप से उसका धन आदि ले लेना। जैसे—इस घोभा ने भूत के बहाने उससे दस रुपए अस लिए।

संयो० क्रि०—लेना।

अ—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंभावात। वर्षा मिली हुई तेज धौंधी। २. सुगुरु। वृहस्पति। ३. वैत्यराज। ४. ध्वनि। गुंजार शब्द। ५. तीव्र वायु। तेज हवा।

अही^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अहि'। उ०—अरतहि देखि मातु उठि घाई। मुरछित ध्वनि परी अहि घाई।—सुलसी (शब्द०)।

४-२१

अही^(२)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अहि'। उ०—को जानै काहू के जिय की छिन छिन होत नई। सूरदास स्वामी के बिछुरे लाये प्रेम अहि।—सूर (शब्द०)।

अउआ^१—संज्ञा पुं० [हि० आवा] आवा। टोकरा। आवा।

अउआ^२—संज्ञा पुं० [सं० आवुक, हि० आऊ] दे० 'आऊ'। उ०—साधो एक बन भाकर अउआ। लावा तितिर तेहि माह भुलाने सान बुभावत कोभा।—दरिया, पृ० १२५।

अउआ^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अउआ'।

अक^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. कोई काम करने की ऐसी धुन जिसमें आगा पीछा या भला बुरा न सुके। २. धुन। समक। लहर। मोज।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—लगना।—समाना।—सवार होना।

३. आव। ताप। ज्वाला। उ०—मात्रा के अक जग जरे, कनक कामिनी लागि। कहू कबीर कस बाचिहू, रई खपेटी आगि।—संतबानी०, पृ० ५७। ४. भौका। अमक। आक।

क्रि० प्र०—आना।

अक^२—संज्ञा स्त्री० [सं० अक] दे० 'अक'।

अक^३—वि० चमकीला। साफ। ओपदार। जैसे, सफेद अक।

अककेतु^(१)—संज्ञा पुं० [सं० अककेतु] दे० 'अककेतु'।

अकअक^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. व्यर्थ की हउजत। फसूल अगड़ा या तकरार। किचकिच। २. व्यर्थ की बकवाद। निरर्थक वादविवाद। बकबक।

यौ०—बकबक अकअक।

अकअक^२—वि० [अनु०] चमकीला। ओपदार। चमकदार। उ०—अकअक अलकती बह्लि बामा के दग र्यों र्यों।—अपरा, पृ० ४७।

अकअक^३—वि० [अनु०] चमकीला। ओपदार। चमकदार।

अकअकाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ओप। चमक। जगमगाहट।

अकअकलना—क्रि० स० [हि०] दे० 'अकअकलना'।

अकअक^१—संज्ञा पुं० [अनु०] भौका। अकका। उ०—तन जस पियर वात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ अकअक।—जायसी (शब्द०)।

अकअक^२—वि० भौकेदार। तेज। जिसमें खूब भौका हो। उ०—काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति अकअक। नाहि चितवन देति तिय सुत नाम नोका धोर।—सूर (शब्द०)।

अकअकअक^१—क्रि० स० [अनु०] किसी चीज को पकड़कर खूब हिलाना। भौका देना। अकका देना। उ०—(क) सूरदास तिनको ब्रज युवती अकअकअक उर धंके भरे।—सूर (शब्द०)। (ख) अधिक सुगंधनि सेवक चारु मलिन को अकअकअक है।—सेवक (शब्द०)। (ग) बातन ते डरपेए कहा अकअकअक हूँ न धरी धरसात है।—(शब्द०)।

अकअकअक^२—संज्ञा पुं० [अनु०] अकका। धक्का। भौका। उ०—मंद

विलंब धमेरा दलकनि पाइब दुख भकभोरा रे।—तुलसी (शब्द०) ।

भकभोरी—संज्ञा स्त्री० [धनु०] स्त्रीनाभपटी । होड़ाहोड़ी । उ०—
भारत में मची है होरी । इक घोर भाग प्रभाग एक दिशि
होय रही भकभोरी ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ४०५ ।

भकभोखना—क्रि० प्र० [हि० भकभोला] दे० 'भकभोरना' ।

भकभोखना(५)२—क्रि० प्र० कपना । हिलना डलना । भौका
खाना । उ०—पकरयो खोर हुष्ट दुस्सासन बिमल बदन मर
डोले । जैसे राहु नीच ढिग घाए चंद्रकिरण भकभोले ।—सूर०,
१।२५६ ।

भकभोला—संज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'भकभोरा' । उ०—घोर घोर
तोर देत भकभोला, चलत बैक नहि जोर ।—तुरसी० शं०,
पृ० ७ ।

भकभोला—संज्ञा पुं० [धनु०] धाघात । धक्का । भकभोरा । उ०—
रचना यह परब्रह्मा की चोराणी भकभोल ।—सुंदर० ग्रं०,
भा० १, पृ० ३१५ ।

भकड़—संज्ञा पुं० [हि० भक] दे० 'भक्कड़' ।

भकड़ा—संज्ञा स्त्री० [देश०] सूत से निकली हुई जड़ । (ग्रं०
काव्यसं०) ।

भकड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] रोहनी । दूध दुहने का बरतन ।

भकना—क्रि० प्र० [धनु०] १. बकवाश करना । व्यर्थ की बातें
करना । २. क्रोध में धाकर अनुचित वचन कहना । उ०—
बेगि चलो सब कहें, भकें तिन सों निज हठ तैं ।—नंद०
ग्रं०, पृ० २०६ । ३. भ्रमना । झींकना । उ०—हरि की
नाम, दाम छोटे लौ भकि भकि डारि दयो ।—सूर०,
१।६४ । ४. पछताना । कुदना । उ०—ऊधो कुलिश भई
यह छाती । मेरो मन रसिक लग्यो नंदलालहि भकत रहत
दिन राती ।—सूर (शब्द०) ।

भकरा—संज्ञा पुं० [हि० भकड़] दे० 'भक्कड़' ।

भका—क्रि० [हि०] दे० 'भक' ।

भकामक(५)१—वि० [धनु०] जो खूब साफ सौर चमकता हुआ हो ।
दकादक । भमकीला । भलाभल । उज्ज्वल । जैसे,—गफेदी होने
से यह कमरा भकामक हो गया । उ०—भौकिक के प्रीति सों
भीने भरोखनि भारि के भका भकाभक भौकी ।—रघुराज
(शब्द०) ।

भकामक(५)२—वि० [धनु०] चमकीला । उज्ज्वल । उ०—खंसी है
कटारी कट्यो मे ग्रन्यारी । भकामक ववारी दई की सभारी ।
—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८२ ।

भकामोर—संज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'भकभोर' । उ०—चहें घोर तोपे
चले बान छूटै । भकामोर समसेर की भाग बोले ।—हम्मीर०,
पृ० १६ ।

भकामोरी—संज्ञा स्त्री० [धनु०] हिलाने या भकभोरने का क्रिया या
स्थिति । उ०—घोरी हूँ किसोरी गोरी रोरी रंग बोरी तब,
मची दुर्ग घोर...भकामोरी है ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २६ ।

भकुराना—क्रि० प्र० [हि० भकोरा] भकोरा लेना । भूमना ।

उ०—कथो सांकरे कुंजमग करतु भौकि भकुरातु । मंद मंद
मास्त सुरेगें खुंदतु प्रावतु जातु ।—बिहारी (शब्द०) ।

भकुराना—क्रि० प्र० भकोरा देना । भूमने में प्रवृत्त करना ।

भकोर(५)१—संज्ञा पुं० [धनु०] १. हवा का भौका । पवन की हिलोर ।
हिलकोरा । उ०—(क) चार लोचन हंसि विलोकनि देखिकै
चितचोर । मोहनी मोहन लगावत लटक मृकुट भकोर ।—
—सूर (शब्द०) । (ख) पवि पाहन दामिनी गरज भरि
खोर खरि खोभि । रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी
रागहि रोभि ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) चारिहु घोर तें वीन
भकोर भकोरन घोर घटा घहरानी ।—पद्माकर (शब्द०) ।
२. फटका । झोंका । धक्का ।

भकोरना—क्रि० प्र० [धनु०] हवा का भौका मारना । उ०—(क)
चहुँ दिशि पवन भकोरत घोरत मेघ घटा गंभीर ।—सूर
(शब्द०) । (ख) भौकरी के भरोखनि हूँ के भकोरति रावटी
हैं मैं न जात सही ।—देव (शब्द०) ।

भकोरा—संज्ञा पुं० [धनु०] हवा का भौका । वायु का वेग ।

भकोला(५)१—संज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'भकोर' या 'भकोरा' । उ०—
मृदु पदनास मद मलयानिल विलगत शोष निचोल । नील
पीत सित धवन ध्वजा चल सीर समीर भकोल ।—सूर
(शब्द०) ।

भकोला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भकोरा' । उ०—(क) धन भई वारी
पुरुष भए भोला सुग्न भकोला खाय ।—कबीर सा० सं०,
पृ० ७५ । (ख) उन्हें कभी कोई नौका उमड़े हुए सागर में
भकोले खाती नजर आती ।—रंगभूमि, पृ० ४७६ ।

भक्का—क्रि० [प्रा० जगजग (= वसकना) प्रथवा धनु०] खूब साफ
घोर चमकता हुआ । भकाभक । ओपदार ।

भक्क—संज्ञा स्त्री० [धनु०] दे० 'भक' ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—उत्तरना ।

भक्कड़—संज्ञा पुं० [धनु०] तेज प्रीति । तूफान । तीव्र वायु । धंधड़ ।

क्रि० प्र०—आना ।—उठना ।—चलना ।

भक्कड़—वि० [हि० भक्क + ड (प्रत्यय)] दे० 'भक्कड़ी' ।

भक्का—संज्ञा पुं० [धनु०] १. हवा का तेज भौका । २. भक्कड़ ।
धौंधी (लक्ष०) ।

भक्का भुक्की—संज्ञा स्त्री० [हि० भौक भूक] किसी बात को ध्यान
से न सुनकर हथर उधर भौकना । बात को गौर से न सुनना ।
महटियाना । उ०—घाघ कहै तब अनते चितनै भक्काभुक्की
करते ।—सं० दरिया, पृ० १३५ ।

भक्कामोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० भकभोरना] दे० 'भकभोरी' । उ०—
भक्कामोरी ऐवातानी, जहूँ तहँ गए बिलाई ।—जग० बानी,
पृ० ६८ ।

भक्की—वि० [धनु० या प्रा० भक्क] १. व्यर्थ की बकवाद करनेवाला ।
बहुत बक बक करनेवाला । २. जिसे भक सवार हो । जो
धाधमी अपनी धुन के आगे किसी की न सुने । सनकी ।

भक्खना(५)१—क्रि० प्र० [प्रा० भक्खण, भक्खण] दे० 'भौखना' ।

उ०—कह गिरधर कविराय मातु भखी यहि ठाहीं ।—
गिरधर (शब्द०) ।

भखर(५)।—संज्ञा पु० [हि० भक्कड़] भकोरा । उ०—घर घंवर
बीच बेलड़ी, तहें लाख सुगंधा बूल । भखर एक नां भायो,
नानक नही कबूल ।—संतवाणी०, पृ० ७० ।

भख^१—संज्ञा स्त्री [हि० भोखना] भोखने का भाव या क्रिया ।

मुहा०—भख मारना = (१) व्यर्थ समय नष्ट करना । वक्त
खराब करना । जैसे,—घाप सवेरे से यहाँ बैठे हुए भख मार
रहे हैं । (२) घरनी मिट्टी खराब करना । (३) विवश
होकर बुरी तरह भोखना । लाचार होकर खूब कुढ़ना । जैसे,—
(क) तुम्हें भख मारकर यह काम करना होगा । (ख) भख
मारो घोर वही जाग्रो । उ०—नीर पियावत हां करे घर घर
सायर बारि । तृषावत जो हाइया पीवेया भक् मारि ।—
कबीर सा० ग्रं०, भा० १, पृ० १५ ।

भख^२(५)।—संज्ञा पु० [सं० भख] मत्स्य । मछली । उ०—घांखिन तें
घांमि उमड़ि परत कुनन पर मान । जनु गिरीस के सीत पर
हारत भख मुकतान ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १७० ।

यौ०—भखकेतु । भखनिकेत । भखराज । भखलग्न ।

भखकेतु—संज्ञा पु० [सं० भखकेतु] दे० 'भखकेतु' । उ०—घांखों को नचा
नचाकर भखकेतु ध्वजा पहगात ।—दी० शा० महा०, १८८ ।

भखना(५)।—क्रि० प्र० [प्रा० भक्खण] दे० 'भोखना' । उ०—(क)
बाबा नंद भक्त कहि कारण यह कहि मया मोह अरुभाय ।
सूरदास प्रभु मातु पिता को तुरतहि दुख धारयो बिसराय ।
—सूर (शब्द०) । (ख) पुनि घाँह परी हरि लू की मुजान तें
छूटिबे को बहु भाँति भली री ।—केशव (शब्द०) । (ग) कवि
हरिजन मेरे उर बनमाल नेरे बिन गुन माल रेख मेख देखि
भखिया ।—हरिजन (शब्द०) ।

भखनिकेत(५)।—संज्ञा पु० [सं० भखनिकेत] दे० 'भखनिकेत' ।

भखराज(५)।—संज्ञा पु० [सं० भखराज] मकर । नरक । भखराज ।
उ०—भखराज मरयो गजराज कृपा ततकाल बिलंब कियो न
तहाँ ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६६ ।

भखलग्न(५)।—संज्ञा पु० [सं० भखलग्न] दे० 'भखलग्न' ।

भखिया—संज्ञा स्त्री [हि० भख + दया (प्रत्य०)] दे० 'भखी' ।

भखी(५)।—संज्ञा स्त्री [सं० भख] मीन । मछली । मत्स्य । उ०—
(क) घाखत बन से साँझ देखो मैं गायन माँझ, काहू को
बोडारी एक शीष मोर पखिया । घतसी गुमुम जैसे चंचल
वीरघ नेन मानी रस भरी जो लरत जुगल भखिया ।—सूर
(शब्द०) । (ख) गोकुल माह मे माम करे ते भई तिय
बारि बिना भखिया है ।—(शब्द०) ।

भगड़ना—क्रि० प्र० [देशी भगड़ (= भगड़ा, कलह) + हि० ना
(प्रत्य०) या भक्भक्त से घनु०] दो आदमियों का आवेश
में आकर परस्पर विवाद करना । भगड़ा करना । हुज्जत
तकरार करना । लड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

भगड़ा—संज्ञा पु० [देशी भगड़ या हि० भक्भक्त से घनु०] दो
मनुष्यों का परस्पर आवेशपूर्ण विवाद । लड़ाई । टंटा । बखेड़ा
कलह । हुज्जत । तकरार ।

क्रि० प्र०—करना ।—उठाना ।—समेटना ।—डालना ।—
फँसाना ।—तोड़ना ।—खड़ा करना ।—मचाना ।—लगाना ।

यौ०—भगड़ा बखेड़ा । भगड़ा भमेला ।

मुहा०—भगड़ा खड़ा होना = भगड़ा पैदा होना । भगड़ा खरीदना
= प्रकारण कोई ऐसी बात कह देना जिससे घनायास भगड़ा
खड़ा हो जाय । उ०—शेख जी जहाँ बैठते हैं भगड़ा जरूर
खरीदते हैं ।—फिसाना०, भा० १, पृ० १० । भगड़ा मोल
लेना = दे० 'भगड़ा खरीदना' ।

भगड़ालू—वि० [हि० भगड़ा + आलू (प्रत्य०)] लड़ाई करनेवाला ।
जो बात बात में भगड़ा करता हो ।

भगड़ी(५)।—संज्ञा स्त्री [हि० भगड़ा] अपने नेग के लिये भगड़ा
करनेवाली स्त्री ।

भगर—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की बिड़िया । उ०—तूनी लाल
कर करे सारस भगर तोते तीतर तुरमती बटेर गहियत है ।—
रघुनाथ (शब्द०) ।

भगरना—क्रि० प्र० [देशी भगड़; हि० भगड़ा] दे० 'भगड़ना' ।
उ०—जगुमति मम घमिलाख करे ।... कब मेरी अँचरा गहि
मोहन जोइ सोइ कहि मोसी भगर ।—सूर०, १०।७६ ।

भगरा(५)।—संज्ञा पु० [देशी भगड़] दे० 'भगड़ा' ।

भगराऊ(५)।—वि० [हि० भगड़ाऊ] दे० 'भगड़ाऊ' उ०—याहि कहा
मैया मुँह लावति, गनति कि एक लँगरि भगराऊ ।—तुलसी
ग्रं०, पृ० ४३४ ।

भगरिनि(५)।—संज्ञा स्त्री [हि० भगड़ी] दे० 'भगड़ी' । उ०—(क)
बहुत दिनन की आसा लागी भगरिनि भगरी कीनी ।—सूर०,
१०।१५ । (ख) भगरिनि तें हो बहुत खिभाई । कंधनहार
दिए नहि मानति तुहीं अनोखी दाई ।—सूर०, १०।१३ ।

भगरी(५)।—संज्ञा स्त्री [हि० भगड़ी] दे० 'भगड़ी' । उ०—यशोमति
लटकति पाँप परे । तेरो भलो मनइहौं भगरी लूँ मति मनहि
करे ।—सूर (शब्द०) ।

भगरी—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'भगड़ा' । उ०—(क) प्रीत जो बा
समय प्रभुन की मुरारीदास वह वस्तु न देत तब भी श्री
बालकृष्ण जी प्राकृतिक बालक की नाई भगरी मुरारी-
दास सों करते ।—दो सो वाचन०, भा० १, पृ० १०० ।
(ख) तहें तुम सुनहु बड़ा धन सुहरी । एक मोक्षता पर सब
भगरी—नंद० ग्रं०, पृ० २७३ ।

भगला(५)।—संज्ञा पु० [हि० भगा + ला (प्रत्य०)] दे० 'भगा' ।

भगा—संज्ञा दे० [देश०] १. छोटे बच्चों के पहनने का कुछ डोला कुरता ।
उ०—नंद उदै सुनि धायो हो वृषभानु को जगा । देव की
बड़ी महर, देत ना लावे गहर लाल की बघाई पाऊँ लाल की
भगा ।—सूर० १०।१६ । २. वस्त्र । शरीर पर पहनने का
कपड़ा । उ०—(क) भगा पगा घट पाग पिछोरी ठाड़िन को
पहिरायो । हरि दरियाई कंठ लगाई परदा सात उठायो ।
—सूर (शब्द०) । (ख) सीस पगा न भगा तन में प्रभु जाने

को बाहि बसे किहि ग्रामा ।—कविता की०, मा० १, पृ० १४१ ।

भगुलि, भगुलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० भगा का प्रत्यय] दे० 'भगा' । उ०—प्रफुलित ह्वं के घानि, यीनी है असोदा रानी, भीखीयं भगुलि तायें कंचन तगा ।—सूर०, १०।२६ ।

भगुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भगा' ।

भगुला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भगा' । उ०—डार दूम पलना बिछोना नव पल्लव की, सुमन भगुला गोहैं तन छावि भारी है ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १५७ ।

भगुलर—संज्ञा पुं० [सं० बालिभजर] कुछ थोड़े मुँह का पानी रखने का मिट्टी का एक बरतन ।

विशेष—इस बरतन की ऊपरी तह पर पानी को ठंडा करने के लिये थोड़ी सी बालू लगा दी जाती है । इसकी ऊपरी सतह पर सुंदरता के लिये तरह तरह की नकाशियाँ भी की जाती हैं । इसका व्यवहार प्रायः गरमी के दिनों में जल को अधिक ठंडा करने के लिये होता है ।

भगुनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फूटी कीड़ी । २. दलाली का घन ।—(दलालों की भाषा) ।

भगुन—संज्ञा स्त्री० [हि० भगुन] १. भगुन की क्रिया का भाव । किसी प्रकार के भय की आशंका से रुकने की क्रिया । चमक । भड़क । जैसे,—भभी इनकी भगुन नहीं गई है, इसी से खुलकर नहीं बोलते ।

क्रि० प्र०—जाना ।—मिटना ।—होना ।

मुहा०—भगुन निकलना=भगुन दूर होना । भय का नष्ट होना । भगुन निकालना=भगुन या भय दूर करना । जैसे,—हम चार दिन में इनकी भगुन निकाल देंगे ।

२. कुछ क्रोध से बोलने की क्रिया या भाव । भगुनवाहट । ३. किसी पदार्थ में से रह रहकर निकलनेवाली विशेषतः अप्रिय गंध ।

क्रि० प्र०—घाना ।—निकलना ।

४. रह रहकर होनेवाला पागलपन का हलका दौरा । कभी कभी होनेवाली सनक ।

क्रि० प्र०—घाना ।—चढ़ना ।—सवार होना ।

भगुन—संज्ञा स्त्री० [हि० भगुन] भगुन या भगुन के का भाव । डरकर हटने या रुकने का भाव । भड़क ।

भगुन—क्रि० प्र० [भगुन] १. किसी प्रकार के भय की आशंका से एकस्मात् किसी काम से रुक जाना । अचानक डरकर ठिठकना । बिदकना । चमकना । भड़कना । उ०—(क) कबहुं चुंबन देत आकषि जिय सेत करति बिन चेत सब हेत अपने । मिलति भुज कंठ बँ रहति प्रंग लटक के जात दुख दूर ह्वं भगुन सपने ।—सूर (शब्द०) । (ख) छाँले परिबे के डरन सकै न हाथ छुवाइ । भगुनहि गुलाब के भँवा भँवावति पाइ ।—बिहारी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।—पड़ना ।

२. भुँकलाना । खिजलाना । ३. चौक पड़ना । उ०—असुमति

मन मन यह विचारति । भगुन उठायो सोवत हरि अबहीं कछु पड़ि पड़ि तन दोष निवारति ।—सूर०, १०।२०० । ३. संकुचित होना । भगुन । उ०—अति प्रतिपाल कियो तुम हमरी सुनत नंद जिय भगुन रहे ।—सूर०, १०।३११२ ।

भगुन—संज्ञा स्त्री० [हि० भगुन] दे० 'भगुन' । उ०—वह रस की भगुन वह महिमा, वह मुसुन वैंसो संजोग ।—सूर (शब्द०) ।

भगुन—क्रि० प्र० [हि० भगुन का प्रे० रूप] १. अचानक किसी प्रकार के भय की आशंका कराके किसी काम से रोक देना । चमकाना । भड़काना । उ०—जुझों उभकि भाँपति बदन फुकाति बिहंसि सतराइ । तुल्यो गुलाल मुठी भुठी भगुनवात पिय जाइ ।—बिहारी (शब्द०) । २. चौका देना ।

भगुन—संज्ञा स्त्री० [हि० भगुन] भगुन की क्रिया या भाव ।

भगुन—क्रि० प्र० [भगुन] १. डपटना । डाँटना । २. दूर-दुराना । ३. अपने सामने कुछ न गिनना । किसी को अपने आगे मंद बना देना । उ०—नख मानो चंद्र बाण साजि के भगुन उर आयो । सूरदास मानिनि रण जाँत्यो समर सग हरि रण आयो ।—सूर (शब्द०) ।

भगुन—क्रि० प्र० [भगुन] भगुन बाजे का वजना । भगुन की ध्वनि होना । उ०—भगुन भगुन उठत तरंग रंग, धरि उच्चारहि दंद दंद मिरदंग ।—माधवानल०, पृ० १६४ ।

भगुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्जर, हि० भगुनी] जालीदार खिड़की । भगुनी । उ०—भगुन भगुन भगुन जहाँ भगुन भुकि भुकि भूमि ।—ब्रज० प्र०, पृ० ३ ।

भगुनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भगुनी' ।

भट—क्रि० प्र० [सं० भटति] तुरंत । उसी समय । तत्क्षण । फौरन । जैसे,—हमारे पहुँचते ही वे भट उठकर चले गए ।

मुहा०—भट से=जल्दी से । शीघ्रतापूर्वक ।

यौ०—भट पट ।

भटक—संज्ञा पुं० [भगुन] वायु का झोका । झाँधी । उ०—भटक भटक छोड़ल ठाम, कएल महातर तर विसराम ।—विद्यापति, पृ० ३०३ ।

भटकनहार—क्रि० [हि० भटकना + हार] भटकनेवाला । भटका देनेवाला । उ०—भटकनहार भटकबो । भटकनहार भटकबो ।—प्राण०, पृ० ११८ ।

भटकना—क्रि० प्र० [हि० भट] १. किसी चीज को इस प्रकार एक-बारगी भौंके से हिलाना कि उसपर पड़ी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या अलग हो जाय । भटके से हलका धक्का देना । भटका देना । उ०—नासिका ललित बेसरि बानी प्रधर तट सुभग तारक छबि कहि न आई । धरनि पद पटक भटक भौंहनि पटक भटक तहाँ रीके कहराई ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग उस चीज के लिये भी होता है जो किसी दूसरी चीज पर चढ़ती या पड़ती है । और उस चीज के लिये भी होता है जिसपर कोई दूसरी चीज चढ़ती

या पड़ती है। जैसे,—यदि धोती पर कनखूरा चढ़ने लगे तो कहेंगे कि 'धोती भटक दो' और यदि राम ने कृष्ण का हाथ पकड़ा और कृष्ण ने भटका देकर राम का हाथ अपने हाथ से अलग कर दिया तो कहेंगे कि 'कृष्ण ने राम का हाथ भटक दिया'।

संयो० क्रि०—देना।

२. किसी चीज को जोर से हिलाना। भोंका देना। भटका देना।

मुहा०—भटककर = भोंके से। भटके से। तेजी से। उ०—भटक कि चढ़ति उत्तरति घटा नेक न याकति देह। भई रहति नट की बटा भटकि नागरी नेह।—बिहारी (शब्द०)।

३. हवाव डालकर चालाकी से या जबरदस्ती किसी की चीज लेना। ऐंठना। जैसे,—(क) आज एक बढमाश ने रास्ते में दस रुपए उनसे भटक लिए। (ख) पंडित जी आज उनसे एक धोती भटक लाए।

संयो० क्रि०—लेना।

मुहा०—भटके का माल = जबरदस्ती छीना या चुराया हुआ माल।

भटकना^२—क्रि० प्र० रोग या दुःख आदि के कारण बहुत दुर्बल या क्षीण हो जाना। जैसे,—चार ही दिन के बुखार में वे तो बिलकुल भटक गए।

संयो० क्रि०—जाना।

भटका—संज्ञा पुं० [प्रनु०] १. भटकने की क्रिया। भोंके से दिया हुआ हलका धक्का। भोंका।

उ०—पिउ मोतियन की माल है, पोई कावे धाग। जतन करो भटका घना, नहि टूटे कहें लागि।—संतवाणी०, पृ० ४२।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—मारना।—लगना।—लगाना।

२. भटकने का भाव। ३. पशुबध का वह प्रकार जिसमें पशु एक ही आघात से काट डाला जाता है। उ०—मुसलमान के जबह हिंदू के मारे भटका।—पलटू०, पृ० १०६।

यौ०—भटके का मांस = उक्त प्रकार के मारे हुए पशु का मांस।

४. आपत्ति, रोग या शोक आदि का आघात।

क्रि० प्र०—उठाना।—खाना।—लगना।

५. कुशती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की गरदन उस समय जोर से दोनों हाथों से दबा दी जाती है जब वह भीतरी दब करके के हरादे से पेट में घुस जाता है।

भटकाना^३—क्रि० स० [हि० भटकना] भटके से स्थानकपुत कर देना। भटके से अस्तव्यस्त कर देना। उ०—यहि लालच धँकवारि भरत ही, हार तोरि चोली भटकाई।—सूर (शब्द०)।

भटकारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. भटकारने का भाव। भटकने का भाव वा क्रिया। २. दे० 'फटकार'।

भटकारना—क्रि० स० [प्रनु०] किसी चीज को इस प्रकार हिलाना जिसमें उसपर पड़ी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या अलग हो जाए। भटकना। जैसे, ऊपर पड़ी हुई गंद साफ

करने के लिये चादर भटकारना या किसी का हाथ भटकारना। दे० 'भटकना'।

भटक्कना^४—क्रि० स० [हि० भटकना] भटका देना। भोंका देना। उ०—भटक्कत इक्कन की गहि इक्क।—प० रासो, पृ० ४१।

भटकारी—क्रि० वि० [प्रनु०] जल्दी जल्दी। उ०—आजु आघोत हरि गोकुल रे, पथ चलु भटकारी।—विद्यापति, पृ० ३६५।

भटपट—अव्य० [प्रा० भटप्पड या हि० भट + प्रनु० पट] घति शीघ्र। तुरंत ही। तत्क्षण। फौरन। बहुत जल्दी। जैसे,—तुम भटपट आकर बाजार से सीदा ले आओ उ०—राम बुझिठर बिक्रम की तुम भटपट सुरत करो री।—भारतेंदु० ग्रं० भा० १, पृ० ५०३।

भटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भू आँवला।

भटाका—क्रि० वि० [प्रनु०] दे० 'भड़ाका'।

भटापटा^५—संज्ञा स्त्री० [प्रा० भटप्पड = छीना भपटी, (भटप्पिध = छीना हुआ)] हलचल। उत्पात। उपद्रव। उ०—तिहुँ लोक होत भटापटा, अब चार जुगन निवास हो।—कबीर, सा०, पृ० ११।

भटासी—संज्ञा स्त्री० [हि० भड़ी] बीछार।

भटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा पेड़। २. भाड़ी। गुन्म [को०]।

भटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भाटा'।

भटिति^६—क्रि० वि० [सं०] १. भट। चटपट। फौरन। तत्काल। तुरंत। उ०—कटत भटिति पुनि मृतन भए। प्रभु बहु बार बाहु सिर हए।—तुलसी (शब्द०)। २. बिना समझे बूके।

भटोलाई—संज्ञा पुं० [देश०] बहु खाट जिसकी बुनावट टूट टूटकर ढीली हो गई हो। उ०—माटी के कुडिल न्हायो, भटोले सुलायो। फाटी गुदरिया बिछायो, छोरा कहि कहि बोली।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६१७।

भट्ट—क्रि० वि० [प्रनु०] दे० 'भट'। उ०—दुषं तीन धानं हयं-तीहि धानं। वहै वग भट्ट सुदाहिम घट्ट।—पृ० रा०, २४। १७५।

भठ्ठा—क्रि० वि० [हि० भट] शीघ्र। दे० 'भट'। उ०—जद जावे रे जद जावे। भठ सेस गयो समभावे।—रघु० रू०, पृ० १५६।

भड़^७—संज्ञा स्त्री [हि० भड़ना] १. दे० 'भड़ी'। २. ताले के भीतर का छटका जो चाभी के आघात से घटता बढ़ता है।

भड़कना—क्रि० स० [प्रनु०] दे० 'भड़कना'।

भड़क्का—संज्ञा पुं० [प्रनु०] दे० 'भड़ाका'।

भड़भड़ाना—क्रि० स० [प्रनु०] १. दे० 'भड़कना'। दे० 'भँभड़ना'।

भड़न—संज्ञा स्त्री० [हि० भड़ना] १. जो कुछ भड़ के गिरे। भड़ी हुई चीज। २. भड़ने की क्रिया या भाव। ३. लगाए हुए धन का मुनाफा या सूद।—(शब्द०)।

यौ०—भड़नभड़न = दे० 'भरन'।

भङ्गना—क्रि० प्र० [सं० क्षरण या √भृ, अथवा सं० भर ('निर्भर' में प्रयुक्त), प्रा० भङ्ग] किसी चीज से उसके छोटे छोटे अंगों या अंशों का टूट टूटकर गिरना । जैसे, आकाश से तारे भङ्गना, बदन की पूँख भङ्गना, पेड़ में से पत्तियाँ भङ्गना, वर्षा की बूँदें भङ्गना ।

मुहा०—फूल भङ्गना । दे० 'फूल' के मुहावरें ।

२. अधिक मान या मर्यादा में गिरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

३. बीज का पतन होना । (बाजारू) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

४. भाड़ा जाना । साफ किया जाना । ५. वाद्य का बजना । जैसे, नोवत भङ्गना ।

भङ्गप^१—संज्ञा स्त्री [अनु०] १. दो जीवों की परस्पर मुठभेड़ । लड़ाई । २. क्रोध । गुस्सा । ३. आवेश । जोश । ४. धाम की ली । लपट ।

भङ्गप^२—क्रि० वि० [देशी भङ्गप या अनु०] दे० 'भङ्गाका' ।

भङ्गपना—क्रि० प्र० [अनु०] १. आक्रमण करना । हमला करना । बेग से किसी पर गिरना । २. छोप लेना । ३. लड़ना । भगड़ना । उलझ पड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

४. जबरदस्ती किसी से कुल छीन लेना । भटकना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

भङ्गपा—संज्ञा स्त्री [अनु० या देशी भङ्गप] हाथापाई । गुत्यमगुत्या ।

यो०—भङ्गपाभङ्गपी = हाथापाई । कहा सुनी ।

भङ्गपाना—क्रि० सं० [अनु०] दो जीवों विशेषतः पक्षियों को लड़ाना ।—(वद०) ।

भङ्गपी—संज्ञा स्त्री [अनु०] दे० 'भङ्गपा' ।

• **भङ्गवेरी**—संज्ञा स्त्री [हि० भङ्ग + वेर] १. जंगली बेर । २. जंगली बेर का पोषा ।

मुहा०—भङ्गवेरी का काँटा = लड़ने या उलझनेवाला मनुष्य । व्यर्थ भगड़ा करनेवाला मनुष्य ।

भङ्गवेरी^१—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'भङ्गवेरी' ।

भङ्गवाई^१—संज्ञा स्त्री [हि० भङ्ग (= भङ्गी) + सं० वायु, हि० वाह] वह वायु जो भङ्गी लिए हो । तर्पण की भङ्गी से बरी हुई वायु । वह वायु जिसमें वर्षा की कुहारे मिली हो । उ०—धर्त घण ऊर्निम आवियउ भाभी रिठि भङ्गवाई । बग ही भला त बप्पड़ा धरणि न मुक्कड़ पाइ ।—ढोला०, दू० २५७ ।

भङ्गवाई^२—संज्ञा स्त्री [हि० भङ्गना] दे० 'भङ्गाई' ।

भङ्गवाना—क्रि० सं० [हि० भङ्गना का प्रे० रूप] भङ्गने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को भङ्गने में प्रवृत्त करना ।

भङ्गाई—संज्ञा स्त्री [हि० भङ्गना] भङ्गना का भाव । भङ्गने का काम या भङ्गने की मजदूरी ।

भङ्गाक—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'भङ्गाका' ।

भङ्गाका^१—संज्ञा पुं० [अनु०] भङ्गप । दो जीवों की परस्पर मुठभेड़ ।

भङ्गाका^२—क्रि० वि० जल्दी से । शीघ्रतापूर्वक । चटपट ।

भङ्गाभङ्ग—क्रि० वि० [अनु०] १. लगातार । बिना रुके । बराबर । एक के बाद एक । उ०—भर भर तोप भङ्गाभङ्ग मारो ।—कबीर० श०, पृ० ३८ । २. जल्दी जल्दी ।

भङ्गाभङ्गि^१—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'भङ्गाभङ्ग' । उ०—रन में पैठि भङ्गाभङ्गि खेल सन्मुख सस्तर खावे ।—वरण० बानी०, पृ० ८७ ।

भङ्गी—संज्ञा स्त्री [हि० भङ्गना अथवा सं० भर (= भरना) या देशी भङ्गी (= निरंतर वर्षा)] १. लगातार भङ्गने की क्रिया । बूँद या कण के रूप में बराबर गिरने का कार्य या भाव । २. छोटी बूँदों की वर्षा । ३. लगातार वर्षा । बराबर पानी बरसना । ४. बिना रुके हुए लगातार बहुत सी बातें कहते जाना या चीजे रखते, देते अथवा निकालते जाना । जैसे,—उन्होंने बातों (या गालियों) की भङ्गी लगा दी ।

क्रि० प्र०—बँधना ।—बाँधना ।—लगना ।—लगाना ।

५. ताले के भीतर का खटका जो चाबी के आघात से हटता बढ़ता है ।

भणभण, भणभण—संज्ञा स्त्री [सं०] भन् भन् की ध्वनि । भनभन का शब्द (को०) ।

भणत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भनकार' (को०) ।

भन—संज्ञा स्त्री [अनु०] वह शब्द जो किसी धातुखंड आदि पर आघात लगने से होता है । धातु के टुकड़े के बजने की ध्वनि । यौ०—भन भन ।

भनक—संज्ञा स्त्री [अनु०] भनकार का शब्द । भन भन का शब्द जो बहुधा धातु आदि के परस्पर टकराने से होता है । जैसे, हथियारों की भनक, पाजेब की भनक, चूड़ियों की भनक । उ०—ढोल ढनक भाँभ भनक गोमुख सहनाई ।—घनानंद, पृ० ४८६ ।

भनकना—क्रि० प्र० [अनु०] १. भनकार का शब्द करना । २. क्रोध आदि में हाथ पैर पटकना । ३. चिड़चिड़ाना । क्रोध में आकर जोर से बोल उठना । ४. दे० 'भीखना' ।

भनकमनक—संज्ञा स्त्री [अनु०] मंद मंद भनकार जो बहुधा आभूषणों आदि से उत्पन्न होती है । उ०—भनक मनक धुनि होत लगत कानन को प्यारी ।—ब्रत० प्र०, पृ० ११६ ।

भनकवात—संज्ञा स्त्री [अनु० भनक + सं० वात] घोड़ों का एक रोग जिसमें वे अपने पैर को कुछ भटका देकर रखते हैं ।

भनकाना—क्रि० सं० [अनु० भनकना का प्रे० रूप] भनकार उत्पन्न करना । बजाना ।

भनकार—संज्ञा स्त्री [सं० भणत्कार, प्रा० भणवकार] दे० 'भंकार' उ०—घर घर गोपी दही बिलोवहि कर कंकन भनकार ।—सूर (शब्द०) ।

भनकारना^१—क्रि० प्र० [हि० भनकार] दे० 'भंकारना' ।

भनकारना^२—क्रि० सं० दे० 'भंकारना' ।

भनकोर^१—संज्ञा पुं० [हि० भनकार या भकोर] दे० 'भनकार' । उ०—लोका लोके बिजुली चमके भिगुर बोले भनकोर के ।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ३० ।

भनभन—संज्ञा स्त्री० [धनु०] भन भन शब्द । भनकार । भन-
भनाहट ।

भनभना^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक कोड़ा जो तमाखू की नसों में छेद
कर देता है । इसे चनचना भी कहते हैं ।

भनभना^२—वि० [धनु०] जिसमें से भनभन शब्द उत्पन्न हो ।

भनभनाना^१—क्रि० प्र० [धनु०] १. भन भन शब्द होना । २.
(लाक्ष०) भय, सिहरन या हर्ष से रोमांचित होना । किसी
धनुभूति से पुलकित होना । जैसे, न रोएँ भनभनाना ।

भनभनाना—क्रि० स० भनभन शब्द उत्पन्न करना ।

भनभनाहट—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. भनभन शब्द होने की क्रिया
या भाव । भनकार । २. भन भुनी ।

भनभोरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ ।

भनभुत^१—वि० [सं०] दे० 'भनभुत' । उ०—दूध धँतर का सरल,
झमलान, खिल रहा मुखदेश पर युतिमान । किंतु है अब भी
भनभुत तार, बोलते हैं भुष बारंबार ।—साम०, पृ० ४८ ।

भनभन—संज्ञा पुं० [धनु०] भन भन शब्द । भनकार ।

भनभनाना^१—क्रि० प्र० धीर स० [धनु०] दे० 'भनभनाना' ।

भनबाँ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घान ।

भनस—संज्ञा पुं० [देश० ?] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा
जिसपर चमड़ा मड़ा हुआ होता था ।

भनाभन^१—संज्ञा स्त्री० [धनु०] भनकार । भनभन शब्द ।

भनाभन^२—क्रि० वि० भनभन शब्द सहित । इस प्रकार जिसमें भन
भन शब्द हो । जैसे,—भनाभन खाँड़े बजने लगे, भनाभन रुप-
बरसने लगे ।

भनिया—वि० [हि० भनी] दे० 'भनी' । उ०—कनक रतन मनि
जटित कटि किकिन कखित पीत पट भनिया ।—सूर
(शब्द०) ।

भन्नाना—क्रि० प्र० [धनु०] दे० 'भनभनाना' । उ०—मुखर
भन्नाते रहे या मूक हो सब शब्द, पोपले वाचाव ये थोथे
निहोरे ।—हरी घास०, पृ० २१ ।

भन्नाहट—संज्ञा स्त्री० [धनु०] भनकार का शब्द । भनभनाहट ।
उ०—टूटे सार सन्नाह भन्नाहटे सौ । परे छूटि के भूमि
खन्नाहटे सौ ।—सूदन (शब्द०) ।

भप—क्रि० वि० [सं० भप्प (= जल्दी से गिरना, कूटना)] जल्दी से ।
तुरंत । भट । उ०—खेलत खेलत जाइ कदम चढ़ि भप यमुना
जल लीनो । सोवत काला जाइ जगायो फिरि भारत हरि
कीनो ।—सूर (शब्द०) ।

भौं—भप भप । भपाभप ।

मुहा०—भप खाना = (१) पतंग का जल्दी से पेंदी से बल गिर
पड़ना । (२) भप खाना । भपना ।

भपक—संज्ञा स्त्री [हि० भपकना] १. उतना समय जितना पलक
गिरने में लगता है । बहुत थोड़ा समय । २. पलकों का परस्पर
मिलना । पलक का गिरना । ३. हलकी नींद । भपकी । ४.
लज्जा । शर्म । हुया । भप ।

भपकना—क्रि० प्र० [सं० भप्प (= जोर से पड़ना, कूटना)] १.

२. पलक गिराना । पलकों का परस्पर मिलना । भपकी
लेना । ऊँचना ।—(कव०) । ३. तेजी से भागे बढ़ना ।
भपटना । ४. ढकेलना । ५. भपना । शरमिदा होना । उ०—
तभी, देवि, क्यों सहसा दीख, भपक, छिप जाता तेरा स्मित
मुख, कविता की सजीव रेखा भी मानस पट पर घिर जाती
है ।—इत्यलम्, पृ० १८ । ६. डरना । सहम जाना । उ०—
कहु देत भपकी भपकि भपकहु देत खाली दाऊं ।—रघुराज
(शब्द०) ।

भपका—संज्ञा पुं० [धनु०] हवा का भोका ।—(लक्ष०) ।

भपकाना—क्रि० स० [धनु०] पलको को बार बार बंद करना ।
जैसे, छाँख भपकाना ।

भपकारी—वि० स्त्री [हि० भपक + घारी (प्रत्य०)] १. निंदियारी ।
भपकानेवाली । २. हयादार । लज्जा से झुकनेवाली । उ०—
कारी भपकारी धनियारी बहनी सघन सुहाई ।—मारतेंदु
ग्रं०, भा० २, पृ० ४१४ ।

भपकी—संज्ञा स्त्री [धनु०] १. हलकी नींद । थोड़ी निद्रा । उँचाई ।
ऊँच । जैसे,—जरा भपकी ले लें तो चले ।

क्रि० प्र०—भपना ।—लगना ।—लेना ।

२. छाँख भपकने की क्रिया । ३. वह कपड़ा जिसमें घनाज घोसाने
या बरमाने में हवा देते हैं । बेंबरा । ४. घोषा । चकमा ।
बहकाना । उ०—कहुँ देत भपकी भपकि भपकहुँ देत खाली
दाऊं । बढ़ि जात कहुँ द्रुत बगल हैं बलगत दक्षिण पाउँ ।—
रघुराज (शब्द०) ।

भपको^१—संज्ञा पुं० [हि० भपका] हवा का भोका । उ०—दीपक
बरत बिबेक की ती ली या चित माहि । जो लौं नारि कटाक्ष
पट भपको लागत नाहि ।—रज० ग्रं०, पृ० ८८ ।

भपकोहीँ, भपकोहीँ^१—वि० [हि० भपका] [वि० स्त्री० भपकीहीँ]
१. नींद से भरा हुआ (चेष्ट) । जिसमें भपकी आ रही हो
(बहुँ छाँख) । भपकता हुआ । उ०—(क) भपकीहैं पलनि
पिया के पीक लीक लखि भुकि भहराई न नेकु यनुरागी ख्यो ।
—पद्माकर (शब्द०) । (ख) भुकि भुकि भपकीहैं पलनु फिरि
फिरि जुरि, जमुहाइ । बीड़ पद्मागम नीद मिमि दी सब झली
उठाय ।—बिहारी र०, दो० ५८६ । २. मस्त । नशे में तूर ।
मतवाला । नशे में भरा हुआ । उ०—मसि घंश लहरी चहुँपा
पूरी जोति समूरी माल लगे । इगदुनि भपकीहीँ ग्राहि बढ़ीहीँ
नाक चढ़ीहीँ अधर टँसी ।—सूदन (शब्द०) ।

भपट—संज्ञा स्त्री [सं० भप्प (= कूटना)] भपटने की क्रिया या भाव ।
उ०—(क) देखि महीप सकल मुकुवाने । बाज भपट जनु लवा
लुकाने ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मब पँछो जब लग उड़े
विषय वासना माहि । जान बाज की भपट से तब लगि आया
नाहि ।—कबीर (शब्द०) ।

यौ०—लपट भपट = लपटने या भपटने की क्रिया या भाव ।
उ०—लपट भपट भहगने हहराने जात भहगने मट परधो
प्रबल परावनो ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—भपट लेना = बहुत तेजी से बढ़कर छीनना ।

भपटना—क्रि० घ० [सं० भप (= बधना)] १. किसी (वस्तु या व्यक्ति) की ओर भौक के साथ बढ़ना । वेग से किसी की ओर चलना । २. पकड़ने या आक्रमण करने के लिये वेग से बढ़ना । दूटना । भावा करना ।

मुहा०—किसी पर भपटना = किसी पर आक्रमण करना । जैसे, बिल्ली का बूढ़े पर भपटना ।

भपटना—क्रि० सं० बहुत तेजी से बढ़कर कोई चीज ले लेना । भपटकर कोई चीज पकड़ या छीन लेना । —जैसे, तोते को बिल्ली भपट ले गई ।

संयो० क्रि०—लेना ।

भपटाना—संज्ञा स्त्री० [हि० भपटना] भपटने का क्रिया ।

भपटाना—क्रि० सं० [हि० भपटना का प्रेरक] धावा कराना । आक्रमण कराना । हमला कराना । इशियालक देना । वार कराना । लड़ने को उभारना । उसकाना । बढ़ावा देना । किसी को भपटने में प्रवृत्त करना ।

भपट्टा—संज्ञा स्त्री० [हि० भपटना] दे० 'भपट' ।

क्रि० प्र०—मारना ।

यौ०—भपट्टामार = भपट्टा मारनेवाला । भपटनेवाला ।

भपताल—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत में एक ताल जो पाँच मात्राओं का होता है और जिसमें चार पूर्ण और दो अर्ध होती हैं । इसमें तीन बाधात और एक खाली रहता है । इसका मृदंग का बोल यह है—

+ १ २ • +

धाग, धागे, ने, तटे, धागे, ने धा । और इसका तबले का बोल यह है—धिन धा, धिन धिन धा, देत, ता तिन तिन ता । धा⁺ ।

भपना—संज्ञा स्त्री० [हि०] भपने या मुदनेवाली वस्तु । पलक । उ०—अगमपुरी की सँकरी गलियाँ भपबड़ हैं चलना । ठोकर लगी गुर जान शब्द की उपर गए भपना ।—कबीर० श० भा० १, पृ० ६७ ।

भपना—क्रि० घ० [अनु०] १. (पलकों का) गिरना । (पलकों का) बंद होना । २. (भाले) भपकना या बंद होना । भुकना । ३. लज्जित होना । भपना । भिपना ।

भपनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ठकना । वह जिससे कोई चीज ढकी जाय । २. पिठारी ।

भपलैया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भपोला' । उ०—अस कहि भपलैया बिलरायो । शिलपिल्ले को दरस करायो ।—रघुराज (शब्द०) ।

भपवाना—क्रि० सं० [अनु०] भपाना का प्रेरणायक रूप । किसी को भपाने में प्रवृत्त करना ।

भपस—संज्ञा स्त्री० [हि० भपसना] १. गुंजान होने की क्रिया या भाव । २. कहरों की परिभाषा में पेड़ की भुकी हुई डाल ।

बिरोध—इसका व्यवहार पिछले कहर को आगे पेड़ की डाल होने की सूचना देने के लिये पहला कहर करता है ।

भपसट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. घोखा । बससट । कपट । २. एक गाली ।

भपसना—क्रि० घ० [हि० भपना (= ठकना)] लता या पेड़ की डालियों का खूब घना होकर फैलना । पेड़ या लता आदि का गुंजान होना । जैसे,—यह लता खूब भपसी हुई है ।

भपाक—क्रि० वि० [हि० भप] पलक भाँजते । चटपट । उ०—भकोरि भपाक भपटि नर समय गँवाई । नहि समुझत निज मूल ग्रंथ हँ दृष्टि छिपाई ।—मीरा श०, पृ० ५७ ।

भपाका—संज्ञा पुं० [हि० भप] शीघ्रता । जल्दी ।

भपाका—क्रि० वि० जल्दी से । शीघ्रतापूर्वक ।

भपाटा—क्रि० वि० [हि० भप] भपट । तुरंत । शीघ्र ही ।

भपाटा—संज्ञा पुं० [हि० भपट] चपेट । आक्रमण । दे० 'भपट' ।

भपाटा—क्रि० वि० [हि० भपाट] शीघ्र । भपट ।

भपाना—क्रि० सं० [हि० भपाना] १. भपने का सकर्मक रूप । मुँदना या बंद करना (विशेषतः घाँसों या पलकों का) । २. भुकावा । ३. दे० 'भिपाना' ।

भपाव—संज्ञा पुं० [देश०] घास काटने का एक प्रकार का औजार ।

भपावना—क्रि० सं० [हि० भपावना] छिपाना । गोपन करना । उ०—बदन भपावए भलकत भार, चाँदमडल जनि मिलए ग्रंधार ।—विद्यापति, पृ० ३४० ।

भपित—क्रि० वि० [हि० भपना] १. भपा हुआ । मुँदा हुआ । २. जिसमें नींद मरी हो । भपकोड़ा या उनीदा (नेत्र) । ३. सज्जित । लज्जायुक्त । लजालू । उ०—कवि पदमाकर छकित भपित भपि रहत हगवच ।—पदमाकर (शब्द०) ।

भपिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. गले में पहनने का एक प्रकार का गहना ।

विशेष—यह गहना हँसुली की तरह का बना होता है और इसके सोने या चाँदी के बीच में एक झकीक जड़ा रहता है । यह गहना प्रायः डोम जाति की स्त्रियाँ पहनती हैं ।

२. पेठारी । पच्छी ।

भपेट—संज्ञा स्त्री० [हि० भपट] दे० 'भपट' ।

भपेटना—क्रि० सं० [अनु०] आक्रमण करके दबा लेना । चपेटना । दबोचना । छाप लेना । उ०—सहमि सुखात बात जात की सुरति करि लवा ज्यों लुकात तुलसी भपेटे बाज के ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १८३ ।

भपेटा—संज्ञा पुं० [अनु०] १. चपेट । भपट । आक्रमण । २. सूत-प्रेतादि कृत भाषा या आक्रमण । ३. हवा का झोंका । भकोरा ।—(लश०) ।

भपोला—संज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० भपला० भपोली] दे० 'भपोला' ।

भपोली—संज्ञा स्त्री० [हि०] भपोला का भपलायक । छोटा भपोला या भावा । भपोली ।

भपपड़—संज्ञा पुं० [अनु०] भपड़ । थपड़ ।

भपपरा—संज्ञा पुं० [अनु०] १. दे० 'भपपड़' । २. मार । चोट । उ०—दीनो मुहीम को भार बहादुर ढागो सहे क्यों समंद को भपपर ।—भूषण ग्रं० पृ० ७१ ।

अप्यन—संज्ञा पुं० [हि० अप्यन] अप्यन नाम की एक प्रकार की पहली सवारी जिसे चार आदमी उठाकर ले चलते हैं ।

अप्यनी—संज्ञा पुं० [हि० अप्यन] अप्यन उठानेवाला कहार या मजदूर ।

अपक—संज्ञा स्त्री० [हि० अपक] दे० 'अपकी' ।

अपकी^(५)—क्रि० वि० [हि० अपक] अपकी में हो । उ०—सांभल राजा बोल्या रे धवधू सुणै अनोपम बाणी जी । निरगुण नारी सूनै करंता अपकै रेणु बिहाणी जी ।—गोरख०, पृ० १५३ ।

अपकना^(५)—क्रि० प्र० [अनु०] अपक अपक करना । ज्योति सी उठना । दीप्त होना । चमकना । उ०—काया अपकइ कनक जिम, सुंदर केहैं सुख । तेह सुरंगा किम हुवइ, जिए देहा बहु दुख ।—ढोला०, पृ० ५४६ ।

अपकनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कान में पहनने का एक प्रकार का तिकोना पत्ते के आकार का पहना ।

अपड़ा—वि० [अनु०] दे० 'अपरा' ।

अपधरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो गेहूँ को हानि पहुंचाती है ।

अपदका^(५)—संज्ञा पुं० [अनु०] जलते हुए दोपक में मोटी बत्ती । उ०—कसतूरी मरदन कीयो अपदक दीप ले गहरी बाट ।—बी० रासो, पृ० ६८ ।

अपरा^(५)—वि० [अनु०] वि० स्त्री० अपरी] चारों तरफ बिलखे धीरे धीमे हुए बड़े बड़े वालोंवाला । जिसके बहुत लंबे लंबे बिलखे हुए बाल हों । जैसे, अपरा कुत्ता । उ०—कलुषा कबरा मोतिया अपरा बुचवा मोहि डेरवावे ।—मलुक० बानी, पृ० २५ ।

अपरा^(५)—संज्ञा पुं० कलंदरों की भाषा में नर भालू ।

अपरीक्षा—वि० [हि० अपरा + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० अपरीली] कुछ बढ़ा, चारों तरफ बिलखा धीरे धीमा हुआ (बाल) ।

अपरीरा^(५)—[हि० अपरा + ऐरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० अपरीरी] दे० 'अपरीला' । उ०—कुंतल कुटिल छवि राजत अपरीरी । लोचन चपल तारे चरित अपरीरी ।—सूर (शब्द०) ।

अपरा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'अपरा' । उ०—(क) सीस फूल धरि पाटी पोखत फूँवनि अपरा विहारत । वदन विव जराइ की बेसी तापर बने सुधारत ।—सूर (शब्द०) । (ख) छहरै सिर पै छवि मोर पखा उवकी बब के मुकता यहरे । फहरै पियरो पठ वेनी इतै उनकी जुनरी के अपरा महरै ।—बेवी कवि (शब्द०) ।

अपरा^(५)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] टंटा । बसेड़ा । अनड़ा । उ०—धरि बयन सखह रघुकुल कुमार । तजि हेतु धीरे अप की अपरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

अपरा^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अपरा' । उ०—(क) बड़े घर की बहू बेटी करति कृपा अपरा । सूर अपनों संश पावे जाहि घर अपल मारि ।—सूर (शब्द०) । (ख) बहुत मचगरी जिन करी अपहरे तजौ अपरा । पकरि कंस से बाइगो कासिहि

सूर अपारि ।—सूर (शब्द०) । (ग) यह अपरो बगरो अप रोधत हरिपद प्रति अनुरागा । ताते सज्जन रसिक शिरोमणि यह अपारि सब त्यागा ।—रघुराज (शब्द०) ।

अपिया^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० अप्या का स्त्री० प्रत्य०] १. छोटा अप्या छोटा फुँवना । २. सोने या चांदी आदि की बनी हुई बहुत ही छोटी कटोरी जो बाजूबंद, जोशन, हुमेल, आदि गहनों में सूत या रेशम में पिरोकर गूँथी जाती है । उ०—मवनासुर ती तिनऊ पर श्याम हुमेलन की अपके अपिया ।—खाल कवि (शब्द०) ।

अपिया^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० अप्या का स्त्री० प्रत्य०] । वह अप्या जो आकार में छोटा हो ।

अप्यो—संज्ञा स्त्री० [हि० अप्या का स्त्री० प्रत्य०] दे० 'अप्या' । उ०—अप्यो जराऊ जोरि, धमिल गूँथननि सवारी ।—तंद० प्र०, पृ० ३८६ ।

अप्यो^(५)—वि० [अनु०] दे० 'अपरा' ।

अप्यकड़ा^(५)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] [अन्य रूप—अप्यकड़ा, अप्यकड़ा] चमका जगमगाहट । उ०—(क) ऊँच उ मंदिर आति घणाउ आति सुहावा कन । बीजलि लियइ अप्यकड़ा सिहरौ अलि लागत ।—ढोला०, पृ० २६८ । (ख) बीज न देख चहुँडियाँ, प्री परदेश गयाइ । आपण लीय अप्यकड़ा अलि लागी सहराइ ।—ढोला०, पृ० १५२ ।

अप्यकना^(५)—क्रि० प्र० [अनु०] १. चमकना । जगमगाना । दीप्त होना । ज्योति होना । उ०—(क) मंदिर मीहि अप्यकती दीवा कैपी जोति । हंस बटाऊ अलि गया काढ़ी घर की जोति ।—कबीर प्र०, पृ० ७३ । (ख) अप्यक उड़े यों अप्यक फुलंगा । मनो अग्नि बेताल नचै खुलंगा ।—सूदन (शब्द०) । २. अप्यकना ।

अप्या—संज्ञा पुं० [अनु०] १. एक ही में बंधे हुए रेशम या सूत आदि के बहुत से तारों का गुच्छा जो कपड़ों या गहनों आदि में शोभा बढ़ाने के लिये सटकाया जाता है । जैसे, पगड़ी का अप्या । २. एक में लगी गूँथी या बँधी हुई छोटी छोटी बीजों का समूह । गुच्छा । जैसे, तालियों का अप्या धुंधुधुंधों का अप्या । उ०—अप्या से बहु छोटे बट्टए मूलत सुंदर ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १२ ।

अप्यकना^(५)—क्रि० प्र० [अनु०] अप्य अप्य की ध्वनि होना । अंकार होना । उ०—अप्य सहस्र नाड़ी पवन चलैगा, कोटि अप्यके नाद । बहुतारि चंदा बाई सोप्या किरण प्रगटी अप आब ।—गोरख०, पृ० १९ ।

अप्यकार^(५)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] अप्य अप्य की ध्वनि । अंकार । उ०—तमते तमते तम तेज सारे । अप्ये अप्ये अप्यकार अपरे ।—पृ० रा०, १२ । ८१ ।

अप्यक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. चमक का अनुकरण । २. प्रकाश । उज्ज्वल । ३. अप्य अप्य शब्द । उ०—पण जेहुरि बिछियन की अप्यकनि चलत परस्पर बाजत । सूर श्याम सुख जोरो

भरि कंचन छवि लावत ।—सूर (शब्द०) ४. ठसक या नखरे की चाल ।

भमकड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० भमक + ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'भमक' ।
उ०—मिरबा साहब—एक भमकड़ा नजर आया ।—
फिसाना०, भा० ३, पृ० ८ ।

भमकड़ा^२—वि० भनभनानेवाले । भमभम शब्द करनेवाले । उ०—
बड़े बड़े कच छुटि पड़े उमड़े नैन बिसाल । कड़े भमकड़े ही
गड़े घड़े खड़े नंदलाल ।—स० सप्तक, पृ० २५१ ।

भमकना—क्रि० प्र० [हि० भमक] १. प्रकाश की किरणें फैकना ।
रह रहकर चमकना । दमकना । प्रकाश करना । प्रज्वलित
होना । २. भपकना । छाना । छा जाना । उ०—घालस सों
कर कोर उठावत नैननि नींद भमकि रहि बारी । दोउ
माता निरखत घालस मुख छवि पर तन मन डारति
वारी ।—सूर०, १०।१२८ । ३. भम भम शब्द होना ।
भनकार की ध्वनि होना । उ०—भूमि भूमि भुकि भुकि
भमकि भमकि घाली रिमभिम रिमभिम घसाइ बरसतु
है ।—ठाकुर, पृ० १६ । ४. भम भम करते हुए उछलना
कूदना । गहनों की भनकार के साथ हिलना डोलना । उ०—
(क) कबट्टक निकट देखि बर्षा ऋतु भूलत सुरेंग हिडोरे ।
रमकत भमकत जगक सुता सेंग हाव भाव चित चोरे ।—सूर
(शब्द०) । (ख) ज्यो ज्यो भावति निकट निसि रयो त्यों
खरी उताल । भमकि भमकि टहलै करै लखी रहचठै बाल ।—
बिहारी २०, दो० ५४३ । ५. गहनों की भनकार करते हुए
नाचना । १. लड़ाई में हथियारों का चमकना घोर खनकना ।
उ०—मल्ल लगे चमकन लग लगे भमकन सूल लगे दमकन
तेग लगे छहरान ।—गोपाल (शब्द०) । ७. धकड़ दिख-
लाना । तेजी दिखाना । भौंक दिखाना । ८. भम भम शब्द
करना । बजने का सा शब्द करना । उ०—तैसिये नन्हों बूंदनि
बरसतु भमकि भमकि भकोर ।—सूर (शब्द०) ।

भमकना^२—क्रि० स० [हि० भमकना का स० रूप] १. चमकाना ।
बार बार हिलाकर चमक पैदा करना । २. चलने में घामूषण
आदि बजाना घोर चमकाना । उ०—सहज सिंगार उठत
जोवन तन बिधि निज हाथ बनाई । सूर स्याम आए दिन
आपुन घट भरि चलि भमकाई ।—सूर०, १०।१४७ ।
३. युद्ध में हथियारों आदि का चमकाना घोर खनकाना ।

भमकारा—वि० [हि० भम भम] [वि० जी० भमकारी] भमाभम
बरसनेवाला (बादल) । उ०—सोखे सिधु सिधुर से बंधुर थ्यों
बिध्य गंधमादन के बंधु गरज गुरबानि के । भमकारे भूमत
गगन घने धूमत पुकारे मुख भूमत पपीहा मोरान के ।—
देव (शब्द०) ।

भमभम^१—संज्ञा जी० [प्रनु०] १. भम भम शब्द जो बहुधा घुंघुक्कों
आदि के बजने से उत्पन्न होता है । छम छम । २. पानी बरसने
का शब्द । ३. चमक दमक ।

भमभम^२—वि० जिसमें से खूब चमक या घामा निकले । चमकता
हुआ ।

भमभम^३—क्रि० वि० १. भम भम शब्द के साथ । जैसे, घुंघुक्कों का

भमभम बोलना, पानी का भमभम बरसना । २. चमक दमक
के साथ । भमाभम ।

भमभमाना^१—[क्रि० प्र०] १. भम भम शब्द होना । २. चमकमाना ।
चमकना । ३. (लाछ०) भनभनाना । 'पुलकित' होना ।
रोमांचित होना । उ०—एक विचित्र अनुभूति से मिस मेहता
की त्वचा भमभमा उठी ।—पिजरे०, पृ० ५५ ।

क्रि० प्र०—उठना ।

भमभमाना^२—क्रि० स० १. भमभम शब्द उत्पन्न करना । २.
चमकाना ।

भमभमाहट—संज्ञा जी० [प्रनु०] १. भमभम शब्द होने की क्रिया
या भाव । २. चमकने की क्रिया या भाव ।

भमना—क्रि० प्र० [प्रनु०] नम्र होना । झुकना । दबना । उ०—
मुरली श्याम के कर अधर बिबं रमी । लेति सरबस जुवतिजन
को मदन विवित प्रमी । महा कठिन कठोर घाली बाँध बंस
जमी । सूर पुरन परसि श्रीमुख नैकु नाहि भमी ।—
सूर०, १०।१२२८ ।

भमा^१—संज्ञा पुं० [सं० भामक] दे० 'भवा' या 'भावा' ।

भमाका^१—संज्ञा पुं० [प्रनु०] १. भम भम शब्द । पानी बरसने या
गहनों के बजने आदि का शब्द । २. ठसक । मटक । खल्ला ।

भमाभम—क्रि० वि० [प्रनु०] उज्ज्वल कान्ति के सहित । दयक
के साथ । जैसे, सलमे सितारे टँके हुए कपड़ों का भमाभम
चमकना । २. भमभम शब्द सहित । जैसे, पाजेब का भमाभम
बोलना, पानी का भमाभम बरसना ।

भमाट—संज्ञा पुं० [प्रनु०] झुरमुट । उ०—पर्वत के सिर पर क्या
देखाता है कि बहुत से सूखे भाइयों के भमाट से बड़ा घटाटोप
धूम निकल रहा है ।—व्यास (शब्द०) ।

भमाना^१—क्रि० प्र० [प्रनु०] भपकना । छाना । घिरना । उ०—
(क) खेखत तुम निसि अधिक गई सुत नैननि नींद भमाई ।
बदन जँभात घंग ऐकावत जननि पलोतत पाई ।—सूर
(शब्द०) । (ख) रयो पदमाकर भोरि भमाई सुदौरी सबै हरि
ऐ इक दाऊ ।—पद्याकर (शब्द०) ।

भमाना^२—क्रि० प्र० [हि० भाँवा या भमा + ना (प्रत्य०)] दे०
'भँवाना' ।

भमाना^३—क्रि० स० [हि० जमाना ? अथवा प्रनु० भमाट] इकट्ठा
करना । एकत्र करना ।

भमारना^१—क्रि० स० [हि० भँवाना का प्रे० रूप] भाँवना करना ।
भाँवा की तरह कर देना कुछ कुछ श्याम वर्ण का कर देना ।
उ०—दोहन करत बजमोहन मनोरथनि, धानंद को घन रंग
भलनि भमारई ।—घनानंद, पृ० २०४ ।

भमाल^१—संज्ञा पुं० [देशी] इद्रजाल । माया [की०] ।

भमाल^२—संज्ञा पुं० [डि०] एक प्रकार का डिगल गीत । उ०—दूहै
पर चंद्रायणो, घरे डलाखो घार । गीताँ रूप भमाल गुण,
वरण मंछ विचार ।—रघु० ६०, पृ० ६२ ।

भमूरा—संज्ञा पुं० [हि० भवरा या भमाट ?] १. घने बालोंवाला
पशु । जैसे, रीछ, ऊँहा कुत्ता आदि । २. वह लड़का जो
बाजीगर के साथ रहता है और बहुत से खेलों में बाजीगर

को सहायता देता है। ३. वह बच्चा जो ठोले ढाले कपड़े पहनता हो। ४. कोई प्यारा बच्चा।

भरमेला—संज्ञा स्त्री० [हि० भरमेला] दे० 'भरमेला'।

भरमेला—संज्ञा पुं० [धनु० भाव भर] १. बखेड़ा। भ्रमण। भ्रमण। टंटा। २. लोगों का झुंड। भीड़। उ०—शत्रुन के भरमेला बीर पाय बाल ठेला प्राण त्यागि अलबेला तन सहै काम चेला सो।—गोपाल (शब्द०)।

भरमेला—संज्ञा पुं० [हि० भरमेला + हया (प्रत्य०)] भरमेला करनेवाला। भ्रमणालू। बखेड़िया।

भर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी गिरने का स्थान। निर्भर। २. भरना। सोता। चश्मा। पर्वत से निकलता हुआ जलप्रवाह। ३. समूह। झुंड। ४. तेजी। वेग। उ०—प्रातः गई नीके उठि ते घर। मैं बरजी कहाँ जाति री प्यारी तब स्त्रीभी रिस भर ते।—सूर (शब्द०)। ५. झड़ी। लगातार वृष्टि। ६. किसी वस्तु की लगातार वर्षा। उ०—(क) वर्षत अस्त्र कवच धर फूटे। मघा मेघ मानो भर जुटे।—लाल (शब्द०)। (ख) पावक भर ते मेह भर दाहक दुसह बिसेखि। दहै देह बाके परस याहि दगन की देखि।—बिहारी (शब्द०)। (ग) सूरदास तबही तम नासे जान अगिन भर फूटे।—सूर (शब्द०)। ७. घाँच। ताप। लपट। ज्वाला। झाल। उ०—(क) श्याम अंकुश भरि लीन्हीं विरह अगिन भर तुरत बुझानी।—सूर (शब्द०)। (ख) श्याम गुणराशि मानिनि मनाई। रह्यो रस परस्पर मिटयो तनु विरह भर भरी आनंद प्रिय उर न माई।—सूर (शब्द०)। (ग) सटपटाति सी ससिमुखी मुख झूँघट पट ढाँकि। पावक भर सी अमक के गई अरोखे भाँकि।—बिहारी (शब्द०)। (घ) नेकु न भुरसी विरह भर नेह लता कुंभलाति। नित नित होत हरी हरी खरी झालरति जाति।—बिहारी (शब्द०)। ८. ताले का खटका। ताले की भीतर की कख। ताले का कुत्ता।

भरका—संज्ञा स्त्री० [हि० भरका] दे० 'भरका'।

भरकना—क्रि० प्र० [हि०] १. दे० 'भरकना'। उ०—सरल विसाल विराजही विद्रुम खंभ सुजोर। चार पाटियनि पुरट की भरकत भरकत भोर।—तुलसी (शब्द०)। २. दे० भरकना। उ०—रोवति देखि जननि अकुलाती लियो तुरत नौवा को भरकी।—सूर (शब्द०)।

भरकना—क्रि० प्र० [हि० भरकना] दे० 'भरकना'। उ०—हंसत दसन अस्त्र चमके पाहन उठे भरकिक। दारिद्र्य सरि जो न कै सका फाटेठ हिया दरकिक।—जायसी ग्रं०, पृ० ७४।

भरकना—क्रि० प्र० [सं० भर (= पानी का बहना)] धीरे धीरे बहना। भर भर शब्द करते चलना। उ०—पौन भरकके हिय हरख लागे सियरि बतास।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५०।

भरकाना—क्रि० प्र० [सं० भर (= समूह, झुंड)] एकत्र होना। झुंड में आ जाना। उ०—इत चौका यहँ अस्त्र ओ भाई। बहु बिउंटी बूझै भरकाई।—कबीर सा०, पृ० ४०९।

भरभर—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. जल के बहने, बरसने या हवा के चलने आदि का शब्द। २. किसी प्रकार से उत्पन्न भर भर शब्द।

भरभराना—क्रि० प्र० [धनु०] किसी बर्तन में से किसी वस्तु को इस प्रकार भाँककर गिरा देना कि उस वस्तु के गिरने से भरभर शब्द हो।

भरभराना—क्रि० प्र० भरहरा उठना। काँप उठना। कंपित होना। उ०—भरभराति भरहराति लपट अति, देखियत नहीं उबार।—सूर०, १०।५६३।

भरन—संज्ञा स्त्री० [हि० भरना] १. भरने की क्रिया। २. वह जो कुछ भरकर निकला हो। वह जो भरा हो। ३. दे० 'भरना'।

भरना—क्रि० प्र० [सं० भरण] १. भरना। २. किसी ऊँचे स्थान से जल की धारा का गिरना। ऊँची जगह से सोते का गिरना। जैसे,—पहाड़ों में भरने भर रहे थे। उ०—नंद नंदन के बिलुटे बखियाँ उपमा जोग नहीं। भरना लों ये भरत रैन बिन उपमा सकल नहीं। सूरदास आसा मिलिबे की अब घट साँस रही।—सूर (शब्द०)। १. बीर्य का पतन होना। बीर्य स्थलित होना।—(बाजारू)। ४. बजना। झड़ना। जैसे, नौबत भरना।

विशेष—(१) दे० 'भरना'।

विशेष—(२) इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग उस पदार्थ के लिये भी होता है जिसमें से कोई चीज भरती है।

भरना—संज्ञा पुं० [सं० भर] ऊँचे स्थान से गिरनेवाला जलप्रवाह। पानी का वह झोत जो ऊपर से गिरता हो। सोता। चश्मा। जैसे, उस पहाड़ पर कई भरने हैं।

भरना—[सं० भरण] [स्त्री० भरणा] १. लोहे या पीतल आदि की बनी हुई एक प्रकार की छलनी जिसमें लंबे लंबे छेद होते हैं और जिसमें रखकर समूचा अनाज छाना जाता है। २. खंजी की वह करछी या चम्मच जिसका प्रयोग भाग छोटे तवे का सा होता है और जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं। पोना।

विशेष—इससे खुले घी या तेल आदि में तली जानेवाली चीजों को उलटते पलटते, बाहर निकालते अथवा इसी प्रकार का कोई और काम लेते हैं। भरने पर जो चीज ले ली जाती है उसपर का फालतू घी या तेल उसके छेदों से नीचे गिर जाता है और तब वह चीज निकाल ली जाती है।

२. पशुओं के खाने की एक प्रकार की घास जो कई वर्षों तक रखी जा सकती है।

भरना—वि० [वि० स्त्री० भरनी] १. भरनेवाला। जो भरता हो। जिसमें से कोई पदार्थ भरता हो।

भरनाहट—संज्ञा स्त्री० [धनु०] भरभनाहट। उ०—भाँकर भरनाहट पर जेहर का झनका था।—नट०, पृ० १११।

भरनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भरन'। उ०—सूर बजत मानि पृथ से अघीन होत मीन होत चरणावृत भरनि को।—चरण (शब्द०)।

भरनी—वि० [हि० भरना का स्त्री० भरणा] भरनेवाली। दे०

‘भरना’ । उ०—भरनी सुरस बिंदु भरनी मुकुंद ल की भरनी सुफल रूप जेत कर्म काल की । भरनी सुधरनी उधरनी भर बानी बाव पात तम तरनी भगति नवलाल की ।—गोपाल (शब्द०) ।

भरपा^५—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. भोंका । भकोर । उ०—बंभु कीए मधुप मबंध कीए पुरजन सुमोहो मन गंधी की सुगंध भरपन सी—देव (शब्द०) । २. वेग । तेजी । उ०—धेरि धेरि धहर धन धाए धोर तापे महा मास्त भकोरत भरप सों ।—कमलापति (शब्द०) । ३. किसी चीज को गिरने से बचाने के लिये लगाया हुआ सहारा । बाँड़ । टेक । ४. चिक । चिल-मन । चिलवन । परदा । उ०—(क) तासन की गिलमें गलीबा मलतूलन के भरपे अमाऊ रही भूमि रंग द्वारी में ।—पद्माकर (शब्द०) । (ल) भाके भुकी युवती ते भरोखन भुंढनि ते भरपे कर टारी ।—रघुराज (शब्द०) । ५. दे० ‘भड़प’ ।

भरपना^५—क्रि० प्र० [धनु०] १. भोंका देना । बौछार मारना । उ०—वर्षत गिरि भरपत ब्रज ऊपर । सो जल जँह तँह पुरन भू पर ।—सूर (शब्द०) । २. दे० ‘भड़पना’—१ । ३. दे० ‘भड़पना’—३ । उ०—एते पर कबहू जब आवत भरपत सरत घनेरो ।—सूर (शब्द०) ।

भरपेटा^५—संज्ञा पुं० [धनु०] दे० ‘भपट’ ।

भरफ—संज्ञा स्त्री० [धनु०] चिलमन । परदा । भरप ।

भरबेरी^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० ‘भड़बेरी’ ।

भरबेरी^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० ‘भड़बेरी’ । उ०—महके कटहल, मुकुलित जामुन, जगल में भरबेरी भूमी ।—ग्राम्या, पृ० ३६ ।

भरबेरी^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० ‘भड़बेरी’ ।

भरर^५—संज्ञा पुं० [सं०] भाड़ देनेवाला । स्थान भाड़नेवाला ।

विशेष—कैटिल्य ने लिखा है कि भाड़ू देनेवाले को जब कोई पड़ी हुई चीज मिलती थी तो उसका ३ भाग चंद्रगुप्त का राज्य लेता था और २ भाग उसको मिलता था ।

भरवाना^५—क्रि० सं० [हि०] भरना का प्रे० रूप] १. भरने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को भरने में प्रवृत्त करना । २. दे० ‘भड़वाना’ ।

भरसना^५—क्रि० प्र० [धनु०] १. दे० ‘भुलसना’ । २. सुखना । मुरभाना । कुम्हलाना ।

भरसना^५—क्रि० सं० १. दे० ‘भुलसना’ । २. सुखाना । मुरभा देना । उ०—विषय विकार को जवास भरस्यो करे ।—प्रेम-घन०, भा० १ पृ० २०१ ।

भरहरना^५—क्रि० प्र० [धनु०] भर भर शब्द करना । उ०—अजहँ वेति मूढ़ चहुँ दिसि ते उपजी काल भगिनि भर भरहरि । सूर काल बल ब्याल प्रसत है श्रीपति सरन परति किन फरहरि ।—सूर०, १।३१२ ।

भरहरा^५—वि० [हि०] भँभरा [वि० स्त्री० भरहरी] दे० ‘भँभरा’ । उ०—भुकि भुकि भूमि भूमि मिल मिल केस केस भरहरी भूपन में भूमकि भूमकि उठे ।—पद्माकर (शब्द०) ।

भरहराना^५—क्रि० प्र० [धनु०] पत्तों का वायु या वर्षा के कारण शब्द करना या शब्द करते हुए गिरना । हुवा के भोंके से पत्तों का शब्द करना अथवा शब्द सहित गिरना । उ०—भरहरात बनपात, गिरत तरु, बरनि तराकि तराकि सुनाई । जस बरषत गिरिवर तर बाँचे अब कैसे गिरि होत सहाई ।—सूर०, १०।५६४ ।

भरहराना^५—क्रि० सं० १. भरभर शब्द सहित किसी चीज को, विशेषतः पेड़ों के पत्तों को, गिराना । पेड़ की डाल हिलाना । २. भटकना । झाड़ना ।

भरहिल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की विड़ियाँ ।

भर्रा^५—संज्ञा पुं० [हि०] भरना । नष्ट होना । बेकार होना ।

भर्रा^५—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान, जो पानी भरे हुए खेतों में उत्पन्न होता है ।

भर्रा^५—संज्ञा स्त्री० [सं०] भरना । स्रोत । सोता [को०] ।

भर्राभर—क्रि० वि० [धनु०] १. भरभर शब्द सहित । २. लगातार । बराबर । ३. वेग सहित । उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी दोउ मिलि सरत भर्राभरि ।—हरिदास (शब्द०) ।

भर्रापना^५—क्रि० प्र० [हि०] भरपट । हल्ला करना । भरपटना ।

भर्राबोर—संज्ञा पुं० वि० [हि०] दे० ‘भलाबोर’ ।

भर्राहर^५—संज्ञा पुं० [सं०] जवाला + घर] सूर्य ।

भर्रि^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] भर] दे० ‘भड़ी’ । उ०—दस दिसि रहे बान नभ छाई । मानहु मषा मेघ भर्रि लाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

भर्रिफ^५—संज्ञा पुं० [हि०] भरप] चिक । चिलमन । परदा ।

भर्री—संज्ञा स्त्री० [हि०] भरना] १. पानी का भरना । स्रोत । चश्मा । २. वह घन जो किसी हाट, बाजार या सट्टी आदि में जाकर सीदा बेचनेवाले छोटे छोटे दुकानदारों विशेषतः खोन्चेवालों और कुँजड़ों आदि से प्रतिदिन किराए के रूप में वहाँ के जमींदार या ठीकेदार आदि को मिलता है । ३. दे० ‘भड़ी’ । उ०—कुंकुम अगर घरगजा छिरकहि भरहि गुलाल बबोर । नभ प्रसून भरि पुरी कोलाहल भइ मनभावति भीर ।—तुलसी (शब्द०) ।

भरुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास ।

भर्रोखा—संज्ञा पुं० [सं०] जाल + गवाक्ष अथवा धनु० भर भर (= वायु बहने का शब्द) + गोख अथवा सं० जालगवाक्ष] [स्त्री० भर्रोखी] दीवारों आदि में बनी हुई भँभरी । छोटी खिड़की या मोखा जिसे हुवा और रोखनी आदि के लिये बनाते हैं । गवाक्ष । गोखा । उ०—होर राखीघी भर्रोखियों पर बैठीघी सो भी सुणकर सम के मन पवन हस्थिर हो गए ।—प्राण०, पृ० १८३ ।

भर्रर^५—संज्ञा पुं० [सं०] १. हुड़क नाम का लकड़ी का बाजा जिसपर चमड़ा मड़ा होता है । २. कलियुग । ३. एक नक्षत्र का नाम । ४. हिरण्याक्ष के एक पुत्र का नाम । ५. लोहे आदि का बना हुआ भरना जिससे कड़ाही में पकनेवाली चीज चलाते हैं । ६. भूमि । ७. पैर में पहनने का भौंभ या भौंभर नाम का पहना ।

अमरक—संज्ञा पुं० [सं०] कलियुग ।

अमरक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तारा देवी का नाम । २. देवता । रंजी ।

अमरकवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा नदी । २. कटसरैया का शेष ।

अमरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा देवी ।

अमरक—संज्ञा पुं० [सं० अमरक] शिव ।

अमरक—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमर नामक राजा ।

अमरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देश । २. शरीर । ३. चित्र ।

अमर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अमर' । उ०—नदी, अमर, वृक्ष और आकाश में, मुक्तो आपके साथ अत्यंत सुख मिलता था ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३६८ ।

अमर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'अमर' ।

अमर—संज्ञा पुं० [देश०] १. बया पत्नी । २. एक प्रकार की छोटी चिड़िया ।

अमर—संज्ञा पुं० [देश०] बया नाम की चिड़िया ।

अमल—संज्ञा पुं० [हि० अमल, सं० अमल (= ताप, बिलबिलाती धूप) । अथवा सं० ज्वल, प्रा० अमल] १. दाह । जलन । प्राँव । २. उग्र कामना । किसी विषय की उत्कट इच्छा । उ०—(क) जीव विलंबा जीव सो अमल लख्यो नहि जाय । साहब मिलै न अमल बुझै रहो बुझाय बुझाय ।—कबीर (शब्द०) । (ख) अमल बाँये अमल दाहिने अमल ही में व्यवहार । आगे पीछे अमल जैसे राखे सिरजनहार ।—कबीर (शब्द०) । ३. काम की इच्छा । विषय या संभोग की कामना । ४. क्रोध । गुस्सा । रिस । ५. समूह । उ०—पुनि आए सरल सरित तीर । 'कछु आपु न अमल अमल गति चलति । अमल पतितन को ऊरध फलति ।—केशव (शब्द०) ।

अमलक—संज्ञा स्त्री० [सं० अमलिका (= चमक)] १. चमक । दमक । प्रकाश । प्रभा । श्रुति । आभा । उ०—मनि खंभन प्रतिबिंब अमलक छवि छलक रहै भारी आगने ।—तुलसी (शब्द०) । २. आकृति का आभास । प्रतिबिंब । जैसे,—वे खाली एक अमलक दिखलाकर चले गए । उ०—मकराकृत कुंडल की अमलक इतहूँ भुज मूल में छाप परी री ।—पद्माकर (शब्द०) ।

अमलकदार—वि० [हि० अमलक + प्रा० दार] चमकीला । चमकने-वाला । उ०—छोटा छोटी अंगुली अमलक अमलकदार छोटी सी छुरी को लिए छोटे राज ठोटे हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

अमलकना—क्रि० प्र० [सं० अमलिका (= चमक)] १. चमकना । दमकना । उ०—अमलका अमलकत पायगु कैसे । पंज कोस घोस कन जैसे ।—तुलसी (शब्द०) । २. कुछ कुछ प्रकट होना । आभास होना । जैसे,—उनकी आज की बातों से अमलकता था कि वे कुछ नाराज हैं । उ०—कुंडल लोल कपोलनि अमलकत मनु दरपन में आई री ।—सूर, १०।१३७ ।

अमलकनि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अमलक' । उ०—(क) अवन कुंडल मकर नानो नैन भीव बिसाल । सखिल अमलकनि रूप

प्राभा देख री नंदलाल ।—सूर (शब्द०) । (ख) मदन मोर के चंव की अमलकनि निररति तनजोति । नील कमल, मनि जलद की उपमा कहे लघु मति होति ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २७८ ।

अमलका—संज्ञा पुं० [सं० ज्वल (= जलना) ; प्रा० अमल + हि० का (प्रत्य०)] चमने या रगड़ लपने आदि के कारण शरीर में पड़ा हुआ छाला । उ०—अमलका अमलकत पायगु कैसे । पंज कोस घोसकन जैसे ।—तुलसी (शब्द०) ।

अमलकाना—क्रि० सं० [हि० अमलकना का सक० रूप] १. चमकाना । दमकाना । लसकाना । २. दरसाना । दिखलाना । कुछ आभास देना ।

अमलकावनी—वि० [हि० अमलकना] चमकानेवाली । दीप्त करने-वाली । अमलकानेवाली । उ०—सुरत लतान चार फल है फलित किशो, कामधेनु चारा सम नेह उपजावनी । कैशो चितामनिन की माल उर सोभित, बिसाल कंठ में बदे हैं जोति अमलकावनी ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३०५ ।

अमलकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अमलक' ।

अमलकना—क्रि० प्र० [हि० अमलकना] दीप्त होना । अमलकना । उ०—अमलकत मूर चमकत सेल ।—ह० रासो, पृ० १२ ।

अमलज्जला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बूँदों के गिरने का शब्द । वर्षा की झड़ी से उत्पन्न शब्द । २. हाथी के कान की फटफटाहट [को०] ।

अमलमल—संज्ञा स्त्री० [हि० अमलकना] चमक दमक ।

अमलमल—क्रि० वि० रह रहकर निकलनेवाली आभा के साथ । जैसे, अमलमल चमकना ।

अमलमला—वि० [अनु०] अमलमल करनेवाली । चमचमाती हुई । चमकनेवाली । उ०—तरवार बनी ज्यों अमलमला ।—पलटू, पृ० ४५ ।

अमलमलाना—क्रि० प्र० [अनु०] चमकना । चमचमाना । उ०—अमलमलात रिस ज्वाल बदनसुत चहुँ दिसि चाहिय ।—सुदन (शब्द०) । २. दे० 'अमलाना' ।

अमलमलाना—क्रि० सं० चमकाना । चमचमाना ।

अमलमलाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. चमक । दमक । २. अमलाहट ।

अमलना—क्रि० सं० [हि० अमलक (= हिलना) से अनु०] १. किसी चीज को हिलाकर किसी दूसरी चीज पर हवा लगाना या पहुँचाना । जैसे,—(क) जरा उन्हें पंखा अमल दो । (ख) वे महिलायाँ अमल रहे हैं । २. हवा करने के लिये कोई चीज हिलाना । जैसे, पंखा अमलना ।

संयो० क्रि०—देना ।

† १. ठकेलना । ठेलना । धक्का देकर आगे बढ़ाना ।

अमलना—क्रि० प्र० १. किसी चीज के अगले भाग का इधर उधर हिलना । उ०—फूल रहे, मूल रहे, फैल रहे, फबि रहे, अफि रहे, अल रहे, मुकि रहे भूमि रहे ।—पद्माकर (शब्द०)

† २. थेली बघारना । बीग हौकना ।

अमलना—क्रि० प्र० [हि० अमलना का प्रक० रूप] १. दे० 'अमलना' । २. दे० 'अमलना' ।

भलमल—संज्ञा पुं० [प्रा० भलमल] उजियाला । दे० 'भलमल' ।
भलमल—संज्ञा पुं० [सं० भलमल (= दीप्ति)] १. भँवरे के बीच थोड़ा थोड़ा उजाला । हलका प्रकाश । २. भँवरा (कहारों को परि०) । ३. चमक दमक ।
भलमल—क्रि० वि० दे० 'भलमल' ।
भलमलताई—संज्ञा स्त्री० [हि० भलमल + ताई (प्रत्य०)] चमक । भलमलाहट । उ०—दुति तिय तन अस दीन्हि बिछाई । सरब चंद जल भलमलताई ।—नंद० पं०, पृ० १२४ ।
भलमला—वि० [हि० भलमला] चमकीला । चमकता हुआ । उ०—मोर मुकुट धति सोहई अवगुनि वर कुंडल । ललित कपोलनि भलमले सुंदर धति निर्मल ।—सूर (शब्द०) ।
भलमलाना—क्रि० प्र० [हि० भलमल] १. रह रहकर चमकना । रह रहकर मंद घोर तीव्र प्रकाश होना । चमचमाना । २. ज्योति का अस्थिर होना । अस्थिर ज्योति निकलना । ठहरकर बराबर एक तरह न जलना या चमकना । निकलते हुए प्रकाश का हिलना बोलना । जैसे, हवा के झोंके से दीए का भलमलाना । उ०—(क) मेया री मैं चंद लहौगी । कहा करौ जलपुट भीतर को बाहर व्योकि गहौगी । यह तो भलमलात भकभोरत कैसे के जु लहौगी ।—सूर०, १०।१६४ । (ख) श्याम झलक बिच मोती मंगा । मानहु भलमलति सीस गंगा ।—सूर (शब्द०) । (ग) बासकेलि बातबस भलकि भलमलत सोभा की दीपटि मानो रूप दोष दियो है ।—तुलसी प्र० पृ० २७३ ।
भलमलाना—क्रि० स० किसी स्थिर ज्योति या लो को हिलाना झुलाना । हवा के झोंके आदि से प्रकाश को अस्थिर या बुझने के निकट करना ।
भलमलित—वि० [हि० भलमलाना] भलमलाता हुआ । हवा में हिलता हुआ । उ०—घरनी जिव भलमलित दीप ज्यों होत मंभार करो भँवियारी ।—घरनी० बा० पृ० २६ ।
भलर—संज्ञा पुं० [हि० भलर] १. एक प्रकार का पकवान जिसे 'भलर' भी कहते हैं ।
भलर—संज्ञा स्त्री० दे० 'भलर' ।
भलराना—क्रि० प्र० [हि० भलर] फैलकर छाना । बढ़ना । भलरना ।
भलरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० भलर] दे० 'भलर' । उ०—चट्ट हिस लागी भलरिया, तो लोक असंख हो । धरम०, पृ० ४४ ।
भलरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हुडक नाम का बाजा । २. बजाने की भाँक ।
भलरी—संज्ञा स्त्री० [हि० भलर या भलर का धत्वा० स्त्री०] दे० 'भलर' ।
भलवाना—क्रि० स० [हि० भलना] भलना का प्रेरणार्थक रूप । भलने काम दूसरे से कराना ।
भलवाना—क्रि० स० भलना का प्रेरणार्थक रूप । भलने का काम दूसरे से कराना ।
भलहल—संज्ञा स्त्री० [प्रा० भलहल] दे० 'भलमल' । उ०—

भलहल तीर तरवारि बरछी देखि काँबरे काचा । छुटै तीर तुपक धव गोला धाव सहै मुख साँचा ।—सुंदर० पं० भा० २, पृ० ८८५ ।

भलहलना—क्रि० प्र० [प्रनु०] चमकना । दमकना । उ०—तप तेज पुंज भलहलत तहँ, दरसन ते पातक सुधर ।—ह० रासी, पृ० १० ।

भलहला—संज्ञा स्त्री० [प्रा० भलहल] उजियाला । भलमल ।

भलहाया—संज्ञा पुं० [हि० भल + हाया (प्रत्य०)] [स्त्री० भलहाई] वह जो बाह करता हो । हसद करनेवाला आदमी । ईर्ष्यालु व्यक्ति ।

भलहाला—संज्ञा पुं० [प्रनु०] भलमलाहट । प्रकाश की मंद तेज चमक । उ०—नयन दामिनी होत भलहाला । पाछे नहीं धनिल उजियाला ।—कबीर सा०, पृ० ६६ ।

भला—संज्ञा पुं० [हि० भल] १. हलकी वर्षा । २. भालर, तोरण या बंदनवार आदि । ३. पंखा । बीजना । बेना । ४. समूह । उ०—भलकत धावै भुंड भिलिम भलानि भप्यो, तमकत धावै तेगवाही धी सिलाही है ।—पद्माकर (शब्द०) । ५. तीव्र वर्षा । भड़ी लगना ।

भला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धातप । धूप । चिलचिलाती धूप । चमका । २. पुत्री । कन्या । बेटी (को०) । ३. भिल्ली । भौंगुर (को०) ।

भला—संज्ञा पुं० [सं० उवासा अथवा भल] १. क्रोध । गुस्सा । २. जलन । दाह ।

भलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० भला + ई (प्रत्य०)] दे० 'भलाई' ।

भलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० भल + धाई (प्रत्य०)] पंखा भलने का काम या उसकी मजदूरी ।

भलाभल—वि० [प्रनु०] खूब भलभलाता या चमचमाता हुआ । चमचम । उ०—(क) छोटी छोटी भँगुली भलाभल भलकवार छोटी सी छुगी को लिये छोटे राज ढोटे हैं ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) कंचन के कलस भराए भूरि पवन के ताने तुग तोरन तहाँई भलाभल के ।—पद्माकर (शब्द०) ।

भलाभलि—वि० [हि०] दे० 'भलाभली' । उ०—नख सिख ले सब भुखन बनाई । बसन भलाभलि पैधे आई ।—सं० दरिया, पृ० ३ ।

भलाभली—वि० [प्रनु०] चमकीला । चमकदार । भलाभल । उ०—जिन्हँ लखे भलाभली हलाहली हिये लजे ।—गोपाल (शब्द०) ।

भलाभली—संज्ञा स्त्री० भलाभल होने की क्रिया या भाव ।

भलाना—क्रि० प्र० [प्रनु० भलभल] हड़ो, जोड़ या नस आदि पर एकबारगी चोट लगने के कारण एक विशेष प्रकार की संवेदना होना । सुन्न सा हो जाना । जैसे,—ऐसी ठोकर लगी कि पैर भला गया ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

भलाना—क्रि० स० [हि० भलना] दूसरे से भलने का काम कराना । भलने में किसी को प्रवृत्त करना ।

भलाना—क्रि० स० [हि० भलना] दे० 'भलवाना' ।

भलाबोर—संज्ञा पुं० [हि० भल भल (= चमक)] १. कलाबत

का बना हुआ साड़ी का चौड़ा अंचल । २. कारबोबी । उ०—
मल्लाबोर का बाँधरा घूम घुमाला तिस पर सच्चे मोती टके
हुए ।—लल्लू (शब्द०) । ३. एक प्रकार की धातिसबाजी ।—
४. काँटा । भाड़ी । ५. चमक । दमक ।

मल्लाबोर^२—वि० चमकीला । घोपदार ।

मल्लामल्ला^१—संज्ञा स्त्री० [हि० मल्लमल्ल (= चमक)] चमक । दमक ।
उ०—चहुँ दिस लगी है बजार मल्लामल्ल हो रही । भूमर होत
घपार घधर डोरी लगी ।—कबीर (शब्द०) ।

मल्लामल्ल^२—वि० चमकीला । चमक दमकवाला । घोपदार ।

मल्लारा^१—वि० [सं० ज्वल, पुं० हि० मल्ल, हि० माल, भार] लीखा ।
तेज । मिर्च के स्वादवाला । मालवाला ।

मल्लासी—संज्ञा स्त्री० [देशी] सूखी हुई पतली लकड़ी या पतली टहनी ।
उ०—सोच विचारकर मैं सूखी मल्लासियों से भोंपड़ी
बनाने लगा । सतरों को काटकर उसपर छाजन हुई ।
—इंद्र०, पृ० ७२ ।

मल्लि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी । पूगी फल [को०] ।

मल्लुसना^१—क्रि० प्र० [देश०] ग्रयवा सं० ज्वल से विकसित हिं०
नामिक धातु] दे० 'मल्लुसना' ।

मल्लुस^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जलुस' । उ०—सुरा अतुल साज
मल्लुस सारा मिले छक मिथलेस ।—रघु० ६०, पृ० ८३ ।

मल्ल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाट्य अर्थात् संस्कारहीन क्षत्रिय और
सवर्ण स्त्री से उत्पन्न वर्णसंकर जाति । २. मडि या विदूषक ।
३. पट्टा या हुड्डा नामक बाजा । ४. लपट । जवाबा । उ०—
बहिन को देखकर उसे अधिक क्रोध आता, क्योंकि उसकी
प्राँखों में जैसे मल्ल सी उठने लगती, जिसे देखकर हम तीनों
भयभीत हो जाते ।—ग्रंथरे०, पृ० २६ ।

मल्ल^२—संज्ञा स्त्री० [अनु०] मल्ला होने का भाव ।

मल्लकण्ठ—संज्ञा पुं० [सं० मल्लकण्ठ] परेवा ।

मल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] १. काँसे का बना करताल । भाँक । २.
मंजीरा । जोड़ी ।

मल्लकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मल्लक' ।

मल्लनाना^१—क्रि० प्र० [अनु०] बहुत झूठी झूठी बातें करना । बहुत
बीस हाकना या गप्प उड़ावा ।

मल्लनारा—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'मल्लनारी' [को०] ।

मल्लनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हुड्डा नाम का बाजा । २. भाँक ।
३. पसीना । स्वेद । ४. पसेव । ५. शुद्धता । मुच्चापन (को०) ।
६. घुँघुराले केश (को०) ।

मल्ला^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. लाँचा । बड़ा टोकरा । २. वर्षा । वृष्टि । ३.
बोझार । ४. वे दाने जो पके हुए तमाखु के पत्ते पर पड़ जाते हैं ।

मल्ला^२—वि० [हि० जल] बहुत तरल या पतला । जिसमें अधिक पानी
मिला हो । जो गाढ़ा न हो । जैसे, मल्ला रस, मल्ला भोग ।

मल्ला^३—वि० [हि० मल्लाना] १. पागल । २. बहुत बड़ा
बेवकूफ । ३. मल्लानेवाला ।

मल्लाना^१—क्रि० प्र० [हि० मल्ल] बहुत चिढ़ना । खिजलाना ।
किचकिटावा । मुँहफावा ।

मल्लाना^२—क्रि० प्र० ऐसा काम करना जिससे कोई बहुत चिढ़े ।
किसी को मल्लाने या चिढ़ने में प्रयुक्त करना ।

मल्लानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मल्ला । पानी की फुही । उ०—
मल्लानी भर फुट्टि, छुट्टि संका सामंता । ज्यों लट्टी पर नारि,
बीग मिल्यो घावंता ।—पु० रा०, १२। ३१६ ।

मल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देह पोंछने का कपड़ा । घोंगोछा ।
२. शरीर का वह मैल जो उबटन आदि लगाने, किसी बीज से
मलने या पोंछने से निकले । ३. दीप्ति । प्रकाश । ४. सूर्य की
किरणों का तेज ।

मल्लि^१—वि० [हि० मल्लना] बातूनिया । गप्पी । बकबासी ।

मल्लि^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुड्डा की तरह का एक बाजा जिसपर
चमड़ा मढ़ा होता है ।

मल्लि^३—संज्ञा स्त्री० [हि० मल्ला] बड़ी टोकरी । भाबा । उ०—
प्रहीर मल्लि डोकर जो कुछ ला पाता, उसी में गुजारा चल
रहा था ।—अभिषेक, पृ० १३ ।

मल्लिवाला—संज्ञा पुं० [हि० मल्ला] भाबा या मल्लि होने का
काम करनेवाला । उ०—बही एक मल्लिवाला रहता है,
ज्वाला ।—अभिषेक, पृ० २३ ।

मल्लिसक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य ।

मल्लकना—क्रि० प्र० [देश०] मल्लकना । चमकना । उ०—काया
मल्लक कनक जिम सुंदर केहे सुल्ल । तेह सुरंगा जिम हुवाई ।
जिण बेहा बहु दुल्ल ।—ढोला०, दू० ५४६ ।

मल्लर^१—संज्ञा पुं० [हि० मल्लर] मल्लर ।

मल्लर^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मल्लर' । उ०—अलवेली सुजान के पायनि
पानि पयो न टयो मन मेरो मल्लर ।—घनानंद, पृ० ८ ।

मल्लरि^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मल्लर' ।

मल्लर^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. मत्स्य । मीन । मछली । उ०—संकुल
मकर उरग मल्ल जाती । अति अगाध दुस्तर सब भाँती ।—
तुलसी (शब्द०) । २. मकर । मघर । ३. ताप । गरमी । ४.
वन । ५. मीन राशि । ६. मीन लग्न । ७. दे० 'मल्ल' ।

मल्लकेत^१—(५) संज्ञा पुं० [सं० मल्ल + केत (= पताका)] दे० 'मल्ल
केतन' । उ०—हरिहि हेरि ही हरि गयो बिसिख लगे
मल्लकेत । बहरि खयन ते हेत करि बहरि बहरि के सेत ।—
स० सप्तक, पृ० २६१ ।

मल्लकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव जिसकी पताका में मीन का
चिह्न है । मल्लकेतु [को०] ।

मल्लकेतु—संज्ञा पुं० [सं० मल्लकेतु] कंदर्प । कामदेव ।

मल्लध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मल्लकेतु' [को०] ।

मल्लना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'मल्लना' या 'मल्लना' ।

मल्लनिकेत—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलाशय । २. समुद्र ।

मल्लराज—संज्ञा पुं० [सं०] मगर । मकर ।

मल्ललग्न—संज्ञा पुं० [सं०] मीन लग्न ।

मल्लार्क—संज्ञा पुं० [सं० मल्लार्क] कामदेव ।

मल्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवला । गुलसकरी ।

अवशासन—संज्ञा पुं० [सं०] निशुमार नामक वनजंतु । सूँस ।

अवशोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की माता । मत्स्यवंश ।

अवना—क्रि० स० [हि०] दे० 'अँसना' ।

अवहनना^१—क्रि० घ० [घनु०] १. अन्नाना । अन्नाना या सन्नाते में खाना । २. (रोएँ का) लड़ा होना । उ०—गहन गहन लाली गायन मयूरमाला अहन अहन लागे रोष रोम छन में ।—धीपति (शब्द०) ३. अन्न अन्न शब्द करना ।

अवहनना^२—क्रि० स० दे० 'अह्नाना' ।

अह्नाना—क्रि० स० [घनु०] १. अह्नाना का सकर्मक रूप । २. अन्नकार शब्द करना । अन्नकारना । उ०—यति गण्य कृच कुंभ किंकिनी यनतु घंट अह्नावे ।—सूर (शब्द०) ।

अहरना^१—क्रि० घ० [घनु०] १. अहर अहर शब्द करवा । अहने का सा शब्द करना । उ०—अहरि अहरि मुक्ति कीबी अर लाये देव अहरि अहरि छोटी हूँ बनि अहरिया ।—देव (शब्द०) २. (शरीर आदि का) बहुत थिथिल पड़ना । झोला हो जाना । उ०—अहरि अहरि परे पाँधुरी ललाय देह बिरह बसाय हाय कैसे बूबरे भये ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

अहरना^२—क्रि० स० अह्नन । अह्नाना । उ०—सुनि सजनी मैं रही अकेली बिरह बहेली इत गुह जन अहरें ।—सूर (शब्द०) ।

अहराना—क्रि० घ० [घनु०] १. थिथिल होकर अहर अहर शब्द के साथ या लड़खड़ाकर गिरना । उ०—(क) असुर लै तब सौ पछारपो गिरयो तब अहराई । ताल सौ तब ताल लाग्यो उठयो बन चहराई ।—सूर (शब्द०) । (ख) आपु गए जमलाजुन तब तर, परसत पात उठे अहराई ।—सूर०, १०। ३८३ । (ग) लपट भपट अहराने, हहराने जात फहराने भट परघो प्रबल परावनी ।—तुलसी ग्रं०, पु० १७१ । २. अह्नाना । किट-किटाना । खिजलाना । उ०—(क) एक अभिमान हृदय करि बैठी एते पर अहरानी ।—सूर (शब्द०) । (ख) नागरि हँसति हँसी उर छाया तापर अति अहरानी । अहर कंय रिस भौह मरोरी मन की मन गहरानी ।—सूर (शब्द०) । ३. हिजाना । उ०—बालवी फिरावे बार बार अहरावे, अरे हूँ दिया सी, लंक पधिलाइ पावि पागिहै ।—तुलसी ग्रं०, पु० १७३ ।

अहकृत—संज्ञा पुं० [सं० अहकृत] १. अहने आदि के गिरने या मुपूर के बजने का शब्द । अकार । २. पैर का एक गहना जिसमें पुँधक बंधे रहते हैं । मुपूर (कौ०) ।

आई, आई—संज्ञा स्त्री० [सं० आया] १. परछाई । प्रतिबिम्ब । छाया । आधा । अक्षक । उ०—(क) आई न बिबल पाई आह हरि पातुर हूँ जब आन्यो बज पाह आए जात जब मैं ।—सूर (शब्द०) । (ख) बेहरि के मुकुटा मैं आई बरष बिराजत बारि । मानो सूर गुर शुक्र भीम शनि चमकत चंद्र मभारि ।—सूर (शब्द०) । (ग) कह सुधीव सुनहु रघुराई । ससि मह प्रकट भूमि की आई ।—तुलसी (शब्द०) । (क) मेरी बच बाधा हरी राधा नागरि सोई । जा तब की आई परे स्याम हरित दुति होई ।—बिहारी (शब्द०) । २. धंधकार । धँधरा । उ०—रेखनी सतत बाल बाल पठ लपिटे महस भीतरे न शीत

भीत रेनि की न आई है ।—देव (शब्द०) । ३. बोझा । झुल ।

मुह—आई बताना = झल करना । बोझा देना ।

यौ—आई अप्पा = बोझा बढ़ी ।

४. प्रतिशब्द । प्रतिध्वनि । उ०—कुहक उठे बन मोर कंदरा गरजति आई । चित चकृत मृग वृंद बिषा मनमथ सरसाई ।—नागरीदास (शब्द०) । ५. एक प्रकार के हलके काले बच्चे जो रक्तविकार से मनुष्यों के शरीर विशेषतः मूँह पर पड़ जाते हैं ।

आई आई—संज्ञा स्त्री० [घनु०] बच्चों का एक खेल जिससे वे 'आई आई कीचों की बरात आई' कहते जाते और घुमते जाते हैं ।

मुह—आई आई होना = नजरों से गायब हो जाना । अछप्य हो जाना ।

आई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० आँकना] आँकने की क्रिया या भाव ।

यौ—ताक आँक = दे० 'ताक आँक' ।

आई^२—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'आँख' ।

आँकना—क्रि० घ० [सं० चक्ष (= चक्षुः = देखना) या अक्षि + घल, अघ्यल, प्रा० अघ्नल (= घाल के समाने)] १. प्रोट के बगल में से देखना । उ०—(क) जहँ तँह उभकि अरोला आँकति जनक नगर की नारि ।—सूर (शब्द०) । (ख) तुलसी मुदित मन जनक नगर जन आँकति अरोखे लागी शोभा रानी पावती ।—तुलसी (शब्द०) । २. इधर उधर भ्रुककर देखना ।

आँकनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० आँकना] १. आँकी । दर्शन । उ०—आँकनी बँ कर आँकनी की सुनै कानन बैन अनाकनी कीने ।—देव (शब्द०) । २. कुप्रा (कहारों की परि०) ।

आँकर—संज्ञा पुं० [प्रा० अँखर] दे० 'अँखाड़' ।

आँकरी^१—वि० स्त्री० [प्रा० अँखर (= शुष्क तर) भुलसी हुई । दुबंल । सूखी हुई । उ०—उमड़ि उमड़ि डग रोवत अबीर भए, मुख दुति पीरी परी बिरह महा मरी । 'हरिचंद' प्रेम माती मनहुँ गुलाबी छकीं, काम कर आँकरी सी दुति तन की करी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पु० १७३ ।

आँका—संज्ञा पुं० [हि० आँकना] १. रहते का छाँचा । बालीदार छाँचा । २. अरोला । उ०—समा गाँठ झोपड़ि पति राखी पति पानिप कुल ताकी । बसन छोड़ करि कोठ बिसंभर परन न दीन्हो आँकी ।—सूर०, १ । ११३ ।

आँकी—संज्ञा स्त्री० [हि० आँकना] १. दर्शन । अवलोकन । आँकने या देखने की क्रिया या भाव ।

कि० प्र०—करना ।—देना ।—मिलना ।—देना ।—होना ।

२. रथ । वह जो कुछ देखा जाय । उ०—काँटे समेटती, फूल छींटती आँकी ।—राजेश, पु० २१० ।

कि० प्र०—देखना ।

३. वह जिसमें से आँका जाय । अरोला ।

आँख—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा जंगली हिरन । उ०—ठाढ़े बिग बाघ बिग बीते चितवत आँख मृग आलापुग सब रीकि रीकि रहे हैं ।—देव (शब्द०) ।

आँखना^१—क्रि० घ० [हि० अँखना] दे० 'आँखना' । उ०—

(क) इंद्री बल ध्यारी परी सुख लुटति छांकि । सुरवास संघ
रहै ठेक भरै भांकि ।—सूर (शब्द०) । (ख) एहि बिधि
राज मलहि मन भांखा । देखि कुमति कुमति मनु भांखा ।—
तुलसी (शब्द०) ।

मॉखर—संज्ञा पुं० [प्रा० भंखर; हि० भंखाइ] १. 'भंखाइ' । उ०—
भांखर जहाँ सुधाइहु पंथा । हिलगि मकोय न फारहु कंथा ।
—जायसी (शब्द०) । २. घरघर की वे खूंटियाँ जो फसल
काटने के बाद खेत में रह जाती हैं ।

मॉगला—वि० [देश०] ठीला ढाला (कपड़ा) । उ०—पहिर भांगले
पटा पाग सिर टेढ़ी बांधे । घर में तेल न खोन प्रीत बेरी सों
साधे ।—गिरधर (शब्द०) ।

मॉगा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भागा' । उ०—पीत बसन पहिरे
सुति भांगा । बखु अपल अलकें अनु नागा ।—विश्राम
(शब्द०) ।

मॉजन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भाजन' ।

मॉक—संज्ञा स्त्री० [सं० भल्लक या भनभन से अनु०] १. मजीर
की तरह के, पर उससे बहुत बड़े कसि के ठले हुए तश्तरी के
आकार के दो ऐसे गोलाकार टुकड़ों का जोड़ा जिसके बीच में
कुछ उभार होता है । भाल । उ०—(क) घंटा घंटी पलाउज
आउज भांकि बेनु बक ताल ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६५ । (ख)
ताल मृदंग भांकि इंद्रिनि मिलि बीना बेनु बजायो ।—सूर०,
१ । २०५ ।

क्रि० प्र०—पीटना ।—बजाना ।

विशेष—इसकी उभार में एक छेद होता है जिसमें डोरी पिरोई
रहती है । इसका व्यवहार एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े पर आघात
करके पूजन आदि के समय थड़ियालों और शंखों के साथ यों
ही बजाने में, रामायण की चौपाइयों के गाने के समय राम-
लीला में अथवा ताशे और ढोल आदि के साथ ताल देने में
होता है ।

२. क्रोध । गुस्सा ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—बढ़ाना ।—निकालना ।

३. पाजीवन । शरारत । उ०—रक्यो साँकरे कुंज मग करत
भांकि भकरात । मंद मंद माखत तुरंग खूँदन आवत जात ।—
बिहारी (शब्द०) । ४. किसी दुष्ट मनोविकार का आवेग ।
५. सूझा हुआ कुर्मा या तालाब । ६. भोग की इच्छा । विषय
की कामना । ७. दे० 'भांख' ।

मॉक^२—वि० [सं० जर्जर] जो बाढ़ा या गहरा न हो । मामूली ।
हलका (भगि आदि का नशा) ।

मॉकड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भांकि + डी (प्रत्य०)] १. दे०
'भांकि' । २. दे० 'भांजन' ।

मॉकरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] मारवाड़ में कुली का एक नीत । उ०—
सुंदर बंछि विषं सुख की घर बूझत हैं अस भांकरा गावे ।—
—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४५६ ।

४-२३

मॉकन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] कड़े की तरह का पैर में पहनने का
एक प्रकार का गहना । पैजनी । पायल ।

विशेष—यह गहना चांदी का बनता है और इसमें नकाशी और
आली बनी होती है । यह भीतर से पोला होता है और इसके
बाहर छर्रे पड़े होते हैं जिनके कारण पैरों के उठाने और रखने
में 'मन मन' शब्द होता है । कभी कभी लोग चोड़ों और
बैलों आदि को भी शोभा के लिये और भनू भनू शब्द होने
के लिये पोतल या ताँबे की मॉकन पहनाते हैं ।

मॉकर^१^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. मॉकन । पैजनी । उ०—
बहि सुंदरी बहरखा, चासु बुझ स बचार । मनु हरि कटि पल
मेखला, पग भांकर भणकार ।—ढोला०, पृ० ४८१ । २.
दे० 'छलनी' ।

मॉकर^२^१—वि० १ पुराना । जर्जर । छिन्न भिन्न । फूटा टूटा ।
२. छेदवाला । छिन्नयुक्त । उ०—प्रातः अनुरागे पिया प्रातः देख
गैला । पिचा बिना पीजर भांकर भेला ।—विद्यापति, पृ०
१७६ ।

मॉकरा—वि० [सं० जर्जर] [वि० स्त्री० भांकिरी] पोला । जर्जर ।
खोखला । उ०—मलूक कोटा भांकरा भीत परी महराय ।—
मलूक०, पृ० ४० ।

मॉकरि^१^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भांकिन' । उ०—(क) सहस्र
कमल सिंहासन राजें । अनहद भांकरि नितही बाँधे ।
—चरण० बानी, पृ० २६८ ।

मॉकिरी^१^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] भांकि नामक बाजा । भाल । उ०—
बजै भांकिरी शंख नगारे । गए प्रेत सब देव भगारे ।—
रघुराज (शब्द०) । २. भांकिन नामक पैर का गहना । उ०—
भांकिरियाँ भनकेगी खरी तरकैगी तनी तनी तन की तल
तारे ।—देव (शब्द०) ।

मॉकिरी^२^१—वि० स्त्री० [सं० जर्जर] छिद्रों से भरी हुई । जिसमें बहुत
से छेद हों । उ०—(क) कबिरा नाव त भांकिरी कूटा खेवन-
हार । हलका हलका तरि गया बूढ़े जिन सिर भार ।—कबीर
(शब्द०) । (ख) गहिरी नदिया नाव भांकिरी, बोझा अधिक
भई ।—चरण० बानी, पृ० २६ ।

मॉका^१^१—संज्ञा पुं० [हि० भांकरा] १. फसल में लगनेवाला एक प्रकार,
का कीड़ा ।

विशेष—यह बड़ी हुई फसल के पत्तों को बीच बीच में से खाकर
बिल्कुल भंकरा कर देता है । यह छोटा बड़ा कई आकार
और प्रकार का होता है और बहुधा तमाकू या मूकली
(मुली ?) के पत्तों पर पाया जाता है ।

२. बी और बीनी के साथ सूमी हुई भांग की फंकी । † ३. खेब
छानने का पीवा ।

मॉका^२^१—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'भांकि' । २. भंकरा । बखेड़ा ।

मॉकिया—संज्ञा पुं० [हि० भांकि + हया (प्रत्य०)] भांकि बजानेवाला
मनुष्य । बाजेवालों में से वह जो भांकि बजाता हो ।

मॉट—संज्ञा स्त्री० [सं० जट, हि० मड (बाल)] १. पुष या स्त्री

का मूर्धन्य पर के बाज। उपर पर के बाल। पलम।
लप। उ०—घावर की माँ में एक गाँठ है। घावर सब
बायों की माँ है।—कविता की०, भा० ४, पृ० १०।

मुहा०—माँ उकावना = (१) बिलकुल व्यर्थ समय नष्ट करना।
कुछ भी काम न करना। (२) कुछ भी हानि या कष्ट न पहुँचा
सकना। इतनी हानि भी न पहुँचा सकना जितनी एक माँ
उकाव जाने से हो सकती है। माँ जल जाना या राख हो
जाना = किसी को अधिमान आदि की बातें करते देखकर बहुत
बुरा मान्न होना।

विशेष—इस मुहावरे का व्यवहार अधिमान करनेवाले के प्रति
बहुत अधिक उपेक्षा दिखाने के लिये किया जाता है।

२. बहुत तुच्छ वस्तु। बहुत छोटी या विकम्पी चीज।

मुहा०—माँ बराबर = (१) बहुत छोटा। (२) अत्यंत तुच्छ।
माँ की कँठली = अत्यंत तुच्छ (परायण या मनुष्य)।

माँटा—संज्ञा पु० [दे०] १. माँट। २. माँड़। ३. मापड़।
वपड़।

माँटि—संज्ञा की० [हि० माँट] दे० 'माँट'। उ०—एकोई पापुहि
भयो द्वितीया दीन्हों काटि। एकोहं कासों कहूँ महापुच्छ की
माँटि।—कबीर (शब्द०)।

माँसी—संज्ञा की० [दे०] देह। शरीर। उ०—बाहु माँती पाए
पसु विरी संवर सो आहै। छोणी पाए बिच में मिहर
न लाहै।—दास० बानी, पृ० १६३।

माँप—संज्ञा की० [हि० माँपना] १. वह जिससे कोई चीज ढाँकी जाय
टोकरा, भावा आदि। २. पड़ी हुई चीजें निकालने की एक
प्रकार की कल। ३. नींद। अपकी। ४. परा। चिक। उ०—
भुकि भुकि भूमि भूमि भिज भिज मेल मेल भरहरी माँपन
मे भमकि भमकि उठै।—पद्माकर (शब्द०)। ५. निकास।
मस्तुख का भुकाव (लघ०)। १. मूँज का बना पिटारा।
माँपा।

माँप—संज्ञा पु० [सं० भूप] उल्लूक कुब।

क्रि० प्र०—देना = दे० 'माँप' का मुहा० 'माँप देना'।

माँपना—क्रि० प्र० [सं० उज्जम्पन, हि० माँपना] १. डाँकना।
घावरण डालना। छोड़ में करना। घाड़ में करवा। उ०—
जया गगन जब पटख बिहारी। माँपे धानु कहहि कृषिकारी।
—तुलसी (शब्द०)। २. पकड़कर बसा देना। छोप देना।

माँपना—क्रि० प्र० लजाना। शरमाना। माँपना।

माँपा—संज्ञा पु० [हि० माँपना] १. डाँकने का बाँस आदि का बना
हुआ बड़ा टोकरा। २. मूँज का बना हुआ पिटारा।

माँपो—संज्ञा की० [हि० माँपना] १. टोकरे की टोकरी। २. मूँज
की बनी हुई पिटारी, जिसमें कभी कभी जमड़ा भी मड़ा होता
है। ३. अपकी। नींद। ऊँच।

माँपी—संज्ञा की० [दे०] १. धोबिन बिड़िया। लंजन पसी। २.
छिनाल की। पुश्तली।

यो०—माँपी के = एक गाँधी।

माँपी—क्रि० [दे० या सं० दाप] १. दीप्त। दाप। २. अनुपपन्न।

माँपी—संज्ञा की० [हि०] दे० 'माँपी'। उ०—चंद्रकांति भवि
माक बिमि, परति चंद्र की माँपी।—चंद० प्र०, पृ० १३१।

माँपी—संज्ञा की० [अनु०] १. किसी स्थाव की वह स्थिति जो
सघाटे या सुनेप के कारण होती है। २. दे० 'माँपी माँपी'।

माँपी—संज्ञा की० [अनु०] १. शोर गुल। २. रंघ डंग। भाव
ताव। उ०—बनियऊँ माँपी माँपी दिखलाने के लिये……।
—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३६।

क्रि० प्र०—करना।—दिलाना।—होना।

माँपना—क्रि० सं० [हि० माँपा] माँपी से रगड़कर (हाथ पैर
आदि) घोना। उ०—हो गई भेंट भई न सहेट में ताँतें कलाहट
भो मन छायायो। कालिबी के तब माँपत पाँप हों धायो तहाँ
लखि कले सुधायायो।—प्रतापसिंह सवाई (शब्द०)।

माँपरी—संज्ञा की० [हि० माँपरी] वह बीबी धूमि जिसमें बर्बाकाल
में लव भर लाता है और जिसमें मोटा घन्न जमता है।
माँपरी।

विशेष—ऐसी धूमि बाव के लिये बहुत उपयुक्त होती है।

माँपरी—क्रि० [सं० हयामल][वि० की० माँपरी] १. माँपी के रंघ का।
कुछ कुछ काँसे रंग का। २. मखिन। उ०—साँची बहों रावरे
सों माँपरे लयें तमाल।—(शब्द०)। ३. मुरझाया हुआ।
कुम्हलाया हुआ। ४. शिथिल। मंथ। सुस्त। उ०—निसि न
नींद भावे दिवस न भोजन पावे चितवत मग भई दष्टि माँपरी।
—सूर (शब्द०)।

माँपरी—क्रि० [हि० माँपरी] कुछ कुछ काँसे रंग का। उ०—
बलिहारी सब बयो कियो सैन साँवरे संग। नहि कछु गोरे संग
ये भए माँपरे रंग।—स० सतक, पृ० २४६।

माँपरी—संज्ञा की० [हि० छाँव (= छाया)] १. भलक। २. भाल
की कलखी। कमखी।

यो०—माँपरीबाज।

मुहा०—माँपरी देना = (१) माँप से इशारा करना। (२)
बातों से फँसावा। भुजावा देना।

माँपी—संज्ञा पु० [सं० भामक] जसी हुई ईंट। वह ईंट जो बलकर
काजी हो गई हो। इससे रगड़कर घल, शस्त्र आदि चीजों
की, विशेषतः पैरों की मीच छुड़ाई है। उ०—माँपी देवे
जोग ठेग को मले बनाई।—पद्म०, पृ० २।

माँसना—क्रि० सं० [हि० माँसा] १. ठगना। धोखा देना। माँसा
देना। २. किसी स्त्री को व्यवहार में प्रवृत्त करना। स्त्री को
माँसना।

माँसा—संज्ञा पु० [सं० मय्यास (= मिथ्या ज्ञान), प्रा० अन्मास]
अपना काम साधने के लिये किसी को बहकाने की क्रिया।
धोखा। दमबुत्ता। छल। उ०—घरे मन उसे क्या है दुनियाँ
का भाँसा। लिया हात में भीक का जिसने काँसा।—
दक्खिनी०, पृ० २५७।

क्रि० प्र०—देना। उ०—अन्धासी लखी पत्तो करके कहाँ से गई

कैसा क्रीडा दे गई।—किसाना०, भा० ३, पृ० ४१०।
—बताना। उ०—रुपया पैसा अपने पास रखने, धारण के दूर
से क्रीडा बताना।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ३३५।

यो०—क्रीडा पट्टी = बोझा बड़ी।

मुहा०—क्रीडे में जाना = बोझे में जाना। उ०—यही बड़े बड़ों
की पालीं देखी हैं। आपकी क्रीडे में कोई उनेला आए तो आप
हमपर चक्रमा न चलेगा।—किसाना०, भा० १, पृ० ५।

क्रीडिया—संज्ञा पुं० [हि० क्रीडा + दया (प्रत्य०)] क्रीडा देनेवाला।
धोखेबाज।

क्रीडी—संज्ञा पुं० [देश०] १. उत्तर प्रदेश का एक प्रसिद्ध नगर जहाँ
की रानी लक्ष्मीबाई ने, जो क्रीडी की रानी नाम से प्रसिद्ध हैं,
सन् १८५७ में स्वतंत्रता संग्राम (बहर) के अवसर पर अंग्रेजों
से जमकर लोहा लिया और युद्धक्षेत्र में लड़ती हुई मारी
गई थी। २. एक प्रकार का गुदरेला जो बाल और तमाखू
की फसल को हानि पहुँचाता है।

क्रीडूँ—संज्ञा पुं० [हि० क्रीडा] क्रीडा देनेवाला। धोखेबाज।

क्रा—संज्ञा पुं० [सं० उपधायाय; प्रा० उपज्झाय प्रा० उपज्झय,
उपज्झाय, उपज्झ, उपज्झाय, उपज्झायो, उपज्झाय, हि० प्रोक्ता
अथवा सं० ध्या (= ध्यान, चिंतन); प्रा० क्रा] मैथिली
या गुजराती ब्राह्मणों की एक उपाधि।

क्राई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'क्राई'। उ०—मनि वपन सम अवनि
रमनि तापर छवि देही। विधुरति कुंडल भलक तिलक भुक्ति
क्राई देखी।—नंद प्र०, पृ० ३२।

क्राई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'क्राई'।

क्राऊ—संज्ञा पुं० [सं० क्रावुक] एक प्रकार का छोटा झाड़ू जो दक्षिणी
एशिया में नदियों के किनारे रेतीले मैदानों में अधिकता से
होता है। पिछुल। भफल। बहुप्रचि।

विशेष—यह झाड़ू बहुत जल्दी जल्दी और खूब फैलता है।
इसकी पत्तियाँ सरो की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं
और गरमी के अंत में इसमें बहुत अधिकता से छोटे छोटे
हल्के गुलाबी फूल लगते हैं। बहुत कड़ी सरदी में यह झाड़ू
नहीं रह सकता। कुछ देशों में इससे एक प्रकार का रंग
निकाला जाता है और इसकी पत्तियों आदि का व्यवहार
औषधों में किया जाता है। इसमें से एक प्रकार का आर भी
बिकलता है। इसकी टहनियों से ठोकरियाँ और रस्सियाँ
आदि बनती हैं और सूखी लकड़ी जलाने के काम में प्रांती
है। कहीं कहीं रेगिस्तानों में यह झाड़ू बहुत बढ़कर पेड़ का
रूप भी धारण कर लेता है।

क्राक०—संज्ञा पुं० [प्रा० क्राक] बज्रपात। घणनिपात। उ०—(१)
बहु बहु सकल के के हाक। बज्जी विषम भावय भाक।—पृ०
रा०, ६।१६३।

क्राकर—संज्ञा पुं० [देशी मंत्रार] कंड़ीली क्राडियों और पौधों का
समूह। मंत्राकर। उ०—साथो एक बन क्राकर मंत्राकर। सावा
चिहिरि देखि माह भुलाने सान बुझावत कोषा।—सं० दरिया,
पृ० १२५।

क्राग—संज्ञा पुं० [हि० ग्राज] पानी आदि का फेन। ग्राज। फेन।
क्रि० प्र०—उठना।—छूटना।—छोड़ना।—निकलना।—
फेंकना।

क्रागड़(पु)।—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'क्रागड़ा'। उ०—सहज ही सहज
पग धारा जब आसम को दसो परकार क्रागड़ बजाई।—
चरण० बानी, पृ० ५५।

क्रि० प्र०—बजाना।

क्रागना^१—क्रि० प्र० [हि० क्राग] क्राग उत्पन्न होना। फेन
निकलना।

क्रागना^२—क्रि० प्र० क्राग उत्पन्न करना। फेन निकालना।

क्राज(पु)।—संज्ञा पुं० [प्रा० क्राज] दे० 'जहाज'। उ०—किया था
बुदा यूँ उसे सरफराज, जो थे सातों हरिया उपर उसके
क्राज।—दक्खिनी०, पृ० ७७।

क्राज^१—संज्ञा पुं० [?] महीन कावज। बैलुन। गुम्बारा। उ०—बम्बा
निरा गिरा को तोपाँ चला बला को। क्राजों में भर को ग्यासाँ
हम्बा में तु उड़ा को।—दक्खिनी०, पृ० २६६।

क्राक^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'क्राक'।

क्राक^२(पु)।—संज्ञा पुं० [प्रा० जहाज; दक्खिनी; क्राज] दे० 'जहाज'।

क्राकन(पु)।—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'क्राकन'। उ०—बाजे शंस
बीन स्वर सोई। क्राकन केरी बाजन होई।—कबीर सा०,
पृ० १८४।

क्राकनी(पु)।—वि० [सं० क्राक; प्रा० क्राक, दाक; राज० क्राक] १.
दगध करनेवाली। जलानेवाली। इतनी अधिक शीतल
जिससे जलने का भाव प्रतीत हो। उ०—पति बण ऊनिमि
आवियउ, क्राकनी रिठि कड़ाह। बग ही भला त बप्पड़ा,
घरणि न मुकह पाइ।—ढोला०, पृ० २५७।

क्राट^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंज। निकुंज। २. क्राट्टी। ३. ब्रण
का प्रसारण। धाव को धोना।

क्राट^२—संज्ञा पुं० [देश०] सस्त्रों का प्रहार। उ०—पड़ क्राट बाट
खल राज पाट, दिल्लीस जले बल बले बाट।—रा० क०,
पृ० ७४।

क्राटकपट—संज्ञा पुं० [सं० क्राटक पट ?] एक प्रकार की ताजीम
जो राजपूताने के राजदरबारों में अधिक प्रतिष्ठित सरदारों
को मिला करती थी।

क्राटल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का लोघ। गोलीड। बंटा-
पटल। २. मोरवा नामक वृक्ष।

विशेष—यह सफेद और काला होने के कारण दो प्रकार का
होता है। धाक की भाँति इसमें से भी दूध निकलता है।
इसके पत्ते बड़े बड़े होते हैं और फल घंटियों की भाँति
लटकते हैं।

क्राटल(पु)।—वि० [?] माहव। वस्तु। उ०—भटक क्राटल
छोड़ल ठाम। कएल महातय तर बिसराम।—विद्यापति,
पृ० ३०३।

क्राटा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। २. धुई प्राँवला।

भाटासत्रक—संज्ञा पु० [सं०] तरबूज । मतीरा [की०] ।

भाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुई पायला ।

पर्या०—भाटा । भाटीका । भाटी ।

भाट^१—संज्ञा पु० [सं० भाट; देशी भाट (= लतागहन) १. वह छोटा पेड़ या कुछ बड़ा पौधा जिसमें पेड़ी न हो और जिसकी डालियाँ जड़ या जमीन के बहुत पास से निकलकर चारों ओर खूब छितराई हुई हों । पौधे से इसमें अंतर यह है कि यह कटीला होता है । २. भाट के आकार का एक प्रकार का रोखनी करने का सामान जो छत में लटकाया या जमीन पर बैठकी की तरह रखा जाता है ।

विशेष—इसमें कई ऊपर नीचे वृत्तों में बहुत से पीने के गिलास लगे हुए होते हैं, जिनमें मोमबत्ती, गैस या बिजली आदि का प्रकाश होता है । नीचे से ऊपर की ओर के गिलासों के बूत बराबर छोटे होते जाते हैं ।

यो०—भाट फावूस = पीने के भाट, हाड़ियाँ और गिलास आदि जिनका व्यवहार रोखनी और सजावट आदि के लिये होता है ।

१. एक प्रकार की आतिशबाजी जो छूटने पर भाट या बड़े पौधे के आकार की जान पड़ती है । ४. छीपियों का एक प्रकार का छाया, जो प्रायः दस अंगुल चौड़ा और बीस अंगुल लंबा होता है और जिसमें छोटे पेड़ या भाट की आकृति बनी रहती है । ५. समुद्र में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की घास जिसे जरस या जार भी कहते हैं ।—(लश०) । ६. गुच्छा । लच्छा ।

भाट^२—संज्ञा स्त्री० [हि० भाटना] १. भाटने की क्रिया । झटक-कर या भाटू आदि देकर साफ करने की क्रिया ।

यो०—भाट पोछ = भाट और पोछकर साफ करने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग योगिक शब्दों ही में विशेषतः होता है । जैसे, भाटपोछ, भाटबुहार, भाटभूट ।

२. बहुत डाँट या फटकारकर कही हुई बात । फटकार । डाँटपट ।

क्रि० प्र०—देना ।—बताना ।—सुनना ।—सुनाना ।

३. मंत्र से भाटने की क्रिया ।

यो०—भाट फूँक = मंत्रोपचार ।

भाट^३—संज्ञा पु० [हि० भाटना] झटका (कुपती) ।

भाटखंड—संज्ञा पु० [हि० भाट + भंड] १. काटिदार जंगल । वन । ऐसा वनविभाग जिसमें अधिकतर भरबेरी आदि के कंटीले भाट हों । २. अत्यंत घना और भयंकर जंगल । ३. छत्तीसगढ़ और गोडवाने का उत्तरी भाग । भारखंड ।

भाट भंखाड़—संज्ञा पु० [हि० भाट + भंखाड़] १. काटिदार भाटियों का समूह । २. व्यर्थ की निकम्मी चीजों का समूह ।

भाटबुहार^१—वि० [हि० भाट + फा० वार] १. सघन । घना । २. कंटीला । काटिदार । ३. जिसपर भाट या बेलबूटे आदि बने

हों । ४. जिसमें बीने के भाट की सजावट हो । जैसे,—भाटबुहार कमरा ।

भाटबुहार^२—संज्ञा पु० १. एक प्रकार का कसीबा जिसमें बड़े बड़े बेल बूटे बने होते हैं । २. एक प्रकार का मसीबा जिसपर बड़े बड़े बेल बूटे बने होते हैं ।

भाटन—संज्ञा स्त्री [हि० भाटना] १. वह जो कुछ भाटने पर निकसे । २. वह कपड़ा आदि जिससे कोई चीज गर्द आदि दूर करने के लिये भाटी जाय । भाटने का कपड़ा ।

भाटना^१—क्रि० सं० [सं० क्षरण] १. किसी चीज पर पड़ी हुई गर्द आदि साफ करने या और कोई चीज हटाने के लिये उस चीज को उठाकर झटका देना । झटकारना । फटकारना । जैसे,—जरा दरी और बाँदनी भाट दो । २. झटका देकर किसी एक चीज पर पड़ी हुई किसी दूसरी चीज को गिराना । जैसे,—इस अंगोछे पर बहुत से बीज चिपक गए हैं, जरा उन्हें भाट दो । ३. भाटू या कपड़े आदि की रगड़ या झटके से किसी चीज पर पड़ी या लगी हुई दूसरी चीज गिराना या हटाना । जैसे,—इन किताबों पर की गर्द भाट दो । ४. भाटू या कपड़े आदि के द्वारा भयवा और किसी प्रकार गर्द मैल, या और कोई चीज हटाकर कोई दूसरी चीज साफ करना । जैसे,—(क) सवेरे उठते ही उन्हें सारा घर भाटना पड़ता है । (ख) इस मेज को भाट दो ।

संयो० क्रि०—झासना ।—देना ।—लेना ।

५. बल या युक्तिपूर्वक किसी से धन ऐंठना । झटकना ।—(कव०) ।

संयो० क्रि०—लेना ।

६. रोग या प्रेतबाधा आदि दूर करने के लिये किसी को मंत्र आदि से फूँकना । मंत्रोच्चार करना । जैसे, वजर भाटना ।

संयो० क्रि०—देना ।

७. बिगड़कर कड़ी कड़ी बातें कहना । फटकारना । डाँटना ।

संयो० क्रि०—देना ।

८. निकालना । दूर करना । हटाना । छुड़ाना । जैसे,—गुम्हारी सारी बबमाशी भाट देंगे । उ०—मोहँ ते ये चतुर कहावति । ये मनही मन मोको नारति । ऐसे वचन कहँगी इन तें चतुराई इनकी मैं नारति ।—सूर (शब्द०) । ९. अपनी योग्यता दिखाने के लिये गढ़ गढ़कर बातें करना । जैसे,—वह आते ही अंगरेजी भाटने लगा । १०. त्यागना । छोड़ना । गिराना । जैसे, बिड़ियों का पंख भाटना ।

भाटफूँक—संज्ञा स्त्री० [हि० भाटना + फूँकना] मंत्र आदि से भाटने या फूँकने की वह क्रिया जो मृत प्रेत आदि की बाधाओं प्रथवा रोगों आदि को दूर करने के लिये की जाती है । मंत्र आदि पढ़कर भाटना या फूँकना ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—होना ।

भाटबुहार—संज्ञा स्त्री० [हि० भाटना + बुहारना] भाटने और बुहारने की क्रिया । सफाई ।

भाङ्गा—संज्ञा पुं० [हि० भाङ्गना] १. भाङ्ग फूँक । २. तलाशी । ३. सितार के सब तारों (विशेषतः बाजे का तार और चिकारी का तार) को एक साथ बजाना । भाबा । ४. मल । मुद्द । पैसा ।

मुहा०—भाङ्गा फिरना = मलोत्सर्ग करना । हगना । भाङ्गा फिराना = हगाना । छोटे बच्चों को मलत्याग कराना ।

५. मलोत्सर्ग का स्थान । पाखाना । टट्टी ।

क्रि० प्र०—जाना ।

भाङ्गी—संज्ञा स्त्री० [हि० भाङ्ग] १. छोटा भाङ्ग । पोषा । २. बहुत से छोटे छोटे पेड़ों का समूह या झुरमुट । ३. सुघर के बालों की कूँची । बलीछी ।

भाङ्गीदार—वि० [हि० भाङ्गी + फा० दार] भाङ्गी की तरह का । छोटे भाङ्ग का सा । २. कंटीला । काँटेदार ।

भाङ्गू—संज्ञा स्त्री० [हि० भाङ्गना] १. बहुत सी लंबी सीकों आदि का समूह जिससे जमीन, फर्श आदि भाङ्गते हैं । कूँचा । बोहारी । सोहनी । बड़नी ।

मुहा०—भाङ्गू देना = (१) भाङ्गू की सहायता से कड़ा करकट साफ करना । (२) दे० 'भाङ्गू फेरना' । भाङ्गू फिरना = सफाया हो जाना । कुछ न रहना । भाङ्गू फेरना = बिलकुल नष्ट कर देना । भाङ्गू मारना = (१) धृष्टा करना । (२) निरावर करना । (लि०) ।

२. पुच्छल तारा । केतु । दुमदार सितारा ।

भाङ्गूकश—संज्ञा पुं० [हि० भाङ्गू + फा० कश] १. भाङ्गू देनेवाला । भाङ्गू बरदार । २. अंगी । मेहतर । चमार ।

भाङ्गूदुमा—संज्ञा पुं० [हि० भाङ्गू + दुम] वह हाथी जिसकी दुम भाङ्गू की तरह फैली हो । ऐसा हाथी ऐसी गिना जाता है ।

भाङ्गूबरदार—संज्ञा पुं० [हि० भाङ्गू + फा० बरदार] १. वह जो भाङ्गू देता हो । २. चमार । अंगी । मेहतर ।

भाङ्गूबाला—संज्ञा पुं० [हि० भाङ्गू + बाला] १. वह जो भाङ्गू देता हो । भाङ्गू बरदार । २. अंगी, मेहतर या चमार ।

भायू—संज्ञा पुं० [सं० ध्यान, प्रा० भाण] १. अंतःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव । मानसिक प्रत्यक्ष । ध्यान । २. हठयोग के अनुसार वह साधना जिसमें शरीर के भीतरी पाँच तत्वों के साथ पंचमहाभूतों का ध्यान करके उन्हें ऊर्ध्व में स्थित किया जाता है ।

भायी०—संज्ञा स्त्री० [सं० व्यापृ, प्रा० भाती या देश०] ध्यान करनेवाला । चितक । उ०—लंडित निद्रा मल्प ग्रहारी । भाती पावे मनसे भारी ।—प्राण०, पृ० ८९ ।

भापड़०—संज्ञा पुं० [हि० भापना] गोपन । छिपाव । उ०—घातर घुतर गरि, से कइसे जएवहु तरि, भारति न करइ भाप ।—विद्यापति, पृ० १५८ ।

क्रि० प्र०—करना ।

भापड़—संज्ञा पुं० [सं० अपेटा] बप्पड़ । पड़ाका । लप्पड़ । तमाषा । क्रि० प्र०—मारना ।—सगला ।

मुहा०—भापड़ कसना । भापड़ देना । भापड़ मारना = बप्पड़ मारना । उ०—यदि कोई बोल दे तो बिना एकाध भापड़ मारे मानते भी नहीं ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० ९७ ।

भापा०—संज्ञा स्त्री० [प्रा० भाप, हि० भापना] १. भपकी । तंदा । २. कमचोरी । विपिलता । उ०—कहा होई जो भी दुख तापा । सुखे जीय बाहु जो भापा ।—ईश०, पृ० १५१ ।

भाबर^१—संज्ञा पुं० [?] दलदली घूमि ।

भाबर^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भाबा' । उ०—पुनि भाबर पै भाबर भाई । चिरित लौड का कहीं मिठाई ।—जायसी (शब्द०) ।

भाबा—संज्ञा पुं० [हि० भापना (= डोकना)] १. टोकरा । लार्वा । हठ्ठे का बड़ा दौरा ।—उ०—हम लोग दो रोटी के लिये सिर पर भाबा रखे तरकारी बेचते फिरें ।—फूल०, पृ० ३१ । २. घी, तेल आदि तरल पदार्थों के रखने का बमड़े का टोंटीदार बरतन । ३. बमड़े का बना हुआ गोल घाल जिसमें पंजाब में लोग घाटा छानते हैं । इसे सफरा कहते हैं । ४. रोशनी का भाङ्ग जो लटकाया जाता है । ५. दे० 'भाबा' ।

भाबी—संज्ञा स्त्री० [हि० भाबा] छोटा भाबा । टोकरी ।

भास०—संज्ञा पुं० [देश०] १. भम्बा । गुच्छा । उ०—सुंदर हसन बिबुल भति सुंदर हृदय विराजत वाम । सुंदर मुखा पीत पट सुंदर कनक मेखला भास ।—सूर (शब्द०) । २. एक प्रकार की बड़ी कुदाल जिससे कुएँ की मिट्टी निकालते हैं । ३. चुड़की । डाट डपट । ४. बोझा । छल । कपट ।

भासक—संज्ञा पुं० [सं०] जली हुई ईंट । भावी ।

भासर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. टेकुआ रगड़ने की साम । तर्कशाण । सिल्ली । २. स्त्रियों का पैर में पहनने का एक गहना जो पैजनी की तरह का होता है ।

भासर^२—वि० [सं० श्यामल, प्रा० भासर] मलिन । सविला । भावर । उ०—एव भेल विपरीत भासर देहा । दिवसे मलिन अनु बाँक रेहा ।—विद्यापति, पृ० १३३ ।

भासरभूमर०—संज्ञा स्त्री० [अनुच्य०] बमक दमक । धूमधाम । झूठा प्रपंच । ढकोसझा । उ०—दुनिया भासरभूमर ग्रहकी ।—कबीर० श०, पृ० ४१ ।

भासरि०—वि० स्त्री० [सं० श्यामल, प्रा० भासर] दे० 'भासर' । उ०—सामरि हे भासरि तोर देह, की कह के सयँ लाएलि नेह ।—विद्यापति, भा० २, पृ० ५६ ।

भासि०—संज्ञा पुं० [सं० श्यामल, प्रा० भासल] 'भावा' । उ०—शरीर का पसीवा शरीर पर सुख कैदियों की तबका कड़ी घोर भास की तरह झुरदुरी हो गई ।—अस्मादुत०, पृ० २० ।

भासी०—वि० संज्ञा पुं० [हि० भास] बोखेबाज । बाबाक । धूर्त । जिनके मंत्र न कोऊ भासी । झूठि न बाबि न परतिष-गामी ।—पद्माकर (शब्द०) ।

मायँ मायँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झनकार । झग झग शब्द । २. झन्नाटे में हुवा का शब्द । वह शब्द जो किसी सुखदान

स्थान में हवा के बहने तथा गूँज आदि के कारण सुनाई पड़ता है और जिससे कुछ भय सा होता है। जैसे, इतना बड़ा सूबा घर कार्य कार्य करता है।

कार^१—वि० [सं० सचं, प्रा० सारो, हि० सारा] १. एकमात्र। निपट। केवल। उ०—दीयो दधि दान को सुकेई ताहि आवत है बाहि पच भायो भार भगरो गोपास को।—पद्माकर (शब्द०)। २. संपूर्ण। कुल। सब। समस्त। उ०—के नख तें सिल कों पद्माकर जाहिरे भार सिंगार कियो है।—पद्माकर प्र०, पृ० १५८। ३. समूह। मुँह।

यो०—कारकार। काराकार।

कार^२—संज्ञा स्त्री० [सं० कारा (= ताप,)] १. बाह। डाह। ज्वन। ईर्ष्या। उ०—मोसो कहो बात बाबा यह बहुत करत तुम सोच बिचार। कहा कहों तुम सों मैं प्यारे कंस करत तुमसों कुछ भार।—सूर०, १०।५३०। २. ज्वाला। लपट। धाँव। उ०—(क) जनई छाह में धूप दिखाई। तेसे कार लाम जो धाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) नाम से बिजात बिलखात प्रकुलात प्रति तात तात तौसियत भोसियत कारहीं।—तुलसी प्र०, पृ० १७४। (ग) गरज किलक आघात उठत मनु दामिनि पावक कार।—सूर (शब्द०)। ३. झाल। चरपरापन। उ०—छाँछ छाँचीं चरी धुंगारी। भरहे उठत कार की न्यारी।—सूर (शब्द०)। ४. वर्षा की बूँदें। झड़ी।

कार^३—संज्ञा पुं० [हि० कड़ना] करना। पीना।

कार^४—संज्ञा पुं० [सं० कार, देशी काड़ (= लता गहन)] १. वृक्ष। पेड़। काड़। २. एक पेड़ का नाम।

कारखंड—संज्ञा पुं० [हि० काड़ + खंड] १. एक पहाड़ जो वैष्णवाय होता हुआ जगन्नाथ पुरी तक चला गया है।

विशेष—मुसलमानों ने अपने इतिहास प्रबंधों में छत्तीसगढ़ और चौबाने के उत्तरी भाग को कारखंड के नाम से लिखा है।

२. दे० काड़खंड।

कारन—क्रि० सं० [हि० काड़ना] दे० 'भाइन'।

कारना^१—क्रि० सं० [सं० कार] १. बाल साफ करने के लिये कंबी करना। २. छटना। अलग करना। जुदा करना। ३. दे० 'काड़ना'।

कारना^२—क्रि० सं० [हि० कलना] दे० 'कलना'। उ०—सुरति चंदर सै सममुख भारे।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १७।

कारफूँक—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'काड़फूँक'।

कारा^१—संज्ञा पुं० [हि० कारवा] १. पतली खी हुई भाँच। २. वह रूप जिससे घस को फटककर सरसों इत्यादि से पुथक करते हैं। करना। † ३. छाठी तेजी से चवाने का हुनर।

कारा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला, हि० झाल] झार। ज्वाला। उ०—घोर दग्ध का कहों अपारा। सुनै सो जरे कठिण घसि झारा।—पद्माकर, पृ० २४१।

कारि^१—वि० [हि० कार] दे० 'कार'। उ०—कहहु सुमंत

बिचारि केहि बालक घोटक गह्यो। बसै इहाँ जहि कारि लखिन कर न निवास इत।—(शब्द०)।

कारि^२—संज्ञा स्त्री० [हि० कड़ी, या सं० धार (= धारा)] धनचरत वर्षा की कड़ी। धलंड बूँदों की धारा। उ०—मेघवि बाह कही पुकारि। सात दिव भरि बरसि जल पर नई नैकु न कारि।—सूर०, १०।८८२।

कारि^३—संज्ञा स्त्री० [हि० करना] लुटिया की तरह एक प्रकार का लंबोतरा पात्र जिसमें जल गिराने के लिये एक छोटी एक टोंटी लगी रहती है। इस टोंटी में दो बार बंधकर जल निकलता है। इसका व्यवहार देवताओं पर जल चढ़ाने भयवा हाथ पर आदि धुलाने में होता है। उ०—(क) घासन दे चौकी घागे धरि। जमुनाजल राख्यो कारी भरि।—सूर (शब्द०)। (ख) आपुन कारी माँघि विष के चरन पछारे। इती दूर भ्रम कियो राज बिज भए दुखारे।—सूर (शब्द०)।

कारि^४—संज्ञा स्त्री० [सं० कारि] वह पानी जिसमें घमचूर, जीरा, नमक आदि धुला हुआ हो। इसका व्यवहार पवित्र में अधिक होता है।

कारि^५—संज्ञा स्त्री० [हि० काड़ी] दे० 'काड़ी'। उ०—फूल करें सखी फूलवारी। दिस्टि परी उकठी 'सब कारी'।—जायसी प्र०, पृ० २५४।

कारि^६—वि० [हि०] दे० 'कार'।

कारु—संज्ञा पुं० [हि० काड़ू] दे० 'काड़ू'।

कारनेवाला—वि० [सं० कर्त्ता प्रा० कर्त्तृ, हि० कारा+वाला (प्रत्य०)] पटा खेलनेवाला। पठा। बनेटी या लकड़ी चलानेवाला।

कारभर—संज्ञा पुं० [सं०] ढोल या हड्डक बाजा बजानेवाला [को०]।

काल^१—संज्ञा पुं० [सं० कालक] काल। काल का बना हुआ ताल देने का वाद्य। उ०—सहस्र गुजार में परमली काल है, किलमिली उलटि के पीन भरना।—पल्लव, पृ० ३०।

काल^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. रहट्टे का बड़ा छाँचा। २. काखने की क्रिया या भाव।

काल^३—संज्ञा स्त्री० [सं० काला] १. चरपराहट। तीतापन। तीक्ष्णता। जैसे, गई की काल, मिरचे की काल। २. तरंग। भोज। खहर। ३. कामेच्छा। चुल। प्रसंग करने की कामना। कल।

काल^४—संज्ञा पुं० [हि० कड़] दो तीन दिन की लगातार पानी की कड़ी जो प्रायः जाड़े में होती है। उ०—जिन जिन संबल नाँ किया घसपुर पाटन पाय। काल परे दिन आथए संबल किया न जाय।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

काल^५—वि० [हि० कार] दे० 'कार'।

काल^६—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाल, प्रा० झाल] १. धाँव। ज्वाला। उ०—धमिल के झाल मे साँकड़े पैसता बैठे ऊठे श्री राम रक्षा करें।—रामानंद०, पृ० ६। †२. शीघ्र जल। उ०—घाये भेल झाल कुसुम सब छुछ। बारि विहून सर केमो वंछि पुछ।—बिद्यापति, पृ० ३१५।

मालव—संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लरी] १. घड़ियाल जो पूजा आदि के समय बजाया जाता है। २. दे० 'मालर'।

मालिना^१—क्रि० सं० [हि०?] १. घातु की बनी हुई वस्तुओं में टाँका देकर जोड़ लगाना। २. पीने की चीजों को बोतल आदि में भरकर ठंडा करने के लिये बरफ या सोबे में रखना। संयो० क्रि०—देना।

मालिनी^१—क्रि० सं० [सं० मेल; प्रा० मेल; हि० मेलना] प्रहृष्ट करवा। धारण करवा। उ०—जिणि दीहे तिल्लो जिह्वा, हिरणी मालिनी गाय। तहि दिहारी गोरड़ी पड़त मालिनी गाय।—ढोला०, दू० २८२। २. कबूल करना। स्वीकार। करना। उ०—केतीह माली चाकरी, ठूँण हजाका बीध।—रा०, पृ० १२९।

मालर^१—संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लरी] १. किसी चीज के किनारे पर बोधा के लिये बनाया, लगाया या टाँका हुआ वह हाथिया जो लचकता रहता है।

विशेष—इसकी चौड़ाई प्रायः कम हुपा करती है और उसमें सुंदरता के लिये कुछ बेल बूटे आदि बने रहते हैं। मुख्यतः मालर कपड़े में ही होती है, पर दूसरी चीजों में भी बोधा के लिये मालर के आकार की कोई चीज बना या लगा लेते हैं। जैसे, गद्दी या तकिये की मालर, पंखे की मालर। २. मालर के आकार की या किनारे पर लटकती हुई कोई चीज। ३. किनारा। छोर।—(शब्०)। ४. मालिनी। माल। उ०—(क) मुन्न सिलर पर मालर मलके बरसे अभी रस बुंद चुपा।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १०। (ख) बुरत निस्साम तहँ गैब की मालरा गैब के घंट का नाद घावे।—कबीर श०, पृ० ८८। ५. घड़ियाल जो पूजा आदि के समय बजाया जाता है। उ०—घटे क्रिया बाँधण, मिटे मालर परसावा। इन प्रजा उपजे, निरख दुर रीत निसादा।—रा० क०, पृ० २०।

मालर^२—संज्ञा पुं० [देश० १.] एक प्रकार का पकवाव जिसे मलरा भी कहते हैं। उ०—मालर मणि घाय रोई। देखत उजर पाग जस बोई।—बायली (शब्द०)।

मालरदार—वि० [हि० मालर + दार प्रत्य०] जिसमें मालर लगी हो।

मालरना—क्रि० घ० [हि०] दे० 'मलराना'। उ०—नेक न मुरसी बिरह भर नेह लता कुंभिलाति। निति निति होति हरी हरी करी मालरति जाति।—बिहारी (शब्द०)।

मालरा^१—संज्ञा पुं० [हि० मालर] एक प्रकार का रुपहला हार। हुयेल।

मालरा^२—संज्ञा पुं० [हि० ताल] चौड़ा कुर्छा। बावली। कुंड।

मालरि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० मालर] बंदनवार। लटकते हुए मोती आदि की पंक्ति। उ०—कनक कलस धरि मंगल गावो, मोतियन मालरि लाव हो।—बरम०, पृ० ४६।

मालरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लरी] दे० 'माल'। उ०—घंटा ताल

मालरी बावै। जग मग जोति धवनि पुर लावै।—रामानंद०, पृ० ७।

माला^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. राजपूतों की एक जाति जो गुजरात और मारवाड़ में पाई जाती है। २. सितार बजाने में मत के अंत में हुत गति से बाज और चिकारी के जातों का भाड़ा बजाना। ३. बकभक। माली।

माला^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला, प्रा० माला] वाह। ताप। जलन। बीस। उ०—तपन तब, जिव उठत माला, कठिन हुल मय को सहे।—संतबानी०, भा० २, पृ० १९।

मालि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० मल] पानी की झड़ी। माल। उ०—मालि परे दिन घयए अंतर परि गइ सकि। बहुत रसिक के लागते बेध्या रहिगै बाकि।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—छावा।—पड़वा।

मालि^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की काँजी जो कच्चे घाम को पीसकर उसमें राई, नमक और धुनी मिलाकर बनाई जाती है। माली।

मालि^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बकवाद। बकबक। २. हुज्जत तकरार।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

मालरि^१—संज्ञा पुं० [हि० मूलर] दे० 'मूलर'। उ०—कहत गोल की गोल खेल खेलन मालरि हित।—मेमघन०, भा० १, पृ० १३।

मालना^१—क्रि० सं० [हि० माला से नाम०] मालों के रगड़कर बोलना। मेल साफ करना। उ०—नायन गृहवायके गुलायनि के पाँय माले, उभकि उभकि उठे वा कर लसन ते।—नट०, पृ० ७४।

मालर—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मालर'।

मालु, मालुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'माल'।

मिगी—संज्ञा स्त्री० [सं० मिङ्गाक] तरोई। लोरी। तुरई।

मिगनसंज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का पेड़ जिसकी पत्ती के लाल रंग बनता है। २. सारस्वत ब्राह्मणों की एक जाति।

मिगरि^१—संज्ञा पुं० [दे० प्रा० मिगिर]। उ०—मिगरि बलुर पावस निगाव।—पृ० रा०, १। ४३४।

मिगा^१—वि० [देश०? मिगिर(१) मिगर] मीगुर के समान। मीगुर की ध्वनि सा। उ०—घनहृष मिगा शब्द सुनायो।—कबीर श०, भा० १, पृ० ३७।

मिगाक—संज्ञा पुं० [सं० मिङ्गाक] तरोई। लोरी।

मिगिनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० मिङ्गिनी] एक प्रकार का जंगली वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है। इसके पत्ते महए के समान और शाखाओं में दोनों ओर लगते हैं। फूल सफेद और फल बेर के समान होते हैं।

पर्या०—मिगी। मिगिनी। मिगिनी। प्रमोदिनी। सुनिर्यास।

२. प्रकाश। ज्योति। चमक। लुक (को०)।

मिगिनी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] शुद्ध कीटविशेष। खद्योत। लुण्ठ। उ०—चमकत सार सनाह पर, हुय गय नर सर

जगि । जगौ दुख परि मिमिनिदी, करत केहि निसि जगि ।
—पु० रा०, ८ । ४३ ।

मिमिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मिमिनी] दे० 'मिमिनी' ।

मिमिका—वि० [देशी] प्रत्यंत सीख । दुर्बल ।

मिमिकस—संज्ञा पुं० [सं० मिमिकस] जलता हुआ वन की० ।

मिमिकिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'मिमिकिया' ।

मिमिरिस्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० मिमिरिस्टा] मिमिरिस्टा नामक
वृक्ष ।

मिमिरीटा—संज्ञा स्त्री० [सं० मिमिरिस्टा] एक प्रकार का वृक्ष ।

मिमि—संज्ञा स्त्री० [सं० मिमि] मिमि । भीगुर ।

मिमोटो—संज्ञा स्त्री० [देश०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें
एक शुद्ध स्वर लगते हैं । यह दिन के चौथे पहर में गाई
जाती है ।

मिमिटी—संज्ञा स्त्री० [सं० मिमिटी] कठसरैया । पियावासा ।

मिमिका—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मीका' । उ०—बोले बलु जंतवा,
भूमिकि लेहु मिमिका, देवस मुखल मेवा पाहुन रे की ।—कबीर
(शब्द०) ।

मिमिनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] तरोई । तुरई ।

मिमिबा—संज्ञा स्त्री० [सं० मिमिबा, मिमिबा] एक प्रकार की छोटी
मछली जिसके मुँह और पूँछ के पास दोनों तरफ बाल
होते हैं ।

मिमिगारना—संज्ञा स्त्री० [हि० भीगुर या भनकार] भीगुर का
शब्द होना । भीगुर का शब्द करना ।

मिमिगुली—संज्ञा स्त्री० [हि० भगा] छोटे बच्चों के पहनने का
कुरता । भगा । उ०—पीत मीन मिगुली तन सोही ।
किष्ककि चितवनि भावति मोही ।—तुलसी (शब्द०) ।

मिमिगोरना—संज्ञा स्त्री० [सं० मिमिगोरना] भनकार करना । कूकना
आवाज करना । पिहकना । उ०—हंगरिया हरिया हुआ बये
मिमिगोरना मोर । हण रिति तीखइ नीसरइ, जाचक, चातक,
चोर ।—ढोला०, पु० २५३ ।

मिमि—वि० स्त्री० [देशी] मीनी । प्रत्यंत सीख । उ०—कहहि
कबीर किहि देवहु खोरी । जब बलिहहु मिमि भासा तोरी ।
—कबीर स्त्री०, पु० २८२ ।

मिमिकिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छोटे छोटे छेदोंवाला वह घड़ा
जिसमें दीया बाज कर कुम्हार के महीने में लड़कियाँ घुमाती
हैं । उ०—जालरंध मग हूँ कड़े तिय तन दीपति पुंज ।
मिमिकिया कैसे घट अयो दिन ही में बनकुंज ।—मतिराम
(शब्द०) ।

मिमोटो, मिमोटो—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मिमोटो' ।

मिमिभोरना—संज्ञा स्त्री० [हि० भनकारना] दे० 'भनकारना' ।
उ०—नहि नहि करण नयन ठर मोर । काँच कमल ममरा
मिमिभोर ।—विद्यापति, पु० २०४ ।

मिमिकना—संज्ञा स्त्री० [हि० मिमिका] देखना । ताकना । उ०—

बसबीन हूँ नैव भिके भिकिके मनो जंजन मीन पे बाल परे ।
—ठाकुर (शब्द०) ।

मिमिखना—संज्ञा स्त्री० [हि०] टिमटिमाना । उ०—भनकंत
बगसर टोप भिले । रसबाहु निसा प्रतिभ्यंख रले ।—रा० क०,
पु० ३४ ।

मिमिखना—संज्ञा स्त्री० [हि० भीखना] दे० 'भीखना' । उ०—
भोर जगि प्यारी भन ऊरध इते सी भोर भाबी लिमि भिरकि
उचारि भन पलके ।—पद्माकर (शब्द०) ।

मिमिडा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'भगडा' ।

मिमिमिगा—संज्ञा स्त्री० [हि० मिलमिल] दे० 'मिलमिल' । उ०—हीस
रहया विल मोहि दर्शन साई दा । साई दा साई दा मिमिमिग
भाई दा ।—राम० धर्म०, पु० ४६ ।

मिमिगारा, मिमिगारो—संज्ञा पुं० [अनु०] भगवा । भनका । उ०—
समुभिय जग जनमें को फल मन में, हरि सुभिरन में दिन
भरिए । मिमिगारो बहुतेरो धेव धनेरो मेरो तेरो परिहरिए ।—
भिवारी० प्र०, भा० १, पु० २२६ ।

मिमिक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'भनक' ।

मिमिकना—संज्ञा स्त्री० [हि० भनक, मिमिक] दे० 'भनकना' ।
उ०—बहाँ संचे बलें तजि प्रापुनपी भनिके कपटी गो निसाक
नहीं ।—चनानंद (शब्द०) ।

मिमिकार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'भनकार' ।

मिमिकारना—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. दे० 'भनकारना' । उ०—
वोही डंग तुम रहे कन्हाई सबै उठी भनिकारि । लेहु प्रसीस
सबन के मुख ते कर्ताहि दिबावत गारि ।—सूर (शब्द०) । २.
दे० 'भनकना' । उ०—रसना मति इत नैना निज गुन लीन ।
कर तें पिय भनिकारे अजुगति कीन ।—रहीम (शब्द०) ।

मिमिकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भनक' । उ०—भुकि भनिक भनिकी
करति, उभकि भनिकनि बाल ।—ब्रज० प्र०, पु० २ ।

मिमिकि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भनक' ।

मिमिकिना—संज्ञा स्त्री० [हि० भनिक + ना (प्रत्यय०)] उ०—
बसबीन हूँ नैव भिके भिकिके मनो जंजन मीन पे बाल परे ।
—ठाकुर (शब्द०) ।

मिमिकिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'मिमिकिया' ।

मिमिभोरना—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'भनकारना' । उ०—उसे
मिमिभोरकर उसने हिला दिया, क्योंकि मधुबन का वह रूप
देखकर मैना को भी अय लगा ।—तितली, पु० १८६ ।

मिमिका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भनका' । उ०—एक मिमिका सा लगा
सहयं । निरखने लगे लुटे से, कोन । गा रहा यह सुंदर संगीत ?
कुतूहल रह न सका फिर मोन ।—कामायनी, पु० ४५ ।

मिमिकारना—संज्ञा स्त्री० [हि० मिमिका] दे० 'भनकारना' या
'भनकना' ।

मिमिका—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'मिमिकी' ।

मिमिकना—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. प्रवृत्ति या तिरस्कारपूर्वक
बिगड़कर कोई बात कहना । २. प्रलय कैंक देना । भनकना ।
—(शब्द०) ।

मिड़की—संज्ञा स्त्री० [हि० मिड़कना] १. वह बात जो मिड़ककर कही जाय। डाँट। फटकार।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।—सुनना।

२. मिड़कने की क्रिया या भाव।

मिड़मिड़ाना—क्रि० प्र० [धनु०] भला बुरा कहना। कटु वचन कहना। चिड़चिड़ाना।

मिड़मिड़ाना—संज्ञा स्त्री० [हि० मिड़मिड़ाना] मिड़मिड़ाने का भाव या क्रिया।—(शब्द०)।

मिनमिन(५)—संज्ञा स्त्री० [धनु०] दे० 'मन मन'। उ०—यह मिन-मिन जंतर बाजे आला। पीवे प्रेम होय मतवाला।—ब० सायर, पृ० ३८।

मिनवा—संज्ञा पुं० [देश०] महोदय बावल का भाव। उ०—राय-भोय धो काजरराखी। भिबवा कद धो दाउदखाली।—जायसी (शब्द०)।

मिनवा—वि० [सं० स्त्रीण, प्रा० स्त्रीण] दे० 'मोना'।

मिप् मिप्—क्रि० वि० [धनु०] रिमरिम शब्द के साथ। उ०—पहले नन्हीं नन्हीं बूँदे पड़ीं, पीछे बड़ी बड़ी बूँदों से मिप् मिप् पायी बरसने लगी।—ठेठ०, पृ० ३२।

मिपना—क्रि० प्र० [हि० छिपना] दे० 'मैपना'।

मिपाना—क्रि० प्र० [हि० मिपना का सं० रूप] लज्जित करना। शरमिदा करना।

मिमकना—क्रि० प्र० [धनु०] दे० 'ममकना'।

मिममिमि—वि० [हि० मीनी; या देशी मिमिष (= प्रवयवों की जड़ता)] मंद ज्योतिषाली। उ०—ससकी मिममिमि धौलों से उल्लास के आसु भड़के लगते।—पिण्डे०, पृ० ७५।

मिमिटना—क्रि० प्र० [हि० सिमटना] इकट्ठा होना। एक जगह जुट जाना। उ०—मिमिट घाते हैं जहाँ जो लोग, प्रकट कर कोई प्रकथ अभियोग। मौन रहते हैं खड़े बेचै, सिर झुका-कर फिर उठाते हैं ब।—साकेत, पृ० १७३।

मिर—संज्ञा स्त्री० [हि० मिर्री] दूँब। कुहवार। मिर्री। उ०—मिर पिचकारी की मची धाँधी उड़त गुलाब। यह धूँधरि धँसि लीजिए पकरि छबीले आल।—स० सप्तक, पृ० ३१०।

मिरकनहारी—वि० स्त्री० [हि० मिरकना + हारी (प्रत्य०)] मिड़कने-वाली। उ०—घातें तुमकी ठोठि कही। स्यामहि तुम मई मिरकनहारी एते पर पुनि हारि नहीं।—सूर०, १०।१५।३६।

मिरकना(५)—क्रि० प्र० [हि० मिड़कना] दे० 'मिड़कना'। उ०—(क) छरीदार बैराग बिनोदी मिरकि बाहिरें कीन्हें।—सूर०, १।४०। (ख) घोर जपि प्यारी पथ ऊरधं इत की घोर भाखी खिभि मिरकि उचारि पथ पखै।—पद्माकर (शब्द०)। २. धलंग फेंक देना। झटकना।—(शब्द०)। उ०—मुकुट शिर आखंड सोई निरखि रहि बजमारि। कोटि सूर कोदंड धामा मिरकि डारै वारि।—सूर (शब्द०)।

मिरमिर—क्रि० वि० [धनु०] १. मंद मंद। धीरे धीरे। उ०—

मिर मिर बहै बयार प्रेम रस डोलै हो।—घरम०, पृ० ४६।

२. मिर मिर शब्द के साथ।

मिरमिरा—वि० [हि० भरना] बहुत पतला या बारीक (कपड़ा आदि)। भँकरा। भोना।

मिरमिराना—क्रि० प्र० [धनु०] १. मिरमिर शब्द के साथ बहना (वायु, जल आदि)। २. दे० 'मिड़मिड़ाना'।

मिरना—क्रि० प्र० [सं० √सर, प्रा० मिर, हि० √भरना] बहकना। गिरना। प्रवाहित होना। 'भरना'। उ०—वहाँ तहाँ आँखों में मिरतो है भरनों की झड़ी पड़ी।—पंचवटी, पृ० ६।

मिरना—संज्ञा पुं० १. छेद। छिन्न। सुरास। २. दे० 'भरना'।

मिरमिर(५)—वि० [हि०] दे० 'मिलमिल'। उ०—मिरमिर बरसे मूर। बिन कर बाजे ताल तूर।—दरिया० बानी, पृ० ४८।

मिरहर, मिरहिर(५)—वि० [हि०] १. भोना। छिन्नित। छेदोंवाला। उ०—छिनहर घर घर मिरहर छाटी। घन गरबत कपे मेरा छाती।—कबीर प्र०, पृ० १८१। २. मिलमिल। मिलकदार उ०—गंग जमुन के बीच में एक मिरहिर नीरा हो।—घरम०, पृ० ३७।

मिरा—संज्ञा स्त्री० [हि० भरना (= रस कर निकलना)] घामवनी। घाय।

मिराना—क्रि० प्र० [हि०] मुराना।

मिरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मींगुर [को०]।

मिरिहिर(५)—वि० [धनु०] मंद मंद। धीरे धीरे। उ०—मिरि-हिरि बहै बयारि, असो रस डरकै हो।—पलटू०, भा० ३, पृ० ७३।

मिरी—संज्ञा स्त्री० [हि० भरना] १. छोटा छेद जिससे कोई द्रव पदार्थ धीरे धीरे बह जाय। दरज। शिगाफ। २. वह गड्ढा जिसमें पानी मिर मिरकर इकट्ठा हो। ३. कुएँ के बगल में से निकला हुआ छोटा सोता। ४. तुपार। पाखा। ५. वह फसल जिसे पाला मार गया हो।

मिरी—संज्ञा [सं०] मींगुर। मिरसी [को०]।

मिरीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मिरिका' [को०]।

मिरी—संज्ञा स्त्री० [हि० भरना या मिर्री] वह छोटा गड्ढा जो नाभी आदि में पानी रोकने के लिये खोदा जाता है। पेख्या।

मिलंगा—संज्ञा पुं० [हि० डोला + गंग] १. दूटी हुई खाट का बाध। २. ऐसी खाट जिसकी बुनावट ढोली पड़ गई हो।

मिलंगा—वि० १. ढीला ढाला। मोलदार। २. भोना।

मिलंगा—संज्ञा पुं० [हि० मींगा] दे० 'मींगा'।

मिलना—क्रि० प्र० [?] १. बसपूर्वक प्रवेश करना। घँसना। घुसना। उ०—मिमी फौज प्रतिभट गिरे खाइ घाव पर बाध। कुँवर कीर परबत चढयो बढयो युद्ध को बाध।—साख (शब्द०)। २. तृप्त होना। भरा जाना। उ०—मिले राम कृष्ण, मिले पाइके मनोरथ की, हिले दप रूप किए धुरि

धूरि धूरि को ।—प्रिया (शब्द) । ३. मान होना । तल्लीन होना । उ०—बनघो कर चमे धूरि रंग मोंभ मिले मानी जानी कष्ट चुक भरी यही सर धारि ।—प्रिया (शब्द०) । ४. (कष्ट धारि धारि) भेला जाना । सहा जाना । सहन होना । उदाहरण ।

मिलना^२—संज्ञा पुं० [व० मिलनी] भीगुर ।

मिलम—संज्ञा स्त्री [हि० मिलमिल] लोहे का बना हुआ एक प्रकार का भीमरदण्ड गहरावा दो भुजाई के समय मिर धीरे मुँह पर पहना जाता था । एक प्रकार का लोहे का टोप या खोल । उ०—भक्तकत धाम भक्त मिलम भक्तानि भक्त्यो तमकत धामे तेमनाही की गिन्यही कि ।—पद्माकर (शब्द०) ।

मिलमटोप—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मिलम' ।

मिलमलित^१—वि० [हि० मिलमिल + इत (प्रत्य०)] मिलमिलाता हुआ । पोपडा हुआ ।

मिलमा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो संयुक्त प्रांत में होता है ।

मिलमिल^१—संज्ञा स्त्री [घन०] १. काँपती हुई रोशनी । हिलता हुआ प्रकाश । भलमलता हुआ उजाला । २. ज्योति की अस्थिरता । रह रहकर प्रकाश के घटने बढ़ने की क्रिया । उ०—(क) हेरि हेरि बिर में न लौहों हिलमिल में रही हों हाथ भिन्न मे प्रभा की मिलमिल मे ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) पुंछ के घूमि के सु भूमके जवाहर के मिलमिल झालर को घूमि भिन्न भक्त जात । पद्माकर (शब्द०) । ३. बड़िया मलमल या सज्जेश की तरह का एक प्रकार का भारी और मुलायम कपड़ा । उ०—(ग) चंदोला जो खटुष भारी । धाम-पूर मिलमिल की गयी ।—जायगी (शब्द०) । (घ) राम धारि धीरे लगी है, जलना जलमल चोति जगी है । कबन भवस नश्वर सिद्धमल । धारन बाँधे मिलमिल बासन । तापर राखत जबत प्रकाशन । देखत छवि मति प्रेम पथी है ।—ममलाल (शब्द०) । (ङ) ४. घुड़ में पहनने का जोड़े का बन्धन । उ०—करव पास कीन्है के छहू । विप्र रूप धरि मिलमिल छहू । जायगी (शब्द०) ।

मिलमिल—वि० रह रहकर चमकता हुआ । भलमलता हुआ । उ०—नही किनारे में लड़ी पानी मिलमिल होय । मे मेली प्रिय उजरे मिलना किस विधि होय ।—(शब्द०) ।

मिलमिला—वि० [घन०] [वि० स्त्री० मिलमिली] १. जो नक या नाक न हो । २. जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों । भँकड़ा भँगा । ३. जिसमें रह रहकर हिलता हुआ प्रकाश निकले । ४. भलमलता हुआ । चमकता हुआ । ५. जो बहुत स्पष्ट न हो ।

मिलमिलाना^१—क्रि० ध० [घन०] १. रह रहकर चमकना । जुगजुगता । उ०—गल नल कषर प्रीव पुनि कंठ कपोटी केन ? पीक लीक जहँ मिलमिलत सो छवि कीने घन ।—प्रनेकायं, पृ० २६ । २. प्रकाश का हिलना । ज्योति का अस्थिर होना । ३. प्रकाश का टिमटिमाना ।

मिलमिलाना—क्रि० स० १. किसी चीज को इस प्रकार हिलाना कि जिसमें वह रह रहकर चमके । २. हिलाना । कपाना ।

मिलमिलाहट—संज्ञा स्त्री [घन०] मिलमिलाने की क्रिया या भाव ।

मिलमिली—संज्ञा स्त्री [हि० मिलमिल] १. एक दूसरे पर तिरछी लगी हुई बहुत सी घाड़ी पटरियों का ढाँचा जो किवाड़ों और खिड़कियों धारि में जड़ा रहता है । लड़खड़िया ।

विशेष—ये सब पटरियाँ पीछे की ओर पतली लंबी लकड़ी या लड़ से जड़ी होती हैं जिनकी सहायना से मिलमिली खोली या बंद की जाती है, इसका व्यवहार बाहर से धानेवाला प्रकाश धीरे गर्द धारि रोकने के लिये प्रयोज्य इसलिये होता है कि जिसमें बाहर से भीतर का दृश्य दिखलाई न पड़े । मिलमिली के पीछे लगी हुई लकड़ी या लड़ को बरा धा नीचे की ओर खींचने से एक दूसरे पर पड़ी पटरियाँ धसक धसक लड़ी हो जाती हैं और उन सबके बीच में इतना प्रकाश निकल आता है जिसमें से प्रकाश या वायु धारि अच्छी तरह जा सके ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—खोलना ।—गिराना ।—बंदाना ।

२. विक । मिलमल । ३. कान में पहनने का एक प्रकार का गहना । ४. देखने या शोभा के लिये मलनों में बनी जाली ।

मिलमिलाना^१—क्रि० स० [हि० मिलना का प्रे० रूप] मिलने का काम कराना । सहन कराना ।

मिलमिलि(पु)—वि० [घन०] दे० 'मिलमिल' । उ०—छाड़ी मिलमिलि नेह, पुरुष गम राखि के ।—धरम०, पृ० ५२ ।

मिलमिलि—संज्ञा स्त्री [हि० मिलमिल] दे० 'मिलमिल' । उ०—धरे टोप कुंडी कंगे कीच भंग । मिलमिल घटाटोप पेड़ी भ्रमंग—हृमो०, पृ० २४ ।

मिलली^१(पु)—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'मिल्ली' । उ०—भववात गोलिन की भनक जनु धनि ठुकार मिल्लीन की ।—पद्माकर वं०, पृ० १२ ।

मिल्ल—संज्ञा स्त्री [सं०] बीज की बाँट का एक प्रकार का बीज । इसकी छाल धीरे धीरे लाल होते हैं और पत्ते धीरे धीरे बहुत छोटे होते हैं ।

मिल्लड़—वि० [हि० मिल्ल] (बहु कपड़ा) जिसकी बुनावट धूर धूर पर हो । पतला धीरे भलरा (कपड़ा) । बप का उल्लाह ।

मिल्लन^१—संज्ञा स्त्री [देश०] बरी बुनने की करवे की वह कड़ी लकड़ी जिसमें के का बाँस लगा रहता है । गुरिया ।

मिल्ला—वि० [घन०] [वि० स्त्री० मिल्ली] १. पतला । बारोक । २. भँकड़ा । जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों ।

मिल्लि—संज्ञा स्त्री [सं०] १. एक बाजे का नाम । २. मिल्ली । ३. चिमड़ा काणज । चर्मपत्र [को०] ।

मिल्लिका—संज्ञा स्त्री [सं०] १. भीगुर । मिल्ली । २. मिल्ली की भँकार (को०) । ३. सूर्य का प्रकाश (को०) । ३. चमक ।

प्रकाश। धीमि (को०)। ५. उबटन, अंगराग आदि शरीर पर मलने से गिरनेवाली मेल (को०)। ६. रंग आदि लगाने में प्रयुक्त बल (को०)।

मिल्ली^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. भींगुर। २. चमपत्र (को०)। ३. एक बाध (को०)। ४. दीए की बत्ती (को०)। ५. दे० 'मिल्लिका'।

मिल्ली^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेल प्रथवा सं० मिल्लिका (= चमकदार पारदर्शी पतला आवरण) या प्र० जित्त (= आवरण) प्रथवा सं० भुट] १. किसी चीज की ऐसी पतली तह जिसके ऊपर की चीज दिखाई पड़े। जैसे, चमड़े की मिल्ली। २. बहुत बारीक छिलका। ३. धाँख का जाला।

मिल्ली^३—वि० स्त्री० बहुत पतला। बहुत बारीक।

मिल्लीक—संज्ञा पुं० [सं०] भींगुर।

मिल्लीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भींगुर। मिल्ली। २. मूय की दीमि या प्रकाश। ३. उबटन आदि का मेल। मिल्ली (को०)।

मिल्लीदार—वि० [हि० मिल्ली + फा० दार] जिसके ऊपर किसी चीज की बहुत पतली तह लगी हो। जिसपर मिल्ली हो।

मीका—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'भोका'।

कि० प्र०—लेना।—डालना।

मीकना^१—कि० प्र० [प्रा०] हाँव। दे० 'भीखना'। उ०—तुम्हें हर समय मीकते रहना पड़ता है।—मुखटा, पृ० ७८।

मीकना^२—कि० प्र० [देश०] फेंकना। पटकना।

मीका—संज्ञा पुं० [देश०] १. उतना घन्त जितना एक बार पीसने के लिये चक्की में डाला जाता है। २. सीका। छीका।

मीखना^१—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] हाँव। भीखने की क्रिया या भाव। लीज।

मीखना^२—कि० प्र० [प्रा०] हाँव, हि० लीजना] १. किसी अनियमित प्रविष्ट के कारण दुःखी होकर बहुत पछताना और कुढ़ना। लीजना। २. दुखड़ा रोना। अपनी विपत्ति का हाल सुनाना। उ०—छाट पड़े नर मीखन लागे, निकरि मान गयो चोरी सी।—कबीर सा० सं०, भा० २, पृ० ५।

मीखना^३—संज्ञा पुं० १. भीखने की क्रिया या भाव। २. दुःख का वर्णन। दुखड़ा।

मीगट—संज्ञा पुं० [देश०] पतवार धामनेवाला। मल्लाह। कण्ठधार।—(लश०)।

मीगन—संज्ञा पुं० [देश०] मँझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसका तना मोटा होता है और जिसमें डालियाँ अपेक्षाकृत बहुत कम होती हैं।

विशेष—यह सारे उत्तरी भारत, ग्रामाम, बरमा और लंका में पाया जाता है। इसमें से पीलापत्र लिए सफेद रंग का एक प्रकार का रस निकलता है जिसका व्यवहार छोटों की छपाई और घोषण के रूप में होता है। इसकी छाल से टसर रंगा जाता है और चमड़ा सिंभाया जाता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं और हीर की लकड़ी से कई तरह के सामान बनते हैं।

मीगा—संज्ञा पुं० [सं०] बिज्जूट] १. एक प्रकार की मछली जो प्रायः सारे भारत की नदियों और जलाशयों आदि में पाई जाती है। फिगवा।

विशेष—इस मछली के शरीर के नीचे बहुत पतले पतले और लंबे घाठ पैर होते हैं; इसीलिये प्राणायाम करने इसे केकड़े आदि के अतर्गत मानते हैं। घाठ पैरों के अतिरिक्त इसके दो बहुत बड़े धारदार डंक भी होते हैं। इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं और यह संवाई में चार अंगुल से प्रायः एक हाथ तक होती है। इसका सिर और मुँह मोटा होता है और दुम की तरफ इसकी मोटाई बराबर कम होती जाती है। यह मछली अपना शरीर एक प्रकार की छिपकली के कि सिर के साथ इसकी दुम लग जाती है। इसके सिर पर उँगलियों के आकार के दो छोटे छोटे अंग होते हैं जिनके सिरों पर धाँखें होती हैं। इन धाँखों से बिना मुँह यह चारों ओर देख सकती है। यह अपने बड़े सदा अपने पेट के अगले भाग में छाती पर ही रखती है। इसके शरीर के निचले भाग पर बहुत कड़े छिलके होते हैं जो समय समय पर आप-से आप सिर की केशुकी की तरह उतर जाते हैं। छिलके उतर जाने पर कुछ समय तक इसका शरीर बहुत कोमल रहता है पर फिर उठने का लो हो जाता है। इसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है। बहुतों मांस के लिये यह सुवासर भी रखी जाती है।

२. एक प्रकार का धान या आटा में तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है। ३. एक प्रकार का बीड़ा जो कपास की फस में बो जाने पर उगता है।

मींगुर—संज्ञा पुं० [अनु०] मीकर] एक प्रसिद्ध छोटा कीड़ा। धुरधुर। जंजीरा। मिल्ली।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं। यह सफेद, काला और भूरा कई रंगों का होता है। इसकी छह टांगें और दो बहुत बड़ी मुँह होती हैं। यह प्रायः अँधेरे जगह में पाया जाता है तथा अँधेरे और गैबानों में भी होता है। जंगलों में यह कोमल पत्तों आदि को काट डालता है। इसकी प्रायः बहुत तन भी होती है और प्रायः अँधेरे में या अँधेरे से सुनाई देती है। नीच जाति के लोग इसका मांस भी खाते हैं।

मीकड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मिड़ड़ा'। उ०—उप चील भीकड़े पर छापा मारे।—शराबी, पृ० ७३।

मीकना^१—कि० प्र० [अनु०] मीकना। मीकना।

मीका—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का मिट्टी का।

विशेष—इस रस में आश्विन शुक्ल चतुर्दशी को मिट्टी को एक कच्ची हाँडी में बहुत से छेद करके उनका बीच में एक दीया बालकर रखते हैं। इसे कुमारी कन्याएँ हाथ में लेकर अपने संबंधियों के घर जाती हैं और उन रस का तेल उनके सिर में लगाती हैं और वे लोग लम्हे कुछ देते हैं। सभी ग्राम में वे सामग्री संग्रह कर पूणिमा के दिन पूजन करती हैं और आपस में प्रसाद बाँटती हैं। लोगों का यह भी विश्वास है कि इसका तेल लगाने से सेंदुषा रोग नहीं होता अथवा अच्छा हो जाता है।

२. मिट्टी की वह कच्ची हाँडी जिसमें छेद करके इस काम के लिये दीया रखते हैं।

मीडिया—क्रि० प्र० [देश०] दे० 'मीडिया' ।

मीडिया—क्रि० प्र० [देशी भ्रं] १. दे० 'मीडिया' । २. 'मीडिया' ।

मीडिया—क्रि० प्र० [हि० भ्रं] दे० 'मीडिया' । उ०—मानों मीडिया रहे हैं तब भी मंद पवन के भोको से ।—पंचवटी, पृ० ५ ।

मीडिया—संज्ञा पुं० [सं० मीडिया] दे० 'मीडिया' । उ०—सज्जल उदक घुमाया भोग्य, लंघे पार सरिता मृदु लोचन । प्रभु मीडिया कीधो मयपार ।—रघु० ६०, पृ० ११० ।

मीडिया—संज्ञा पुं० [हि० मीडिया] दे० 'मीडिया' ।

मीडिया—संज्ञा स्त्री० [अनु० या हि० मीडिया (= बहुत महीन)] फुहार । छोटी छोटी बूंदों की वर्षा । वर्षा की बहुत महीन बूंदें ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

मीडिया—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मीडिया' । उ०—काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे । निरगुन डारे मीडिया पकर के सबे निकारे ।—पलटू०, पृ० ८४ ।

मीडिया—क्रि० वि० [हि०] भटके से । शीघ्रता से । उ०—काबाड़ी नित काटता, मीडिया कुहाड़ा भाड़ ।—बांकी० प्र०, भा० १, पृ० ३२ ।

मीडिया—संज्ञा पुं० [सं० शिकव] रस्सी का लटकता हुआ जालदार फंदा जिसपर बिल्ली आदि के डर से दूध या खाने की दूसरी वस्तुएं रखते हैं । छीका । सिकहर ।

मीडिया—क्रि० प्र० [प्रा० भ्रं] दे० 'मीडिया' ।

मीडिया—वि० [सं० मीडिया] [वि० स्त्री० मीडिया] मीडिया । भ्रंश ।

मीडिया—संज्ञा पुं० [सं० मीडिया, प्रा० मीडिया] दे० 'मीडिया' । उ०—(क) पाणी हो ते पातला, घुबो ही ते मीडिया ।—कबीर प्र०, पृ० २६ (ख) मनवां तो घघर बस्या बहुतक मीडिया होइ ।—कबीर प्र०, पृ० २० । (ग) मारू सेकइ हत्यड़ा, मीडिया बगारेइ ।—ढोला०, पृ० २०६ ।

मीडिया—संज्ञा पुं० [लश०] जहाज के पाल का बटन ।

मीडिया—वि० [सं० मीडिया, प्रा० मीडिया] दे० 'मीडिया' ।

मीडिया—वि० [सं० मीडिया] [वि० स्त्री० मीडिया] १. बहुत महीन । बारीक । पतला । उ०—प्रफुलित हँ के घानि दीन है जसोदा रानि मीडिया भंगुली तामे कंनन को तगा ।—सूर (शब्द०) । २. जिसमें बहुत से छेद हों । भ्रंश । ३. गुल दुबला । दुबल । ४. मंद । धीमा ।

मीडियासारी—संज्ञा पुं० [हि०] घान का एक प्रकार ।

मीडिया—क्रि० प्र० [हि० भ्रं] दे० 'मीडिया' । उ०—भव नील कुंज हैं मीडिया रहे, कुसुमों की कथा न बंद हुई ।—कामायनी, पृ० ६५ ।

मीडिया—संज्ञा पुं० [सं० मीडिया] दे० 'मीडिया' ।

मीडिया—संज्ञा पुं० [देश०] मार्ग । रास्ता । उ०—हरिजन सहजे उत्तरि गए ज्यों सूखे साल को मीडिया ।—मीडिया प्र०, पृ० २४ ।

मीडिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीडिया [स्त्री०] ।

मीडिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीडिया । मीडिया [स्त्री०] ।

मीडिया—संज्ञा स्त्री० [सं० मीडिया (= जल)] १. वह बहुत बड़ा प्राकृतिक जलाशय जो चारों ओर जमीन से घिरा हो ।

विशेष—मीडिया बहुत बड़े मैदानों में होती है और प्रायः इनकी लंबाई और चौड़ाई सैकड़ों मील तक पहुँच जाती है । बहुत सी मीडिया ऐसी होती हैं जिनका सोता उन्हीं के तल में होता है और जिनमें न तो कहीं बाहर से पानी आता है और न किसी ओर से निकलता है । ऐसी मीडियों के पानी का निकास बहुधा माप के रूप में होता है । कुछ मीडिया ऐसी भी होती हैं जिनमें नदियाँ आकर गिरती हैं और कुछ मीडियों में से नदियाँ निकलती भी हैं । कभी कभी मीडिया का संबंध नदी आदि के द्वारा समुद्र से भी होता है । अमेरिका के संयुक्त राज्यों में कई ऐसी मीडिया हैं जो घास में नदियों द्वारा सब एक दूसरे से संवद्ध हैं । मीडिया खारे पानी की भी होती हैं और मीठे पानी की भी ।

२. तालाबों आदि से बड़ा कोई प्राकृतिक या बनावटी जलाशय । बहुत बड़ा तालाब । ताल । सर ।

मीडिया—क्रि० प्र० [सं० स्ना, प्रा० मीडिया] स्नान करना । नहाना । उ०—ढोला हँ शुभ बाहिरी, मीडिया गहय तलाह । उजल काला नाग जिउं लहिरी से ले खाह ।—ढोला०, पृ० ३६३ ।

मीडिया—संज्ञा स्त्री० [हि० मीडिया] दे० 'मीडिया' । उ०—साँगि समाहि कियो सुर ऐसो, टूटि परा सिर मीडिया जाई ।—सं० दरिया, पृ० ६३ ।

मीडिया—संज्ञा पुं० [हि० मीडिया, अथवा मीडिया] छोटी मीडिया । छोटा तालाब । मीडिया । उ०—हंस बसे सुख सागरे, मीडिया नहि भाव ।—कबीर प्र०, भा० ३, पृ० ४ ।

मीडिया—संज्ञा स्त्री० [हि० मीडिया] १. मलाई । २. दे० 'मीडिया' ।

मीडिया—संज्ञा पुं० [सं० मीडिया] मीडिया । मलाई । मल्लाह । मल्लाह । दे० 'मीडिया' ।

मुँड—संज्ञा पुं० [सं० मुँड] १. पेड़ । २. भाड़ी [स्त्री०] ।

मुँड—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] बहुत से मनुष्यों, पशुओं या पक्षियों आदि का समूह । प्राणियों का समुदाय । बृंद । गिरोह । जैसे, भेड़ियों का मुँड, कबूतरों का मुँड ।

मुँड—मुँड के मुँड=संख्या में बहुत अधिक (प्राणी) । मुँड में रहना=अपने ही वर्ग के दूसरे बहुत से जीवों में रहना ।

मुँडी—संज्ञा स्त्री० [देशी खुँड (= खूँटी) या सं० मुँड (= भाड़)] १. वह खूँटी जो पीछे की काट लेने के बाद खेतों में खड़ी रह जाती है । २. चिखमन या परदा लटकाने का कुलाबा जो प्रायः कुँदे में लगा रहता है ।

मुँकवाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मुँकवाई' ।

मुँकवाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'मुँकवाना' ।

मुँकाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मुँकाई' ।

मुँगना—संज्ञा पुं० [हि० बिजना, जुगना] जुगनु ।

मुँगरा—संज्ञा पुं० [देश०] लोवा नामक पक्ष ।

भुँकना—संज्ञा पुं० [भनु०] बच्चों का एक खेलना । भुनभुना ।
भुँकलाना—क्रि० प्र० [भनु०] खिललाना । कितकिताना । बहुत
दुःखी और क्रुद्ध होकर बात करना । बिड़बिड़ाना ।

भुँकलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० भुँकलाना] खीज । चिड़ ।

भुँकाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] निदा । चुगली । चुगलखोरी ।

भुँकायो—संज्ञा स्त्री० [हि० ?] खीज । भुँकलाहट । उ०—
माखन चोर रो मैं पायो । नितप्रति रीती देखि कमोरी मोहि
प्रति लगत भुँकायो ।—सूर०, १०।१८८ ।

भुँकभोरना—क्रि० प्र० [भनु०] दे० 'भुँकभोरना' ।

भुँकना—क्रि० प्र० [सं० युज्, युज्, हि० जुक] १. किसी खड़ी
चीज के ऊपर के भाग का नीचे की ओर टेढ़ा होकर लटक
जाना । ऊपरी भाग का नीचे की ओर लटकना । निहुरना ।
नवाना । जैसे, घादमी का सिर या कमर भुँकना ।

मुहा०—भुँक भुँक पड़ना—नशे या नींद आदि के कारण किसी
मनुष्य का सीधा या झुकी तरफ खड़ा या बैठा न रह सकना ।
उ०—भूमिय हलाहल मदमरे सेत न्याम रतनार । जियत
मरत भुँक भुँक परत जेहि चितवत एक बार ।—(शब्द०) ।

२. किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों का किसी ओर प्रवृत्त
होना । जैसे, छड़ी का भुँकना । ३. किसी खड़े या सीधे
पदार्थ का किसी ओर प्रवृत्त होना । जैसे, खंभे या तख्ते का
भुँकना । ४. प्रवृत्त होना । दलचित्त होना । रुड़ होना ।
मुलातिब होना । ५. किसी चीज को लेने के लिये आगे
बढ़ना । ६. नम्र होना । विनीत होना । अवसर पड़ने पर
प्रतिमान या उप्रता न दिखलाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

७. क्रुद्ध होना । रिसाना । उ०—(क) सुनि प्रिय वचन मलिन
मनु जानी । भुँकी रानि अवरहु अरगानी ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) अब भूठो अभिमान करति सिध भुँकति हमारे तई ।
सुख ही रहसि मिली रावण को अपने सहज सुभाई ।—सूर
(शब्द०) । (घ) अनत बसे निसि की रिसनि उर भर
रह्यो बिसेलि । तऊ साज आई भुँकत खरे लजोई देखि ।—
बिहारी (शब्द०) । † ८. शरीरोंत होना । मरना ।

भुँकमुख—संज्ञा पुं० [हि० भुँकना+मुख] प्रातःकाल या संध्या का
वह समय जब कि कोई व्यक्ति स्पष्ट नहीं पहचाना जाता ।
ऐसा अंधेरा समय जब कि किसी व्यक्ति या पदार्थ को पहचानने
में कठिनाई हो । भुँकपुटा ।

भुँकरना—क्रि० प्र० [भनु०] भुँकलाना । खिललाना ।

भुँकराना—क्रि० प्र० [हि० भुँका] भुँका खाना । उ०—क्यों
साँकरे कुंज मग करहु भुँक भुँकरात । मंथ मंथ मास्त तुरंग
खँदस आगत जात ।—बिहारी (शब्द०) ।

भुँकवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० भुँकवाना] १. भुँकवाने की क्रिया या
भाव । २. भुँकवाने की मजदूरी ।

भुँकवाना—क्रि० प्र० [हि० भुँकना] भुँकाने का काम दूसरे से
कराना । किसी को भुँकाने में प्रवृत्त करना ।

भुँकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० भुँकना] १. भुँकाने की क्रिया या भाव ।
२. भुँकाने की मजदूरी ।

भुँकाना—क्रि० प्र० [हि० भुँकना] १. किसी खड़ी चीज के ऊपरी
भाग को टेढ़ा करके नीचे की ओर लाना । निहुराना ।
नवाना । जैसे, पेड़ की डाल भुँकाना । २. किसी पदार्थ के एक
या दोनों सिरों को किसी ओर प्रवृत्त करना । जैसे, वेत
भुँकाना, छड़ भुँकाना । ३. किसी खड़े या सीधे पदार्थ को
किसी ओर प्रवृत्त करना । ४. प्रवृत्त करना । रुड़ करना ।
५. नम्र करना । विनीत बनाना । ६. अपने अनुकूल करना ।
अपने पक्ष में करना ।

भुँकामुकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भुँकामुखी' । उ०—सखि बिखर
गई हैं कलियाँ । कहाँ गया प्रिय भुँकामुकी में करके वे रंग-
रलियाँ ।—साकेत, पृ० २६७ ।

भुँकामुखी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भुँकमुख' । उ०—जानि भुँका-
मुखी भव छपाय के बागरी ले घर तें निकरी ली ।—ठाकुर
(शब्द०) ।

भुँकारी—संज्ञा पुं० [हि० भुँकोरा] दूध का भौंका । भुँकोरा ।

भुँकाव—संज्ञा पुं० [हि० भुँकना] १. किसी ओर लटकने, प्रवृत्त
होने या भुँकने की क्रिया । २. भुँकने का भाव । ३. ढाल ।
उतार । ४. प्रवृत्ति । मन का किसी ओर लगना ।

भुँकावट—संज्ञा स्त्री० [हि० भुँकना + आवट (प्रत्य०)] १. भुँकने या
नम्र होने की क्रिया या भाव । २. प्रवृत्ति । चाह । भुँकाव ।

भुँगिया—संज्ञा स्त्री० [? या देश०] भोपड़ी । कुटिया । उ०—
हरि तुम क्यों न हमारे आए । ताँक भुँगिया मैं तुम बैठे, कौन
बढ़पन पायो । जाति पाँति कुलहूँ तें न्यारी, है दासी को
जायो ।—सूर०, १।२४४ ।

भुँगी—संज्ञा स्त्री० [हि० भुँगिया] दे० 'भुँगिया' ।

भुँकाना, भुँकवावना—क्रि० प्र० [सं० युज्, प्रा० भुज्; हि०
भुँकलाना] उत्तेजित करना । आगे बढ़ाना । भिड़ा देना ।
संचर्ष कराना ।

भुँकाऊ—वि० [भुँकाऊ] दे० 'भुँकाऊ' । उ०—बाजत भुँकाऊ
सहनाई सिधू राग पुनि सुनत ही काहर की छूटि जात कल है ।
—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४८४ ।

भुँकार—वि० [हि० भुँक + आर (प्रत्य०)] दे० 'भुँकार' ।
उ०—गुजरात देश मितर हवार । बालुका राह चालुक
भुँकार ।—पृ० रा०, १।४३० ।

भुँट—संज्ञा पुं० [हि० भूँट] दे० 'भूँट' । उ०—देख सखि भुँट
कमान । कारन किछुप्रो भुँकई नाहि पारिए तब काहे रोखल
कान ।—विद्यापति, पृ० ४२६ ।

भुँटपुट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भुँटपुटा' । उ०—घरे, उस धूमिल
विषय में ? स्वर मेरा था चिकना ही, अब घना हो चला
भुँटपुट ।—हरी पास०, पृ० ३२ ।

भुँटपुटा—संज्ञा पुं० [भनु०] कुछ अंधेरा और कुछ उजला समय । ऐसा
समय जब कि कुछ अंधकार और कुछ प्रकाश हो । भुँकमुख ।

भुँटलाना—क्रि० प्र० [हि० भूँट] दे० 'भुँटलाना' ।

भुँटलाना—क्रि० प्र० [हि० भूँट] प्रथम स० अर्थात् > अर्थात्
> भूँट] भूँट करना । जुठारना ।

भुँटंग—वि० [हि० भूँटा] जिसके खड़े खड़े ओर बिखरे हुए बाज

हों। झोंटेवाला। जटावाला। दे० 'झोंटंग'। उ०—जोगिनी मुहुंग मुहुंग झुंझ बनी तापसी सी सीर सीर बैठी सो समरसरि खोरि के।—पुनसी सं०, पृ० ११३।

झुंझुं—संज्ञा पुं० [सं० झुंझ, हिं० झुंझ] विरोध। झुंझ। उ०—
घोड़ी खरि छुट्टे कैसी छुट्टे झुंझ झुंझ भुंभ छुट्टे।—पुनसी सं०, पृ० ११३।

झुंझा—वि० [हिं० झुंझ] दे० 'झुंझ'।

झुंझाना—क्रि० सं० [हिं० झुंझ] १. झुंझ बाध कहकर घबराया किसी प्रकार (विशेषतः बच्चों या वि० को) धोखा देना। २. दे० 'झुंझाना'।

झुंझाना—क्रि० सं० [हिं० झुंझ + घाना (प्रत्य०)] १. झुंझ ठहराना। झुंझ प्रमाणित करना। झुंझ बनाना। २. झुंझ कहकर धोखा देना। झुंझाना।

झुंझाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुंझ + घाई (प्रत्य०)] झुंझाव। असत्यता। झुंझ का भाव। उ०—(क) जानि परत नहि सौं झुंझाई बेन बगवत से भुरैया। मूर (खण्ड०)। (ख) घासि मयत मन व्याधि बिकल तन बनन मनीव झुंझाई।—तुलसी (गण०)।

झुंझाना—क्रि० सं० [हिं० झुंझ + घाना (प्रत्य०)] झुंझ ठहराना। झुंझ यादत करना। झुंझाना।

झुंझागुठी—क्रि० वि० [हिं० झुंझ] दे० 'झुंझागुठी'।

झुंझाना—क्रि० सं० [हिं०] १. दे० 'झुंझाना'। २. दे० 'झुंझाना'।

झुंझ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. एक प्रकार की लड़कियाँ। २. दे० 'झुंझ'।

झुंझक—संज्ञा पुं० [झुंझ] मुरुर का शब्द।

झुंझकना—क्रि० सं० [झुंझ] झुंझ झुंझ शब्द करना। झुंझ झुंझ बोलना या बजना।

झुंझकना—संज्ञा पुं० [झुंझ] दे० 'झुंझकना'।

झुंझका—संज्ञा पुं० [हिं०] १. धोखा। धल। २. दे० 'झुंझकना'। उ०—दुना मोर झुंझका झुंझ झुंझ बाजे, ताहाँ दीपक से बारी।—सं० दारिया, पृ० १०६।

झुंझकार—संज्ञा पुं० [हिं० झुंझ] [झुंझ झुंझकार] झुंझकार। पतला। झुंझ। महीन। बारीक। उ०—घँघिया झुंझकारी खरी सितकारी की सेदकवी कुच दू पर ली।—(खण्ड०)।

झुंझकारा—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुंझकार] दे० 'झुंझकार'।

झुंझझुंझ—संज्ञा पुं० [झुंझ] झुंझ झुंझ शब्द जो मुरुर घासि के बजने से होता है। उ०—झुंझ तरबि लख ज्योति जयप्रसित झुंझ झुंझ करत पाय पैवनिपा।—मूर (खण्ड०)।

झुंझझुंझा—संज्ञा पुं० [हिं० झुंझ झुंझ से झुंझ] [झुंझ झुंझझुंझ] झुंझझुंझ के खेले का एक प्रकार का खिलौना जो धातु, काठ, ताड़ के पत्तों या कागज घासि से बनाया जाता है। झुंझझुंझ। उ०—कबहुँक से झुंझझुंझ बजावति मीठी बतियब बोली।—भारतेंदु सं०, भा० २, पृ० ४६७।

विशेष—यह कई आकार और प्रकार का होता है, पर साधारणतः

इसमें एकदूने के लिये एक डंडी होती है जिसके एक या दोनो सिरों पर पोला गोल मट्ट होता है। इसी लट्टू में कंकड़ या किसी चीज के छोटे छोटे दाने भरे होते हैं जिनके कारण उसे हिलाने या बजाने से झुंझ झुंझ शब्द होता है।

झुंझझुंझाना—क्रि० सं० [झुंझझुंझ] झुंझ झुंझ शब्द होना। झुंझझुंझ के जैसा बोलना।

झुंझझुंझाना—क्रि० सं० झुंझ झुंझ शब्द उत्पन्न करना। झुंझ झुंझ शब्द निकालना।

झुंझझुंझियाँ—संज्ञा स्त्री० [झुंझझुंझ] मनई का पोधा।

झुंझझुंझियाँ—संज्ञा स्त्री० [झुंझझुंझ] १. पैर में पहनने का कोई आभूषण जो झुंझ झुंझ शब्द करे। २. वेड़ी। चिमड़ा।

झुंझ प्र०—पहनना।—पहनना।

झुंझझुंझी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुंझझुंझाना] हाथ या पैर के बहुत देर तक एक स्थिति में मुड़े रहने के कारण उसमें उत्पन्न एक प्रकार की गनगनाहट या शोच। २. दे० 'झुंझझुंझ'।

झुंझी—संज्ञा स्त्री० [झुंझ] जवानों की पतली लड़कियाँ।

झुंझक—संज्ञा पुं० [झुंझ] झुंझ झुंझ बजने की आवाज। उ०—
झुंझक झुंझक यह गति की जाननि। मधु ते मधुर सुतुनरी बोलनि।—चंद सं०, पृ० २४५।

झुंझनी—संज्ञा स्त्री० [झुंझ] दे० 'झुंझनी'—१। उ०—पावों में झुंझनी चढ़ गई।—चिमणी, पृ० १३०।

झुंझझुंझी—संज्ञा स्त्री० [झुंझ] दे० 'झुंझझुंझी'।

झुंझझुंझी—संज्ञा स्त्री० [झुंझझुंझ] दे० 'झुंझझुंझी'। उ०—साधुन की झुंझझुंझी ना माफत की गाय। चंदन की कुटकी भली ना बहल बनगव। कबीर (गण०)।

झुंझझुंझा—संज्ञा पुं० [झुंझझुंझ] १. दे० 'झुंझझुंझ'। २. दे० 'झुंझझुंझ'।

झुंझझुंझी—संज्ञा स्त्री० [झुंझझुंझ] एक प्रकार का गहना जो देहाती स्त्रियाँ कान में पहनती हैं।

झुंझझुंझ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झुंझझुंझ'। उ०—पाँच रागिनी झुंझझुंझ गयो, छठवाँ परम नगरीया।—धरम, पृ० ३४।

झुंझझुंझा—संज्ञा पुं० [हिं० झुंझझुंझ] १. कान में पहनने का एक प्रकार का झुंझझुंझा गहना जो छोटी गोल कठोरी के आकार का होता है। उ०—सिर पर हैं चंदन शीश फूल, कानों में झुंझझुंझ रदे झुंझ।—प्राग्धा, पृ० ४०।

विशेष—इस कठोरी का मुँह बोले की ओर होता है और इसकी पेदी में एक कुंदा लगा रहता है जिसके सहारे यह कान में बोले की ओर लटकती रहती है। इसके किनारे पर सोने के धार में गुंथे हुए मोतियों घासि की भाँवर लगी होती है। यह सोने, चाँदी या परधर घासि का और सादा तथा जड़ाऊ भी होता है। यह झुंझझुंझ की कान में पहना जाता है और करछु-फूल के नीचे मलकाकर भी।

२. एक प्रकार का पोधा जिसमें झुंझझुंझ के आकार के फूल लगते हैं। ३. इस पोधे का फूल।

झुंझझुंझा—क्रि० सं० [हिं० झुंझझुंझ] दे० 'झुंझझुंझ'। उ०—रहे

भुमदि घन गगन घन भौं तम तोम बिसेल । जिसि बासर समुझ
न परत प्रफुलित पंकज पेस ।—स० सप्तक, पृ० ३६३ ।

भूमना^१—वि० [हि० भूमना] [वि० बी० भूमनी] भूमनेवाला ।
हिचनेवाला ।

भूमना^२—संज्ञा पु० [हि०] वह बैज जो अपने स्रुटे पर बंधा हुआ अपने
पिछले पैर सटा उठाकर भूमा करे । यह एक कुलच्छल है ।

भुमरन^३—संज्ञा बी० [हि० भूमना] भूमने का भाव । लहरने
का कार्य । उ०—वेनी सिपिन बसित कच भुमरन लुधित पीठ
पर सोई ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५३२ ।

भुमरा—संज्ञा पु० [देश०] लुहारों का एक प्रकार का घन या बहुत
भारी हुथोड़ा जिसका व्यवहार खान में से लोहा निकालने में
होता है ।

भुमरी—संज्ञा बी० [देश०] १. काठ की मुंगरी । २. गन्ध पीठने
का औजार । पिठना ।

भुमाऊ—वि० [हि० भूमना] भूमनेवाला । जो भूमता है ।

भुमाना—क्रि० स० [हि० भूमना का स० रूप] किसी को भूमने में
प्रवृत्त करना । किसी बीज के ऊपरी भाग को चारों ओर
धीरे धीरे हिलाना ।

भुमिरना^४—क्रि० घ० [हि०] दे० 'भूमना' ।

भुरकुट्ट—वि० [अनु०] १. मुरझाया हुआ । सूखा हुआ । २. दुबला ।
कृश ।

भुरकुटिया^१—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का पक्का लोहा जिसे
खेड़ी कहते हैं ।

निशेष—दे० 'खेड़ी'—१ ।

भुरकुटिया^२—वि० [अनु०] दुबला पतला । कृश ।

भुरकुनी—संज्ञा पु० [हि० भुर + कृन्] किसी बीज के बहुत छोटे
छोटे टुकड़े । धूर ।

भुरकुरी—संज्ञा बी० [अनु०] १. कोंपकेंपी को लुकी के पहले छाती
है । २. कोंपकेंपी । कंफन ।

भुरना—क्रि० घ० [हि० धूख या धूर] १. सुखना । छुष्क होना ।
दे० 'भुरावा' । उ०—हाइ भई भुरि किणकी सई भई सब
बाँधि । रोष रोष तन धुन छँटि कहौ बिषा कैहि भाँति ।—
जायसी (शब्द०) । २. बहुत अधिक दुःखी होना या शोक
करना । उ०—(क) सोझ भई भुरि भुरि पय हेरो । कोन
बौ धरो करी पिय केरो ।—जायसी (शब्द०) । (ख) इसका
बोझ धापके धिर है; धाप इसकी खबर न खेने तो संसार
में इसका कही पहा न सनेगा । वे देवारे पो हो भुर भुर
कर मर जायेंगे ।—मानिवासबाध (शब्द०) । ३. बहुत
अधिक चिता, रोष या परिश्रम धावि के कारण दुर्बल
होना । घुमना । उ०—(क) ये दोऊ मेरे गाइ बरेया ।
जावि परत नहि सचि भुठाई चारत बेनु भुरेया । सूरदास
जमुदा में चेरी कहि कहि लेति बसैया ।—सूर०, १०।५१३ ।
(ख) सूनी के परम पद, ऊनी के अनंत मय सूनी के नदीस
नव इंदिरा भुरे परी ।—देव (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जावा ।—पड़ना (बन्ध०) ।—(७) परना । उ०—
सिद्धि की सिद्धि दिनपालन की रिद्धि वृद्धि वेधा की समृद्धि
सुरसवन भुरे परी ।—रघुराज (शब्द०) ।

भुरमुट—संज्ञा पु० [सं० भुट (=झाड़ी)] १. कई झाड़ों या पत्तों
धावि का ऐसा समूह जिससे कोई स्थान ढक जाय । एक ही
में भिजे हुए या पास पास कई झाड़ या क्षुप । उ०—घाँदवध
बिबोदभर भुरमुट जहाँ बने न परत भाव्यो ।—घनानंद,
पृ० ४४३ । २. बहुत से खोशों का समूह । बिरोह । उ०—
जान एक मेंहु भुरमुट होइ बीठा । दर मेंहु बड़े रहै सो बीठा ।
—जायसी (शब्द०) । ३. बाहर या छोड़ने धावि से खरीर
को चारों ओर से छिपाने या ढक देने की क्रिया ।

मुहा०—भुरमुट मारना = बाहर या छोड़ने धावि से सारा खरीर
इस प्रकार ढक देना कि जिसमें खली कोई पहुँचान न सके ।

भुरबना—संज्ञा बी० [हि० भुरना + बन् (प्रत्य०)] वह धंज जो
किसी बीज के सुखने के कारण उसमें से निकल जाता है ।

भुरबना^२—क्रि० घ० [हि० भुरना या भूरना] दुःखी होना ।
चिता से लीप होना । दे० 'भुरना' । उ०—मन मन भुरवै
हुलहिनि काह कीन्ह करतार हो ।—कबीर श० पृ० २ ।

भुरबाना—क्रि० स० [हि० भुरना] १. सुखाने का काम दूसरे से
से कराना । दूसरे को सुखाने में प्रवृत्त करना । † २. भुराना ।
उ०—कोइ रंजक भुरवावहि कोली भारहि पोछहि ।—
प्रेमचन्द, भा० १, पृ० २४ ।

भुरसना—क्रि० घ० क्रि० स० [हि० भुलसना] दे० 'भुलसना' ।
उ०—घानंदधन सौं उधरि मिलीगो भुरसति विरहा भर मैं ।
—घनानंद, पृ० ५३३ ।

भुरसाना—क्रि० स० [हि० भुलसाना] दे० 'भुलसाना' ।

भुरहुरी—संज्ञा बी० [हि० भुरहुरी] दे० 'भुरहुरी' ।

भुराना^१—क्रि० घ० [हि० भुरना] सुखावा । सुख करना ।

भुराना^२—क्रि० घ० १. सुखना । २. दुःख या भय से छबरा जाना ।
दुःख से स्वस्थ होना । उ०—यह बानी सुवि ग्वारि भुरानी ।
भीष भए मानों बिन पावो ।—सूर (शब्द०) । ३. सुखना
होना । क्षीण होना । दे० 'भुरना' ।

संयो० क्रि०—जाग ।

भुरावन—संज्ञा बी० [हि० भुरना + बन् (प्रत्य०)] वह धंज जो किसी
बीज को सुखाने के कारण उसमें से निकल जाता है । भुरवन ।

भुरावना^३—क्रि० घ० [हि० भुराना] दे० 'भुराना' । उ०—मंजन
के बित ग्वायके धंज खोखि के बाग भुरावन जानो ।—सति०,
पृ० ३५३ ।

भुरी—संज्ञा बी० [हि० भुरना] किसी बीज की सतह पर लंबी रेखा
के रूप में छबरा या धंसा हुआ चिह्न जो उस बीज के सुखने,
मुड़ने या पुरानी हो जाने धावि के कारण पड़ जाता है ।
सिकुड़न । मिथवड । शिकन । जैसे, घास पर की भुरी, चेहरे
पर की भुरी ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

विशेष—बहुधा इसका प्रयोग बहुवचन में ही होता है। जैसे—घब
वे बहुत बुझे हो गए, उनके सारे शरीर में झुरियाँ पड़ गई हैं।

मुलकना ①—क्रि० घ० [हि० 'मुलना'] दे० 'मुलना'। उ०—सुरह
सुनंधी बास मोती कान भुलकते। मूर्ती मंदिर खास जाणू
डोखइ जागरी।—डोला०, दू० १०७।

मुलका—संज्ञा पु० [घनु०] दे० 'मुलना'।

मुलना ①—संज्ञा पु० [हि० 'मुलना'] स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार
का ढीला ढाखा कुरता। मुलना। मूला।

मुलना ②—वि० [हि० 'मुलना'] भूलनेवाला। जो भूलता हो।

मुलना ③—संज्ञा पु० [सं० दोलन या दोला] दे० 'मूला'।

मुलनिया—संज्ञा स्त्री० [हि० 'मुलनी' + इया (प्रत्य०)] दे०
'मुलनी'। उ०—भुलनियावाजी हंसि कै जियरा खे गेली
हुमार।—प्रेमपथ०, भा० २, पृ० ३६३।

मुलनी—संज्ञा स्त्री० [हि० 'मुलना'] १. सोने आदि के तार में गुथा
हुआ छोटे छोटे मोतियों का गुच्छा जिसे रिजवाँ शोभा के लिये
नाक की नय में लटका लेती है अथवा बिना नय के एक
आभूषण की तरह पहनती है। २. दे० 'मूमर'।

मुलनीबोर—संज्ञा पु० [देश०] बान का बाज।—(कहारों की परि०)।

मुलमुला—वि० [घनु०] दे० 'भिलमिल'। उ०—काननि कनिक
पन चक कमकत बाद ध्वजा भुलमुल भलकति घति सुखदाइ।
—कैशव (शब्द०)।

मुलमुला—वि० [घनु०] [वि० स्त्री० 'भुलमुली'] दे० 'भिलमिल'।
उ०—भोजन पट में भुलमुली भलकति भोज अथार। सुरतर की
मनु सिधु में लमनि मयलमव बार।—बिहारी (शब्द०)।

मुलना ①—क्रि० सं० [हि० 'मुलना'] दे० 'मुलना'। उ०—
निकट रहति अद्यपि श्री ललना। कब बधि कब भुलवे पलना।
—संद० घ०, पृ० २५०।

मुलना—संज्ञा पु० [देश०] १. एक प्रकार की कपास जो बहुराईय,
बलिया, गाजीपुर और गोंडा धानि में उत्पन्न होती है। यह
अच्छी खाति की है पर कम निकलती है। यह जेठ में तैयार
होती है, इसलिये इसे जेठवा भी कहते हैं। २. दे० 'मूला'।

मुलवाना—क्रि० सं० [हि० 'मुलना'] भुलाने का काम दूसरे से
कराना। दूसरे का भुलाने में प्रवृत्त करवा।

मुलसना—क्रि० घ० [सं० लस + लस] १. किसी पदार्थ के ऊपरी
भाग या तल का इस प्रकार घसतः जल जाना कि उसका रंग
काया पड़ जाय। किसी पदार्थ के ऊपरी भाग का घसजला
होना। भौंसना। जैसे—यह अड़क धंधोठी पर घिर पड़ा
या इसी है इसका सारा हाथ भुलस गया। २. बहुत अधिक
गर्मी पड़ने के कारण किसी चीज के ऊपरी भाग का सुखकर
कुछ काया पड़ जाना। जैसे—गरमी के दिनों में कोयल
पीधों की पंखायाँ भुलस जाती हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

मुलसना—क्रि० सं० १. किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या तल को

इस प्रकार घसतः जलाना कि उसका रंग काया पड़ जाय और
तल खराब हो जाय। भौंसना। जैसे—उन्होंने जानबूझ कर
घपना हाथ भुलस लिया। २. अधिक गरमी से किसी पदार्थ
के ऊपरी भाग को सुखाकर घसजला कर देना। जैसे—घाज
दोपहर को धूप ने सारा शरीर भुलसा दिया।

संयो० क्रि०—घसना।—देना।

मुहा०—मुँह भुलसना = देखो 'मुँह' के मुहावरे।

मुलसवाना—क्रि० सं० [हि० 'मुलसना का प्रेर० रूप] भुलसने का
काम दूसरे से कराना। दूसरे को भुलसने में प्रवृत्त करना।

मुलसाना—क्रि० घ० [हि०] दे० 'मुलसना'। २. दे० 'मुलसवाना'।

मुलाना—क्रि० सं० [हि० 'मुलना'] हिटोले या भूले में बैठाकर
हिलाना। किसी को भूलने में प्रवृत्त करना। उ०—रहो रहो
नाहीं नाहीं घब ना भुलाओ लाल बाबा की सी मेरो ये छुलल
जघ बहुरात।—तोष (शब्द०)। २. अक्षर में छटकाकर या
टाँगकर अक्षर उधर हिलावा। बार बार ओका देकर हिलाना।
३. कोई चीज देने या कोई काम करने के लिये बहुत अधिक
समय तक आसरे में रखना। अनिश्चित या अनिर्णीत अवस्था
में रखना। कुछ निष्पत्ति या निपटेरा न करना। जैसे—इस
कारीगर को कोई चीज मत दो, यह महीनो भुलाता है।

मुलावना ①—क्रि० घ० [हि० 'मुलाना'] दे० 'मुलावा' उ०—
लेह उद्यम कबहुँक हलगतइ। कष्ट पालने घालि मुलावइ।
—सुघसी (शब्द०)।

मुलावनि ①—संज्ञा स्त्री० [हि० 'मुलाना'] भुलाने का भाव या
क्रिया।

मुलुआ—संज्ञा पु० [हि० 'भूषा'] दे० 'भूला'।

मुलौवा ①—संज्ञा पु० [हि० 'भूला' (= कुरता)] जनाना कुरता।

मुलौवा ②—वि० [हि० 'भूला'] जो भूलता या भुलाया जा
सकता हो। भूलने या भूल सकनेवाला।

मुलौवा ③—संज्ञा पु० भूषवा; पाजना। मूला।

मुल्ला—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'भूषा'।

मुहिरना—क्रि० घ० [हि० ?] खदना। लाटा जाना। उ०—
रतन पधारण रग जो बलावे। घोरन मेंह देखे मुहिराने।—
जायसी (शब्द०)।

मुहिराना—क्रि० सं० [हि० ?] लाटना। बोक रखना।

मूँक ①—संज्ञा पु० [हि० 'भोक'] दे० 'भोका'। उ०—(क) मुहमद
गुरु जो धिधि खिली का कोई तेहि फूँक। जेहि के भार जम
घिर रहा उँ न पवन के मूँक।—जायसी (शब्द०)। (ख)
रथों पछाकर पीन के मंकव खैलिया कूकव को सहि लेहैं।—
पद्याकर (शब्द०)।

मूँक ②—संज्ञा स्त्री० दे० 'भोका'। उ०—किकिनो की भसकानि
मुलावनि मूँकनि सों भूँक जाव कटी की।—देव (शब्द०)।

मूँकना ①—क्रि० सं० [हि०] १. दे० 'भोका'। २. दे०
'भुलना'।

मूँका^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भौंका' । उ०—यह गड़ खार होइ एक मूँके ।—जायसी (शब्द०) ।

मूँखना^५—क्रि० प्र० [हि०] 'भौंखना' । उ०—अवधि गलत इकटक मग जोबत तब इतनी नहीं मूँखी ।—सूर (शब्द०) ।

मूँकल—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मूँकलाहट' ।

मूँकानी—वि० [देश०] [वि० स्त्री० मूँकी] इधर की उधर लगानेवाला । चुगलखोर । निंदक ।

मूँटा^१—संज्ञा पुं० [हि० भौंटा] पैंग । दे० 'भौंटा' ।

मूँटा^२—वि० [हि० मूँठा] दे० 'मूँठा' ।

मूँठा^१—वि०, संज्ञा पुं० [हि० मूँठ] दे० 'मूँठ' ।

मूँठा^५—वि० [हि० मूँठ, मूँठा मूँठो] दे० 'मूँठी' । उ०—घंजन अघर धरै, पीक लोक सोहै आछी काहे को लजात मूँठी सोहै खात ।—नंद० प्र०, पृ० ३५७ ।

मूँठी—संज्ञा स्त्री० [हि० जुट्टी] वह डंठल जो नील के सड़ाने पर बच रहता है ।

मूँपड़ा^५—संज्ञा पुं० [देशी मूँपड़ा] दे० 'भोपड़ा' । उ०—गुणि करहा डोलउ कहइ साबी आखे जोइ । अगगर जेहा मूँपड़ा तउ आसंगे मोइ ।—ढोला०, पृ० ३१४ ।

मूँबणहार^५—वि० स्त्री० [?] जानेवाली । उ०—हिव सुँभर हेरा हुबइ, माक मूँबणहार । पिगल बोलावा दिया, सोहइ सो असवार ।—ढोला०, पृ० २०७ ।

मूँबना^५—क्रि० प्र० [प्रा० भूँ] दे० 'भूमना' । उ०—डोलउ हल्लाणउ करइ, घण हल्लिवा न देह । भूँभूँ भूँभूँ पागड़इ, डबडब नयन भरेह ।—ढोला०, पृ० ३०४ ।

मूँमना^५—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'भूमना' । उ०—भूमत प्यारी सारी पहिरै, चलत सु कटि लटकाइ ।—नंद प्र०, पृ० ३८६ ।

मूँसना^१—क्रि० प्र०, क्रि० स० [हि० भौंसना] दे० 'भुलसना' ।

मूँसना^२—क्रि० स० [प्रनु०] किसी को बहुकाकर या दमपट्टी देकर उसका धन आदि लेना । भूसना ।

मूँसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास ।

मूँकटी—संज्ञा स्त्री० [हि० जूट + काँटा] छोटी भाड़ी । उ०—(क) वह मूँकटी तिरस्कृत प्रकृति को अनुसरती है ।—श्रीधर पाठक (शब्द०) । (ख) जिमि बसंत नव फूल मूँकटी तले लखाई ।—श्रीधर पाठक (शब्द०) ।

मूँकना^५—क्रि० प्र० [हि० भौंखना] दे० 'भौंखना' । उ०—(क) जाकी बीनामाय निवाजै । भवसागर में कबहुँ न मूँके प्रमथ निसाने बाजे ।—सूर०, १।३६ । (ख) पावस रिपु बरसे जब मेहा । मुकति मरौ हौं सुमिरि सनेहा ।—हि० प्रेमगाथा०, पृ० २२० ।

मूँखना^५—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'भौंखना' ।

मूँक^५—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध, प्रा० भूक] दे० 'युद्ध' । उ०—परे खंड खंड निजं सामि अग्नं । न को हारि मनी न को भूक अग्नं ।—पृ० रा०, १।१५३ ।

मूँकना—क्रि० प्र० [हि० भूक] दे० 'भूमना' । उ०—साहब को ४-२५

भावइ नही सो बाठ न बूझो रे । साईं सो सनमुख रहे इस मन से मूँकी रे ।—दादू (शब्द०) ।

मूँकाउ^५—वि० [सं० युद्ध, प्रा० भूक + हि० घाउ (प्रत्य०)] दे० 'जुभाऊ' । उ०—बाजत मूँकाउ सिधू राग सहनाई पुनि सुनत ही काहर की छुटि जात कल है ।—सुंदर० प्र० भा० १, पृ० ४८५ ।

मूँकार—वि० [हि० भूक + धार (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० मूँकारि^५] दे० 'जुमार' । उ०—पंच महारिषि तहाँ कुटबाल । तिनकी तृया महा मूँकारि ।—प्राण०, पृ० १६७ ।

मूँट—संज्ञा पुं०, वि० [देशी मूँठ] दे० 'मूँठ' ।

मूँठ^१—संज्ञा पुं० [सं० अयुक्त, प्रा० अजुत अथवा देशी कुटु] वह कथन जो वास्तविक स्थिति के विपरीत हो । वह बात जो यथार्थ न हो । सब का उलटा ।

क्रि० प्र०—कहना ।—बोखना ।

मुहा०—मूँठ सब कहना=निंदा करना । शिकायत करना । मूँठ का पुल बाधना=लगातार एक के बाद एक मूँठ बोखते जाना । मूँठ सब जोड़ना=दे० 'मूँठ सब कहना' ।

यौ०—मूँठ का पुतला=भारी मूँठ । एकदम असत्य बातें कहने-वाला । मूँठमूँठ । मूँठसब ।

मूँठ^२—वि० [हि०] दे० 'मूँठा' ।—(क्व०) । उ०—मुख संपति दारा सुत हय गय मूँठ सबै समुदाइ । छन भंगुर यह सबै स्याम बिनु संत नाहि संग जाइ ।—सूर०, १।३१७ ।

मूँठ^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जूठ] दे० 'जूठन' ।

मूँठन—संज्ञा स्त्री० [हि० जूठन] दे० 'जूठन' ।

मूँठमूँठ—क्रि० वि० [हि० मूँठ + प्रनु० मूँठ] बिना किसी वास्तविक आधार के । मूँठे ही । यों ही । व्यर्थ । जैसे,—उन्होंने मूँठमूँठ एक बात बनाकर कह दी ।

मूँठसब—वि० [हि०] ठीक बेठीक । जिसमें सत्य और असत्य का मिश्रण हो ।

मूँठा^१—वि० [हि० मूँठ] १. जो वास्तविक स्थिति के विपरीत हो । जो मूँठ ही । जो सत्य न हो । मिथ्या । असत्य । जैसे, मूँठी बात, मूँठा अभियोग । २. जो मूँठ बोलता हो । मूँठ बोलने-वाला । मिथ्यावादी । जैसे,—ऐसे मूँठे आदमियों का क्या विश्वास ।

क्रि० प्र०—ठहरना ।—निकलना ।—बनना ।

३. जो सच्चा या असली न हो । जो केवल रूप और रंग आदि में असली चीज के समान हो पर गुण आदि में नहीं । जो केवल बिलोभा और बनावटी हो या किसी असली चीज के स्थान पर यों ही काम देने, सुधीता उत्पन्न करने अथवा किसी को धोखे में डालने के लिये बनाया गया हो । नकली । जैसे—मूँठे जवाहिरात, मूँठा गोटा पत्रा, मूँठी घड़ी, मूँठा मसाला या काम (जरदोजी का), मूँठा दस्तावेज, मूँठा कागज ।

विशेष—इस अर्थ में 'मूँठा' शब्द का प्रयोग कुछ विशिष्ट शब्दों के साथ ही हो है ताजिनमें से कुछ ऊपर उदाहरण में दिए गए हैं ।

४. जो (पुराने या संग यादि) बिगड़ जाने के कारण ठीक ठीक काम न दे सके । जैसे, तासे या लटके यादि का भूठा पड़ जाना । हाथ या पैर का भूठा पड़ना ।

कि० प्र०—पड़ना ।

मूठा^३—कि० [हि० भूठा] दे० 'भूठा' ।

मूठामूठी—कि० [हि०] दे० 'भूठामूठी' ।

मूठों—कि० [हि० भूठा] १. भूठपट । यो ही । २. नाम मात्र के लिये । कहने भर को । जैसे,—वे भूठों भी हर्ष बुलाने के लिये न आए । उ०—भूठों हि दोम लगावे मोने राजा ।—गीत (शब्द०) ।

मूथि—संज्ञा पु० [म०] १. एक प्रकार की गुपारी । २. एक प्रकार का अशक्त ।

मूना^३—कि० [म० जीना, प्रा० जूना, गुञ्ज० जून] दे० 'मीना' । उ०—(क) नव सो दया यमो दुपटु दण दागिद को सावरी को मोहवो मोहवो भने राम को ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तेहि वष उड़े भने मुनीकर परम शीतल गुण परे ।—रघुराज (शब्द०) ।

मूम—संज्ञा ली० [हि० भूमना, तुल० बंग० 'भूम'] १. अपने की क्रिया या भाव । ३. ऊँच । उँगाई । भूपकी ।—(नय०) ।

मूमक^३—संज्ञा पु० [हि० भूमना] १. एक प्रकार का गीत जिसे होली के बिनो में देहाग की रिश्ता भूम भूमकर एक गे में नाचनी हुई जाती है । भूमक । भूमकर । उ०—निए छरी बेत गोध विभाग । चालारि भूमक कहे सरन राग ।—तुलसी (शब्द०) । २. इस गीत के साथ होनेवाला नृत्य । ३. एक प्रकार का पूरबी गीत जो विशेषतः विवाह आदि मंगल अवसर पर गाया जाता है । भूमक । उ०—कह मनोरा भूमक होई । पार धो कूल लिये गव कोई ।—जायसी (शब्द०) । ४. गुच्छा । गुच्छक । ५. धाँसी गीत यादि के छोटे छोटे समको या मोती के आदि के गुच्छों की यह कतार जो साड़ी या झोढ़नी आदि के उस भाग में लगी रहती है जो माथे के ठीक ऊपर पड़ता है । इसका व्यवहार पूरब में अधिक होता है । ६. दे० 'भूमक' ।

मूमकसाड़ी—संज्ञा ली० [हि० भूमक + साड़ी] १. वह साड़ी जिसके सिर पर रहनेवाले भाग में भूमके या साने मोती आदि के गुच्छे टँके हों । २. लहंगे पर की वह झोढ़नी जिसमें सिर के पल्ले पर सोने के पसे या मोती के गुच्छे टँके हों ।

मूमकसारी—संज्ञा ली० [हि०] दे० 'मूमकसाड़ी' । उ०—(क) लाख टफा घर भूमकसारी देह दाह को नेग ।—सूर (शब्द०) । (ख) सुनि उमगी नारी प्रफुलित मन पहिरे भूमकसारी ।—छीत०, पृ० ६ ।

मूमका^३—संज्ञा पु० [हि०] १. दे० 'भूमका' । उ०—मरवा मयारि विरोज लाल लटकत सुंदर सुंदर उरावनी । मोतिन भालरि भूमका राजत बिज नील मणि बहु भावनी ।—सूर (शब्द०) । २. दे० 'भूमक' । उ०—पग पटकत लटकत लटकाहू । मटकत मोहन हस्त उदाहू । घंघल घंघल भूमका ।—मर (शब्द०) ।

मूमर^३—संज्ञा पु० [हि० भूमर] दे० 'भूमर'—६ । उ०—घाट छोड़ नौकाओं के भूमर धारा में पड़ चले ।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० ११५ ।

मूमरभूमर^३—संज्ञा पु० [हि० भूमर] ठकोसला । भूठा प्रपंच । निरवक विषय । उ०—अपने हाथे करे बापना अजया का सिख काटी । मो पूजा पर लेगी माली मूरति कुतल चाटी । दुनियाँ भूमरिभूमरि अटकी ।—कबीर (शब्द०) ।

मूमड़ा^३—संज्ञा पु० [हि०] चौदह मात्रा का एक ताल । दे० 'भूमरा' । मूमना^३—कि० [सं० भूम (= कूटना)] १. आचार पर स्थित किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या सिर का बार बार घागे पीछे, नीचे ऊपर या इधर उधर हिलना । बार बार भोंके खाना । जैसे, हवा के कारण पेड़ों की डालों का भूमना ।

मुहा०—बादल भूमना = बादलों का एकत्र होकर झुकना ।

२. किसी खड़े या बैठे हुए जीव का अपने सिर और धड़ को बार बार घागे पीछे और इधर उधर हिलाना । लहराना । जैसे, हाथी या रीछ का भूमना । नशे या नींद में भूमना । उ०—भाई सुधि प्यारे की बिचारे मति टारै तब, धारें पग लग भूमि द्वारावति आए हैं ।—प्रिया (शब्द०) ।

विशेष—यह क्रिया प्रायः मस्ती, बहुत अधिक प्रसन्नता, नींद या नशे आदि के कारण होती है ।

मुहा०—दरवाजे पर हाथी भूमना = इतना धमीर होना कि दरवाजे पर हाथी बंधा हो । इतना संपन्न होना कि हाथी पाल सके । उ०—भूपत द्वार अनेक मतंग जंजीर जड़े मद अंबु चुचाते ।—तुलसी (शब्द०) । भूम भूम कर = सिर और धड़ को घागे पीछे या इधर उधर गूब हिल हिलाकर । लहरा लहराकर । जैसे—भूम भूमकर पड़ना, नाचना या (घुत प्रेत आदि बाधाओं के कारण) खेलना ।

मूमना^३—संज्ञा पु० १. बैलों का एक गेग जिसमें वे सूँटे पर बंधे इधर उधर भिर हिलाया करते हैं । २. वह बैल जो भूमता हो ।

मूमर—संज्ञा पु० [हि० भूमना या सं० गुम्, प्रा० जुम् + र (प्रत्यय०)] १. सिर में पहनने का एक प्रकार का गहना जिसमें प्रायः एक या कुछ अंगुल चौड़ी, चार पाँच अंगुल लंबी और भीतर से पोली सीधो अथवा अनुवाकार एक पटरी होती है ।

विशेष—यह गहना प्रायः सोने का ही होता है और इसमें छोटी जंजीरो से बंधे हुए घुँघरू या अन्य लटकते रहते हैं । किसी किसी मूमर में जंजीरो से लटकती हुई एक के बाद एक इस प्रकार दो पटरियाँ भी होती हैं । इसके पिछले भाग के कुंडे में चाप के आकार के एक गोल टुकड़े में दूसरी जंजीर या डोरी लगी होती है जिसके दूसरे सिर का कुंडा सिर की चोटी या माग के पास के बालों में अटका दिया जाता है । यह गहना सिर के अगले बालों या माथे के ऊपरी भाग पर लटकता रहता है और इसके आगे के लच्छे बराबर हिलते रहते हैं । संयुक्त प्रदेश (उत्तर प्रदेश) में केवल एक ही मूमर चढ़ा जाता है जो सिर पर दाहिनी ओर रहता है, और यहाँ इसका व्यवहार वेश्याएँ करती हैं, पर पंजाब में इसका व्यवहार गृहस्थ स्त्रियाँ भी करती हैं और वहाँ भूमरो की जोड़ी पहनी जाती है जो माथे पर आगे दोनों ओर लटकती रहती है ।

२. कान में पहनने का भूमका नामक गहना । ३. भूमक नाम का गीत जो होली में गाया जाता है । ४. इस गीत के साथ

होनेवाला भाव । ५. एक प्रकार का गीत जो बिहार प्रांत में सब ऋतुओं में गाया जाता है । ६. एक ही तरह की बहुत सी चीजों का एक स्थान पर इस प्रकार एकत्र होना कि उनके कारण एक गोल घेरा सा बन जाय । जमघटा । जैसे, नावों का भूमर ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पड़ना ।

७. बहुत सी स्त्रियों या पुरुषों का एक साथ मिलकर इस प्रकार घूम घूमकर नाचना कि उनके कारण एक गोल घेरा सा बन जाय । ८. झालू को खड़ा करने पर रस्ती लेकर भागना ।—(कलंदरों की भाषा) । ९. गाड़ीवानों की मोंगरी । १०. भूमरा नामक ताल । दे० 'भूमरा' । ११. एक प्रकार का काठ का खिलोना जिसमें एक गोल टुकड़े में चारों ओर छोटी छोटी गोलियाँ लटकती रहती हैं ।

भूमरा^१—संज्ञा पुं० [हि० भूमर] एक प्रकार का ताल जो चौदह मात्राओं का होता है । इसमें तीन आघात और एक विराम होता है ।

बिं बिं तिरकिट, बिं बिं धा धा, तिता तिरकिट, बिं बिं धा धा ।

भूमरा^२—वि० [हि० भूमना] भूमनेवाला । उ०—बहुरिं धनेक प्रगाथ जु सरवर । रस भूमरे, धूमरे तरवर ।—नव० प्र०, पृ० २८५ ।

भूमरि^३—संज्ञा स्त्री० [हि० भूमर] दे० 'भूमर' ।

भूमरो—संज्ञा स्त्री० [देश०] शालक राग के पाँच भेदों में से एक ।

भूमर^४—वि० [हि० धूर या धूर] सूखा । खुरक । शुष्क ।

भूमर^५—वि० [हि० भूठ] १. खाली । रीता । २. व्यर्थ ।

भूमर^६—वि० [सं० जुष्ट] जूठा । उच्छिष्ट ।

भूमर^७—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वल, हि० झार] १. जलन । बाह । २. परिताप । दुःख । उ०—अजहूँ कहै सुनाइ कोई करें कुबिजा हरि । सूर दाहनि मरत गोपी कबरी के भूरि ।—सूर (शब्द०)

भूमरा^८—क्रि० प्र० [हि० भूर] दे० 'भूराना' । उ०—मन ही माहै भूरणा, रोवै मनही माहि । मन ही माहै बाह दे, दाह बाहरि नाहि ।—बाहू०, पृ० ७३ ।

भूराना^९—क्रि० प्र० [हि० भूर] दे० 'भूराना' ।

भूरा^{१०}—वि० [हि० भूर] १. शुष्क । सूखा । खुरक । २. खाली । उ०—किगरी गहै बजाए भूरी । और साऊ सिंगी नित पूरी ।—जायसी (शब्द०) । ३. दे० 'भूर' ।

भूरा^{११}—संज्ञा पुं० १. सूखा स्थान । वह स्थान जो पानी से भीगा न हो । २. जलवृष्टि का अभाव । अवर्षण । सूखा ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

३. न्यूनता । कमी । उ०—करी कराह साज सब पूरा । काढ़ पुरी परी न भूरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

भूरि^{१२}—संज्ञा स्त्री० [हि० भूर] दे० 'भूर' ।

भूरै^{१३}—क्रि० वि० [हि० भूर] व्यर्थ । निष्प्रयोजन ।

भूरै^{१४}—वि० दे० 'भूर' । उ०—बाँधि पची बोरी नहि पूरे । बार बार खोचत रिख भूरै ।—सूर (शब्द०) ।

भूल^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भूलना] १. वह चौकोर कपड़ा जो प्रायः घोसा के लिये चौपायों की पीठ पर डाला जाता है । उ०—शेर के समान जब लीन्दे सावधान स्थान भूलन दरान जिन वेग बेप्रमान है ।—रघुराज (शब्द०) ।

विशेष—इस देश में हाथियों और घोड़ों आदि पर जो भूल डाली जाती है वह प्रायः मखमल की और अधिक दामों की होती है और उसपर कारचोबी आदि का काम किया होता है । बड़े बड़े राजाओं के हाथियों की भूलों में मोतियों की भालरे तक टँगी होती हैं । ऊँटों तथा रथों के बँलों पर भी इसी प्रकार की भूलें डाली जाती हैं । आजकल कुत्तों तक पर भूल डाली जाने लगी है ।

मुहा०—गंधे पर भूल पड़ना = बहुत ही अयोग्य या कुत्स मनुष्य के शरीर पर बहुमूल्य और बढ़िया वस्त्र होना ।—(व्यंग्य) ।

२. वह कपड़ा जो पहना जाने पर भूँसा और बेहगम जान पड़े ।—(व्यंग्य) । (पृ० ३. दे० 'भूना' । उ०—मखतून के भूल भूनापरा केशव भानु मनो शनि अक लिए ।—केशव (शब्द०) ।

भूला^२—संज्ञा पुं० [हि०] भूड । समूह । उ०—जो रखवानत जगत में, भाड़ी जवक भूना ।—बाँसी० प्र०, मा० १, पृ० १४ ।

भूला^३—संज्ञा पुं० [हि० भूलन] भूलने समय भूँसे की आगे और पीछे मोता देना । पेंग । उ०—बिच मुरमुट भूना चलत, जल ल्ये लोबी भूल ।—प्रतापद, पृ० २१५ ।

भूलदंड—संज्ञा पुं० [हि० भूलना + सं० दण्ड] एक प्रकार की कसरत जिसमें बारी बारी से बैठक और भूलते हुए बड़ करते हैं ।

भूलन^४—संज्ञा पुं० [हि० भूलना] १. एक उत्सव । हिंडोल ।

विशेष—इस उत्सव में देवमूर्ति, विशेषतः श्रीकृष्ण या रामचंद्र आदि की मूर्तियों को भूँसे पर बैठाकर भुलाते हैं और उनके सामने नृत्य गीत आदि करते हैं । यह माधारणतः वर्षा ऋतु में और विशेषतः आषाढ़ शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक होता है ।

२. एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना ।

भूलना^५—संज्ञा स्त्री० भूलने की क्रिया या भाव ।

भूलना—क्रि० प्र० [सं० दोनन] १. किसी लटकती हुई वस्तु पर स्थित होकर अथवा किसी आधार के सहारे नीचे की ओर लटककर बार बार आगे पीछे या इधर उधर हटने बढ़ते रहना । लटक कर बार बार इधर उधर हिलना । जैसे, पंखे की रस्सी भूलना, भूँसे पर बैठकर भूलना । २. भूँसे पर बैठकर पेंग लेना । उ०—(क) प्रेम रंग बोरी भोरी नवल-किसोरी गोरी भूलति हिंडोरे यो मोटाई सखियान में । काम भूलै उर में, उरोजन में दाम भूलै स्याम भूलै प्यारी की अन्नारी बँखियान में ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) फूली फूली बेली सी नवेली अलवेली वपु भूलति अकेली काम केली सी बढ़ति हैं ।—पद्माकर (शब्द०) । ३. किसी कार्य के होने की आशा में अधिक समय तक पड़े रहना । आसरे में अथवा अनिर्णीत अवस्था में रहना । जैसे—जो लोग बरसों से भूल रहे हैं उनका काम होता ही नहीं और आप अभी से जल्दी मचाने लगे ।

मूलना^१—वि० [वि० बी० मूलनी] मूलनेवाला । जो मूलता हो ।
बैचे मूलना पुल ।

मूलना^२—संज्ञा पु० १. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ७, ७, ७ और ५ के विराम से २६ मात्राएँ और अंत में गुरु लघु होते हैं । जैसे—हरि राम बिभु पावन परम, गोकुल बसन मनमान । २. इसी छंद का दूसरा भेद जिसके प्रत्येक चरण में १०, १० १० और ७ के विराम से ३७ मात्राएँ और अंत में यगण होता है । जैसे,—जैति हिम बालिका समुर कुल बालिका कालिका मालिका सुरस हेतु । ३. हिंदोला । मूला । (व०) । उ०—पंखवा की डाली तले घासी मूलना डला दे ।—गीत (शब्द०) ।

मूलनि^३—संज्ञा स्त्री० [हि० मूलना] मूलने का भाव या स्थिति ।
उ०—हृत् यह ललित सतन की फूलनि । फूल फूल जमुना जल मूलनि ।—नंद० प्र०, पृ० ३१६ ।

मूलनी बगली—संज्ञा स्त्री० [हि० मूलना + बगली] मुगदर की एक प्रकार की कसरत जो बगली की तरह की होती है ।

विशेष—बगली की प्रपेक्षा इसमें यह विशेषता है कि पोठ पर से बगल में मुगदर छोड़ते समय पंजे की इस प्रकार चलटना पड़ता है कि मुगदर बराबर मूलता हुआ जाता है । इससे कलाई में बहुत जोर आता है ।

मूलनी बैठक—संज्ञा स्त्री० [हि० मूलना + बैठक (= कसरत)] एक प्रकार की कसरत ।

विशेष—बैठक की इस कसरत में बैठक करके एक पैर को हाथी के सूँड़ की तरह झुलाकर और तब उसे समेटकर बैठना और फिर उठकर दूसरे पैर को उसी प्रकार झुलाना पड़ता है । इसमें शरीर को तोलने की विशेष माधना होती है ।

मूलर^४—संज्ञा पु० [हि० मूल] मूँड़ । जमघट । उ०—बालूबाबा देसणउ जहाँ पाणी सेवार । ना पाणिहारी मूलरउ ना कूबड़ लेकर ।—ढोला०, पृ० ६६४ ।

मूलरि^५—संज्ञा स्त्री० [हि० मूलना] मूलता हुआ छोटा गुच्छा या झुमका । उ०—बर बितान बहु तने तनावन । मनि भालरि मूलरि लडकावन ।—गोपाल (शब्द०) ।

मूला—संज्ञा पु० [सं० मूला] १. पेड़ की डाल, छत या घोर किसी ऊँचे स्थान में बाँधकर लटकाई हुई दोहरी या चौहरी रस्सियाँ जंजीर आदि से बंधी पटरी जिसपर बैठकर मूलते हैं । हिंदोला ।

विशेष—मूला कई प्रकार का होता है । इस प्रांत में लोग साधारणतः वर्षा ऋतु या पेड़ों की डालों में मूलते हुए रस्से बाँधकर उसके निचले भाग में तक्ता या पटरी आदि रखकर उसपर मूलते हैं । दक्षिण भारत में मूलों का रवाज बहुत है । वहाँ प्रायः सभी घरों में छतों में तार या रस्सी या जंजीर लटका दी जाती है और बड़े तक्ते या चौकी के चारो कोने से उन रस्सियों को बाँधकर जंजीरों को जड़ देते हैं । मूले का निचला भाग जमीन से कुछ ऊँचा होना चाहिए जिसमें वह सरसता से बराबर मूल सके । मूले के घाने और पीछे

जाने और घाने को पेंग कहते हैं । मूले पर बैठकर पेंग देने के लिये या तो जमीन पर पैर को तिरछा करके घाघात करते हैं या उसके एक सिरे पर खड़े होकर भोंके से नीचे की ओर झुकते हैं ।

क्रि० प्र०—मूलता ।—डोलना ।—पड़ना ।

२. बड़े बड़े रस्से, जंजीरो या तारों आदि का बना हुआ पुल जिसके दोनों सिरे नदी या नाले आदि के दोनों किनारों पर किसी बड़े खंभे, चट्टान या बुज आदि में बंधे होते हैं और जिसके बीच का भाग अधर में लटकता और झूलता रहता है । मूलता हुआ पुल । जैसे, लखमन मूला ।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवर्ष में पहाड़ी नदियों आदि पर इसी प्रकार के पुल होते थे । आजकल भी उत्तरी भारत तथा दक्षिणी अमेरिका की छोटी छोटी पहाड़ी नदियों और बड़ी बड़ी खादियों पर कहीं कहीं जगलों जातियों के बनाए हुए इस प्रकार के पुराना चाल के पुल पाए जाते हैं । पुरानों चाल के पुल दो तरह के होते हैं—(१) एक बहुत छोटे और मजबूत रस्से के दोनों सिरे नदी या खाई आदि के दोनों किनारों पर की दो बड़ी चट्टानों आदि में बाँध दिए जाते हैं और उनमें बहुत बड़ा बोरा या चौखटा आदि लटका दिया जाता है । ऊपरवाले रस्से को पकड़कर यात्री उसे कभी कभी स्वयं सरकाता चलता है । (२) मोटी मोटी मजबूत रस्सियों का जाल बुनकर अथवा छोटे छोटे डंडे बाँधकर नदी की चौड़ाई के बराबर लंबी और डेढ़ हाथ चौड़ी एक पटरी सी बना लेते हैं और उस रस्सा में लटकाकर दोनों ओर रस्सियों से इस प्रकार बाँध देते हैं कि नदी के ऊपर उन्ही रस्सों और रस्सियों की लटकती हुई एक गली सी बन जाती है । इसी में से होकर घादमी चलते हैं । इसके दोनों सिरे भी नदी के दोनों किनारे पर चट्टानों से बंधे होते हैं । आजकल यूरोप, अमेरिका आदि की बड़ी बड़ी नदियों पर भी मोटे मोटे तारों और जंजीरों से इसी प्रकार के बहुत बड़े, बढ़िया और मजबूत पुल बनाए जाते हैं ।

३. वह बिस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियों में बाँधकर दोनों ओर दो ऊँची खूंटियों या खंभों आदि में बाँध दिए गए हों ।

विशेष—इस देश में साधारणतः देहाती लोग इस प्रकार के टाट के बिस्तर पेड़ों में बाँध देते हैं और उनपर सोते हैं । जहाजों में खलासी लोग भी इस प्रकार के कनवास के बिस्तरों का व्यवहार करते हैं ।

३. पशुओं की पोठ पर डालने की मूल । ५. देहाती स्त्रियों के पहनने का ढोला ढाला कुरता । ६. भोका । भटका ।—(व०) । † ७. तरबूज । † ८. स्त्रियों का एक प्रकार का आभूषण । २. दे० 'मुलवा' ।

मूलाना^६—क्रि० सं० [हि० मूलाना] दे० 'मूलाना' । उ०—तामें भी ठाकुर जी को डोल मूलाए ।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० २३० ।

मूला—संज्ञा स्त्री० [हि० भुलना] १. वह कपड़ा जिससे हुवा करके धातु धोसाया जाता है। परती। २. खलासियों आदि का जहाजी बिस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियों से बाँधकर दोनों ओर ऊँची छूंटियों या खंभों आदि में बाँध दिए जाते हैं। ३० 'मूला'-३।

मूसर ①—संज्ञा पुं० [सं० युग, हि० लूमा] वह लकड़ी जो बैलों को नाधने के लिये उनके कंधों पर रखी जाती है। लूमा। उ०—मूसर भार न मल्लही गोधा गावड़ियाह। हम बस भार न ऊपड़े मोला गावड़ियाह।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० १५।

मूसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास। गुलमुला। पलजी। बड़ा मुरमुरा।

विशेष—यह घास उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकता से होती है और इसे छोड़े तथा गाय बैल आदि बड़े पशु से खाते हैं।

मैडा ①—संज्ञा पुं० [सं० जयन्त, हि० भट्टा] भंडा। व्यवज। उ०—कहे कासी पडत लाल भेड़े बहुत। पाय दल जावे तहत क्या सरयत खबर।—दक्खिनी०, पृ० ४६।

मैप—संज्ञा स्त्री० [हि० भपना] लाज। शर्म। हया।

मैपना—क्रि० प्र० [हि० छिपना] शरमाना। लजाना। लज्जित होना। संयो० क्रि०—जाना।

मेकना ①—क्रि० प्र० [धनु०] झुकाना। बैठना। उ०—(क) ढोल ह मनह विमासियउ, साँच कहइ छइ एह। करह भेकि दोनूँ चढा कूट न संभालेह।—ढोला०, दू० ६३७। (ख) घाली टापर वाग मुखि, भेकयउ राजदुमारि।—ढोला०, दू० ३४५।

विशेष—ऊँट के बैठने को राजस्थानी में भेकना कहते हैं। ऊँट को बैठाने समय भे भे किया जाता है। उसी के धनुकरण पर यह शब्द बना है।

मेपना—क्रि० प्र० [हि०] ३० 'मैपना'।

मेर ①—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० देर] बिलंब। देर। उ०—(क) चलहु तुरत जिनि मेर लगावहु सबही घाइ करी विश्राम।—सूर (शब्द०)। (ख) काहे को तुम मेर लगावति। दान देहु घर जाहु बेचि दधि तुम ही को वह भावति।—सूर (शब्द०)।

मेर ②—संज्ञा पुं० [हि० छेड़ना] बखेड़ा। झगड़ा। उ०—(क) सूरदास प्रभु रासबिहारी श्री बनबारी बुधा करत काहे मेरे।—(शब्द०)। (ख) मधुकर समाना ऐसा बैरन।—नंदकुमार छाँड़ि को लैहै योग दुखन की टेरन। जहाँ न परम उदार नंद सुत मुक्त परो किन मेरन।—सूर (शब्द०)।

मेरना ①—क्रि० प्र० [हि० छेड़ना] मेलना। सहना। उ०—कह रुप पद सब ते गहरी गहरी राति सुख मेरि। मन में मनो न मेल कछु लागे सेवन मेरि।—विश्राम (शब्द०)।

मेरना ②—क्रि० प्र० [हि० छेड़ना] शुरू करना। आरंभ करना। उ०—मेरी बड़ेरी बाहि मेरी मुरली बहुतेरी बनी।—गोपाल (शब्द०)।

मेरा ①—संज्ञा पुं० [हि० मेर ?] १. झंकट। बखेड़ा। मेर। उ०—(क) जीव का जनम का जीवक प्राप ही आपसे

मानि मेरा।—दादू (शब्द०)। (ख) दीपक में धरयो चारि देखत भुज मए चारि हारी हो धरति करत दिन दिन को मेरो।—सूर (शब्द०)। (ग) सुंदर वाही बचन है जामहि कछु बिबेक। नाठर मेरा मैं परयो बोलत मानो भेक।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ७२९। २. छोटा सोता। भिरी। थोड़े पाखीवाला गढ़ा। † ३. समूह। झुंड।

मेल ①—संज्ञा स्त्री० [हि० मेलना] १. पानी में तैरने आदि में हाथ पैर से पानी हटाने की क्रिया। २. हलका धक्का या हिलोरा। उ०—सुरत समुद्र मगन दंपति सो मेलत प्रति सुख मेल।—सूर (शब्द०)। ३. मेलने की क्रिया या भाव।

मेल ②—संज्ञा स्त्री० [हि० मेल] बिलंब। देर। मेर। उ०—(क) सब कहैं देखि भूप मणि बोले सुनहु सकल मम मैना। भये कुमार विधावन लायक उचित मेल कछु है ना।—रघुराज (शब्द०)। (ख) झीकति है का झरोखा लगी लग लागिने को इहाँ मेल नहीं फिर।—पद्याकर (शब्द०)।

मेलना—क्रि० प्र० [क्लेस (= हिलाना डुलाना)] १. ऊपर लेना। सहारना। सहना। बरदाश्त करना। जैसे, दुःख मेलना, कष्ट मेलना, मुसीबत मेलना। उ०—दूटे परत प्रकास को कोन सकत है मेलि।—कबीर (शब्द०)। २. पानी में तैरने या चलने में हाथ पैर से पानी हटाना। पानी को हाथ पैर से हिलाना। उ०—(क) कर पग गाँह प्रंगुठा मुख मेलत। प्रभु पीढ़े पालने प्रकेले हरखि हरखि अपने रंग खेलत। शिष्य सोचन बिधि बुद्धि विचारत वट बाढ्यो सागर जल मेलत।—सूर (शब्द०)। (ख) बालकलि को विशद परम सुख सुख समुद्र रुप मेलत।—सूर (शब्द०)। ३. पानी में हिलना। हेलना। जैसे, कमर तक पानी मेलकर नदी पार करना। ४. ठेलना। उकेलना। घागे बढ़ाना। घागे चलाना। उ०—दुहव की सहज बिसात दुहैं मिलि सतरंज खेलत। उर, दख, नैन चपल धरव चतुर बराबर मेलत।—हरिदास (शब्द०)। † ५. पचाना। हजम करना। ६. सहना। ग्रहण करना। मानना। उ०—पाँपन प्राणि परे तो परे रहे केती करी मनुहारि न मेनी।—मतिराम। (शब्द०)।

मेलनी—संज्ञा स्त्री० [हि० मेलना] एक प्रकार की जंजीर जो कान के प्राधुषण का मार संभालने के लिये बालों में घटकाई जाती है।

मेली—संज्ञा स्त्री० [हि० मेलना] बच्चा जनते समय स्त्री को विशेष प्रकार से हिलाने डुलाने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना।

मेलुआ—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'मूला'।

मेर ①—संज्ञा पुं० [हि० बहर] ३० 'जहर' उ०—जपुरनाथ बैसा धाम बेठा तीन पाया। प्याला मेर पाया एक बेठा नै मराया।—शिवर०, पृ० ७४।

मौक—संज्ञा स्त्री० [सं० युज, युक्त, युक्त, हि० मुकना] १. मुकाब। प्रवृत्ति। २. तराजू के किसी पलके का किसी ओर अधिक नीचा होना।

मुहा०—भोंक मारना = डाँड़ी मारना । कम सीलना ।

१. बोझ । भार । जैसे—इसकी भोंक सब उसी पर पड़ती है ।
४. वेग । भटका । तेजी । प्रचंड गति । जैसे—(क) गाड़ी बड़ी भोंक से धा रही थी । (ख) साइं धा रहा है कहीं भोंक में पड़ जाओगे तो बड़ी चोट यावेगी । (ग) नशे की भोंक, क्रोध की भोंक, मिलने की भोंक, नींद की भोंक,
५. किसी काम का धूमधाम से उठाना । कार्य की गति । जैसे—पहली भोंक में उसने इसना काम कर डाला । ६. ठाट । सजावट । चाल । घंटाज ।

द्यो०—भोंक भोंक = ठाट बाट । धूम धाम ।

७. पानी का हिलोरा । ८. ३० 'भोंका' । ९. दो लड्डू जो बैल-गाड़ी की मजदूरी के लिये दोनों ओर लगे रहते हैं ।

भोंकना—क्रि० सं० [हि० भोंक] १. भटके के साथ एकबारगी किसी वस्तु को धागे की धोर फेंकना । वेग से सामने की ओर डालना । फेंककर छोड़ना । जैसे, भाड़ में पत्ते भोंकना । इजन में कोयला भोंकना । घाँस में धूल भोंकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

मुहा०—भाड़ भोंकना = (१) भाड़ में सूँगे पत्ते आदि फेंकना । २. कुछ व्यय करना (व्यय में) । जैसे—इतने दिन विल्ही में रहे, भाड़ भोंकते रहे ।

२. ठकेलना । ठेलना । जबरदस्ती धाग की धोर बढ़ाना या करना । जैसे—उसने मुझे एकबारगी धाग की धोर भोंक दिया । ३. धंधाधुंध लपं करना । बहुत अधिक व्यय करना । बहुत अधिक लपं करना । बहुत अधिक किसी काम में लगाना । जैसे, व्याह शादी में रुपया भोंकना ।

संयो० क्रि०—देना । डालना ।

४. किसी आपत्ति या दुःख के स्थान में डालना । मय या कष्ट के स्थान में कर देना । बुरी जगह ठेलना । जैसे—(क) तुमने हमें कहीं लपकर भोंक दिया, दिन रात आफत में जान पड़ी रहती है । (ख) उसने अपनी लड़की को बुरे घर भोंक दिया । ५. कार्य का बहुत अधिक भार देना । बहुत ज्यादा काम ऊपर डालना । बिना सोचे समझे काम लादना । जैसे—तुम जो काम होता है हमारे ही ऊपर भोंक देते हो । ६. बिना बिबारे आरोपित करना । (दोष आदि) मढ़ना । (दोष) लगाना । जैसे—सारा कसूर उसी पर भोंकते हो ।

भोंकरना—क्रि० प्र० [धनु०] १. भौं भौ करना । २. बहुत जोर से रोना । ३. झुलस जाना ।

भोंकना—संज्ञा पु० [देश०] भट्ठे या भाड़ में लड्डूपताई भोंकने-वाला मनुष्य ।

भोंकवाई—संज्ञा स्त्री [हि० भोंकना] १. भोंकने की क्रिया या भाव । २. भोंकवाने की क्रिया या भाव । ३. भोंकने के काम की उजरत । भोंकने की मजदूरी ।

भोंकवाना—क्रि० सं० [हि० भोंकना का प्रे० रूप] १. भोंकने का काम कराना । २. किसी को धागे की धोर जोर से डालना ।

भोंका—संज्ञा पु० [हि० भोंक] १. वेग से जानेवाली किसी वस्तु

के स्पर्श का घाघात । तेजी से चलनेवाली किसी चीज के छू जाने से उत्पन्न भटका । धक्का । रैला । भपट्टा । २. वेग से चलनेवाली वायु का आघात । हवा का भटका या धक्का । वायु का प्रवाह । हवा का बहाव । भकोरा । जैसे—ठंडी हवा का भोंका घाया । ४. पानी का हिलोरा । ५. बगल से लगने-वाला धक्का जिसके कारण कोई वस्तु गिर पड़े या अपने स्थान से हट जाय । रैला । ६. इधर से उधर झुकने या हिलने डोलने की क्रिया ।

मुहा०—भोंके घाना = नींद के कारण झुक झुक पड़ना । ऊँच लगना । भोंका घाना = किसी आघात या वेग आदि के कारण किसी ओर झुकना । जैसे, भोंका खाकर गिरना, नींद से भोंका लाना ।

७. ठाट । सजावट । चाल । घंटाज । उ०—पहिले राती घूनरी सिर उपरना सोहे । कटि लगा लीलो बन्धो भोंको जो देखि मन मोहे ।—सूर (भट्ट०) । ८. कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—यह पेंच (दंष्ट्र) उस समय किया जाता है जब दोनों पहलवानों के हाथ एक दूसरे की कमर पर होते हैं । इसमें एक हाथ विपक्षी के हाथ के बाहर निकालकर मोड़ पर चढ़ाते और दूसरा बगल में मोड़ पर ले जाते हैं और फिर भोंका देकर गिराते हैं ।

भोंकाई—संज्ञा स्त्री [हि० भोंकना] १. भोंकने की क्रिया या भाव । २. भोंकने की मजदूरी ।

भोंकारना—क्रि० प्र० [हि०] कुछ कुछ झुलसा देना । जला देना ।

भोंकिया—संज्ञा पु० [हि० भोंकना] भाड़ में पताई आदि भोंकने-वाला । भोंकवा ।

भोंकी—संज्ञा स्त्री [हि० भोंक] १. भार । बोझ । जवाबदेही । जैसे—सब भोंकी मेरे ही सिर ? २. भारी घनिष्ट या हानि की प्राणका । जोखी । जोखिम । जैसे—दूसरे का माल रखकर भोंकी कौन सहे ।

क्रि० प्र०—सहना ।

भोंक(ु) —संज्ञा पु० [देश०] १. खोता । घोंसला । २. कुछ पक्षियों (जैसे, टेक, गोघ आदि) के पंख की यज्ञी या लटकता हुआ मांस । ३. खुजली । सुरसुराहट । घुल ।

मुहा०—भोंक मारना = खुजली होना । घुन होना ।

भोंकल(ु) —संज्ञा पु० [हि० भोंकलाना] भोंकलाहट । क्रोध । कुठन । गुस्सा ।

क्रि० प्र०—माना ।

भोंट—संज्ञा पु० [सं० भूट (= भाड़ी)] १. भाड़ी । २. भाड़ । भुर-भुट । ३. समूह । झुंटी । ४. ३० 'भोंटा' । ५. चाल । ठाट । भोंक । घंटाज । उ०—लोचन बिलोच पोच ललित की ओटन हाव, माव भरी कर भोंटन पे ललित बात ।—नंद० प्र०, पृ० ३७६ ।

भोंटमभोंटा—संज्ञा पु० [हि०] भोंटाभोंटी । उ०—भव भोंटम भोंटा की नीवत घानेवाली है और सारा कसूर मुगलानी का है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१४ ।

भौंटा^१—संज्ञा पुं० [सं० जुट] १. बड़े बड़े बालों का समूह। इधर उधर बिखरे बड़े बड़े बालों का जुट। उ०—हमरे सबद बिबेक लगहि चूतर मे सौंटा। बाबरूह ले भागु पकरि के कटिहों भौंटा।—पलटू, भाग ३, पृ० ८६।

मुहा०—भौंटे पकड़कर काटना, मारना, निकालना, घसीटना या इसी प्रकार का घोर कुव्यवहार करना = सिर के बाल खींचकर वे सब व्यवहार करना।—(स्त्रियों के लिये यह अपमान की बात है)। भौंटे खसोटना = सिर के बाल खींचना।

यौ०—भौंटा भौंटी = ऐसा लड़ाई भगड़ा या मारपीट जिसमें भौंटा पकड़ने की नीवत आवे।

२. जुट। पतली लकी वस्तुओं का इतना बड़ा समूह जो एक बार हाथ में आ सके।

भौंटा^२—संज्ञा पुं० [हि० भौंका] १. वह धक्का जो भूले को इधर हिलाने के लिये दिया जाता है। भौंका। पेंग। उ०—(क) ललिता बिशाखा देहि भौंटा रीझि प्रेग न समाति।—सूर (शब्द०)। (ख) एक समय एकात वन में डोल भूलत कुंभबिहारी। भौंटा देत परस्पर भबोर उड़ावत डारी।—हरिदास (शब्द०)।

मुहा०—भौंटा देना = भूले को बढाने के लिये धक्का देना। पेंग मारना। भौंटा मारना = दे० 'भौंटा देना'।

२. भटका। भौंक। चाल। घटाज।

भौंटा^३—संज्ञा पुं० [हि० ढोटा] १. भैंस का बच्चा। पड़वा। २. भैंसा। महिष।

भौंटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भौंटा] दे० 'भौंटा'—१। उ०—सुनि रिपुहन्त लखि नख सिंग छोटी। लगे घसीटन धरि धरि भौंटी।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—भौंटीभौंटा = लड़ाई भगड़ा। दे० 'भौंटाभौंटी'।

भौंटी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भौंका'—१।

भौंप—वि० [प्रा० भौंप, हि० भौंपना] ठक लेनेवाला। आच्छादित कर लेनेवाला। घना। निविड। उ०—सो रहा है भौंप अधियाला नदी की जाँघ पर।—हरी घास०, पृ० ४८।

भौंपड़ा—संज्ञा पुं० [हि० छोपना (= छाना) शब्दवा प्रा० भौंप, हि० भौंप] [स्त्री० भौंपा० भौंपड़ी] वह बहुत छोटा सा घर या मनुष्यों के रहने का स्थान जो विशेषतः गाँवों या जंगलों आदि में कच्ची मिट्टी की छोटी छोटी दीवारों को उठाकर घोर घास फूस से छाकर बना लेते हैं। कुटी। पर्णशाला।

मुहा०—भौंप भौंपड़ा = पेट। उदर (फकीर०)। भौंप भौंपड़े में भाग लगना = भूख लगना (फकीर०)।

भौंपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० भौंपड़ा का स्त्री० भौंपा०] छोटा भौंपड़ा। कुटिया। पर्णशाला। मढ़ी। उ०—कंत बीस सोवन बिलोकिए कुमंत फल ख्याल लंका साई कपि राई की सी भौंपड़ी।—तुलसी (शब्द०)।

भौंपा—संज्ञा पुं० [हि० भौंपा] भौंपा। गुच्छा। उ०—भूलहि रतन पाट के भौंपा। साज मदन नेहि का कंह कोपा।—जायसी (शब्द०)।

भौंक^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भौंक'। उ०—वाम भ्रमल ते भी मतवाला, भौंक में भौंक सो आवे।—सं० दरिया, पृ० ११२।

भौंखना—क्रि० स० [हि० भौंखना] डालना। छोड़ना। देना। उ०—धम भौंखे आहुत भाल में जो।—रघु० क०, पृ० २१३।

भौंभा—संज्ञा स्त्री० [हि० भौंभ] १. किसी वस्तु का वह अनावश्यक लटकता हुआ अंग जो फूला फूला थैली जैसा दिखाई दे। उ०—नितम्ब गुह्य कपड़ों के भौंभ लटकाकर लाना बाह्य।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६१।

भौंभर—संज्ञा पुं० [प्रा० भौंभर] पचीनी। भौंभर।

भौंभा—संज्ञा पुं० [प्रा० भौंभर] दे० 'भौंभर'।

भौंटा^१—संज्ञा पुं० [हि०] पेंग। दे० 'भौंका'। उ०—(क) गाजे षण सुण गावणो, प्याला भर भव पाव। भूले रेशम रंग भड, भौंटा देर भूलाव।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ८। (ख) कोउ भौंखल छोरि कटि मे बाँधि कसिके देत। कोउ किए लावन की कछोटी बहुत भौंटा देत।—भारतेन्दु प्र०, भा० २, पृ० ११८।

भौंटींग^१—वि० [हि० भौंटा] भौंटेवाला। जिसके सिर पर बहुत बड़े बड़े घोर लड़े बाल हो। उ०—मज्जहि भूत पिशाच बैताला। प्रथम महा भौंटींग कराखा।—तुलसी (शब्द०)।

भौंटींग^२—संज्ञा पुं० बहुत बड़े बड़े घोर लड़े बालोंवाला। भूत प्रेत या पिशाच आदि।

भौंड़—संज्ञा स्त्री० [सं० भौंड] सुपारी का वृक्ष।

भौंपड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भौंपड़ा'।

भौंपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भौंपड़ी'।

भौंपरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भौंपड़ी + रिया (प्रत्य०)] दे० 'भौंपड़ी'। उ०—खिरकी बैठ गोरी चितवन लागी, उपरों भौंप भौंपरिया।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५५।

भौंवाभौंवा—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'भूम भूम'—१। उ०—सहजो गुरु ऐसा मिले सम दृष्टी निलेभि। सिष कूँ प्रेम समुद्र में कर दे भौंवाभौंवा।—सहजो०, पृ० १२।

भौंर^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भौल'।

भौंरई^१—वि० [हि० भौल + ई (प्रत्य०)] जिसमें भौल हो। रसेदार। उ०—सूर करतरि सरस तोरई। सेमि सींगरी छमकि भौंरई।—सूर (शब्द०)।

भौंरई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० भौल] रसेदार तरकारी।

भौंरना—क्रि० स० [सं० बोलन] १. भटका देकर हिलाना या कंपाना। उ०—कह्यो कहारनि हमी न सोरि। नयो कहार चलत पग भोरि।—सूर (शब्द०)। २. किसी चीज को इस प्रकार भटका देकर बार बार हिलाना जिसमें उसके साथ लगी हुई दूसरी चीज गिर पड़े। जैसे पेड़ की डाल भोरना। घाम भोरना। हमली भोरना, आदि। उ०—भोरि छे कौन लए बन बाग ये कौन जु घामन की हरियाई।—रसकुसुमाकर (शब्द०)। † प्रतिपूर्वक भोजन करना। छककर खाना।

संबो० कि०—डालना ।—देना ।

१. इकट्ठा करना । एकत्र करना ।—(शब्द०) ।

भोरा०^१—संज्ञा पु० [हि० भोरा] गुच्छा । भूम्हा ।

भोरा०^२—संज्ञा पु० [हि० भोला] दे० 'भोला' । उ०—लाल मकमलो रबि र पान की भोरा धारे ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १२ ।

भोरि०^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भोली' ।

भोरी०^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भोली] १. भोली । उ०—(क) भाय करी मन की पद्माकर ऊपर नाय बबीर की भोरी ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) हमारे कोम बेह विधि साये । बटुभा भोरी दंड अचारी इतनेन को धाराये ।—सूर (शब्द०) । २. पेट । भोकर । भोकर । उ०—जो धावे धनगनत करोरी । डारे जाह भरे नहि भोरी ।—विधाय (शब्द०) । ३. एक प्रकार की रोटी । उ०—रोटी बाटी पोरो भोरी । एक कोरी एक बीव भोरी ।—सूर (शब्द०) । ४. रस्सी आदि के जालों या फंदों से युक्त भोला के आकार का बड़ा जाल जिसमें ग्राह्य लोगों को उठाकर पहुँचाते थे । दे० 'भोली'—७ । उ०—(क) बडाइय दिल्ली नगर धर धर सेन जुधमग । धाय धुमत भोरिन धले, धवन सुनंतहु धगि ।—पु० रा०, ६१ । २४६८ । (ख) बाजीव जान भोरी धरिय, धाउ पंच रंवर धुपति ।—पु० रा० १० । ३४ ।

भोली^१—संज्ञा पु० [हि० भालि (= घाम का पना)] तरकारी आदि का गाढ़ा रसा । शोरबा । २. किसी अन्न के आटे में मसाले देकर कड़ी आदि की तरह पकाई हुई कोई पतली लेई । ३. माँड़ । पोच । ४. मुलम्मा या गोलट जो धातुधो पर ढाया जाता है ।

कि० प्र०—करना ।—बढ़ाना ।—फेरना ।

यौ०—भोलदार ।

भोल^१—संज्ञा पु० [सं० बोल (बोलन), हि० भलना] १. पहने या ताने हुए कपड़े आदि में बहुत धंश जो ढीला होने के कारण झूल या लटककर भोले की तरह हो जाता है । जैसे, कुरते या कोट में का भोल, छत की बाँदनी में का भोल आदि । २. कपड़े आदि के ढीले होने के कारण उसके झूलने या लटकने का भाव या क्रिया । तनाव या कसाव का उलटा ।

कि० प्र०—डालना ।—निकलना ।—निकालना ।—पड़ना ।

३. पल्ला । धाँचन । उ०—फूली फिरत जसोदा घर घर उबटि कान्हू अन्हूबाय भोला । तनक बदन होत तनक तनक कर तनक चरन पोछत पट भोल ।—सूर (शब्द०) । ४. परदा । घोट । झाड़ । उ०—ऊधो सुनत तिहारो बोस । त्याए हरि कुसलात लख्य तुम घर घर पारघो गोस । कहन देहु कहा करे हमरो बन उठि जैहे भोल । धावत ही याको पहिवाग्यो निपटहि धोखो तोल ।—सूर (शब्द०) । ५. हाथी की चाल का एक ऐव जिसके कारण वह बिल्कुल सीधा न चलकर बराबर झूलता हुआ चलता है ।

भोल^२—वि० १. ढीला । जो कसा या तना न हो ।

यौ०—भोलभाल = ढीलाढाला ।

२. निकम्मा । लराब । बुरा ।

भोल^३—संज्ञा पु० झूल । गलती । जैसे—गवहे की गोने में नौ मन का भोल ।—(कहा०) ।

भोल^४—संज्ञा पु० [हि० भिल्ली या भोली] १. वह भिल्ली या थैली जिसमें गर्भ से निकले हुए बच्चे या भंडे रहते हैं । जैसे, कुतिया का भोल, मुरगी का भोल, मछली का भोल आदि ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल पशुओं और पक्षियों आदि के संबंध में ही होता है, मनुष्यों आदि के संबंध में नहीं ।

कि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।

मुहा०—भोल बैठाना = मुरगी के नीचे सेने के लिये भंडे रखना ।

२. गर्भ । उ०—भक्ति बीज बिनसे नहीं धाय परे जो भोल । जो कंचन बिष्ठा परे घट न ताको भोल ।—कबीर (शब्द०) ।

भोल^५—संज्ञा पु० [सं० उवाल हि० भाल] १. राख । भस्म । लाक । उ०—(क) तुम बिन कंता धन हरछे (हृदे या हृद) तून तून बरमा डोल । तेहि पर बिरह जराइ के चहै उड़ावा भोल ।—जायसी (शब्द०) । (ख) प्राणि जो छगी समुद्र में टुटि टुटि लखी जो भोल । रोवै कबिरा डिभिया मोरा हीरा जरे भमोल ।—कबीर (शब्द०) । २. दाह । जलन ।

भोलदार—वि० [हि० भोल + फा० दार] १. जिसमें रसा हो । रसेदार । २. जिसपर गिलट या मुलम्मा किया हो । ३. भोल संबंधी । ४. जिसमें भोल पड़ता हो । ढीलाढाला ।

भोलना—कि० सं० [सं० उवलन] जनाना । उ०—हमको तुझ बिन सबै सतावत ।...पूछ पूछ सरदार सखन के इहि बिधि दई बड़ाई । तिन प्रति बोल भोलि तनु डारघो अनल भँवर की नाई ।—सूर (शब्द०) ।

भोला^१—संज्ञा पु० [हि० भलना वा सं० चोल] [स्त्री० भलपा० भोली] १. कपड़े की बड़ी भोली या थैली । २. ढीलाढाला गिलाफ । खोली । जैसे, बंदूक का भोला । ३. साधुओं का लीला कुरता । चोला । ४. बास का एक रोग जिसमें कोई धंग (जैसे, हाथ पैर आदि) ढीला पड़कर बेकाम पड़ जाता है । एक प्रकार का लकवा या पक्षाघात ।

मुहा०—किसी को भोला मारना = (१) बात रीय से किसी धंग का बेकाम हो जाना । पक्षाघात होना । (२) सुस्त पड़ जाना । बेकाम हो जाना ।

५. पेड़ों के पास लू आदि के कारण एकबारगी कुम्हला जाने या झूल जाने का रोग ।

कि० प्र०—मारना ।

६. भटका । घाघात । धक्का । भोंका । बाधा । आपत्ति । उ०—पाकी खेती देखिके गरवे कहा किसान । अजहूँ भोला बहुत है घर धावे तब जान ।—कबीर (शब्द०) । ७. हाथ का संकेत । इशारा । ८. पाल की गोन या रस्सी को भटका देने या ढीलने की क्रिया ।

भोला^१—संज्ञा पुं० [हि० भलना] भौका । भौकोरा । हिलोर ।
न०—कोई खादि पवन कर भोला । कोई करहि पात भस
डोला ।—जायसी (शब्द०) ।

भोलाहल—संज्ञा पुं० [सं० भाउहल, प्रा० भवहल] (युद्ध की)
चमक । दीप्ति । प्रकाश । उ०—हय हिसहि गज चिकरि
मगर सम दिखि कुलाहल । बलि पंथिनि बेताल नंदि नंदिय
भोलाहल ।—पृ० रा०, ८।१४ ।

भोलिका—संज्ञा स्त्री० [हि० भोली] दे० 'भोली' । उ०—ऊबम
भति होत जात घुंघट में नहि मखात छूटत बहुरंग उड़त धरि
भोलिका ।—मारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३६३ ।

भोलिहारा—संज्ञा पुं० [हि० भोली + हारा (प्रत्यय०)] १. भोली
लटकानेवाला । २. कहार । (सोनारों की बोली) ।

भोली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भूलना] १. इस प्रकार मोड़कर हाथ
में लिया या लटकाया हुआ कपड़ा कि उसके नीचे का भाग
एक गोख बरतन के आकार का हो जाय और उसमें कोई
वस्तु रखी जा सके । कपड़े को मोड़कर बनाई हुई पैली ।
घोकरो । जैसे, गुलाल की भोली, साधुओं की भोली ।

विशेष—यह किसी चीखूटे कपड़े के चारों कोनों को लेकर एकट्ठा
बांधने से बन जाती है । कभी कभी इसके नीचे के खुले हुए
चारों कोनों को कुछ दूर तक सी भी देते हैं ।

मुहा०—भोली छोड़ना = बुढ़ापे के कारण शरीर के चमड़े का
भूल जाना । भोली डालना = भिक्षा मांगने के लिये भोली
उठाना । साधु या भिक्षुक हो जाना । भोली मरना = साधु
को भरपूर भिक्षा देना ।

२. वास बाँधने का जाल । ३. मोट । चरसा । पुर ४. वह कपड़ा
जिससे खलिहान में घनाज में मिला हुआ भूसा उड़ाकर भलग
किया जाता है । ५. बोरा । कुपती का एक पेंच ।

विशेष—यह पेंच उस समय किया जाता है । जब विपक्षी किसी
प्रकार अपनी पीठ पर आ जाता है । इसमें एक हाथ उलटकर
उसकी कमर पर बैठे हैं और दूसरे से उसकी टाँगों की
संधि पकड़ कर उठाते हैं ।

६. सफरी बिस्तर जो चारों कोनों पर खड़ी हुई रस्सियों के द्वारा
खंभे पेड़ प्रादि में बाँधकर फैलाया जाता है । ७. रस्सियों का
एक प्रकार का फंदा जिसके द्वारा घारी चीजों को उठाते हैं ।

भोली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला या भासा] राख । भस्म ।

मुहा०—भोली बुझाना = सब काम हो चुकने पर पीछे लौट कर
चलना । कोई बात हो जाने पर व्यर्थ उसके संबंध में कुछ
करना । जैसे,—पंचायत तो हो चुकी अब क्या भोली बुझाने
पाए हो ?

विशेष—यह मुहावरा घर जलने की घटना से लिया गया है
पर्याप्त जब घर जलकर राख हो गया तब पानी लेकर बुझाने
के लिये पहुँचे ।

भौंभट^१—संज्ञा पुं० [हि० भौंभट] दे० 'भौंभट' ।

४-२६

भौंभट—संज्ञा पुं० [हि० भौंभट] पेट । उपर । उ०—कोई कर्न
बिहीन या नासा बिन कोई । भौंभट फुटे कोई पड़े स्वासा बिनु
होई ।—सुदन (शब्द०) ।

भौंभट^२—संज्ञा पुं० [सं० युग्म, प्रा० जुम्म, हि० भूमर] १. भुंड ।
समूह । उ०—छकि रसाल सोरभ सने मधुर माधुरी गंध । ठोर
ठोर भौरत भपत भोर भौर मधु ग्रंथ ।—बिहारी (शब्द०) ।
२. फूलों, पत्तियों या छोटे छोटे फलों का गुच्छा । उ०—
दाख कैसी भौर भलकति जोति जोवन की खाटि जाते भौर
जो न होती रंग चंपा की ।—(शब्द०) । ३. एक प्रकार
का गहना जिनमें मोतियों या चाँदी सोने के दानों के गुच्छे
लटकते रहते हैं । भट्ठा । उ०—कलगी तुरी भौर जग
सरपेच सुकुंडल ।—सूर (शब्द०) । ४. पेड़ों या झाड़ियों
का घना समूह । आपस । कुंज । उ०—बंस भौर गंभीर
भौतिकर नहि सुभट दस आसा ।—रघुराज (शब्द०)
५. दे० 'भौवर' ।

भौंभट^३—संज्ञा स्त्री० [अनु०] भौंभट । उ०—तुम काहे को भौर
करो हतनी, नहि काज है लाज हिये मढ़िबे को ।—नट०,
पृ० ५४ ।

भौरना—क्रि० घ० [अनु०] १. गुंजना । गुंजारना । उ०—छकि
रसाल सोरभ सने मधुर माधुरी गंध । ठोर ठोर भौरत भपत
भोर भौर मधु ग्रंथ ।—बिहारी (शब्द०) । २. दे० 'भौरना' ।

भौरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भौर' ।

भौराना^१—क्रि० घ० [हि० भौरा या भौरा] १. भौरे रंग का
हो जाना । बदरंग हो जाना । काला पड़ जाना । २. मुरझाना ।
कुम्हलाना ।

भौराना^२—क्रि० घ० [हि० भुगना] इधर उधर हिलना ।
भूमना । उ०—साँठिहि रंक चले भौराई । निबैठ राव सब
कह बोराई ।—जायसी (शब्द०) ।

भौंसना—क्रि० स० [हि०] दे० 'भुलसना' । उ०—नाम ले बिलात
बिलसात अकुमात अनि लात लात तौमियत भौंसियत भारही ।
—तुलसी (शब्द०) ।

भौनी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] टोकरी । दोरी ।

भौर—संज्ञा पुं० [अनु० भौव भौव] १. भौंभट । बसेड़ा । हुज्जत ।
तकरार । होरा । विवाद । उ०—(क) नहीं ठोठ नैनन ते
घोर । कितनों में बरजति समभावति उमटि करत हैं भौर ।
—सूर (शब्द०) । (ख) महिर तुम ब्रज चाहति कुछ
घोर । बात एक में कहो कि नाही पाप खगबति भौर ।—
सूर (शब्द०) । २. डाँट । फटकार । कहावनी । कंथा
नीथा । उ०—घोर को कैतउ भौर सहे पै न बावरी रावरी
आस मुपैह ।—विश्वदेव (शब्द०) ।

भौरना—क्रि० घ० [हि० भपटना] छोप लेना । दबा लेना ।
अपन कर पकड़ना । उ०—हती घाघि के युग र्यों बीर
बोरघी । भूगाधीश ज्यों भूग के लूह भौरघी ।—सुबह
(शब्द०) ।

भीरा—संज्ञा पु० [अनु० भावे भावे] भ्रष्ट । बखेड़ा । हुज्जत ।
सकरार । होरा । विवाद ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।

यौ०—हीरा भीरा ।

भीरो^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० भ्रो] १० 'भ्रोले' । उ०—उमटा कुंभ
धरे बक नहीं बगुला सोवै भीरी ।—स० दरिया, पृ० १२७ ।

भीरे—क्रि० वि० [हि० भीरे] १. समोप । पास । निकट ।
२. साथ । संघ । उ०—सोरे भंग सुभक्त न पीरे खोलि
बीरे शक्ति अधिक लो राधिका के भीरे ई लगे रहैं ।—देव
(लव्य०) ।

भील—संज्ञा पु० [हि०] १० 'भ्रोल' । उ०—यह नर गरम भुलझ्या
देखि माया को भील ।—कबीर सा०, पृ० ५४३ ।

भीवा—संज्ञा पु० हि० भावा] रूठे की बनी हुई वह छोटी बीरी
जिसमें मजदूर लोग खोदी हुई मिट्टी भरकर फेंकने के लिये ले
जाते हैं । खेंचिया ।

भीहाना—क्रि० प्र० [अनु०] १. गुराना । २. जोर से चिड़चिड़ाना ।
क्रोध में भल्लाना ।

भयूखना^(५)—क्रि० प्र० [हि०] १० 'भूलना' । उ०—यँक छाप
फिर वासुदेव बोले । ज्यों मानंद मव सुँ भूले ।—बक्सनी, ०
पृ० १२२ ।

ट

ट—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला में ग्यारहवाँ व्यंजन जो टवर्ग का
पहला वर्ण है । इसका उच्चारण स्थान घूर्ण है । इसका
उच्चारण करने में तालु से जीभ का घर्ष माग खगाना
पड़ता है ।

टंक^१—संज्ञा पु० [सं० टङ्क] १. एक तोल लो चार मासे की
होती है ।

बिरोध—कोई कोई इसे तीन मासे या २४ रत्ती की भी
मानते हैं ।

२. वह नियत मान या बाट जिससे तोल तोलकर धातु एकसाथ
में सिक्के बनने के लिये दी जाती है । ३. सिक्का । ४. मोती
की तोल जो २१ १/२ रत्ती की मानी जाती है । ५. पत्थर काटने
या गढ़ने का औजार । टाँसी । छेनी । ६. कुल्हाड़ी । परशु ।
करसा । ७. कुवाल । ८. खड्ग । तलवार । ९. पत्थर का
कटा हुआ टुकड़ा । १०. ढाँग । ११. नील कपिस्थ । नीला
कैथ । लटार्ई । १२. कोप । क्रोध । १३. दर्प । धमिमान ।
१४. पर्वत का ढगु । १५. सुहागा । १६. कोप । खजाना ।
१७. संपूर्ण जाति का एक रास जो श्री, भैरव और कान्हड़ा
के योग से बना है ।

बिरोध—इसके बाने का समय रात १६ बजे से २० बजे तक है ।
इसमें कोमल ऋषभ लगता है और इसका सरगम इस प्रकार
है—सा रे ग म प ध नि । हनुमत् के मत से इसका स्वरग्राम
है—स ग म प ध नि सा सा ।

१८. स्थान । १९. एक कठिहार पेड़ जिसमें बेस या कैथ के बराबर
फल लगते हैं । २०. सोदयं (को०) । २१. गुरुफ (को०) ।

टंक^२—संज्ञा पु० [प्र० टंक] १. तासाब, पानी रखने का होज ।

टंक^(५)—संज्ञा पु० [?] धल्लाण । थोड़ा घंश । उ०—जाको जस
टंक सातो बीप बब संड महिमंडल की कहा ब्रह्मांड ना समात
है ।—सूषण० प्र०, पृ० २२२ ।

टंकक^१—संज्ञा पु० [सं० टङ्कक] १. चाँदी का सिक्का या रुपया । २.
टाँसी । छेनी (को०) ।

टंकक^२—संज्ञा पु० [हि० टंकण] टंकण यंत्र पर टंकण कार्य करने-
वाला व्यक्ति । (प्र० टाइपिस्ट) ।

टंककपति—संज्ञा पु० [सं० टङ्ककपति] १० 'टंकपति' (को०) ।

टंककशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ककशाला] टंकसाल घर ।

टंकटीक—संज्ञा पु० [सं० टङ्कटीक] शिव ।

टंकण^१—संज्ञा पु० [सं० टङ्कण] १. सुहागा । २. धातु की चीज में
टाँका मारकर जोड़ खगाने का कार्य । ३. धोई की एक जाति ।
४ एक देश जिसका नाम जो बृहत्संहिता में कोंकण आदि के
साथ आया है ।

टंकण^२—संज्ञा पु० [अनु०] टाइपराइटर पर टंकित करनेका कार्य ।
टाइप करना । उ०—छपाई और टंकण की कठिनाइयाँ कैसे
दूर हों ।—भा० शिक्षा, पृ० ५६ ।

टंकणक्षार—संज्ञा पु० [सं० टङ्कणक्षार] सोडागा (को०) ।

टंकन—संज्ञा पु० [सं०] १० 'टंकण' । उ०—एक और की प्रेम, जोर
करने बरजोरिए । ज्यो टंकन त हेम, पिघरन मान धकोरिए ।
—बज० प्र० १४१ ।

टंकणयंत्र—संज्ञा पु० [हि० टंकण + सं० यंत्र] एक प्रकार का छापने
का छोटा यंत्र जिसपर धक्कों की पंक्तियाँ चलचल करती
होती हैं और जब छापना होता है तो उन्हीं पंक्तियों को सँच-
लियों से दबाते जाते हैं और यंत्र के ऊपर लगे हुए कागज
पर धक्कर छपते जाते हैं । टाइपराइटर ।

बिरोध—कार्बन पेपर की सहायता से इस यंत्र पर एकाधिक
प्रतियाँ टंकित की जा सकती हैं ।

टंकना^१—क्रि० प्र० १० [हि० टाँकना] १० 'टंकना' ।

टंकना^(५)—क्रि० प्र० [?] टंकना । धातुत करना । उ०—बहुँ न
धील काँठ छीन हँ खज्ज मान टंकनि फिरै ।—पृ० रा०,
२५।६९ ।

टंकपति—संज्ञा पु० [सं० टङ्कपति] टंकसाल का अधिपति ।

टंकवान्—संज्ञा पु० [सं० टङ्कवत्] एक पहाड़ जिसका नाम बाल्मीकि
रामायण में आया है ।

टंकवाना—क्रि० प्र० [हि० टंकवाना] १० 'टंकाना' ।

टंकशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कशाला] टंकसाल ।

टंका^१—संज्ञा पु० [सं० टङ्क] १. पुराने समय में चाँदी की एक तोल

जो एक ठोले के बराबर होती थी। २. तबि का एक पुराना सिक्का। टका। ३. सिक्का। मुद्रा। उ० पान कसए सोनाक टंका चादन क मुल ई धन बिका।—कीर्ति०, पृ० ६८।

टंका^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मन्ना या ईस।

टंका^३—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्का] १. जंघा। २. तारा देवी। ३. संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो त्रिषड्ज और धादि मूर्च्छना युक्त होती है। हनुमत् के अनुसार इसका स्वरग्राम यौ है—स रे ग म प ध नि स।

टंकानक—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कानक] बह्मदाह। सहस्रत।

टंकार—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कार] १. वह शब्द जो धनुष की कसी हुई डोरी पर बाण रखकर खींचने से होता है। धनुष की कसी हुई पतंगिका खींच या तानकर छोड़ने का शब्द। २. टनटन शब्द जो कसे हुए तार आदि पर उँगली मारने से होता है।

३. घातुखंड पर घाघात लगने का शब्द। ठनाका। झनकार। ४. विस्मय। ५. कीर्ति। नाम। प्रसिद्धि। ६. कोलाहल। शोरगुल (को०)। ७. अपयथा। क्रुधाति (को०)।

टंकारना—क्रि० स० [सं० टङ्कार + ना (प्रत्य०)] धनुष की डोरी खींचकर शब्द करना। पतंगिका तानकर ध्वनि उत्पन्न करना। बिल्ला खींचकर बजाना।

टंकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कारी] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ लंबोतरी होती हैं।

विशेष—फूल के भेद से इसकी कई जातियाँ हैं। किसी में साख फूल खगते हैं, किसी में गुलाबी और किसी में सफेद। फूल गुच्छों में लगते हैं जिनके झड़ने पर छोटे छोटे फलों के गुच्छे लगते हैं। यह छुप जंगलों में बहुत होता है। वैद्यक में इसका स्वाद कटु और गुण वात कफ का नाशक और अग्निदीपक विज्ञा है। टंकारी ज्वर रोग और विसर्प रोग में भी दी जाती है।

टंकारी^२—वि० [सं० टङ्कारिन्] [वि० स्त्री० टङ्कारिणी] टंकार करनेवाला (को०)।

टंकिका—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्किका] परस्पर काटने का औजार। टीकी। छेनी। उ०—सुतर सुजन बन ऊख सम खल टंकिका रखान। परहित अनहित लागि सब साँसति सहत समान।—तुलसी (शब्द०)।

टंकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] श्री राग की एक रागिनी।

टंकी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क (= खट्ट या गट्टा)] १. दीवार उठाकर बनाया हुआ पानी भरने का एक छोटा सा कुंड। चौबच्चा। टीका। २. पानी भरने का बड़ा बर्तन। षब। ३. तेल भरने या संचित करने का पात्र।

टंकुत—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कूत] टंकार की ध्वनि (को०)।

टंकोर—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कोर] ३० 'टंकार'। उ०—देखे राम पथिक नाचत मुदित मोर। मानत मनहु सतचित्त सलिल धन, धनु सुरधनु, गरजनि टंकोर।—तुलसी शं० पृ० ३६३।

टंकोरना—क्रि० स० [धनु०] १. धनुष की रस्सी को खींचकर

उससे शब्द उत्पन्न करना। टंकारना। २. ठोकर लगाना। ठोकर मारकर शब्द उत्पन्न करना। ३. तर्जनी या मध्यमा उँगली की कुंडली बनाकर उसकी नोक को घोंगूठे से दबाकर बलपूर्वक छोड़ना जिससे किसी वस्तु में जोर से टक्कर लगे।

टंग—संज्ञा पुं० [सं० टङ्ग] १. टाँग। टंगड़ी। २. कुल्हाड़ी। ३. कुदाल। परशु। फरसा। ४. सुहागा। ५. चार मासे की एक तोल। ६. एक प्रकार की तलवार (को०)।

टंगण—संज्ञा पुं० [सं० टङ्गण] टंकण। सोहागा।

टगा—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्गा] टाँग। पैर (को०)।

टंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्गिनी] पाठा।

टंक्^१—वि० [सं० चण्ड, हि० चंड] १. सूमड़ा। कबूत। कृपण। २. कठोरहृदय। निष्ठुर।

टंक्^२—वि० [हि० टिक्न] तैयार। मुस्तैद।

टंटघंट—संज्ञा पुं० [धनु० टन टन + घंटा] पूजा पाठ का भारी घाड़बर। घड़ी घंटा आदि बजाकर पूजा करने का भारी प्रपंच। मिथ्या घाड़बर।

क्रि० प्र०—करना।—फैलाना।

टंटा—संज्ञा पुं० [सं० तरुण (= प्राक्रमण) अथवा धनु० टनटन] १. उपद्रव। हलचल। दंगा। फसाद।

क्रि० प्र०—मचाना।

मुहा०—टंटा खड़ा करना = उपद्रव करना। झगड़ा मचाना।

२. तकरार। खड़ाई। कलह।

यो०—झगड़ा टंटा।

३. घाड़बर। प्रपंच। बखेड़ा। खटराग। लंबी चौड़ी प्रक्रिया। जैसे,—इस दवा के बनाने में तो बड़ा टंटा है।

टंडर—संज्ञा पुं० [धं० टेंडर] १. वह कागज जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसी दूसरे से कुछ काम करने या कोई माल किसी नियत दर पर बेचने खरीदने का इकरार करता है। निविदा। २. अदालत का वह प्राज्ञापत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसी के प्रति अपना देना अदालत में दाखिल करे। निविदा।

टंडल^१—संज्ञा पुं० [धं० जेनरल, हि० जंडेल] मजदूरों का मेठ या जमादार।

टंडल^२—संज्ञा पुं० [धं० टेंडर] ३० 'टेंडर'।

टंडस(पु)—संज्ञा पुं० [हि० टंटा] दिखावटी काम। झूठा काम। उ०—टंडस तें बाढ़े जंजाला।—धरती०, पृ० ४१।

टंडेल—संज्ञा पुं० [धं० जेनरल, हि० जंडेल] ३० 'टंडल'।

टंसरी—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बीणा।

टंकना—क्रि० प्र० [हि० टीकना का प्रक० कप] १. टीका जाना। कील आदि जड़कर जोड़ा जाना। जैसे—एक छोटी सी बिप्पी टंक जायगी तो यह नगरा काम देने लायक हो जायगा।

संयो० क्रि०—जाना।

२. सिलाई के द्वारा जुड़ना। सिलना। सिया जाना। जैसे, फटा जूता टंकना, चकसी टंकना, गोटा टंकना।

संयो० क्रि०—जावा।

३. सीकर घंटकाया जाना। सिलाई के द्वारा ऊपर से सयाया जाना। जैसे, आलर में मोती टंके हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

४. रेती या मोहन के वीनों का नुकीला होना। रेती का ठेक होना।

संयो० क्रि०—जाना।

५. संकित होना। दिखा जाना। दर्ज किया जाना। जैसे,—यह खया बही पर टंका है या नहीं?

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—इस अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग ऐसी वस्तु रकम या नाम के लिये होता है जिसका लेखा रक्खना होता है।

६. मिल, चक्की आदि का टाँसी से गट्टे करके खुरदरा किया जाना। छिनना। रेहा जाना। कुटना।

टंकवाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टंकाना'।

टंकसाजि(५)—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'टंकमाल'। उ०—घड़ी और काबि रको टंकसाजि। प्राण०, पु० १०२।

टंकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँका] १. टाँकने की क्रिया या भाव। २. टाँकने की मजदूरी।

टंकाना—क्रि० सं० [टाँकना का प्रे० रूप] १. टाँकों से जोड़वाना या सिलवाना। जैसे, जूता टंकाना। २. मिलाकर लगवाना। जैसे, बटन टंकाना। ३. (सिल, जीता, चक्की आदि) खुरदरा करना। कुटना। ४. सिलवाना। टंकवाना।

टंकाना^१—क्रि० सं० [सं० टङ्क (=सिक्का)] सिक्कों का परखवाना सिक्कों की जाँच कराना।

टंकारना—क्रि० सं० [हि० टंकारना] दे० 'टंकारना'। उ०—सुफलक बढ़ि निज अनुष टंकायो। बीस बारण बाहुलीकहि मायो।—गोपाल (शब्द०)।

टंकावल(५)—वि० [सं० टङ्क (=सिक्का)+आवल (=वाला)] टंकावाला। बहुमुख्य। उ०—काने कुशल कलमलइ कंठ टंकावल हार।—ढोला०, दू० ४८०।

टंकोर(५)—संज्ञा पु० [हि० टंकोर] दे० 'टंकोर'। उ०—प्रभु कीन्ह अनुष टंकोर पथम कठोर घोर भयावहा।—तुलसी (शब्द०)।

टंकोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] दे० 'टंकोरी'।

टंकीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] सोना, चाँदी आदि तोलने का छोटा तराजू। छोटा काँटा।

टंगड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ग] धुटने से लेकर ऐँड़ी तक का भाग। टाँग।

मुहा०—टंगड़ी पर उड़ाना=लंग मारकर गिराना। कुश्ती में पैर से पैर फँकाकर गिराना। झड़पा मारना।

टंगना^१—क्रि० प्र० [सं० टङ्गण या टङ्गण (=जड़ा जाना)] १. किसी वस्तु का किसी ऊँचे आधार पर बहुत थोड़ा सा इस प्रकार घटकना या ठहरा रहना कि उसका प्रायः सब भाग उस आधार से नीचे की ओर गया हो। किसी वस्तु का दूसरी वस्तु से इस प्रकार बँधना या फँसना प्रथवा उसपर इस प्रकार

टिकना या घटकना कि उसका (प्रथम वस्तु का) बहुत सा भाग नीचे की ओर लटकता रहे। लटकना। जैसे, (खूँटी पर) कपड़े टंगना, परदा टंगना, तसवीर टंगना।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा भ्रंश आधार पर हो और थोड़ा सा भ्रंश आधार के नीचे लटका हो तो उस वस्तु को टंगी हुई नहीं कहेंगे। 'टंगना' और 'लटकना' में यह भ्रंतर है कि 'टंगना' क्रिया में वस्तु के फँसने या टिकने या घटकने का भाव प्रधान है, और 'लटकना' में उसके बहुत से भ्रंश का नीचे की ओर आधार में दूर तक जाने का भाव।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

२. फाँसी पर चढ़ना। फाँसी लटकना।

संयो० क्रि०—जाना।

टंगना^२—संज्ञा पु० १. वह धाड़ी बँधी हुई रस्मी जिसपर कपड़े आदि टाँगे या रखे जाते हैं। मलमली। बिलमली। २. जुलाहों की वह रस्मी जिसमें उठनी टाँगी जाती है। ३. वह फंदा जिसे मेटी, लोटे आदि के गले में फँसाकर हाथ में लटकाए हुए ले चलने के लिये बनाते हैं।

टंगरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टंगड़ी'।

टंगा—संज्ञा पु० [देश०] मूँज।

टंगारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ग] कुल्हाड़ी। कुठार।

टंड(५)—संज्ञा पु० [हि० टटा] भगड़ा। प्रपञ्च। सांसारिक माया। उ०—टंड सकट से यमिन है मुन दारा रहमाई।—भीखा श० पु० ८७।

टेड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड अथवा देश०] दाँह में पहनने का एक गहना जो घनत के चक्रकार का, पर उससे सारी ओर बिना घुंरी का होता है। टाँड। बहूँटा।

टंडुलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] बनचीलाई जो कुछ काँटेदार होती है। यह साग और दवा दोनों के काम आती है।

टंसहा^१—संज्ञा पु० [हि० टाँस + हा (प्रत्यय)] वह बैल जो नसी के सिंगुड जाने से लँगड़ा हो गया हो।

ट—संज्ञा पु० [सं०] १. नारियल का खोपड़ा। २. वामन। ३. चौमाई भाग। ४. शब्द।

टई(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठही'।

टक—संज्ञा स्त्री० [सं० टक (=बाँधना) या सं० टाटक] १. ऐसा तराजू जिसमें बड़ी ढेर तक पलक न गिरे। किसी ओर लगी या बँधी हुई दृष्टि। गड़ी हुई नजर। स्थिर दृष्टि।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—टक बँधना=स्थिर दृष्टि होना। टक बाँधना=किसी की ओर स्थिर दृष्टि से देखना। टकटक देखना=बिना पलक गिराए लगातार कुछ का कुछ देखते रहना। टक लगाना=आसरा देखते रहना। प्रतीक्षा में रहना।

२. लकड़ी आदि भारी बौलों को तोलनेवाले बड़े तराजू का चौखूँटा पलड़ा।

टकमक(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० टकटकी + मकका] टाकमक।

उ०—टकटक सौं कुकि बदन निहारत धलक सँवारत पलक न भारत जान गई नँदरानी ।—नंद० घं० पु० ३३८ ।

टकटक(७)—क्रि० वि० [हि० टकटकाना] टकटकी लगाकर देलना । एक टक देखना । उ०—टकटक ताकि रही ठग मुरी घापा घाप बिसारी हो ।—पलटू० भा० ३, पु० ८४ ।

क्रि० प्र०—ताकना ।—देखना ।

टकटका(७)^१—संज्ञा पु० [हि० टक या सं० त्राटक] [स्त्री० टकटकी] स्थिर दृष्टि । टकटकी । उ०—सुनि सो बात राजा मन जागा । पलक न मार टकटका लागी ।—जायसी (शब्द०) ।

टकटका^२—वि० स्थिर या बँधो हुई (दृष्टि) । उ०—रूपासक्त चकोर कवक करि पावक को छात कन । रामचंद्र को रूप निहारत साधि टकाटक तकन ।—देवस्वामी (शब्द०) ।

टकटकाना^१—क्रि० सं० [हि० टक] १. एक टक ताकना । स्थिर दृष्टि से देखना । उ०—टकटके मुख झुकी नैनही लागरी, उरहनों देत रुचि अधिक बाढ़ी ।—सूर (शब्द०) । २. टकटक शब्द उत्पन्न करना । ३. फल गिराने के लिये किसी पेड़ आदि को हिलाना ।

टकटकाना^२—क्रि० सं० [हि० टका (= सिकका)] १. रुपए लेना । चालाकी से रुपए लेना । २. धन कमाना । प्राय करना ।

टकटकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टक या सं० त्राटकी] ऐसी तकाई जिसमें बड़ी देर तक पलक न गिरे । अनिमेष दृष्टि । स्थिर दृष्टि । गड़ी हुई नजर । उ०—टकटकी चंद चकोर ज्यों रहत है । सुरत और निरत का तार बाँधे ।—कबीर श०, भा० १, पु० ८८ ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टकटकी बँधना = स्थिर दृष्टि होना । टकटकी बाँधना = स्थिर दृष्टि से देखना । ऐसा ताकना जिसमें कुछ काल तक पलक न गिरे । उ०—घोर की खोट देखती बेला । टकटकी लोग बाँध बेते हैं ।—चौखे०, पु० १५ ।

टकटोना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टकटोलना' । उ०—पुनि पीवत ही कब टकटोवै झूठे जननि रहे ।—सूर (शब्द०) ।

टकटोरना—क्रि० सं० [सं० त्वक् (= चमड़ा) + तोलन (= मंशाज करना)] हाथ से छूकर पता लगाना या जाँचना । स्पर्श द्वारा अनुसंधान या परीक्षा करना । टटोलना । उ०—(क) सूर एकहू भंग न काँची मैं देखी टकटोरि ।—सूर (शब्द०) । (ख) नहि सगुन पायउ एक मिसु करि एक धनु देखन गए । टकटोरि कपि ज्यों नारियर सिर नाइ सब बैठत गए ।—तुलसी ग्रं०, पु० ५३ । २. सलाह करना । हूँटना । खोजना । उ०—मोहि न पर्याह तो टकटोरी देखो पग वै ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

टकटोलना—क्रि० सं० [सं० त्वक् (= चमड़ा) + तोलन (= मंशाज करना)] हाथ से छूकर पता लगाना या जाँचना । टटोलना ।

टकटोहन—संज्ञा पु० [हि० टकटोना] टटोलकर देखने की क्रिया । स्पर्श । उ०—श्याम श्यामा मन रिझवत पीन कुचन टकटोहन ।—सूर (शब्द०) ।

टकटोहना(७)—क्रि० सं० [हि० टकटोना] दे० 'टकटोलना' । उ०—या बानक उपमा दीवे को सुकवि कहा टकटोहै । देखन भंग बके मन में क्षति कोटि मदन छवि मोहै ।—सूर (शब्द०) ।

टकतंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० हि० टक + सं० तंत्री] सितार के तंग का एक प्राचीन बाजा ।

टकना^१—संज्ञा पु० [सं० टङ्क (= टाँग)] घुटना ।

टकना^२—क्रि० घ० [हि०] दे० 'टकना' ।

टकबीड़ा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की भेंट जो किसानों की ओर से विवाहार्थ के अवसरों पर जमींदारों को दी जाती है । मधवच । शादिया ।

टकराना^१—क्रि० घ० [हि० टकर] १. एक वस्तु का दूसरी वस्तु से इस प्रकार वेग के साथ सहसा मिलना या छु जाना कि दोनों पर गहरा आघात पहुँचे । जोर से भिड़ना । धक्का या ठोकर लेना । जैसे,—(क) चट्टान से टकराकर नाव धूर धूर होना । (ख) झंघरे में उसका सिर दीवार से टकरा गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. इधर से उधर मारा फिरना । डौवाडोल घूमना । कार्य-सिद्धि की भाशा से कई स्थानों पर कई बार घाना जाना । घूमना । जैसे,—उसका घर सालूम नहीं मैं कहाँ टकराता फिरूँगा ? उ०—जँह तँह फिरत स्वान की नाई द्वार द्वार टकरात ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—टकराते फिरना = मारे मारे फिरना । हैरान घूमना ।

३. लड़ाई या झगड़ा होना ।

टकराना^२—क्रि० सं० १. एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर जोर से मारना । जोर से भिड़ना । पटकना ।

मुहा०—माया टकराना = (१) दूसरे के पैर के पास सिर पटककर विनय करना । अत्यंत अनुनय विनय करना । (२) जोर प्रयत्न करना । सिर मारना । हैरान होना ।

२. किसी को किसी से लड़ा देना ।

टकराव—संज्ञा पु० [हि० टकर + भाव (प्रत्यय)] टक्कर । टकराहट । टकराहट—संज्ञा स्त्री० [हि० टकराना] १. टकराने का भाव या क्रिया । उ०—वह स्वर जिसकी तीखी सशक्त टकराहट से, नारी की धारणा में भी कुछ जग जाता है ।—ठंडा०, पु० ७१ । २. संघर्ष । लड़ाई ।

टकरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

टकसरा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो घासाम, चटगाँव और बर्मा में होता है । इससे अनेक प्रकार के सजावट के सामान बनते हैं ।

टकसारा—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. दे० 'डकसाल' । उ०—पारस छपी नीय है लोह रूप ससार । पारस से पारस भया, परलभ भया टकसार ।—कबीर (शब्द०) ।

मुहा०—टकसार बाणी = प्रामाणिक बात । सच्ची बाणी । उ०—दूसरे कबीर साहब की जो टकसार बाणी है ।—कबीर मं०, पु० १८ ।

२ जँबी या प्रामाणिक वस्तु । उ०—नष्टे का यह राज है न फरक बरतै हैक । सार शब्द टकसार है हिरदय भीहि विवेक ।
—कबीर (शब्द०) ।

टकसाली(५)—वि० [हि० टकसार] दे० 'टकसाली' ।

टकसाल—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्काला] १. वह स्थान जहाँ सिक्के बनाए या ढाले जाते हैं । रुपए जैसे आदि बनने का कार्यालय ।

मुहा०—टकसाल का छोटा=नीच । दुष्ट । कमीना । कम प्रसन्न अक्षिप्त । टकसाल के चट्टे चट्टे = टकसाल में ठले हुए । विशिष्ट प्रकृति के । उ०—राज्य के अधिकारी तो वही पुरानी टकसाल के चट्टे चट्टे थे । —किन्नर०, पृ० २५ । टकसाल चढ़ना = (१) टकसाल में परखा जाना । सिक्के या धातु-खंड की परीक्षा होना । (२) किसी बियाया कला कोणख में रख माना जाना । पारगुप्त माना जाना । (३) बुराई में अभ्यस्त होना । कुकर्म या दुष्टता में परिपक्व होना । बदमाशी में पक्का होना । निरुज्ज होना । टकसाल बाहर = (१) (सिक्का) जो राज्य की टकसाल का न होने के कारण प्रामाणिक न माना जाय । जो प्रचार में न हो । (२) (बाक्य या शब्द) जो प्रामाणिक न माना जाय । जिसका प्रयोग सिष्ट न माना जाय ।

२. जँबी या प्रामाणिक वस्तु । प्रसन्न चीज । निर्दोष वस्तु ।

टकसाली—वि० [हि० टकसाल + ई (प्रत्य०)] १. टकसाल का । टकसाल संबंधी । २. जो टकसाल का बना हो । खरा । जोखा । जैसे, टकसाली रुपया । ३. सर्वसंमत । अधिकारियों या विज्ञों द्वारा अनुमोदित । माना हुआ । जैसे, टकसाली भाषा । ४. जँबा हुआ । पक्का । प्रामाणिक । परीक्षित । जैसे, टकसाली बात ।

मुहा०—टकसाली बात = पक्की बात । ठीक बात । ऐसी बात जो अश्वय न हो । टकसाली बोली = सर्वसंमत भाषा । विज्ञों द्वारा अनुमोदित भाषा । सिष्ट भाषा । ऐसी भाषा जिसमें प्राग्य आदि दोष न हों ।

टकसाली—संज्ञा पुं० टकसाल का अधिकारी । टकसाल का अध्यक्ष ।

टकहाई—वि० स्त्री० [हि० टका] जो टके टके पर व्यभिचार करती हो । जो वेश्याओं में नीच हो । जैसे, टकहाई रंडी ।

टका—संज्ञा पुं० [सं० टक्क] १. चाँदी का एक पुराना सिक्का । रुपया । उ०—(क) रतन सेन हीरामन चीन्हा । लाख टका बाह्यन कहँ दीन्हा ।—जायसी (शब्द०) (ख) लाख टका एक भूमक सारी दे बाई को नेग ।—सूर (शब्द०) । २. तबे का एक सिक्का जो दो पैसों के बराबर होता है । अथन्ना । दो पैसे । जैसे—घंघेर नगरी जीपट राजा । ठके सेर भाजी टके सेर खाया ।

मुहा०—टका पास न होना = निर्धन होना । खरिद होना । टका सा जबाब देना = (१) सट से जबाब देना । तुरंत अस्वीकार करवा । किसी की प्रार्थना, याचना, अनुरोध या आज्ञा को तुरंत अस्वीकार करना । साफ इनकार करना । कोरा जबाब देना । जैसे,—मैंने दो दिन के लिये उनसे थोड़ा माँगा तो उन्होंने टका सा जबाब दे दिया । (२) साफ जबाब देना कि मैंने इस

काम को नहीं किया है या मैं इस बात को नहीं जानता । साफ निकल जाना । कामों पर हाथ रखना । टका सा मुँह लेकर रह जाना = छोटा सा मुँह लेकर रह जाना । लज्जित हो जाना । खिसिया जाना । टका सी जान = झकेला बय । एका ही जीव । (स्त्रि०) । टके ऐँठना = अनुचित रूप से या धूर्तता से रुपया प्राप्त करना । रुपया ऐँठना । उ०—क्यों टका सा जबाब उसको दे । जिस किसी से सदा टके ऐँठे । —चोखे०, पृ० २७ । टके की ओकात = (१) साधारण वित्त का आदमी । गरीब आदमी । (२) अस्तित्वहीनता । उ०—हम गरीब आदमी हैं, टके की हमारी ओकात । —फिसाना०, भा० ३, पृ० ८७ । टके को न पूछना = लेखमान महत्व न देना । महत्वहीन समझना । उ०—मुझों मरते हैं कोई टके की भी नहीं पूछता । फिसाना०, भा० ३, पृ० ३६७ । टके कोस का दोड़नेवाला = थोड़ी मजदूरी पर अधिक परिश्रम करनेवाला । गरीब नौकर । उ०—टके कोस के दोड़नेवाले, हमको दोड़ने धूपने से काम है । —सेर कु०, भा० १, पृ० ११ । टके गब की चाल = मोटी चाल । किराया से निर्वाह । टके गिनना = टुकके का गुड़ गुड़ बोलना । ३. घन । द्रव्य । रुपया पैसा । जैसे,—जब टका पास में रहेगा, तब सब सुनैंग । ४. तीन तोले की तोल । दो बालाशाही पैसे भर की तोल । आधी छँटाक का मान । (वैद्यक) ।

मुहा०—टका भर = (१) तीन तोले का परिमाण । (२) थोड़ा सा । जरा सा ।

५. गड़वाल की एक तोल जो सवाँ सेर के बराबर होती है ।

टकाई—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'टकाही', 'टकहाई' ।

टकाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टकासी' ।

टकाउल(५)—वि० [हि० टका (= सिक्का) उल (= वाला) (प्रत्य०)] टकावाला । टके का । उ०—मोणिसुं कोड़ि टकाउल हार । —बी० रासो, पृ० ३६ ।

टकाटकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टकटकी' ।

टकातोप—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की तोप जो जहाजों पर रहती है । —(खण०) ।

टकाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टंकाना' ।

टकानी—संज्ञा स्त्री० [हि० टंकना] बैलगाड़ी का छप्पा ।

टकासी—संज्ञा स्त्री० [हि० टका] १. टके रुपए का व्याज । दो पैसे रुपए का सुद । २. वह वर या चदा जो प्रति अनुष्य से एक एक टके के हिसाब से लिया जाय ।

टकाही—वि० [हि० टका + ही (प्रत्य०)] दे० 'टकहाई' ।

टकाही—संज्ञा स्त्री० दे० 'टकासी' ।

टकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टक] दे० 'टकटकी' ।

टकी—वि० [हि० टकना] टंकी हुई ।

टकुआ—संज्ञा पुं० [सं० तकुंक, प्रा०, तवकुप] १. एक प्रकार का सूया जो चरखे में लगा रहता है । तकला । २. बिनीखा निकालने की चरखी में लगा हुआ लोहे का एक पुरजा । ३. छोटे तराजू या कटि के पलकों में बँधा हुआ ताया ।

टकुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] हिमालय की तराई में होनेवाला एक ऐसा पेड़ जिसकी पत्तियाँ ऊँच जाया करती हैं। चपोट सिरीस।

टकुली—संज्ञा स्त्री० [सं० टक्क] १. पत्थर काटने का औजार। २. पेचकस की तरह लोहे का एक औजार जो नक्काशी बनाने के काम में आता है।

टकुवा(७)—संज्ञा पुं० [सं० तकुं, प्रा० तक्कुष] दे० 'टकुषा'। उ०—टिकुली सेदुर टकुवा चरखा बासी ने फरमाया।—कबीर०, भा०, भा० ४, पृ० २५।

टकुचना—क्रि० सं० [हि० टाँकना] खाना।—(दलाल)।

टकैट—वि० [हि०] दे० 'टकैत'।

टकैत—वि० [हि० टका + ऐत (प्रत्यय)] १. टकेवाला। चपए पैसवाला। घनी। २. कम हैसियत या थोड़ी पूँजीवाला।

टकैया—वि० [हि० टका + इया (प्रत्यय)] १. टके का। टकेवाला २. सुच्छ। साधारण।

टकोर—संज्ञा स्त्री० [सं० टक्कार] १. हलकी चोट। प्रहार। आघात। ठेस। थपेड़।

क्रि० प्र०—देना।

२. डंके की चोट। नगाड़े पर का आघात। ३. डंके का शब्द। नगाड़े की आवाज। ४. घनुष की होरी खींचने का शब्द। टंकार। ५. दवा भरी हुई गरम पोतली को किसी घंग पर रखकर छुलाने की क्रिया। सेंक। ६. दाँतों की बहुत टीस जो किसी वस्तु के खाने से होती है। दाँतों के गुठले होने का भाव। चमक।

क्रि० प्र०—लगना।

७. झाल। परपराहट। उ०—कबहूँ कोर खात मिरचन की लगी दसन टंकोर।—सुर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।

टकोरना—क्रि० सं० [हि० टकोर से नामिक घातु] १. ठोकर लगाना। हलका आघात पहुँचाना। ठेस या थपेड़ मारना।

२. डंके आदि पर चोट लगाना। बजाना। ३. दवा भरी हुई किसी गरम पोतली को किसी घंग पर रख रहकर छुलाना। सेंकना। सेंक करना।

टकोरा—संज्ञा पुं० [सं० टक्कार] डंके की चोट। नोबत की आवाज।

टकीना—संज्ञा पुं० [हि० टका + नीना (प्रत्य०)] दे० 'टका'।

टकीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टक्क] १. सोना आदि तोड़ने का छोटा वराज। छोटा काँटा। २. दे० 'टकासी'।

टक्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंजूस व्यक्ति। कृपण। २. बाहीक जातीय व्यक्ति (को०)।

टक्कदेश—संज्ञा पुं० [सं०] बनाब और ब्यास के बीच के प्रदेश का प्राचीन नाम।

विशेष—राजवंतगिणी में टक्क देश को गुजंर (गुजरात) राज्य के अंतर्गत लिखा है। टक्क जाति किसी समय में अत्यंत प्रतापशालिनी थी और सारे पंजाब में राज्य करती थी। चीनी

यात्री हुएनसांग ने टक्क राज्य तथा उसके अधिपति मिहिरकुल का उल्लेख किया है। मिहिरकुल का हूण होना इतिहासों में प्रसिद्ध है। ये हूण पंजाब और राजपूताने में बस गए थे। यशोधर्मन् द्वारा मिहिरकुल के पराजित होने (५२८ ईसवी) के ७८ वर्ष पीछे हर्षवर्धन राजसिंहासन पर बैठे थे जिनके राज्यकाल में हुएनसांग आया था। टक्क शायद हूण जाति की ही कोई शाखा रही हो।

टक्कदेशीय—वि० [सं०] टक्कदेश का। टक्क देश में उत्पन्न।

टक्कदेशीय—संज्ञा पुं० बथुभा नाम का साग।

टक्कबाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० टक + बाड़ी] एक प्रकार का बात-रोग जिसमें रोगी का शरीर सुन्न हो जाता है और वह टक बांधकर ताकता रहता है।

टक्कर—संज्ञा स्त्री० [अनु० ठक] १. वह आघात जो दो वस्तुओं के वेग के साथ मिलने या छू जाने से लगता है। दो वस्तुओं के भिड़ने का धक्का। ठोकर।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—टक्कर खाना = १. किसी कड़ी वस्तु के साथ इतने वेग से भिड़ना या छू जाना कि गहरा आघात पहुँचे। जैसे,—चट्टान से टक्कर खाकर नाव जूर जूर हो गई। २. मारा मारा फिरना। जैसे,—नोकरी छूट जाने से वह हथर उधर टक्करे खाता फिरता है।

२. मुकाबिला। मुठभेड़। भिड़ंत। लड़ाई। जैसे,—दिन भर में दोनों की एक टक्कर हो जाती है।

मुहा०—टक्कर का = जोड़ का। मुकाबिले का। बराबरी का। समान। तुल्य। जैसे,—उनकी टक्कर का विद्वान् यहाँ कोई नहीं है। टक्कर खाना = (१) मुकाबिला करना। संमुख होना। लड़ना। भिड़ना। (२) मुकाबिले का होना। समान होना। तुल्य होना। उ०—इस टोपी का काम सच्चे काम से टक्कर खाता है। टक्कर लड़ना = बराबरी होना। समानता होना। उ०—इस ठास से रहती है कि अच्छी अच्छी रईस जातियों से टक्कर लड़े।—फिसाना०, भा० १, पृ० १। टक्कर लेना = बार सहना। चोट सहारना। मुकाबिला करना। लड़ना। भिड़ना। पहाड़ से टक्कर लेना = बड़े भारी शत्रु से भिड़ना। अपने से अधिक सामर्थ्यवाले शत्रु से लड़ना।

३. जोर से सिर मारने का धक्का। किसी कड़ी वस्तु पर माथा मारने या पटकने का आघात।

क्रि० प्र०—खपाना।

मुहा०—टक्कर मारना = (१) आघात पहुँचाने के लिये जोर से सिर मारना या पटकना। सिर से धक्का लगाना। (२) माथा मारना। हेरान होना। घोर परिश्रम और उद्योग करना। ऐसा प्रयत्न करना जिसका फल भीष्म न दिखाई दे। जैसे,—लाख टक्कर मारो जब वह तुम्हारे हाथ नहीं आता। टक्कर लड़ना = दूसरे के सिर पर सिर मारकर लड़ना। माथे से माथा भिड़ाना। जैसे,—दोनों मेरे खूब टक्कर लड़ रहे हैं। टक्कर लड़ाना = सिर से धक्का मारना।

४. घाटा । हाथि । नुकसान । बचका । जैसे, — (१०) की टक्कर बैठे बैठाए लग गई ।

क्रि० प्र०—जगना ।

मुहा०—टक्कर फेरना = (१) हाथि उठाना । नुकसान सहना ।
(२) संकट या आपत्ति सहना ।

टक्कर^१—संज्ञा पु० [सं०] शिव [को०] ।

टक्कना—संज्ञा पु० [सं० टक्क (= टाँग)] एड़ी के ऊपर निकली हुई हड्डी की गाँठ । पैर का घट्टा । गुल्फ । पादपंख ।

टग(१)—संज्ञा स्त्री० [?] 'टकटकी' । उ०—विधि बालुक भ्रत तेह टग कुलह बालि जनु बारि ।—पु० रा०, ५।५५ ।

टगटग(१)—क्रि० वि० [हि० टकटकाना] टकटकी खाकर । एकटक । उ०—बबीर टग टग जोघताँ पल पल गई बिहाइ ।
—बबीर प्र०, पु० ७२ ।

टगटगाना—क्रि० सं० [हि०] ३० 'टकटकाना' ।

टगटगी(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'टकटकी' । उ०—पलु एक कबहुँ न होइ संतर टगटगी लागी रहै ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पु० २८ ।

टगटग(१)—क्रि० वि० [हि० टगटगी] स्थिर दृष्टि से । एकटक । उ०—टटग बालि रहे सब लोई । विरयो वर तेज भद्रभुत सोई ।—पु० रा०, १२।१३९ ।

टगण—संज्ञा पु० [सं०] मायिक गणों में से एक । यह छह मात्राओं का होता है और इसके १३ उपभेद हैं । जैसे, —SSS, IIS, इत्यादि ।

टगमग(१)—क्रि० वि० [हि० टकटकी] एकटक । स्थिर । उ०—टगमग नयन सु मग मग विमग गृ भुल्लिय भग ।—पु० रा०, २।४५७ ।

• टगना(१)—क्रि० प्र० [?] टक्कना । टिपना । उ०—टगे न टेक दृष्टि मति जाई । तनै काल मोरहि को पाई ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पु० २२२ ।

टगर^१—संज्ञा पु० [सं०] १. टंकण । सोहागा । २. विलास । कीड़ा । ३. लगर का पेड़ । ४. मेंड़ (की०) । ५. टोसा (की०) ।

टगर^२—वि० विरछी विषाह से देखनेवाला । ऐंछाताना [की०] ।

क्रि० प्र०—देखना ।

टगरगोड़ा—संज्ञा पु० [?] लड़कों का एक खेल जिसमें कुछ कीड़ियाँ बिछ करके जमा कर बैठे हैं और फिर एक कीड़ी से उन्हें मारते हैं ।

टगर टगर(१)—क्रि० वि० [हि०] धीरे धीरे हट । ध्यान लगाकर । एकटकी बांधकर । उ०—सोभासदन बदन मोहम को देखि जो बिपे टगर टगर ।—बनारस, पु० ४८१ ।

टगरा^१—वि० [सं० टेरक] ऐंछाताना । भेंगा ।

टगाटगी(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० टकटकी] समाधि की अवस्था । उ०—टगाटगी जीवन मरण, बह्य बराबरि होइ ।—बाहु०, पु० १४४ ।

टघरना^१—क्रि० प्र० [सं० तप (= गरम करना) + गरण

(= पिघलना)] १. घी, चरबी, मोम आदि का ग्रीष्म खाकर द्रव होना । पिघलना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. हृदय का द्रवीभूत होना । चित्त में दया आदि उत्पन्न होना । हृदय पर किसी की प्रार्थना या कष्ट आदि का प्रभाव पड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

टघराना—क्रि० सं० [हि० टघरना] घी, मोम, चरबी आदि को ग्रीष्म पर रखकर द्रव करना । पिघलाना ।

संयो० क्रि०—बालना ।—देना ।—लेना ।

टचटच(१)—क्रि० वि० [हि० टचटना (अलना)] धीरे धीरे । थक थक (धाए की लपट का शब्द) उ०—टच टच सुम बिनु भागि मोहि जागी । पाँखों दास विरह मोहि जागी ।—जायसी (शब्द०) ।

टचना—क्रि० प्र० [हि० टचटच] भाग का जलना ।

टचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० टचनी] सोहे का एक घोजार जिससे कछेरे भरतनों पर नक्काशी करते हैं ।

टट(१)—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'तट' । उ०—भाएउ भागि समुंद टट तबहुँ न छाई पास ।—जायसी प्र० (गुप्त), पु० ३७० ।

टटका^१—वि० [सं० तत्काल] [वि० स्त्री० टटकी] १. तत्काल का । गुराँ का प्रस्तुत या उपस्थित । जिसको वर्तमान रूप से भाए हुए बहुत देर न हुई हो । हाल का । ताजा । उ०—(क) मेढे क्यों हूँ न मिटति छाव परी टटकी ।—सूर (शब्द०) । (ख) मनिहार गये सूर्यमुख परै नट सेम अरे पिय को टटकी ।—रसमान (शब्द०) । २. नया । कोरा ।

टटड़ा^१—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० टटड़ी] टट्टी । टटिया । टाटी ।

टटड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [पञ्चाशी] १. खोपड़ी । २. दे० 'ठठरी' । ३. दे० 'टट्टी' ।

टटपूँज्यो(१)—वि० [हि०] ४० 'टटपूँजिया' । उ०—झोड़ी फिरे उछालती जो टटपूँज्यो होइ ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पु० ७६७ ।

टटरा^१—संज्ञा पु० [हि० टटड़ा] [स्त्री० टटरी] बड़ी टटिया या टाटी ।

टटरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'टट्टी' ।

टटलमटली^१—वि० [सं०] घटसट । घंड़ बंड़ । उतपटींग । उ०—टटलमटल बोल पटल कपोल देव दीपति पटल में घटल हैं के घटकी ।—देव (शब्द०) ।

टटाना^१—क्रि० प्र० [उठ] गूँध खाना ।

टटांबरी(१)—वि० [हि० टाठ + अंबर] टाट पहननेवाला । जिसका वस्त्र टाट हो । उ०—सुंदर बप टटांबरी बहुरि विअंबर होइ ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पु० ३५ ।

टटाबक(१)—संज्ञा पु० [?] टाबक । तामक । तामन । टोटका । टोना । उ०—नंददास सखि मेरी कहा बच काम के धाए टटाबक टोने ।—नंद० प्र०, पु० ३४३ ।

टटाला—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'टल' [की०] ।

टटावली—संज्ञा स्त्री० [सं० टट्टिभाषली] टट्टिहरी नाम की चिट्ठिया ।
कुररी ।

टट्टियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टट्टी' उ०—देखत कछु कोतिगु
इतै देखो नैक निहारि । कब की इकटक इटि रह्यो टट्टिया
भंगुरिनु फारि ।—बिहारी र०, दो० ६३४ ।

टट्टियाना—क्रि० प्र० [हि० ठाँठ] सूख जाना । सूखकर झकड़
जाना ।

टट्टीबा—संज्ञा पुं० [अनु०] घिरनी । चक्कर । उ०—खैरू तो घावै
नहीं जो छोड़ू तो जाय । कबीर मन पुछ रे प्रान टट्टीबा लाय ।
—कबीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—खाना ।

टट्टीरो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टट्टिहरी' । उ०—चोरती, ज्यों
वेदना का ठीर, लंबी टट्टीरी की चाह ।—इस्यलम् पु० २१६ ।

टट्ट्या—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टट्टू' । उ०—ताके प्रागे भाइके
टट्ट्या फेरि बाल ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पु० ७३७ ।

टट्टई/पु—संज्ञा स्त्री० [हि० टट्टू] मादा टट्टू ।

टट्टवा/पु—संज्ञा पुं० [हि० टट्टू] दे० 'टट्टू' । उ०—काहे का
टट्टवा काहे क पाखर काहे क भरी गोनियाँ ।—कबीर श०,
भा० १, पु० २२ ।

टट्टोना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टट्टोलना' ।

टट्टोरना—क्रि० प्र० [हि० टट्टोलना] दे० 'टट्टोलना' । उ०—
वहूँ कमला चाला पाइ के टेढे टेढे जात । कबहुँक मग पग
भूनि टट्टोरत भोजन को बिलखात ।—सूर (शब्द०) ।

टट्टोल—संज्ञा स्त्री० [हि० टट्टोलना] टट्टोलने का भाव । उँगलियों
से हूँ या दबाकर मातृम करने का भाव या क्रिया । गूढ़ स्पर्श ।

टट्टोलना—क्रि० प्र० [सं० त्वक् + तोलन (= भ्रंदाज करना)] १.
मातृम करने के लिये उँगलियों से छूना या दबाना । किसी
वस्तु के तल की अवस्था भयवा उसकी कड़ाई आदि जानने
के लिये उसपर उँगलियाँ फेरना या गड़ाना । गूढ़ संस्पर्श
करना । जैसे,—ये ग्राम पके हैं, टट्टोलकर देख लो ।

संयो० क्रि०—लेना ।—डालना ।

२. किसी वस्तु को पाने के लिये इधर उधर हाथ फेरना । ढूँढने
या पता लगाने के लिये इधर उधर हाथ रखना । जैसे,—
(क) झंघरे मे क्या टट्टोलते हो ! रुपया गिरा होगा तो सबेरे
मिल जायगा । (ख) वह भ्रंषा टट्टोलता हुआ अपने घर तक
पहुँच जायगा । (ग) घर के कोने टट्टोल बाले कहीं पुस्तक का
पता न लगा ।

संयो० क्रि०—डालना ।

३. किसी से कुछ बातचीत करके उसके विचार या आशय का इस
प्रकार पता लगाना कि उसे मालूम न हो । बातों में किसी के
हृदय के भाव का भ्रंदाज लेना । याह लेना । यहाना । जैसे,—
तुम भी उसे टट्टोलो कि वह कहीं तक सेने के लिये तैयार है ।

मुहा०—मन टट्टोलना = हृदय के भाव का पता लगाना ।

४-२७

४. जाँच या परीक्षा करना । परखना । आजमाना । जैसे,—
(क) हम उसे खूब टट्टोल चुके हैं, उसमें कुछ विशेष विद्या
गहीं है । (ख) मैंने तो सिर्फ तुम्हें टट्टोलने के लिये रुपए
मगि थे, रुपए मेरे पास हैं ।

टट्टोलना/पु—क्रि० प्र० [हि० टट्टोलना] दे० 'टट्टोलना' ।

टट्टू—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टट्टर' ।

टट्टनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली ।

टट्टर—संज्ञा पुं० [सं० तट (= ऊँचा किनारा) या सं० स्थात (= जो खड़ा
हो)] बाँस की फट्टियों, सरकंडों आदि को परस्पर जोड़कर
बनाया हुआ ढाँचा । जैसे,—(क) कुत्ता टट्टर खोलकर झोपड़े
में घुस गया । (ख) टट्टर खोलो निखटू भाए । (कहावत) ।

मुहा०—टट्टर देना या लगाना = टट्टर बंद करना ।

टट्टरी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. ढोल का शब्द । नगाड़े आदि का शब्द ।
२. लंबी चौड़ी बात । ३. चुल्लुबाजी । ठट्ठा । ४. झूठ (को०) ।

टट्टा—संज्ञा पुं० [सं० तट (= ऊँचा किनारा) या सं० स्थाता (= जो
खड़ा हो)] [स्त्री० टट्टी] १. बाँस की फट्टियों का परदा
या पल्ला । टट्टर । बड़ी टट्टी । २. लकड़ी का पल्ला । बिना
पुष्पवान का तल्ला । ३. भंडकोश ।—(पंजाबी) ।

टट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० तटी (= ऊँचा किनारा) या सं० स्थात्री
(= जो खड़ी हो)] १. बाँस की फट्टियों, सरकंडों आदि को
परस्पर जोड़कर बनाया हुआ ढाँचा जो घाड़, रोक या रक्षा
के लिये दरवाजे, बरामदे भयवा और किसी खुले स्थान
में लगाया जाता है । बाँस की फट्टियों आदि का बना पल्ला
जो परदे, किवाड़ या छाजन आदि का काम दे । जैसे, खस
की टट्टी ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टट्टी की घाड़ (या घोट) से शिकार खेलना = (१)
किसी के विरुद्ध छिपकर कोई चाल चलना । किसी के विरुद्ध
गुप्त रूप से कोई काररवाई करना । (२) छिपाकर बुरा काम
करना । लोगों की दृष्टि बचाकर कोई अनुचित कार्य करना ।
टट्टी का शीशा = पतले दल का शीशा । टट्टी में छेद करना =
किसी की बुराई करने में किसी प्रकार का परदा न रखना ।
प्रकट रूप से कुकर्मी करना । छुल खेलना । निर्लज्ज हो जाना ।
लोकलज्जा छोड़ देना । टट्टी लगाना = (१) घाड़ करना ।
परदा खड़ा करना । (२) किसी के सामने भीड़ लगाना ।
किसी के प्रागे इस प्रकार पंक्ति में खड़ा होना कि उसका
सामना रुक जाय । जैसे,—यहाँ क्या टट्टी लगा रखी है, क्या
कोई तमाशा हो रहा है ! घोखे की टट्टी = (१) वह टट्टी
जिसकी घाड़ में शिकारी शिकार पर बार करते हैं । (२)
ऐसी वस्तु जिसे ऊपर से देखने से उससे होनेवाली बुराई का
पता न चले । ऐसी वस्तु या बात जिसके कारण लोग धोखा
खाकर हानि उठावें । जैसे,—उसकी दूकान वगैरह सब घोखे
की टट्टी है; उले झूठकर भी रुपया न देना । (३) ऐसी वस्तु
जो ऊपर से देखने में सुंदर जान पड़े, पर काम देनेवाली न

हो। चटपट टूट या बिगड़ जानेवाली वस्तु। काजू बोझ चीज।
२. चिक। चिलमन। ३. पतली दीवार जो परदे के लिये लड़ी
की जाती है। ४. पालाना।

क्रि० प्र०—जाना।

५. पुनकारी का लकड़ा जो बरातों में निकलता है। ६. बाँस
की फट्टियों या बिड़ की बनी हुई वह दीवार और छाजन जिस-
पर लंगूर आदि की बेलें चढ़ाई जाती हैं।

टट्टी संप्रदाय—संज्ञा पु० [हि० टट्टी + संप्रदाय] एक धार्मिक वैष्णव
संप्रदाय जिसके संस्थापक स्वामी हरिदास जी हैं।

टट्टर—संज्ञा पु० [सं०] भेरी का शब्द।

टट्ट—संज्ञा पु० [अनु०] [वि० टट्टपानी, टट्टई] १. छोटे कद का
बोझ। टाँगल।

मुहा०—टट्ट पार होना = बेड़ा पार होना। काम निकल जाना।
प्रयोजन सिद्ध हो जाना। भाई का टट्ट = रुपया लेकर दूसरे
की ओर से कोई काम करनेवाला। २. बिगेरिया।—(बाजार)

मुहा०—टट्ट मड़कना = कामोद्दीपन होना।

टठिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टाठी'।

डठिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की माँग।

डड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड] बाँह में पहनने का एक गहना जो
घनंत के धाकार का पर उससे मोटा और बिना घुँघी का
होता है। टाँक।

टण—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टना'।

टन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घंटा बजने का शब्द। किसी धातु खंड
पर आघात पड़ने से उत्पन्न ध्वनि। टनकार। झनकार।
जैसे,—टन से घंटा बोला।

विशेष—'खटपट' आदि शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग
भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही होता है।
वतः इसका लिंग उत्तमा विनिश्चित नहीं है।

मुहा०—टन हो जाना = चटपट मर जाना।

टन—संज्ञा पु० [सं०] एक संश्लेषी ठोल जो मट्टाईस मन के
व्ययम होती है।

टनकना—क्रि० प्र० [अनु० टन] १. टनटन बजना। २. धूप या
गरमी लगने के कारण सिर में दर्द होना। रह रहकर आघात
पड़ने की सी पीड़ा देना। जैसे, माथा टनकना।

टनकार(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० टन] दे० 'टंकार'। उ०—कड़ी
कमान जब ऐठि के लै चिया, तीन बेर टनकार सहज टका।—
कबीर श०, भा० ४, पृ० ११।

टनटन—संज्ञा स्त्री० [अनु० टन] घंटा बजने का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

टनटनाना—क्रि० सं० [हि० टनटन से नामिक धातु] घंटा
बजाना। किसी धातु खंड पर आघात करके उससे 'टनटन'
शब्द निकालना।

टनटनाना—क्रि० प्र० टनटन बजना।

टनमन—संज्ञा पु० [सं० तन्म मन्त्र] तन्म मंत्र। टोना। जाहु।

टनमन—क्रि० [हि० टनमना] दे० 'टनमना'।

टनमना—क्रि० [सं० तन्मनस्] जो सुस्त न हो। जिसकी चेष्टा मंद
न हो। जिसकी तबीयत हरी हो। जो स्थिर न हो। स्वस्थ।
चंगा। 'टनमना' का उल्टा।

टनमनाना—क्रि० प्र० [हि० टनमना + ना (प्रत्य०)] १. तबीयत
हरी होना। स्वस्थ होना। २. कुलबुलाना। टलमनाना।

टना—संज्ञा पु० [सं० तुण्ड] [स्त्री० भत्पा० टनी] १. स्त्रियों की
योनि में निकला हुआ वह मांस का टुकड़ा जो दोनों किनारों
के बीच में होता है। २. योनि। मग।

टनाका—संज्ञा पु० [अनु० टन] घंटा बजने का शब्द।

टनाका—क्रि० बहुव कड़ी (धूप)। माथा टनकानेवाली (धूप)।

टनाटन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] लगातार घंटा बजने का शब्द।

टनाटन—क्रि० वि० १. भला। चंगा। २. अच्छी हालत में।
बढ़िया।

क्रि० प्र०—होना।

टनो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टना'।

टनेल—संज्ञा पु० [सं०] सुरंग खोदकर बनाया हुआ मार्ग। ऐसा रास्ता
जो जमीन या किसी पहाड़ आदि के नीचे होकर गया हो।

टन्नाका—संज्ञा पु० [हि० टनाका] दे० 'टनाका'।

टन्नाका—क्रि० दे० 'टनाका'।

टन्नाना—क्रि० प्र० [हि० टनटन] टनटन की आवाज करना। टनटन
की ध्वनि उत्पन्न होना।

टन्नाना—क्रि० प्र० [हि०] बिगड़ना। नाराज होना। बहकना
करना।

टप—संज्ञा स्त्री० [हि० टोप, तोप (= आच्छादन, ढेप, घटाटोप)]
१. जोड़ी, फिटन, टमटम या इसी प्रकार की ओर खुली
गाड़ियों का मोहार या सायबान जो इच्छानुसार चढ़ाया या
गिराया जा सकता है। कलंदरा। २. सटकानेवाले जंप के
ऊपर की छतरी।

टप—संज्ञा पु० [सं० टप] नाँव के आकार का पानी रखने का
खुला बरतन। टाँका।

टप—संज्ञा पु० [सं० टूप] जहाजों की यति का पता लगाने का
एक योजार।—(सश०)।

टप—संज्ञा पु० [हि० ठप्पा] एक योजार जिससे डिबरी का पेच
धुमावदार बनाया जाता है।

टप—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बूँद बूँद टपकने का शब्द। उ०—
(क) परत म्रम बूँद टप टपक घानन बाल मई बेहाल
रति मोह भारी।—सूर (शब्द०)। (ख) प्यारी बिनु
कहत न कारी रेन। टप टप टपकत दुख भरे नैन।—हरिश्चंद्र
(शब्द०)।

यौ०—ठप टप।

२. किसी वस्तु के एकबारगी ऊपर से गिर पड़ने का शब्द।
जैसे—ग्राम टप से टपक पड़ा।

यौ०—टप टप।

टप^१—संज्ञा पुं० [अं० टोप] कारों में पहनने का स्त्रियों का एक आभूषण ।

टप^२—क्रि० वि० [अनु०] शीघ्र । तुरत । उ०—कैसे कहे कुछ थोड़ी सवाव मिले बड़ी बेर सों याहि मिल्यो टप ।—घनानंद, पृ० १५१ ।

मुहा०—टप से = चट से । झट से बड़ी जल्दी । जैसे,—(क) बिल्ली ने टप से बूढ़े को पकड़ लिया । (ख) टप से भागो ।

विशेष—झट, पट आदि और अनुकरण शब्दों के समान इसका प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ क्रि०वि०वात् ही होता है । अतः इसका लिंग उतना निश्चित नहीं है ।

टपक—संज्ञा स्त्री० [हि० टपकना] १. टपकने का भाव । २. बूँद बूँद गिरने का शब्द । ३. एक एककर होनेवाला ददं । ठहर ठहरकर होनेवाली पीड़ा । जैसे, फोड़े की टपक ।

टपकन—संज्ञा स्त्री० [हि० टपकना] १. टपकने की क्रिया या भाव । २. लगातार बूँद बूँद गिरने की स्थिति । ३. एक एककर पीड़ा होना । टीसना । टकसना ।

टपकना—क्रि० प्र० [अनु० टपटप] १. बूँद बूँद गिरना । किसी द्रव पदार्थ का बिंदु के रूप में ऊपर से थोड़ा थोड़ा पड़ना । चूना । रसना । जैसे, घड़े से पानी टपकना, छत टपकना । उ०—टप टप टपकत दुख भरे नैन ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग जो वस्तु गिरती है तथा जिस वस्तु में से कोई वस्तु गिरती है, दोनों के लिये होता है ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

२. फल का एककर भापसे भाप पेड़ से गिरना । जैसे, आम टपकना । महुआ टपकना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

३. किसी वस्तु का ऊपर से एकबारगी सीध में गिरना । ऊपर से सहसा पतित होना । टूट पड़ना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

मुहा०—टपक पड़ना = एकबारगी या पहुँचना । अकस्मात् भाँकर उपस्थित होना । जैसे,—हैं ! तुम बीच में कहाँ से टपक पड़े । या टपकना = दे० 'टपक पड़ना' ।

४. किसी बात का बहुत अधिक आभास पाया जाना । अधिकता से कोई भाव प्रगट होना । लक्षण, शब्द, चेष्टा या रूप रंग से कोई भाव व्यंजित होना । जाहिर होना । झलकना । जैसे,—(क) उसके चेहरे से उदासी टपक रही थी । (ख) मुहल्ले में चारों ओर उदासी टपकती है । (ग) उसकी बातों से बदमाशी टपकती है ।

संयो० क्रि०—पड़ना । जैसे,—उसके अंग अंग से यौवन टपका पड़ता था ।

५. (चित्त का) तुरंत प्रवृत्त होना । (हृदय का) झट भाँकित होना । ठक पड़ना । फिसलना । लुभा जाना । मोहित हो जाना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

६. स्त्री का संभोग की ओर प्रवृत्त होना । ठल पड़ना ।—(बाजार) ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

७. धाव, फोड़े आदि का मवाद आने के कारण रह रहकर ददं करना । चिलकना । टीस मारना । टीसना । ८. फोड़े का एककर बहना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

९. सड़ाई में धायल होकर गिरना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

टपकाना—क्रि० प्र० [हि० टपकाना] किसी को टपकाने के कार्य में प्रवृत्त करना । टपकाने के लिये प्रेरित करना ।

टपका—संज्ञा पुं० [हि० टपकना] १. बूँद बूँद गिरने का भाव ।

यौ०—टपका टपकी ।

२. वह जो बूँद बूँद करके गिरा हो । टपकी हुई वस्तु । रसाव ।

३. एककर भापसे भाप गिरा हुआ फल । ४. रह रहकर ठठने-वाला ददं । टीस । ५. बीमारियों के खुर का एक रोग । खुरपका । † ६. डाल में पका हुआ आम ।

टपका टपकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टपकाना] १. बूँदाबूँदी । (मेह की) हलकी झड़ी । फुहार । फुही । २. फलों का लगातार एक एक करके गिरना । ३. किसी वस्तु को लेने के लिये आदमियों का एक पर एक टूटना । ४. एक के पीछे दूसरे आदमी की मृत्यु । एक एक करके बहुत से आदमियों की मृत्यु (जैसे हैजे आदि में होती है) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

टपका टपकी^२—वि० इसका टपकी । झूला झटका । एक माध । बहुत कम । कोई कोई ।

टपकाना—क्रि० प्र० [हि० टपकाना] १. बूँद बूँद गिराना । चुपाना । २. धरक उतारना । भबके से धरक खींचना । चुपाना । जैसे, शराब टपकाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

टपकाव—संज्ञा पुं० [हि० टपकना] टपकाने का भाव ।

टपना^१—क्रि० प्र० [हि० टपना] १. बिना कुछ लाए पीए पड़ा रहना । बिना दाना पानी के समय काटना । जैसे,—सबरे से पड़े टप रहे हैं; कोई पानी पीने को भी नहीं पूछता । २. बिना किसी कार्यसिद्धि के बैठा रहना । व्यर्थ आसरे में बैठ रहना ।—(दलाल) ।

विशेष—दे० 'टापना' ।

टपना^२—क्रि० प्र० [हि० टापना] १. कूदना । उछलना । उचकना । फाँटना । २. जोड़ा खाना । प्रसंग करना ।

टपना^३—क्रि० प्र० [हि० टोपना] ठाँकना । आच्छादित करना ।

टपनामा—संज्ञा पुं० [हि० टिप्पन] अज्ञात पर का वह रजिस्टर जिसमें समुद्रयात्रा के समय तूफान, गर्मी आदि का लेखा रहता है ।—(अव०) ।

टपमाला—संज्ञा पुं० [अं० टपमाल] एक बड़ा भारी लोहे का धन जो अहाथों पर काम आता है ।

टपरा'—संज्ञा पुं० [हि० तोपना] [श्री० टपरी, टपरिया] १. छप्पर। छाजन। २. भोपड़ा।

टपरा'—संज्ञा पुं० [हि० टप्पा] छोटे छोटे सेतों का विभाग।

टपरिया(पुं) —संज्ञा श्री० [हि० टपरा] भोपड़ी। मईया। घास-फूस का मकान।

टपाक(पुं) —कि० [हि० टप] टप से। शीघ्र। उ०—ऐसे तोहि काल घाइ लैगो टपाकि दे।—मुंजर सं०, भा० २, पृ० ४१२।

टपाटप—कि० वि० [अनु० टपटप] १. लगातार टपटप शब्द के साथ (गिरना)। बराबर बूँद बूँद करके (गिरना)। जैसे,—छाते पर से टपाटप पानी गिर रहा। २. भट पट। जल्दी जल्दी। एक एक करके शीघ्रता से। जैसे,—बिल्ली बूँहों को टपाटप ले रही है।

टपाना'—कि० सं० [हि० तपाना] १. बिना घाना पानी के रखना। बिना खिलाए पिलाए पड़ा रहने देना। २. व्यर्थ आसरे में रखना। निष्प्रयोजन बैठाए रखना। व्यर्थ हैरान करना।

टपाना'—कि० सं० [हि० टाप] कुदाना। फेंदना।

टप्परी—संज्ञा पुं० [हि० तोपना] १. छप्पर। छाजन।

मुहा०—टप्पर उलटना = दे० 'टाट उलटना'।

२. दे० 'टापर'।

टप्पा—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हि० थाप, टाप] १. किसी सामने फेंकी हुई वस्तु का जाते हुए बीच बीच में भूमि का स्पर्श। उछल उछलकर जाती हुई वस्तु का बीच में टिकान। जैसे,—गेद कई टप्पे खाती हुई गई है।

मुहा०—टप्पा खाना = किसी फेंकी हुई वस्तु का बीच में गिरकर जमीन में छू जाना और फिर उछलकर भागे बहना।

२. उतनी दूरी जितनी दूरी पर पर कोई फेंकी हुई वस्तु जाकर पड़े। किसी फेंकी हुई चीज की पहुँच का फासला। जैसे, गोली का टप्पा। ३. उछाल। बूँद। फाँद। फलंग।

मुहा०—टप्पा देना = लंबे लंबे ढग बढ़ाना। कूदना।

४ नियत दूरी। मुहरेंर फासला। ५. दो स्थानों के बीच पड़ने-वाला मैदान। जैसे,—इन दोनों गाँवों के बीच में बालू का बड़ा भारी टप्पा पड़ा है। ६. छोटा भूविभाग जमीन का छोटा हिस्सा। पगने का हिस्सा। ७. अंतर। बीच। फाँद। उ०—पीपर मुना फूस बिन फल बिन मुना राय। एकाएकी मानुषा टप्पा दीया आय। कबीर (शब्द०)।

मुहा०—टप्पा देना = अंतर डालना। फाँद डालना।

८. दूर दूर की भद्दी सिलाई। मोटी सीधन (स्त्रि०)।

मुहा०—टप्पे डालना, भरना, मारना = दूर दूर बलियाँ करना। मोटी और भद्दी सिलाई करना। लंगर डालना।

९. पालकी से जानेवाले कहारों की टिकान जहाँ कहार बहले जाते हैं। पालकीवालों की चोकी या डाक। † १०. डाकखाना। पोस्ट आफिस। ११. पाल के जोर से चलनेवाला बेड़ा। १२. एक प्रकार का चलता घाना जो पंजाब से आता है।

† १३ एक प्रकार का ठेका जो तिलवाड़ा ताल पर बजाया जाता है। १४. एक प्रकार का हुक या काँटा।

टब'—संज्ञा पुं० [अं०] पानी रखने के लिये नाँद के आकार का खुला बरतन।

टब'—संज्ञा पुं० [अं०] जलाने का एक प्रकार का लप जो छत या किसी दूसरे ऊँचे स्थान पर लटकाया जाता है।

टबलाना(पुं) —संज्ञा पुं० [?] चलाचली की स्थिति। महाप्रयाण की स्थिति हाना। उ०—खजर जुदाई घबरा, अब तो इधर भी टबला। ब्रज० प्र०, पृ० ४३।

टबूकना(पुं) —कि० अं० [हि० टपकना] टपकना। टप टप करके गिरना। उ०—हियड़ु बादल छायेउ, नयण टबूआई मेहु।—ढोला०, दू० ३६०।

टब्वरी—संज्ञा पुं० [सं० कुटुंब] कुटुंब। परिवार। (पंजाब)।

टमकना(पुं) —कि० अं० [हि० टमकना] बजना। शब्द करना। उ०—टमकत तबल टमक विहद। टमकत टास विनु भुव गरह।—सुजान०, पृ० ३६।

टमकी—संज्ञा पुं० [सं० टम्कार] छोटा नगाड़ा जिसे बजाकर किसी प्रकार की घोषणा की जाती है। डगडुगिया।

टमटम संज्ञा श्री० [अं० टैटम] दो ऊँचे ऊँचे पहियों की एक खुली हलकी गाड़ी जिसमें एक घोड़ा लगता है और जिसे सवारी करनेवाला अपने हाथ से हाँकता है।

टमटी—संज्ञा श्री० [देश०] एक प्रकार का बरतन। उ० बच्चा घर बाघार भर्त के बहुत बिलोटा। परिचा टमटी अतरदान खे के सोता।—सूदन (शब्द०)।

टमस—संज्ञा श्री० [म० तमसा] टोंस नदी। तमसा।

टमाटर संज्ञा पुं० [अं० टमेटो] एक प्रकार का फल जो गोलाई लिए हुए खिपटा तथा स्वाद में खट्टा होता है। विलायती भटा।

बिरोष—यह कच्चा रहने पर हरा और पकने पर लाल हो जाता है तथा तरकारी, चटना, जेली आदि के काम आता है।

टमुको—संज्ञा श्री० [हि०] दे० 'टमका'।

टर—संज्ञा श्री० [अनु०] १ कर्कश शब्द। कर्कश वाक्य। कर्णकटु वाक्य। अप्रिय शब्द। कड़ई बोली।

यौ०—टर टर।

मुहा०—टरटर करना = (१) डिठाई से बोलते जाना। प्रतिवाद में बार बार कुछ कहते जाना। जयानदराजी करना। जैसे,—टर टर करता जायगा, न मानेगा। (२) बकवाद करना। टर टर लगाना = व्यर्थ बकवाद करना। झूठमूठ बक बक करना। इतना और इस प्रकार बोलना जो अच्छा न लगे।

२. मेढ़क की बोली।

यौ०—टर टर।

३. घमंड से भरी बात। अविनीत बचन और चेष्टा। ऐंठ।

भकड़। जैसे—शेखों की शेखी, पठानों की टर। ४. हठ।
जिद। भड़। ५. तुच्छ बात। पोच बात। बेमेल बात।
६. ईद के बाद का मेला (मुसलमान)। उ०—ईद पीछे
टर, बरात पीछे घोसा।

टरकना—क्रि० प्र० [हि० टरना] १. चला जाना। हट जाना।
खिसक जाना। टल जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—टरक देना = धीरे से चला जाना। चुपचाप हट जाना।
जैसे,—जब काम का वक्त आता है तो वह कहीं टरक देता
है। ७। (२) टर टर करना। कर्कश स्वर से बोलना।
उ०—टरं टरं टरकन लगे बसटू दिसा मंडूक।—गोपाल
(शब्द०)।

टरकनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ईश या गन्ने की दूसरी बार की
सिचाई।

टरकाना—क्रि० स० [हि० टरकना] १. एक स्थान से दूसरे स्थान
पर कर देना। हटाना। खिसकाना। जैसे,—(क) देखते रहो,
ये चीजे इधर उधर टरकाने न पावें। (ख) जब कोई ठूँढ़ने
आवे तब इस लड़के को कही टरका दो। २. किसी काम के
लिये आए हुए मनुष्य को बिना उसका काम पूरा किए कोई
बहाना करके लौटा देना। टाल देना। चला करना। घटा
बताना। जैसे,—जब हम अपना रुपया माँगने आते हैं तो
तुम यों ही टरका देते हो।

टरकी—संज्ञा पुं० [तुरकी] १. एक प्रकार का मुर्गा जिसकी चोंच
के नीचे गले में लाल भालर रहती है और जिसके काले परों
पर छोटी छोटी सफेद बुँदकियाँ होती हैं।

विशेष—इसका माँस बहुत स्वादिष्ट माना जाता है। इसे पेरु
भी कहते हैं।

२. एक देश। तुरकी।

टरकुल—वि० [हि० टरकाना] १. बहुत साधारण। बिलकुल
नामूर्ती। घटिया। खराब।

टरगी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो चारे के काम में
आती है। इस में सड़े चान से खाती हैं।

विशेष—यह सुखाकर बारह तेरह बरस तक रखी जा सकती
है और पोड़ों के लिये अत्यंत पुष्ट और लाभदायक होती है।
हिंदुस्तान में यह घास हिसार, मांटगोमरी (पंजाब) आदि
स्थानों में होती है, पर विलायती के ऐसी सुगंधित नहीं
होती। इसे पलका या पलवन भी कहते हैं।

टरटराना—क्रि० स० [हि० टर] १. बक बक करना। २.
ठिठाई से बोलना। टर टर करना।

टरना^१—क्रि० स० [हि० टलना] दे० 'टलना'। उ०—(क)
तृण से कुलिस कुलिस तृण करई। तामु दूत पग कहु किमि
टरई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अस विचारि सोचहि मति
माता। सो न टरइ जो रषइ विधाता।—तुलसी (शब्द०)।

टरना^२—संज्ञा पुं० [देश०] तेली के कोल्हू में ठंका और कठरी से
बँधी हुई रस्सी।

टरनी—संज्ञा स्त्री० [हि० टरना] टरने का भाव।

टरं टरं—संज्ञा स्त्री० [हि० टरना] १. मेंढक की आवाज। २.
बे मतलब की बात। बकबाज। उ०—सत्य बंधु, सत्य; वहीं
नहीं भरं भरं; नहीं वहीं भेक, वहीं नहीं टरं टरं।—प्रतापिका,
पृ० ११।

टरा—वि० [अनु० टर टर] १. टरनेवाला। ऐंठकर बात करने-
वाला। अविनीत और कठोर स्वर से उत्तर देनेवाला।
घमंड के साथ चिढ़ चिढ़कर बोलनेवाला। सीधे न बोलने-
वाला। २. धृष्ट। कटुवादी।

टराना—क्रि० प्र० [अनु० टर] ऐंठकर बात करना। अविनीत और
कठोर स्वर से उत्तर देना घमंड के साथ चिढ़ चिढ़कर बोलना।
सीधे से न बोलना। घमंड लिए हुए कटु वचन कहना।

टरापन—संज्ञा पुं० [हि० टरा] बातचीत में अविनीत भाव।
कटुवादिता।

टरू—संज्ञा पुं० [हि० टर टर] १. टरा भादमी। २. मेंढक। ३.
चमड़े की भिल्ली मढ़ा हुआ एक खिलौना जो घोड़े की पूँछ
के बाल से एक लकड़ी में बँधा होता है। इसे घुमाने से टरं
की आवाज निकलती है। मेंढक। भोरा। कोवा।

टल—संज्ञा पुं० [सं०] घबराहट। परेशानी [को०]।

टलन—संज्ञा पुं० [सं०] घबराहट। परेशानी [को०]।

टलटल—क्रि० वि० [अनु०] कलकल ध्वनि के साथ। उ०—तेरे
गीतों को वह जिसमे गाती है टल टल छल छल।—बीणा,
पृ० २८।

टलना^१—क्रि० प्र० [सं० टल (= विचलित होना)] १. अपने स्थान
से अलग होना। हटना। खिसकना। सरकना। जैसे,—वह
पत्थर तुमसे नहीं टलेगा।

मुहा०—अपनी बात से टलना = प्रतिज्ञा पूरी न करना।
मुकरना।

२. एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। अनुपस्थित होना।
किसी स्थान पर न रहना। जैसे,—(क) काम के समय तुम
सदा टल जाते हो। (ख) जब इसके आने का समय हो,
तब तुम कहीं टल जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

३. दूर होना। मिटना। न रह जाना। जैसे, आपत्ति टलना,
संकट टलना, बला टलना।

संयो० क्रि०—जाना।

४. (किसी कार्य के लिये) निश्चित समय से और आगे का
समय स्थिर होना। (किसी काम के लिये) मुकरर वक्त से
और आगे का वक्त ठहराया जाना। मुलतवी होना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य दोनों के लिये
होता है। जैसे, तिथि टलना, तारीख टलना, विवाह की
सायत टलना, दिन टलना, सभन टलना, विवाह टलना,
इम्तहान टलना।

संयो० क्रि०—जाना।

५. (किसी बात का) अग्र्यता होना । धीर का धीर होना । ठीक न ठहरना । अडिग होना । जैसे,—हमारी कही हुई बात कभी नहीं टल सकती । ६. (किसी आदेश या अनुरोध का) न माना जाना । उल्लंघित होना । पूरा न किया जाना । जैसे,—बादशाह का हुक्म कहीं टल सकता है । ७. समय व्यतीत होना । बीतना ।

टलमल—वि० [हि० टलमलाना] हिलता हुआ । कंपित । उ०—छोटे मुल बल राखस पव तल पुष्पी टलमल ।—अपरा, पृ० ३८ ।

टलमल—क्रि० वि० [अनु०] कलकल ध्वनि के साथ ।

टलमलाना—क्रि० प्र० [अनु०] हिलना डलना । टलमल होना ।

टलहा—वि० [देश०] [वि० की० टलही] छोटा । बराब । दूषित । जैसे,—टलहा बपया, टलही चाँदी ।

टलाटली—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'टालटल' । उ०—पति रति की बतियाँ कही, सखी लखी मुसकाई । के के सबै टलाटली, बली बली सुनु पाई ।—बिहारी २०, दो० २४ ।

टल्ला—संज्ञा पु० [अनु०] धक्का । धाधात । ठोकर । उ०—तो बस उस एक टल्ले से ही हो जाए जीवन कल्याण ।—अपलक, पृ० २६ ।

मुहा०—टल्ले मारना = ठोकर खाते फिरना । मारा मारा फिरना । इधर से उधर निष्फल घूमना ।

टल्ली—संज्ञा पु० [देश०] १. एक प्रकार का बस । २० 'टोली' । (यु०) २. आधार । उ०—चद सूर्य हुइ टल्ली लावे । इहि बिधि लिखा खिसनि न पावे ।—प्राण०, पृ० ८ ।

टल्लेनबीसी—संज्ञा स्त्री० [हि० टल्ला + का० नबीसी] ३० 'टल्लेनबीसी' ।

टल्ली—संज्ञा पु० [सं० पल्लव ?] १. हरी टहनी । २. पल्लव ।

टलगा—संज्ञा पु० [सं०] ट ठ ड ढ ण—इन पाँच वर्णों का समूह ।

टवाई—संज्ञा स्त्री० [सं० घटन (= घूमना)] धावारंगी । व्ययं घूमना । उ०—केर रह्यो पुर करत टवाई । मान्यो नहि जो जननि सिलाई ।—रघुराज (भा० ८०) ।

टस—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. किसी भारी चीज के खिसकने का शब्द । टसकने का शब्द ।

मुहा०—टस से मस न होना = (१) किसी भारी चीज का जरा सी भी जगह न छोड़ना । कुछ भी न खिसकना । (२) किसी कड़ी थस्तु का (पकाने या चलाने आदि से) जरा सी भी न चलना ।

३. कहने सुनने का कुछ भी प्रभाव न पड़ना । किसी के अनुकूल कुछ भी प्रवृत्त न होना । ४. कपड़े आदि के फटने का शब्द । मसकने का शब्द ।

टसक—संज्ञा स्त्री० [हि० टसकना] रह रहकर उठनेवाली पीड़ा । कसक । टीस । बसक ।

टसकना—क्रि० प्र० [सं० तस (=केलना) + करण] १. किसी भारी चीज का जगह से हटना । जगह से हिलना । खिसकना । जैसे,—यह पत्थर जरा सा भी इधर उधर नहीं टसकता । २. रह रहकर दर्द करना । टोस मारना । कसकना । ३.

प्रभावित होना । हृदय में प्रार्थना या कहने सुनने का प्रभाव अनुभव करना । किसी के अनुकूल कुछ प्रवृत्त होना । किसी की बात मानने को कुछ तैयार होना । जैसे,—उससे इतना कहा सुना पर वह ऐसा कठोर हृदय है कि बरा भी न टसका । ४. पककर गदरावा । गुदारा होना । † ५. रोना बौना । घाँसु बढ़ाना । ६. घसकना । चलना । जाना । उ०—किसी को भी आपके टसकने का पूर्ण विश्वास न था ।—प्रेमचन्द, भा० २, पृ० १३६ ।

टसकाना—क्रि० सं० [हि० टसकना का प्रे० कर] किसी भारी चीज को जगह से हटाना । खिसकाना । सरकाना ।

टसना—क्रि० प्र० [अनु० टस] कपड़े आदि का फटना । मसक जाना । दरकना ।

संयो० क्रि० जाना ।

टसर—संज्ञा पु० [सं० तसर] १. एक प्रकार का कड़ा धीर मोटा रेशम जो बंगाल के जंगलों में होता है ।

विशेष—छोटा बगपुर, मयूरभञ्ज, बालेश्वर, बीरभूम, मेदिनीपुर आदि के जंगलों में सायू, बहेड़ा, पियार, कुसुम, बेर इत्यादि वृक्षों पर टसर के कीड़े पलते हैं । रेशम के कीड़ों की तरह इन कीड़ों की रक्षा के लिये अधिक ध्यान नहीं करना पड़ता । पालनेवालों को जंगल में घास से आर होनेवाले कीड़ों को केवल चींटियों और चिड़ियों आदि से बचाना भर पड़ता है । पालनेवाले इनकी वृद्धि के लिये कोश से निकले हुए कीड़ों को जंगल में छोड़ देते हैं जहाँ अपने जोड़े ढूँढ़कर वे अपनी वृद्धि करते हैं । मादा कीड़े पेड़ की पत्तियों पर सरसों के ऐसे पर चिपटे चिपटे झंड़े देते हैं जो पत्तियों में चिपक जाते हैं । एक कीड़ा तीन चार दिन के भीतर दो टाई सी तक झंड़े देता है । झंड़े देकर ये कीड़े मर जाते हैं । दस बारह दिनों में इन झंड़ों से सूँधी या टोल के आकार के छोटे छोटे कीड़े निकल आते हैं । धीरे पत्तियाँ चाट चाटकर बहुत जल्दी बढ़ जाते हैं । इस बीच में ये तीन चार बार कलेवर या खोली बदलते हैं । अधिक से अधिक पंद्रह दिन में ये कीड़े अपनी पूरी बाढ़ को पहुँच जाते हैं । उस समय इनका आकार ८, १० अंगुल तक होता है । ये मटमैले, भूरे, नीले, पीले कई रंगों के होते हैं । पूरी बाढ़ को पहुँचने पर ये कीड़े कोश बनाने में लग जाते हैं और अपने मुँह से एक प्रकार की सार निकालते हैं जो सूखकर सूत के रूप में हो जाती है । सूत निकालते हुए घूम घूमकर ये अपने लिये एक कोश तैयार कर लेते हैं और उसी में बंद हो जाते हैं । ये कोश झंड़ाकार होते हैं । बड़ा कोश ६—६½ अंगुल तक लंबा होता है । कोश के भीतर तीन चार दिनों तक सूत निकालकर ये कीड़े मुरदे की तरह चुपचाप पड़ जाते हैं । पालनेवाले कोशों के पकने पर उन्हें इकट्ठा कर लेते हैं; क्योंकि उन्हें मय रहता है कि पर निकलने पर कीड़े सूत को कुतर कुतरकर निकल जायेंगे; अतः उकड़े के पहले ही इन कोशों को सार के साथ गरम पानी में उबालकर वे कीड़ों को सार डालते हैं । जिन कोशों को उबालवा नहीं पड़ता, उनका टसर सबसे अच्छा होता है ।

जो कोश पकने के पहले ही उबाले जाते हैं, उनका सूत कच्चा और निकम्मा होता है।

२. टसर का बुना हुआ कपड़ा।

टसुआ—संज्ञा पुं० [सं० षसु, हि० षसु, प्रसुधा] षसु। षसु। (पश्चिम)

क्रि० प्र०—बहाना।

मुहा०—टसुए बहाना = झूठमूठ षसु गिराना।

टसुआ—संज्ञा पुं० [सं० षसु, हि० षसु, प्रसुधा] दे० 'टसुआ'।

मुहा०—टसुए बहाना = दे० 'टसुए बहाना'। उ०—बड़ी बेगम, अब टसुए पीछे बहाना। पहले हमारी बात का जवाब दो।
—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१५।

टहका—संज्ञा स्त्री० [हि० टसक] शरीर के जोड़ों की पीड़ा। रह रहकर उठनेवाली पीड़ा। बसक।

टहकना—क्रि० घ० [हि० टसकना] १. रह रहकर दर्द करना। बसकना। टीस मारना। २. (धी, मोम, चरबी आदि का) घीब झाकर तरल होना या बहना। पिघलना।

टहकाना—क्रि० स० [हि० टहकना] घीब से पिघलाना।

टहटह—क्रि० वि० [देश०] स्पष्टतापूर्वक। उ०—टहटह चु बुलिय मोर।—प० सो०, पृ० ८१।

मुहा०—टहटह चाँदनी = निमल चाँदनी। श्वेत चाँदनी।

टहटहा—वि० [हि० टटका] टटका। ताजा।

टहना^१—संज्ञा पुं० [सं० तनुः (=पतला या शरीर)] [स्त्री० टहनी] १. वृक्ष की पतली शाखा। पतली डाल।

टहना^२—संज्ञा पुं० [सं० प्रष्ठीवान्] घुटना। टेहना। उ०—जल टहने तक पहुँच गया था।—हुमायूँ०, पृ० ५४।

टहनी—संज्ञा स्त्री० [हि० टहना] वृक्ष की बहुत पतली शाखा। पेड़ की डाल के छोर पर की कोमल, पतली और लचीली उपशाखा जिसमें पत्तियाँ लगती हैं। जैसे, नीम की टहनी।

टहरकटा—संज्ञा पुं० [हि० ठहर + काठ] काठ का टुकड़ा जिसपर टकूप या तकले से उत्तरा हुआ सूत लपेटा जाता है।

टहरना—क्रि० घ० [हि०] दे० 'टहलना'।

टहल—संज्ञा स्त्री० [हि० टहलना] १. सेवा। शुश्रूषा। खिदमत।
क्रि० प्र०—करना।

यौ०—टहल टई = सेवा शुश्रूषा। उ०—कल करनी बरनिए कही लौ करत फिरत नित टहल टई है।—तुलसी (शब्द०)।
टहल टकोर = सेवा शुश्रूषा।

मुहा०—टहल बजाना = सेवा करना।

२. नोकरी चाकरी। काम धंधा।

टहलना—क्रि० घ० [?] १. धीरे धीरे चलना। मंद गति से अग्रण करना। धीरे धीरे कदम रखते हुए फिरना।

मुहा०—टहल जाना = धीरे से खिसक जाना। चुपचाप अन्यत्र चला जाना। हट जाना। जान बूझकर उपस्थित न रहना।
२. केवल जी बहलाने के लिये धीरे धीरे चलना। हवा जाना।

सेर करना। जैसे,—वे सँझा को नित्य टहलने जाते हैं। ३. परलोक व्रजन करना। मर जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

टहलनी—संज्ञा स्त्री० [हि० टहल + नी (प्रत्य०)] १. टहल करनेवाली। सेवा करनेवाली। दासी। मजदूरनी। लोड़ी। चाकरानी। उ०—म्हंसी बकि बड़ी टहलनी मँबर कमल फुल बास लुभावे।—घनानंद, पृ० ३३४। २. वह लकड़ी जो बत्ती उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है।

टहलान—संज्ञा स्त्री० [हि० टहलना] टहलने की क्रिया या भाव।

टहलाना—क्रि० स० [हि० टहलना] १. धीरे धीरे चलाना। घुमाना। फिराना। २. सेर कराना। हवा खिलाना। ३. हटा देना। दूर करना। ४. बिकनी चुपड़ी बातें करके किसी को अपने साथ ले जाना।

मुहा०—टहला ले जाना = उड़ा ले जाना। गायब करना। चोरी करना। उ०—पेशकार, हुजूर जूता कोई जात शरीफ टहला ले गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४९।

टहलि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टहलना] दे० 'टहल'। उ०—छोट सी मँस सोहने सीगनि टहलि करनि को गोली झू।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३७।

टहलुआ—संज्ञा पुं० [हि० टहल] [स्त्री० टहलुई, टहलनी] टहल करनेवाला। सेवक। नोकर। खिदमतगार।

टहलुई—संज्ञा स्त्री० [हि० टहल] १. दासी। ठिकरी। लोड़ी। चाकरानी। मजदूरनी। नोकरानी। २. वह लकड़ी जो बत्ती उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है।

टहलुनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टहल] दे० 'टहलनी'। उ०—पहले गाँव में से एक लड़की आई, फिर एक टहलुनी आई, उसने पीछे एक और आई।—ठेठ०, पृ० ३०।

टहलुवा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टहलुआ'। उ०—धीरे सब मजवाही टहलुवान को महाप्रसाद लिवायो।—दो सी बाबन०, भा० २ पृ० १४।

टहलू—संज्ञा पुं० [हि० टहल] नोकर। चाकर। सेवक।

टहाका—वि० [देश०] दे० 'टहाटह'।

यौ०—टहाका अजोरिया = निमल चाँदनी।

टहाटहा—वि० [देश०] निमल। चटकीला।

यौ०—टहाटह चाँदनी = निमल चाँदनी।

टरी—संज्ञा स्त्री० [हि० घाट, घात] मतलब निकालने की घात प्रयोजनसिद्धि का ढंग। ताक। मुक्ति। जोड़ तोड़।

मुहा०—टही लगाना = जोड़ तोड़ लगाना। टही में रहना = काम निकालने की ताक में रहना।

टहुआटारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] इधर की उधर लगाना। चुगलखोरी टहुकड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० टहकना] शब्द। वचन। उ०—करहु किया टहकड़ा, निद्रा जागी नारि।—दोला०, पृ० ३४४।

टहकना^१—क्रि० घ० [अनु०] बोलना। धावाज करना। उ०—मोर टहकड़ सीखर थी।—बी० रासो०, पृ० ७०।

टहका^१—संज्ञा [हि० ठक या ठहाका] १. पहेली। २. चमत्कारपूर्ण उक्ति। चुटकुसा।

टहका^७—संज्ञा पुं [हि० टहकना] धावाज । रबर । उ०—टहका मोर का साल । हिये में हूँ सो चाले ।—राम० धर्म०, पु० १८ ।

टहका^८—संज्ञा स्त्री० [हि० टहल] दे० 'टहल' । उ०—सो वह बीरौ नित्य अपने हाथ में श्री ठाकुर जी की सेवा टहल करती ।—दो सो बानन०, भा० १, पु० १२१ ।

टहोका—संज्ञा पुं [हि० ठोकर प्रयथा ठोका] हाथ या पैर से दिया हुआ धक्का । भटकना ।

मुहा०—टहोका देना=हाथ या पैर से धक्का देना । भटकना । ठकेमना । ठेसना । टहोका खाना=धक्का खाना । ठोकर सहना । उ०—मैंने इनकी ठंडी साँस की फाँस का टहोका खाकर भुँझलाकर कहा ।—इंशा मल्ला खाँ (शब्द०) ।

टाँक—संज्ञा पुं [सं० टाङ्क] एक प्रकार की शराब [को०] ।

टाँकर—संज्ञा पुं [सं० टाङ्कर =] १. कामी । लंपट । २. कुटना भुगलखोर [को०] ।

टाँकार—संज्ञा पुं [सं० टाङ्कार] दे० 'टकोर' [को०] ।

टाँक^१—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १. एक प्रकार की तोल जो चार भागों की (किसी किसी के मत में तीन भागों की) होती है । इसका प्रचार जोहरियों में है । २. धनुष की शक्ति की परीक्षा के लिये एक तोल जो पचीस सेर की होती थी ।

विशेष—इस तोल के बटखरे को धनुष की डोरी में बाँधकर लटका देते थे । जितने बटखरे बाँधने से धनुष की डोरी अपने पूरे संधान या खिंचाव पर पहुँच जाती थी, उतनी टाँके का, वह धनुष समझा जाता था । जैसे, —कोई धनुष सवा टाँक का, कोई डेढ़ टाँक का, यहाँ तक कि कोई दो या तीन टाँक तक होता था जिसे प्रत्यक्ष बलवान पुष्ट ही गढ़ा सकते थे ।

३. जीव । कृत् । धवाज । घाँक । ४. हिस्सेदारों का हिस्सा । बखरा । ५. एक प्रकार का छोटा कटोरा । उ०—घोड़ टाँक भँह सोध सेरावा । लीग मिगिब तेहि ऊपर नावा ।—जामसी (शब्द०) ।

टाँक^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँकना] १. लिखावट । लिखने का श्रृंखला या चिह्न । लिखन । उ०—छती नेह कागर हिये मई लखाय न टाँक । बिरह सज्यो उघरयो सु धन सेंदुड़ को सो घाँक ।—बिहारी (शब्द०) । २. कलम की नोक । लेखनी का डंक । उ०—हरि जाय चेत बिल सुलि स्याही भरि जाग, हरि जाय कागद कलम टाँक जरि जाय ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

टाँकना—क्रि० सं० [सं० टकन] १. एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु को नील आदि जड़कर जोड़ना । नील काँटे ठोककर एक वस्तु (धातु की चदर आदि) की दूसरी वस्तु में मिलाना या एक वस्तु पर दूसरी को बैठाना । जैसे, फूटे हुए बरतन पर चिप्पी टाँकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. सुई के सहारे एक ही तागे को दो वस्तुओं के नीचे ऊपर ले जाकर उन्हें एक दूसरे से मिलाना । सिलाई के द्वारा जोड़ना ।

सीना । जैसे, चकती टाँकना, गोटा टाँकना, फटा सूता टाँकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

३. मोकर घटकाना । सुई तागे से एक वस्तु पर दूसरी इस प्रकार लगाना या ठहराना कि वह उसपर से न हटे या गिरे ।

जैसे, बटन टाँकना । माती टाँकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

४. सिल, चक्की आदि की टाँकी से गड़के करके खुरदरा करना । कुटना । रेहना । छीलना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

६. किसी कागज, बही या पुस्तक पर स्मरण रखने के लिये लिखना । दर्ज करना । चढ़ाना । जैसे, —ये दस रुपए भी बही पर टाँक लो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—मन में टाँक रखना = स्मरण रखना । याद रखना ।

† ७. लिखकर पेश करना । दाखिल करना । जैसे, धर्जी टाँकना । घ. घट कर जाना । उड़ा जाना । खाना । (बाजारू) । जैसे—देखते देखते वह सब मिठाई टाँक गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

८. अनुचित रूप से रुपया पैसा आदि लेना । मार लेना । उड़ा लेना ।—(दलाल) ।

टाँकली^१—संज्ञा स्त्री० [?] पाल लपेटने की चिन्नी या गहारी । (लश०) ।

टाँकली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कली] एक प्रकार का पुराना बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था ।

टाँका—संज्ञा पुं [हि० टाँकना] १. वह जड़ी हुई नील जिससे दो वस्तुएँ (विशेषतः धातु की चदरें) एक दूसरे में जड़ी रहती हैं । जोड़ मिलानेवाली नील या काँटा ।

क्रि० प्र०—उखडना ।—निटालना ।—लगना ।—लगाना । सीवन का उतना प्रश्न जितना सुई को एक बार ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर ले जाने में तैयार होता है । सिलाई का पुष्प पुष्प प्रश्न । होभ । जैसे,—दो टाँके लगा दो । क्यादा काम नहीं है ।

क्रि० प्र०—उखडना ।—खुलना ।—टूटना ।—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—टाँका चलाना = मीने के लिये कपड़े आदि में धार पार सुई डालना । टाँका भरना = सुई से छेदकर तागा फँसाना या घटकाना । सीना । सिलाई करना । टाँका मारना = दे० 'टाँका भरना' ।

३. सिलाई । सीवन । ४. टाँकी हुई चकती । चिप्पी । ५. शरीर पर के घाव या कटे हुए स्थान की सिलाई जो घाव पूजने के लिये की जाती है । जोड़ ।

क्रि० प्र०—उखडना ।—खुलना ।—टूटना ।—लगना ।—लगाना ।

६. धातुओं के जोड़ने का मसाला जो उनकी गलाकर बनाया जाता है ।

क्रि० प्र०—भरना ।

टाँका^२—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] [जी० अल्पा० टांकी] सोहे की कील जो नीचे की ओर चौड़ी ओर धारदार होती है और पत्थर छीलने या काटने के काम में आती है। पत्थर काटने की चौड़ी छेनी।

टाँका^३—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क (= खड्ड या गड्ढा)] १. दीवार उठाकर बनाया हुआ पानी इकट्ठा रखने का छोटा सा कुंड। होज। चहुबच्चा। २. पानी रखने का बड़ा बरतन। कंढाल।

टाँकाटूक—वि० [हि० टाँक + तोल] तोल में ठीक ठीक। वजन में पूरा पूरा। ठीक ठीक तुला हुआ।—(दुकानदार)।

टाँकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १. पत्थर गड़ने का औजार। वह सोहे की कील जिससे पत्थर तोड़ते, काटते या छीलते हैं। छेनी। उ०—यह तेलिया पखान हठी, कठिनाई याकी। टूटी याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी।—दीनदयाल (शब्द०)।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—बैठना।—मारना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—टाँकी बजना=(१) पत्थर पर टाँकी का घाघात पड़ना। (२) पत्थर की गढ़ाई होना। इमारत का काम लगना।

२. तरबूज या खरबूज के ऊपर छोटा सा चौखूँटी कटाव या छेद जिससे उसके भीतर का (कच्चे, पक्के, सड़े आदि होने का) हाल मालूम होता है।

विशेष—फल बेचनेवाले प्रायः इस प्रकार थोड़ा सा काटकर तरबूज रखते हैं।

३. काटकर बनाया हुआ छेद। ४. एक प्रकार का फोड़ा। कुबल। ५. गरमी या सूजाक का घाव। ६. भारी का दाँत। दाँता। दंढाना।

टाँकी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क (= खड्ड या गड्ढा)] १. पानी इकट्ठा रखने का छोटा होज। छोटा टाँका। छोटा चहुबच्चा। २. पानी रखने का बड़ा बरतन। कंढाल।

टाँकीबंद—वि० [हि० टाँकी + प्रा० बंद] (इमारत, दीवार या जुड़ाई) जिसमें लगे हुए पत्थर पट्टियों या दोनों ओर गड़नेवाली कीलों के द्वारा एक दूसरे से खूब जुड़े हों। जैसे, टाँकीबंद जुड़ाई। टाँकीबंद इमारत।

विशेष—दो पत्थरों के जोड़ के दोनों ओर घामने सामने दो छेद किए जाते हैं। इन्हीं छेदों में दो ओर झुकी हुई कीलों को ठोककर छेदों में गला हुआ सीसा भर देते हैं जिससे पत्थर के दोनों टुकड़े एक दूसरे से जकड़कर मिल जाते हैं। किले की दीवारों, पुल के खंभों आदि में इस प्रकार की जुड़ाई प्रायः होती है।

टाँग—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १. शरीर का वह निचला भाग जिसपर थड़ ठहरा रहता है और जिससे प्राणी चलते या दीड़ते हैं। साधारणतः पाँच की जड़ से लेकर एड़ी तक का अंग जो पतले खंभे या डंडे के रूप में होता है, विशेषतः घुटने से लेकर एड़ी तक का अंग। जीवों के चलने फिरने का अवयव। (जिसकी संख्या भिन्न भिन्न प्रकार के जीवों में भिन्न भिन्न होती है)।

मुहा०—टाँग भड़ाना=(१) बिना अधिकार के किसी काम में योग देना। किसी ऐसे काम में हाथ डालना जिसमें उसकी आवश्यकता न हो। फज़ल दखल देना। (२) भड़ंगा लगाना। विघ्न डालना। बाधा उपस्थित करना। (३) ऐसे विषय पर कुछ कहना जिसकी कुछ जानकारी न हो। ऐसे विषय में कुछ विचार या मत प्रकट करना जिसका कुछ ज्ञान न हो। अनधिकार चर्चा करना। जैसे,—जिस बात को तुम नहीं जानते उसमें क्यों टाँग भड़ाते हो? टाँग उठाना=(१) स्वीसंभोग करना। स्त्री के साथ संभोग करने के लिये प्रस्तुत होना। आसन लेना। (२) जल्दी जल्दी पैर बढ़ाना। जल्दी जल्दी चलना। टाँग उठाकर मूतना=कुत्तों की तरह मूतना। टाँग की राह निकल जाना=३० 'टाँग तले (या नीचे) से निकलना। उ०—उस अंबर के भलाड़े से कोरे निकल जाओ तो टाँग की राह निकल जाऊँ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ७। टाँग टूटना=चलने फिरने से थकावट आना। उ०—हर रोज आप दीड़ते हैं। साहब हमपर भलग खपा होते हैं और टाँगें भलग टूटती हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५७। टाँग तले (या नीचे) से निकलना=हार मानना। परास्त होना। नीचा देखना। अधीन होना। टाँग तले (या नीचे) से निकालना=हराना। परास्त करना। नीचा हिलाना। अधीनता या हीनता स्वीकार करना। टाँग तोड़ना=(१) अंगभंग करना। (२) बेकाम करना। निकम्मा करना। किसी काम का न रखना। (३) किसी भाषा को थोड़ा सा सीखकर उसके टूटे फूटे या अशुद्ध वाक्य बोलना। जैसे,—क्या अंग्रेजी की टाँग तोड़ते हो? (अपना) टाँग तोड़ना=चलते चलते पैर थकना। घूमते घूमते हैरान होना। टाँग पसारकर सोना=(१) निर्द्वंद्व होकर सोना। बिना किसी प्रकार के खटके के चैन से दिन बिताना। टाँगें रह जाना=(१) चलते चलते पैर दर्द करने लगना। चलते चलते पैरों का थिथिल हो जाना। (२) लकवा या गठिया से पैर का बेकाम हो जाना। टाँग लेना=(१) टाँग का पकड़ना (२) (कुत्ते आदि का) पैर पकड़कर काट खाना। (३) कुत्ते की तरह काटना। (४) पीछे पड़ जाना। सिर होना। पिड न छोड़ना। टाँग बराबर=छोटा सा। जैसे,—टाँग बराबर लड़का, ऐसी ऐसी बातें कहता है। (किसी की) टाँग से टाँग बाँधकर बैठना=किसी के पास से न हटना। सदा किसी के पास बना रहना। एक घड़ी के लिये भी न छोड़ना। टाँड से टाँग बाँधकर बैठना=अपने पास से हटने न देना। सदा अपने पास बैठाए रहना। एक घड़ी के लिये भी कहीं जाने जाने न देना।

२. कुत्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की टाँग में टाँग मारकर या भड़ाकर उसे चिल कर देते हैं।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है। जैसे,—(क) पिछली टाँग जब विपक्षी पीछे या पीठ की ओर हो तब पीछे से उसके घुटने के पास टाँग मारने को पिछली

टाँच कहते हैं। (क) बाहरी टाँग = जब दोनों पहलवान सामने सामने खड़ी से खड़ी मिलाकर मिके हों तब बिपक्षी के घुटने के पिछले भाग में जोर से टाँग मारने को बाहरी टाँग कहते हैं। (ग) बगली टाँग = बिपक्षी को बगल में पाकर बगल से उसके पैर में टाँग मारने को बगली टाँग कहते हैं। (घ) भीतरी टाँग = जब बिपक्षी पीठ पर हो, तब मोका पाकर भीतर ही से उसके पैर में पैर फँसाकर झटका देने को भीतरी टाँग कहते हैं। (च) अड़ानी टाँग = बिपक्षी को दोनों टाँगों के बीच में टाँग फँसाकर मारने अड़ानी टाँग कहते हैं।

(३) चतुर्थांश। चौथाई भाग। चहाकम। —(दनाल)।

टाँगना—संज्ञा पुं० [सं० तुरंगम या हि० टेंगना] छोटी जाति का घोड़ा। वह घोड़ा जो बहुत कम ऊँचा हो। पहाड़ी टट्टू।

विशेष—नेपाल और बरमा के टाँगन बहुत मजबूत और तेज होते हैं।

टाँगना—क्रि० सं० [हि० टेंगना] १. किसी वस्तु को किसी ऊँचे आधार से बहुत थोड़ा सा लगाकर इस प्रकार झटकाना या ठहराना कि उसका प्रायः सब भाग उस आधार से नीचे की ओर हो। २. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से इस प्रकार से बाँधना या फँसाना यथवा उसपर इस प्रकार टिकाना या ठहराना कि उसका (प्रथम वस्तु का) सब (या बहुत सा) भाग नीचे की ओर झटकता रहे। किसी वस्तु को इस प्रकार ऊँचे पर ठहराना कि उसका आश्रय ऊपर की ओर हो। झटकना। जैसे, (खूँटी पर) कपड़ा टाँगना, परदा टाँगना, झाड़ू टाँगना।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा घंश आधार के नीचे झटकता हो, तो उसे 'टाँगना' नहीं कहेंगे। 'टाँगना' और 'झटकना' में यह अंतर है कि 'टाँगना' क्रिया में वस्तु के फँसाने, टिकाने या ठहराने का भाव प्रधान है और 'झटकना' में उसके बहुत से घंश की नीचे की ओर दूर तक पहुँचाने का भाव है। जैसे,—कुएँ में रस्सी झटकना कहेंगे रस्सी टाँगना नहीं कहेंगे। पर टाँगना के अर्थ में झटकना का भी प्रयोग होता है।

संज्ञा० क्रि०—देना।

२. काँसी बढ़ाना। काँसी झटकना।

टाँगना—संज्ञा पुं० [सं० टङ्ग] बड़ी कुल्हाड़ी।

टाँगना—संज्ञा पुं० [सं० टेंगना] एक प्रकार की दो पहिए की गाड़ी जिसका डँचा इतना ढीला होता है कि वह पीछे की ओर कुछ झुका या झटका या आगे-पीछे टेंगा भी रहता है। ताँगा।

विशेष—इसमें सवारी प्रायः पीछे की ओर ही मुँह करके बैठती है और जमीन से इतने पास रहती है कि घोड़े के झड़कने आदि पर झट से जमीन पर उतर सकती है। इस गाड़ी के इधर उधर उलटने का भय भी बहुत कम रहता है। यह प्रायः पहाड़ी रास्तों के लिये बहुत उपयुक्त होती है। इसमें घोड़े या बैन दोनों जोते जाते हैं।

टाँगानोचन—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँग + नोचना] नोचसोटा। खीचा-खीपी। खीचातानी।

टाँगो—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँग] कुल्हाड़ी।

टाँगुन—संज्ञा स्त्री० [देश० या हि० ककुनी (वैसे ही जैसे किशुक से टेसू)] बाजरे या कंगनी की तरह का एक घनाज जिसकी फसल सावन भादों में पककर तैयार हो जाती है।

विशेष—इसके दाने महीन और पीले रंग के होते हैं। गरीब लोग इसका भात खाते हैं।

टाँचना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टाँगन'।

टाँच^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँची] ऐसा वचन जिससे किसी का चित्त फिर जाय और वह जो कुछ दूसरे का कार्य करनेवाला हो, उसे न करे। दूसरे का काम बिगाड़नेवाली बात या वचन। भाँजी। उ०—मेरे व्यवहारों में टाँच मारी है, मेरे मित्रों को ठंडा और मेरे शत्रुओं को गर्म किया है।—भारतेंदु० प्र०, भाग० १, पृ० ५६६।

क्रि० प्र०—मारना।

टाँच^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँचा] १. टाँका। सिलाई। डोम। २. टँकी हुई चकती। घिगली। त०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचा।—तुलसी (शब्द०)। ३. छेद। सूराल।

टाँच^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] हाथ पैर का सुझ पड़ जाना या सो जाना। टाँस।

क्रि० प्र०—धरना।—पकड़ना।—होना।

टाँचना^१—क्रि० सं० [हि० टाँच] १. टाँकना। डोम लगाना। सीना। उ०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचा।—तुलसी (शब्द०)। २. काटना। तराशना। छीलना। छोटना।

टाँचना^२—क्रि० प्र० फूला फूला फिरना। गुलछर्रे उड़ाते हुए घूमना।

टाँची^१—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क (= वपया)] वपया भरने की लम्बी पैली जिसमें रुपए भरकर कमर में बाँध लेते हैं। न्योजी। न्योली। मियानी। बसनी।

टाँची^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँची] भाँजी।

क्रि० प्र०—मारना।

टाँचा^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टाँच'।

टाँटी—संज्ञा पुं० [हि० टट्टी] खोपड़ी। कपाल।

मुहा०—टाँट के बाल उड़ना = (१) सिर के बाल उड़ना। (२) सर्वस्व निकल जाना। पास में कुछ न रह जाना। (३) खूब मार पड़ना। भुरकुस निकलना। टाँट के बाल उड़ना = सिर पर खूब झूठे लगाना। भारते भारते सिर पर बाल न रहने देना। टाँट खुजाना = मार खाने की जी चाहना। कोई ऐसा काम करना जिससे मार खाने की नीबत आवे। दंड पाने का काम करना। टाँट गंजी कर देना = (१) भारते भारते सिर गंजा करना। (२) खूब खर्च करवाना। खूब रुपए गलवाना। खर्च के मारे हिरान कर देना। पास का धन निकलवा देना। टाँट गंजी होना = (१) मार खाते खाते सिर गंजा होना। खूब मार पड़ना। (२) खर्च के मारे धुरें निकलना। खर्च करते करते पास में धन न रह जाना।

टॉटर—संज्ञा पुं० [हि० टट्टर] खोपड़ी । कपाल ।

टॉठ—वि० [अनु० ठन ठन या सं० स्थाणु] १. जो सुलकर कड़ा हो गया हो । करारा । कड़ा । कठोर । उ०—राम लों साम किए नित है हित कोमल काज न कीजिए टांठे ।—तुलसी (शब्द०) ।

२. दृढ़ । बखी । तगड़ा । मुस्टंडा ।

टॉठा—वि० [हि० टांठ] [वि० बी० टांठी] १. करारा । कड़ा कठोर । २. दृढ़ । दृष्ट पुष्ट । तगड़ा ।

टॉङ्ग^१—संज्ञा बी० [सं० स्थाणु] १. लकड़ी के खंभों पर या दो दीवारों के बीच लकड़ी की पटरियाँ या बाँस के लट्टे ठहरा कर बनाई हुई पाटन जिसपर चीज असबाब रखते हैं । परछत्ती । २. मचान जिसपर बैठकर खेत की रखवाली करते हैं । ३. गुल्ली डंडे के खेल में गुल्ली पर डंडे का आघात । टोला ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

टॉङ्ग^२—संज्ञा पुं० [दे० ताङ्ग] बाहु पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना । टेंडिया ।

टॉङ्ग^३—संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल, हि० अटाला, टाल] १. ढेर । अटाला । टाल । राशि । २. समूह । पंक्ति । ३. घरों की पंक्ति । ४. दे० 'टाङ्ग' ।

टॉङ्ग^४—संज्ञा बी० [देश०] कंकड़ मिली मिट्टी । कंकरीली मिट्टी ।

टॉङ्ग^५—संज्ञा पुं० [हि० टाङ्ग (= समूह)] १. अन्न आदि व्यापारी वस्तुओं से लदे हुए बैलों या पशुओं का झुंड जिसे व्यापारी लेकर चलते हैं । बरदी । बनजारों के बैलों आदि का झुंड । बनजारों के बैल उ्यों टाँड़ो उत्तरघी आय ।—कबीर (शब्द०) । २. व्यापारियों के माल की चलान । बिक्री के माल का खेप । व्यापारी का माल जो लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाय । उ०—प्रति खीन मुनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पव दं आवनो है । सुई बेह लो बेह सकी न तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनों है ।—बोधा (शब्द०) ।

मुहा०—टाँड़ा लदना = (१) बिक्री का माल लदना । (२) कुच की तैयारी होना । (३) मरने की तैयारी होना ।

३. व्यापारियों का चलता समूह । बनजारों का झुंड जो एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता हो । ४. नाव पर चढ़कर इस पार से उस पार जानेवाले पथिकों और व्यापारियों का समूह । उ०—लौबी बेगि निबेरि सुर प्रभु यह पतितन को टाँड़ो ।—सूर (शब्द०) । ५. कुटुंब । परिवार ।

टॉङ्ग^६—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड, हि० टूँड] एक प्रकार का हरा कीड़ा जो गन्ने आदि की जड़ों में लगकर फसल को हानि पहुँचाता है ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

टॉङ्गी—संज्ञा बी० [देश०] टिट्टी । उ०—उमड़ि रारि तुरकन ल्यों मीठी । छुटे तीर उड़ति ज्यों टाँड़ी ।—बाब (शब्द०) ।

टाँण^७—संज्ञा पुं० [सं० ताङ्ग] दे० 'टाङ्ग' । उ०—बारी टाँण सलोनी दूटी ।—जायसी ग्रं०, पृ० १४१ ।

टाँयटाँय—संज्ञा बी० [अनु०] १. कर्कश शब्द । अप्रिय शब्द । कड़ुई बोली । टें टें । २. बक बक । बकवाद । प्रलाप ।

मुहा०—टाँय टाँय करना = बकवाद करना । निरर्थक बोलना । निना समझे बूझे बोलना । उ०—तुम कुछ समझते तो हो नहीं बेकार टाँय टाँय करते हो ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ११५ । टाँय टाँय फिस = (१) बकवाद, पर फज कुछ नहीं । किसी कार्य के संबंध में बातचीत तो बहुत बढ़कर पर परिणाम कुछ नहीं । (२) किसी कार्य के आरंभ में तो बड़ी भारी तत्परता पर अंत में सिद्धि कुछ भी नहीं । कार्य का आरंभ तो बड़ी धूमधाम के साथ, पर अंत को होना जाना कुछ नहीं ।

टाँस—संज्ञा बी० [हि० टानना (= बीचना)] हाथ या पैर के बहुत देर तक मुड़े रहने के कारण नसों की सिकुड़न या तनाव जिससे फँसने की सी असह्य पीड़ा होने लगती है । यह पीड़ा प्रायः क्षणिक होती है ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।

टाँसना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टाँचना', 'टाँकना' ।

टा—संज्ञा बी० [सं०] १. पृथ्वी । २. अपथ । कसम (की०) ।

टाइटिल पेज—संज्ञा पुं० [ग्रं०] किसी पुस्तक के सबसे ऊपर का पृष्ठ जिसपर पुस्तक और ग्रंथकार का नाम आदि कुछ बड़े अक्षरों में रहता है । आवरण पृष्ठ ।

टाइप—संज्ञा पुं० [ग्रं०] सीसे मयवा सीसे और तंबे के मिश्रण से ढले हुए अक्षर जिनको मिलाकर पुस्तकों छापी जाती है । कांटे का अक्षर ।

टाइपकास्टिंग मशीन—संज्ञा बी० [ग्रं०] कांटे का अक्षर ढालने का कल ।

टाइपमोल्ड—संज्ञा पुं० [ग्रं०] कांटे के अक्षर ढालने का साँवा ।

टाइपराइटर—संज्ञा पुं० [ग्रं०] एक कल या यंत्र जिसमें कागज रखकर टाइप के से अक्षर छापे जाते हैं । यह दफ्तरों और कार्यालयों में चिट्ठी पत्री आदि छापने के काम में आता है । टकण यंत्र ।

टाइफायड—संज्ञा पुं० [ग्रं० टाइफायड] एक प्रकार का विषेला ज्वर जिसमें सबेरे ताप घट जाता है और संध्या को बढ़ जाता है । मोतीभरा ।

टाइफोन—संज्ञा पुं० [ग्रं० टाइफून, तुलनीय तूफान] एक प्रकार का तूफान जो खीन के समुद्र में और उसके आसपास बरसात के चार महीनों में आया करता है ।

टाइम—संज्ञा पुं० [ग्रं०] समय । वक्त ।

यौ०—टाइमटेबुल । टाइमपीस ।

टाइमटेबुल—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह विवरणपत्र या सारणी जिसमें भिन्न भिन्न कार्यों के लिये निश्चित समय लिखा रहता है । जैसे, स्कूल का टाइमटेबुल, दफ्तर का टाइमटेबुल, रेलवे का टाइमटेबुल ।

टाइमपीस—संज्ञा स्त्री० [घं०] कमरे में मेज, झालमारी आदिवा बेंच पर रहनेवाली बहुत छोटी घड़ी जो केवल समय बताती है, बजती नहीं। किसी किसी में जमाने की घड़ी समय निर्धारित करने पर बजती है।

टाई—संज्ञा स्त्री० [घं०] १. कपड़े की एक पट्टी जो. घंघेरो पहनावे में कालर के अंदर गाँठ लेकर बाँधी जाती है। नेकटाई। २. जहाज के ऊपर के पाल की वह रस्सी जिसकी मुट्ठी मस्तूल के खेदों में लगाई जाती है।

टाउन—संज्ञा पुं० [घं०] शहर। कसबा।

टाउन ह्यूटो—संज्ञा स्त्री० [घं०] कुंगी। थौट्टी।

टाउनहाल—संज्ञा पुं० [घं०] किसी नगर में वह सार्वजनिक भवन जिसमें नगर की सफाई, रोशनी आदि के प्रबंधकर्ताओं की तथा दूसरी सर्वसाधारण संबंधी सभाएँ होती हैं।

टाकरी लिपि—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुरी, ठाकुरी ?] एक प्रकार की लिपि जो भारवा लिपि का घसीटा रूप है।

विशेष—इस लिपि में ह, ई, उ, ए, ग, घ, ञ, ङ, ढ, त, थ, द, ध, प, भ, म, य, र, ल, शोर ह वरुं वर्तमान भारवा लिपि से मिलते जुलते हैं। शेष वरुं भिन्न हैं, जिसका कारण संभवतः शीघ्रता से लिखना शोर जलन कलम है। इसमें 'ख' के स्थान पर 'ष' लिखा जाता है।

टाका—संज्ञा पुं० [हि०] कंडाल। दे० 'टाँका'। उ०—घागे सगुन सगुनिघा ताका। बहिर मच्छ रूपे कर टाका।—जायसी घं० (गुप्त), पु० २११।

टाकू—संज्ञा पुं० [सं० तकुं] टकुप्पा। तकला। टेकुरी।

टाकोली—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेंट। नजराना। उ०—उन्होंने उड़ीसा के समस्त जमींदारों से टाकोली या पेशकश वसूल किया।—शुक्ल अभि० घं०, पु० ११।

टाट—संज्ञा पुं० [सं० तन्तु] १. सन या पटुए की रस्सियों का बना हुआ मोटा खुरदुरा कपड़ा जो बिछाने, परदा डालने आदि के काम में आता है।

मुहा०—टाट में भूँज का बखिया = जैसी भद्दा बीज, वैसी ही उसमें लगी हुई सामग्री या साज। टाट में पाट का बालिया = बीज तो भद्दी और सस्ती, पर उसमें लगी हुई सामग्री बढ़िया और बहुमूल्य। बेमेल का साज।

२. बिरादरी। कुल। जैसे,—वे दूसरे टाट के हैं।

मुहा०—एक ही टाट के = (१) एक ही बिरादरी के। (२) एक साज उठने बैठनेवाले। एक ही मंडली के। एक ही दल के। एक ही बिचार के। टाट बाहर होना = बहिष्कृत होना। जाति पंक्ति से अलग होना।

३. साहूकार के बैठने का बिछावन। महाजन की गद्दी।

मुहा०—टाट उलटना = दिवाला निकालना। दिवालिया होने की सूचना देना।

विशेष—पहले यह रीति थी कि जब कोई महाजन दिवाला बोलता था, तब वह अपनी कोठी या दुकान पर का टाट और

गद्दी उलटकर रख देता था जिससे व्यवहार करनेवाले लौट जाते थे।

टाट—वि० [घं० टाइट] कसा हुआ।—(लं०)।

मुहा०—टाट करना = मस्तूल खड़ा करना।

टाटकी—वि० [हि०] दे० 'टटका'। उ०—(क) घिउ टाटक महें सोधि सेरावा।—पदमावत, पु० ५८६। (ख) भीखा पावत मगन रेन दिन टाटक होत न बासी।—भीखा शं०, पु० १२।

टाटक—संज्ञा पुं० [सं० त्राटक] दे० 'त्राटक'। उ०—टाटक ध्यान जपे नौकारा। जब या जीव को होइ उबारा।—घट०, पु० ८५।

यो—टाटक टोटक।

टाटबाफ—संज्ञा पुं० [हि० टाट + फा० बाफ] १. टाट बुननेवाला। २. कपड़े पर कलाबत्त का काम करनेवाला।

टाटबाफी—संज्ञा स्त्री० [हि० टाट + फा० बाफी] १. कलाबत्त का काम। २. टाट बुनने का काम।

टाटबाफीजूता—संज्ञा पुं० [फा० तारबाफी] वह छूता जिसपर कलाबत्त का काम हो। कामदार छूता।

टाटर—संज्ञा पुं० [सं० स्थातृ (= जा खड़ा हो)] १. टटूर। टट्टी। २. सिर की हड्डी या परदा। खोपड़ी। कपाल। उ०—टाटर दूट, दूट सिर तासु।—जायसी (शब्द०)।

टाटर—संज्ञा पुं० [?] घोड़ों को सजाने की सामग्री। उ०—टाटर पाषर सज्जित कियो राव।—बी० रासो०, पु० ११।

टाटरकएसिड—संज्ञा पुं० [घं०] इमली का सत। इमली का चुक।

टाटिका—संज्ञा स्त्री० [हि० टाटी] टट्टी। उ०—विरचि हरि भक्त को बेप वर टाटिका, कपट दल हारित पल्लवनि छाबी। तुलसी (शब्द०)।

टाटी—संज्ञा स्त्री० [हि० स्थात्री ता तटी] छोटा टटूर। टट्टी। उ०—(क) आंधा आई ज्ञान की दह्रां भरम की भीति। माया टाटी उड़ि गई भई नाम सो प्रांति।—कबीर (शब्द०)। (ख) सूरदास प्रभु कहा निहारो मानत रक त्रास टाटी को।—सूर (शब्द०)।

टाठी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थात्री (= बटखोई), प्रा० ठाठी, ठाठी] थाली।

टाड़—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड] भुजा पर पहनने का एक गहना। टाड़। टाँड्या। बहुटा। उ०—बाहु टाड़ कर ककव बाजुबज एते पर हो लोको।—सूर (शब्द०)।

टाडर—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

टाण्डा—संज्ञा पुं० [?] (विवाहादि) उत्सव। उ०—मदता टाण्डा ऊपर, वाण्डा खरचे नाहि।—बाँकी० घं० भा० ३, पु० ८२।

टाने—संज्ञा स्त्री० [सं० तान (= फैलाव, खिंचाव)] १. तनाव। खिंचाव। फैलाव। २. खींचने की क्रिया। खींच। ३. सितार के परदे पर ऊँचली रखकर इस प्रकार खींचने की क्रिया जिससे बीज के सब स्वर निकल आँवें। ४. साँप के दाँत

लपने का एक प्रकार जिसमें दाँत घँसता नहीं केवल छीलता या खरोंच डालता हुआ निकल जाता है।

टान^२—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु (= धून या लकड़ी का खंभा)] टाँड़। मचान।

टान^३—संज्ञा स्त्री० [सं० टन] प्रेस में किसी कागज को एकाधिक बार छापने का भाव। एक टान प्रायः एक हजार प्रतियों का होता है।

टानना—क्रि० सं० [हि० टान + ना (प्रत्य०)] तानना। खींचना।

टानिक—संज्ञा पुं० [सं० टॉनिक] वह औषध जो शरीर का बल बढ़ाती हो। इलवीयंवधक औषध। पुष्टिकारक औषध। ताकत की दवा। पुष्टि। जैसे,—डाक्टर ने उन्हें कोई टानिक दिया है।

टाप—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, थाप] १. छोड़े के पैर का वह सबसे निचला भाग जो जमीन पर पड़ता है और जिसमें नालून लगा रहता है। घोड़ों का अर्धचंद्राकार पादतल। सुम। उ०—जे जल चलहि थलहि की नाई। टाप न बूझ वेग आधिकारी। तुलसी (शब्द०)। २. छोड़े के पैरों के जमीन पर पड़ने का शब्द। जैसे,—दूर पर घोड़ों की टाप सुनाई पड़ी। ३. पलंग के पास का तल भाग जो पृथ्वी से लगा रहता है और जिसका घेरा उभरा रहता है। ४. बेंत या और किसी पेड़ की लचीली टहनियों का बना हुआ मछली पकड़ने का आबा जिसकी पेदी में एक छेद होता है। मछली पकड़ने का ढाँचा। ५. मुरगियों के बंद करने का आबा।

टापड़—संज्ञा पुं० [हि० टप्पा] ऊसर मैदान।

टापदार—वि० [हि० टाप + दा० दार (प्रत्य०)] जिसके सिरे या छोर पर के कुछ भाग का घेरा उभरा हुआ हो। जिसके ऊपर या नीचे का छोर कुछ फैला हुआ हो। जैसे, टापदार पाया।

टापना^१—क्रि० प्र० [हि० टाप + ना (प्रत्य०)] १. घोड़ों का पैर पटकना।

विशेष—प्रायः जब खाना पाने का समय होता है, तब घोड़े टाप पटककर अपनी भूख की सूचना देते हैं। इससे 'टापने' का अर्थ कभी कभी 'खाना माँगना' भी लेते हैं।

२. टक्कर मारना। किसी वस्तु के लिये इधर उधर हैरान फिरना।

३. व्यर्थ इधर उधर फिरना। ४. उछलना। कूदना।

टापना^२—क्रि० सं० कूदना। फाँटना। उछलकर लौटना। जैसे, दीवार टापना।

टापना^३—क्रि० म० [सं० तप] १. बिना कुछ खाए पिए पड़ा रहना। बिना दाना पानी के समय बिताना। जैसे,—सबरे से बैठे टाप रहे हैं, कोई पानी पीने को भी नहीं पूछता। २. ऐसी बात के आसरे में रहना जो होती हुई न दिखाई दे। व्यर्थ प्रतीक्षा करना। आशा में पड़े पड़े उद्विग्न और व्यग्र होना। जैसे,—घंटों से बैठे टाप रहे हैं कोई आता जाता नहीं दिखाई देता। ३. किसी बात से निराश और दुखी होना। हाथ मलना। पछताना। जैसे,—बहु खया गया, मैं टापता रह गया।

टापर^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. छोड़ने का मोटा कपड़ा। चदर। २. घोड़ों को शीत से बचाने के लिये छोड़ने का मोटा वस्त्र। तप्पड़। जीन के नीचे का मोटा कपड़ा। उ०—(क) जिखि दीहे पालउ पड़इ, टापर तुरी सहाइ।—ढोला०, पृ० २७६। (ख) घाली टापर बाग मुखि, भैरव राजकुमारि। करहुइ किया टहकड़ा निद्रा जागी नारि।—ढोला०, पृ० ३४५। ३. तिरपाल। ४. ओपड़ा।

टापर^२—संज्ञा पुं० [हि० टाप] छोटी मोटी सवारी। टट्टू भादि की सवारी।

टापा—संज्ञा सं० [सं० स्थापन, हि० थाप] १. टप्पा। मैदान। २. उजाड़ मैदान। ऊसर मैदान। ३. उछाल। कूद। छलांग। फाँद।

मुहा०—टापा देना = लंबे दग भरना। उ०—कबिरा यह संसार मे घने मनुष मतिहिन। राम नाम जाना नही आए टापा दीन।—कबीर (शब्द०)।

४. किसी वस्तु को ढकने या बंद करने का टोकरा। आबा।

टापू—संज्ञा पुं० [हि० टापा या टप्पा] १. स्थल का वह भाग जिसके चारो ओर जल हो। वह भूखंड जो चारो ओर जल से घिरा हो। द्वीप। २. टप्पा। टापा।

टाबर^१—संज्ञा पुं० [प० टंबर] १. बालक। लड़का। उ०—घर को सब टाबर मुवो सुंदर कही न जाइ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ७५२। २. परिवार।

टाबू—संज्ञा पुं० [देश०] रस्सी की बुनी हुई कटोरे के आकार की जाली जिसे बैलों के मुँह पर इसलिये चढ़ा देते हैं जिसमें वे काम करते समय इधर उधर चर न सकें। जाबा।

टामकी—संज्ञा पुं० [अनु०] टिमटिमी। झिमझिमी। उ०—दुहुनि पटह मृदंग ढोलकी डफला टामक। मदरा तबला सुमक खंजरी तबला धामक।—सूदन (शब्द०)।

टामकटोया^१—संज्ञा पुं० [हि०] टकटोहना। टटोलना।

क्रि० प्र०—मारना = अंधेरे में टटोलना या अटकना।

टामन—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] तन्त्रविधि। टोटका। उ०—जावत हौं जु दई मुँदरो पढ़ि राम कछु अनु टामन कीन्हो।—हनुमान (शब्द०)।

यौ०—टामन दूमन = सर्वस्व। उ०—इतना कहत हाथ तब जोरे।

टामन दूमन सब ही तोरे।—राम० धर्म०, पृ० ३४६।

टार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ा। २. गाँहू। खोँडा। लंग। ३. स्त्री पुरुष का संयोग करानेवाला व्यक्ति। कुटना। दलाल। भेंडूषा।

टार^२—संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल, हि० टाल] ढेर। राशि। टाल।

टार^३—संज्ञा स्त्री० [हि० टारना] टालतूल। वि० ३० 'टाल'।

टार^४—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार हल जिसमें खगी हुई खोंगी से बीज गिरता रहता है।

टारन—संज्ञा पुं० [हि० टारना] १. टाँखने या सरकावे की वस्तु।

२. कोलू में पड़ा हुआ वह लकड़ी का डंडा जिससे बँडेरियाँ बलाई या हिलाई जाती हैं ।

टारना—कि० सं० [हि०] दे० 'टाखना' । उ०—(क) भूप सहस्र वस एकहि मारा । लगे उठावन टरै न टारा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जियन मूरि जिमि जोगवत रहेऊँ । दीप बाति नहि टारन कहेऊँ ।—तुलसी (शब्द०) ।

टारपीडो—संज्ञा पुं० [फ्रं०] एक विस्फोटकारी यंत्र जिसमें भीषण बिस्फोटक पदार्थ भरा रहता है और जो बड़े समुद्री मत्स्य के आकार का होता है । बिस्फोटक बख ।

विशेष—यह जल के अंदर छिपाया रहता है । युद्ध के समय जनु के जहाज पर इसे चलाते हैं । इसके लगने से जहाज में बड़ा सा छेद हो जाता है और वह वहीं डूब जाता है ।

टारपीडो कैचर—संज्ञा पुं० [फ्रं०] तेज चलनेवाला एक शक्तिशाली रणपोत या जमी जहाज जो टारपीडो बोट के प्रयत्न को विफल करने और उसे नष्ट करने के काम में लाया जाता है ।

टारपीडो बोट—संज्ञा पुं० [फ्रं०] तेज चलनेवाली एक छोटी स्टीम बोट जो युद्ध के समय जनु के जहाज को नष्ट करने के लिये उसपर टारपीडो या बिस्फोटक बख चलाती है । नाविक जहाज ।

टाख—संज्ञा स्त्री० [सं० घटाल, हि० घटाला] १. नीचे ऊपर रखी हुई वस्तुओं का ढेर जो दूर तक ऊँचा उठा हो । ऊँचा ढेर । भारी राशि । घटाला । गंज । जैसे, लकड़ी की टाल, भुस की टाल, पयाल की टाल, चास की टाल । २. लकड़ी, भुस, पयाल आदि की बड़ी दुकान । ३. बैलगाड़ी के पहिए का किनारा ।

मुहा०—टाल मारना = पहिए के किनारों का खोलना ।

टाख^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का घंटा जो माय, बैल, हाथी आदि के गले में बाँधा जाता है ।

टाख^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टालना] १. टालने का भाव । २. किसी बात के लिये आजकल का झूठा वादा । ऐसा बहाना जिससे किसी समय किसी काम को करने से कोई बच जाय ।

यो०—टाखटूख । टाखबटाल । टाखमटाल । टालमटूख । टालमटोल ।

टाख^३—संज्ञा पुं० [सं० टार] अभिचार के लिये स्त्री पुरुष का समागम करानेवाला । कुटना । भँडूआ ।

टालटूल—संज्ञा स्त्री० [हि० टाख + टूल] दे० 'टालमटूल' ।

टालना—कि० सं० [हि० टालना] १. अपने स्थान से अलग करना । हटाना । खिसकाना । सरकाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. दूसरे स्थान पर भेज देना । अनुपस्थित कर देना । दूर करना । भगा देना । जैसे,—जब काम का समय होता है तब तुम उसे कहीं टाल देते हो ।

संयो० क्रि०—देना ।

३. दूर करना । भिदना । न रहने देना । निवारण करना ।

जैसे, आपत्ति टालना, संकट टालना, बला टालना । उ०—मुनि प्रसाद बल तात तुम्हारी । ईस अनेक करबईं टारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—देना ।

४. किसी कार्य का निश्चित समय पर न करके उसके लिये दूसरा समय स्थिर करना । नियत समय से और आगे का समय ठहराना । मुलतबी करना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य दोनों के लिये होता है । जैसे, तिथि टालना, विवाह की सायत या लगन टालना, विवाह टालना, इम्तहान टालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

५. समय व्यतीत करना । समय बिताना । ६. किसी (आवेग या अनुरोध) को न मानना । न पालन करना । उल्लंघन करना । जैसे,—(क) हमारी बात वे कभी न टालेंगे । (ख) राजा की आज्ञा को कौन टाल सकता है ? ७. किसी काम को तत्काल न करके दूसरे समय पर छोड़ना । मुलतबी करना । जैसे,—जो काम आये, उसे तुरत कर डालो, कल पर मत टालो । ८. बहाना करके किसी काम से बचना । किसी कार्य के संबंध में इस प्रकार की बात कहना जिससे वह बचना पड़े ।

संयो० क्रि०—देना ।

मुहा०—किसी पर टालना = स्वयं न करके किसी के करने के लिये छोड़ देना । किसी के धिर मड़ना । जैसे,—जो काम उसके पास जाता है, वह दूसरे पर टाल देता है ।

९. किसी बात के लिये आजकल का झूठा वादा करना । किसी काम को और आगे चलकर पूरा करने की मिथ्या आशा देना या प्रतिज्ञा करना । जैसे,—तुम इसी तरह महीने से टालते आए हो, आब हम रुपया जरूर लेंगे । १०. किसी प्रयोजन से माए हुए मनुष्य को निष्फल लौटाना । किसी मनुष्य का कोई काम पूरा न करके उसे इधर उधर की बातें कहकर फेर देना । धता बताना । टरकाना । जैसे,—इस समय इसे कुछ कह सुनकर टाल दो, फिर माँगने आवेगा तब देखा जायगा । ११. पलटना । फेरना । और का और करना । १२. कोई अनुचित या अपने विरुद्ध बात देख सुनकर न बोलना । बचा जाना । तरह दे जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

टालबटाल—संज्ञा स्त्री० [हि० टाल + बटान] दे० 'टालमटाल' ।

टालमटाल^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टाल + म (प्रत्य०) + टाल] दे० 'टालमटूल' ।

टालमटाल^२—कि० वि० [(दलाली) टाली (= घठन्नी)] आधे आध । निस्का निस्का ।

टालमटूल—संज्ञा पुं० [हि० टालना] बहाना ।

टाखा—वि० [(दलाली) टाली (= घठन्नी)] [स्त्री० टाली] आधा । अर्ध (दशांश) ।

टाखादली—संज्ञा स्त्री० [हि० टाखना] टाखल । उ०—टाखा-
दली दिन गया, ग्याज बढता जाय ।—कबीर सा०, पृ० ७५ ।

टालिमा—वि० [हि० टालना ?] चुने हुए । चुनिवा । उ०—तिथि
मई लेस्यां टालिमा, बाँकड़ मुहाँ विडंग ।—ढोला०, दू० २२७ ।

टाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. गाय बैल आदि के गले में बाँधने
की घंटी । २. जवान गाय या बछिया जो तीन वर्ष से कम
की हो और बहुत चंचल हो । उ०—पाई पाई है भैया
कुंभ वृंभ में टाली । अब के अपनी घट ही चरावह जैहें
हटकी घाली ।—सूर (शब्द०) । ३. एक प्रकार का बाजा ।
४. घठनी । आधा रुपया । धेनी ।—(दलाल) ।

टालही—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का शीशम जिसके पेड़ पंजाब
में बहुत होते हैं ।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी भूरी और बहुत मजबूत होती है ।
यह इमारतों में लगती है तथा गाड़ी, सेती के सामान आदि
बनाने के काम में आती है ।

टावर—संज्ञा पुं० [अंग०] १. लाट । मीनार । बुर्ज । २.
किला । कोट ।

टाहली—संज्ञा पुं० [हि० टहल] टहल करनेवाला । टहलुषा ।
दास । सेवक । लिदमतगार । उ०—कादर को आदर काहू के
नाहि देखियत सबनि सोहात है सेवा सुजान टाहली ।—
तुलसी (शब्द०) ।

टोहली—संज्ञा स्त्री० [हि० टाहली] टहलुई । नौकरानी । उ०—
यान समारो टाहली, चोवा चदन भंग सुहाई ।—बी० रासो,
पृ० ४६ ।

टिंगा—संज्ञा स्त्री० [देश०] स्त्री की योनि । भग ।—(प्रसिष्ट) ।

टिचर—संज्ञा पुं० [अंग० टिक्चर] किसी औषध का सार जो स्पिरिट
के योग से तरल रूप में बनाया जाता है ।

टिचर आयोडीन—संज्ञा पुं० [अंग० टिक्चर आयोडीन] सूजन आदि
पर लगाने के लिये आयोडीन और स्पिरिट आदि का घोल ।

टिचर ओपियाई—संज्ञा पुं० [अंग० टिक्चर ओपियाई] यक्रीम
और स्पिरिट आदि का घोल ।

टिचर कार्बिमम—संज्ञा पुं० [अंग० टिक्चर कार्बिमम] इलायची
का अर्क ।

टिचर स्टील—संज्ञा पुं० [अंग० टिक्चर स्टील] फोलाह आदि का
स्पिरिट में बनाया हुआ घोल ।

टिटिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० टिटिनिका] १. जल सिरिस का पेड़ ।
अंबु शिरीषिका । दाढ़ीन । २. जोंक ।

टिड—संज्ञा पुं० [सं० टिटिड] १. ककड़ी की जाति की एक बेल
जिसमें गोल गोल फल लगते हैं । इन फलों की तरकारी
बनती है । डेंडसी । डेंडसी । २. रहट में लगा हुआ बरतन
जिसमें पानी भरकर आता है । डब्बू ।

टिडर—संज्ञा पुं० [सं० टिटिड (= डेंडसी)] रहट में लगी हुई डेंडिया ।

टिडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिटिड] टिड नाम की तरकारी । डेंडसी ।

टिड्या—संज्ञा पुं० [सं० टिटिड] ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें

छोटे लारबूजे के बराबर गोल फल लगते हैं । इन फलों की
तरकारी बनती है । डेंडसी । डेंडसी ।

टिडिरा—संज्ञा पुं० [सं० टिटिड] टिडा । डेंडसी । डेंडसी ।

टिडो—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. हल को पकड़कर दबानेवाली मुठिया ।
२. जाँता घुमाने का खूँटा ।

टिक—संज्ञा पुं० [?] टिककर । लिट । ठोकवा । पूषा ।

टिकई—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. टीकेवाली गाय । वह गाय जिसके
माथे पर सफेद टीका हो । २. एक छोटी चिड़िया जो तालों
में उतरती है और जाड़ा बीतने पर बाहर चली जाती है ।

टिकट—संज्ञा पुं० [अंग० टिकेट] १. वह कागज का टुकड़ा जो किसी
प्रकार का महसूल, भाड़ा, कर या फीस चुकानेवाले को दिया
जाय और जिसके द्वारा वह कहीं या जा सके या कोई काम
कर सके । जैसे, रेल का टिकट, डाक का टिकट, थिएटर
का टिकट । २. कहीं जाने जाने या कोई काम करने के लिये
अधिकारपत्र । ३. संसद् या विधानसभा या नगरपालिका
के चुनाव के लिये किसी प्रत्याशी को दलविशेष के प्रतिनिधि
के रूप में चुनाव लड़ने के लिये दिया जानेवाला अधिकार या
स्वीकृति । ४. वह कर, फीस या महसूल जो किसी काम
के करनेवालों पर लगाया जाय । जैसे, स्नान का टिकट, मेले
का टिकट ।

मुहा०—टिकट लगाना = महसूल लगाना । कर नियत करना ।

टिकटघर—संज्ञा पुं० [अंग० टिकट + हि० घर] वह स्थान या कमरा
जहाँ टिकट बिकता है ।

टिकटिक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. घोड़ों को हाँकने के लिये मुँह से
किया हुआ शब्द । २. घड़ी के बोलने का शब्द ।

टिकटिकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकठी] १. तीन तिरछी खड़ी की
हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे अपराधियों के हाथ पैर
बाँधकर उनके शरीर पर बेल या कोड़े लगाए जाते हैं । जैची
तिपाई जिसपर अपराधियों को खड़ा करके उनके गले में
फाँसी लगाते हैं । टिकठी । २. जैची तिपाई । टिकठी ।

मुहा०—टिकटिकी पर खड़ा करना = लडई में न हटनेवाले चोट
लाकर मरे हुए मुरगे को तीन लकड़ियों पर खड़ा करना ।

विशेष—मुरगों की लड़ाई में जब कोई बहादुर मुरगा लड़ते ही
लड़ते चोट खाकर मर जाता है और मरते दम तक नहीं
हटता है, तब उसके शरीर को तीन लकड़ियों पर खड़ा कर
देते हैं । यदि दूसरा मुरगा लात मारकर उसे लकड़ी के नीचे
गिरा देता है तो उसकी जीत समझी जाती है और यदि वह
किसी और तरफ चला जाता है तो मरे हुए मुरगे की जीत
समझी जाती है ।

टिकटिकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] घाठ नी ग्रंथल खंबी एक चिड़िया
जिसका रंग भूरा और पैर कुछ लाली लिए होते हैं ।

विशेष—जाड़े में यह सारे भारतवर्ष में देखी जाती है और प्रायः
जलाशयों के किनारे झाड़ियों में घोंसला बनाती है । यह एक
बार में बार भंडे देती है ।

टिकटिकी^१—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'टिकटकी' ।

टिकटो—संज्ञा स्त्री [सं० त्रिकाष्ठ या हि० तीन काठ] १. तीन तिरछी लकड़ी की हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे अपराधियों के हाथ पैर बाँधकर उनके शरीर पर बैठ या कोड़े लगाए जाते हैं । टिकटिकी । २. ऊँची तिपाई जिसपर अपराधियों को खड़ा करके उनके गले में फाँसी का फंदा लगाया जाता है । ३. काठ का भाग जिसमें तीन ऊँचे पाए लगे हों । तिपाई । ४. बुना हुआ कपड़ा फैलाने के लिये दो लकड़ियों का बना हुआ एक ढाँचा । यह कपड़े को चौड़ाई के बराबर फैल सकता है ।—(जुनाहे) । ५. अरबी जिसपर शव को संश्लेषित किया के लिए ले जाते हैं ।

टिकड़ा—संज्ञा पुं० [हि० टिकिया] [स्त्री० टिकड़ी] १. चिपटा गोल टुकड़ा । घातु, पत्थर, लपड़े या घोर किसी कड़ी वस्तु का चक्राकार खंड । २. आँख पर सँकी हुई छोटी मोटी रोटी । बाटी । चंगाकड़ी ।

मुहा०—टिकड़ा लगाना = घाग पर बाटी सँकना या पकाना ।

३. जड़क या ठप्पे के गहनों में कई नगों को जड़कर बनाया हुआ एक एक विभाग या प्रंश ।

टिकड़ी—संज्ञा स्त्री [हि० टिकड़ा] छोटा टिकड़ा ।

टिकना—क्रि० प्र० [सं० स्थित + √क या प्र (= नहीं) + टिक (= चलना)] १. कुछ काल तक के लिये रहना । ठहरना । बंरा करना । मुकाम करना । उ०—टिकि लीजियो राठ में काहू घटा जहाँ सोवत होंय परेषा परे ।—लक्ष्मण (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।—रहना ।—लेना ।

२. किसी घुनी हुई वस्तु का नीचे बैठना । तल में जमना । तलछट के रूप में नीचे पड़े में इकट्ठा होना । ३. स्थायी रहना । कुछ दिनों तक चलना या बंरा रहना । कुछ दिनों तक काम देना । जैसे,—यह जूता तुम्हारे पैर में कितने दिन टिकेगा !

४. स्थित रहना । झड़ा रहना । इधर उधर न गिरना । ठहरना । सहारे पर रहना । जमना या बैठना । जैसे,—(क) यह गोला खंडे की लोक पर टिका हुआ है । (ख) इसपर तो पैर ही नहीं टिकता, कैसे खड़े हों । ५. युद्ध या लड़ाई में सामना करते हुए जमे रहना । ६. विश्राम के उद्देश्य से थोड़ी देर के लिये कहीं रुकना । ७. प्रतिकूल समय या मौसम में किसी पदार्थ का विकृत न होना । ८. ध्यान या निगाह का स्थिर होना ।

टिकरी^१—संज्ञा स्त्री [हि० टिकिया] १. नमकीन पकवान जो बेसन घोर मैदे की दो मोयनदार कोइयों को एक में बेलकर घोर घी में तलकर बनाया जाता है । २. टिकिया । ३. लिट्टी ।

टिकरी^२—संज्ञा स्त्री [हि० टीका] सिर पर पहनने का एक गहना ।

टिकली^१—संज्ञा स्त्री [हि० टिकिया या टीका] १. छोटी टिकिया । २. पत्नी या कवि की बहुत छोटी बिंदी के आकार की टिकिया जिसे स्त्रियाँ शृंगार के लिये अपने माँचे पर चिपकाती हैं । सितारा । चमकी । ३. छोटा टीका । माँचे पर पहनने की छोटी बिंदी ।

टिकली^२—संज्ञा स्त्री [सं० तर्क, हि० तकला] सूत बटने की फिरकी । सूत कातने का एक योजार ।

विशेष—यह बाँस या लोहे की सलाई पर लगी हुई काठ की मोल टिकिया होती है जिसे नचाने या फिराने से उसमें खपेटा हुआ सूत ऐंठकर कड़ा होता जाता है ।

टिकस—संज्ञा पुं० [प्र० टैक्स] महसूल । कर । जैसे, पानी का टिकस, इनकम टिकस । उ०—सबसे ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुझको बल ।—मार्तेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४७३ ।

मुहा०—टिकस लगना = महसूल या कर नियत होना ।

टिकसारा^१—वि० [हि० टिकना + सार (प्रत्य०)] टिकाऊ । टिकने-वाला ।

टिकड़ी^२—संज्ञा पुं० [हि० टीका] राजा का वह पुत्र जो राजा के पीछे राजतिलक का अधिकारी हो । युवराज । उत्तराधिकारी राजकुमार ।

टिकाऊ—वि० [हि० टिक + प्राऊ (प्रत्य०)] टिकनेवाला । कुछ दिनों तक काम देनेवाला । चलनेवाला । पायदार ।

टिकान—संज्ञा स्त्री [हि० टिकना] १. टिकने या ठहरने का भाव । २. टिकने या ठहरने का स्थान । पड़ाव । चट्टी ।

टिकाना—क्रि० सं० [हि० टिकन] १. रहने के लिये जगह देना । निवासस्थान देना । कुछ काल तक किसी के रहने के लिये स्थान ठीक करना । ठहराना । जैसे,—इन्हें तुम अपने यहाँ टिका लो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. सहारे पर खड़ा करना या रोकना । बंधाना । ठहराना । स्थित करना । जमाना । जैसे,—(क) एक पैर जमीन पर अच्छी तरह टिका लो, तब दूसरा पैर उठाओ । (ख) इसे दीवार से टिकाकर खड़ा कर दो । (ग) बोझ को चबूतरे पर टिकाकर थोड़ा दम ले लो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

† ३. किसी उठाए जाते हुए बोझ में सहारे के लिये हाथ लगाना । बोझ उठाने या ले जाने में सहायता देना । जैसे,—(क) भकेले उससे चारपाई न जायगी, तुम भी टिका लो । (ख) चार घादमी जब उसे टिकाते हैं, तब वह उठता है ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

४. देना । प्रस्तुत करना ।

टिकानी—संज्ञा स्त्री [हि० टिकाना] छकड़ा गाड़ी की वे दोनों लकड़ियाँ जिनमें पैजनी डालकर रस्सी से बाँधते हैं ।

टिकाव—संज्ञा पुं० [हि० टिकना] १. स्थिति । ठहराव । २. स्थिरता । स्थायित्व । ३. वह स्थान जहाँ यात्री आदि ठहरते हैं । पड़ाव ।

टिकावली पुं०—संज्ञा स्त्री [दे०] एक प्रकार का प्राभूषण । उ०—टीका ठीक टिकावली होरा हार हमेल ।—छीत०, पृ० २५ ।

टिकिया^१—संज्ञा स्त्री [सं० बटिका] १. गोल घोर चिपटा छोटा टुकड़ा । गोल घोर चिपटे आकार की छोटी वस्तु । चक्राकार छोटी मोटी वस्तु । जैसे, दवा की टिकिया, कुनैन की टिकिया ।

विशेष—चकती और टिकिया में यह अंतर है कि टिकिया का प्रयोग प्रायः ठोस और उमरे हुए मोटे बल की वस्तुओं के लिये होता है, पर चकती का प्रयोग कपड़े, चमड़े आदि महीन परत की वस्तुओं के लिये होता है। जैसे, कपड़े या चमड़े की चकती, मैदे की टिकिया।

२. कोयले की बुकनी को किसी लसीली बीज में सानकर बनाया हुआ चिपटा गोल टुकड़ा जिससे बिलम पर भाग सुलगते हैं।
३. एक प्रकार की चिपटी गोल मिठाई जो भोजनदार मैदे की छोटी लोई की धी में तलने और चाशनी में डुबाने से बनती है। ४. भारत के राँचे का ऊपरी भाग जिसका सिरा बाहर निकला रहता है। ५. छोटी मोटी रोटी। बाटी। लिट्टी।

टिकिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टीका] १. माथा। ललाट। २. माथे पर लगी हुई बिंदी। ३. ऊंगली में घुना, रंग या और कोई वस्तु पोतकर बनाई हुई खड़ी रेखा या चिह्न।

विशेष—अनपढ़ लोग नित्य प्रति के सेन देव की वस्तु का लेखा रखने के लिये इस प्रकार के चिह्न प्रायः दीवार पर बनाते हैं।

टिकरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] टीला। भीटा।

टिकुरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्कु, हि० टकुषा] सूत बटने या कातने की फिरकी। टिकवी।

टिकुरी^२—संज्ञा पुं० [देश०] निसोय। तुबुंद।

टिकुला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टिकोरा'।

टिकुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिकवी'।

टिकुषा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टकुषा', 'टकुषा'।

टिकैत—संज्ञा पुं० [हि० टीका + ऐत (प्रत्यय)] १. राजा का वह पुत्र जो राजा के पीछे राजतिलक का अधिकारी हो। राजा का उत्तराधिकारी कुमार। युवराज। २. अधिष्ठाता। सरदार।

टिकोर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टकोर'।

टिकोरा^१—संज्ञा पुं० [सं० वटिका, हि० टिकिया] धाम का छोटा और कच्चा फल। धाम का वह फल जिसमें जांजी न पड़ी हो। धाम की बटिया।

टिकोला^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टिकोरा'।

टिकोना, टिकौना—संज्ञा पुं० [हि० √ टिक + घौना (प्रत्यय)] प्राधार। टेक। सहारा। उ०—जिन टिकौनों से उसने अपने मन को संभाला था, वे सब इस भूकंप में नीचे या रहे और वह झोपड़ा नीचे गिर पड़ा।—मोक्षान, पृ० ११४।

टिककड़—संज्ञा पुं० [हि० टिकिया] १. बड़ी टिकिया। २. हाथ की बनी छोटी मोटी रोटी जो सेंकी गई हो। बाटी। लिट्टी। अंगकड़ी। ३. मालपुवा।—(साधु)

टिककस^१—संज्ञा पुं० [अं० टैक्स] कर। महसुब। उ०—टिककस लगा रे कस कस के छोड़ी अपना रोजगार।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० ३६१।

टिकका^१—संज्ञा पुं० [देश०] मूंगफली के पीछे का एक रोग।

टिकका^२—संज्ञा पुं० [हि० टीका] [स्त्री० टिककी] १. टीका। तिलक। बिंदी। २. उंगली में रंग आदि लगाकर बनाया हुआ खड़ा चिह्न।

विशेष—दे० 'टिककी'।

३. सुब। स्मरण। याद।

टिकका साहब—संज्ञा पुं० [हि० टीका (= तिलक) + अ० साहब] राजा का वह बड़ा खड़ा जिसका योवराज्याभिषेक होने को हो। युवराज।—(पंजाब)।

टिककी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकिया] १. गोल और चिपटा छोटा टुकड़ा। टिकिया।

मुहा०—टिककी जमना, बैठना या लगना = प्रयोजनसिद्धि का उपाय होना। युक्ति खड़ना। प्राप्ति आदि का भोल होना। गोटी जमना।

२. अंगकड़ी। बाटी। लिट्टी।

टिककी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टीका] उंगली में रंग या और कोई वस्तु पोतकर बनाया हुआ गोल चिह्न। बिंदी। २. माथे पर की बिंदी। गोल टीका। ३. ताश की बूटी। ताश में बना हुआ पान आदि का चिह्न।

टिककी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों।

टिकटिक—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिकटिक'।

टिखटो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकठी] तस्ती। पटिया। उ०—कै शिव तंत्र सटीक खुल्यो विखसत टिखटी पर।—का० सुषमा, पृ० ६।

टिघलना—क्रि० प्र० [सं० तप + गलन] पिघलना। भाँच से बची-भूत होना।

विशेष—दे० 'पिघलना'।

टिघलाना—क्रि० प्र० [हि० टिघलना] पिघलाना।

टिचन—वि० अं० अटेंशन] १. तैयार। ठीक। दुस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. उद्यत। मुस्तैद।

क्रि० प्र०—होना।

टिटकारना—क्रि० प्र० [अनु०] टिक टिक शब्द करके किसी पशु को चलने के लिये उभारना। 'टिक टिक' करके हाँकना। जैसे, घोड़े को टिटकारना।

मुहा०—टिटकारी पर लगना = (पशु का) इशारा पाकर काम करना। संकेत पाकर या बोली पहचानकर पास चला जाना।

टिटकारी—संज्ञा स्त्री० [हि० टिटकारना] घोड़े या अन्य पशु को टिकटिक करके हाँकने की ध्वनि। उ०—टमटमवालों ने अपनी टिटकारियाँ भरनी शुरू की।—मई०, पृ० २०।

टिटिया^१—संज्ञा पुं० [अ० तटिम्मह] १. अनावश्यक झंझट। २. ठकोसला। प्रपंच। ३. आहंकार।

टिटिम्मा—संज्ञा पुं० [अ० तटिम्मा] दे० 'टिटिमा' ।

टिटिह—संज्ञा पुं० [सं० टिटिह] टिटिहरी चिड़िया का नर । उ०—
देखा टिटिह टिटिहरी भाई । चौबे भरि भरि पानी साई ।—
नारायणदास (शब्द०) ।

टिटिहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिटिह, हि० टिटिह] पानी के किनारे
रहनेवाली एक चिड़िया जिसका सिर लाल, गरदन सफेद, पर
चित्रकबरे, पीठ खैरे रंग की, दुम मिलेजुले रंग की और चोंच
काली होती है । कुररी ।

विशेष—इसकी बोली कड़ई होती है और गुनने में 'टी टी' की
ध्वनि के समान जान पड़ती है । स्मृतियों में द्विजातियों के
लिये इसके मासमक्षण का निषेध है । इस चिड़िया के संबंध
में ऐसा प्रवाद है कि यह रात को इस भय से कि कहीं आकाश
न टूट पड़े, उसे रोकने के लिये दोनों पैर ऊपर करके चित
मोती है ।

टिटिहा—संज्ञा पुं० [सं० टिटिह] टिटिहरी चिड़िया का नर । उ०—
टिटिहा कही जाऊँ सै कहाँ । यहि ते नीक और है जहाँ ।—
नारायणदास (शब्द०) ।

टिटिहारोर—संज्ञा पुं० [हि० टिटिहा + रोर] १. चिल्लाहट । शोर-
गुल । २. रोना पीटना । कंदन ।

टिटुष्पा—संज्ञा पुं० [हि० टटू, का घस्या०] [स्त्री० टिटुई] छोटा टटू ।
उ०—टिटुई जैटन को बोझा बहि सकत नहीं जमि ।—
प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५७ ।

टिट्टिम—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० टिट्टिमी] १. टिटिहा । नर टिटिहरी ।
दे० 'टिटिहरी' । उ०—उमा राबनहि मस भभिमामा । जमि
टिट्टिम लग सुत उताना ।—सुलसी (शब्द०) । २. टिट्टी ।

टिट्टिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] टिट्टिम की मादा । टिटिहरी ।

टिट्टिमी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिम] टिट्टिम की मादा ।

टिट्टी(७)—संज्ञा स्त्री० [हि० टिट्टी] दे० 'टिट्टी' । उ०—भेड़ भी टिट्टी
को काज कीबै ।—कबीर० रे०, पृ० २६ ।

टिट्टीचिट्टी—वि० [देश०] दे० 'तिट्टीचिट्टी' ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

टिट्टा—संज्ञा पुं० [सं० टिट्टिम] एक प्रकार का परदार कीड़ा जो सेतों
में तथा छोटे पेड़ों या पौधों पर बिछाई पड़ता है ।

विशेष—यह चार पाँच अंगुल लंबा और कई तरह का होता है,
जैसे,—हरा, भूरा, चिल्लीदार । यह नरम पत्ते खाकर रहता
है । गुबरेले, तितली, रेशम के कीड़े आदि की तरह इसके
जीवन में आकृतिपरिवर्तन की विभिन्न अवस्थाएँ नहीं
होतीं । मक्खियों की तरह इसके मुँह में भी धंसने के लिये
दोड़ होते हैं ।

टिट्टी—संज्ञा पुं० [सं० टिट्टिम या सं० तत्+डीन (= उड़ना)] एक जाति
का टिट्टा या उड़नेवाला कीड़ा जो भारी दल या समूह बाँधकर
चलता है और मार्ग के पेड़ पौधे और फसल को बड़ी हानि
पहुँचाता है । इसका आकार साधारण टिट्टे के ही समान,
पैर और पेट का रंग लाल या नारंगी तथा शरीर भूरापन लिए
और चिल्लीदार होता है । जिस समय इसका दल बादल की

घटा के समान उमड़कर चलता है, उस समय आकाश में
अंधकार सा हो जाता है और मार्ग के पेड़ पौधों और खेतों में
पतियाँ नहीं रह जातीं । टिट्टियाँ हजार दो हजार कोस तक
की लंबी यात्रा करती हैं और जिन जिन प्रदेशों में होकर
जाती हैं, उनकी फसल को नष्ट करती जाती हैं । ये पर्वत की
कंदराओं और रेगिस्तानों में रहती हैं और बालू में अपने अंडे
देती हैं । अफ्रीका के उत्तरी तथा एशिया के दक्षिणी भागों
में इनका आक्रमण विशेष होता है ।

मुहा०—टिट्टी दल = बहुत बड़ा झुंड । बहुत बड़ा समूह । बड़ी
भारी मोड़ या सेना ।

टिट्टिंगा—वि० [हि० टेढ़ा + बंक] जो सीधा और सुझोल न हो ।
टेढ़ामेढ़ा ।

टिट्टिबेड़ा—वि० [हि० टेढ़ा + बेड़ंगा] टेढ़ामेढ़ा । बेड़ंगा ।

टिन्नाना—क्रि० प्र० [हि०] १. क्रुद्ध होना । खट्ट होना । २. (शिश्न
का) उत्तेजित होना ।

टिन्नाफिस्स—संज्ञा पुं० [हि० टिन्नाना + फिस्स] आलोचना । निंदा ।
कहासुनी । उ०—तिस पर भी आपने जो इतना टिन्नाफिस्स
किया तो बड़ा परिश्रम पड़ा ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २३ ।

टिप^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टीपना] सौंप के काटने का एक प्रकार । सौंप
का ऐसा दंश जिसमें दाँत चुभ न पड़ें और विष रक्त में मिल
गया हो ।

टिप^२—संज्ञा स्त्री० [अं०] पुरस्कार के रूप में अल्प मात्रा में दिया
जानेवाला द्रव्य । बख्शीश ।

विशेष—मोजनालय और होटलों आदि में बेरो तथा मोटर
ड्राइवरों को दिया जानेवाला पुरस्कार 'टिप' कहा जाता है ।

टिपकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टपकना' ।

टिपका(७)—संज्ञा पुं० [हि० टिपकना] बूँद । कतरा । बिंदु । उ०—
नव मन दूध बटोरिया टिपका किया बिनास । दूध फाटि काँजी
भया भया चीव का नास ।—कबीर (शब्द०) ।

टिपकारी—संज्ञा पुं० [हि० टिप] दीवारों पर हँटों की बीच की
जोड़ाई पर सीमेट प्रथवा चूने की लकीर ।

टिपटाप—वि० [अं० टिप + टॉप] १. चुस्त । २. साफ सुथरी सुंदर
वेशभूषा पहने हुए ।

टिपटिप—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बूँद बूँद गिरने का शब्द । टपकने
का शब्द । वह शब्द जो किसी वस्तु पर बूँद के गिरने से
होता है । २. बूँद बूँद के रूप में होनेवाली वर्षा । हलकी
बूँदाबाँदी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—टिप टिप करना = बूँद बूँद गिरना या बरसना ।

टिपटिपाना—क्रि० प्र० [हि० टिपटिप से नामिक घात] हलकी
वर्षा होना ।

टिपरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० तोपना] बाँस, बेंत या मूँज के छिलके
से बना हुआ ढक्कनदार छोटा पिटारा । पिटारी ।

टिपवाना—क्रि० सं० [हि० टीपना] १. दबवाना । चंपवाना ।

मिसवाना । जैसे, पैर टिपवाना । २. पिटवाना । बीरे बीरे प्रहार करना । ३. खिलवाना । टंकवाना ।

टिपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टीपना] टीपने की क्रिया । लेखन । प्रकन । उ०—इतिहास में भूतकाल की घटनाओं का उल्लेख और अनुस्मरण रहता है । उसकी टिपाई सबको होनी चाहिए ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १ ।

टिपारा—संज्ञा पुं० [हि० तीन + फा० पारह (= टुकड़ा)] मुकुट के आकार की एक टोपी जिसमें केलरी की तरह तीन शाखाएँ निकली होती हैं, एक सिरे पर, दो बगल में । उ०—मोर फूल बीनिवे को गए फुलवाई हैं । सीसनि टिपारो, उपवीत पीन पट कटि, दोना बाम करनि सलोने भेसवाई हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

टिपिर टिपिर—क्रि० वि० [अनु०] टिपटिप की ध्वनि । हवा के साथ पानी की बूँदों के गिरने की ध्वनि । उ०—बूँदें टिपिर टिपिर टपकीं दल बादल से ।—कवासि, पृ० ४५ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

टिपुर—संज्ञा पुं० [देश०] १. गुमान । अभिमान । गुरुर । २. बहुत अधिक आचार विचार । पाखंड । घाड़बर ।

टिप्पणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी वाक्य या प्रसंग का अर्थ सूचित करनेवाला विवरण । टीका । व्याख्या । २. किसी घटना के संबंध में समाचारपत्रों में संपादक की ओर से लिखा जाने-वाला छोटा लेख ।

टिप्पन—संज्ञा पुं० [सं०] १. टीका । व्याख्या । २. जन्मकुंडली । जन्मपत्री ।

मुहा०—टिप्पन का मिलान = विवाहसंधि स्थिर करने के लिये वर कन्या की जन्मपत्रियों का मिलान ।

टिप्पनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वाक्य या प्रसंग का अर्थ सूचित करनेवाला विवरण । टीका । व्याख्या । उ०—संपादक लोग अपनी अपनी टिप्पनियों में इसपर शोक सूचित करते..... ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६६ ।

टिप्पसा—संज्ञा स्त्री० [देश०] अभिप्रायसाधन का ढंग । युक्ति ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—जमाना ।—बैठना ।—भिड़ाना ।—लगना ।

विशेष—दे० 'टिक्की' ।

टिप्पा①—संज्ञा पुं० [?] १. घावा । उ०—छुटे सब सिपे करे दिग्ध टिप्पे, सब सन्नु छिपे कहूँ हैं न दिप्पे ।—पद्याकर ग्रं०, पृ० ११ । २. टिप्पस । युक्ति ।

टिप्पा②—संज्ञा पुं० [देश०] पुरुषेन्द्रिय । लिंग ।—(अश्लिष्ट) ।

टिप्पी—संज्ञा स्त्री० [हि० टीका] १. उँगली में रंग आदि लगाकर बनाया हुआ चिह्न । २. ताश की बुटी ।

विशेष—दे० 'टिक्की' ।

टिफिन—संज्ञा स्त्री० [अंग० टिफिन] भंगरेजों का शोषण के बाद का जलपान ।

टिबरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहाड़ों की छोटी चोटी ।

टिबिल—संज्ञा पुं० [अंग० टेबुल] मेज । उ०—नाक पर चमका देगे,

कौटा और चिमटे से टिबिल पर लाएंगे ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८५६ ।

टिब्बा—संज्ञा पुं० [हि० टीला] दे० 'टीला' । उ०—जोनसार और गढ़वाल की नाग टिब्बा श्रृंखला..... सब भीतरी श्रृंखला के पहाड़ों के नमूने हैं ।—भा० सू०, पृ० १११ ।

टिमकना—क्रि० प्र० [देश०] १. रुकना । ठहरना । २. चमकना । प्रकाशयुक्त होना ।

टिमकी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. छोटा मोटा बरतन । २. बच्चों का पेट ।

टिमटिमा—वि० [हि० टिमटिमाना] मद्धिम या मंद (प्रकाश) । उ०—टिमटिम दीपक के प्रकाश में पड़ते निज पोथी शिशुगण ।—रेणुका, पृ० १० ।

टिमटिमाना—क्रि० प्र० [सं० तिम (= ठंडा होना)] १. (दीपक का) मंद मंद जलना । क्षीण प्रकाश देना । जैसे,—कोठरी में एक दीया टिमटिमा रहा था । २. समान बंधी हुई ची के साथ न जलना । बुझने पर ही होकर जलना । क्रिखमिलाना । जैसे,—दीपक टिमटिमा रहा है, बुझा चाहता है ।

मुहा०—ग्रांथ टिमटिमाना = ग्रांथ को थोड़ा थोड़ा खोलकर फिर बंद कर लेना ।

२. मरने के निकट होना । कुछ ही घड़ी के लिये और जीना ।

टिमटिम्यो—संज्ञा पुं० [देश०] ढोल की तरह का एक बाजा । उ०—गहा के मंथिर टिमटिम्यो बाजाया ।—बक्सिनी०, पृ० ७३ ।

टिमाक—संज्ञा स्त्री० [देश०] बनाव । सिगार । ठसक । (स्त्रि०) ।

टिमिला—संज्ञा स्त्री० [देश०] [स्त्री० टिमिली] लड़का । छोकरा ।

टिमिली—संज्ञा स्त्री० [देश०] लड़की । छोकरी ।

टिम्मा—वि० [देश०] छोटे डोल डोल का । नाटा । ठंगना । बोना ।

टिर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टर' ।

टिरफिस—संज्ञा स्त्री० [हि० टिर + फिस] कीचपड़ । प्रतिवाद । विरोध । बात न मानने की ठिठाई । जैसे,—सीधे से जो कहते हैं वह करो, जरा भी टिरफिस करोगे तो मार बैठेंगे ।

क्रि० प्र०—करना ।

टिरिकबाजी—संज्ञा स्त्री० [अंग० टिक + फा० बाजी] बालकी । फरेब । उ०—तुम हमको टिरिकबाजी दिखाती हो ।—मैला०, पृ० ३५६ ।

टिरी—वि० [हि० टरी] दे० 'टरी' ।

टिरीना—क्रि० प्र० [अनु०] दे० 'टरीना' । उ०—माया को कस के एक धप्पड़ लगाया तो वह टिरिने लगी ।—सैर कुं०, भा० १, पृ० १४ ।

टिलटिलाना—क्रि० प्र० [अनु०] पतला वस्तु फिरना । वस्तु घाना ।

टिलटिली—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पतला वस्तु फिरने की क्रिया वा भाव ।

कि० प्र०—धाना ।—घुटना ।

टिक्का—संज्ञा पु० [देश०] १. लकड़ी का वह टुकड़ा जो छोटा, गंटीला और टेढ़ा हो । गंटीला और टेढ़ा मेड़ा कुंवा । २. माटा या ठिगना आदमी । ३. चापलूस आदमी ।

टिक्किया—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. छोटी मुर्गी । २. मुर्गी का बच्चा ।

टिक्कीलिली—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बीच की उंगली हिला हिलाकर बिड़ाने का शब्द ।—(लड़के) ।

बिरोब—जब एक लड़का कोई वस्तु नहीं पाता या किसी बात में असफल होता है, तब दूसरे लड़के उसके सामने हथेली मोड़ करके और बीच की उंगली हिलाकर 'टिक्कीलिली' कहकर बिड़ाने हैं ।

टिलेहू—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का नेवला जिसके शरीर से दुर्गंध निकलती है ।

बिरोब—इसका सिर सूपर के ऐसा और दुस बहुत छोटी होती है । यह तलवों के बल चलता है और अपने घुपन से जमीन की मिट्टी खोदता है । सुमावा, जावा आदि टापुओं में यह पाया जाता है ।

टिलोरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] मुर्गी का बच्चा ।

टिल्ला—संज्ञा पु० [हि० ठेलना] धक्का । टकोर । जोट ।—(बाजारू) ।
घौं—टिल्लेनबीसी ।

टिल्लेबाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० टिल्ले + बा० नबीसी] १. निकट सेवा । बीच सेवा । २. व्यर्थ का काम । ऐसा काम जिससे कोई लाभ न हो । निरुत्पादन । ३. होलाहवाली । टाल-मटोल । बहाना ।

कि० प्र०—करना ।

टिमुआ—संज्ञा पु० [सं० अश्रु] आँसू ।—(पंजाबी) ।

टिहुका—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ठिठक । नकाव । २. चौकना । ३. चमक । ४. कठना । ५. रोना । ६. रुदन । ७. कोयल की कूक ।

टिहुकना—कि० प्र० [देश०] १. ठिठकना । २. चौकना । ३. कठना । ४. चमकना । ५. रोना । ६. कोयल का कूकना ।

टिहुकारा—संज्ञा स्त्री० [देश०] कोयल की कूक ।

टिहुकारना(उ०)†—कि० प्र० [हि० टिहुकार से नामिक धातु] कोयल का कूकना ।

टिहुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० घुण्ट, हि० घुटना] घुटना । २. कोहनी ।

टिहुका—संज्ञा स्त्री० [देश०] चौकने की क्रिया या भाव । चौक । झकक । उ०—एक ताग बनवल, दूरर गैल दूटी । बिलरे काटल, उठल टिहुकी ।—कबीर (शब्द०) ।

टिहुकना†—कि० प्र० [हि०] दे० 'टिहुकना' ।

टींगा†—संज्ञा पु० [देश०] मग । मोनि ।

टींटीं—संज्ञा स्त्री० [अनु०] एक विशेष प्रकार की ध्वनि । टीं टीं की ध्वनि । उ०—तब एकाकी लग कोई तिनकों के बंदीघर में । कर टींटीं चुप हो बैठा अपने सुने पिजर में ।—दीप०, पृ० १५ ।

टींझ—संज्ञा पु० [सं० टिण्डस (= डेंडसी)] रहठ में बाँधने की हुंझिया ।

टींझसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्डस] ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें गोस गोस फल लगते हैं । इन फलों की तरकारी होती है ।

टींझा—संज्ञा पु० [देश०] १. जीता बुमाने का खूँटा । २. दे० 'टिहु' ।

टींझी†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिहु' । उ०—जिमि टींझी बल गुहा समई ।—तुलसी (शब्द०) ।

टीं—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाय ।

टीक—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलक] १. गले में पहनने का सोने का एक गहना जो ठप्पेदार या जड़ाऊ बनता है । २. माथे में पहनने का सोने का एक गहना ।

टी गाहें—[सं० टी (= चाय); + गाहें (= वाग)] वह जमीन जहाँ चाय होती है । चाय बगीचा । जैसे,—घासाम के टी गाहें के कुलियों की दशा शोचनीय और कष्टाजनक है ।

टीकठा†—संज्ञा पु० [हि० टिकना] रीढ़ की हड्डी ।

टीकन—संज्ञा पु० [हि० टेकना] धूनी । चाँड़ । वह खंभा या लड़ी लकड़ी जो किसी मार को संभाले रहने या किसी वस्तु को एक स्थिति में रखने के लिये लगाई जाती है ।

मुहा०—टीकन देना = बढ़ते पीछों को सीधा और सुधील रखने के लिये धूनी लगाना ।

टीकना—कि० प्र० [हि० टीका] १. टीका लगाना । तिलक देना । २. उँगली में रंग आदि पोतकर चिह्न या रेखा बनाना ।

टीका†—संज्ञा पु० [सं० तिलक] १. वह चिह्न जो उँगली में गीला चंदन, रोलो, केसर, मिट्टी आदि पोतकर मस्तक, बाहु आदि अंगों पर शृंगार आदि या सांप्रदायिक संकेत के लिये लगाया जाता है । तिलक ।

कि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टीका टाकना = बकरे को बलिदान करने के पहले टीका लगाना । उ०—छेरी लाए मेड़ी लाए बकरी टीका टाके ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ५२ । टीका देना = टीका लगाना । माथे पर घिसे हुए चंदन आदि से चिह्न बनाना ।

बिरोब—टीका पूजन के समय तथा अनेक शुभ अवसरों पर लगाया जाता है । यात्रा के समय भी जानेवाले के शुभ के लिये उसके माथे पर टीका लगाते हैं ।

२. विवाह स्थिर होने की रीति जिसमें कन्यापक्ष के लोग वर के माथे में तिलक लगाते हैं और कुछ द्रव्य वरपक्ष के लोगों को देते हैं । इस रीति के हो चुकने पर विवाह का होना निश्चित समय माना जाता है । तिलक ।

कि० प्र०—बढ़ना ।—बढ़ाना ।—मेजना ।

१. दोनों ओर के बीच माथे का मध्य भाग (जहाँ टीका लगाते हैं) । ४. किसी समुदाय का शिरोमणि । (किसी कुल, मंडली या जनसमुह में) श्रेष्ठ पुरुष । उ०—समाधान करि सो बचही का । गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका ।—तुलसी (शब्द०) । ५. राजतिलक । राजसिंहासन या गद्दी पर बैठने का कृत्य ।

क्रि० प्र०—देना ।—होना ।

१. वह राजकुमार जो राजा के पीछे राज्य का उत्तराधिकारी होनेवाला हो । युवराज । जैसे, टीका साहब । ७. प्राधिपत्य का चिह्न । प्रधानता की छाप । जैसे,—क्या तुम्हारे ही माथे पर टीका है और किसी को इसका अधिकार नहीं है ?

मुद्रा०—टीके का = विशेषता रखनेवाला । धनोला । जैसे,—क्या वही एक टीके का है जो सब कुछ रख लेगा ?—(स्त्रि०) ।

८. वह भेंट जो राजा या जमींदार को रयत या भसामी देते हैं । ९. सोने का एक गहना जिसे स्त्रियाँ माथे पर पहनती हैं । १०. छोड़े की दोनों धाँसों के बीच माथे का मध्य भाग जहाँ भँवरी होती है । ११. घन्ना । दाग । चिह्न । १२. किसी रोग से बचाने के लिये उस रोग के चेष या रस से बनी घोषधि को लेकर किसी के शरीर में सुइयों से चुभाकर प्रविष्ट करने की क्रिया । जैसे, शीतला का टीका, प्लेग का टीका ।

विशेष—टीके का व्यवहार विशेषतः शीतला रोग से बचाने के लिये ही इस देश में होता है । पहले इस देश में माली लोग किसी रोगी की शीतला का नीर लेकर रखते थे और स्वस्थ मनुष्यों के शरीर में सुई से गोदकर उसका संचार करते थे । संघाल लोग आम से शरीर में फफोले डालकर उनके फूटने पर शीतला का नीर प्रविष्ट करते हैं । इस प्रकार मनुष्य को शीतला के नीर द्वारा जो टीका लगाया जाता है, उसमें ज्वर वेग से आता है, कभी कभी सारे शरीर में शीतला भी आती है और डर भी रहता है । सन् १७६८ में डा० जेनर नामक एक अंगरेज ने गोथन में उत्पन्न शीतला के दानों के नीर से टीका लगाने की युक्ति निकाली जिसमें ज्वर आदि का उतना प्रकोप नहीं होता और न किसी प्रकार का भय रहता है । इंग्लैंड में इस प्रकार के टीके से बड़ी सफलता हुई और धीरे धीरे इस टीके का व्यवहार सब देशों में फैल गया । भारतवर्ष में इस टीके का प्रचार अंग्रेजी शासनकाल में हुआ है । कुछ लोगों का मत है कि गोथन शीतला के द्वारा टीका लगाने की युक्ति प्राचीन भारतवासियों को ज्ञात थी । इस बात के प्रमाण में अश्वत्थरि के नाम से प्रसिद्ध एक शाक्त ग्रंथ का एक श्लोक देते हैं—

धेनुस्तन्यमसूरिका नराणां च मसूरिका ।
तज्जलं बाहुमूलाच्च शस्त्रातेन गृहीतवान् ॥
बाहुमूले च शस्त्राणि रक्तोत्पत्तिकराणि च ।
तज्जलं रक्तमिलितं स्फोटकज्वर संभवम् ॥

टीका^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वाक्य, पद या ग्रंथ का अर्थ स्पष्ट करनेवाला वाक्य या ग्रंथ । व्याख्या । अर्थ का विवरण । विवृति । जैसे, रामायण की टीका, सतसई की टीका ।

टीकाई—वि० [हि० टीका] टीका लेनेवाला । टीका किया हुआ । उ०—लालबास जी के बालकृष्ण जी टीकाई चेले गद्दी बैठे ।
—सुंदर प्र०, भा० १, (जी०), पृ० १४० ।

टीकाकार—संज्ञा पुं० [सं०] व्याख्याकार । किसी ग्रंथ का अर्थ लिखनेवाला । वृत्तिकार ।

टीका टिप्पणी—संज्ञा स्त्री० [सं० टीका + टिप्पणी] १. धालोचना । तर्क चितर्क । २. अप्रशंसा । निंदा ।

टीकारो^३—वि० [हि० टीका] टीकाई । प्रधान । सर्वोच्च । उ०—टीकारो मालक तिको श्रीकारो मुख आस ।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ७७ ।

टीकी^४—संज्ञा स्त्री० [हि० टीका] १. टिकुली । २. टिकिया । टिकी । ३. टीका । उ०—चंद्रमण से बीच लगावत पिय के टीकी ।
—नंद० प्र०, पृ० ३८६ ।

टीकुरी^५—संज्ञा पुं० [देश०] १. ऊँची पुष्पी । नबी के बाहर की ऊँची और रेतीली भूमि । २. जंगल । वन ।

टीटा^६—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों की योनि में वह मांस जो कुछ बाहर निकला रहता है । टना ।

टीडरि^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टीड' । उ०—बाँधे ज्यूँ घरहर की टीडरि, आबत जात बिगूते ।—कबीर प्र०, पृ० १५५ ।

टीड़ी^८—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिड़ी' । उ०—(क) कोटि कोटि कपि धरि धरि लाई । जनु टीड़ी गिरि गुहा समाई ।—मानस, ६।६६ । (ख) मानो टीड़ी बल गिरत साँझ भरुण की बार ।
—शकुंतला, पृ० २५ ।

टीन^९—संज्ञा पुं० [सं० टिन] १. रीता । २. रंगे की कलई की हुई लोहे की पतली चद्दर । ३. इस प्रकार की चद्दर का बना बरतन या डिब्बा ।

टीप^{१०}—संज्ञा स्त्री० [हि० टीपना] १. हाथ से दबाने की क्रिया या भाव । दबाव । दाब । २. हलका प्रहार । धीरे धीरे ठोंकने की क्रिया या भाव । ३. गच कूटने का काम । गच की पिटाई । ४. बिना पसस्तर की धीवार में ईंटों के जोड़ों में मसाला देकर नहले से बनाई हुई लकीर । ५. टंकार । ध्वनि । धोर शब्द । ६. गाने में ऊँचा स्वर । जोर की तान ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

७. हाथी के शरीर पर लेप करने की घोषधि । ८. दूध और पानी का शीरा जिससे बीमी का मेल छूँटा है । ९. स्मरण के लिये किसी बात को भटपट लिख लेने की क्रिया । टाँक लेने का काम । नोट । १०. वह कागज जिसपर महाजन की मूत और व्याज के बदले में फसल के समय अनाज आदि देने का इकरार लिखा रहता है । ११. दस्तावेज । १२. हुंडी । चेक । १३. सेना का एक भाग । कंपनी । १४. गंजीफे के खेल में बिपक्षी के एक पत्ते को दो पत्तों से मारने की क्रिया । १५. लड़की या लड़के की जन्मपत्री । कुंडली । टिप्पन ।

टीप^{११}—वि० छोटी का । सबसे अच्छा । कुनिदा । बढ़िया ।—(स्त्रि०) ।
टीपटाप—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ठाटबाट । सजावट । तड़क भड़क । दिखावट । २. दरारों या संघियों में मसाला भरना ।

टीपणा^{१२}—संज्ञा पुं० [सं० टिप्पणी] दे० 'टीपना' । उ०—पोथी पुस्तक टीपणो जग पंडित को काम ।—राम० धर्म०, पृ० ५७ ।

टीपदार—वि० [हि० टीप + दार (प्रत्य०)] सुरीला । मधुर । उ०—बल्लाह क्या टीपदार आवाज है, बस यह माधुर्य पड़ता है कि कोई बीन बजा रहा है ।—फिसाना०, भा० १, पृ० २ ।

टीपन^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टीपना] लगीर में वह स्थान जहाँ काँटा या कंकड़ चुभने से मांस ऊँचा होकर कड़ा हो जाता है। गाँठ। टीका। घट्टा।

टीपन^२—संज्ञा पुं० [सं० टिप्पणी] जन्मपत्री। टीपना।

टीपना^१—क्रि० सं० [टेपन (= फेंकना)] १. हाथ या रँगनी से दबाना। चापना। मसलना। जैसे, पैर टीपना। २. धीरे धीरे ठोंकना। हलका प्रहार करना। ३. ऊँचे स्वर में गाना। ४. गंजीके के खेल में दो पलों से एक पत्ता जीतना। ५. बीवाल या फरसा की दरारों को मसाले से भरना।

टीपना^२—क्रि० सं० [सं० टिप्पनी] लिख लेना। टीका लेना। प्रकित कर लेना। दर्ज कर लेना।

टीपना^३—संज्ञा स्त्री० [सं० टिप्पणी] जन्मपत्री। उ०—श्रीमन् गंगाधर राव की जन्मपत्री मिलाकर देवूँ शायद टक्कर खा जाय। टीपना प्राप्त हो गई। मिल गई।—कौसी०, पृ० ४२।

टीषा—संज्ञा पुं० [हि० टीला] टीला। दूह। भीटा।

टीम—संज्ञा स्त्री० [प्र०] खेलनेवालों का दल। जैसे, क्रिकेट की टीम।

टीमटाम—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बनाव सिगार। सजावट। २. टाठबाट। तड़क भड़क। उ०—टीमटाम बाहर बहुतेरे विल हासी से बंधा।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २५।

टीक्षा—संज्ञा पुं० [सं० उच्छीला (= भार)] १. पृथ्वी का वह उभरा हुआ भाग जो घासपास के तल से ऊँचा हो। दूह। भीटा। २. मिट्टी या बालू का ऊँचा ढेर। धुस। ३. छोटी पहाड़ी। ४. साधुओं का मठ।

टीशन—संज्ञा स्त्री० [प्र० स्टेशन] रेलगाड़ी के ठहरने का स्थान। स्टेशन। उ०—पुरैनिया टीशन पर गाड़ी पहुँची भी नहीं थी।—मैला०, पृ० ७।

टीस^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] चुभती हुई पीड़ा। रह रहकर उठनेवाला दर्द। कसक। बसक। दूल।

क्रि० प्र०—धोना।

मुहा०—टीस उठना=दर्द शुरू होना। रह रहकर पीड़ा होना। (घाव आदि का) टीस मारना=रह रहकर दर्द करना।

टीस^२—संज्ञा स्त्री० [प्र० स्टिच] किताब की सिलाई। जुबबंदी।

टीसना—क्रि० प्र० [हि० टीस] १. चुभती पीड़ा होना। रह रहकर दर्द उठना। कसक होना। घाव फोड़े आदि का दर्द करना।

टुंगा—संज्ञा पुं० [सं० उत्सृङ्ग] पहाड़ की चोटी।

टुंघ—वि० [सं० तुच्छ] शुभ्र। तुच्छ। टुच्छा।

मुहा०—टुंघ भिड़ाना=घोड़ी पूँजी से काम करना। टुंघ लड़ाना=(१) घोड़ी पूँजी से काम प्रारंभ करना। (२) घोड़ी पूँजी से जुझा खेलना। धीरे धीरे जीतना।

टुंटा—वि० [सं० रुण्ड या हि० टूटा] १. जिसका हाथ कटा हो। बिना हाथ का। लूला। २. टूँठा।

टुंढुका—संज्ञा पुं० [सं० टुण्डुक] १. श्वोणाक। सोना पाठा। बालू। रेत। २. काला खैर।

टुंढुका^२—वि० १. छोटा। २. कूर। दुष्ट। ३. कठोर [की०]।

टुंढुका—संज्ञा स्त्री० [सं० टुण्डुका] पाठा।

टुंढ—संज्ञा पुं० [सं० रुण्ड (= बिना सिर का बड़), या स्थाणु (= क्षिप्त्र वृक्ष)] १. बड़ पेड़ जिसकी डाल टहनी आदि कट गई हों। क्षिप्त्र वृक्ष। टूँठ। २. वह पेड़ जिसमें पत्तियाँ न हों। ३. कटा हुआ हाथ। ४. एक प्रकार का प्रेत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह घोड़े पर सवार होकर घोर अपना कटा सिर भागे रखकर रात को निकलता है। ५. खंड। टुकड़ा। उ०—बहु सुंढन टुंढन टुंढ कियं। निरखं नम नाइक प्रच्छरियं।—रसर०, पृ० २२७।

टुंढा^१—वि० [हि० टुंढ] [स्त्री० घस्पा० टुंड़ी] १. जिसकी डाल टहनी आदि कट गई हों। टूँठा। २. जिसका हाथ कट गया हो। बिना हाथ का। लूला। लुंजा। ३. (बैल) जिसका सींग टूटा हो। एक सींग का बैल। टूँडा।

टुंढा^२—संज्ञा पुं० १. हाथ कटा बादमी। लूला मनुष्य। २. एक सींग का बैल।

टुंढी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डि] बामि। ढोंकी।

टुंढी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड] बाहुबद्ध। भुजा। मुष्क।

मुहा०—टुंढिया बांधना या कसना=मुष्कें बांधना। टुंढियाँ लिखना=मुष्कें बांधना। हथकड़ी पहनना।

टुंढी^३—वि० स्त्री० [सं० स्थाणु, हि० टूँठ, टुड, टुडा, टुडो] जिसे हाथ न हो। कटे हाथ की। लूली।

टुंड़ा—संज्ञा पुं० [प्र०] साइबेरिया के उत्तर में स्थित एक हिमप्रदेश।

टुंगना—क्रि० सं० [हि० टुनगा] १. (चोपायों का) टहनी के सिरे की पालियों को दाँत से काटना। कुतरना। २. कुतर कर चबाना। थोड़ा सा काटकर खाना।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

टुइयाँ^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी जाति का सुधा या तोता। सुग्गी।

विशेष—इसकी चोच पीली और गरदन बैंगनी रंग की होती है।

टुइयाँ^२—वि० देगना। नाटा। बीना।

टुइल—संज्ञा स्त्री० [प्र० टिल] एक प्रकार का मोटा मुलायम सूती कपड़ा।

टुक^१—वि० [सं० स्तोक (= थोड़ा)] थोड़ा। जरा। किंचित्। तनिक।

मुहा०—टुक सा=जरा सा। थोड़ा सा।

टुक^२—क्रि० वि० थोड़ा। जरा। तनिक। जैसे,—टुक इधर देखो। उ०—मात, कातर न हो, अहो, टुक धीरज धारो।—साकेत, पृ० ४०४।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग क्रि०वि०वत् ही अधिक होता है। कभी कभी यह यों ही बेपरवाई करने के लिये किसी क्रिया के साथ बोला जाता है। जैसे,—टुक जाकर देखो तो।

टुक टुक^१—क्रि० वि० [प्रनु०] ३० 'टुकुर टुकुर'।

टुक टुक^२—क्रि० वि० [हि० टुकड़ा] टुक टुक। टुकड़े टुकड़े। उ०—दरजी ने टुक टुक कीन्ह दरद नहि जाना हो।—धरनी०, पृ० ३६।

क्रि० प्र०—करना।

टुकड़गदा^१—संज्ञा पुं० [हि० टुकड़ा + प्रा० गदा] वह भिन्नभंग जो घर घर रोटी का टुकड़ा माँगकर खाता हो । भिखारी । भँगता ।

टुकड़गदा^२—वि० १. तुच्छ । २. अत्यंत निर्धन । बरिद्र । कंगाल ।

टुकड़गदाई^१—संज्ञा पुं० [हि० टुकड़ा + प्रा० गदा + हि० ई (प्रत्य०)] दे० 'टुकड़गदा' ।

टुकड़गदाई^२—संज्ञा स्त्री० टुकड़ा माँगने का काम ।

टुकड़तोड़—संज्ञा पुं० [हि० टुकड़ा + तोड़ना] दूसरे का दिया हुआ टुकड़ा खाकर रहनेवाला आदमी । दूसरे का आश्रित मनुष्य ।

टुकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक (= थोड़ा), हि० टुक, टुक + डा (प्रत्य०)] [स्त्री० प्रत्या० टुकड़ी] १. किसी वस्तु का वह भाग जो उससे टूट फूट या कट छँटकर अलग हो गया हो । खंड । छिन्न भंग । रेखा । जैसे, रोटी का टुकड़ा, कागज या कपड़े का टुकड़ा, परथर या ईंट का टुकड़ा ।

मुहा०—टुकड़े उड़ाना = काटकर कई भाग करना । टुकड़े करना = काटकर या तोड़कर कई भाग करना । खंड करना । टुकड़े टुकड़े उड़ाना = काटकर खंड खंड करना । (किसी वस्तु को) टुकड़े टुकड़े करना = इस प्रकार तोड़ना कि कई खंड हो जायें । छूर छूर करना । खंडित करना ।

२. बिल्ल आदि के द्वारा विभक्त भंग । भाग । जैसे, खेत का टुकड़ा । ३. रोटी का टुकड़ा । रोटी का तोड़ा हुआ भंग । भास । कीर ।

मुहा०—(दूसरे का) टुकड़ा तोड़ना = दूसरे की दी हुई रोटी खाना । दूसरे के दिए हुए भोजन पर निर्वाह करना । जैसे,—वह ससुराल का टुकड़ा तोड़ता है । टुकड़ा तोड़कर जवाब देना = दे० 'टुकड़ा सा जवाब देना' । टुकड़ा देना = भिन्नभंग की रोटी या खाना देना । (दूसरे के) टुकड़ों पर पड़ना = दूसरे की दी हुई खाकर रहना । दूसरे के यहाँ के भोजन पर निर्वाह करना । पराई कमाई पर गुजर करना । जैसे,—वह ससुराल के टुकड़े पर पड़ा है । टुकड़ा माँगना = भिक्ष माँगना । टुकड़ा सा जवाब देना = भट और स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार करना । संकोच नहीं करना । साफ इनकार करना । लगी लिपटी न रखना । कोरा जवाब देना । टुकड़ा सा तोड़कर हाथ में देना = दे० 'टुकड़ा सा जवाब देना' । टुकड़े टुकड़े को मुहताज होना = अत्यंत बरिद्रावस्था को पहुँच जाना । उ०—मगर जूए की लत थी सब दोलत दीव पर रख दी तो टुकड़े टुकड़े को मुहताज । करे तो क्या करें ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६२ ।

टुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० टुकड़ा] १. छोटा टुकड़ा । खंड । जैसे, एक टुकड़ी नमक, काँच की टुकड़ी । २. पान । कपड़े का टुकड़ा । ३. समुदाय । मंडली । दल । जैसे, यारों की टुकड़ी । ४. पशु पक्षियों का दल । झुंड । गोल । जत्था । जैसे, कबूतरों की टुकड़ी । ५. सेना का एक भंग । हिस्सा । कंपनी । ६. स्त्रियों का सहंगा । ७. कातिक के स्नान का मेला ।

टुकना^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोकनी' ।

टुकना^२—संज्ञा पुं० [हि० टुकाना (प्रत्य०)] टुकड़ा । टुका ।

टुकनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोकनी' ।

टुकनी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टुक + नी (प्रत्य०)] छोटा टुकड़ा ।

टुकरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टुकड़ा] छोटा टुकड़ा । टुकड़ी । खंड । टुक । उ०—दरजो धीरे धीरे नाहि, यहै बाँस की टुकरिया ।—ब्रज० प्र०, पृ० ५१ ।

टुकरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] सलम की तरह का एक टुकड़ा ।

टुकरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टुकड़ी' ।

टुकुर टुकुर—क्रि० वि० [धनु०] निनिमेष । बिना पलक गिराए हुए । उ०—उड़गण अपना रूप देखते टुकुर टुकुर थे ।—साकेत, पृ० ४०६ ।

मुहा०—टुकुर टुकुर ताकना = दे० 'टुकुर टुकुर देखना' । उ०—चिड़ियाएँ सुल से घोंसलों में बैठी टुकुर टुकुर ताकतीं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६ । टुकुर टुकुर देखना = ललचाई हुई दृष्टि से या विवशता के साथ किसी वस्तु या व्यक्ति की ओर देखना ।

टुक्का^१—संज्ञा पुं० [हि० टुकड़ा] १. टुकड़ा । २. चौपाई भाग । उ०—दुह टुक्क होइ भुमि भद्र काय ।—ह० रासो, पृ० ८२ ।

टुक्कड़ा^१—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] 'टुकड़ा' ।

टुक्करा^१—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] दे० 'टुकड़ा' ।

टुक्का—संज्ञा पुं० [हि०] १. दे० 'टुकड़ा' ।

मुहा०—टुक्का सा जवाब देना = दे० 'टुकड़ा सा जवाब देना' । २. चौपाई भाग या भंग ।

टुक्की^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. छोटा टुकड़ा । २. चौपाई भंग ।

टुगर टुगर^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'टुकुर टुकुर' । उ०—टुगर टुगर बेव्या करै सुंदर बिरहा ऐन ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ६८३ ।

टुघलाना—क्रि० प्र० [देश०] १. चुभलाना । मुँह में रखकर धीरे धीरे कूचना । २. जुगाली करना ।

टुच्कारा—संज्ञा पुं० [हि० टुच्चा] निरा । टुच्ची बात । अपमान । उ०—तब अपने मुहले में लोटती समय कई मसखरियाँ, बोलीठोली धीरे टुच्कारे उसे सुनने पड़ते ।—अभिषेक, पृ० १२७ ।

टुच्चा—वि० [सं० तुच्छ, या देश०] १. तुच्छ । प्रोछा । नीच । नीचाण्य । छिछोरा । क्षुद्र प्रकृति का । कमीना । शोहवा । जैसे, टुच्चा आदमी । २. छोटा या बेनाप का (कपड़ा) ।

टुटका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोटका' ।

टुट्टुट्टु—संज्ञा स्त्री० [धनु०] चिड़ियों के बोलने की एक प्रकार की की ध्वनि । उ०—हैं बहक रही चिड़ियाँ टी बी टी—टुट्टुट्टु । युगांत, पृ० १६ ।

टुटना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टूटना' । उ०—फिर फिर चितु उत हीं रहतु टुटी साज की लाव । भंग भंग छत्रि भीर में भयो और की नाव ।—बिहारी २०, दो० १० ।

टुटना^२—वि० [हि०] [वि० स्त्री० टुटनी] टूटनेवाला ।

टुटनी—संज्ञा स्त्री० [हि० टोटी] आरी या बड़बुके की पतली नली ।
छोटी टोटी ।

टुटपुँजिया—वि० [हि० टूटी + पूंजी] थोड़ी पूंजी का । जिसके पास किसी काम में लगाने के लिये बहुत थोड़ा धन हो ।

टुटकूँ—संज्ञा पुं० [अनु०] छोटी पंहुकी । छोटी कास्ता ।

मुहा०—टुटकूँ सा = धकेला । एकाकी ।

टुटकूँ टूँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पंहुकी के बोलने का शब्द । पेड़की या फास्ता की बोली ।

टुटकूँ टूँ—वि० १ धकेला । एकाकी । जैसे,—सब लोग अपने अपने घर गए हैं, मैं ही टुटकूँ टूँ रह गया हूँ । २. हुबला पतला । कमजोर । जैसे,—बेचारे टुटकूँ टूँ भावमी कहाँ तक करे ।

टुटहा—वि० [हि० टूटना] [वि० स्त्री० टूटही] १. टूटा हुआ । २. टूटे (हाथ आदि) वाला । ३. आतिथ्यहीन ।

टुटाना—वि० प्र० [हि० टूटना का प्रेरणा०] टूटने के लिये प्रेरित करना । टुटवा देना । उ० बरमे को बारण के पक्ष से, काजे तारे की टुटा दिया ।—प्रबन्धना, पृ० ३८ ।

टुटाना—संज्ञा स्त्री० [देश०] बमड़ा मझा हुआ एक बाजा ।

टुटियल—वि० [हि० टूट + इयल (प्रत्यय०)] १. टूटा फूटा हुआ या टूटने फूटनेवाला । जीर्णोद्धार । २. कमजोर । निर्बल ।

टुटुहा—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिट्ठिया का नाम ।

टुटुहा—वि० [हि० टूट + एहा (प्रत्यय०)] टूटा हुआ ।—(सग०) ।

टुटना—वि० प्र० [हि०] दे० 'टूटना' । उ०—पागो पहारे पुहवि कम्प गिरि सेहर टुटुह ।—कीर्ति, पृ० १०२ ।

टुकी—संज्ञा स्त्री० [हि० तुडि] १. नाभि । २. डोरी ।

टुकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टुकड़ी] टुकड़ी । डली ।

टुनकी—संज्ञा पुं० [देश०] बार बार मूत्रलाव होने और उसके साथ थालु गिरने का रोग ।

टुनका—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक परदार कीड़ा जो पाव को हाथि पहुँचाता है ।

टुनगा—संज्ञा पुं० [सं० तनु (= पतला) + अण (= धगला) - तन्वण] [स्त्री० टुनगी] बाल या टहनी के सिरे का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं । टहनी का धगला भाग ।

टुनगी—संज्ञा स्त्री० [हि० टुनगा] बाल या टहनी के सिरे पर का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं । टहनी का धगला भाग ।

टुनटुना—संज्ञा पुं० [देश०] मैदे का बना हुआ एक बमकीन पकवान जो मैदे की चिकना लकी यत्तियों को घी में तलकर बनाया जाता है ।

टुनटुना—वि० प्र० [हि० टुनटुन] घंटियों के बजने की आवाज । टुनटुन की ध्वनि । उ०—और ध्वनि ? कितनी न जाने धटियाँ, टुनटुनाती थी, न जाने शंस किनने ।—हरी वास० पृ० २० ।

टुनहाया—संज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० टुनहाई] दे० 'टोनहाया' ।

टुनाका—संज्ञा स्त्री [सं०] तालमूली ।

टुनियाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] मिट्टी का टोंटीदार बरतन ।

टुनिहाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोनहाई' । उ०—टुनिहाई सब टोष में रही जु सीति कहाय । सुती ऐँचि पिय भाप स्यों करी प्रबोखिल भाइ ।—बिहारी (शब्द०) ।

टुनिहाया—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोनहाया' ।

टुन्ना—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] वह नाल जिसमें फल लगते हैं और सटकते हैं । जैसे, कदवू का टुन्ना ।

टुपकना—वि० प्र० [अनु०] १. धीरे से काटना या डंक मारना । २. किसी के विरुद्ध धीरे से क्रोध कह देना । चुगली खाना । अवाधित रूप से बीच में पड़ना ।

संयो० क्रि०—देना ।

टुकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टूटना] गोता । डुब्बी । उ०—टुकी देख पाय में, बिठो हँकेई ।—दादू०, पृ० ६७ ।

टुमकना—वि० प्र० [अनु०] दे० 'टपकना' ।

टुम्मा—संज्ञा पुं० [देश०] खपए पाने की एक गैरमामूली रसीब ।

टुरन—वि० प्र० [पं० टुर] चलना । उ०—शिव शक्ति सरोवरि संत समाने, फिरन टुरन के गवन मिटाने ।—प्राण०, पृ० ६५ ।

टुरी—संज्ञा पुं० [?] १. टुकड़ा । डली । दाना । रखा । कण । २. मोटे घनाज का दाना । ज्वार, बाजरे आदि का दाना ।

टुलकना—वि० प्र० [हि०] दे० 'टुलकना' ।

टुलड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो पूरबी बंगाल और असम में होता है ।

टुसकना—वि० प्र० [हि०] दे० 'टसकना' ।

टूँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पादने का शब्द ।

टूँक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टुक' ।

टूँगना—वि० सं० [हि० टूंगना] १. (चोपायों का) टहनी के सिरे की कोमल पत्तियों को दाँत से काटना । कुतरना । २. थोड़ा सा काटकर खाना । कुतरकर चबाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—लेना ।

टूँगा—वि० [सं० टूङ्ग] ऊँचा ।

टूँटा—वि० [हि०] जिसके हाथ टूटे हुए या खराब हों । उ०—टूँटा पकरि उठावे पर्वत पंगुल करे नृप्य प्रह्लाद ।—सुंदर पं०, भा० २, पृ० ५०८ ।

टूँक—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] [स्त्री० टूँकी] १. मच्छड़, मक्खी, टिड्डे आदि कीड़ों के मुँह के भाग निकली हुई बाल की तरह जो पतली पत्तियाँ जिन्हें बँसाकर वे रक्त प्रावि चूसते हैं । २. जो, गेहूँ आदि की बाल में जाने के कोश के सिरे पर चिकना हुआ बाल की तरह का पतला नुकीला अवयव । सीग । सीगुर ।

टूँकी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. जो, गेहूँ, धान आदि की बाल में दानों के खोलों के ऊपर निकली हुई बाल की तरह पतली मोब । सीगा । २. ढोंड़ी । नाभि । ३. गाजर, मूली आदि की नोक । ४. किसी वस्तु की दूर तक निकली हुई नोक ।

दूधरा—वि० [देश०] वह असहाय बालक जिसकी माँ मर गई हो ।

टूक़ा—संज्ञा पुं० [सं० स्तोत्र] टुकड़ा । खंड । उ०—तिहि मारि करै ततकाल टूक ।—ह० रासो, पृ० ४८ ।

यौ०—टूक टूक । उ०—मन को माकं पटक के, टूक टूक होइ जाय ।—कबीर सा०, पृ० ५५ ।

मुहा०—दो टूक करना = स्पष्ट करना । किसी प्रकार का भेद न रहने देना । = दो टूक जवाब देना = स्पष्ट जवाब देना । साफ साफ नकार देना ।

टूकड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टुकड़ा' । उ०—टूकड़ा टूकड़ा होई जावे ।—कबीर० रे०, पृ० २३ ।

टूकरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टुकड़ा' ।

टूका—संज्ञा पुं० [हि० टूक] १. टुकड़ा । २. रोटि का टुकड़ा । उ०—केचित् घर घर माँगहि टूका । बासी कुसी छला चुका ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ११ । ३. रोटि का चौथाई भाग । ४. मिठाई । मीठा । उ०—बरतन राख लगाय चाह भर, खाय घरन के टूका ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० १४ ।

क्रि० प्र०—माँगना ।

टूकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टूक] १. टूक । खंड । टुकड़ा । २. अँगिया के मुलकट के ऊपर की चकती ।

टूक्यो—संज्ञा पुं० [(हि०)] भालू ।

टूट^१—संज्ञा स्त्री० [सं० भुट्टि, हि० टूटना] १. वह अंश जो टूटकर अलग हो गया हो । खंड । टूटन ।

संयो० क्रि०—जाना ।

यौ०—टूटफूट ।

२. टूटने का माह । ३. लिखावट में वह भूल से छूटा हुआ शब्द या वाक्य जो पीछे से किनारे पर लिख दिया जाता है । उ०—घो बिनती पँबितन मन भजा । टूट सँवारहु मेटवहु सजा ।—जायसी (शब्द०) ।

टूट^२—संज्ञा पुं० टोटा । घाटा । कमी ।

मुहा०—टूट में पड़ना = घाटे में पड़ना । हानि उठाना । कमी होना । उ०—टूट में जाय पड़ नहीं कोई । टूटकर भी कमर न टूट सके ।—सुभते०, पृ० ४७ ।

टूटदार—वि० [हि० टूटना] टूटैवाला । जोड़ पर से खुलने बंद होने-वाला (कुर्सी, टेबुल आदि) ।

टूटना—क्रि० घ० [सं० भुट] १. किसी वस्तु का आघात, दबाव या झटके के द्वारा दो या कई भागों में एकबारगी विभक्त होना । टुकड़े टुकड़े होना । खंडित होना । भग्न होना । जैसे,—छड़ी टूटना, रस्सी टूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

यौ०—टूटना फूटना ।

विशेष—'टूटना' और 'फूटना' क्रिया में यह अंतर है कि फूटना खरी वस्तुओं के लिये बोला जाता है, विशेषतः ऐसी जिनके भीतर प्रवकाश या खाली जगह रहती है । जैसे, चूड़ा

४-३०

फूटना, बरतन फूटना, खपड़े फूटना, सिर फूटना । सक्की आदि चीमड़ वस्तुओं के लिये 'फूटना' का प्रयोग नहीं होता । पर फूटना के स्थान पर पश्चिमी हिंदी में 'टूटना' का प्रयोग होता है, जैसे, चूड़ा टूटना ।

२. किसी अंग के जोड़ का उखड़ जाना । किसी अंग का चोट खाकर ढीला घोर बेकाम हो जाना । जैसे,—हाथ टूटना, पैर टूटना । ३. किसी लगातार चलनेवाली वस्तु का रुक जाना । चलते हुए क्रम का अंग होना । सिलसिला बंद होना । जारी न रहना । जैसे,—पानी इस प्रकार बिराघो कि धार न टूटे । ४. किसी घोर एकबारगी वेग से जाना । किसी वस्तु पर झपटना । झुकना । जैसे, चील का माँस पर टूटना, बच्चे का खिलौने पर टूटना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

५. अधिक समूह में घाना । एकबारगी बहुत सा घा पड़ना । पिल पड़ना । जैसे,—दुकान पर ग्राहकों का टूटना, बिपत्ति या आपत्ति टूटना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

मुहा०—टूट टूटकर बरसना = बहुत अधिक पानी बरसना । मूसलाधार बरसना ।

६. दल बाँधकर महुसा आक्रमण करना । एकबारगी बाधा करना । जैसे, फौज का दुश्मन पर टूटना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

७. घनायास कहीं से आ जाना । अकस्मात् प्राप्त होना । जैसे,—दो ही महीने में इतनी संपत्ति कहाँ से टूट पड़ी ? उ०—आयो हमारे मया करि मोहन मोकों तो मानो महाविधि टूटी ।—देव । (शब्द०) । ८. पुण्य होना । प्रलय होना । श्रुत होना । मेल में न रहना । जैसे, पंक्ति से टूटना, गवाह का टूट जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

९. संबंध छूटना । लगाव न रह जाना । जैसे, नाता टूटना । मित्रता टूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१०. दुर्बल होना । कृश होना । दुबला पड़ना । क्षीण होना । जैसे,—(क) वह खाने बिना टूट गया है । (ख) उसका सारा बल टूट गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—(कुर्पे का) पानी टूटना = पानी कम होना ।

११. घनहीन होना । कंगाल होना । बिगड़ जाना । जैसे,—इस रोजगार में बहुत से महाजम टूट गए ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१२. चलता न रहना । बंद हो जाना । किसी संस्था, कार्यालय आदि का न रह जाना । जैसे, स्कूल टूटना, बाजार टूटना, कोठी टूटना, मुकदमा टूटना

संयो० क्रि०—जाना ।

!

१३. किसी स्थान, जैसे गढ़ यादि का शत्रु के अधिकार में जाना । जैसे, किना टूटना । उ०—मेवनाद तहें करव सराई । टूट न द्वार परब कठिनाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१४. बपए का बाकी पड़ना । बसुल न होना । जैसे,—अधी हिसाब साफ नहीं हुआ, हमारे (०) टूटते हैं । १५. टोटा होना । बाटा होना । हानि होना । १६. शरीर में ऐठन या तनाव बिगड़ हुए पीड़ा होना । जैसे,—बुलार बढ़ने पर जोड़ जोड़ टूटता है ।

महा०—बदन या धंग टूटना = धंगड़ाई जाना ।

१७. पेड़ों से फल का तोड़ा जाना । फलों का इकट्ठा किया जाना । फल उतरना । जैसे, धाम टूटना ।

दूटी^१—वि [हि० टूटना] [वि० बी० टूटी] १. टुकड़े किया हुआ । भग्न । ललित ।

यो०—टूटा फूटा = बीछा । बिचम्मा ।

मुहा०—टूटी फूटी बबान, बात या बोली = (१) असंबद्ध वाक्य । ऐसे वाक्य जो व्याकरण से शुद्ध और संबद्ध न हों । जैसे, टूटी फूटी बबानी । उ०—क्या कहे हूँ विल गरीब जियार । टूटी फूटी बबान है प्यारे ।—वि० मा० । २. असंगत वाक्य । उ०—गीत, पित कफ कंठ विरोधे रसना टूटी फूटी बात ।—सुर (शब्द०) । टूटी बाहु नसे पड़ना = अपाहिज के निर्वाह का भार अपने ऊपर पड़ना । किसी संबंधी का लचं अपने जिम्मे होना ।

२. दुबला । कमजोर । क्षीण । शिथिल । ३. विघ्न । दरिद्र । बीन ।

दूटी^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोटा' । उ०—कठ भयोपार सहज है सोदा, टूटा कबहुं न परता ।—कबीर श०, मा० ३, पृ० १० ।

दूटा फूटा—वि० [हि० टूटना + फूटना] बिगड़ा हुआ । जिसकी हानत बुरी हो गई हो । उ०—आप भी सही दूटे फूटे नबाबों में हैं ।—किशोरा०, भा० ३, पृ० १३३ ।

दूठना^३—क्रि० प्र० [सं० तुष्ट, प्रा० तुष्ट, हि० टूट + ना (प्रत्य०)] तुष्ट होना । प्रसन्न होना । उ०—हमसों मिले बसं हावक विन चारिष तुम सों दूठे । सुर आपने प्रानन खेलें ऊषव खेलें कठे ।—सुर (शब्द०) ।

दूठनि^४—संज्ञा बी० [हि० दूठना] संतोष । तुष्टि । प्रसन्नता । उ०—ठुमुक ठुमुक पन बरबि बरनि करकरनि सुहाई । अवनि मिलनि कठवि दूठनि किछकनि अवलोकनि बोलनि बरनि न जाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

दूनरोटी—संज्ञा बी० [प्र० टाउन इपूटी] दुनी ।

दूनार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दोना' ।

दूम—संज्ञा बी० [अनु० टुन टुन] गहना पाता । धातुवस्तु ।

यो०—दूमडाम = (१) गहना पाता । वस्त्राभूषण । (२) बनाव सिंगार । दूम छल्ला = छोटा मोटा गहना । साधारण गहना ।

२. मुंदर स्त्री । ३. बनी स्त्री । मालदार स्त्री । ४. नीची । (बाजाक) ५. बालक और पतुर बावनी । ६. उकसाने या खोदने की क्रिया । भटका । बक्का ।

मुहा०—दूम देना = कबूतर को खतरी पर से उड़ाना ।

७. ताना । व्यंग्य ।

क्रि० प्र०—दूम भारना या खोदना = ताना मारना ।

दूमना—क्रि० स० [अनु०] १. बक्का देना । भटका देना । खोदना । २. ताना मारना । व्यंग्य बोलना ।

दूरनामेंट—संज्ञा पुं० [प्र० दूरनामेंट] खेल जिनमें जीतनेवालों को इनाम मिळता है ।

दूला^१—संज्ञा पुं० [प्र०] घोड़ा जिसकी सहायता से कोई काम किया जाय ।

दूला^२—संज्ञा पुं० [प्र० दूल] ऊँचे पावों की छोटी चौकी जिसपर लड़के बैठते हैं या कोई चीज रखी जाती है । ठिपाई ।

दूसा^१—संज्ञा पुं० [सं० तुष (= सूसी) ?] १. मंदार का फल । डोडा । २. रेखा । फुचड़ा । गूत । ३. पक्कड़ का फूल । पाकर का फूल । ४. पतझड़ के बाद टहनियों के सिरे पर पतियों का संविष्ट मुकीला धाकार जो नीम, पाकर यादि वृक्षों में मिलता है ।

दूसा^२—संज्ञा पुं० [देश०] टुकड़ा । लंड ।

दूसी^१—संज्ञा बी० [हि० दूसा] कली । बिना खिला हुआ फूल ।

टेंकिका—संज्ञा बी० [सं० टेङ्किका] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक ।

टेंकी—संज्ञा बी० [सं० टेङ्की] १. शुद्ध राग का एक भेद । २. एक प्रकार का नृत्य ।

टेंपरेचर—संज्ञा पुं० [प्र०] शरीर या किसी स्थान की उष्णता या गर्मी का माप जो थर्मामीटर से जाना जाता है । तापमान । जैसे,—(क) सबेरे उसका टेंपरेचर लिया था; १०२ डिग्री बुलार था । (ख) इस बार हलाहाबाद में ११८ डिग्री टेंपरेचर हो गया था ।

क्रि० प्र०—लेना ।—होना ।

टें—संज्ञा बी० [अनु०] तोते की बोली । सुए की बोली ।

यो०—टें टें ।

मुहा०—टें टें = व्यय की बकवाद । हुज्जत । टें होना या बोलना = उसी तरह बटपट मर जाना जिस प्रकार बिल्खी के पकड़ने पर तोता एक बार टें शब्द निकालकर मर जाता है । भट भाण छोड़ देना । मर जाना । न बचना ।

टेंगड़—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेंगरा' ।

टेंगड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेंगरा' ।

टेंगन^३—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] टेंगरा मछली । उ०—संध सुगंध धरे जल बाड़े । टेंगन मुझे तोय सब काड़े ।—जायसी (शब्द०) ।

टेंगना^४—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेंगरा' ।

टेंगर—संज्ञा बी० [सं० तुण्ड (= एक मछली)] एक प्रकार की मछली ।

विशेष—यह टेंगरा ही के तरह की पर उससे बहुत बड़ी अर्थात् दो ढाई हाथ तक लंबी होती है । टेंगरा की तरह इसे भी काटे होते हैं ।

टेंगरा—संज्ञा बी० [सं० तुण्ड (= एक प्रकार की मछली)] एक प्रकार की मछली ।

विशेष—यह भारत के अनेक भागों में, विशेषकर अवध, बिहार और बंगाल के उत्तर के जलाशयों में पाई जाती है। यह डेढ़ बालिशत लंबी तथा सफेद या कुछ कासापन लिए बादामी होती है। इसके शरीर में सेहरा नहीं होता और इसके मुँह के किनारे लंबी मूँछें होती हैं। इसके शरीर में तीन काँटे होते हैं, दो अगल बगल और एक पीठ में। झुड़ होने पर यह इन काँटों से मारती है। सबसे बड़ी विलक्षणता इस मछली में यह है कि यह मुँह से गुनगुनाहट के ऐसा शब्द निकालती है।

टेंडुना—संज्ञा पुं० [सं० प्रयुक्तान्] [ली० टेंडुनी] घुटना।

टेंडुनी—संज्ञा ली० [हि०] दे० 'टेंडुना'।

टेंडनी—संज्ञा पुं० [हि० टेक] लम्बा। टेक। चाँड़

टेंट—संज्ञा ली० [हि० टट + ऐठ] धोती की वह मंडलाकार ऐठन जो कमर पर पड़ती है और जिसमें खोग कभी कभी रुपया पैसा भी रखते हैं। मुरी।

मुहा०—टेंट में कुछ होना = पास में कुछ रुपया पैसा होना।

टेंट—संज्ञा ली० [हि० टेंट] १. कपास की डोढ़। कपास का डोढ़ा जिसमें से रुई निकलती है। २. करील का फल। ३. करील। ४. पशुओं के शरीर पर का ऐसा चाव जो ऊपर से देखने में सुला जान पड़े पर जिसमें से समय समय पर रक्त बहा करे। ५. दे० 'टेंटर'।

टेंटड़—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेंटर'।

टेंटर—संज्ञा पुं० [देश०] रोग या चोट के कारण प्राँस के डेले पर का उभरा हुआ मांस। टेंडर।

क्रि० प्र०—निकलना।

टेंटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पत्ती।

विशेष—इसकी चौंच बालिशत भर की और पैर डेढ़ हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसका बदन चितकबरा पर चोंच काली होती है।

टेंटार—संज्ञा पुं० [हि० टेंट + आर (प्रत्य०)] दे० 'टेंटा'।

टें टिहा—वि० [हि०] दे० 'टेंटी'।

टें टिहा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के शत्रिय जो प्रायः बिहार के शाहाबाद जिले में पाए जाते हैं।

टेंटी—संज्ञा ली० [हि० टेंट] १. करील। उ०—सूर कहो कैसे रुचि माने टेंटी के फल खारे।—सूर (शब्द०)। २. करील का फल। कचड़ा।

टेंटी—वि० [अनु० टें टें] बात बात में बिगड़नेवाला। व्यर्थ झगड़ा करनेवाला।

टेंडु—संज्ञा पुं० [सं० टुण्टक] श्योनाक। सोनापाठा।

टेंडवा—संज्ञा पुं० [देश०] १. गला। घेंदू। चीची। २. मंगूठा।

टें टें—संज्ञा ली० [प्रमु०] १. तोठ की बोली। २. व्यर्थ की बकबास। हज्जत। शृष्टतापूर्ण बात। जैसे,—कहाँ राम राम कहाँ टें टें।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

मुहा०—टें टें लगाना = बकबास करना। अनावश्यक बोलना।

उ०—तुलसी इन बातों में क्या बखल है। नाहक बिन नाहक की टें टें लगाई है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३७१।

टेंड—संज्ञा ली० [हि०] दे० 'टिडसी'।

टेंड(पु)—संज्ञा ली० [हि०] दे० 'टेव'। उ०—गुन गोपाल उचारत रसना, टेव एह परी।—संतवाणी०, पृ० ४८।

टेउ—संज्ञा ली० [हि०] दे० 'टेव'।

टेउकनी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेकन'।

टेउकी—संज्ञा पुं० [हि० टेक] [ली० टेउकी] दे० 'टेकन'।

टेउकी—संज्ञा ली० [हि० टेक] १. किसी वस्तु को लुढ़कने या गिरने से बचाने के लिये उसके नीचे लगाई गई वस्तु। २. जुलाहों की वह लकड़ी जो ताने की डोढ़ी में इसलिये लगाई जाती है जिसमें ताना जमीन पर न गिरे, ऊपर उठा रहे। ३. साधुओं की सभारी।

टेक—संज्ञा ली० [हि० टिकना] १. वह लकड़ी या लम्बा जो किसी भारी वस्तु को झट्पाए या टिकाए रखने के लिये नीचे या बगल से झिड़ाकर लगाया जाता है। चाँड़। धूनी। यम।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. टिकने या भार देने की वस्तु। धोठंगने की चीज। ठासना। सहारा। ३. आश्रय। अवलंब। उ०—हैं मुद्रिका टेक तेहि अवसर सुचि समोरसुत पैर गहे री।—तुलसी (शब्द०)। ४. बैठने के लिये बना हुआ ऊँचा चबूतरा या बेदी। बैठने का स्थान। जैसे, राम टेक। ५. ऊँचा टीला। छोटी पहाड़ी। ६. चिता में टिका या बैठा हुआ संकल्प। मन में ठानी हुई बात। दृढ़ संकल्प। मज्ज। हठ। जिद। उ०—सोई गोसाईं जो बिधि गति छेकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—टेक पहना = दे० 'टेक पकड़ना'। टेक पकड़ना = जिद पकड़ना। हठ करना। टेक निभाना = (१) जिस बात के लिये आग्रह या हठ हो उसका पूरा होना। (२) प्रतिज्ञा पूरी होना। टेक निबाहना = दे० 'टेक निभाना'। टेक निभाना = प्रतिज्ञा या आन का पूरा होना। टेक निभाना = प्रतिज्ञा पूरी करना। टेक रहना = दे० 'टेक निभाना'।

७. वह बात जो अभ्यास पड़ जाने के कारण मनुष्य अवश्य करे। बान। धाहत। संस्कार।

क्रि० प्र०—पड़ना।

८. गीत का वह टुकड़ा जो बार बार गाया जाय। स्थायी। १. पृथ्वी की वोक जो पानी में कुछ दूर तक चली गई हो।—(लक्ष०)।

टेकड़ी—संज्ञा ली० [हि० टेक + डी (प्रत्य०)] १. टीला। ऊँचा घुस्स। २. छोटी पहाड़ी। उ०—टेकड़ियों के पार, कहो कैसे चढ़कर घाते हो?—हिम०, पृ० १०१।

टेकन—संज्ञा पुं० [हि० टेकना] [ली० टेकनी] वह वस्तु जो भारी या लुढ़कनेवाली वस्तु को टिकाए रखने के लिये उसके नीचे

या वस्त्र में धगाई जाय। अदृक्म। रोक। जैसे,—घड़े के पीछे टेकन लगा दो।

क्रि० प्र०—लाना।

टेकना^१—क्रि० स० [हि० टेक] । लड़े लड़े या बैठ बैठ श्रम से बचने लिये शरीर के बोझ को किसी वस्तु पर थोड़ा बहुत ढाखना। सहारे के लिये किसी वस्तु को शरीर के साथ भिड़ाया। सहारा लेना। ढाखना लेना। धाश्रय बनाना। जैसे, दीवार या खंभा टेककर खड़ा होना।

संयो० क्रि०—लेना।

२. किसी धंग को सहारे आदि के लिये कही टिकाना। ठहराना या रखना।

मुहा०—घुटने टेकना = पराजय स्वीकार करना। हार मानना। माथा टेकना = प्रणाम करना। दण्डवत् करना।

३. चलने, चढ़ने, उठने बैठने आदि में शरीर का कुछ भार देने के लिये किसी वस्तु पर हाथ रखना या उसकी हाथ से पकड़ना। सहारे के लिये धामना। जैसे, चारपाई टेककर उठना बैठना, लाठी टेककर चलना। उ०—(क) गूर प्रभु कर सेज टेकत कबहुँ टेकत डहरि।—सूर (शब्द०)। (ख) नाचत गावत गुन की गानि। समित भए टेकत पिय पानि।—सूर (शब्द०)। ४. चलने में गिरने पड़ने से बचने के लिये किसी का हाथ पकड़ना। हाथ का सहारा लेना। उ०—गृह गृह गृहद्वार फिरयो तुमको प्रभु छीटे। धंष धंष टेक जलै क्यों न परे गाढ़े।—सूर (शब्द०)। † (५) १. टेक करना। हठ करना। ठानना। उ०—गोह गोसाईं जेइ दिधि गति छेकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।—तुलसी (शब्द०)। ६. किसी को कोई काम करते हुए बीच में रोकना। पकड़ना। उ० (क) रोखाइ मातृ पिता भी भाई। कोउ न टेक जो कत पलाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) जनहुँ प्रौटि कै मिलि गए तस दूनो भए एक। कचन कसत कसौटी हाथ न कोऊ टेक।—जायसी (शब्द०)।

टेकना^२—संज्ञा पु० [‘टेक’] एक प्रकार का जंगली धान। चनाब।

टेकनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टेकना] टेकने का आधार, छड़ी आदि। उ०—उन्हीं की टेकनी के सहारे वे चल सकते हैं।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० ३७३।

टेकनी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टेकन + ई (प्रत्यय०)] दे० ‘टेकन’।

टेकर—संज्ञा पु० [हि० टेक] [ओ० टेकरी] १. टीला। उठी हुई धूमि। २. छोटी पहाड़ी।

टेकरा—संज्ञा पु० [हि० टेक] दे० ‘टेकर’।

टेकरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० ‘टेकर’। उ०—यमुना अपनी घोती लेकर बजरे से उतरी और बालु की एक ऊँची टेकरी के कोने में बसी गई।—कंकाल, पृ० ८८।

टेकला^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] धुन। रट। उ०—बन बन पुकारे एकला, डारू गले बिच मेखला। एक नाम की है टेकला, सोहसत की तई में क्या करूँ।—कबीर (शब्द०)।

टेकली—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] किसी चीज को उठाने या गिराने का औजार।—(लष०)।

टेकान—संज्ञा पु० [हि० टेकना] १. टेक। वह लकड़ा जो किसी गिरनेवाली धरन या छत आदि को संभालने के लिये उसके नीचे खड़ी कर दी जाती है। चाड़। २. ऊँचा बबूतरा या खंभा जिसपर बोझावाले अपना बोझा झटकाकर थोड़ी देर सुस्ता लेते हैं। धरम ढोहा।

टेकाना^१—क्रि० स० [हि० टेकना] १. किसी वस्तु को कहीं ले जाने में सहायता देने के लिये पकड़ना। उठाकर ले जाने में सहारा देने के लिये धामना। जैसे,—चारपाई को टेका लो, भीतर फार दें।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. उठने बैठने या चलते फिरने में सहायता देने के लिये धामना। जैसे,—ये इतने कमजोर हो गए हैं कि दो आदमी टेकाकर उन्हें भीतर बाहर ले जाते हैं।

टेकानी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टेकना] पहिए को रोकने की कील। किल्ली।

टेका—संज्ञा पु० [हि० टेक] १. कही हुई बात पर जमा रहनेवाला। प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला। २. पड़नेवाला। हठी। दुराग्रही। जिद्दी। ३. आघार। टेक। सहारा। उ०—कहि बल्ली टेकी धूनी है, कहि घास कड़ब की पूली है।—राम० धर्म०, पृ० ६२।

टेकुआ^१—संज्ञा पु० [सं० तर्कु, प्रा० टक्कुम] चरखे का तकला जिसपर सूत धातकर लपेटा जाता है। तकुआ।

टेकुआ^२—संज्ञा पु० [हि० टेक] १. टिकाने या मड़ाने की वस्तु। अदृक्म। २. सहारे की वह लकड़ी जो एक पहिया निकाल लेने पर गाड़ी को ऊपर ठहराए रखने के लिये लगाई जाती है।

टेकुरा^१—संज्ञा पु० [‘टेक’] पान।

टेकुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्कु, हि० टेकुआ] १. फिरकी लगा हुआ घूमा जिसके घुमने से फेंसी हुई रुई का सूत कतकर लिपटता जाता है। सूत कातने का तकला। २. बाँस की बाँड़ी के एक छोर पर लाह लगाकर बनाई हुई जुलाहों की फिरकी जिसमें रेशम फेंसाया रहता है। ३. रस्सी बटने का तकला या औजार। ४. चमारों का सुआ जिससे वे तागा खींचते और निबालते हैं। ५. गोप नाम का गहना बनाने के लिये सुनारों की सलाई जिससे तार खींचकर फंदा दिया जाता है। ६. मूर्ति बनानेवालों का चिपटी धार का एक औजार जिससे वे मूर्ति का तल साफ और चिकना करते हैं।

टेकुआ^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० ‘टेकुआ’। उ०—टेकुआ साधत जो बनि भावे, मंहगे मोल बिकाय।—कबीर श०, भा० २, पृ० ४८।

टेघरना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० ‘टिघलना’।

टेचिन—संज्ञा पु० [धं० स्टीचिंग] एक प्रकार का काँटा जिसके एक ओर माथा होता है और दूसरी ओर बिबरी होती है। यह

किसी चीज को बढ़ाने या घटाने के काम में आता है ।
—(शब्द०) ।

टेडका—संज्ञा पुं० [सं० ताटङ्क] काब में पहनने का एक गहना ।

टेडुआ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेंदुआ' । उ०—घड़ी घब बनाने की बात तो धीर है पूरी दास्तान भी नहीं सुनी धीरे टेडुए पर चढ़ बैठे ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १६१ ।

टेडही—संज्ञा स्त्री० [हि० टेड़ा] टेढ़ी लकड़ी की छड़ी । उ०—
लिये हाथ में ढाल टेडही ।—ग्राम्या, पृ० ४४ ।

टेढ़—संज्ञा स्त्री० [हि० टेड़ा] १. टेढ़ापन । वक्रता । २. झकड़ ।
ऐंठ । उजड़पन । नटखटी । शरारत ।

मुहा०—टेढ़ की सेना = नटखटी करना । शरारत करना ।
उजड़पन करना ।

टेढ़^२—वि० दे० 'टेड़ा' ।

टेढ़बिड़ंगा—वि० [हि० टेड़ा + बिड़ंगा] टेढ़ामेढा । टेढ़ा और बिड़ंगा ।
बेबोल ।

टेढ़ा—वि० [सं० तिरस् (= टेड़ा)] [वि० स्त्री० टेढ़ी] १. जो लगातार
एक ही दिशा को न गया हो । इधर उधर झुका या घूमा
हुआ । फेर लाकर गया हुआ । जो सीधा न हो । वक्र । कुटिल
जैसे, टेढ़ी लकीर, टेढ़ी छड़ी, टेढ़ा रास्ता ।

यौ०—टेढ़ा मेढ़ा = जो सीधा और सुधील न हो । टेढ़ा बाँका =
नोक झोंक का । बना ठना । छैल चिकनिया ।

मुहा०—टेढ़ी चितवन = तिरछी चितवन । भावभरी दृष्टि ।

२. जो अपने आधार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो ।
जो समानांतर न गया हो । तिरछा । ३. जो सुगम न हो ।
कठिन । बँड़ा । फेरफार का । मुश्किल । पेंचोला । जैसे,
टेढ़ा काम, टेढ़ा प्रश्न, टेढ़ा मामला । उ०—मगर शेरों का
मुकाबिला जरा टेढ़ी खीर है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २४ ।

मुहा०—टेढ़ी खीर = मुश्किल काम । कठिन कार्य । दुष्कर
कार्य ।

बिरोध—इस मुहा० के संबंध में लोग एक कथा कहते हैं । एक
भ्रादमी ने एक ग्रंथ से पूछा 'खीर खाओगे ?' । ग्रंथ ने पूछा
'खीर कैसी होती है ?' उस भ्रादमी ने कहा 'सफेद' । फिर
ग्रंथ ने पूछा 'सफेद कैसा ?' । उसने उत्तर दिया 'जैसा बगला
होता है ?' इसपर उस भ्रादमी ने हाथ टेढ़ा करके बताया ।
ग्रंथ ने कहा—'यह तो टेढ़ी खीर है, न खाई जायगी' ।

४. जो शिष्ट या नम्र न हो । उठत । उग्र । उजड़ु । दुःशील ।
कोपवान् । जैसे, टेढ़ा भावमी, टेढ़ी बात । उ०—टेढ़े भ्रादमी से
कोई नहीं बोलता ।—(शब्द०) ।

मुहा०—टेढ़ा पड़ना या होना = (१) उग्र रूप धारण करना ।
जैसे,—कुछ टेढ़े पड़ोगे तभी रुपया निकलेगा, सीधे से माँगने से
नहीं । (२) झकड़ना । ऐंठना । टरना । जैसे,—बहु जरा सी
बात पर टेढ़ा हो जाता है । टेढ़ी भाँख से देखना = क्रूर दृष्टि
करना । शत्रुता की दृष्टि से देखना । अनिष्ट करने का विचार
करना । बुरा व्यवहार करने का विचार करना । टेढ़ी भाँख
करना = क्रुपित दृष्टि करना । क्रोध की भाँकति बनाव ।

बिगड़ना । टेढ़ी सीधी सुनाना = ऊँची नीची सुनाना । खरी
सोटी सुनाना । भला बुरा कहना । टेढ़ी सुनाना = दे० 'टेढ़ी
सीधी सुनाना' ।

टेढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टेढ़ा] टेढ़ा होने का भाव । टेढ़ापन ।

टेढ़ापन—संज्ञा पुं० [हि० टेढ़ा + पन (प्रत्य०)] टेढ़ा होने का
भाव ।

टेढ़ामेढ़ा—वि० [हि० टेढ़ा + प्रनु० मेढ़ा] जो सीधा न हो ।
टेढ़ा । वक्र ।

टेढ़े—क्रि० वि० [हि० टेढ़ा] सीधे नहीं । घुमाव फिराव के साथ ।
जैसे,—बहु टेढ़े जा रहा है ।

मुहा०—टेढ़े टेढ़े जाना = इतराना । घमंड करना । उ०—(क)
कबहुँ कमला चपल पाय के टेढ़े टेढ़े जात । कबहुँक मग मग धूरि
टटोरत, भोजन को बिललात ।—सूर (शब्द०) । (ख)
जो रहीम प्रोछो बड़ें तो प्रति ही इतरात । प्यादा सों फरजी
भयो टेढ़ो टेढ़ो जात ।—रहीम (शब्द०) ।

टेना^१—क्रि० सं० [हि० टेव + ना (प्रत्य०)] १. किसी हथियार की
धार को तेज करने के लिये पत्थर आदि पर रगड़ना । उ०—
कुबरी करी कुबलि कैकई । कपट छुरी उर पाहन टेई ।—तुलसी
(शब्द०) । २. मूँछ के बालों को खड़ा करने के लिये
ऐंठना । जैसे, मूँछ टेना ।

टेना^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेनी' ।

मुहा०—टेना मारना = दे० 'टेनी मारना' । उ०—करै बिबेक
हुकान ज्ञान का सेना देना । गादी है संतोष नाम का मारे
टेना ।—पलटू०, भा० १, पृ० १०० ।

टेनिया^३—संज्ञा स्त्री० [हि० टनी + इया (प्रत्य०)] दे० 'टेनी' ।
उ०—काहे की बंडी काहे का पलरा काहे की मारी टेनिया ।
—कबीर श०, भा० २, पृ० १५ ।

टेनिस—संज्ञा पुं० [ग्रं०] गेंद का एक प्रकार का अंगरेजी खेल ।

टेनी^४—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी उँगली ।

मुहा०—टेनी मारना = सोदा तोलने में उँगली को इस तरह
घुमाना फिराना कि चीज कम चढ़े । (सोदा) कम तोलना ।

टेनेट—संज्ञा पुं० [ग्रं०] १. किराएदार । २. असामी । पहरेदार ।
रेयत ।

टेप—संज्ञा पुं० [ग्रं०] फीता ।

यौ०—टेप रिकार्डर = रिकार्ड करनेवाला वह यंत्र जो बैटरी से
चालित होता है और प्रवचनों को फीते पर रिकार्ड करने के
काम आता है ।

टेपारा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टिपारा' । उ०—प्रकृत प्रति खलित
आल जटिल लाल टेपारो ।—नंद०, ग्रं० पृ० ३६५ ।

टेबलेट—संज्ञा पुं० [ग्रं०] १. छोटी ठिकिया । जैसे, बिबनाइन टेबलेट ।
२. पत्थर, कपड़े आदि का फलक जिसपर किसी की स्मृति
में कुछ लिखा या खुदा रहता है । जैसे,—किसान सभा ने
उनके स्मारक स्वरूप एक टेबलेट लगाना निश्चित किया है ।

टेबिल—संज्ञा पुं० [ग्रं० टेबुल] मेज । उ०—अंगरेजों के साथ एक
टेबिल पर खाना न खाएँगे ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७८ ।

टेबुल^१—संज्ञा पु० [सं०] १. मेज ।

यौ०—टेबुल क्लाथ=मेजपोश ।

२. नकशा । ३. वह जिसमें बहुत से खाने या कोष्ठक बने हों । नकशा । सारिखो ।

टेम^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टिमटिमाना] दीपजिह्वा । दिए की ली । दीपक की उद्योति । लाट । उ०—इयामा की मूरति दीप की टेम में दिखाने लगी ।—इयामा०, पु० १५६ ।

टेम^२—संज्ञा पु० [सं० टाइम] समय । वक्त ।

टेमन—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का साँप ।

टेमा—संज्ञा पु० [देश०] कटे हुए चारे की छोटी म्रिटिया ।

टेर^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तार (= सगीत में ऊँचा स्वर)] १. गाने में ऊँचा स्वर । तान । टोप ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२. बुलाने का ऊँचा शब्द । पुकारने की आवाज । बुलाहट । पुकार । हाँक । उ०—(क) टेर लखन मुनि बिकल जानकी प्रति आतुर उठि भाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) कुश के टेर सुनी जब फूल फिरे बागुधन ।—केशव (शब्द०) ।

टेर^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तार (= तै करना)] निर्वाह । गुजर ।

मुहा०—टेर करना = गुजारना । बिताना । काटना । जैसे,—जिंदगी टेर करना ।

टेर^३—वि० [सं०] तिरछी निगाह का । ऐँचाताना (की०) ।

टेरक—वि० [सं०] ऐँचाताना (की०) ।

टेरना^१—क्रि० सं० [हि० टेर + ना (प्रत्य०)] १. ऊँचे स्वर से गाना । तान लगाना । २. बुलाना । पुकारना । हाँक लगाना । उ०—(क) भई साँभ जननी टेरत है कहाँ गए चारो भाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) फिरि फिरि राम सीय तन हेरत । तृषित जानि जल लेन लखन गए, भुज उठाय ऊँचे चढ़ि टेरत ।—तुलसी ।—(शब्द०) ।

टेरना^२—क्रि० सं० [सं० तीरण (= तै करना)] १. तै करना । चलता करना । निवाहना । पूरा करना । जैसे,—थोड़ा सा काम और रह गया है किसी प्रकार टेर ले चलो । २. बिताना । गुजारना । काटना । जैसे,—वह इसी प्रकार जिंदगी टेर ले जायगा ।

संयो० क्रि०—ले चलना । —ले जाना ।

टेरनि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टेरना] टेर । पुकार । उ०—हरि की सी गाइ निबेरनि टेरनि अंबर मेरनि ।—नंद० प्र०, पु० २६ ।

टेरवा—संज्ञा पु० [देश०] हुक्के की नली जिसपर चिलम रखी जाती है ।

टेरा^१—संज्ञा पु० [?] १. डेरा । अंकोल का पेड़ । २. पेड़ों का षड़ । तबा । वृक्षस्तंभ । जैसे, केले का टेरा । ३. शाखा । जैसे,—हाथी के लिये टेरा काटना है ।

टेरा^२—वि० [सं० टेर] ऐँचाताना । टेपरा । भेंगा ।

टेरा^३—संज्ञा पु० [हि० टेरना] बुलावा । उ०—पाखे टेरा

घायो । तब यह सावधान हैं बिचार करने लाग्यो ।—दो सी बावन०, भा० १, पु० २३२ ।

टेराकोटा—संज्ञा पु० [सं०] १. पकी हुई मिट्टी जिससे मूर्तियाँ, इमारतों में लगाने के लिये बेलबूटे, आदि बनते हैं । २. पकी हुई मिट्टी का रंग । ईटकीहुया रंग ।

टेरिऊल—संज्ञा पु० [सं०] टेरलिन और ऊन के मिश्रित धागे या उनसे बना वस्त्र ।

टेरिकाट—संज्ञा पु० [सं० टेरिकाट] टेरलिन और सूत के धागे या उनसे बना हुआ वस्त्र ।

टेरिटोरियल फोर्स—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेन्ट्रल जिसका संबंध अपने स्थान से हो । नागरिक सेना । देशरक्षणी सेना । देशरक्षक सेना ।

विशेष—इन्हे साधारणतः देश के बाहर लड़ने को नहीं जाना पड़ता ।

टेरिलिन—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का कृत्रिम रेशा या उन रेशों से बुना हुआ वस्त्र ।

टेरो^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] टहनी । पतली शाखा । जैसे, नीम की टेरी ।

टेरो^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टेकुरी] दरी बुनने का सूजा ।

टेरो^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक पीधा जिसकी कलियाँ रेंबने और चमड़ा सिक्काने में काम आती हैं । इसे 'बखेरी' और 'कुंती' भी कहते हैं । २. बकम की फली ।

टेरो—संज्ञा स्त्री० [देश०] सरसों का एक भेद । उलटो ।

टेलपेल—संज्ञा स्त्री० [अनु०] टेलठाल । धक्कामुक्की । उ०—हम लोग भी टेल पेलकर रेल पर चढ़ बैठे ।—प्रेमचन०, भा०, २, पु० ११२ ।

टेलर^१—वि० [?] नाम मात्र को । कहने भर के लिये । उ०—उन्हें टेलर रहू कहलाने की अपकीर्ति से बचाना ।—प्रेमचन०, भा० २, पु० २५७ ।

टेलर^२—संज्ञा पु० [सं०] दर्जी । सीमे का काम करनेवाला ।

टेलिग्राफ—संज्ञा पु० [सं०] तार जिसके द्वारा खबरें भेजी जाती हैं । द० तार ।

टेलिग्राफ—संज्ञा पु० [सं०] तार से भेजी हुई खबर । तार ।

टेलिपैथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मानसिक क्रिया जिसके द्वारा दूसरों की भावनाओं का ज्ञान होता है ।

टेलिप्रिटर—संज्ञा पु० [सं०] विद्युत् संचालित वह टाइपराइटर या टंकण यंत्र जिसमें तार द्वारा प्राप्त समाचार आदि अपने आप टंकित होते हैं ।

टेलिफोटोग्राफी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूरवीक्षण यंत्र द्वारा फोटो लेना ।

टेलिफोन—संज्ञा पु० [सं०] वह यंत्र जिसके द्वारा एक स्थान पर कहा हुआ शब्द कितने ही कोस दूर के दूसरे स्थान पर सुनाई पड़ता है ।

विशेष—इसकी साधारण युक्ति यह है कि दो चोंगे लो जिनका मुँह एक ओर कागज, चमड़े या बिस्मूत से मढ़ा हो तथा दूसरी ओर खुला हो । मढ़े हुए चमड़े के बीचोबीच से लोहे का एक खंभा तार से जाकर दोनों चोंगों के बीच सजा हो ।

यदि एक बोंगे में कोई बात कही जायगी और दूसरे बोंगे में (जो दूर पर होगा) किसी का कान बगा होगा तो वह बात सुनाई पड़ेगी । पर यह युक्ति थोड़ी ही दूर के लिये काम दे सकती है । अधिक दूर के लिये बिजली के प्रवाह का सहारा लिया जाता है । चुंबक की एक छड़, जिसमें रेशम (या और कोई ऐसा पदार्थ जिससे होकर बिजली का प्रवाह न जा सके) से लिपटा हुआ तार का तार कमानी की तरह घुमाकर जड़ा रहता है, एक लसी के भीतर बँटाई रहती है । चुंबक के एक छोर के पास जोड़े का एक पत्तर बँधा रहता है । यह पत्तर काठ की खोली में रहता है—जिसका मुँह एक और बोंगे की तरह खुला रहता है । इस प्रकार दो बोंगों की आवश्यकता टेलीफोन में होती है एक बोलने के लिये, दूसरा सुनने के लिये । इन दोनों बोंगों के बीच तार बगा रहता है । जब वायु में उत्पन्न तरंग या कंप मात्र हैं । मुँह से निकला हुआ शब्द बोंगे के भीतर की वायु को कंपित करता है जिसके कारण बँधे हुए लोहे के पत्तर में भी कंप होता है अर्थात् वह धागे पीछे जल्दी जल्दी हिलता है । इस हिलने से चुंबक की शक्ति एक बार घटती और एक बार बढ़ती रहती है । इस प्रकार तार की मंडलाकार कमानी के एक बार एक और दूसरी बार दूसरी और बिजली उत्पन्न होती रहती है । इसी बिजली के प्रवाह द्वारा बहुत दूर के स्थानों पर भी शब्द पहुँचाया जाता है । टेलीफोन के द्वारा स्थल पर हजारों कोस दूर तक की और समुद्र में सैकड़ों कोस तक की कहीं बातें सुनाई पड़ती हैं ।

टेलिविजन—संज्ञा पुं० [ग्रं०] किसी वस्तु, दृश्य या घटना के चित्र को बेतार के तार से या तार द्वारा संप्रेषित करने की वह प्रक्रिया जिससे दूरस्थ व्यक्ति भी उसे तत्काल ज्यों का त्यों देख सुन सके ।

विशेष—टेलिविजन में प्रकाशतरंगों को किसी दृश्य पर से विद्युत् तरंगों में परिवर्तित कर दिया जाता है जो बेतार के तार या तार द्वारा संप्रेषित होती हैं और इसके बाद उनको पुनः प्रकाशतरंगों में परिवर्तित कर दिया जाता है जो टेलिविजन पत्र पर उस दृश्य को चित्रित करती हैं ।

टेलिस्कोप—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह यंत्र जो दूरस्थ वस्तुओं को निकटतर और विद्यावत्तर दिखाने का कार्य करता है ।

टेसी—संज्ञा पुं० [देश०] मछले घाकार का एक पेड़ जिसकी लकड़ी बाल और मजबूत होती है तथा चारपाई, घोजारों के दस्ते आदि बनावे के काम में आती है ।

विशेष—यह पेड़ आसाम, कछार, सिमलूट और चटर्गाँव में बहुत होता है ।

टेव—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] अभ्यास । आदत । बान । स्वभाव । प्रकृति । उ०—(क) सुनु मेरा याकी टेव सरन की, सकुच बेचि सी साई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तुम तो टेव जानतिहि हँहा तऊ मोहि कहि भावै । प्रात उठत मेरे लाल लड़ेतहि माखन रोटी भावै ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।

टेवकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टेकन, टेकन] १. दोनों छोरों पर कुछ दूर तक बाँस की एक चिरी लकड़ी जो जुलाहों की डीड़ी में इसलिये लगी रहती है जिसमें तागा गिरने न पावे । २. नाव के पालों में से सबसे ऊपर का छोटा पाल ।

टेवना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टेना' ।

टेवा—संज्ञा पुं० [सं० टिप्पन] १. जन्मपत्नी । जन्मकुंडली । २. लग्न-पत्र जिसमें विवाह की मिति, दिन, घड़ी आदि लिखी रहती है और जिसे लड़की के यहाँ से लालन के साथ नई से जाकर लड़के के पिता को विवाह से १० या बारह दिन पहले देता है ।

टेवैया—संज्ञा पुं० [हि० टेवना] १. टेनेवाला । सिल्ली पर बार तेज करनेवाला । २. जोला करनेवाला । तीक्ष्ण या पैना करनेवाला । उ०—जहाँ जमजातन और नदी अट कोटि जलचर दंत टेवैया ।—तुलसी (शब्द०) ।

टेसुआ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेसु' ।

टेसू—संज्ञा पुं० [सं० किशुक] १. पलाश का फूल । ढाक का फूल ।

विशेष—इसे उबालने से इसमें से एक बहुत अच्छा पीला रंग निकलता है जिससे पहले कपड़े बहुत रंगे जाते थे । दे० 'पलाश' ।

२. पलाश का पेड़ । ३. लड़कों का एक उत्सव । उ०—जे कष कनक कचोरा भरि भरि भेलत तेल फुलेल । तिन केसन को भस्म चढ़ावत टेसु के से खेल ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इसमें विजयावशमी के दिन बहुत से लड़के इकट्ठे होकर घास का एक पुतला सा लेकर निकलते हैं और कुछ गाते हुए घर घर घूमते हैं । प्रत्येक घर से उन्हें कुछ धन या पैसा मिलता है । इसी प्रकार पाँच दिन तक अर्थात् शरद पूर्ण तक करते हैं और जो कुछ भिक्षा मिलती है उसे इकट्ठा करते जाते हैं । पुनो की रात को मिले हुए द्रव्य से लावा, मिठाई आदि लेकर वे बोए हुए खेतों पर जाते हैं जहाँ बहुत से लोग इकट्ठे होते हैं और बलाबल की परीक्षा संबंधी बहुत सी कसरतें और खेल होते हैं । सबके अंत में जावा, मिठाई लड़कों में बँटती है । टेसु के पीत इस प्रकार के होते हैं—इमली के जड़ से निकली पतंग । नौ सी मोती नौ सी रब । रंग रंग की बनी कमान । टेसु आया घर के द्वार । खोजो रानी बंदन किवार ।

टेहना—संज्ञा पुं० [देश०] विवाह के व्यवहार । ब्याह की रीति रस्म ।

टेहुना—संज्ञा पुं० [हि० घटना] घटना ।

टेहुनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कोहुनी' ।

टैंक—संज्ञा पुं० [ग्रं०] १. मोटर की तरह का एक युद्धयान जो मजबूत इस्पात का बना होता है और जिसमें तोपें लगी रहती हैं । २. तालाब ।

टैंटी—वि० [?] चंचल । उ०—पैठत प्रान खरी धनखिली सु नाक चढ़ाई डोलत टैंटी ।—घनानंद, पृ० ३७ ।

टैय—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी कीड़ी जिसकी पीठ साधारण कीड़ी से कुछ चिपटी होती है और उसपर दो चार उभरे हुए बड़े दाने से होते हैं ।

विशेष—इसका रंग नोखापन लिए या बिमकुल सफेद होता है। फेंकने से यह चित अधिक पड़ती है इसी से इसका व्यवहार जुए में अधिक होता है। इसे चित्ती भी कहते हैं।

टैर्यो^१—वि० नाटा धोर हट्ट पुट।

टैक्स—संज्ञा पु० [घं०] कर या महसुब जो राज्य अथवा नगरपालिका अथवा बिना परिषद् या पंचायत की धोर से ज़मीन वस्तु पर लगाया जाय। जैसे, इनकम टैक्स।

टैक्सी—संज्ञा स्त्री० [घं०] किराए पर चलनेवाली मोटर गाड़ी।

टैन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घाम जो चमड़ा मिझाने के काम में आती है।

टैना—संज्ञा पु० [देश०] घाम का पुतला या बंदे पर रखी हुई काली हाड़ी आदि जिन्हें खेतों में पक्षियों को डराने के लिये रखते हैं।

टैनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] भैंसों का झुंड।—(गढ़ेरिए)।

टैरा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टैरा'।

टैरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टैरी'।

टैब्लेट—संज्ञा पु० [घं०] दे० 'टैब्लेट'।

टॉक^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टोक'।

टॉक^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोक'। उ०—उलझन की मोठी रोक टोक, यह सब उसकी है नोक भौंक।—कामायनी, पृ० २९५।

टॉका^३—संज्ञा पु० [सं० स्तोक (= षोड़ा)] १. छोर। सिरा। किनारा। २. नोक। कोना। ३. जमीन जो नदी से कुछ दूर तक गई हो।—(मल्लाह)।

टॉगा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तांगा'।

टॉगू—संज्ञा पु० [देश०] फैलनेवाली एक भाड़ी जिसकी छाल के रेशों से रस्मी बनाई जाती है। जितो। जक।

टॉब—संज्ञा स्त्री० [हि० टोचना] १. सीपन। सिलाई का टीका। २. ढोचने की क्रिया।

टॉचना^१—क्रि० सं० [सं० डहुन] चुमाना। मझाना। धँसाना। ढोचना।

टॉचना^२—संज्ञा पु० [हि० ताना] १. ताना। व्यंग्य। २. उपासना। उजाहना।

टॉट—संज्ञा स्त्री० [सं० तुलह] ठोर। चौक। उ०—मारत टॉट भुजा उछिगावा।—जग० बानी, पृ० ८२।

टॉटरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोटी'।

टॉटा—संज्ञा पु० [सं० तुलह] १. चिट्ठिया की चौक के आकार की निकली हुई कोई वस्तु। २. चौक के आकार के गड़े हुए काठ के डेढ़ दो हाथ लंबे टुकड़े जो घर की दीवार के बाहर की ओर पक्ति में बड़ी हुई छाजन को सहारा देने के लिये लगाए जाते हैं। घोड़िया। ३. पानी आदि ढालने के लिये बरतन में लगी हुई नली।

टॉटी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुलह] १. पानी आदि ढालने के लिये भारी। लोटे आदि में लगी हुई नली जो दूर तक निकली रहती है। तुलतुली। २. पशुओं का धूषन। जैसे, सूअर की टोटी।

टॉस—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टॉस'।

टोआ^१—संज्ञा पु० [सं० तोय (= पानी)] गड्ढा।—(पंजाबी)।

टोआ^२—संज्ञा पु० [सं० तोषम] झंकुर [की०]।

टोआ^३—संज्ञा पु० [हि० टोहना] जहाज या नाव के भागे के भाग पर पानी की बाह्र बेने के लिये बैठनेवाला मल्लाह।

टोआ^४—संज्ञा पु० [हि० टोह] दे० 'टोह'।

टोइयो^१—संज्ञा स्त्री० [देश० या *हि० तोरिया] छोटी जाति का सुषा जिसकी चौक तक सारा भाग बंगनी होता है। तोठी।

टोई^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] पोर। पर्व। एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक का भाग।

टोक^१—संज्ञा पु० [सं० स्तोक] एक बार में मुँह से निकला हुआ शब्द। किसी पद या शब्द का टुकड़ा। उच्चारण किया हुआ शब्द। जैसे,—एक टोक मुँह से न निकला।

टोक^२—संज्ञा स्त्री० १. छोटा सा वाक्य जो किसी को कोई काम करते देख उसे टोकने या पुछताछ करने के लिये कहा जाय। पुछताछ। प्रश्न आदि द्वारा किसी कार्य में बाधा। जैसे,—'क्या करते हो?', 'कहाँ जाते हो?' इत्यादि।

यों—टोक टाक = पुछताछ। प्रश्न आदि द्वारा बाधा। जैसे,—'बड़े जकरी काम से जा रहे हैं, टोकटाक न करो। रोक टोक = सनाही। मुमानिमत। निषेध।

२. नजर। बुरी दृष्टि का प्रभाव।—(स्त्रि०)।

मुहा०—टोक से आना = नजर लगातेवाले आदमी के सामने पड़ जाना। जैसे—बच्चा टोक में पड़ गया।

टोक^३—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] टेक। प्रतिज्ञा। उ०—बिप्र सुद्र जोगी तपी सुकवि कहत करि टोक।—ब्रज० शं०, पृ० ११८।

टोकणी^१—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का हुंदा। उ०—कबीर तथा टोकणी लीए फिर सुभाई।—कबीर शं०, पृ० ३५।

टोकनहार—वि० [हि० टोकना + हार (प्रत्य०)] टोकनेवाला। बाधा पहुँचानेवाला। उ०—कोई न टोकनहार नफा घर बैठे पावो।—पल्लव०, पृ० १४।

टोकना^१—क्रि० सं० [हि० टोक] १. किसी को कोई काम करते देखकर उसे कुछ कहकर रोकना या पुछताछ करवा। जैसे, 'क्या करते हो?' 'कहाँ जाते हो?' इत्यादि। बीच में बोल पठना। प्रश्न आदि करके किसी कार्य में बाधा डालना। उ०—गोपिन के यह ध्यान कन्हाई। नेकु न धंतर होय कन्हाई। घाट बाट जमुना तट रोके। मारग चबत जहाँ तहँ टोके।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यात्रा के समय यदि कोई रोककर कुछ पुछता है तो यात्री अपने कार्य की सिद्धि के लिये बुरा शकुन समझता है।

२. नजर लगाना। बुरी दृष्टि डालना। हँसना। ३. एक पहलवान का दूसरे पहलवान से लड़ने के लिये कहना। ४. मलती बतलाना। प्रशुद्धि की ओर ध्यान दिलाना। ५. आपत्ति करना। एतराज करना।

टोकना^२—संज्ञा पु० [?] [स्त्री० टोकनी] १. टोकरा। डला। २.

पानी रखने का पातु का एक बड़ा बरतन। एक प्रकार का हंडा।

टोकनी—संज्ञा स्त्री० [हि० टोकना] १. टोकरी। बलिया। उ०—
भाज के दिन छोटी छोटी टोकनियों में बनाज बोया जाता है और देवी के गीत गाए जाते हैं।—शुक्ल० अग्नि० प्र०, पृ० १३८। २. पानी रखने का छोटा हंडा। ३. बटलोई। देगधी।

टोकरा—संज्ञा पुं० [?] [जी० टोकरी] बांस की चिरी हुई फट्टियों, घरहूर, भाज की पतली टहनियों आदि को गाँछकर बनाया हुआ गोल और गहरा बरतन जिसमें घास, तरकारी, फल आदि रखते हैं। छाबड़ा। डला। भाबा। लाँचा।

मुहा०—टोकरे पर हाथ रहना = इज्जत बनी रहता। परदा न लखना। भ्रम बना रहना।

टोकरियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० टोकरी का अल्पा०] दे० 'टोकरी'।

टोकरी—संज्ञा स्त्री० [हि० टोकरा] १. छोटा टोकरा। छोटा डला या छाबड़ा। झपी। झपोली। २. देगधी। बटलोई।

टोकवा—संज्ञा पुं० [देश०] अस्पती लड़का। नटखट लड़का।

टोकसी—संज्ञा स्त्री० [देश०] नारियरी। नारियल की भाँधी जोपड़ी।

टोका—संज्ञा सं० [देश०] एक कीड़ा जो उबे की फसल को नुकसान पहुँचाता है।

टोका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोंका'।

यो०—टोकाटोकी = बाधा। टोकटाक।

टोकाना④—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टिकाना-४'। उ०—इहि बिधि चारि टोकर टोकावे।—कबीर सा०, पृ० १५८४।

टोकारा—संज्ञा पुं० [हि० टोक] वह संकेत का शब्द जो किसी को कोई बात बिताने या स्मरण दिलाने के लिये कहा जाय। इशारे के लिये मुँह से निकाला हुआ शब्द।

टोट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोटा'। उ०—रोम रोम पूरि पीर, व्याकुल सरीर महा, धूमि मति गति धाँस, व्यास की न टोट है।—धनानंद, पृ० ६६।

टोटक④—संज्ञा पुं० [सं० त्रोटक] दे० 'टोटका'। उ०—स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा को सो टोटक, भीचट उलटि न हेरो।—तुलसी प्र०, पृ० ५६३।

टोटका—संज्ञा पुं० [सं० त्रोटक] १. किसी भाषा को दूर करने या किसी मनोरथ को सिद्ध करने के लिये कोई ऐसा प्रयोग जो किसी अलौकिक या दैवी शक्ति पर विश्वास करके किया जाय। टोना। यंत्र मंत्र। तांत्रिक प्रयोग। घटका। उ०—तन की सुधि रहि जात जाय मन भंते घटका। बिसरी सुख पियास किया सतगुर ने टोटका।—पलटू, भा० १, पृ० ३२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—टोटका करने आना = आकर कुछ भी न ठहरना। ४-३१

टोड़ी देर भी न बैठना। तुरत चला जाना। जैसे,—थोड़ा बैठो, क्या टोटका करने आई थी?—(स्त्रि०)। टोटका होना = किसी बात का चटपट हो जाना। किसी बात का ऐसी जल्दी हो जाना कि देखकर आश्चर्य हो।

२. काली हुई जिसे खेतों में फसल को नजर से बचाने के लिये रखते हैं।

टोटकेआई—संज्ञा स्त्री० [हि० टोटका + आई (प्रत्य०)] टोटका करनेवाली। टोना या जादू करनेवाली।

टोटख—संज्ञा पुं० [सं०] जोड़। ठीक। मीजान।

मुहा०—टोटख मिलाना = जोड़ ठीक करना।

टोटा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] १. बाँस आदि का कटा हुआ टुकड़ा। २. मोमबत्ती का जलने से बचा हुआ टुकड़ा। ३. कारतूस। ४. एक प्रकार की घातशबाजी।

टोटा—संज्ञा पुं० [हि० टूटना, टूटा] १. धाड़ा। हानि। उ०—
लेन न देन दुकान न जागा। टोटा करज ताहि कस जागा।—
घट०, पृ० २७५।

क्रि० प्र०—उठाना।—सहना।

मुहा०—टोटा देना या भरना = नुकसान पूरा करना। धाड़ा पूरा करना। हुरजाना देना।

२. कमी। अभाव। जैसे,—यहाँ कागज का क्या टोटा है!

क्रि० प्र०—पड़ना।

टोटि④—संज्ञा स्त्री० [हि०] छुटि। गलती। उ०—कोटि विनायक जो लिखें, महि से कागर कोटि। ता परि तेरे पीय के गुन नहि आवे टोटि।—नंद० प्र०, पृ० ६१।

टोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] चौँच के आकार का गड़ा हुआ काठ का डेढ़ हाथ लंबा टुकड़ा जो घर की दीवार के बाहर की ओर पंक्ति में बंदी हुई छाजन को सहारा देने के लिये लगाया जाता है। टोटा।

टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रोटकी] १. एक रागिनी जिसके गाने का समय १० दंड से १६ दंड पर्यंत है।

विशेष—इसका स्वरराम इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि स स नि ष प म ग रे स। रे सा नि स नि ष ध नि स ग रे स नि स नि ध। प ग ग म रे ग रे स रे नि स नि ध स रे ग म प ध ष प। म ग म ग रे स नि स रे रे स नि ष ध नि स। हनुमत् मत है इसका स्वरराम यह है—म प ध नि स रे ग म ध ष स रे ग म प ध नि स। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है। इसमें शुद्ध मध्यम और तीव्र मध्यम के अतिरिक्त बाकी सब स्वर कोमल होते हैं। यह भैरव राग की स्त्री मानी जाती है और इसका स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—हाथ में वीणा लिए हुए, प्रिय के चिरह में गाती हुई, श्वेत वस्त्र धारण किए और सुंदर नेत्रोंवाली।

२. चार आवाजों का एक ताल जिसमें २ आवाज धीरे २ जाती
रहते हैं। इसका सबसे का बोझ यह है—विन् वा, गेबिन,
१ . . +

जिमता, गेबिन, वा। धयवा

+ . . . +

वेडा के टे, वेडा के टे। वा।

डोनाहा—वि० [हि० टोना + हा (प्रत्य०)] [वि० जी० डोनाही] टोना
करनेवाला। जाहू मारनेवाला।

डोनाहाई—संज्ञा जी० [हि० टोना + हाई (प्रत्य०)] १. टोना करने-
वाली। जाहू मारनेवाली। २. टोना करने की क्रिया।

डोनाहाया—संज्ञा पु० [हि० टोना + हाया (प्रत्य०)] डोना करने-
वाला अनुष्य। जाहू करनेवाला अनुष्य।

टोना^१—संज्ञा पु० [सं० तण्व] १. संज्ञा संज्ञा का प्रयोग। जाहू।

क्रि० प्र०—करना।—बजावा।—मारना।

२. एक प्रकार का गीत जो बिबाह में गाया जाता है और जिसमें
'डोना' शब्द कई बार आता है।

टोना^२—संज्ञा पु० [देश०] एक शिकारी चिट्ठिया। उ०—जुरा बाज
बसि, कुही, बहरी, सयर लीन टोने जरकटी ल्यों सचान
सानबारे हैं।—रपुराज (संज्ञ०)।

टोना^३—क्रि० सं० [सं० तण्व (= स्पर्शव्यंज्य) + ना (प्रत्य०)] १. हाथ
से टटोलना। छूना। छूकर आलस्य करना। उ०—साँच ग्रह
धंधरे को हाथी धीरे साँचे हैं सवरे। हाथ की ठोई साँचि
कहत हैं हैं भाँखिन के धंधरे।—कबीर ज०, मा० १, पृ०
५४। २. छल्ली तरह समझना। समुझ करवा। उ०—जग
में आपन कोई नहीं, देखा सब डोई।—संतवाणी०, पृ० ४३।

टोनाहाई—संज्ञा जी० [हि० टोना + हाई (प्रत्य०)] ३० 'डोनाहा'।

टोप^१—संज्ञा पु० [हि० टोपना (= ठाकना)] १. बड़ी टोपी। सिर
का ढाँचा पहनावा। उ०—हुँवर जीव बचाहू जरि सोष दिवो
सिर टोप।—मुँबर० पं०, वा० २, पृ० ७४०।

औ०—कपटोप।

२. सिर की रक्षा के लिये बड़ाई में पहनने की कोई की
टोपी। बिरस्ताण। खोब। कुँड़। ३. खोब। गिलाफ। ४.
अंगुष्ठताना।

टोप^२—संज्ञा पु० [अनु० टप टप या सं० स्तोत्र] कुँड़। कतरा।

औ०—टोप टोप = कुँड़ कुँड़।

टोपन—संज्ञा पु० [देश०] टोकरा।

टोपरा—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'ठोकरा'।

टोपरा^१—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'ठोकरा'।

टोपरी^१—संज्ञा जी० [हि० टोपरा] ३० 'ठोकरा'।

टोपरी^२—संज्ञा जी० [हि० टोपा] टोप। शिरस्ताण विशेष। उ०—
फुटंत यों सु टोपरी। कि जोग पत्र टोपरी।—पु० रा० १।७७।

टोपही^१—संज्ञा जी० [हि० टोप] बरतम के साँचे का सबसे ऊपरी
भाग जो कटोरे के आकार का होता है।

टोपा^१—संज्ञा पु० [हि० टोप] बड़ी टोपी।

टोपा^२—संज्ञा पु० [हि० टोपना] टोकरा।

टोपा^३—संज्ञा पु० [सं० टट्टन, हि० टोपना, तुरपना] टीका।
बोझ। सीवन।

मुहा०—टोपा भरना = ताना भरना। सीना।

टोपी—संज्ञा जी० [हि० टोपना (= ठाकना)] १. सिर पर का
पहनावा। सिर पर ठाँकने के लिये बना हुआ आच्छादन।

क्रि० प्र०—पहनना।—लगाना।

मुहा०—टोपी उछलना = निरादर होना। बेइज्जती होना। टोपी
उछालना = निरादर करना। बेइज्जती करना। टोपी देना =
टोपी पहनना। टोपी बदलना = भाई भाई का संबंध जोड़ना।
भाईचारा करना। टोपी बदल भाई = वह जिससे टोपी बदल-
कर भाई का संबंध जोड़ा गया हो।

विशेष—लड़के खेल में जब किसी से मित्रता करते हैं तब अपनी
टोपी छेपे पहनाते और उसकी टोपी धाप पहनते हैं।

२. राक्षमुकुट। ताज।

मुहा०—टोपी बदलना = राज्य बदलना। दूसरे राजा का राज्य
होना।

३. टोपी के आकार की कोई गोल धीरे गहरी वस्तु। कबोरी।

४. टोपी के आकार का घातु का गहरा ढक्कन जिसे बंदूक
की निपुल पर चढ़ाकर छोड़ा गिराने से भाग लगती है।
बंदूक का पड़ाका। ५. वह पैली जो शिकारी जानवर के
मुँह पर चढ़ाई रहती है। ६. शिग का अग्र भाग। सुपारा।
७. मस्तूल का सिरा।—(लश०)।

टोपीदार—वि० [हि० टोपी + दा० वार] जिसपर टोपी लगी
हो। जो टोपी लगने पर काम दे। जैसे, टोपीदार बंदूक,
टोपीदार तमंचा।

टोपीवाला—संज्ञा पु० [हि० टोपी] १. वह आदमी जो टोपी पहने
हो। २. अहमदशाह और नादिरशाह के सिपाही जो लाल
टोपियाँ पहनकर आए थे। ये टोपीवाले कहलाते थे।

३. अंगरेज या यूरोपियन जो हैट पहनते हैं। ४. टोपी बेचने-
वाला।

टोभ^१—संज्ञा पु० [हि० टोभ] टीका। टोपा। उ०—वैरनि
जोयही टोभ दे रो मन वैरी की सुँजि के मोन धरोवी।—
वैद्य (संज्ञ०)।

टोभा—संज्ञा पु० [हि० टोभ] ३० 'टोघ'।

टोया^१—संज्ञा पु० [सं० तोय] गड्ढा।—(पंजाबी)।

टोर^१—संज्ञा जी० [देश०] कठारी। कटार। उ०—तुम सों ब जोर
जोर धुपन के धोर रूप काँकरी को धोर काठ मारो है न
टोर के।—हनुमान (संज्ञ०)।

टोर^२—संज्ञा जी० [देश०] शोरे की मिट्टी का वह पानी जो साधारण
नमक की कलमों को छानकर निकाल लेने पर बच रहता है
और जिसे फिर उबाल और छानकर शोरा निकाला जाता है।

टोर^३—संज्ञा पु० [हि० डोर] डोर। मुँह। उ०—लखी टोर
निरहट गरबं मिबायं।—प० रासो, पृ० १४१।

टोरेना^१—क्रि० सं० [सं० गूढ] तोड़ना । उ०—(क) रिक्तकार
वृष देखि के मनमोहन की ओर । मोहन भारत रीति जनु
भारत है तन टोर ।—रसनिधि (शब्द०) । (ख) कोउ
कहू टोरन देत न माली । मणिहू पर मुरके हृम लाली ।—
रघुराज (शब्द०) ।

मुहा०—घाँस टोरना = लज्जा भावि से दृष्टि हटाना या प्रत्यक्ष
करना । घाँस मोड़ना । दृष्टि छिपाना । उ०—सूर प्रभु के
चरित सखियन कहत लोचन टोरि ।—सूर (शब्द०) ।

टोरा^१—संज्ञा पु० [देश०] जुलाहों का सूत तीलने का तराजू ।

टोरा^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टोड़ा' ।

टोरा^३—संज्ञा पु० [सं० तोक] [बी० टोरी] लड़का । छोकरा ।

टोरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोड़ी' ।

टोरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कंसरेटिव' ।

टोरी^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोली' । उ०—दो दो पंजे तो कसा लें
इधर या उधर देखिए तो मेरी टोरी कैसी बड़ बड़के लात
देती है ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ३ ।

टोरी^४—संज्ञा पु० [सं० तुवर] भरहर का वह छिलके सहित खड़ा
दाना जो बनाई हुई ढाल में रह जाय ।

टोरी^५—संज्ञा पु० [देश०] १. रोड़ा । कंकड़ । ईंट का टुकड़ा । २.
लड़का ।

टोल^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तोलिका (= गढ़ के चारों ओर का घेरा,
बाड़ा)] १. मंडली । समूह । जत्था । मुँड । उ०—(क)
प्रपने प्रपने टोल कहत ब्रजवासी भाई । भाव भक्ति से जलो
सुदंषति भासी भाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) टुनिहाई
सब टोल में रही जु सौत कहाय । सुती ऐँचि तिय आप त्यों
करी प्रयोजिल प्राय ।—बिहारी (शब्द०) ।

घौ०—टोल मटोल = मुँड के मुँड ।

२. मूहल्ला । बस्ती । टोला । उ०—भाजु ओर तमबुर के रोल ।
गोकुल में आनंद होत है, गंगल धुनि महराने टोल ।—सूर०,
१०।६४ । ३. चटसार । पाठशाला ।

टोल^२—संज्ञा पु० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब
गुह्र स्वर लगते हैं । इसके गाने का समय २५ बंद से २८ बंद
तक है ।

टोल^३—संज्ञा पु० [सं० टाल] सड़क का महसूल । माग का कर ।
चुंगी ।

घौ०—टोल कलेक्टर = कर लेनेवाला । महसूल वसूल करनेवाला

टोलना^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टोलना' । उ०—नौ ताली दे
बसवाई खोलिया । तब इस गढ़ महि एकी टोलिया ।—प्राण०,
पृ० २८ ।

टोला^१—संज्ञा पु० [सं० तोलिका (= किसी स्तंभ या गढ़ के चारों ओर
का घेरा, बाड़ा)] १. आवसियों की बड़ी बस्ती का एक भाग ।
महल्ला । उ०—घर में छोटे बड़े और टोला परोसियों के
उत्साह धँस हो गए ।—न्याया०, पृ० ४७ । २. एक प्रकार

का व्यवसाय करनेवाले का एक जातिवाले लोगों की बस्ती ।
बैरे, चमरटोसा ।

टोला^२—संज्ञा पु० [देश०] बड़ी कीड़ी । कीड़ा । टग्गा ।

टोला^३—संज्ञा पु० [देश०] १. गुल्ली पर डंडे की चीट ।

क्रि० प्र०—खयाना ।

२. उँगली को मोड़कर पीछे निकली हुई हड्डी से मारने की
क्रिया । टूंग । उ०—जो वैष्णव भावे तो ताके मुँड में टोला
देतो ।—बो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३३१ । ३. पत्थर या
ईंट का टुकड़ा । रोड़ा । ४. बेंत आदि के आघात का पड़ा
हुआ चिह्न जो कभी लाल और कभी कुछ नीलापन लिए होता
है । साँट । नील ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

टोलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तोलिका (= घेरा, हाता)] टोली । छोटा
महल्ला ।

टोली—संज्ञा स्त्री० [सं० तोलिका (= हाता, बाड़ा)] १. छोटा महल्ला ।
बस्ती का छोटा भाग । उ०—नैन बचाय चबाइन के नहि
रैन में हूँ निकसी यह टोली ।—सेवक (शब्द०) । २. समूह ।
मुँड । जत्था । मंडली । उ०—इस टोली ते सहगुरु राख ।—
प्राण०, ८८ । ३. पत्थर की चीकोर पटिया । सिल । ४. एक
जाति का बाँस जो पूर्वीय हिमालय, सिक्किम और आसाम
की ओर होता है ।

विशेष—इसकी आकृति कुछ कुछ पेड़ों की होती है और इसमें
ऊपर जाकर टहनियाँ निकलती हैं । यह बाँस बहुत सीधा
और सुधील होता है । ठोकरे बनाने के लिये यह बाँस सबसे
अच्छा समझा जाता है । यह छप्परों में लगता है और
बटाईयाँ बनाने के काम में भी आता है । इसे 'नाल' और
'पकोक' भी कहते हैं ।

टोलीघनवा—संज्ञा पु० [हि० टोली + घान] घान की तरह की एक
जास जिसके नरम पत्ते बोड़े और जोपाए बड़े चाव से खाते
हैं । इसके दानों को भी कहीं कहीं गरीब लोग खाते हैं ।

टोखना^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टोना' ।

टोखा—संज्ञा पु० [देश०] गलही पर बैठनेवाला वह माभी जो बानी
की गहराई जाँचता है ।

टोह—संज्ञा स्त्री० [हि० टोली] १. टटोल । खोज । हूँड । तलाश ।
पता ।

मुहा०—टोह मिलना = पता लगना । टोह में रहना = तलाश में
रहना । हूँडते रहना । टोह लगाना या लेना = पता लगाना ।
सुराज लगाना ।

२. खबर । देखभाल ।

महा०—टोह रखना = खबर रखना । देखभाल रखना ।

टोहना—क्रि० सं० [हि० टोह] १. हूँडना । खोजना । २. हाथ
लगाना । खूना । टटोखना । उ०—घब तनको बीरब न
लगत हाथ अपनी सो में बहुते टोहो ।—घनानंद, पृ० ३४० ।

टोहाटाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टोह] १. खानबीन । हूँड । तलाश ।
२. देखभाल ।

टोहाली—संज्ञा स्त्री० [हि० टोहना] टोह । देखना । उ०—
करि टोहाली नाम की बिगड़न हूँ कछु नहि ।—राम०
धर्म०, पृ० ७१ ।

टोहिया—वि० [हि० टोह] १. टोह लगानेवाला । हूँदनेवाला ।
२. जासूस ।

टोहियाना—वि० स० [हि०] दे० 'टोहना' ।

टोही—संज्ञा स्त्री० [हि० टोह] तलाश करनेवाला । पता लगानेवाला ।

टोना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोना' । उ०—धुनि सुनि मोही
राधिका धी बज सिगरी नारि, मनो टोना कयौ ।—नंद०
धं०, पृ० १६८ ।

टौंस—संज्ञा स्त्री० [सं० तमसा] १. एक छोटी नदी जो अयोध्या
के पश्चिम से निकलकर बलिया के पास गंगा में मिलती है ।

विशेष—रामायण में लिखी हुई तमसा यही है जहाँ बन को जाते
हुए रामचंद्र जो ने अपना डेरा किया था तथा जिससे आगे
चलकर गोमती और गंडा पड़ी थीं । बालकांड के आदि में
तमसा के तट पर वाल्मीकि के आश्रम का होना लिखा है ।
अयोध्याकांड में प्रयाग से चित्रकूट जाते हुए भी रामचंद्र को
वाल्मीकि का आश्रम मिला था पर वहाँ तमसा का कोई
उल्लेख नहीं है । इससे संभव है कि वाल्मीकि दो स्थानों पर
रहे हों ।

२. एक नदी जो मैहर के पास कैमोर पहाड़ से निकलकर रीव
होती हुई मिर्जापुर और इलाहाबाद के बीच गंगा से
मिलती है ।

विशेष—इस नदी के तट पर वाल्मीकि का एक आश्रम बतलाया
जाता है जो संभवतः उस आश्रम को सूचित करता हो जिसका
उल्लेख अयोध्याकांड में है ।

३. एक नदी जो जमुनोत्री पहाड़ से निकलकर देहरी और
देहरादून होती हुई जमुना में जा मिली है ।

टोहना—वि० स० [हि० टोहना] दे० 'टोहना' । उ०—टोहन
को पतिया लिली भेजतु मोहन को सखी धन धर्म ।—
सुंदर० धं०, भा० १, पृ० ६३ ।

टोहिक—वि० [?] पेह । उ०—टोहिक हूँ घनमानंद डाटत काटत
क्यों नहीं दीनता सो दिन ।—घनानंद, पृ० २५३ ।

टोहनहाल—संज्ञा पुं० [सं० टाउनहाल] दे० 'टाउनहाल' ।

टोना टामन—संज्ञा पुं० [हि० टोना + अनु० टामन] जादू
टोना । तंत्र मंत्र । उ०—टोना टामन मंत्र यंत्र सब साधन
साधे ।—ब्रज० धं०, पृ० १४ ।

टौर—संज्ञा पुं० [हि० टोल] समूह । कुंड । यूथ । उ०—यह जोसर
फाग को नीको फण्डी गिरिबारी हिले कहूँ टौरनि सौं ।—
घनानंद, पृ० ५६८ ।

टौरना—वि० स० [हि० टेरना ?] भली बुरी बात की जाँच
करना । २. किसी व्यक्ति या बात की बाह्र सेना । पता
लगाना ।

टौरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] ऊँचा टीला । छोटी पहाड़ी । उ०—बैरी

अपनी टोपी ऊँची टौरिया पर चढ़ा ले जावेगा और वहाँ से
फाटक और बुजं को घुस करने का उपाय करेगा ।—भासी०,
पृ० ३२० ।

टौरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] टीला । घुस । पहाड़ी ।

ट्योम्का—संज्ञा पुं० [देश०] भ्रमट । बखेड़ा ।

ट्रंक—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का सफरी संदूक ।

ट्रंप—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताश के खेल में वह रंग जो और रंगों के
बड़े से बड़े पत्तों को काटने के लिये नियत किया जाता है ।
हुकम का रंग । तुरप । २. ट्रंप का खेल ।

ट्रक—संज्ञा स्त्री० [सं०] बोझा ढोनेवाली खुली मोटर ।

ट्राम—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़े बड़े नगरों में एक प्रकार की लंबी
गाड़ी जो लोहे की बिछी हुई पटरी पर चलती है । इसमें पहले
घोड़े लगते थे पर अब यह बिजली से चलाई जाती है ।

ट्रेडमार्क—संज्ञा पुं० [सं०] वह चिह्न जो व्यापारी लोग पहचानने
के लिये अपने यहाँ के बने या भेजे हुए माल पर लगाते
हैं । छाप ।

ट्रस्ट—संज्ञा पुं० [सं०] संपत्ति या दान । संपत्ति को इस विचार या
विश्वास से दूसरे व्यक्ति के सुपुर्द करना कि वे संपत्ति का
प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखापट्टी
या दानपत्र के अनुसार करेंगे ।

ट्रस्टो—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जिसके सुपुर्द कोई संपत्ति इस
विचार और विश्वास से की गई हो कि वह उस संपत्ति का
प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखापट्टी
या दानपत्र के अनुसार करेगा । अभिभावक ।

ट्रांसपोर्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. माल असबाब एक स्थान से दूसरे
स्थान को ले जाना । चारबाहारी । २. वह जहाज जिसपर
सैनिक या युद्ध का सामान आदि एक स्थान से दूसरे स्थान
को भेजा जाता है । ३. सवारी । गाड़ी ।

ट्रांसलेटर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो एक भाषा का दूसरी भाषा
में उल्था करता है । भाषांतरकार । अनुवादक । जैसे, गवर्न-
मेंट ट्रांसलेटर ।

ट्रांसलेशन—संज्ञा पुं० [सं०] एक भाषा में प्रदर्शित भावों या
विचारों को दूसरी भाषा के शब्दों में प्रगट करना । एक भाषा
को दूसरी में उल्था करना । भाषांतर । अनुवाद । उल्था ।
तर्जुमा ।

ट्रूप—संज्ञा स्त्री० [सं० ट्रूप] १. पलटन । सैन्यदल । जैसे, ब्रिटिश
ट्रूप । २. घुड़सवारों का एक दल जिसमें एक कप्तान की
अधीनता में प्रायः साठ जवान होते हैं ।

ट्रूस—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो लड़नेवाली सेनाओं के नायकों की
स्वीकृति से सझाई का स्थापित होना । कुछ काल के लिये
सझाई बंद होना । शणिक संधि ।

ट्रेक्टर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मशीनी हल ।

ट्रेजरर—संज्ञा पुं० [सं० ट्रेजरर] सजानबी । कोषाध्यक्ष ।

ट्रेडिक्स—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छापने का छोटा यंत्र ।

ट्रेडिङ मशीन—संज्ञा स्त्री० [प्र०] एक प्रकार का छापने का छोटा यंत्र जिसे एक धातवी पेर या बिजली धादि से चलता तथा हाथ से उसमें कागज रखता जाता है। स्याही इसमें धापसे धाप लग जाती है। इसमें (हाफटोन ब्लाक) फोटो की तस्वीरें बहुत साफ छपती हैं और कार्य बहुत शीघ्रता से होता है।

ट्रेन—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. रेलगाड़ी में लगी हुई गाड़ियों की पंक्ति। २. रेलगाड़ी।

मुहाना—ट्रेन छूटना = रेलगाड़ी का स्टेशन पर से चल देना।

ट्रेजेडियन—संज्ञा पुं० [प्र०] १. वह अभिनेता जो विषाद, शोक

और गंभीर भावव्यंजक अभिनय करता हो। २. वियोगांत नाटक लिखनेवाला। वियोगांत नाटकमेलक।

ट्रेजेडी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] नाटक का एक भेद जिसमें किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के जीवन की महत्वपूर्ण घटना का वर्णन हो, मनोविकारों का खूब संघर्ष और द्वंद्व दिखाया गया हो और जिसका अंत शोक जनक या दुःस्वप्न हो। वह नाटक जिसका अंत कष्टोत्पादक और विषादमय हो। दुःस्वांत नाटक। वियोगांत नाटक।

ठ

ठ—व्यंजन में बारहवां व्यंजन जिसके उच्चारण का स्थान भारत के प्राचीन वैयाकरणों ने मुष्ठी कहा है। इसका उच्चारण वरने में बहुधा जीम का अग्रभाग और कभी कभी मध्य भाग तालु के किसी हिस्से में लगाना पड़ता है। यह अघोष महाप्राण वर्ण है।

ठं कना(ठुं)—क्रि० स० [हि० ठाँकना, ठँकना] छुपाना। ठाँकना। उ०—(क) माधड़िया मुख ठकिया, वैसे फाड़े बाक।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० १६। (ख) गोरख के गुरु महा मछीद्रा तिनहे पकरि सिर ठंका।—सं० बरिया, पृ० १३१।

ठंखी—संज्ञा पुं० [देश०] बुझ। पेड़ पीछा। उ०—बछिन बान सब ओपहूँ वेधे रन बन ठख।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १८६।

ठंठ—वि० [सं० स्थाणु] १. जिसकी डाल और पत्तियाँ सूखकर या कटकर गिर गई हों। ठूँठा। सूखा (पेड़)। २. दूध न देने वाली (गाय)। ३. धनहीन। निर्धन।

ठंठनाना^१—क्रि० प्र० [ठंठ से नाम०] ठंठ शब्द की ध्वनि होना।

ठंठनाना^२—क्रि० स० ठठ की ध्वनि करना।

ठंठसा—संज्ञा स्त्री० [सं० ठिण्डसा] ठेठसा। ठेठसी।

ठंठार(ठुं)—वि० [हि० ठंठ + आर (प्रत्य०)] खाली। रीता। खूँछा। उ०—जसु कछु दीजे धरन कहुँ धापन लेहु संभार। तस सिगार सब लीन्हेंसि कीन्हेंसि मोहि ठंठार।—जायसी (शब्द०)।

ठंठी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठंठ + ई (प्रत्य०)] उवार, मूँग आदि का वह बाल जो दाना पीटने के बाद बाल में लगा रहता है।

ठंठी^२—वि० स्त्री० (बूढ़ी गाय या भैंस) जिसके बच्चा और दूध देने की संभावना न हो। जैसे, ठठी गाय।

ठंठोकना—क्रि० स० [हि०] ठोकना। पीटना। उ०—तन कूँ जमरो लुटसी लुटै धन कूँ लोक। नान्हों करि करि बालसी हरिया हाड़ ठंठोक।—रम० धर्म०, पृ० ७०।

ठंठ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंठ'।

ठंठई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंठाई'।

ठंठक—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंठक'।

ठंठा—वि० [हि०] दे० 'ठंठा'।

ठंठाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंठाई'।

ठंठ—संज्ञा स्त्री० [हि० ठंठा] शीत। सरदी। जाड़ा।

मुहाना—ठंठ पड़ना = शीत का संचार होना। सरदी फैलना।

ठंठ लगना = शीत का अनुभव होना।

ठंठई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंठाई'।

ठंठक—संज्ञा स्त्री० [हि० ठंठा + क (प्रत्य०)] १. शीत। सरदी। उष्णता या गरमी का ऐसा अभाव जिसका विशेष रूप से अनुभव हो।

मुहाना—ठंठक पड़ना = शीत का संचार होना। सरदी फैलना।

ठंठक लगना = शीत का अनुभव होना। शीत का प्रभाव पड़ना।

२. ताप वा जलन की कमी। ताप की शान्ति। तरी।

क्रि० प्र०—माना।

३. प्रिय वस्तु की प्राप्ति या इच्छा की पूर्ति से उत्पन्न संतोष। पूर्ति। प्रसन्नता। तसल्ली।

क्रि० प्र०—पड़ना।

४. किसी उपद्रव या फैले हुए रोग आदि की शान्ति। किसी हलचल या फैली हुई बीमारी आदि की कमी या अभाव। जैसे,—इधर शहर में हैजे का बड़ा जोर था पर अब ठंठक पड़ गई है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

ठंठा—वि० [सं० स्तब्ध, प्र० तट, थट्ट, ठट्ट] [वि० स्त्री० ठंठी]

१. जिसमें उष्णता या गरमी का इतना अभाव हो कि उसका अनुभव शरीर को विशेष रूप से हो। सदां। शीतल। गरम का उलटा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहाना—ठंठे ठंठे = ठंठ के वक्त में। धूप निकलने के पहले। तड़के। सबेरे। उ०—रात भर सोभी, सबेरे उठकर ठंठे चले जाना।

थौं—ठंठी प्राग = (१) हिम। बरफ। (२) पाला। सुवार। ठंठी कड़ाही, ठंठी कड़ाई = हलवाइयों और बनियों में सब पकवान बना चुकने के पीछे हलुआ बनाकर बाँटने की रीति। ठंठी मार = भीतरी मार। ऐसी मार जिसमें ऊपर देखने में कोई टूटा फूटा न हो पर भीतर बहुत चोट आई

हो। गुप्ती मार। (जैसे, शात वृत्तों आदि की)। ठंडी मिट्टी = (१) ऐसा शरीर जो जल्दी न बड़े। ऐसी देह जिसमें जवानों के चिह्न जल्दी न मान्य हों। (२) ऐसा शरीर जिसमें कामोद्दीपन न हो। ठंडी ससि = ऐसी ससि जो दुःख या शोक के आवेग के कारण बहुत खींचकर ली जाती है। दुःख से मरी ससि। शोकोन्मुख। आह।

मुहा०—ठंडी ससि लेना या बरना = दुःख की ससि लेना।

२. जो जलता हुआ या बहकता हुआ न हो। बुझा हुआ। बुता हुआ। जैसे, ठंडा दीया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

१. जो उद्दीप्त न हो। जो उद्दिग्ध न हो। जो बहका न हो। उद्धाररहित। जिसमें आवेग न हो। शांत। जैसे, क्रोध ठंडा होना, जोश ठंडा होना।

विशेष—इस प्रथ में इस शब्द का प्रयोग आवेग और आवेग धारण करनेवाले व्यक्ति दोनों के लिये होता है। जैसे, क्रोध ठंडा पड़ना, उत्साह ठंडा पड़ना, क्रोध मनुष्य का ठंडा पड़ना, उत्साह में आए हुए मनुष्य का ठंडा पड़ना, आदि।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

मुहा०—ठंडा करना = (१) क्रोध शांत करना। (२) डाढ़स देकर शोक कम करना। डाढ़स बंधाना। तसल्ली देना। माता या शीतला ठंडी करना = शीतला या चेचक के झण्डे होने पर शीतला की अंतिम पूजा करना।

४. जिसे कामोद्दीपन न होता हो। नामर्द। अपुंसक। ५. जो उद्देगशील या चंचल न हो। जिसे जल्दी क्रोध आदि न आता हो। धीर। शांत। संमीर। ६. जिसमें उत्साह या उमंग न हो। जिसमें तेजी या फुरती न हो। बिना जोश का। भीमा। सुस्त। मंद। उवासीन।

औ०—ठंडी गरमी = (१) ऊपर की प्रीति। बनावटी स्नेह का आवेग। (२) बातों का जोश। उ०—बस बस यह ठंडी गरमियाँ हमें न दिखाया करो।—सर०, ३० १४। ठंडा युद्ध, ठंडी लड़ाई = प्राधुनिक राजनीति में दबि पेंच की लड़ाई। इसे शांत युद्ध भी कहते हैं। यह अंग्रेजी शब्द कोल्ड वार का अनुवाद है।

७. जो हाथ पैर न हिलाए। जो इच्छा के प्रतिकूल कोई बात होते देखकर कुछ न बोले। चुपचाप रहनेवाला। विरोध न करनेवाला। जैसे,—वे बहुत दूर उधर करते थे पर जब सारी सारी सुनाई तब ठंडे पड़ गए।

क्रि० प्र०—पड़ना।—रहना।

मुहा०—ठंडे ठंडे = चुपचाप। बिना बूँ किए। बिना विरोध या प्रतिवाद किए।

८. जो प्रिय वस्तु की प्राप्ति वा इच्छा की पूर्ति से संतुष्ट हो। तुप्त। प्रसन्न। खुश। जैसे,—लो, आज वह बला जायगा, अब तो ठंडे हुए।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ठंडे ठंडे = हँसी खुशी से। कुशल आनंद से। ठंडे ठंडे घर आना = बहुत तुप्त होकर लौटना (अर्थात् प्रसंतुष्ट होकर या निराश होकर लौटना (स्वंग्य)। ठंडे पेटों = हँसी खुशी से। प्रसन्नता से। बिना मनमोटाप या लड़ाई झगड़े के। सीधे से। ठंडा रखना = आराम चैन से रखना। किसी बात की तकलीफ न होने देना। संतुष्ट रखना। ठंडे रहो = प्रसन्न रहो। खुश रहो। (स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त एवं आशीर्वादात्मक)।

१. निर्वेष्ट। जड़। मृत। मरा हुआ।

मुहा०—ठंडा होना = मर जाना। ताजिया ठंडा करना = ताजिया दफन करना। (मूर्ति या पूजा की सामग्री आदि को) ठंडा करना = जल में विसर्जन करना। डुबाना। (किसी पवित्र या प्रिय वस्तु को) ठंडा करना = (१) जल में विसर्जन करना। डुबाना। (२) किसी पवित्र या प्रिय वस्तु को फेंकना या तोड़ना फोड़ना। जैसे, खुदियाँ ठंडी करना।

१०. जिसमें चहल पहल न हो। जो गुलजार न हो। बेरोनक।

मुहा०—बाजार ठंडा होना = बाजार का चसता न होना। बाजार में लेनदेन खूब न होना।

ठंडाई—संज्ञा स्त्री [हि० ठंडा + ई (प्रत्यय)] १. वह दवा या मसाला जिससे शरीर की गरमी शांत होती है और ठंडक आती है।

विशेष—सोंफ, इलायची, कासनी, ककड़ी, कद्दू, खरबूजे आदि के बीज, गुलाब की पंखड़ी, गोल मिर्च आदि को एक में पीसकर प्रायः ठंडाई बनाई जाती है।

२. ऊपर लिखे मसालों से युक्त भाँग या शर्बत।

क्रि० प्र०—पीना।—लेना।

ठंडा मूलम्मा—संज्ञा पु० [हि० ठंडा + म० मूलम्मा] बिना घाँस के सोना चाँदी चढ़ाने की रीति। सोने चाँदी का पानी जो बैटरी के द्वारा या तेजाब की लाग से चढ़ाया जाता है।

ठंडी^१—वि० स्त्री [हि०] दे० 'ठंडा' और उसके मुहा०।

ठंडी^२—संज्ञा स्त्री शीतला। चेचक (स्त्रि०)।

मुहा०—ठंडी लगना = शीतला के बानों का मुरझाना। चेचक का जोर कम होना। ठंडी निकलना = शीतला के दाने शरीर पर होना। शीतला या चेचक का रोग होना।

ठंभनी—संज्ञा पु० [सं० स्तम्भन, प्रा० ठंभन] रुकने की स्थिति। रुकावट। उ०—घिन यो ठंभन जग माहीं, एक हरि बिन दूजा नाहीं।—राम० धर्म०, पु० २५३।

ठंसरी—संज्ञा स्त्री [सं०] एक प्रकार का तंत्रवाद्य [को०]।

ठः—संज्ञा पु० [सं० धनुष्य०] एक ध्वनि जो किसी धातुपात्र के कड़ी जमीन या सीढ़ियों पर गिरने से अंत में होती है [को०]।

ठ—संज्ञा पु० [सं०] १. शिव। २. महाध्वनि। ३. चंद्रमंडल या सूर्य-मंडल। ४. मंडल। घेरा। ५. शून्य। ६. गोचर। इन्द्रियग्राह्य वस्तु।

ठई—संज्ञा स्त्री [हि० ठह > ठही] स्थिति। याह। अवस्था।

ठकुरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठोर' । उ०—उहाँ सब सुखा निधि
प्रति बिलास है अमंत थानसम ठकुरा ।—प्राण०, पृ० ६५ ।

ठकुराँ†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठाँव' । उ०—जंगम जोग विचारे
जहूँ, चौब सीब करि एक ठकुराँ ।—कबीर प्र०, पृ० २२१ ।

ठकुरे—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० ठक] एक वस्तु पर दूसरी वस्तु को जोर
से मारने का शब्द । ठोकने का शब्द ।

ठकुरे—वि० [सं० स्तब्ध, प्रा० टक] स्तब्ध । भीचक । आश्चर्य या
चकराहट से निश्चेष्ट । सप्राटे में धाया हुआ ।

मुहा०—ठक से होना = स्तब्ध होना । आश्चर्य में होना । उ०—
उनकी सौम्य मूर्ति पर सोचन ठक से बँध जाते ।—प्रेमचन्द०,
भा० २, पृ० ३८ ।

क्रि० प्र०—रह जाना ।—हो जाना ।

ठकुरे—संज्ञा पुं० [देरा०] बड़बाजों की सलाई या सूजा जिसमें अफीम
का कियाम लगाकर सँकेते हैं ।

ठकुरे—संज्ञा पुं० [हि० ठग] दे० 'ठग' । जैसे, ठकमुरी (= ठगमुरी) ।
उ०—ठाकुर ठक भए गेल चोरें अप्परि घर लिज्जिम ।—
कीर्ति०, पृ० १६ ।

ठकठक—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० ठकठक] १. लगातार होनेवाली
ठकठक की ध्वनि या आवाज । २. झगड़ा । बसेड़ा । टंटा ।
झगडा । उ०—ठकठक जगम मरत का मेठे जम के हाथ न
झावे ।—कबीर०, भा०, पृ० २६ । (ख) उठि ठकठक एती
कहा, पावस के अमिसार । जानि परैगी देखि यों शमिनि
चन प्रेधियार ।—विहारी (शब्द०) ।

ठकठकाना—क्रि० सं० [अनुध्व० ठकठक] १. एक वस्तु पर दूसरी
वस्तु पटककर शब्द करना । खटखटाना । २. ठोकना ।
पीटना ।

ठकठकाना†—क्रि० प्र० स्तब्ध होना । ठक से होना ।

ठकठकिया—वि० [अनुध्व० ठकठक + हि० इया (प्रत्य०)] १.
हुज्जती । थोड़ी सी बात के लिये बहुत बलील करनेवाला ।
झकरार करनेवाला । बसेड़िया ।

ठकठौआ—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. एक प्रकार की करतब । २.
करतब बजाकर भील मांगनेवाला । ३. एक प्रकार की
छोटी नाव ।

ठकमुरी†—संज्ञा स्त्री० [हि०] स्तब्ध या निश्चेष्ट करनेवाली बड़ी ।
दे० 'ठगमुरी' । उ०—जा दिव का डर मानता छोड़ बेला
झाई । चलि न कीन्ही राम की ठकमुरी झाई ।—मल्ल०,
बागी, पृ० ११ ।

ठका†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठक (= धाधात या बक्का)] बक्का ।
बोझ । धाधात । उ०—करै मार वगं ठका देत जावे ।—
प० रासो, पृ० १४४ ।

ठकार—संज्ञा पुं० [सं०] 'ठ' अक्षर ।

ठकुआँ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठोकवा' ।

ठकुराई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठकुराई' ।

ठकुरसुहासी†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर (= मालिक) + सुहासा]

ऐसी बात जो केवल दूसरे को प्रसन्न करने के लिये कही जाय ।
सत्सोच्यो । सुखामद । तोषनीय । उ०—हमहु कहब अब
ठकुरसुहाती ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठकुर सोहासी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठकुरसुहाती' । उ०—ठकुर-
सोहासी कर रहे हो कि एकाध पत्तास मिछ जाय ।—मान०,
भा० ५, पृ० ३० ।

ठकुराइत†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठकुरायत' । उ०—जो कही
क्यों गई दासी हमारी । तबि तबि गृह ठकुराइत भारी ।—
मंद० प्र०, पृ० ३२१ ।

ठकुराइति, ठकुराइती—संज्ञा स्त्री० [हि० ठकुरायत + ई (प्रत्य०)]
स्वामित्व । प्रभुत्व । आधिपत्य । उ०—रमा उमा सी दासी
जाकी । ठकुराइति का कहिये ताकी ।—मंद० प्र०, पृ० १५० ।

ठकुराइन†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर] १. ठाकुर की स्त्री । स्वामिनी ।
मालिकिनी । उ०—गहि दासी ठकुराइन कोई । जहँ देखो तहँ
बहू है सोई ।—सूर (शब्द०) । २. क्षत्रिय की स्त्री । क्षत्राणी ।
३. नाइन । माउन । नाई की स्त्री । उ०—देव स्वल्प की
रासि निहारति पाय ते सीस लों सीस ते पाइन । हँ रही
ठीर ही ठाड़ी ठगी सी हँसे कर टोड़ी दिए ठकुराइन ।—देव
(शब्द०) ।

ठकुराइसा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठकुरायत' ।

ठकुराई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर] १. आधिपत्य । प्रभुत्व । सरदारी ।
प्रधानता । उ०—अब तुलसी गिरधर बिनु मोकुल को करिहै
ठकुराई ।—तुलसी (शब्द०) । २. ठाकुर का अधिकार ।
स्वामी होने के अधिकार का उपयोग । जैसे,—बेल में कैसी
ठकुराई ? उ०—ग्याव न किय कीनी ठकुराई । बिना किए
लिखि सीमि नुराई ।—बायसी (शब्द०) । ३. वह प्रदेश जो
किसी ठाकुर या सरदार के अधिकार में हो । राज्य ।
रियासत । ४. जगत्ता । बहूपन । महत्त्व । बड़ाई । उ०—
हरि के जन की प्रति ठकुराई । महाराज अधिराज राजहँ
देखत रहे लबाई ।—सूर (शब्द०) ।

ठकुरानी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर] १. ठाकुर या सरदार की स्त्री ।
जमींदार की स्त्री । २. रानी । उ०—विज भँवरि लै गई
चमिमली पटुनाई बिधि ठानी । सूरदास प्रभु तँहु पग चारे
जहँ दोऊ ठकुरानी ।—सूर (शब्द०) । ३. मालिकिनी ।
स्वामिनी । अधीश्वरी । ४. क्षत्रिय की स्त्री । क्षत्राणी ।

ठकुरानी सीजा—संज्ञा स्त्री० [हि० ठकुरानी + सीजा] श्रावण शुक्ल
तृतीया को मनाया जानेवाला एक व्रत । हरियाली सीजा ।

ठकुराय†—संज्ञा पुं० [हि० ठाकुर] क्षत्रियों का एक भेद । उ०—
महुरवार परहार सकुरे । कवहंस धीर ठकुराय सूर ।—
बायसी (शब्द०) ।

ठकुरायत—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर] आधिपत्य । स्वामित्व ।
प्रभुत्व । उ०—ठकुरायत गिरधर की साँची । कोरव भीति
जुबिठिर राजा कीरति तिहँ लोक में माँची ।—सूर०, १।१७ ।
२. वह प्रदेश जो किसी ठाकुर या सरदार के अधिकार में हो ।
रियासत ।

ठकुरास—संज्ञा पुं० [हि० ठाकुर + आस (प्रत्य०)] दे० 'ठाकुर' ।
उ०—बस्यो ठकुरास न लावीय वार । भोज तणी
मिनिया घमवार ।—बी० रासो०, पृ० १६ ।

ठकुरास—संज्ञा स्त्री० [हि०] ठकुरास । अधिकारक्षेत्र । रियासत ।
उ०—मुम्हें मिली है मानव हिय की यह लखल ठकुरास । पर,
हमको तो मिली अचंचल मस्ती की जागीर ।—अपलक,
पृ० ७३ ।

ठकोरा—संज्ञा पुं० [हि० ठक + घोरा (प्रत्य०)] टकोर । आघात ।
चोट । उ०—कजूर के पहर गजूर ठकोरा बगे ।—रघु० क०,
पृ० २३८ ।

ठकोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठेकना, ठेकना + घोरी (प्रत्य०)] १.
सहारा लेने की लकड़ी । उ०—(क) भक्त भरोसे राम के
निधरक ठेकी पीठ । तिनको करम न लागई राम ठकोरी
पीठ ।—कबीर (शब्द०) । (ख) देखादेखी पकरिया गई
छिनक में घूटि । कोई बिरला जन ठाहुरे जासु ठकोरी पूठि ।—
कबीर (शब्द०) ।

विशेष—यह लकड़ी घड़े के आकार की होती है । पहाड़ी
लोग जब बोझ लेकर चलते चलते थक जाते हैं तब इस लकड़ी
को पीठ या कमर से भिड़ाकर उसी के बल पर थोड़ी देर
सबे हो जाते हैं । साधु लोग भी इसी प्रकार की लकड़ी सहारा
लेने के लिये रखते हैं और कभी कभी इसी के सहारे बैठते
हैं । इसे वे वैरागिन या जोगिनी भी कहते हैं ।

ठक्क—संज्ञा पुं० [सं०] व्यापारी (को०) ।

ठक्कर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टक्कर' ।

ठक्कर—संज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर] गुजरातियों की एक जातीय
उपाधि या खल ।

ठक्कुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता । ठाकुर । पूज्य प्रतिमा । २.
मिथिला के ब्राह्मणों की एक उपाधि ।

ठग—संज्ञा पुं० [सं० स्थग] [स्त्री० ठगनी, ठगिन ठगिनी] १.
धोखा देकर लोगों का धन हरण करनेवाला व्यक्ति । वह
लुटेरा भी छल और धूर्तता से माल लूटता है । भुलावा देकर
लोगों का माल छीनवेधाला । उ०—जग हटवारा स्वाद ठग,
माया बेमया लाम । राम नाम गाढ़ा गहो जनि कटु आह
ठगाय ।—कबीर (शब्द०) ।

विशेष—बाकू और ठग में यह अंतर है कि बाकू प्रायः जबरवस्ती
बल दिखाकर माल छीनते हैं पर ठग अनेक प्रकार की धूर्तता
करते हैं । भारत में इनका एक प्रसंग संग्रहाय सा हो
गया था ।

मुहा०—ठग लगना = ठगों का आक्रमण करना या पीछे पड़ना ।
जैसे,—उस रास्ते में बहुत ठग लगते हैं । ठग के लाडू = दे०
'ठगलाङ्' ।

यौ०—ठगमूरी । ठगमोदक । ठगलाङ् । ठगबिद्या ।

२. छली । धूर्त । धोखेबाज । बंचक । प्रतारक ।

ठगई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + ई (प्रत्य०)] १. ठगपना । ठग
का काम । २. धोखा । छल । फरेब ।

ठगण—संज्ञा पुं० [सं०] मानिक छंदों के गणों में से एक । यह पाँच
मात्राओं का होता है और इसके ८ उपभेद हैं ।

ठगना—क्रि० सं० [हि० ठग + ना (प्रत्य०)] धोखा देकर माल
लूटना । छल और धूर्तता से धन हरण करना । २. धोखा
देना । छल करना । धूर्तता करना । भुलावे में डालना ।

मुहा०—ठगा सा, ठगी सी = धोखा खाया हुआ । भुला हुआ ।
चकित । शोचका । आश्चर्य से स्तब्ध । दंग । उ०—(क)
करत कछु नाही धाजु बनी । हरि आए हों रही ठगी सी जैसे
चित्र धनी ।—सूर (शब्द०) । (ख) चित्र में काढ़ी सी ठाढ़ी
ठगी सी रही कछु देख्यो सुन्यो न सुझात है ।—सुंदरीसर्वस्व
(शब्द०) ।

३. उचित से अधिक मूल्य लेना । बाजिब से बहुत ज्यादा दाम
लेना । सोदा बेचने में बेईमानी करना । जैसे,—यह दूकानदार
लोगों को बहुत ठगता है ।

संयो० क्रि०—लेना ।

ठगना—क्रि० प्र० १. ठगा जाना । धोखा खाकर लुटना । २.
धोखे में आना । चकित होना । आश्चर्य से स्तब्ध होना ।
ठक रह जाना । दंग रहना । उ०—(क) तेज यह चरित देखि
ठगि रहहीं ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बिनु देखे बिन ही
सुने ठगत न कोउ बाँच्यो ।—सूर (शब्द०) ।

ठगनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग] १. ठग की स्त्री । २. ठगनेवाली
स्त्री । ३. धूर्त स्त्री । छलनेवाली स्त्री । ४. कुटनी ।

ठगपन—संज्ञा पुं० [हि० ठग + पन (प्रत्य०)] दे० 'ठगपना' ।

ठगपना—संज्ञा पुं० [हि० ठग + पन + ना (प्रत्य०)] १. ठगने
का काम या भाव । २. धूर्तता । छल । चालाकी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठगमूरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + मूरी] वह नशीली जड़ी बूटी जिसे
ठग लोग पाँचको की बेहोश करके उनका धन लूटने के लिये
खिलाते थे ।

मुहा०—ठगमूरी खाना = मतवाला होना । होशहवाश में न
रहना । उ०—(क) काहू तोहि ठगोरी लाई । ब्रह्मति सखी
सुनति नहि नेकहु तुही किधो ठगमूरी लाई ।—सूर (शब्द०) ।
(ख) ज्यों ठगमूरी खाइके मुखहि न बोले बिन । दुगर दुगर देख्यो
करे सुंदर बिरहा ऐन ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६८३ ।

ठगमूरी—वि० स्त्री० ठगमूरी से प्रभावित । उ०—टक टक ताकि
रही ठगमूरी घापा घाप बिसारी हो ।—पलटू०, भा० १,
पृ० ८४ ।

ठगमोदक—संज्ञा पुं० [हि० ठग + सं० मोदक] दे० 'ठगलाङ्' ।
उ०—चलत चितै मुसकाय के घुटु बचन सुनाए । तेही
ठगमोदक अप, मन धीर न, हरि तन छूछो छिटकाए ।—सूर
(शब्द०) ।

ठगलाङ्—संज्ञा पुं० [हि० ठग + लाङ् (= लड्डू)] ठगों का लड्डू
जिसमें नशीली या बेहोशी करनेवाली चीज मिली रहती थी ।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि ठग लोग पथिकों से रास्ते में मिलकर
उन्हें किसी बहाने से अपना लड्डू खिला देते थे जिसमें विष

या कोई नलीली बीज मिली रहती थी। जब सड़क साकर पथिक मूर्छित या बेहोश हो जाते थे तब वे उनके पास जो कुछ होता था सब ले लेते थे।

मुहा०—ठगलाङ्गू खाना = मतवाला होना। होशहवास में न रहना। बेसुध होना। उ०—सूर कहा ठगलाङ्गू लायो। इत उत फिरत मोह को मातो कबहुँ न सुधि करि हरि चित लायो।—सूर (शब्द०)। ठगलाङ्गू देना = बेसुध करनेवाली वस्तु देना। उ०—मनहु बीन ठगलाङ्गू देख भाय तस मीच।—जायसी (शब्द०)।

ठगलीला—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + लीला] ठगों का मायाजाल। बंचना। धोखाधड़ी। उ०—छूटेगी जग की ठगलीला होंगी भाँखें प्रतःशीला।—वेसा, पृ० ७६।

ठगवा०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठग'। उ०—कोनो ठगवा नगरिया लुटल हो।—कबीर० श०, भा० १, पृ० २।

ठगवाना—क्रि० स० [हि० ठगना का प्रे० रूप] दूसरे से किसी को धोखा बिलवाना।

ठगविद्या—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + विद्या] ठगों की कला। धूर्तता। धोखाधड़ी। छल। बंचकता।

ठगहाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + हाई (प्रत्य०)] ठगपना।

ठगहारी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + हारी (प्रत्य०)] ठगपना।

ठगाइनि०—संज्ञा स्त्री० [हि०] ठगनेवाली स्त्री। ठगिनी। उ०—बदि परे नर काल के बुद्धि ठगाइनि जानि।—कबीर० श०, भा० ४, पृ० ८८।

ठगाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + भाई (प्रत्य०)] दे० 'ठगपना'।

ठगाठगी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग] धोखाधड़ी। बंचकता। धोखाधड़ी।

ठगाना—क्रि० प्र० [हि० ठगना] १. ठगा जाना। धोखे में आकर हानि सहना। २. किसी वस्तु का अधिक मूल्य दे देना। दूकानदार की बातों में आकर ज्यादा दाम दे देना। जैसे,—इस सोदे में तुम ठगा गए। ३. (किसी पर) आसक्त होना। मुग्ध होना।

संयो० क्रि०—जाना।

ठगाही—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठगाई', 'ठगाइनी'। उ०—नाहक नर सुली भरि कीन्हों। जिन बन माहि ठगाही कीन्हों।—विश्राम (शब्द०)।

ठगिन—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + इन (प्रत्य०)] १. धोखा देकर लूटनेवाली स्त्री। लुटेरिन। २. ठग की स्त्री। ३. धूर्त स्त्री। चालबाज औरत।

ठगिनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + इनी (प्रत्य०)] १. लुटेरिन। धोखा देकर लूटनेवाली स्त्री। उ०—ठगति फिरति ठगिनी तुम नारी। जोइ भावति सोइ सोइ कहि बारति जाति जनावति दे दे गारी।—सूर (शब्द०)। २. ठग की स्त्री। ३. धूर्त स्त्री। चालबाज स्त्री।

ठगिया—संज्ञा पुं० [हि० ठग + इया (प्रत्य०)] दे० 'ठग'।

उ०—जुरे सिद्ध साधक ठगिया से बड़ो आस फैलायो।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४४६।

ठगिया—वि० ठगनेवाला। छलनेवाला। उ०—ठगिया तेरे नैन ये छल बल भरे कितेब।—स० समक, पृ० १६३।

ठगी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + ई (प्रत्य०)] १. ठग का काम। धोखा देकर माल लूटने का काम। २. ठगने का भाव। ३. धूर्तता। धोखाधड़ी। चालबाजी।

ठगोरी०—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + बीरी] ठगों की सी माया। मोहित करने का प्रयोग। मोहिनी। सुषबुध भ्रमानेवाली शक्ति। टोना। जादू। उ०—(क) जानहु लाई काहु ठगोरी। खन पुकार खन बाँधे बीरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) दसन चमक अधरन भरनाई देखत परी ठगोरी।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—डासना।—पड़ना।—लगना।—लगाना।

ठगौरी०—संज्ञा स्त्री० [हि० ठगोरी] दे० 'ठगोरी'। उ०—रूप ठगौरी डार मन मोहन लेगी साथ। तब तैं सौँसे भरत है नारी नारी हाथ।—स० समक, पृ० १८५।

ठट—संज्ञा पुं० [सं० स्थाता (= जो खड़ा हो), या देश०] १. एक स्थान पर स्थित घट्टन सी वस्तुओं का समूह। एक स्थान पर खड़े बहुत से लोगों की पक्ति।

मुहा०—ठट के ठट = झुंड के झुंड। बहुत से। उ०—रात का वक्त था मगर ठट के ठट लगे हुए थे।—फिसाना०, भा० २, पृ० १०४। ठट लगना = (१) भीड़ जमना। भीड़ खड़ी होना। (२) ढेर लगना। राशि इकट्ठी होना।

२. समूह। झुंड। पंक्ति। उ०—मंवर मगर हरखत बरखत फूल सनेहु सिधिल गोप गाइन के ठट हैं।—तुलसी (शब्द०)।

३. बनाव। रचना। सजावट। उ०—परखत धीति प्रतीति पेज पन रहे काज ठट ठानि हैं।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—ठटवारी = सजाववाली। बनाव वाली।

ठटकीला—वि० [हि० ठाट] [वि० स्त्री० ठटकीली] सजा हुआ। ठाटदार। सजीला। सड़क भड़कवाला। उ०—घाछी चरननि कंचन लकूट ठटकील बनमाल कर टेके द्रुमडार टेके ठाढ़े नंदलाल छबि छाई घट घट।—सूर० (शब्द०)।

ठटना—क्रि० स० [सं० स्थाता (= जो खड़ा या ठहरा हो)] हि० ठाट, ठाढ़] १. ठहराना। निश्चित करना। स्थिर करना। उ०—होत सु जो रघुनाथ ठटी। पवि पवि रहे सिद्ध, साधक, मुनि तक बड़ी न घटी।—सूर (शब्द०)। २. सजाना। सुसज्जित करना। तैयार करना। उ०—(क) नृप बन्यो विकट इन ठाट ठठि माछ माछ घर माछ रटि।—गोपाल (शब्द०)। (ख) कोऊ करि जलपान मुरेठा ठठि ठठि बान्हत।—प्रेमधन०, भा० १, पृ० २४०।

मुहा०—ठटकर बातें करना = बना बनाकर बातें करना। एक एक शब्द पर जोर देते हुए बातें करना।

३. (राग) खेड़ना। आरम्भ करना। उ०—नव निकुंज गृह नवल भागे नवल बीना मधि राग गोरी ठटी।—हरिदास (शब्द०)।

ठटना^१—क्रि० प्र० १. लड़ा रहना । धड़ना । ठटना । उ०—खेचत स्वाव स्वाव पातर क्यो जातक रटन ठटी ।—सूर (शब्द०) ।
२. विरोध में लड़ना । विरोध में ठटा रहना । ३. सजना । सुसजित होना । ठियार होना । उ०—जबहीं भाई चढ़े वस ठटा । बैलत बैल घन घन घटा ।—आयसी (शब्द०) ।
४. एकत्र होना । जमाव होना । पुंजीभूत होना । उ०—छत्तीस राग रागनि रसनि तंत ताल कंठन ठटहि ।—पु० रा०, ८२ । ५. स्थित होना । बरना । करना । साधना । उ०—कोई नाव रटे कोई ध्यान ठटे कोई खोजत ही थक जावता है ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० २६८ ।

ठटनि^(५), ठटनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठटना] बनाव । रचना । सजावट । उ०—नाभि भँवर त्रिवली तरंग गति पुलिन पुलिन ठटनी ।—सूर (शब्द०) ।

ठटथा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली जानवर ।

ठटरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाट] १. हड्डियों का ढाँचा । अस्थिपंजर । मुहा०—ठटरी होना = दुबला होना । कुसाग होना ।

२. घास भूसा आदि ढाँचने का जाज । करिया । लड़िया । ३. किसी वस्तु का ढाँचा । ४. मुरदा उठाने की रबी । घरबी ।

ठट्ठा—संज्ञा पुं० [हि० ठाट] बनाव । रचना । सजावट ।

ठट्ट—संज्ञा पुं० [सं० तट, हि० टट्टी वा सं० स्पाटा] १. एक स्थान पर स्थित बहुत सी वस्तुओं का समूह । एक स्थान पर लड़े बहुत से लोगों की पंक्ति । २. समूह । कुंड । समुदाय । पंक्ति । उ०—(क) इध रहहि गणुंता विरुद भणुंता, मट्टा ठट्टा पेक्खीया ।—कीर्ति०, पृ० ४८ । (ख) देखि न जाय कपिन के ठट्टा । अति विनाल तनु भालु सुमट्टा ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) पियत मट्ट के ठट्ट घर गुजरातिन के बुंद ।—हरिवंश (शब्द०) ।

• ठट्टना^(५)—क्रि० प्र० [हि० ठटना] आयोजन करना । ठाटना । उ०—सु रोमराइ राजई उपम कम्बि साजई । सुमेर शृंग कंद कै, चढ़े पपील बंद कै । उमंग कम्बि ठट्टई बनक मुट्टि चहुई ।—पु० रा०, २५ । १३६ ।

ठट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाट] ठट्टरी । पंजर । हड्डी का ढाँचा । उ०—उर संतर घुंघुपाइ जरे बस काँच की मट्टी । रक्त मांस जरि जाय रहे पंजर की ठट्टी ।—गिरधर (शब्द०) ।

ठट्टा—संज्ञा पुं० [हि० ठट्ट] दे० 'ठट' और 'ठट्ट' ।

ठट्टई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठट्टा] ठट्टा । दिलगी । हँसी ।

ठट्टा^१—संज्ञा पुं० [सं० मट्टहास या सं० टट्टरी (= उपहास)] हँसी । उपहास । दिलगी । मसखरापन । खिल्ली । उ०—तब नीरू ने कहा कि लोग मुझको हँसेंगे और ठट्टा में उड़ावेंगे ।—कबीर मं०, पृ० १०४ ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—ठट्टाबाज, ठट्टेबाज = दिलगीबाज । ठट्टेबाजी = दिलगी ।

मुहा०—ठट्टा उड़ाना = उपहास करना । दिलगी करना । उ०—धीरे लोग तरह तरह की नकसे करके उसका ठट्टा उड़ावे लगे ।—मीनिबास प्र०, पृ० १७६ । ठट्टा मारना =

खिलखिलाना । मट्टहास करना । ठट्टा में उड़ाना = किसी की चर्चा या कथन को मजाक समझना । खिल्ली उड़ाना । ठट्टा लगाना = खिलखिलाकर हँसना । ठठाकर हँसवा । मट्टहास करना ।

ठठ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठट' । २. 'ठाठ' । उ०—करि पान गंधा जल बिलल फिर ठठे ठठ चमसान के ।—हिम्मत०, पृ० २२ ।

ठठई^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० टट्टरी] हँसी । ठट्टा । मसखरापन । उ०—हुतो न सबो सनेहु मिटघो मन को, हरि परे उधरि, संदेसहु ठठई ।—तुलसी प्र०, पृ० ४४३ ।

ठठकना^(५)—क्रि० प्र० [सं० स्थेय + करण] १. एकबारगी ठक या ठहर जाना । ठठकना । उ०—(क) ठठकति चले मटक मुँह मोरे बंकट भौह चलावे ।—सूर (शब्द०) । (ख) डग कुडगति सी चलि ठठकि चितई चली निहारि । लिये जाति चित चोरटी वहे गोरटी नारि ।—बिहारी (शब्द०) । २. स्तंभित हो जाना । क्रियाशून्य हो जाना । ठक रह जाना । उ०—मन में कछु कहन चहै देखत ही ठठकि रहै सूर ग्याम निरखत दुरी तन सुधि बिसराय ।—सूर (शब्द०) ।

ठठकना^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठकना] ठठकने का भाव ।

ठठना^१—क्रि० सं० क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठटना' । उ०—बौकि चले, ठठि छैल छले, सु छबीली छराय लौ छाँह न छावावे ।—चनानंद, पृ० २१२ ।

ठठरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठटरी' ।

ठठवा^१—संज्ञा पुं० [हि० ठाट] एक प्रकार का रूखा धीर मोटा कपड़ा । इकतारा । लमगजा ।

ठठा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठट्टा' ।

ठठाना^१—क्रि० सं० [अनु० ठक् ठक्] ठोकना । धाधात लगाना । पीटना । जोर जोर से मारना । उ०—फले फूल फँले खल, सोदे साधु पल पल, बाती दीपमालिका ठठाइयत सुप हैं ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दंत ठठाइ ठोठरे कीने । रहे पटान सकल भय भीने ।—साल (शब्द०) ।

ठठाना^२—क्रि० प्र० [सं० मट्टहास] खिलखिलाना । मट्टहास करना । कहकहा लगाना । जोर से हँसना । उ०—दुइ कि होइ इक संग भुषालू । हंसव ठठाइ फुलाउव गालू ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठठिया^१^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० ठट्टर (= ढाँचा या ठठरी)] हड्डियों का ढाँचा । काया । शरीर । उ०—काहु भए टठिया के भेटे । शीघ दरस बिनु मरम न भेटे ।—कबीर सा०, पृ० ४१२ ।

ठठियार^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठरी (= ढाँचा)] ढाँचा । टट्टर । अस्थिशेष । उ०—तस सिगार सब लीन्हैसि मोहि कीन्हैसि ठठियारि ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३४१ ।

ठठियार^२—संज्ञा पुं० [देश०] जंगली चोपायों को चरानेवाला । चरवाहा ।—(नैपाल तराई) ।

ठठरिन^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठेरा] ठठेरिन । ठठरे की स्त्री । उ०—ठठरिन बहुतह ठाठर कीन्ही । चली महीरिन काजर कीन्ही ।—जायसी (शब्द०) ।

ठठकना—क्रि० प्र० [हि०] ३० 'ठठकना', 'ठठकना' । उ०—
दूर ही से मुझे घाट में नहाते देख ठठके ।—श्यामा०,
पृ० २७ ।

ठठेर मंजारिका—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठेरा + सं० मंजारिका] ठठेरे
की बिल्ली । उ०—ग्रहे बजंजी हरिन भ्रम कहा बजावे बीन ।
या ठठेर मंजारिका सुर सुनि मोहैगी न ।—दीनदयाल
(शब्द०) ।

विशेष—ठठेरी की बिल्ली के सामने रात दिन बरतन पीटे जाने
से न तो वह थोड़ी खड़खड़ाहट से डरती है न किसी अश्लेष
शब्द पर मोहित होती है ।

ठठेरा—संज्ञा पुं० [अनु० ठन ठन अथवा हि० टाटी+एरा (प्रत्यय०)]
[स्त्री० ठठेरिन, ठठेरी] धातु को पीट पीटकर बरतन
बनानेवाला । बरतन बनानेवाला । कसेरा ।

मुहा०—ठठेरे ठठेरे बदलाई=जैसे का तैसा व्यवहार । एक ही
प्रकार के दो मनुष्यों का परस्पर व्यवहार । ऐसे दो आदमियों
के बीच व्यवहार जो चालाकी, धूर्तता, बल आदि में एक
दूसरे से कम न हों । ठठेरे की बिल्ली=ऐसा मनुष्य जो कोई
अश्लेष काम देखते देखते या सुनते सुनते अभ्यस्त हो गया
हो । ऐसा मनुष्य जो कोई खटके की बात देखकर न चौंके
या न चबराय ।

विशेष—ठठेरे की बिल्ली दिन रात बरतन का पीटना सुना
करती है । इससे वह किसी प्रकार की आहट या खटका सुनकर
नहीं डरती ।

ठठेरा—संज्ञा पुं० [हि० ठाँठ] उवार बाजरे का डंठल ।

ठठेरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठेरा] १. ठठेरा की स्त्री । २. ठठेरा
जाति की स्त्री । ३. ठठेरा का काम । बरतन बनाने का काम ।
यौ०—ठठेरी बाजारा ।

ठठेरी—संज्ञा स्त्री० [हि० टट्टर (= रोक)] अवरोध । रोक ।
घाड़ । उ०—बीसा तीस गोलासू ठठेरी तोड़ नाबी । सलै
तोप राजा की भवंका भोड़ नांभी ।—शिक्षर०, पृ० ७५ ।

ठठोल—संज्ञा पुं० [हि० ठठ्ठा] [स्त्री० ठठोलिन] १. ठठेबाज ।
विनोद प्रिय । दिल्लगीबाज । मसखरा । उ०—मूँछ मरोरत
झोलई ऐठ्यो फिरत ठठोल ।—सुंदर० प्र०, भा० १,
पृ० ३१६ । २. ठठोली । हँसी । दिल्लगी । उ०—याद परी
सब रस की बातें बड़ि गयो विरह ठठोलन सौं ।—मारतेंदु
प्र०, भा० २, पृ० ३८५ ।

ठठोली—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठ्ठा] हँसी । दिल्लगी । मसखरापन ।
मजाक । वह बात जो केवल विनोद के लिये की जाय ।
उ०—ऐसी भी रही ठठोली ।—अर्चना, पृ० ३४ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठठकना—क्रि० प्र० [हि०] ३० 'ठठकना', 'ठठकना' ।

ठठ्ठा—वि० [सं० स्थातृ] खड़ा । दंडायमान ।

यौ०—ठठिया व्यवहार=वह सामाजिक व्यवहार जिसमें स्वयं
का सेव सेव व होता हो ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठठिया—संज्ञा पुं० [हि० ठाड़] वह नैचा जिसकी निगाली बिलकुल
खड़ी होती है ।

विशेष—ऐसा नैचा लखनऊ में बनता है । घोर मिट्टी की फरशी में
लगाया जाता है । मुसलमान इसका व्यवहार अधिक
करते हैं ।

ठठ्ठा—संज्ञा पुं० [हि० ठड़ा] १. पीठ की खड़ी हड्डी । रीढ़ ।

यौ०—ठठ्ठाट्टी=जिसकी कमर मुकी हो । कुबड़ी ।—(स्नि०) ।

२. पतंग में लगी हुई खड़ी कमाची । काँप का उसटा । ३. डींचा ।
टट्टर । उ०—दुर्बल और केलों के ठठ्ठे खड़ा कर देते ।—
प्रेमचन०, भा० २, पृ० ६ ।

ठठ्ठा—वि० [सं० स्थातृ] खड़ा । दंडायमान । उ०—तरकि तरकि
अति बज्ज से डारे । मदमत इइ ठठ्ठी फलकारे ।—नव०
प्र०, पृ० १६२ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठठिया—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाड़ (= खड़ा)] १. काठ की वह ऊँची
भोखली जिसमें पड़े हुए धान को लियी खड़ी होकर कूटती
है । २. मरसा नाम का शाक । ३. पशुओं का एक रोग ।

ठठियाना—क्रि० प्र० [हि० ठड़ा (= खड़ा)] खड़ा करना ।

ठठुई—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'ठठिया' ।

ठन—संज्ञा स्त्री० [अनु० ठन ठन] धातुखंड पर आघात पड़ने का शब्द ।
किसी धातु के बजने का शब्द ।

यौ०—ठन ठन=चमड़े से मड़े हुए बाजे का शब्द ।

ठनक—संज्ञा स्त्री० [अनु० ठन ठन] १. मृदंगादि की ध्वनि । चमड़े
से मड़े बाजे पर आघात पड़ने का शब्द । उ०—लखन चुरीन
की ल्यो ठनक मृदंगन की कनुक झनुक सुर नूरुर के जाल को ।
—पद्माकर (शब्द०) । २. रह रहकर आघात पड़ने की
सी पीड़ा । टीस । असक । ३. धातुखंड पर आघात होने
से उत्पन्न शब्द । ठन ।

मुहा०—ठनकर बोलना=कड़ी आवाज में कुछ कहना ।
उ०—सिंह ध्वनि होए बोले ठनक के, रन जीते फिर
भावे ।—सं० दरिया, पृ० ११५ ।

ठनकना—क्रि० प्र० [अनु० ठन ठन] १. ठन ठन शब्द करना ।
धातुखंड अथवा चमड़े से मड़े बाजे आदि का आघात पाकर
बजना । जैसे, तबला ठनकना । २. रह रहकर आघात पड़ने
की सी पीड़ा होना । जैसे, माया ठनकना ।

मुहा०—तबला ठनकना=नृत्य गीत आदि होना । उ०—हम भो
रस्ते रात के आघात रहे तो तबला ठनकत रहा ।—मारतेंदु
प्र०, भा० १, पृ० ३२६ । माया ठनकना=किसी बुरे लक्षण
को देखकर चित्त में घोर आशंका उत्पन्न होना । जैसे, सार
पाते ही माया ठनका ।

ठनका—संज्ञा पुं० [हि० ठनक] १. धातुखंड आदि पर आघात पड़ने
का शब्द । २. आघात । ठोकर । ३. रह रहकर आघात
पड़ने की सी पीड़ा ।

ठनकाना—क्रि० स० [हि० ठनकना] किसी धातुखंड या चमड़े से मढ़े बाजे पर आघात करके शब्द निकालना । बजाना । जैसे, सबका ठनकाना, रुपया ठनकाना ।

मुहा०—रुपया ठनका लेना = रुपया बजाकर ले लेना । रुपया बसूल कर लेना । उ०—जैसे, तुमने रुपए तो ठनका लिए मेरा काम हो या न हो ।

ठनकार—संज्ञा पुं० [अनुध्व० ठन ठन] धातुखंड के बजने का शब्द ।

ठनकारना—क्रि० प्र० [हि० ठनकार] फुफकारना । क्रुद्ध सर्प का फन काढ़कर फुफकारना । उ०—मन सन करके रात खनकती भीगुर भनकारें । कभी कभी बादुर रट कर जिय व्याकुल कर डारें । साँप खँडहर पर ठनकारें ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ४८६ ।

ठनगन^१—संज्ञा पुं० [हि० ठनना] विवाह आदि मंगल अवसरों पर नेगियों या पुरस्कार पानेवालों का अधिक पाने के लिये हठ या झड़ । उ०—ठनगन तैं सब बाम बसनन सजि सजि कै गई ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३३ ।

क्रि० प्र०—करना ।—ठानना ।—होना ।

२. हठ । झड़ । मान । उ०—बनि प्राणें ठनगन ठानति है सबोंपर राधे तोहि लहो ।—घनानंद, पृ० ४५६ ।

ठनठन—क्रि० वि० [अनुध्व०] धातुखंड के बजने का शब्द ।

ठनठन गोपाल—संज्ञा पुं० [अनुध्व० ठनठन + गोपाल (= कोई व्यक्ति)] १. छूँछी धीर निःसार वस्तु । वह वस्तु जिसके भीतर कुछ भी न हो । २. लुब्ध आदमी । निर्धन मनुष्य । वह व्यक्ति जिसके पास कुछ भी न हो ।

ठनठनाना^१—क्रि० स० [अनुध्व०] किसी धातुखंड या चमड़े से मढ़े बाजे पर आघात करके शब्द निकालना । बजाना ।

ठनठनाना^२—क्रि० प्र० ठन ठन बजना या आवाज होना । ठनठन की ध्वनि होना ।

ठनना—क्रि० प्र० [हि० ठानना] १. (किसी कार्य का) तत्परता के साथ प्रारंभ होना । दृढ़ संकल्पपूर्वक प्रारंभ किया जाना । अनुष्ठित होना । समारंभ होना । छिड़ना । जैसे, काम ठनना, भगड़ा ठनना, बैर ठनना, युद्ध ठनना, लड़ाई ठनना । २. (मन में) स्थिर होना । ठहरना । निश्चित होना । पक्का होना । दृढ़ होना । चिन्ता में दृढ़तापूर्वक धारण किया जाना । दृढ़ संकल्प होना । जैसे, मन में कोई बात ठनना, हठ ठनना । उ०—हरिचंद जू बात ठनी तो ठनी नित की कलकानि ते छूटनी है ।—हरिचंद (शब्द०) । ३. ठहरना । लगना । जमना । धारण किया जाना । प्रयुक्त होना । उ०—दुलरी कल कोकिल कंठ बनी मृग खजन धंजन भति ठनी ।—केशव (शब्द०) । ४. उद्यत होना । मुस्तैद होना । सज्जद होना । उ०—रम जीवन काजै भटन निबाजै भानद छाजै युद्ध ठने ।—गोपाल (शब्द०) ।

मुहा०—किसी बात पर ठनना = किसी बात या काम को करने के लिये उद्यत होना ।

ठनमनाना—क्रि० प्र० [हि०] १० 'ढनमनाना' ।

ठनाका—संज्ञा पुं० [अनुध्व० ठन] ठन ठन शब्द । ठनकार ।

ठनाठन—क्रि० वि० [अनुध्व० ठन ठन] ठन ठन शब्द के साथ । भनकार के साथ । जैसे, ठनाठन बजना ।

ठप—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. खुले हुए ग्रंथ को एकाएक बंद करने से उत्पन्न शब्द या ध्वनि । २. किसी कार्य या व्यापार का पूरी तरह बंद रहना या रुक जाना ।

क्रि० प्र०—करना ।—रहना ।—होना ।

ठपका—संज्ञा पुं० [देश०] धक्का । ठोकर । ठेस । उ०—यह तन काचा कुंभ है लिया फिरे या साथ । ठपका लाग्या फूटि गया कछु न धाया हाथ ।—कबीर (शब्द०) ।

ठपाका—संज्ञा पुं० [फ्रा० तपाक] जोश । आवेश । वेग । तेजी । उ०—रामसिंह नशे में थे ही ठपाक से आल्हा की लड़ियाँ गाने लगे ।—काले०, पृ० २४ ।

ठपोरना—क्रि० स० [हि० ठप ठप अनुध्व०] थपथपाना । ठोकना । उ०—जन दरिया बानक बना गुरु ठपोरी पूठ ।—दरिया० बानी, पृ० १६ ।

ठप्पा—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हि० थापन, थाप, अथवा अनुध्व० ठप] १. लकड़ी, धातु, मिट्टी आदि का खंड जिसपर किसी प्रकार की आकृति, बेलबूटे या अक्षर आदि इस प्रकार खुदे हों कि उसे किसी दूसरी वस्तु पर रखकर दबाने से या दूसरी वस्तु को उसपर रखकर दबाने से उस दूसरी वस्तु पर वे आकृतियाँ, बेलबूटे या अक्षर उभर आँ अथवा बन जाँय । साँचा ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२. लकड़ी का टुकड़ा जिसपर उभरे हुए बेलबूटे बने रहते हैं और जिसपर रंग, स्याही आदि पोतकर उन बेलबूटों को कपड़े आदि पर छापते हैं । छाप । ३. गोटे पट्टे पर बेलबूटे उभारने का साँचा । ४. सचि के द्वारा बनाया हुआ चित्र, बेलबूटा आदि । छाप । नकश । ५. एक प्रकार का चौड़ा नक्काशीदार गोटा ।

ठबका—संज्ञा स्त्री० [हि० ठपका] आघात । ठोकर । ठेस । उ०—या तनु को कह गवं करत है भोला ज्यों गल जावे रे । जैसे बर्तन बनो काँच को ठबक लगे बिगसावे रे ।—राम० धर्म०, पृ० ३६० ।

ठबकना—क्रि० प्र० [हि० ठमक] ठेस या ठोकर देते हुए चलना । ठसक के साथ चलना । उ०—हबकि न बोलिबा, ठबकि व चालिबा धीरे धरिबा पाव । गरब न करिबा, सहज रहिबा भगंत गोरख राव ।—गोरख०, पृ० ११

ठभोली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठोली वा देश०] १० 'ठठोली' ।

ठमकना(५)—क्रि० स० [अनु०] ठम की ध्वनि के साथ गिरना, ठहरना या रुकना उ०—उरं फुट सत्ताह धरनी ठमके ।—प० रासो, पृ० ४५ ।

ठमक—संज्ञा स्त्री० [हि० ठमकना] १. चलते चलते ठहर जाने का भाव । रुकावट । २. चलने की ठसक । चलने में हावभाव । लचक ।

ठमकना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भन] १. चलते चलते ठहर जाना । ठिठकना । रुकना । जैसे,—तुम चलते चलते ठमक क्यों जाते हो । २. ठसक के साथ रुक रुककर चलना । हाव भाव दिखाते हुए चलना । धंग मरोड़ते या मटकते हुए चलना । लचक के साथ चलना । उ०—ठमकि ठमकि सरकौही चालन धाव सामुहें मेरे ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८६ ।

ठमका^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धनुष्य०] ठम् ठम् की स्थिति या क्रिया । ठक ठक । भँभट बसेड़ा । उ०—घमण घमंती रह गई सीला पड़पा भंगार । घहरण का ठमका मिटपा री लाव चले सोद्धार ।—राम० धर्म०, पृ० १६ ।

ठमका^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] झोंका । उ०—इसलिये कांग सेठानी नींद का ठमका ले रही थी ।—जनानी०, पृ० ३८ ।

ठमकाना—क्रि० सं० [हि० ठमकना] ठहराना । चलते चलते रोकना ।

ठमकारना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ठमकाना' ।

ठमठमाना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भन] ठमकना । ठिठकना । उ०—दुल्हा जू जरा जरा ठमठमाया ।—भासी०, पृ० ३१६ ।

ठमिकना^१—क्रि० प्र० [देश०] दे० 'ठमकना' । उ०—चोथा को लेंहेंगे झुना को ताव । ठमिक ठमिक घन देखइ पाव ।—बी० रासो, पृ० ११४ ।

ठमकड़ा^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठमक (= ठमक) + ढा (प्रत्य०)] ठक ठक की धावाज । ठपका । ठमका । उ०—घबणि घवंती रहि गई, बुझि गए भंगार । घहरणि रह्या ठमकड़ा जब उठि चले लुहार ।—कबीर ग्रं०, पृ० ७५ ।

ठयना—क्रि० सं० [सं० धनुष्य०] १. ठानना । दृढ़ संकल्प के साथ प्रारंभ करना । छेड़ना । उ०—(क) दासी सहस्र प्रगट तैह भई । इंद्रलोक रचना ऋषि ठई ।—सूर (शब्द०) । (ख) जब नैननि प्रीति ठई ठग श्याम सो, स्यानी सखी हठि हौ बरजो ।—तुलसी (शब्द०) । २. कर चुकना । पूरी तरह से करना । (इसका प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में हुपा है) । उ०—देवता निहोरे महामारिन सों कर जोरे भोरानाथ भोरे धापनी सी कहि ठई है ।—तुलसी (शब्द०) । ३. मन में ठहराना । निश्चित करना । उ०—तुलसिदास कोन भास मिलन की ? कहि गए सो तो एकी चित न ठई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठएऊ ।—मानस, पृ० ७१ ।

ठयना^२—क्रि० प्र० १. ठानना । दृढ़ संकल्प के साथ प्रारंभ होना । २. मन में दृढ़ होना । ३. प्रयोग में आना । कार्य में प्रयुक्त होना ।

ठयना^३—क्रि० सं० [सं० स्थापन, प्रा० ठावन] १. स्थापित करना । बैठाना । ठहराना । २. लगाना । प्रयुक्त करना । नियोजित करना । उ०—बिधिना धति हौ पोच कियो री । ...रोम रोम लोचन इक टक करि युवतिन प्रति काहे न ठयो री ।—सूर (शब्द०) ।

ठयना^४—क्रि० प्र० १. ठहरना । स्थित होना । बैठना । जमना । उ०—राज सब लखि गुप्त भूसुर सुधासनन्हि समथ समाज की

ठयनि भली ठई है ।—तुलसी (शब्द०) । २. प्रयुक्त होना । लगना । नियोजित होना ।

ठरना—क्रि० प्र० [सं० स्तब्ध, प्रा० ठड्ड, हि० ठार + ना (प्रत्य०)] १. अत्यंत शीत से ठिठुरना । सरदी से झकड़ना या सुष्ट होना । जैसे, हाथ पाँव ठरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. अत्यंत सरदी पड़ना । बहुत अधिक ठंड पड़ना ।

ठरकना—क्रि० प्र० [हि० ठरका (= ठोकर, टक्कर)] टकराना । उ०—चक्रमक ठरके घगति भरें यूँ दध मधि घृत करि लीया ।—गोरख०, पृ० २०८ ।

ठरमरुआ^१—वि० [हि० ठार + मारना [वि० स्त्री० ठरमरुई] वह फसल जिसे पाला मार गया हो ।

ठराना—क्रि० प्र० [हि० ठहरना] टिक जाना । स्थिर होना । ठहरना । उ०—हरि कर बिपका निरखि तियन के नैनो छबिहि ठराई ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८१ ।

ठराना^२—क्रि० सं० [हि० ठडा = (खड़ा) + ना (प्रत्य०)], या ठहराना] खड़ा करना । तैयार करना । बनाना । ठहराना । उ०—जमी के तले यक ठरा कर मकान ।—दक्खिनी०, पृ० ३३६ ।

ठरारा—वि० [हि० ठार] सदैव । ठंडा । उ०—कबहुँ मनहि मन सोचत, मोचत स्वास ठरारे ।—नंद० ग्रं०, पृ० २०१ ।

ठरुआ^१—वि० [हि० ठार] [वि० स्त्री० ठरुई] फसल जिसे पाला मारा गया हो ।

ठरुका^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठोकर] ठोकर । धाधात । उ०—जिनसौ प्रीति करत है गाढ़ी सो मुख लावे लूकी रे, जारि बारि तन खेह करेगे दे दे मूँड ठरुकी रे ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१० ।

ठरी—संज्ञा पुं० [हि० ठड़ा (= खड़ा)] १. इतना कड़ा बटा हुआ मोटा सूत जो हाथ में लेने से कुछ तना रहे । मोटा सूत । २. बड़ी धधपकी ईंट । ३. महुवे की निकृष्ट कड़ी शराब । फूल का उलटा । ४. भंगिया का बंद । तनी । ५. एक प्रकार का मद्दा पूता । ६. मद्दा और बेडोल मोती ।

ठरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बिना भंजुर उठा हुआ घान का बीज जो छितराकर बोया जाता है । २. बिना भंजुर उठे हुए घान की बोझाई ।

ठलवारि^१—वि० पुं० [हि० टिल्ला, टल्ल > टल्लेनबीसी (= बहाना, निठलापन) बहाना करनेवाला । किसी बात को हँसी में उड़ा देनेवाला । ठट्टेबाज । उ०—कहा तेरेई प्रायो राज लाज तजि खौरत भोरे काज, कहा तोहि ठलवारि घरबसे न जानत बात बिरानी ।—घनानंद, पृ० ४२६ ।

ठलाना^१—क्रि० सं० [प्रा० टिल्ल] ठेलना । रखना । उ०—(क) ता पाछे रीति अनुसार सामग्री ठलाइ प्रभुन की पलना झुलाई... धाति करि धनोसर करते ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० १०१ । (ख) पाछे वह सब धन्य तुमकों तुम्हारे बासनन में ठलाइ देहुंगी ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० २५५ ।

ठसानी^१—क्रि० स० [हि० ठालना] गिराना। निकालना।

ठलुआ—वि० [धप० ठल (= रिक्त) या हि० ठाला + उ आ (प्रत्य०)]
मिटला। खाली। उ०—मधुवन की बातों ही में मालूम
हुआ कि उस घर में रहनेवाले सब ठलुए बेकार हैं।—तितली,
पृ० २२७।

ठलुवा—वि० [धप० ठल या हि० ठाला + उक (प्रत्य०)] दे०
'ठलुआ'।

ठल्ला^१—वि० [धप० ठल्ल या ठल्ल] १. निषेध। घनरहित।
हरिद्र। २. खाली। शून्य। रिक्त। उ०—नमणी खमणी बहु
गुणी सगुणी मनइ सियाई। जे बण एही सपजइ, तउ जिय
ठल्लउ जाइ।—ढोला०, पृ० ४५६।

ठवैका^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठमक] दे० 'ठमक', 'ठसक'। उ०—
बंदेलिनि ठवैकहु पगु दारा। चली चौहानी होइ मन-
कारा।—जायसी ग्रं०, पृ० २४६।

ठवक^१—संज्ञा पुं० [हि० ठोंक] धाधात। धपकी। ठोका। उ०—
पवन ठवक लागि ताहि जगाये। तब ऊरध को शोष उठावे।—
चरण० बानी, पृ० ८०।

ठवन—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापण, प्रा० ठावण] दे० 'ठवनि'।

ठवना^१—क्रि० स० [सं० स्थापन] १. स्थापित करना।
रखना। उ०—वायस वोजउ नाम, ते भागलि लल्लउ ठवइ।
जइ तू हई सुजाण तउ तू बहिनउ मोकलइ।—ढोला०, पृ०
१४२। २. योजना करना। ठानना। उ०—भाठम प्रहर संभा
समे बण ठवै सिणगार।—ढोला०, पृ० ५८६।

ठवना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठयना'।

ठवनि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, हि० ठवना (= बैठना) वा सं०
स्थान] १. बैठक। स्थिति। उ०—राज एक साक्षि गुरु
सुसुर सुधासनन्हि समय समाज की ठवनि भली ठई है।—
तुलसी (शब्द०)। २. बैठने या खड़े होने का ढंग। आसन।
मुद्रा। ढंग की स्थिति या सञ्चालन का ढब। अदाज। उ०—
(क) कुंजर मनि कंठा कलित उर तुलसी की माल। वृषभ
कंध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु बिसाल।—तुलसी (शब्द०)।
(ख) ठाढ़ भए उठि सहज सुभाए। ठवनि जुवा युगराज
लजाए।—तुलसी (शब्द०)।

ठवरी^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठोर'। उ०—कथनी कथि कथि बहु
चतुराई। चोर चतुर कहि ठवर ना पाई।—स० दरिया,
पृ० ८।

ठस—वि० [सं० स्थासु (= दृढ़ता से जमा हुआ, दृढ़)] १. जिसके
कण परस्पर इतने मिले हों कि उसमें उंगली आदि न घँस
सके। जिसके बीच में कहीं रंध्र वा अक्काश न हो। जो
भुरभुरा, गीला या मुलायम न हो। ठोस। कड़ा। जैसे, बरफी
का खूबकर ठस होना, गीले घाटे का ठस होना। २. जो
भीतर से पोला या खाली न हो। भीतर से भरा हुआ। ३.
जिसके सूत परस्पर खूब मिले हों। जिसकी बुनावट घनी हो।
गफ। जैसे, ठस बुनावट, ठस कपड़ा। उ०—इस टोपी का
काम खूब ठस है।—(शब्द०)। ४. दृढ़। मजबूत। ५.
भारी। बजनी। शुरु। ६. जो अपने स्थान से जल्दी न ठसके।
जो हिले ढोले नहीं। निष्क्रिय। सुस्त। मट्टर। घालसी। ७.

(रूपया) जिसकी झनकार ठीक न हो। जो खरे सिक्के के
ऐसा न हो। जो कुछ खोटा होने के कारण ठीक आवाज न
दे। जैसे, ठस रूपया। ८. भरा पूरा। संपन्न। घनाठस।
जैसे, ठस असामी। ९. कृपण। कंजूस। १०. हठी। बिड़ी।
अड़ करनेवाला।

ठसक—संज्ञा स्त्री० [हि० ठस] १. अभिमानपूर्ण हाव भाव।
गर्वीली चेष्टा। नखरा। जैसे,—वह बड़ी ठसक से चलती है।
२. अभिमान। दपे। शान। उ०—कड़ि गई रैयत के जिय
की कसक सब मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की।
—भूषण (शब्द०)।

ठसकदार—वि० [हि० ठसक + फा० दार] १. घमंडी। अभि-
मानी। २. शानदार। तड़क भड़कवाला। उ०—ठीर ठकुराई
को तू ठाकुर ठसकदार नद के कन्हाई सो सु नंद को कन्हाई
है।—पद्माकर (शब्द०)।

ठसका—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. वह खाँसी जिसमें कफ न निकले
और गले से ठन ठन शब्द निकले। सूखी खाँसी। २. ठोकर।
धक्का।

क्रि० प्र०—खाना।—मारना।—लगना।

ठसाठस—क्रि० वि० [हि० ठस] ऐसा दबाकर भरा हुआ कि
घोर भरने की जगह न रहे। ठूसकर भरा हुआ। खूब कस-
कर भरा हुआ। खचाखच। जैसे,—(क) वह संदूक कपड़ों
से ठसाठस भरा हुआ है। (ख) इस कुपे में ठसाठस बीनी
भरी हुई है।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल चूरां या ठोस वस्तुओं के लिये
ही होता है, पानी आदि तरल पदार्थों के लिये नहीं। जो
वस्तु भरी जाती है और जिस वस्तु में भरी जाती है दोनों के
संबंध में इस शब्द का व्यवहार होता है। जैसे, संदूक ठसाठस
भरा है, कपड़े ठसाठस भरे हैं।

ठसा—संज्ञा पुं० [देश०] १. नक्काशी बनाने की एक छोटी रस्सानी।
२. गर्वपूर्ण चेष्टा। अभिमानपूर्ण हाव भाव। ठसक। ३.
घमंड। अहंकार। ४. ठाट बाट। शान। ५. ठवनि। मुद्रा।
अदाज।

मुहा०—ठसे के साथ बैठना = घमंड के साथ बैठना। गर्व भरी
मुद्रा में शान के साथ बैठना। उ०—कोचवान भी ठसे के
साथ बैठा है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३६। ठसे से
रहना = ठाट बाट से रहना या जीवन बिताना। उ०—इस
ठसे से रहती है कि अच्छी अच्छी रईस जातियों से टक्कर
लें।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १।

ठह—संज्ञा पुं० [हि०] ठाँव। ठहो। स्थान।

ठहक—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] नगारे का शब्द।

ठहकना—क्रि० प्र० [देश०] ध्वनि करना। बोलना। आवाज
करना। उ०—यिक ठहकै भरणां पड़े हरिए डूंगर हाव।—
बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ८।

ठहकाना^१—क्रि० स० [हि० ठह (= स्थान)] किसी वस्तु को
उसके ठीक स्थान पर बैठाना या जमाना। उ०—तन बंदूक
सुमति के सिगरा, शान के गज ठहकाई। सुरति पलीता हरदन

सुलगी, कसपर राख चढ़ाई।—पलट०, भा० ३, पृ० ४० ।
(क) हम को राख सहज को सोसा ज्ञान के गज ठहकाई।—
कबीर० श०, भाग २, पृ० १३२ ।

ठहना^१—क्रि० स० [धनुष०] १. हिनहिनाना । घोड़े का बोलना ।
२. घनघनाना । घंटे का बजाना ।

ठहना^१—क्रि० प्र० [सं० स्था, प्रा० ठा] किसी काम को करते हुए
सोच विचार करने या बनाने सँवारने के लिये बीच बीच में
ठहरना । धीरे धीरे धैर्य के साथ करना । बनाना । सँवारना ।
किसी काम को करने में खूब जमना ।

मुहा०—ठह ठहकर बोलना = हाव भाव के साथ रुक रुककर
बोलना । एक एक शब्द पर जोर दे देकर बोलना । मठार
मठारकर बोलना । ठहकर = अच्छी तरह जमकर ।

ठहनाना—क्रि० प्र० [धनुष०] १. घोड़ों का बोलना । हिन-
हिनाना । उ०—गज अरु कुरुपति छवि छाई । चहुँविडि
तुरग रहे ठहनाई ।—सबल (शब्द०) । घंटे का बजना ।
घनघनाना । ठनठनाना उ०—दूँद घंट ध्वनि प्रति ठहनाई ।
मार राग सहित सहनाई ।—सबल (शब्द०) । ३. दे०
'ठहना' ।

ठहर—संज्ञा पु० [सं० स्थल या स्थिर] १. स्थान । जगह । उ०—ठाकुर
महेस ठकुराइन उमा सी जहाँ लोक वेद है विदित महिमा
ठहर की ।—तुलसी (शब्द०) । २. रसोई के लिये मिट्टी
से लिपा हुआ स्थान । चौका । ३. रसोईघर आदि में मिट्टी
की लिपाई । पोताई । चौका । उ०—नेम अचार षटकर्म
नहीं नाँही पाति को पान । चौका चंदन ठहर नहीं मीठा देव
निदान ।—सं० दरिया०, पृ० ३८ ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—ठहर देना = रसोईघर वा भोजन के स्थान को लीप पोत-
कर स्वच्छ करना । चौका लगाना ।

ठहरना—क्रि० प्र० [सं० स्थिर + हि० ना (प्रत्य०)], अथवा सं०
स्थल, हि० ठहर + ना (प्रत्य०)] १. चलना बंद करना ।
गति में न होना । रुकना । जमना । जैसे,—(क) थोड़ा ठहर
जाओ पीछे के लोगों को भी धा लेने दो । (ख) रास्ते में
कहीं न ठहरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. विश्राम करना । डेरा डालना । टिकना । कुछ काल तक के
लिये रहना । जैसे,—घाप काशी में किसके यहाँ ठहरेंगे ?

संयो० क्रि०—जाना ।

३. स्थित रहना । एक स्थान पर बना रहना । इधर उधर न
होना । स्थिर रहना । जैसे,—यह नौकर चार दिन भी किसी
के यहाँ नहीं ठहरता ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—मन ठहरना = चित्त स्थिर और शांत होना । चित्त की
आकुलता दूर होना ।

४. नीचे न फिसलना या गिरना । अड़ा रहना । टिका रहना ।
बहने या गिरने से रुकना । स्थित रहना । जैसे, (क) यह

गोला डंडे की नोक पर ठहरा हुआ है । (ख) यह चढ़ा फूटा
हुआ है इसमें पानी नहीं ठहरेगा । (ग) बहुत से योगी देर
तक अक्षर में ठहरे रहते हैं ।

संयो० क्रि०—जाना ।

५. दूर न होना । बना रहना । न मिटना या न नष्ट होना ।
जैसे,—यह रंग ठहरेगा नहीं, उड़ जायगा । ६. जल्दी न
टूटना फटना । नियत समय के पहले नष्ट न होना । कुछ दिन
काम देने धायक रहना । चलना । जैसे,—यह जूता तुम्हारे
पैर में दो महीने भी नहीं ठहरेगा । ७. किसी घुली हुई वस्तु
के नीचे बैठ जाने पर पानी या अर्क का स्थिर भीर
साफ होकर ऊपर रहना । पिराना । ८. प्रतीक्षा करना ।
धैर्य धारण करना । धीरज रखना । स्थिर भाव से रहना ।
चंचल या आकुल न होना । जैसे,—ठहर जाओ, देखते हैं,
आफत क्यों मचाए हो । ९. कार्य प्रारंभ करने में देर करना ।
प्रतीक्षा करना । घासरा देखना । जैसे,—अब ठहरने का वक्त
नहीं है झटपट काम में हाथ लगा दो । १०. किसी लगातार
होनेवाली क्रिया का बंद होना । लगातार होनेवाली बात
या काम का रुकना । जमना । जैसे, मेह ठहरना, पानी
ठहरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

११. निश्चित होना । पक्का होना । स्थिर होना । तै पाना ।
करार होना । जैसे, दाम या कीमत ठहरना, भाव ठहरना ।
बात ठहरना, व्याह ठहरना ।

मुहा०—किसी बात का ठहरना = किसी बात का संकल्प होना ।
विचार स्थिर होना । ठनना । जैसे,—(क) क्या अब चलने
हो की ठहरी ? (ख) गप बहुत हुई, अब खाने की ठहरे ।
ठहरा = है । जैसे,—(क) वह तुम्हारा भाई हो ठहरा कहाँ
तक खबर न लेगा ? (ख) तुम घर के आदमी ठहरे तुमसे
क्या छिपाना ? (ग) अपने संयोजी ठहरे उन्हें क्या कहे ।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग ऐसे स्थलों पर ही होता है जहाँ
किसी व्यक्ति या वस्तु के अग्रगण्य होने पर विरुद्ध घटना या
व्यवहार की संभावना होती है ।

† ११. (पशुओं के लिये) गर्भ धारण करना ।

ठहराई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहराना] १. ठहराने की क्रिया । २.
ठहराने की मजदूरी । कच्चा । अधिकार ।

ठहराऊँ—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ठहराव' ।

ठहराऊँ—क्रि० [हि० ठहरना] १. ठहरनेवाला । कुछ दिन बना
रहनेवाला । जल्दी नष्ट न होनेवाला । २. टिकाऊ । चलने-
वाला । दृढ़ । मजबूत । † ३. ठहरानेवाला । टिकानेवाला ।
किसी कार्य को निश्चित करानेवाला । किसी व्यक्ति को कहीं
टिकानेवाला ।

ठहराना^१—क्रि० स० [हि० ठहरना का प्रेर० रूप] १. चलने से
रोकना । गति बंद करना । स्थिति कराना । जैसे,—(क)
वह चला जा रहा है उसे ठहराओ । (ख) यह चलता हुआ
पहिया ठहरा दो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. ठिकाना । विश्राम कराना । डेरा देना । कुछ काल तक के लिये निवास देना । जैसे,—इन्हें अपने यहाँ ठहराओ । ३. इस प्रकार रखना कि नीचे न खिसके या गिरे । झड़ाना । ठिकाना । स्थित रखना । जैसे, ठंडे की नोक पर गोला ठहराना ।

संयो० क्रि०—देना ।

४. स्थिर रखना । दृढ़ उधर न जाने देना । एक स्थान पर बनाए रखना । ५. किसी लगातार होनेवाली क्रिया को बंद करना । किसी होते हुए काम को रोकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

६. निश्चित करना । पक्का करना । स्थिर करना । तै करना । जैसे, बात ठहराना, भाव ठहराना, कीमत ठहराना, व्याह ठहराना ।

ठहराना^७—क्रि० प्र० [हि० ठहरना] ठकना । ठिकना । स्थिर होना । उ०—(क) रूप दुपहरी छाँह कब ठहरानी एक ठोर ।—स० समक, पृ० १८३ । (ख) जबै भाऊँ साधु संगति कछुक मन ठहराइ ।—सूर (शब्द०) ।

ठहराव—संज्ञा पुं० [हि० ठहरना] ठहरने का भाव । स्थिरता । २. निश्चय । निश्चरण । नियति । मुकरंरी । ३. दे० 'ठहरोनी' ।

ठहराई—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठहर' ।

ठहरौनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहराना, पुं० हि० ठहरावनी] १. बिवाह में लेन देन का करार । २. किसी भी प्रकार का पारस्परिक करार या निश्चय ।

ठहराकाँ—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] अट्टहास । जोर की हँसी । कहकहा ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

ठहराकाँ—वि० चटपट । तुरत । तड़ से ।

ठहरियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० ठह, ठाँव] ठाँह । जगह । ठिकाना । स्थान ।

ठहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठह] स्थान । ठाँव । ठाँह ।

ठहोर^८—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहर] ठहरने योग्य स्थान । विश्राम योग्य स्थल । उ०—कतए भवन कत आगन बाप कतए कत माय । कतहु ठहोर नहि ठेहर ककर एहन जमाय ।—विद्यापति, पृ० ३१८ ।

ठाँ—संज्ञा स्त्री० पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण] दे० 'ठाँव' । उ०—यौ सब ठाँ दरसै बरसै घबघानद घीबि घराबि कृपाई ।—घनानंद, पृ० १५० ।

यौं—ठाँ ठाँ = स्थान स्थान पर । उ०—ठाँ ठाँ मधुर मयानी बजै । अनु नब आनंद बुद भगजै ।—नंद० प्र०, पृ० २४८ ।

ठाँ—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] बंदूक की आवाज ।

ठाँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाँव] स्थान । जगह । उ०—मीन रूप जो कीन बबाई । तीन छोड़ रहूँ चौपे ठाँई ।—कबीर सा०, पृ० १७ । २. तई । प्रति । उ०—पान भक्षे मुख नैन रची

रुचि प्रारंभी देखि कहँ हम ठाँई ।—केशव (शब्द०) । ३. समीप । पास । निकट ।

ठाँड़, ठाँऊँ—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान] १. ठौर । ठाँव । स्थान । जगह । ठिकाना । उ०—रंक सुदामा कियो प्रजाबी, दियो भ्रमपद ठाँड़ ।—सूर०, १।१६४ । २. पास । समीप । उ०—चार मीत जो मुहुमद ठाँऊँ । जिन्हहि दोन्हि जग विरमल नाऊँ ।—जायसी (शब्द०) ।

ठाँठ—वि० [सं० स्थाणु (= ठूँठा पेड़) वा अनु० ठन ठन] १. जो सुलकर बिना रस का हो गया हो । नीरस । २. (शाय या भैंस) जो दूध न देती हो । दूध न देनेवाला (चोपाया) । जैसे, ठाँठ गाय । दे० 'ठाठ' ।

ठाँठरी—संज्ञा पुं० [हि०] ठठरी । ठाँचा ।

ठाँठर—वि० [हि० ठाँठ] दे० 'ठाँठ' ।

ठाँण—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण] धान । जगह । उ०—खूँटइ जीण न मोजड़ी कठ्याँ नही केकाँण । साजनिया सालइ नही, सालइ बाही ठाँण ।—ढोला०, पृ० ३७५ ।

ठाँमाँ—संज्ञा स्त्री० [हि०] ठाँव । स्थान । उ०—ठगिया रूप निहारि, ठाँम ठाँमि ठाठा खरी ।—ब्रज० प्र०, पृ० २ ।

ठाँयँ—संज्ञा पुं० स्त्री०, [सं० स्थान, प्रा० ठाण] १. स्थान । जगह । ठिकाना ।

विशेष—दे० 'ठाँव' ।

२. समीप । निकट । पास । उ०—जिन लागि निज परलोक बिगारयो ते लजात होत आड़े ठाँय ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठाँयँ—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] बंदूक छूटने का शब्द । जैसे,—ठाँयँ से गोली मार दो ।

ठाँयँ ठाँयँ—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] १. लगातार बंदूक छूटने का शब्द । २. रगड़ा । भगड़ा । उ०—खैर अब इस ठाँयँ ठाँयँ से क्या मतलब ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ७७ ।

ठाँव—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण] स्थान । जगह । ठिकाना । उ०—(क) निबर, नीब, निर्गुन निधन कहँ जग दुसरो न ठाकुर ठाँव ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) नाहिन मेरे ओर कोउ बलि चरन कमल बिनु ठाँव ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः सब कवियों ने पुं० किया है ओर अधिक स्थानों में पुं० ही बोला जाता है पर दिल्ली मेरठ आदि पश्चिमी जिलों में इसे स्त्री० बोलते हैं ।

२. घरसर । मोका । उ०—इहै ठाँव हों बारति रही ।—जायसी प्र०, पृ० ८४ । ३. रुकने या टिकने का स्थान । ठहराव । उ०—चार कोस लै गाँव, ठाँव एको नहीं ।—घरनी० प्र०, पृ० ४५ ।

ठाँसना—क्रि० सं० [सं० स्थाणु (= दृढ़ता से बैठाया हुआ)] १. जोर से घुमाना । कसकर घुसेड़ना । दबाकर प्रविष्ट करना । २. कसकर भरना । दबा दबाकर भरना । † ३. रोकना । अवरोध करना । मना करना ।

ठासना^१—क्रि० घ० ठन ठन शब्द के साथ सासना । बिना कफ निकाले हुए सासना । ठासना ।

ठाहीं^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठाई' । उ०—मन माया काल गति नाहीं । जीव सहाय बसे तेहि ठाहीं ।—कबीर सा०, पृ० ८२३

ठाउरी^१—संज्ञा पुं० [हि० ठाव + र (प्रत्य०)] ठौर । आश्रयस्थान । ठिकाना । उ०—मनुवाँ मोर भइल रंग बाउर । सहज नगरिया लागन ठाउर ।—गुलाब० बानी, पृ० १०४ ।

ठाकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्ताव अथवा स्तम्भन अथवा हि० थाक (= थकना) अथवा सं० स्था + क (प्रत्य०)] बाधा । रोक । रुकावट । उ०—(क) जब मन गाहि लेत खसवारा । छूटी ठाक मूए सिकदारा ।—प्राण०, पृ० ५० । (ख) जाके मन गुप्त का उपदेश । ताँ की ठाक नहीं उहू देश ।—प्राण०, पृ० ११ ।

ठाकना^१—क्रि० स० [हि० ठाक + ना (प्रत्य०)] ठीक करना । रोकना । स्थिर करना । उ०—दृष्टि की ठाकि मन की समझावे । काम की साधि जाय महलि समावे ।—प्राण०, पृ० २६ ।

ठाकरी^१—संज्ञा पुं० [हि० ठाकुर, गुज० ठक्कर] प्रदेश का स्वामी । सरदार । नायक । उ०—इसलिये कहा गया कि पहले यहाँ कोई राजा या ठाकुर रहता था ।—फिखर०, पृ० ४६ ।

ठाकुर^१—संज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर] [स्त्री० ठकुराइन, ठकुरानी] १. देवता, विशेषकर विष्णु या विष्णु के अवतारों की प्रतिमा । देवमूर्ति ।

यौ०—ठाकुरद्वारा । ठाकुरवाडी ।

२. ईश्वर । परमेश्वर । भगवान् । ३. पूज्य व्यक्ति । ४. किसी प्रदेश का अधिपति । नायक । सरदार । अधिष्ठाता । उ०—सब कुंवर्न पार खैचा हाथू । ठाकुर जेव तो जेवै साथू ।—जायसी (शब्द०) । ५. जमींदार । गाँव का मालिक । ६. महिलाओं की उपाधि । ७. मालिक । स्वामी । उ०—(क) ठाकुर ठक भए गेल कोरें नप्परि घर निजिम्बर ।—कीर्ति०, पृ० १६ । (ख) निडर, नीच, निर्गुन, निर्धन कहैं जग दूसरो न ठाकुर ठाँव ।—तुलसी (शब्द०) । ८. नाइयों की उपाधि । नापित ।

ठाकुरद्वारा—संज्ञा पुं० [हि० ठाकुर + सं० द्वार] १. किसी देवता विशेषतः विष्णु का मंदिर । देवालय । देवस्थान । २. जगन्नाथ जी का मंदिर जो पुरी में है । पुरुषोत्तम धाम । ३. मुरादाबाद जिले में हिंदुओं का एक तीर्थस्थान ।

ठाकुरप्रसाद—संज्ञा पुं० [हि०] १. देवता की निवेदित वस्तु । नैवेद्य । २. एक प्रकार का धान जो मादों महीने के अंत और व्रत के प्रारंभ में हो जाया करता है ।

ठाकुरवाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर + बाड़ा या बें + बाड़ी (= घर)] देवालय । मंदिर ।

ठाकुरसेवा—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर + सेवा] १. देवता का पूजन । २. वह संपत्ति जो किसी मंदिर के नाम उत्सर्ग की गई हो ।

ठाकुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर + ई (प्रत्य०)] ठकुराई ।

स्वामित्व । अधिपत्य । शासन । उ०—बिस्तु की ठाकुरी दीख जाई ।—कबीर० श०, १।० ४, पृ० १५ । (ख) जम के जसुस बिनय जस सौं हमेशा करे तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारो है ।—पद्याकर (शब्द०) ।

ठाट^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थातृ (= लड़ा होनेवाला)] १. फूस और बाँस की फट्टियों को एक में बाँधकर बनाया हुआ ढाँचा जो घाड़ करने या छाने के काम में आता है । लकड़ी या बाँस की फट्टियों का बना हुआ परदा । जैसे,—इस छपरल का ठाट उजड़ गया है ।

यौ०—ठाटबंदी । ठाटबाट । नबठट = छाने के काम में आने-वाले पुराने ठाट को पूरी तौर से नया करना ।

२. ढाँचा । ढाँचा । पंजर । किसी वस्तु के मूल अंगों की योजना जिनके आधार पर शेष रचना की जाती है ।

मुहा०—ठाट लड़ा करना = ढाँचा तैयार करना । ठाट लड़ा होना = ढाँचा तैयार होना ।

३. रचना । बनावट । मजावट । वेशविन्यास । शृंगार । उ०—(क) ब्रज बनवारि खाल बालक कहैं कोने ठाट रक्यो ।—सूर (शब्द०) । (ख) पहिरि पितंबर, करि भाँबर बहु तन ठाट सिंगार्यो ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—ठटना ।—बनाना ।

मुहा०—ठाट बदलना = (१) वेश बदलना । नया रूप रंग दिखाना । (२) और का और भाव प्रकट करना । प्रयोजन निकालने या श्रेष्ठता प्रकट करने के लिये भूटे लक्षण दिखाना । (३) श्रेष्ठता प्रकट करना । भूठभूठ अधिकार या बह्मपन जताना । रंग बाँधना । ठाट मोजना = दे० 'ठाट बदलना' ।

४. घाड़बर । तडक भड़क । तैयारी । शान शोकत । दिखावट । तूमधाम । जैसे,—राजा की सवारी बड़े ठाट से निकली ।

यौ०—ठाट बाट ।

५. चैनचान । मजा । आराम ।

मुहा०—ठाट मारना = मोज उड़ाना । मजे उड़ाना । चैन करना । ठाट से काटना = चैन से दिन बिताना ।

६. ढंग । शैली । प्रकार । ढब । तर्ज । अंदाज । जैसे,—(क) उसके चलने का ठाट ही निराला है । (ख) वह घोड़ा बड़े ठाट से चलता है । ७. आयोजन । सामान । तैयारी । अनुष्ठान । समारंभ । प्रबंध । बंदोबस्त । उ०—(क) पालव बैठि पेट एह काटा । मुख मेंह सोक ठाट घरि टाटा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कासों कहौ, कहौ, कैसी करौ अब क्यों निबहै यहू ठाट जो टायो ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना । उ०—रघुवर कहेउ लखन भल घाटू । करहु कतहुँ अछ ठाहर टाटू ।—मानस, २।१३३ ।

८. सामान । माल अथवा । सामग्री । उ०—सब ठाट पड़ा रह जावेगा जब लाव खलेगा बनजारा ।—नजीर (शब्द०) ।

९. युक्ति । ढब । ढंग । उपाय । डोल । जैसे—(क) किसी ठाट से

अपना अपना वही है निकालो। (क) वह ऐसे ठाट से माँगता है कि कुछ न कुछ देना ही पड़ता है। उ०—राज करत बिनु काब ही ठटहि जे कर कु ठाट। तुलसी ते कुराज ज्यों वैह बारह बाट।—तुलसी (शब्द०)। १०. कृती या पटेबाजी में कहे होते या बार करने का ढंग। पैतरा।

मुहा०—ठाट बबलना = दूसरी मुद्रा से लड़ा होना। पैतरा बबलना। ठाट बाँचना = बार करने की मुद्रा से लड़ा होना।

११. कबूतर या मुरगे का प्रसन्नता से पर फड़फड़ाने या आड़ने का ढंग।

मुहा०—ठाट मारना = पर फड़फड़ाना। पंख आड़ना।

१२. सितार का तार। १३. संगीत में ऐसे स्वरों का समूह जो किसी विशेष राग में ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे, ईमन का ठाट, भैरवी का ठाट।

मुहा०—ठाट बाँचना = तंज बाज में किसी राग में प्रयुक्त होने-वाले स्वरों को उस स्थाव पर नियोजित करना जिससे प्रचीप्तिष्ठ राग में प्रयुक्त स्वरों की ज्वनि प्राप्त हो। उ०—बाँधकर फिर ठाट, अपने संक पर संकार दो।—अपरा, पृ० ७३।

ठाट^२—संज्ञा पुं० [हि० ठट्ट, ठाट] [बी० ठाटी] १. समूह। भुंड। उ०—(क) बिदे रजनी हेरए बाट, जवि हरिनी बिछुरल ठाट।—विद्यापति, पृ० १६८। (ख) गज के ठाट पवास हुआ। अल्ल सहस्र रहे असवार।—रघुराज (शब्द०)। २. बहुतायत। अधिकता। प्रचुरता। ३. बैज या सौंड़ की बरतन के ऊपर का ढिल्ला। कुबड़।

ठाटना—क्रि० प्र० [हि० ठाट + ना (प्रत्य०)] १. रखना। बनाना। निमित्त करवा। संयोजित करवा। उ०—बालक को तन ठाटिया निकल सरोवर तीर। मुर नर मुनि सब देखहि साहेब भरेल शरीर।—कबीर (शब्द०)। २. अनुष्ठान करना। ठानना। करवा। आयोजन करना। उ०—(क) महतारी को कछो ब मानस कपड चतुरई ठाटी।—सूर (शब्द०)। (ख) पाखव बेठि पेड़ पड़ काठा। सुख भँह सोक ठाठ धरि ठाठा।—तुलसी (शब्द०)। ३. सुसज्जित करना। सजाना। सँवारना।

ठाठबंदी—संज्ञा बी० [हि० ठाठ + बंदी] छाजन वा परदे आदि के लिये फूट धीर बाँध की कट्टियों आदि को परस्पर जोड़कर ढाँचा बनावे का काम। २. इस प्रकार का ढाँचा। ठाट। टट्टर।

ठाटबाट—संज्ञा पुं० [हि० ठाट + बाट (= राह, तरीका)] १. सजावट। बनावट। सजधज। २. लड़क भड़क। धाड़ंबर। ज्ञान कीकत। जैसे,—आज बड़े ठाट बाट से राजा की सवारी निकली।

ठाटर—संज्ञा पुं० [हि० ठाट] १. बाँस की फट्टियों और फूस आदि को जोड़कर बनाया हुआ ढाँचा जो छाजन या परदे के काम में आता है। ठाट। टट्टर। टट्टी। २. ठठरी। पंजर। ३. ढाँचा। ४. कबूतर आदि के बैठने की छतरी जो टट्टर के रूप में होती है। ५. ठाटबाट। बनाव। सज्जार। सजावट।

उ०—ठठरिन बहुतय ठाटर कीन्ही। बली अहीरिन काबर कीन्ही।—जायसी (शब्द०)।

ठाटी—संज्ञा बी० [हि० ठाट] ठट। समूह। खेणी। उ०—अस रब रेमि बसइ गज ठाटी। बोहित बसे समुद्र ने पाटी।—जायसी (शब्द०)।

ठाट्टी—संज्ञा पुं० [हि० ठाट] दे० 'ठाट'।

ठाठा—संज्ञा पुं० [हि० ठाट] दे० 'ठाट'।

ठाठना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठाटना'।

ठाठरी—संज्ञा पुं० [हि०] [बी० ठाठरी] ढाँचा। ठठरी। उ०—पाए बीरा जीव जलवा। निकसा जिव ठाठरी पड़ावा।—कबीर सा०, पृ० ५६३। दे० 'ठाटर'।

ठाठर^२—संज्ञा पुं० [देश०] नदी में वह स्थान जहाँ अधिक गहराई के कारण बाँस या लगी ब लगे।—(मल्लाह)।

ठाठा^१—संज्ञा पुं० [हि० ठाठ] धत की वह जोटाई जिसमें एक बल जोतकर फिर दूसरे बल जोते हैं।

ठाठा^२—वि० [वि० बी० ठाठी] दे० 'ठाठा'। उ०—मंदरास प्रभु जहाँ जहाँ ठाठे होत, वहीं वहीं जटक लटक काहूँ सौं हूँ करी मो ना करी।—मंद०, प्र०, पृ० ३४३।

ठाठी—क्रि० [हि०] दे० 'ठाठा'। उ०—ठाठ रहा धति कंठित गाता।—मानस, १।१४।

ठाठा^३—वि० [सं० स्थातृ (= जो सड़ा हो)] १. सड़ा। दंढायमान।

क्रि० प्र०—करवा।—होवा।—रहवा।

२. जो पिसा या फूटा न हो। समूचा। साबित। उ०—भुजि समोसा चिड भँह काड़े। जौम मिर्च पैहि भीतर ठाड़े। जायसी (शब्द०)। ३. उपस्थित। उत्पन्न। पैदा। उ०—कीन बहुत लीखा हरि अबहीं। ठाड़ करत हैं कारन तबहीं।—विद्याम (शब्द०)।

मुहा०—ठाठा देना = स्थिर रखना। ठहराना। रखना। ठिकाना उ०—बारह वर्ष दयो हम ठाढ़ो यह प्रताप बिनु जावे। अज प्रगटे बसुदेव सुवन तुम गर्व बचन परिमाने।—सूर (शब्द०)।

ठाठा^४—वि० हट्टा कट्टा। हृष्ट पृष्ट। बली। रडाँप। मजबूत।

ठाठेश्वरी—संज्ञा पुं० [हि० ठाठ सं० ईश्वर + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार के साधु जो दिन रात खड़े रहते हैं। वे खड़े ही खड़े खाते पीते तथा बीवार आदि का सहारा लेकर सोते हैं।

ठाठर^३—संज्ञा पुं० [देश०] राह। भगड़ा। मुठभेड़। उ०—देव आपनों बहीं संभारत करत इंद्र सो ठाठर।—सूर (शब्द०)।

ठान^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण, ठाणु] स्थान। ठाँव। जगह। उ०—सब तबीब तसलीम करि, ते धरि आइ सुहान। नव दीहे सिर भल्लयो, डंडोलन गय ठान।—पृ० रा०, ४।६। (ख) राजे सोक सब कहे तू आपना। जब कास नहि पाया ठाना।—बनिसनी०, पृ० १०४।

ठान^२—संज्ञा बी० [सं० अनुष्ठान] १. अनुष्ठान। कार्य का आयोजन। शुमारंज। काम का खिड़ना। २. छोड़ा हुआ काम।

कार्य । उ०—जानती इतक तो न ठानती घटान ठान मूलि पथ प्रेम के न एक पग भारती ।—हनुमान (शब्द०) । ३. चेष्टा । मुद्रा । अंगस्थिति या संवाचन का ढंग । अंवाज । उ०—पाछे बंक चितै मधुरे हंसि घात किए उछटे सुठान सों ।—सूर (शब्द०) । ४. दृढ़ निश्चय । दृढ़ संकल्प । पक्का इरादा । उ०—क्यों निर्दोषियों को हलाकाय करने की ठान ठानते हो ?—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४९७ ।

मुद्रा०—ठान ठानना = दृढ़ निश्चय करना । पक्का इरादा करना ।

ठानना^१—क्रि० सं० [सं० अनुष्ठान, हि० ठान प्रयत्न सं० स्थापन > प्रा० ठाप्न, > ठाव + ना (प्रत्य०)] १. किसी कार्य को उत्प्रेरता के साथ प्रारंभ करना । दृढ़ संकल्प के साथ प्रारंभ करना । अनुष्ठित करना । छेड़ना । जैसे; काम ठानना, भगड़ा ठानना, बैर ठानना, युद्ध ठानना, यज्ञ ठानना । उ०—(क) तब हरि और खेज एक ठान्यो ।—नंद० प्र०, पृ० २८५ । (ख) तिन सो कह्यो पुत्र हित ह्य मल हम बीनो हैं ठानी ।—रघुराज (शब्द०) । २. (मन में) स्थिर करना । (मन में) ठहराना । निश्चित या ठीक करना । पक्का करना । चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण करना । दृढ़ संकल्प करना । जैसे, मन में कोई बात ठानना, हठ ठानना । उ०—(क) सदा राम एहि प्राप्त समाना । कारण कौन कुटिल पन ठाना ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मैंने मन में कुछ ठान उनका हाथ पकड़ बोली ।—श्यामा०, पृ० ९८ ।

ठाना^१—क्रि० सं० [हि० ठान] १. ठानना । दृढ़ संकल्प के साथ प्रारंभ करना । छेड़ना । करना । उ०—काहे को सोई हज्जार करो तुम तो कबहूँ अपराध न ठायो ।—मतिराम (शब्द०) । २. मन में ठहराना । निश्चित करना । दृढ़तापूर्वक चित्त में धारण करना । पक्का विचार करना । उ०—विश्वामित्र दुःखी हूँ तँह पुनि करन महा तप ठायो ।—रघुराज (शब्द०) । वि० दे० 'ठयना' । ३. स्थापित करना । रखना । बरना । उ०—गुरली तऊ गोपालहि भावति । अति भावीन सुजान कनौठे गिरिधर नार नवावति । आपुन पीढ़ि अघर सज्या पर करपत्तव पदपत्तव ठावति ।—सूर (शब्द०) ।

ठाना^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'थाना' ।

ठामा^१—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० स्थान] १. स्थान । जगह । उ०—(क) इधर कपुरा को करधो वीरलण निज ठाम ।—कीर्ति०, पृ० ६० । (ख) जो बाहुत जित जान उतै ही यह पहुँचावत । बड़े बीष के गाम ठाम को नाम भुलावत ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७ ।

विशेष—दे० 'ठाव' ।

२. अंगस्थिति या अंगसंवाचन का ढंग । ठवति । मुद्रा । अंवाज । ३. अंगेष्ट । अंगसेष्ट ।

ठावै^१—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० स्थान] दे० 'ठाव', 'ठावै' ।

ठावै^१—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'ठावै' ।

ठार—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० ठारु, ठार या देश०] १. गहरी खाड़ा । अत्यंत गीत । गहरी सरसी । २. पाखा । हिम ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

ठारा^१—[सं० स्थान, प्रा० ठारु; अप० ठाम, ठाव, ठाय] १. स्थान । ठौर । जगह । उ०—(क) राति दिवस करि बालीयउ, पुनरमह विवस पहुँतो तिणि ठार ।—बी० राखे, पृ० १०४ । (ख) आधो, तू सालिक राह दिवाने चलते न जाए बार । मुकाम राहें बंजिल बूझैं उसजा है किस ठार ।—दक्खिनी०, पृ० ५४ । २. खेत या खलिहान का वह स्थान जहाँ किसान अपने सामान आदि रखता है और देखरेख करता है ।

ठार^१—वि० [हि०] [वि० स्त्री० ठारि] दे० 'ठाड़', 'ठाड़ा' । उ०—(क) तन बाहुत कर धींचहि तूरत, ठार रहत है सोई । आसन मारि बिबीरी होवे, तबहूँ भक्ति न होई ।—जग० प्र०, भा० २, पृ० ३३ । (ख) ठारि भेलहि बनि भाँगो न डोले ।—विद्यापति, पृ० ४६ ।

ठारै^१—संज्ञा पुं०, वि० [सं० अष्टादश, प्रा० अट्टार, अट्टारस, अट्टारह] दे० 'अट्टारह' । उ०—ठारै खेर दुहोतरा अगहन मास सुजान ।—सुजान०, पृ० ७ ।

ठाली^१—संज्ञा स्त्री० [देशी ठलिय (=रिक्त); प्रयत्न हि० निठल्ला] १. व्यवसाय या काम धंधे का अभाव । जीविका का अभाव । बेकारी । बेरोजगारी । २. खाली वस्तु । फुरसत । अवकाश ।

ठाली^१—वि० जिसे कुछ काम धंधा न हो । खाली । निठल्ला ।

ठाला^१—संज्ञा पुं० [देशी ठल्ल (=निर्धन); वा हि० निठल्ला] १. व्यवसाय या काम धंधे का अभाव । बेकारी । रोजगार का न रहना । २. रोजी या जीविका का अभाव । आमदनी का न होना । वह दशा जिसमें कुछ प्राप्ति न हो । खप पैस की कमी । जैसे,—आजकल बड़ा ठाला है, कुछ नहीं दे सकते । मुद्रा०—ठाले पड़ना = शून्यता, रिक्तता या खालीपन का अनुभव होना । ठाला बताना = बिना कुछ दिए चलता करना । घटा बताना (दलाव) । बैठे ठाले = खाली बैठे हुए । कुछ काम धंधा न रहते हुए । जैसे,—बैठे ठाले यही किया करो, प्रच्छा है ।

थो^१—ठाला ठलिया = खाली । रीता । छुँछा । उ०—नैन नचावत बधि मटुकिन की करिके ठाला ठलिया ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १६४ ।

ठाली^१—वि० [देशी ठलिय (=रिक्त); वा हि० निठल्ला] १. खाली । जिसे कुछ काम धंधा न हो । निठल्ला । बेकाम । उ०—(क) ऐसी को ठाली बैठी है तोसों मूढ़ बरावे । झूठी बात तुसी सी बिनु कन फरकत हाथ न धावे ।—सूर (शब्द०) । (ख) ठाली ग्वालि जानि पठए अलि कह्यो पछोरन छुछो ।—तुलसी (शब्द०) । (घ) प्लेटफार्म पर ठाली बैठे समय की बरबादी अनुभव करने लगे ।—मस्मा०, पृ० ४३ ।

ठाली^१—संज्ञा स्त्री० [?] ढारस । अरोसा । आश्वासन । उ०—कहा कहीं खाली खाली बैठ सब ठाली, पर मेरे बनमाखी की न काली ते छुड़ावही ।—रसजान०, पृ० ३० ।

ठाव^१—संज्ञा स्त्री०, पुं० [हि०] दे० 'ठाव' ।

ठाव^१—संज्ञा पुं० [हि०] ठाव । स्थान । उ०—होरी सब ठावन ली राखी पूजत ली ली रोरी । घर के काठ ठारि सब बीने गावत पीत न पोरी ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४०७ ।

ठाठना—क्रि० सं० [हि० ठाना] दे० 'ठाना' ।

ठासा—संज्ञा पुं० [हि० ठासना] लोहारों का एक प्रोजार जिससे लंग जगह में लोहे की कोर निकालने और उभारते हैं । उ०—देखे ठासा वेहद परे सनबातो सीका । चारि खूँट में चलै चियत एक होय रती का ।—पद्म० बानी, पृ० ११५ ।

यौ०—गोन ठासा = गोन घिरे का । ठामा जिससे साहे की चदर को गढ़कर गोला बनाते हैं ।

ठाह^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान वा हि० ठहरना] धीरे धीरे और अपेक्षाकृत कुछ अधिक समय लगाकर गाने या बजाने की क्रिया ।

विशेष—जब गाने या बजानेवाले लोग कोई चीज गाना या बजाना प्रारम्भ करते हैं, सब पहले धीरे धीरे और अधिक समय लगाकर गाते या बजाते हैं । इसी को 'ठाह' या 'ठाह' में गाना बजाना कहते हैं । प्राये चलकर बहु चीज क्रमशः जल्दी जल्दी गाने या बजाने लगते हैं । जिसे दून, तिगून या चौगून कहते हैं । वि० दे० 'चौगून' ।

२. स्थान । ठाव । उ०—बल्यो जहाँ सब हृषिनी ठाहीं । गज मकरंद देखि तेहि साईं ।—घट०, पृ० २४१ ।

ठाह^२—संज्ञा स्त्री० [सं० स्ताव (= छिछला)] दे० 'पाह' ।

ठाहरा—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हि० ठहर] १. स्थान । जगह । उ०—शुकसुता जब साई बाहर । पाए बसन परे तेहि ठाहर ।—सूर (शब्द०) । २. निवास स्थान । रहने या ठिकने का स्थान । डेरा । उ०—रघुबर कह्यो लखन भल पाह । करहु कतहु धब ठाहर ठाह ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठाहरना—क्रि० घ० [हि० ठाहर] दे० 'ठहरना' । उ०—घर में सब कोइ बंकुड़ा भारहि गाल देनेक । सुंदर रंग में ठाहरें सूर बीर को एक ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७३८ ।

ठाहुरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठाहर' ।

ठाहुरूपक—संज्ञा पुं० [सं० स्था+रूपक या देश०] सृष्टि का एक ताल जो सात मात्राओं का होता है । इसमें और घाड़ा चौताल ने बहुत थोड़ा भेद है ।

ठाहीं^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाह] दे० 'ठाही' ।

ठिंगना—वि० [हि० हेठ + प्रग] [वि० स्त्री० ठिंगनी] जो ऊँचाई में कम हो । छोटे कद का । छोटे डोल का । नाटा । (जोव-धारियो विशेषतः मनुष्य के धिये) ।

ठिक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिकिया] धातु की चदर का कटा हुआ छोटा टुकड़ा जो जोड़ लगाने के काम में आये । बिगली । चकती ।

ठिक^२—वि० [हि०] दे० 'ठीक' । उ०—याते यह ठिक जान्यो परे । अपना बिभी आप बिस्तरे ।—घनानंद, पृ० २७५ ।

ठिक^३—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थितिक] ठहराव । स्थिरता । उ०—जासों नही ठहरें ठिक मान को, क्यों हठ के सठ कठनो ठानति ।—घनानंद, पृ० १२४ ।

ठिकठान^१—संज्ञा पुं० [हि० ठोक] दे० 'ठिकठेव' । उ०—एतेह

ठिकठान पे देखति हौ उत साव । यह न सयानी देति हौ पाती मौखत पान ।—सं० सप्तक, पृ० २४५ ।

ठिकठेक^१—वि० [हि०] ठोक ठोक । ठंग से । उ०—एक शरीर में भंग भए बहु एक, धरा पर धाम देनेका । एक शिला महि कोरि किए सब चित्र बनाइ घरे ठिकठेका ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६४६ ।

ठिकठेन^१—संज्ञा पुं० [हि० ठोक + ठयना] ठोक ठाक प्रबंध । आयोजन । उ०—भाज कधू धोरें भए ठए नए ठिकठेन । चित के हिन के चुगल ये नित के होय न नैन ।—बिहारी (शब्द०) ।

ठिकठौरी—संज्ञा पुं० [हि० ठिकना या ठोक + ठौर] ठिकने लायक स्थान । ऐसा स्थान जहाँ आश्रय लिया जा सके ।

ठिकड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठीकरा' ।

ठिकना^१—क्रि० घ० [सं० स्थिति + √ कृ + करण] ठिकठना । ठहरना । रुकना । प्रहरना । उ०—रस भिजए दोऊ दुहुनि तउ ठाक रहैं टरे न । छाब सों धिरकत प्रेम रंग भरि पिचकारी नैन ।—बिहारी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।—रहना ।

ठिकरा^१—संज्ञा पुं० [देशी ठिकरिया] दे० 'ठीकरा' ।

ठिकरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिकरा] दे० 'ठीकरी' ।

ठिकरौर—संज्ञा स्त्री० [देशी] वह भूमि जहाँ खपड़े, ठोकरे आदि बहुत पड़े हो ।

ठिकार्ह^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठोक] पाल के जमकर ठोक ठोक बैठने का भाव ।—(लघ०) ।

ठिकाना^१—संज्ञा पुं० [हि० ठिकान] दे० 'ठिकाना' ।

ठिकाना^२—संज्ञा पुं० [हि० ठिकान] १. स्थान । जगह । ठौर । २. रहने की जगह । निवासस्थान । ठहरने की जगह ।

यौ०—पता ठिकाना ।

३. आश्रय । स्थान । निर्वाह करने का स्थान । जीविका का धवलंब ।

मुहा०—ठिकाना करना = (१) जगह करना । स्थान निश्चित करना । स्थान नियत करना । जैसे,—अपने लिये कहीं बैठने का ठिकाना करो । (२) ठिकना । डेरा करना । ठहरना । (३) आश्रय ढूँढ़ना । जीविका लगाना । नौकरी या काम धंधा ठाक करना । जैसे,—इनके लिये भी कहीं ठिकाना करो, खाली बैठे हैं । (४) व्याह के लिये घर ढूँढ़ना । व्याह ठोक करना । जैसे,—इनका भी कहीं ठिकाना करो, घर बसे । ठिकाना ढूँढ़ना = (१) स्थान ढूँढ़ना । जगह तलाश करना । (२) रहने या ठहरने के लिये स्थान ढूँढ़ना । निवास स्थान ठहराना । (३) नौकरी या काम धंधा ढूँढ़ना । जीविका खोजना । आश्रय ढूँढ़ना । (४) कन्या के व्याह के लिये घर ढूँढ़ना । घर खोजना । (किसी का) ठिकाना लगना = (१) आश्रयस्थान मिलना । ठहरने या रहने की जगह मिलना । उ०—सिपाही जो भागे तो बीच में कहीं ठिकाना न बना ।—(शब्द०) । (२) जीविका का प्रबंध होना । नौकरी

या काम धंधा मिलना । निर्वाह का प्रबंध होना । जैसे,—इस साल से तुम्हारा कहीं ठिकाना न खोजेगा । ठिकाणा लगाना = (१) पता चलाना । हुंड़ना । (२) आश्रय देना । नौकरी या काम धंधा ठीक करवा । जीविका का प्रबंध करना । ठिकाने घाना = (१) अपने स्थान पर पहुँचना । नियत वा वांछित स्थान पर वास होना । उ०—जो कोठ ताकी निकट बतावे । धीरज धरि सो ठिकाने घावे ।—सूर (शब्द०) । (२) ठीक विचार पर पहुँचना । बहुत सोच-विचार या बातचीत के उपरान्त यथार्थ बात करना या समझना । जैसे, बुद्धि ठिकाने घाना । उ०—हूँ इतनी देर के बाद अब ठिकाने घाए ।—(शब्द०) । (३) मुख तब तक पहुँचना । असली बात खेड़ना या कहना । प्रयोजन की बात पर घाना । मतलब की बात उठाना । ठिकाने की बात = (१) ठीक बात । सच्ची बात । यथार्थ बात । प्रागाणिक बात । असली बात । (२) समझदारी की बात । युक्तियुक्त बात । (३) पते की बात । ऐसी बात जिससे किसी विषय में जानकारी हो जाय । ठिकाने न रहना = चंचल हो जाना । जैसे, बुद्धि ठिकाने न रहना, होश ठिकाने न रहना । ठिकाने पहुँचाना = (१) यथास्थान पहुँचाना । ठीक जगह पहुँचाना । (२) किसी वस्तु को सुप्त वा नष्ट कर देना । किसी वस्तु को न रहने देना । (३) मार डालना । ठिकाने लगाना = (१) ठीक स्थान पर पहुँचना । वांछित स्थान पर पहुँचना । (२) काम में घाना । उपयोग में घाना । अच्छी जगह खर्च होना । उ०—चलो प्रच्छा हुमा, बहुत दिनों से यह चीज पड़ी थी, ठिकाने लग गई ।—(शब्द०) । (३) सफल होना । फलीभूत होना । जैसे, मिहनत ठिकाने लगना । (४) परम धाम सिधारना । मर जाना । मारा जाना । ठिकाने लगाना = (१) ठीक जगह पहुँचाना । उपयुक्त वा वांछित स्थान पर ले जाना । (२) काम में लाना । उपयोग में अच्छी जगह खर्च करना । (३) सायंक करना । सफल करना । निष्फल न जाने देना । जैसे, मिहनत ठिकाने लगाना । (४) इधर उधर कर देना । छो देना । सुप्त कर देना । गायब कर देना । नष्ट कर देना । न रहने देना । (५) खर्च कर डालना । (६) आश्रय देना । जीविका का प्रबंध करना । काम धंधों में लगाना । (७) कार्य को समाप्ति तक पहुँचाना । पूरा कराना । (८) काम तमाम करना । मार डालना ।

४. निश्चित अस्तित्व । यथार्थता की संभावना । ठीक प्रमाण । जैसे,—उसकी बात का क्या ठिकाना ? कभी कुछ कहता है कभी कुछ । ५. दृढ़ स्थिति । स्थायित्व । स्थिरता । ठहराव । जैसे,—इस टूटी मेज का क्या ठिकाना, दूसरी बनाओ ।

विशेष—इन प्रयोगों में इस शब्द का प्रयोग प्रायः निषेधात्मक वा संदेहात्मक वाक्यों ही में होता है । जैसे,—रुपया तो तब लगावे जब उनकी बात का कुछ ठिकाणा हो ।

५. प्रबंध । आयोजन । बंदोबस्त । डील । प्राप्ति का द्वार या ढंग । जैसे,—(क) पहले खाने पीने का ठिकाना करो, और बातें पीछे करेंगे । (ख) उसे तो खाने का ठिकाना नहीं है । उ०—

बो करोड़ रुपए साल की आमदनी का ठिकाना हुआ ।—
चित्रप्रसाद (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—ठिकाना लगना = प्रबंध होना । आयोजन होना । प्राप्ति का डील होना । ठिकाना लगाना = प्रबंध करना । डील खपावा ।

१. पारावार । घंत । हव । जैसे,—(क) वह इतना झूठ बोलता है जिसका ठिकाना नहीं । (ख) उसकी बोलत का कहीं ठिकाना है ?

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः निषेधात्मक वाक्यों ही में होता है ।

ठिकाना^२—क्रि० स० [हि० ठिकना] १. ठहराना । घड़ाना । स्थित करना । २. किसी अन्य की वस्तु को गुप्त रूप से अपने पास रख लेना या छिपा लेना ।

ठिकानेदार—संज्ञा पुं० [हि० ठिकाना + दार (प्रत्य०)] १. किसी छोटे सुभाग का अधिपति । जागीरदार । २. स्वामी । मालिक ।

ठिगना—वि० [हि० ठिगना] नाटा । छोटे कद का । दे० 'ठिगना' । उ०—इंस्पेक्टर भधेड़, साँवला, लंबा आदमी था, कोड़ी की सी आँखें, फूले हुए गाल और ठिगना कद ।—गहन, पृ० २८३ ।

ठिठकना—क्रि० प्र० [सं० स्थित + करण या देश०] १. चलते चलते एकबारगी रुक जाना । एकदम ठहर जाना । उ०—तनिक ठिठक, कुछ मुड़कर दाएँ, देख अजिर मे उनकी ओर ।—साकेत, पृ० ३६८ । २. घंटों की गति बंद करना । स्तम्भित होना । न हिलना न बोलना । ठक रह जाना ।

ठिठरना—क्रि० प्र० [सं० स्थित या हि० ठार अथवा सं० शीत + स्तृ + सरण] अधिक शीत से संकुचित होना । सरदी से एँठना या सिकुड़ना । जाड़े से झकड़ना । बहुत अधिक ठंड खाना । जैसे, हाथ पाँव ठिठरना ।

ठिठुरन—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिठरना] ठिठरने या ठरने का भाव । जाड़े की अधिकता से घंटों की सिकुड़न । ठरन । उ०—बरब दीवार सब बरफ ही बरफ और ठिठुरन इस कयामत की ।—सीर०, पृ० १२ ।

ठिठुरना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठिठरना' ।

ठिठोली—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठोली] दे० 'ठठोली' । उ०—बाह का कोखी है कि रोने में भी ठिठोली है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४ ।

ठिन^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थिति (= स्थान)] स्थान । स्थल । उ०—पाँच पचीस एक ठिन घाई, जुगुति ते एह समुझाव ।—अप० श०, भा० २, पृ० २० ।

ठिन^२—संज्ञा पुं० [अनुष्व०] छोटे बच्चों के द्वारा रह रहकर रोने की ध्वनि की तरह उत्पन्न आवाज ।

मुहा०—ठिन ठिन करना = रोने की सी ध्वनि करना । रह रहकर धीरे धीरे रुदन का प्रयास करना । (स्त्रि०) ।

ठिनकना—क्रि० प्र० [धनुष्य०] १. बच्चों का गहकर रोने का सा सम्बन्ध निकालना । २. ठसक से रोना । रोने का नखरा करना । (स्त्रि०) ।

ठियाँ—संज्ञा पु० [सं० स्थित] १. गाँव की सीमा का चिह्न । हद का पत्थर या लट्टा । २. चाँड़ । धूनी । ३. दे० 'ठीहा' ।

ठिर—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिर वा स्तम्भ] १. गहरी सरदी । कठिन चीज । गहरी ठंड । पाला ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

२. चीज से ठिठुरने की स्थिति या भाव ।

क्रि० प्र०—जाना ।

ठिरना—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिर] दे० 'ठरन', 'ठठरन' ।

ठिरना—क्रि० स० [हि० ठिर] सरदी से ठिठुरना । जाके से थकड़ना ।

ठिरना^२—क्रि० प्र० गहरा जाड़ा पड़ना । अत्यंत ठंड पड़ना ।

ठिलना—क्रि० प्र० [हि० ठेलना] १. ठेला जाना । ढकेला जाना । बलपूर्वक किसी धोर खिसकाया या बढ़ाया जाना । उ०—फिर धर बज्जिय भार करार । ठिले न ठिलाइ न मन्निय हार ।—पृ० रा०, १६।२२१ । २. बलपूर्वक बढ़ना । वेग से किसी धोर झुक पड़ना । घुसना । धंसना । उ०—दक्खिन ते उमके कोउ भाई । ठिले वीह बल पुहिम हिलाई ।—लाख (शब्द०) । † ३. बैठना । जमना । स्थिर होना ।

ठिलाठिला—क्रि० वि० [हि० ठिलना] एक पर एक गिरते हुए । धक्कमधक्का करते हुए । घने समूह धोर बड़े वेग के साथ । उ०—किलकिल फौज ठिलाठिल धावे । चहुँ दिस छोर छुवन नहि पावे ।—लाख (शब्द०) ।

ठिलाना—क्रि० प्र० [हि० ठिलना] ठेला जाना । हटाया जाना । उ०—फिर धर बज्जिय भार करार । ठिले न ठिलाइ न मन्निय हार ।—पृ० रा०, १६।२२१ ।

ठिलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली, प्रा० ठाली (= हँडिया)] छोटा घड़ा । पानी भरने का मिट्टी का छोटा बरतन । गगरी ।

ठिलुआ—वि० [हि० निठल्ला] निठल्ला । निकम्मा । बेकाम । जिसे कुछ काम संधा न हो । उ०—बहुत ठिलुए अपना मन बहुलाने के लिये धोरों की पंचायत से बैठते हैं ।—श्रीनिवास दास (शब्द०) ।

ठिल्ला—संज्ञा पु० [हि० ठिलिया] [स्त्री० ठिलिया, ठिल्ली] घड़ा । पानी भरने या रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन । बड़ा गगरा ।

ठिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठिलिया' ।

ठिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठिल्ली' ।

ठिबना^१—क्रि० स० [सं० स्थापय, प्रा० ठव्य] ठोकना । उ०—सिखराज बंस हुआ सिखर उरस ठिबंतो धावियो ।—शिवर०, पृ० ७७ ।

ठिहारा—वि० [सं० स्थिर अथवा हि० ठीहा] १. विश्रुत करने योग्य । एतबार के लायक । २. निवास योग्य । स्थिर होने योग्य ।

ठिहारी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहरना] ठहराव । निश्चय । इकरार । उ०—जैसी हुती हुमते तुमते अब होयगी वैसिय प्रीति बिहारी । बाहत जो चित में हित तो जनि बोलिय कृंजन कृंजबिहारी ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) ।

ठीगा—वि० [हि० धीगा] जबदेस्त । बलवान् । उ०—सीह बयो बव साहिबो, ठीगारी संकरात ।—बाकी० प्र०, भा० १, पृ० १६ ।

ठीक—वि० [सं० स्थितिक या देश०] १. जैसा हो वैसा । यथार्थ । सच । प्रामाणिक । जैसे,—तुम्हारी बात ठीक निकली । २. जैसा होना चाहिए वैसा । उपयुक्त । अच्छा । भला । उचित । मुनासिब । योग्य । जैसे,—(क) उनका बर्ताव ठीक नहीं होता । (ख) तुम्हारे लिये कहना ठीक नहीं है ।

मुहा०—ठीक सगना = भला जान पड़ना ।

३. जिसमें झूल या झगड़ि न हो । शुद्ध । सही । जैसे,—प्राठ में से तुम्हारे कितने सवाल ठीक हैं ? ४. जो बिगड़ा न हो । जो अच्छी दशा में हो । जिसमें कुछ त्रुटि या कसर न हो । दुस्त । अच्छा । जैसे,—(क) यह घड़ी ठीक करने के लिये भेज दो । (ख) हमारी तबीयत ठीक नहीं है ।

यौ०—ठीक ठाक ।

५. जो किसी स्थान पर अच्छी तरह बैठे या जमे । जो ढीला या कसा न हो । जैसे,—यह लूता पैर में ठीक नहीं होता ।

मुहा०—ठीक धाना = ढीला या कसा न होना ।

६. जो प्रतिकूल आचरण न करे । सीधा । सुष्ठु । नम्र । जैसे,—(क) वह बिना मार खाए ठीक न होगा । (ख) हम अभी तुम्हें धाकर ठीक करते हैं ।

मुहा०—ठीक बनाना = (१) दंड देकर सीधा करना । राह पर लाना । दुस्त करना । (२) तंग करना । दुर्गति करना । दुदंष्टा करना ।

७. जो कुछ प्राये पीछे, इधर उधर या घटा बढ़ा न हो । जिसकी आकृति, स्थिति या मात्रा आदि में कुछ अंतर न हो । किसी निश्चित आकार, परिमाण या स्थिति का । जिसमें कुछ फर्क न पड़े । निश्चित । जैसे,—(क) हम ठीक ग्यारह बजे आवेंगे । (ख) बिड़िया ठीक तुम्हारे सिर के ऊपर है । (घ) यह चीज ठीक वैसी ही है ।

मुहा०—ठीक उतरना = जितना चाहिए उतना ही ठहरना । जाँच करने पर न घटना न बढ़ना । जैसे,—अनाज तोलने पर ठीक उतरा ।

८. ठहराया हुआ । नियत । निश्चित । स्थिर । पक्का । तै । जैसे, काम करने के लिये आवामी ठीक करना, गाड़ी ठीक करना, भाड़ा ठीक करना, विवाह ठीक करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—ठीक ठाक ।

ठीक^२—क्रि० वि० जैसे चाहिए वैसे । उपयुक्त प्रणाली से । जैसे, ठीक चलना, ठीक पोड़ना । उ०—(क) यह चोड़ा ठीक नहीं चलता । (ख) यह बनिया ठीक नहीं चौखता ।

यौ०—ठीकमठाकां, ठीकमठीक=एकदम ठीक। पूर्णतः ठीक।
बिलकुल दुरुस्त।

ठीक^३—संज्ञा पुं० १. निश्चय। ठिकाबा। स्थिर और असंदिग्ध बात।
पक्की बात। दृढ़ बात। जैसे,—उनके आने का कुछ ठीक
नहीं, आवें या न आवें।

यौ०—ठीक ठिकाना।

मुहा०—ठीक देना=मन में पक्का करना। दृढ़ निश्चय करना।
उ०—(क) नीके ठीक दई तुलसी भवबंध बड़ी उर आसर
हू की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कर विचार मन बीन्हों
ठीका। राम रजामसु आपन नीका।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस मुहावरे में 'ठीक' शब्द के आगे 'बात' शब्द लुप्त
मानकर उसका प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में होता है।

२. नियति। ठहराव। स्थिर प्रबंध। पक्का आयोजन। बंदोबस्त।
जैसे,—छात्र पीछे का ठीक कर लो, तब कहीं जाओ।

यौ०—ठीक ठाक।

३. बोझ। मीजान। योग। टोटल।

मुहा०—ठीक देना, ठीक लगाना=ओड़ निकालना। योगफल
निश्चित करना।

ठीकठाक^३—संज्ञा पुं० [हि० ठीक] १. निश्चित प्रबंध। बंदोबस्त।
आयोजन। जैसे,—इनके रहने का कहीं ठीक ठाक करो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. जीविका का प्रबंध। काम धंधे का बंदोबस्त। आश्रय। ठौर
ठिकाना। जैसे,—इनका भी कहीं ठीक ठाक लगाओ।

क्रि० प्र०—करना।—खगाना।

३. निश्चय। ठहराव। पक्की बात। जैसे,—बिवाह का ठीक
ठाक हो गया?

ठीकठाक^२ वि०—अच्छी तरह दुरुस्त। बनकर संयार। प्रस्तुत। काम
देने योग्य।

ठीकड़ा—संज्ञा पुं० [हि० ठीकरा] दे० 'ठीकरा'।

ठीकरा—संज्ञा पुं० [देशी ठिक्करिभा] [झी० अल्पा० ठीकरी] १.
मिट्टी के बरतन का फूटा टुकड़ा। लपरेल भाँति का टुकड़ा।
सिचकी।

मुहा०—(किसी के माथे या सिर पर) ठीकरा फोड़ना=बोध
लगाना। कलंक लगाना। (जैसे किसी वस्तु या रूप आदि
को) ठीकरा समझना=कुछ न समझना। कुछ भी मूल्यवान्
न समझना। अपने किसी काम का न समझना। जैसे,—
पराए मांस को ठीकरा समझना चाहिए। (किसी वस्तु का)
ठीकरा होना=अंधाधुंध खर्च होना। पानी की तरह बहाया
जाना। ठीकरे की तरह बेमोह एवं तुच्छ होना।

२. बहुत पुराना बरतन। टूटा फूटा बरतन। ३. भोज माँपने का
बरतन। भिक्षापात्र। ४. सिक्का। रुपया (सधु०)।

ठीकरी^१—संज्ञा स्त्री० [देशी ठिक्करिभा] १. मिट्टी के बरतन का
छोटा फूटा टुकड़ा। २. तुच्छ। निकम्मी चीज। ३. मिट्टी का
तवा जो बिलम पर रखते हैं।

ठीकरी^२—संज्ञा स्त्री० [देशी ठिक्क (=पुरुषेन्द्रिय)] उपस्थ। स्त्रियों
की योनि का उभरा हुआ तख।

ठीका—संज्ञा पुं० [हि० ठीक] १. कुछ धन आदि के बदले में किसी
के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा। जैसे, भकान
बनवाने का ठीका, सड़क तैयार करने का ठीका। २. समय
समय पर भ्रामदली देनेवाली वस्तु को कुछ काश तक के लिये
इस छत पर दूसरे को सुपुर्द करना कि वह भ्रामदली वस्तु
करके और उसमें से कुछ अपना मुनाफा काटकर बराबर
भासिक को देता जायगा। इजारा।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—पर लेना।

ठीकेदार—संज्ञा पुं० [हि०] १. ठीके पर दूसरों से काम लेनेवाला
व्यक्ति। ठीका देनेवाला। २. किसी काम को कुछ निश्चित
नियमों के अनुसार पूरा करा देने का जिम्मा लेनेवाला व्यक्ति।

ठीटा—संज्ञा पुं० [हि० ठैठा] दे० 'ठैठा'।

ठीठी—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] हँसी का शब्द।

यौ०—हाहा ठीठी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ठीड़ी ठाड़ी(१)—वि० [सं० स्थिति + स्थ] जिस हालत में हो उसी
में स्थित। स्पंदनहीन। निश्चेष्ट। उ०—सजि सियार कुंजन
गई लखी नहीं बलबीर। ठीड़ी ठाड़ी सी तन बाड़ी गाड़ी
पीर।—सं० सप्तक, पु० ३८६।

ठीखनां—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ठैलना'। उ०—मैं तो भूलि जान
को धायो गयत तुम्हारे ठीले।—सूर (शब्द०)।

ठीवन(१)—संज्ञा पुं० [सं० ठीवन] यूँक। खज्जार। कफ। श्लेष्मा।
उ०—आमिष अस्थिन नाम को धानन, ठीवन तामें भरो
अधिकारी।—रघुराज (शब्द०)।

ठीसां—संज्ञा स्त्री० [हि० ठीस] रह रहकर होनेवाली पीड़ा।
ठीस। उ०—मृतक होय गुरु पद गहै ठीस करे सब दूर।—
कबीर श०, मा० ४, पु० २६।

ठीहँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घोड़ों की हँस। हिनहिनाहट का शब्द।
उ०—दुहँ दल ठीहँ तुरंगनि दीनी। दुहँ दल बुद्धि जुद रस
बीनी।—लाल (शब्द०)।

ठीह—संज्ञा पुं० [सं० स्था] दे० 'ठीहा'।

ठीहा—संज्ञा पुं० [सं० स्था] १. जमीन में गड़ा हुआ लकड़ी का
कुंदा जिसका बोड़ा सा धाग जमीन के ऊपर रहता है।

विशेष—इस कुंदे पर वस्तुओं को रखकर लोहार, बढ़ई आदि
उन्हें पीटते, छीलते या गढ़ते हैं। लोहार, कसेरे आदि धातु
का काम करनेवाले इसी ठीहे में अपनी 'निहाई' गाड़ते हैं।
पशुओं को खिलाने का चारा भी ठीहे पर रखकर फाटा
जाता है।

२. बढ़इयों का लकड़ी गढ़ने का कुंदा जिसमें एक मोटी लकड़ी में
ढालुछाँ गड़वा बना रहता है। ३. बढ़इयों का लकड़ी चीरने
का कुंदा जिसमें लकड़ी को कसकर खड़ा कर देते और चीरते
हैं। ४. बैठने के लिये कुछ किया हुआ स्थान। बेदी। गद्दी।
५. दूकानदार के बैठने की जगह। ६. हृद। सीमा। ७. चौड़।
थूनी। ८. उपयुक्त स्थान।

ठुंठ—संज्ञा पुं० [देश० ठुंठ वा सं० स्थाणु] १. सूजा हुआ पेड़।

२. ऐसे पेड़ की लकड़ी लकड़ी जिसकी डाल पतिय! भावि कट या गिर गई हों। ३. कटा हुआ हाथ। ४. वह धनुष्य जिसका हाथ कटा हो। मूला।

ठुंठ—संज्ञा स्त्री० [हि० ठुंठ] दे० 'ठुंठ'।

ठुंठना^①—क्रि० स० [हि० ठोंकना] धीरे धीरे दबेसी पटककर आघात पहुँचाना। हाथ मारना। उ०—दिन दिन देन उरहुनो धावै ठुंकि ठुंकि करत बरैया।—सूर (शब्द०)।

ठुक—संज्ञा स्त्री० [धनुष्य०] किसी चीज पर कड़ी वस्तु से आघात करने का शब्द या ध्वनि।

ठुकठुक—संज्ञा स्त्री० किसी वस्तु को ठोकने से लगातार होनेवाली ध्वनि।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

ठुकना—क्रि० प्र० [धनुष्य०] १. ताजित होना। ठोका जाना। पिटना। आघात सहना। २. आघात पाकर घेंसना। गड़ना। जैसे, लूँठा ठुकना।

संयो० क्रि०—जाना।

१. मार जाना। मारा जाना। जैसे,—घर पर लुब ठुकोगे। ४. कूचती धावि में हारना। ध्वस्त होना। पस्त होना। ५. हानि होना। नुकसान होना। अपत बैठना। जैसे,—घर के निकलते ही २०) की टुकी। १. कठ में ठोका जाना। कैद होना। पैर में बेड़ी पहनना। ७. बाधित होना। जैसे, नालिख ठुकवा। ८. बजना। ध्वनित होना। उ०—कहूँ तिमच धर धुकत, लुकत कहूँ सुमट छात छल। ठुकत काल कहूँ पत्र, कुकत कहूँ रैन पाव जल।—पृ० रा०, ८।४२।

ठुकराना—क्रि० स० [हि० ठोकर] १. ठोकर मारना। ठोकर लगाना। जात मारना। २. पैर से मारकर किनारे करना। तुल्य समझकर पैर से हटाना। ३. तिरस्कार या उपेक्षा करना। न मानना। घनाबर करना। जैसे, बात ठुकराना, सखाह ठुकराना।

ठुकराखा—संज्ञा पुं० [सं० ठकुर] १. दे० 'ठाकुर'। उ०—मनमाने के पछाणजह। हिव बाजो ठुकराला समिहा जनि।—बी० रासो, पृ० ११। २. नेपाल के एक वर्ग की उपाधि।

ठुकवाना—क्रि० स० [हि० ठोंकना का प्रे० रूप] १. ठोकने का काम कराना। पिटवाना। २. गड़वाना। घेंसवाना। ३. संभोग कराना (धगिष्ट)।

ठुकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठुकना] ठोके जाने या मार खाने की स्थिति, धाव या किया। जैसे,—सुना धाव बड़ी ठुकाई हुई।

ठुठंकना^②—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठिठकना'। उ०—ठुठंकिय सकिय कायर पाय। रनकत रुंठ बनकत जाय।—पृ० रासो, पृ० ४१।

ठुड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० ठुण्ड] चेहरे में होठ के नीचे का भाग। चिबुक। ठोड़ी। हनु।

ठुड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठड़ा (= लड़ा)] वह मुना हुआ चाना जो फूटकर लिला न हो। ठोरी। जैसे, मक्के की ठुड़ी।

ठुनक ठुनक—संज्ञा स्त्री० [धनुष्य०] ठिठककर चलने के कारण धासूपण से निकलनेवाली ध्वनि। उ०—ठुमक चाल ठठि ठाठ सो, ठेल्यो मयब कटकक। ठुनक ठुनक ठुनकार सुनि ठठके लाल भटकक।—बजनिधि प्र०, पृ० ३।

ठुनकना^१—क्रि० प्र० [हि०] १. दे० 'ठिनकना'। २. प्यार या दुलार के कारण नखरा करना। उ०—सबको है आपको नहीं है? उसने ठुनकसे हुए कहा।—घाँधी, पृ० ३२।

ठुनकना^२—क्रि० स० [हि० ठोंकना] धीरे से उँगली से ठोक या मार देना।

ठुनकाना^३—क्रि० स० [हि० ठोंकना] धीरे से ठोकना। उँगली से धीरे से चोट पहुँचाना।

ठुनकार—संज्ञा स्त्री० [धनुष्य०] ठुनक की आवाज। उ०—ठुनक ठुनक ठुनकार सुनि ठठके लाल भटकक।—बज० प्र०, पृ० ३।

ठुनठुन—संज्ञा पुं० [धनुष्य०] १. धातु के टुकड़ों या बरतनों के बजने का शब्द। २. बच्चों के रुक रुककर रोने का शब्द।

मुहा०—ठुन ठुन लगाए रहना = बराबर रोया करना।

ठुनुकना^४—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठुनकना'। उ०—बह बालिका के सव्य ठुनुककर बोली।—कंकाल, पृ० २१७।

ठुमक—वि० [धनुष्य०] १. (चाल) जिसमें उमंग के कारण जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलते हैं। बच्चों की तरह कुछ कुछ उछल कूद या ठिठक लिए हुए (चाल)। २. ठमकमरी (चाल)। जैसे, ठुमक चाल।

ठुमक, ठुमक, ठुमक, ठुमक—क्रि० वि० [धनुष्य०] जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए (बच्चों का चलना)। फुलकते या रहु रहकर कूदते हुए (चलना)। जैसे, बच्चों का ठुमक ठुमक चलना। उ०—(क) कौशल्या जब बोलन जाई। ठुमकि ठुमकि प्रभु चर्खाहि पराई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चखत देखि जसुमति मुख पावै। ठुमुक ठुमुक घरनी पर रंगत जननी देखि बिलावै।—सूर (शब्द०)।

ठुमकना, ठुमकना—क्रि० प्र० [धनुष्य०] १. बच्चों का उमंग में जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलना। उ०—ठुमुकि बखत रामचंद बाजत पैजवियाँ।—तुलसी (शब्द०)। २. नाचने में पैर पटककर चलना जिसमें घुँघुँ बजें।

ठुमका^१—वि० [देश०] [वि० स्त्री० ठुमकी] छोटे झील का। नाटा। ठेंगना। उ०—जाति बली बज ठाकुर पै ठुमका ठुमकी ठुमकी ठकुराइन।—पद्याकर (शब्द०)।

ठुमका^२—संज्ञा पुं० [धनुष्य०] [स्त्री० ठुमकी] मटक। थपका।—(पतंग)।

ठुमकारना—क्रि० स० [देश०] उँगली से बोरी खींचकर मटकना देना। थपका देना।—(पतंग)।

ठुमकी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. हाथ या उँगली से खींचकर दिया हुआ मटक। थपका।—(पतंग)।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

२. ठिठक। रुकावट। ३. छोटी झील सरी पूरी।

ठुमकी^२—वि० स्त्री० नाटी। छोटे शील की। छोटी काठी की।
उ०—जाति चली ब्रज ठाकुर वै ठुमका ठुमकी ठुमकी ठकुराइन।
—पपाकर (शब्द०)।

ठुमठुम—वि० कि० वि० [हि०] दे० 'ठुमक ठुमक'। उ०—भाई बंद
सकल परिवारा। ठुमठुम पाव चले तेहि सारा।—घट०,
पृ० ३७।

ठुमरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. एक प्रकार का छोटा सा गीत। दो
बोलों का गीत जो केवल एक स्थान और एक ही अंतरे में
समाप्त हो।

यौ०—सिरपरवा ठुमरी=एक प्रकार की ठुमरी जो 'मछा'
ताल पर बजाई जाती है।

२. उड़ती खबर। गप। प्रकवाह।

क्रि० प्र०—उड़ना।

ठुरियाना^१—क्रि० प्र० [हि० ठार (=शीत)] ठिठुर जाना।
सिकुड़ जाना। शीत से प्रकड़ जाना।

ठुरियाना^२—क्रि० प्र० [हि० ठुरी] ठुरी होना। झूने हुए दाने का ज
खिलना।

ठुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठड़ा (=खड़ा) या देश०] वह भुना हुआ
दाना जो भुनने पर न खिले।

ठुसकना—क्रि० प्र० [अनु०] १. दे० 'ठिमकना'। २. ठुस शब्द
करके पादना। ठुसकी मारना।

ठुसकी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] धीरे से पादने की क्रिया।

ठुसना—क्रि० प्र० [हि० ठसना] १. कसकर भर जाना। इस
प्रकार समाना या घोटना कि कहीं खाली जगह न रह जाय।
जैसे,—इस संदूक में कपड़े ठुसे हुए हैं। २. कठिणता से
धुसना। ३. भर जाना। समाप्त हो जाना। न रहना। उ०—
हिंदीपन भी न निकले, भासापन भी ठुस जाय जैसे भले
लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं, ज्यों का त्यों
वही सब डोल रहे और छौह किसी की न पड़े।—ठेठ०,
(उपो०), पृ० २।

ठुसवाना—क्रि० प्र० [हि० ठसना का प्रेरण] १. कसकर
भरवाना। २. जोर से धुसवाना। ३. संभोग कराना।
ठुसवाना (प्रशिष्ट०)।

ठुसाना—क्रि० प्र० [हि० ठसना] १. कसकर भरवाना। २. जोर
से धुसवाना। ३. खूब पेट भर खिलाना (प्रशिष्ट०)।

ठूंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. चोंच। ठोर। २. चोंच से मारने
की क्रिया। चोंच का प्रहार। ३. उँगली को मोड़कर पीछे
निकली हुई जोड़ की हड्डी की नोक से मारने की क्रिया।
ठोसा।

क्रि० प्र०—लगाना।—मारना।

ठूंगना^१—क्रि० प्र० [हि० ठूंग + ना (प्रत्य०)] ठूंगना।
धुगना। उ०—बीरह तीव्र सोक सब ठूंगे सासे सास। दाह
साध सब जरे, सतगुरु के बेसास।—दाह० बानी, पृ० १५६।

ठूंगा—संज्ञा पुं० [हि० ठूंग] दे० 'ठूंग'।

४-३४

ठूँठ—संज्ञा पुं० [हि० ठूटना, वा सं० स्थाणु, वा देशी ठुंठ (= स्थाणु)]
१. ऐसे पेड़ की लकड़ी जिसकी डाल, पालियाँ आदि कट
गई हों। सूखा पेड़। २. कटा हुआ हाथ। ठुंडा। उ०—
बिछा बिछा हरण हित पड़त होत खल ठूँठ। कछो
निकारो मीन को घुसि पायो गृह ऊँठ।—विश्राम (शब्द०)।
३. एक प्रकार का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, ईख आदि की
फसल में लगता है।

ठूँठा—वि० [हि० ठूँठ वा सं० स्थाणु] [वि० स्त्री० ठूँठी] १. बिना
पत्तियों और टहनियों का (पेड़)। सूखा (पेड़)। जैसे, ठूँठा
पेड़। २. बिना हाथ का। जिसका हाथ कटा हो। सूना।

ठूँठियाँ—वि० [हि० ठूँठ + इया (प्रत्य०)] १. लूना। लंगड़ा।
२. हिजड़ा। नपुंसक।

ठूँठि—संज्ञा स्त्री० [हि० ठूँठ] ज्वार, बाजरे, मरहर आदि की जड़
के पास का डंठल जो खेत काटने पर पड़ा रह जाता है।
खूँटी।

ठूँसना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठसना'।

ठूँसा—संज्ञा पुं० [हि०] १. दे० 'ठोसा'। २. मुक्का। घूँसा।

ठूठ—वि० [देशी ठुंठ, हि० ठूँठ, ठूठ] दे० 'ठूँठ'। उ०—दसा चुने
निज बाग की सात मानिहो भूठ। पावसरि तु हूँ मैं लखे ढाढ़े
ठाढ़े ठूठ।—मति० प्र०, पृ० ४४६।

ठूठी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] राजजामुन नाम का वृक्ष। वि० दे०
'राजजामुन'।

ठूठू—संज्ञा पुं० [देश०] पटवों की वह टेढ़ी कील जिसपर वे गड़ने
अँटकाकर उगड़े गूँथते हैं।

विशेष—यह कील पत्तर में बैठाए हुए खूँटे के सिरे पर
नगी होती है।

ठूसना—क्रि० प्र० [हि० ठुस] १. कमकर भरना। इतना अधिक
भरना कि इधर उधर जगहन रहे। २. धुसेड़ना। जोर से
धुसाना। ३. खूब पेट भरकर खाना। कसकर खाना।

ठेंगना—वि० [हि० ठेंग + अंग] [वि० स्त्री० ठेंगनी] छोटे शील
का। जो ऊँचाई में पूरा न हो। नाटा।—(जीवधारियों,
विशेषतः मनुष्य के लिये)।

ठेंगा—संज्ञा पुं० [हि० ठेंग + अंग वा अंगूठा वा देश०] १. अंगूठा।
ठोसा।

मुहा०—ठेंगा दिखाना = (१) अंगूठा दिखाना। ठोसा दिखाना।
घृष्टता के साथ प्रस्वीकार करना। बुरी तरह से नहीं करना।
(२) चिढ़ाना। ठेंगे से = बला से। कुछ परवाह नहीं।

विशेष—जब कोई किसी से किसी बात की धमकी या कुछ करने
या होने की सूचना देता है तब दूसरा अपनी बेपरवाही या
निर्भीकता प्रकट करने के लिये ऐसा कहता है।

२. निर्द्विष। (प्रशिष्ट)। ३. सोंटा। डंडा। गदका। जैसे,—
जबरदस्त का ठेंगा सिर पर।

मुहा०—ठेंगा बजाना = (१) मारपीट होना। खड़ाई बंसा होना।
(२) धर्म की खटखट होना। प्रयत्न निष्फल होना। कुछ

काम न निकलना । उ०—जिसका काम उसी को साजे । और करे सो ठेंगा बाजे ।—(शब्द०) ।

४. वह कर जो बिक्री के माल पर लिया जाता है । चुंगी का महसूल ।

ठेंगुर—संज्ञा पुं० [हि० ठेंगा (- गोट)] काठ का लंबा कुंदा जो नटलट पोपायों के गले में इसलिये बांध दिया जाता है जिसमें वे बहुत दौड़ और लछमन न सके ।

ठेंचा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठिंघा' ।

ठेंठ'—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठोंठी' ।

ठेंठ'—वि० [हि०] दे० 'ठेंठ' ।

ठेंठा'—संज्ञा पुं० [हि०] मुला हुआ टेंटल । उ०—रानी एक मझूर से बैलों के लिये जोन्हरी का ठेंठा कटवा रही थी ।—तिलसी, पृ० २३८ ।

ठेंठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. कान की मेल का लच्छा । कान की मेल । २. कान के छेद में लगाई हुई कई, कपड़े आदि की डाट । कान का छेद मुँदने की वस्तु ।

मुहा०—कान में ठेंठी खगाना=न सुनना ।

३. कीशी बीतल आदि का मुँह बंद करने की वस्तु । डाट । काग ।

ठेंपी'—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठेंठी' ।

ठेंक—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिकना] १. सहारा । बल देकर ठिकाने की वस्तु । झोंठगाने की चीज । २. वह वस्तु जो किसी भारी चीज को ऊपर ठहराए रखने के लिये नीचे के लगाई जाय । टेक । चाँड़ । ३. वह वस्तु जिसे बीच में देने या टोंकने से कोई ठीली वस्तु कस जाय, इसर सघर न हिले । प चड़ । ४. किसी वस्तु के नीचे का भाग जो जमीन पर टिका रहे । पैदा । तला । ५. टट्टियों आदि से घिरा हुआ वह स्थान जिसमें घनाज भरकर रखा जाता है । ६. घोड़ों की एक चाल । ७. खड़ी या लाठी की चामी । ८. धातु के बरतन में लगी हुई चकती । ९. एक प्रकार की मोटा महताबी ।

ठेंकना—क्रि० स० [हि० ठिकना, टेक] १. सहारा लेना । आश्रय लेना । चलने या उठने बैठने में अपना बल किसी वस्तु पर देना । टेकना । २. आश्रय लेना । ठिकना । ठहरना । रहना । उ०—नी, तेरह, चौबीस भी एका । पुरब दखिन कोन तेह ठेंका ।—जायसी (शब्द०) । वि० दे० 'टेकना' ।

ठेंकवा चाँस—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चाँस ।

विशेष—यह बंगाल और आसाम में होता है और छाजन तथा चटाई आदि के काम में आता है । इसे देवचाँस भी कहते हैं ।

ठेंका'—संज्ञा पुं० [हि० ठिकना, टेक] १. टेक । सहारे की वस्तु । २. ठहरने या रुकने की जगह । बैठक । घर । ३. तबला या टोल बजाने की वह क्रिया जिसमें पूरे बोल न निकाले जायें, केवल ताल दिया जाय । यह बाएँ पर बजाया जाता है ।

क्रि० प्र०—बजाना ।—देना ।

मुहा०—ठेंका भरना=घोड़े का उछल कूद करना ।

४. तबले का बायाँ । डुगी । ५. कीवाली ताल । ६. ठोकर ।

घक्का । घपेड़ा । उ०—तरब तरंग रंग की राणहि उछलत छज लगि ठेंका ।—रघुराज (शब्द०) ।

ठेंका'—संज्ञा पुं० [हि० टीक] १. कुछ धन आदि के बदले में किसी के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा । टीका । जैसे, मकान बनवाने का ठेंका । सड़क तैयार करने का ठेंका । २. समय समय पर आमदनी देनेवाली वस्तु को कुछ काल तक के लिये इस शर्त पर दूसरे को सुपुर्द करना कि वह आमदनी वसूल करके और कुछ अपना निश्चित मुनाफा काटकर बराबर मालिक को देता जायगा । हजारा । पट्टा ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।—पर लेना ।

यौ०—ठेंका पट्टा ।

मुहा०—ठेंका भेंट=वह नजर जो किसी वस्तु को ठेंके पर लेनेवाला मालिक को देता है ।

ठेंकाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़ों की छपाई में कासे हाथियों की छपाई ।

ठेंकाना'—क्रि० स० [हि० ठेंकना का प्रे० रूप] झोंठगाना । किसी वस्तु को किसी वस्तु के सहारे करना । सहारा देना ।

ठेंकाना'—संज्ञा पुं० [हि० ठिकाना] दे० 'ठिकाना' ।

ठेंकुरी(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठेंकली' । उ०—कहू ठेंकुरी धारि के वारि धारे ।—प० रासो, पृ० ५५ ।

ठेंकेदार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठीकेदार' ।

ठेंकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] १. टेक । सहारा । २. चाँड़ । ३. विश्राम करने के लिये ऊपर लिए हुए बोझ को कुछ देर कहीं ठिकाने या ठहराने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—लेना ।

ठेंगड़ी(१)—संज्ञा पुं० [देश०] कुत्ता ।—(हि०) ।

ठेंगना(१)—क्रि० स० [हि० ठेंकना] १. ठेंकना । सहारा लेना । उ०—पाणि ठेंगि मंजूपा काही । रघुनायक चित्तयो गुद पाही ।—रघुराज (शब्द०) । २. रोकना । बरजना । मना करना । उ०—भँवर भुजग कहा सो पीया । हम ठेंगा तुम कान न कीया ।—जायसी (शब्द०) ।

ठेंगनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठेंगना] ठेंकने की लकड़ी ।

ठेंघना—क्रि० स० [हि०] दे० 'ठेंगना' ।

ठेंघनी'—संज्ञा स्त्री० [हि० ठेंघना] ठेंकने की लकड़ी ।

ठेंघा'—संज्ञा पुं० [हि० टेक] टेक । चाँड़ । वह खंभा या लकड़ी जो सहारे के लिये लगाई जाय । ठहराव । ठिकान । उ०—(क) बरतहि बरन गगन जस मेधा । तठहि गगन बैठे अनु ठेंघा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) बिरह बजायि बीज को ठेंघा ।—जायसी ग्रं०, पृ० १६१ ।

ठेंघुना'—संज्ञा पुं० [सं० छण्टीव, हि० ठेंघना] दे० 'ठेंघना' ।

ठेंठ'—वि० [देश०] १. निपट । निरा । बिलकुल । जैसे, ठेंठ गँवार । २. खालिस । जिसमें कुछ भेलजोल न हो । जैसे, ठेंठ बोली, ठेंठ हिंदी । ३. शुद्ध । निर्मल । निर्लस । उ०—मैं उपकारी ठेंठ का सतगुरु दिया सोहाग । दिल दरपन दिखलाय के दुर

किया सब ताग ।—कबीर (शब्द०) । ४. आरंभ । शुक् ।
उ०—मैं ठेठ से देखता आता हूँ कि आप मुझको देखकर
जलते हैं ।—श्रीनिवास दास (शब्द०) ।

ठेठ^२—संज्ञा स्त्री० सीधी सादी बोली । वह बोली जिसमें साहित्य अर्थात्
लिखने पढ़ने की भाषा के शब्दों का मेल न हो ।

ठेठ^३—संज्ञा पुं० [सं० थिएटर] दे० 'थिएटर' ।

ठेना^१—क्रि० प्र० [?] १. ठहरना । रुकना । २. झकड़ना ।
ऐटना । उ०—नाहक का भगड़ा मोल लेना है, सेतमेत का
ठेना है ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० ५४ ।

ठेना^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] सोने चांदी का इतना बड़ा टुकड़ा जो घंटी
में आ सके ।—(सुनार) ।

विशेष—सुनार सोना या चांदी गायब करने के लिये उसे इस
प्रकार घंटी में लेते हैं ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—लगाना ।

ठेप^२—संज्ञा पुं० [सं० दीप] दीपक । चिराग ।

ठेपी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. डाट । काग जिससे बोतल वा किसी
बरतन का मुँह बंद किया जाता है । २. छोटा टेंकना ।

ठेरा^१—संज्ञा पुं० [हि० ठहर] ठहराव । रुकाव का स्थान । टेक ।
उ०—पद नवकल रो ठेर पुणोजे, गीत सतखणो मंछ गुणो
जे ।—रघु० ६०, पृ० १३७ ।

ठेलना—क्रि० प्र० [हि० टलना या प्रप० √टिल] १. ढकेलना ।
धक्का देकर आगे बढ़ाना । रेलना ।

संयो० क्रि०—देना ।

थौं—ठेलठाल, ठेलमठेल=धक्कम धक्का । ठेलाठेल । ठेलमेल=

एक पर एक आगे बढ़ते हुए । ठेलाठेली=धक्कम धक्का ।

२. जबर्दस्ती करना । बलात् किसी को सक्रियते हुए आगे बढ़ना ।

ठेला—संज्ञा पुं० [हि० ठेलना] १. जगल से लगा हुआ धक्का
जिसके कारण कोई वस्तु खिसककर आगे बढ़े । पार्श्व का
आघात । टक्कर । २. छिछली नदियों में चलनेवाली नाव जो
लम्बी के सहारे चलाई जाती है । ३. बहुत से आदमियों का
एक के ऊपर एक गिरना पड़ना । धक्कम धक्का । ऐसी भीड़
जिसमें देह से देह रगड़ लाय । रैला । ४. एक प्रकार की
गाड़ी जिसे आदमी ठेल या ढकेलकर चलाते हैं ।

थौं—ठेलागाड़ी ।

ठेलाठेल—संज्ञा स्त्री० [हि० ठेलना] बहुत से आदमियों का एक
के ऊपर एक गिरना पड़ना । रैला पेल । धक्कम धक्का । उ०—
ठानि बह्य ठाकुर ठगोरिन की ठेलाठेल मेला के मभार हित
हेला के भयो गयो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

ठेवका^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थापक] वह स्थान जहाँ खेत सींचने के लिये
पुरबट का पानी गिराया जाता है ।

ठेवकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठेवका] किसी लुढ़कनेवाली वस्तु को
झड़ाने या टिकाने की जगह या वस्तु ।

ठेस—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. आघात । चोट । धक्का । ठोकर । उ०—
बीछप दिल पर संगेफिराक की ऐसी ठेस लगी कि चकनाचुर
हो गया ।—फिसाना०, भा० १, पृ० १२ ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

२. सहारा । टेक ।

ठेसना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठेसना' ।

ठेसमठेस—क्रि० प्र० [हि० ठेस] सब पालों को एकबारगी खोले
हुए (जहाज का चलना) ।—(लश०) ।

ठेहरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह छोटी सी लकड़ी जो पुरानी चाल के
दरवाजों के पल्लो की चूल के नीचे गड़ी रहती है और जिस-
पर चूल घूमती है ।

ठेही—संज्ञा स्त्री० [देश०] मारी हुई ईल ।

ठेहुका^१—संज्ञा पुं० [हि० ठक] वह जानवर जिसके पिछले घुटने
चलते समय आंगुल में रगड़ खाते हों ।

ठेहुना^१—संज्ञा पुं० [सं० घण्टीवान्] [स्त्री० ठेहुनी] घुटना ।

ठेहुनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठेहुना] हाथ की कुहनी ।

ठैकर—संज्ञा पुं० [देश०] नीबू का सा एक सड़ा फल जिसे हलदी के
साथ उबालकर हलका पीला रंग बनाते हैं ।

ठैन^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान, हि० ठाय] जगह । स्थान । बैठने
का ठाँव । उ०—क्रीडत सघन गुज बृदावन बंसीबट जमुना
की ठैन ।—सूर (शब्द०) ।

ठैया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाय] दे० 'ठाई' ।

ठैरना^१—क्रि० प्र० [हि० ठहरना] दे० 'ठहरना' । उ०—उनकी
कोई बात हिकमत से खाली नहीं ठैरती ।—श्रीनिवास प्र०,
पृ० १८४ ।

ठैनाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहरना] दे० 'ठहराई' ।

ठैरना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठहराना' । उ०—(क) मैं बीजक
दिलाकर इन्हीं कीमत ठैरा लूँगा ।—श्रीनिवास प्र०, पृ०
१६० । (ख) हे सारथी, तपोवनवासियों के काम में कुछ
विघ्न न पड़े इससे रख यही ठैरा दो हम उत्तर लें ।—
शकुंतला, पृ० १२ ।

ठैलपैल—संज्ञा स्त्री० [हि० ठेलना] दे० 'ठेलपेल' ।

ठैहरना^१—क्रि० प्र० [हि० ठहरना] रुकना । ठहरना । उ०—(कछु
ठैहरि कँ) प्यारे, जो यैही गति करतो ही तो अपनायो
क्यों ?—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ४६५ ।

ठोंक—संज्ञा स्त्री० [हि० ठोकना] ठोंकन की क्रिया या भाव ।
प्रहार । आघात । २. वह लकड़ी जिससे दरी बुननेवाले सूत
ठोककर ठस करते हैं ।

ठोंकना—क्रि० प्र० [अनुध्व० ठक ठक] १. जोर से चोट मारना ।
आघात पहुँचाना । प्रहार करना । पीटना । जैसे,—इसे हथौड़े
से ठोंको ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. मारना । पीटना । लात, घुँसे डंडे आदि से मारना । जैसे,—
घर पर जाओ खूब ठोंके जाओगे ।

संयो० क्रि०—देना ।

३. ऊपर से चोट लगाकर घंसाना । गाड़ना । जैसे, कील ठोंकना,
पक्कर ठोंकना । ४. (नालिश, घरजी आदि) दाखिल करना ।
दायर करना । जैसे, नालिश ठोंकना, बावा ठोंकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

५. काठ में झालना । बेड़ियों से जकड़ना । ६. धीरे धीरे हुयेली पटककर बाधात पहुँचाना । हाथ मारना । जैसे, पीठ ठोकना, ताल ठाँकना, बच्चे को ठोककर सुसाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—ठोक ठोककर सहना = ताल ठोककर सहना । डटकर लड़ना । अवरदस्ती भगड़ा करना । ठोकना बजाना = हाथ से टबोलकर परीक्षा करना । जाँचना । परखना । जैसे,—लोग दमड़ी की हाँड़ी भी ठोक बजाकर लेते हैं । उ०—(क) तन सहाय मन पाहुँ, मनसा उतरी प्राय । कोठ काहूँ का है नहीं (सब) देखा ठोक बजाय ।—कबीर सा० सं०, पृ० ६१ । (ख) ठोंकि बजाय सखे गजराज कहाँ जो कहौं केहुँ सौं रख काड़े ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) नंध बज लीके ठोंकि बजाय । दहूँ विदा मिलि जाँहि मधुपुरी जेह गोकुल के राय ।—सूर (शब्द०) । पीठ ठोकना = दे० 'पीठ' का मुहा० । रोटी या बाटी ठोकना = घाटे की लोई को हाथ से ठोंकते हुए बढ़ाकर रोटी बनाना ।

७. हाथ से मारकर बजाना । जैसे, तबला ठोकना । ८. कसकर घंटकाना । लगाना । जड़ना । जैसे, ताला ठोकना । ९. हाथ या लकड़ी से मारकर 'खट खट' शब्द करना । खटखटाना ।

ठोंकना—संज्ञा पुं० [हि० ठोकना] भीटा मिले हुए घाटे की मोटी पूरी । गुना ।

ठोंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. खंजु । खोंष । २. खोंष की मार । ३. उँगली भुकाकर पीछे की ओर निकली हुई नोक से मारने की क्रिया । उँगली की ठोकर । खुदका ।

ठोंगना—क्रि० सं० [हि० ठोंग] १. खोंष मारना । २. उँगली से ठोकर मारना । खुदका मारना ।

ठोंगा—संज्ञा पुं० [हि० ठोंग] पतले कागज का नोकदार या गोला एक पात्र जिसमें दूकानदार सोदा देत है ।

ठोंगना—क्रि० सं० [हि० ठोंग] दे० 'ठोंगना' ।

ठोंठ—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] खोंष का प्रगला सिरा । डार । उ०—चाटकारी का रोषक जाल फैलाकर उनका रणकुशल कटफोरे की सी ठोठ को बाँध दूँ ।—वीणा, (विज्ञापन) ।

ठोंठा—संज्ञा पुं० [दे०] एक कीड़ा जो उबार, बाजरा और ईल को हानि पहुँचाता है ।

ठोंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. चने के दाने का कोश । २. पोस्ते की ढोंड़ी ।

ठों—अर्थ० [दे० या हि० ठोर] एक शब्द जो पूरबी हिंदी में संख्यावाचक शब्दों के आगे लगाया जाता है । संख्या । प्रत्यय । जैसे, एक ठो, दो ठो । इस अर्थ के बोधक अन्य शब्द गो, ठे आदि भी चलते हैं । जैसे, एक ठे, दू गो आदि ।

ठोकना—संज्ञा पुं० [दे०] आम की गुठली के ऊपर का कड़ा छिलका या आवरण ।

ठोक०—[हि०] दे० 'ठोक' । उ०—सुंदर भक्तित्वार सो गुन मणि काई प्राणि । सद्गुरु चकमक ठोकते सुरत उठे कफ प्राणि ।—सुंदर० सं० भा०, २, पृ० ६७१ ।

ठोकना—क्रि० सं० [हि० ठोकना] दे० 'ठोकना' ।

यौ०—ठोक पीट करना = ठोकना पीटना । बारबार ठोकना । ठोक पीटकर गठना = ठोक पीटकर दुरुस्त करना । तैयार करना । उ०—जब हम सोने को ठोक पीट गड़ते हैं, तब मान मूल्य, सोदयं सभी बढ़ते हैं ।—साकेत, पृ० २१३ ।

ठोकर—संज्ञा स्त्री० [हि० ठोकना] १. वह चोट जो किसी धंग विशेषतः पैर में किसी कड़ी वस्तु के जोर से टकराने से लगे । बाधात जो चलने में ककड़, पत्थर आदि के धक्के से पैर में लगे । टेंस ।

क्रि० प्र०—लगना ।

मुहा०—ठोकर उठाना = बाधात या दुःख सहना । हानि उठाना । ठोकर या ठोकरें खाना = (१) चलने में एकबारगी किसी पड़ी हुई वस्तु की रूकावट के कारण पैर का चोट खाना और लड़खड़ाना । झटुकना । झटुककर गिरना । जैसे,—जो संभलकर नहीं चलेगा वह ठोकर खाकर गिरेगा (२) किसी झूल के कारण दुःख या हानि सहना । असायशानी या चूक के कारण कष्ट या क्षति उठाना । जैसे,—ठोकर खावे, बुढ़ि पावे (३) छोखे में आना । झूलचूक करवा । चूक खाना । (४) प्रयोजन सिद्धि या जीविका आदि के लिये चारों ओर घूमना । हीन दशा में भटकना । इधर उधर मारा मारा फिरना । दुर्दशा-ग्रस्त हो कर घूमना । दुर्गति सहना । कष्ट सहना । जैसे,—यदि वह कुछ काम धंधा नहीं सीखेगा तो आप ही ठोकर खायेगा । ठोकर खाता फिरना = इधर उधर मारा मारा फिरना । ठोकर लगना = किसी झूल या चूक के कारण दुःख या हानि पहुँचना । ठोकर लेना = ठोकर खाना । झटुकना । चलने में पैर का ककड़ पत्थर आदि किसी कड़ी वस्तु से जोर से टकराना । टेंस खाना । जैसे, घोड़े का ठोकर लेना ।

२. रास्ते में पड़ा हुआ उभरा पत्थर वा ककड़ जिसमें पैर टकराकर चोट खाता है ।

मुहा०—ठोकर जड़ाऊ कदम में = ठोकर बचाते हुए । रास्ते का ककड़ पत्थर बचाते हुए । ठोकर पहाड़िया कदम में = धंसा हुआ पत्थर या कंकड़ बचाते हुए ।

विशेष—इन दोनों मुहावरों का प्रयोग पालकी ढोते समय पालकी ढोनेवाले कहार करते हैं ।

३. वह कड़ा बाधात जो पैर या जूते के पजे से किया जाय । जोर का धक्का जो पैर के प्रगले भाग से मारा जाय । जैसे,—एक ठोकर हेंगे होश ठोक हो जायेंगे ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

मुहा०—ठोकर देना या जड़ना = ठोकर मारना । ठोकर खाना = पैर का बाधात सहना । लात सहना । पैर के बाधात से इधर उधर लुढ़कना । ठोकरो पर पड़ा रहना = किसी की सेवा करके और मार गाली खाकर निर्वाह करना । अपमानित होकर रहना ।

४. कड़ा बाधात । धक्का । ५. जूते का प्रगला भाग । ६. कुश्ती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब विपक्षी (बोड़) लड़े लड़े भीतर घुसता है ।

विशेष—इसमें विपक्षी का हाथ बगल में दबाकर दूसरे हाथ की तरफ से उसकी गरदन पर थपेड़ा देते हैं। और जिधर का हाथ बगल में दबाया रहता है उधर ही की टांग से धक्का देते हैं।

ठोकरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह गाय जिसे बच्चा दिए कई महीने हो चुके हों। इसका दूध गाढ़ा और मीठा होता है। बकेना गाय।

ठोकवा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठोकवा'।

ठोका—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों के हाथ का एक गहना जो चूड़ियों के साथ पहना जाता है। एक प्रकार की पट्टेली।

ठोठ^१—वि० [हि० ठूँठ] १. जिसमें कुछ तत्व न हो। २. जड़। मूर्ख। गावदी।

ठोठ^२—वि० [हि० ठोट] मूर्ख। जड़। व्यवहारशून्य। उ०—(क) दादू आदर भाव का मीठा लागे मोठ। बिन आदर व्यंजन बुरा जोमण वाला ठोठ।—राम० घर्म०, पृ० २७१। (ख) ठय कामेती ठोठ गुरु चुगल न कीजे सेण।—बांकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४७।

ठोठरा—वि० [हि० ठूँठ] [वि० स्त्री० ठोठरी] किसी जमी या लगी हुई वस्तु के निकल जाने से खाली पड़ा हुआ। खाली। पोखला। उ०—सात ठोस एहि बिधि लरे बान बाँधि बलवंत। रातिहु दिनहु ठटाइ कै करे ठोठरे बत।—खाल (शब्द०)।

ठोडा—संज्ञा पुं० [हि० ठोर] स्थान। जगह। उ०—(क) आप ठोड जे उमंग न प्राया फिरता ठोड अनेक फिरे।—रघु० ६०, पृ० २५१। (ख) दोनू ठोड जेपुर जोधपुर नै जोर दीनू।—शिखर०, पृ० ८२।

ठोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] चेहरे में ओठ के नीचे का भाग जो कुछ गोलाई लिये उभरा होता है। ठुड़ी। चिबुक। दाढ़ी।

मुहा०—ठोड़ी पर हाथ धरकर बैठना = चिंता में मग्न होकर बैठना। ठोड़ी पकड़ना, ठोड़ी में हाथ देना = (१) प्यार करना। (२) किसी चिढ़े हुए आदमी को स्नेह का भाव दिखाकर मनाना। मीठी बातों से क्रोध शांत करना। ठोड़ी सारा = सुंदरी स्त्री की ठुड़ी पर का तिल या गोदना।

ठोड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठोड़ी'। उ०—है मुख अति छवि आगरी, कहा सरद की चंद। पै हित मान समान किय तुव ठोड़ी को बुँद।—स० सप्तक, पृ० ३४८।

ठोष^१—संज्ञा पुं० [अनु० टप् टप्] बूँद। बिंदु।

यौ०—ठोप ठोप, ठोपेठोप = बूँद बूँद। उ०—त्यों त्यों गच्छ होइ सुने संतन की बानी। ठोपे ठोप अघाय ज्ञान के सागर पानी।—पलटू०, पृ० ६१।

ठोर^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार मिठाई या पकवान जो मैदे की मोयनदार बक़ाई हुई लोई को घी में तलने और आखिरी में पायने से बनता है। बल्लभ संप्रदाय के मंत्रियों में इसका भोग प्रायः लगता है।

ठोर^२—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] बोंब। चबु। उ०—कंटिया दूध देवे वहि कबहीं ठोर बसावे गोंछी।—सं० दरिया, पृ० १२७।

ठोरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठोर] कोल्हू का वह स्थान जहाँ से रस अथवा तेल टपककर गिरता है। टोंटी। उ०—उकड़ू भुक जाती, भरा टाड़ा हुटाकर अलग रख लेती और खाली टाड़ा कोल्हू की ठोरी से लगा देती।—नई०, पृ० ८१।

ठोलना^१—क्रि० सं० [हि० ठुलाना] ठुलाना। चलाना। उ०—दासी होई करि निरबहु, पाय पसारसुं ठोखसुं बाई।—बी० रासो, पृ० ४२।

ठोला^१—संज्ञा पुं० [देश०] रेशम फेरनेवालों का एक जोजार जो लकड़ी की चौकोर छोटी पटरी (एक बिता लंबी एक बिता चौड़ी) के रूप में होता है। इसमें लकड़ी का एक छूँटा लगा रहता है जिसमें सूया डालने के लिये दो छेद होते हैं।

ठोला^२—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० ठोली] मनुष्य। आदमी।—(सपरदाई)। उ०—हम ठोली सायर रस जाना।—घट०, पृ० ३६२।

ठोवड़ी^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण; अप० ठाव; राज० ठावड़, ठोवड़ी] दे० 'ठोर'। उ०—सिंधु परइ सत जोअणे खिवियां बीजलियाँहु। सुरहुउ सोद महकियाँ, मीनी ठोवड़ियाँहु।—ढोला०, पृ० ११०।

ठोस^१—वि० [हि० ठस] जिसके भीतर खाली स्थान न हो। जो भीतर से खाली न हो। जो पोला या खोखला न हो। जो भीतर से भरापूरा हो। जैसे, ठोस कड़ा। उ०—यह मूर्ति ठोस सोने की है।—(शब्द०)।

विशेष—'ठस' और 'ठोस' में अंतर यह है कि 'ठस' का प्रयोग या तो चद्र के रूप की बिना मोटाई की वस्तुओं का घनत्व सूचित करने के लिये अथवा गोले या मुलायम के विरुद्ध कड़ेपन का भाव प्रकट करने के लिये होता है। जैसे, ठस बुनाबट, ठस कपड़ा, गोली मिट्टी का सूखकर ठस होना। और, 'ठोस' शब्द का प्रयोग 'पोले' या 'खोखले' के विरुद्ध भाव प्रकट करने के लिये अतः लंबाई, चौड़ाई, मोटाईवाली (घनात्मक) वस्तुओं के संबंध में होता है।

२. चढ़। मजबूत।

ठोस^२—संज्ञा पुं० [देश०] घसक। कूड़न। डाह। उ०—इक हरि के दरसन बिनु मरियत अप कुबजा के ठोसनि।—सूर (शब्द०)।

ठोसा—संज्ञा पुं० [देश०] झँगूठा। (हाथ का) ठेंगा।

मुहा०—ठोसा दिखाना = झँगूठा दिखाना। इनकार करना। ठोसे में = बला से। ठेंगे से। कुछ परवाह नहीं।

ठोहना^१—क्रि० सं० [हि० ठोहना, ठूँटना] ठिकाना ठूँटना। पता लगाना। खोजना। उ०—प्रायो कहाँ अब हो कहि को हो। ज्यों अपनो पद पाउँ सो ठोहो।—केशव (शब्द०)।

ठोहरा—संज्ञा पुं० [हि० निठोहर] अकाल। गिरानी। महंगी।

ठोका—संज्ञा पुं० [सं० स्थानक, हि० ठाव + क (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ सिंचाई के लिये तालाब, गड्ढे आदि का पानी दौरी से ऊपर उलीचकर गिराते हैं। ठेक्का।

ठोड़ी^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठोर'। उ०—दिल्ली गयी कुछ,

मन दीधी । किए ही ठोड़ मुकाम न कीधी ।—रा० ६०, पु० २६ ।

ठोनि^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठथनि' ।

ठौर^५—संज्ञा पु० [सं० स्थान, प्रा० ठान, हि० ठाँव + र (प्रत्यय०)] १. जगह । स्थान । ठिकाना ।

थौं—ठौर ठिकाना = (१) रहने का स्थान । (२) पता ठिकाना ।

मुहा०—ठौर कुठौर = (१) अच्छी जगह, बुरी जगह । बुरे ठिकाने । अनुपयुक्त स्थान पर । जैसे—(क) हम प्रकार ठौर कुठौर की बीज न उठा लिया करो । (ख) तुम पत्थर फेंकते हो किसी को ठौर कुठौर लग जाय तो ? (२) बेमोका । बिना अवसर । ठौर न घाना = समीप न घाना । पास न फटकना । उ०—हरि को भजै सो हरिपद पावै । जन्म मरण तेहि ठौर न भावै ।—सूर (शब्द०) । ठौर न रहना = स्थान या जगह न मिलना । निराश्रय होना । उ०—कबीर ते नर अथ हैं, गुरु को कहते धीर । हरि रुठे गुह धीर हैं, गुरु रुठे नहि ठौर ।—

कबीर सां० सं०, भा० १, पु० ४ । ठौर मारना = तुरंत बंध कर देना । उ०—तब मनुष्यन ने धाकी ठौर मारयो । ता पाछें बाकी सोस गाम के द्वार पे बाँधयो ।—दो सो बावन०, भा० २, पु० ६६ । ठौर रखना = उसी जगह मारकर गिरा देना । मार डालना । ठौर रहना = (१) जहाँ का तहाँ रह जाना । पड़ रहना । (२) मर जाना । किसी के ठौर = किसी के स्थानापन्न । किसी के सुल्य । उ०—किबले के ठौर बाप बाब-शाह साहजहाँ ताको कैव कियो मानो मक्के प्रागि लाई है ।—भूषण (शब्द०) ।

२. मोका । घात । अवसर । उ०—ठौर पाय पवनपुन डारि मुद्रिका दई ।—केशव (शब्द०) ।

ठौहर—संज्ञा पु० [हि० ठौर] स्थान । ठाँव । ठौर । उ०—सुंदर भटक्यो बहुत दिन अब तू ठौहर भाव फेरि न कबहूँ पाइहूँ यह मोसर यह डाव ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पु० ७०० ।

ठयापा—वि० [देश०] उपद्रवी । शरारती । उतपाती ।

ह

ह—व्यंजनों में तेरहवाँ व्यंजन धीरे टवगं का तीसरा वर्ण । इसका उच्चारण आभ्यंतर प्रयत्न द्वारा तथा जिह्वामध्य को मूर्ध्ना में स्पर्श करने से होता है ।

हंक—संज्ञा पु० [सं० दंश या दंशी] १. भिड़, बिच्छू, मधुमक्खी आदि कीड़ों के पीछे का जहरीला काँटा जिसे वे क्रोध में या अपने बचाव के लिये जीवों के शरीर में धँसाते हैं । न०—उलटिया सूर ग्रह हंक छेदन किया, पोखिया चंद्र तहाँ कला सारी ।—राम० धर्म०, पृ० ३१६ ।

• विशेष—भिड़, मधुमक्खी आदि उड़नेवाले कीड़ों के पीछे जो काँटा होता है, वह एक नली के रूप में होता है जिससे होकर जहर की गाँठ से जहर निकलकर चुभे हुए स्थान में प्रवेश करता है । यह काँटा केवल मादा कीड़ों को होता है ।

क्रि० प्र०—मारना ।

२. कलम की जीभ । निब । ३. हंक मारा हुआ स्थान । हंक का भाव ।

हंक^५—संज्ञा पु० [सं०, प्रा० हक (= वाद्यविशेष) अथवा अनु०] डमरू । डिगडिगी । उ०—बाजीगर ने हंक बजाया । सब खोग तमाशे भाया ।—कबीर मं०, पु० ३३८ ।

हंकदार—वि० [हि० हंक + प्रा० दार] हंकवाला । काँटेदार ।

हंकना—क्रि० प्र० [अनु०] शब्द करना । गरजना । भयानक शब्द करना । उ०—हथनास हंकिय तोष हंकिय धुनि धर्मकिय चंड ।—सूदन (शब्द०) ।

हंका—संज्ञा पु० [सं० हक (= दुंदुभि का शब्द)] एक प्रकार का बाजा जो नाँव के आकार के तामे या लोहे के बरतनों पर चमड़ा मढ़कर बनाया जाता है । पहले लड़ाई में हंके का

जोड़ा ऊँटों और हाथियों पर चलता था और उसके साथ झंडा भी रहता था ।

क्रि० प्र०—बजना ।—बजाना ।—पीटना ।—पीटना ।

मुहा०—हंके की चोट कहना = खुल्लम खुल्ला कहना । सबको सुनाकर कहना । बेधड़क कहना । हंका डालना = (१) मुरगे से मुरगे को लड़ाना । (२) मुरगे का चोंच मारना । हंका देना या पीटना = (१) दे० 'हंका बजाना' । (२) मुतादी करना । डगो करना । डोडो फेरना । डका बजाना = हल्ला करके सबको सुनाना । सबपर प्रकट करना । प्रसिद्ध करना । घोषित करना । किसी का हंका बजना = किसी का शासन या अधिकार होना । किसी की चलती होना । उ०—सजे अभी साकेत, बजे हूँ, जय का डंका । रह न जाय अब कहीं किसी रावण की लका ।—साकेत, पु० ४०२ ।

थौं—हंका निशान = राजाओं की सवारी में आगे बजनेवाला डंका और ध्वजा ।

हंका—संज्ञा पु० [प्र० डक] जहाजों के ठहरने का पक्का घाट ।

हंकिनि—संज्ञा स्त्री० [म० डाकिनी] दे० 'डाकिनी' ।

हंकिनी बंदोबस्त—संज्ञा पु० [प्र० दवामी + प्रा० बंदोबस्त] स्थायी व्यवस्था । दे० 'दवामी बंदोबस्त' ।

हंकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. कुश्ती का एक पेंच । २. मालखंब की एक कसरत ।

हंकी—वि० [हि० हंक] हंकवाला ।

हंकर—संज्ञा पु० [हि० हंका] एक प्रकार का पुराना बाजा जिससे ताल दिया जाता था ।

हंस्—संज्ञा पु० [देश०] पलाश । हंस ।

हंल—संज्ञा पुं [हिं० हंल] विष का दौत । उ०—ये देखो ममता नागन भाई रे भाई भाई । तिनैं तो हंल मारा रे मारा ।
—हमिलनी०, पृ० ५८ ।

हंग—संज्ञा पुं [देश०] भयपका छुहारा ।

हंगम—संज्ञा पुं [देश०] वृक्ष विशेष । एक पेड़ का नाम ।

विशेष—यह पेड़ बहुत बड़ा होता है । हर साल जाड़े के दिनों में इसके पत्ते झड़ जाते हैं । इसकी लकड़ी भीतर से भूरी, बहुत कड़ी और मजबूत निकलती है । दारजिलिंग के पासपास तथा असिया की पहाड़ियों में यह अधिक मिलता है ।

हंगर—संज्ञा पुं [देश०] चौपाया (जैसे, गाय, भैंस) । उ०—मानुष हो कोई मुवा नहि, मुवा सो हंगर धूर ।—कबीर मं०, पृ० ३६४ ।

हंगर—वि० दे० 'हंगर' ।

हंगू उवर—संज्ञा पुं [सं० हंगू + सं० उवर] एक प्रकार का ज्वर जिसमें शरीर जकड़ उठता है और उसपर चक्ते पड़ जाते हैं । इसे लंपड़ा उवर भी कहते हैं ।

हंगोरी—संज्ञा पुं [देशी हंगा (= यष्टि) + हिं० घोरी (प्रत्य०)] हड़की । यष्टि । छड़ी । उ०—हय हंगोरी पग सिसहि डोखी देखि नीमाणु ।—प्राण०, पृ० २५० ।

हंटा—संज्ञा पुं [हिं० हंटा] दे० 'हंटा' । उ०—साले नगाहची ने ठीक सामने कपाल पर ही हंटा चलाया था ।—मैसा०, पृ० ७५ ।

हंल—संज्ञा पुं [सं० हंगल] छोटे पीछों की पेड़ी और शाखा । नरम छाल के भाड़ों और पीछों का बड़ और टहनी । जैसे, जवार का हंल, मूली का हंल ।

हंली—संज्ञा स्त्री [सं० हंगल] हंल ।

हंड—संज्ञा पुं [सं० हण्ड, प्रा० हंड] १. हंडा । सोटा । उ०—कथा पहिरि हंड कर गहा । सिद्ध होइ कहं गोरख कहा ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २०५ । २. बाहुदंड । बाहु । ३. मेकदंड । रीढ़ । उ०—दरिया चढिया गगन को, मेक उलंग्या डड । सुल उपजा सिंघि मिला, भेटा ब्रह्म भवंड ।—दरिया० बानी, पृ० १५ । ४. एक प्रकार का व्यायाम जो हाथ पैर के पंजों के बल पृष्ठी पर पट और सीधा पड़कर किया जाता है । हाथ पैर के पंजों के बल पर पड़कर की जानेवाली कसरत ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—हंडपेल । हंड बैठक = हंड और बैठक नाम की कसरत ।

मुहा०—हंड पेलना = खूब हंड करना ।

५. दंड । सजा । ६. धर्मदंड । जुरमाना । वह रुपया जो किसी अपराध या हानि के बदले में दिया जाय ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—हंड डालना = धर्मदंड नियत करना । जुरमाना करना ।

हंड भरना = हानि के बदले में धन देना । जुरमाना या हुरजाना देना । उ०—भूमि भास जी करहि भरहि तो डड सेव करि ।—पृ० रा०, ८३ ।

७. घाटा । हानि । नुकसान ।

मुहा०—हंड पड़ना = नुकसान होना । व्यर्थ व्यय होना । जैसे,—कुछ काम भी नहीं हुआ, इतना रुपया हंड पड़ा । ८. चढ़ी । दंड । दे० 'दंड' । उ०—हंड एक माथा कर मोरें । जोमिनि होउं चलो संग तोरें ।—पदमावत, पृ० ६५८ ।

हंडक—संज्ञा पुं [सं० हण्डक] दे० 'हंडक' । उ०—परे बाह भव बनखंड साही । हंडक भारन भीम बनाही ।—पदमावत, पृ० १३२ ।

हंडकारन—संज्ञा पुं [सं० हण्डकारण] दे० 'हंडकारण' ।

हंडण—वि० [सं० हण्डन] दंड देनेवाला । उ०—धरि हंडण नव खंड मखीही ।—रा० क०, पृ० १२ ।

हंडताल—संज्ञा पुं [सं० हण्ड + ताल] एक प्रकार का बाजा जिसमें लंबे चिमटे में मंजीर जड़े रहते हैं । उ०—भांभ मजीरा हंडताल करताख बजावत ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २४ ।

हंडधारी—संज्ञा पुं [सं० हण्ड + हिं० धारी] हंडी । संन्यासी । उ०—स्वामी कि तुम्हें ब्रह्मा कि ब्रह्मधारी । कि तुम्हें बामण पुस्तक कि हंडधारी ।—घोरख०, पृ० २२७ ।

हंडन—वि० [सं० हण्डन, प्रा० हंडण] दंड देनेवाला । वह जो दंड दे । उ०—पुनि गुज्जर बलिबंड लोह धनडडनि हंडन ।—पृ० रा०, १३३० ।

हंडना—क्रि० सं० [सं० हण्डन, प्रा० हंडण] दंड देना । जुरमाना लगाना । दंडित करना । उ०—डहयी (हंडयू) साह साहाबदी प्रह सहुस हैबर सुवर ।—पृ० रा०, २०१६ ।

हंडपेल—संज्ञा पुं [हिं० हंड + पेलना] १. खूब हंड करनेवाला । कसरती पहलवान । २. बलवान या तगड़ा भादमी ।

हंडल—संज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार की मछली ।

विशेष—यह बंगाल और बरमा में पाई जाती है । यह मछली पानी के ऊपर अपनी छाल निकालकर तैरती है । इसकी लंबाई १८ इंच होती है ।

हंडवत—संज्ञा पुं [सं० हण्डवत्] दे० 'हंडवत्' । उ०—(क) सोऊं तब करे हंडवत पूजूं और न देवा ।—कबीर श०, भाग १, पृ० ७२ । (ख) डेड़वी डीढ़ दीन्ह जहुं ताई । भाप हंडवत कीन्ह सबाई ।—जायसी (शब्द०) ।

हंडा—संज्ञा पुं [सं० हण्ड] १. लकड़ी या बांस का सीधा खंभा टुकड़ा । लंबी सीधी लकड़ी या बांस जिसे हाथ में ले सकें । सोटा । मोटी छड़ी । लाठी ।

मुहा०—डडा खाना = डंडे की मार सहना । डडा चलाना = डंडे से प्रहार करना । डंडे खेलना = डंडों की लड़ाई का खेल खेलना । (भावों बदी चौध को पाठशालाओं के लड़के यह खेल खेलने निकलते हैं) । डडा चलाना = डंडे से प्रहार करना । डंडे देना = विवाह संबंध होने के पीछे भादों बदी चौध को बेटीवाले का बेटेवाले के यहाँ चांदी के पत्तार चढ़े हुए कलम, दवात आदि भेजने की रीति करना । डडा चलाते फिरना = मारा मारा फिरना ।

३. डंड । डंडवारा । वह कम ऊँची दीवार जो किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय । चारदीवारी ।

क्रि० प्र०—उठाना ।

मुहा०—डंका बीचना = चारदीवारी उठाना ।

डंका^①—संज्ञा पुं० [देशी डंका (= रथ्या)] मार्ग । लीक राह । उ०—बाग वृक्ष बेनी पर झंझा । सतगुरु सुरति बसावे डंका ।—घट०, पृ० २४७ ।

डंकाकरन^②—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य] डंका बन । उ०—परेड घाट सब बन खंड माहा । डंकाकरन बीभ बन जाही ।—बायसी (शब्द०) ।

डंकाकुंडा—संज्ञा पुं० [हि० डंका + कुंडा] बल वैभव । सत्ता । प्रभाव । उ०—उनके प्राज्ञ मूर्खते साल भी नहीं बीतेगा कि प्रंगरेजों का डंकाकुंडा उठ जाएगा ।—किसर०, पृ० २३ ।

डंकाडोली—संज्ञा स्त्री० [हि० डंका + डोली] लड़कों का एक खेल जिसमें वे किसी लड़के को दो घाड़े डंकों पर बैठाकर इधर उधर फिराते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—खेलना ।

डंकाघारी^③—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + हि० घारी] डंकी । संन्यासी । उ०—मोनी उदासी डंकाघारी ।—प्राण०, पृ० ६२ ।

डंकानाच—संज्ञा पुं० [हि० डंका + नाच] वह नृत्य जिसमें डंका लड़ाते हुए लोग नाचते हैं । उ०—डंका नाच कुछ प्रांतों में गुजरात देश के 'गरबा नृत्य' के सदृश होता है । मुख्य अंतर यही है कि डंका नाच पुरुषों का है और गरबा स्त्रियों का ।—शुक्ल अभि० प्र० (साहि०), पृ० १३६ ।

डंकावेड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] वेड़ी और उसके साथ लगा लोहे का डंका जिससे कैदी न भाग सके ।

डंकारन^④—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य, प्रा० डंकारण्य] डंकारण्य ।

डंका—संज्ञा पुं० [हि० डंका] नगाड़ा । दुंदुभि । डंका ।

डंकियां—संज्ञा स्त्री० [हि० डंकी] १. दे० 'डंकी-१६' । २. दे० 'डंकी' ।

डंकी—संज्ञा स्त्री० [हि० डंका] १. छोटी लंबी पतली लकड़ी । २. हाथ में लेकर व्यवहार की जानेवाली वस्तु का वह लंबा पतला भाग जो मुठ्ठी में लिया या पकड़ा जाता है । बस्ता । हस्ता । मुठिया । जैसे, छाते की डंकी । ३. तराजू का वह सीपी लकड़ी जिसमें रस्सियां लटका लटकाकर पलके बंधे जाते हैं । डांडी । उ०—काहे की डंकी काहे का पलरा काहे की मारी टेनिया ।—कबीर रा०, भा० २, पृ० १५ ।

मुहा०—डंकी मारना = सोचा देने में चालाकी से कम ठोसना ।

४. वह लंबा डंका जिसमें पत्ता, फूल या फल लगा होता है । नाच । जैसे, कमल की डंकी । पान की डंकी । उ०—कमलों के पत्ते जीण होकर झड़ गए हैं, फूलों की कणिका और कैसर भी गिर गई है, पाले के कारण उसमें डंकी मात्र शेष रह गई है ।—हि० प्र० चि०, पृ० १४ । ५. फूल के नीचे का लंबा पतला भाग । जैसे, हुरसिंगार की डंकी । ६. हुरसिंगार का फूल । ७. धारसी नाम के गहने का वह छल्ला जो उंगली में पड़ा रहता है । ८. डंडे में बंधी हुई ओली के आकार की

एक सवारी जो ऊँचे पहारों पर चलती है । कप्पान । ९. लिगेंद्रिय । १०. डंड धारण करनेवाला संन्यासी ।

डंकी^२—वि० [सं० दण्ड] भगड़ा लगानेवाला । चुगलखोर ।

डंकीमार—वि० [हि०] टेनी मारनेवाला । सीदा कम तोलनेवाला ।

डंकीर—संज्ञा पुं० [प्रा० डंकीर] दे० 'डंकीर' । उ०—अग्नि ज्वाला किन तन उठत, किन तन बरसे मेह । चक्र पवन डंकीर के कैतन कंकर खेह ।—पु० रा०, ६।५५ ।

डंकील—संज्ञा पुं० [प्रा० डंकील (= घूमना, चक्कर लगाना)] वाय्या-चक्र । बवंडर । उ०—कर सेती माला जपे, हिंदू बहै डंकील । पग तो पाला मैं गिर्या, भाजण लागी सुल ।—कबीर प्र०, पृ० ४५ ।

डंकीत—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डण्ड + सं० वत्, हि० धीत] दे० 'दंडवत्' । उ०—पलटू उन्हें डंकीत करी, वोही साहब मेरा है जी ।—पलटू, पृ० ५० ।

डंकीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. आयोजन । आडंबर । डंकीरसला । घूम-घाम । २. विस्तार । उ०—उड़ि रेन डंकीर घमर, दिखी सेन बहुमान ।—पु० रा०, ६।१३० । ३. समूह । उ०—कुवा बावड़ियू के डंकीर, बाड़ी बागू के आडंबर ।—रघु० ८०, पृ० २३७ । ४. विलास । ५. एक प्रकार का चंदोवा । चंदरछत ।

यौ०—मेघडंकीर = बड़ा शामियाना । दलबादल । डंकीर डंकीर = वह लाली जो संघ्या के समय आकाश में दिखाई पड़ती है । उ०—बिनसत बार न लागई, छोछे जन की प्रीति । डंकीर डंकीर सौं के ज्यों बारू की भीति ।—स० सतक, पृ० ३१२ ।

डंकील - गंध पुं० [सं० डंकील] दे० 'डंकील' ।

डंकील—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथ में लेकर कसरत करने की लोहे या लकड़ी की गुल्ली जिसके दोनों सिरे लट्ठ की तरह गोल होते हैं । इसे हाथ में लेकर खानते हैं । यह आवश्यकतानुसार भारी और हलकी होती है । कुछ डंकीलों में स्प्रिंग भी लगी रहती है । २. वह कसरत जो इस प्रकार के लट्ठ से की जाती है ।

क्रि० प्र०—करना ।

डंकी^⑤—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डंकी] दे० 'डंकी' । उ०—डंकी मने मत मानियो सत कहो परमारण जानी ।—कबीर रा०, भा० ४, पृ० २४ ।

डंकी—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डंकी] एक प्रकार का बड़ा मच्छर जो बहुत काटता है और जिसका आकार बड़ी मक्खी से मिलता जुलता होता है । डंकी । धनमशक । जंगली मच्छर । उ०—देव विषय सुख लालसा डंकी मसकादि ललु भिल्ली कपादि सब सपे स्वामी ।—तुलसी (शब्द०) २. वह स्थान जहाँ डंकी चुभा हो या साँप आदि विषले कीड़ों का दौत चुभा हो ।

डंकीरना—क्रि० प्र० [हि० डंकार] दे० 'डंकारना' ।

डंकीरना—क्रि० प्र० [हि० डंकारना] डंकार लेना । डंकार घाना ।

डंकीराना—क्रि० प्र० [हि० डंकी + घाना (प्रत्य०)] डंकी मारना ।

डंकीराना—वि० [हि० डंकी + ईला (प्रत्य०)] डंकीवाला ।

डंकीरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डंकी + घौरी (प्रत्य०)] भिड़ । बरें । ततैया । हड़ा ।

हँगरा—संज्ञा पुं० [सं० वसाङ्गुल] करबूजा ।

हँगरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० हँगरा] लंबी ककड़ी । डींगरी ।

हँगरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० वीवर (= दुबला)] एक प्रकार की कुईल । बाइल । उ०—बाइल हँगरी चरन बनावत । नवन पुवार यकास पठावत ।—बोपाल (अब्द०) ।

हँगरी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मोटा बेंत ।

विशेष—यह बेंत पूर्वी हिमालय, सिक्किम, भूटान के लेकर बट-गाँव तक होता है । यह सबसे मजबूत होता है और इसमें के बहुत जल्दी खड़ियाँ और बड़े निकलते हैं । छोकरे बनाने के काम में भी यह माता है ।

हँगवारा—संज्ञा पुं० [हि० हंगर (= बेल, बोपाया)] एक बेल प्रायः की वह सहायता बिना किसान एक दूसरे को देते हैं । जिता ।

हँगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जिसकी ककड़ी मजबूत और चबकदार होती है ।

विशेष—इस पेड़ की ककड़ी के पचावट के सामान्य बहुत अच्छे बपके हैं । यह पेड़ आसाम और कश्मीर में बहुतायत में होता है ।

हँटैया^१—संज्ञा पुं० [हि० हटना] बटवैयाला ; बटि बटावैयाला । चुड़चुड़ैयाला । धमकावैयाला । उ०—संसति बोर पुकारत पारत कील सुनै बट्टे बोर हँटैया ।—दुखी (अब्द०) ।

हँठरी—संज्ञा स्त्री० [हि० हँठल] दे० 'हँठल' ।

हँडा—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड; प्रा० डंड] एक प्रकार का व्यायाम । दे० 'हँड-ड' ।

घो०—हँडवैठक । हँडपेच ।

हँडका—संज्ञा पुं० [हि० डंडा] छीड़ा का डंडा ।

हँडवारा^१—संज्ञा पुं० [हि० टाँड़ + वार (= कितारा)] [स्त्री० घत्वा० हँडवारी] वह कम ऊँची दीवार को रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय । दूर तक गई हुई जुबी दीवार ।

हिं० प्र०—उठाना ।

मुहा०—हँडवारा खीचना=हँडवारा उठाना ।

हँडवारा^२—संज्ञा पुं० [हि० बख्खन + वार (प्रत्य०)] बख्खन का बागु । बखनहरा । बखनैया ।

हिं० प्र०—बखना ।

हँडवारी—संज्ञा स्त्री० [हि० वीड़ + वार (= कितारा)] कम ऊँची दीवार को रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाती है ।

मुहा०—हँडवारी खीचना=हँडवारी या चारदीवारी उठाना ।

हँडवी^१—संज्ञा पुं० [देश०] बंड या राखकर देवैयाला । करह । उ०—हँडवी बौड़ बीन्हा जँह टाई । आप डंडवत कीन्हा बवाई ।—बायली (अब्द०) ।

हँडवारा^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की मछली जो बंगाल, मध्यभारत और बर्मा में पाई जाती है । यह तीन इंच लंबी ४-३५

होती है । २. लकड़ी या लोहे का लंबा डंडा जो दरवाजे का खुलना रोकने के लिये किवाड़ के पीछे लगाया जाता है ।

हँडवारी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटी मछली जो आसाम, बंगाल, उड़ीसा और बख्खन भारत की नदियों में पाई जाती है ।

हँडवारी^४—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड + हि० वरी (प्रत्य०)] टहनी ।

हँडहिया—संज्ञा पुं० [हि० डंडा] वह डंडा जिससे बैलों की पीठ पर बंधे हुए बोरे फँसाए रहते हैं ।

हँडिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डंडी (= रेखा)] १. वह साड़ी जिसके बीच में लंबाई के बस गोठे डीककर लकीरें बनी हों । छड़ीदार साड़ी । उ०—(क) बास बोली नील हँडिया बंग युवतिन नीर । पुर प्रभु छवि निरखि रीके मगन भी मन नीर ।—पुर (अब्द०) । (ख) नल सिला सजि सिंगार युवती तन हँडिया कुसुमे बोरी की ।—पुर (अब्द०) ।

विशेष—इसका अर्थ: छुंधारी लकड़ियाँ बहलती हैं । लकी लकी यह रंग बिरंगे कई पाक जोड़कर बवाई जाती है ।

२. केहूँ के पीछे से वह लंबी छोक जिसमें बाक लकी रहती है ।

हँडिया^२—संज्ञा पुं० [हि० डंडा (= घण्टा; घीमा)] १. महसूल वसूल करनेवाला । कर उठाहनेवाला । २. पीया या हल पर कर उठाहनेवाला ।

हँडिया^३—संज्ञा स्त्री० [कुमा० डंडी, नेपाली डंडी (= डोली)] उ०—(क) आलहि बसि कटाइल हँडिया उँवाइल हो आधी ।—पसदू०, पृ० १५ । (ख) छोटी छोटी हँडिया बंदव के हो, छोटे चार कहार ।—कबीर उ०, भा० २, पृ० ६२ । ३. दे० 'डंडी' ।

हँडियाना—कि० प्र० [हि० डंडी] किसी कपड़े के दो या अधिक पाटों को सोकर जोड़ना । दो कपड़ों की लंबाई के किनारों को एक में सीना ।

हँडियारा गोला—संज्ञा पुं० [हि० डंडा + गोला] गोदरे सिर का लंबा (गोप का) गोला । छठिया ।—(अब्द०) ।

हँडोर—संज्ञा स्त्री० [हि० डंडी] छीपी लकीर ।

हँडूर हँडूल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'हँडूर', 'हँडूल' ।

हँडोरना—कि० प्र० [प्रभु०] हँडना । हिलोरकर हँडना । उलट पलटकर खोजना । उ०—अबके अब हम घरस पावें देखि लाक करोर । दुरि सो हीरा सोई के हम रही समुद हँडोर ।—सूर (अब्द०) ।

हँडाना^१—कि० प्र० [देश०] बगवाना । बाप बिचाना । उ०—करहइ कूबइ मवि बकइ पन राखीपस बाण । ऊबरडी डोका पुणइ भयस डँनायउ भाण ।—डोला०, पृ० ३१६ ।

हँडा—संज्ञा पुं० [देश०] या हि० डंडा] डंडा । मोटा । मुक्ति । धैरे, कोई डंड बैठ जाय तो काम होते क्या देर ।

हँडरुआ—संज्ञा पुं० [सं० डण्ड] बाव का एक रोष जिसमें खरीर के जोड़ लकड़ जाते हैं और उनमें बंधे होता है । गठिया । उ०—अहंकार प्रति दुखर डँवरुआ । दंस कपट मद मान नहुरुआ ।—दुखी (अब्द०) ।

हैंबरुणा साक्ष—संज्ञा पु० [सं० डमरु (= बाण) + हि० साक्षना]
भानु या लकड़ी के दो टुकड़ों को मिलाने के लिये डमरु के
समान एक प्रकार का जोड़ ।

विशेष—इसमें एक टुकड़े को एक ओर से चौड़ा और दूसरी ओर
से पतला काटते हैं और दूसरे टुकड़े में उसी काट की नाप से
गड़गा करते हैं और उस कटे हुए अंश को उसी गड़गे में बैठा
देते हैं । यह जोड़ बहुत दृढ़ होता है और खींचने से नहीं
उखड़ता ।

हैंबरु(पु)—संज्ञा पु० [सं० डमरु] दे० 'डमरु' । उ०—हैंबरु घंट धी
हैंबरु हाथा । गोरा पारवती धनि साथा । —जायसी गं०,
पृ० १० ।

हैंबाडोल—[हि० डीव डीव + डोलना] घस्बिर । बंचल । बिचलित ।
धबराया हुआ । जैसे, चित्त हैंबाडोल होना । उ०—पावक
पवन पानी भानु हिमवान जम काल लोकपाल मेरे डर
हैंबाडोल हैं । —तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—होना ।

हैंसना—क्रि० म० [सं० हंसन, प्रा० हंसण] दे० 'हंसना' ।

ड—संज्ञा पु० [सं०] १. ध्वनि । शब्द । २. नगाड़ा । ३. बड़वाग्नि ।
४. भय । ५. शिवा (को०) ।

डडल—संज्ञा पु० [हि० डोल] दे० 'डोल' ।

डडल—वि० [हि० डोल] डोल डोलवाला । बधस्क । बड़ा । जैसे,—
इतने बड़े डडल हुए, धक्कल नहीं आई ।

डक—संज्ञा पु० [अ० डोक] १. एक प्रकार का पतला सफेद टाट
(कनवास) जिससे छोटे दल के जहाजों के पाल बनाए हैं । २.
एक प्रकार का मोटा कपड़ा ।

• **डक**—संज्ञा पु० [अ०] १. किसी डबरनाह या नदी के किनारे एक
घिरा हुआ स्थान, जहाँ बहाव छाकर ठहरते हैं और जिसका
काटक पानी में बना होता है । २. घाटाल में वह स्थान जहाँ
अभियुक्त लड़े किए जाते हैं । कटघरा ।

डकडक—संज्ञा पु० [हि० डाका + डक (प्रत्य०)] दे० 'डकैत' ।

डकई—संज्ञा पु० [हि० डाका (= एक नगर)] केले की एक जाति जो
डाका में होती है ।

डकना(पु)—क्रि० म० [हि०] 'डाकना' । लापना । उ०—कोउक
तरुनि गुनमय सरीर तन सहित चली डकि । मात पिता
पति धंधु रहे भुकि न रही डकि । —नंद ग्रं०, पृ० २६ ।

डकरना—क्रि० म० [हि० डकार] १. दे० 'डकारना' । २. दे०
'डकराना' ।

डकरा—संज्ञा पु० [देश०] काली मिट्टी जो ताल की बँदिया में
पानी सुख जाने पर निकलती है और जिसमें दरार फटे
होते हैं ।

डकराना—क्रि० म० [अ०] बैल या भैंस का बोलना ।

डकवाहा—संज्ञा पु० [हि० डाक] डाक का अपराधी । डाकिया ।

डकार—संज्ञा स्त्री [अ०] १. पेट की वायु का एकबारगी ऊपर

की ओर छूटकर कंठ से शब्द के साथ निकल पड़ने का
शारीरिक व्यापार । मुँह से निकला हुआ वायु का उद्गार ।

क्रि० प्र०—घाना । —लेना ।

विशेष—योग आदि के अनुसार डकार नाग वायु की श्रेणा से
घाती है ।

मुहा०—डकार न लेना = (१) किसी का धन या कोई वस्तु
उड़ाकर पता न देना । छुपचाप हजम कर जाना । (२) कोई
काम करके उसका पता न देना ।

२. बाघ सिंह आदि की गरज । दहाड़ । गुराहट ।

क्रि० प्र०—लेना ।

डकारना—क्रि० म० [हि० डकार + ना (प्रत्य०)] १. पेट की
वायु को मुँह से निकालना । डकार लेना । २. किसी का
मांस उड़ाकर ले लेना । किसी की वस्तु छुपचाप मार लेना ।
हजम करना । पचा जाना । जैसे,—बहु सब मांस डकार
जायगा ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. बाघ सिंह आदि का गरजना । दहाड़ना ।

डकूरा—संज्ञा पु० [देश०] चक्र की तरह घूमती हुई वायु । बवंडर ।
चक्रवात । बगूला ।

डकैत—संज्ञा पु० [हि० डाका + ऐत (प्रत्य०)] डाका मारनेवाला ।
जबरदस्ती माल छीननेवाला । लुटेरा ।

डकैती—संज्ञा स्त्री [हि० डकैत] डकैत का काम । डाका मारने का
काम । जबरदस्ती माल छीनने का काम । लूटमार । छापा ।

डकौत—संज्ञा पु० [देश०] भड्डर । भड्डरी । सामुग्रिक । ज्योतिष
आदि का ढोंग रचनेवाला ।

विशेष—इनकी एक पुष्पक जाति है जो अपने को ब्राह्मण कहती
है, पर नीच समझी जाती है ।

डक(पु)—संज्ञा स्त्री [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिव' । उ०—सीत
तुष्टे तुरी डक नई करी ।—पृ० रा०, २४ । २११ ।

डककरना(पु)—क्रि० म० [अ०] डककरना । ध्वनि करना । शब्द
करना । उ०—धुमुधुला बहू डाकिनी डककरतो ।—कीर्ति०,
पृ० १०६ ।

डककारी—संज्ञा स्त्री [सं०] चांडाल वीणा (को०) ।

डखना—संज्ञा पु० [अ०] पखना । पंख ।

डग—संज्ञा पु० [हि० डाकना या सं० दक्ष] १. चलने में एक स्थान
से पैर उठाकर दूसरे स्थान पर रखने की क्रिया की समाप्ति ।
कदम । उ०—मुरि मुरि चितवति नंदगली । डग न परत
बजनाथ साथ बिनु, विरह व्यथा मचली ।—सूर (शब्द०) ।
(ख) ज्यों कोउ दूरि चलन को करे । क्रम क्रम करि डग डग
पग धरे ।—सूर०, ३१३ ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

मुहा०—डग देना = चलने में आगे की ओर पैर रखना । उ०—
पुर से निकसी रघुवीर बहु धरि धीर दियो मग ज्यों डग है ।
—तुलसी (शब्द०) । डग भरना = चलने में आगे पैर रखना ।

कदम बढ़ाना । उ०—क्यों नहीं बेडिगे मरें डग हूम । पाँव क्यों जाय डगमगा मेरा ।—भुभटे०, पृ० १० । डग मारना = कदम रखना । संवे पैर बढ़ाना । उ०—मारि डगे जब फिर चली सुंदर बेनि बुरे सब भंग । मनहुँ चंद के बदन सुषा की उड़ि उड़ि लगत भुभंग ।—सूर (शब्द०) ।

२. चलने में जहाँ से पैर उठाया जाय घोर जहाँ रखा जाय उन दोनों स्थानों के बीच की दूरी । उतनी दूरी जितनी पर एक जगह से दूसरी जगह कदम पड़े । पं० ।

डगकु०—क्रि० वि० [हि० डग + एक] एक दो पग । एकाध कदम । उ०—डगकु डगति सी चलि, ठठुकि चितई, चली निहारि । लिए जाति चितु चोरटी, वहै गोरटी नारि ।—बिहारी २०, दो० १३६ ।

डगचाली—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] डाकिनी । उ०—भूतप्रेत डगचाली मानूँ करत बत ।—नट०, पृ० १७० ।

डगडगाना—क्रि० प्र० [प्रतु०] हिलना । इधर से उधर हिलना । काँपना ।

मुहा०—डगडगाकर पानी पीना तेजी के साथ = एक दम में बहुत सा पानी पीना ।

डगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर] मार्ग । रास्ता । राह । उ०—बिगड़ी बनती, बन जाय सहो । डगड़ी गड़ती, गड़ जाय मही ।—प्रबन्ध, पृ० ६ ।

डगडोलना—क्रि० प्र० [हि० डग + डोलना] डगमगाना । हिलना । काँपना । उ०—भीषम द्रोण करण सुने कोउ भुक्क न डोलै । ए पांडव क्यों काढ़िए धरना डगडोलै ।—सूर (शब्द०) ।

डगडोर—वि० [हि० डग + डोलना] डोवाडोल । हिलनेवाला । चलायमान । उ०—श्याम को एक तुही जान्यो दुराचरनी घोर । जैसे घट पूरन न डोलै प्रवभरो डगडोर ।—सूर (शब्द०) ।

डगाय—संज्ञा पुं० [सं०] विंगल में चार मानाओं का एक गण ।

डगना०—क्रि० प्र० [सं० दक्ष (= चलना), हि० डिगना या डगना (प्रत्य०)] १. हिलना । टसकना । खसकना । जगह छोड़ना । उ०—डगइ न संभु सरासन कैसे । कामी बचन सती मन जैसे ।—तुलसी (शब्द०) । २. चूकना । भुल करना । उ०—तुरंग भचावहि कुँवर बर अकनि मृदंग निसान । नागर नट चितवहि अकित, डगहि न ताल बंधान ।—तुलसी (शब्द०) । ३. डगमगाना । सड़खड़ाना । उ०—डगकु डगति सी चलि ठठुकि चितई चली निहारि । लिए जाति चितु चोरटी वहै गोरटी नारि ।—बिहारी २०, दो० १३६ ।

मुहा०—डग मारना = हिलना । झटका खाना । जैसे,—ठठाने पर झालमारी डग मारती है ।

डगवेड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डग + वेड़ी] पैर की बेड़ी । उ०—बैथ्यो ठाल में आप पाय, डगवेड़ी पाग्यो ।—ब्रज० प्र०, पृ० ११ ।

डगमग—वि० [हि० डग + मग] हिलता डुलता । डगमगाता या

सड़खड़ाता हुआ । उ०—बिहुरत विविध बालक संग । डगनि डगमग पगनि डोलत, धूरि, धूसर भंग ।—सूर०, १०।१८४ । २. विचलित । निश्चयहीन ।

डगमगना०—क्रि० प्र० [हि० डगमग] ३० 'डगमगाना' ।

डगमगाना—क्रि० प्र० [हि० डग + मग] १. इधर उधर हिलना डोलना । कभी इस बल कभी उस बल झुकना । स्थिर न रहना । धरधराना । लड़खड़ाना । जैसे, पैर डगमगाना, नाव डगमगाना । २. विचलित होना । किसी बात पर टक न रहना ।

डगमगाना—क्रि० प्र० १. हिलाना डुलाना । कंपित करना । २. विचलित करना । टक न रहने देना ।

डगमगी—संज्ञा स्त्री० [हि० डगमग] डोवाडोल कृति । विचलन । अस्थिरता । उ०—छूटि डगमगी नाहि संत को बचन न मानै ।—चलर०, भा० १, पृ० ३ ।

डगर—संज्ञा पुं० [हि० डग] मार्ग । रास्ता । पथ । पैदा । उ०—नगरक धेनु डगर के मंजर । कुमुदिनि वसु मकरन्या ।—विद्यापति, पृ० ३३२ ।

मुहा०—डगर बताना = (१) रास्ता बताना । (२) उपाय बताना । उपदेश देना । डगर पाना = निकाम पाना । स्थान पाना । उ०—प्रथमहि गए डगर तिन पायो । पाछे के लोगनि पछितायो ।—सूर०, १०।११६ ।

डगरना०—क्रि० प्र० [हि० डगर] १. चलना । रास्ता लेना । बीरे बीरे चलना । उ०—तार्त हतै डगरी द्विजदेव न जानती कान्ह भजी मग सूटे ।—द्विजदेव (शब्द०) । २. लुढ़कना । गिरते पड़ते आगे बढ़ना । जे फूलन तुलसी सुखिन प्रतुल तीं प्रति ही खुलतीं ते डगरीं ।—पद्माकर प्र०, पृ० २८६ ।

डगरबगर—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर + प्रतु० बगर] राह कुराह । उ०—जगर मगर महि, डगर बगर नहि, रवि ससि, निसु दिन, भाव नहीं ।—केशव प्र०, पृ० १० ।

डगरा—संज्ञा पुं० [हि० डगर] रास्ता । मार्ग । उ०—गुरु कह्यो राम नाम नीको मोहि लागत राम राज डगरी सो ।—तुलसी (शब्द०) ।

डगरा—संज्ञा पुं० [देश०] बाँस की पतली फट्टियों का बना हुआ छिछला डला । डलर । छाबड़ा ।

डगराना—क्रि० प्र० [हि० डगरना] १. रास्ते पर ले जाना । ले चलना । चलाना । २. हाँकना । ३. लुढ़काना ।

डगरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर] ३० 'डगर' ।

डगरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर] ३० 'डगर' । उ०—(क) जमुन भरन जल हुष गई तहँ रोकत डगरी ।—सूर०, १०।१४२० । (ख) तू चला चले पकड़ी डगरी ।—प्राराधना, पृ० १८ ।

डगा—संज्ञा पुं० [हि० डागा] डागा । डुगी बजाने की लकड़ी । नगाड़ा बजाने की लकड़ी । चोब । उ०—हुँ सब कबितनहु कर पछलग । किछु कहि चला तबल देइ डगा ।—जायसी (शब्द०) ।

डगाना—क्रि० प्र० [हि० डग] ३० 'डिगाना' ।

उगाव—संज्ञा पुं० [उगा] उहनी। छोटी डाव। पतली बाधा।
उ०—जहाँ फाड़ियाँ पवित्र बनी होती हैं वहाँ उगावों की
उगावों को काटकर वे बचाते हैं और फिर पानी बरस जाने
के बाद बीच बोते हैं।—सुख० अवि० पं० (विवि०),
पृ० ४०।

उगावना—कि० प्र० [हि० उगावना] दे० 'उगावना'। उ०—
कवि बोवा मनी बनी मेवहु ठे चढ़ि तावे न चित उगावनी
है।—बाणसेनु सं०, प्रा० १, पृ० ११८।

उगाव—संज्ञा पुं० [सं० तगु] १. कुत्ते या भेड़िये की तरह का एक
मांसाहारी पशु।

विशेष—यह पशु रात को शिकार की खोज में निकलता है
और कभी कभी बस्ती के कुत्तों, बकरी के बच्चों आदि
को उठा ले जाता है। यह कई प्रकार का होता है; पर
मुख्य भेद दो हैं—बिल्लीवाला और बारीवाला। यह एशिया
और अफ्रीका के बहुत से भागों में पाया जाता है। यह
हेलने से बड़ा उगावना बाव पड़ता है। इसका पिछला
बग छोटा और जगला बारी होता है। गरबल लंबी और
मोटी होती है, कंधे पर लगे लगे बाल होते हैं। इसके दाँत
बहुत तेज और तेज होते हैं। यह जानवर डरपोक भी बड़ा
होता है। यह मुरखे काकर भी रहता है। इसका कान में से
बड़े मुरखे से जाना प्रसिद्ध है।

२. लंबी टाँगों का दुबला चोड़ा।

उगा—संज्ञा पुं० [हि० उग] लंबी टाँगों का दुबला चोड़ा।

उग—संज्ञा पुं० [सं०] हावड संज्ञा। हालीड का निवासी।

उट—संज्ञा पुं० [देश०] निधान।

उटना—कि० प्र० [सं० स्थाप, हि० ठाट या ठाड़] १. जमकर
झड़ना। झड़ना। ठहरा रहना। जैसे,—वे सवेरे से मेले
में उटे हुए हैं।

संज्ञा० कि०—जाना।—जा उटना।

मुहा०—उटा रहना = सामना करने या कठिनाई झेलने के लिये
जड़ा रहना। न हटना। मुँह न मोड़ना। उटकर जाना =
खूब पेट भर जाना।

२. मिटना। लग जाना। खू जाना। ३. प्रस्था लगना। फटना।

उटना—कि० प्र० [सं० उट्टि, हि० उठ] ताकना। देखना।
उ०—(क) उर मानिक की उरबली उटत जठत दग दाग।
भलकव बाहुर कड़ि मनी विप हिय को अनुराग। (ख)
लटक लटक लटकत चलत उटत मुकुट की छाहें। लटक
भरयो नठ मिलि पयो, अठक भटक बन माह।—बिहारी
(शब्द०)।

उटाई—संज्ञा स्त्री० [हि० उटाना] १. उटाने का काम। २. उटाने
की मजदूरी।

उटाना—कि० प्र० [हि० उटना] १. एक वस्तु को दूसरी वस्तु
से उगाना। उटाना। मिटाना। २. एक वस्तु को दूसरी
वस्तु से लगाकर प्रागे की ओर ठेकना। और से मिटाना।
३. जमाना। लड़ा करना।

उट्टा—संज्ञा पुं० [हि० उट्टना] १. हुक के का नैचा। टेम्पा। २.
बाट। काग। गट्टा। ३. बड़ी मेख। ४. छींट छापने का
ठप्पा। सींचा।

उडकना—कि० प्र० [अनु०] जोर से बजना या शब्द उत्पन्न
होना। उ०—उडकत डीकें अहं केर सहं।—पं० रासो,
पृ० ८२।

उडकना—कि० प्र० [अनु०] जोर से बजाना।

उडहा—संज्ञा पुं० [सं० डुहडुम] एक सपें। डेहहा।

उडही—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

उडियाना—कि० प्र० [हि० डीडा] बनाना। डीके के समान करना।

उडोचा—संज्ञा स्त्री० [देश०, या हि० डीडो] पंक्ति। उ०—मन में
पावे तो दो डीडो लिख भेजना।—श्यामा०, पृ० ६२।

उड्ड—वि० [सं० दग्ध, प्रा० डडु, डडु] दग्ध। जला हुआ। तप्त।
संतप्त (को०)।

उड्डार—संज्ञा पुं० [सं० उड्डाल, प्रा० डडाल] दे० 'डडाल'।
उ०—डिड न रहे डडार बाव बनवर बन डडिलय।—सुदन
(शब्द०)।

उड्डार—वि० [सं० उड्डा, हि० डाड़, डाड़ी] बड़ी डाड़ी रखनेवाला।

विशेष—मध्य काल में और आज भी बड़ी डाड़ी रखना वीरों का
वेश सम्झा जाता है।

उड्डाला—संज्ञा पुं० [सं० उड्डाल, प्रा० डडाल] वाराह। शूकर।
उ०—हुडन डडाल डडाल त्रिय भुनकारन बहु भुनकरहि।—
पं० रा०, ६ : १०२। पृ० (उ०), पृ० १२२।

उड्डार—वि० [सं० डड, प्रा० डिड; हि० डिड] डड हृदय का।
साहसी।

उडन—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, प्रा० डडु, या सं० दहन] जलन।
ताप। उ०—भक्ति लता फैलन लगी दिन दिन होत पाप को
डहन।—देवस्वामी (शब्द०)।

उडना—कि० प्र० [सं० दग्ध, प्रा० डडड + ना (प्रत्य०)]
जलना। सुलगना। बलना। उ०—उडे मनु रूप लसे इह डप।
गडे जिम कैयक है यदि रूप।—सुदन (शब्द०)। २.
जलना। ताप से पीड़ा होना। जलन होना। उ०—अंधवत
पय तातो जब लाग्यो रोवत जीमि डडे।—सुर०, १० : १७४।

उडार—संज्ञा पुं० [सं० उडाल] दे० 'डडार'।

उडार—वि० [हि० डाड़] १. डाड़वाला। जिसे डाड़ हो।
२. डाड़ीवाला।

उडारा—वि० [हि० डाड़] १. डाड़वाला। वह जिसके डाड़े हो।
दाँतवाला। २. वह जिसे डाड़ी हो।

उडाल—संज्ञा पुं० [सं० उड्डाल, प्रा० डडाल] दे० 'डडार'। उ०—
सोमस मुठन पाखेट डर डम डडाल उस सह असहि।—पं०
रा०, १ : १०१। पृ० रा० (उ०), पृ० १२३।

उडियल—वि० [हि० डाड़ी] डाड़ीवाला। जिसके बड़ी डाड़ी हो।

उडुआ—संज्ञा पुं० [सं० डड] बरें, मेहें, बने का खेल जो मोड़ में
मजदूरी के लिये लगाया जाता है।

उपदेशना—किं० सं० [सं० वाच, प्रा० उद् + हि० ना (प्रत्य०)] ज्ञाना।
उपयोरा—वि० [हि० बाड़ी] बाड़ीबाबा। सं०—सित बाबिल
उपयोरे सीह वन बाबिल सबैह रोसव बने।—सुदव (अन्व०)।

उपट^१—संज्ञा स्त्री [सं० रप] रीड। फिटकी। चुड़की।

उपट^२—संज्ञा स्त्री [हि० रपट] रीड। बोरे की तेज बाल।
सरपट बाध।

उपटना^१—किं० सं० [हि० उपट + ना (प्रत्य०)] रीडना। कोब में
जोर से बोझना। कड़े स्वर से बोझना।

उपटना^२—किं० सं० [हि० रपटना] रीड दोड़ना। बेप से जाना।

उपोरसंज्ञ—संज्ञा पुं० [अनु० उपोर (= बड़ा) + सं० संज्ञ, प्रा०
संज्ञ] १. जो कहे बहुत, पर कर कुछ न सके। दीप मारने-
वाला।

विशेष—इस शब्द के संबंध में एक कहानी प्रचलित है। एक
ब्राह्मण ने दरिद्रता से दुखी हो समुद्र की धारावना की।
समुद्र ने प्रसन्न होकर उसे एक बहुत छोटा सा संज्ञ दिया।
धीरे कहा कि यह ३००) रोज तुम्हें दिया करेगा। जब उस
ब्राह्मण ने उस संज्ञ से बहुत सा धन इकट्ठा कर लिया तब
एक दिन अपने गुरु जी को बुलाया और बड़ी धूम धाम से
उनका उत्कार किया। गुरु जी ने उस संज्ञ का हाथ जान
लिया और वे धीरे से उसे उड़ा दे गए। ब्राह्मण फिर दरिद्र
हो गया और समुद्र के पास गया। समुद्र ने सब हाथ जुनकर
एक बहुत बड़ा सा संज्ञ दिया और कहा कि 'इससे भी गुरु जी
के सामने रूपया माँगना, यह खूब बड़ बड़कर माँगे करेगा,
पर देना कुछ नहीं। जब गुरु जी इसे माँगे तो दे देना और
पहलेवाला छोटा संज्ञ माँग लेना'। ब्राह्मण ने ऐसा ही किया।
जब ब्राह्मण ने गुरु जी के सामने उस संज्ञ से ३००) माँगा
तब उसने कहा—'३००) क्या माँगते हो, वध बीस पचास
हजार माँगे'। गुरु जी को यह सुनकर खालख हुआ और उन्होंने
वह संज्ञ लेकर छोटा संज्ञ ब्राह्मण को लौटा दिया। गुरु जी
एक दिन उस बड़े संज्ञ से माँगने बैठे। पर वह उसी प्रकार
धीरे माँगने के लिये कहता जाता, पर देना कुछ नहीं था।
जब गुरु जी बहुत व्यग्र हुए, तब उस बड़े संज्ञ ने कहा—'यता
सा शक्तिनी, विम। या ते कामान् अपूरयेत्। अतुं उपोरसं-
ज्ञायो ववामि न ववामि ते'।

२. बड़े बीजबीज का पर मुखं। देखने में समाना पर बच्चा की
सी समझवाबा।

उप्पू—वि० [देश०] बहुत बड़ा। बहुत मोटा।

उफ—संज्ञा पुं० [अ० उफ] १. चमका मका हुआ एक प्रकार का
बड़ा बाजा जो लकड़ी से बनाया जाता है। उफला। उ०—
(क) दिन उफ तास सुबह बनावत बात भरत परस्पर खिन
खिन होरी।—स्वामी हरिदास (अन्व०)। (ख) कई पदमाकर
गालन के उफ बाबिल उठे गलगावत गाढ़े।—पयाकर
(अन्व०)। २. बावलीबाबों का बाजा। चब।

विशेष—यह लकड़ी के गोल बड़े मेंदरे पर चमका मका बनाया
जाता है। होली में इसे बजाते हुए निकलते हैं।

उफली—संज्ञा स्त्री [अ० उफ] दे० 'उफली'। उ०—महि महि सुदेन
उफली उफ दु'बुधि डोल सु सीट बजाया है।—पयाकर सं०,
पृ० २६७।

उफर—संज्ञा पुं० [अ० उफर] जहाज के एक तरफ का पाल।

उफला—संज्ञा पुं० [अ० उफ] उफ नाम का बाजा।

उफली—संज्ञा स्त्री [अ० उफ] छोटा उफ। लंबरी।

मुहा०—अपनी अपनी उफली अपना अपना राय = जितने लोग
उतनी राय।

उफाणु—संज्ञा पुं० [सं० दम्भन, दम्भना; फा० उंभणा, कुमा०
उंफाण, पु० हि० उंभान] पाखंड। धाड़वर। रंज। उ०—
काहे रे नर करहु उफाण, घटिकाखि पर पोर बसाण।—
बाद०, पृ० ४८४।

उफारी—संज्ञा स्त्री [अनु०] चिंघाड़। जोर से रोने या चिल्ला
उठने का शब्द। उ०—ततखन रतनसेन घति बबरा। खीड़ि
उफार पाय ले परा।—जायसी (अन्व०)।

उफारना^१—किं० अ० [अनु०] चिल्लाना। वहाड़ मारना। जोर
से रोना या चिल्लाना। उ०—जाय बिहंपम समुद उफारा।
जरे मच्छ, पानी भा चारा।—जायसी (अन्व०)।

उफालची—संज्ञा पुं० [हि० उफला] दे० 'उफाली'।

उफाली—संज्ञा पुं० [हि० उफला] उफला बजानेवाला। एक
मुसलमान जाति।

विशेष—यह जाति उफला बजाती तथा उफ, ताशे डोल बाबिल
चमके के बाजों की मरम्मत करती है। अवध में उफाली
उफला बजाकर पावो मियाँ के पीत बाते और भील माँगते
फिरते हैं।

उफोरना^१—किं० अ० [अनु०] हाँक देना। चिल्लाना। लज्जकारना।
परजना। उ०—बचन विनीत कहि सीता को मबोध करि
मुलसी बिकूठ बढ़ि कहत उफोरि के।—तुलसी (अन्व०)।

उफोली—संज्ञा पुं० [हि० उपोर] बकवास। निरर्थक बात। उ०—
मोटे मोर कहावते, करते बहुत उफोल।—सुंदर सं०, भा०
१, पृ० ११७।

उफफु—संज्ञा पुं० [अ० उफ, हि० उफ] दे० 'उफ'। उ०—बीठी
जात बहार सँवत अपने पर भाया। लीबै उफफ बजाय सुनय
मानुष तनया बा।—पलदू०, भा० १, पृ० २०।

उब^१—संज्ञा पुं० [सं० उब] तरब। धैरे, धाँधों का उब उब होना।
विशेष—इस शब्द का स्वतंत्र प्रयोग नहीं मिलता। उबक, उबकना,
उबकीही धाबि प्रचलित शब्दों में इसका रूप मिलता है।

उब^२—संज्ञा पुं० [हि० उबडा] १. जेब। पैला।

मुहा०—उब पकड़कर कुछ कराना = गरदन पकड़कर कुछ काम
कराना। पचा बचाकर काम कराना। धैरे, रूपया देना कैसे
नहीं, उब पकड़कर खूँया। उब में जाना = वध में होना।
काजू में जाना।

२. कुप्पा बनाने का चमड़ा।

उबकना^१—क्रि० सं० [हि० उब] किसी वायु की चढ़ को कटोरी के आकार का गठन करना ।

उबकना^२—क्रि० प्र० [अनु०] १. पीड़ा करना । टपकना । बर्द देना । टीस मारना । २. सँगड़ाकर चलना ।

उबकना^३—क्रि० प्र० [सं० द्रव या द्रवक] तरलित होना । अशुपूर्ण होना । (नेत्रों में) आँसु भर माना ।

उबकौही^१—वि० [अनु० या हि० उबकना] [वि० स्त्री० उबकौही] आँसु भरा हुआ । उबड़बाड़ा हुआ । अशुपूर्ण । गीला । उ०—बिलखी उबकौही चलन, तिय लखि गमन बराय । पिय गहवर आयो गरी राखी गरी लगाय ।—बिहारी (शब्द०) ।

उबड़बाना—क्रि० प्र० [अनु०, या हि० उब उब] आँसु से आँखें भर माना । आँसु से (आँखों का) गीला होना । अशुपूर्ण होना । जैसे, आँखें उबड़बाना । उ०—(क) जब जब सुरति करत तब तब उबड़बाइ दोउ लोचन समगि भरत ।—सूर (शब्द०) । (ख) उ०—उबड़बाय आँखन में पानी । बूढ़े तन की यही निसानी ।—सहजो, पृ० ३० ।

संयो० क्रि०—माना ।—जाना ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'आँख' के साथ तो होता ही है, 'आँसु' के साथ भी होता है ।

उबरा^१—संज्ञा पुं० [सं० उम्बर] घाँवर । उ०—डेरायी साँझ उबर, यह हम कीध पयाण । करवा सूरि सहायकज असुरी सुँ पाराण ।—रघु० कं०, पृ० १७३ ।

उबरा—संज्ञा पुं० [सं० उभ्र (= समुद्र या भील)] [स्त्री० उल्पा० उबरी] १. छिछला लंबा गहवा जिसमें पानी जमा रहे । कुंड । होज । २. वह नीची भूमि का टुकड़ा जिसमें पानी लगता हो । ३. खेत का कोना जो जोतने में छूट जाता है । ४. कटोरा । पात्र ।

उबरी—संज्ञा स्त्री० [हि० उबरा] छोटा गहवा या ताल ।

उबल^१—वि० [प्र०] दोहरा । दूना । दोगुना । उ०—उबल जीन धीर गर्मी में भी फलालीन ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० २५६ ।

उबल^२—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य ?] पैसा । अंग्रेजी राज्य का पैसा ।

उबलरोटी—संज्ञा स्त्री० [प्र० उबल + हि० रोटी] पावरोटी ।

उबलबिक—वि० [प्र०] दोहरी बत्ती ।

उबला—संज्ञा पुं० [देश०, तुल० हि० उबरा] मिट्टी का पुरवा । कुल्हड़ । चुकड़ ।

उबा^१—संज्ञा पुं० [हि० उबा] दे० 'उबा', 'डिबा' ।

उबारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० उबरा] गड़ही । उ०—को है कूप, गंगाजल को है, को है सलिल उबारी ।—गुलाल०, पृ० ५२ ।

उबिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० उबा] छोटा डिबा । डिबिया ।

उबिरना^१—क्रि० सं० [देश०] खेत में से भेड़ों को निकाल लाना । (गड़ेरियों की बोली) ।

उबी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० उबा] दे० 'उबी', 'डिबी' । उ०—

कंचन की फल उब उबीन में खोल धरी मनी नील नगी है ।— सुंदरी सर्वस्व (शब्द०) ।

उबुआ^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'उबुलिया' । उ०—मिट्टी का कुल्हड़ या हनुआ बुरा नहीं मानूँ होता ।—प्राचिनिक०, पृ० १६५ ।

उबुलिया^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] कुल्हिया । छोटा पुरवा ।

उबोना—क्रि० सं० [अनु० उब उब, या सं० द्रवण] १. डुबाना । गोता देना । धोरना । मग्न करना । २. बिगाड़ना । नष्ट करना । चौपट करना ।

मुद्रा—नाम उबोना=नाम में धब्बा लगाना । ख्याति नष्ट करना । वंश उबोना=वंश की मर्यादा नष्ट करना । कुल में कलंक लगाना । लुटिया उबोना—महत्व नष्ट करना । प्रतिष्ठा खोना ।

उबल^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'उबल' ।

उब्बा—संज्ञा पुं० [तैलंग । वा सं० डिम्ब (=गोल)] १. उबकनदार छोटा गहरा बरतन जिसमें ठोस या भुरभुरी चीजें रखी जाती हैं । संपुट । २. रेलगाड़ी की एक गाड़ी जो अलग हो सकती हो ।

उब्बू—संज्ञा पुं० [हि० उब्बा तुल० देशी डोघ, गुज० डोयो] हाँडी लगा हुआ एक प्रकार का कटोरा जिससे परोसने का काम लिया जाता है ।

उभक—वि० [सं० स्तवक, या देश०] ताजा । पेड़ या पीछे से तत्काल तोड़ा हुआ । उ०—एक पीला सा उभक अमरुद उसने हाथ बढ़ाकर उठा लिया ।—नई०, पृ० १२६ ।

उभकना^१—क्रि० प्र० [अनु० उभ उभ या सं० द्रव] १. पानी में डूबना, उतराना । बुझकी लेना । २. (आँखों का) उबड़बाना । (नेत्रों में) जल भर माना । उ०—बदन पियर जल उभकहि नैना । परगट दुधो पेम के नैना ।—जायसी (शब्द०) ।

उभका^१—संज्ञा पुं० [हि० उभकना] कुएँ से ताजा निकाला हुआ (पानी) । ताजा । † २. अशु । नेत्रजल ।

उभका^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. सूना हुआ मटर या चना जो फूटा न हो । कोहरा ।

उभकौरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० उभकना] उरद की पीठी की बरी जो बिना तले हुए बड़ी में डाल दी जाती है । डुमकी । उ०—पानोरा गहता पकौरी । उभकौरी मुगछी सुठि सोरी ।—सूर (शब्द०) ।

उभकौही^१—वि० [हि०] दे० 'उबकौही' ।

उभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक नीच या वर्णसंकर जाति जिसे ब्रह्मवैवर्त पुराण ने सेट और चाडाली से उत्पन्न माना है । डोम ।

उभकना^१—क्रि० प्र० [अनु०] ध्वनि या शब्द करना (बोल आदि का) ।

उभकना^२—क्रि० प्र० [हि० उभकना] उभकना । चोतित होना । उ०—चोपण चितामण वणक, वे उभकया बरबार ।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ७५ ।

उभउभ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] उभक बजाने से होनेवाली आवाज । उ०—एक नाद का यही अंत हो, उभ उभ उभक बजे फिर जात ।—बीणा, पृ० ४८ ।

डमर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भय से पलायन । भगेड़ । भगदड़ । २. हलचल । उपद्रव । ३. गाँवों के साधारण संघर्ष (की०) ।

डमरु—संज्ञा पुं० [सं०] ३०. 'डमरु' । उ०—खुनखुनाकर हँसत हरि, हर हँसत डमरु बजाइ ।—सूर०, १०।१६० ।

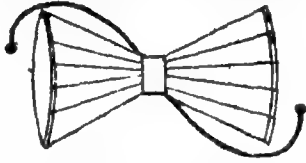
डमरुघा—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] बात का एक रोग जिससे जोड़ों में बदन होता है । गठिया ।

यौ०—डमरुघा साल = ३० 'डमरुघा साल' ।

डमरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथों की एक तान्त्रिक मुद्रा (की०) ।

डमरु—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] १. एक बाजा जिसका आकार बीच में पतला और दोनों सिरों की ओर बराबर चौड़ा होता जाता है ।

विशेष—इस बाज के दोनों सिरों पर चमड़ा मड़ा होता है । इसके बीच में दो तरफ बराबर बड़ी हुई छोरी बँधी होती है जिसके दोनों छोरों पर एक एक कोड़ी या गोली बँधी होती है । बीच में पकड़कर जब बाजा हिलाया जाता है तब दोनों कोड़ियाँ चमड़े पर पड़ती हैं और शब्द होता है । यह बाजा शिव जी को बहुत प्रिय है । बंजर नवानेवाले भी इस प्रकार का एक बाजा अपने साथ रखते हैं ।



२. डमरु के आकार की कोई वस्तु । ऐसी वस्तु जो बीच में पतली हो और दोनों ओर बराबर चौड़ी (उलटी गावडुम) होती गई हो ।

यौ०—डमरुमध्य ।

३. एक प्रकार का बँडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ३२ लघु वयं होते हैं । जैसे,—रहत रजत नग नगर न गज तट गज खल कलगर गरल तरल घर । मिसारीवास ने इसी का नाम जलहरण लिखा है ।

डमरुमध्य—संज्ञा पुं० [सं० डमरु + मध्य] घरती का वह तंग पतला भाग जो दो बड़े बड़े भूखंडों को मिलाता हो ।

यौ०—जलडमरुमध्य = जल का वह तंग पतला भाग जो जल के दो बड़े भागों को मिलाता हो ।

डमरुयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० डमरु + यंत्र] एक प्रकार का यंत्र या पात्र जिसमें धर्क खींचे जाते तथा सिंगरफ का पारा, कपूर, नीसावर आदि उड़ाए जाते हैं ।

विशेष—यह दो घड़ों का मुँह मिलाकर और चबड़मिट्टी के जोड़कर बनाया जाता है । जिस वस्तु का धर्क खींचना होता है उसे घड़ों का मुँह जोड़ने के पहले पानी के साथ एक घड़े में रख देते हैं और फिर सारे यंत्र को (धर्काल दोनों घुड़े घड़ों को) इस प्रकार भाड़ा रखते हैं कि एक घड़ा धाँच पर रहता है और दूसरा ठोड़ी जगह पर । धाँच लगने से वस्तु मिले हुए पानी की भाँप उड़कर दूसरे घड़े में जाकर टपकती है । यही टपका हुआ जल उस वस्तु का धर्क होता है ।

सिंगरफ से पारा उड़ाने के लिये घड़ों को लड़े बल नीचे ऊपर रखते हैं । नीचे के घड़े के पेंदे में धाँच लगती है और ऊपर के घड़े के पेंदे को गीला कपड़ा आदि रखकर ठंडा रखते हैं । धाँच लगने पर सिंगरफ से पारा उड़कर ऊपरवाले घड़े के पेंदे में जम जाता है ।

डयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उड़ान । उड़ने की क्रिया । २. पालकी (की०) ।

डर—संज्ञा पुं० [सं० डर] १. दुःखपूर्ण मनोवेग जो किसी अनिष्ट या हानि की आशंका से उत्पन्न होता और उस (अनिष्ट या हानि) से बचने के लिये आकुलता उत्पन्न करता है । भय । भीति । खौफ । त्रास । उ०—नाथ सखनु पुरु देखन चहूँ । प्रभु सँकोच डर प्रकट न कहूँ ।—मानस, १।२।१८ ।

क्रि० प्र०—लगना ।—खाना । उ०—पैग पैग भुँई चाँपत आवा । पंखिन्ह देखि सबहि डर खावा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९५ ।

मुहा०—डर के मारे = भय के कारण ।

२. अनिष्ट की संभावना का अनुमान । आशंका । जैसे,—हमें डर है कि वह कहीं भटक न जाय ।

डरना—क्रि० प्र० [हि० डर + ना (प्रत्यय०)] १. किसी अनिष्ट या हानि की आशंका से आकुल होना । भयभीत होना । खौफ करना । सशंक होना ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

२. आशंका करना । संदेशा करना ।

डरपक—वि० [हि० डर + सं० पक + डर] डर में ही पका हुआ (फल) । उ०—किधौं सु डरपक आम मे मनि हूँ मिल्यो मलिन । किधौं तनक हूँ तम रह्यो कै ठोड़ी को बिद ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०० ।

डरपना—क्रि० प्र० [हि० डर] डरना । भयभीत होना । उ०—(क) इन्द्र को कछु दूपन नाहीं । राजहेतु डरपत मन माहीं ।—सूर (शब्द०) । (ख) एकहि डर डरपत मन मोरा । प्रभु मोहि देव साप भति घोरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

डरपाना—क्रि० प्र० [हि० डरपना] डराना । भयभीत करना ।

डरपुकना—वि० [हि० डरपुकना] ३०. 'डरपोक' । उ०—सिपारसी डरपुकने सिट्टू बोलै बात धकासी ।—मारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३९३ ।

डरपोक—वि० [हि० डरना + पोकना] बहुत डरनेवाला । भीड़ । कायर ।

डरपोकना—वि० [हि० डरना + पोकना] ३०. 'डरपोक' ।

डरबाना—क्रि० प्र० [हि० डर] ३०. 'डराना' ।

डरबाना—क्रि० प्र० [हि० डरना] ३०. 'डरवाना' ।

डरा—संज्ञा पुं० [हि० डरा] [स्त्री० डरी] ढोका । डसा । टुकड़ा ।

डराकू—वि० [हि० डरना] १. बहुत डरनेवाला । भीड़ । २. डराने या भय उत्पन्न करनेवाला ।

डराडरि—संज्ञा स्त्री० [हि० डर] ३०. 'डराडरी' । उ०—जब धानि

धेरह कटक काय को लव धिय होत हराहरि ।—स्वामी
हरिदास (अव०) ।

हराहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० हर] हर । धर । धातका ।

हरान—वि० [हि० हरावना] भयावक । भयावना । भयंकर । उ०—
हनुमंत सब जगह सरान । बहुकृत विविध सिद्धिनिधि धार ।—
पु० रा०, १ । १११ ।

हराना—कि० व० [हि० हरना] हर बिखाना । भयभीत करना ।
छोड़ बिखाना ।

संयो० क्रि०—वेना

हरानी—वि० [हि० हरना] १. छोड़ पैदा करनेवाली । भयावनी ।
२. हरी हुई । भयभीत । उ०—बोले पों हरानी जाबहि
हृ के हर मैं ।—मति० व०, पु० ४१८ ।

हरापना—कि० व० [हि० हर] किसी को हरा देना । भयभीत
करना ।

हरारा^१—वि० [हि० मोरा + हार (प्रत्य०)] (शक्ति) बिचपे
होने का हल्की रस्ता देना हो । प्रत्य (शक्ति) । उ०—धीन
मरुत रंकव मुख हारै । निरखत कोचव सुख्य नरारै ।—
भावभावक०, पु० १६० ।

हरावना—वि० [हि० हर + हावना (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० हरावनी]
बिचपे हर करने । बिचपे भय उत्पन्न हो । भयावक । भयंकर ।
उ०—कारी चटा हरावनी धाई । पापिनि छापिनि छी बनि
काई ।—संय० व०, पु० १६१ ।

हरावा—संज्ञा पुं० [हि० हराना] १. वह लकड़ी को फसदार पेड़ों में
बिचिया उड़ाने के लिये बँधी रहती है । इसमें एक लंबी रस्सी
बँधी होती है जिसे खींचने से कट कट गन्ध होता है । कट-
काठा । बड़का । † २. हराने की दृष्टि से कही बात ।

• हराहुक—वि० [हि० हरना] हरपोक ।

हरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० हार + हया (प्रत्य०)] दे० 'हार' या
'हाल' । उ०—मनके राखि मैहू भगवान । हम मनाव कैठे
हम हरिया पारखि सावे मान ।—सूर (अव०) ।

हरिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० हलिया] दे० 'हलिया' । उ०—सीसनि नरे
झाक की हरियनि । तनक्ति गुपाव भूक की हरियनि ।—
बनारस, पु० ३१७ ।

हरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० हली] दे० 'हली' । उ०—वरसीति है
कीनी मनीति नहा, विष हीनी बिखाव मिठाव करी ।—
बनारस, पु० ८१ ।

हरीक्षा^१—वि० [हि० हार] हारवाला । हातायुक्त । हथुपीवार ।
उ०—होवन वकीधे सब द्रव्य करीधे, सेज होत है फकीधे सेज
कम कमकीधे है ।—रघुराज (अव०) ।

हरीक्षा^२—वि० [हि० हर + ईक्षा (प्रत्य०)] दे० 'हरीक्षा' ।

हरेरना—कि० व० [हि० हरेरना] दे० 'हरेरना' । उ०—मुका
कोरि के लोच मुकड़ी करैरे ।—प० रासो, पु० ४१ ।

हरेला^१—वि० [हि० हर] हरावना । भयावक । खौफनाक । उ०—
बिटरन झंडा भरत नाव उक्थरत डरैला ।—श्रीधर पाठक
(अव०) ।

हल^१—संज्ञा पुं० [हि० हला (= टुकड़ा)] टुकड़ा । खंड ।

मुहा०—उल का डल = डेर का डेर । बहुत सा ।

हल^२—संज्ञा स्त्री० [सं० हल] १. मील । २. काश्मीर की एक
मील । उ०—बनि सापर सब तूख, विषय विस्तृत उल
बुखर ।—काश्मीर०, पु० १ ।

हलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० हला] दे० 'हलिया' ।

हलक—संज्ञा पुं० [सं०] दोरा । डला । बाँस याचि की बनी बड़ी
हलिया (की०) ।

हलना—कि० व० [हि० हालना] डाला जाना । पड़ना । बैठे,
भूसा हलना ।

हलरी—संज्ञा स्त्री० [हि० हलिया] छोटी हलिया । मुँह की बनी
हुई छोटी पिटारी । उ०—नए बसत धामुवन सजि हलरी
गुहिया लै ।—मेमचण०, भा० १, पु० २६ ।

हलवा—संज्ञा पुं० [हि० हला] 'हला' ।

हलवाना—कि० व० [हि० हावना का प्रे० रूप] हावने का काम
करावा । हावने देना ।

हला^१—संज्ञा पुं० [सं० हल] [स्त्री० हल्पा० हली] १. टुकड़ा ।
टोका । खंड । उ०—रीठ पड़े पाक जवाँ, घर बड़ हला
सधेह ।—रा० व०, पु० २६० ।

विशेष—आधाररूप हलका प्रयोग नमक, मिखी याचि के लिये
यविक होता है । जैसे, नमक का हला, मिखी की हली ।

१. विनोदिय ।—(बाबाक) ।

हला^२—संज्ञा पुं० [सं० हलक] [स्त्री० हल्पा० हलिया] बाँस, बेंत याचि
की पतली फट्टियों या कमचियों को गाँछकर बनाया हुआ
बरतन । टोकरा । दोरा । उ०—हला भरि हो लाल । कैलें के
उठाऊँ । पठनी वाल छोक लै भावै ।—नंद० व०, पु० ३६० ।

यौ०—हला तुलवाई = बचियों के यहाँ विवाह की एक रीति
जिसमें दूल्हा दूल्हिन के यहाँ एक टोकरा बाँधा है ।

हलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० हला] छोटा हला । छोटा टोकरा ।
दोरी । उ०—प्रेम के परवर करो हलिया में, याचि की भाँसी
लाई । ज्ञान के गबरा हड़ करि राखो गगन में हाव लगाई ।
—कबीर वा०, भा० ३, पु० ४८ ।

हलो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० हला] १. छोटा टुकड़ा । छोटा डेवा ।
खंड । जैसे, मिश्री की हली, नमक की हली । २. सुपारी ।

हलो^२—संज्ञा स्त्री० [हि० हला] दे० 'हलिया' । उ०—बुधे डली में
मुपरे, बड़े बड़े भरे भरे ।—बेला, पु० १६ ।

हल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] हला । दोरा ।

हल्ला—संज्ञा पुं० [सं० हल्लक] दोरा ।

हल्लेहणा—संज्ञा पुं० [सं० हल्लह] दे० 'हल्लेहणा' ।

हल्लेह—संज्ञा पुं० [सं० हल्लह] दे० 'हल्लेह' ।

हल्लेहणा—संज्ञा पुं० [सं० हल्लह] दे० 'हल्लेह' ।

हला^३—संज्ञा पुं० [हि० हला] दे० 'हलिया' । उ०—विष को
हला है के उदैन को घेवा है, कल पलकी न बाई भयवा है
बक बात को ।—बनारस, पु० ८० ।

उचित्य—संज्ञा पुं० [सं०] काठ का बना हुआ युग ।

उस—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की लता । २. तराश की बोरी जिसमें पलके बंधे रहते हैं । जोती । ३. कपड़े की धान का छोर जिसमें ताने छोर बाने के पूरे तागे नहीं बुने रहते । छोर ।

उसणी—संज्ञा पुं० [सं० दशन; प्रा० इसण] दाँत । दशन । उ०—हीर इसण बिद्वम प्रधर, मारु भृकुटि मयंक ।—ढोला०, पृ० ४५४ ।

उसन—संज्ञा स्त्री० [सं० दशन] १. उसने की क्रिया या भाव । २. उसने या काटने का ढंग । उ०—यह अपराध बड़ो उन कीनी । तखक उसन साप में बीनी ।—सूर (शब्द०) ।

उसना^१—क्रि० सं० [सं० दशन] १. किसी ऐसे कीड़े का दाँत से काटना जिसके दाँत में विष हो । साँप आदि जहरीले कीड़ों का काटना । उ०—घरे भरे कान्हु कि रमसि बोरि । मदन भुजंग डसु बालहि तोरि ।—विद्यापति, पृ० ३६६ । २. डंक मारना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

उसना^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डासन', 'दसना' । उ०—सुंदर सुमनन सेज बिछाई । घरगज मरगज इसनि डसाई ।—नंद प्र०, पृ० १४१ ।

उसनी—वि० [सं० दश, प्रा० डस] काटनेवाली । उ०—सिसु-धातिनी परम पापिनी । संतनि की इसनी छु साँपिनी ।—नंद प्र०, पृ० २३६ ।

उसबाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उसाना' ।

उसा^१—संज्ञा पुं० [सं० दश] ढाड़ । जोमड़ ।

उसाना^१—क्रि० सं० [हि० डसना] बिछाना । उ०—'हे राम' उचित यह वही चोतरा भाई । जिसपर बापू ने अंतिम सेज डसाई ।—सूत०, पृ० १३७ ।

उसी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दसी] दे० 'दसी' ।

उसी^२—संज्ञा स्त्री० पहचान या परिचय की वस्तु । पहचान के लिये दिया हुआ चिह्न । चिन्हानी । निशानी । सहवानी ।

उस्टर—संज्ञा पुं० [अ०] गर्व काढ़ने का कपड़ा । काड़न ।

उहँकना—क्रि० सं० [हि० उहकना] दे० 'उहकना' । उ०—कह बरिया मन उहँकत फिरै ।—वरिया० बानी, पृ० ३५ ।

उहक—वि० [?] संख्या में छह । ६ ।—(बलाल) ।

उहकना^१—क्रि० सं० [हि० उहका] १. छल करना । धोखा देना । ठगना । छटना । उ०—उहकि उहकि परचेहु सब काहु । धति असंक मन सदा उछाहु ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी वस्तु को देने के लिये दिखाकर न देना । ललचाकर न देना । उ०—बेलत बात, परस्पर उहकत, झीनत कहत करत रग-दिया ।—तुलसी (शब्द०) ।

उहकना^२—क्रि० प्र० [हि० उहका, धाक] १. रोने में रह रहकर शब्द निकालना । बिलखना । बिषाद करना । उ०—काज बदन ते राखि बीबी इंद्र गर्व जे खोज । पोपिनी सब ऊधो धागे उहकि बीनी रोइ ।—सूर (शब्द०) । २. हुंकारना । डकार

लेना । बहाड़ मारना । गरजना । उ०—इक दिन कंस धसुर इक प्रेरा । धावा धटि बपु विरवम केरा । उहकत फिरत उड़ावत छारा । पकरि सींग तुरत प्रभु मारा ।—विश्राम (शब्द०) ।

उहकना^३—क्रि० प्र० [देश०] छितराना । छिटकना । फैलना । उ०—चंदन कपूर जल धोत कलधोत धाम उज्जल जुन्हाई उहकही उहकत है ।—देव (शब्द०) ।

उहकलाय—वि० [?] सोलह । १६ ।—(बलाल) ।

उहकाना^१—क्रि० सं० [सं० बस (= सोना), हि० डाका] सोना गँवाना । नष्ट करना । उ०—बाद विवाद यज्ञ ब्रत साथे । कतहें जाय जन्म उहकावे ।—सूर (शब्द०) ।

उहकाना^२—क्रि० प्र० किसी के धोखे में आकर अपने पास का कुछ सोना । किसी के छल के कारण हानि सहना । धोखे में धाना बँधित या प्रसारित होना । ठगा जाना । जैसे, इस सोदे में तुम उहका गए । उ०—(क) इनके कहे कीन उहकावे, ऐसी कीन मजानी ?—सूर (शब्द०) । (ख) उहके ते उहकाइबो भलो जो करिय बिचार ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

उहकाना^३—क्रि० सं० १. ठगना । धोखे से किसी की कोई वस्तु ले लेना । धोखा देना । छटना । २. किसी को कोई वस्तु देने के लिये दिखाकर न देना । ललचाकर न देना ।

उहकावनि^१—संज्ञा पुं० [हि० उहकाना] [स्त्री० उहकावनि] ललचाना या धोखा देने का कार्य या स्थिति । उ०—ले ले व्यंजन बखनि बखानि । हँसनि, हँसावनि, पुनि उहकावनि ।—नंद प्र०, पृ० २६४ ।

उहड़ह—वि० [अनु०] दे० 'उहड़हा' ।

उहड़हा—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० उहड़ही] १. हरा भरा । ताजा । लहलहाता हुआ । जो सूखा या मुरझाया न हो । (पेड़, पीपे, फूल, पत्ते आदि) । उ०—(क) जो काटे तो उहड़ही, सीपे तो कुम्हिलाय । यहि गुनवंती बेज का कुछ गुन कहा न जाय ।—कबीर (शब्द०) । २. प्रफुल्लित । प्रसन्न । धानंदित । उ०—गुम सोतिन देखत बई अपने द्विय ते लाल । फिरति सबनि में उहड़ही वही मरगबी बाल ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) ऐवती चरन चार सेवती हमारे जान, हँ रह्यो उहड़ही सहि धानेंध कंब को ।—देव (शब्द०) । (ग) उहड़हे इनके मन धरिहि कतहें चितए हरि ।—नंद प्र०, पृ० १५ । ३. तुरंत का । ताजा । उ०—लहलह्यो इंदीवर श्यामता करीर सोही उहड़ही चंदन की रेखा राखै भाल में ।—रघु-राज (शब्द०) ।

उहड़हाट^१—संज्ञा स्त्री० [हि० उहड़हा] हरापन । ताजगी ।

उहड़हाना—क्रि० प्र० [हि० उहड़हा] १. हरा भरा होना । ताजा होना । (पेड़, पीपे, आदि का) । उ०—दूर दमकत श्रवण सोधा जलज पुग उहड़हत ।—सूर (शब्द०) । २. प्रफुल्लित होना । धानंदित होना ।

बहुवचन—संज्ञा पुं० [हि० बहुवचन] ह्रास्वरा होने का भाव । साक्षी । प्रकृत्यता ।

बहुने—संज्ञा पुं० [सं० डयन (= उड़ना)] देना । पर । पंख । उ०—विषयाना कित दिव भंगूरा । जिहि भा मरन दहन धरि पूरा ।—जायसी (शब्द०) ।

बहुन—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] जलन । दाह ।

बहुना—संज्ञा पुं० [सं० डयन] १. 'डेना' । उ०—जों पंखी कहूँ धिर रहना । ताके वहाँ जाइ जों बहुना ।—पद्ममावत, पृ० २५८ ।

बहुना—क्रि० प्र० [सं० दहन] १. जलना । भस्म होना । २. कुदना । चिड़ना । द्वेष करना । बुरा मानना ।

बहुना—क्रि० स० १. जलाना । भस्म करना । उ०—रावन जंका हो उही बेह मोहि डाकुन घाह ।—जायसी (शब्द०) । २. सनम करना । दुःख पहुँचाना । उ०—बहुन चंद धरत चंदन चौक । वगध करह तन विरह नचीक ।—जायसी (शब्द०) । ३. ताड़ना । बजाना । उ०—बहुन संकर उई करे जोगण किलकारा ।—रघु० क०, पृ० ४७ ।

बहुरा—संज्ञा स्त्री० [हि० बगर] १. रास्ता । मार्ग । पथ । उ०—जिहि बहुरत उहुर करत कहुरो । चित बल बोरत चेटक बेहुरो ।—रघुराज (शब्द०) । २. आकाशमंथा । ३. पगडबड़ी ।

बहुरना—क्रि० प्र० [हि० बहुर] चलना । फिरना । टहलना । उ०—जिहि बहुरत उहुर करत कहुरो । चित बल बोरत चेटक बेहुरो ।—रघुराज (शब्द०) ।

बहुरा—संज्ञा पुं० [हि० बहुर] मार्ग । बगर । उ०—सखी १ पाज बब भरती धन देसा । धन बहुरा मेबात मेभारे हरि भाए जन मेसा ।—सहजो०, पृ० ५७ ।

बहुराना—क्रि० प्र० [हि० बहुरना] चलावा । छोड़ना । फिराना । उ०—कोऊ विरहि रही भाख चवन एक चित जाई । कोऊ विरलि बिपुरी भुकुटि वर मन बहुराई ।—सूर (शब्द०) ।

बहुरि—संज्ञा स्त्री० [सं० दधि, हि० बहेंड़ी] वही जमाने के काम में प्रयुक्त मिट्टी की बूँदिया । उ०—धुत की बरजि राखहु महिर । बहुर चवन न दैस काहुँहि फोरि दारत बहुरि ।—सूर०, १०।१४२१ ।

बहुरि—संज्ञा स्त्री० [हि० बहुर] राह । उ०—जस धरन कोउ नाहि पावत रोकि राखत बहुरि ।—सूर०, १०।१४२२ ।

बहुरिया—संज्ञा पुं० [हि० बहुर] गाय बैल का घूमकर व्यापार करनेवाला व्यक्ति ।

बहुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. 'कुठिया' ।

बहुरी—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] १. डमरु । उ०—बहुन संकर उई, करे जोगण किलकारा ।—रघु० क०, पृ० ४७ ।

बहुरा—वि० [हि० बाहना] डाहनेवाला । तंग करनेवाला । कष्ट पहुँचानेवाला । उ०—फोरहि सिस सोड़ा मदन लागे प्रदुक् पहार । कायर दूर कपूत कलि धर धर सहस बहुरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

डहीली—वि० स्त्री० [हि० डाह + ली (प्रत्यय०)] डाह पैदा करनेवाली । उ०—पग द्वे चलति ठठकि रहै ठाढ़ी मोन चरै हरि के रस गोली । धरनी नख चरनि कुरवारति, 'सीतिनि भाग सुहाग डहीली ।—सूर० १०।१७७२ ।

डहु, डहु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्षविशेष । लकुच । २. बड़हर ।

डहोला—संज्ञा पुं० [देश०] हलचल । उपद्रव । भय । उ०—महा डहोली मेदनी विसतरियो निण वार । साह तपस्या भग्नलो प्रकबर सेण अपार ।—रा० क०, पृ० ६६ ।

डांकुति—संज्ञा स्त्री० [सं० डाङ्कुति] घंटी आदि बजने की ध्वनि [फो०] ।

डाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० डा] टाकनी । डाहन ।

डाँक—संज्ञा स्त्री० [हि० दमक, दवेंक अथवा देश०] तबिया चाँदी का बहुत पतला कागज की तरह का पत्तर ।

विशेष—देशी डाँक चाँदी की होती है जिसे घोटकर नगीनों के नीचे बैठते हैं । अब तबिया के पत्तर की विदेशी डाँक भी बहुत पायी है जिसके गोख घोर चमकीले टुकड़े काटकर स्त्रियों की टिकली, कपड़ों पर टाँकने की चमकी आदि बनती हैं । डाँक घोटने की सान ८-९ ग्रामुल लंबी घोर ३-४ ग्रामुल चौड़ी पटरी होती है जिसपर डाँक रखकर चमकाने के लिये घोटते हैं ।

डाँका—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँकना] कै । वमन । उलटी ।

क्रि० प्र०—होना ।

डाँका—संज्ञा पुं० [हि० डंका] तगाड़ा । १. 'डंका' । उ०—दान डाँक बाजे दरबारा । कीरति गई ममुंदर पारा ।—जायसी (शब्द०) ।

डाँक—संज्ञा पुं० [हि० डंक] बिबेले जंतुओं के काठने का डंक । पार । उ०—जे तब होत दिखाविलो भई धमी हक धाँक । दगे सोरछी डोठि धब ह्वी बोछी को डाँक ।—बिहारी (शब्द०) ।

डाँकना—क्रि० प्र० [सं० तक (= चलना)] १. कुदकर पार करना । लपटना । फाँटना । २. पार कर जाना । लपट जाना । उ०—अजगर उड़ा सिलर को डाँका, गरुड़ धकित होय बैठा ।—दरिया० धानी पृ० ५६ । २. वमन करना । उलटी करना । ३. जोर से पुकारना । आवाज देना ।

डाँकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] १. 'डाकिनी' । उ०—परहु तरक, फलधारि सिमु, मोध डाँकिनी खाउ ।—तुलसी पं०, पृ० ११० ।

डाँगा—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क (= पहाड़ का किनारा घोर चोटी)] १. पहाड़ी । जंगल । बन । २. पहाड़ की ऊँची चोटी ।

डाँग—संज्ञा पुं० [सं० दङ्क, हि० डागा] मोटे बस का डंका । सट्ट ।

डाँगा—संज्ञा पुं० [हि० डाँकना] कुद । फलाना ।

डाँग—संज्ञा पुं० [देश०] १. 'डंका' ।

डाँगर—संज्ञा पुं० [देश०] १. चौपाया । डोर । गाय, भैंस आदि पशु । २. मरा हुआ चौपाया । (गाय, बैल आदि) चौपाए की लाश (पुरब) ।

मुहा०—डॉगर घसीटना = बमारों की तरह मरा हुआ खोपाया खींचकर खे जाना । अशुचि कर्म करना ।

१. एक नीच जाति का नाम ।

डॉगर^१—वि० १. दुबला पतला । जिसकी हड्डी हड्डी निकली हो ।

२. मूख । जड़ । गावदी ।

डॉगा—संज्ञा पु० [सं० दण्डक] १. जहाज के मस्तूल में रस्सियों को फँलाने के लिये घाड़ी लगी हुई धरन । २. लंगड़ के बीच का मोटा डंडा । (लश०) ।

डॉट—संज्ञा स्त्री० [सं० दान्ति (= दमन, वश) या सं० दण्ड] १. शासन । वश । दाब । दबाव । जैसे,—(क) इस लड़के को डॉट में रखो । (ख) इस लड़के पर किसी की डॉट नहीं है ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।—मानना ।—रखना ।

मुहा०—डॉट में रखना = शासन में रखना । वश में रखना । किसी पर डॉट रखना = किसी पर शासन या दबाव रखना । डॉट पर = पालकी के कहारों की एक बोली । (जब तंग धीरे ऊँचा नीचा रास्ता भागे होता है तब भगवा कहार कुछ बचकर चलने के लिये कहता है 'डॉट पर') ।

२. डराने के लिये क्रोधपूर्वक कर्कश स्वर से कहा हुआ शब्द । घुड़की । डपट ।

क्रि० प्र०—बताना ।

डॉटना^१—क्रि० सं० [हि० डॉट + ना (प्रत्य०) प्रयवा सं० दण्डन] १. डराने के लिये क्रोधपूर्वक कड़े स्वर में बोलना । घुड़कना । डपटना । उ०—(क) जैसे भोन किलकिला दरसत, ऐसे रही प्रभु डॉटत । पुनि पाछे मर्घसिधु बढ़त है सूर खाल किन पाटत ।—सूर०, १। १०७ । (ख) जानै ब्रह्म सो विप्रवर भाखि दिलावहि डॉटि ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) सोई वहाँ जेवरी बाँधे, जननि साँटि ले डॉटि ।—सूर०, १०। ३४६ ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. ठाठ से वस्त्र आदि पहनना । ३० 'डाटना'—६ । उ०—चाकर भी वर्षी डॉटे है ।—फिस्ताना०, भा० ३, पृ० ३६ ।

डॉठा^१—संज्ञा पु० [सं० दण्ड] डंडल ।

डॉड़^१—संज्ञा पु० [सं० दण्ड, प्रा० डंड] १. सीधी लकड़ी । डंडा । २. गवका । उ०—सीखत चटकी डॉड़ विविध लकड़ी के दीवन ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २८ ।

यौ०—डॉड़ पटा = (१) फरी गतका । (२) गतके का खेल ।

३. नाव खेने का लंबा बल्ला या डंडा । चप्पू ।

क्रि० प्र०—खेना ।—चलाना ।—मारना ।—भरना ।—(घसा०) ।

४. अकुष का हथवा । ५. जुलाहों की वह पोली लकड़ी जिससे ऊरी फँसाई रहती है । ६. सीधी लकीर । ७. रीढ़ की हड्डी । ८. ऊँची उठी हुई तंग जमीन जो दूर तक लकीर की तरह चली गई हो । ऊँची मेंड़ ।

मुहा०—डॉड़ मारना = मेंड़ उठाना ।

१. रोक, धाड़ आदि के लिये उठाई हुई कम ऊँची दीवार । १०. ऊँचा स्थान । छोटा बीटा या टीला । उ०—सो कर बी पंडा

स्थिति पाई । उपग्रयो मुत द्रुम इक तेहि डडि ।—रघुराज (शब्द०) । ११. दो खेतों के बीच की सीमा पर की कुछ ऊँची जमीन जो कुछ दूर तक लकीर की तरह गई हो धीरे जिसपर लोग घाते जाते हों । मेंड़ ।

क्रि० प्र०—डॉड़ मारना = मेंड़ बनाना । सीमा या हदबंदी करना ।

यौ०—डॉड़ मेंड़ = २० 'डाड़ामेंड़' ।

१२. समुद्र का डालुघाँ रेतीला किनारा । १३. सीमा । हद । जैसे, गाँव का डॉड़ा । १४. वह मैदान जिसमें का जंगल कट गया हो । १५. अर्थवेंड । किसी अपराध के कारण अपराधी से लिया जानेवाला धन । जुरमाना ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

१६. वह वस्तु या धन जिसे कोई मनुष्य दूसरे से अपनी किसी वस्तु के नष्ट हो जाने या खो जाने पर ले । नुकसान का बदला । हरजाना ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

१७. लंबाई नापने का मान । कट्टा । बाँस ।

डॉड़ना^१—क्रि० सं० [हि० डॉड़ + ना (प्रत्य०); या सं० दण्डन] अर्थदंड देना । जुरमाना करना । उ०—(क) उदधि अपार उतरतहूँ न लागी बार केमरीकुमार सो अवंड ऐसो डॉड़िगो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) पड़ा जो डॉड़ जगत सब डॉड़ा । का निश्चित माटी के भाड़ा ?—जायसी (शब्द०) ।

डॉड़र^१—संज्ञा पु० [हि० डॉड़] बाजरे के डंडल का गड़ा हुआ भाग जो फसल कट जाने पर भी खेतों में पड़ा रहता है । बाजरे की खूँटी ।

डॉड़ा^१—संज्ञा पु० [हि० डॉड़] १. छड़ । डंडा । २. गतका । उ०—बज्र की साथ बज्र का डॉड़ा । उठी घागि तम बाँजे लाड़ा ।—जायसी (शब्द०) । ३. नाव खेने का डॉड़ । ४. समुद्र का डालुघाँ रेतीला किनारा (लश०) । ५. हद । सीमा । मेंड़ ।

यौ०—डॉड़ा मेंड़ा । डॉड़ा मेड़ी ।

मुहा०—होली का डॉड़ा = लकड़ी, घास फूस आदि का ढेर जो वसंत पंचमी के दिन से होली जलाने के लिये इकट्ठा किया जाने लगता है ।

डॉड़ामेंड़ा^१—संज्ञा पु० [हि० डॉड़ + मेंड़] १. एक ही डॉड़ या सीमा का अंतर । परस्पर अत्यंत सामीप्य । लगाव । २. भनबन । भगड़ा ।

क्रि० प्र०—रहना ।

डॉड़ामेंड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'डॉड़ामेंड़ा' ।

डॉड़ाशहेल^१—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का साँप जो बगल में होता है ।

डॉड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डॉड़ा] १. लंबी पतली लकड़ी । २. हाथ में लेकर व्यवहार की जानेवाली वस्तु का वह लंबा पतला भाग जो हाथ में लिया या पकड़ा जाता है । लंबा हथवा या हस्ता । जैसे, करछी की डॉड़ी । उ०—हरि जू की भारती बनी । अति विविध रचवा रचि राखी परति व गिरा पनी ।

कच्छप धन आसन धनुष धति, डाँड़ी धिब फनी।—सुर (शब्द०)। ३. तराजू की बहुत सीधी लकड़ी जिसमें रस्सियाँ लटककर पसके बाँधे जाते हैं। डंठी। उ०—साँई मेरा बानिया सहज करे व्यवहार। बिन डाँड़ी बिन पालके तीखे सब संसार।—कबीर (शब्द०)।

मुद्दा०—डाँड़ी मारना = सोदा देने में कम तोलना। डाँड़ी सुनीते से रहना = बाजारभाव अनुकूल होना। उ०—भगवान कहीं गों से बरखा कर बे धीर डाँड़ी की सुनीते से रहे तो एक गाय बकर लेगा।—गोदान, पृ० ३०।

४. टहुनी। पतली शाखा। ५. वह लंबा डंठल जिसमें फूल या फल लगा होता है। नाल। उ०—तेहि डाँड़ी सह कमलहि तोरी। एक कमल की दूनी जोरी।—आयसी (शब्द०)। ६. हिडोले में लगी हुई वे चार सीधी लकड़ियाँ या डोरी की लठे जिनसे लगी हुई बैठने की पटरी लटकती रहती है। उ०—पटली लगे नग नाग बहुरंग बनो डाँड़ी चारि। जोरा भँबे मजि केलि भूले नवल नागर मारि।—सुर (शब्द०)। ७. जुलाहों की वह लकड़ी जो चरबी की बबली में डाली जाती है। ८. शहनाई की लकड़ी जिसके नीचे पीतल का घेरा होता है। ९. घनघट नामक गहने का वह भाग जो दूसरी धीर तीसरी जंगली के नीचे इसलिये निकाला रहता है जिसमें घनघट घूम न सके। १०. डाँड़ देनेवाला आदमी (लश०)। ११. मट्टर या सुस्त आदमी (लश०)। १२. सीधी लकीर। लकीर। रेखा।

क्रि० प्र०—खीचना।

१३. लोक। मर्यादा। १४. सीमा। हब। उ०—डरे लाग वन डाँड़ियाँ, सुते ही साहज। जे सुते ही जागता, सबला माथा सुल।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० २४। १५. चिड़ियों के बैठने का घड़ा। १६. फूल के नीचे का लंबा पतला भाग। १७. पालकी के दोनों धीर निकले हुए लंबे डंडे जिन्हें कहार कंधे पर रखते हैं। १७. पालकी। १८. डंडे में बँधी हुई भोली के आकार की एक सवारी जो ऊँचे पहारों पर चसती है। भक्षण।

डाँढ़री—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड, प्रा० डहु, हि० डाढ़ा + री (प्रत्य०)] भुनी हुई मटर की फली।

डाँबू—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नरकट जो दलदल में उत्पन्न होता है।

डाँभा—संज्ञा पुं० [सं० दाह प्रा० डाह, या सं० दण्ड, प्रा० डहु, या हि० दागना] १. जलने का दाग। दाग। २. जलने से उत्पन्न पीड़ा या कष्ट। उ०—बाँधवें बहरी छाहड़ी, नीक नागर बेल। डीम संभासूँ करहना, पोपड़िसूँ चपेल।—दोसा०, पृ० ३२०।

डाँबिरा—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब] [स्त्री० डाँबरी] लड़का। बेटा। पुत्र।

डाँबरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँबरा] लड़की। बेटि। उ०—(क) कवन मन रतन अड़ित रामचंद्र पाँवरी। बाहिन को राम वाम जनक राम डाँबरी।—दयस्वामी (शब्द०)। (ख)

बाहिर पीरि न दीजिए पाँवरी बाउरी होय सो डाँबरी डोले।—देव (शब्द०)। ३० 'डाँबरी'।

डाँवली—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब] बाघ का बच्चा।

डाँवाडोल—वि० [हि० डोलना] इधर उधर हिलता डोलता हुआ। एक स्थिति पर न रहनेवाला। चंचल। विचलित। अस्थिर। जैसे, चित्त डाँवाडोल होना।

डाँवो—क्रि० वि० [प्रा० डाव, गुज० डावो] बाईं ओर। बाईं तरफ। उ०—डाँवो साँड़ लड़कतो जाई।—बी० रासो, पृ० ६०।

डाँशपाहिड़—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत में रुद्रताल के ग्यारह भेदों में से एक जिसमें पाँच आघात के पश्चात् एक शून्य (खाली) होता है।

डाँस—संज्ञा पुं० [सं० दंश] १. बड़ा मच्छड़। दंश। २. एक प्रकार की मक्खी जो पशुओं को बहुत दुःख देती है। उ०—जरा बछड़े को देखता हूँ... बेचारे को डाँस परेशान कर रहे हैं।—वई०, पृ० १०। ३. कुकरोष्ठी।

डाँसरी—संज्ञा पुं० [देश०] हमली का बीज। चिम्रा।

डाँ—संज्ञा पुं० [प्रनु०] सितार की गत का एक बोल। जैसे—डा डिक्र डा डा डा डा डा।

डाँ—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डाकिनो। २. टोकरी जो ढोकर ले जाई जाय [को०]।

डाइचा—संज्ञा पुं० [सं० दाय] ३० 'दायजा'। उ०—डाइचो दिद दाहिन दुहम, भुज भुजय कीरति करे।—पृ० रा०, १६, १५।

डाइन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकनी] १. भूतनी। चुईल। राखसी। उ०—प्रोभा डाइन डर से डरपे।—कबीर श०, भा० २, पृ० २८। २. टोनहाई। वह स्त्री जिसकी दृष्टि घाद के प्रभाव से बच्चे मर जाते हैं। ३. कुकपा धीर डरावनी स्त्री।

डाइनामाइट—संज्ञा पुं० [सं०] एक विस्फोटक पदार्थ का नाम।

डाइनिंग रूम—संज्ञा पुं० [अंग०] भोजन कक्ष। उ०—भाभी ने हम लोगों को डाइनिंग रूम में बुलाया।—जिप्सी, पृ० ४२३।

डाइवोटी—संज्ञा पुं० [अंग० डाइविटीज] बहुमूल्य रोग। मधुमेह।

डाइरेक्टर—संज्ञा पुं० [अंग०] १. प्रबंध चलावेवाला। कार्यसंचालक। निर्देशक। निदेशक। मुंत्तजिम। इंतजाम करनेवाला। २. मशीन में वह पुरखा जिसकी क्रिया से गति उत्पन्न होती है।

डाइरेक्टरी—संज्ञा स्त्री० [अंग०] वह पुस्तक जिसमें किसी नगर वा देश के मुख्य निवासियों या व्यापारियों आदि की सूची प्रसार क्रम से हो।

डाइवोर्स—संज्ञा पुं० [अंग०] तलाक। पति पत्नी का संबंधविच्छेद।

डाई—संज्ञा पुं० [अंग०] १. पासा। २. ठप्पा। साँचा। ३. रंग।

डाईप्रेस—संज्ञा पुं० [अंग०] ठप्पा उठाने की कल। उससे हुए प्रसर उठाने की कल जिससे मोनोग्राम आदि छपते हैं।

डाक'—संज्ञा पुं० [हि० उडाक या उडाक या डाकना (= फाँटना)] १. सवारी का ऐसा प्रबंध जिसमें एक एक टिकाव पर बराबर जानवर आदि बद्धे जाते हों। चोरे यादी आदि का जगह जगह इंतजाम।

मुहा०—डाक बैठाना = शीघ्र यात्रा के लिये स्थान स्थान पर सवारी बदलने की चोकी नियत करना। डाक लगावा = शीघ्र संवाद पहुँचाने या यात्रा करने के लिये मार्ग में स्थान स्थान पर यात्रियों या सवारियों का प्रबंध रहना। डाक लगावा = दे० 'डाक बैठाना'।

यौ०—डाक चोकी = मार्ग में वह स्थान जहाँ यात्रा के चोके बदले जायें या एक हुरकारा दूसरे हुरकारे को चिट्ठियों का पैसा दे। उ०—पाछे राजा ने द्वारिका सौ मेरता सौ डाक चोकी बैठाई दीवी।—बो सी बावन०, भा० १, पृ० २४६।

२. राज्य की ओर से चिट्ठियों के आने जाने की व्यवस्था। वह सरकारी इतजाम जिसके मुताबिक सत एक जगह से दूसरी जगह बराबर आते जाते हैं। जैसे, डाक का मुहकमा। उ०—यह चिट्ठी डाक में भेजेंगे, नौकर के हाथ नहीं।

यौ०—डाकखाना। डाकगाड़ी।

३. चिट्ठी पत्री। कागज पत्र आदि जो डाक से आते। डाक से आनेवाली वस्तु। जैसे,—तुम्हारी डाक रखी है, ले लेना।

डाक^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वमन। उलटी। कै।

क्रि० प्र०—होना।

डाक^३—संज्ञा पुं० [सं० डाक] समुद्र के किनारे जहाज ठहरने का वह स्थान जहाँ मुसाफिर या माल चढ़ाने उतारने के लिये बाँध या चबूतरे आदि बने होते हैं।

डाक^४—संज्ञा पुं० [बंग० डाकवा (= चिल्लाना)] नीलाम की बोली। नीलाम की वस्तु खेनेवालों की पुकार जिसके द्वारा वे बाल लगाते हैं।

डाकखाना—संज्ञा पुं० [हि० डाक + खाना] वह स्थान या सरकारी दफ्तर जहाँ लोग भिन्न भिन्न स्थानों पर भेजने के लिये चिट्ठी पत्री आदि छोड़ते हैं और जहाँ से भाई हुई चिट्ठियाँ लोगों को बाँटी जाती हैं।

डाकगाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाक + गाड़ी] वह रेलगाड़ी जिसपर चिट्ठी पत्री आदि भेजने का सरकार की तरफ से इंतजाम हो। डाक से आनेवाली रेलगाड़ी जो और गाड़ियों से तेज चलती है।

डाकघर—संज्ञा पुं० [हि० डाक + घर] दे० 'डाकखाना'।

डाकनवाही—संज्ञा पुं० [हि० डाकना + वाहा (प्रत्य०)] पुकारने-वासा। बुलानेवासा। प्रियतम। उ०—जब डाकनवाही चढ़ी सिर पे तब, लाज कहा खर के चढ़ि के की।—नट०, पृ० १४।

डाकना^१—क्रि० प्र० [हि० डाक] कै करना। वमन करना।

डाकना^२—क्रि० सं० [हि० उड़क, डाक + ना (प्रत्य०)] काटना। लाचना। कुदकर पार करना। उ०—पुण हाथ बीस बर डाकै। एण हाथि उठै तब तकै।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १४१। (ख) सुंदर पुर न गसणा डाकि पड़े रण माहि। भाव सही मुख सीमहीं पीठि फिरावे माहि।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७३८।

संयो० क्रि०—जावा।

डाकबैंगला—संज्ञा पुं० [हि० डाक + बैंगला] वह बैंगला या मकान जो सरकार की ओर से परदेसियों के लिये बना हो।

विशेष—ईस्ट इंडिया कंपनी के समय में इस प्रकार के बैंगले स्थान स्थान पर बने थे। पहले जब रेल नहीं थी तब इन्हीं स्थानों पर डाक सी जाती और बदली जाती थी। अतः सवारियों का भी यही भ्रम रहता था जिससे मुसाफिरों को ठहरने आदि का सुबीता रहता था।

डाकमहसूल—संज्ञा पुं० [हि० डाक + प्र० महसूल] वह खर्च जो बीज को डाक द्वारा भेजने या भंगाने में लगे। डाकव्यय।

डाकमुंशी—संज्ञा पुं० [हि० डाक + फा० मुंशी] डाकघर का भफसर। पोस्टमास्टर।

डाकर—संज्ञा पुं० [देश०] तालों की वह मिट्टी जो पानी सूख जाने पर चिखकर कड़ी हो जाती है।

डाकव्यय—संज्ञा स्त्री० [हि० डाक + सं० व्यय] डाक का खर्च। डाक महसूल।

डाका—संज्ञा पुं० [हि० डाकना (= कूटना) वा सं० दस्यु अथवा देश०] वह धाकमण जो धन हरण करने के लिये सहसा किया जाता है। माल घसबाव जबरदस्ती छीनने के लिये कई आत्मियों का दल बाँधकर जावा। बटमारी।

मुहा०—डाका डालना = लूटने के लिये जावा करना। जबरदस्ती माल छीनने के लिये चढ़ दोड़ना। डाका पड़ना = लूट के लिये धाकमण होना। जैसे,—उस रात पर धाक डाका पड़ा। डाका मारना = जबरदस्ती माल लूटना। बलपूर्वक धन हरण करना।

डाकाजनी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाका + फा० जनी] डाका मारने का काम। बटमारी।

डाकिन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिनी'।

डाकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक पिशाची या देवी जो काली के गणों में समझी जाती है। २. बाइन। चुड़ैल।

डाकिया—संज्ञा पुं० [हि० डाक + इया (प्रत्य०)] डाक से भाई चिट्ठियाँ आदि लोगों के पास पहुँचानेवाला कर्मचारी।

डाकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डाक] वमन। कै।

डाकी^२—संज्ञा पुं० १. बहुत खानेवाला। पेद्र। २. डाकू। उ०—सुंदर तृष्णा डाहनी डाकी लोम प्रचंड। दोऊ काई प्रापि जब, कंपि उठै ब्रह्मंड।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७१४।

डाकी^३—वि० सबल। प्रचंड (डि०)।

डाकू—संज्ञा पुं० [हि० डाका + क (प्रत्य०), वा सं० दस्यु] १. डाका डालनेवाला। जबरदस्ती लोगों का माल लूटनेवाला। लुटेरा। बटमार। २. अधिक खानेवाला। पेद्र।

डाकेट—संज्ञा पुं० [सं०] किसी बड़ी चिट्ठी या आज्ञापत्र आदि का सारांश। चिट्ठी का जुलासा।

डाकोर—संज्ञा पुं० [सं० ठकुर, हि० ठाकुर] ठाकुर। विष्णु भगवान् (गुजरात)।

डाक्टर—संज्ञा पुं० [सं०] १. आचार्य। अध्यापक। विद्वान्। २. वैद्य। चिकित्सक। हुकीम।

डाक्टर—संज्ञा स्त्री० [सं० डाक्टर + ई (प्रत्य०)] १. चिकित्सा-शास्त्र । २. योरेप का चिकित्साशास्त्र । पाश्चात्य आयुर्वेद । ३. डाक्टर का पेशा या काम । ४. वह परीक्षा जिसे पास करने पर आधुनिक डाक्टर होता है ।

डाक्टर—संज्ञा पुं० [सं० डाक्टर] दे० 'डाक्टर' ।

डाढ़ा—संज्ञा पुं० [हि० डाढ़] डाढ़ । पलाश । उ०—तरवार भरहि करहि बन डाढ़ा । भई उपत फूल कर साढ़ा ।—आयसी (शब्द०) ।

डाखिपी—संज्ञा पुं० [?] मूला सिंह (डि०) ।

डागरि—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर] दे० 'डगर' ।

डागला—संज्ञा पुं० [देशी डगर] शैल । पर्वत । उ०—जन दरिया इस झूट की, डागल ऊपर दोड़ ।—दरिया० बानी, पृ० ३१

डागा—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] नगाड़ा बजाने का डंडा । शोब ।

डागुर—संज्ञा पुं० [देश०] जाटों की एक जाति । उ०—डागुर पछी-दरे धरि मरोर । बहु जट्ट ठट्ट बट्टे सजोर ।—सूदन (शब्द०) ।

डागुला—संज्ञा पुं० [देशी डगर, हि० डागल] शैल । पर्वत । उ०—काहे को फिरत नर भटकत डोर डोर । डागुल की दूर देवी देव सब जानिए ।—सुंदर पं०, भा० २, पृ० ४७६ ।

डाबा—संज्ञा पुं० [सं० दब्बा, प्रा० डड्ड, या देश०] मुल । उ०—(क) छोड़ घणी ऊछज छरा, केहर फाई डाब ।—बाँकी पं०, भा० १, पृ० ११ । (ख) खलकाया रत सात भरे, डाबा पल भण्डे ।—रघु० क०, पृ० ४० ।

डाट—संज्ञा स्त्री० [सं० दाग्ति] १. वह वस्तु जो किसी बोक को ठहराए रखने या किसी वस्तु को लड़ी रखने के लिये लगाई जाती है । टेक । बाड़ ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२. वह कील या खूँटा जिसे ठोंककर कोई छेद बंद किया जाय । छेद रोकने या बंद करने की वस्तु ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

३. बोटल, सीसी आदि का मुँह बंद करने की वस्तु । टेंठी । काग । गट्टा ।

क्रि० प्र०—कसना ।—लगाना ।

४. मेहराब को रोके रखने के लिये ईंटों आदि की भरती । लबाब की रोक । लदाब का ठोला ।

डाट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डाट' ।

डाट—संज्ञा पुं० [सं०] नुकता । बिदु । उ०—इन कसबियों पर डाट लगाकर ।—प्रेमघन, भा० २, पृ० ४५५ ।

डाटना—क्रि० सं० [हि० डाट] १. किसी वस्तु को किसी वस्तु पर रखकर जोर से ठकेलना । एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर कसकर दबाना । मिटाकर ठेलना । जैसे,—(क) इसे इस डंडे से डाटो तब पीछे जिसकेगा । (ख) इस डंडे को डाटे रहो तब पत्थर इधर न लुढ़केगा ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. किसी खंभे, डंडे आदि को, किसी बोक या भारी वस्तु को ठहराए रखने के लिये उससे मिड़ाकर लगाना । टेकना ।

बाँड़ लगाना । ३. छेद या मुँह बंद करना । मुँह कसना । मुँह बंद करना । टेंठी लगाना । ४. कसकर भरना । ठसकर भरना । कसकर घुसेडना । उ०—ज्ञान गोली वही खूब डाटी ।

—कबीर श०, भा० १, पृ० ६८ । ५. खूब पेट भर खाना । कस कर खाना । उ०—अग्नित तरु फल सुगंध मधुर मिष्ट खाटे । मनसा करि प्रभुहि अपि भोजन को डाटे ।—सूर (शब्द०) । ६. ठाट से कपडा, गहना आदि पहनना । जैसे, कोट डाटना, धँवरखा डाटना । ७. मिड़ाना । डाटना । मिलाना । उ०—रंच न साध सुधे सुख की विन राधिके आधिक लोचन डाटे ।—केशव (शब्द०) ।

डाठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दुर्वासना । बुरी भादत । उ०—अगुधा भयो करम की डाठी । अस कोह गहे अंध की लाठी ।—चिन्ता०, पृ० २७ ।

डाड़ना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'डाड़ना', 'घाड़ना' ।

डाड़ना—क्रि० सं० [हि० डाड़ना] डाड़ना ।

डाढ़—संज्ञा स्त्री० [सं० दब्बा, प्रा० डड्ड] १. चबाने के चौड़े दाँत । शोभड़ । दाढ़ । उ०—हम दो दो रूप नहीं बदले । मिठाई आए तो डाढ़ तक गम न हो । इतने मे होता ही क्या है !—फिसाना०, भा० ३, पृ० २७४ । २. वट आदि वृक्षों की शाखाओं से नीचे की ओर लटकी हुई जटाएँ । बरोड़ ।

डाड़ना—क्रि० सं० [सं० दग्ध, प्रा० डट्ट + हि० ना (प्रत्य०)] जलाना । भस्म करना । उ०—तुलसिदास जगदध जवात ज्यो भनध आगि जाये डाड़न ।—तुलसी (शब्द०) ।

डाढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ड] १. दावानल । वन की आग । २. अग्नि । आग । उ०—रामकृपा कपि दल बल बाढ़ा । जिमि तृन पाइ लागि अति डाढ़ा ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

३. ताप । दाह । जलन ।

क्रि० प्र०—फूँकना ।

डाढार—संज्ञा पुं० [हि० डाढ] फण । फन उ०—सेस सीस लखि भार डिडय डाढार करानकब ।—रसर०, पृ० १०४ ।

डाढ़ी—वि० [सं० दग्ध] दग्ध । पीड़ित । उ०—सखी संग की निरखति यह छवि भई व्याकुल मम्मय को डाढ़ी ।—सूर०, १० । ७३९ ।

डाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [प्रा० डड्ड, हि० डाढ़ + ई (प्रत्य०)] १. चेहरे पर ओठ के मोच का घोल उभरा हुआ भाग । ठोड़ी । ठुड़ी । चिबुक । २. ठुड़ी और कनपटी पर के बाल । चिबुक और गडस्थल पर के लोम । दाढ़ी । उ०—दाढ़ी के रखेयन की डाढ़ी सी रहति छाती बाढ़ी मरजाद अस हृद् हिदुवान की ।—भूषण (शब्द०) ।

मुह—डाढ़ी छोड़ना = डाढ़ी न मुँडवाना । डाढ़ी बढ़ाना । डाढ़ी का एक एक बाल करना = डाढ़ी उखाड़ लेना । अपमानित करना । दुर्दशा करना । डाढ़ी को कलप लगाना = बूढ़े आदमी को कलंक लगाना । श्रेष्ठ और बूढ़ को घोष लगाना । पेट में डाढ़ी होना = छोटी ही अवस्था में बड़ों की सी जानकारी प्रकट करना या बातें करना । पेशाब से डाढ़ी मुड़वाना = अस्थिर

अप्रमान करना । अप्रतिष्ठा करना । दुर्गति करना । डाढ़ी फटकारना = (१) हाथ से डाढ़ी के बालों को फटकारना । (२) संतोष और उस्ताह प्रकट करना । डाढ़ी रखना = डाढ़ी के बाल न मुँड़वाना । डाढ़ी बढने देना ।

डाढ़ीजारी—संज्ञा पुं० [हि०] डाढ़ीजार । उ०—अमिरती देवी ने पूछा—कीन है डाढ़ीजार, इतनी रात को जगावत है ?—मान०, भा० ५, पृ० २३ ।

डाढ—संज्ञा स्त्री० [सं० दम्] १. डाभ नाम की घास । २. कच्चा नारियल । ३. परतला ।

डाढक—वि० [अनु०] दे० 'डामक' ।

डाढर—संज्ञा पुं० [सं० दध्न (= समुद्र या मील)] १. नीची जमीन । गहरी भूमि जहाँ पानी ठहरा रहे । २. गड़ही । पोखरी । तलेया । गडडा जिसमें बरसाती पानी जमा रहता है । उ०—(क) सुरसर सुभग बनज बनचारी । डाढर जोग कि हंसकुमारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सो मैं बरनि कही विधि केही । डाढर कमठ की मंढर लेही ।—तुलसी (शब्द०) । ३. हाथ धोने का पान । चिलमची । ४. मैला पानी ।

डाढर—वि० मटमैला । गदला । कीचड़ मिला । उ०—भूमि परत भा डाढर पानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

डाढा—संज्ञा पुं० [हि० डब्बा] दे० 'डब्बा' । उ०—संघ सहित धूमन के डाढा । अमल अरघ माजन छबि छावा ।—पद्माकर (शब्द०) ।

डाढी—संज्ञा स्त्री० [सं० दम्] कटी हुई घास वा फसल का पूला ।

डाभ—संज्ञा पुं० [सं० दम्] १. कृष की जाति की एक घास जो प्रायः रेह मिली हुई ऊसर जमीन में अधिक होती है । एक प्रकार का कृष । २. कृष । उ०—घलक डाभ, तिल पाल यों अंसुवन को परवाह । वीदहि देत तिलाजली, नैना तुम बिनु नाह ।—मुबारक (शब्द०) । ३. घाम का मोर । घाम की मंजरी । उ०—जउ लहि घामहि डाभ न होई । तउ लहि सुनै बसाय न सोई ।—जायसी (शब्द०) । ४. कच्चा नारियल ।

डाभक—वि० [अनु० डभक डभक] कुएँ से तुरंत का निकला हुआ । ताजा (पानी) । जैसे, डाभक पानी ।

डाभर—संज्ञा पुं० [सं० दध्न] दे० 'डाढर' ।

डामचा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत में खड़ा किया हुआ वह मसान जिसपर से खेत की रखवाली करते हैं । मैडा । माचा ।

डामर—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिवकथित माना जानेवाला एक तंत्र जिसके छह भेद किए गए हैं—योग डामर, शिव डामर, दुर्गा डामर, सारस्वत डामर, ब्रह्मा डामर और गंधर्व डामर । २. हलचल । धूम । ३. घाडबरा । ठाटबाट । ४. चमत्कार । ५. दुर्ग के शुभाशुभ जानने के लिये बनाए जानेवाले चक्रों में से एक । ६. क्षेत्रपाल । ४६ भैरवों में से एक । ७. एक मिथित या संकर जाति ।

डामर—संज्ञा पुं० [देश०] १. साल वृक्ष का गोंद । राख । २. एक

प्रकार का गोंद या कहूँसा जो इल्लि में पवित्री बाट के पहाड़ों पर होनेवाले एक पेड़ से निकलता है और सफेद डामर कहलाता है । दे० 'कहूँसा' । ३. कहूँसा की तरह का एक प्रकार का लसीला राल या गोंद जो छोटी मधुमक्खियों के छत्ते से निकलता है । ४. वह छोटी मधुमक्खी जो इस प्रकार का राल बनाती है । ५. दे० 'डामल' ।

डामरी—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्ब] दे० 'डाँवरी' । उ०—उन पानि गहो हुतो मेरो जबै सबै गाय उठी बज डामरिया ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८८ ।

डामल—संज्ञा स्त्री० [सं० डायमुल्हंस] १. जनम कैद । उम्र भर के लिये कैद । २. देशनिकास का बंड ।

विशेष—भारतवर्ष में अंगरेजी सरकार भारी भारी अवराधियों को अंशमन टापू में भेजा करती थी । उसी को डामल कहते थे ।

डामल—संज्ञा पुं० [सं० डायमंड] दे० 'डायमंड कट' ।

डाय—डायल कट । डायल काट ।

क्रि० प्र०—छीलना ।

डायल—संज्ञा पुं० [देश०] घलकतरा । तारकोल । उ०—इस डंडे के पीछे इंच भर मोटा डायल का पलस्तर था जो माल या सील को रोकता था ।—हिंदु० सम्यता, पृ० १७ ।

डामाडोल—वि० [हि०] दे० 'डावाडोल' ।

डामिल—संज्ञा पुं० [हि० डामल] दे० 'डामल' । उ०—कितने गुंडे डामिल गएन, कितने पाएन फंसिया ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४३ ।

डायँ डायँ—क्रि० वि० [अनु०] व्यर्थ इधर से उधर (धूमना) । व्यर्थ धूल छानते हुए । जैसे,—वह यों ही दिन भर डायँ डायँ फिरा करता है ।

डायट—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. व्यवस्थापिका सभा । राज्यसभा । जैसे, जापान की इंपीरियल डायट । २. पथ्य । ३. भोजन । खाद्य पदार्थ ।

डायन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी, प्रा० डाइणी] १. डाकिनी । पिशाचिनी । चुड़ैल । सूतिन । २. कृपा स्त्री ।

डायनामो—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा एंजिन जिससे बिजली पैदा की जाती है ।

डायरिया—संज्ञा पुं० [सं०] दस्त की बीमारी । प्रतिघार ।

डायल—संज्ञा पुं० [सं०] १. घड़ी के सामने का वह गोल भाग जिसके ऊपर घंके बने होते हैं और सुइयाँ घूमती हैं । घड़ी का चेहरा । २. पहिए का टेढ़ा हो जाना (विशेषतः साइकिल घायि का) । अपनी जगह पर ठीक न बैठना ।

डायलाग—संज्ञा पुं० [सं० डायलॉग] संवाद । कथोपकथन । वार्तालाप । उ०—अबकी दफे अपना डायलाग अच्छी तरह याद कर लो ।—आकाश०, पृ० १४२ ।

डायस—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऊँचा स्थान या चबूतरा जिसपर किसी सभा के सभापति का आसन रखा जाता है । मंच ।

डायमंड कट—संज्ञा पुं० [सं०] गहनों की बातु को इस प्रकार छीलना

जिसमें हीरे की सी चमक पैदा हो जाय। हीरे की सी काट।
रामन काट।

कायाकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शासनप्रणाली या सरकार जिसमें शासन अधिकार दो व्यक्तियों के हाथों में हो। द्वैच शासन। गृहशा शासन।

विशेष—भारत में सन् १९१६ ई० के गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट के अनुसार प्रादेशिक शासनप्रणाली इसी प्रकार की कर दी गई थी। शासन के सुभीते के लिये प्रदेशों से संबंध रखनेवाले विषय दो भागों में बाँट दिए गए थे। एक रिजर्व्ड या रक्षित विषय जो गवर्नर और उनकी शासन-सभा के अधिकार में था, और दूसरा ट्रांसफर्रेड या हस्तांतरित विषय, जो मंत्रिस्टों या मंत्रियों के अधिकार में (जो निर्वाचित सदस्यों में से चुने जाते हैं) था। 'रक्षित विषयों' की सुव्यवस्था के लिये गवर्नर और उनकी शासन-सभा भारत सरकार और भारत सचिव द्वारा अधस्त्यक्ष रूप से पार्लमेंट अधिकांश ब्रिटिश मतदाताओं के सामने उत्तरदाता थी और हस्तांतरित विषयों के लिये गवर्नर के मंत्री अधस्त्यक्ष रूप से भारतीय मतदाताओं के सामने उत्तर-दायी थे। यद्यपि विशेष अवस्थाओं में इनके मत के विरुद्ध कार्य करने का गवर्नर को अधिकार था, परंतु शासनसभा के बहुमत के विरुद्ध गवर्नर आचरण नहीं कर सकता था। शासनसभा के सदस्यों और मंत्रियों में एक पंथर यह भी था कि वे सम्राट् के आज्ञापत्र द्वारा नियुक्त होते थे, परंतु मंत्री को नियुक्त करने और हटाने का अधिकार गवर्नर को ही था। मंत्री का वेतन निश्चित करने का अधिकार व्यवस्थापिका सभा को था।—भारतीय शासनपद्धति।

हार^१—संज्ञा संज्ञा [सं० वार (= लकड़ी)] १. डाल। शाखा।
उ०—(क) रत्नजटित कंकन बाणुबंद गगन मुद्रिका सोई।
हार हार मनु भवव विटप तव विकस्य देखि मन मोई।—सूर
(शब्द०)। (ख) जिन दिन देखे थे कुसुम पई सो भीत बहार।
भव भलि रही गुलाब में पपत कंटीली हार।—विहारी
(शब्द०)। फावूस जलाने के लिये दीवार में लगाने की खूँटी।

हार^२—संज्ञा स्त्री० [सं० डलक] डलिया। चेंगेरी। डाली। उ०—
जली पावन सब गोहूँ फूल हार सेह हाथ। बिस्नुनाथ कह
पुका पट्टमावति के साथ।—जायसी (शब्द०)।

हार^३—संज्ञा स्त्री० [सं० वार (= कुंड)] समुद्र। कुंड।

हारना^४—क्रि० प्र० [हि० डालना] १. 'डाखना'। उ०—(क)
जिन्ने जन्म डारा है तुज कूँ। बिसर गया सबका ध्यान पूँ।—
दक्कनी०, पृ० १४। (ख) खूँड डारी बरनि धरन जब
धूरि डारे धूर करि डारे सुख बिरही तियाब के।—ठाकुर०,
पृ० ११।

हारना^५—संज्ञा पु० [हि० डाखना (= फैलना)] कपड़ा सुखाने के लिये बंधी रस्सी या बाँस। धरगनी।

हारियास—संज्ञा पु० [देश०] बाबूल बंदर की एक जाति।

हारी—संज्ञा स्त्री० [हि० डार] १. 'डार', 'डाल'।

डाल^१—संज्ञा स्त्री० [सं० वार (= लकड़ी), हि० डार] १. पेड़ के
बड़ से इधर उधर निकली हुई वह लंबी लकड़ी जिसमें पत्तियाँ
और कत्ते होते हैं। शाख। शाखा।

मुहा०—डाल का टूटा=(१) डाल से पककर गिरा हुआ ताजा
(फल)। (२) बढ़िया। धनोक्ता। बोधा। जैसे,—तुम्हीं
एक डाल के टूटे हो जो सब कुछ तुम्हीं को दिया जाय।
(३) नया प्राया हुआ। नवागंतुक। डाल का पका=पेड़ ही
में पका हुआ। डालवाला=बंदर। शाखाभूष।

२. फावूस जलाने के लिये दीवार में लगी हुई एक प्रकार की खूँटी।
३. तलवार का फल। तलवार के मूठ के ऊपर का मुख्य
भाग। ४. एक प्रकार का गहना जो मध्यभारत और मारवाड़
में पहना जाता है।

डाल—संज्ञा स्त्री० [सं० डलक, हि० डला] १. डलिया। चेंगेरी। २.
फल, फल या खाने पीने की वस्तु जो डलिया में सजाकर किसी
के पहाई भेजी जाय। ३. कपड़ा और गहना जो एक डलिया में
रखकर विवाह के समय वर की ओर से बधू को दिया
जाता है।

डालना—क्रि० प्र० [सं० तलन (= नीचे रखना)] १. पकड़ी या
ठहरी हुई वस्तु को इस प्रकार छोड़ देना कि वह नीचे गिर
पड़े। नीचे गिराना। छोड़ना। फेंकना। गेरना। जैसे,—ऐसी
चीज क्यों हाथ में लिए हो? उधर डाल दो।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—डाल रखना=(१) किसी वस्तु को रख छोड़ना।
(२) किसी काम को लेकर उसमें हाथ न लगाना। रोक
रखना। देर लगाना। झुलाना।

२. एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर कुछ दूर से गिराना।
छोड़ना। जैसे, हाथ पर पानी डालना, धूँ पर राख डालना।

संयो० क्रि०—देना।

३. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में रखने, ठहराने या मिलाने के
लिये उसमें गिराना। किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में इस
प्रकार छोड़ना जिसमें वह उसमें ठहर या मिल जाय। स्थित
या मिश्रित करना। रखना या मिलाना। जैसे, घड़े में पानी
डालना, दूध में चीनी डालना, दाल में धी डालना, धूरण में
बमक डालना।

संयो० क्रि०—देना।

४. घुसाना। घुसेड़ना। प्रविष्ट करना। भीतर कर देना या ले
जाना। जैसे, पानी में हाथ डालना, कुएँ में डोल डालना,
बिस या मुँह में हाथ डालना।

संयो० क्रि०—देना।

५. परित्याग करना। छोड़ना। खोज सब न लेना। भुला देना।
उ०—केहि अब प्रीगुन आपनो करि डारि दिया रे।—
तुलसी (शब्द०)। ६. अंकित करना। लगाना। चिह्नित
करना। जैसे, लकीर डालना, चिह्न डालना।

संयो० क्रि०—देना।

७. एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु इस प्रकार फैलाना जिसमें

बहु कुछ ठक जाय । फैलाकर रखना । जैसे, झूठ पर चादर डालना, मेज पर कपड़ा डालना, सूखने के लिये गोली बोती डालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

६. शरीर पर धारण करना । पहनना । जैसे, घोंगरखा डालना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

१०. किसी के मध्ये छोड़ना । बिम्बे करना । मार देना । जैसे,—
(क) तुम सब काम मेरे ही ऊपर डाल देते हो । (ख) उसका सारा खर्च मेरे ऊपर डाल दिया गया है ।

संयो०—क्रि०—देना ।

११. गर्भपात करना । पेट गिराना । (चोपायों के लिये) ।

संयो० क्रि०—देना ।

१२. (किसी स्त्री को) रख लेना । पत्नी की तरह रखना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

१३. लगाना । उपयोग करना । जैसे, किसी व्यापार में रुपया डालना । १४. किसी के अंतर्गत करना । किसी विषय या वस्तु के भीतर लेना । जैसे,—यह रुपया ब्याह के खर्च में डाल दो । १५. अव्यवस्था धावि उपस्थित करना । बुरी बात घटित करना । मचाना । जैसे,—गड़बड़ डालना, धापति डालना, बिपत्ति डालना । १६. बिछाना । जैसे, खडिया डालना, पलंग डालना, चारा डालना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में भी, समाधि की ध्वनि व्यञ्जित करने के लिये, सकर्मक क्रियाओं के साथ होता है, जैसे, मार डालना, कर डालना, काट डालना, जला डालना, दे डालना, धादि ।

डालफिन—संज्ञा स्त्री० [सं०] ह्वेल मछली का एक भेद ।

डालर—संज्ञा पुं० [सं०] अमेरिका का सिक्का । यह १०० सेंट या टके का होता है । रुपयों में इसका मुख्य विनिमय दर के आधार पर सदा बदलता रहता है । कभी एक डालर तीन रुपए दो आने के बराबर था । संप्रति उसकी दर भारतीय रुपयों में लगभग ४.८७ व. पैसे है ।

डाल्फा—संज्ञा पुं० [सं० डलफ] दे० 'डला', 'डाल' ।

डालिम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दाडिम' [को०] ।

डाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाला] १. डलिया । चंगेरी । २. फल फूल, मेवे तथा खाने पीने की वस्तुएँ जो डलिया में सजाकर किसी के पास सम्मानार्थ भेजी जाती हैं । जैसे,—बड़े दिन में साहब लोगों के पास बहुत सी डालियाँ जाती हैं ।

क्रि० प्र०—भेजना ।

मुहा०—डाली लगाना = डलिया में मेवे धावि सजाकर भेजना ।

डाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाल] दे० 'डाल' ।

डाब(१)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाब' ।—उ०—पाका काबा हूँ गया, जीत्या हारे डाब । अंत काल गाफिल भया, दाबु किससे पाब ।—दाबु०, पृ० २१२ ।

४-३७

डाबड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] पिठवन ।

डाबड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डावरा' ।

डाबड़ी(१)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'डावरी' ।

डावरा—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब ?] [स्त्री० डावरी] लड़का । बेटा । उ०—दशरथ को डावरो सावरो ब्याहे जमककुमारी ।—रघुराज (शब्द०) ।

डावरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डावरा] लड़की । बेटो । कन्या । उ०—
(क) ठाढ़े भए रघुवंशमणि तिमि जनक भूपति डावरी ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) जिन पानि गह्यो हुतो मेरी तबै सब गाय उठीं ब्रज डावरियाँ ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) ।

डास—संज्ञा पुं० [देश०] जमारों का एक प्रोजार जिससे जमड़े के भीतर का रक्त साफ करते हैं ।

डासन—संज्ञा पुं० [सं० दसासन, हिं० डाभ + दासन] बिछाने की चटाई, बल्ल धादि । बिछावन । बिछौना । बिस्तर । उ०—
लोमह धोड़ब लोमह डासन । मिस्नोदर पर जमपुर दास न ।—तुलसी (शब्द०) ।

डासना—क्रि० सं० [हिं० डासन] बिछाना । डालना । फैलाना । उ०—
(क) निज कर डामि नागरिषु छावा । बैठे सहजहि संभु कृपाला ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) डासत ही गइ बीति निसा सब कबहुँ न नाथ नीद भरि सोयो ।—तुलसी (शब्द०)

डासना(१)—क्रि० सं० [हिं० डसना] डसना । काटना । उ०—
डासी वा विसासी बिषयेषु विषयर उठै घाठहूँ पहर विषे विष की लहर सी ।—देव (शब्द०) ।

डासनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डासन] १. खाट । पलंग । चारपाई । २. बिछौना ।

डाह—संज्ञा स्त्री० [सं० दाह] १. जलन । ईर्ष्या । द्वेष । द्रोह । उ०—
इनके मन में धीरों की डाह बड़ी प्रबल थी ।—जी-निवास ग्रं०, पृ० २१२ ।

क्रि० प्र०—करना । रखना ।

२. ताप । जलन । उ०—
पुहकर डाह वियोग, प्रात विरह वस होहि जब । का समझावहि लोग, धनि न धिर पागे रहै ।—रसरतन, पृ० १४ ।

डाहना—क्रि० सं० [सं० दाहन] जलाना । सताना । दिक करना । तंग करना । उ०—
काहें को मोहि डाहव आए रैन देत सुख बाको ?—सूर (शब्द०) ।

डाहल, डाहाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश । त्रिपुर देस [को०] ।

डाही—वि० [हिं० डाह] डाह करनेवाला । ईर्ष्या करनेवाला । ईर्ष्यालु । जैसे,—
वह बड़ा डाही है,

डाहुक—संज्ञा पुं० [सं० दाहुक ? या देह०] १. एक पत्ती जो टिटिहरी के धाकार का होता है और जलाशयों के निकट रहता है । २. चातक । पपीहा ।

डिगार—संज्ञा पुं० [सं० टिङ्गर] १. मोटा आदमी । मोटासा । २. कुष्ठ ।

बबमास। ठग। १. बास। गुलाब। ४. नीच मनुष्य। भिन्न कोटि का व्यक्ति। ५. फेंकना। जेपण (को०)। ६. तिरस्कार (को०)।

डिगर^२—संज्ञा पुं० [देश०] वह काठ जो नटसट चोगियों के गले में बांध दिया जाता है। टिगुरा। उ०—कबिरा मासा काठ की पहिरी मुगद डुलाय। सुमिरन की सुध है नहीं ज्यों डिगर बांधी गाय।—कबीर (शब्द०)।

डिगल^१—वि० [सं० डिङ्गर] नीच। दूषित।

डिगल^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] राजपूताने की वह भाषा जिसमें भाट और चारण काव्य और बंशावली आदि लिखते चले आते हैं।

डिगसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बीड़।

विशेष—इसके पेड़ कासिया एवं तथा चटगाँव और बर्मा की पहाड़ियों में बहुत होते हैं। इससे बहुत बढ़िया गोंद या राल निकलती है। तारपीन का तेल भी इससे निकलता है।

डिडस—संज्ञा पुं० [सं० टिडिडा] डिड या टिडसी नाम की सरकार।

डिडिक—संज्ञा पुं० [सं० डिडिक] हंसोड भिलारी (को०)।

डिडिभ—संज्ञा पुं० [सं० डिडिभ] जलसर्प। डेडहा (को०)।

डिडिम—संज्ञा पुं० [सं० डिडिम] १. प्राचीन काल का एक बाजा जिसपर चमड़ा मड़ा होता था। डिमडिमी। हुगडुगिया। २. करोदा। कृष्णपाक फल।

यो०—डिडिमयोव। डिडिमनाह।

डिडिमी—संज्ञा स्त्री० [हि० डिडिमी] दे० 'डिडिम'।

डिडिर—संज्ञा पुं० [सं० डिडिर] १. समुद्रफेन। २. पानी का भाग।

डिडिर मोदक—संज्ञा पुं० [सं० डिडिरमोदक] १. गुंज। गाजर। २. लहसुन।

डिडिश—संज्ञा पुं० [सं० डिडिश] टिड या टिडसी नाम की सरकार। डेडसी।

डिडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मछली फँसाने का चारा। (विशेषतः) छोटी मछली।

डिडीर—संज्ञा पुं० [सं० डिडीर] दे० 'डिडिर'।

डिड—संज्ञा पुं० [सं० डिड] १. हलचल। पुकार। बावला। २. भयध्वनि। ३. दंगा। लड़ाई। ४. धंका। ५. फेफड़ा। फुपफुम। ६. लोहा। पिलही। ७. कीड़े का छोटा बच्चा। ८. आरंभिक अवस्था का भूगु। ९. गर्भाशय (को०)। १०. कंदुक। गेंद (को०)। ११. भय। डर। भीति (को०)। १२. शरीर (को०)। १३. सद्योजात शिशु वा प्राणी (को०)। १४. मूर्ख (को०)।

डिडयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० डिडयुद्ध] दे० 'डिडाह्व' (को०)।

डिडाशय—संज्ञा पुं० [सं० डिड + आशय] गर्भाशय।

डिडाह्व—संज्ञा पुं० [सं० डिड + आह्व] सामान्य युद्ध। ऐसी लड़ाई जिसमें राजा आदि सम्मिलित न हों।

डिडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० डिडिका] १. मरमाती स्त्री। २. सोना-पाठा। श्योनाक। ३. फेन। बुलबुला। बुल्ला (को०)।

डिभि^१—संज्ञा पुं० [सं० डिभि] १. बच्चा। छोटा बच्चा। उ०—झंझ, हुं डिभि, सो न बुझिए बिबंघ अब घबलंघ नाहीं थाव

राखत हों तेरिये।—तुलसी (शब्द०)। २. पशु का छोटा बच्चा (को०)। ३. मूर्ख या जड़ मनुष्य। ४. एक प्रकार का उदर रोग जो धीरे धीरे बढ़ता हुआ अंत में बहुत भयानक हो जाता है।

डिभि^२—संज्ञा पुं० [सं० डिभि] १. घाड़ंबर। पालंड। २. अभिमान। घमंड। उ०—करे नहि कछु डिभि कबहूँ, डारि में तै खोइ।—जग० बानी, पृ० ३५।

डिभक—संज्ञा पुं० [सं० डिभक] १. [स्त्री० डिभिका] बच्चा। छोटा बच्चा। २. पशु का छोटा बच्चा (को०)।

डिभचक्र—संज्ञा पुं० [सं० डिभचक्र] स्वरोदय में वर्णित मनुष्यों के शुभाशुभ फल का सूचक एक तांत्रिक चक्र (को०)।

डिभा—संज्ञा स्त्री० [सं० डिभा] छोटी बालिका। नन्हीं बच्ची (को०)।

डिभिया—वि० [सं० डिभ, हि० डिभ] घाड़ंबर रखनेवाला। पालंडी। २. अभिमानी। घमंडी।

डिडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिडिडा] टिड या टिडसी नाम की सरकार।

डिकामाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जो मध्य भारत तथा दक्षिण में होता है।

विशेष—इसमें एक प्रकार की गोंद या राल निकलती है जो होंग की तरह घृणी रोग में दी जाती है। इसके लगाने से घाव जल्दी सूखता है और उसपर मक्खियाँ नहीं बैठती।

डिककरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवा औरत। युवती (को०)।

डिकी—संज्ञा स्त्री० [हि० घक्का] १. सींगों का घक्का। (बीसे मेढे देते हैं)। २. झपट। वार। आक्रमण।

डिकटेटर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मनुष्य जिसे कोई काम करने का पूरा अधिकार प्राप्त हो। प्रधान नेता या पथप्रदर्शक। शासक। २. वह मनुष्य जिसे शासन की अबाधित सत्ता प्राप्त हो। निरंकुश शासक। उ०—देवता रूप वे डिक्टेटर, लोहू से जिनके हाथ सने।—मानव०, पृ० ५६।

विशेष—डिकटेटर दो प्रकार के होते हैं—(१) राष्ट्रपक्ष का और (२) राज्य या शासनपक्ष का। जब देश में संकट उपस्थित होता है तब देश या राष्ट्र उस मनुष्य को, जिसपर उसका पूरा विश्वास होता है, पूर्ण अधिकार दे देता है कि वह जो चाहे सो करे। यह व्यवस्था संकट काल के लिये है। जैसे, सं० १९८०-८१ में महात्मा गांधी राष्ट्र के डिक्टेटर या शास्ता थे। पर राज्य या शासनपक्ष का डिक्टेटर वही होता है जो बड़ा जबरदस्त होता है। जिसका सब लोगों पर बड़ा आतंक थाया रहता है। जैसे, किसी समय इटली का डिक्टेटर मुसोलिनी था।

यो०—डिकटेटरशिप = निरंकुश शासन। अधिनायकवाद।

डिकटेशन—संज्ञा पुं० [सं०] वह वाक्य जो लिखने के लिये बोला जाय। इमला।

डिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आज्ञा। हुक्म। फरमान। २. न्यायालय की वह आज्ञा जिसके द्वारा सड़नेवाले पदों में से किसी एक

को किसी संपत्ति का अधिकार दिया जाय। उ०—अदालत डिकी न दे।—अभेयन०, भा० २, पृ० ३७३। वि० दे० 'डिगरी'।

डिक्शनरी—संज्ञा पु० [अं०] वह लिखा हुआ कागज जिसमें किसी मजिस्ट्रेट के सामने कोई प्रेस खोलने, रखने या कोई समाचार-पत्र या पत्रिका छापने और निकालने की जिम्मेवारी ली या घोषित की जाती है। जैसे,—(क) उन्होंने अपने नाम से प्रेस खोलने का डिक्शनरी दिया है। (ख) वे अग्रदूत के मुद्रक और प्रकाशक होने का डिक्शनरी देनेवाले हैं।

डिक्शनरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] शब्दकोश। अभिधान।

डिगंबर^(५)—वि० [सं० दिगम्बर] वस्त्ररहित। नग्न। दिगंबर। उ०—अंबर छोड़ दिगंबर होई। उहि अगमन मग निवहै सोई।—रसरतन, पृ० २४६।

डिगना—क्रि० प्र० [सं० टिक (=हिलना। डोलना)] १. हिलना। टलना। खिसकना। हटना। सरकना। जगह छोड़ना। जैसे,—उस भारी पत्थर को कई आदमी उठाने गए पर वह जरा भी न डिगा। उ०—असवार डिगत बाहन फिरें, भिरें भूत भैरव विकट।—हम्मीर०, पृ० ५८।

संयो० क्रि०—जाना।

२. किसी बात पर स्थिर न रहना। प्रतिज्ञा छोड़ना। संकल्प वा सिद्धांत पर धड़ न रहना। बात पर जमा न रहना। विचलित होना।

संयो० क्रि०—जाना।

डिगमिगाना^(१)—क्रि० प्र० [हि० डगमगाना] दे० 'डगमगाना'। उ०—रणधीर के जाने से ये सभा ऐसी डिगमिगाने लगी थी जैसे हाथी के चढ़ने से नाव डिगमिगाने लगी है।—श्रीनिवास अं०, पृ० ८६। (ख) डिगमिगात पग चलन दुखारो। यही लकुट अथ बेति सहारो।—शकुंतला, पृ० ८२।

डिगमिगाना^(२)—क्रि० प्र० १. हिलाना। डिगाना। २. विचलित करना।

डिगरी—संज्ञा स्त्री० [अं० डिग्री] १. विश्वविद्यालय की परीक्षा में उत्तीर्ण होने की पदवी।

क्रि० प्र०—मिलना।—लेना।

२. अंश। कला। समकोण का षष्ठ भाग।

डिगरी^(३)—संज्ञा स्त्री० [अं० डिग्री] अदालत का वह फंसला जिसके जरिए से किसी फरीक को कोई हक मिलता है। न्यायालय की वह आज्ञा जिसके द्वारा लड़नेवाले पक्षों में से किसी को कोई स्वत्व या अधिकार प्राप्त होता है। जैसे,—उस मुकदमे में उसकी डिगरी हो गई।

यो०—डिगरीदार।

मुहा०—डिगरी जारी कराना=फंसले के मुताबिक किसी जायदाद पर कब्जा वगैरह करने की कार्रवाई कराना। न्यायालय के निर्णय के अनुसार किसी संपत्ति पर अधिकार करने का उपाय कराना। डिगरी देना=अभियोग में किसी के पक्ष में निर्णय करना। फंसले के जरिए से हक कायम

करना। डिगरी पाना=अपने पक्ष में न्यायालय की आज्ञा प्राप्त करना। जर डिगरी=वह रुपया जो अदालत एक फरीक से दूसरे फरीक को दिखावे।

डिगरीदार—संज्ञा पु० [अं० डिग्री + फा० दार] वह जिसके पक्ष में डिगरी हुई हो।

डिगलाना^(५)—क्रि० प्र० [हि० डग, डिगना] डगमगाना। हिलना। डोलना। लड़खड़ाना।

डिगलाना^(६)—क्रि० प्र० [हि० डिगना] डिगाना। चालित करना।

डिगवा—संज्ञा पु० [देश०] एक बिड़िया का नाम।

डिगाना—क्रि० प्र० [हि० डिगना] १. हटाना। खसकाना। जगह से टालना। सरकाना। हिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. बात पर जमा न रहना। किसी संकल्प या सिद्धांत पर स्थिर न रहना। विचलित करना। उ०—सुर नर मुनि देव डिगाय करे यह सबकी हांसी।—पलटू०, पृ० २५।

संयो० क्रि०—देना।

डिगुलाना^(५)—क्रि० प्र० [हि० डग] दे० 'डिगलाना'। उ०—टिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब अज बेहाल। कपि किसोरी बरसि कै खरै सजाने लाल।—विहारो (शब्द०)।

डिगगी^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० बोधिका, बंग० दीघी (=बावली या तालाब)] पोखरा। बावली। जैसे, लालडिगगी।

डिगगी^(२)—संज्ञा स्त्री० [देश०] हिम्मत। साहस। जिगरा।

डिजाइन—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. तर्ज। बनावट। लाका।

डिटेक्टिव—संज्ञा पु० [अं०] जासूस। मुकबिलर। गुप्तचर। भेदिया।

यो०—डिटेक्टिव पुलिस=वह पुलिस जो छिपकर मामलों का पता लगावे। छुफिया पुलिस।

डिठारा^(१)—वि० [हि० डीठ + धारा (प्रत्यय०)] [वि० डिठारी] दृष्टिवाधा। देखनेवाला। झाँखवाला। जिसकी आँख से सूँके।

डिठि^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि'। उ०—अधर सुधा मिठी, दूधे धवरि डिठि, मधुसम मधुरे बानि रे।—विद्यापति, पृ० १०३।

डिठियार, डिठियारा^(१)—वि० [हि०] दे० 'डिठार'। उ०—(क) तुलसी स्वारथ साभूहो परमारथ तन पीठि। अध कदै दुख पाइहै डिठियारो केहि डीठि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अटकर सेती अंध डिठियारो राह बतावे।—पलटू०, पृ० ७४।

डिठौना—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'डिठोना'। उ०—सब बचाती हैं सुतों के गात्र। किंतु बेटी हैं डिठौना मात्र।—साकेत, पृ० १८०।

डिठोहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डीठ + हुरना अथवा देश०] एक जंगली पेड़ के फल का बीज जिसे तागे में पिरोकर बच्चों के गले में उन्हें नजर से बचावे के लिये पहनाते हैं।

डिठोष—दे० 'अजरबट्ट' या 'नजरबट्ट'।

डिठोना—संज्ञा पु० [हि० डीठ] काजल का टीका जिसे लड़कों के मस्तक पर नजर से बचाने की स्त्रियाँ लगा देती हैं। उ०—(क) पहिरायो पुनि बसव रंगीना। दीन्हों आल डिठोना

नीला।—रघुराज (सम्ब०)। (ब) सलि कंजन को परम सलोना भाल डिठोना देही। मनु पंकज कोना पर बैठो बलि-छोना मनु लेही।—रघुराज (सम्ब०)।

डिडि—वि० [सं० दृढ़] दे० 'दृढ़'। उ०—नहि बाल बृद्ध किस्सोर तुम पुष्प समान पै डिड खरो।—पु० रा०, २। ५१०।

डिडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुहसा।

डिडिकारी, डिडिकारी—संज्ञा स्त्री० [धनु०] पशुओं का गुरना।

डिडई—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

डिडूषा—संज्ञा पुं० [देश०] डिडई नाम का धान जो अगहन में तैयार होता है।

डिडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जिसमें युवावस्था में ही बाल पकने लगते हैं।

डिडियाना—क्रि० घ० [धनु०] शोक के भावेग में गाय का रंभाना। उ०—परी घरनि धुकि यों बिलसाइ। ज्यों मृतबच्छ गाइ डिडियाइ।—नंद० ग्रं०, पु० २४२।

डिडि—वि० [सं० दृढ़, प्रा० डिड] दृढ़। पक्का। मजबूत। उ०—सुनि दुंदुभि धुंकार बराबर बरबर बुल्लिय। डिड न रहे डड्डार, बाघ बनबर बन बुल्लिय।—सुखान०, पु० २६।

डिडिय(५)—वि० [सं० दृढ़] दे० 'डिड'। उ०—सेस जोस लधि भाइ डिडिय डाठार करविकय।—रसरतव, पु० १०४।

डिडाना(५)—क्रि० सं० [हि० डिड] १. पक्का करना। मजबूत करना। २. ठानना। निश्चित करना। मन में दृढ़ विचार करना।

डिडिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] अत्यंत लालच। लालसा। कामना। लृप्णा। उ०—संप्रह करने की लालसा प्रबल हुई तो जोरी से, जोरी से, छल से, लुभावम से, कमाने की डिडिया पड़ेगी और खाने खर्चने के नाम से जान निकल जायगी।—श्रीनिवास दास (शब्द०)।

डिट्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. काठ का बना हाथी। २. विशेष लक्षणों-वाला पुरुष।

विशेष—सबिले, सुंदर, युवा और सर्वशास्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुष को डिट्थ कहते हैं।

डिनर—संज्ञा पुं० [सं०] रात का भोजन। उ०—कहो, सुना तुमने भी है कुछ, सेठ हमारे रामचंद्र ने, प्राज दिया हम सब लोगों को, है फरपो में एक डिनर।—मानव, पु० १८।

डिपटी—संज्ञा पुं० [सं० डेपुटी] नायब। सहायक। सहकारी। जैसे, डिपटी कलक्टर, डिपटी पोस्टमास्टर, डिपटी इंस्पेक्टर।

डिपाजिट—संज्ञा पुं० [सं०] बरोहर। अमानत। तहवील।

डिपार्टमेंट—संज्ञा पुं० [सं०] मुहकमा। सरिश्ता। विभाग। गुदाम। अमानतखाना। जखीरा। भांडार। जैसे, बुकडिपो।

डिप्टी—संज्ञा पुं० [सं० डिपटी] दे० 'डिपटी'। जैसे, डिप्टी कंट्रोलर।

डिप्थीरिया—संज्ञा पुं० [सं०] छोटे बच्चों का एक संक्रामक रोग

जिसे कंठरोहिणी कहते हैं। उ०—कीर्ति का छोटा भाई अकस्मात् एक विचित्र रोग का शिकार बन गया है। डाक्टरों ने कहा डिप्थीरिया हो गया है। धीरतों ने कहा डड्डा डड्डा।—संन्यासी, पु० १६०।

डिप्लोमा—संज्ञा पुं० [सं०] विद्यासंबन्धिनी योग्यता का प्रमाणपत्र। सनद।

डिप्लोमेसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह चातुरी या कौशल जो कार्यसाधन के लिये, विशेषकर राजनीतिक कार्यसाधन के लिये किया जाय। कूटनीति। २. स्वतंत्र राष्ट्रों में आपस का व्यवहार संबंध। राजनीतिक संबंध।

डिप्लोमेट—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो डिप्लोमेसी या कूटनीति में विपुण हो। कूटनीतिज्ञ।

डिफेंस—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षा। बचाव। सुरक्षा। २. सफाई (पक्ष संबंधी)।

डिफेंमेशन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी की अप्रतिष्ठा या अपमान करने के लिये गृहित शब्दों का प्रयोग। ऐसे गंदे शब्दों का प्रयोग जिससे किसी की मानद्वानि या नेहज्जती होती हो। हुतक हज्जत। जैसे,—इधर महीनों से उनपर डिफेंमेशन केस चल रहा है।

डिबिया—संज्ञा स्त्री० [हि० डिब्बा + इया (सध्वयंक प्रत्यय०)] वह छोटा ढक्कनदार बरतन जिसके ऊपर ढक्कन अच्छी तरह जमकर बैठ जाय और जिसमें रखी हुई चीज हिलाने बुलाने से न गिरे। छोटा डिब्बा। छोटा संपुट। जैसे, सुरती की डिबिया।

डिबिया+—संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा'। उ०—राम, राम रतन लागी डिबिया।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पु० १६७।

डिबिया टाँगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] कुश्ती का एक पेश।

विशेष—यह पेश उस समय किया जाता है जब जोड़ (बिपक्षी) कमर पर होता है और उसका दाहिना हाथ कमर में लिपटा होता है। इसमें बिपक्षी को दाहिने हाथ से जोड़ का बायाँ हाथ कमर के पास से दाहिने जाँघ तक खींचते हुए और बाएँ हाथ से लंगोट पकड़ते हुए बाएँ पैर से भीतरी टाँग मारकर गिराते हैं।

डिबेंचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह कागज या दस्तावेज जिसमें कोई अक्सर किसी कंपनी या म्युनिसिपैलिटी आदि के लिए हुए ऋण को स्वीकार करता है। ऋण स्वीकारपत्र। २. भाल की रगतनी के महसूल का खस्रा। परमट का बसीका। बहुरी।

डिब्बा—संज्ञा पुं० [तैलंग या सं० डिम्ब (=पोला)] १. वह छोटा ढक्कनदार बरतन जिसके ऊपर ढक्कन अच्छी तरह जमकर बैठ जाय और जिसमें रखी हुई चीज हिलाने बुलाने से न गिरे। संपुट। २. रेलगाड़ी की एक गाड़ी। ३. पसली के बंद की बीमारी जो प्रायः बच्चों को हुषा करती है। पलई चलने की बीमारी।

डिब्बी—संज्ञा स्त्री० [हि० डिब्बा] दे० 'डिबिया'।

डिभगना(५)—क्रि० सं० [देश०] मोहित करना। मोहना। छलना।

ठहकना । उ०—दुरबीचन अभिमानहि गबऊ । पंडव केर मरम नहि मयऊ । माया के डिमये सब राजा । उत्तम मध्यम बाजब बाजा ।—कवीर (शब्द०) ।

डिम—संज्ञा पु० [सं०] नाटक या दृश्य काव्य का एक भेद ।

विशेष—इसमें माया, ईशजाल, लड़ाई और क्रोध आदि का समावेश विशेष रूप से होता है । यह रौद्र रस प्रधान होता है और इसमें चार धंका होते हैं । इसके नायक देवता, गंधर्व, यक्ष आदि होते हैं । भूतों और पिशाचों की लीला इसमें दिखाई जाती है । इसमें शांत, शृंगार और हास्य के तीनों रस न माने चाहिए ।

डिमडिम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] डमक से निकलनेवाली धावाज । उ०—डिम डिम डमरु बजा निज कर में नाचो नयन तृतीय तरेरे ।—रेणुका, पु० ३ ।

डिमडिमी—संज्ञा स्त्री० [सं० डिण्डिम] कमड़ा मड़ा हुआ एक बाजा जो लकड़ी से बजाया जाता है । डुगडुगिया । डुग्गी । उ०—डिमडिमी पटह डोल डक बीणा सुदंग उमंग बंगतार ।—सूर (शब्द०) ।

डिमरेज—संज्ञा पु० [सं०] १. बंदरगाह में जहाज के ज्यादा ठहरने का हर्जाना । २. स्टेशन पर आए हुए माल के अधिक दिन पड़े रहने का हर्जा, जो पानेवाले को देना पड़ता है ।

क्रि० प्र०—सगना ।

डिमाई—संज्ञा स्त्री० [सं०] कागज या छापने के कल को एक नाप जो १८" × २२" इंच होती है ।

डिमाक^④—संज्ञा पु० [सं० दिमाग] मस्तिष्क । दिमाग । सिर । उ०—डिमाक नाक चुन के कि नाक नाक सों हरे ।—पद्माकर प्र० पु० २८४ ।

डिमोक्रैसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जनतान्त्रिक शासन ।

डिल्ला^१—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की घास जो गीली भूमि में उत्पन्न होती है । मोथा ।

डिल्ला^२—संज्ञा पु० [सं० दल] ऊन का लच्छा ।

डिल्लारी—वि० [प्रा० दिलावर या दिलेर] जवाँमंद । शूर । वीर ।

डिल्लारा—वि० [हि० डील] बड़े कद का । डीलडोल वाला । उ०—बलवर्क भलवर्क ललवर्क उमंडे । बुलारेहु के हैं डिलारे घुमंडे ।—पद्माकर प्र० पु० २८० ।

डिलिबरी, डिलेबरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डाकखानों में आई हुई चिट्ठियों, पारसलों, मनीआर्डरों की बंटाई जो नियत समय पर होती है । २. किसी चीज का बाँटा या दिया जाना । ३. प्रसव होना ।

डिल्ला^३—संज्ञा पु० [सं०] १. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ और अंत में सगण होता है । जैसे,—राम नाम निशि वासर गावहु । जग लेन कर फल जग पावहु । सीख हमारी जो हिय लावहु । जन्म मरण के फंद नसावहु । २. एक बर्णबुस का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो सगण (॥ ५) होते हैं । इसके अन्य नाम तिलका, तिल्मा और तिल्जाना

भी हैं । जैसे,—सखि वाल खरो । शिव भाल खरो । भमरा हुरवे । तिलका निरखे ।

डिल्ला^४—संज्ञा पु० [हि० डोला] बैलों के कंधों पर उठा हुआ कुबड़ । कुम्वा । ककुत्थ ।

डिविजनल—वि० [सं०] डिवीजन का । उस भूभाग, कमिश्नरी या डिस्ट्रिक्ट का जिसके अंतर्गत कई जिले हों । जैसे, डिवीजनल कमिश्नर ।

डिविडेड—संज्ञा पु० [सं०] वह लाभ या मुनाफा जो जायंट स्टॉक कंपनी या संमिलित पूंजी से चलनेवाली कंपनी को होता है, और जो हिस्सेदारों में, उनके हिस्से के मुताबिक बाँटा जाता है । जैसे,—कृष्ण काटन मिल ने इस बार अपने हिस्सेदारों को पाँच सैकड़े डिविडेड बाँटा ।

डिवीजन—संज्ञा पु० [सं०] १. वह भूभाग जिसके अंतर्गत कई जिले हों । कमिश्नरी । जैसे, बनारस डिवीजन । २. विभाग । श्रेणी । जैसे,—वह मैट्रिक्युलेशन परीक्षा में फर्स्ट डिवीजन पास हुआ ।

डिसकाउंट—संज्ञा पु० [सं०] वह कमी जो व्यवहार या लेनदेन में किसी वस्तु के मूल्य में की जाती है । बट्टा । दस्तूरी । कमीशन ।

डिसमिस—वि० [सं०] १. बरखास्त । २. खारिज । जैसे, अपील डिसमिस करना ।

डिसलायल—वि० [सं०] भराजभक्त । राजद्रोही । उ०—डिस-सायल ह्रिदुन कहत कहाँ मुक ते लोग ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पु० ७६५ ।

डिसीप्लिन—संज्ञा पु० [सं०] १. नियम या कायदे के अनुसार चलने की शिक्षा या भाव । अनुशासन । २. आज्ञानुवर्तित्व । नियमानुवर्तित्व । फरमाबंदारी । ३. व्यवस्था । पद्धति । ४. शिक्षा । तालीम । ५. बंद । सजा ।

डिस्ट्रायर—संज्ञा पु० [सं०] नाशक जहाज । वि० दे० 'टारपीडो बोट' ।

डिस्ट्रिक्ट—संज्ञा पु० [सं० डिस्ट्रिक्ट] दे० 'डिस्ट्रिक्ट' ।

डिस्ट्रिक्ट—संज्ञा पु० [सं०] किसी प्रदेश या सुबे का वह भाग जो एक कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो । जिला ।

यौ०—डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट । डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'जिला बोर्ड' ।

डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'जिला मजिस्ट्रेट' ।

डिस्पेंसरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दवाखाना । औषधालय । उ०—पोस्ट आफिस से पहले यहाँ एक डिस्पेंसरी खुलवाना जरूरी था ।—मैला०, पु० ७ ।

डिस्पेंसिया—संज्ञा पु० [सं०] मंदगति । अग्निमांश । पाचन शक्ति की कमी ।

डिस्ट्रिब्यूट (करना)—क्रि० सं० [सं०] छापेखाने में कंपोज किए हुए टाइपों (अक्षरों) को कैलों (खानों) में अपने स्थान पर रखना ।

डिस्ट्रिब्यूटर—संज्ञा पु० [सं०] १. कंपोज टाइपों को अपने स्थान पर रखनेवाला । २. वितरक । वितरण करनेवाला ।

डिहरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ६००० गाँवों का एक मान जिसके अनुसार कामीनों (गलोचों) का दाम लगाया जाता है।

डिहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घ, हि० डीह, डीह] कच्ची मिट्टी का ऊँचा बरतन जिसमें अनाज भरा जाता है।

डींग—संज्ञा स्त्री० [सं० डीह (= उड़ान)] बंबी चौड़ी बात। लूब बड़ बड़कर कही हुई बात। अपनी बड़ाई की झूठी बात। अविमान की बात। गेलो। सिट्ट।

क्रि० प्र०—उड़ाना। उ०—माकू घुटना फूटे भाँख। मूई डींग उड़ा रही है जमान भर की।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५१।—मारना।—हँकना।

मुहा०—डींग की लेना = गेलो बघारना।

डीक—संज्ञा स्त्री० [देश०] झिल्ली या फाँफो जो भाँख पर पड़ जाती है। जाला। मोतियाबिब।

डीकरा—संज्ञा पुं० [सं० डिम्बक] पुत्र। बेटा।

डीकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्बक] बेटी। कन्या (डि०)।

डीगंबर—वि० [हि०] दे० 'दिगंबर'। उ०—डीगंबर के गाँव में चौकी का क्या काम।—मलुक०, पृ० ३३।

डीठ—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि, प्रा० दिट्ठि, डिट्ठि] १. दृष्टि। नजर। निगाह। उ०—गुप्त शब्दन कूँ ग्रहण करि विषयन कूँ दे पीठ। गोविंद रूपो गदा गहि मारो करमन डीठ।—दया० बानो, पृ० ६।

क्रि० प्र०—डालना।—पसारना।

मुहा०—डीठ बुराना = नजर खिपाना। सामने न ताकना। डीठ खिपाना = दे० 'डीठ बुराना'। डीठ जोड़ना = चार भाँखें करना। सामने ताकना। डीठ बाँधना = नजरबंद करना। ऐसी माया या जादू करना जिसमें सामने की वस्तु ठीक ठीक न सूझे। डीठ मारना = नजर डालना। चितवन से चित मोहित करना। डीठ रखना = नजर रखना। निरीक्षण करना। डीठ लगाना = नजर लगाना। किसी अच्छी वस्तु पर अपनी दृष्टि का बुरा प्रभाव डालना।

डौ०—डीठबंध।

२. देखने की शक्ति। ३. ज्ञान। सूझ। उ०—दई पीठि बिनु डीठि हो, तू विषय विलोचन।—तुलसी (शब्द०)।

डीठना—क्रि० प्र० [हि० डीठ + ना (प्रत्य०)] दिखाई देना। दृष्टि में आना।

डीठना—क्रि० प्र० [हि० डीठ + ना (प्रत्य०)] १. देखना। दृष्टि डालना। उ०—रूप गुरु कर चले डीठा। चित समाह होइ चित पईठा।—आयसी (शब्द०)। २. बुरी दृष्टि लगाना। नजर लगाना। जैसे,—फल से बच्चे को बुझार आ गया, किसी ने डीठ दिया है।

डीठबंध—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिबन्ध] १. ऐसी माया या जादू जिससे सामने की वस्तु ठीक ठीक न सुझाई दे। नजरबंदी। इंद्रजाल। २. कुछ का कुछ कर दिखानेवाला। इंद्रजाल करनेवाला। जादूगर।

डीठि—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'डीठ'। उ०—कोउ प्रिय रूप नयन भरि उर में भरि भरि ध्यावति। मधुमाक्षी लौ डीठि दुहैं दिसि अति छवि पावति।—नंद० प्र०, पृ० ३०।

डीठिमुठि—संज्ञा स्त्री० [हि० डीठ + मुठ] नजर। टोना। जादू। उ०—रोवनि धोवनि अनखनि अनरनि डिठिमुठि निठुर नसाइहो।—तुलसी (शब्द०)।

डीझ—संज्ञा पुं० [हि० डेड़हा] दे० 'डेड़हा'। उ०—डीझ समान का सेव गनीवे।—नट०, पृ० १५५।

डीन—संज्ञा स्त्री० [सं०] उड़ान। पक्षियों की गति।

विशेष—ऊपर नीचे आदि इसके २६ भेद किए गए हैं।

डीनडीनक—संज्ञा पुं० [सं०] उड़ान के २६ भेदों में से एक। बीच में रुक रुककर उड़ना [को०]।

डीपो—संज्ञा पुं० [सं० डिपो]। उ०—पहुचानोगे क्या लाकी वर्दी वालों में। हर एक जगह पर इनके डीपो डरे हैं।—मिशन०, पृ० १८८।

डीबुआ—संज्ञा पुं० [देश०] पैसा। स०—बबुआ न आवा, मोर भेयन न पावा, याक तुपक को न लावा, गाँठि डीबुआ न लावा है।—सूदन (शब्द०)।

डीमडाम—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब (= धूमधाम)] १. ठाट। ऐँठ। तपाक। ठसक। ग्रहंकार। उ०—पाग पेंच खेंच दे लपेट फट फेंट बाँध ऐँके ऐँडे आव, पैने दूटे डीमडाम के।—हृदयराम (शब्द०)। २. धूमधाम। ठाटबाट। आडवर। उ०—दुंदुभी बजाई ढोल ताल करनाई बड़ो ऊँधम मचाई छल कीने डीमडाम को।—हृदयराम (शब्द०)।

डील—संज्ञा पुं० [हि० टीला] १. प्राणियों के शरीर की ऊँचाई। शरीर का विस्तार। कद। उठान। जैसे,—बहु छोटे डील का आदमी है। उ०—मई यदपि नैसुक दुबराई। बड़े डील नहि देत दिखाई।—शकुंतला, पृ० ३१।

डौ०—डील डील = (१) देह की लंबाई चौड़ाई। शरीरविस्तार। (२) शरीर का ढाँचा। आकार। आकृति। काठी। डील डील = दे० 'डीलडोल'। उ०—होउ बंस सुद्ध प्रकासु। बड़ि डील डील सु जासु।—ह० रासो, पृ० १२५।

२. शरीर। जिस्म। देह। जैसे,—(क) अपने डील से उसने हतने रुपए पैदा किए। (ख) उनके डाल से किसी की बुराई नहीं हो सकती। ३. व्यक्ति। प्राणी। मनुष्य। जैसे,—सो डील के लिये भोजन चाहिए। उ०—जेते डील लेते हाथी, तेतेई खवास सापी, कंचन के कुंडेल किरोट पुंज छायो है।—हृदयराम (शब्द०)।

डीला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नरकट जो प्रायः पश्चिमोत्तर भारत में पाया जाता है।

डीवट—संज्ञा स्त्री० [हि० दीवट] दे० 'दीवट'। उ०—हुपूर यह पुरावे फैशन की डीवट तो हटाइए। लेंप मँगवाइए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५६।

डीह—संज्ञा पुं० [प्रा० देह] १. गाँव। आबादी। बस्ती। २. उजड़े हुए गाँव का टीला। उ०—गतिहीन पशु सा पड़ा पड़ा ठहकर

बैसे बन रहा डीह । —कामायनी, पृ० १४५ । १.
ग्राम देवता ।

डीहदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० डीह + फा० दारी] एक तरह का हक
जो उन जमींदारों को मिलता है जो अपनी जमीन बेच डालते
हैं । ज़मींदार उनको गांव का कोई भंडा दे देता है जिससे
उनका निर्वाह हो ।

डुंगा—संज्ञा पुं० [सं० दुङ्ग (= ऊँचा)] १. ढेर । घाटाला । उ०—
धर्ती स्वर्ग असूक्त भा सबहुँ न धाग बुझाय । उठहि बज्य जरि
डुंग वे धूम रह्यो जग छाया ।—जायसी (शब्द०) २. टीला ।
भीटा । पहाड़ी ।

डुंडा—संज्ञा पुं० [सं० या स्कन्ध (= तना)] १. ठूँठ । पेड़ों की
सूखी डाल जिसमें पत्ते ग्रादि न हों । उ०—देव पू धनंग ग्रंग
होमि के भसम संग ग्रंग ग्रंग उमह्यो भलैबर ज्यो डुंड में ।—
देव (शब्द०) । २. शिररहित ग्रंग । धड़ । उ०—उडि मुंड
परत कहुँ ह्य सु मुंड । कहुँ ह्य चरन कहुँ परिय मुंड ।
—सुजान०, पृ० २२ ।

डुंडु—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुम] दे० 'डुंडुम' ।

डुंडुभ—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुभ] पानी में रहनेवाला साँप जिसमें बहुत
कम विष होता है । डेढ़हा साँप । ड्योड़ा साँप ।

डुंडुम—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुम] दे० 'डुंडुम' ।

डुंडुल—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुल] छोटा उल्लू ।

डुंडुक—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुक] दे० 'डोहक' (को०) ।

डुंब—संज्ञा पुं० [सं० डुम्ब, देशी] डोम (को०) ।

डुंबर—संज्ञा पुं० [सं० डुम्बर] डंबर । घाटंबर ।

डुंक—संज्ञा पुं० [अनु०] घूँसा । मुक्का ।

डुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० टुकड़ी] दो जोड़ों की बग़ी । उ०—खुद
डुकड़ी पर चढ़ के निकलती थी ।—सीर कु०, पृ० १४ ।

डुकाडुकी—संज्ञा स्त्री० [हि० डुकना] १. झालमिचीनी । डुकीवल ।
डुकाडुकी । उ०—मति गह्वर तहँ बज के बाल । डुकाडुकी
सेलें बहुकाल ।—नंद० ग्रं०, २६२ ।

डुकिया—संज्ञा स्त्री० [हि० डोका] दे० 'डोकिया' ।

डुकियाना—क्रि० स० [हि० डुक] घूँसों से मारना । घूँसा लगाना ।

डुक्का डुक्की(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] घूँसेबाजी । घापस में घूँसों की
मार । उ०—डुक्का डुक्की होन लगी ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २७ ।

डुगडुगाना—क्रि० स० [अनु०] किसी चमड़ा मढ़े बाजे को लकड़ी
से बजाना ।

डुगडुगी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चमड़ा मढ़ा हुआ एक छोटा बाजा ।
डोंगी । डुगी । उ०—डुगडुगी सहर में बाजी हो ।—कबीर
श० भा० २, पृ० १४१ ।

क्रि० प्र०—बजाना ।—फेरना ।

मुहा०—डुगडुगी पीटना=डोंगी बजाकर घोषित करना । मुनादी
करना । चारों ओर प्रकट करना । डुगडुगी फेरना=दे०
'डुगडुगी पीटना' । उ०—घापने पन्नावलंबन प्रव करके विषवे-
स्वर के द्वार पर भी डुगडुगी फेर दी थी जिसको हमसे

सात्कार्य करना हो पहले जाकर बहु पत्र देल ले ।—भारतेंदु
ग्रं०, भा० २, पृ० ५७४ ।

डुगगी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'डुगडुगी' ।

डुचना—क्रि० प्र० [हि० डूबना] डूबना । डुकता न होना । उ०—
नाचता है सुदखोर जहाँ कहीं व्याध डुचता ।—कुकुर०,
पृ० १० ।

डुडला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे घूदवा भी
कहते हैं ।

डुङ्गा—संज्ञा पुं० [सं० दादुर] मेंढक ।

डुङ्का—संज्ञा पुं० [देश०] बान के पीछों का एक रोग ।

डुडुहा—संज्ञा पुं० [हि० डड़ि] खेत में दो नालियों (बरहों) के
बीच की मेंढ ।

डुपटना—क्रि० स० [हि० दो + पट] डुनना । डुनियाला । उ०—
मन्हुवाइ उन पहिराइ भूषन वसन सुंदर डुपटि के ।—
विभ्राम (शब्द०) ।

डुपटा—संज्ञा पुं० [हि० डुपट्टा] दे० 'डुपट्टा' । उ०—डुपटा है रंग
किरमची मनु मनके घई कमची ।—ब्रज ग्रं०, पृ० ५७ ।

डुपट्टा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डुपट्टा' ।

डुप्टीकेट—वि० [प्र०] द्वितीय । दूसरी । उ०—कमरा बंद करके,
बाबी अपने परिचित किसी एक मेस महाराज को दे दी,
डुप्टीकेट उमादत्त के पास थी ।—संन्यासी, पृ० १२३ ।

डुबकना—क्रि० प्र० [हि० डूबकी] १. डूबना उतराना । २. बिताकुल
होना । घबराना । उ०—हनही से सब डुबकत डोलें मुकद्दम
भीर दीवान । खान पान सब न्यारा राखें, मन में उनके मान ।
—कबीर श०, भा० २, पृ० ६४ ।

डुबकी—संज्ञा स्त्री० [हि० डूबना] १. पानी में डूबने की क्रिया ।
डूबी । गोता । डुबकी । उ०—डुबकी खाइ न काहुम पावा ।
डूब समुद्र में जोउ गँवावा ।—इंद्रा०, पृ० १५६ ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।—मारना ।—लगाना ।—लेना ।

मुहा०—डुबकी मारना या लगाना=गायब हो जाना ।

२. पीठी की बनी हुई बिना तली बरी जो पीठी ही की कढ़ी में
डुबाकर रखी जाती है । ३. एक प्रकार का बटेर ।

डुबडुभी—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभि] दे० 'डुंडुभि' । उ०—बाजा
बाजइ डुबडुभी, परणवा बात्यो बीसलराव ।—बी० रासो,
पृ० ३७ ।

डुबवाना—क्रि० स० [हि० डुबाना का प्रेरण] डुबाने का काम
कराना ।

डुबाना—क्रि० स० [हि० डूबना] १. पानी या भीर किसी द्रव
पदार्थ के भीतर डालना । भग्न करना । गोता देना । डोरना ।
२. झोपट करना । नष्ट करना । सत्यानाश करना । बरबाद
करना । ३. मर्यादा कलंकित करना । यश में दाग लगाना ।

मुहा०—नाम डुबाना=नाम को कलंकित करना । यश को बिगा-
ड़ना । किसी कर्म या गुण के द्वारा प्रतिष्ठा नष्ट करना ।
मर्यादा खोना । लुटिया डुबाना=महत्व खोना । बड़ाई न

रखना । प्रतिष्ठा नष्ट करना । बंश हुवाना = वंश की मर्यादा नष्ट करना । कुल की प्रतिष्ठा खोना ।

हुवाव—संज्ञा पुं० [हि० हुबना] पानी की उतबी गहराई जितनी में एक मनुष्य डूब जाय । डूबने भर की गहराई । जैसे,—यहाँ हाथी का हुवाव है ।

हुबुकी—संज्ञा स्त्री [हि० हुबकी] १० 'हुबकी' । उ०—परन जलज काई कहूँ जाऊँ । हुबुकी जाऊँ सुमिरि वह नाउँ ।—इंद्रा०, पृ० ८९ ।

हुबोना—क्रि० स० [हि०] १० 'हुबोना' ।

हुबना—संज्ञा पुं० [हि० हुबना] १० 'पनहुबना' ।

हुबो—संज्ञा स्त्री [हि०] १० 'हुबकी' । उ०—भयं लगाने को हुबो ही ! होगा कोन मला राखी ।—भरना, पृ० ९० ।

हुबकीरी—संज्ञा स्त्री [हि० हुबकी + बरी] १० 'हुबकीरी' । उ०—चौराई चौराई मुरई मुरबा भारी बी । हुबकीरी भुंगछोरी रिकवख ईदहर छीर छँछोरी जो ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

हुभकीरी—संज्ञा स्त्री [हि० हुबना, हुबकी + बरी] पीठी की बिना तली बरी जो पीठी हो के ओल में पकाई धीर हुबाकर रखी जाती है । उ०—जोड़ा बचका जायसी धीर हुभकीरी । शं०, पृ० १२४ ।

हुमई—संज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार का चावल जो कच्चार में होता है ।

हुरी—संज्ञा स्त्री [हि० होरी] १० 'होरी' । उ०—काम की घुरी नेह में जुरी मानी किसी ने उसी की हुरी से बाँध बिया हो । श्यामा०, पृ० ११ ।

हुलना^१—क्रि० प्र० [सं० डोलन] १० 'डोलना' । उ०—मंद मंच मैगल मतण लौ चलेई भले भुजन समेत भुज भूषन हुलत जात ।—पद्माकर (शब्द०) ।

हुलाना—क्रि० स० [हि० डोलना] १. हिलाना । चलाना । गति में आना । चलायमान करना । जैसे, पंजा हलाना । २. हटाना । भगाना । उ०—कारे गए करि कृष्ण की ध्यान हलार्पे ते काहू के डोलत ना ।—सुदरीसर्वस्व (शब्द०) । ३. चलाना । फिराना । ४. घुमाना । टहलाना ।

हुलि—संज्ञा स्त्री [सं०] कमठी । कछुई । कच्छपी ।

हुलिका—संज्ञा स्त्री [सं०] संजन के आकार की एक चिड़िया [को०] ।

हुली—संज्ञा स्त्री [सं०] चित्ला साग । जाल पत्ती का बच्चा ।

हुँगर—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग (=पहाड़ी)] १. टीसा । झोटा । हूह । उ०—सूरवास प्रभु रसिक शिरोमणि कैसे दुरत दुराय कहीं धौं डंपरन की धोट सुमेर ।—सूर (शब्द०) । २. छोटी पहाड़ी । उ०—छिनही में बज धोइ बहावे । हुँगर को कहूँ नावें न पावे ।—सूर (शब्द०) ।

हुँगर फल—संज्ञा पुं० [हि० हुँगर + फल] बंशाल का फल । बेबवासी का फल जो बहुत कड़वा होता है और सरदी में बोंडों को लिलाया जाता है ।

हुँगरी—संज्ञा संज्ञा [हि० हुँगर] छोटी पहाड़ी ।

हुँगा^१—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] १. चम्मच । चमचा । २. एक लकड़ी की नाव । डोंगा (लश०) । ३. रस्से का गोला लपेटा हुआ लच्छा (लश०) ।

हुँगा^२—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग] छोटी पहाड़ी । टीसा । उ०—विषि संसार कोन बिधि तिरबो, जे टढ़ नाव न गहे रे । नाव छाड़ि दे हूँगे बसे तो दूना दुःख सहे रे ।—रै० बानी, पृ० १८ ।

हुँगा^३—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत की २४ शोभाओं में से एक ।

हुँजा—संज्ञा स्त्री [देश०] झाँधी । ठेप हुवा (हि०) ।

हुँका—वि० [सं० तुटि, हि० टूटना] एक सींग का (बैल) । (बैल) जिसका एक सींग टूट गया हो । २. जिसके हाथ कटे हों । जूला । बिना हाथ पार्व का । ३. शिरविहीन (घड़) ।

हुँम—संज्ञा पुं० [देशी हुंभ या डोंब] १० 'डोम' । उ०—हुँम न जाँये देवजस सुँम न जाँये मोज । मुगल न जाँये खोदया जुगल न जाँये खोज ।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ४८ ।

हुँमयी—संज्ञा स्त्री [हि० हुँम] १० 'डोमनी-३' । उ०—पीहर संदी हुँमयी, ऊँमर हुँव सव्य ।—डोला०, पृ० ६३० ।

हुक—संज्ञा स्त्री [देश०] पशुओं के फेकड़ों की एक बीमारी ।

हुकना—क्रि० स० [सं० तुटिकरण, या हि० चूकना] तुटि करना । मूँच करना । गलती करना । मोका खोना । चूकना ।

हुबना—क्रि० प्र० [धनु० डूब डूब] १. पानी या धीर किसी द्रव पदार्थ के भीतर समाना । एकबारगी पानी के भीतर चला जाना । मग्न होना । गोता खाता । डूबना । जैसे, नाव डूबना, ग्राइमी डूबना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—डूबकर पानी पीना = धोखाधड़ी करना । धीरों से छिपकर बुरा काम करना । उ०—हमी में डूबकर पानी पीने-वाले हैं ।—चुभते० (दोदो०), पृ० ४ । डूब मरना = लज्जा के मारे मर जाना । शरम के मारे मुँह न दिखाना । उ०—उन्हें डूब मरने को संसार में चुल्लु भर पानी मिलना मुश्किल हो जाता ।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० ३४१ ।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग विधि धीर आदेश के रूप में ही प्रायः होता है । जैसे, तू डूब मर ? तूम डूब क्यों नहीं मरते ?

चुल्लु भर पानी में डूब मरना = १० 'डूब मरना' । डूबते को तिनके का सहारा होना = निराश्रय व्यक्ति के लिये थोड़ा सा आश्रय भी बहुत होना । संकट में पड़े हुए निस्सहाय मनुष्य के लिये थोड़ी सी सहायता भी बहुत होना । डूबा नाम उछालना = (१) फिर से प्रतिष्ठा प्राप्त करना । गई हुई मर्यादा को फिर से स्थापित करना । (२) अप्रसिद्धि से प्रसिद्धि प्राप्त करना । डूबना उतराना = (१) चित्ता में मग्न होना । सोच में पड़ जाना । (२) चित्ताकुल होना । खबराना । जो डूबना = (१) चित्त विह्वल होना । चित्त व्याकुल होना । जो खबराना । (२) बेहोशी होना । मुर्छा खाना ।

विशेष—पद्याकर ने 'भाणु' शब्द के साथ भी इस मुहा० का प्रयोग किया है, जैसे, ऊबत ही, डूबत ही, डगत ही, डोलत ही, बोलत न काहे प्रीति रीतिन रितै चले ।...एरे मेरे प्राव !

कान्हू प्यारे की बलाबल में सब तों चले न, भाव बाह्य किते चले ।

२. सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि का अस्त होना । सूर्य या किसी तारे का अस्त होना । जैसे, सूर्य डूबना, शुक्र डूबना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. चीपट होना । सत्यानाश जाना । बरबाद होना । बिगड़ना । नष्ट होना । जैसे, वंश डूबना । उ०—डूबा वंश कबीर का, लपके पूत कमाल ।—(शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना । उ०—आवत आवत कोई न देखा डूब गया बिन पानी ।—कबीर ज०, पृ० ३१ ।

मुहा०—जाम डूबना = मर्यादा बिगड़ना । प्रतिष्ठा नष्ट होना । कुख्याति होना ।

४. किसी व्यवसाय में लगाया हुआ धन नष्ट होना या किसी को बिया हुआ रुपया न बचूक होना । बारा जाना । जैसे,—(क) उसने बितना रुपया खर खर करके बिया था सब डूब गया । (ख) जिसने जिसने हिस्सा करीबा सबका रुपया डूब गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

५. बेटी का बुरे बर व्याहा जाना । कन्या का ऐंठे बर पड़ना जहाँ बहुत कष्ट हो ।

संयो० क्रि०—जाना ।

६. चित्त में मग्न होना । विचार में लीन होना । ध्येयी तरह ध्यान डटाना । जैसे, डूबकर सोचना । ७. लीन होना । तन्मय होना । लिप्त होना । ध्येयी तरह लगना । जैसे, विषय वास्तव में डूबना, ध्यान में डूबना ।

डूमा—संज्ञा पुं० [सं० डुम्ब] दे० 'डोम' । उ०—सुंदर यह मन डूम है, माँघत करै न संक । दीन भयो जाचत फिरै, राजा होइ कि रंक ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ७२६ ।

डूमा—संज्ञा पुं० [कर्षी] इस की पाखेंसेट या राजसभा का नाम ।

डूमना—क्रि० प्र० [हि० डुलना] दे० 'डोलना' । उ०—पहिचै पोहरे रैण के, दिवला संवर डूख । जण कस्तूरी हुइ रही, प्रिय बंधारी फूल ।—डोला०, पृ० ५८२ ।

डेंटिस्ट—संज्ञा पुं० [अंग्रे० डेंटिस्ट] दंतचिकित्सक । दाँत का डाक्टर । दाँत बनानेवाला ।

डेंडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिएडस] ककड़ी की तरह की एक तरकारी जिसके फल कुम्हड़े की तरह गोल पर छोटे होते हैं ।

डेडडा—वि०, संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डेवडा', 'डपोडा' ।

डेडडी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डपोडी' ।

डेका—संज्ञा पुं० [देश०] महागिब । बकायन ।

डेक—संज्ञा पुं० [अंग्रे०] जहाज पर लकड़ी से पटा हुआ फर्श या छत ।

डेक्करना—क्रि० प्र० [अंग्रे०] धमक करना । दे० 'डकरना' । उ०—सब दिसे डाकिनि डेक्करइ ।—कीर्ति०, पृ० १०८ ।

डेक्कारा—संज्ञा पुं० [अंग्रे०] डमक ध्वनि । उ०—उल्लस डमक डेक्कार बर ।—कीर्ति०, पृ० १०८ ।

डेगा—संज्ञा पुं० [हि० डग] दे० 'डग' । उ०—बात बात में गाची और डेग डेग पर डाची ।—मैला०, पृ० २१ ।

डेग—संज्ञा पुं० [हि० डेग] दे० 'देग' ।

डेगची—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'देगची' ।

डेट—संज्ञा स्त्री० [अंग्रे०] तिथि । तारीख ।

डेडरा—संज्ञा पुं० [सं० वादुर] दे० 'वादुर' । उ०—डेडरा से डरे, सींगी मच्छ को मरोड़ डारे । कानन के बीच जाम कुंजर को पकड़े ।—राम० धर्म०, पृ० ८१ ।

डेडरिया—संज्ञा पुं० [हि० डेडरा] दे० 'डेडरा' । उ०—डेडरिया लिये मइ हुइ वण बूडइ सरजित ।—डोला०, पृ० ५४८ ।

डेडहा—संज्ञा पुं० [सं० डुगडुम] पानी का साँप जिसमें बहुत कम विष होता है ।

डेड—वि० [सं० अड्यट, प्रा० डिवड्ड] एक और भाषा । सार्द्धक । जो गिनती में १३ हो । जैसे, डेड रुपया, डेड पाव, डेड घेर, डेड बजे ।

मुहा०—डेड ईंट की जुड़ा मसजिद बनाना = खरेपन या अक्षम-पक्ष के कारण सबसे अलग काम करना । मिलकर काम न करना । डेड गाँठ = एक पूरी और उसके ऊपर दूसरी आधी गाँठ । रस्सी तागे आदि की वह गाँठ जिसमें एक पूरी गाँठ लगाकर दूसरी गाँठ इस प्रकार लगाते हैं कि तागे का एक छोर दूसरे छोर की दूसरी ओर बाहर नहीं खींचते, तागे को थोड़ी दूर ले जाकर बीच ही में कस देते हैं । इसमें दोनों छोर एक ही ओर रहते हैं और दूसरे छोर को खींचने से गाँठ खुल जाती है । मुट्ठी । डेड जावल की लिचड़ी पकाना = अपनी राय सबसे अलग रखना । बहुमत से भिन्न मत प्रकट करना । डेड बुल्लु = थोड़ा सा । डेड बुल्लु लहू पीना = मार डालना । लूब डंड देना । (कोशोक्ति, लि०) ।

विशेष—जब किसी निदिष्ट संख्या के पक्ष इस शब्द का प्रयोग होता है तब उस संख्या को एकाई मानकर उसके आगे की जोड़ने का अभिप्राय होता है । जैसे, डेड सी = सो और उसका भाषा पचास अर्थात् १५०, डेड हजार = हजार और उसका भाषा पाँच सो, अर्थात् १५०० । पर, इस शब्द का प्रयोग वहाँ के भागे के स्थानों को निदिष्ट करनेवाली संख्याओं के साथ ही होता है । जैसे, सो, हजार, लाख, करोड़, अरब इत्यादि । पर अनपढ़ और गँवार, जो पूरी गिनती नहीं जानते, और संख्याओं के साथ भी इस शब्द का प्रयोग कर देते हैं । जैसे, डेड बीस अर्थात् तीस ।

डेडस्मन—संज्ञा स्त्री० [हि० डेड + फ्रा० लम] एक प्रकार का बिरका या गोल रथानी ।

डेडस्मना—संज्ञा पुं० [हि० डेड + फ्रा० लम (= डेडा)] संभाषण पीने का वह सस्ता नैवा जिसमें कुलफी नहीं होती । इसके घुमाव पर केवल एक जोड़े की टेढ़ी सजाई रखकर उसे पयाज और चिपके आदि से लपेट देते हैं ।

डेङ्गोशी—संज्ञा पुं० [हि० डेङ्ग + फ्रा० गोश (= कोना)] एक बहुत छोटा और मजबूत बना हुआ जहाज ।

डेढ़ा—वि० [हि० डेढ़] डेढ़ गुना । किसी वस्तु से उसका पाया धीरे अधिक । डेढ़ा ।

डेढ़ा—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें प्रत्येक संख्या की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है ।

डेढ़िया—संज्ञा पुं० [देश०] पुष्पाक्षे की जाति का एक बहुत ऊँचा पेड़ जिसके पत्ते सुगंधित होने हैं ।

विशेष—यह कुछ दारुजिन, मिक्किम धीरे गुटान धाबि में पाया जाता है । इसके पत्तों से एक प्रकार की सुगंध निकलती है । इसकी लकड़ी मरानों में लगाने तथा चाय के संदूक धीरे जेली के सामान (हल, पाटा धाबि) बनाने के काम में जाती है । यह पेड़ पुष्पाक्षे की जाति का है ।

डेढ़िया—संज्ञा स्त्री० [हि० डेढ़] दे० 'डेढ़ी' ।

डेढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डेढ़] किसानों की बोवाई के समय इस छत पर घनाव डधार देने की रीति कि वे फसल कटने पर किए हुए घनाव का झोड़ा देंगे ।

डेना—क्रि० प्र० [पं०] देना । प्रदान करना । उ०—तुम भी देना, मन भी देना देना पिए पलाए वे ।—वाङ्म०, पृ० ५१३ ।

डेपूटेशन—संज्ञा पुं० [पं०] जुने हुए प्रधान प्रधान लोगों की वह मंडली जो जनसाधारण या किसी सभा संस्था की धीरे से सरकार, राजा महाराजा अथवा किसी अधिकारी या शासक के पास किसी विषय में प्रार्थना करने के लिये भेजी जाय । प्रतिनिधि मंडल । विशिष्ट मंडल ।

डेहरा—वि० [देश०] डेहरा । बाएँ हाथ से काम करनेवाला ।

डेहरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेत का वह कोना जो जोतने में छूट जाता है । कोँठर ।

डेहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डिहरी] डिहरी के आकार का टीन, शीशे धाबि का एक बरतन जिसमें तेज भरकर रोकनी के लिये बशी जलाते हैं । डिहरी ।

डेमोक्रेसी—संज्ञा स्त्री० [पं०] १. वह सरकार या शासनप्रणाली जिसमें राजसत्ता जनसाधारण के हाथ में हो धीरे उस सत्ता या शक्ति का प्रयोग वे स्वयं या उनके निर्वाचित प्रतिनिधि करें । वह सरकार जो जनसाधारण के अधीन हो । सर्व-साधारण द्वारा परिचालित सरकार । लोकसत्ताक राज्य । लोकसत्तात्मक राज्य । प्रजासत्तात्मक राज्य । २. वह राष्ट्र जिसमें समस्त राजसत्ता जनसाधारण के हाथ में हो धीरे वह सामूहिक रूप से या अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा शासन धीरे न्याय का विधान करते हैं । प्रजातंत्र । ३. राजकीय धीरे सामाजिक समानता । समाज की वह अवस्था जिसमें कुलीन प्रकुलीन, बनी बरिद, ऊँच नीच या इसी प्रकार का धीरे भेद नहीं माना जाता ।

डेमोक्रेट—संज्ञा पुं० [पं०] १. वह जो डेमोक्रेसी या प्रजासत्ता या लोकसत्ता के सिद्धांत का पक्षपाती हो । वह जो सरकार को प्रजासत्ताक या लोकसत्ताक बनाने के सिद्धांत का पक्षपाती हो । २. वह जो राजनीतिक धीरे प्राकृतिक समानता का

पक्षपाती हो । वह जो कुलीनता प्रकुलीनता या ऊँच नीच का भेद न मानता हो ।

डेरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डर' ।

डेरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डेरा' । उ०—रहि खेत पर ठाढ़ भक्ति की डेर में है ।—पलटू०, पृ० ८७ ।

डेरा—संज्ञा पुं० [हि० डेरना, डेराव या हि० दर (= स्थान)] १. टिकान । ठहराव । थोड़े काल के लिये निवास । थोड़े दिन के लिये रहना । पड़ाव । जैसे,—घाज रात को यहीं डेरा करो, सबेरे उठकर चलेंगे ।

क्रि० प्र०—होना ।—लेना = स्थान तयबीजकर टिक जाना या निवास करना । उ०—साहू महल हैं कूकड़ा, ठाड़ी डेरत लीच ।—डोसा०, पृ० १८७ ।

२. टिकने का वायोजन । टिकान का सामान । ठहरने या रहने के लिये फैलाया हुआ सामान । जैसे, बिस्तार, बरतन, चाँदा, छप्पर, तंबू इत्यादि । छावनी । जैसे—यहाँ से बटपट डेरा उठाओ ।

धौ०—डेरा डंडा = टिकने का सामान । धोरिया बंधवा । निवास का सामान । उ०—तमलकी से घसबाब वगैरह रखा गया धीरे डेराडंडा ठीक हुआ ।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० १५६ ।

मुहा०—डेरा डालना = सामान फैलाकर टिकना । ठहरना । रहना । डेरा पड़ना = टिकान होना । छावनी पड़ना । उ०—(क) भरि धीरासी कोस परे गोपन के डेरा ।—सूर (शब्द०) । (ख) पास मेरे इधर उधर घाने । है दुलौ का पड़ा हुआ डेरा ।—जुमते०, पृ० ४ । डेरा डंडा सलाहना = टिकने का सामान हटाकर चला जाना ।

३. टिकने के लिये साफ किया हुआ धीरे छाया बनाया हुआ स्थान । ठहरने का स्थान । छावनी । कंप । उ०—नीकत भरहि बहु वृषति डेरन दुंदुभी बुनि द्र रही ।—रघुराज (शब्द०) । ४. खेमा । तंबू । छोलवारी । धामियाना ।

क्रि० प्र०—छड़ा करना ।

५. नाचने गानेवालों का दल । मंडली । गोल । ६. मकान । घर । निवासस्थान । जैसे,—मुम्हारा डेरा कितनी दूर है ?

डेरा—वि० [सं० डहर (= छोटा)] [स्त्री० डेरी] बायाँ । सव्य । जैसे, डेरा हाथ । उ०—(क) फहमें धाये फहमें पाखे, फहमें दहिने डेरे ।—कबीर (शब्द०) । (ख) सूर प्रथम सम्मुख रति मानव गए मग बिसरि बाहिने डेरे ।—सूर (शब्द०) ।

डेरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा जंगली पेड़ जिसकी लकड़ी धीरे मजबूत लकड़ी सजावट के समान बनाने के काम में जाती है ।

विशेष—यह पेड़ पंजाब, अवध, बंगाल तथा मध्य प्रदेश धीरे मदरास में भी होता है । इसे 'बरोखी' भी कहते हैं । इसकी छाल धीरे लकड़ी काटने पर पिसाई जाती है ।

डेराना—क्रि० प्र० [हि० डर] दे० 'डरना' । उ०—जहाँ पुष्प देखत धलि संगू । जित डेराइ काँपत सब संगू ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३४० ।

डेरावाली—संज्ञा स्त्री० [हि० डेरा + वाली] रलैख । उ०—खेलावन

की डेरावाली खुद धाकर बालदेव की बुढ़िया नीसी से कह गई थी।—मिमा० पु० १२।

डेरी—संज्ञा स्त्री० [धं० डेवरी] वह स्थाव जहाँ गोरें, जैसों रखी और दूध मक्खन आदि देखा जाता है।

डो०—डेरीफार्म।

डेरीफार्म—संज्ञा पु० [धं०] दे० 'डेरी'।

डेह०—संज्ञा पु० [हि० डर] दे० 'डर'। उ०—जग को देखि भोहि डेर लाग्यो।—ब्रज०, बानी०, पु० २८।

डेह०—संज्ञा पु० [सं० डमरु] दे० 'डमरु'। उ०—सिव सखी भेल साजिके, धाए पीरा की तजिके। नाचे हैं डेहें लंके, जजबास देखि किमिके।—ब्रज०, पु० ६१।

डेह०—संज्ञा स्त्री० [दे०] वह भूमि जो रबी की फसल के लिये जोत-कर छोड़ दी जाय। परेज।

डेह०—संज्ञा पु० [दे०] कटहल की तरह का एक बड़ा ऊँचा पेड़ जो लंका में होता है।

विशेष—इसके होर की लकड़ी बमकदार और मजबूत होती है, इसलिये वह मेज कुरसी तथा सजावट के अन्य सामान बनाने के काम में आती है। नावें भी इसको प्रयुक्ती बनती हैं। इस पेड़ में कटहल के बराबर बड़े फल लगते हैं जो खाए जाते हैं। बीज भी खाने के काम में आते हैं। इन बीजों में से तेल निकलता है जो दवा और जलाने के काम में आता है।

डेह०—संज्ञा पु० [सं० डुएडुल] उल्लू पक्षी। उ०—धनवाद. जोवन, राखमद ज्यो पंछिन मंह डेल।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

डेह०—संज्ञा पु० [सं० दल, हि० डला] डेला। पत्थर, मिट्टी या ईंट का टुकड़ा। रोड़ा। उ०—(क) नाहि न रास रसिक रस बाक्यो तातें डेल सो डारो।—सूर (शब्द०)। (ख) डेल सो बनाय धाय मेलत सभा के बीच लोपन कवित कीबी डेल करि जावो है।—इतिहास, पु० ३८४।

क्रि० प्र०—डेल करना = नष्ट करना। डेला या रोड़ा कर देना। समाप्त करना। उ०—धोरी खर धाए रिस भीने। डेऊ सब डेल से कीने।—नंद० प्र०, पु० २७७।

डेह०—संज्ञा पु० [हि० डला] वह डला जिसमें बहेलिया पक्षी आदि बंद करके रखते हैं। उ०—कित नैहर पुनि भाउब, कित ससुरे यह डेल। धागु धागु कहैं होइहि, परब पंखि जस डेल।—जायसी (शब्द०)।

डेह०—संज्ञा स्त्री० [भायरिण] (स्वतंत्र) भायरलैंड की पार्लमेंट या व्यवस्थापिका परिषद् जिसमें उस देश के लिये कानून कायदे आदि बनते हैं।

डेह०—संज्ञा पु० [य०, धं०] नदियों के मुहाने या संगमस्थान पर उनके द्वारा बाध हुए कीचड़ और बालु के जमने से बनी हुई वह भूमि जो धारा के कई जालाओं में विभक्त होने के कारण तिकोनी होती है।

डेह०—संज्ञा पु० [सं० बज] १. डेला। रोड़ा। २. भाँच का संकेत

उभरा हुआ भाग जिसमें पुतली होती है। भाँच का कोया। ३. एक जंगली वृक्ष। दे० 'डेहरी'। उ०—डेले, पीलु, भाक और जंङ के कुङमुड़ाए वृक्ष।—ज्ञानदान, पु० १०३।

डेह०—संज्ञा पु० [हि० डेलवा] यह काठ जो नटखट चीपायों के घड़े में बाँध दिया जाता है। ठंगुर।

डेहिलोट—संज्ञा पु० [धं०] वह प्रातिनिधि जो किसी सभा में किसी स्थान के निवासियों की ओर से मत देने के लिये भेजा जाय।

डेलिया—संज्ञा पु० [दे०] एक पोषा जो फूलों के लिये लगाया जाता है। इसका फूल लाल या पीला होता है।

डेली—संज्ञा स्त्री० [हि० डला] डलिया। बाँस की भाँपी। दे० 'डेल'। उ०—बंशिया सुभा करत सुल केली। चार पाँच मेलेसि धरि डेली।—जायसी (शब्द०)।

डेली—वि० [धं०] दैनिक (मसबहार आदि)।

डेवढ़ा—वि० [हि० डेवड़ा] डेढ़ गुना। डेवड़ा। उ०—सुर सेनप डर बहुत उछाहू। विधि से डेवड़ सुगावन लाहू।—तुलसी (शब्द०)।

डेवढ़ा—संज्ञा स्त्री० तार। सिलसिला। क्रम।

क्रि० प्र०—लगना।

डेवढ़ना—क्रि० प्र० [हि० डेवड़ा] भाँच पर रखी हुई रोटी का फुलना।

डेवढ़ना—क्रि० प्र० १. कपड़े को मोड़ना। कपड़ों की तरह लगाना। किसी वस्तु में उसका प्राधा और मिथाना। डेवड़ा करना। ३. भाँच पर रखी हुई रोटी को फुलाना।

डेवढ़ा—वि० [हि० डेढ़] भाषा और अधिक। किसी पदार्थ से उसका भाषा और ज्यादा। डेढ़गुना।

डेवढ़ा—संज्ञा पु० १. ऐसा तंग रास्ता जिसके एक किनारे ढाल या बड़ा हो (पालकी के कहार)। २. गाने में वह स्वर जो साधारण से कुछ अधिक ऊँचा हो। ३. एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें क्रम से धंकों को डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है।

डेवढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'डेहली'। उ०—पल पाँवके डारि रहोगी डटी डेवढ़ी डर छोड़ि अधीरतियाँ।—श्यामा०, पु० १६६।

डेवलप करना—क्रि० प्र० [धं० डेवलप + हि० करना] फोटोग्राफी में प्लेट को मसाले मिले हुए जल से धोना जिसमें प्रकृत चित्र का आकार स्पष्ट हो जाय।

डेसिमल—संज्ञा पु० [धं०] दशमलव। उ०—अपना आप हिसाब लगाया। पाया महा दीन से दीन। डेसिमल पर दस शून्य जमाकर, सिखे जहाँ तीन पर तीन।—हिम त०, पु० ७०।

डेस्क—संज्ञा पु० [धं०] लिखने के लिये छोटी ढालुर्मा मेज।

डेहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दरवाजे के नीचे की उठी हुई जमीन जिसपर भीखट के नीचे की लकड़ी रहती है। बहलीज। सतमर्दा।

डेहरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० वह] घस रखने के लिये कच्ची मिट्टी का ऊँचा बरतन ।

डेहल—संज्ञा पुं० [सं० देहली] देहली । देहलीज ।

डेंगू फीवर—संज्ञा पुं० [सं० डेगू फीवर] दे० 'डेंगू ज्वर' । उ०—
दे० १६२६ का डेंगू फीवर ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० ३४३ ।

डेगना—संज्ञा पुं० [हि० डेग] काठ का लंबा टुकड़ा जो सटखट चीपायों के गले में इसलिये बाँध दिया जाता है जिसमें वे अधिक भाग न सकें । ठेंगुर । लंगर ।

डेन^२—संज्ञा पुं० [सं० डयन (= उड़ना)] दे० 'डेना' । उ०—
गरबे गगन पक्षि जब डोला । डोल समुद्र डेन जब डोला ।—
जायसी प्र०, पृ० ६३ ।

डेना—संज्ञा पुं० [सं० डयन (= उड़ना)] चिड़ियों का वह फैलने और समटनेवाला अंग जिससे वे हवा में उड़ती हैं । पंख । पक्ष । पर । बाढ़ ।

डेमफूल—संज्ञा पुं० [सं०] एक अंगरेजी गाली । अभाग्य । मुँस । नारकी । सत्यानाशी । उ०—और इसपर बरमाणी की डेमफूल । तद्गुण के साथ बात करना जानते ही नहीं ।—
कौशी०, पृ० २५१ ।

डेहल^३—संज्ञा पुं० [सं० डयल] दे० 'डयल' । उ०—सरप मरें बाँधी उठि नाचै कर बिनु डेहल बाजे ।—गोरख०, पृ० २०८ ।

डेश—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का संघेजी विरामचिह्न जिसका प्रयोग कई उद्देश्यों से किया जाता है ।

विशेष—यदि किसी वाक्य के बीच डेश देकर कोई वाक्य लिखा जाता है तो उस वाक्य का व्याकरणसंबंध मुख्य वाक्य से नहीं होता । जैसे,— जो सन्द बोलचाल में आते हैं—चाहे वे फारसी के हों, चाहे अरबी के, चाहे अंगरेजी के—उनका प्रयोग बुरा नहीं कहा जा सकता । डेश का चिह्न इस प्रकार का— होता है ।

डोंगर—संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग (= पहाड़ी) या देशी डुगर] [स्त्री० अल्पा० डोंगरी] पहाड़ी । टीला । भीटा । उ०—(क) एक फूक बिष ज्वाले के जल डोंगर जरि जाहि ।—सुर (शब्द०) । (ख) डोंगर को बल उरहि बताऊँ । ता पाछे बज खोजि बहाऊँ ।—सुर (शब्द०) । (ग) चिन् विचित्र विविध मृग डोलत डोंगर डोंग । जमु पुर बीगनि बिहुरत छैल संवारे स्वाँग ।—तुलसी (शब्द०) ।

डोंगा—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] [स्त्री० अल्पा० डोंगी] १. बिना पाल की नाव । २. बड़ी नाव ।

मुहा०—डोंगा पार होना या लगाना = काम निबटना । छुटकारा होना ।

डोंगी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोंगा] १. बिना पाल की छोटी नाव । २. छोटी नाव । ३. वह बरतन जिसमें लोहार लोहा लाल करके डुभाते हैं ।

डोंडहा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डोडहा' ।

डोंडा—संज्ञा पुं० [सं० दुण्ड] १. बड़ी हसायची । २. टोंडा । कारतूस । उ०—बंदबाण सत्रएँ बिराजे । जमु हुने सोह बने

पू भागे । जरि बंदूक घठारह छोड़े । इतने उबिय होय सब बोंडे ।—हनुमान (शब्द०) ।

डोंडी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दुण्ड] १. पोस्ते का फल जिसमें से अफीम निकलती है । कपास की कली । उ०—सोबा, मणिपुर राजकुमार । ज्यों कपास की डोंडी में सोता है पैर पसार । एक कीट मन्हा सा खेत, घुटुल सुकुमार ।—बंदन०, पृ० ६५ । २. उभरा मुँह । टोटी ।

डोंडी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रोणी] डोंगी । छोटी नाव ।

डोंडो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डोडो' ।

डोंब—संज्ञा पुं० [देशी] दे० 'डोम' ।

डोई—संज्ञा स्त्री० [देशी डोभा; हि० डोकी] काठ की डोड़ी की बड़ी करछी जिससे कड़ाह में दूध, घी आशानी आदि चलाते हैं ।

विशेष—यह वास्तव में लोहे या पीतल का एक कटोरा होता है जिसमें काठ की लंबी डोड़ी खड़े बल लगी रहती है ।

डोक—संज्ञा पुं० [देश०] छुहारा जो पककर पीसा हो जाय । पकी हुई खसूर ।

डोकनी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] कठौती । उ०—बाँस का डोंगा, काठ की डोकनी तथा बेंत की डलिया ।—नेपाल०, पृ० ३१ ।

डोकर—संज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० डोकरी] दे० 'डोकरा' ।

डोकरडो^४—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डोकरा' ।

डोकरा—संज्ञा पुं० [सं० दुकर, प्रा० दुकर ?] [स्त्री० डोकरी] १. बुड़ा आदमी । अशक्त और बुद्ध मनुष्य । † २. पिता ।

डोकरिया^५—संज्ञा स्त्री० [हि० डोकरी + इया (प्रत्य०)] दे० 'डोकरी' ।

डोकरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोकरा] बुद्धी स्त्री । उ०—तहाँ माय मे एक डोकरी को घर मिल्यो ।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० ३२० ।

डोकरो^६—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डोकरा' ।

डोका^७—संज्ञा पुं० [सं० द्रोणक] काठ का छोटा बरतन या कटोरा जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं ।

डोका^८—संज्ञा पुं० [देश०] डठल । उ०—उकरड़ी डोका चुगइ, अपस हंभायउ प्राण ।—डोला०, पृ० ३३६ ।

डोकिया—संज्ञा स्त्री० [हि० डोका] काठ या छोटा कटोरा या बरतन जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं ।

डोकी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोका] काठ का छोटा बरतन या कटोरा जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं ।

डोंगर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डोंगर' ।

डोंगरा—संज्ञा पुं० [हि० डोंगर] जम्बू, कश्मीर, कांगड़ा आदि में बसी एक प्रसिद्ध जाति या उस जाति के व्यक्ति ।

डोंगरी^९—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. डोंगरा जाति के लोगों की बोली जो पंजाबी की एक शाखा है । २. छोटे छोटे घर । उ०—
काम करने के लिये मीलों दूर साधारण से छोटे छोटे घर बना लिए हैं, जिन्हें डोंगरी कहते हैं ।—किन्नर०, पृ० ६६ ।

डोज—संज्ञा स्त्री० [सं० डोज] मात्रा । चुराक । मोती ।

डोहवा—संज्ञा स्त्री० [हि० डोहा + हाप] तलवार (डि०) ।

डोहवा—संज्ञा पुं० [सं० हुण्डुम] पाखी में रहनेवाला साँप ।

डोही—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक सता जो घोष के काम में आती है ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह मधुर, शीतल, नेत्रों को हितकारी, त्रिदोषनाशक और वीर्यवर्धक मानी जाती है । इसे जीवंती भी कहते हैं ।

डोडो—संज्ञा पुं० [अ०] एक चिड़िया जो अब नहीं मिलती ।

विशेष—यह चिड़िया मारिचस (मिरिच के) टापू में जुलाई १६८१ तक देखी गई थी । इसके विन्न यूरोप के भिन्न भिन्न स्थानों में रखे मिलते हैं । सन् १८६६ में इसकी बहुत सी हड्डियाँ पाई गई थीं । डोडो भारी और बेहंगे शरीर की चिड़िया थी । डीलडोल में बत्तख के बराबर होती थी, न अधिक उड़ सकती थी, न और किसी प्रकार प्रपन्ना बचाव कर सकती थी । मारिचस में यूरोपियनों के बसने पर इस वीर्य पक्षी का समूल नाश हो गया ।

डोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'डपोड़ी' । उ०—(क) इनके मिलने में डोड़ी पहुरा नहीं लगता । —श्रीनिवास प्र० (नि०), पृ० ५ । (ख) देसोतारी डोड़ियाँ गोला करे गलार ।—बाँकी प्र०, भा० २, पृ० ८७ ।

डोब—संज्ञा पुं० [हि० डूबना] डूबाने का भाव । गोता । डूबकी ।

मुहा०—डोब देना = गोता देना । डूबाना । जैसे, कपड़े को रंग में दो तीन डोब देना । कलम को स्याही में डोब देना ।

डोबना—क्रि० प्र० [हि० डूबाना] डूबकी देना । डूबाना । गोता देना । उ०—आगल डोब पाछल तारे ।—प्राण०, पृ० ४६ ।

डोबा—संज्ञा पुं० [हि० डूबाना] गोता । डूबकी ।

मुहा०—डोब देना या भरना = डूबाना । गोता देना । जैसे, कपड़े को रंग में डोबा देना, कलम को स्याही में डोबा देना ।

डोभरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताबा महुआ ।

डोम—संज्ञा पुं० [सं० डम, देशी डुब, डोंब] [स्त्री० डोमिनी, डोमनी] १. अस्पृश्य नीच जाति जो पंजाब से लेकर बंगाल तक सारे उत्तरी भारत में पाई जाती है । उ०—यह देखो डोम लोगों ने सुखे गले सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़ पकड़कर देवी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २६७ ।

विशेष—स्पृष्टियों में इस जाति का सम्बन्ध नहीं मिलता । केवल मत्स्यसूक्त तंत्र में डोमों को अस्पृश्य लिखा है । कुछ लोगों का मत है कि ये डोम बौद्ध हो गए थे और इस धर्म का संस्कार इनमें अब तक बाकी है । इसमें कोई संदेह नहीं कि किसी समय यह जाति प्रबल हो गई थी, और कई स्थान डोमों के अधिकार में आ गए थे । गोरखपुर के पास डोमनगढ़ का किला डोम राजाओं का बनबाया हुआ था । उर अब यह जाति प्रायः निकट कर्मों ही के द्वारा अपना निर्वाह करती है । हमसान पर शव जलाने के लिये आग देना, शव के ऊपर का कफन सेवा, सूप, इले आदि बेचना आद्यकाल डोमों का काम

है । पंजाब के डोम कुछ इनसे भिन्न होते हैं और जंगलों से फल और जड़ी बूटी लाकर बेचते हैं ।

२. एक नीच जाति जो मंगल के अवसरों पर लोगों के यहाँ पाती बचाती है । डाढी । मोरासी ।

डोमकौआ—संज्ञा पुं० [हि० डोम + कौआ] बड़ी जाति का कौआ जिसका सारा शरीर काला होता है । डोम काक या डोम काग नाम भी इसके हैं ।

डोमड़ा—संज्ञा पुं० [हि० डोम + ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'डोम' । उ०—हमसान के डोमड़ों तक की नोकाएँ ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० ११३ ।

डोमसमोटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी जाति जो पीतल तबे आदि का काम करती है ।

डोमनी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोम] १. डोम जाति की स्त्री । २. डोम की स्त्री । ३. उस नीच जाति की स्त्री जो उत्सवों पर गाने बजाने का काम करती है । ये स्त्रियाँ गाने बजाने के पतिरिक्त कहीं कहीं वेश्यावृत्ति भी करती हैं ।

डोमसाऊ—संज्ञा पुं० [हि० डोम + साल] मँओले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसे गोबड़ कल भी कहते हैं । वि० दे० 'गोदड़ कल' ।

डोमा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप ।

डोमाकाग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण + काक] दे० 'डोमकौआ' । उ०—मँवर पतंग खरे धो तागा । कोइल, भुजइल, डोमाकापा ।—जायसी प्र०, पृ० १६३ ।

डोमिन—संज्ञा स्त्री० [हि० डोम] १. डोम जाति की स्त्री । २. मोरासियों की स्त्री । दे० 'डोमनी' । उ०—नटिनी डोमिन डाड़िनी सहनायन परकार । निरतत नाद विनोद सों बिहँसत खेलत नार ।—जायसी (शब्द०) ।

डोमोनियन—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. स्वतंत्र शासन या सरकार । २. स्वतंत्र शासनवाला देश या साम्राज्य । जैसे, ब्रिटिश डोमोनियन । ३. उपनिवेश । अधिराज्य । उ०—पर भारत को सन् १९३५ के अधिनियम द्वारा डोमोनियन का दर्जा नहीं मिला था ।—भारतीय०, पृ० २६ ।

यो०—डोमोनियन स्टेट = अधिराज्य का दर्जा । अधोपनिवेशिक राज्य का पद ।

डोर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डोरा । तापा । धापा । रस्सी । सूत । उ०—डोठि डोर मैना दही, छिरकि रूप रस तोय । मयि मो चढ प्रीतम लियो मन नवनीत बिलोय ।—रसनिधि (शब्द०) । २. पतंग या गुड्डी उड़ाने का मक़िदार तापा । ३. सिलसिला । कतार । ४. अवलंब । सहारा । लगाव ।

मुहा०—डोर पर लगाना = रास्ते पर जाना । प्रयोजनसिद्धि के अनुकूल करना । ठब पर जाना । प्रवृत्त करना । परवाना । डोर भरना = कपड़े के किनारे को कुछ मोड़कर उसके भीतर धागा भरकर सीना । फलीता लगाना । डोर मजबूत होना = जीवन का सुख बढ़ होना । जिवगी बाकी रहना । डोर होना = मुग्ध होना । मोहित होना । सट्टू होना । वि० दे० 'डोरी' ।

डोरक—संज्ञा पुं० [सं०] डोरा । तागा । सूत्र । धागा ।

डोरकान्—संज्ञा पुं० [देश०] धागे का कंकन, जो व्याह में बँधता है और जिसे खोलकर वर वधू को जुवा खेलाने की रीति चलती है । उ०—सेके जुवा डोरका बोधे । सहु सुभ कारण सारिया ।—रघु० क०, पु० ८७ ।

डोरना—संज्ञा पुं० [हि० डोर] दे० 'डोरा' । उ०—हरीचंय यह प्रेम डोरना को कैसे करि सुट ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पु० ४६२ ।

डोरही—संज्ञा स्त्री० [देश०] बड़ी कटाई । बड़ी बटकटैया ।

डोरा—संज्ञा पुं० [सं० डोरक] १. कई, सन, रेखम आदि को बटकर बनाया हुआ ऐसा खंड जो चौड़ा या मोटा न हो, पर खंवाई में लकीर के समान दूर तक चला पाया हो । सूत्र । सूत । तागा । धागा । जैसे, कपड़ा सीने का डोरा, मामा गूँघने का डोरा । २. भारी । लकीर । जैसे, कपड़ा हरा है, बीच बीच में लाख डोरे हैं ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—होना ।

१. धाँसों की बहुत महीन लाल नई जो साधारण मनुष्यों की धाँस में उस समय दिखाई पड़ती हैं जब वे नखे की उम्र में होते हैं या सोकर उठते हैं । जैसे,—धाँसों में लाल डोरे कानों में बाँधिया । ४. ललबा की धार । उ०—डोरन में बाँधे बीनी धाँधे धागे पाँधे धति भारी ।—पद्माकर श्र०, पु० २८७ । ५. उपे धी की धार, जो दाल आदि में ऊपर से डालते समय बँध जाती है ।

मुहा०—डोरा देना = तपा हुआ धी ऊपर से डालना ।

१. एक प्रकार की कच्छी जिसकी डीढ़ी लंबे बल लगी रहती है और जिससे धी निकलते हैं या दूध धाँध कड़ाह में चलाते हैं । परी । ७. स्नेहसूत्र । प्रेम का बंधन । लयन ।

मुहा०—डोरा डालना = प्रेमसूत्र में बद्ध करना । प्रेम में फँसाना । अपनी धोर प्रवृत्त करना । परवाना । उ०—यह डोरे कहीं धोर डालिए, समझे धाप ।—फिसाना०, भा० ३, पु० १२५ । डोरा लगना = स्नेह का बंधन होना । प्रीति संबंध होना ।

८. वह वस्तु जिसका अनुसरण करने से किसी वस्तु का पता लगे । अनुबंधन सूत्र । गुराग । उ०—जुबति जोगु मे मिलि गई नेकु न देत लखाय । सोधे के डोरे लगी, धली लली सेंस जाय ।—विहारी (शब्द०) । ९. काजल या सुरमे की रेखा । १०. नृत्य में कंठ की गति । नाचने में ५, १२८न हिलाने का धाव ।

डोरा—संज्ञा पुं० [हि० डोड़] पोस्ते का डोड़ । डोडा ।

डोरि—संज्ञा स्त्री० [हि० डोर] दे० 'डोरी' । उ०—ज्यो कपि डोरि बाँधि बाजोगर कन कन कौं चौहटे नचायो ।—सूर०, ११३२६ ।

डोरिया—संज्ञा पुं० [हि० डोरा] १. एक प्रकार का सूती कपड़ा जिसमें कुछ मोटे सूत की लंबी धारियाँ बनी हों । २. एक प्रकार का बगला जिसके पैर हरे होते हैं । यह शत्रु के अनुसार रंग बदलता है । ३. जुलाहों के यहाँ तागा उठाने वाला लड़का । ४. एक नीच जाति जो राजाओं के यहाँ

बिकारी कुत्तों की रक्षा पर नियुक्त रहती थी । ये लोग कुत्तों को लिकार पर सजाते थे ।

डोरिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डोरी' । उ०—सुरत सुहागिनि जब धरि लावे बिन रसरी बिन डोरिया ।—धरम०, पु० ३५ ।

डोरियाना—क्रि० सं० [हि० डोरी + घाना (प्रत्य०)] पशुओं को रस्सी से बाँधकर ले चलना । बागडोर लगाकर घोड़ों को ले जाना । उ०—यवने भरत पयादेहि पाये । कोतल संग जाहि डोरियाये ।—तुमसी (शब्द०) । २. परवाना । हिलगाना ।

डोरिहार—संज्ञा पुं० [हि० डोरी + हारा] [स्त्री० डोरिहारिन] पटवा ।

डोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोरा] १. कई डोरों या तागों को बटकर बनाया हुआ खंड जो खंवाई में दूर तक लकीर के रूप में चला गया हो । रस्सी । रज्जु । जैसे, पानी भरने की डोरी, पंखा लीचने की डोरी ।

मुहा०—डोरी लीचना = सुध करके दूर से अपने पास बुलाना । पास बुलाने के लिये स्मरण करना । जैसे,—जब भगवती डोरी खींचेगी सब जायेंगी (स्त्रि०) । डोरी लगना = (१) किसी के पास पहुँचने या उसे उपस्थित करने के लिये लगातार ध्यान बना रहना । जैसे,—मैं तो घर की डोरी लगी हुई हूँ । उ०—भारति धरज लेहु सुनि मोरी । धरवन लागि रहे छड़ डोरी ।—जग० श्र०, पु० ५८ ।

२. वह तागा जिसे कपड़े के किनारे को कुछ मोड़कर उसके भीतर डालकर सीते हैं ।

क्रि० प्र०—भरना ।

३. वह रस्सी जिसे राजा महाराजाधों या बादशाहों की सवारी के धागे धागे हृद बाँधने के लिये सिपाही लेकर चलते हैं ।

विशेष—यह रास्ता साफ रखने के लिये होता है जिसमें डोरी की हृद के भीतर कोई जान न सके ।

क्रि० प्र०—घाना ।—चलना ।

४. बाँधने की डोरी । धाव । बंधन । उ०—मैं मेरी करि जनम गंवावत जब लगि परत न जम की डोरी ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—डोरी टूटना = संबंध टूटना । उ०—का तकसीर भई प्रभु मोरी । काहे टूटि जाति है डोरी ।—जग० श्र०, पु० १४ ।

डोरी डोली छोड़ना = देखरेख कम करना । चौकसी कम करना । जैसे,—जहाँ डोरी डोली छोड़ी कि बच्चा बिमका ।

५. डीढ़ीदार कटोरा जिससे कड़ाह में दूध, चाशनी आदि चलाते हैं ।

डोरे—क्रि० वि० [हि० डोर] साथ पकड़े हुए । साथ साथ । संग संग । उ०—(क) प्रभुव निचोरे कल बोलत निहोरे नैक, सखिन के डोरे 'देव' डोले जित तित कौं ।—देव (शब्द०) । (ख) बानर फिरत डोरे डोरे अथ तापसनि, शिव को समाज कैधौ ऋषि को सदन है ।—केशव (शब्द०) ।

डोल—संज्ञा पुं० [सं० डोल (= भूलना, लटकाना)] १. लोहे का एक गोल बरतन जिसे कुएँ में खटकाकर पानी खींचते हैं ।

२. हिडोला । झूना । पालना । उ०—(क) सघन फुंज में डोल बनायो झूलत है पिय प्यारी ।—सूर (शब्द०) । (ख) प्रसुहि बिहै पुनि बिहै महि, राखत लोचन लोच । खेलत मनखिब बीन जुग, जनु बिधि मंडल डोल ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—डोल उत्सव = दे० 'डोलोत्सव' । उ०—सो इतने ही डोलो सुधि आई जो प्राजु तो डोल उत्सव को बिन है ।—दो सो बावन, भा० १, पृ० २२६ ।

१. डोली । पालकी । शिविका । उ०—महा डोल दुलहिन के चारी । बहुत बलाय होहु उपकारी ।—रघुराज (शब्द०) । † ४. बामिक उत्सवों में निकलनेवाली चौकियाँ या विमान । ९. बहाज का मस्तूल (लश०) ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना ।

७. डंप । खजमली । हलचल । उ०—बादसाह कहेँ ऐस न बोले । बड़े तो परे बलत मई डोल ।—जायसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

डोल^२—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की काली मिट्टी जो बहुत उपजाऊ होती है ।

डोला^३—वि० [हि० डोलना] डोलनेवाला । खंचल । उ०—तुम बिनु कौन बिनि हिया, तन तिनउर भा डोल । तेहि पर बिरह जराइके, बड़े उड़ावा झोल ।—जायसी (शब्द०) ।

डोलक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का ताल देने का एक प्रकार का बाजा ।

डोलाची—संज्ञा स्त्री० [हि० डोल + ची (प्रत्य०)] १. छोटा डोल । २. फूल या फल आदि रखकर हाथ में लटकाकर ले चलने योग्य बाँस, बेंद आदि का पात्र ।

डोलडाल—संज्ञा पुं० [दे०] १. चलना फिरना । २. बिसा के लिये जाना । पाखाने जाना ।

क्रि० प्र०—चरना ।

डोलढाक—संज्ञा पुं० [हि० ढाक ?] पेंगरा नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी के तक्ते बनते हैं । वि० दे० 'पेंगरा' ।

डोलदहल—संज्ञा पुं० [हि०] हलचल । उ०—डोलदहल लणभंगुर है, मत भ्रम्य डरो । सी बार उजड़ने पर भी है दुनिया बसती ।—सुत०, पृ० ४८ ।

डोलना^१—क्रि० प्र० [सं० डोलन (= लटकना, हिलना)] १. हिलना । चलायमान होना । गति में होना । २. चलना । फिरना । टहलना । जैसे,—बोपाए चारों धोर डोल रहे हैं । उ०—(क) धलधिरह कातर कठनामय, डोलत पाछे बागे ।—सूर०, १।८। (ख) जाहि बन कैसो न डोल रे । ताहि बन पिया झुझि बोल रे ।—विद्यापति०, पृ० ११६ ।

यौ०—डोलना फिरना = चलना घूमना ।

३. बसा जाना । हटना । दूर होना । जैसे,—बहु ऐसा झकड़कर माँगता है कि डलाने से नहीं डोलता । ४. (चित्त) बिचलित होना । (चित्त का) दृढ़ न रह जाना । (चित्त का) किसी

बात पर) जमा न रहना । डिगना । उ०—(क) मर्म बचन जब सीता बोला । हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बटु करि कोटि कुतर्क जयाइनि डोलइ । धवल सुता मनु धवल बयारि कि डोलई ?—तुलसी (शब्द०) ।

डोलना^२—संज्ञा पुं० [सं० डोलन] दे० 'डोला' ।

डोलनि^३—संज्ञा स्त्री० [हि० डोलना] डोलने की स्थिति या कार्य । उ०—वैसिए हंसनि, चहुनि पुनि डोलनि । वैसिए लटकनि, मटकनि, डोलनि ।—नंद० प्र०, २६५ ।

डोलरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोल + री (प्रत्य०)] पलंग । चाट । झोली ।

डोला—संज्ञा पुं० [सं० डोल] [स्त्री० भल्पा० डोली] १. स्त्रियों के बैठने की बहु बंद सवारी जिसे कहार कंधों पर लेकर चलते हैं । पालकी । मियाना । शिविका ।

मुहा०—(किसी का) डोला भेजना = दे० 'डोला देना' उ०—डोला भेजि बीबी जौन माँगत दिल्ली को पति, मोल्हव कहव सीक मेरी सीस जब रे ।—हुस्मीर०, पृ० २० । डोला माँगना = ग्राह के लिये कन्या माँगना । उ०—मुसलमानों द्वारा डोला की माँग को प्रस्वीकार करने पर उनपर शाकमणु किया गया तथा उनका किला जीत लिया गया ।—सं० हरिबा (भू०), पृ० १० । (किसी का) डोला (किसी के) बिर पर या चौके पर उछलना = किसी दूसरी स्त्री का संबंध या प्रेम किसी स्त्री के पति के साथ होना । डोला देना = (१) किसी राजा या सरदार को भेंट की तरह पर अपनी बेटी देना । (२) शूद्रों और नीची जातियों में प्रचलित एक प्रथा । अपनी बेटी को बर के घर पर ले जाकर ब्याहना । डोला निकालना = दुलहिन को बिदा करना । डोला लेना = भेंट में कन्या लेना ।

२. बहु झोका जो झूले में दिया जाता है । पेंग ।

डोलाना—क्रि० प्र० [हि० डोलना] १. हिलाना । चलाना । गति में रखना । जैसे, पंखा डोलना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. हटाना । दूर करना । भगाना ।

डोलायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० डोलायंत्र] दे० 'डोलायंत्र' ।

डोलिया^४—संज्ञा स्त्री० [हि० डोली] डोली । पालकी । उ०—छोट मोट डोलिया चंदन के, छोटे चार कहार हो ।—धरम०, पृ० ६२ ।

डोलियाना—क्रि० प्र० [हि० डोलना] १. किसी वस्तु को चुपके से हटा देना । किसी चीज को गायब कर देना । २. दे० 'डोली करना' ।

डोली—संज्ञा स्त्री० [हि० डोला] स्त्रियों के बैठने की एक सवारी जिसे कहार कंधों पर उठाकर ले चलते हैं । पालकी । शिविका । उ०—बाबू चाँदसर की डोली के बाबत जो हाल यहकमे बंदोबस्त से मिला उसकी नकल धापकी सेवा में भेजता हूँ ।—सुंदर प्र० (बी०), भा० १, पृ० ७५ ।

डोली करना—क्रि० प्र० [हि० डोलना] धता बताना । हटाना । टालना ।—(दलाल) ।

डोली डंडा—संज्ञा पुं० [हि०] बालकों का एक खेल ।

डोल—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. रेवेंड बीनी ।

विशेष—इसका पेड़ हिमालय के काँगड़ा, नेपाल, सिक्किम आदि प्रदेशों के जंगल में होता है। वहाँ से इसकी पड़, जो पीली पीली होती है, नीचे की ओर घंजी जाती है और बाजारों में बिकती है। पर, गुगु में यह चीन की रेवेंड (रेवेंड बीनी), कुतुम की रेवेंड (रेवेंड खताई) या बिनायती रेवेंड के समान नहीं होती। इसे पदमचम और चुकरी भी कहते हैं।

२. एक प्रकार का बाँस।

विशेष—यह बाँस पूर्वी बंगाल, आसाम और ब्रह्मपूर से लेकर बरमा तक होता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक छोटी, दूसरी बड़ी। यह दोनों ओर छाते बनाने के काम में अधिकतर जाती है। डोकरे और पान रखने के ठेके भी इससे बनते हैं।

डोलोत्सव—संज्ञा पुं० [सं० डोलोत्सव] दे० 'डोलोत्सव'। उ०—
एक की पुकार की बाँसलस की कहीं, को लस की पुन
डोलोत्सव कोन ठौर कोन प्रकार करणो ?—बो सी बावन०,
भा० १, पृ० २३१।

डोला—संज्ञा पुं० [देश०] लकड़ या चावल की पीसकर जमीर
लठे पर बनाया जायवाया चिलड़ा या ललटा।

डोहरा—संज्ञा पुं० [देश०] काठ का एक प्रकार का बरतन जिससे
कोलू से गिरा हुआ रस निकाला जाता है।

डोहली—संज्ञा स्त्री० [हि० डोली, मध्यगम डोहली (जैसे, घंवर =
घंवर] दे० 'डोली'। उ०—मीरी गयी डोहली माँहि। साकुर
पर्या तयो बल साहि।—रा० क०, पृ० २३५।

डोही—संज्ञा स्त्री० [हि० डोही] दे० 'डोही'। उ०—छलनी
बलनी डोही और करछी बहु करछी।—सूदन (शब्द०)।

डोहीजना—क्रि० सं० [देश०, पुल० हि० डोहना] मध्येषण
करना। डूँहना। छोजना। उ०—मन सींचाएउ जइ हुबह
पिछा हुबह त माय। जाइ मिछीबइ साजणी डोहीजइ
महिराण।—डोला०, पृ० २११।

डोड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] डोंगा। नाव। उ०—बसके पहार
भार प्रगटथी पहार जल डोंगरनि डोड़ा बले समव सुजाने हैं।
रसरतन, पृ० १०।

डोड़ाना—क्रि० सं० [हि० डोड़ा] डोड़ा डोड़ा रहना। विचलित
होना। घबराना।

डोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० डोडिडम] १. एक प्रकार का डोल जिसे
बजाकर किसी बात की घोषणा की जाती है। दिहोरा।
डुपडुगिया। उ०—चित डोड़ी हुधि फेरी लावे। मन दूनो के
भीड़ उठावे।—हिंदी प्रेम०, पृ० २७४।

क्रि० प्र०—पीटना।—बचना।—बचाना।

मुहा०—डोड़ी बेना = (१) डोल बजाकर सर्वसाधारण को सूचित
करना। मुनासी करना। (२) सब किसी से कहते फिरना।
डोड़ी बचना = (१) घोषणा होना। (२) दुहाई फिरना।
जय जयकार होना। चलती होना। उ०—डोड़ी के घर डोड़ी
बाजी मोछो निपट बचानो।—सूर (शब्द०)।

२. वह सूचना जो सर्वसाधारण को डोल बजाकर दी जाय।
घोषणा। मुनासी।

क्रि० प्र०—फिरना।—फेरना। उ०—तब ब्रज के नामन डोड़ी
फेरी।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० ३००।

डोरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो खेतों में पैदा
हो जाती है। इसमें साँवा की तरह दाने पड़ते हैं जो खाने में
कड़ू होते हैं।

डोरा—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु'। उ०—नील पाठ
परोइ मणिगण फणिग धोले जाइ। खुनखुनाकरि हंसत मोहन
नचत डोरा बजाइ।—सूर (शब्द०)।

डोया—संज्ञा पुं० [देश०] काठ का चमचा। काठ की डोड़ी की
बड़ी करछी। उ०—लकड़ी डोया कल्लुली सरस काजु
भनुहारि। सुप्रभु संग्रहं हि परिहरहि धेवक सखा विचारि।—
सुखसी (शब्द०)।

डोका, **डोकी**—संज्ञा स्त्री० [देश०] पंडुक पक्षी। पंडुकी। उ०—
घबिसारिकाओं की नोका ऐसी प्रगल्भ मानो डोका।
—श्यामा० पु० ३१।

डोर—संज्ञा पुं० [हि० डोल] डोल। डंग। प्रकार। उ०—(क)
घोरे डोर झोरन पे बोरन के वै गए।—पद्माकर ग्रं०, पृ०
१६१। (ख) पद्माकर चांदनी चंदहु वे कछु और ही डोरन
वै गए हैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०६।

डोर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डोर' उ०—गुठनी डोर सुरति के धोरे
मेरा मुभक्त मिलाही।—राम० धर्म०, पृ० ३७५।

डोर, **डोरू**—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु'। उ०—(क) कह
नज्जियं डोर रुद्रं समारी।—प० रासो पृ० १७७। (ख) बजै
डमरु डोरु डमकं तडुक्के। चक्रे मेद धुजै हके गेन हक्के।—
पृ० रा० १।३६०।

डोल—संज्ञा पुं० [हि० डोल ?] किसी रचना का प्रारंभिक रूप।
ढाँचा। आकार। ढुंढा। ठाट। ठट्टर।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

मुहा०—डोल डालना = ढाँचा खड़ा करना। रचना का प्रारंभ
करना। बनाने में हाथ लगाना। लगना लगाना। डोल पर
लाना = काठ छाँटकर सुडोल बनाना। दुरुस्त करना।

२. बनावट का ढंग। रचना। प्रकार। ढब। जैसे,—इसी डोल
का एक गिलास मेरे लिये भी बना दो।

मुहा०—डोल से लगाना = ठीक क्रम से रखना। इस प्रकार
रखना जिससे देखने में अच्छा लगे।

३. तरह। प्रकार। जाति। किस्म। तोर। तरीका। ४.
अभिप्राय के साधन की युक्ति। उपाय। तदबीर। व्योत।
आयोजन। सामान। उ०—कबीर राम सुमिरिए क्यों फिरे
और की डोल।—कबीर मं०, पृ० ३६५।

थी०—डोलडाल।

मुहा०—डोल पर लाना = अभिप्रायसाधन के अनुकूल करना।
ऐसा करना जिससे कोई मतलब निकल सके। इस प्रकार

प्रवृत्त करना जिससे कुछ प्रयोजन सिद्ध हो सके। डोल बाँधना = दे० 'डोल लगाना'। डोल लगाना = उपाय करना। युक्ति बैठाना। जैसे,—कहीं से सो रुपए १००) का डोल लगाओ।

५. रंग डग। लक्षण। आयोजन। सामान। जैसे,—पानी बरसने का कुछ डोल नहीं दिखाई देता। ६. बसोबस्त में जमा का तकदमा। तखमीना।

डोल^२—संज्ञा स्त्री० खेतों की मेड़। डौड़।

डोलकाज—संज्ञा पुं० [हि० डोल] उपाय। प्रयत्न। युक्ति। व्योत।

डोलदार—वि० [हि० डोल + फा० दार (प्रत्य०)] सुशील। सुंदर। खूबमूरत।

डोलना^१—क्रि० स० [हि० डोल] गढ़ना। किसी वस्तु को काट छाँट या पीट पाटकर किसी ढाँचे पर लाना। दुस्त करना।

डोला^१—संज्ञा पुं० [देश०] हाथ का गट्टा। उ०—(क) नब्बन की बाँह के डोले में गोली लगी थी।—फूलो०, पृ० ११। (ख) करि हिकमत रहकला बनाई। डोले तले से धरो कलाई।—प्राण०, पृ० २२।

डोलियाना^१—क्रि० स० [हि० डोल] १. ढंग पर लाना। कह सुनकर अपनी प्रयोजन सिद्धि के अनुकूल करना। काट छाँटकर किसी ठीक आकार का बनाना। गढ़कर दुस्त करना।

डौधर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घड़िया जिसके पर, छाती और पीठ सफेद, दुम काली और चोच लाल होती है।

डौधा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'डोधा'।

ड्यम्भक^(१)—संज्ञा पुं० [सं० ड्यम्भक] दे० 'ड्यम्भक'। उ०—मेघ बिबजित भीम बिबजित, बिबजित ड्यम्भक रूप। कहै कबीर तिहँ दोष बिबजित, ऐसा तत्त अतूप।—कबीर ग्र०, पृ० १६३।

ड्यूक—संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० ड्यूकेज] १. इंग्लैंड, फ्रांस, इटली आदि देशों के सामंतों और भूम्यधिकारियों की वंशपरंपरागत उपाधि। इंग्लैंड के सामंतों और भूम्यधिकारियों को दी जानेवाली सर्वोच्च उपाधि जिसका दर्जा प्रिंस के नीचे है। जैसे, कनाडा के ड्यूक, विंडसर के ड्यूक।

विशेष—जैसे हमारे देश में सामंत राजाओं तथा बड़े बड़े जमींदारों को सरकार से महाराजाधिराज, महाराजा, राजाबहादुर, राजा आदि उपाधियाँ मिलती हैं, उसी प्रकार इंग्लैंड में सामंतों तथा बड़े बड़े जमींदारों को ड्यूक, मार्क्विस्, एर्ल, बाइकोट, बैरन आदि की उपाधियाँ मिलती हैं। ये उपाधियाँ वंशपरंपरा के लिये होती हैं। उपाधि पानेवाले के मरने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र या उत्तराधिकारी उपाधि का जो अधिकारी होता है। इस प्रकार अधिकारी क्रम से उस वंश के उपाधि बनी रहती है। अब यह भी नियम हो गया है कि जिसे सरकार चाहे केवल जीवन भर के लिये यह उपाधि प्रदान करे। मार्क्विस्, एर्ल, बाइकोट और बैरन उपाधिधारी लार्ड कहलाते हैं। मार्क्विस्,

बैरन आदि उपाधियाँ जापान में भी प्रचलित हो गई हैं।

२. सामंत। सरकार। राजा।

ड्यूटी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. करने योग्य कार्य। कर्तव्य। धर्म। फर्ज। जैसे,—स्वयंसेवकों ने बड़े तत्परता से अपनी ड्यूटी पूरी की। २. वह काम जो सुपुर्द किया गया हो। सेवा। लिहमत। पहरा। जैसे,—(क) स्वयंसेवक अपनी ड्यूटी पर थे। (ख) कल सबेरे वहाँ उसकी ड्यूटी थी। ३. नौकरी का काम। जैसे,—वह अपनी ड्यूटी पर चला गया। ४. कर। जुर्गी। महसूल। जैसे,—सरकार ने नमक पर ड्यूटी कम नहीं की।

ड्योढ़ा^१—वि० [हि० डेढ़] [स्त्री० ड्योढ़ी] आधा और अधिक। किसी पदार्थ से उसका आधा और ज्यादा। डेढ़गुना।

ड्यो—ड्योढ़ी बाँठ = एक पूरी और उसके ऊपर दूसरी आधी बाँठ। डेढ़पाँठ। छुट्टी।

ड्योढ़ा^२—संज्ञा पुं० १. ऐसा तंग रास्ता जिसके एक किनारे पर ढाल या गड्ढा हो।—(पावकी के कहार)। २. गाने में वह स्वर जो साधारण से कुछ ऊँचा हो। ३. एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें कम से चारों की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है।

ड्योढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० ड्योढ़ी] १. द्वार के पास की भूमि। जहाँ स्थान जहाँ से होकर किसी घर के भीतर प्रवेश करते हैं। चौकट। दरवाजा। फाटक। २. वह स्थान जो पटे हुए फाटक के नीचे पड़ता है या वह बाहरी कोठरी जो किसी बड़े मकान में घुसने के पहले ही पड़ती है। उ०—महरी ने दरवाजा साहूब की ड्योढ़ी पर जगाया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २४। ३. दरवाजे में घुसते ही पड़नेवाला बाहरी कमरा। पोरी। पंखरी।

ड्यो—ड्योढ़ीदार। ड्योढ़ीवान।

मुहा०—(किसी की) ड्योढ़ी खुजना = दरबार में जाने की इजाजत मिलना। जाने जाने की आज्ञा मिलना। (किसी की) ड्योढ़ी बंद होना = किसी राजा या रईस के यहाँ जाने जाने की मनाही होना। जाने जाने का निषेध होना। ड्योढ़ी लगना = द्वार पर द्वारपाल बैठना जो बिना आज्ञा पाए लोगों को भीतर नहीं जाने देता। ड्योढ़ी पर होना = दरवाजे पर या अधीनता में होना। नौकरी में होना। उ०—बसो : हुजूर, हयरे यह बात किसी रईस के घर में आज तक देखी ही नहीं। यहाँ चाहे बड़ बड के जो बातें बनाएँ, किसी और की ड्योढ़ी पर होसी तो बड़े बड़े विकलवा दी जाती।—सीर कु०, पृ० १२।

ड्योढ़ी—[हि० डेढ़] डेढ़गुनी। दे० ड्योढ़ा।

ड्योढ़ीदार—संज्ञा पुं० [हि० ड्योढ़ी + फा० दार] दे० 'ड्योढ़ीवान'।

ड्योढ़ीवान—संज्ञा पुं० [हि० ड्योढ़ी] ड्योढ़ी पर रहनेवाला सिपाही या पहरदार। द्वारपाल। दरवाज उ०—जहाँ न ड्योढ़ीवान पायजामा तन धारे।—श्रीधर पाठक (शब्द०)।

- ह्योद, ह्योदा**—संज्ञा पुं० [हि० डेढ़] [वि० स्त्री० ह्योदी] १. एक और आधा अधिक । उ०—वह जिसके न, दून् ह्योद, पोन् । जो वेदों में है सत्य, साम ।—आराधना, पृ० २० ।
- ह्योदी**—संज्ञा पुं० [हि० ह्योदिया] द्वारपाल । ह्योदीदार । दरबान । उ०—मोमा ह्योदी प्रीत सवाई ।—रा० क०, पृ० ३१५ ।
- हूम**—संज्ञा पुं० [घं०] १. एक प्रकार का अंगरेजी बाजा । डोल । नगाड़ा । २. डोल जैसे आकार का बड़ा पात्र या पीपा ।
- ह्राङ्ग**—संज्ञा स्त्री० [घं०] रेखाओं के द्वारा अनेक प्रकार की आकृति बनाने की कला । सक्तीरों से चित्र या आकृति बनाने की विद्या ।
- ह्राङ्गरूम**—संज्ञा पुं० [घं०] बैठने का कमरा । जिस कमरे में आनेवालों को बैठाया जाय । उ०—उनके लिये ह्राङ्गरूम बनाकर सजाना पड़ता है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७७ ।
- ह्राइवर**—संज्ञा पुं० [घं०] गाड़ी हूँकने या चलायेवाला । जैसे, रेल का ह्राइवर ।
- ह्राई प्रिटिंग**—संज्ञा स्त्री० [घं०] सूखी छपाई । छापेलाने में वह छपाई जो भिगोए हुए सूखे कागज पर की जाती है ।
- विशेष**—इस प्रकार की छपाई के कागज की चमक नहीं जाती है और छपाई साफ होती है ।
- हुान**—वि० [घं०] बराबर । हारजोतशुभ्य । उ०—बाजी हुान रही ।—गोदान, पृ० १२२ ।
- हुाप**—संज्ञा पुं० [घं०] १. हुँद । बिबु । २. दे० 'हुाप सीन' ।
- हुाप सीन**—संज्ञा पुं० [घं०] १. नाट्यशाला या थिएटर के रंगमंच के आगे का परछा जो नाटक का एक घंटा पुरा होन पर चिराया जाता है । गवर्निका ।
- हुापट**—संज्ञा पुं० [घं०] १. यशविद्या । यशोवा । खर्चा । जैसे,—घपील का हुापट पैवार कर कमिटी में लेव दिया गया । २. चेक । हुंकी ।
- हुापट्समैन**—संज्ञा पुं० [घं०] नक्शा बनानेवाला । स्थूल मानचित्र

प्रस्तुत करनेवाला । जैसे,—हुापट्समैन ने भूकान का नक्शा हंजीनियर के पास भेजा ।

हुाम—संज्ञा पुं० [घं०] पानी आदि द्रव पदार्थों को नापने का एक अंग्रेजी मान जो तीन मासे के बराबर होता है ।

हुामा—संज्ञा पुं० [घं०] १. रंगमंच पर पात्रों या नटों का आकृति, हाव भाव, कचन आदि द्वारा किसी घटना या दृश्य का प्रदर्शन । रंगमंच पर किसी घटना या घटनाओं का प्रदर्शन । अभिनय । २. वह रचना जिसमें मानव जीवन का चित्र अंकों और गभोंको आदि में चित्रित हो । नाटक ।

हुिक—संज्ञा पुं० [घं०] मद्यपान । उ०—कैलाश ने कहा पहले हुिक चले, फिर खाना मंगाया जायगा ।—संन्यासी, पृ० १४० ।

हुिल—संज्ञा स्त्री० [घं०] बहुत से सिपाहियों या लड़कों को कई प्रकार के क्रम से लड़े होने, चलने, अंग हिलाने आदि की नियमित शिक्षा । कवायब । जैसे,—स्कूल में हुिल नहीं होती ।

यौ०—हुिल मास्टर = कवायब सिखानेवाला शिक्षक ।

हुेटनाट—संज्ञा पुं० [घं०] जंगी जहाज का एक भेद जो साधारण जंगी जहाजों से बहुत अधिक बड़ा, शक्तिशाली और भीषण होता है ।

हुैन—संज्ञा पुं० [घं०] नगर के गंदे पानी के निकास का परनाला । मोरी । गंदगी के बहाववाली नाली ।

हुैस—संज्ञा पुं० [घं०] पोशाक । वेशभूषा ।

हुैस करना—क्रि० स० [घं० हुैस + हि० करना] घाव में दवा आदि भरकर बाँधना । मरहम पट्टी करना । पत्थर आदि को चिकना और सुधील करना । ३. बाल छूटना ।

हुैगून—संज्ञा पुं० [घं०] १. सवार । सिपाही ।

विशेष—पहले हुैगून पैदल और सवार दोनों का काम देते थे । पर अब वे सवार ही होते हैं ।

२. रिसाले का नोकर । ३. क्रूर या उद्वेग व्यक्ति । जंगली आदमी । ४. पंखदार साँप । सरस नाग ।

ठ

ठ—हिंदी वर्णमाला का चौबहवीं व्यंजन और टवर्ण का चौथा अक्षर । इसका उच्चारण स्थाव मुहूर्त है ।

ठंक—संज्ञा पुं० [सं० आषाढक, हि० ठाक] पलाश या खिरल की एक किस्म । उ०—जरी जो चरती ठीवहि ठीनी । ठंक पराध जरे तेहि ठीनी ।—पद्ममावत, पृ० १७ ।

ठंकनी—संज्ञा पुं० [प्रा० ठंकण, हि० ठकना] दे० 'ठकन' ।

ठंकना—क्रि० स० [सं० छादय, प्रा० घा० डक, ठंक] दे० 'ठकना' । उ०—(क) बिभरत केस पुरुष नहि अंकिय । प्रवीराज देखत सिर ठंकिय ।—पृ० रा०, ११ । ७१४ । (ख) समझि दासि सिर भर तिन ठंकयो ।—पृ० रा०, ११ । ७१६ ।

ठंकी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठंकना] ठकना । आच्छादन । उ०—

बेद कटेब न खाँपी बाँछी । सब ठंकी तलि आछी ।—गोरख०, पृ० २ ।

ठंका—संज्ञा पुं० [हि० ठाक] पलाश । ठाक । उ०—बकनी बान अस घनी बेधी रन बन ठंका । सउजहि तव सब रोवाँ पंखिहि तम सब पंख ।—जायसी (शब्द०) ।

ठंग—संज्ञा पुं० [सं० ठङ्ग, ठङ्गन (= चाल, गति ?)] १. क्रिया । प्रणाली । शैली । ढब । रीति । तोर । तरीका । जैसे,—(क) मोलने बालने का ठंग, बैठने उठने का ठंग । (ख) जिस ठंग से छूम काम करते हो वह बहुत अच्छा है । २. प्रकार । आँति । तरह । किस्म । ३. रचना । प्रकार । बनावट । गढ़न । ढाँचा । जैसे,—वह गिलास और ही ठंग का है । ४.

अभिप्रायसाधन का मार्ग । मुक्ति । उपाय । तबदीर । डोल ।
जैसे,—कोई ढंग ऐसा निकालो जिसमें रुपया मिल जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—निकालना ।—बताना ।

मुहा०—ढंग पर चढ़ना = अभिप्रायसाधन के अनुकूल होना ।
किसी का इस प्रकार प्रवृत्त होना जिससे (दूसरे का) कुछ
अर्थ सिद्ध हो । जैसे,—उससे भी कुछ रुपया लेना चाहता हूँ,
पर वह ढंग पर नहीं चढ़ता है । ढंग पर लाना = अभिप्राय
साधन के अनुकूल करवा । किसी को इस प्रकार प्रवृत्त करना
जिससे कुछ मतलब निकले । ढंग का = कार्यकुशल । व्यवहार-
बख । चतुर । जैसे,—वह बड़े ढंग का घादमी है ।

५. चाल डाल । आचरण । व्यवहार । जैसे,—यह मार खाने का
ढंग है ।

मुहा०—ढंग बरतना = शिष्टाचार दिखाना । दिखाऊ व्यवहार
करना ।

६. घोखा देने की युक्ति । बहाना । होला । पाखंड । जैसे,—यह
तुम्हारा ढंग है ।

क्रि० प्र०—रचना ।

७. ऐसी बात जिससे किसी होनेवाली बात का अनुमान हो ।
लक्षण । आसार । जैसे,—रंग ढंग अच्छा नहीं दिखाई देता ।
८. दशा । अवस्था । स्थिति । उ०—नैनन को ढंग सों अनंग
पिचकारिन ते, गातन को रंग पीरे पातन तें जानबी ।—
चपाकर (शब्द०) ।

ढंगलजाड़—संज्ञा पु० [हि० ढंग + जजाड़] चोड़ों के दुम के नीचे
की एक भोरी जो ऐबों में समझी जाती है ।

ढंगी—वि० [हि० ढंग] चालबाज । चतुर । चालाक ।

ढंढस—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ढंढरच' । उ०—ढंढस कर मन ते
दूर, सिर पर साहुव सपा हस्तर ।—गुलाल०, पृ० १३७ ।

ढंढार—वि० [देश०] बड़ा ठर्रा । बहुत बड़ा और बेढग ।

ढंढेरा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ढंढेरा' । उ०—ता पाछे राजा जेम-
लजी ने सगरे ग्राम में ढंढेरा पिटाइ दियो ।—दी सी बावन०,
भा० १, पृ० २५७ ।

ढंढोलना^७—क्रि० स० [प्रा० ढंढुल्ल, ढंढोल (= खोजना)] दे०
'ढंढेरना' । उ०—प्रहू फूटी दिसि पुंढरी हणहणिया हय चट्ट ।
ढोलइ धण ढंढोलियठ, शीतल सुंदर घट्ट ।—ढोला०,
दू० ६०२ ।

ढंकनः—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ढकना', 'ढकन' ।

ढंकना^१—क्रि० स० [हि०] दे० 'ढकना' ।

ढंकना^२—संज्ञा पु० [हि०] [श्री० ढंकनी] दे० 'ढकना' ।

ढंकली^१—संज्ञा श्री० [हि०] दे० 'ढंकली' ।

ढंग^७—संज्ञा पु० [हि० ढंग] अभिप्राय साधने का उपाय । डोल ।
दे० 'ढंग' । उ०—बाही के जैए बलाय लौ, बालन ! हैं तुम्हे
नीकी बतावति हौ ढंग ।—देव (शब्द०) ।

ढंगलाना^१—क्रि० स० [हि० डाल] लुढ़काना ।

ढंगियाः—वि० [हि० ढंग + रिया (प्रत्य०)] दे० 'ढंगी' ।

ढंढेरच—संज्ञा पु० [हि० ढंग + रचना] घोखा देने का आयोगन ।
पाखंड । बहाना । होला ।

ढंढोर—संज्ञा पु० [अनु० आर्ये घार्ये] १. आग की लपट । ज्वाला ।
लौ । उ०—(क) रहै प्रेम मन उरझा लटा । बिरह ढंढोर
परहि सिर जटा ।—आयसी (शब्द०) । (ख) कंधा जरे अगिन
अनु लाए । बिरह ढंढोर जगत न जराए ।—आयसी (शब्द०) ।
२. काले मुँह का बंदर । लंगूर ।

ढंढोरची—संज्ञा पु० [हि० ढंढोर + ची (प्रत्य०)] ढंढोरा फेरने-
वाला । मुनादी फेरनेवाला । उ०—लेकिन बूझी धीर मोरा-
वियन घर्मप्रचारकों से ढंढोरची मुक्ति सैनिकों की तुलना नहीं
की जा सकती ।—किन्नर०, पृ० ६४ ।

ढंढोरना^१—क्रि० स० [हि० ढंढेना] टटोलकर ढंढेना । हाथ
डालकर इधर उधर खोजना । उ०—(क) तेरे लाल मेरो
माखन लायो । तुपहर दिवस जानि घर सुनो हूँकि ढंढोरि
आपही आयो ।—सूर (शब्द०) । (ख) बेद पुरान भागवत
गीता चारों बरन ढंढोरी—कबीर० श०, भा० १, पृ० ८५ ।

ढंढोरा—संज्ञा पु० [अनु० डम + डोल] १. घोषणा करने का डोल ।
डुगडुगी । डोड़ी ।

मुहा०—ढंढोरा पीटना = डोल बजाकर चारों ओर जताना ।
मुनादी करना ।

२. वह घोषणा जो डोल बजाकर की जाय । मुनादी ।

मुहा०—ढंढोरा फेरना = दे० 'ढंढोरा पीटना' ।

ढंढोरिया—संज्ञा पु० [हि० ढंढोरा] ढंढोरा पीटनेवाला । डुगडुगी
बजाकर घोषणा करनेवाला । मुनादी करनेवाला ।

ढंढोलना^१—क्रि० स० [हि०] दे० 'ढंढोरना' । उ०—रतन निराला
पाइया, जगत ढंढोलिवा वादि ।—कबीर प्र०, पृ० १५ ।

ढंपना^१—क्रि० प्र० [हि० ढकना] किसी वस्तु के नीचे पड़कर दिखाई
न देना । किसी वस्तु के ऊपर से छेक लेने के कारण उसकी
छोट में छिप जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

ढंपना^२—संज्ञा पु० ढाकने की वस्तु । ढकन ।

ढ—संज्ञा पु० [सं०] १. बड़ा डोल । २. कुत्ता । ३. कुत्ते की पूँछ ।
४. ध्वनि । नाव । ५. सौंप ।

ढई देना—क्रि० प्र० [हि० धरना ?] किसी के यहाँ किसी काम
से पहुँचना और जबतक काम न हो जाय तबतक न हटना ।
धरना देना ।

ढकई^१—वि० [हि० ढाका] ढाके का ।

ढकई^२—संज्ञा पु० एक प्रकार का केला जो ढाके की ओर होता है ।

ढकना^१—संज्ञा पु० [सं० ढक् (= छिपाना)] [श्री० मल्पा० ढकनी]
वह वस्तु जिसे ऊपर डाल देने या बैठा देने से नीचे की वस्तु
छिप जाय या बंद हो जाय । ढकन । चपनी ।

ढकना^२—क्रि० प्र० किसी वस्तु के नीचे पड़कर दिखाई न देना ।
छिपना । जैसे—मिठाई कपड़े से ढकी है ।

संयो० क्रि०—जाना ।

ढकना—क्रि० सं० दे० 'ढाँकना' ।

ढकनियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढकनी' । उ०—मुसग ढकनियाँ
ढाँरि पट जवन गामि छीके समदायो ।—सूर (शब्द०) ।

ढकनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढकना] १. ठाँकने की वस्तु । ढक्कन ।
२. फूल के घासों का एक प्रकार का गोदना जो हथेली के
पीछे की छोर गोदा जाता है ।

ढकपन्ना—संज्ञा पुं० [हि० ढाक + पन्ना (= पत्ता)] पत्तास पापड़ा ।

ढकपेडरु—संज्ञा पुं० [देग०] एक चिड़िया का नाम ।

ढकसा—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. सूखी लीसी में पले से होनेवाला
हन हन शब्द । २. सूखी लीसी ।

ढका—संज्ञा पुं० [सं० घाटक] तीन सेर की एक तोल या बाट ।

ढका—संज्ञा पुं० [ध० ढाक] घाट । जहाज ठहरने का स्थान ।
(लण०) ।

ढकापुर्ण—संज्ञा पुं० [सं० ढक्का] बड़ा ढोल । उ०—नवति दुहुभि
ढका बदन माक हका, चलत लागत घका कहत आगे ।—
सूदन (शब्द०) ।

ढका—संज्ञा पुं० [धनु०] ढक्का । ढक्कर । उ०—(क) ढकनि
ढकेलि पेलि मचिव चले ले ठेलि नाथ न चबैगो बल अनल
भगवानो ।—तुलसी (शब्द०) । (ल) चढ़ि गढ भट ढढ
ढोट के कंगूरे कोपि नेकु ढका देह ठेलन की हैरी सी ।—
तुलसी (शब्द०) ।

ढकिल—संज्ञा स्त्री० [हि० ढकेलना] एक दूसरे को ढकेलते हुए
वेग के साथ बाबा । चढ़ाई । आक्रमण । उ०—ढकिल करी
सब ने अधिकारी । छोरी गुरु लोगन की घाई ।—लाल कवि
(शब्द०) ।

ढकेलना—क्रि० सं० [हि० ढक्का] १. बक्के से गिराना । ठेलकर
आगे की ओर गिराना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. बक्के से हटाना । ठेलकर सरकना । जैसे,—भीड़ को पीछे
ढकेनी ।

ढकेला ढकेली—संज्ञा स्त्री० [हि० ढकेलना] ठेलमठेला । आपस
में ढक्का चुकनी ।

क्रि० प्र०—सरना ।

ढकोरना—क्रि० सं० [धनु०] पी जाना । दे० 'ढकोसना' ।

ढकोसना—क्रि० सं० [धनु० ढक ढक] एकबारगी पीना । बहुत
खानापीना । जैसे,—इतना भूख मत ढकोस लो कि कै
ही जाय ।

संयो० क्रि०—जाना । —लेना ।

ढकोसला—संज्ञा पुं० [हि० ढग + सं० कोशल] ऐसा आयोजन
जिससे लोगों को खोला हो । खोला देने का या मतसब साधने
का ढंग । आडंबर । मिथ्या जाल । कपट व्यवहार । पाखंड ।
उ०—एन ढकोसली में क्या तथ्य है ।—ककाल, पृ० १०४ ।
(ल) मगर यह इश्क सब ढकोसला ही ढकोसला है ।—
किसाना, भा० १, पृ० ११ ।

क्रि० प्र०—करना । —केलना ।

ढक्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम । (कदाचित् 'ढाका') ।

२. विनाल घासघना मंदिर । बड़ा मंदिर (को०) ।

ढक्कन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढाकने की वस्तु । वह वस्तु जिसे
ऊपर से ढाल देने या बैठा देने से कोई वस्तु छिर जाय या बंद
हो जाय । जैसे, ढिबिया का ढक्कन, बरतन का ढक्कन । २.
(दरवाजा आदि) बंद करना या ढक देना (को०) ।

ढक्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक बड़ा ढोल । २. नगाडा । ढंका ।
उ०—शख भेरी पगाव भुरज ढक्का बाद धनित । घंटा नाद
बिज बिज गुंजरा ।—मार्तण्ड प्र०, भा० २, पृ० ६०५ ।
२. डमरू । ३. छिनाम । दुरात (को०) । ४. अदर्शन ।
लंप (को०) ।

ढक्कापुर्ण—संज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'ढका' ।

ढक्कारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताँबे की उपासना में तारा देवी का
एक नाम (को०) ।

ढक्की—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाल] पहाड़ की ढाल जिसमें होकर लोग
चढ़ते उतरते हैं ।—(पंजाब) ।

ढगाण—संज्ञा पुं० [सं०] पिमल में एक मायिक गण जो तीन
मात्राओं का होता है । इसमें तीन भेद हो सकते हैं; यथा—
15, 5, 1। इनमें से पहले की सवा रस, तस और ढवजा,
दूसरे की पवन, नंद, स्वास, ताव और तीसरे की वलय है ।

ढचर—संज्ञा पुं० [हि० ढाँचा] १. किसी वस्तु को बनाने या ठीक
करने का सामान या ढाँचा । आयोजन और सामान ।

क्रि० प्र०—केलना । बाँधना ।

२. टटा । बखेडा । जंजाल । घषा । काँवर । ३. आडंबर । झूठा
आयोजन । ढकोसला ।

क्रि० प्र०—केलना ।

४. बहुत दुबला पतला और बूढ़ा ।

ढटीगड़—संज्ञा पुं० [सं० ढटीगर (= मोटा आदमी), हि० धीग, धीगड़ा]
१. बड़े डोलडोल का । ढीग । जैसे,—इतने बड़े ढटीगड़ हुए पर
कुछ शऊर न हुआ । २. हष्ट पृष्ट । मुटंडा । मोटा ताजा ।

ढटीगड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढटीगड़' ।

ढटीगर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढटीगड़' ।

ढट्टा—संज्ञा पुं० [हि० डाट या देण०] वह भारी माफा या मुरेठा जो
सिर के प्रतिष्ठित डाढ़ी और आँखों को भी ढाँके हो ।

ढट्टा—संज्ञा पुं० [हि० डाट] छेद या मुँह बसकर बंध करने की
वस्तु । डाट । टेपी । काय ।

ढट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाढ़] लड़ी बाँधने की पट्टी ।

ढट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाट] किसी छेद को बंद करने की वस्तु ।
डाट । टेपी ।

ढङ्काना—क्रि० सं० [हि०] आगे बढ़ाना । जोर लगाकर ठेलना ।
ढलकाना । उ०—गाड़ी थाकी मागे में, बछड़न करी न पेश ।
अब गाड़ी ढङ्काय दे, घबल धंग हिरदेश ।—शुक्ल अग्नि०
ग्रं० (इति०), पृ० ८८ ।

ढङ्ढा—वि० [देग०] बहुत बड़ा । आवश्यकता से अधिक बड़ा ।
बड़ा और बेवंगा ।

ढङ्का^१—संज्ञा पुं० [हि० ठाट] १. ढाँचा। मंगों की वह स्थूल योजना जो किसी वस्तु की रचना के प्रारंभ में की जाती है।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

२. घाड़वर। दिक्कावट का सामान। फूटा ठाट बाट।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

ढङ्को—संज्ञा स्त्री० [हि० ढङ्का] १. बुढ़ी स्त्री। वह बूढ़ी स्त्री जिसके शरीर में हड्डी का ढाँचा ही रह गया हो। २. बकवादिन स्त्री। ३. मटमैले रंग की एक चित्रिया जिसकी चोच पीली होती है। यह बहुत सडती और बिल्लाती है। चरखी।

मुहा०—ढङ्को का ढङ्कोवाला=पूखें। बेवकूफ।

ढङ्कसुरी—संज्ञा पुं० [हि० ठाट + सं० ईश्वर] दे० 'ढाँकसुरी'। उ०—कोउ बाँह को उठाए ढङ्कसुरी कहाइ, जाइ कोउ तो मवन कोउ नयन बिचार है।—भीखा श०, पृ० ५५।

ढङ्कुर—संज्ञा पुं० [हि०] शरीर। देह। टटुर। उ०—चहुँपान तुच्छ ढङ्कुर बहिय दुरिग मीर बिय सिर ढरथी।—पु० रा०, १०।२७।

ढनढन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ढन ढन का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।

ढनका—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ढोल, नगाड़ा, आदि बाजों की ध्वनि। उ०—पैज रुपनि दुहुँ और चोप चुहल चाचरि सोर ढोल ढनक घोष मंगल सुनत सफल होत कान।—घनानंद, पृ० ४०४।

ढनमनाना—क्रि० प्र० [अनु०] लुढ़कना। टुलकना। उ०—मुठिका एक महाकवि हुनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी।—तुलसी (शब्द०)।

ढपा—संज्ञा पुं० [अ० दफ, हि० डफ] दे० 'डफ'।

ढपना^१—संज्ञा पुं० [हि० ढापना] ढाकने की वस्तु। ढकन।

ढपना^२—क्रि० प्र० [हि० ढकना] ढका होना। उ०—लसतु सेत सारी दप्यो, तरल तरीना कान। परथी मनी सुरसरि सलिल रवि प्रतिविबु बिहान।—बिहारी (शब्द०)।

ढपना^३—क्रि० स० [हि० ढापना] ढाकना। ऊपर से ढोढ़ाना। छिपाना।

ढपरिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दुपहरिया'। उ०—चार पहर पेडा माँ रगड़ी खरी ढपरिया पैहो।—कबीर श०, भा० पृ० २२।

ढपरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढापना] चूड़ीवालों की मँगोठी का ढकना।

ढपला—संज्ञा पुं० [अ० दफ, हि० डफ, डप] दे० 'डफला'।

ढपली—संज्ञा स्त्री० [हि० डफला] दे० 'डफली'।

ढपीला—वि० [हि० ढापना] धाँसादि करनेवाली। ढापनेवाली। उ०—यौवन के वर्तत स्मृति की उपमा बँडे की काली, बोझिल, ढपील, ढाल से देना अनुचित प्रतीत होता है।—भाषुनिक०, पृ० २३।

ढप्पू—वि० [देश०] बहुत बड़ा। ढड्डा।

ढफ—संज्ञा पुं० [हि० डफ] दे० 'डफ'। उ०—हंज मुरज ढफ तास बाँसुरी, झालर की झंकार।—सूर (शब्द०)।

ढफला—संज्ञा पुं० [हि० डफला] [स्त्री० डफली] दे० 'डफला'। उ०—ढमकत ढोल ढफला भगार। धमकत धरनि घोंसा फुंकार।—सुजान०, पृ० ३६।

ढफारा—संज्ञा पुं० [अनु०] चिंगाड़। जोर से रोने या बिल्लाने का शब्द। डफार। उ०—तब पाकूब मु छाड़ि डफारा। कहे लाग का तोर बिगारा।—हिंदी प्रेम०, पृ० २४५।

ढब—संज्ञा पुं० [सं० धव (= चलना, गति) या देश०] १. क्रियाप्रणाली। ढंग। रीति। तीर तरीका। जैसे, काम करने का ढब। उ०—ताकत को ढब नाहि तकन की गति है न्यारी।—पल्लव०, पृ० ४४। २. प्रकार। माँति। तरह। किस्म। जैसे,—वह न जाने किस ढब का आदमी है। ३. रचना-प्रकार। बनावट। गदन। ठाँवा। जैसे,—वह गिलास और ही ढब का है। ४. अभिप्रायमान का मांग। युक्ति। उपाय। तदबीर। जैसे,—किसी ढब में काम निकालना चाहिए।

मुहा०—ढब पर चढ़ना=अभिप्रायसाधन के अनुकूल होना। किसी का इस प्रकार प्रवृत्त होना जिससे (दूसरे का) कुछ धर्म सिद्ध हो। किसी का ऐसी अवस्था में होना जिससे कुछ मतलब निकले। जैसे,—वही वह ढब पर चढ़ गया तो बहुत काम होगा। ढब पर लगाना या लाना=अभिप्रायसाधन के अनुकूल करना। किसी को इस प्रकार प्रवृत्त करना कि उससे कुछ धर्म सिद्ध हो। अपने मतलब का बनाना।

५. गुण और स्वभाव। प्रकृति। भावत। बान। टेव।

मुहा०—ढब डालना=(१) भावत डालना। अभ्यस्त करना। (२) अच्छी भावत डालना। आचार व्यवहार की शिक्षा देना। शऊर सिखाना। ढब पढ़ना=प्राप्त होना। बान या टेव पढ़ना।

ढबका(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] उपाय। युक्ति। उ०—चेतनि असवार ग्यान गुद करि और तजी सब ढबका।—गारुड०, पृ० १०३।

ढबरा—वि० [हि० ढाबर] दे० 'ढाबर'।

ढबरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढबरी] मिट्टी का तेल जलाने की गुच्छी-दार डिबिया। ढिबरी। उ०—घुँघ्रा अधिक देतो है, टिन की ढबरी, कम करती उजियाला।—ग्राम्या, पृ० ६५।

ढवीला—वि० [हि० ढब + ईला (प्रत्य०)] ढब का। ढबवाला। बालाक। चतुर।

ढबुआ^१—संज्ञा पुं० [देश०] खेतों के मजान के ऊपर का छप्पर।

ढबुआ^२—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का तबे का प्रचलित देसी सिक्का जिसकी चलन बंद कर दी गई है। २. पैसा।

ढबैला—वि० [हि० ढाबर + एला (प्रत्य०)] मिट्टी और कीचड़ मिला हुआ (पानी)। मटमैला। गंदला।

ढमक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ढम ढम शब्द।

ढमकना—क्रि० प्र० [अनु०] ढम ढम शब्द होना। ढम ढम की आवाज होना।

ढमकाना—क्रि० स० [हि० ढमकना] १. ढोल, नगाड़ा आदि बाज बजाना। २. ढम ढम शब्द उत्पन्न करना।

ढमढम—संज्ञा पुं० [अनु०] ढोल का धधका नगारे का शब्द।

ढमलाना^१—क्रि० प्र० [देश०] लुढ़कना।

ढमलाना^२—क्रि० स० लुढ़काना।

ढयना—क्रि० प्र० [सं० ध्वंमन, द्वि० ढहना] १. किसी दीवार, मकान आदि का गिरना। ध्वस्त होना। २. पस्त होना। क्षिपित होना। उ०—ढोखे से ढए से किरत ऐसे कौन पे ढहे हौ।—नंद० प्र०, पृ० ३५६।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मुहा०—ढय पड़ना=उतर पड़ना। सहसा आकर टिक जाना। एकबारगी आकर डेरा डाल देना (व्यंग्य)।

ढरकना†—क्रि० प्र० [हि० ढार या ढाल] १. पानी या घोर किसी द्रव पदार्थ का आधार से नीचे गिर पड़ना। ढलना। गिरकर बह जाना। उ०—नाके पानी पत्र न लागै ढरकि चले जस पारा हो।—कबीर श०, भा० १, पृ० २७।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

२. नीचे की ओर जाना। उ०—(क) सकल सनेह शिथिल रघुबर के। गए कोस दुइ दिनकर ढरके।—तुलसी (शब्द०)। (ख) परसत भोजन प्रातहि ते सब। रवि माये ते ढरकि गयो घब।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—दिन ढरकना=सूर्यास्त होना। दिन ढूबना।

३. आराम करना। शय्या पर शयन करना। लेटना।

ढरका—संज्ञा पु० [हि० ढरकना] १. घाँस का एक रोग जिसमें घाँस से माँस बहता करता है। २. घाँस से प्रभु बहना।

क्रि० प्र०—लगना।

२. सिरे पर कलम की तरह छोली हुई बाँस की नवी जिससे चौपायों के गले में दबा उतारते हैं। बाँस की नली से चौपायों के गले में दबा उतारने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना।

ढरकाना†—क्रि० स० [हि० ढरकना] पानी या घोर किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना। गिराकर बहाना। जैसे, पानी ढरकाना।

संयो० क्रि०—देना।

ढरकी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढरकना] जुलाहो का एक औजार जिससे वे लोग बाने का सूत फँकते हैं। उ०—सबब ढरकी खले नाहि छीने।—पलटू, पृ० २५।

विशेष—ढरकी की आकृति करताल की सी होती है और यह भीतर से पोली रहती है। खाली स्थान में एक काँटे पर सपेटा हुआ सूत रक्खा रहता है। जब ढरकी को इधर से उधर फँकते हैं तब उसमें से सूत खुलकर बाने में भरता जाता है। इसे भरनी भी कहते हैं।

यौ०—जुलाहे की ढरकी=स्थिरमति आदमी। कभी इधर कभी उधर होनेवाला व्यक्ति।

ढरकोला—वि० [हि० ढरकना + ईला (प्रत्य०)] बह जानेवाला। ढरक जानेवाला। उ०—रजनी के श्याम कपोलों पर ढरकीले भ्रम के कन।—यामा, पृ० १६।

ढरना^७—क्रि० प्र० [हि० ढलना] १. दे० 'ढलना'। २. बहना। प्रवाहित होना। उ०—(क) मलिन कुसुम तमु बीरे, करतल कमल नयन ढर नीरे।—विद्यापति, पृ० ५५४।

(ख) ऊपर तें दधि दूध, सीसल नागरि गन ढरे।—नंद० प्र०, पृ० ३३४।

ढरनि^७—संज्ञा स्त्री० [हि० ढरना] १. गिरने वा पड़ने की क्रिया। पतन। उ०—सखी बचन सुनि कीसिला लखि सुंदर पासे ढरनि।—तुलसी (शब्द०)। २. हिलने ढोलने की क्रिया। गति। स्पंदन। उ०—कठसिरी दुलरी हीरन की नासा मुक्ता ढरनि।—स्वामी हरिदास (शब्द०)। ३. चित्त की प्रवृत्ति। भ्रूकाव। उ०—रिख भी रचि हौं समुक्ति देखिहौं वाके मन की ढरनि, वाकी भावती बात चलाय हौं।—सूर (शब्द०)। ४. किसी की दशा पर हृदय द्रवीभूत होने की क्रिया। दोन दशा दूर करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति। स्वाभाविक करुणा। दयाशीलता। सहज कृपालुता। उ०—(क) राम नाम सो प्रतीत प्रीति राखे कबडूक तुलसी ढरैगे राम अपनी ढरनि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कृपासिंधु कीसल धनी सरनागत पालक ढरनि अपनी ढरिए।—तुलसी (शब्द०)।

ढरहरना^७†—क्रि० प्र० [हि० ढरना] खसकना। सरकना। ढलना। झुकना। उ०—दीनदयाल गोपाल गोपपति गावत गुण भावत दिग ढरहरि।—सूर (शब्द०)।

ढरहरा†—वि० [हि० ढार + हार (प्रत्य०)] [स्त्री० ढरहरी] ढालुवाँ। ढालू।

ढरहरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] पकीड़ी। उ०—रायभोय लियो भात पसाई। मुँग ढरहरी हीग लगाई।—सूर (शब्द०)।

ढरहरी^२—वि० स्त्री० [हि० ढरहरा] ढालू। ढालुवाँ।

ढराई†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढलाई'।

ढराना†—क्रि० स० [हि०] १. दे० 'ढलाना'। उ०—खैच खराब चढ़ाए नहीं न सुदार के ढरानि मध्य ढराए।—सरदार (शब्द०)। २. दे० 'ढरकाना'।

ढरारा—वि० [हि० ढार] [वि० स्त्री० ढरारी] १. ढलनेवाला। ढरकनेवाला। गिरकर बह जानेवाला। २. लुढ़कनेवाला। थोड़े आघात से पृथ्वी पर आपसे आप सरकनेवाला। जैसे, गोली। यौ०—ढरारा रवा=गहना बनाने में सोने चाँदी का वह गोल दाना जो जमीन पर रखने से लुढ़क जाय।

३. शीघ्र प्रवृत्त होनेवाला। झुक पड़नेवाला। आकर्षित होनेवाला। चलायमान होनेवाला। उ०—जोबन रग रंगीली, सोने से ढरारे नैना, कठपात मलतुली।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

ढरैया†—संज्ञा पु० [हि० ढारना] १. ढालनेवाला। २. ढलनेवाला। किसी ओर प्रवृत्त होनेवाला।

ढर्रा—संज्ञा पु० [हि० या देश०] १. मार्ग। रास्ता। पथ। २. किसी कार्य के निर्वाह की प्रणाली। शैली। ढग। तरीका। ३. मुक्ति। उपाय। तदबोर। जैसे,—कोई ढर्रा ऐसा निकालो जिसमें इन्हें भी कुछ लाभ हो जाय।

क्रि० प्र०—निकासना।

४. आचरणपद्धति। चाल चलन। जैसे,—यह लड़का बियड़ रहा है, इसे अच्छे ढर्रे पर लगाओ।

ढलकना—क्रि० घ० [हि० ढाल] १. पानी या घोर किसी द्रव पदार्थ का आधार से नीचे गिर पड़ना । ढलना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. लुढ़कना । नीचे ऊपर चक्कर खाते हुए सरकना । ३. हिलना ।

उ०—कुंडल झलक ढलक सीसनि की ।—पोद्दार ग्रंथि० पं० पृ० ३८३ ।

ढलका—संज्ञा पु० [हि० ढलकना] घाँस का एक रोग जिसमें घाँस से बराबर पानी बहता है । ढरका ।

ढलकाना—क्रि० स० [हि० ढलकना] १. पानी या घोर किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना । लुढ़काना ।

संयो० क्रि०—देना ।

ढलकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढरकी' ।

ढलना—क्रि० घ० [हि० ढाल] १. पानी या घोर किसी द्रव पदार्थ का नीचे की ओर सरक जाना । ढरकना । गिरकर बहना । जैसे, पत्ते पर की बूँद का ढलना । उ०—अधरन जुबाइ लेउँ सिंगरो रस तनिको न जान देउँ इत उत ढरि ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—जवानी ढलना = युवावस्था का जाता रहना । छाती ढलना = स्तनों का लटक जाना । जीवन ढलना = युवावस्था के चिह्नों का जाता रहना । जवानी का उतार होना । दिन ढलना = सूर्यास्त होना । संध्या होना । दिन ढले = संध्या को । शाम को । सूरज वा चाँद ढलना = सूर्य वा चंद्रमा का अस्त होना ।

२. बीतना । गुजरना । निकल जाना । उ०—काहे न प्रगट करी जनुपति सो दुसहु दोष की अवधि गई ढरि ।—सूर (शब्द०) ।

३. पानी या घोर किसी द्रव पदार्थ का आधार से गिरना । पानी, रस आदि का एक बरतन से दूसरे बरतन में ढाला जाना । उड़ला जाना ।

मुहा०—बोतल ढलना = खूब शराब पिया जाना । मद्य पिया जाना । शराब ढलना = मद्य पिया जाना ।

४. लुढ़कना । ५. झुकना । झुकल होना । मान जाना । उ०—मुसलमान इसपर ढल भो गए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४५ । ६. किसी सूत या डोरी के रूप की वस्तु का इधर से उधर हिलना । लहर खाकर इधर उधर होना । सहराना । जैसे, खँवर ढलना । ७. किसी घोर आकर्षित होना । प्रवृत्त होना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

८. झुकल होना । प्रसन्न होना । रीझना । उ०—देत न अघात, रीझि जात पात आक ही कै, भोलाबाध जोगी जब ओढर डरत है ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

९. पिघली या गली हुई सामग्री से सचि के द्वारा बनना । सचि में ढालकर बनाया जाना । ढाला जाना । जैसे, खिलौने ढलना, बरतन ढलना ।

मुहा०—सचि में ढला हुपा = बहुत सुंदर और सुबौल ।

ढलमल—वि० [अनु०] १. श्रांत । शिथिल । २. पस्थिर । खंचल । कभी इधर कभी उधर होना ।

ढलवाँ—वि० [हि० ढालना] जो पिघली हुई धातु आदि को सचि में ढालकर बनाया गया हो । जैसे, ढलवाँ बरतन ।

ढलवाइकी—संज्ञा पु० [सं० ढाल + बाहुक] ढालवाले सिपाही । ढाल धारण करनेवाले सैनिक । ढलैत । उ०—कोटि अनुदर धावधि पायक । लक्ष संख चलिप्रउं ढलवाइक ।—कीर्ति०, पृ० ८८ ।

ढलवाना—क्रि० स० [हि० ढालना का प्रेरक] ढालने का काम कराना ।

ढलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ढालना] १. सचि में ढालकर बरतन आदि बनाने का काम । ढालने का काम । २. ढालने की मजदूरी ।

ढलाना^१—वि० [हि० ढाल] दे० 'ढलवाँ' ।

ढलाना^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ढालना] ढालने का काम । ढलाई ।

ढलाना—क्रि० स० [हि०] दे० 'ढलवाना' । उ०—नाम अगदर पूछे कोई तो कहना बस पीनेवाला । काम, ढालना और ढलाना, सबको मदिरा का प्याला ।—मधुबाला, पृ० ८४ ।

ढलुवाँ—वि० [हि०] १. दे० 'ढलवाँ' । २. दे० 'ढालवाँ' ।

ढलैत—संज्ञा पु० [हि० ढाल] ढाल बाँधनेवाला । सिपाही ।

ढलैयाँ—संज्ञा पु० [हि० ढालना] धातु आदि को ढालनेवाला कारीगर ।

ढवका—संज्ञा पु० [देश० ?] घोड़ा । उ०—हूँडे चौपड़ि बुझि मिलि जाई । ढवका तब काहे को लाई ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २२२ ।

ढवरी^१—[देश०] घुन । ढोरी । लौ । लगन । रट । दे० 'ढोरी' । उ०—सुरदास गोपी बड़ मागी । हरि दरशन की ढवरी लागी ।—सूर (शब्द०) ।

ढसक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. ठन ठन शब्द जो सूखी खाँसी में गले से निकलता है । २. सूखी खाँसी जिसमें गले से ठन ठन शब्द निकलता है ।

ढहना—क्रि० घ० [सं० ध्वंसन या बह] १. बीवार, मकान आदि का गिर पड़ना । ध्वस्त होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. नष्ट होना । मिट जाना । उ०—तुलसी रसातल को निकसि सलख आयो, कोल फलमह्यो ढहि कमठ को बल गो ।—तुलसी (शब्द०) ।

ढहरना—क्रि० घ० [हि० ढार] १. लुढ़कना । गिरना । २. (किसी की ओर) गिरना झुकना या झुकल होना । उ०—ढोले छे बड़े से फिरत ऐसे कोव पै ठहे हो ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३६ ।

ढहरना^१—क्रि० स० [हि० ढार] १. लुढ़काना । २. सूप के अन्न में से मोल जाने की कंकड़ी, मिट्टी आदि को लुढ़काकर अन्नय करना । पछोरना । फटकना ।

ढहरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] देहरी । देहली । देहलीज । उ०—सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहु टेकत ढहरि ।—सूर (शब्द०) ।

ढहरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी का बरतन । मटका । उ०—डगर न देत काहुँहि फोरि डारत ढहरि ।—सूर (शब्द०) ।

ढहाना—क्रि० सं० [हि० ढहाना का प्रेरक] ढहाने का काम करना । गिराना ।

ढहाना—क्रि० सं० [सं० ध्वंसन या दह] दोबार मकान आदि गिराना । ध्वस्त करना । उ०—एक ही बान की, पापान की कोट सब हुतो चहुं ओर, सो दियो ढहाई ।—सूर (शब्द०) ।

ढहावना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ढहाना' । उ०—तोपे हई फेरि धवि भारी । मंदर मेरु ढहावन हारी ।—हर्षचरित, पृ० ३० ।

ढाँक—संज्ञा पुं० [देश०] १. कृष्ण के एक पंच का नाम । २. पलाश । ढाक ।

ढाँकना—क्रि० सं० [सं० ढक (= छिपाना)] १. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के इस प्रकार नीचे करना जिसमें वह दिखाई न दे या उसपर गंद आदि न पड़े । ऊपर से कोई वस्तु फैला या ढाककर (किसी वस्तु को) छोट में करना । कोई वस्तु ऊपर से ढालकर छिपाना । जैसे,—(क) पानी का बरतन खुला मत छोड़ा, ढाँक दो । (ख) मिठाई को कपड़े से ढाँक दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. इस प्रकार ऊपर डालना या फैलाना जिसमें कोई वस्तु नीचे छिप जाय । जैसे,—इसपर कपड़ा ढाँक दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

ढाँका—संज्ञा पुं० [हि० ढाक] दे० 'ढाक' । उ०—तत्रिंश भरहि भरहि बन ढाँका । भई अनपल फूलि कर साखा ।—जायसी पं० (गुप्त), पृ० ३५६ ।

ढाँगा—वि० [देश०] दे० 'ढाला' ।

ढाँच—संज्ञा पुं० [हि० ढाँचा] दे० 'ढाँचा' ।

ढाँचा—संज्ञा पुं० [सं० देश० या हि० ढाँचा] १. किसी वस्तु की रचना की प्रारम्भिक अवस्था में मूल रूप से भोजित अंगों की समष्टि । किसी चीज को बनाने के पहले परस्पर जोड़ जाड़कर बैठाए हुए उसके भिन्न भिन्न भाग । जिनमें उस वस्तु का कुछ आकार लड़ा हो जाता है । ढाट । दट्टर । टोन । जैसे,—अभी तो इस मालखी का ढाँचा खरा हुआ है, तबसे आदि नहीं जाये गए हैं ।

क्रि० प्र०—लड़ा करना ।—बनाना ।

२. भिन्न भिन्न रूपों से परस्पर इस प्रकार जोड़े हुए लकड़ी या धातु के बत्ते या धड़ कि उनमें बीच में कोई वस्तु जमाई या जड़ी जा सके । जैसे, पीसटा, बिना बुना चारपाई, कुरसी आदि । ३. पञ्जर । टोरी । ४. चार लकड़ियों का बना हुआ वह लड़ा पीसटा जिसमें जुनाड़े 'नखनी' बटकाते हैं । ५. रचनाप्रकार । पढ़न । बनावट । जैसे,—इस गिलास का ढाँचा बहुत अच्छा है । ६. प्रकार । भाँति । तरह । जैसे,—तुम न जाने किस ढाँचे का छावमी है ।

ढाँटा—वि० [देशी बंट (= निकम्मा । कपटी)] कपटी । तुच्छ । पशु । नीच । उ०—रे ढाँटा फिर छोहरी करइ करहारी काण्ड ।—ढोला० (परि०२), पृ० २६६ ।

ढाँपना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ढाँकना' । उ०—श्यामा ह तन

पुलकित पल्लव मगुरिन मुख निज ढाँपि ।—श्यामा०, पृ० १०७ ।

ढाँस—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह 'ठन ठन' शब्द जो सूखी खाँसी आने पर गले से निकलता है । टसक ।

ढाँसना—क्रि० प्र० [हि० ढाँस] सूखी खाँसी खाँसना ।

ढाँसी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाँस] सूखी खाँसी ।

ढाई—वि० [सं० षड्वितीय, प्रा० षड्वाइय, हि० षड़ाई] दो घोर आधा । जो गिनती में दो से आधा अधिक हो । उ०—रूसी उनकी गुप्तगु बया समझते । वह अपनी कहते थे, यह अपने ढाई चावल गनाते थे ।—किसाना०, भा० ३, पृ० २४२ ।

मुहा०—ढाई ढड़ी की आना = चटपट मोत आना । (स्त्रियों का कोसना) जैसे,—तुम्हें ढाई घड़ी की आवे । ढाई चुल्लू लहू पीना = मार डालना । कठिन दंड देना (कोधवाक्य) । जैसे,—तेरा ढाई चुल्लू लहू पीऊँ तब मुझे कल होगी । ढाई दिन की बादशाहव करना = (१) थोड़े दिनों के लिये लूब गेष्टवर्ष भोगना । (२) दूल्हा बनना ।

ढाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाना] १. लड़कों का एक खेल जिसे वे कीड़ियों से खेलते हैं । इसमें कीड़ियों का समूह एक धेरे में रखकर उसे मोलियों से मारते हैं । २. वह कीड़ी जो इस खेल में रखी जाती है ।

ढाक—संज्ञा पुं० [सं० षापाढक (= पलाश)] १. पलाश का पेड़ । छिउला । छोउल । उ०—धानंदधन ब्रजजीवन जैवत हिलमिले रदार नोरि पानि ढाक ।—धनानंद, पृ० ४७३ ।

मुहा०—ढाक के तीन धन = सदा एक सा निर्धन । कभी धरा पूरा नहीं ।—(निर्धन अनुपपन्न के संबंध में बोलते हैं) । ढाक तले की फूटड़, महुए तले की सुबड़ = जिसके पास धन नहीं रहता वह निरुंछी, और धनवान् सर्वगुणसंपन्न समझा जाता है ।

२. कुत्ते का एक पंच । दे० 'ढाक' । उ०—उस्ताव सन्हुले रहते हैं । मगर जोर वे मनोहर के जैसे दो तीन की करा सकते हैं । दस्ती उतार, लोकान, पट, ढाक, कलाजंग, बिस्वी आदि दीव चले ओर कटे ।—काले०, पृ० ४ ।

ढाक—संज्ञा पुं० [सं० ढका] लड़ाई का बड़ा ढोल । उ०—गोमुख, ढाक, ढोल पगवानक । बाजत रव प्रति होत भयानक ।—सखल (शब्द०) ।

ढाकनी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढक्कन' ।

ढाकना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ढाँकना' ।

ढाका—संज्ञा पुं० [सं० ढक] पुराने समय में महीन सूती कपड़ों के लिये प्रसिद्ध पूर्वी बंगाल का एक नगर । जैसे, ढाके की चट्टर, ढाके की मलमल ।

ढाकापाटन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फुलदार महीन कपड़ा । ढाकेबास पटेल—संज्ञा पुं० [हि० ढाक + पटेल (= पटी नाव)] एक प्रकार की पूरबी नाव जिसके ऊपर बराबर छप्पर छाया रहता है । छप्पर के नीचे बैठकर माँझी नाव खेते हैं ।

ढाटा—संज्ञा पुं० [हि० ढाड़ो] १. कपड़े की वह पट्टी जिससे डाढ़ी बाँधी जाती है ।

क्रि० प्र०—बांधना ।

२. वह बड़ा साफा जिसका एक फेंट बाड़ी और गाल से होता हुआ जाता है । ३. वह कपड़ा जिससे मुरवे का मुँह इसलिये बाँध देते हैं जिससे कफन सरकने से मुँह खुल न जाय ।

ढाठा—संज्ञा पुं० [हि० बाड़ी] दे० 'ढाटा' । उ०—चारों ने जाना छाया और ढाठे बाँधा, बाँधकर तख्तवारें लटकाकर चले ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४४ ।

ढाड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बिगड़ा । चीख । गरज (बाघ, सिंह आदि की) । २. 'दहाड़' । २. चिल्लाहट ।

मुहा०—ढाड़ मारना = चिल्लाकर रोना ।

विशेष—दे० 'धाड़' ।

ढाड़सा—संज्ञा पुं० [सं० छट] दे० 'ढाड़स' ।

ढाड़ी—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बाड़ी' । उ०—धुन किसी ढाड़ी बच्चे से पूछिए । मैं धुन उन नहीं जानता ।—फिसाना०, भा० १, पृ० २ ।

ढाड़'—संज्ञा स्त्री० [देश० या हि० धाड़] चिल्लाहट । उ०—क्यों भला काम लें न ढाड़स से । क्यों लगे ढाड़ मारकर रोने ।—पुष्पते०, पृ० ५२ ।

ढाड़^५—संज्ञा पुं० [अनु०] एक प्रकार का बाजा जिसे ढाड़ी बजाते हैं । उ०—ढाड़नि मेरी नाचै गावै हो हूँ ढाड़ बजाऊँ ।—सूर०, १०।३७ ।

ढाड़ना—क्रि० सं० [हि० ढाड़ना] दे० 'ढाड़ना' । उ०—एक परे गाढ़ एक ढाड़त हो काढ़े, एक देखत है ठाढ़े, कहै पावक भयावनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

ढाड़स—संज्ञा पुं० [सं० छट, प्रा० छिट] १. संकट, कठिनाई या विपत्ति के समय चित्त की स्थिरता । धैर्य । धीरज । शांति । आश्वासन । सार्वना । तसल्ली । उ०—क्यों भला काम लें न ढाड़स से । क्यों लगे ढाड़ मारकर रोने ।—पुष्पते०, पृ० ५२ ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ढाड़स देना या बाँधना = बचनों से दुखी चित्त को शांत करना । तसल्ली देना ।

२. छट साहस । हिम्मत ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ढाड़स बाँधना = साहस उत्पन्न करना । उरसाहित करना ।

ढाड़िन—संज्ञा संज्ञा [हि० ढाड़ी] ढाड़ी की स्त्री । उ०—कृष्ण जनम सुनि अपने पति सो हँसि ढाड़िन यों बोली सु ।—नंद० प्र०, पृ० ३३५ ।

ढाड़ी—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० ढाड़िन] एक प्रकार के नीच गवैए जो जन्मोत्सव के अवसर पर लोगों के यहाँ जाकर बघाई आदि के गीत गाते हैं । उ०—ढाड़ी और ढाड़िन गावै हरि के ठाढ़े बजावै हरषि असीस देत मस्तक नवाई के ।—सूर (शब्द०) ।

४-४०

ढाड़ोन—संज्ञा पुं० [सं० ठिण्डणी] जल सिरिस का पेड़ ।

विशेष—यह पेड़ पानी के किनारे होता है और जंगली सिरिस से कुछ छोटा होता है । वैद्यक के अनुसार यह त्रिबोध, कफ, कुष्ठ और बवासीर को दूर करता है ।

ढाण्ठा—संज्ञा स्त्री० [देश०] ऊँट की तेज चाल । गति । उ०—क्रम क्रम, ढोला पंथ कर, ढाण म चूके ढाल । आ माक बीजी महल, आखर झूठ एबाब ।—ढोभा०, पृ० ४४० ।

मुहा०—ढाण घालना = तेज चलाना । उ०—ऊँट ने बढ़ता ही ढाण नदी घालयो ।—ढोला० (परि० १), पृ० २५४ ।

ढाना—क्रि० सं० [हि० ढाड़ना] १. दीवार, मकान आदि की गिरावा । ऊँची उठी हुई वस्तु को तोड़ कोड़कर गिरावा । ध्वस्त करना । उ०—जब मैं बनाकर प्रस्तुत करता हूँ तब वह धाकर ढा जाता है ।—कबीर सं०, पृ० ७६ ।

संयो० क्रि०—जाना ।—देना ।

२. गिराना । गिराकर जमीन पर ढालना । जैसे, किसी को मारकर ढाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

ढापना—क्रि० सं० [देश०] दे० 'ढापना' ।

ढाबर'—वि० [हि० ढाबर (= गड़वा)] मिट्टी और कीचड़ मिला हुआ (पानी) । मटमैला । गंदला । उ०—भूमि परत भा ढाबर पानी । अनु जीवहि माया लपटानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

ढाबा—संज्ञा पुं० [देश०] १. घोलती । २. जाल । ३. परछाई । ४. रोटी आदि की दुकान । वह दुकान जहाँ लोग दाम देकर भोजन करते हैं ।

ढामक—संज्ञा पुं० [अनु०] ढोल नगारे आदि का शब्द । उ०—ढमकत ढोल ढमाक डफला तबछ ढामक जोर ।—सूरन (शब्द०) । ५. बाँस, मिट्टी आदि से बनी कच्ची छत ।

ढामना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप ।

ढामरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसिनी । हंसी । मादा हंस (स्त्री)

ढार'—संज्ञा पुं० [सं० धार या सं० श्वधार, *प्रा० धोदार > ढार] १. वह स्थान जो बराबर क्रमशः नीचा होता गया हो और जिसपर से होकर कोई वस्तु नीचे फिसल या बह सके । ढलार । उ०—सकृष सुरत धारेंस ही बिछुरी लाज सजाय । ढरकि ढार दुरि ढिग भई डीठ ढिठाई धाय ।—बिहारी (शब्द०) । २. पथ । मार्ग । प्रणाली । उ०—(क) सब त्रै धावै अपने ढार । मोत मिलन दुखंभ संसार ।—नंद० प्र०, पृ० २३६ । (ख) ढेर ढार तेही ढरत, दूजे ढार ढरे न । क्यों हूँ धानन धान सौ नैना लागत नैन ।—बिहारी (शब्द०) । ३. प्रकार । ढाँचा । ढंग । रचना । बनावट । उ०—(क) दग घरकोंई अथखुले, देह धकोंई ढार । सुरति सुखी सी देखियत, दुखित मरम के धार ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) तिय को मुक्त सुंवर बन्यो, बिधि केन्यो परगार । तिलन बीच की बिडु है, गाल गोल इक ढार ।—मुबारक (शब्द०) ।

ढार^१—संज्ञा स्त्री० १. ढाल के आकार का कान में पहनने का एक गहना । बिरिया । २. पड़ेली नामक गहना ।

ढार^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोने का घोर शब्द । आर्तनाद । चिल्लाकर रोने की ध्वनि ।

मुहा० ढार मारना या ढार मारकर रोना = आर्तनाद करना । चिल्ला चिल्लाकर रोना ।

ढारना^१—क्रि० सं० [सं० धार, हि० ढार + ना (प्रत्य०)] १. पानी या घोर किसी द्रव पदार्थ को आघार से नीचे गिराना । गिराकर बहाना । उ०—(क) ऊनरु देह न, लेह उमासू । नारि चरित करि नारद आगु ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) उरग नारि धारि भई गहो नैननि ढारति नीर ।—सूर०, १०।५७५ । २. गिराना । ऊपर से छोड़ना । डालना । जैसे, पासा ढारना ।

विशेष—दे० 'डालना' ।

३. चांगे घोर घुमाना । घुमाना (चेंबर के लिये) उ०—रवि बिबान तो गाजि संवारा । चहुँ दिसि चेंबर करहि सब तारा ।—जायसी (शब्द०) । ४. धातु आदि को गणा कर सचि के द्वारा तैयार करना । दे० 'डालना'—६ ।

ढारस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढाड़स' । उ०—हज़र दिल को जरा ढारस दीजि । फिसाना०, भा० ३, पृ० २७ ।

ढाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] तलवार, भाले आदि का वार रोकने का अस्त्र जो चमड़े, धातु आदि का बना हुआ चाली के आकार का गोल होता है । फरी । चर्म । घाड़ । फलक ।

विशेष—ढाल गड़े के पुट्टे, बछुए की पीठ, धातु आदि कई चीजों की बनती है । जिस ओर इसे हाथ से पकड़ते हैं उधर यह गहरी ओर आगे की ओर उभरी हुई होती है । आगे की ओर इसमें ४-५ काँट या मोटी फुलिया जड़ी होती है ।

• मुहा०—ढाल बाँधना = ठान हाथ में लेना ।

२. एक पक्षर बड़ा भड़ा जो राजाघो की सवारी के साथ चलता है । उ०—बैरख ढाल गगन गा छाई । चला कटक धरती न समाई ।—जायसी प्र०, पृ० २२४ ।

ढाल^२—संज्ञा स्त्री० [सं० धवधार] १. वह स्थान जो आगे की ओर प्रथम इस प्रकार बराबर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु नीचे की ओर खिसक या लुढ़क या बह सके । उतार । जैसे, —(क) पानी ढाल की ओर बहेगा । (ख) वह पहाड़ की ढाल पर से फिसल गया । २. ढग । प्रकार । तीर तरीका । उ०—(क) सदा मति ज्ञान मे सु ऐमो एक ढाल है ।—हनुमान (शब्द०) । (ख) ढाल धरो सतसंग उबारा ।—धरनी०, पृ० ४१ । † ३. उगाही । चंदा । बेहरी ।—(पंजाब) ।

ढालना—क्रि० सं० [सं० धार] १. पानी या घोर किसी द्रव पदार्थ को गिराना । छोड़ना । जैसे, —(क) हाथ पर पानी ढाल दो । (ख) घड़े का पानी इस बरतन में ढाल दो । (ग) बोतल की शराब गिलास में ढाल दो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—बोतल ढालना = शराब पीना । मद्यपान करना ।

२. शराब पीना । मद्यपान करना । मदिरा पीना । जैसे,—आब-कल तो खूब ढालते हो । ३. बेचना । बिक्री करना (बखाल) । ४. थोड़े दाम पर माल निकालना । सस्ता बेचना । लुटाना । ५. ताना छोड़ना । ध्वंग्य बोलना । † ६. चंदा उतारना । उगाही करना ।—(पंजाब) । ७. पिघली हुई धातु आदि को सचि में ढालकर बनाना । पिघली हुई सामग्री से सचि के द्वारा निमित्त करना । जैसे, लोटा ढालना, खिलौने ढालना । उ०—कोउ ढालन गोली कोउ बुँदवन बैठि बनावत ।—प्रेम-घन०, भा० १, पृ० २४ ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

ढालवाँ—वि० [हि० ढाल] [वि० स्त्री० ढालवी] जो आगे की ओर क्रमशः इस प्रकार बराबर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु जल्दी से लुढ़क, फिसल या बह सके । जिसमें ढाल हो । ढालदार । ढालू । जैसे,—यह रास्ता ढालवाँ है, संभलकर चलना । उ०—हूँ इसी ढालवे को जब, बस सहज उतर जावें हम । फिर संमुख तीर्थ मिलेगा, वह प्रति उज्ज्वल पावनतम ।—कामायनी, पृ० २७६ । २. ढाला हुआ । सचि के अनुरूप तैयार किया हुआ ।

ढालिया—संज्ञा पुं० [हि० ढालना] फूल, पीतल, ताँबा, जस्ता इत्यादि पिघली धातुओं को सचि में ढालकर बरतन, गहने आदि बनानेवाला । गरिया । खुन्ना । साँबिया ।

ढाली—संज्ञा पुं० [सं० ढालिन्] ढाल से सुमज्ज योड़ा (को०) ।

ढालुआँ—वि० [हि० ढालना] दे० 'ढालवाँ' ।

ढालुवाँ—वि० [हि० ढालना] दे० 'ढालवाँ' ।

ढालू—वि० [हि० ढाल] दे० 'ढालवाँ' ।

ढावना^१—क्रि० सं० [दे०] गिराना । ढाहना ।

ढासा^१—संज्ञा पुं० [सं० दस्यु] ठग । लुटेरा । डाकू । उ०—बासर ढासिन के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर । संकर निज पुर राखिए, चितै सुनोचन कोर ।—तुलसी प्र०, पृ० १२२ ।

ढासना—संज्ञा पुं० [सं० √ धा (= धारण करना) + आसन] १. वह ऊँची वस्तु जिसपर बैठने में पीठ या शरीर का ऊपरी भाग टिक सके । सहारा । टेक । उठेगन । उ०—वह अलिख की एक स्तम्भ का ढासना लगाकर सो गया ।—वै० न०, पृ० २५४ ।

२. तकिया । शिरोपधान ।

ढाहना^१—क्रि० सं० [सं० 'वसन] दीवार, मकान आदि को गिराना । ध्वस्त करना । ढाना । उ०—(क) ढाहत भूपरूप तरु मूला । चली विपति वारिधि अनुमूला ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बृष वन काटि महलात ढाहन लग्यो नगर के द्वार दोनों गिराई ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—दे० 'ढाना' ।

ढाहा^१—संज्ञा पुं० [हि० ढाहना] नदी का ऊँचा कराग ।

ढिंग^१—अव्य० [हि० ढिंग] दे० 'ढिंग' । उ०—भरना भरे दसो दिस द्वारे, कस ढिंग आवों साहेब तुम्हारे ।—धरम० श०, पृ० १६ ।

दिङ्गलाना^१—क्रि० प्र० [दि०] लुङ्कना । गिरना ।

दिङ्गलाना^२—क्रि० स० [पूरी रूप दिङ्गलाना] ढहाना । लुङ्काना । गिराना । उ०—केहर हाथल घाव कर, कुजर दिङ्गलो कीध ।
—बांकी० प्र०, भा० १, पृ० १८ ।

दिङ्गा—संज्ञा पु० [हि० ढोंढो (= नाभि)] पेट । उदर । उ०—भरि दिङ्ग लाइन जनम गवाइन, काहु न घापु संभार ।—गुलाल०, पृ० १५ ।

दिङ्गोरना—क्रि० स० [अनु०] १ मथन करना । मथना । बिलोडन करना । २ हाथ डालकर ढूँढ़ना । खोजना । तलाश करना । उ०—(क) क्यों बचिए भजिहँ घनघानंद, बैठी रहँ घर पेठि दिङ्गोरत ।—घनानंद (शब्द०) । (ख) भुलि गई माखन की खोरी खात रहे घर सकल दिङ्गोरी ।—विश्राम (शब्द०) ।

दिङ्गोरा—संज्ञा पु० [अनु० दम+ओर] १. वह ढोल जिसे बजाकर सर्वसाधारण को किसी बात की सूचना दी जाती है । घोषणा करने की भरी । डगडुगिया ।

मुद्दा^१—दिङ्गोरा पीटना या बजाना=ढोल बजाकर किसी बात की सूचना सर्वसाधारण को देना । चारो ओर घोषित करना । मुनाबी करना । उ०—खुदा जाने इन्सान क्या बातें करता है । तुम जाकर दिङ्गोरा पीटवा दो ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२७ ।

२. वह सूचना जो ढोल बजाकर सर्वसाधारण को दी जाय । घोषणा । मुनाबी । उ०—जो मैं ऐसा जानती प्रीति किए दुख होय । नगर दिङ्गोरा फेरती, प्रीति करो जानि कोय ।—(प्रबलित) ।

क्रि० प्र०—फेरना ।

दिगा—क्रि० वि० [हि०] दे० 'दिग' । उ०—एकै हँसे हँसावै एकै । सहित प्रदाब जाति दिए एकै ।—हम्मीर०, पृ० ६ ।

दिक्चन—संज्ञा पु० [दि०] गन्ने का एक भेद ।

दिक्कलाना—क्रि० प्र० [हि० टकेलना] धक्के से भागे जाना । भागे होना । उ०—बिना चढ़े ही मैं भागे को जाने किस बल से दिक्कला ।—आर्द्रा, पृ० ५४ ।

दिक्कुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'देकुली' ।

दिग^१—क्रि० वि० [सं० दिक् (= ओर)] पास । समीप । निकट । नजदीक । उ०—मुरली धुनि सुनि सबै ग्वालिनी हरि के दिग बलि आई ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—यद्यपि यह संज्ञा शब्द है, तथापि, इसका प्रयोग समीप विभक्ति का लोप करके प्रायः क्रि० वि० वत् ही होता है ।

दिग^२—संज्ञा स्त्री० १. पास । समीप्य । २. तट । किनारा । छोर । उ०—सेतुबंध दिग चढ़ि रघुराई । चितव कृपालु, सिधु बहुताई ।—तुलसी (शब्द०) । ३. कपड़े का किनारा । पाड़ । कोर । हाथिया । उ०—(क) लाल दिगन की सारी ताको पीत ओढ़निया कीनी ।—सूर (शब्द०) । (ख) पद की दिग कत ढाँपियत सोभित सुभग सुदेस । हृद रव छद छवि देखियत सद रदछद की देख ।—बिहारी (शब्द०) ।

दिटोना—संज्ञा पु० [हि० ठोटा] दे० 'ढोटा' । उ०—रूपमती मन होत बिरागो, बाबबहादुर के नंद दिटोना ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ३५६ ।

दिठपना—संज्ञा पु० [हि० ठीठ+पन (प्रत्य०)] धृष्टता । दिठाई । उ०—न घर केस न कर दिठपन । बलपे बलापे करह निधुवन ।—विद्यापति, पृ० ४५३ ।

दिठाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठीठ+आई (प्रत्य०)] गुहजनों के समस्त व्यवहार की अनुचित स्वच्छंदता । संकोच का अनुचित अभाव । धृष्टता । अपलता । गुस्ताखी । उ०—छमिहहि सज्जन मोरि दिठाई ।—तुलसी (शब्द०) । २. लोकलज्जा का अभाव । निर्लज्जता । उ०—गोने की चूनरी वैसिय है, दुलही सबही से दिठाई बगारी ।—मति० प्र०, पृ० २६६ ।

क्रि० प्र०—बगारना = (१) धृष्टता करना । (२) निर्लज्जता करना ।

३. अनुचित साहस ।

दिठोना^१—संज्ञा पु० [हि० ठोटा] पुत्र । उ०—डगर डगमगे ढोलने, परी ढीठि डहुकाय । निडर दिठोना नंद के, डरे उठे बरराय ।—ब्रज० प्र०, पृ० ५ ।

दिपुनी—संज्ञा स्त्री० [दि०] १. फल या पत्ते के साथ लगा हुआ दूधनी का पतला नरम भाग । २. किसी वस्तु के सिरे पर दाने की तरह उभरा हुआ भाग । ठोठी । ३. कुच का अग्रभाग । बोंड़ी । चूचुक ।

दिबरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डिब्बा] १. टीन, लोहे, या पकी मिट्टी की डिबिया या कुप्पो जिसके मुँह पर बत्ती लगाकर मिट्टी का तेल जलाते हैं । मिट्टी का तेल जलाने की गुच्छीदार डिबिया । २. बरतन के संचि के पत्ते के तीन भागों में से सबसे नीचे का भाग । सचि की पेंदी का भाग ।

दिबरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दपना] १. किसी कसे जानेवाले पेश के सिरे पर लगा हुआ लोहे का चौड़ा टुकड़ा जिससे पेश बाहर नहीं निकलता । २. चमड़े या मूँज की वह चकती जो चरखे में इसलिये लगाई जाती है जिसमें तकला न घसे ।

दिबुवा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'देबुवा' । उ०—गद्यत गद्यन जब भागै भावा । बित उनमान दिबुवा इक पावा ।—कबीर प्र०, पृ० २३७ ।

दिमका, दिमाका—सर्व० [हि० धमका का अनु०] [स्त्री० धिमकी] धमुक । धमका । फलाई । फलाना ।

यौ०—फलाना दिमका=धमुक धमुक मनुष्य । ऐसा ऐसा घासपी ।

दिलड़ा—वि० [हि० ढीला] दे० 'ढीला' । उ०—जन रेदास कहैं बनजरिया तेरे दिलड़े परे परान बे ।—रे० बानी, पृ० २७ ।

दिलदिला—वि० [हि० ढीला] दे० 'दिलदिला' ।

दिलदिला—वि० [हि० ढीला] १. ढीला ढाला । २. (रस आदि) जो गाढ़ा न हो । पानी की तरह पतला ।

दिलार्ई—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीला] १. ढीला होने का भाव । कसा व रहने का भाव । २. शिथिलता । सुस्ती । आलस्य । किसी

कार्य के करने में अनुचित बिलंब। जैसे,—तुम्हारी ही ढिलाई से यह काम पिछड़ा है।

ढिङ्गाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीलना] ढीलने की क्रिया या भाव। ढीला करने का काम।

ढिङ्गाना^१—क्रि० स० [हि० ढीलना का प्रेरण] १. ढीलने का काम करना। २. ढीला करना।

ढिङ्गाना^४^२—क्रि० स० १. ढीला करना। २. कसी या बंधी हुई वस्तु को खोलना। उ०—बसु स्वामी जब उठे प्रभाता। बैलन बंधे लखे सुखदाता। खेती हिन लै गए ढिलाई। भेद न जान्यो गप जोराई।—रघुराज (शब्द०)।

ढिल्लड़—वि० [हि० ढीला] १. ढील करनेवाला। मटुर। सुस्त।

ढिल्ली^४—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीला] ढिल्ली का एक पुराना नाम।

ढिल्लीबै^४—संज्ञा पुं० [हि० ढिल्ली + बै = (पति)] ढिल्ली का नरेश। ढिल्लीपति।

ढिल्लेस^४—संज्ञा पुं० [हि० ढिल्ली + ईस] ढिल्ली का राजा।

ढिसरना^४^१—क्रि० प्र० [सं० ष्वसन] १. फिसल पड़ना। सरक पड़ना। २. प्रवृत्त होना। झुकना। उ०—उक्ति-युक्ति सब तबहीं दिसरे। जब पड़ित पड़ि तिय पै दिसरे।—निश्चल (शब्द०)। ३. फलों का कुछ कुछ पकना।

ढोङ्गी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'ढेकुली'। उ०—ल्यो की बेज, पवन का ढोङ्ग, मन मटका ज बनाया। सत की पाटि, सुरत का चाठा, सहजि नीर मुकलाया।—कबीर ग्रं०, पृ० १९१।

ढींगर^१—संज्ञा पुं० [सं० डिङ्गर] १. बने ढील ढील का मादमी। मोटा मुस्टका मादमी। २. पति या उपपति। उ०—कह कबीर ये हरि के काज। जोइया के ढींगर कोन है लाज।—कबीर (शब्द०)।

• ढीढ़^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढीढ़ा'।

ढीढ़स—संज्ञा पुं० [सं० टिगिडस] डिंडसी नाम की तरकारी। टिंडा।

ढीढ़ा^१—संज्ञा पुं० [सं० दुण्ड (= लंबोवर, गणेश)] १. बड़ा पेट। निकला हुआ पेट।

मुहा०—ढीढ़ा फूलना = पेट में बच्चा होने के कारण पेट निकलना। २. गर्भ। हुमल।

मुहा०—ढीढ़ा गिराना = गर्भपात करना।

ढींगे^४^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ढिंग'।

ढीकुली^४^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेकुली'। उ०—सुरति ढीकुली ले जल्यो, मन नित ढीलमहार। कवल कुवाँ मैं प्रेम रस पीवै बारंबार।—कबीर ग्रं०, पृ० १८।

ढी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीह या ढीह] दे० 'ढीह'।

ढीचा^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. कूबड़। २. सफेद चील।

ढीटा^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] रेखा। लकीर। डंडीर। उ०—रेख छाड़ि जाऊँ तो डराऊँ लछिमन जी तैं भोज बिनु दिए भीख भीच हौं न पावती। कोऊ मंदभागी यह राम के न साथे भायो, बरसन पावत हौं देत न सकावती। ढीट भेट देऊँ फिर ढीट ही

मिलाय लेऊँ हूँ है बात सोई भगवंत जू को भावती।—हुनुमान (शब्द०)।

ढीठ—वि० [सं० घृष्ट, प्रा० ढिट्ट] १. वह जो गुरुजनों के सामने ऐसा काम करे जो अनुचित हो। बड़ों का संकोच या डर न रखनेवाला। बड़ों के सामने अनुचित स्वच्छंदता प्रकट करनेवाला। बेमरब। शोख। उ०—बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं। सेवक समय न ढीठ ढिठाई।—तुलसी (शब्द०)। २. किसी काम को करने में उसके परिणाम का भय न करनेवाला। ऐसे कामों में प्राणा पीछा न करनेवाला जिनसे लोगों का विरोध हो। अनुचित साहस करनेवाला। बिना डर का। उ०—ऐसे ढीठ भए हैं कान्हा दधि गिराय मटकी सब फोरी।—सूर (शब्द०)। ३. साहसी। हिम्मतवर। हियाववाला। किसी बात से जल्दी न डर जानेवाला।

ढीठता^४—संज्ञा स्त्री० [सं० घृष्टता] ढिठाई।

ढीठा^१—वि० [हि० ढीठ] दे० 'ढीठ'।

ढीठा^१^२—संज्ञा पुं० [सं० घृष्ट] ढिठाई। घृष्टता।

ढीठ्यो^४—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढीठा'।

ढीङ्ग^१—संज्ञा पुं० [देश०] घाँस का कीचड़। उ०—मोठे मुख लार बहै घाँसिन में ढीङ्ग, राधिका न में, सिक रेट भीतन में डार देति।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १६३।

ढीठपन—संज्ञा पुं० [हि० ढीठ + पन (प्रत्यय)] घृष्टता। ढिठाई। उ०—तखनक ढीठपन कहइ न जाय लाजे बिमुखी घनि रहल लजाय।—बिद्यापति, पृ० ५२।

ढीमा^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. पत्थर का बड़ा टुकड़ा। पत्थर का ढोका। उ०—सिला ढीम ढाहै, हला बोर वाहै। भड़ा बड्ड सई, भड़ा भड्ड हूँ है।—सुदन (शब्द०)।

ढीमको^४^१—संज्ञा पुं० [देश०] कृप। कृपा।—(हिगल)।

ढीमर^४—संज्ञा स्त्री० [सं० धीवर, या देश०] १. धीमर या धीवर जाति की स्त्री। २. वह स्त्री जो जल प्रादि भरती है। उ०—ढीमर वह धीमर पहिरि लूमर मदन प्रेरै। चितहि चुरावत पाहिके बेचत बेर सुरैर।—सं० समक, पृ० ३८१।

ढीमा—संज्ञा पुं० [देश०] ढेला। ईंट पत्थर प्रादि का टुकड़ा। ढोका।

ढील—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीला] १. कार्य में उत्साह का अभाव। शिथिलता। अतत्परता। नामुस्तेदी। सुस्ती। अनुचित बिलंब। जैसे,—इस काम में ढील करोगे तो ठीक न होगा। उ०—व्याह्र जोग रंभावती, बरष जयोदस माहि। तातै वेगि विवाहियै कामु ढील को नाहि।—रसरजन, पृ० ८७।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—ढील देना = ध्यान न देना। दत्तचित्त न होना। बेपरवाही करना। उ०—हुपूर तो गजब करते हैं, सब फरमाइए ढील किसकी है।—फिसाना०, भा० १, पृ० ३२३। २. बंवन को ढीला करने का भाव। ढीरी को कड़ा वा ठना न रखने का भाव।

मुहा०—ढील देना = (१) पतंग की डोर बढ़ाना जिससे वह

आगे बढ़ सके । (२) स्वच्छंदता देना । मनमाना करने का व्यवहार देना । वश में न रखना ।

ढील^१—वि० दे० 'ढीला' ।

ढील^३—संज्ञा पुं० [देश०] बालों का कीड़ा । छूँ ।

ढीलना—क्रि० प्र० [हि० ढीला] १. ढीला करना । कसा या तना हुआ न रखना । बंधन आदि की लंबाई बढ़ाना जिससे बंधी हुई वस्तु धीरे धीरे या इधर उधर बढ़ सके । जैसे, पतंग की डोरी ढीलना, रास ढीलना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. बंधनमुक्त करना । छोड़ देना । उ०—तापे सुर बछुवन ढीलत बन बन फिरत बहे ।—सूर (शब्द०) । ३. (पकड़ी हुई रस्सी आदि की) इस प्रकार छोड़ना जिसमें वह धीरे धीरे या नीचे की ओर बढ़ती जाय । डोरी आदि को बढ़ाना या ढालना । जैसे, कुएँ में रस्सी ढीलना । ४. किसी गाड़ी वस्तु को पतला करने के लिये उसमें पानी आदि डालना । ५. संभोग करना । प्रसंग करना । (बाजारू) । † ६. धारण करना । जैसे,—आज वे धोती ढीलकर निकले हैं ।

ढीलम ढाला—वि० [हि० ढीला + ढाला] जो ठोस न हो । शिथिल । उ०—ढीलमढाला फूला हुआ घास का गट्टर ।—आधुनिक०, पृ० १ ।

ढीला—वि० [सं० शिथिल, प्रा० सिल्ल] १. जो कसा या तना हुआ न हो । जो सब ओर से खूब खिंचा न हो । (डोरी, रस्सी तागा आदि) जिसके ठहरे या बंधे हुए छोरों के बीच झोल हो । जैसे, लगाम ढीली करना, डोरी ढीली करना, चारपाई (की बुनावट) ढीली होना ।

मुहा०—ढीली छोड़ना या देना = बंधन ढीला करना । धंकुश न रखना । मनमाना इधर उधर करने के लिये स्वच्छंद करना ।

२. जो खूब कसकर पकड़ा हुआ न हो । जो मजबूती तरह जमा या बँठा न हो । जो दृढ़ता से बंधा या लगा हुआ न हो । जैसे, पेंच ढीला होना, जंगले की छड़ ढीली होना । ३. जो खूब कसकर पकड़े हुए न हो । जैसे, मुट्ठी ढीली करना, गाँठ ढीली होना, बंधन ढीला होना । ४. जिसमें किसी वस्तु को ढालने से बहुत सा स्थान इधर उधर छूटा हो । जो किसी सामनेवाली चीज के हिसाब से बड़ा या छोड़ा हो । फर्श । कुशादा । जैसे, ढीला जूता, ढीला घंगा, ढीला पायजामा । ५. जो कड़ा न हो । बहुत गीला । जिसमें जल का भाग अधिक हो गया हो । पनीला । जैसे, रसा ढीला करना, चाशनी ढीली करना । ६. जो अपने हठ पर भड़ा न रहे । प्रयत्न या संकल्प में शिथिल । जैसे,—ढीले मत पढ़ना, बराबर अपने स्वप्न का तकाजा करते रहना ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।

७. जिसके क्रोध आदि का वेग मंजूर पड़ गया हो । भीमा । शांत । नरम । जैसे,—जरा भी ढीले पड़े कि वह सिर पर चढ़ जायगा ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।

८. मंद । सुस्त । भीमा । शिथिल । जैसे, उरसाह ढीला पड़ना ।

मुहा०—ढीली भाँख = मंद मंद दृष्टि । मधुसूनी भाँख । रसपूर्ण या मदमारी चितवन । उ०—देहु लखो दिग गेहुपति सऊ नेहु निरबाहि । ढीली भँखियन हो इत गई कनखियन बाहि ।—विहारो (शब्द०) ।

९. मंदिर । सुस्त । झालसी । काहिल । १०. जिसमें काम का वेग कम हो । नपुंसक ।

ढीलापन—संज्ञा पुं० [हि० ढीला + पन (प्रत्यय)] ढीला होने का भाव । शिथिलता ।

ढीली—वि० जी० [हि० ढीला] दे० 'ढीला' ।

ढीली—संज्ञा जी० [हि० ढीला] दे० 'ढिली' । उ०—ढीली मजल पुण्डि जोईयउ । जउमो छई मथूरी मंडण राय । जी० रासो, पृ० ८ ।

ढीह—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घ, हि० दीह] कंचा टीला । दूह ।

ढीहा—संज्ञा पुं० [हि० ढीह] दूह । ढीह । ढीला । उ०—सो नाग जी के वंश की तो उहाँ कोऊ हतो नाहीं । धीर बरहू गिरघो परघो ढीहा होइ रह्यो ।—दो सो बाघन०, भा० १, पृ० २६ ।

ढुंढा—संज्ञा पुं० [हि० ढूँढना] चाई । उक्कका । टग । लुटेरा । उ०—चोर ढुंढ बटपार मन्याई मपमारगी कहावै जे ।—सूर (शब्द०) ।

ढुंढन—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डनम्] तलाश । खोज । पता लगाना [की०] ।

ढुंढपाणि^७—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डपाणि] १. शिव के एक गण का नाम । २. दण्डपाणि भैरव । उ०—पुनि काल भैरव ढुंढपाणिहि धीर सिंगरे देव को ।—कबीर (शब्द०) ।

ढुंढपानि^८—संज्ञा पुं० [हि० ढुंढपाणि] दे० 'ढुंढपाणि' ।

ढुंढा^९—संज्ञा जी० [सं० दुण्डा] १. पुराण के अनुसार एक राक्षसी का नाम जो हिरण्यकशिपु की बहिन थी ।

विशेष—इसको शिव से यह वर प्राप्त था कि अग्नि में न जलेगी । जब ब्रह्माद को मारने के अनेक उपाय करके हिरण्यकशिपु हार गया तब उसने ढुंढा को बुलाया । वह ब्रह्माद को लेकर भाग में बैठी । बिष्णु मगधान की कृपा से ब्रह्माद तो न जले, ढुंढा जलकर मर गई ।

† २. भुने अन्न लाई आदि का चाशनी के साथ बना लड्डू ।

ढुंढा^{१०}—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डन (= अन्वेषण, खोजना)] पृथ्वीराज रासो में वर्णित एक राक्षस । उ०—हूँहि हूँहि खाए नरनि तातें ढुंढा नाम ।—पृ० रा०, १। ५१७ ।

ढुंढाहर^{११}—संज्ञा पुं० [देश०] जयपुर राज्य का एक पुराना नाम । उ०—आयो पत्र उताल सौ ताहि बाँधि ब्रजपस । सुत सूरज सौ तब कहाँ यँचि ढुंढाहर देस ।—सुजान०, पृ० २५ ।

विशेष—इस राज्य की भाषा जो जयपुर, झलवर, हाकोटी आदि में बोली जाती है, आज भी 'ढूँढाखी' या 'जयपुरी' कही जाती है । राजस्थानी गद्य साहित्य का अधिकतम इसी भाषा में प्राप्त होता है, राठौर पृथ्वीराज की 'बेखि क्रिसन स्वमणी री' की

टीका जो १६७३ में लिखी गई थी, इसी भाषा के गद्य में प्राप्त हुआ है।

दुःखि—संज्ञा पुं० [सं० दुःखि] गणेश का एक नाम। ये ५६ विनायकों में से है।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि मारे विषय इनके दुःखे हुए या अन्वेषित हैं। इसी से इनका नाम दुःखि या दुःखिराज है।

दुःखित—वि० [सं० दुःखित] अन्वेषित। १. दुःख हुआ। (को०)।

दुःखिराज—संज्ञा पुं० [सं० दुःखिराज] दे० 'दुःखि'।

दुःखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बाँह। बाहु। मुमुक्षु।

दुःखी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुःखी] २. 'दुःखी'।

मुद्रा—दुःखिया चढ़ाना। मुमुक्षु बांधना। उ०—उमने भट उसकी पगड़ी उतार दुःखिया नहाय भूछ, डाढ़ी और सिर मुँह रख क पीछे बांध लिया।—जलन्त (शब्द०)।

दुःखाना—क्रि० सं० [हि० दुःखाना का प्रे० रूप] दुःखने का काम कराना। खोजवाना। तलाश कराना। पता लगवाना।

दुःखाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दुःखाना] दुःखने का काम।

दुःखाहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुःखाना] खोज। तलाश।

दुःखना—क्रि० प्र० [देश०] १. घुसना। प्रवेश करना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. झुक पड़ना। टूट पड़ना। पिल पड़ना। एकबारगी किसी ओर भागा करना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

३. किसी बात को सुनने या देखने के लिये भाड़ में छिपना। लुकना। घात में छिपना। जैसे दुककर कोई बात सुनना। किसी को पकड़ने के लिये दुकना। उ० (क) दुकी रही जहाँ तहाँ सब गोरी। (ख) जउन होत चारा कइ घासा। कित बिरिहार दुकत लेइ लासा। जायसी (शब्द०)।

दुकास—संज्ञा स्त्री० [प्रनु० दुक दुक] पानी पीने की बहुत अधिक इच्छा। अधिक प्यास।

क्रि० प्र०—लगना।

दुक्का—संज्ञा पुं० [देश० दुका] दे० 'दुका'।

दुच्छा—संज्ञा पुं० [देश०] घूँसा। मुक्का।

दुटीना—संज्ञा पुं० दे० 'दोटा'।

दुनमुनिया—संज्ञा स्त्री० [हि० दुनमुनाना] १. लुढ़कने की क्रिया या भाव। २. साधन में कजली गाने का एक ढंग। जिसमें स्त्रियाँ एक मंडल में घूमती हुई गोल बाँधकर हाथ से तालियाँ बजाती हुई गाती हैं और बीच बीच में झुकती और लड़ी होती हैं।

क्रि० प्र०—खेलना। उ०—रात को कजली गाती कुछ दुनमुनिया भी खेलती हैं।—प्रेमघन०; भा० २, पृ० ३२६।

दुरकना—क्रि० प्र० [हि० दुर] १. लुढ़कना। (फिसलकर सरकना या गिरना। उ०—लोथ चढ़ी घात मोहन की गति मोह महा गिरि तें दुरकी।—देव (शब्द०)। २. झुकना। उ०—संग में

सईस तें रईस तें नफीस बेस सीस उमनीस बना बाम और दुरकी।—गोपाल (शब्द०)। ३. ढरकना। टपकना। बहना।

दुरकी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुरकना] लेंटर किया जानेवाला विश्राम। लेटने या शयन करने की स्थिति। झुककी।

दुरना—संज्ञा पुं० [हि० दुर] दे० 'दुनमुनिया'—२।

दुरना—क्रि० प्र० [हि० दुर] १. गिरकर बहना। ढरकना। ढलना। टपकना। नैनन दुरहि मोति और मूँगा। कस गुड़ खाय रहा हूँ मूँगा।—जायसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—पड़ना।

२. कभी इधर कभी उधर होना। इधर उधर डोलना। डग-मगाना। ३. सूत या रस्सी के रूप की वस्तु का इधर उधर हिलना। लहर खाकर डोलना। लहराना। जैसे, चँवर दुरना। उ०—जोबन मदमाती इतराती बेनी दुरत कटि पे छबि बाढी।—सूर (शब्द०)। ४. लुढ़कना। फिसल पड़ना। ५. प्रवृत्त होना। ६. झुकना। उ०—बभी दुर दुर कर स्त्रियों की भाँति दुनमुनिया भी खेलते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४४।

संयो० क्रि०—पड़ना।

६. अनुकुल होना। प्रसन्न होना। कृपालु होना। उ०—बिन करनी मोषे दुरी कान्ह गरीब निवाज।—रमनिधि (शब्द०)।

दुरदुरिया—वि० [हि० दुरना] ढलवाँ। चढ़ाव उतारवाला। उ०—अग मोके पातर मुँह दुरदुरिया, चूहे, मेखन के रेख।—शुक्ल० अभि० प्र० (सा०), पृ० १४०।

दुरदुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुरना] १. लुढ़कने की क्रिया का भाव। नीचे ऊपर होते हुए फिसलन या बहने की क्रिया। उ०—तूटि सी करति कलहस जुग देव कहे, तुटि भाँति सिरि छिति छुटि दुरदुरी लेति।—देव (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लेना।

२. पगडंडी। पतला रास्ता। नथ से लगी हुई सोने के गोल दानों की पंक्ति।

दुराना—क्रि० सं० [हि० दुरना] १. गिराकर बहाना। ढरकना। ढलकाना। टपकना। २. इधर उधर हिलाना। लहराना। उ०—ध्वजा फहराइ छत्र चौर सो दुराय बागे बीरन बताय यों चलाइ बाम घाम के।—हनुमान (शब्द०)। ३. लुढ़कना। फिसलकर गिरना।

दुरावना—क्रि० सं० [हि० दुराना] दे० 'दुरना'—१। उ०—पलक न लावति, रहत ध्यान धरि, बारंबार दुरावति पानी।—सूर (शब्द०)।

दुरुखा—संज्ञा स्त्री० [हि० दुरना] गोल मटर। केराव मटर।

दुरकना—क्रि० प्र० [हि० दुलकना] दे० 'दुलकना'।

दुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुरना] वह पतला रास्ता जो लोगों के चलते चलते बन जाय। पगडंडी।

दुलकना—क्रि० प्र० [हि० डाल + कना (प्रत्य०), वा सं० लुण्ठन,

हि० लुढ़कना] १. नीचे ऊपर होते हुए फिसलना या सरकना । ऊपर नीचे चक्कर खाते हुए बढ़ना या चल पड़ना । लुढ़कना । ढंगलाना । २. दे० 'दुलना' ।

संयो० क्रि०—जाना ।

दुलकाना—क्रि० सं० [हि० दुलकना] टपकाना । गिराना । बहाना । लुढ़काना । ढंगलाना । उ०—जैसे घोष जल ने दुलकाया । धवल धूल ने नहलाया ।—बीणा पु० १२ ।

दुलदुल—वि० [हि० दुलना] एक ओर स्थिर न रहनेवाला । लुढ़कने-वाला । अस्थिर । कभी इधर कभी उधर होनेवाला ।

दुलना^१—क्रि० प्र० [हि० ढाल] १. गिरकर बहना । ढरकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. लुढ़कना । फिसल पड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. प्रवृत्त होना । झुकना ।

संयो० क्रि०—प्राना ।—पड़ना ।

४. अनुकूल होना । प्रसन्न होना । कृपालु होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

५. कभी इधर कभी उधर होना । इधर उधर डोलना । इधर से उधर हिलना । उ०—दुलहि ग्रीव, लटकति नक्रेसरि, मंद मंद गति आवै ।—सूर (शब्द०) । ६. सूत या रस्सी के रूप की वस्तु का इधर उधर हिलना । लहर खाकर डोलना । लहराना । जैसे, खँवर दुलना ।

दुलना^१—संज्ञा पु० [सं० ढोल] एक बाद्य । दे० 'ढोल' । उ०—दुलना सुनो धधकारी । महली उठे झनकारी ।—घट०, पृ० ३७१ ।

दुलमुल—वि० [हि० दुलना, या अनु०] दे० 'दुलदुल' । उ०—गा गया फिर भक्त दुलमुल चाटुना से वासना को झनमलाकर ।—दृश्यलघु, पृ० १६७ ।

दुलमुलाना क्रि० प्र० [हि० दुलना] कंपित होना । हिलना । उ०—पत्तियों की चुनकियाँ भट दी बजा, डालियाँ कुछ दुलमुलाने ली लगीं । किस परम आनंदनिधि के चरण पर, विश्व साँतें गीत पाने ली लगीं ।—हिमंत०, पृ० ४० ।

दुलवाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ढोना] १. ढोने का काम । २. ढोने की मजदूरी ।

दुलवाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दुलना] १. दुलाने की क्रिया । २. दुलाने की मजदूरी ।

दुलवाना^१—क्रि० सं० [हि० ढोना का प्रे० रूप] ढोने का काम कराना । बोझ लेकर जाने का काम कराना ।

दुलवाना^२—क्रि० सं० [हि० दुलाना का प्रे० रूप] दुलाने का काम कराना ।

दुलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दुलाना] १. दुलाने की क्रिया । २. ढोए जाने की क्रिया । जैसे,—प्राजकल सामान की दुलाई हो रही है । ३. ढोने की मजदूरी ।

दुलाना^१—क्रि० सं० [हि० ढाल] १. गिराकर बहाना । ढरकाना । ढालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. नीचे ढालना । ठहरा न रहने देना । गिराना । उ०—स्यंदन खडि, महारथ खंडो कपिध्वज सहित दुलाऊँ ।—सूर (शब्द०) । ३. लुढ़काना । ढंगलाना । ४. पीड़ित करना । जलाना । जलन या दाह उत्पन्न करना । उ०—रमैया बिन नीद न आवै । नीद न आवै बिरह सतावे, प्रेम की आँच दुलावै ।—संतवाणी० भा० २, पृ० ७३ ।

संयो० क्रि०—देना ।

५. प्रवृत्त करना । झुकाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

६. अनुकूल करना । प्रसन्न करना । कृपालु करना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

७. कभी इधर, कभी उधर करना । इधर उधर दुलाना । इधर से उधर हिलाना । जैसे, खँवर दुलाना । ८. चलाना । फिराना । उ०—सूर श्याम श्यामा वश कीनी ज्यों संग छाँह दुलावै हो ।—सूर (शब्द०) । (पुं०) ९. फेरना । पोतना । उ०—ऊँचा महल चिनाइया चूना कली दुलाय ।—कबीर (शब्द०) ।

दुलाना^२—क्रि० सं० [हि० ढोना] ढोने का काम कराना ।

दुलिया^१—संज्ञा पु० [हि० ढोल + इया (प्रत्य०)] दे० 'ढोलकिया' । उ०—जैसे नटवा चढ़त बाँस पर, दुलिया ढोल बजावै ।—कबीर० श०, भा० १, पृ० १०२ ।

दुलिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दुलना] १. छोटी ढोलक । २. छोटा पालना या डोली । सज्जा सहित एक दुलिया लैयो श्री पानन की डोली झू ।—नर० ग्रं०, पृ० ३३१ ।

दुलुआ^१—संज्ञा स्त्री० [दिया] खजूर या ताड़ की बनी शकर ।

दुलारा^१—संज्ञा पु० [देश०] धुन नाम का कीड़ा ।

दूँकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दुकना' ।

दूँका संज्ञा पु० [हि० दूँकना] किसी बान या वस्तु को गुप्त रूप से देखने के लिये छिपे छिपने का कार्य । बिना अपनी माहट दिए कुछ देखने की घात में छिपने का काम ।

क्रि० प्र०—लगना ।

दूँद—संज्ञा स्त्री० [हि० दूँदना] खोज । तलाश । अन्वेषण ।

मुहा०—दूँद ढाँद = खोज । तलाश ।

दूँदना—क्रि० सं० [सं० दुग्ढन] खोजना । तलाश करना । अन्वेषण करना । पता लगाना ।

संयो० क्रि०—ढालना ।—देना (दूसरे के लिये) ।—लेना (अपने लिये) ।

यौ०—दूँदना ढाँदना = खोजना । तलाश करना ।

दूँदला^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्ढा] दुँडा नाम की राक्षसी ।

दूँदी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. किसी चीज का गोल पिंड या लोंदा । २. भुने हुए आटे आदि का बड़ा गोल लड्डू जिसमें गुड़ और तिल आदि मिले रहते हैं । अधिकतर यह देहातों में बनती है ।

दुकका—अर्थ० [सं० √ डूक, प्रा० दुक्क] पास । निकट । समीप ।
उ०—वाग्विचारिण्यु, ए मति उत्तम कोष । साल्हु
महलहू दुकका, डाढ़ी डेरन लीध ।—डोला०, दू० १८७ ।

दुकना—क्रि० प्र० [सं० √ डूक, प्रा० दुक्क, हि० दुकना] १. पास
जाना । समीप जाना । उ०—घहर रंग रचत हुबह, मुक्त
काजल मसि बन्म । जागयत मुजाह्म प्रखड, तेण स दूकत
मन्म ।—डोला०, दू० ५७२ ।

दुका—संज्ञा पुं० [देश०] बठल, चास आदि के बोझ का एक मान जो
बस पूरे का होता है ।

दुका—संज्ञा पुं० [हि० दुकना] दे० 'दुका' ।

दुनिया—संज्ञा पुं० [देश०] इथेतिबर जैनों का एक भग ।

विशेष—इस संवदाय के लोग मूर्ति नहीं पूजते और भोजन स्नान
के समय को छोड़ सदा मुँह पर पट्टी बांधे रहते हैं ।

दूसर—संज्ञा पुं० [देश०] बनियों की एक जाति ।

दुसा—संज्ञा पुं० [देश०] कुपटी का एक पेच जिसमें ऊपर घाया हुआ
पहुचवान नीचेवासे की गरदन पर हाथ मारकर उसे स्थि
करता है ।

दुहा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूय] १. डेर । घटासा । २. टीला । भीटा ।
उ०—नहि रकबा की नाम, घाम गिरि हूद गयो बनि । -
प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११ । ३. मिट्टी का छोटा डोला जो
सामा या हद सुचित करने के लिये ढड़ा किया जाता है ।

दुहा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूय] दे० 'दुहा' ।

डैक—संज्ञा स्त्री० [सं० डेक्क] दे० 'डैक' ।

डैकिका—संज्ञा स्त्री० [सं० डेक्किका] एक प्रकार का तुल्य ।

डैक—संज्ञा स्त्री० [सं० डेक्क, प्रा० डेक] पानी के किनारे रहनेवाली
एक चिड़िया जिसकी लीज और गरदन लंबी होती है । उ०—
(क) केवा सोन डैक बक सेधी । रहे धपूरि मोन जल भेदी ।
—जायसी (शब्द०) । (ख) वृजन पिक मानहुँ गजमाते ।
डैक महोख अंत बिसराते । तुससी (शब्द०) ।

डैक—संज्ञा पुं० [देशी] पान कूटने का लकड़ी का एक यंत्र ।
डैकली ।

डैकली—संज्ञा स्त्री० [देशी] अथवा हि० डैक (= चिड़िया, जिसकी
गरदन लंबी होती है) । १. तिसाई के लिये कूप से पानी
बिकाबने का एक यंत्र ।

विशेष—इसमें एक ऊँची लड़ी लकड़ी के ऊपर एक घाड़ी लकड़ी
बीबोबीब से इस प्रकार ठहराई रहती है कि उसके दोनों छोर
बारी बारी के बीच ऊपर हो सकते हैं । इसके एक छोर में,
मिट्टी छोपी रहती है । या पत्थर बंधा रहता है और दूसरे
छोर में जो कुएँ के मुँह की ओर होता है, बोल की रस्सी बंधी
होती है । मिट्टी या पत्थर के बोझ से डोल कुएँ में से ऊपर
घाती है ।

क्रि० प्र०—चसाना ।

२. एक प्रकार की सिलाई जो जोड़ की लकीर के समानांतर नहीं
होती, घाड़ी होती है । घाड़े डोम की सिलाई ।

क्रि० प्र०—मारना ।

३. पान कूटने का लकड़ी का यंत्र जिसका आकार लीचने ।
डैकली ही से मिलता जुलता पर बहुत छोटा और जमीन
लगा हुआ होता है । धनकुटी । डैकी । ४. भबके से प
उतारने का यंत्र । वक्तुंड यंत्र । ५. सिर नीचे और पैर ऊ
करके उलब जाने की क्रिया । कलाबाजी । कलैया ।

क्रि० प्र०—साना ।

डैका—संज्ञा पुं० [हि० डैक (= पक्षी)] १. कोल्हू में वह बाँस ।
जाट के सिरे से कतरी तक लगा रहता है । २. बड़ी डैकी ।

डै किया—संज्ञा स्त्री० [हि० डैकी] डेहपटी चदर बनाने में कपड़े ।
एक प्रकार की काट और सिलाई जिससे कपड़े की लंबाई प
तिहाई घब जाती है और चौड़ाई एक तिहाई बढ़ जाती है ।

विशेष—इस काट की विशेषता यह है कि इसमें घाड़ा जो
किनारे तक नहीं घाता, बीच ही तक रह जाता है । इस
कपड़े की लंबाई को तीन वगैर भागों में सह करके घा
विशाल बाल देते हैं । फिर एक घाड़ी लकीर पर घाधी प
तक एक किनारे की ओर से फाड़ते हैं । इसी प्रकार इस
किनारे की ओर दूसरी घाड़ी लकीर पर भी घाधी दूर त
फाड़ते हैं । इसके उपरान्त बीच में पड़नेवाले भाग को सड़े ब
आधेआध काट देते हैं । इस तरह जो दो टुकड़े निकलते
उन्हे खाली स्थान को पूरा करते हुए जोड़ देते हैं ।

पूरा कपड़ा

काटा हुआ कपड़ा



मोनो जुड़े हुए कपड़े



डैकी—संज्ञा स्त्री० [हि० डैक (= एक पक्षी)] अनाज कूटने क
लकड़ी का एक यंत्र । डैकली ।

डैकी—संज्ञा स्त्री० [सं० डेक्किका, डेक्की] दे० 'डैकिका' ।

डैकुरा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डैकली' ।

डैकुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डैकली' ।

डैटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] धव का पेड़ ।

डैटा—संज्ञा पुं० [देश०] १. कीवा । २. एक नीच जाति जो मरे जान
वरों का मांस खाती है । उ०—मांस खाति ते डैड सब मद
पीवे सो नीच ।—कबीर (शब्द०) । १. मूर्ख । मूढ़ । जड़ ।

डैड—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड, हि० डौड] कपास आदि का डोडा ।
डौड । उ०—सेमर सुवना सेहए दुह डैडे की घास ।—
कबीर (शब्द०) ।

डैडर—संज्ञा पुं० [हि० डैट] भाँस के डेले का निकला हुआ विकृत
मांस । डेटर ।

डैडवा—संज्ञा पुं० [देश०] काले मुँह का बंदर । लंगूर ।

ढँढा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] दे० 'ढेँढ' ।

ढँढी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेड़ा] १. कपास का ढोडा । २. पोस्ते का ढोडा । ३. कान का एक गहना । तरकी । उ०—सीस फूँस जड़ाव जूड़ा अंजन जान लगावन । मानसी नथुनी ढँढी शब्द माँग मरावन ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६४ ।

ढँप—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फल या पत्ते के छोर पर का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है । २. कुचाग्र । बोंड़ी ।

ढँपी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेप' ।

ढेवझाँ—संज्ञा पुं० [देश०] पेंसा ।

ढेऊँ—संज्ञा पुं० [देश०] पानी की लहर । तरंग । हिलोरा ।

ढेकुला—संज्ञा पुं० [देशी] दे० 'ढेकली' ।

ढेढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० दष्टि] दष्टि । नजर । झाँक । उ०—रात दिवस बनी पहरीयो । तोही मुँसारी मुँसी गयो ढेढ़ ।—बी० रासो, पृ० १७ ।

ढेड़स—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेड़सी' ।

ढेपनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेपनी' ।

ढेपुनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेप] १. पत्ते या फल का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है । ढेप । २. किसी वस्तु की बाने की तरह उभरी हुई नोक । ठोंठ । ३. कुचाग्र । बूजुक ।

ढेबरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डिबरी' ।

ढेबरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे चोरी, मामरो घोर रही भी कहते हैं । वि० दे० 'कही' ।

ढेवुझाँ—संज्ञा पुं० [सं० ढेवुका; या देश०] दे० 'ढेवुक' ।

ढेवुका—संज्ञा पुं० [सं० ढेवुका या देश०] ढेउघा । पेंसा । उ०—यथा ढेवुक मुद्रा जग माहीं । है सब एक पविक सम नाहीं ।—विश्राम (मै०) ।

ढेवुवाँ—संज्ञा पुं० [सं० ढेवुका, देश०] पेंसा । ढेउघा । ताम्रमुद्रा ।

ढेममौज—संज्ञा स्त्री० [देश० ढेऊ + फ्रा० मौज] बड़ी लहर । समुद्र की ऊँची लहर (लश०) ।

ढेर—संज्ञा पुं० [हि० धरना] नीचे ऊपर रखी हुई बहुत सी वस्तुओं का समूह जो कुछ ऊपर उठा हुआ हो । राशि । घटाला । अंबार । गंज । टाल ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगावा ।

मुहा०—ढेर करना=मारकर गिरा देना । मार डालना । उ०—होश की दवा करो । ढेर कर दूँगा ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३७ । ढेर रखना=मारकर रख देना । जीता न छोड़ना । ढेर रहना=(१) गिरकर मर जाना । (२) थककर चूर हो जाना । अत्यंत क्षिप्त हो जाना । ढेर हो जाना=(१) गिरकर मर जाना । मर जाना । (२) ध्वस्त होना । गिर पड़ जाना । जैसे, मकान का ढेर होना । (३) क्षिप्त हो जाना ।

ढेरनी—वि० बहुत । अधिक । ज्यादा ।

ढेरना—संज्ञा पुं० [देश० या हि० ढुरना (= घूमना)] सूत या रस्सी बटने की फिरकी ।

ढेरा—संज्ञा पुं० [देश०] १. सुतली बटने की फिरकी जो परस्पर काटती हुई दो घाड़ी लकड़ियों के बीच में एक खड़ा ढंडा जड़कर बनाई जाती है । २. मोट के मुँह पर का लकड़ी का लोहे का घेरा जो मोट का मुँह खुला रखने के लिये लगा रहता है । ३. अंकोल का पैड़ (वैद्यक) ।

ढेरा—वि० [देश०] जिनकी घाँघी की पुनलियाँ देखने में बराबर न रहती हों । अँगा । अंबर तक़ ।

ढेराढेँक—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली । दे० 'ढेँक' ।

ढेरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेर] ढेर । समूह । घटाला । राशि ।

ढेरु—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढेर' । उ०—कंवन को ढेर जो सुमेरु सो लखत है ।—भूषण प्र०, पृ० ४६ ।

ढेला—संज्ञा पुं० [हि० डला] दे० 'ढेला' ।

ढेलवाँस—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेला + सं० पाश] रस्सी का एक फँदा जिससे ढेला फेंकते हैं । गोफना । उ०—इस सभ्यता के लोगों के अस्त्र शस्त्र, माले, कटार, परशु, गदा, तीर, धनुष, ढेलवाँस आदि थे ।—आदि० भा०, पृ० ४८ ।

ढेला—संज्ञा पुं० [सं० दल, हि० डला] १. ईंट, मिट्टी, कंकड़, पत्थर आदि का टुकड़ा । चक्का । जैसे, ढेला फेंककर मारना ।

यौ०—ढेला चौथ ।

२. टुकड़ा । खंड । जैसे, नमक का ढेला । ३. एक प्रकार का धान । उ०—कपूर काट कजरी रतनारी । मधुकर ढेला जीरा सारी ।—जायसी (शब्द०) ।

ढेलाचौथ—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेला + चौथ] भादों सुदी चौथ । भाद्र शुक्ल चतुर्थी ।

विशेष—ऐसा प्रवाद है कि इस दिन चंद्रमा देखने से कलंक लगता है । यदि कोई चंद्रमा देख ले तो उसे लोगों की कुछ गालियाँ सुन लेनी चाहिए । गालियाँ सुनने की सीधी युक्ति दूसरों के घरों पर ढेला फेंकना है । अतः लोग इस दिन ढेला फेंकते हैं । यह पायः एक प्रकार का विनोद या खेनसाड़ सा हो गया है ।

ढेवुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पैसे का सिक्का [को०] ।

ढेकली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेकली' ।

ढेकुरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का युद्धयंत्र । ढेलवाँस । गोफना । उ०—आर ढेकुरी जंत्र निबान । गड पर पंछि न पावे जान ।—छिटाई०, पृ० ५६ ।

ढेँचा—संज्ञा पुं० [देश०] चकवेंड़ की तरह का एक पेड़ जिसकी छाल से रस्सियाँ बनाई जाती हैं । हरी खाद के रूप में भी इसका प्रयोग होता है । जयंती । २. धान के भीटे पर छाजन के लिये सन या पटवे का डठल ।

ढेक—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेक] दे० 'ढेक' । उ०—ढेक पंछि मटामरे घनै । जलकूकरी आरि भनगनै ।—छिटाई०, पृ० ६३ ।

ढैया—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाई] १. ढाई सेर की षाट । ढाई सेर तोलने का बटखरा । २. ढाई गुने का पट्टाड़ा । ३. शनेश्वर के एक राशि पर स्थिर रहने का ढाई वर्ष का काल ।

ढौंकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'ढोक' ।

ढौंकना—क्रि० सं० [धनु०] पीना । पी जाना । (धनिष्ठ या विनोद) ।

ढौंका—संज्ञा पुं० [देश०] १. पत्थर या घोर किसी कड़ी वस्तु का बड़ा धनगढ़ टुकड़ा । २. वह बाँस जो कोल्हू में षाट के सिरे से लेकर कोल्हू तक बंधा रहता है । ३. दो ढोली पान । चार सौ पान (तमोली) ।

ढोंग—संज्ञा पुं० [हि० ढंग] ढकोसजा । पाखंड । झूठा घाड़बर ।
क्रि० प्र०—करना ।—रचना ।

ढोंगधतूरी संज्ञा पुं० [हि० ढोंग + सं० धृतं] धृतं विद्या । धूर्तता । पाखंड ।

ढोंगबाज वि० [हि० ढोंग + फा० बाज] दे० 'ढोंगी' ।

ढोंगबाजो संज्ञा स्त्री० [हि० ढोंग + फा० बाजी] पाखंड । घाड़बर । ढोंग ।

ढोंगा संज्ञा पुं० [हि० ढोगा] नाप । तोल । मान । चोंगा । उ० बाँस का ढोगा, काठ की ढोकनी तथा बेंत की डलिया द्वारा नाप जोख का प्रचलन उठाकर उनके स्थान पर ताँबे का माना (भाष सेर), पाथी (चार सेर).....इत्यादि को प्रमाणित पैमाना माना जायगा ।—नेपाख०, पृ० ३१ ।

ढोंगी वि० [हि० ढोंग] पाखंडी । ढकोसलेबाज । झूठा घाड़बर करनेवाला ।

ढोंटा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढोटा' ।

ढोंड़—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] कपास, पोस्ते आदि का ढोड़ा । २. कली ।

ढोंड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढोंड़] १. नाभि । घुन्नी । २. कली । डोंडी ।

ढोक—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो १२ इंच लंबी होती है । डेरी । ढोका ।

ढोकना—क्रि० प्र० [हि० ढुकना] झुकना । नम्र रहना । उ०—
दया सबन पे राखि गुरन के चरनन ढोकत ।—ब्रज० ग्रं०
पृ० ११८ ।

ढोका—संज्ञा पुं० [हि०] १. दे० 'ढोका' । २. पर्दा । खोल । उ०—
भाँति भाँति के चश्मे (ऐनक) के ढोके लगाए ।—प्रेमघन०,
भा० २, पृ० २५८ ।

ढोटा—संज्ञा पुं० [सं० दुहितृ (= लड़की), हि० ढोटी] [स्त्री०
ढोटी] १. पुत्र । बेटा । उ०—देखत छोट खोट नृपढोटा ।
—तुलसी (शब्द०) । २. लड़का । बालक । उ०—गोकुल के
ग्वैड एक साँवरो सो ढोटा माई प्रेसियन के पेड़ पैठि जी के
पेड़े परघो खै ।—सूर (शब्द०) ।

ढोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहितृ] लड़की । पुत्री । बालिका ।

ढोटौना, ढोटौना(५) —संज्ञा पुं० [हि० ढोटा] दे० 'ढोटा' । उ०—
श्याम बरन एक मिल्यो ढोटौना तेहि मोकों मोहिनी लगाई ।
—सूर (शब्द०) ।

ढोड़ी—संज्ञा पुं० [देश०] ऊँट । (डि०) ।

ढोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहितृ] दे० 'ढोटी' । उ०—दुखी दुखी
ढोड़ियाँ लँदरी पर खोंसे भुससे पाखी सी, लिसियाए मुँह
बाए ।—हर्यलम्, पृ० २१० ।

ढोना—क्रि० सं० [सं० ढोढ (= वहन करना, ले जाना), धातु
वर्णविपर्यय > ढोव] १. बोझ लावकर ले जाना । भार ले
चलना । भारी वस्तु को ऊपर लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान
पर पहुँचाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—ले जाना ।

२. उठा ले जाना । जैसे,—घोर सारा माल ढो ले गए ।

ढोर—संज्ञा पुं० [हि० दुरना] गाय, बैल, भैंस आदि पशु । चीपाया ।
मवेशी । उ०—जब हरि मधुवन को जु सिधारे धीरज धरत
न ढोर ।—सूर (शब्द०) ।

ढोरना(५) —क्रि० सं० [हि० ढारना] १. पानी या घोर कोई द्रव
पदार्थ गिराकर बहाना । ढरकाना । ढालना उ०—(क) रीते
भरें, भरे पुनि ढोरें, चाहे फेरि भरें । कबहुँक तुण बूझै पानी
में कबहुँ शिला तरें ।—सूर (शब्द०) । (ख) जननी प्रति
रिस जानि बधायो चित्त वदन लोचन जल ढोरें ।—सूर
(शब्द०) । (ग) वै प्रकूर कूर कृत जिनके रीते भरे भरे गहि
ढोरे ।—सूर (शब्द०) । २. लुढ़काना । ३. फेरना । ढालना ।
उ०—यमुनाप्रसाद ने झींझें ढोरी । कहा, 'पहलवान, मामला
हमारा नहीं घोर अब बिलकुल बक्त नहीं रह्यो' ।—काले०,
पृ० ४१ । ४. डुलाना । हिलाना । उ०—(क) खँवर चाद
ढोरत हूँ ठाढ़ी ।—नद० ग्रं०, पृ० २१३ । (ख) लेकर वाउ
विजन कर ढोरौ ।—रसरतन, पृ० २१५ । (ग) पान खवावत
चरन पखोटतु ढोरत बिजन घोर ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २,
पृ० ५६६ । ५. नम्र करना । नमाना । नीचा करना । उ०—
झोसी बचतु सुन्धी मुलितान । सीसु ढोरि कै मूँदे कान ।—
झिंझाई०, पृ० ६१ ।

ढोरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढोर' ।

ढोरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ढोरना] १. ढालने का भाव । ढरकाने की
क्रिया या भाव । उ०—कनक कखस केसरि भरि ल्याई डारि
दियो हरि पर ढोरी की । प्रति धानंभ भरी ब्रज युवती गावति
गीत सबे होरी की ।—सूर (शब्द०) । २. रट । धुन । बान ।
लो । लगन । उ०—सूरदास गोपी बड़भागी । हरि बरसन
की ढोरी लागी । (ख) ढोरी लाई सुनन की, कहि गोरी
मुस्कात । थोरी थोरी सकुच सों भोरी भोरी बाट ।—बिहारी
(शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

ढोरी^२—वि० [हि० ढोरना] १. दुरी हुई । ढली हुई । २. हिलती
डुलती । मत्त । उ०—ब्रज बनिता बोरी भई होरी खेलत
घाज । रस ढोरी दोरी फिरत भिजवत हैं ब्रजराज ।—ब्रज०
ग्रं०, पृ० ३१ ।

ढोख^१—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जिसके दोनों घोर चमड़ा
मड़ा होता है ।

विशेष—लकड़ी के गोल कटे हुए लंबोतरे कुंदे को भीतर से खोखला करते हैं और दोनों धोर मुँह पर बमड़ा मढ़ते हैं। छोटा ढोल हाथ से धीरे बड़ा ढोल लकड़ी से बजाया जाता है। दोनों धोर के बमड़ों पर दो भिन्न भिन्न प्रकार का शब्द होता है। एक धोर तो 'ढब ढब' की तरह गंभीर ध्वनि निकलती है और दूसरी धोर टनकार का शब्द होता है।

यो०—ढोल ढमक्का = बाजा गाजा। धूम धाम।

मुहा०—ढोल पीटना या बजाना = घोषणा करना। प्रसिद्ध करना। प्रकट करना। प्रकाशित करना। चारों धोर कहते या जताते फिरना। उ०—(क) नाचो घूँघट खोलि, ज्ञान की ढोल बजाओ।—पलटू०, पृ० ६१। (ख) ब्रजमंडल में बदनामी के ढोल, निसंक हूँ आज बजै तो बजै।—नट०, पृ० ५८।

२. कान का परदा। कान की वह झिल्ली जिसपर वायु का आघात पड़ने से शब्द का ज्ञान होता है।

ढोल (७) —संज्ञा स्त्री [सं० ढोल] एक वाद्य। दे० 'ढोल'—१। उ०—नाचो घूँघट खोलि ज्ञान की ढोल बजाओ।—पलटू०, पृ० ६१

ढोलक—संज्ञा स्त्री [सं० ढोल] छोटा ढोल। ढोलकी।

ढोलकिया—संज्ञा पुं [हिं० ढोलक] ढोल बजानेवाला।

ढोलकिहा—संज्ञा पुं [हिं० ढोलक] दे० 'ढोलकिया'। उ०—फटत ढोल बहु ढोलकिहन की अंगुरिन तर तर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३६।

ढोलकी—संज्ञा स्त्री [हिं० ढोलक] दे० 'ढोलक'।

ढोलढमक्का—संज्ञा पुं [हिं० ढोल + धनु० ढमक्का] दे० 'ढोल' का यो०।

ढोलन—संज्ञा पुं [सं० ढोलन] दे० 'ढोलना'²।

ढोलना²—संज्ञा पुं [अप०] दूरहा। प्रिय। प्रियतम। उ०—ढोलन मेरा भावता बेगि मिलहु मुझ प्राइ। सुंदर व्याकुल विरहनी तलफि तलफि जिय जाय।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८१।

ढोलनहार—वि० [हिं० ढोलना] ढालने या ढलकानेवाला। उ०—मन निठ ढोलनहार।—कबीर ग्रं०, पृ० १८।

ढोलना¹—संज्ञा पुं [हिं० ढोल] १. ढोलक के आकार का छोटा जंतर जो तागे में पिरोकर गले में पहना जाता है। उ०—घाने गढ़ि सोना ढोलना पहिराए चतुर सुनार।—सूर (शब्द०)। २. ढोल के आकार का बड़ा बेलन जिसे पहिए की तरह लुढ़का कर सड़क का कंकड़ पीटते या खेत के ढेले फोड़कर जमीन खोद कर लेते हैं।

ढोलना²—संज्ञा पुं [सं० ढोलन] बच्चों का छोटा झूठा। पाखना।

ढोलना³—क्रि० सं० [सं० ढोलन] १. ढरकाना। ढालना। उ०—(क) दे घटवासी, मैंने वे घट तेरे ही चरखों पर ढोले; कीन तुम्हारी बातें खोले।—हिमंत०, पृ० २६। (ख) बोवा केरे कूपले ढोली साहिब सोस।—ढोला०, पृ० ५६२। २. हथेर उधर हिलाना। डूलाना। झूलना। जैसे, खँवर ढोलना।

ढोलनी—संज्ञा स्त्री [सं० ढोलन] बच्चों का झूठा। पालवा। उ०—

धगर बंजन को पालनो गढ़ई गुर ढार सुठार। से प्रायो गढ़ि ढोलनी बिसकर्मा सो सुतषार।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह झूला रस्सी से लटका हुआ एक छोटा घेरदार लटोला सा होता है।

ढोलवाई—संज्ञा स्त्री [हिं० ढुलना] दे० 'ढुलवाई'।

ढोला—संज्ञा पुं [हिं० ढोल] १. बिना पैर का रंगनेवाला एक प्रकार का छोटा सुफेद कीड़ा जो प्रायः अंगुल से दो अंगुल तक लंबा होता है और सड़ी हुई वस्तुओं (फल आदि) तथा पोषों के हरे ढंठलों में पड़ जाता है। २. वह दूध या छोटा खूबतरा जो गाँवों की सीमा सूचित करने के लिये बना रहता है। हृद का निशान।

यो०—ढोलाबंदी।

३. गोल मेहराब बनाने का डाट। लदाव। ४. पिंड। शरीर। देह। उ०—जो लगि ढोला तो लगि बोला तो लगि धनव्यवहार।—कबीर (शब्द०)। ५. डंका या दमामा। उ०—बामसेनि राजा तब बोला। चहुँ दिसि देहु जुड़ कहै ढोला।—हिबी प्रेम०, पृ० २२३।

ढोला²—संज्ञा पुं [सं० दुर्लभ, दुल्लह, राज०, प्रं० ढोला] १. पति। प्यारा। प्रियतम। २. एक प्रकार का गीत। ३. मूलं मनुष्य। जड़।

ढोलिअरा—संज्ञा पुं [हिं० ढोल] ढोल बजानेवाला व्यक्ति। उ०—ढोलिअरा के होलें—होलें ढोलु बजाइ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ११८।

ढोलिका—संज्ञा स्त्री [सं० होल] दे० 'ढोल'। उ०—संग राधिका सुजान गावत सारंग तान, बजत बाँसुरी पृथंग बीन ढोलिका।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३६३।

ढोलिनी—संज्ञा स्त्री [हिं० ढोलिया] ढोल बजानेवाली। डफालिन। उ०—नटिनि डोलिनी ढोलिनी सहनाइनि मेरिकांरि। नितंत तंत विनोद सकेँ विहंसत खेलत नारि।—जायसी (शब्द०)।

ढोलिया¹—संज्ञा पुं [हिं० ढोल] [स्त्री० ढोलिनी] ढोल बजानेवाला व्यक्ति। उ०—मीर बड़े बड़े जात बहे तहाँ ढोलिये पार लगावत को है।—ठाकुर (शब्द०)।

ढोलिया (७) —[हिं० ढुलकना या ढुलना] एक जगह स्थिर न रहनेवाला। गतिशील। रमता। उ०—ढोलिया साधु सदा संसारा।—धरनी०, पृ० ४१।

ढोली¹—संज्ञा स्त्री [हिं० ढोल] २०० पानों की गट्टी। उ०—ढोलिन ढोलिन पान बिकाना भीटन के मैदाना।—कबीर (शब्द०)।

ढोली²—संज्ञा स्त्री [हिं० ठठोली, ठोली] हँसी। दिल्लगी। ठठोली। ठट्टा। उ०—सूर प्रभु की नारि राधिका नागरी चरचि लीनो मोहि करति ढोली।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ढोव—संज्ञा पुं [हिं० ढोवना] वह पदार्थ जो किसी मंगल के अवसर पर लोग सरदार या राजा को भेंट ले जाते हैं। डाली। नजर उ०—लै लै ढोव प्रजा प्रमुचित चले भाँति भाँति गरि भार।—मुलसी (शब्द०)।

ढोवना—क्रि० सं० [हिं० ढोवा] दे० 'ढोना'।

ढोबा[†]—संज्ञा पुं० [?] धावा । धाक्रमण । हमला । न०—पेच पेच मन की हाथनि गुरज । ढोबा दारि लहावे गुरज ।—छिताई०, पृ० ३४ । (क) निमि वासर ढोबा करे सोणित बहै प्रवाह ।—छिताई०, पृ० ४२ ।

ढोबा[†]—संज्ञा पुं० [हि० ढोना] १. ढोए जाने की क्रिया । ढोवाई । २. लूट । उ०—सूनहि सून सँवरि गढ़ रोबा । कस होइहि जो होइहि ढोबा ।—जायसी (शब्द०) ।

ढोवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ढुलाई] दे० 'ढुलाई' ।

ढोहना—क्रि० स० [हि० टोह] टोह लेना । लोचना ।

ढौचा—संज्ञा पुं० [म० प्रद्वं प्रा० घट्ट + हि० चार] वह पहाड़ा जिसमें क्रम से एक एक भ्रंक का साढ़े चार गुना भ्रंक बतलाया जाता है । साढ़े चार का पहाड़ा ।

ण

ण—हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का पंद्रहवाँ व्यंजन । इसका उच्चारण-स्थान मूर्धा है । इसके उच्चारण में आन्तरिक प्रयत्न स्पृष्ट और सानुनासिक है । बाह्य प्रयत्न मंवार नाद घोष और अल्पप्राण है । इसका संयोग मूधन्य वर्ण, अंतस्थ तथा म और ह के साथ होता है ।

ण^१—संज्ञा पुं० [म०] १. विवुदेव । एक बुद्ध का नाम । २. आभूषण । ३. निर्णय । ४. ज्ञान । ५. शिव का एक नाम । ६. पानी का

धर । ७. दान । ८. पिपल में एक गण का नाम । वि० दे० 'जगण' । ९. बुरा व्यक्ति । खराब भादमी (को०) । १०. अस्वीकारसूचक शब्द । न । नहीं (को०) ।

ण^२—वि० गुणरहित । गुणशून्य ।

णगण—संज्ञा पुं० [सं०] दो मात्राओं का एक मात्रिक गण । इसके दो रूप हो सकते हैं—जैसे, 'षी (ऽ) और हरि' (॥) ।

णय संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मलोक का एक समुद्र (को०) ।

त

त—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का १६वाँ और तवर्ग का पहला अक्षर जिसका उच्चारणस्थान दंत है । इसके उच्चारण में विचार, श्वास और मधोष प्रयत्न लगते हैं । इसके उच्चारण में आधी मात्रा का समय लगता है ।

तं संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाव । नौका । २. पुण्य । पवित्रता ।

तंक—संज्ञा पुं० [म० तङ्क] १. अय । डर । वह दुःख जो किसी प्रिय के वियोग से हो । ३. पत्थर काटने की टाँकी । ४. पहनने का कपड़ा । ५. कष्टपूर्ण जीवन । विपत्तिमय जीवन (को०) ।

तंकन—संज्ञा पुं० [सं० तङ्कन] कष्टमय जीवन । दुःख के साथ जीवन व्यतीत करना (को०) ।

तंका^५—वि० [हि० तंक] भयकारी । आतंक उत्पन्न करनेवाला । उ०—नरवल भी चित्तोढ़ मु तका । ह० रासो, पृ० ५६ ।

तंग^१—संज्ञा पुं० [फा०] घोड़ों की जीन कसने का तस्मा । घोड़ों की पेटी । कसन ।

तंग^२—वि० १. कसा । दढ़ । २. आग्रिज । दुखी । विक । विकल । हेरान ।

मुहा०—तंग आना, तंग होना = घबरा जाना । थक जाना । तंग करना = सताना । दुःख देना । हाथ तंग होना = पल्ले पैसा न होना । धनहीन होना ।

३. संकरा । संकुचित । पतला । चुस्त । संकीर्ण । छोटा । सिकुड़ा हुआ । सकेत । उ०—कहै पदमाकर त्यों उन्नत उरोजन पै तंग भंगिया है तनी तनिन तनाइके ।—पद्माकर प्र०, पृ० १२६ ।

तंगदस्त—वि० [फा०] १. कृपण । कंजूस । २. दरिद्री । धनहीन । गरीब ।

तंगदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. कृपणता । कंजूसी । २. दरिद्रता । धनहीनता । गरीबी ।

तंगदिल—वि० [फा०] कंजूस । उ०—हुया मालूम यह मुंवे से हुमको । जो कोई जरवार है सो तंगदिल है ।—कविता को०, भाग० ४, पृ० ३० ।

तंगनजर—वि० [फा० तंग + अ० नजर] १. तुच्छ दृष्टि का । सीमित दृष्टिवाला । बहुत कम देखनेवाला । उ०—उसने उनकी तुलना उन तंगनजर बीटियों से की, जो किसी प्रतिमा के सौंदर्य को इसलिये नहीं देख पातीं क्योंकि उसपर रेंगते समय वे केवल उसके छोटे मोटे उतार चढ़ावों पर ही दृष्टि केंद्रित रहती हैं ।—प्रेम० और गोर्की, पृ० 'च' । २. अनुदार । बकियासूस ।

तंगनजरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तंगनजर + ई (प्रत्य०)] १. दृष्टि की संकीर्णता । दृष्टि की अल्पता । २. अनुदारता । बकियासूसी ।

तंगहाक—कि० [फ्रा०] १. निर्धन । गरीब । २. विपद्यस्त । कष्ट में पड़ा हुआ । ३. बीमार । रोगग्रस्त । मरणासन्न ।

तंगहाली—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तंग + प्र० हाल + फ्रा० ई (प्रत्य०)] १. तंग होने की स्थिति । कठिनाई । २. अप्रभाव । ३. परेशानी । विपत्ति । ४. अर्थभाव की स्थिति [स्त्री०] ।

तंगा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का पेड़ । २. अप्रज्ञा । डबल पैसा ।

तंगिश—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तंगी' ।

तंगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. तंग या सँकरे होने का भाव । संकीर्णता । संकोच । २. दुःख । तकलीफ । क्लेश । ३. निर्धनता । गरीबी । ४. कमी । उ०—बंश ते निर्बंध कीन्हा तोड सब तंगी । कई कबीर अगम गम कीया नाम रंग रंगी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ७७ ।

तंजन—संज्ञा पुं० [फ्रा० ताजियाना] दे० 'ताजन' । उ०—जल बिनु पदुम घ्राति बिनु चंपा विद्या चतुर घोड़ बिनु तंजन ।—सं० दरिया, पृ० ६० ।

तंजेब—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तनजेब] एक प्रकार का महीन घोर बढ़िया मलमल ।

तंड^१—संज्ञा पुं० [सं० तण्डव] नृत्य । नाच । उ०—बहुत गुनाव के सुगंध के समीर सने परत कुहरी है जल जन्म के तंड की ।—रसकुसुमाकर (शब्द०) ।

तंड^२—संज्ञा पुं० [सं० तण्ड] एक ऋषि का नाम ।

तंड^३—संज्ञा पुं० [सं० तण्डा] १. वध । संहार । २. आक्रमण । प्रहार । उ०—जिन बीरन बसि करन दुंद आराधत तंडहि ।—पृ० रा० ६।५६ ।

तंडक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डक] १. खंजन पक्षी । २. केन । ३. पेड़ का तना । ४. वह वाक्य जिसमें बहुत से समास हों । ५. बहुवचन । ६. सज्जा । सजावट (स्त्री०) । ७. ऐंद्रजालिक । बाजीगर (स्त्री०) । ८. पूर्वाभ्यास अथवा पूर्व अभिनय (स्त्री०) ।

तंडना^४—क्रि० सं० [सं० तण्ड] नष्ट करना । समाप्त करना । उ०—तोष नगरो तंडियो, असुरा देव अमाप ।—शिवर०, पृ० ६५ ।

तंडव^५—संज्ञा पुं० [सं० तण्डव] नृत्यविशेष । एक प्रकार का नाच । जैसे,—छोड़ रति पंडित अलंडित करत काम तंडव सो मंडित कला कहूँ पुरन की ।—देव (शब्द०) ।

तंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डा] १. मार डालना । वध । २. आक्रमण । प्रहार (स्त्री०) ।

तंडि—संज्ञा पुं० [सं० तण्डि] एक बहुत प्राचीन ऋषि का नाम जिनका वर्णन महाभारत में आया है । इनके पुत्र के बनाए हुए मंत्र यजुर्वेद में हैं ।

तंडीर^६—संज्ञा पुं० [सं० तण्डीर] तण्डीर । तरकस । उ०—तीन पनच धुनहीं करन बड़े कटन तंडीर ।—पृ० रा०, ७।७६ ।

तंडु—संज्ञा पुं० [सं० तण्डु] महादेव जी के नक्षिकेश्वर । नंदी ।

तंडुरीय—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुरीय] १. चावल का पानी । २. कीड़ा मकोड़ा ।

तंडुरीय—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुरीय] १. वह पानी जिसमें चावल धोया गया हो । चावल का धोवन । २. माँड़ । ३. बज्र मूल । बंबर अयक्ति । ४. कीड़ा मकोड़ा (स्त्री०) ।

तंडुल—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुल] १. चावल । २. वायविडंग । ३. तंडुली शाक । चोलाई का साग । ४. प्राचीन काल की हीरे की एक तोल जो आठ सरसों के बराबर होती थी ।

तंडुलजल—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलजल] चावल का पानी जो वैद्यक में बहुत हितकर बतलाया गया है । यह दो प्रकार से तैयार किया जाता है—(१) चावल को कुटकर अठगुने पानी में पकाकर छान लेते हैं, यह उत्तम तंडुलजल है । (२) चावल को थोड़ी देर तक भिगोकर छान लेते हैं । यह तंडुलजल साधारण है ।

तंडुलाम्बु—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलाम्बु] १. तंडुलजल । २. माँड़ । पीप ।

तंडुला—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुला] १. वायविडंग । ककड़ी का पोषा । २. चोलाई का साग ।

तंडुलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुल] चोलाई । चोराई ।

तंडुली—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुली] १. एक प्रकार की ककड़ी । २. चोलाई का साग । ३. यवतिक्ता नाम की लता ।

तंडुलीक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीक] चोलाई का साग ।

तंडुलीय—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीय] चोलाई का साग ।

तंडुलीयक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीयक] १. वायविडंग । २. चोलाई का साग ।

तंडुलीयिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुलीयिका] वायविडंग ।

तंडुलू—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डल] वायविडंग । विडंग ।

तंडुलेर—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलेर] चोलाई का साग ।

तंडुलेरक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलेरक] चोलाई का साग ।

तंडुलोत्थ—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोत्थ] चावल का पानी । दे० 'तंडुलजल' ।

तंडुलोत्थक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोत्थक] दे० 'तंडुलोत्थ' (स्त्री०) ।

तंडुलोदक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोदक] चावल का पानी । दे० 'तंडुलजल' ।

तंडुलोष—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोष] १. एक प्रकार का बीस । कट-वासी । २. अनाज का ढेर (स्त्री०) ।

तंत^१—संज्ञा पुं० [सं० तन्तु] 'तन्तु' । उ०—किंगरी हाथ गढ़े बैरागी । पीप तंत धुनि यह एक लागी ।—जायसी (शब्द०) ।

तंत^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तुरंत] किसी बात के लिये जल्दी । आतुरता । उतावली । उ०—ध्यान की मूरति अस्मि ते भागे जानि परत रघुनाथ ऐसे कहति हैं तंत सों ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

तंत^३—संज्ञा पुं० [सं० तत्व] दे० 'तत्व' । उ०—योगहि कोह न चाही तब न मोहि रिस लाग । योग तत ज्यों पानी काहि करे तेहि प्राग ।—जायसी (शब्द०) ।

तंत^४—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] १. वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों । जैसे,—सितार, बीन, सारंगी । उ०—(क) बटिनी

डोमिनि डोलिनी सहनाइनि भेरिकार । निरतत तंन विनोद
सर्वे बिहंसत खेसति नारि ।—जायसी (शब्द०) । (ख) तंतन
की भनकार बजत भीनी भीनी ।—संतवाणी०, पृ० २३ । २.
क्रिया : उ०—अनु उन योग तंत मंत्र सेला ।—जायसी
(शब्द०) । ३. तंत्रशास्त्र । उ०—कह जीउ तंत मंत्र सर्व हेरा ।
गएउ हेराय सो वह भा मेरा ।—जायसी (शब्द०) । ४. इच्छा ।
प्रबल कामना । उ०—(क) दिसि परजंत अनन स्यात जय
बिजय तंत जिय ।—गोपाल (शब्द०) । (ख) बुद्धिमंत दुतिमंत
तंत जय मय निरधारत ।—गोपाल (शब्द०) । ५. वंश ।
प्रधानता । उ०—रथो पदमाकर घ्राह्यो कंत इकंत जबै निज
तंत में जानी । पयाकर (शब्द०) ।

विशेष—दे० 'तंत्र' ।

संत^१—वि० जो तौल में ठीक हो । जा वजन में बराबर हो ।

संतमंत्र^२—संज्ञा पु० [सं० तन्त्रमन्त्र] दे० 'तंत्र मंत्र' । उ०—कह जित
तंत मंत्र सों हेरा । गएउ हिराय जो वह भा मेरा—
जायसी (शब्द०) ।

संतरी^३—संज्ञा पु० [सं० तंत्री] वह जो तारवाले बाजे बजाता हो ।
उ०—आयो दुसह बसंत री कंत न आए बोर । जन
मन बेघत संतरी मदन सुमन के तीर ।—शु० संत० (शब्द०) ।

संताल^४—संज्ञा पु० [?] पानाल । उ०—नभ नाल तताल
धराल मिले जयलोक सुरपति बिद्धि सही ।—राम० धर्म०,
पृ० १०० ।

संति^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्ति] १. गो । गाय । २. रस्सी (को०) । ३.
पंक्ति (को०) । ४. शृङ्खला (को०) । ५. फैलाव । प्रसार (को०) ।

संति^६—संज्ञा पु० जुलाहा ।

संति^७—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्री] १. तंत्री । बीणा । उ०—नृत्तंत
एक संगीत भति । नारद रिभक्त कर धरत संति ।—पृ०
रा०, १।४१ । २. तंति । प्रत्यंघा । डोरी । गुण । उ०—नव
पुद्गुपन के धनुष बनावे । मधुप पाति त्रिनि तंति चढ़ावे ।
—नंद० ग्रं०, पृ० १६४ ।

संतिपात्र^८—संज्ञा पु० [तन्तिपाल] १. सहदेव का वह नाम जिससे
वह प्रजातवास के समय बिराट के यहाँ प्रसिद्ध थे । २. वह जो
गो की रक्षा या पालन करता हो ।

संती^९—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तंत्री' । उ०—संतिनाद । संबोल रस
सुरहि सुगंधउ जाह ।—डोला०, दू० २२३ ।

संतु^{१०}—संज्ञा पु० [सं० तन्तु] १. सूत । डोरा । तागा ।

यौ०—संतुकीट ।

२. माह । ३. संतति । संतान । बाल बच्चे । ४. विस्तार ।
फैलाव । ५. यज्ञ की परंपरा । ६. वंशपरंपरा । ७. तंति ।
८. मकड़ी का जाल ।

संतु^{११}—संज्ञा पु० [सं० तन्त्र] तंत्र । उ०—जिहि मुरि ओषध लगे,
जाहि संतु नहि संतु । पिय पकष पावै नही, व्याधि कहत
हमि जंतु ।—रस०, पृ० ५० ।

संतुकी^{१२}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुकी] १. सरसों । २. (केवल समासों में)
सूत्र । रस्सा (को०) । ३. सपें (को०) ।

संतुक^{१३}—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाड़ी ।

संतुकाष्ठ^{१४}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुकाष्ठ] जुलाहों की एक लकड़ी जिसे
तूली कहते हैं ।

संतुकी^{१५}—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाड़ी ।

संतुकीट^{१६}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुकीट] १. मकड़ी । २. रेशम का कीड़ा ।

संतुजाल^{१७}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुजाल] नसी का समूह (वैद्यक) ।

संतुण^{१८}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुण] १. एक बड़ी मछली । २. मगर (को०) ।

संतुन^{१९}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुन] दे० 'संतुण' (को०) ।

संतुनाग^{२०}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुनाग] मगर ।

संतुनाभ^{२१}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुनाभ] मकड़ी ।

संतुनिर्यास^{२२}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुनिर्यास] ताड़ का पेड़ ।

संतुपर्व^{२३}—संज्ञा पु० [सं० संतुपर्वन्] श्रावण की पूर्णिमा जिस दिन
राखी बांधी जाती है । रक्षाबंधन ।

संतुभ^{२४}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुभ] १. सरसों । २. बछड़ा ।

संतुमत्^{२५}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुमत्] प्राग ।

संतुमान्^{२६}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुमत्] प्राग (को०) ।

संतुर^{२७}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुर] मृणाल । मसीड़ । मुरार । कमल की
जड़ । कमलनाल ।

संतुल^{२८}—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तुल] दे० 'संतुर' ।

संतुवर्धन^{२९}—वि० [सं० तन्तुवर्धन] जाति को बढ़ानेवाला (को०) ।

संतुवर्धन^{३०}—संज्ञा पु० १. विष्णु । २. शिव (को०) ।

संतुवाद्यक^{३१}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुवादक] तंत्री । बीन प्रादि तार के
बाजे बजानेवाला । उ०—बहुरि तंतुवादक रघुराई । गान
करन मे निपुन बनाई ।—रामाश्वमेध (शब्द०) ।

संतुवाद्य^{३२}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुवाद्य] १. तारवाला बाजा (को०) ।

संतुवाप^{३३}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुवाप] १. तंति । २. तंति । दे० 'संतुवाय' ।

संतुवाय^{३४}—संज्ञा पु० [सं०] १. कपड़े बुननेवाला । तंति ।

विशेष—भिन्न भिन्न म्युतियों में इनकी उत्पत्ति भिन्न भिन्न
प्रकार से बतलाई गई है । किसी में इन्हें मणिबंध पुरुष और
मणिकार स्त्री से और किसी में वैश्य पिता और क्षत्रियाणी
माता के गर्भ से उत्पन्न बतलाया गया है । इनकी उत्पत्ति के
संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ भी हैं ।

२. मकड़ी । उ०—आकाश जाल सब घोर तना, रवि संतुवाय
है प्राज बना । करता है पदप्रहार वही, मक्खी सी भिन्ना
रही मही ।—साकेत, पृ० २६७ ।

संतुवायदंड^{३५}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुवायदण्ड] करघा (को०) ।

संतुविग्रह^{३६}—संज्ञा पु० [सं० तन्तुविग्रह] केले का पेड़ ।

संतुविग्रहा^{३७}—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तुविग्रहा] केले का पेड़ (को०) ।

संतुशाला^{३८}—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तुशाला] जुलाहे का कपड़ा बुनने का
स्थान (को०) ।

तंतुसंतत—वि० [सं० तन्तुसन्तत] बुना हुआ [को०] ।

तंतुसंतति—संज्ञा स्त्री [सं० तन्तुसन्तति] बुनाई [को०] ।

तंतुसंतान—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुसन्तान] बुनाई [को०] ।

तंतुसार—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुसार] सुपारी का पेड़ ।

तंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] १. तंतु । तौत । २. सूत । ३. जुलाहा । ४. कपड़ा बुनने की सामग्री । ५. कपड़ा । वस्त्र । ६. कुटुंब के भरण और पोषण आदि का कार्य । ७. निश्चित सिद्धांत । ८. प्रमाण । ९. घोषण । दवा । १०. साइने फूँकने का मंत्र । ११. कार्य । १२. कारण । १३. उपाय । १४. राज-कर्मचारी । १५. राज्य । १६. राज का प्रबंध । १७. सेना । फौज । १८. अधिकार । १९. कार्य का स्थान । पद । २०. समूह । २१. प्रसन्नता । मानंद । २२. घर । मकान । २३. मन । संपत्ति । २४. अधीनता । परवश्यता । २५. खेती । बग । कोटि । २६. दल । २७. उद्देश्य । २८. कुल । ज्ञानदान । २९. शपथ । कसम । ३०. हिंदुओं का उपासना संबंधी एक शास्त्र ।

विशेष—लोगों का विश्वास है कि यह शास्त्र शिवप्रणीत है । यह शास्त्र तीन भागों में विभक्त है—भागम, याधल और मुख्य तंत्र । वाराही तंत्र के अनुसार जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, सब कार्यों के साधन, पुरश्चरण, षट्कर्म-साधन और चार प्रकार के ध्यानयोग का वर्णन हो, उसे भागम और जिसमें सृष्टितत्व, ज्योतिष, नित्य कृत्य, क्रम, सूत्र, वर्णभेद और युगधर्म का वर्णन हो उसे यामल कहते हैं; और जिसमें सृष्टि, लय, मंत्रनिरुप, देवताओं के संस्थान, यंत्रनिरुप, तीर्थ, आधम, धर्म, कल्प, ज्योतिष संस्थान, व्रत-कथा, शोच और अशोच, स्त्री-पुरुष-लक्षण, राजधर्म, धान-धर्म, युवाधर्म, व्यवहार तथा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन हो, वह तंत्र कहलाता है । इस शास्त्र का सिद्धांत है कि कबि-युग में वैदिक मंत्रों, ज्यों और यज्ञों आदि का कोई कल नहीं होता । इस युग में सब प्रकार के कार्यों की सिद्धि के लिये तंत्रशास्त्र में वर्णित मंत्रों और उपायों आदि से ही सहायता मिलती है । इस शास्त्र के सिद्धांत बहुत गुप्त रखे जाते हैं और इसकी शिक्षा लेने के लिये मनुष्य को पहले दीक्षित होना पड़ता है । आजकल प्रायः मारण, उच्छादन, बशीकरण आदि के लिये तथा अनेक प्रकार की सिद्धियों आदि के साधन के लिये ही तंत्रोक्त मंत्रों और क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है । यह शास्त्र प्रधानतः शाक्तों का ही है और इसके मंत्र प्रायः अर्थहीन और एकाक्षरी हुआ करते हैं । जैसे,—ह्रीं, क्लीं, श्रीं, स्थीं, शुं, कूं आदि । तांत्रिकों का पंचमकार—मय, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन—और चक्रपूजा प्रसिद्ध है । तांत्रिक सब देवताओं का पूजन करते हैं पर उनकी पूजा का विधान सबसे भिन्न और स्वतंत्र होता है । चक्रपूजा तथा अन्य अनेक पूजाओं में तांत्रिक लोग मय, मांस और मत्स्य का बहुत अधिकता से व्यवहार करते हैं और धोबिन, तेलिन आदि स्त्रियों की नंगी करके उनका पूजन करते हैं । यद्यपि अथर्ववेद संहिता में मारण, मोहन, उच्छादन और बशीकरण

आदि का वर्णन और विधान है तथापि आधुनिक तंत्र का उसके साथ कोई संबंध नहीं है । कुछ लोगों का विश्वास है कि कनिष्क के समय में और उसके उपरांत भारत में आधुनिक तंत्र का प्रचार हुआ है । चीनी यात्री फाहियान और हुएनसांग ने अपने लेखों में इस शास्त्र का कोई उल्लेख नहीं किया है । यद्यपि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि तंत्र का प्रचार कब से हुआ पर तो भी इसमें संदेह नहीं कि यह ईसवी चौथी या पाँचवीं शताब्दी से अधिक पुराना नहीं है । हिंदुओं की देखादेखी बौद्धों में भी तंत्र का प्रचार हुआ और तत्संबंधी अनेक ग्रंथ बने । हिंदू तांत्रिक उन्हें उपतंत्र कहते हैं । उनका प्रचार तिब्बत तथा चीन में है । वाराही तंत्र में यह भी लिखा है कि जैमिनि, कपिल, नारद, गर्ग, पुलस्त्य, भृगु, शुक्र, बृहस्पति आदि ऋषियों ने भी कई उपतंत्रों की रचना की है ।

तंत्रक—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रक] नया कपड़ा ।

तंत्रकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रकाष्ठ] दे० 'तंतुकाष्ठ' [को०] ।

तंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रण] शासन या प्रबंध आदि करने का काम ।

तंत्रता—संज्ञा स्त्री [सं० तन्त्रता] कई कार्यों के उद्देश्य से कोई एक कार्य करना । कोई ऐसा कार्य करना जिससे अनेक उद्देश्य सिद्ध हों । जैसे, यदि किसी ने अनेक प्रकार के पाप किए हों तो उनमें प्रत्येक पाप के लिये प्रायश्चित्त न करके एक ऐसा प्रायश्चित्त करना जिससे सब पाप नष्ट हो जायें अथवा बार बार अस्पृश्य होने की दशा में प्रत्येक बार स्नान न करके सबके अंत में एक ही बार स्नान कर लेना । (धर्मशास्त्र) ।

तंत्रधारक—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रधारक] यज्ञ आदि कार्यों में वह मनुष्य जो कर्मकांड आदि की पुस्तक लेकर याज्ञिक आदि के साथ बैठता हो ।

विशेष—स्मृतियों के अनुसार यज्ञ आदि में ऐसे मनुष्य का होना आवश्यक है ।

तंत्रमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र + मंत्र] जादूगोरी । जादू टोना । २. उपाय । युक्ति । उब । ३. साधक द्वारा साधना में प्रयुक्त तंत्रादि ।

तंत्रयुक्ति—संज्ञा स्त्री [सं० तन्त्रयुक्ति] वह युक्ति जिसकी सहायता से किसी वाक्य का अर्थ आदि निकालने या समझने में सहायता ली जाय ।

विशेष—सुश्रुत संहिता में तंत्रयुक्तियाँ इस प्रकार की बताई गई हैं—अधिकरण, योग, पदार्थ, हेतुवर्ग, प्रदेश, प्रतिदेश, अपवर्ग, वाक्यशेष, अर्थापत्ति, विपर्यय, प्रसंग, एकांत, अनेकांत, पूर्व पक्ष, निरुप, अनुमत, विधान, अनामतवैक्षण, प्रतिज्ञातवैक्षण, संशय, व्याख्यान, स्वसंज्ञा, निर्बचन, निदर्शन, नियोग, विकल्प, समुच्चय और ऊह ।

तंत्रवाद्य—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रवाद्य] तारबाजे वाद्य यंत्र । जैसे, वीणा, सारंगी आदि ।

तंत्रवाप—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रवाप] १. तंतुवाय । तौती । २. मकड़ी ।

तंत्रवाय—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रवाय] १. तंतुवाय । तौती । २. मकड़ी । ३. तौत ।

तंत्रसंस्था—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रसंस्था] वह संस्था जो राज्य का शासन या प्रबंध करे। गवर्नमेंट। सरकार।

तंत्रस्कन्द—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रस्कन्द] ज्योतिष शास्त्र का वह ग्रंथ जिसमें गणित के द्वारा ग्रहों की गति आदि का निरूपण होता है। गणित ज्योतिष।

तंत्रस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रस्थिति] राज्य के शासन की प्रणाली।

तंत्रहोम—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रहोम] वह होम जो तन्त्रशास्त्र के मत से हो।

तंत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रा] दे० 'तन्त्रा'।

तंत्रायी—संज्ञा पुं० [सं० तंत्रायिन्] सूर्य (को०)।

तन्त्रि—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रि] १. तंत्री। २. तन्त्रा। ३. तार। तंत्र (को०)। ४. बीणा का तार (को०)। ५. नस। शिरा (को०)। ६. पूँछ। दुम (को०)। ७. विचित्र गुणों से युक्त स्त्री (को०)। ८. बीणा (को०)। ९. प्रपृता। गुदबी (को०)।

तन्त्रिपाल—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिपाल] दे० 'तन्त्रिपाल'।

तन्त्रिपालक—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिपालक] जयद्रथ का एक नाम।

तन्त्रिमुख—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिमुख] हाथ की एक मुद्रा या स्थिति (को०)।

तन्त्रिल—वि० [सं० तन्त्रिल] राजकार्य में सम (को०)।

तंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्री] १. बीन, मितार आदि बाजों में लगा हुआ तार। २. गुदबी। गुच्छ। ३. शरीर की नस। ४. एक नदी का नाम। ५. रज्जु। रस्सी। ६. वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों। तन्त्र। जैसे, मितार, बीन, सारंगी आदि। ७. बीणा।

तंत्री—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिन्] १. वह जो बाजा बजाता हो। २. वह जो गाता हो। गवैया। उ०—तंत्री काम कांध निज दोऊ धपनी धपनी रीति। दुविधा दुंदुभि है निसिवासर सपजावति विपरीत।—सूर (शब्द०)। ३. सैनिक (को०)।

तंत्री—वि० १. जिसमें तार लगे हों। तार का बना हुआ। २. जो तारवाला हो (जैसे, बीणा)। ३. तंत्र का अनुसरण करने-वाला (को०)।

तंत्री—वि० [सं० तन्त्रिन्] १. भालमी। २. धनीन।

तंत्रीभांड—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रीभाण्ड] बीणा (को०)।

तंत्रीमुख—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रीमुख] हाथ की एक मुद्रा या व्यवस्थान।

तंदरा—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रा] दे० 'तन्त्रा'। उ०—तारकैल तरणि जुन्हाई ज्यों तरुण तम तरुणी तपी ज्यों तरुण ज्वर तंदरा।—देव (शब्द०)।

तंदान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़िया अंगूर जो बटेरा के आसपास होता है और जिसकी सुखाकर किशमिश बनाते हैं।

तंदिही—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तनदिही] दे० 'तंदेही'। उ०—मगर कोशिश तंदिही करने से वह सब आसानी रफा हो सकती है।—श्रीनिवास० प्र०, पृ० ३२।

तंदुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बारहमासी घास जो जमीन में ही जमती है और चारे के काम में आती है ऊसर जमीन में खाद का भी काम देती है।

तंदुरुस्त—वि० [फा०] जिसका स्वास्थ्य अच्छा हो। जिसे कोया बीमारी न हो। निरोग। स्वस्थ।

तंदुरुस्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. शरीर की आरोग्यता। निरोग की अवस्था या भाव। २. स्वास्थ्य।

तंदुली—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुल] १. दे० 'तंडुल'। उ०—(तंदुल मांगि दो चिन्नाई सो दीन्हों उपहार। फाटे बसन के द्विजवर प्रति दुबल तनहार।—सूर (शब्द०) (ख) तंदुल के न्याय सों है संगृष्टि बखान। छोर नीर के न्या संकर कहत सुजान।—पद्माकर प्र०, पृ० ७४। २. दे० 'तंडुल'—घाट प्रवेत सरसों को तंदुल जानिये। दस तंदुल माण सुगुंजा मानिये।—रत्नपरीक्षा (शब्द०)।

तंदुल—संज्ञा पुं० [फा० तंदूर] गर्जन। आवाज। ध्वनि। उ० गज चिक्कार फिकार सबहं। तंदुल तबल मृदंग रबहं।—रा०, ६।१२७।

तंदुलीयक—संज्ञा पुं० [सं० तंदुलीयक] चोलाई का शाक। १ का साग।

तंदूर—संज्ञा पुं० [फ्रा० तनूर] घोंगीटी, चूल्हे या अट्टी आदि की का बना हुआ एक प्रकार का मिट्टी का बहुत बड़ा, गोल ऊँचा पात्र जिसके नीचे का भाग कुछ अधिक चौड़ा होत उ०—आज तंदूर से गरम रोटी लपककर भूखे की भो प्रा गिरी।—बंदनवार, पृ० ५६।

विशेष—इसमें पहले लकड़ी आदि की खूब तेज आँच सुलग है और जब वह खूब तप जाता है तब उसकी दीवारों भीतर की ओर मोटी रोटियाँ चिपका देते हैं जो थोड़े में सिककर लाल हो जाती हैं। कभी कभी जमीन में खोदकर भी तंदूर बनाया जाता है।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—तंदूर भोकना = भाड़ भोकना। निकुष्ट काम करने

तंदूरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशम जो माला आता है।

विशेष—इसका रंग पीला होता है और यह अत्यंत बारीक मुलायम होता है। यह किरबी से कुछ घटिया होता है।

तंदूरी—वि० [हि० तंदूर + ई (प्रत्य०)] तंदूर संबंधी। तंदूरी रोटी।

तंदेही—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तनदिही] १. परिश्रम। मेहनत प्रयत्न। कोशिश। ३. किसी काम को करने के लिये बार चेतावनी। ताकीद।

क्रि० प्र०—करना। रखना।

तंद्र—वि० [सं० तंद्र] १. थकित। बलांत। २. सुस्त। आलसी (को तंद्रवाप, तंद्रवाय—संज्ञा पुं० [सं० तन्द्रवाय, तन्द्रवाय] दे० 'तंदुवा

तंद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रा] १. वह अवस्था जिसमें बहुत अधिक आलस पड़ने के कारण मनुष्य कुछ कुछ सो जाय। उँव

जंघ । २. वह हलकी बेहोशी जो चिंता, भय, शोक या दुर्बलता आदि के कारण हो ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार इसमें मनुष्य को व्याकुलता बहुत होती है, इंद्रियो का ज्ञान नहीं रह जाता, जैसाई भ्रांती है, उसका शरीर भारी जान पड़ता है, उससे बोला नहीं जाता तथा इसी प्रकार की दूसरी बातें होती हैं । तद्रा कटुनिष्ठ या कफनाशक वस्तु खाने और व्यायाम करने से दूर होती है ।

क्रि० प्र०—ग्राना ।

तंद्रालस—वि० [सं० तन्द्रा + अलस] १. तंद्रालीन । आलस्ययुक्त । सुस्त । २. क्लान्त । थकित । ३. निद्रित । उ०—भीतर नद-राम और प्रेमा का स्नेहालाप बंद हो चुका था । दोनों तंद्रा-लस हो रहे थे ।—इंद्र०, पृ० २२ ।

तंद्रालु -वि० [सं० तन्द्रालु] चिसे तंद्रा प्राप्ती हो ।

तंद्रि—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रि] दे० 'तद्रा' ।

तंद्रिक—संज्ञा पुं० [सं० तन्द्रिक] एक प्रकार का ज्वर [को०] ।

तंद्रिक सन्निपात—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा सन्निपात ज्वर जिसमें उँचाई विशेष प्रा० ज्वर वेग से चढ़े, प्यास विशेष लगे, जीभ काली होकर खुगुगी हो जाय, दम फूले, दन्त विशेष हों, जलन न हो और कान में दद रहे । इसकी अवधि २५ दिन है ।

तंद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रिका] दे० 'तद्रा' ।

तंद्रित—वि० [सं० तन्द्रित] तद्रा युक्त । अलसाया हुआ । उ०—थक तद्रित राग रोग है, अब जो जाग्रत है वियोग है । साकेत, पृ० ३२१ ।

तंद्रिता—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रिता] तद्रा में होने का भाव ।

तंद्रिल—वि० [सं० तंद्रिल] १. जिसे तद्रा आती हो । आलसी । २. तद्रा या आलस्य से युक्त । ३. अलसाया हुआ । तंद्रित । सुस्त । उ०—तद्रिल तद्रतल, छाया शीतल, स्वप्निल ममर । हो साधारण खाय उपकरण, सुरा पान भर ।—मधुग्वाल, पृ० ६० ।

तंद्रो—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रो] १. तद्रा । २. भृकुटी । मोह ।

तंद्रो—वि० [सं० तंद्रो] १. थका हुआ । क्लान्त । २. आलसी [को०]

तंपा—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्पा] गी । गाय ।

तंफना—क्रि० प्र० [सं० तंफना] स्तम्भना । स्तम्भित होना । उ०—परि ध्यान ध्यान तिन अगनि ईस । पडे सु जगि तंके जगिस ।—पृ० २१० १।४८८ ।

तंवा—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्वा] गी । गाय ।

तंवा—संज्ञा पुं० [सं० तम्वा] बहुत चौड़ी मोहरी का एक प्रकार का पायजामा । उ०—तंवा सुथन सरो जंझिया तनियी धवला । पगरी बीरा ताजगोस बदा सिर अगना ।—सूदन (शब्द०) ।

तंबाकू—संज्ञा पुं० [सं० टोबैको] दे० 'तमाकू' ।

तंबाकूगर—संज्ञा पुं० [हि० तंबाकू + प्रा० गर] तमाकू बनानेवाला ।

तंबालू—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा । उ०—निकल धाया मूँ तंबालू के सार ।—दक्खिनी० पृ० ६० ।

तंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्बिका] गी । गाय ।

तंबिया—संज्ञा पुं० [हि० तंबा + इया (प्रत्य०)] १. तंबे का बना हुआ छोटा तमला या इसी प्रकार का और कोई गोल बरतन । २. किसी प्रकार का तसला ।

तंबीर—संज्ञा पुं० [सं० तम्बीर] ज्योतिष का एक योग । उ०—होय तंबीर जब कठिन कुंदी करे चामदन कष्ट तहाँ परे गाढ़ी ।—राम० धर्म०, पृ० ३८१ ।

तंबीह—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऐसी लूचना या क्रिया आदि जिसके कारण कोई मनुष्य आगे के लिये सावधान रहे । नसीहत । शिक्षा । २. दंड । सजा । (लश०) ।

तंबू—संज्ञा पुं० [हि० तनना] १. कपड़े, टाट, कनवास, आदि का बना हुआ वह बड़ा घर जो खंभों और खंठों पर तना रहता है और जिसे एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान तक ले जा सकते हैं । खेमा । डेरा । शिविर । शामियाना ।

विशेष—साधारणतः तंबू का व्यवहार जंगलों में शिकार आदि के समय रहने अथवा नगरों में सांख्यनिक मभाएँ, खेन, तमाशे और नाच आदि करने के लिये होता है ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना ।—तानना ।

२. एक प्रकार की मछली जो बाँव की तरह होती है ।

तंबुआ—संज्ञा पुं० [हि० तम्बू] दे० 'तंबू' । उ०—हाथी घोड़ा तंबुआ आवे कैहि कामा । फूलन सेज बिछावते फिर गोर मुकामा ।—पलटू०, भा०, ३, पृ० १७ ।

तंबूर—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का छोटा ढोल ।

तंबूर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तंबूरा' ।

तंबूरची—संज्ञा पुं० [फा० तम्बूर + ची (प्रत्य०)] तंबूर बजानेवाला ।

तंबूरा—संज्ञा पुं० [हि० तानपूरा या तुम्बुर (गंधर्व)] बीन या सितार की तरह का एक बहुत पुराना बाजा जो अलापचारी में केवल सुर का सहारा देने के लिये बजाया जाता है । तान-पूरा । उ०—अजब तरह का बना तंबूरा, तार लगे सी साठ रे । खूँटी टूटी तार बिलगाना कोई न पूछे बात रे ।—कबीर श०, पृ० ४७ ।

विशेष—इससे राग के बोल नहीं निकाले जाते । इसमें बीच में लोहे के दो तार होते हैं जिनके दोनों ओर दो ओर तार पीतल के होते हैं । कुछ लोग कहते हैं कि इसे तुम्बुर गंधर्व ने बनाया था, इसी से इसका नाम तंबूरा पड़ा । इसकी जवारी पर तारों के नीचे सूत रख देते हैं जिसके कारण उनसे निकलनेवाले स्वर में कुछ झनझनाहट आ जाती है ।

तंबूरा तोप—संज्ञा स्त्री० [हि० तंबूरा + तोप] एक प्रकार की बड़ी तोप ।

तंबूला—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] पान । तांबूल ।

तंबेरण—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्बेरम] हाथी (हि०) ।

तँवरम(५) — संज्ञा पु० [सं० स्तम्बरम] हाथी । उ० — पानहु दीन्ह समुद्र हलौरा, लहट मनुज तँवरम घोरा ।—इंद्रा०, पृ० ६६ ।

तँबोल — संज्ञा पु० [सं० ताम्बूल] १. दे० 'तांबूल' और 'तमोल' । उ० — अगु सकय सजि भग्नरहि ऐकु तँबोल घर तेल्नु ।— अकबरी०, पृ० ३१२ । २. एक प्रकार का पेड़ जिसके पत्ते लिसोड़े के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं । ३. वह धन जो बरात के समय घर को दिया जाता है । (पंजाब) । ४. वह धन जो विवाह या बरात के व्योते के साथ मार्ग-भ्रम के लिये भेजा जाता है । (बुंदेलखंड) । ५. वह धन जो लगाम की रगड़ के कारण घोड़े के मुँह से निकलता है । (मार्हस) ।

क्रि० प्र० — घाना ।

तँबोलिन — संज्ञा स्त्री० [हि० तम्बोली का स्त्री०] पान बेचनेवाली स्त्री । बरहम ।

तँबोलिया — संज्ञा स्त्री० [हि० तम्बूल + ह्या (प्रत्य०)] पान के धाकार की एक प्रकार की मछली जो प्रायः गंगा और जमुना में पाई जाती है ।

तँबोली — संज्ञा पु० [हि० तम्बोल + ई (प्रत्य०)] वह जो पान बेचता हो । पान बेचनेवाला । बरहम ।

तँभ(५) — संज्ञा पु० [सं० स्तम्भ] शृंगार रस के १० भावों में से एक । स्तंभ । उ० — मोहति मुरति धामु स्वेत तंभ पुलक विबन कंठ सुरभंग मूर्च्छ परति है ।—देव (शब्द०) ।

तँभन — संज्ञा पु० [सं० स्तम्भन] शृंगार रस के १० सात्विक भावों में से एक । स्तम्भन । उ० — धारंभन तंभन सबंभ परिरंभन कचपुन सरभन पुंभन घनेरे ई ।—देव (शब्द०) ।

तँभावती — संज्ञा स्त्री० [सं० तम्भावती या हि०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो रात के दूसरे पहर में पाई जाती है ।

तँमोल(५) — संज्ञा पु० [सं० ताम्बूल] दे० 'तमोल' । उ० — (क) अघरात रागु तँमोल जीम ।—प० रासो०, पृ० १६५ । (ख) हुति वसन हीर तँमोल रंग । दाढ़िमी बीज मानी तुरंग ।—रसरतन०, पृ० २४८ ।

तँई — प्रत्य० [हि०] दे० 'तई' ।

तँकारी — संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टकारी' ।

तँगिया — संज्ञा स्त्री० [हि० तनना] दे० 'तनी' ।

तँडलना(५) — क्रि० स० [सं० तण्ड] तोड़ना । उ० — सेव्ह भोक सायक, तेग साबल कार तँडला ।—रा० रू०, पृ० ८५ ।

तँबरा(५) — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तबला' । उ० — डीग ऊपर तँबरा बाजा, देवी फिरंगी का ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३६ ।

तँघियाना — क्रि० प्र० [हि० तँघा] १. तबि के रंग का होना । २. तबि के बरतन में रहने के कारण किसी पदार्थ में तबि का स्वाद या गंध आ जाना ।

तँबुआ(५) — संज्ञा पु० [हि० तंबू] दे० 'तंबू' ।

तँबूरची — संज्ञा पु० [फ्रा० तंबूर + ची (प्रत्य०)] दे० 'तंबूरची' ।

उ० — कहे पवमाकर तिलंगी भीर शृंगल को मेजर तँबूरची मयूर गुन गायो है ।—पद्माकर ग्रं०, पृ०, ३२० ।

तँबोर(५) — संज्ञा पु० [सं० ताम्बूल] दे० 'तमोर' । उ० — दग धनुरागे पागे रंग तँबोर ।—बनानंद, पृ० ३३४ ।

तँबोल(५) — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तांबूल' । उ० — मुख तँबोल रंग धारहि रासा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६० ।

तँबोलिनी — संज्ञा स्त्री० [हि० तम्बोली] दे० 'तंबोलिन' ।

तँबोलिया — संज्ञा स्त्री० [हि० तंबोल + ह्या (प्रत्य०)] दे० 'तंबोलिया' ।

तँबोली — संज्ञा पु० [हि० तम्बोल + ई (प्रत्य०)] दे० 'तंबोली' ।

तँमोर(५) — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तमोर' । उ० — मंगल घरसाने दग राजत अंधर मंगल रुचि रच्यो तँमोर ।—बनानंद, पृ० ३२६ ।

तँवकना(५) — क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तोंकना' । उ० — तँवकि निखंड खंड ह्वै गयऊ ।—माधवानल०, पृ० २०२ ।

तँवचुर(५) — संज्ञा पु० [सं० ताम्रचूड] दे० 'ताम्रचूड' । उ० — गिह मंजूर तँवचुर जो हारा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६४ ।

तँबर(५) — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तमोर' । उ० — कमध्वज कूरम गोड़ तँबर परिहार समानो ।—ह० रासो०, पृ० १२२ ।

तँबाना(५) — क्रि० प्र० [हि० तमकना] आवेश में घाना । क्रुद्ध होना । उ० — सवति भीजिया और जेठनिया ठाढ़ी रहलि तँवाई ।—गुलाल०, पृ० ५७ ।

तँबार — संज्ञा स्त्री० [हि० ताव] १. सिर में घानेवाला चक्कर । घुमटा । घुमेर । २. हुरारत । ज्वारांश ।

क्रि० प्र० — घाना ।—खाना ।

तँबारा — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तँवार' ।

तँबारी — संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तँवार' ।

तँबाना(५) — क्रि० स० [?] १. स्तुति करना । २. प्रतीक्षा करना । उ० — राउत राना ठाढ़ तँबाहीं ।—बिना०, पृ० १७६ ।

तँह(५) — क्रि० वि० [हि०] दे० 'तहाँ' । उ० — ललित लसे सिर पागु तँके, तँक तँह तँह मुरके ।—नंद० ग्रं०, पृ० २०७ ।

तँ — संज्ञा पु० [सं०] १. नोका । नाव । २. पुण्य । ३. चोर । ४. झूठ । ५. पूछ । दुम । ६. गोद । ७. म्लेच्छ । ८. गर्म । ९. शठ । १०. रत्न । ११. बुद्ध । १२. अमृत । १३. योद्धा (की०) । १४. रत्न (की०) । १५. एक पिगल (की०) ।

तँ(५) — क्रि० वि० [सं० तद, हि० तो] तो । उ० — (क) अउ पाएई मानुस कह भाखा । नाहि त पक्षि मूति घर पंखा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) हमई कहब अब ठकुर सोहाती । नाहि त मोन रहब दिन राती ।—तुलसी (शब्द०) (ग) करतेहु राज त तुमहि न दोष । रामहि होत सुनत संतोष ।—तुलसी (शब्द०) ।

तथ्यजुब — संज्ञा पु० [अ० तथ्यजुब] आश्चर्य । विस्मय । अचंभा ।

क्रि० प्र० — करना ।—में घाना ।—होना ।

तथ्यमुल — संज्ञा पु० [अ० तथ्यमुल] १. सोच । चिन्त । विचार ।

उ०—लिहाजा बिना तथ्यमुख हँसी और मजाक की बातें कर चलते ।—प्रेमधन०, भाग० २, पृ० २३ ।

२. देर । धरसा । ३. सब । धैर्य ।

तथ्यमुख^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तथ्यमुख' ।

तथ्यल्लुकः—संज्ञा पुं० [थ० तथ्यल्लुकह्] बहुत से मोर्बों की जमीन-दारी । बड़ा इलाका ।

थी०—तथ्यल्लुकःदार ।

तथ्यल्लुकःदार—संज्ञा पुं० [थ० तथ्यल्लुकह् + फ्रा० दार (प्रत्य०)] इलाकेदार । तथ्यल्लुक का मालिक ।

तथ्यल्लुकःदारी—संज्ञा स्त्री० [थ० तथ्यल्लुकह् + फ्रा० दारी (प्रत्य०)] तथ्यल्लुकःदार का पद ।

तथ्यल्लुक—संज्ञा पुं० [थ० तथ्यल्लुक] १. इलाका । २. संबंध । लगाव ।

तथ्यल्लुका—संज्ञा पुं० [थ० तथ्यल्लुका] दे० 'तथ्यल्लुकः' ।

तथ्यल्लुकादार—संज्ञा पुं० [थ० तथ्यल्लुकह् + फ्रा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तथ्यल्लुकःदार' ।

तथ्यल्लुकेदार—संज्ञा पुं० [थ० तथ्यल्लुकह् + फ्रा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तथ्यल्लुकादार' ।

तथ्यल्लुकेदारी—संज्ञा स्त्री० [थ० तथ्यल्लुकह् + फ्रा० दारी (प्रत्य०)] तथ्यल्लुकःदारी ।

तथ्यसुब—संज्ञा पुं० [थ०] पक्षपात, विशेषतः धर्म या जाति संबंधी पक्षपात । उ०—तथ्यसुब में हुए हैवान विलयादा ।—कबीर ग्रं०, पृ० २०८ ।

तई^(५)—प्रत्य० [हि० तैं अथवा सं० तस् (तसिल्), तः, तह्, तइ, तई] से । उ०—कीन्हेसि कोइ बिभरोसी कीन्हेसि कोइ बरियार । छारहि तई सब कीन्हेसि पुनि कीन्हेसि सब छार ।—जायसी (शब्द०) ।

तई^२—प्रत्य० [प्रा०] प्रति । को । से । (व्य०) । जैसे,—मीने भापके तई कह रखा था ।

तई^(५)—सर्व [सं० त्वया; प्रा० तई] दे० 'तुम' । उ०—तई अणुदिट्टा सज्जणा, किउं करि लगा पेम ।—ढोला०, पृ० ६ ।

तई^(५)—सर्व० [सं० तत्] वह । उस । उ०—तई हुंती चन्दउ कियह, लह रचियउ आकाश ।—ढोला०, पृ० ४३७ ।

तइक—संज्ञा पुं० [देश०] बमार । (सोनारों की बोली) ।

तइनात—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तैनात' ।

तइस^(५)—वि० [सं० तादृश, अप० तइस] दे० 'तैसा' ।

तइसन^(५)—वि० [हि०] दे० 'तइसा' । उ०—तनु पसेव पसाहनि भासलि, पुसग तइसन जागु ।—विद्यापति, पृ० ३१ ।

तइसारी—वि० [सं० तादृश] दे० 'तैसा' या 'वैसा' । उ०—जस हीछा मन जेहि कह सो तइसन फल पाउ ।—जायसी (शब्द०) ।

तई^३—अव्य० [सं० तावत्] लिये । वास्ते ।

तई^४—कि० वि० [हि०] तभी । तब । उ०—हम जरा खंडल पर पालिस करके तई भीतर गयेन ।—अभिज्ञान, पृ० ८८ ।

तई^५—संज्ञा स्त्री० [हि० तवा या तया का स्त्री] इसका आकार

वासी का सा होता है और इसमें कड़े लगे होते हैं । इसमें प्रायः जलेबी या मालपुष्पा ही बनाया जाता है ।

तई^(५)—प्रत्य० [हि०] प्रति । को । से । उ०—कोऊ कहै हरि रीति सब तई । और मिलन का सब सुख दई ।—सूर (शब्द०) ।

तउ^(५)—अव्य० [हि० या सं० तह्यपि (तहि+अपि) या तदापि अथवा तदपि (तद्+अपि)] १. दे० 'तब' । २. दे० 'त्यों' ।

उ०—भा परलउ नियराना जउ हीं । मरइ सो ता कह पाणउ तउ ही ।—जायसी (शब्द०) ।

तऊ^(५)—अव्य० [हि० तउ] तो भी । तिस पर भी । तब भी । तथापि ।

तए—वि० [हि० तया का बहुव०] गरम किए हुए । गरमाए हुए ।

तक^१—अव्य० [सं० तावत्क, ताम्रक, तक्क, तक] एक विभक्ति जो किसी वस्तु या व्यापार की सीमा अथवा अवाध सूचित करती है । पर्यंत । जैसे,—वे दिल्ली तक गए हैं । परसों तक ठहरो । वस रुपए तक दे देंगे । उ०—जो पन तक्रिया छोड़ि टग सके न तुव तक भाइ । वरस भीख उनको कहा दीजत नहि पहुँचाइ ।—रसनिधि (शब्द०) ।

तक^२—संज्ञा स्त्री० [पं० तकड़ी] १. तराजू । २. तराजू का पल्ला ।

तक^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टक' । उ०—अति बस जल बरसत दोउ लोचन दिन भर रहन रहत एकहि तक ।—तुलसी (शब्द०) ।

तकड़ा—वि० [हि०] दे० 'तगड़ा' ।

तकड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो रेतीली जमीन में बारह महीने खूब पैदा होती है । चरमरा । हैग ।

विशेष—इसे घोड़े बहुत खाव से खाते हैं । इसकी फसल साल में ६ या ७ बार हुप्पा करती है ।

तकड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] तराजू (पंजाब) । उ०—तकड़ी के एक पलड़े में तो उसके सब पाप रखे और एक पलड़े में भग-वन्नाम रखा, तो पापवाला पलड़ा हलका हो गया ।—राम० धर्म०, पृ० २६५ ।

तकत^(५)—संज्ञा पुं० [फ्रा० तकत] दे० 'तकन' । उ०—बाट संतरि तिरहुत पड़ु । तकत चडिठ गुरुतान बड़ु ।—कीर्ति०, पृ० ६५ ।

तकथ^(५)—संज्ञा पुं० [फ्रा० तकत] दे० 'तकत' । उ०—हाजीर हज़र बैठे तकथ ताही कौं क्यों न जाचिये रे ।—सं० दरिया, पृ० ६८ ।

तकदमा—संज्ञा पुं० [थ० तकदमह्] किसी बीज की तैयारी का वह हिसाब जो पहले से तैयार किया जाय । तखमीना ।

तकदीर—संज्ञा स्त्री० [थ० तकदीर] १. भदाजा । मिकदार । २. भाग्य । प्रारब्ध । किस्मत । नसीब ।

थी०—तकदीरवर ।

विशेष—'तकदीर' के मुहावरों के लिये देखो 'किस्मत' के मुहाविर ।

तकदीरवर—वि० [घ० तकदीर + फा० वर] जिसका भाग्य बहुत हो । भाग्यवान् ।

तकन—संज्ञा स्त्री० [हि० तकना] ताकने की क्रिया या भाव । देखना । शृष्टि ।

तकना^(१)—क्रि० घ० [हि० ताकना (भ० तर्कण)] १. देखना । निहारना । अवलोकन करना । उ०—(क) देखि लागि मधु कुटिल किराती । जमि गेव तकइ लेऊं केहि जाती ।—तुलसी (शब्द०) (ख) कहि हरिदास जानि ठाकुरी बिहारी तकत न भोर पाट ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) । (ग) तेरे लिये तजि ताकि रहे तकि हेत किए बलबीर बिहारी ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) । २. शरण लेना । पनाह लेना । आश्रय लेना । उ०—देवन तक मेह गिरि खोहा ।—तुलसी (शब्द०) ।

तकवर^(२)—वि० [घ० तकवर] मानी । अभिमानी । उ०—शाह हुमायूँ की नंदन चंदन एक तेग एक जोधा तकवर ।—अकबरी०, पृ० १०६ ।

तकबीर—संज्ञा स्त्री० [घ०] १. किसी को बड़ा मानना या कहना । २. ईश्वर की प्रशंसा । उ०—ऊँ लोहा पीर । ताँबा तकबीर । गोरख०, पृ० ४१ ।

तकबबरी^(३)—संज्ञा स्त्री० [?] एक तरह की तलवार । उ०—रघु-भलन भकोरे मुख नहि मोरे बखतर तोरे तकबबरी ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८ ।

तकबुर—संज्ञा पुं० [घ०] १. घमंड । अभिमान । २. अकड़ । ३. शोखी (को०) ।

तकमा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमगा' । २. दे० 'तुकमा' ।

तकमील—संज्ञा स्त्री० [घ०] पूरा होने की क्रिया या भाव । पूर्ण ।

तकरमन्ही—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों के ऊपर से ऊन काटने का हँसिया । (गढ़वाल) ।

तकरार—संज्ञा स्त्री० [घ०] किसी बात को बार बार कहना । २. हज्जत । विवाद । ३. झगडा । टटा । लडाई । ४. कविता में किसी वयंन को दोहराना । ४. चावल का वह खेत जो फसल काटने के बाद फिर खाद दे के जोना गया हो । ५. वह खेत जिसमें जी, चना, गेहूँ इत्यादि एक साथ बोया गया हो ।

तकरारी—वि० [घ० तकरार + हि० ई (प्रत्य०)] तकरार करनेवाला । झगड़ालू । लडाका ।

तकरीब—संज्ञा स्त्री० [घ० तकरीब] वह शुभ कार्य जिसमें कुछ लोग सम्मिलित हों । उत्सव । जलसा ।

तकरीर—संज्ञा स्त्री० [घ० तकरीर] १. बातचीत । गुफ्तगू । उ०—इमे तकरीर गोया बाग मे बुलबुल चहकते हैं ।—भारतेन्दु ग्रं०, भाग १, पृ० ८४७ । २. वक्तृता । भाषण ।

तकरीरी—संज्ञा स्त्री० [घ० तकरीरी] मुकदर होने की क्रिया या भाव । नियुक्ति ।

तकसा—संज्ञा पुं० [सं० तर्कु] १. लोहे की वह सलाई जो सूत कातने के चरखे में लगी होती है और जिसपर सूत लिपटता जाता

है । टेकुसा । २. बिटियों की टेकुरी की सलाई जिसपर कला-बत्तू बटकर चढ़ते जाते हैं । ३. सुनारों की सिकरी बनाने की सलाई । ४. रस्सा या रस्सी बनाने की टिकुरी ।

मुहा०—किसी के तकले से बल निकालना = सारी शोखी या पाजीपन दूर करना । अच्छी तरह दुष्ट या ठीक करना ।

तकली—संज्ञा स्त्री० [हि० तकला] छोटा तकला या टेकुरी ।

तकलीद—संज्ञा स्त्री० [घ० तकलीद] अनुसरण । अनुकरण । देखा देखी काई काम करना । नकल । उ०—वरी मंग्रेजियत की तकलीद की जाय । प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० ६१ ।

तकलीफ—संज्ञा स्त्री० [घ० तकलीफ] १. कष्ट । क्लेश । दुःख । अपत्ति । मुसीबत । जैसे—(क) आजकल वह बड़ी तकलीफ से अपने दिन बिताते हैं । (ख) इस तोते को पिजड़े में बड़ी तकलीफ है । २. विपत्ति । मुसीबत ।

क्रि० प्र०—उठाना । करना ।—देना ।—पाना ।—भोगना ।—मिलना ।—सहना ।

२. भेद । शोक (को०) । ३. आश्रय । शरण । मर्ज (को०) । ४. मनोव्यथा (को०) । ५. निर्धनता । मुकलिसी (हि०) ।

तकल्लुफ—संज्ञा पुं० [घ० तकल्लुफ] १. निष्ठाचार । दिखावा । दिखाने के लिये कष्ट उठाकर कोई काम करना । २. टीमटाम । बाहरी सजावट ।

मुहा०—तकल्लुफ का = बहुत अच्छा । बढ़िया या सजा हुआ ।

३. संकोच । पसोपस (को०) । ४. शील संकोच । लिहाज (को०) । ५. लज्जा । शर्म (को०) । ६. बेगानगी । परायापन (को०) । ७. कष्ट सहन करना । तकलीफ उठाना (को०) ।

तकवा—संज्ञा पुं० [घ० तकवत] संयम । इंद्रियनिग्रह । परहेजगारी । शुद्ध रहना । उ०—तू तो तकवा रखे शरभ मुहम्मदी भावे ।—दक्खिनी०, पृ० ५५ ।

तकवाना—क्रि० सं० [हि० तकना का प्रे० रूप] ताकने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को ताकने में प्रवृत्त करना ।

तकवाहा^(४)—संज्ञा पुं० [हि० ताकना] खेरी या बागो का रखवाला । देखभाल करनेवाला । निगरानी करनेवाला व्यक्ति । उ०—बड़ी चारपाई जिसपर बैठा तकवाहा ।—अमरा, पृ० १६८ ।

तकवाही—संज्ञा स्त्री० [हि० तकवाह + ई (प्रत्य०)] १. देखभाल । रखवाली । किसी चीज की रक्षा के लिये उसपर बराबर नजर रखना । २. दे० 'तकाई' ।

तकसी—संज्ञा स्त्री० [?] नाश । दुर्दशा ।

तकसीम—संज्ञा स्त्री० [घ० तकसीम] बाँटने की क्रिया या भाव । बँटवारा । विभाजन । बँटाई । २. गणित में वह क्रिया जिससे कोई संख्या कई भागों में बाँटी जाय । बड़ी संख्या का छोटी संख्या से विभाजन । भाग ।

क्रि० प्र०—देना ।

बौ०—तकसीमेकार = हर एक को बराबर बराबर काम का बाँटना । तकसीमे मुल्क, तकसीमे बतन = देश का विभाजन या बँटवारा ।

तकसीर^१—संज्ञा स्त्री० [अ० तकसीर] १. अपराध । दोष । कसूर ।
२. भूल । चूक । त्रुटि । उ०—सच तो यों है कि हमें इशक सजावार नहीं । तेरी तकसीर है क्या ।—श्यामा०, पृ० १०२ ।
३. कर्तव्य में कमी (को०) । ४. ग्लानता । कमी (को०) ।

तकसीर^२—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. प्रचुरता । अधिकता । २. वृद्धि करना । आधिक्य करना (को०) ।

तकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ताकना + ई (प्रत्य०)] ताकने की क्रिया या भाव । २. वह धन जो ताकने के बदले में दिया जाय ।

तकाजा—संज्ञा पुं० [अ० तकाजा] १. ऐसी चीज माँगना जिसके पाने का अधिकार हो । तगादा । जैसे,—जाओ, उनसे रुपये का तकाजा करो । २. कोई ऐसा काम करने के लिये कहना जिसके लिये वचन मिल चुका हो । जैसे,—बहुत दिनों से उनका तकाजा है । चलो आज उनके यहाँ हो गए । ३. किसी प्रकार की उत्तेजना या प्रेरणा । जैसे, उम्र या वक्त का तकाजा । ४. आवश्यकता । जरूरत (को०) । ५. किसी काम के लिये किसी से बराबर कहना (को०) ।

यौ०—तकाजाग उम्र—(१) उम्र की माँग । (२) उम्र के लिहाज से कोई काम करना या न करना । तकाजाए वक्त = समय की माँग । किसी समय क्या करना है यह माँग ।

तकातक—क्रि० वि० [हि० तकना] देखते हुए । देखकर निशान लेते हुए । उ०—धनुष बान ले चढ़ा पारधी धनुषा के परच नही है रे । सरसर बान तकातक मारै मिरगा के घाव नहीं है रे ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६६ ।

तकान—संज्ञा स्त्री० [हि० थकान] दे० 'थकान' या 'थकावट' ।

तकाना^१—क्रि० सं० [हि० ताकना का प्रे० रूप] १. ताकने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को ताकने में प्रवृत्त करना । दिखाना । २. प्रतीक्षा करना । किसी को आशा में रखना ।

तकाना^२—क्रि० प्र० किसी ओर को रुक करना । किसी ओर को भागना या जाना । जैसे, उसने घने जंगल का रास्ता तकाया ।

तकावी—संज्ञा स्त्री० [अ० तकावी] वह धन जो जमींदार, राजा या सरकार की ओर से गरीब खेतहरों को खेती के औजार बनवाने, बीज खरीदने या कुआँ आदि बनवाने के लिये ऋण स्वरूप दिया जाय ।

क्रि० प्र०—बाँटना ।—देना ।

२. इस प्रकार का ऋण देने की क्रिया ।

तकित^१—वि० [हि०] १. शक्ति । थका । २. तक्ता हुआ । देखता हुआ । उ०—हिथ धरक्क धुधरह बदन लोडन जल निभकर । तकित शक्ति संभोत समग संकरिय दुष्पर ।—पृ० १०, ६।१०० ।

तकिया—संज्ञा पुं० [फा० तकियह्] १. कपड़े का बना हुआ लंबो-तरा, गोल या चौकीर थैला जिसमें ऊई, पर आदि भरते हैं और जिसे सोने लेटने आदि के समय सिर के नीचे रखते हैं । बालिश । उपधान । २. पत्थर की वह पटिया आदि जो छज्जे, रोक या सहारे के लिये लगाई जाती है । मुतक्का । ३. विश्राम

करने या आश्रय लेने का स्थान । ४. आश्रय । सहारा । आसरा । आशोसा । उ०—तहँ तुलसी के कोल को काको तकिया रे ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—तकियाकलाम ।

५. वह स्थान विशेषतः शहर के बाहर या कश्मिस्तान के पास का स्थान जहाँ कोई मुसलमान फकीर रहता हो । कश्मिस्तान का स्थान । ६. चारजामा । (लस०) ।

तकिया कलाम—संज्ञा पुं० [फा० तकियह् + अ० कलाम] दे० 'सखुनतकिया' ।

तकियागाह—संज्ञा स्त्री० [फा० तकियह् + गाह] फकीरों का निवास । पौर या फकीर का स्थान (को०) ।

तकियादार—संज्ञा पुं० [फा०] मजार पर रहनेवाला मुसलमान फकीर ।

तकिला—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूत । २. शीष ।

तकिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शीष । दया । २. एक जड़ी (को०) ।

तकी—वि० [अ० तकी] संयमी । इद्रियनिग्रही ।

तकुआ—संज्ञा पुं० [सं० तकुं] दे० 'तकला' ।

तकुआ^१—संज्ञा पुं० [हि० ताकना + उआ (प्रत्य०)] ताकनेवाला । देखनेवाला ।

तकैया^१—संज्ञा पुं० [हि० ताकना + ऐया (प्रत्य०)] ताकने या देखनेवाला ।

तकीली^१—संज्ञा पुं० [दे०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष, जिसे पस्ती भी कहते हैं । वि० दे० 'पस्ती' ।

तक्कर^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तक' । उ०—के गए मुक्कि पाइल भगव वीर छटि तक्कर परत । दिष्यो लग लंगावली बियो न कोई धीरज धरत । पृ० १०, १७ । ५ ।

तक्कह^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तक' । उ०—सय सुपंच वर विप्र, वेद मंत्र अधिकारिय । उभय महम कोविद्, छद्म तक्कह अनुसारिय । पृ० १०, १२ । ६३ ।

तक्की^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ताकना] ताकते रहने की क्रिया या भाव । दे० 'टकटकी' ।

तक्कोल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़ ।

तक्मा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तक्मन्] १. वसंत नामक चर्मरोग । २. शीतला देवी ।

तक्मा^२—संज्ञा पुं० [हि० तमगा] दे० 'तमगा' ।

तक्मा^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुक्मा' ।

तक्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. मट्टा । छाछ । मट्ठा । उ०—छलकत तक्क उफनि भंग आवत नहि जानति तेहि कालहि सों ।—सूर (शब्द०) । २. शहतूत के पेड़ का एक रोग ।

तक्कूर्बिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फटा हुआ दूध । छेना ।

तक्कपिंड—संज्ञा पुं० [सं० तक्कपिण्ड] फटा हुआ दूध । छेना ।

तक्कप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषों का एक रोग जिसमें छाछ का सा मूत्र होता है, और मट्ठे की सी गंध आती है ।

तक्रभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] कैय । कपित्थ ।

तक्षमांस—संज्ञा पुं० [सं०] मांस का रस। अक्षनी।

तक्षामन—संज्ञा पुं० [सं०] नागरंग।

तक्षसंधान—संज्ञा पुं० [सं० तक्षसन्धान] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार की काजी।

विशेष—इसे सी टके भर छाछ में एक एक टके भर सौंभर भस्म, राई और हल्दी का तुरण डालकर बनाते हैं। यह काजी पहले पंद्रह दिन पड़ी रहने दी जाती है, तब तैयार होती है। ऐसा कहते हैं कि यदि २१ दिनों तक यह नित्य दो दो टंक पी जाय तो तापितल्लो अच्छी हो जाती है।

तक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लन।

तक्षाट—संज्ञा पुं० [सं०] मथानी।

तक्षार—संज्ञा स्त्री० [सं० तक्षार] १० 'तक्षार'।

तक्षारिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का परिष्ट जो मट्टे में हड़ और आबले आदि का भुण्ड मिलाकर बनाया जाता है।

विशेष—यह संग्रहणी रोग का नाशक और अग्निदीपक माना जाता है।

तक्षाहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप।

तक्ष्या—संज्ञा पुं० [सं० तक्ष्यन्] १. चौर। २. शिकारी बिड़िया [को०]।

तक्ष्योम—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीधा करना। २. मुख निश्चित करना। ३. पचांग। जंतरी। ३०—मुनजिम अक्स का देखा ताजा तक्ष्योम। किया है बात सूँ उस वक्त तरकीम। —हक्किलनी०, पृ० २७६।

तक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामचंद्र के भाई भरत का बड़ा पुत्र। २. वृक के पुत्र का नाम। ३. पतला करने की क्रिया।

तक्षु—वि० काटनेवाला (केवल समारात में प्राप्त)।

तक्षुक—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल के घाट नागों में से एक नाग जो कश्यप का पुत्र था और कद्रु के गर्भ में उत्पन्न हुआ था।

विशेष—शृंगी ऋषि का शाप पूरा करने के लिये राजा परीक्षित को इसी ने काटा था। इसी कारण राजा जनमेजय इससे बहुत बिगड़े और उन्होंने सत्तार भर क साँपों का नाश करने के लिये सर्पयज्ञ आरम्भ किया। तक्षक इससे डरकर इंद्र की शरण में चला गया। इसपर जनमेजय ने अपने ऋषियों को आज्ञा दी कि इंद्र यदि तक्षक को न छोड़े, तो उसे भी तक्षक के साथ खींच भंगाओ और भस्म कर दो। ऋषियों के मंत्र पढ़ने पर तक्षक के साथ इंद्र भी खिंचने लगे। तब इंद्र ने डरकर तक्षक को छोड़ दिया। जब तक्षक खिंचकर अग्निकुंड के समीप पहुँचा, तब आस्तीक ने आकर जनमेजय से प्रार्थना की और तक्षक के प्राण बच गए।

प्राजकल के विद्वानों का विश्वास है कि प्राचीन काल में भारत में तक्षक नाम की एक जाति ही निवास करती थी। नाग जाति के लोग अपने आपकी तक्षक की संतान ही बतलाते हैं। प्राचीन काल में ये लोग सर्प का पूजन करते थे। कुछ पारश्वर्य विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में कुछ विशिष्ट जनानों को हिंदू लोग तक्षक या नाग कहा करते थे। और ये लोग संभवतः शक थे। तिब्बत, मंगोलिया और

चीन के निवासी अब तक अपने आपकी तक्षक या नाग के बंधन बतलाते हैं। महाभारत के युद्ध के उपरान्त धीरे धीरे तक्षकों का अधिकार बढ़ने लगा और उत्तरपश्चिम भारत में तक्षक लोगों का बहुत दिनों तक, यहाँ तक कि सिकंदर के भारत आने के समय तक राज्य रहा। इनका जातीय चिह्न सर्प था। ऊपर परीक्षित और जनमेजय की जो कथा दी गई है, उसके संबंध में कुछ पारश्वर्य विद्वानों का मत है कि तक्षकों के साथ एक बार पांडवों का बड़ा भारी युद्ध हुआ था जिसमें तक्षकों की जीत हुई थी और राजा परीक्षित मारे गए थे, और अंत से जनमेजय ने फिर तक्षशिला में युद्ध करके तक्षकों का नाश किया था और यही घटना जनमेजय के सर्पयज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हुई है।

२. साँप। सर्प। ३. विश्वकर्मा। ४. सुतधार। ५. दस वायुओं में से एक। नागवायु। ३०—प्रातः, अपान, व्यान, उदान और कटिहृत प्राण समान। तक्षक, धनंजय पुनि देवदत्त और पौडूक शंस द्युमान।—शूर (शब्द०)। ६. एक प्रकार का पेड़। ७. प्रसेनजित् के पुत्र का नाम जिसका अग्र्य भागवत में आया है। ८. एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति सूचिक पिता और ब्राह्मणी माता से मानी गई है।

तक्षक^१—वि० छेदनेवाला। छेवक।

तक्षुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] २. लकड़ी को साफ करने का काम। रंदा करने का काम। २. बढ़ई। ३. लकड़ी पत्थर आदि में खोदकर मूर्तियाँ और बेल बूटे बनाने का काम। लकड़ी पत्थर आदि गढ़कर मूर्तियाँ बनाना।

तक्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बढ़इयों का बहु भोजार जिससे वे लकड़ा छीलकर साफ करते हैं। रंदा।

तक्षशिल^१—संज्ञा पुं० [सं०] तक्षशिला का निवासी [को०]।

तक्षशिल^२—वि० तक्षशिला संबंधी [को०]।

तक्षशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बहुत प्राचीन नगरी का नाम जो भरत के पुत्र तक्ष की राजधानी थी।

विशेष—विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में इसके पासपास के प्रदेश में तक्षक लोगों का राज्य था, इसलिये इस नगरी का नाम भी तक्षशिला पड़ा था। महाभारत में लिखा है कि यह स्थान गंधार में है। अभी हाल में यह नगर रावलपिंडी के पास जमीन खोदकर निकाला गया है। वहाँपर बहुत से बौद्ध मंदिर और स्तूप भी पाए गए हैं। महाभारत में लिखा है कि जनमेजय ने यहीं सर्पयज्ञ किया था। सिकंदर जिस समय भारत में आया था, उस समय यहाँ के राजा ने उसे अपने यहाँ ठहराया था और उसका बहुत आदर सत्कार किया था। कुछ समय तक इसके पास पास का प्रदेश अशोक के शासन में था। अनेक यूनानी और चीनी यात्रियों ने तक्षशिला के वैभव और विस्तार आदि का बहुत अच्छा वर्णन किया है। बहुत दिनों तक यह नगरी पश्चिम भारत का प्रधान विद्यापीठ थी। दूर दूर से यहाँ विद्यार्थी आते थे। आणक्य यही का था।

तक्षा—संज्ञा पुं० [सं० तक्षन्] बढ़ई।

तखड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तखड़ी] तराजू ।

तख्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्त] दे० 'तख्त' । उ०—दीर्घ मेजि हरम हज़र मरहट्टी बेगि, चाहिये जो कुसल तख्त सिरताजी की ।—हम्मीर०, पृ० २१ ।

मुहा०—तख्त पलटना = तख्त उलटना । उ०—जब निबन्ध हो बने सबल संगी । तब पलटते न किस तरह तख्तने । तो चले क्यों बराबरी करने । बल बराबर अगर नहीं रखते ।—चुमते० पृ० ६८ ।

तख्तनशीन—वि० [फ़ा० तख्तनशीन] दे० 'तख्तनशीन' । उ०—जो है बिल्ली तख्तनशीन । पातसाह आलाउद्दीन ।—हम्मीर०, पृ० १७ ।

तख्तीफ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तख्तीफ] कमी । न्यूनता ।

तख्तीन—क्रि० वि० [फ़ा० तख्तीन] अंदाज से । अटकल से । अनुमान से ।

तख्तीना—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्तीना] अंदाज । अनुमान । अटकल । क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।

तख्तियल—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्तियल] १. विचारना । २. कल्पना । ३. काव्यविषय ।

तखरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तखड़ी' ।

तख्तिया—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्तिया] एकान्त स्थान । निर्जन स्थान ।

तख्तलुस—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्तलुस] कवि या शायर का वह नाम जो वह अपनी कविता में लिखता है । उपनाम ।

तख्ताना—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्ताना] बढ़ई ।

तख्तिया—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तख्तिया] लंबी टोपी, जो संत लोग लगाते थे । उ०—बिनु हरि भजन को भेष लिए कहा दिए तिलक सिर तख्तिया ।—भीखा० पृ० ७१ ।

तख्तिया—वि० [फ़ा० तख्तिया] वह बैज जिसकी दोनों प्राँखें दो रंग की हों ।

तख्तित—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तख्तित] १. तलाशी । २. तहकीकात । (लश०) ।

तख्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्त] १. राजा के बैठने का आसन । सिंहासन । २. तख्तों की बनी हुई बड़ी चौकी ।

यौ०—तख्त की रात = सोहागरात । (मुसल०)

३. राज्य । शासन । हुकूमत (को०) । ४. पलंग । चारपाई (को०) । ५. जिन (को०) ।

तख्तगाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तख्तगाह] राजधानी (को०) ।

तख्त ताऊस—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्त + फ़ा० ताऊस] एक प्रसिद्ध राजसिंहासन जिसे शाहजहाँ ने ६ करोड़ रुपया लगवाकर बनवाया था । इसके ऊपर एक अड़ाऊ मोर पंख फैलाए हुए खड़ा था । इस तख्त को सन् १७३९ ई० में नादिरशाह लूटकर ले गया ।

तख्तनशीन—वि० [फ़ा० तख्तनशीन] जो राजसिंहासन पर बैठा हो । सिंहासनालङ्कृत ।

तख्तनशीनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तख्तनशीनी + ई (प्रत्य०)] राज्या-

भिवेक । उ०—धीर तख्तनशीनी के दरबार का तो फिर कहना ही क्या है ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० १५४ ।

तख्तपोश—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्तपोश] १. तख्त या चौकी पर बिछाने की चादर । २. चौकी । तख्त ।

तख्तबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्तबंद] १. बंदी । कैदी । २. कारावास । कैद । ३. लकड़ी की वह खपची जो टूटी हुई चीजों को जोड़ने के लिये बाँधी जाती है (को०) ।

तख्तबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तख्तबंदी] १. तख्तों की बनी हुई चौकी । २. तख्तों की दीवार बनाने की क्रिया । ३. बाग की क्यारियों आदि को ढंग से सजाना (को०) ।

तख्तरवाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्तरवाँ] १. वह तख्त जिसपर बादशाह सवार होकर निकलता हो । हवादार । २. वह तख्त या चौकी जिसपर आदिलों में बरात के आगे रंडियाँ, नाचनेवाले या लोडे नाचते हुए चलते हैं । ३. उड़नखटोला ।

तख्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्ता] १. लकड़ी का वह चौरा हुआ लंबा चौड़ा धीर चौकोर टुकड़ा जिसकी मोटाई अधिक न हो । बड़ा पट्टा । पल्ला ।

मुहा०—तख्ता उलटना = (१) किसी प्रबंध का नष्ट भ्रष्ट हो जाना । किसी बने बनाए काम का बिगड़ जाना । (२) किसी प्रबंध को नष्ट भ्रष्ट करना । बना बनाया काम बिगाड़ना । तख्ता हो जाना = ऐंठ या धक्का खाना । तख्ते की तरह जड़ हो जाना ।

२. लकड़ी की बड़ी चौकी । तख्त । ३. घरियाँ । टिल्ली । ३. कागज का ताव । ५. खेतों या बागों में जमीन का वह अलग टुकड़ा जिसमें बीज बोए या पोधे लगाए जाते हैं । कियारी ।

यौ०—तख्तए कागज = कागज का ताव । तख्तए ताबूत = वह संदूक या पलग जिसमें शव ले जाते हैं । तख्तए तालीम = वह काला पट्टा जिसपर बच्चों को अक्षर, गिनती आदि सिखाते हैं । शिक्षापटल । ब्लैक बोर्ड । तख्तए नर्व = चौसर खेलने का तख्ता । तख्तए मय्यत = मुर्दों को सहलाने का तख्ता । तख्तए मशक = (१) बच्चों की तख्ती । (२) वह चीज जो बहुत प्रयुक्त हो । तख्तए मीना = आकाश । आसमान ।

तख्तापुल—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्ता + पुल] पटरों का पुल जो किले की खदक पर बनाया जाता है । यह पुल इच्छानुसार हटा भी लिया जा सकता है ।

तख्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तख्ती] १. छोटा तख्त । २. काठ की वह पट्टी जिसपर लकड़के अक्षर लिखने का अभ्यास करते हैं । पट्टिया । ३. किसी चीज की छोटी पट्टी ।

तख्तोताज—संज्ञा पुं० [फ़ा०] शासनमूत्र । राज्यमार । शासनप्रबंध (को०) ।

तख्तीना—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्तीना] दे० 'तख्तीना' ।

तग—अव्य० [हि०] दे० 'तक' । उ०—राजा के हीन हयात तग बाबशाह के ताबे नहीं हुआ ।—दक्खिनी०, पृ० ४४३ ।

तगड़ा—वि० [हि० तन + कड़ा] [वि० स्त्री० तगड़ी] १. जिसमें ताकत ज्यादा हो । सबल । बलवान् । मजबूत । २. अच्छा धीर बड़ा ।

तगड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तागड़ी' ।

तगड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तखड़ी' ।

तगड़ी—संज्ञा पुं० [म०] छंद शास्त्र में तीन वर्णों का वह समूह जिसमें पहले दो गुरु और तब एक लघु (५५) वर्ण होता है ।

तगदमा, तगदस्मा—संज्ञा पुं० [म० तगदमु] १ अणु आदि का किया हुआ अनुमान । तखमीना । २. दे० 'तकदमा' ।

तगना—क्रि० प्र० [हि० तागना] ताग जाना ।

तगनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तागनी] तागने का भाव । तगाई ।

तगपहनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तागान पहनना] जुलाहों का एक जोड़ार जो टाटा हुआ सूत जोड़ने में काम आता है ।

तगमा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमगा' ।

तगरी^१—संज्ञा पुं० [स०] १. एक प्रकार का पेड़ जो अफगानिस्तान, कश्मीर, भूटान और कोकण देश में नदियों के किनारे पाया जाता है ।

विशेष—भारत के बाहर यह महाकाष्ठ और जंजीबार में भी होता है । इसकी लकड़ी बहुत सुगंधित होती है और उसमें से बहुत अधिक मात्रा में एक प्रकार का तेल निकलता है । यह लकड़ी अंगूर की लकड़ी के स्थान पर तथा औषध के काम में आती है । लकड़ी काले रंग की और सुगंधित होती है और उसका सुरदा जलाने के काम में आता है । आयरकाश के अन्तर्गत तगर दो प्रकार का होता है, एक में सफेद रंग के और दूसरे में लाल रंग के फूल लगते हैं । इसी पत्तियों के रस से अरब के अनेक रोग दूर होते हैं । वैद्यक में इसे उष्ण, वीर्यवर्धक, शीतल, मधुर, स्निग्ध, लघु और विष अस्मार, शूल, दृष्टिदोष, विषदोष, भूतोन्माद और त्रिदोष आदि का नाशक माना है ।

पर्याय—वक्र । कुटिल । शठ । महोरग । नन । दीपन । विनम्र । कुचित । घट । नदृष । पाणिष । राजपण । क्षत्र । दीन । कालानुशास्त्र । कालानुसारक ।

२. इस वृक्ष की जड़ जिसकी गिनती गंधद्रव्यों में होती है । इसके बचने से दाँतों का दह अच्छा हो जाता है । ३. मदनवृक्ष । सैमफन ।

तगरी^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की गहद की मक्खी ।

तगला—संज्ञा पुं० [हि० तगला] १ तगला । २. दो हाथ लंबा सरकंडे का एक छड़ जिससे जोलाहे सीपों मिलाते हैं ।

तगसा—संज्ञा पुं० [देश०] वह लकड़ी जिससे पहाड़ी प्रांतीयों में ऊन की कातने से पहले साफ करने के लिये पीटते हैं ।

तगा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तागा' । उ०—प्रकुलित हृत् के आन दीन है यशोदा रानी भीनी ए भगुनी तामें कवन को तगा ।—सूर (शब्द०) ।

तगा^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति जो रुहेलखंड में बसती है । इस जाति के लोग अनेक पहनते और अपने आपको ब्राह्मण मानते हैं ।

तगाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तागना] १. तागने का काम । २. तागने का भाव । ३. तागने की मजदूरी ।

तगाइ—संज्ञा पुं० [हि०] १. दे० 'तगार' । २. वह बीकोर इंटों का घेरा जिसमें गारा या सुरखी चूना सानते हैं ।

तगाड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गारा] [स्त्री० तगाड़ी] वह तसला या लोहे का छिछला बरतन जिसमें मसाला या चूना गारा रखकर जोड़ाई करनेवालों के पाम ले जाते हैं । भड़िया ।

तगादा—संज्ञा पुं० [म० तकादा] दे० 'तकाजा' ।

क्रि० प्र० करना ।

तगाना—क्रि० स० [हि० तागना का प्रे० रूप] तागने का काम कराना । दूसरे को तागने में प्रवृत्त करना ।

तगाकुल—संज्ञा पुं० [म० तगाकुल] १ गफलत । उपेक्षा । ध्यान न देना । अभावधानी । उ०—हमने माना कि तगाकुल न करोगे लेकिन खाक हो जायेंगे हम तुमको खबर होने तक ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४६६ ।

तगार—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तगारी' ।

तगारा—संज्ञा पुं० [हि० तगर] १ हलवाईयों का नाद । २. सरकारी प्रबन्धालय का नाद ।

तगारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. लकड़ी गाने का गहड़ा । २. हलवाईयों का मिठाई बनाने का मिट्टी का बड़ा बरतन या नाँद । ३. चूना गारा इत्यादि लोने या रमना ।

तगियाना—क्रि० स० [हि० तागा से नायिक वातु] दे० 'तागना' ।

तगीर^१—संज्ञा पुं० [म० तगीर, तगीर] बदलने की क्रिया या भाव । परिवर्तन । बदला । कुछ का कुछ कर देना । तबरीली । उ०—(क) अहरी न । (ख) अन्तरी । जमीन तगीर करता ।—प्रताप (शब्द०) । (ग) जीवन आमल आद के सुषन कर तगीर । घट बड़ रकम बनाई के मिसुना करी तगीर ।—रसनिधि (शब्द०) ।

तगीरी^२—संज्ञा स्त्री० [म० तगीर, तगीर] बदली । परिवर्तन । उ०—गैरहाजिरी लिखि है कोई । मनसब घटे तगीरी होई । लाल कवि (शब्द०) ।

तगीरपुर—संज्ञा स्त्री० [म० तगीरपुर] बहुत बड़ा परिवर्तन । उ०—मुझको माग ये मेरे हाल तगीरपुरन कि है, कुछ गुमाँ और हो घड़के से दिले मूनिम्के ।—आनिवास० प्र०, पृ० ५५ ।

तगना(पि)—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तगना' ।

तघार, तघारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तगार' ।

तचना—क्रि० प्र० [हि० तपना] तपना । तप होना । उ०—(क) तापन सो तचती बिमें दित काज कृपा मन माहि विदूषती ।—प्रताप (शब्द०) । (ख) मानों विधि अब उलटि रची रो । जानत नहीं सखी काहे ते वही न तेज तची रो ।—सूर (शब्द०) ।

तचा^१—संज्ञा स्त्री० [म० तचा] चमड़ा । खाल । तचा । उ०—तुम बिन नाह रहे पै तचा । अब नहिं बिरह गड़ पै बचा ।—जायसी (शब्द०) ।

तचाना—क्रि० स० [हि० तपाना] तपाना । जलाना । तप करना । संतप करना । उ०—अनल उचाट रूप छाड मैं तचाई भारी कारीगर काम ने सुधारी अमिराम सान ।—वीनदयालु (शब्द०) ।

तच्छ^५—संज्ञा पुं० [सं० तक्ष] दे० 'तक्ष' ।

तच्छक^५—संज्ञा पुं० [सं० तक्षक] दे० 'तक्षक' ।

तच्छना^५—क्रि० सं० [सं० तक्षण] १. फाड़ना । २. नष्ट करना ।
काटकर टुकड़े करना ।

तच्छप^५—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तक्षक' ।

तच्छिन^५—क्रि० वि० [सं० तक्षण] उसी समय । तत्काल ।

तछन^५—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तक्षण' । उ०—कैसे राखि धापने
लये । अग्निनिहि तछन भछन करि गये ।—नंद० प्र०, पृ० ३१० ।

तछिन^५—अव्य० [सं० तक्षण] दे० 'तच्छिन' । उ०—जाके हर
तहें जात ब कोई । तछिन भछन करि डारि छोई ।—नंद०
प्र०, पृ० २७७ ।

तज—संज्ञा पुं० [सं० तज] १. तमाछ और दारचीनी की जाति का
मसौसे कच का एक सदाबहार पेड़ जो कोचीन, मलाबार,
पूर्व बंगाल, लासिया की पहाड़ियों और बरमा में अधिकता
से होता है ।

विशेष—भारत के अतिरिक्त यह चीन, सुमात्रा और जावा आदि
स्थानों में भी होता है । लासिया और अयंतिया की पहाड़ियों
में यह पेड़ अधिकता से लगाया जाता है । जिन स्थानों पर
समय समय पर गहरी वर्षा के उपरांत कड़ी धूप पड़ती है,
वहाँ यह बहुत जल्दी बढ़ता है । इसके पेड़ प्रायः पाँच पाँच
हाथ की दूरी पर बीज से लगाए जाते हैं और जब पेड़ पाँच
वर्ष के हो जाते हैं, तब वहाँ से हटाकर दूसरे स्थान पर रोपे
जाते हैं । छोटे पीछे प्रायः बड़े पेड़ों या झाड़ियों आदि की
छाया में ही रहे जाते हैं । बाजारों में मिलनेवाला तेजपात
या तेजपत्ता इस पेड़ का पत्ता और तब (लकड़ी) इसकी
छाव है । कुछ छोटे हथे और दारचीनी के पेड़ की एक ही
मानते हैं, पर वास्तव में यह बचसे भिन्न है । इस वृक्ष की
झालियों की फुनगियों पर सफेद फूल लगते हैं जिनमें गुलाब
की सी सुगंध होती है । इसके फल करीबे के से होते हैं जिनमें
से तेल निकाला जाता है और इस तथा अर्क बनाया जाता
है । यह वृक्ष प्रायः दो वर्ष तक रहता है ।

२. इस पेड़ की छाव ओ बहुत सुगंधित होती है और घोष के
काम में आती है । बँसक में इसे चरपरा, शीतल, हथका,
स्वादुष्ट, कफ, खासी, घाम, कंठ, अरुचि, कुमि, पीनस आदि
को दूर करनेवाला, पित्त तथा धातुवर्धक और बलकारक
माना जाता है ।

पर्या०—भृंग । वराय । रामेष्ट । बिज्जुल । त्वच । लकट ।
बोल । सुरभिलकल । सुतक । मुखोद्यन । सिंह । सुरस ।
कामवल्लभ । बहुगंध । वनप्रिय । लठपण । पंचवल्कल ।
वर । शीत । रामवल्लभ ।

तजकिरा—संज्ञा पुं० [अ० तजकिरह] १. वर्षा । बिक ।

क्रि० प्र०—करना ।—चलना ।—छिड़ना ।—होना ।

२. वातालाप । बातचीत (को०) । ३. क्वालि । प्रसिद्धि (को०) ।

४. प्रसंग । सिलसिला (को०) ।

४-४३

तजगरी—संज्ञा स्त्री० [फा० तेजगरी] सिकलीगरी की दो धंगुल
बोरी और अनुमानतः डेढ़ बालिशत लंबी लोहे की पटरी जिस-
पर तेल गिराकर रंदा तेज करते हैं ।

तजहीद—संज्ञा स्त्री० [अ० तजदीद] १. नया करना । नवीनीकरण ।
२. नवीनता । नयापन (को०) ।

तजन^५—संज्ञा पुं० [सं० त्यजन] तजने की क्रिया या भाव ।
त्याग । परित्याग ।

तजन^२—संज्ञा पुं० [सं० तजीन] कोठा या चाबुक ।

तजना—क्रि० सं० [सं० त्यजव] त्यागना । छोड़ना । उ०—(क)
सब तज । हर भज ।—(छन्द०) । (ख) तजहु पास निज
निज गृह जाहू ।—मानस, १।२५२ ।

तजरबा—संज्ञा पुं० [अ० तज्जबह्, तज्जिबह्, तज्जुबह्] १. वह ज्ञान
जो परीक्षा द्वारा प्राप्त किया जाय । अनुभव । बीसे,—मैंने
सब बातें अपने तजरबे से कही हैं ।

यो०—तजरबेकार = जिसने परीक्षा द्वारा अनुभव प्राप्त किया
हो । अनुभवी ।

२. वह परीक्षा जो ज्ञान प्राप्त करने के लिये की जाय । बीसे,—
आप पहले तजरबा कर लीजिए, तब लीजिए ।

तजरबाकार—संज्ञा पुं० [अ० तज्जुबह् + फा० कार] जिसने तजरबा
किया हो । अनुभवी ।

तजरबाकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तज्जुबह् + फा० कारी (प्रत्य०)] अनुभव ।

तजरीद—वि० [अ० तज्जीद] १. उद्घाटित कर किसी चीज को
असली दृष्टा में कर देना । नया कर देना । २. (काट
छाँटकर) सजाना या सँवारना । ३. सुधार करना । ४.
एकाकी जीवन । ब्रह्मचर्य । उ०—कोई तजरीद तकरीद
बोखते हैं कोई नहीं ।—दक्खिनी०, पृ० ४३३ ।

तजरुबा—संज्ञा पुं० [अ० तज्जुबह्] दे० 'तजरबा' ।

तजरुबाकार—संज्ञा पुं० [अ० तज्जुबह् + फा० कार] दे० 'तजरबा-
कार' ।

तजरुबाकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तज्जुबह् + फा० कारी] दे० 'तजरबा-
कारी' ।

तजरुली—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. प्रकाश । रोशनी । मूर । २. प्रताप ।
जलाल । ३. अग्रात्म ज्योति । उ०—कीजै फहम फना को लै
के, मूर तजरुली छपना ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६२ ।

तजबीज—संज्ञा स्त्री० [अ० तजबीज] १. सम्मति । राय । २.
फैसला । निर्णय । ३. बंदोबस्त । इतिजाम । प्रबंध ।

तजबीजसानी—संज्ञा स्त्री० [अ० तजबीज + सानी] किसी मबासत में
उसी मद्दालत के किए हुए किसी फैसले पर फिर से होनेवाला
विचार । एक ही हाकिम के सामने होनेवाला पुनर्विचार ।

तज्जुज—संज्ञा पुं० [अ० तज्जुज] १. सीमा का उत्सर्जन । २.
अपने इत्तियार से बाहर कोई काम करना । ३. प्रवृत्ति ।
हवमउदूबी । उ०—शरीरगत के माने तुकमी और हसी है जो
इस हव से तज्जुज न करे ।—दक्खिनी०, पृ० ४२६ । ४.
पृष्ठता । गुस्ताखी (को०) ।

तजुब^५—अर्थ [अ० तजुब] आश्चर्य । विस्मय । अश्चर्य ।
उ०—तजुब नहीं कि सोपरी टूट जाय ।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० १५५ ।

तज्जनित—वि० [सं०] उससे उत्पन्न ।

तज्जन्य—वि० [सं०] उससे उत्पन्न । उ०—कविता हमारे मन पर
पड़े हुए सामाजिक प्रतिबंधों और तज्जन्य विचारों की प्रति-
क्रिया है ।—नया०, पृ० ३ ।

तज्जातपुरुष—संज्ञा पु० [सं०] कानिपुण श्रमी । होशियार कारीगर ।

तज्जी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिगुपत्री ।

तज्ज—वि० [सं० तज् + ज (तज् + ज)] १. तज्ज का जाननेवाला ।
तज्ज । उ०—देवतज्ज सर्वज्ञ जज्ञेश अक्युत विभो बिस्व
भवदश संवत् पुरारी ।—तुलसी (शब्द०) । २. ज्ञानी ।

तटक^५—संज्ञा पु० [सं० तटक] कण्ठफूल नामक कान का आभूषण ।
कण्ठफूल । उ०—बलि बलि भावत अवण निकट प्रति सकुचि
तटक फँदा ते ।—सूर (शब्द०) ।

तट^१—संज्ञा पु० [सं०] १. क्षेत्र । खेत । २. प्रदेश । ३. तीर ।
किनारा । कूल । ४. शिव । महादेव । ५. जमीन या पर्वत
का ढाल (को०) । ६. आकाश (को०) ।

तट^२—क्रि० वि० समीप । पास । नजदीक । निकट ।

तटक—संज्ञा पु० [सं०] नदी, तालाब आदि का किनारा (को०) ।

तटका—वि० [हि०] [वि० तटकी] दे० 'टटका' । उ०—निसि के
उनीदे नैना तैसे रह टरि टरि । किधो कहूँ प्यारी को तटकी
लागी नजरि ।—सूर (शब्द०) ।

तटकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तड़कना' । उ०—तटकं दुहू छोह
लोहूँ बलावे ।—प० रासो, पृ० ८३ ।

तटग—संज्ञा पु० [सं०] तड़ाग ।

तटनी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तटनी] (तटवाली) नदी । सरिता ।
दरिया । उ०—(क) मदाकिनि तटनि तीर मंजु मृग बिहग
भीर धीर मुनि गिरा गंभीर साम घान की ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) कदम बिटप के निकट तटनी के आय घटा बड़ि चाहि
पीतपट फहरानी सी ।—रसखान (शब्द०) ।

तटवर्ती—वि० [सं०] तट से संबंध रखनेवाला या होनेवाला (को०) ।

तटस्थ^१—वि० [सं०] १. तीर पर रहनेवाला । किनारे पर रहनेवाला ।
२. समीप रहनेवाला । निकट रहनेवाला । ३. किनारे रहने-
वाला । अलग रहनेवाला । ४. जो किसी का पक्ष न ग्रहण
करे । उदासीन । निरपेक्ष ।

यौ०—तटस्थ वृत्ति ।

तटस्थ^२—संज्ञा पु० किसी वस्तु का वह लक्षण जो उसके स्वरूप को
लेकर नहीं बल्कि उसके गुण और धर्म आदि को लेकर बत-
लाया जाय । दे० 'लक्षण' ।

यौ०—तटस्थ लक्षण ।

तटस्थित—वि० [सं०] दे० 'तटस्थ' ।

तटाक—संज्ञा पु० [सं०] तड़ाग । तालाब ।

तटाकिनो—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा तालाब (को०) ।

तटाघात—संज्ञा पु० [सं०] पशुओं का अपने सींगों या दाँतों से
जमीन खोदना ।

तटिनो—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी । सरिता । दरिया ।

तटी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीर । कूल । किनारा । तट । २. वा
सरिता । उ०—ताहि समै पर नामि तटी को गयो उड़ि से
पोन प्रसंग मैं ।—सेवक (शब्द०) । ३. तराई । घाटी ।

तटी^२—संज्ञा स्त्री० समाधि ।

तठ^१—अर्थ [सं० तत्र] वहाँ । उस जगह पर ।

तठना—क्रि० वि० [सं० तत्र, प्रा० तथ्य] वहाँ । उ०—जुध
खगे रिए छोड़ जठे । तन पाघ जिसी रघनाथ तठे ।—
क०, पृ० ३५ ।

तड़^१—संज्ञा पु० [सं० तड़] १. समाज में हो जानेवाला विभाग । प
यौ०—तड़बंदी ।

२. स्थल । खुपकी । जमीन ।—(लघ०) ।

तड़^२—संज्ञा पु० [अनु०] १. थप्पड़ आदि मारने या कोई चीज पट
से उत्पन्न होनेवाला शब्द ।

यौ०—तड़ातड़ ।

२. थप्पड़ ।—(दलाल) ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—देना ।—लगाना ।

३. लाभ का आयोजन । आसदनी की सूरत ।—(दलाल)

क्रि० प्र०—जमाना ।—बैठाना ।

तड़क^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तड़कना] १. तड़कने की क्रिया या भा
२. तड़कने के कारण किसी चीज पर पड़ा हुआ बिह्व ।
भोजन के साथ खाए जानेवाले अचार, चटनी आदि च
पदार्थ । खाट ।

तड़क^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़क = (घरन)] वह बड़ी लकड़ी जो दी
से बँडेर तक लगाई जाती है और जिसपर दासे रखकर द
छाया जाता है ।

तड़कना^१—क्रि० प्र० [अनु० तड़] १. 'तड़' शब्द के साथ फट
फूटना या टूटना । कुछ आवाज के साथ टूटना । चटक
कड़कना । जैसे, शीशा तड़कना ; लकड़ी तड़कना । २. पि
चीज का सुखने आदि के कारण फट जाना । जैसे, छि
तड़कना, जखम तड़कना । ३. जोर का शब्द करना । उ०
कहि योगिनि निशि हित प्रति तड़की । विद्याचल के ;
लड़की ।—गापाल (शब्द०) । ४. क्रोध से बिगड़ना । ५
लाना । बिगड़ना । ५. जोर से उछलना या कूदना । तड़प
संयो० क्रि०—जाना ।

तड़कना^२—क्रि० प्र० तड़का देना । छोकना । बघारना ।

तड़क भड़क—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वैभव, शान आदि की दिखावट
तड़कली—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताटक । तरौना । कण्ठभूषण । त
उ०—नाग फण का तड़कली, छोटि कसण पयोहर लीब
वी० रासो, पृ० ७२ ।

तड़का—संज्ञा पु० [हि० तड़कना] १. सवेरा । सुबह । प्रातःका
प्रभात । २. छोक । बघार ।

क्रि० प्र०—देना ।

तड़काना—क्रि० प्र० [हि० तड़कना का सक० रूप] १. किसी
को इस तरह से तोड़ना जिससे 'तड़' शब्द हो । २. पि
पदार्थ को सुखाकर या और किसी प्रकार बीच में से फाड़ना

३. जोर का शब्द उत्पन्न करना । ४. किसी को क्रोध दिलाया या खिन्नाना ।

तड़कीला^१—वि० [हि० तड़कना + ईला (प्रत्य०)] १. चमकीला । भड़कीला । २. तड़कनेवाला । फट जानेवाला । ३. फुर्तीला ।

तड़कका^१—संज्ञा पुं० [अनु० तड़] तड़ का शब्द ।

तड़कका^२—क्रि० वि० [हि० तड़का] जल्दी । झटपट । उ०—चेतहू काहे न सवेर यमन सों रारिहै । कास के हाथ कमान तड़कका मारिहै ।—कबीर (शब्द०) ।

तड़ग—संज्ञा पुं० [सं० तडग] तालाब । तड़ाग [को०] ।

तड़तड़ाना^१—क्रि० प्र० [अनु०] तड़ तड़ शब्द होना ।

तड़तड़ाना^२—क्रि० स० तड़ तड़ शब्द उत्पन्न करना ।

तड़तड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़तड़ाने की क्रिया या भाव ।

तड़ता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तडित] बिजली । विद्युत् ।—(डि०) ।

तड़प—संज्ञा स्त्री० [हि० तड़पना] १. तड़पने की क्रिया या भाव । २. चमक । भड़क ।

तड़प भड़प—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वे० 'तड़क भड़क' । उ०—केवल ऊपरी तड़पभड़प रखनेवाली पश्चिमीय सभ्यता ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१५ ।

तड़पदार—वि० [हि० तड़प + दार] चमकीला । भड़कदार । भड़कीला ।

तड़पन—संज्ञा स्त्री० [हि०] वे० 'तड़प' ।

तड़पना—क्रि० प्र० [अनु०] १. बहुत अधिक शारीरिक या मानसिक वेदना के कारण व्याकुल होना । छटपटाना । तड़फड़ाना । तलमलाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. जोर शब्द करना । भयंकर ध्वनि के साथ गरजना । जैसे, किसी से तड़पकर बोलना, शेर का तड़पकर ग्राही में से निकलना ।

तड़पवाना—क्रि० स० [हि० तड़पाना का प्रेरणरूप] किसी को तड़पाने का काम दूसरे से कराना ।

तड़पाना—क्रि० स० [हि० तड़पना का सं०रूप] १. शारीरिक या मानसिक वेदना पहुँचाकर व्याकुल करना । २. किसी को गरजने के लिये बाध्य करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

तड़फड़—संज्ञा स्त्री० [हि० तड़फड़ाना] तड़पने की क्रिया ।

तड़फड़ाना—क्रि० प्र० [हि०] तड़पना । छटपटाना । तलमलाना ।

तड़फड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० तड़फड़ + आहट (प्रत्य०)] १. छटपटाहट । तलमलाहट । बेचैनी । २. मारे जाने या जलकर मरने के समय की बेचैनी या तड़पन ।

तड़फना—क्रि० प्र० [हि०] वे० 'तड़पना' ।

तड़भड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] हड़बड़ । जल्दी जल्दी । उ०—पातसाह अजमेर परस्से । कूच कियो तड़भड़ भड़ कस्से ।—रा० रू०, पृ० २५ ।

तड़बंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० तड़ + बंदी] समाज, बिरादरी या धर्म में अलग अलग तड़ बनाना ।

तड़क^१—संज्ञा पुं० [सं० तडाक] तडाग । तालाब । सरोवर ।

तड़क^२—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़के का शब्द । किसी चीज के टूटने का शब्द ।

तड़क^३—क्रि० वि० १. 'तड़' या 'तड़क' शब्द के सहित । २. जल्दी से । चटपट । तुरंत ।

यौ०—तड़क पड़क = चटपट । तुरंत ।

तड़का^१—संज्ञा पुं० [अनु०] १. 'तड़' शब्द । जैसे,—न जाने कहीं कल रात को बड़े जोर का तड़का हुआ । २. कमरवाह सुननेवालों का एक डंडा जो प्रायः सवा गज लंबा होता है और लफे में बंधा रहता है । इसके नीचे तीन छोर डंडे बंधे होते हैं । ३. पेड़ । बुझ ।—(कहारों की परि०) ।

तड़का^२—क्रि० वि० [हि० तड़क] चटपट । जल्दी से । तुरंत । जैसे,—तड़का जाकर बाजार से सोदा ले आओ (बोलचाल) ।

तड़ाग—संज्ञा पुं० [सं० तडाग] १. तालाब । सरोवर । ताल । पुष्कर । पोखरा । पद्यादियुक्त सर । उ०—(क) भरतु हंस रवि बंस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन दोष विभागा ।—मानस, ३।२३१ । (ख) अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंजकसी । तुलसी ग्रं०, पृ० १६७ ।

विशेष—प्राचीनों के अनुसार तड़ाग पाँच सौ धनुष लंबा, चौड़ा और खूब गहरा होना चाहिए । उसमें कमल आदि भी होने चाहिए ।

तड़ागना—क्रि० प्र० [अनु०] १. गर्जन तर्जन करना । तड़फड़ाना । २. डींग मारना । ३. प्रयास करना । उ०—पहुँचेंगे तब कहेंगे वही देश की सीध । अबहीं कहा तड़ागिए बेड़ी पायन बीच ।—संतवाणी०, पृ० ३५ ।

तड़ागी—संज्ञा स्त्री० [सं० तडाग] १. करघनी । २. कमर ।

तड़ाघात—संज्ञा पुं० [सं० तडाघात] वे० 'तडाघात' [को०] ।

तड़ातड़—क्रि० वि० [अनु०] १. तड़तड़ शब्द के साथ । इस प्रकार जिसमें तड़तड़ शब्द हो । जैसे, तड़ातड़ चपत जमाना । उ०—आगे रघुबीर के समीर के तनय के संग तारी दे तड़ाक तड़ातड़ के तसंका मे ।—पद्माकर (शब्द०) । २. जल्दी से ।

तड़ातड़ी—क्रि० वि० [अनु० मि० बंगला ताड़ाताड़ी] जल्दी में । शीघ्रता में । उ०—ओ कुछ शुना नेई धोर बड़ा तड़ातड़ी में भाग ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४५ ।

तड़ाना^१—क्रि० स० [हि० ताड़ना का प्रेरणरूप] किसी दूसरे को ताड़ने में प्रवृत्त करना । भँपाना ।

तड़ाना^२—क्रि० स० [हि०] जल्दी मचना ।

तड़ावा—संज्ञा स्त्री० [हि० तड़ाना (=दिलाना)] १. ऊपरी तड़क भड़क । वह चमक दमक जो केवल दिखाने के लिये हो । २. धोखा छल ।—(क्व०) ।

क्रि० प्र०—देना ।

तड़ि^१—संज्ञा [सं० तडि] आघात [को०] ।

तड़ि^२—वि० आघात करनेवाला [को०] ।

तड़ि^३—संज्ञा स्त्री० [सं० तडित्] बिजली । उ०—मेघनि बिबैं अलप जल परे । तड़ि आई अलुप नेह परिहरे ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६० ।

तद्धित—संज्ञा स्त्री० [सं० तद्धित्] बिजली । बिद्युत् । उ०—उपमा
एक अक्षर मई तब जब जननी पट पीत उड़ाए । नील
बसव पर उड़गन बिरहत तबि सुधानु मनो तद्धित छिपाए ।
—तुलसी (शब्द०) ।

तद्धिता—संज्ञा स्त्री० [सं० तद्धित्] दे० 'तद्धित्' । उ०—तद्धित तद्धिता
बहु धोरन तें छिति छाई समीरन सी सहुरे । मदमाते महा गिरि
भृंगनि पै गन मजु मयूरन के कहुरे ।—इतिहास, पृ० ३१८ ।

तद्धितकुमार—संज्ञा पुं० [सं० तद्धितकुमार] जैनों के एक देवता जो
सुवर्णपति देवगण में से हैं ।

तद्धित्यति—संज्ञा पुं० [सं० तद्धित्यति] बादल । मेघ ।

तद्धितप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं० तद्धितप्रभा] कातिकेय की एक मात्रिका
का नाम ।

तद्धित्वान्—संज्ञा पुं० [सं० तद्धित्वान्] १. नागरभोषा । २. बादल ।

तद्धित्वर्गभं—संज्ञा पुं० [सं० तद्धित्वर्गभं] बादल ।

तद्धित्त्वाम्—संज्ञा पुं० [सं० तद्धित्त्वाम्] बिजुलता । बिद्युल्लता ।
बिजली चमकते समय दीजनेवाली रेखा [को०] ।

तद्धित्त्वम्—वि० [सं० तद्धित्त्वम्] बिजली की तरह चमकने-
वाला [को०] ।

तद्धिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] समुद्र के किनारे की हवा ।—(लघ०) ।

तद्धियाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तद्धपना' ।

तद्धियाना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तद्धपाना' ।

तद्धियाना^३—क्रि० प्र० [हि०] जरदी करना । जरदी मचाना ।

तद्धिल्लता—संज्ञा स्त्री० [सं० तद्धिल्लता] बिद्युल्लता [को०] ।

तद्धिल्लेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० तद्धिल्लेखा] बिजली की रेखा [को०] ।

तडी^१—संज्ञा स्त्री० [तड् से घुम्] १. चपत । नील ।

क्रि० प्र०—जड़ना ।—जमाना ।—देना ।—लगाना ।

२. घोड़ा । खूब ।—(दलाल) ३. बहाना । हीला ।

क्रि० प्र०—देना ।—बताना ।

तडी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] जरदी । शीघ्रता ।

तडीत^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तद्धित' ।

तणु^४—अव्य० [हि० तनु] की तरफ । ओर का ।

तणई^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तनया] कन्या । पुत्री ।

तणमोट^६—संज्ञा पुं० [हि०] मुसलमान ।

तणी^७—अव्य० [हि०] दे० 'तड्' ।

तणी^८—अव्य० [हि० तनिक] थोड़ा । अल्प ।

तणु^९—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनु' ।

तणु^{१०}—अव्य० [हि० तनु] के लिये । की तरफ ।

तत्^{११}—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्म या परमात्मा का एक नाम । जैसे,—
ओं तत् सत् । २. वायु । हवा ।

तत्^{१२}—सर्व० उस ।

विशेष—इसका प्रयोग केवल संस्कृत के समस्त शब्दों के साथ
उनके आरंभ में होता है । जैसे,—तत्काल, तत्क्षण, तत्पुरुष,
तत्परमात्मा, तदनंतर, तदाकार, तद्द्वारा, तत्पूर्व, तत्प्रथम ।

तत्^{१३}—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । २. विस्तार । ३. पिता । ४. पुत्र ।

संतान । ५. वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों ।
जैसे, सारंगी, सितार, बोन, एकतारा, बेहूसा आदि ।

विशेष—तत् बाजे दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो खाली
जंगली या मिश्राव आदि से बजाए जाते हैं; जैसे, सितार
बोन, एकतारा आदि । ऐसे बाजों को अंगुलित्रयंत्र कहते हैं
और जो कमानी की सहायता से बजाए जाते हैं, जैसे, सारंगी,
बेला आदि, वे अनुयंत्र कहलाते हैं ।

तत्^{१४}—वि० १. विस्तृत । फैला हुआ । २. विस्तारित । ३. ढका हुआ ।
छिपा हुआ । ४. झुका हुआ । ५. अतर्हरित । लगातार [को०] ।

तत्^{१५}—वि० [सं० तत्] तथा हुआ । गरम । उ०—नखत
प्रकासहि चढ़ि विपाई । तत् तत् लूका परहि बुझाई ।—
जायसी (शब्द०) ।

तत्^{१६}—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्व] दे० 'तत्त्व' ।

तत्^{१७}—सर्व० [सं० तत्] उस । जैसे,—तत्क्षण = तत्क्षण ।

तत्करा—क्रि० वि० [सं० तत्काल] दुरंत । उ०—तत्करा अपवित्र कर
मानिए ऐसे कागदपर करत बिचार ।—रैदास०, पृ० ३७ ।

तत्कारो—अव्य० [हि०] दे० 'तत्काल' ।

तत्काल^{१८}—अव्य० [हि०] दे० 'तत्काल' ।

तत्क्षण—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण; प्रा० तत्क्षण] दे० 'तत्क्षण' ।
उ०—तत्क्षण मालवगो कहइ सभलित कत सुरंग ।—ढोला०,
दू० ६५४ ।

तत्क्षण^{१९}—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तत्क्षण' । उ०—तत्क्षण भाइ
बिबन पहुँचा । मन तें अधिक गगन ते ऊँचा ।—
जायसी (शब्द०) ।

तत्क्षण^{२०}—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण] दे० 'तत्क्षण' । उ०—(क) राज
काज प्राण्य विद्यालय बीच तत्क्षण ।—प्रेमघन०, पृ० ४१५ ।
(ख) अरज गरज सुनि देत उचित आदेश तत्क्षण ।—प्रेमघन०,
भा० २ पृ० १५ ।

तत्क्षण^{२१}—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तत्क्षण' ।

तत्क्षण^{२२}—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण, हि० तत्क्षण] दे० 'तत्क्षण' ।
उ०—सिध पीरि वृषभानु की, तत्क्षण पहुँचे जाइ ।—नद०
शं०, पृ० १६८ ।

तत्ताथेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तृत्य का शब्द । नाथ के बोल ।

तत्त्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. विलंबित काल । मंद काल ।—(संगीत) ।
२. नैरंतर्य । निरंतरता [को०] ।

तत्पत्रो—संज्ञा स्त्री० [सं०] केले का पत्र ।

तत्पर—वि० [सं० तत्पर] दे० 'तत्पर' ।

तत्पास^{२३}—संज्ञा पुं० [सं० तत्पास] दे० 'तत्पास' ।

तत्पीर^{२४}—संज्ञा स्त्री० [प्र० तदपीर] दे० 'तदपीर' । उ०—
कोउ गई जल पैठि तरुनी और ठाढ़ी पीर । तिनहि छाई बोलाइ
राधा करत सुख तत्पीर ।—सूर (शब्द०) ।

तत्वेता—वि० [सं० तत्वेता] ज्ञानी । उ०—जैसा हूँदत मैं फिरो,
तैसा मिथा न कोय । तत्वेता निरगुण रहित, निरगुण के रत
होय ।—कबीर सा० सं०, पृ० १८ ।

ततरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का फलदार पेड़ ।

तत्त्व—वि० [सं० तत्त्व] तत्त्वज्ञानी । तत्त्व की बात जाननेवाला ।
उ०—तत्त्व मित्र कृष्ण तेहि छागे । ऊखो रोह थप तप को
सागे ।—घट०, पृ० २६२ ।

तत्तसार—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्तसार] तापने का स्थान । धींच
देने या तपाने की जगह । उ०—सतगुरु तो ऐसा मिला ताते
लोह लुहार । कसनी दे कंचन किया ताय लिया ततसार ।—
कबीर (शब्द०) ।

तत्तहड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तत्त + हि० हड़ा] [स्त्री० भत्पा +
तत्तहड़ा] वह बरतन विशेषतः मिट्टी का बरतन जिसमें
बेहतावाले नहाने का पानी गरम करते हैं ।

तताई—संज्ञा स्त्री० [हि० तत्ता] तप्त होने की क्रिया या भाव
परम्य । उ०—बरनि बताई छिति भ्योम की तताई, जेठ
भायी आतताई पुटपाक सी करत है ।—कविच०, पृ० ५६ ।

ततामह—संज्ञा पुं० [सं०] पितामह । दादा ।

ततारना—क्रि० सं० [हि० तत्ता (= परम)] १. बरम जब से
बोना । २. ठरेरा देकर बोना । बार देकर बोना । उ०—मनहु
बिरह के सद्य धाय द्विये जखि तकि तकि धरि बीर ततारति ।
—तुलसी (शब्द०) ।

तति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्रुति । पंक्ति । ताँता । २. समूह । सेना ।
भीड़ । ३. विस्तार । ४. पक्ष का समारोह । उत्सव (को०) ।

तति—वि० [सं०] संज्ञा छोड़ा । विस्तृत । उ०—यज्ञोपवीत पुनीत
विश्रावत गूढ़ जनु बनि पीन धंस तति ।—तुलसी (शब्द०) ।

ततुबाऊ—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुबाय] दे० 'तन्तुबाय' ।

ततुरि—वि० [सं०] १. हिंसा करनेवाला । २. तारनेवाला । ३.
जीतनेवाला (को०) । ४. रक्षण या पालन करनेवाला (को०) ।

ततुरि—संज्ञा पुं० १. धर्म । २. इन्द्र (को०) ।

ततैया—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्त या तत (= तत) + हि० ऐया
(प्रत्य०)] २. बरें । मित्र । हड़ा । २. जवा मित्र जो बहुत
कड़ई होती है ।

ततैया—वि० [हि० तीता अथवा तत्ता] १. तेज । फुरतीला । २.
बाबाक । बुद्धिमान ।

ततोधिक—वि० [सं० ततोधिक] उससे अधिक (को०) ।

ततौ—अव्य० [हि०] तो । उ०—जो हम सो हित हानि कियो ।
ततौ भूलिबो वा हरि कौन सौ साह पो ।—नट०, पृ० ३४ ।

तत्काल—क्रि० वि० [सं०] तुरंत । फौरन । उसी समय । उसी वक्त ।

तत्कालीन—वि० [सं०] उसी समय का ।

तत्क्षण—क्रि० वि० [सं०] उसी समय । तत्काल । फौरन । उसी दम ।

तत्त—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्व, हि०] दे० 'तत्त्व' ।

तत्त—वि० [सं० तप्त, हि०] दे० 'तप्त' । उ०—चुरंगी सु तत्त,
वरं सिध तत्त । मिल्यो बन्ध भान, पुर्ण मत्त जान ।—पृ०
रा०, १ । ६४५ ।

तत्तदू—वि० [सं०] भिन्न भिन्न (को०) ।

तत्तदू—सर्व० बहु बहु । उन उन (को०) ।

तत्तमत्त—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तन्त्रमन्त्र' । उ०—हृष्य जोर
मत्तह्वन सो बुल्लिव । तत्तमत्त अंतर कव बुल्लिव ।—पृ०
रा०, पृ० १७२ ।

तत्ता—वि० [सं० तप्त] जलता या तपता हुआ । गरम । उष्ण ।

मुहा०—तत्ता तवा = जो बात बात पर लड़े । लड़ाका । भगड़ाल ।

तत्ताथेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] नाथ का बोल ।

तत्ती—वि० स्त्री० [हि० तत्ता] तीक्ष्ण । तप्त । उ०—जगपत्ती उण
जोस मै, रत्ती भाष समाण । वनसपत्ती खल चालवा, कर
तत्ती केवाण ।—रा० क०, पृ० १२६ ।

तत्तोथंजो—संज्ञा पुं० [हि० तत्ता (= गरम) + यामना] १. दम
दिलासा । बहुलावा २. दो लड़ते हुए भावमियों को समझा
बुझाकर शांत करना । भीष बचाव ।

तत्त्व—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्व] १. वास्तविक स्थिति । यथार्थता ।
वास्तविकता । असलियत । २. जगत् का मूल कारण ।

विशेष—सांख्य में २५ तत्त्व माने गए हैं—पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व
(बुद्धि), अहंकार, अक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्, वाक्,
पाणि, पायु, पाद, उपस्थ, मूत्र, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध,
पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश । मूल प्रकृति से शेष तत्त्वों
की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है—प्रकृति से महत्तत्त्व (बुद्धि),
महत्तत्त्व से अहंकार, अहंकार से ग्यारह इंद्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ,
पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन) और पाँच तन्मात्र, पाँच तन्मात्रों
से पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, आदि) । प्रलय काल में ये सब
तत्त्व फिर प्रकृति में क्रमशः विलीन हो जाते हैं । योग में
ईश्वर को और मिलाकर कुल २६ तत्त्व माने गए हैं । सांख्य
के पुरुष से योग के ईश्वर में विशेषता यह है कि योग का
ईश्वर क्लेश, कर्मविपाक आदि से पृथक् माना गया है ।
वेदांतियों के मत से ब्रह्म ही एकमात्र परमार्थ तत्त्व है । शून्य-
वादी बौद्धों के मत से शून्य या अभाव ही परम तत्त्व है, क्योंकि
जो वस्तु है, वह पहले नहीं थी और आगे भी न रहेगी ।
कुछ जैन तो जीव और अजीव ये ही दो तत्त्व मानते हैं और
कुछ पाँच तत्त्व मानते हैं—जीव, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल
और अस्तिकाय । चार्वाक के मत में पृथ्वी, जल, अग्नि और
वायु ये ही तत्त्व माने गए हैं और इन्हीं से जगत् की उत्पत्ति
कही गई है । न्याय में १६, वैशेषिक में ६, शैवदर्शन में ३६;
इसी प्रकार अनेक दर्शनों की भिन्न भिन्न मान्यताएँ तत्त्व के
संबंध में हैं ।

यूरोप में १६वीं शती में रसायन के क्षेत्र का विस्तार हुआ ।
पेरासेल्सस ने तीन या चार तत्त्व माने, जिनके मूलाधार लवण
गंधक और पारद माने गए । १७वीं शती में फ्रांस एवं
इंग्लैंड में भी इसी प्रकार के विचारों की प्रशय मिलता रहा ।
तत्त्व के संबंध में सबसे अधिक स्पष्ट विचार राबर्ट बायल
(१६२७-१६९१ ई०) ने १६६१ ई० में रखा । उसने परिभाषा
की कि तत्त्व उन्हें कहेंगे जो किसी यांत्रिक या रासायनिक
क्रिया से अपने से भिन्न दो पदार्थों में विभाजित न किए जा
सकें । १७७४ ई० में प्रीस्टली ने फाक्सजन गैस तैयार की ।
कैवेंडिश ने १७८१ ई० में फाक्सजन और हाइड्रोजन के योग
से पानी तैयार करके दिखा दिया और तब पानी तत्त्व ब
रहकर यौगिकों की श्रेणी में आ गया । लाव्वायिये ने १७८६
ई० में यौगिक और तत्त्व के प्रमुख अंतरों को बताया । उसके

समय तक तत्वों की संख्या २३ तक पहुँच चुकी थी। १९वीं शती में सर हफ्री डेवी ने नमक के मूल तत्व सोडियम को भी पृथक् किया और कैल्शियम तथा पोटैशियम को भी योगिकों में से छलन करके दिखा दिया। २०वीं शती में मोजली नामक वैज्ञानिक ने परमाणु संख्या की कल्पना रखी जिससे स्पष्ट हो गया कि सबसे हल्के तत्व हाइड्रोजन से लेकर प्रकृति में प्राप्त सबसे भारी तत्व यूरेनियम तक तत्वों की संख्या लगभग १०० हो सकती है। प्रयोगों ने यह भी संभव करके दिखा दिया है कि हम अपनी प्रयोगशालाओं में तत्वों का विभाजन और नए तत्वों का निर्माण भी कर सकते हैं।

३. पंचभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश)। ४. परमात्मा। ब्रह्म। ५. सार वस्तु। साराण। जैसे,—उनके लेख में कुछ तत्व नहीं है।

यौ०—तत्त्वमसि=यह उपनिषद् का एक वाक्य है जिसका तात्पर्य है हर व्यक्ति ब्रह्म है।

तत्त्वज्ञ—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वज्ञ] १. वह जो दैव्य या ब्रह्म को जानता हो। तत्त्वज्ञानी। ब्रह्मज्ञानी। २. दार्शनिक। दर्शनशास्त्र का ज्ञाता।

तत्त्वज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वज्ञान] ब्रह्म, आत्मा और मृष्टि आदि के संबंध का यथार्थ ज्ञान। ऐसा ज्ञान जिससे मनुष्य की मोक्ष हो जाय। ब्रह्मज्ञान।

विशेष—सांख्य और पातंजल के मत से प्रकृति और पुरुष का भेद जानना और वेदांत के मत से अविद्या का नाश और वस्तु का वास्तविक स्वरूप पटुचानना ही तत्त्वज्ञान है।

यौ०—तत्त्वज्ञानार्थ दर्शन = तत्त्वज्ञान का विमर्श या धारोचना।

तत्त्वज्ञानी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वज्ञानी] १. जिसे ब्रह्म, सृष्टि और आत्मा आदि के सबंध का ज्ञान हो। तत्त्वज्ञ। दार्शनिक।

• तत्त्वतः—अव्य० [सं० तत्त्वतः] वस्तुतः। यथार्थतः। वास्तव में [को०]।

तत्त्वता—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्त्वता] १. तत्त्व होने का भाव या गुण। २. यथार्थता। वास्तविकता।

तत्त्वदर्श—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वदर्श] १. तत्त्वज्ञानी। २. सार्वणि मन्वतर के एक ऋषि का नाम।

तत्त्वदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वदर्शी] १. जो तत्त्व को जानता हो। तत्त्वज्ञानी। देवत मनु के एक पुत्र का नाम।

तत्त्वदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्त्वदृष्टि] वह दृष्टि जो तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक हो। ज्ञानचक्षु। दिव्य दृष्टि।

तत्त्वनिष्ठ—वि० [सं० तत्त्वनिष्ठ] तत्त्व में निष्ठा रखनेवाला [को०]।

तत्त्वन्यास—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वन्यास] तंत्र के अनुसार विष्णुपूजा में एक मंत्रन्यास जो सिद्धि प्राप्त करने के लिये किया जाता है।

तत्त्वभाव—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वभाव] प्रकृति। स्वभाव।

तत्त्वभाषी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वभाषी] वह जो स्पष्ट रूप से यथार्थ बात कहता हो।

तत्त्वभूत—वि० [सं० तत्त्वभूत] तत्त्व या सार रूप [को०]।

तत्त्वपरिम—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार ओ देवता का बीज। बहुबीज।

तत्त्ववाद—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्ववाद] दर्शनशास्त्र संबंधी विचार।

तत्त्ववादी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्ववादिन्] १. जो तत्त्ववाद का ज्ञाता और समर्थक हो। २. जो यथार्थ और स्पष्ट बात कहता हो।

तत्त्वविद्—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वविद्] १. तत्त्ववेत्ता। २. परमेश्वर।

तत्त्वविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दर्शनशास्त्र।

तत्त्ववेत्ता—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्ववेत्ता] १. जिसे तत्त्व का ज्ञान हो। तत्त्वज्ञ। २. दर्शनशास्त्र का ज्ञाता। फिलासफर। दार्शनिक।

तत्त्वशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वशास्त्र] १. दर्शनशास्त्र। २. वैशेषिक दर्शनशास्त्र।

तत्त्वविविधान—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वविविधान] निरीक्षण। जांच पड़ताल। देख रेख।

तत्त्वविविधानक—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वविविधानक] देखरेख करनेवाला। निरीक्षक।

तत्त्वार्थ—वि० [सं० तत्त्व] मुख्य। प्रधान।

तत्त्वार्थ—संज्ञा पुं० शक्ति। बल। ताकत।

तत्त्वत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केले का पेड़। २. वंशपत्री नाम की घास।

तत्त्वद्—संज्ञा पुं० [सं०] परम पद। निर्वाण।

तत्त्वदार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टिकर्ता। परमात्मा।

तत्त्वर्—वि० [सं०] [संज्ञा तत्त्वर्ता] १. जो कोई काम करने के लिये तैयार हो। उद्यत। मुस्तैद। सन्नद्ध। २. निपुण। ३. चतुर। होशियार। ४. उसके बाद का [को०]।

तत्त्वर्—संज्ञा पुं० समय का एक बहुत छोटा भाग। एक निमेष का तीसवाँ भाग।

तत्त्वर्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तत्त्व होने की क्रिया या भाव। सन्नद्धता। मुस्तैदी। २. दक्षता। निपुणता। ३. होशियारी।

तत्त्वरायण—वि० [सं०] किसी वस्तु या ध्येय में पूरी तरह से लगन या दत्तचित्त [को०]।

तत्त्वश्चात्—अव्य० [सं०] उसके बाद। अनंतर [को०]।

तत्त्वपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। परमेश्वर। २. एक वद का नाम। ३. मत्स्य पुराण के अनुसार एक कल्प (काल विभाग) का नाम। ४. व्याकरण में एक प्रकार का समास जिसमें पहले पद में कर्ता कारक की विभक्ति को छोड़कर कर्म आदि दूसरे कारकों की विभक्ति लुप्त हो और जिसमें पिछले पद का अर्थ प्रधान हो। इसका लिए और बचन आदि पिछले या उत्तर पद के अनुसार होता है। जैसे,—जलधर, नरेश, हिमालय, यज्ञशाला।

तत्त्वतिरूपक व्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के मत से एक प्रतिचार जो बेचने के खरे पदार्थों के छोटे पदार्थ की मिलावट करने से होता है।

तत्त्वल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुट नामक ओषधि। २. बेर का फल। ३. कुबलय। नील कमल। ४. चौर नामक गंधद्रव्य। ५. श्वेत कमल [को०]।

तत्त्व—क्रि० वि० [सं०] उस स्थान पर। उस जगह। वहाँ।

तत्त्वक—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ जो योरप, अरब, फारस से लेकर पूर्व में अफगानिस्तान तक होता है।

विशेष—यह अन्नार के पेड़ के बराबर या उससे कुछ बड़ा होता है। इसकी पत्तियाँ नीम की पत्ती की तरह कटावदार और कुछ ललाई लिए होती हैं। इसमें फलियाँ लगती हैं जिनमें मसूर के से बीज पड़ते हैं। ये बीज बाजार में अत्तारों के यहाँ समाक के नाम से बिकते हैं और हकीमी दवा में काम आते हैं। बीज के छिलके का स्वाद कुछ सड़ा और रुचिकर होता है। इसकी पत्तियों से एक प्रकार का रंग निकलता है। ठंडल और पत्तियों से चमड़ा बहुत अच्छा सिझाया जाता है। हिंदुस्तान में चमड़े के बड़े बड़े कारखानों में ये पत्तियाँ सिसली से मंगाई जाती हैं।

तत्रत्य—वि० [सं०] वहाँ रहनेवाला [को०]।

तत्रभवान्—संज्ञा पुं० [सं०] माननीय। पूज्य। श्रेष्ठ।

विशेष—तत्रभवान् की तरह इस शब्द का प्रयोग भी प्रायः संस्कृत नाटकों में अधिकता से होता है।

तत्रस्थ—वि० [सं०] वहाँ स्थित। वहाँ का निवासी।

तत्रापि—अव्य० [सं०] तथापि। तो भी।

तत्संबंधी—वि० [सं० तत्संबन्धिन्] उससे संबंध रखनेवाला [को०]।

तत्सम—संज्ञा पुं० [सं०] भाषा में व्यवहृत होनेवाला संस्कृत का वह शब्द जो अपने शुद्ध रूप में हो। संस्कृत का वह शब्द जिसका व्यवहार भाषा में उसके शुद्ध रूप में हो। जैसे,—दया, प्रत्यक्ष, स्वरूप, मृष्टि आदि।

तत्सामयिक—वि० [सं०] उस समय से संबंधित। उस समय का [को०]।

तथ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तत्त्व'। उ०—उह मनु कैसा जो कथे प्रकथु। उह मनु कैसा जो उलटै चुनि तगु।—प्राण०, पृ० ३४

तथता—संज्ञा पुं० [सं० तथ्यता] १. सत्यता। वस्तु का वास्तविक स्वरूप में निरूपण। २. तथा का भाव। उ०—यदि भाव चाहें तो असंस्कृतों को धर्मता, तथता का प्रज्ञप्ति मान सकते हैं।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३३५।

तथा^१—अव्य० [सं०] १. और। व। २. इसी तरह। ऐसे ही। जैसे—यथा नाम तथा गुण।

यौ०—तथारूप। तथाकपी। तथावादी। तथाविध। तथाविधान। तथावृत्त। तथाविषय। तथास्तु=ऐसा ही हो। इसी प्रकार हो। एवमस्तु।

विशेष—इस पद का प्रयोग किसी प्रार्थना को स्वीकार करने अथवा माँगा हुआ वर देने के समय होता है।

तथा^२—संज्ञा पुं० १. सत्य। २. सीमा। हृष्ट। ३. निश्चय। ४. समानता।

तथा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० तथ्य] दे० 'तथ्य'।

तथाकथित—वि० [सं०] जो मूलतः न हो परंतु उस नाम से प्रचलित हो। नामधारी।

तथाकथ्य—वि० [सं०] दे० 'तथाकथित' [को०]।

तथाकृत—वि० [सं०] इसी या उसी प्रकार किया हुआ या निमित्त [को०]।

तथागत—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध का एक नाम। २. जिन [को०]।

तथागुण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैसा ही गुण। २. सत्य। वस्तु-स्थिति [को०]।

तथाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तथता' [को०]।

तथानुरूप—वि० [सं०] दे० 'तदनुरूप'। उ०—सत्य में जो संगति होती है वह तत्त्वों का समवर्गीय होना और उनका और उनसे निकाले हुए नियमों का तथानुरूप होता है।—पा० सा० सि०, पृ० ५।

तथापि—अव्य० [सं०] तो भी। तिस पर भी। तब भी। उ०—प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। माँगि भगम बर होउं असोकी।—मानस, १। १६४।

विशेष—इसका प्रयोग यद्यपि के साथ होता है। जैसे,—यद्यपि हम वहाँ नहीं गए, तथापि उनका काम हो गया।

तथाभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैसा भाव या स्थिति। २. सत्यता [को०]।

तथाभूत—वि० [सं०] १. उस प्रकार के गुण या प्रकृति का। २. उस स्थिति का [को०]।

तथाराज—संज्ञा पुं० [सं०] गीतम बुद्ध।

तथेई तथेइ ताथे—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'तथाथेई'। उ०—सग्यौ काण्ड के धानि, तथेई तथेइ ताथे। ब्रजनिधि की चित जूर जूर करि डारथी राथे।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १६।

तथैव—अव्य० [सं०] वैसा ही। उसी प्रकार।

तथोक्त—वि० [सं०] वैसा वर्णित। जैसा कहा गया है। २. तथाकथित। उ०—भारत की तथोक्त ऊँची जातियाँ चाहे कितनी ही अभिमान करे पर उनकी आकृतियाँ और इतिहास पुकार पुकार कर कहते हैं कि वह सांकर्य दोष से बची नहीं है।—आर्यो०, पृ० १३।

तथ्य^१—वि० [सं०] १. सत्य। सचाई। यथार्थता। २. रहस्य [को०]।

तथ्य^२—अव्य० [सं० तत्त] उग जगह। वहाँ [को०]।

तथ्यतः—क्रि० वि० [सं०] सत्य या सचाई के अनुसार [को०]।

तथ्यभाषी—वि० [सं० तथ्यभाषिन्] साफ और सच्ची बात कहनेवाला।

तथ्यवादी—वि० [सं० तथ्यवादिन्] दे० 'तथ्यभाषी'।

तद्—वि० [सं०] वह।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक शब्दों के आरंभ में होता है। जैसे,—तदनंतर, तदनुसार।

तदा^१—क्रि० वि० [सं० तदा] उस समय। तब।

तदंतर—क्रि० वि० [सं० तदन्तर] इसके बाद। इसके उपरांत।

तदनंतर—क्रि० वि० [सं० तदनन्तर] उसके पीछे। उसके बाद। उसके उपरांत।

तदनन्यत्त्व—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य और कारण में अभेद। कार्य और कारण की एकता। (वेदांत)।

तदनु—क्रि० वि० [सं०] १. उसके पीछे। तदनंतर। उसके अनुसार २. उसी तरह। उसी प्रकार।

तदनुकूल—वि० [सं०] उसके अनुसार। तदनुसार।

तदनुरूप—वि० [सं०] उसी के जैसा। उसी के रूप का। उसी के समान।

तदनुसार—वि० [सं०] उसके मुताबिक । उसके अनुकूल ।

तद्व्यवाहितार्थ—संज्ञा पु० [सं०] नभ्य ग्याय में, तर्क के पाँच प्रकारों में से एक ।

तद्यपि—अव्य० [सं०] तो भी । तिसपर भी । तथापि ।

तद्वर्गी—संज्ञा बी० [प०] अभीष्ट सिद्धि करने का साधन । उक्ति । तरकीब । पथ ।

तदर्थ—अव्य० [सं०] उसके लिये । उसके वास्ते (को०) ।

तदर्थी—वि० [सं० तदर्थिन] दे० 'तदर्थीय' ।

तदर्थीय—वि० [सं०] उसके अर्थ की तरह अर्थ रखनेवाला । समानार्थक (को०) ।

तदा—कि० वि० [सं०] उस समय । तब । तिस समय ।

तदाकार—वि० [सं०] १. वैसा ही । उसी आकार का । उसी आकृतिवाला । तद्रूप । २. तन्मय ।

तदावक—संज्ञा पु० [प०] १. कोई हुई चीज या जाने हुए अपराधी आदि की खोज या किसी दुर्घटना आदि के संबंध में जाँच । २. किसी दुर्घटना को रोकने के लिये पहले से किया हुआ प्रबंध । पेसबंदी । बंदोबस्त । ३. सजा । दंड ।

तदि०—कि० [हि०] तदा । तब । उस समय । उ०—तदि करणों बोध बहु बिधि सुताहि ।—ह० रासो, पृ० ४६ ।

तदीय—संब० [सं०] उससे संबंध रखनेवाला । उसका ।

यौ०—तदीय समाज । तदीय सर्वस्व ।

तदुत्तर—वि० [सं०] उसके बाद । उसके पतिरिक्त । उ०—कठिन है धपना तर्क तुम्हें मममाना । इह मेरा है पूर्ण, तदुत्तर परलोकों का कोन ठिकाना ।—इत्यलम्, पृ० २१८ ।

तदुपरांत—कि० वि० [सं० तद + उपरान्त] उसके पीछे । उसके बाद ।

तदुपरि—वि० [सं०] उसके ऊपर । उसके बाद । उ०—कष्टों में अल्प उपशम भी क्लेश को है घटाना । जो होती है तदुपरि क्या सो महादुःख है ।—प्रिय०, पृ० १२२ ।

तद्गत—वि० [सं०] १. उससे संबंध रखनेवाला । उसके संबंध का । २. उसके अंतर्गत । उसमें व्याप्त ।

तद्गुण्य—संज्ञा पु० [सं०] एक अर्थानुसार जिसमें किसी एक वस्तु का अपना गुण त्याग करके समीपवर्ती किसी दूसरे उत्तम पदार्थ का गुण ग्रहण कर लेना वर्णित होता है । जैसे,—(क) अक्षर भरत हरि के परत झोठ पीठ पट जोति । हरित बाँध की बाँसुरी इंद्रधनुष सी होती ।—बिहारी (शब्द०) । इसमें बाँस की बाँसुरी का अपना गुण छोड़कर इंद्रधनुष का गुण ग्रहण करना वर्णित है । (ख) जाहिरे बागत सी जमुना जब बूझै बहै समझै वह बेनी । त्यों पदमाकर हीर के हारन गंग तरंगन को सुख देनी । पायन के रंग सौ रंग जात सुभातिहि धाति सरस्वति छेनी । पेरे जहाँ हो जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिवेनी ।—पद्माकर (शब्द०) । यहाँ ताल के जल का बालों, हीरे, मोती के हारों और तमबों के संसर्ग के कारण त्रिवेणी का रूप धारण करना कहा गया है ।

तद्यपि०—अव्य० [हि०] दे० 'तद्यपि' । उ०—अथ उद्य अम्यो

बहु कमलि नाल । नहि पार मही तद्यपि मुहाल ।—ह० रासो, पृ० ४ ।

तद्वत्—संज्ञा पु० [सं०] रूपण । कंजस ।

तद्वर्ग—वि० [सं० तद्वर्गम्] जिनका वह वर्ग हो । उस वर्गवाला । उ०—किंतु आप कहेंगे कि यद्यपि जाति का तद्वर्गत्व नहीं है तथापि तीक्ष्णत्व और कपिलत्व का अग्निजाति से अविनाभाव है ।—संपूर्णा० अग्नि० वर्ग०, पृ० ३३७ ।

तद्धित^१—संज्ञा पु० [सं०] १. व्याकरण में एक प्रकार का प्रत्यय जिसे संज्ञा के अंत में लगाकर शब्द बनाते हैं ।

विशेष—यह प्रत्यय पाँच प्रकार के शब्द बनाने के काम में आता है—(१) अपत्यवाचक, जिससे अपत्यता या अनुयायित्व आदि का बोध होता है । इसमें या तो संज्ञा के पहले स्वर की वृद्धि कर दी जाती है अथवा उसके अंत में 'ई' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है । जैसे, शिव से शीव, विष्णु से वैष्णव, रामानंद से रामानंदी आदि । (२) कर्तृवाचक—जिससे किसी क्रिया के कर्ता होने का बोध होता है । इसमें 'वाला' या 'द्वारा' अथवा इन्हीं का समानार्थक और कोई प्रत्यय लगाया जाता है । जैसे, कपड़ा से कपड़ेवाला, गाड़ी से गाड़ीवाला, लकड़ी से लकड़ीवाला या लकड़हारा । (३) भाववाचक—जिससे भाव का बोध होता है । इसमें 'पाई', 'ई', 'त्व', 'ता', 'पन', 'पा', 'वट', 'हट', आदि प्रत्यय लगाते हैं । जैसे, डोठ से डिठाई, ऊँचा से ऊँचाई, मनुष्य से मनुष्यत्व, मित्र से मित्रता, लड़का से लड़कपन, बूढ़ा से बुढ़ापा, मिलान से मिलावट, चिकना से चिकनाहट आदि । (४) जनवाचक—जिससे किसी प्रकार की व्युत्पत्ति या सधुता आदि का बोध होता है । इसमें संज्ञा के अंत में 'क', 'इया' आदि लगा देते हैं और 'आ' को 'ई' से बदल देते हैं । जैसे,—बुल से बुलक, फोडा से फोड़िया, डोला से डोली । (५) गुणवाचक—जिससे गुण का बोध होता है । इसके संज्ञा के अंत में 'आ', 'इक', 'इत', 'ई', 'ईला', 'एला', 'लु', 'वंत', 'वान', 'दायक', 'कारक', आदि प्रत्यय लगाए जाते हैं । जैसे, ठंड से ठंडा, मेल से मेला, शरीर से शारीरिक, आनंद से आनंदित, गुण से गुणी, रंग से रंगीला, घर से घरेलू, दया से दयावान्, सुख से सुखदायक, गुण से गुणकारक आदि ।

२. वह शब्द जो इस प्रकार प्रत्यय लगाकर बनाया जाय ।

तद्धित^२—वि० उसके लिये उपयुक्त (को०)

तद्वत्—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का बाण ।

तद्भव—संज्ञा पु० [सं०] भाषा में प्रयुक्त होनेवाला संस्कृत का वह शब्द जिसका रूप कुछ विकृत या परिवर्तित हो गया हो । संस्कृत के शब्द का अपभ्रंश रूप । जैसे, हस्त का हाथ, अश्रु का आँसू, अर्थ का भाषा, काष्ठ का काठ, कपूर का कपूर, हृत का धी ।

तद्यपि—अव्य० [सं०] तथापि । तो भी ।

तद्रूप—वि० [सं०] समान । सट्टा । वैसा ही । उसी प्रकार का ।

तद्रूपता—संज्ञा बी० [सं०] सादृश्य । समानता । उ०—जानि जुग जूष में जूष तद्रूपता बहुरि करिहै कलुष भूमि भारी ।—सूर (शब्द०) ।

तद्वत्—वि० [सं०] उसी के वैसे। उसके समान। ज्यों का त्यों।

बौ०—तद्वत्ता=तद्वत् होने का भाव या स्थिति।

तथी—क्रि० वि० [सं० तदा] तभी (क्व०)।

तन^१—संज्ञा पुं० [सं० तनु० । तुल० क्रा० तन] १. शरीर। देह।
गात। जिस्म।

यो०—तनताप = (१) शारीरिक कष्ट। (२) शूल। क्षुधा।

मुहा०—तन को लगाना = (१) हृदय पर प्रभाव पड़ना। जो
में बैठना। जैसे,—चाहे कोई काम हो, जब तन को न लगे तब
तक वह पूरा नहीं होता। (१) (स्वाद्य पदार्थ का) शरीर
को पुष्ट करना। जैसे,—जब चिता जूटे, तब खाना पीना भी
तन को लगे। तन तोड़ना = झगड़ाई लेना। तन देना = ध्यान
देना। मन लगाना। जैसे,—तन देकर काम किया करो।
तन मन मारना = इन्द्रियों को वश में रखना। इच्छाओं पर
अधिकार रखना।

२. स्त्री की मूर्तेन्द्रिय। भग।

मुहा०—तन दिखाना = (स्त्री का) संभोग करना। प्रसंग
कराना।

तन^२—क्रि० वि० तरफ घोर। उ०—बिहसे करना भयन चितह
जानकी लखन तन।—माघस, २। १००।

तन^३—संज्ञा पुं० [सं० स्तन; प्रा० यणु; हि० यन; राज० तन;]
दे० 'स्तन'। उ०—तिया मारू रा तन खिस्या पंडर हुवा ज
केस।—ढोला०, दू० ४४२

तनक^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक रागिनी का नाम जिसे कोई कोई मेघ
राग की रागिनी मानते हैं।

तनक^२—वि० [हि०] दे० 'तनिक'। उ०—प्रबड़ी देखे नवल किशोर।
घर आवत ही तनक भसे हैं ऐसे तन के थोर—सूर (शब्द०)।

तनकना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तनकना'।

तनकीद^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनकीद] १. झालोचना। २. परख। [क्रि०]।

तनकीह^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनकीह] १. जीव। खोज। तहकीकात।
२. न्यायालय में किसी उपस्थित अभियोग के संबंध में विचार-
णीय और विवादास्पद विषयों को हूँद निकालना। अदालत
का किसी मुकदमे की उन बातों का पता लगाना जिनके लिये
वह मुकदमा खलाया गया हो और जिनका फैसला होना
जरूरी हो।

विशेष—भारत में दीवानी अदालतों में जब कोई मुकदमा दायर
होता है, तब पहले उसमें अदालत की ओर से एक तारीख
पड़ती है। उस तारीख को दोनों पक्षों के वकील बहस करते
हैं जिससे हाकिम को विवादास्पद और विचारणीय बातों को
जानने में सहायता मिलती है। उस समय हाकिम ऐसी सब
बातों की एक सूची बना लेता है। उन्हीं बातों को हूँद निका-
लना और उनकी सूची बनाना तनकीह कहलाता है।

तनकना^२—क्रि० वि० [हि० तनक] दे० 'तनिक'। उ०—रहे तनक
पौर जाय फेरि अगि हस्तिन।—दू० रासो, पृ० ३१।

४-४४

तनखाह—संज्ञा स्त्री० [फा० तनखाह] वह धन जो प्रति सप्ताह, प्रति
मास या प्रति वर्ष किसी को नौकरी करने के उपलक्ष्य में
मिलता है। वेतन। तलब।

तनखाहदार—संज्ञा पुं० [फा०] वह जो तनखाह पर काम करता
हो। तनखाह पानेवाला नौकर। वेतनभोगी।

तनखाह—संज्ञा स्त्री० [फा० तनखाह] दे० 'तनखाह'।

तनखाहदार—संज्ञा पुं० [फा० तनखाहदार] दे० 'तनखाहदार'।

तनगना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तनकना'। उ०—अनतहि बसत
अनत ही डोलत आवत किरिन प्रकास। सुनहु सूर पुनि तो
कहि भावे तनगि गए ता पास।—सूर (शब्द०)।

तनगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] शरीर ठेंकने का मामूली बस्त्र। उ०—
खई तनगरी तोरि कै सु हरि बोलौ हरि बोल।—सुंदर०
प्र०, भा० १, पृ० ३१७।

तनज—संज्ञा पुं० [प्र० तंज] १. ताना। २. मजाक।

तनजीम—संज्ञा स्त्री० [प्र० तन्जीम] अपने वर्ग की संघटित करना।
संघटन [क्रि०]।

तनजील—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनजील] १. आतिथ्य करना। २. उता-
रना [क्रि०]।

तनजेब—संज्ञा स्त्री० [फा० तनजेब] एक प्रकार का बहुत ही महीन
बढ़िया सूती कपड़ा। महीन चिकनी मलमल।

तनज्जुल—संज्ञा पुं० [प्र० तनज्जुल] तरबकी का उलटा। अवनति।
उतार। घटाव।

तनज्जुलो—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनज्जुल + फा० ई (प्रत्यय०)] अवनति।
उतार। तरबकी का उलटा।

तनतनहा—क्रि० वि० [हि० तन + फा० तनहा] बिलकुल अकेला।
जिसके साथ और कोई न हो। जैसे,—वह तनतनहा दुश्मन
की छावनी से खला गया।

तनतना—संज्ञा पुं० [हि० तनतनाना या प्र० तनतनह] १. रोबदाव।
दबदबा। २. क्रोध। गुस्सा। (क्व०)।

क्रि० प्र०—दिखाना।

तनतनाना—क्रि० प्र० [प्रनु० या प्र० तननह] १. दबदबा दिख-
लाना। शान दिखाना। २. क्रोध करना। गुस्सा दिखलाना।

तनत्राण—संज्ञा पुं० [सं० तनुत्राण] १. वह चीज जिससे शरीर की
रक्षा हो। २. कवच। बख्तर।

तनदिही—संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'तंदेही'।

तनधर—संज्ञा पुं० [सं० तनु + धर] दे० 'तनुधारी'।

तनधारी^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनुधारी'।

तनना^१—क्रि० प्र० [सं० तन या तनु] १. किसी पदार्थ के एक या
दोनों सिरों का इस प्रकार आगे की ओर बढ़ना जिसमें उसके
मध्य भाग का झोल निकल जाय और उसका विस्तार कुछ
बढ़ जाय। झटके, खिचाव या खुरकी आदि के कारण किसी
पदार्थ का विस्तार बढ़ना। जैसे, बाहर या बाँदनी तनना,
घाव पर की पपड़ी तनना। २. किसी चीज का जोर से किसी

घोर बिचरना । आकषित या प्रवृत्त होना । १. किसी बीज का अकड़कर सीधा लड़ा होना । जैसे,—यह पेड़ कल झुक गया था, पर आज पानी पाते ही फिर तन गया । ४. कुछ अभिमान-पूर्वक रुष्ट या उदासीन होना । ऐंठना । जैसे,—इधर कई दिनों से वे हमसे कुछ तने रहते हैं ।

संखो० क्रि०—जाना ।

तनना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तानना' । उ०—ग्रहण के आलोक-वृत्त से काजजाल तनता अपना ।—कामायनी, पृ० ३४ ।

तनना^२—संज्ञा पुं० [हि० ताना] वह रस्सी जिससे तानने का कार्य किया जाता है ।

तनपात^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनुपात' ।

तनपोषक—वि० [सं० तन + पोषक] जो केवल अपने ही शरीर या लाभ का ध्यान रखे । स्वार्थी ।

तनवाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश जिसका नाम महा-भारत में आया है ।

तनमय—वि० [सं० तन्मय] दे० 'तन्मय' । उ०—अपनो अपनो भाग सबी रो तुम तनमय मैं कहूँ न नेरे ।—सूर (शब्द०) ।

तनमात्रा^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्मात्रा] दे० 'तन्मात्रा' ।

तनमानसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान की सात भूमिकाओं में तीसरी भूमिका ।

तनय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र । बेटा । लड़का । २. जन्मलग्न से पाँचवाँ स्थान जिससे पुत्र भाव देखा जाता है ।

तनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लड़की । बेटा । पुत्री । २. पिठबन लता ।

तनराग—संज्ञा पुं० [सं० तनु + राग] दे० 'तनुराग' ।

तनरुह^५—संज्ञा पुं० [सं० तनूरुह] दे० 'तनूरुह' । उ०—हरषवन्त चर अचर भूमिसुर तनरुह पुलकि जनाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

तनबाध—संज्ञा पुं० [सं०] भौतिकबाध । शरीर को मुख्य माननेवाला सिद्धांत । उ०—वह ठेठ तनबाध और कर्मबाध है ।—मुखवा, पृ० १६१ ।

तनवाना—क्रि० सं० [हि० तानना का प्रे० रूप] तानने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना । तनाना ।

तनवाल—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति ।

तनसल—संज्ञा पुं० [देश०] स्फटिक । बिलौर ।

तनसिज—संज्ञा पुं० [सं०] उरोज । उ०—सब गनना चित और सों, बनी सुनत यह बोल । अरके तनसिज तरुनि के, फरके पोल कपोल ।—स० सप्तक, पृ० २४२ ।

तनसीख—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनसीख] रद्द करना । नातिख करना । नाजायज करना । मंखूखी ।

तनसुख—संज्ञा पुं० [हि० तन + सुख] तंजैब या अट्टी की तरह का एक प्रकार का बड़िया फूलदार कपड़ा । उ०—(क) तनसुख सारी लही भंगिया अतलस अतरोटा छवि चारि चारि जूरी पटुंवीनि पटुंवी छमकी बनी मकफूल जेब मुल बौरा चौके कीधे संभ्रम भूली ।—हरिदास (शब्द०) । (ख) कोमलता पर रसाख तनसुख की सेज लाल मनहुं सोम सूरज पर सुधाबिंदु बरषे ।—

तनहा^१—वि० [फ्रा०] १. जिसके संग कोई न हो । बिना साथी का । अकेला । एकाकी । २. रिक्त । खाली (स्त्री०) ।

तनहा^२—क्रि० वि० बिना किसी संगी साथी का । अकेले

तनहाई—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. तनहा होने की दशा या भाव । २. वह स्थान जहाँ और कोई न हो । एकांत ।

बौ०—तनहाई कैद ।

तना^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० तनह] वृक्ष का जमीन से ऊपर निकला हुमा वहाँ तक का भाग जहाँ तक डालियाँ न निकली हों । पेड़ का बड़ । मंदल ।

तना^२—क्रि० वि० [हि० तन] घोर । तरफ । दे० 'तन' । उ०—नील पट अर्पट सपेठि छिगुनी पै चरि टेरि टेरि कहैं हंसि हेरि हरिषू तना ।—देव (शब्द०) ।

तना^३—संज्ञा पुं० [हि० तन] शरीर । जिस्म । उ०—तना सुख में पड़ा तब से गुरु का शुक्र क्यों भूला ।—कबीर मं०, पृ० ५४३ ।

तनाई^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनाव' ।

तनाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तनाव' ।

तनाउ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तनाव' । उ०—फटिक छुरी सी किरन कुंजरधनि जब आई । मानो बितनु बितान सुदेस तनाउ तनाई ।—नंद० प्र०, पृ० ७ ।

तनाउल—संज्ञा पुं० [प्र० तनावुल] भोजन करना । उ०—हुस्वर को खासा तनाउल फमनि को नावक्त हुमा जाता है ।—प्रेमघन०, पृ० ८५ ।

तनाऊ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनाव' ।

तनाक—वि० [हि०] दे० 'तनिक' । उ०—दर, स्तोक, ईश्वर, प्रसन्न, रंभक, मंद, मनाक । तब प्रिय सहचरि तन चितै, सुसकी कुंभरि तनाक ।—नंद० प्र० पृ० १०० ।

तनाकु^५—वि० [हि०] दे० 'तनिक' ।

तनाजा—संज्ञा पुं० [प्र० तनाजम्] १. बखेड़ा । झगड़ा । टंटा । दंगा । संघर्ष । फसाद । २. भदावत । कशाकश । झगुता । वैर । वैमनस्य ।

तनाना—क्रि० सं० [हि० तानना का प्रे० रूप] तानने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना । उ०—कलस चरन तोरन ध्वजा सुवितान तनाए ।—तुलसी (शब्द०) ।

तनाबा^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनाब] १. खेमे की रस्सी । २. बाजी-गरों का रस्सा जिसपर वे चलते तथा दूसरे खेल करते हैं ।

यौ०—तनाबे अमल = (१) भाषा रूपी खोर । (२) भाषा । तनाबे उम्र = आयुसूत्र । आयु । जीवनकाल ।

तनाय^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनाव' ।

तनाव—संज्ञा पुं० [हि० तनना०] १. तनने का भाव या क्रिया । २. वह रस्सी जिसपर घोड़ी कपड़े सुखाते हैं । १. रस्सी । बोरी । जेवरी । रज्जु ।

तनासुख—संज्ञा पुं० [प्र० तनासुख] आवागमन (स्त्री०) ।

तनि^१—क्रि० वि० [हि०] ३० 'तनिक' । उ०—तनि सुख तो चहियत
हूतो हर विष विचिहि मनाय । भली भई जो सखि भयो
मोहन मयुरे जाय ।—रसनिधि (शब्द०) ।

तनि^२—अभ्य० तरफ । ओर ।

तनि^३—संज्ञा पु० [सं० तनु] शरीर । देह ।

तनिक^१—वि० [सं० तनु (= अल्प)] १. थोड़ा । कम । २. छोटा ।
उ०—इहाँ हुसी मेरी तनिक मर्क्या को रुप भाइ छब्यो ।—
सूर (शब्द०) ।

तनिक^२—क्रि० वि० जरा । ठुक ।

तनिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रस्सी जिससे कोई चीज बाँधी जाय ।

तनिका^२—सर्व० [हि० तनिका] उसका । उ०—भनइ विद्यापति
कवि कंठहार । तनिका दोसर काम प्रहार ।—विद्या-
पति०, पु० २८ ।

तनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० तनिमन्] १. कृपता । २. नजाकत ।
उ०—तनिमा ने हर लिया तिमिर, अंगों में लहरी फिर फिर,
तनु में तनु भारति सी स्थिर, प्राणों की पावनता बन ।—
गीतिका, पु० १६ ।

तनिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तनी] १. लंगोटा । लंगोटी । कोपीन । २.
कछनी । जाघिया । उ०—तनिया ललित कटि विचित्र टिपारो
सीस मुनि मन हरत बचन कहै तोतरात ।—तुलसी (शब्द०) ।
३. चोली । उ०—तनियाँ न तिलक सुधनियाँ पगनियाँ न धामै
धुमरात छोड़ि सेजियाँ सुखन की ।—भूषन (शब्द०) ।

तनिष्ठ—वि० [सं०] जो बहुत ही दुबला पतला, छोटा या कमजोर हो ।

तनिसा—संज्ञा पु० [देश०] पुमाल ।

तनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तनिका, हि० तानना] १. डोरी की तरह
बटा या लपेटा हुआ वह कपड़ा जो अँगरखे, चोली आदि में
उनका पल्ला तानकर बाँधने के लिये लगाया जाता है । बंद ।
बंधन । उ०—कंधुकि ते कुचकलस प्रगट हूँ दूटि व तरक
तनी ।—सूर (शब्द०) । २. ३० 'तनिया' ।

तनी^२—क्रि० वि० [सं० तनु] ३० 'तनिक' ।

तनी^३—वि० ३० 'तनिक' ।

तनीदार—वि० [हि० तनी + दार] तनी या बंदवाला ।

तनु^१—वि० [सं०] १. कृप । दुबला पतला । २. अल्प । थोड़ा । कम ।
३. कोमल । नाजुक । ४. सुंदर । बढ़िया । ५. तुच्छ (को०) ।
६. छिछला (को०) ।

तनु^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शरीर । देह । बदन । २. चमड़ा । खाल ।
त्वक् । ३. स्त्री । औरत । ४. कँचुली । ५. ज्योतिष में लग्न-
स्थान । जन्मकुंडली में पहला स्थान । ६. योग में अस्मिता,
राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का एक भेद
जिसमें चित्त में क्लेश की अवस्थिति तो होती है, पर साधन
या सामग्री आदि के कारण उस क्लेश की सिद्धि नहीं होती ।

तनुक^१—वि० [सं० तनु + क (प्रत्यय)] ३० 'तनिक' ।

तनुक^२—क्रि० वि० [हि०] ३० 'तनिक' ।

तनुक^३—संज्ञा पु० [सं० तनु] ३० 'तनु' ।

तनुक^४—वि० [सं०] १. पतला । क्षीण । कम । २. छोटा (को०) ।

तनुकूप—संज्ञा पु० [सं०] रोमछिद्र (को०) ।

तनुकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर बालोंवाली स्त्री (को०) ।

तनुकथ—संज्ञा पु० [सं०] कीटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार वह लाभ जो
मंत्र मान से साध्य हो ।

तनुक्षीर—संज्ञा पु० [सं०] घामड़े का पेड़ ।

तनुगृह—संज्ञा पु० [सं०] अश्विनी नक्षत्र (को०) ।

तनुच्छद्—संज्ञा पु० [सं०] कवच । बखतर ।

तनुच्छाय^१—संज्ञा पु० [सं०] खाल बबूल का पेड़ ।

तनुच्छाय^२—वि० अल्प या कम छायावाला (को०) ।

तनुज—संज्ञा पु० [सं०] १. पुत्र । बेटा । लड़का । २. जन्मकुंडली
में लग्न से पाँचवाँ स्थान जहाँ से पुत्रभाव देखा जाता है ।

तनुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या । लड़की । पुत्री । बेटो ।

तनुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लघुता । छोटाई । २. दुर्बलता ।
दुबलापन । कृपता ।

तनुत्याग—वि० [सं०] कम खर्च करनेवाला । कृपण (को०) ।

तनुत्र—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'तनुत्राण' ।

तनुत्राण—संज्ञा पु० [सं०] १. वह चीज जिससे शरीर की रक्षा हो ।
२. कवच । बखतर ।

तनुत्राण^२—संज्ञा पु० [सं० तनुत्राण] ३० 'तनुत्राण' ।

तनुत्वचा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी अरखी ।

तनुत्वचा^२—संज्ञा स्त्री० जिसकी छाल पतली हो ।

तनुदान—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगदान । शरीरदान (संभोग के लिये) ।

तनुधारी—वि० [सं०] शरीरधारी । देहधारी । शरीर धारण करने-
वाला । उ०—कहहु सखी अस को तनुधारी । जो न मोह
येहु कपु निहारी ।—मानस, १।२२१ ।

तनुधी—वि० [सं०] क्षीणमति । अल्पबुद्धि (को०) ।

तनुपत्र—संज्ञा पु० [सं०] गौदनी या गौदी का पेड़ । इंगुमा वृक्ष ।

तनुपात—संज्ञा पु० [सं०] शरीर से प्राण निकलना । मृत्यु । मौत ।

तनुपोषक—संज्ञा पु० [सं०] वह जो अपने ही शरीर या परिवार का
पोषण करता हो । स्वार्थी । उ०—तनुपोषक नारि नरा
सगरे । परनिबक जे जग मों बगरे ।—मानस, ७।१०२ ।

तनुप्रकाश—वि० [सं०] धुंधले या मंद प्रकाशवाला (को०) ।

तनुबीज^१—संज्ञा पु० [सं०] राखवेर ।

तनुबीज^२—वि० जिसके बीज छोटे हों ।

तनुभव—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० तनुभवा] पुत्र । बेटा । लड़का ।

तनुभस्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नासिका । नाक (को०) ।

तनुभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध धर्मियों के जीवन की एक अवस्था ।

तनुमृत्—वि० [सं०] देहधारी, विशेषतः मनुष्य (को०) ।

तनुमत्—वि० [सं०] १. समाहित । सन्नित । २. शरीर युक्त ।
शरीरवाला ।

तनुमध्य—संज्ञा पु० [सं०] कमर वा कटि (को०) ।

तनुमध्य—वि० क्षीण कटि या कमरवाला (को०) ।

तनुमध्यमा—वि० [सं०] पतली कमरवाली (को०) ।

तनुमध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बर्तुल का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और यगण (५३१—१५५) होता है । इसको चौरस भी कहते हैं । जैसे,—तू यों किमि जाली, धूमै मतवाली ।—(शब्द०) ।

तनुरस—संज्ञा पुं० [सं०] पसीना । स्वेद ।

तनुराग—संज्ञा पुं० [सं०] १. केसर, कस्तूरी, चंदन, कपूर, अगार आदि को मिलाकर बनाया हुआ उबटन । २. वे सुगंधित द्रव्य जिनसे उक्त उबटन बनाया जाता है ।

तनुरुह—संज्ञा पुं० [सं०] रोमी । रोम ।

तनुख—वि० [सं०] विस्तृत । फैला हुआ [को०] ।

तनुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लता सटण सुकुमार पतला शरीर [को०] ।

तनुवात—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ हवा बहुत ही कम हो । २. एक नरक का नाम ।

तनुवार—संज्ञा पुं० [सं०] कवच । बखतर ।

तनुबीज—संज्ञा पुं० [सं०] राजबेर ।

तनुबीज—वि० जिसके बीज छोटे हों ।

तनुघण—संज्ञा पुं० [सं०] बलमौक रोग । फीलपाव ।

तनुशिरा—संज्ञा पुं० [सं० तनुशिरस] एक वैदिक छंद ।

तनुशिरा—वि० छोटे सिरबाला [को०] ।

तनुसर—संज्ञा पुं० [सं०] पसीना । स्वेद ।

तनू—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र । बेटा । लड़का । २. शरीर । ३. प्रजापति । ४. गी । पाय । ५. अंग । अवयव [को०] ।

तनूज—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'तनुज' ।

तनूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १० 'तनुजा' ।

तनुजानि—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र । बेटा [को०] ।

तनूजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० तनूजन्म] पुत्र [को०] ।

तनूतल—संज्ञा पुं० [सं०] लंबाई की एक माप जो एक हाथ के बराबर थी [को०] ।

तनूताप—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'तनुताप' [को०] ।

तनूनप—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ । घी ।

तनूनपात् तनूनपाद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । प्राण । २. भीते का वृक्ष । भीता । भीतावर । चित्रक । ३. प्रजापति के पोते का नाम । ४. घी । घृत । ५. मयस्वन ।

तनूनप्ता—संज्ञा पुं० [सं० तनूनपत्] वायु [को०] ।

तनूपा—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जिससे लाया हुआ अन्न पचता है । जठराग्नि ।

तनूपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शरीर की रक्षा करता है । अंगरक्षक ।

तनूपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सोमयाग ।

तनूर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] लमीरी रोटी बनाने की गहरी डहरनुमा मट्टी । तंदूर ।

तनुरुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोम । सोम । रोमी । २. पलियों का पर । पंख । ३. पुत्र । लड़का । बेटा ।

तनी—अव्य० [हि० तने] की ओर । की तरफ ।

तनेनना—क्रि० सं० [हि०] १० 'तानना' । उ०—तू इत बैठी भौह तनेनत नहि सोहाव भौहि यह क्लो कलि ।—भा० प्र०, भा० १, पृ० ४८३ ।

तनेना—वि० [हि० तनना + एना (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तनेनी] १. खिंचा हुआ । टेढ़ा । तिरछा । उ०—बात के वृक्ष ही मतिराम कहा करती अब भौह तनेनी ।—मतिराम (शब्द०) । २. कुद । जो नाराज हो । उ०—घाली हों गई हो घाजु सुमि बरसाने कहें तापे तू परे है पचाकर तनेनी क्यों ।—पचाकर (शब्द०) ।

तनै^(१)—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'तनय' ।

तनै^(२)—वि० [हि० तन (= ओर, तरफ)] तई । लिये । उ०—दोउ जंघ रंभ कंचन दिपत, थरी कमल हाटक तनी ।—ह० रासो, पृ० २५ ।

तनैना^(३)—संज्ञा पुं० [हि०] [वि० स्त्री० तनैनी] १० 'तनेना' । तना हुआ । खिंचा हुआ ।

तनैया^(४)—संज्ञा स्त्री० [सं० तनया] पुत्री । बेटा । कन्या । लड़की ।

तनैया^(५)—वि० [हि० तानना + ऐया (प्रत्य०)] ताननेवाला ।

तनैला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसके फूल खुशबूदार और सफेद होते हैं ।

तनों—वि० [हि० तन (= तरफ)] तई । के लिये । बास्ते । उ०—नहि तनू सेल को प्रण करिव, सरन भरम छत्रिय तनों ।—ह० रासो, पृ० ५७ ।

तनोघा^(६)—संज्ञा पुं० [हि० तानना] १. वह वस्त्र जिसे तानकर धाया की जाती है । २. चंदोपा ।

तनोजा^(७)—संज्ञा पुं० [सं० तनूज] १. रोम । लोम । रोमी । उ०—अंग भरहरे क्यों भरे खरे तनोज पसेव ।—शृ० सत० (शब्द०) । २. लड़का । बेटा ।

तनोरुह^(८)—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'तनूरुह' ।

तनोवा—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'तनोघा' ।

तन्ना—संज्ञा पुं० [हि० तानना] १. बुनाई में ताने का सूत जो लंबाई में ताना जाता है । २. वह जिसपर कोई चीज तानी जाय ।

तन्नाना^(९)—क्रि० प्र० [हि० तनना] प्रकटना । ऐंठना । प्रकड़ बिलाना । बिगड़ना । क्रुद्ध होना ।

तन्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिठवन । २. काश्मीर की चंद्रतुल्या नदी का नाम ।

तन्नी^(१०)—संज्ञा स्त्री० [सं० तनिका, हि० तानना या तनी] १. तराजू में जोती की रस्सी । वह रस्सी जिसमें तराजू के पल्ले लटकते हैं । जोती । २. एक प्रकार की धँकुसी जिससे छोड़े की मेल छुरते हैं । ३. जहाज के मस्तूल की बड़ में बँधा हुआ एक प्रकार का रस्सा जिसकी सहायता से पाल आदि चढ़ते हैं (शब्द०) ।

तन्वी^२—संज्ञा पुं० [हिं० तरनी] किसी व्यापारी जहाज का वह बफसर जो यात्राकाल में उसके व्यापार संबंधी कार्यों का प्रबंध करता हो।

तन्वी^३—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरनी'।

तन्मनस्क—वि० [सं०] तन्मय। तल्लीन [को०]।

तन्मय—वि० [सं०] जो किसी काम में बहुत ही मग्न हो। लवलीन। लीन। लगा हुआ। दत्तचित्त। उ०—कबहूँ कहति कोन हरि को मैं यों तन्मय हूँ जाहीं।—सूर (शब्द०)।

तन्मयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लिप्तता। एकाग्रता। लीनता। तदा-कारता। लगन।

तन्मयासक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवान् में तन्मय हो जाना। भक्ति में अपने आपको भूल जाना और अपने को भगवान् ही समझना।

तन्मात्र—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार पंचभूतों का अविशेष मूल। पंचभूतों का आदि, अमिश्र और सूक्ष्म रूप। ये संख्या में पाँच हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।

विशेष—सांख्य में सृष्टि की उत्पत्ति का जो क्रम दिया है, उसके अनुसार पहले प्रकृति से महत्त्व की उत्पत्ति होती है। महत्त्व से अहंकार और अहंकार से सोलह पदार्थों की उत्पत्ति होती है। ये सोलह पदार्थ पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, एक मन और पाँच तन्मात्र हैं। इनमें भी पाँच तन्मात्रों से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। अर्थात् शब्द तन्मात्र से आकाश उत्पन्न होता है और आकाश का गुण शब्द है। शब्द और स्पर्श दो तन्मात्राओं से वायु उत्पन्न होती है और शब्द तथा स्पर्श दोनों ही उसके गुण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस तन्मात्र के संयोग से जल उत्पन्न होता है और जिसमें ये चारों गुण होते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन पाँचों तन्मात्रों के संयोग से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है जिसमें ये पाँचों गुण रहते हैं।

तन्मात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तन्मात्र'।

तन्मात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तन्मात्रा'। वेदांत शास्त्र की एक संज्ञा। पाँच विषयों की पाँच तन्मात्राएँ। उ०—इति तन्मात्रिका सहेता। ये पंच विषय को होता।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० ६७।

तन्मूलक—वि० [सं०] उससे निकला हुआ [को०]।

तन्य—वि० [हिं० तनना] तानने या खींचने योग्य।

तन्युत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु। हवा। २. रात्रि। रात। ३. गर्जन। गरजना। ४. प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

तन्वंग—वि० [सं० तन्वङ्ग] सुकुमार या क्षीण शरीरवाला [को०]।

तन्वंगिनी—वि० स्त्री० [सं०] तन्वंगी। उ०—विवसना सता सी, तन्वंगिनि, निर्जन में क्षणभर की संगिनि।—युगांत, पृ० ३७।

तन्वंगी—वि० [सं० तन्वंगी] कुशांगी। दुबली पतली।

तन्वि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काश्मीर की चंद्रकुल्या नदी का एक नाम।

तन्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तन्वी'।

तन्वी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में कम से भगण, तणण, नणण, सणण, भगण, यणण नणण और यणण (SH-SSI-III-1:5-SII-SII-III-1SS) होते हैं। इसमें ५ वें, १२ वें और २४ वें अक्षर पर पति होती है। २. कोमलांगी। कुशांगी [को०]।

तन्वी^२—वि० दुबले पतले और कोमल धंगोंवाली। जिसके धंग कुल और कोमल हों।

तपःकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपस्वी। २. तपसी मछली।

तपःकृश—वि० [सं०] तप से क्षीण।

तपःपूत—वि० [सं०] तपस्या करके जो शरीर एवं मन से पवित्र हो गया हो [को०]।

तपःप्रभाव—संज्ञा पुं० [सं०] तप द्वारा की हुई शक्ति [(को०)]।

तपःभूत—वि० [सं०] तपस्या द्वारा आत्मशुद्धि प्राप्त करनेवाला [को०]।

तपःसाध्य—वि० [सं०] जो तप द्वारा सिद्ध हो [को०]।

तपःसुत—संज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर [को०]।

तपःस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] तप करने का स्थान। तपोभूमि [को०]।

तपःस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी [को०]।

तप—संज्ञा पुं० [सं० तपस्] १. शरीर को कष्ट देने वाले वे व्रत और नियम आदि जो चित्त को शुद्ध और विषयों से निवृत्त करने के लिये किए जायें। तपस्या।

क्रि० प्र०—करना।—साधना।

विशेष—प्राचीन काल में हिंदुओं, बौद्धों, यहूदियों और ईसाइयों आदि में बहुत से ऐसे लोग हुआ करते थे जो अपनी इन्द्रियों को वश में रखने तथा दुष्कर्मों से बचने के लिये अपने आत्मिक विश्वास के अनुसार बस्ती छोड़कर जंगलों और पहाड़ों में जा रहते थे। वहाँ वे अपने रहने के लिये घास फूस की छोटी मोटी कुटी बना डिते थे और कंद मूल आदि लाकर और तरह तरह के कठिन व्रत आदि करते रहते थे। कभी वे लोग मीन रहते, कभी गरमी सरदी सहते और उपवास करते थे। उनके इन्हीं सब आचरणों को तप कहते हैं। पुराणों आदि में इस प्रकार के तपों और तपस्वियों आदि की अनेक कथाएँ हैं। कभी किसी अमोघ को सिद्ध या किसी देवता से वर की प्राप्ति आदि के लिये भी तप किया जाता था। जैसे, गंगा को साने के लिये भगीरथ का तप, शिव जी से विवाह करने के लिये पार्वती का तप। पातञ्जल दर्शन में इसी तप को क्रियायोग कहा है। गीता के अनुसार तप तीन प्रकार का होता है—शारीरिक, वाचिक और मानसिक। देवताओं का पूजन, बड़ों का आदर सत्कार, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि शारीरिक तप के अंतर्गत हैं; सत्य और प्रिय बोलना, वेदशास्त्र का पढ़ना आदि वाचिक तप हैं और मोनावर्त्तन, आत्मनिग्रह आदि की गणना मानसिक तप में है।

२. शरीर या इन्द्रिय को वश में रखने का धर्म। ३. नियम। ४. भाष का महीवा। ५. ज्योतिष में लग्न से नवी स्थान।

१. अग्नि । ७. एक कल्प का नाम । ८. एक लोक का नाम ।
वि० ६० 'तपोलोक' ।

तप^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताप । गरमी । २. ग्रीष्म ऋतु । ३. कुत्कार । ग्वर ।

तपकना^(१)—क्रि० घ० [हि० टपकना या तपकना] १. चढ़कना उझलना । उ०—रतिया धँधेरी धीर न तिया धरति मुख बतिया कहति उठै छतिया तपकि तपकि ।—देव (शब्द०) २. ६० 'टपकना' ।

तपचाक—संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का तुर्की घोड़ा ।

तपच्छद्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तपनच्छद्' ।

तपकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. लूढ़ । छोटा टीना । २. एक प्रकार का फल जो पकने पर पीलापन लिए लाल रंग का हो जाता है । यह जाड़े के अंत में बाजारों में बिकता है ।

तपती—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तपन' ।

तपति—वि० [देश०] लूढ़ी । लूढ़ । उ०—भोग रहे भरपूर आयु यह बीति गई सब । तप्यो नाहि तप मूढ़ अवस्था तपति भई सब ।—रज० पं०, पृ० १०६ ।

तपती—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार सूर्य की कन्या का नाम ।

विशेष—यह छाया के गर्म से उत्पन्न हुई थी । सूर्य ने कुर्बानी संवरण की सेवा आदि से प्रसन्न होकर तपती का विवाह लक्ष्मी के साथ कर दिया था ।

तपतोवक^(१)—संज्ञा पुं० [सं० तप + उवक] गरम पानी । उ०—यह तीनों रसजर के नेती । पीस लिए तपतोवक सेती ।—इंदा०, पृ० १५२ ।

तपन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपने की क्रिया या भाव । ताप । जलन । प्राँच । दाह । २. सूर्य । आदित्य । रवि । ३. सूर्य-कांत मणि । सूरजमुखी । ४. ग्रीष्म । गरमी । ५. एक प्रकार की अग्नि । ६. पुराणानुसार एक नरक जिसमें जाते ही शरीर जलता है । ७. धूप । ८. भिक्षावे का पेड़ । ९. मवार । आक । १०. गरमी का पेड़ । ११. वह क्रिया या हाव भाव आदि जो नायक के वियोग में नायिका करे या बिललावे । इसकी गणना अलंकार में की जाती है ।

यो०—तपनयोवन—सूर्य का योवन । सूर्य की प्रखरता । उ०—प्रखर से प्रखरतर हुआ तपनयोवन सहसा ।—अपरा, पृ० ६१ ।

तपन^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तपना] तपने की क्रिया या भाव । ताप । जलन । गरमी ।

मुहा०—तपन का महीना—वह महीना जिसमें गरमी खूब पड़ती हो । गरमी ।

तपनकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण । रश्मि ।

तपनच्छद्—संज्ञा पुं० [सं०] मवार का पेड़ ।

तपनसनय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र—यम, कर्ण, शनि, सुषीर आदि ।

तपनसनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमी बूझ । २. यमुना नदी ।

तपनमणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि ।

तपनांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण । रश्मि ।

तपना^१—क्रि० घ० [सं० तपन] १. बहुत अधिक गर्मी, प्राँच या धूप आदि के कारण खूब गरम होना । तप्त होना । उ०—निज अथ समुक्ति न कुछ कहि जाई । तपइ अर्वा इव उर अधिकारि ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—रसोई तपना = दे० 'रसोई' के मुहाविरे ।

२. संतप्त होना । कष्ट सहना । मुसीबत भेलना । जैसे,—हम घंटों से यहाँ आपके आसरे तप रहे हैं । उ०—सीप सेवाति कहें तपइ समुद भँक नीर ।—जायसी (शब्द०) । ३. तेज या ताप धारण करना । गरमी या ताप फैलाना । उ०—जइस मानु जण ऊपर तापा ।—जायसी (शब्द०) । ४. प्रबलता, प्रभुत्व या प्रताप दिखलाना । प्रताप फैलाना । जैसे,—प्राजकल यहाँ के कोतवाल खूब तप रहे हैं । उ०—(क) खेरसाहि दिल्ली सुलतान । बारिउ खंड तपइ जस मान ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कमकाल, गुन, सुभाउ सबके सीस तपत ।—तुलसी (शब्द०) ।

तपना^२—क्रि० घ० [सं० तप्] तपस्या करना । तप करना ।

तपनाराधना—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्या [को०] ।

तपनि^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तपन' ।

तपनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तपना] १. वह स्थान जहाँ बैठकर लोग प्राण तापते हों । कोड़ा । झलाव ।

क्रि० प्र०—तापना ।

२. तपस्या । तप । ३. तपन (को०) ।

तपनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोदावरी नदी । २. पाठा सता (को०) ।

तपनीय^१—संज्ञा पुं० [सं०] सोना ।

तपनीय^२—वि० तपने या तापने योग्य [को०] ।

तपनीयक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तपनीय' ।

तपनेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा ।

तपनोपल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि ।

तपभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस् + हि० भूमि] दे० 'तपोभूमि' ।

तपराशि—संज्ञा पुं० [सं० तपोराशि] दे० 'तपोराशि' ।

तपरासी^(१)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तपोराशि' । उ०—ब्रह्म के उपासी तपरासी बनबासी वर विपुल मुनीश्वर के आश्रम सिंघासो मैं ।—राम० धर्म०, पृ० २६० ।

तपलोक—संज्ञा पुं० [सं० तपोलोक, हि०] दे० 'तपोलोक' ।

तपबाना—क्रि० स० [हि० तपाना का प्रे० रूप] १. गरम करवाना । तपाने का काम दूसरे से कराना । २. किसी से व्यर्थ व्यय कराना । अनावश्यक व्यय कराना ।

तपवृद्ध^(१)—वि० [सं० तपोवृद्ध, हि०] दे० 'तपोवृद्ध' ।

तपशील—वि० [सं० तपःशील] तपस्या करनेवाला [को०] ।

तपश्चरण—संज्ञा पुं० [सं०] तप । तपस्या ।

तपश्चर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्या । तपश्चरण ।

तपस^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. सूर्य । ३. पक्षी ।

तपस^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्] तप । तपस्या । उ०—न्याय, तपस, ऐश्वर्य में पगे, ये प्राणी चमकीले लगते । इस निदाच मरु में सुखे से, ओतों के तह जैसे जगते ।—कामायनी, पृ० २७० ।

तपस^३—संज्ञा पुं० तपस्वी ।

तपसनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपस्विनी' । उ०—काम कुमत्ती उपनी दीम तपसनी साप । बीसल दे बुधि चल विचल प्रगटि पुत्र की पाप ।—पृ० रा०, १।४६५ ।

तपसरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपस्विनी' । उ०—अथ दिवाहृ आहृष्ट दुति तपसरनी की कोप । जल बेली बिहु बाग त्रिप । ते जिन अथ अलोप ।—पृ० रा०, १।५०७ ।

तपसा—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या] १. तपस्या । तप । २. तापती नदी का दूसरा नाम जो बैतूल के पहाड़ से निकलकर खंभात की खाड़ी में गिरती है ।

तपसालि^५—संज्ञा पुं० [हिं० तप + साली] दे० 'तपसाली' ।

तपसाली—संज्ञा पुं० [सं० तपःशालिन्] वह जिसने बहुत तपस्या की हो । तपस्वी । उ०—आए मुनिवर निकर तब कोलिकादि तपसालि ।—तुलसी (शब्द०) ।

तपसी—संज्ञा पुं० [सं० तपस्वी] तपस्या करनेवाला । तपस्वी । उ०—तपसी तुमको तप करि पावें । सुनि भागवत गृही गुन गावें ।—सूर (शब्द०) ।

तपसी मछली—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या मत्स्य] एक बालिशत खंबी एक प्रकार की मछली ।

विशेष—यह बंगाल की खाड़ी में होती है । बैसाख या जेठ के महीने में झंडे देने के लिये यह नदियों में चली जाती है ।

तपसोमर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार बारहवें मन्वंतर के चौथे सावर्णि के सप्तपियों में से एक ।

तपस्तज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

तपस्तति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

तपस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंद पुष्प । २. तपस्या । तप । ३. हरिवंश के अनुसार तामस मनु के दस पुत्रों में से एक पुत्र का नाम । ४. फागुन का महीना । ५. अर्जुन ।

विशेष—अर्जुन का एक नाम फाल्गुन भी था, इसीलिये तपस्य भी अर्जुन का एक नाम हो गया ।

तपस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तप । तपश्चर्या । २. फागुन मास । ३. दे० 'तपसी मछली' ।

तपस्वत्—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी ।

तपस्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्वी होने की व्यवस्था या भाव ।

तपस्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तपस्या करनेवाली स्त्री । २. तपस्वी की स्त्री । ३. पतिव्रता या सती स्त्री । ४. जटा-मासी । ५. वह स्त्री जो अपने पति के मरने पर केवल अपनी संतान का पालन करने के लिये सती न हो और कष्टपूर्वक

अपना जीवन बितावे । ६. दीन और दुखिया स्त्री । ७. बड़ी गोरक्षमुंडी । ८. कुटकी । कटुरोहिणी ।

तपस्विपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दमनक वृक्ष । बीने का पेड़ ।

तपस्वी^१—संज्ञा पुं० [सं० तपस्विन्] [स्त्री० तपस्विनी] १. वह जो तप करता हो । तपस्या करनेवाला । २. दीन । ३. बया करने योग्य । ४. चीकुमार । ५. तपसी मछली । ६. तपसोमूर्ति का एक नाम ।

तपस्स^५—संज्ञा पुं० [सं० तपस] दे० 'तपस्वी' । उ०—धर्मकी बरा धर्म धर्म चरकी । कठ पिठु कंठ कटु करकी । द्विौ अह्निंग सो दिगंपाल दसं । तरक्के चके मुनि जंनं तपस्स ।—पृ० रा०, ६।१३१ ।

तपा^१—संज्ञा पुं० [हिं० तप] तपस्वी । उ०—मठ मंडप बहुपाख सँवारे । तपा जपा सब आसन मारे ।—जायसी (शब्द०) ।

तपा^२—वि० तप में मग्न । जो तपस्या में लीन हो । उ०—केरे भेख रहै था तपा । धूरि सपेठा मानिक छपा ।—जायसी (शब्द०) ।

तपाक—संज्ञा पुं० [प्रा०] १. आवेश । जोश । जैसे,—घाते ही यह बड़े तपाक से बोला ।

मुहा०—तपाक बदलना = नाराज होना । बिगड़ जाना । तेवर बदलना ।

२. वेग । तेजी ।

तपात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म का अंत या वर्षाकाल । बरसात ।

तपानल—संज्ञा पुं० [सं०] तप से उत्पन्न तेज । वह तेज जो तप करने के कारण उत्पन्न हो ।

तपाना—क्रि० सं० [हिं० तपना] १. बहुत अधिक गर्मी, धाव, धूप आदि की सहायता से गरम करना । तप्त करना । २. संतप्त करना । दुःख देना । क्लेश देना । ३. तप करके शरीर को कष्ट देना । तप करने में शरीर को प्रवृत्त करना ।

तपायमान—वि० [सं० तप] तप्त । बुखी । उ०—एक काल में भृगु की स्त्री जात रही थी, तिसके वियोग कर वह ऋषि तपायमान हुआ ।—योग०, पृ० ७ ।

तपारी—संज्ञा पुं० [हिं०] तपस्वी [को०] ।

तपावत—संज्ञा पुं० [हिं० तप + वत (प्रत्य०)] तपस्वी । तपसी । वह जो तपस्या करता हो । उ०—तपावत छाया लिखि दीन्हा । वेग चलाव चहूँ सिधि कीन्हा ।—जायसी (शब्द०) ।

तपाव—संज्ञा पुं० [हिं० तपना + धाव (प्रत्य०)] तपने की क्रिया या भाव । गरमाहट । ताप ।

तपावस^५—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तपस्या' । उ०—करै तपावस अखी आपै । उष्मन काष्ण कउ मारे आपै ।—प्राण०, पृ० २२७ ।

तपित^५—वि० [सं०] तपा हुआ । गरम । तप्त ।

तपिय—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तपी' । उ०—सुनत बखान कलिअर ईसू । तपिय अरन पर बारेउ सीसू ।—ईशा०, पृ० १६ ।

तपिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो मध्यभारत, बंगाल तथा आसाम में होता है ।

विशेष—इसकी छाल तथा पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं। इसे बिरमी भी कहते हैं।

तपिरा—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] गरमी। तपन। आँध। ताप।

तपी—संज्ञा पुं० [हि० तप + ई (प्रत्य०)] १. तप करनेवाला। तपस्वी। तापस। ऋषि। उ०—वनबंश कुलीन मलीन अपी। द्विज श्रीगुरु जनेउ लखार तपी।—मानस, ७।१०१। २. सूर्य (वि०)।

तपीसर०—वि० [सं० तपीश्वर] तपस्या करनेवाला। उ०—न सोहायनि महापवीत। तपे तपीसर बाले भीत।—कबीर ग्रं०, पृ० २८४।

तपु०—संज्ञा पुं० [सं० तपुस्] १. अग्नि। आग। २. सूर्य। रवि ३. ऋषि।

तपु०—वि० १. तप्त। उष्ण। गरम। २. तापने या गरम करनेवाला।

तपुराम—वि० [सं०] जिसका अगला भाग तपा या तपाया हुआ हो (की०)।

तपुरामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरछी या आला (की०)।

तपेक्षिक—संज्ञा पुं० [क्रा० तप + क्ष० दिक्] राजयक्ष्मा। लयी रोग।

तपेस्सा०—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'तपस्या'।

तपोज—वि० [सं०] १. जो तपस्या से उत्पन्न हुआ हो। २. जो अग्नि से उत्पन्न हुआ हो।

तपोजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल। पानी।

विशेष—प्राचीन भाषों का विश्वास था कि यज्ञ आदि की अग्नि की सहायता से ही मेघ बनता है, इसीलिये जल का एक नाम 'तपोज' पड़ा।

तपोद्धो—संज्ञा स्त्री० [देश०] काठ का एक प्रकार का बरतन।—(बला०)।

तपोदान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पुण्यतीर्थ जिसका वर्णन महाभारत में आया है।

तपोधृति—संज्ञा पुं० [सं०] बारहवें मन्वन्तर के एक ऋषि (की०)।

तपोधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तपस्या के अतिरिक्त और कुछ भी न करता हो। तपस्वी। उ०—सिद्ध तपोधन जोगि जन सुर किशोर मुनि बृंद।—मानस, १।१०५। २. सीने का पेड़।

तपोधना—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरक्षमुंडी।

तपोधनी—वि० [सं० तपोधनिन्] ३० 'तपोधन'। उ०—तपोधनी में जात कहायो। तै नहि आन्यो सन्मुख भायो।—शकुंतला, पृ० १२।

तपोधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोधाम—संज्ञा पुं० [सं० तपोधामन्] १. तप करने का स्थान। २. एक प्राचीन तीर्थ (की०)।

तपोधृति—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारहवें मन्वन्तर के चौथे सार्वणि के सप्तर्षियों में से एक ऋषि।

तपोनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] तपोनिष्ठ। तपस्वी।

तपोनिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोवन०—संज्ञा पुं० [सं० तपोवन] ३० 'तपोवन'।

तपोबल—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्या से प्राप्त बल, तेज या शक्ति (की०)।

तपोभंग—संज्ञा पुं० [सं० तपोभङ्ग] विघ्नादि के कारण तप का भंग होना (की०)।

तपोभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तप करने का स्थान। तपोवन।

तपोमय—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

तपोमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर। २. तपस्वी। ३. पुराणानुसार बारहवें मन्वन्तर के चौथे सार्वणि के समय के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम।

तपोराज—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा (की०)।

तपोराशि—संज्ञा पुं० [सं०] तहत बड़ा तपस्वी।

तपोलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार चौदह लोकों में से ऊपर के सात लोकों में से छठा लोक जो जनलोक और सत्य लोक के बीच में है।

विशेष—पद्मपुराण में लिखा है कि यह लोक तेजोमय है; और जो लोभ अनेक प्रकार की कठिन तपस्याएँ करके भी कृष्ण भगवान् को संतुष्ट करते हैं; वे इस लोक में भेजे जाते हैं।

तपोवट—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मावतं देश।

तपोवन—संज्ञा पुं० [सं०] वह एकांत स्थान या वन जहाँ तप बहुत अच्छी तरह हो सकता हो। तपस्वियों के रहने या तपस्या करने के योग्य वन।

तपोवरण—वि० [देशी०] तप से च्युत कर देनेवाली। उ०—एक तेरी तपोवरण।—अचंता, पृ० ३।

तपोवल—संज्ञा पुं० [सं०] तप का प्रभाव या शक्ति।

तपोवृद्ध^१—वि० [सं०] जो तपस्या द्वारा अष्ट हो।

तपोवृद्ध^२—संज्ञा पुं० बहुत बड़ा तपस्वी (की०)।

तपोव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपस्या संबंधी व्रत। २. वह जिसने तपस्या का व्रत धारण कर लिया हो (की०)।

तपोशहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. तामस मनु के पुत्र तपस्य का एक नाम २. तपसोभूति का एक नाम।

तपोनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तापना] १. ठगों की एक रसम जो मुसाफिरों के गिरोह को लूट मार चुकने और उनका माल से लेने पर होती है। इसमें सब ठग मिलकर देवी की पूजा करते हैं और गुड़ चढ़ाकर उसी का प्रसाद आपस में बाँटते हैं।

मुहा०—तपोनी का गुड़=(१) तपोनी की पूजा के प्रसाद का गुड़ जो किसी नए आदमी को पहले पहल अपनी मंडली में मिलाने के समय ठग लोग खिलाते हैं। (२) किसी नए आदमी को अपनी मंडली में मिलाने के समय किया जानेवाला काम या दिया जानेवाला पदार्थ।

२. दे० 'तपनी'।

तप्त—वि० [सं०] १. तपाया या तपा हुआ। जलता हुआ। तापित। गरम। उष्ण। २. दुःखित। क्लेशित। पीड़ित।

यौ०—तप्त शरीर=जलती हुई देह। उ०—कभी यहाँ देखे थे जिनके, श्याम बिरह से तप्त शरीर।—अपरा, पृ० १०२।

तप्तक—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाही (की०)।

तप्तकुंड—संज्ञा पुं० [सं० तप्तकुण्ड] वह प्राकृतिक जलधारा जिसका पानी गरम हो। गरम पानी का सोता या कुंड।

विशेष—पहाड़ों तथा मैदानों आदि में कहीं कहीं ऐसे सोते मिलते हैं जिनका पानी गरम होता है। भिन्न भिन्न स्थानों में ऐसे सोतों का पानी साधारण गरम से लेकर खोलता हुआ तक होता है। पानी के गरम होने का मुख्य कारण यह है कि यह पानी या तो बहुत अधिक गहराई से, या भूगर्भ के अंदर की अग्नि से तपी हुई चट्टानों पर से होता हुआ आता है। ऐसे सोतों के जल में बहुधा अनेक प्रकार के खनिज द्रव्य (जैसे, गंधक, सोडा, अनेक प्रकार के क्षार) भी मिले होते हैं जिनके कारण जल जलों में बहुत से रोगों को दूर करने का गुण प्राप्त जाता है। भारतवर्ष में तो ऐसे सोते कम हैं, पर यूरोप और अमेरिका में ऐसे सोते बहुत पाए जाते हैं, जिन्हें देखने तथा उनका जल पीने के लिये बहुत दूर दूर से लोग आते हैं। बहुत से लोग अनेक प्रकार के रोगों से मुक्त होने के लिये यहीनों उनके किनारे रहते भी हैं। प्रायः जल जितना अधिक गरम होता है, उसमें गुण भी उतना ही अधिक होता है। ऐसे सोतों के जल में दस्त लाने, बल बढ़ाने या रक्तविकार आदि दूर करनेवाले खनिज द्रव्य मिले हुए होते हैं।

तप्तकुम्भ—संज्ञा पुं० [सं० तप्तकुम्भ] पुराणानुसार एक बहुत भयानक नरक जिसके विषय में यह माना जाता है कि वहाँ लोखते हुए तेल के कड़ाहे रहते हैं। उन्हीं कड़ाहों में दुराचारियों को यम के दूत फेंक दिया करते हैं।

तप्तकुच्छु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो बारह दिनों में समाप्त होता और प्रायश्चित्तस्वरूप किया जाता है।

विशेष—इसमें व्रत करनेवालों को पहले तीन दिन तक प्रतिदिन तीन पल गरम दूध, तब तीन दिन तक नित्य एक पल घी, फिर तीन दिन तक रोज छह पल गरम जल और व्रत में तीन दिन तक गरम वायु सेवन करना होता है। गरम वायु से तात्पर्य गरम दूध से निकलनेवाली भाप का है। यह व्रत करके से द्विजों के सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। किसी किसी के मत से यह व्रत केवल चार दिनों में किया जा सकता है। इसमें पहले दिन तीन पल गरम दूध, दूसरे दिन एक पल गरम घी और तीसरे दिन छह पल गरम जल पीना चाहिये और चौथे दिन उपवास करना चाहिये।

तप्तपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

तप्तवालुक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तप्तमाष—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की परीक्षा जिससे व्यवहार या अपराध आदि के संबंध में किसी मनुष्य के कथन की सत्यता मानी जाती थी।

विशेष—इसमें लोहे या ताँबे के बरतन में घी या तेल खीलाया जात था और परीक्षार्थी उस खोलते हुए घी या तेल में अपनी उँगली डालता था। यदि उसकी उँगली में घासे आदि न पड़ते तो वह सच्चा समझा जाता था।

४-४५

तप्तमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारका के शंख चक्रादिके ध्वनि जो तपाकर वैष्णव लोग अपनी भुजा तथा दूसरे अंगों पर दाग लेते हैं। चक्रमुद्रा।

विशेष—यह धार्मिक चिह्न माना जाता है और वैष्णव लोग इसे मुक्तिदायक मानते हैं।

तप्तरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] तपाई हुई और साफ चाँदी।

तप्तशुर्मा—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम जिसमें अगम्या स्त्री के साथ संभोग करनेवाले पुरुष और अगम्य पुरुषों के साथ संभोग करनेवाली स्त्रियाँ भेजी जाती हैं।

विशेष—इसमें उन पुरुषों और स्त्रियों को जलते हुए लोहे के खंभे आलिंगन करने पड़ते हैं।

तप्तसुराकुंड—संज्ञा पुं० [सं० तप्तसुराकुण्ड] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तप्ता^१—संज्ञा पुं० [सं० तप्त] १. तथा। २. अट्टी। ३.—निदान कई गहरे और एक भारी तमा जलाकर आवश्यक कृत्य आरंभ हो चला।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५२।

तप्ता^२—वि० तप्त करनेवाला।

तप्ताभरण—संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध सोने का गहना [को०]।

तप्तायन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तप्तायनी' [को०]।

तप्तायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो दीन दुखियों को बहुत सठाकर प्राप्त की जाय।

तप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] तप्त होने की अवस्था या भाव। गरमी। ताप [को०]।

तप्प^१—पुं० [हि० तप] दे० 'तप' उ०—साधक सिद्धि न पाय जो लहि साधि न तप्प। सोई जानहि बापुरो सीस जो करहि कनप्प।—अमरसी प्र० (गुप्त), पृ० १२१।

तप्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

तप्य^२—वि० [सं०] जो तपने या तपाने योग्य हो।

तफक्कुर—संज्ञा पुं० [अ० तफक्कुर] १. बिना। फिक्र। २. भयाणका। उ०—मेरी खुराक प्रागे से इस तफक्कुर में आधी हो गई।—आरतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५२२।

तफज्जुल—संज्ञा पुं० [अ० तफज्जुल] बढ़ाई। बढ़पन [को०]।

तफतीश—संज्ञा स्त्री० [अ० तफतीश] छावनी। खोज। गवेषणा। उ०—मैं दोड़ा हुआ पिता जी के पास गया। वह कहीं तफतीश पर जाने को तैयार लड़े थे। मान०, पृ० ३६।

तफरका—संज्ञा पुं० [अ० तफरकह] विरोध। वेपनस्थ।

क्रि० प्र०—डाखना।—पड़ना।

तफराका^१—संज्ञा पुं० [हि०] तमचा। उ०—होर मुसल्मानी के भूँ पर तफराक मारना गुनाह कबोरा है।—दक्खिनी०, पृ० ४०१।

तफरीक—संज्ञा स्त्री० [अ० तफरीक] १. जुदाई। भिन्नता। अल-हदगी। २. बाकी निकालना। घटाना (गणित)।

क्रि० प्र०—निकालना।

३. फरक। अंतर। ४. बंटबारा। बाँट। बँटाई (कापून)।

तफरीह—संज्ञा स्त्री० [घ० तफरीह] १. सुधी। प्रसन्नता। फरहत।
२. दिव्यबहुधाव। विस्मयो। हँसी। ठट्ठा। ३. हुवाओरी।
सैर। ताबापन। ताबगी।

तफरीहन—कव्य० [घ० तफरीहन] १. मनबहुधाव के लिये। २. हँसी
के लिये [को०]।

तफर्का—संज्ञा पुं० [घ० तफर्का या तफर्काह] १. फूट। परस्पर
विरोध। २. शत्रुता। दुश्मनी। ३. पुष्कता। अलगाव।
उ०—सगर इन बातों में जिस कदर तफर्का पड़ता जायगा,
सुखेवाले के दिव का असर बसलता चला जायगा। अ०,
पृ० ३१।

यौ०—तफर्का अंगसेज, तफर्का अंगेज, तफर्का परवान, तफर्का
पंखर—फूट डालनेवाला। तफर्का अंगेजी, तफर्का अबाजी,
तफर्का परबाजी, तफर्का पंखरी—फूट या विरोध डालना।

तफर्कज—संज्ञा स्त्री० [घ० तफर्कज] १. दरिद्रता और हीनता से
समृद्धि और उन्नति की ओर जाना। २. सैर। आनंद बिहार।
क्रीडा। भोतक। तमाशा। उ०—तफर्कज सते शाहुजावा
निकल। बरखा कामराबी का घर बिजलानल।—दक्खिनी०,
पृ० २७०।

यौ०—तफर्कज नाहू=सैर तमाशे का स्थान। क्रीडास्थल
विनोदस्थल।

तफसील—संज्ञा स्त्री० [घ० तफसील] १. विवृत वर्णन। २.
टीका। तफरीह। ३. सूची। फेहरिस्त। फर्द। ४. कैफियत।
व्योरा। बियरस।

तफसीर—संज्ञा स्त्री० [घ० तफसीर] कुरान शरीफ की टीका।
उ०—मो अमीर तफसीर सूरत नबम मे यह लिखता है।
—कबीर म०, पृ० ८७।

तफाउत—संज्ञा पुं० [घ० तफाउत] दे० 'तफावत'। उ०—पिदर पर
देखकर बरखा मुझे अब, अमानत में तफाउत में करो सब।
—दक्खिनी०, पृ० ३३६।

तफावज—संज्ञा पुं० [घ० तफावत] फर्क। तफावत। उ०—
उ०—सुर्खाव सुभ राम राखिए, नहीं तफावज रेह।—बाकी०
अ०, भा० ३, पृ० ७७।

तफावत—संज्ञा पुं० [घ० तफावत] १. अंतर। फर्क। २.
दूरी। फासिल।

तफसीर—संज्ञा पुं० [घ० तफसीर] १. व्याख्या। तफरीह। २.
किसी धर्मग्रंथ की व्याख्या या भाष्य। उ०—है तारीख व
तफसीर बहुतर, के अलहा बासी एक या खर।—दक्खिनी०,
पृ० २९०।

तब—अव्य० [त० तब] १. उस समय। उस वक्त।

विशेष—इस क्रि० वि० का प्रयोग प्रायः जब के साथ होता है।
जैसे,—जब तुम जाओगे, तब मैं चूँगा।

२. इस कारण। इस वजह से। जैसे,—मेरा उधर काम था तब
मैं गया, नहीं तो क्यों जाता ?

तब^२—संज्ञा स्त्री० [त० तब] १. ताप। तपन। गर्मी। २. ज्वर।
बुखार [को०]।

तबई^३—क्रि० वि० [त० तबई] तभी। उ०—जबई आनि परै
तहाँ, तबई ता सिर देखि।—नद० अ०, पृ० १३५।

तबक—संज्ञा पुं० [घ० तबक] १. आकाश के वे कल्पित खंड जो
पृथ्वी के ऊपर और नीचे माने जाते हैं। लोक। तल। २.
परत। तह। ३. चाँदी, सोने आदि धातुओं के पत्तों को
पीटकर कागज की तरह बनाया हुआ पतला चरक जो बहुधा
मिठाइयों आदि पर चपकाया और दवाओं में डाला जाता
है। ४. चौड़ी और छिछली वाली। ५. वह पूजा या उपचार
जो मुसलमान स्त्रियों परियों की बाधा से बचने के लिये करती
हैं। परियों की बमाज।

क्रि० प्र०—छोड़ना।

६. घोड़ों का एक रोग जिसमें उनके शरीर पर सूजन हो जाती
है। ७. रक्तविकार के कारण शरीर पर पड़ा हुआ दाग।
बकता।

तबकगर—संज्ञा पुं० [घ० तबक + गर] वह जो सोने चाँदी
आदि के तबक का पत्तर बनाता हो। तबकिया।

तबकड़ी—संज्ञा स्त्री० [घ० तबक + डी (प्रत्य०)] छोटी
रिकाबी।

तबकचा—संज्ञा पुं० [घ० तबक + चा (प्रत्य०)] छोटी रिकाबी [को०]।

तबकफाड़—संज्ञा पुं० [घ० तबक + फाड़] कुरान का एक पेंच।

विशेष—जब शत्रु पेट में घुस जाता है, तब पहलवान अपनी
दाहिनी टांग से उसके बाँध पैंत को भीतर से बाँधते हैं और
दोनों हाथों से उसकी दाहिनी टांग को बाँध की जगह
पकड़कर उसके दोनों पैंत फाड़ते हैं और दोका पाकर उसे
बिच कर देते हैं।

तबका—संज्ञा पुं० [घ० तबकह] १. खंड। विभाग। २. तह।
परत। ३. लोक। तल। ४. आदमियों का गरोह। ५. पद।
वतबा।

तबकिया^१—संज्ञा पुं० [घ० तबक + या (प्रत्य०)] वह जो सोने
चाँदी आदि के तबक या पत्तर बनाता हो। तबकगर।

तबकिया^२—वि० तबक संबंधी। जिसमें तबक या परत हों। जैसे
तबकिया हुरताल।

तबकिया हुरताल—संज्ञा पुं० [हि० तबकिया + हुरताल] एक प्रकार
की हुरताल जिसके टुकड़ों में तबक या परत दोने हैं। इसके
टुकड़े में से अलग अलग पगड़ियाँ सी उतरती हैं।

तबदील—वि० [घ० तबदील] जो बदला गया हो। परिवर्तित।

यौ०—तबदील आवांहुवा=बलवायु का बदलना। एक स्थान
से दूसरे स्थान पर जाना। तबदीले मूरत=(१) रूप या शक्ल
बदल जाना। (२) दुश्मिया बदलना। बहुरुपिया बनना।

तबदीली—संज्ञा स्त्री० [घ० तबदील + फा० ई (प्रत्य०)] १.
बदले जाने या परिवर्तित होने की क्रिया। बदली। परि-
वर्तन। २. स्थानांतरण [को०]। ३. उथल पुथल। क्रांति।

हनकिलाब (की०) । ५. किसी चीज के बदले में कोई दूसरी चीज लेना (की०) ।

तबद्दुल—संज्ञा पुं० [घ०] १. बदल जाना । बदलना । २. कांति । हनकिलाब ।

तबर—संज्ञा पुं० [फा०] १. कुल्हाड़ी । टांगी । २. कुल्हाड़ी की तरह का अड़ाई का एक हथियार ।

तबर—संज्ञा पुं० [देश०] मस्तूल के सबसे ऊपरी भाग में लगाई जानेवाली पाल जिसका व्यवहार बहुत हलकी हवा चलने के समय होता है ।

तबरदार—संज्ञा पुं० [फा०] कुल्हाड़ी या तबर चलानेवाला ।

तबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] तबर, कुल्हाड़ी या फरसा चलाने का काम ।

तबरक—संज्ञा पुं० [घ०] प्रसाद । आशीर्वाद रूप में प्राप्त हुई वस्तु (की०) ।

तबरी—[घ०] १. घृणा प्रकट करना । मफारत । २. वे दुश्मन जो शिया लोग मुसलमानों के पैगंबरों को कहते हैं । ३. मजहब विरोधियों के लिये गाया जानेवाला गीत (की०) ।

तबल—संज्ञा पुं० [फा०] १. बड़ा ढोल । २. नगाड़ा । डंका ।

तबलची—संज्ञा पुं० [घ० तबलह् + ची (प्रत्य०)] वह जो तबला बजाता हो । तबलिया ।

तबला—संज्ञा पुं० [घ० तबलह्] १. ताल देने का एक प्रसिद्ध बाजा जिसमें काठ के संबोते और लोखले कुंड पर गोल चमड़ा मढ़ा रहता है ।

विशेष—यह नमड़ा 'पुरी' कहलाता है और इसपर लोहचून, झर्वे, लोई, मरेस, मंगरेले और तेल को मिलाकर बनाई हुई स्याही की गोल टिकिया अच्छी तरह चमाकर चिकने पत्थर से छोटी हुई होती है । इसी स्याही पर आघात पड़ने से तबले में से आवाज निकलती है । कुंड पर रखकर यह पूरी चारों ओर चमड़े के फीते से, जिसे 'बड़ी' कहते हैं, कसकर बांध दी जाती है । इस बड़ी और कुंड के बीच में काठ की गुलियाँ भी रख दी जाती हैं जिनकी सहायता से तबले का स्वर आवश्यकतानुसार बढ़ाते या उतारते हैं । वातावरण अधिक ठंडा हो जाने के कारण भी तबला आपसे आप उतर जाता और अधिक गर्मी के कारण आपसे आप बढ़ जाता है । यह बाजा प्रकेन नहीं बजाया जाता, इसी तरह के और दूसरे बाजे के साथ बजाया जाता है जिसे 'बायाँ', 'ठेका' या 'हुगमी' कहते हैं । साधारणतः बोलचाल में लोग तबले और बाएँ को एक साथ मिलाकर भी केवल तबला ही कहते हैं । तबला दाहिने हाथ से और बायाँ बाएँ हाथ से बजाया जाता है ।

क्रि० प्र०—बजना ।—बजाना ।

मुहा०—तबला उतरना = तबले की बड़ी का ढीला पड़ जाना जिसके कारण तबले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे । तबला उतारना = तबले की बड़ी को ढीला करके या और किसी प्रकार पूरी पर का तनाव कम कर देना जिससे तबले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे । तबला ठनकना =

दे० 'तबला ठनकना' । तबला चढ़ना = तबले की बड़ी का कस जाना जिससे पूरी पर तनाव अधिक पड़ता है और स्वर ऊँचा निकलने लगता है । तबला चढ़ाना = तबले की बड़ी को कसकर पूरी पर का तनाव अधिक करना जिसमें तबले में से स्वर निकलने लगे । तबला ठनकना = (१) तबला बचना । (२) बाज रंग होना । तबला मिथाना = तबले की गुलियों को ऊपर नीचे हटा बढ़ाकर ऐसी स्थिति में लाना जिसमें पूरी पर चारों ओर से समान तनाव पड़े और तबले में से चारों ओर से कोई एक ही विशिष्ट स्वर निकले ।

पु० २. एक तरह का बर्तन । तबि या बीतल का एक पात्र । उ०—पुनि बरवा बरई तष्टी तबला झरी लोटा गावहि ।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० ७४ ।

तबलिया—संज्ञा पुं० [हि० तबला + इया (प्रत्य०)] वह जो तबला बजाता हो । तबलची ।

तबलीग—संज्ञा पुं० [घ० तबलीग] मजार । प्रसार । उ०—क्या यही वह इस्लाम है जिसकी तबलीग का दूने बीड़ा उठाया है ?—मान०, भा० १, पृ० १८४ ।

तबल्ल—संज्ञा पुं० [घ० तबलह्] दे० 'तबला' । उ०—किते बीर तोरा तबल्ल बनाए ।—ह० रासो, पृ० १४६ ।

तबस्ता(पु०)—संज्ञा पुं० [देश०] एक फूल का नाम । उ०—बन उनये हरियर होय फूला । केतक भिरंग तबस्ता फूला ।—हिंदी प्रेम०, पृ० २७७ ।

तबस्सुम—संज्ञा पुं० [घ०] मुस्कुराहट (की०) ।

तबह—वि० [फा० तबाह का अष्ट रूप] दे० 'तबाह' (की०) ।

यौ०—तबहकार = तबाहकार । तबहहाल = तबाह हाल ।

तबा—संज्ञा पुं० [घ० तिबाय] १. प्रकृति । २. प्रतिष्ठा । उ०—मिसाल हूर के तन यो अमृत है जान, तबा याव की दीडकर कर पछान ।—दक्खिनी०, पृ० २४३ ।

तबाअत—संज्ञा स्त्री० [घ०] मुद्रण छपाई । उ०—'प्रेम बत्तीसी' की तबाअत अभी शुरू नहीं हुई ।—प्रेम० गो०, पृ० ५२ ।

तबाक—संज्ञा पुं० [घ० तबाक] बड़ा पाल । परात ।

यौ०—तबाकी कुत्ता = केवल खाने पीने का साथी । वह जो केवल अच्छी दशा में साथ दे और आपत्ति के समय अलग हो जाय ।

तबाख—संज्ञा पुं० [घ० तबाक, हि०] दे० 'तबाक' ।

तबाखी—संज्ञा पुं० [हि० तबाख] वह जो परात में रखकर सोदा बेचता है ।

यौ०—तबाखी कुत्ता = स्वार्थी मित्र ।

तबादला—संज्ञा पुं० [घ० तबादुल या तबादनह्] १. बदली स्थानीतरण । २. परिवर्तन । उ०—मामने को सब समझा हो या झूठ, मुन्गी का बहुरहाल तबादला हो गया । बरखास्त होते होते बच्चे, यह उन्होंने अपना सोभाग्य समझा ।—काले०, पृ० १७ ।

तबावत—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिकित्सा । वैद्यक ।

तबाशीर—संज्ञा पुं० [सं० तबशीर] बंसलोवन ।

तबाह—वि० [फ्रा०] १. जो नष्टभूत या बिलकुल खराब हो गया हो। नष्ट। बरबाद। चोपट। २. जनशून्य। निर्जन (को०)। ३. निकृष्ट। खराब (को०)। ४. दुर्दशाग्रस्त। बदहाम (को०)।
यौ०—तबाहकार = (१) तबाही मचानेवाला। विनाशकारी। क्षत्पाकारी। (२) कदाचारी। बदचलन। तबाह रोजगार = कामचक्रग्रस्त। दुर्दशापीडित। तबाह ह्याल = (१) दुर्दशाग्रस्त (२) निर्जन। खरिद।

तबाही—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] नाश। बरबादी। प्रघःपतन।
क्रि० प्र० घाना।

मुहा०—तबाही खाना = जहाज का टूट फूटकर रह जा होना।—(लश०)। तबाही पड़ना = जहाज का काम के लिये मुहताज रहना। जहाज को काम न मिलना।—(लश०)।

तबीघत—संज्ञा स्त्री० [अ० तबीघत] दे० 'तबीघत'।
तबी—अव्य० [हि०] तभी। तब ही उ०—'तो तबी कि जब उनपर.....'।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० २५३।

तबीघत—संज्ञा स्त्री० [अ० तबीघत] १. चित्त। मन। जी।
मुहा०—(किसी पर) तबीघत घाना = (किसी पर) प्रेम होना। भाषिक होना। (किसी चीज पर) तबीघत घाना = (किसी चीज को) लेने की इच्छा होना। तबीघत उसभना = जी घबराना। तबीघत खराब होना = (१) बीमारी होना। स्वास्थ्य बिगड़ना। (२) जी मचलाना। तबीघत फड़क उठना = चित्त का उत्साहपूर्ण धीर प्रसन्न हो जाना। उमंग के कारण बहुत प्रसन्न होना। तबीघत फड़क जाना = दे० 'तबीघत फड़क उठना'। तबीघत फिरना = जी हटना। अनुराग न रहना। तबीघत बिगड़ना = दे० 'तबीघत खराब होना'। तबीघत भरना = (१) मनोष होना। तसल्ली होना। (२) सतोष करना। तसल्ली करना। जैसे,—हमने अच्छी तरह उनकी तबीघत भर दी, तब उन्होंने रुपए लिए। (३) मन भरना। अनुराग या इच्छा न रहना। जैसे,—अब इन कामों से हमारी तबीघत भर गई। तबीघत लगना = (१) मन में अनुराग उत्पन्न होना। (२) स्थान लगा रहना। ध्यान लगा रहना। जैसे,—इसपर कई दिनों से उनकी चिट्ठी नहीं आई, इससे तबीघत लगी हुई है। तबीघत लगाना = (१) चित्त को किसी काम में प्रवृत्त करना। जैसे,—तबीघत लगाकर काम किया करो। (२) प्रेम करना। मुहब्बत में फँसना। तबीघत होना = अनुराग या प्रवृत्ति होना। जी चाहना।

२. बुद्धि। समझ। भाव।

मुहा०—तबीघत पर जोर डालना = विशेष ध्यान देना। तबज्जह करना। जैसे,—जब तबीघत पर जोर डाला करो, अच्छी कविता करने लगोगे। तबीघत लड़ाना = दे० 'तबीघत पर जोर डालना'।

यौ०—तबीघतदार। तबीघतदारी।

तबीघतदार—वि० [अ० तबीघत + फ्रा० दार (प्रत्य०)] १. जो भावों को घट ग्रहण करता हो। समझदार। २. आवुक। रसिक। रसज्ञ।

तबीघतदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तबीघत + फ्रा० दारी (प्रत्य०)] १. होशियारी। समझदारी। २. आवुकता। रसज्ञता।

तबीघ—संज्ञा पु० [अ०] वैद्य। चिकित्सक। हकीम। उ०—तब तबीघ तसलीम करि लै घरि।

तबीन—संज्ञा पु० [अ० ताबन्] ताबेदार। सेवक। उ०—पसदू ऐसी साहिबी साहब रहे तबीन। दुइ पासाही फकर की इक दुनियाँ इक बीन।—पसदू०, भा० १, पृ० ६३।

तबेला—संज्ञा पु० [अ० तबेलह] वह स्थान जहाँ थोड़े बाँधे जाते धीरे गाड़ी, एक्के आदि सवारियाँ रखी जाती हों। अस्तबल। घुड़सा।

मुहा०—तबेले में लट्टी चलाना = विशिष्ट कार्य करने में अड़चन उपस्थित होना।

तबेला—संज्ञा पु० [हि० ताबा] ताबे का एक पात्र।

तबेली(पु)—क्रि० अ० [फ्रा० ताब (= ताप) + हि० एली (प्रत्य०)] छटपटाना। तालाबेली। उ०—कहा करौ कैसें मन समझाऊँ व्याकुल जियरा धीर न धरत लागिय रहति तबेली।—घनानंद, पृ० ४८०।

तबोताब—संज्ञा पु० [सं० तप + फ्रा० ताब] रंजोगम। गरमी। उ०—माल से उसको बस है वह तबोताब। के होय महशर में उसको तूले हिसाब।—दक्खिनी०, पृ० २१६।

तबोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बोल] पान। लगाया हुआ पान। उ०—प्रधर प्रधर सों भीज तबोरी। झलका डरि मुरि मुरि गो मोरी।—जायसी श्रं० (गुप्त), पृ० ३४२।

तबौ(पु)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तऊ'। उ०—सहस्र घटासी मुनि जी जेवें तबो न घटा बाँधै। कहहि कबीर सुपच के जेए, घंट मगन ह्वै गावै।—कबीर (शब्द०)।

तब्ब—अव्य० [हि०] दे० 'तब'। उ०—गही क्यों न अब्बं। कहै नैन तब्बं।—ह० रासो, पृ० १३६।

तब्बर(पु)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तबर'।

तभी—अव्य० [हि० तब+ही] १. उस समय। २. उसी वक्त। उसी घड़ी। जैसे,—जब तुम नहीं आए, तभी मैंने समझ लिया कि दाल में कुछ काला है। २. इसी कारण। इसी वजह से। जैसे,—तुम्हारा उधर काम था, तभी तुम गए।

तमंग—संज्ञा पु० [सं० तमङ्ग] १. रंगमंच। २. मंच (को०)।

तमंगक—संज्ञा पु० [सं० तमङ्गक] छत या छाजन का भाग निकला हुआ भाग (को०)।

तमन्चा—संज्ञा पु० [फ्रा० तमंचह] १. छोटी बंदूक। पिस्तौल।

क्रि० प्र०—खलाना।—दागना।—मारना।—छोड़ना।

यौ०—तमंचे की टाँग = कुश्ती का एक पेंच जिसमें शत्रु के पेट में घुस घाने पर बाँध हाथ से कमर पर से उसका लँगोट पकड़ लेते हैं और उसकी दाहिनी बगल से अपना बायाँ पाँव चढ़ाकर पीठ पर से उसकी बाईं जाँघ फँसाते और उसे चित कर देते हैं २. एक लंबा पत्थर जो दरवाजों की मजबूती के लिये बगल में लगाया जाता है।

तमः—संज्ञा पु० [सं०] तमस् का समस्तपर्वों में प्रयुक्त रूप।

यौ०—तमःप्रभ, तमःप्रभा=एक नरक। तमःप्रवेश=(१) अंधेरे में टटोलना। (२) विषाद।

तम^१—संज्ञा पुं० [सं० तमः, तमस्] १. अंधकार। अंधेरा। २. पैर का अगला भाग। ३. तमाल वृक्ष। ४. राहु। ५. वराह। सुधर। ६. पाप। ७. क्रोध। ८. अज्ञान। ९. कालिदास। कालिमा। श्यामता। १०. नरक। ११. मोह। १२. सांख्य के अनुसार अविद्या। १३. सांख्य के अनुसार प्रकृति का तीसरा गुण जो भारी और रोकनेवाला माना गया है।

विशेष—जब मनुष्य में इस गुण की अधिकता होती है, तब उसकी प्रवृत्ति काम, क्रोध, हिंसा आदि नीच और बुरी बातों की ओर होने लगती है।

तम^२—वि० १. काला। दूषित। बुरा [को०]।

तम^३—वि० [सं० तमय] एक प्रकार का प्रत्यय, जो विशेषण शब्दों में लगने पर प्रतिशय या सबसे अधिक का अर्थ प्रकट करता है जैसे, क्रूरतम, कठिनतम।

तम^४—सर्व० [सं० त्वाम्, हि० तुम, गुञ० तम] दे० 'तुम'। उ०—हाहुनि राय हमीर सलष पांमार जैत तम। कछो राज हम मात तात अपी बिली तम।—पृ० रा०, १८।६।

तमश्च—संज्ञा स्त्री० [घ० तमश्च] १. लालच। लोभ। हिंस्र। २. जाहू। इच्छा। स्वादिष्ट।

तमक^१—संज्ञा पुं० [हि० तमकना] १. जोश। उद्वेग। २. तेजी। तीव्रता। ३. क्रोध। गुस्सा।

तमक^२—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार श्वास रोग का एक भेद। विशेष—इसमें दम फूलने के साथ साथ बहुत व्यास लगती है, पसीना आता है, जो मिचलाता है और गले में घरघराहट होती है। जिस समय आकाश में बादल छाए हों, उस समय इसका प्रकोप अधिक होता है।

तमकनत—संज्ञा स्त्री० [घ०] १. इज्जत। प्रतिष्ठा। २. गौरव। ३. गौरव का अनुचित प्रदर्शन। ४. आहंकार। ५. घमंड। गकर [को०]।

तमकना—क्रि० घ० [अनु०] १. क्रोध का आवेश दिखलाना। क्रोध के कारण उछल पड़ना। उ०—अंजन त्रास तजत तमकत तकि तानत दरसन डीठि। हारेह नहि हटत अमित बल बदन पयोधि पईठ।—सूर (शब्द०) २. दे० 'तमतमाना'।

तमकश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें कंठ रुक जाता है और घरघराहट होती है।

विशेष—इसके उत्पन्न होने से प्रायः रोगी के मर जाने का भी भय होता है।

तमका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृग्यामलकी। मुई माँबला [को०]।

तमकाना—क्रि० स० [हि० तमकना का प्रेरण] तमकने में प्रवृत्त कराना।

तमकि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तमक] दे० 'तमक'। उ०—सतगुर मिलिमें तमकि मिटि जाई। नानक तपसी की मिली बड़ाई।—माखण्ड, पृ० १०।

तमगा—संज्ञा पुं० [तु० तमगह्] पक्क। तगमा। मेडल।

तमगुन^१—संज्ञा पुं० [सं० तमोगुण] दे० 'तमोगुण'।

तमगेही^१—वि० [सं० तमगेहिन्] अंधकार में घर बनानेवाला। अंधकार में रहनेवाला [को०]।

तमगेही^२—संज्ञा पुं० पतंगा।

तमचर—संज्ञा पुं० [सं० तमीचर] १. राक्षस। निशाचर। २. उलूक। उरलू।

तमचुर^१—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूर] मुरगा। कुक्कुट। उ०—(क) सुनि तमचुर को सोर घोस की बागरी। नवसत साजि सिंगार चली ब्रज नागरी।—सूर (शब्द०)। (ख) ससि कर हीन छीन दुति तारे। तमचुर मुखर सुनहु मोरे प्यारे।—तुलसी (शब्द०)।

तमचूर^२—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूर, हि० तमचुर] दे० 'तमचुर'। उ०—(क) बोले लागे ठौर ठौर तमचूर। हुहि बोली री पिक बैनी।—तंद० घं०, पृ० ३६७। (ख) बिल राखे नहि होत अंगूर। सबद न देइ बिरह तमचूर।—जायसी (शब्द०)।

तमचोर^१—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूर] दे० 'तमचुर'।

तमच्छन्न—वि० [सं० तमस् (श्) + च्छन्न] तम से आच्छादित। अंधकारमय। उ०—अन्य माकसं! चिर तमच्छन्न। पृथ्वी के सव्य शिखर पर, तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।—युगवाणी, पृ० ३८।

तमजित्—वि० [सं०] अंधकार को जीतनेवाला। उ०—बाँधो, बाँधो किरणें चेतन, तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन।—अपरा, पृ० २०६।

तमत—वि० [सं०] १. इच्छुक। अभिलाषी। २. वांछित। चाहता हुआ [को०]।

तमतमाना—क्रि० घा० [सं० ताम्र] १. धूप या क्रोध आदि के कारण चेहरा लाल हो जाना। २. चमकना। दमकना। (कव०)।

तमतमाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० तमतमाना] तमतमाने का भाव।

तमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तम का भाव। २. अंधेरा। अंधकार।

तमदुत्तुन—संज्ञा पुं० [सं०] १. शहर में एक स्थान पर मिल जुलकर रहना और वहाँ की व्यवस्था करना। नागरिकता। २. किसी की वेशभूषा, रहन सहन का ढंग और आचार व्यवहार। सभ्यता [को०]।

तमन—संज्ञा पुं० [सं०] दम घुटने की अवस्था [को०]।

तमना^१—क्रि० घ० [हि०] दे० 'तमकना'।

तमन्ना—संज्ञा स्त्री० [घ०] आकांक्षा। इच्छा। स्वादिष्ट। कामना। अभिलाषा। उ०—दिल लाखों तमन्ना उस पै और ज्यादा हवस। फिर ठिकाना है कहाँ उसके ठिकाने के लिये।—तुलसी० श०, पृ० ४।

तमप्रभ—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तमयी—संज्ञा स्त्री० [सं० तमी अथवा तममयी] रात।

तमरंग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नीबू जिसे 'तुरंग' कहते हैं।

विशेष—१० 'तुरंग'।

तमर^१—संज्ञा पुं० [सं०] बंग।

तमर^२—संज्ञा पुं० [सं० तम] अंधकार। अंधेरा।

तमराज—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की लीज जो वृक्ष में उबर, राह तथा पिलनाशक मानी गई है।

तमलूक—संज्ञा पुं० [हि० तामलूक] १० 'तामलूक'।

तमलेट—संज्ञा पुं० [सं० तमल] १. लुक फेरत हुआ टीन या लोहे का बरतन। २. फोड़ी तियाहियों का लोटा।

तमसू—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार। २. अज्ञान का अंधकार। ३. प्रकृति का एक गुण। तमोगुण। १० 'गुण'।

तमस^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार। २. अज्ञान का अंधकार। ३. पाप। ४. नयन। ५. कूप। कृपा।

तमस^२—वि० काले रंग का। श्याम वर्ण का (को०)।

तमसा^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० तमसा] ६. तमसा नदी। टीस। उ०—घाघो तमसा नदी के तीरा। तब लाटिल परिहार सुबीरा।—रघुराज (शब्द०)।

तमसना^(१)—क्रि० प्र० [हि०] १० 'तमसना'। उ०—तमसि तमसि सामंत जाइ पर बीर सुख्यो। उमय पुता इक बधु मोम भीरव बल बंध्यो।—पृ० रा०, १२।१३।

तमसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] टीस नाम की नदी। दे० 'टीस'।

विशेष—इस नाम की तीन नदियाँ हैं।

तमसाच्छन्न—वि० [सं०] अंधकार से ढका हुआ। उ०—उसे अपनी माता के तरकाल न घर जाने पर भुंक्नाहट सी हो रही थी। तमोर अधिक शीतल हो चला। प्राची का आकाश स्पष्ट होने लगा, पर अग्नीषा का अस्पष्ट तमसाच्छन्न था।—इंद्र०, पृ० ११०।

तमसावृत—वि० [सं०] अंधकार से घिरा हुआ। उ०—मानव उर का मंदिर, तब से भीतर से तमसावृत।—युगपथ, पृ० १०३।

तमसील—संज्ञा स्त्री० [सं० तमसील] १. उपमा। तुलना। २. समानता। बराबरी। ३. छटा। उदाहरण। मिमांसा। उ०—याने इसका तमसील यूँ है।—दक्खिनी०, पृ० ३६५।

तमस्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधेरा। २. विषाद। स्तानता (को०)।

तमस्कांड—संज्ञा पुं० [सं० तमस्काण्ड] घना अंधेरा। भारी अंधेरा (को०)।

तमस्सुर—संज्ञा पुं० [सं० तमस्सुर] मस्खरापन। उ०—उसके मिजाज में अराकन और तमस्सुर जियादा है।—प्रेमधन०, भाग २, पृ० १०२।

तमस्तति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंधकार की अधिकता। अंधकार का बाहुल्य। (को०)।

तमस्तरण—वि० [सं०] अंधकार को तरने या पार करनेवाला। उ०—मग डगमग पग, तमस्तरण जागे जग।—अर्चना, पृ० १४।

तमस्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १० 'तमस्विनी'।

तमस्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि। रात। रजनी। २. हल्की।

तमस्वी—वि० [सं० तमस्विन्] अंधकारयुक्त। अंधकारपूर्ण (को०)। तमस्सुक—संज्ञा पुं० [सं०] वह कागज जो ऋण लेनेवाला ऋण के प्रमाण स्वरूप लिखकर महाजन को देता है। वस्तावेज। ऋणपत्र। लेख।

तमहंडी—संज्ञा स्त्री० [हि० तंवा + हंडी] हंडी के आकार का तांबे का एक प्रकार का छोटा बरतन।

तमहर—संज्ञा पुं० [हि० तम + हर] दे० 'तमोदूर'।

तमहाया—वि० [सं० तम + हि० हाया] १. अंधकारवाला। २. तमोगुणी।

तमहीद—संज्ञा स्त्री० [सं० तमहीद] वह जो कुछ किसी विषय को प्रारंभ करने से पहले किया जाय। भूमिका। दीवाचा।

क्रि० प्र०—बाँधना।

तमाचा—संज्ञा पुं० [फा० तमाचट] दे० 'तमाचा'।

तमा^१—संज्ञा पुं० [सं० तमाः, तमस] राह।

तमा^२—संज्ञा स्त्री० रात। रात्रि। रजनी।

तमा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० तमय] दे० 'तमय'।

तमा—संज्ञा स्त्री० [फा० तमाम] दे० 'तमाम'। उ०—तमा दुनिया की जर पर कर बहु बंदजत। उग्रवा दीन से इकबारगी हात।—दक्खिनी०, पृ० १६०।

तमाइ^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० तमय] दे० 'तमय'। उ०—(क) लोक परलोक बिलोक में तिलोक ताहि तुलसी तमाइ कहा काहू वीर धान की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) घाय कीन तप खप कियो न तमाइ जोग लाग न गिराव त्याग तीरथ न तन की।—तुलसी (शब्द०)।

तमाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] खेत जोतने से पूर्व उममें की घास आदि साफ करना।

तमाई^३—संज्ञा स्त्री० [सं० तम + हि० आई (प्रत्यय०)] १. अंधेरा। श्यामता। ताम्रता। २. अज्ञान। उ०—साहब मिल साहब भय कुछ रही न तमाई। कहै मनुक निम घर गए जह पवन न जाई।—मत्स्य० पृ० ७।

तमाकू—संज्ञा पुं० [पुर्त० टोरेरो] १. सोन से छद्म फुट तक ऊँचा एक प्रसिद्ध पीधा जो एशिया, अमेरिका तथा उत्तर युरोप में अधिकता से होता है। तंबाकू।

विशेष—इसकी अनेक जातियाँ हैं, पर खाने या पीने के काम में केवल ५-६ तरह के पत्ते ही पकते हैं। इसके पत्ते २-३ फुट तक लंबे, विषाक्त और नमीले होते हैं। भारत के मिश्र भिन्न प्रांतों में इसके बोने का समय एक दूसरे से भिन्न है, पर बहुधा यह कुआर, काठिया में लेकर पूरा तक बोया जाता है। इसके लिये वह जमीन उपयुक्त होती है जिसमें खार अधिक हो। इसमें खाद की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। जिस जमीन में यह बोया जाता है, उसमें साल में बहुधा केवल इसी की एक फसल होती है। पहले इसका बीज बोया जाता है और जब इसके अंकुर ५-६ इंच के ऊँचे हो जाते हैं, तब इसे दूसरी जमीन में, जो पहले से कई बार बहुत

एक ही तरह होती हुई होती है, तीन तीन फुट की दूरी पर रोपते हैं। भारत से इसमें सिगार की भी बहुत अधिक आवश्यकता होती है। इसके फूलने से पहले ही इसकी कलियाँ धीरे नीचे के पत्ते छूट दिए जाते हैं। जब पत्ते कुछ पीले रंग के हो जाते हैं धीरे उसपर चिलियाँ पड़ जाती हैं, तब या तो ये पत्ते काट लिए जाते हैं या पूरे पीधे हो काट लिए जाते हैं। इसके बाद वे पत्ते धूप में सुखाए जाते हैं और अनेक रूपों में काम में आए जाते हैं। इसके पत्तों में अनेक प्रकार के कीड़े लगते हैं और रोग होते हैं।

सोलहवीं शताब्दी से पहले तमाकू का व्यवहार केवल अमेरिका के कुछ भागों के आदिम निवासियों में ही होता था। सन् १४९२ में जब कोलंबस पहले पहल अमेरिका पहुँचा, तब उसने वहाँ के लोगों को इसके पत्ते चबाते और इसका धूँआँ पीते हुए देखा था। सन् १५३६ में स्पेनवाले इसे पहले पहल यूरोप के गए थे। भारत में इसे पहले पहल पुर्तगाली वादरी लाए थे। सन् १६०५ में इसे मसदवेय के बीजापुर (दक्षिण भारत) में देखा था और वहाँ से वह अपने साथ दिल्ली ले गया था। वहाँ उसने इसके धीरे धीरे चिलिम पर रखकर इसे धकड़ को पिलाना चाहा था, पर हुकोंगों ने मना कर दिया। पर आगे चलकर धीरे धीरे इसका प्रचार बहुत बढ़ गया। भारत में दक्खिन, फ्रांस तथा भारत आदि सभी देशों में राज्य की ओर से इसका प्रचार रोकने के अनेक प्रयत्न किए गए थे, धर्माधिकारियों और चिकित्सकों ने भी इसका प्रचार रोकने के अनेक उद्योग किए थे, पर वे सब निष्फल हुए। अब समस्त संसार में इसका इतना अधिक प्रचार हो गया है कि स्त्रियाँ, पुरुष, बच्चे और बुढ़े प्रायः सभी किसी न किसी रूप में इसका व्यवहार करते हैं। भारत की गलियों में छोटे छोटे बच्चे तक इसे खाते या पीते हुए देखे जाते हैं।

२. इस पेड़ का पत्ता। सुरती।

विशेष—इसका व्यवहार लोग अनेक प्रकार से करते हैं। चूर करके खाते हैं, सूँघते हैं, धूँआँ खींचने के लिये नली में या चिलिम पर जलाते हैं। हममें नशा होता है। भारत में धूँआँ पीने के लिये एक विशेष प्रकार से तमाकू तैयार किया जाता है (दे० तीसरा अर्थ)। इनका बहुत महीन चूर्ण सूँघनी कहलाता है जिसे लोग सूँघते हैं। भारत के लोग इसके पत्तों को सुखाकर पान के साथ अथवा यों ही खाने के लिये कई तरह का चूरा बनाते हैं, जैसे, सुरती, जगदा भाबि। पान के साथ खाने के लिये इसकी गीली गोली बनाई जाती है और एक प्रकार का धबलेह भी बनाया जाता है जिसे 'किबाम' कहते हैं। इस देश में लोग इसके सुखे पत्तों को घूने के साथ मलकर मुँह में रखते हैं। चूना मिलाने से यह बहुत तेज हो जाता है। इस रूप में इसे 'खैनी' या 'सुरती' कहते हैं। यूरोप, अमेरिका आदि देशों में इसके चूरे को कागज या पत्तों आदि में लपेटकर सिगार या सिगरेट बनाते हैं। इसका व्यवहार नशे के लिये किया जाता है और इससे स्वास्थ्य और विशेषतः आँखों को बहुत हानि पहुँचती है। वैद्यक में यह तीक्ष्ण,

गरम, कड़वा, मद और बमनकारक तथा दृष्टि को हानि पहुँचानेवाला माना जाता है।

३. इन पत्तों से तैयार की हुई एक प्रकार की गोली पिंडी जिसे चिलिम पर जलाकर मुँह से धूँआँ खींचते हैं।

विशेष—पत्तियों के साथ रेह मिलाकर जो तमाकू तैयार होता है, वह 'कहुआ' कहलाता है, गुड़ मिलाकर बनाया हुआ 'भीठा' कहलाता है, धीरे कटहल, बेर आदि की खमीर मिलाकर बनाया हुआ 'खमीरा' कहलाता है। इसे चिलिम पर रखकर उसके ऊपर कोयले की आग या सुलगती हुई टिकिया रखते हैं और खाली हाथ गौरिए अथवा हुक्के पर रखकर नली से धूँआँ खींचते हैं।

मुहा०—तमाकू चढ़ाना = तमाकू को चिलिम पर रखकर धीरे उसपर आग या टिकिया रखकर उसे पीने के लिये तैयार करना। तमाकू पीना = तमाकू का धूँआँ खींचना। तमाकू भरना = दे० 'तमाकू चढ़ाना'।

तमाखू—एक पुं० [हि०] दे० 'तमाकू'।

तमाचा—संज्ञा पुं० [फ्रा० तमंचह] हुथेली और उंगलियों से गाल पर किया हुआ प्रहार। थपड़। गप्पड़।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—मारना।—लगाना।

तमाचारी—संज्ञा पुं० [सं० तमाचाग्नि] राक्षस। दंश्य। निगिचर।

तमादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अवधि बीत जाना। मुदत या मियाद गुजर जाना। २. उस अवधि का बीत जाना जिसके अंदर सेन देन संबंधी कोई काबूनी कार्रवाई हो सकती हो। उस मुदत का गुजर जाना जिसके अंदर अदालत में किसी दावे की सुनवाई हो सकती हो।

क्रि० प्र०—हाना।

तमान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धेरदार पाजामा जिसकी मोहरी नीचे से तंग होती है।

तमाना—क्रि० प्र० [सं० तम सं नाभिक वातु] ताव में घाना। भावेश में घाना।

तमाम—वि० [सं०] १. पूरा। संपूर्ण। कुल। सारा। बिल्कुल। जैसे,—(क) दो ही बरस में तमाम रुपए फूँक दिए। (ख) तमाम शहर में बीमारी फैली है। २. समाप्त। खतम।

मुहा०—तमाम होना = (१) पूरा होना। समाप्त होना। (२) मर जाना।

तमामी—संज्ञा स्त्री० [सं० तमाम + फ्रा० ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का देशी रेखमी कपड़ा।

विशेष—इसपर कलाबत्त की धारियाँ होती हैं। यह प्रायः गोट लगाने के काम में आता है।

तमारा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तैयार'।

तमारि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। दिनकर। रवि।

तमारि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तैयार'। उ०—पल में पल रूप बीतिया लोगन खी तमारि।—कबीर (शब्द०)।

तमारी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमारि'। उ०—संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि ईंदु तमारी।—मानस, ७। १२१।

तमारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तमिरा' ।

तमाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीस पचीस फुट ऊँचा एक बहुत सुंदर सदाबहार वृक्ष जो पहाड़ों पर और जमुना के किनारे भी कहीं कहीं होता है ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है, एक साधारण और दूसरा श्याम तमाल । श्याम तमाल कम मिलता है । उसके फूल काल रंग के और उसकी लकड़ी घाबलूस की तरह काली होती है । तमाल के पत्ते गहरे हरे रंग के होते हैं और शरीर के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं । वैसाख के महीने में इसमें सफेद रंग के बड़े फूल लगते हैं । इसमें एक प्रकार के छोटे फल भी लगते हैं जो बहुत अधिक लट्टे होने पर भी कुछ स्वादिष्ट होते हैं । ये फल सावन भादों में पकते हैं और इन्हें गीबड़ बड़े चाव से खाते हैं । श्याम तमाल को वैद्यक में कसेला, मधुर, बलवीर्यवर्धक, शरीर, शीतल, श्रम, शोथ और साह को दूर करनेवाला तथा कफ और पित्ताशक माना है ।

पर्या०—कालस्कंध । तापिरथ । धर्मतद्रुम । लोकस्कंध । नीलवज्र । नीलताल । तापिज । तम । तथा । कालताल । महाबल ।

२. तेजपत्ता । ३. काले खैर का वृक्ष । ४. बीस की छाल । ५. बरुण वृक्ष । ६. एक प्रकार की तलवार । ७. तिलक का पेड़ । ८. हिमालय तथा दक्षिण भारत में होनेवाला एक प्रकार का सदाबहार पेड़ ।

विशेष—इसमें से एक प्रकार का गोंध निकलता है जो घटिया रेबड़ चीनी की तरह का होता है । इसकी छाल से एक प्रकार का बड़िया पीला रंग निकलता है । पुस, माघ में इसमें फल लगता है जिसे लोग यों ही खाते जबकि इसकी तरह दाल तरकारियों में डालते हैं । इसका व्यवहार शोष में भी होता है । लोग इसे सुलाकर रखते और इसका सिरका भी बनाते हैं । इसे मन्डोला और उमवेख भी कहते हैं ।

१. मुरली (को०) । १०. तमाल के बीज के रस और चंदन का तिलक (को०) ।

तमालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपत्ता २. तमाल वृक्ष । ३. बीस की छाल । ४. चोपत्तया साग । सुमना साग ।

तमालपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तमाल का पत्ता । २. मुरली का पत्ता । ३. सांप्रदायिक तिलक (को०) ।

तमाला—संज्ञा पुं० [हि० तमारा] मालों में घोंबियारी छा जाना । चकाचीर । उ०—होस उड़े फाटे हियो, पड़े तमाला धाय । देखे जुब तसवीर बग, मावड़िया मुरझाय ।—बाँकी प्र०, भा० २, पृ० १७ ।

तमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुई घाँवला । भूम्यामलकी । २. ताम्रवल्ली नाम की लता ।

तमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ताम्रलित देश का एक नाम । २. भूम्यामलकी । मुई घाँवला । ३. काले खैर का वृक्ष । कृष्ण खडिर । ४. वह भूमि जहाँ तमाल के वृक्ष अधिक हों (को०) ।

तमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बरुण वृक्ष । २. ताम्रवल्ली नाम की लता जो चित्रकूट में बहुत होती है ।

तमाशबीन—संज्ञा पुं० [फ़ा० तमाश + बीन] दे० 'तमाशबीन' ।

तमाशबीन—संज्ञा पुं० [फ़ा० तमाशा + फ़ा० बीन] १. तमाशा देखनेवाला । सेलानी । २. रंडीबाज । वेश्यागामी । ऐयाश ।

तमाशबीनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तमाशबीन + ई (प्रत्य०)] रंडीबाजी । ऐयाशी । बदकारी । उ०—फारसी पढ़ने से इश्कबाजी तमाशबीनी और घय्याशी ।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ८२ ।

तमाशा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. वह दृश्य जिसे देखने से मनोरंजन हो । चित्र को प्रसन्न करनेवाला दृश्य । जैसे, मेला, थिएटर, नाच, घातिशबाजी आदि । उ०—मद मोलक जब खुलत हैं तेरे दृग गजराज । भाई तमासे जुरत हैं नैही नैन समाज ।—रसनिधि (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—देखना ।—दिखाना ।—होना ।

२. मद्भुत व्यापार । विलक्षण व्यापार । अनोखी बात ।

मुहा०—तमाशे की बात = प्राश्चर्य भरी और अनोखी बात ।

यो०—तमाशागर = तमाशा करनेवाला । तमाशागाह = कीड़ा-स्थल । कीठुकामार । तमाशबीन = तमाशा देखनेवाला ।

तमाशाई—संज्ञा पुं० [फ़ा० तमाशा + फ़ा० ई (प्रत्य०)] तमाशा देखनेवाला । वह जो तमाशा देखता हो ।

तमास^(७)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमाशा' । उ०—काहू संग मोह नहि ममता देखहि निपंष भये तमास ।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० १५५ ।

तमासा^(७)—संज्ञा पुं० [फ़ा० तमाशा] । उ०—मेहर की आसा तमासा भी मेहर का, मेहर का आब दिल को पिलाइए ।—कबीर दे०, पृ० ३४ ।

तमाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] तात्तोलपत्र (को०) ।

तमि—संज्ञा पुं० [सं०] १. रात । २. मोह ।

तमिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

तमिल^१—संज्ञा पुं० [देश०] तमिल भाषा का प्रदेश । २. तमिल भाषाभाषी ।

तमिल^२—संज्ञा स्त्री० १. तमिल जाति । २. तमिल जाति की भाषा । वि० दे० 'तमिल' ।

तमिल^३—वि० रात्रि में विचरण करनेवाला (को०) ।

तमिसरा^(७)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तमिल' । उ०—रवि परभात करोखे उवा । गयउ तमिसरा बासर हुआ ।—इंद्रा०, पृ० ८०

तमिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार । अंधेरा । २. क्रोध । गुस्सा । ३. पुराणानुसार एक नरक का नाम । ४. अज्ञान । मोह (को०) ५. कृष्ण पक्ष (को०) ।

तमिलपत्त—संज्ञा पुं० [सं०] किसी मास का कृष्ण पक्ष । अंधेरा पक्ष ।

तमिल्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अंधेरी रात । २. गहरी अंधेरा या अंधकार (को०) ।

तमी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. रात । रात्रि । निशा । २. हरिद्रा । हलदी ।

तमीचर^१—संज्ञा पुं० [सं०] निशाचर । राक्षस । ब्रह्म । अनुज ।

तमीचर^२—वि० रात्रि में विचरण करनेवाला (को०) ।

तमीज—संज्ञा स्त्री [सं० तमीज] १. भले और बुरे को पहचानने की शक्ति। विवेक। २. पहचान। ३. ज्ञान। बुद्धि। ४. भवब। कायदा।

यौ०—तमीजदार=(१) बुद्धिमान। समझदार (२) शिष्ट। सभ्य।

तमीपक्षि—संज्ञा पुं [सं०] चंद्रमा। निशाकर। क्षपाकर।

तमीश—संज्ञा पुं [सं० तमी + ईश] चंद्रमा। क्षपाकर। उ०—तो लौ तम राखे तमी जी लौ नहि रजबीश। केशव ऊगे तरणि के तमु न तमी न तमीश।—केशव (शब्द०)।

तमु^५—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'तम'।

तमुरा^५—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'तंबूरा'।

तमूना^५—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'तंबूना'।

तमे^५—संबं [गुज० तमे (=तुम)] तुम।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २१८।

तमोत्य—वि० [सं० तमोऽस्त्य] सूर्य और चंद्रमा के दस प्रकार के ग्रहों में से एक।

विशेष—इसमें चंद्रमंडल की पिछली सीमा में राहु की छाया बहुत अधिक और बीच के भाग में बहुत थोड़ी सी जान पड़ती है। फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण से फसल को हानि पहुँचती है और चोरों का भय होता है।

तमोध—वि० [सं० तमोऽन्ध] १. अज्ञानी। २. क्रोधी।

तमोगुण—संज्ञा पुं [सं०] दे० 'तमस्'—३।

तमागुणी—वि० [सं०] जिसकी वृत्ति में तमोगुण हो। अश्वम वृत्ति-वाला। उ०—तमोगुणी चाहै या भाई। मम बैरी क्यों ही मर जाई।—सूर (शब्द०)

तमोघ्न—संज्ञा पुं [सं०] १. अग्नि। २. चंद्रमा। ३. सूर्य। ४. बुद्ध। ५. बौद्ध मत के निघम आदि। ६. विष्णु। ७. शिव। ८. ज्ञान। ९. दीपक। दीया। चिराग।

तमोघ्न^२—वि० जिससे अंधेरा दूर हो।

तमोज्योति—संज्ञा पुं [सं० तमोज्योतिष्] जुगनू [को०]।

तमोदर्शन—संज्ञा पुं [सं०] वह ज्वर जो पित्त के प्रकोप से उत्पन्न हो।

तमोनुद—संज्ञा पुं [सं०] १. ईश्वर। २. चंद्रमा। ३. अग्नि। प्राग।

तमोभिद्^१—संज्ञा पुं [सं०] जुगनू।

तमोभिद्^२—वि० अंधकार दूर करनेवाला।

तमोमणि—संज्ञा पुं [सं०] १. जुगनू। २. गोमेदक मणि।

तमोमय^१—वि० [सं०] १. तमोगुणयुक्त २. अज्ञानी। ३. क्रोधी।

तमोमय^२—संज्ञा पुं [सं०] राहु।

तमोर^५—संज्ञा पुं [सं० ताम्बूल] तंबूल। पान। उ०—(क) पार तमोर दूध बधि रोचन हरषि यशोदा लाई।—सूर (शब्द०)। (ख) सुरंग भधर धौ लीन तमोरा। सोई पान फूल कर जोरा।—जायसी श्र०, पृ० १४३।

४-४६

तमोरि—संज्ञा पुं [सं०] सूर्य।

तमोरो^५—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'तंबोली'।

तमोल^५—संज्ञा पुं [सं० ताम्बूल] १. पान का बीड़ा। उ०—बंदी भाल तमोल मुख सीस सिलसिले बार। दग प्राजि राजे खरी ये ही सहज सिगार।—बिहारी (शब्द०)। २. दे० 'तंबोल'।

तमोलिन—संज्ञा स्त्री [हि० तमोली का स्त्री०] दे० 'तंबोलिन'।

तमोलिप्ती—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'ताम्रलिप्ति'।

तमोली—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'तंबोली'।

तमोविकार—संज्ञा पुं [सं०] तमोगुण के कारण उत्पन्न होनेवाला विकार। जैसे, नीव, घ्रासस्य आदि।

तमोहंत—संज्ञा पुं [सं० तमोहन्त] दस प्रकार के ग्रहों में से एक।

विशेष—दे० 'तमोत्य'।

तमोहपह^१—संज्ञा पुं [सं०] १. सूर्य। २. चंद्रमा। ३. अग्नि। ४. दीपक। दीया।

तमोहपह^२—वि० १. मोहनाशक। २. अंधकार दूर करनेवाला।

तमोहर^१—संज्ञा पुं [सं०] १. चंद्रमा। २. सूर्य। ३. अग्नि। प्राग। ४. ज्ञान।

तमोहर^२—वि० [सं०] अंधकार दूर करनेवाला। २. अज्ञान दूर करनेवाला।

तमोहरि^५—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'तमोहर'।

तम्मना^५—क्रि० प्र० [हि० तमकना] तप होना। क्रुद्ध होना। उ०—परि तर धरे उठै एक। तम्मी उकसि फारे नेक (तेक)।—पृ० २०, ६। १६४।

तय^१—वि० [प्र०] १. पूरा किया हुआ। निबटाया हुआ। समाप्त। जैसे, रास्ता तय करना। काम तय करना। २. निश्चित। स्थिर। ठहराया हुआ। मुकर्रर। जैसे,—सोमवार को चलना तय हुआ है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुह्रा—तय पाना—निश्चित होना। ठहराना।

तय^५^२—अव्य० [हि० तहें] तहाँ। वहाँ। उ०—बुल्लाय बास सुंदर विनिय। पठ्यो प्रसिद्ध भान तय।—पृ० २०, ६६।

तय^३—संज्ञा पुं [सं०] १. रक्षा। २. रक्षक [को०]।

तयना^५^१—क्रि० प्र० [सं० तपन] १. बहुत गरम होना। तपना। उ०—निसि बासर तया तिहें ताय।—मुलसी (शब्द०)। २. संतप्त होना। दुखी होना। पीड़ित होना।

विशेष—दे० 'तपना'।

तयना^५^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तपाना'।

तयनाती—वि० [हि०] दे० 'तैनात'।

तया^५—संज्ञा पुं [हि०] 'तवा'।

तयार^५—वि० [हि०] दे० 'तैयार'।

तयारी④—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तैयारी' ।

तय्यार—वि० [हि०] दे० 'तैयार' । उ०—कॉर्मा ऐसा लकीज तैयार हुआ ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८४ ।

तरंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्ग] १. पानी की वह उछाल जो हवा लगने के कारण होती है । लहर । हिलोर । २. मोज ।

क्रि० प्र०—उठना ।

पर्वा०—भंग । ऊर्मि । उर्मी । विधि । बीबी । हसी । लहरी । भूमि । उत्कमिका । जलमला ।

२. संगीत में स्वरों का चढ़ाव उतार । स्वरलहरी । उ०—वह भीति तान तरंग सुनि गंधर्व किन्नर लाजही ।—तुलसी (शब्द०) । ३. चित्त की उमंग । मन की मोज । उत्साह या प्रानन्द की अवस्था में सहसा उठनेवाला विचार । जैसे,—(क) भग की तरंग उठी कि नदी के किनारे चबना चाहिए । ४. बल । कपड़ा । ५. छोड़े घाटि की फलों या उछाल । ६. हाथ में पकड़ने की एक प्रकार की छड़ी जो सोने का तार उमेटकर बनाई जाती है । ७. हिलना डलना । ८. उधर उधर घूमना (को०) । (८) किसी ग्रंथ का विभाग या अध्याय जैसे—कथासरित्सागर में ।

तरंगक—संज्ञा पुं० [सं० तरङ्गक] [स्त्री० तरंगिका] १. पानी की लहर । हिलोर । २. स्वरलहरी ।

तरंगभीरु—संज्ञा पुं० [सं० तरङ्गभीरु] चौदहवें मनु के एक पुत्र का नाम ।

तरंगवती—संज्ञा पुं० [सं० तरङ्गवती] नदी । तरंगिणी ।

तरंगायित—वि० [सं० तरङ्गायित] दे० 'तरंगित' । उ०—सुंदर बने तरंगायित ये मिथु से, सहाराते जब वे मारुतवश भूम के ।—कल्याण०, पृ० २ ।

• तरंगालि—संज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्गालि] नदी ।

तरंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्गिका] १. लहर । हिलोर । २. स्वरलहरी । उ०—स्वर मव बाजत बसुरी गति मिलत उठत तरंगिका ।—राधाकृष्ण दास (शब्द०) ।

तरंगिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्गिणी] नदी । सरिता ।

यौ०—तरंगिणीनाथ, तरंगिणीमती=समुद्र ।

तरंगिणी—वि० तरंगवाली ।

तरंगित—वि० [सं० तरङ्गित] हिलोर मारता हुआ । सहाराता हुआ । नीचे ऊपर उठता हुआ ।

तरंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्गिणी] नदी ।

तरंगी—वि० [सं० तरङ्गी] [स्त्री० तरंगिणी] १. तरंगयुक्त । जितने लहर हो । २. जैसा मव में आवे, वैसा करनेवाला । मनमौजी । प्रानदी । लहरी । बेपरवाह । उ०—नाचहि गायहि गीत परम तरंगी भूत सब ।—मानस, १ । ६३ ।

तरंड—संज्ञा पुं० [सं० तरण्ड] १. नाव । नौका । २. मछली मारने की डोरी में बँधी हुई लकड़ी जो पानी के ऊपर तैरती रहती है । ३. नाव खेने का डंडा । ४. बेड़ा (को०) ।

यौ०—तरंडपावा=एक प्रकार की नाव ।

तरंडा, तरंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० तरण्डा, तरण्डी] १. नौका । नाव । २. बेड़ा (को०) ।

तरंत—संज्ञा पुं० [सं० तरन्त] १. समुद्र । २. भेड़क । ३. राक्षस । ४. जोर की वर्षा (को०) । ५. भक्त (को०) ।

तरन्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० तरन्ती] नाव । किशोरी ।

तरन्तुक—संज्ञा पुं० [सं० तरन्तुक] कुक्षेत्र के अंतर्गत एक स्थान का नाम ।

तरन्बुज—संज्ञा पुं० [सं० तरम्बुज] तरबूज ।

तरहुत^१—क्रि० वि० [हि० तर + हुत (प्रत्य०)] १. नीचे । २. नीचे की तरफ ।

तरहुत^२—वि० १. नीचेवाला । नीचे की तरफ का । २. नीचा ।

तर^१—वि० [फा०] १. भीगा हुआ । घाटें । गीला । जैसे, पानी से तर करना, तेल से तर करना ।

यौ०—तर बतर=भीगा हुआ ।

२. नीतल । ठंडा । जैसे,—(क) तर पानी, तर मास । (ख) तरबूज खालो, तबीयत तर हो जाय । ३. जो सूखा न हो । हरा ।

यौ०—तर व ताजा=ठटका । सुरंत का ।

४. भरा पूरा । मालदार । जैसे, तर भसमी ।

तर^२—संज्ञा पुं० [सं०] पार करने की क्रिया । २. अग्नि । ३. वृक्ष । ४. पथ । ५. गति । ६. नाव की उतराई । ७. घाट की नाव (को०) । ८. बढ़ जाना (को०) । ९. पराजित करना । परास्त करना (को०) ।

तरा^१—क्रि० वि० [सं० तल] तले । नीचे । उ०—कीन बिरिछ तर भीजत होइहैं राम लपन दूनो भाई ।—गीत (शब्द०) ।

तर^२—प्रत्यय [सं०] एक प्रत्यय जो गुणवाचक शब्दों में लगकर दूसरे की प्रपेक्षा आधिन्य (गुण से) सूचित करता है । जैसे, गुणतर, अधिकतर, श्रेष्ठतर ।

तरई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तारा] नक्षत्र ।

तरक^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डक] दे० 'तड़क' ।

तरक^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तड़कना] दे० 'तड़क' ।

तरक^३—संज्ञा पुं० [सं० तर्क] १. विचार । सोच विचार । उद्देश्यबुद्धि । ऊहापोह । उ०—होइहि सोई जो राम रवि राखा । को करि तरक बढ़ावहि साखा ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।

२. उक्ति । तर्क । धतुराई का बखान । खोज की बात । उ०—

(क) सुनत हंसि चले हरि सकृचि भारी । यह कह्यो आज हम आइहैं गेह तुव तरक जिनि कह्यो हम समुक्ति डारी ।—सूर (शब्द०) । (ख) प्यारी को मुख धोई के पट पौछि सँवारयो तरक बात बहुतै कह्यो कछु सुधि न सँभारयो ।—सूर (शब्द०) ।

तरक^४—संज्ञा स्त्री० [सं० तर (= पथ ?)] वह अक्षर या शब्द जो पुष्ठ या पसा समाप्त होने पर उसके नीचे किनारे की ओर आगे के पुष्ठ के आरंभ का अक्षर या शब्द सूचित करने के लिये लिखा जाता है ।

विशेष—हाथ की लिखी पुरानी पोथियों में इस प्रकार बखर या शब्द लिख देने की प्रथा थी जिससे पत्र लगाए जा सकें। पुष्ठी पर अंक देने की प्रथा नहीं थी।

तरक^१—संज्ञा पुं० [सं० तर्क (= सोच विचार)] २. अङ्कन। बाधा। २. व्यतिक्रम। झूल झुक।

क्रि० प्र०—पड़ना।

तरक^२—संज्ञा पुं० [सं० तर्क] १. त्याग। परित्याग। २. छूटना।

क्रि० प्र०—करना।

तरकना^३—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तड़कना'।

तरकना^४—वि० तड़कना। भड़कनेवाला।

तरकना^५—क्रि० प्र० [सं० तर्क] १. तर्क करना। सोच विचार करना। २. अनुमान करना। उ०—तरक न सकहि बुद्धि मन बानी। तुलसी (शब्द०)।

तरकना^६—क्रि० प्र० [अनु०] उछलना। कूदना। झपटना। उ०—बार बार रघुवीर सँभारी। तरकेउ पवन तनय बल भारी।—तुलसी (शब्द०)।

तरकश—संज्ञा पुं० [फ़ा० तर्कश] तीर रखने का चौगा। भाषा। तूणीर।

तरकशबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० तर्कशबंद] तरकश रखनेवाला व्यक्ति।

तरकस—संज्ञा पुं० [फ़ा० तर्कश] दे० 'तरकश'।

तरकसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तर्कश] छोटा तरकश। छोटा तूणीर। उ०—घरे धनु सर कर कसे कटि तरकसी पीरे पट छोड़े चले चार चालु। अंग अंग भूपन जराय के जगमगत हुरत जन के जी को तिमिर जालु।—तुलसी (शब्द०)।

तरका^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तड़का'।

तरका^८—संज्ञा पुं० [प्र०] मरे हुए मनुष्य की जायदाद। वह जायदाद जो किसी मरे हुए आदमी के वारिस को मिले।

तरका^९—संज्ञा पुं० [हि० ताड़] बड़ी तरकी।

तरकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तरह (= सञ्जी, शाक) + कारी] १. वह पौधा जिसकी पत्ती, जड़, डंठल, फल फूल आदि पकाकर खाने के काम में आते हैं। जैसे, पालक, गोभी, धालू, कुम्हड़ा इत्यादि। शाक। सागपात भाजी। सञ्जी। २. खाने के लिये पकाया हुआ फल फूल, कंठ मूल, पत्ता आदि। शाक भाजी। ३. खाने योग्य मांस।—(पंजाब)।

क्रि० प्र०—बनाना।

तरकी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडकी] कान में पहनने का फूल के आकार का एक गहना।

विशेष—इस गहने का वह भाग जो कान के अंदर रहता है, ताड़ के पत्ते को गोल लपेटकर बनाया जाता है। इससे यह शब्द 'ताड़' से निकला हुआ जान पड़ता है। सं० शब्द 'ताडकू' से भी यही सूचित होता है। इसके अतिरिक्त इस गहने को तालपत्र भी कहते हैं। इसे आजकल छोटी जाति की स्त्रियाँ अधिक पहनती हैं। पर सोने के कर्णफूल आदि के विये भी इस शब्द का प्रयोग होता है।

तरकीब—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. संयोग। मिलान। मेख। २. बनाबट। रचना। ३. युक्ति। उपाय। ढंग। ढब। जैसे,—उन्हें यहाँ लाने की कोई तरकीब सोचो। ४. रचना प्रणाली। शैली। तीर। तरीका। जैसे,—इनके बनाने की तरकीब मैं जानता हूँ।

तरकुली—संज्ञा पुं० [सं० ताल + कुल] ताड़ का पेड़।

तरकुली—संज्ञा पुं० [हि० तरकुल] कान में पहनने का एक गहना। तरकी।

तरकुली—संज्ञा स्त्री० [हि० तरकुल] कान का एक गहना। तरकी। उ०—सखिमन संग बूझै कमल कदंब कहूँ देखी सिय कामिनी तरकुली कनक की।—हनुमान (शब्द०)।

तरकना—क्रि० प्र० [हि०] तरकना। उछलना। चमकना। उ०—जब नह नपफेरि भेरी समालं। तरकंत तेग मनी बिजु नालं।—पु० रा०, १२।८०।

तरककी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तरककी] वृद्धि। बढ़ती। उन्नति। (शरीर, पद एवं वस्तु आदि में)।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—होना।

तरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़बाघ। २. चीता (की०)।

तरक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बाघ। लकड़बाघ। चरग। २. चीता (की०)।

तरखा—संज्ञा पुं० [सं० तरंग] जल का तेज बहाव। तीव्र प्रवाह।

तरखान—संज्ञा पुं० [सं० तखण] लकड़ी का काम करनेवाला। बढ़ई।

तरगुलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] अक्षत रखने का एक प्रकार का छिछला बरतन।

तरचखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पोधा जो सजावट के लिये बगीचों में लगाया जाता है।

तरच्छी—वि० स्त्री० [हि०] तिरछी। टेढ़ी। उ०—संजम अप तप साँपरत, ब्रत जुत जोग बिनोण। भाल तरच्छी ईक ठी जीता समधा जाण।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पु० ३४।

तरछत^१—क्रि० वि० [हि० तर] नीचे। नीचे की ओर।

तरछत^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तलछट'।

तरछन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तलछट'।

तरछा—संज्ञा पुं० [हि० तर (= नीचे)] वह स्थान जहाँ तेली गोबर इकट्ठा करते हैं।

तरछाना^३—क्रि० प्र० [हि० तिरछा] तिरछी आँख से इशारा करना। इंगित करना। ल०—अरध जाम जामिनि गए सखिन सकुचि तरछाय। देति बिदा तिय इतहि पिय चितवत चित सलचाय।—देव (शब्द०)।

तरछी—वि० [हि०] तिरछी। उ०—भलकत बरछी तरछी तरवारि बड़े। मार मार करत परत चलभन है।—मुं० दर० प्र०, भा० १, पु० ४८५।

तरज—संज्ञा पुं० [प्र० तर्ज] दे० 'तर्ज'।

तरजना—क्रि० प्र० [सं० तर्जन] १. ताड़न करना। डाटना।

बपटना । उ०—तरजति तरजनिह तरजत बरजत सयन नयन के कोए ।—तुलसी (शब्द०) २. भला बुरा कहना । विगड़ना । ३. गरजना । उ०—मिह व्याघ्रों का तरजना जिसे सुन बिचारी कोमल बालाओं के हृदय का तरजना—इस दुर्ग के गुर्जों ही से बैठे बैठे सुन जो ।—इयामा०, पृ० ७८ ।

तरजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जनी] अंगूठे के पास की उँगली । उ०—
(क) इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाही । जे तरजनी देखि मरि जाही ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मरुत बरजि तजिय तरजनी कुम्हिलै कुम्हिलै बो जई है ।—तुलसी (शब्द०) ।

तरजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जन] भय । डर । उ०—मही रे विहंगम बनवासी । तेरे बोध तरजनी बाढ़ति श्रवण सुनत नीदक नासी ।—सूर (शब्द०) ।

तरजीला—वि० [सं० तर्जन + हि० ईला (प्रत्य०)] १. तर्जन करने-वाला । २. कोष में मरा हुआ । ३. प्रचंड । तेज । उग्र ।

तरजीह—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जीह] बरीयता । प्रधानता । श्रेष्ठता । उ०—वे व्यापकता के ऊपर गहराई को तरजीह देते हैं ।—इति० और आलो०, पृ० ८ ।

तरजूई—संज्ञा स्त्री० [सं० तराजू] छोटी तराजू ।

तरजुमा—संज्ञा पुं० [सं० तर्जुमह] अनुवाद । भाषांतर । उल्हा ।

तरजुमान—संज्ञा पुं० [सं० तर्जुमान] वह जो अनुवाद करता है [को०] ।

तरजीहा—वि० [हि०] दे० 'तरजीला' ।

तरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी प्रादि को पार करने का काम । पार करना । २. पानी पर तैरनेवाला तख्ता । देहा । ३. निस्तार । उद्धार । ४. स्वयं । ५. नौका (को०) । ६. पराजित करना । (को०) ।

तरणतारण—वि० [सं०] १. संसार नागर से पार करनेवाला उ०—
शोक धारण करण कारण, तरण तारण विष्णु शंकर ।—
प्रबन्धना, पृ० ८८ । २. नदी या जलमय से पार करनेवाला ।

तरणावप—संज्ञा पुं० [हि० तरण + सं० आवप] सूर्य की धूप । उ०—तरणावप टोप वगसरयं । प्रतबंध चमकत पक्षरियं ।—रा० क०, पृ० ८१ ।

तरणापड—संज्ञा पुं० [सं० तरण; राज० तरण + भाष०, हि० तरणा प्रा० पड] दे० 'तराण्य' । उ०—जिम जिम मन धमले कियह तार चढती जाइ । तिम तिम मारवणी तणइ, तन तरणापड पाइ ।—दोला०, पृ० १२ ।

तरणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. मदार । ३. किरन ।

तरणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तरणी' ।

तरणिकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरणिसुत' ।

तरणिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य की कन्या, यमुना । २. एक वरुणवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक युव होता है । इसका दूसरा नाम 'सती' है । जैसे,—नगपती । बरसती ।

तरणितनय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरणिसुत' ।

तरणितनूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री, यमुना ।

तरणिधन्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

तरणिपेटक—संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र या कठौता जिससे नाव का पानी उलीचा जाता है [को०] ।

तरणिरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] माणिक्य [को०] ।

तरणिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य का पुत्र । २. यम । ३. शनि । ४. कर्ण ।

तरणिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री । यमुना [को०] ।

तरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नौका । नाव । २. धीकुमार । ३. स्थल कमखिनी ।

तरतर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तड़तड़' । उ०—बरखे प्रलय को पानी, न जात काहू पै बखानी, बज हू त भारी दूटत है तरतर ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६२ ।

तरतराता—वि० [हि० तर] धी में अच्छी तरह डूबा हुआ (पकवान) । जिसमें से धी निकलता या बहता हो (लाघपदार्थ) ।

तरतराना—संज्ञा स्त्री० [सं०] तड़तड़ाना । उ०—फहरान धुजा मनु भंसमानु, के तड़ित चहूँ दिस तरतरान ।—सुजान०, पृ० १७ ।

तरतराना—वि० [सं०] तड़तड़ शब्द करना । तोड़ने का सा शब्द करना । तड़तड़ाना । उ०—घहरात तरतरात गररात हहरात पररात भहरात माष नाये ।—सूर (शब्द०) ।

तरतीब—संज्ञा स्त्री० [सं०] वस्तुओं की अपने ठीक ठीक स्थानों पर स्थिति । यथास्थान रखा या लगाया जाना । क्रम । सिलसिला । जैसे,—किताबें तरतीब से लगा दें ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।—सजाना ।

मुहा०—तरतीब देना = क्रम से रखना या लगाना । सजाना ।

तरत्समन्वीय—संज्ञा स्त्री० [सं० तरत्समन्वीय] वेद के पवमान सूक्त के अंतर्गत एक सूक्त ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि अग्निप्राह्म धन ग्रहण करने या निषिद्ध अन्न भक्षण करने पर इस सूक्त का जप करने से दोष मिट जाता है ।

तरदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कटोला पेड़ ।

तरदीद—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काटने या रद करने की क्रिया । मंजूली । २. खंडन । प्रत्युत्तर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरदुदुद—संज्ञा पुं० [सं०] सोच । फिक्र । भ्रंश । चिंता । खटका । उ०—एक कमरे तक सीमित रहने पर भी भाने जानेवाले यात्रियों और मुझे भी तरदुदुद रहता ।—किन्नर०, पृ० ५६ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—तरदुदुद में पड़ना = चिंता में पड़ना ।

तरदुदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पकवान जो धी और बही के साथ भाड़े हुए आटे की गोखियों को पकाने से बनता है ।

तरन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरण' ।

तरन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तराना' ।

तरनवार—संज्ञा पुं० [सं० तरण] निस्तार । मोक्ष । मुक्ति ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरनतारन—संज्ञा पुं० [सं० तरण, हि० तरना] १. उद्धार । निस्तार । मोक्ष । २. उद्धार करनेवाला । वह जो भवसागर से पार करे ।

तरना^१—क्रि० स० [सं० तरण] पार करना ।

तरना^२—क्रि० प्र० १. भवसागर से पार होना । मुक्त होना । सद्गति प्राप्त करना । जैसे,—तुम्हारे पुरखे तर जायेंगे । २. तरना न डूबना ।

तरना^३—क्रि० स० [हि०] दे० 'तलना' ।

तरना^४—संज्ञा पुं० [देश०] व्यापारी जहाज का वह अफसर जो यात्रा में व्यापार संबंधी कार्यों का निरीक्षण करता है ।

तरनाग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

तरनाक—संज्ञा पुं० [देश०] वह रस्सा जिसकी सहायता से पाल को लोहे की धरन में बांधते हैं ।—(लश०) ।

तरनि^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरणी' ।

तरनि^२—संज्ञा पुं० दे० 'तरणि' । उ०—तरनि तेम तुलाधार परताप गहिघोरे ।—विद्यापति, पृ० ६ ।

यौ०—तरनितनया = सूर्य की पुत्री । यमुना । उ०—तरनितनया तीर जगमगत ज्योतिमय पुहमि पे भगट सब लोक सिरताई ।—चनानंद, पृ० ४९३ ।

तरनिजा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरणिजा' ।

तरन्नि—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरणि' । उ०—भूषण तोखन तेज तरन्नि सौ बैरिन को कियो पानिप होनो ।—भूषण प्र०, पृ० ४८ ।

तरनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तरणी] १. नाव । नौका । उ०—रातिहि घाट घाट की तरनी । घाई भगनित जाहि न बरनी ।—मानस, २।२२० । २. वह छोटा मोटा जिसपर मिठाई का पाल या लोचा रखते हैं । दे० 'तन्नी' ।

तरनी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] डमक के आकार की बनी हुई चीज जिसपर लोमचेवाले अपनी धाली रखते हैं ।

तरन्मुख—संज्ञा पुं० [प्र०] आलाप ।

तरपा^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरप' ।

तरपट^१—वि० [हि० तरपट] (चारपाई) जो टेढ़ी हो । जिसमें तीन ही पाटी सीधी हो ।

तरपट^२—संज्ञा पुं० टेढ़ापन । भेद ।

तरपत—संज्ञा पुं० [सं० तृप्ति] १. सुपास । सुबीता । २. आराम । चैन । उ०—बूंदी सम सर तजत खंड मंडत पर तरपत ।—गोपाल (शब्द०) ।

तरपटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—जुग पानि नाभि ताली बनाय । रमि दिष्ट सिष्ट गिरबाज राय । तरपटी साख सिल कमल मूर । इष्टि मंति माख तप तपनि जूर ।—पृ० १।०, १ । ५०४ ।

तरपन^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरपण' । उ०—तरपन होम करहि बिधि नाना ।—मानस, २ । १२६ ।

तरपना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तरपना' । उ०—तरपे जिमि बिजुस सी पिय पे भरपे भननाय सबै धर में ।—सुंदरी-संबंस्व (शब्द०) ।

तरपर—क्रि० वि० [हि० तर+पर] १. नीचे ऊपर । २. एक के पीछे दूसरा ।

तरपरिया—वि० [हि०] १. नीचे ऊपर का । २. पहला और दूसरा (संतान) । क्रम में पहला और बाद का (बच्चा) ।

तरपीछा^१—वि० [हि० तरप+ईला प्रत्य०] तरपवाला । चमकदार ।

तरपू—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ ।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत और भूरे रंग की होती है और मकानों में लगती है । यह पेड़ मलाबार और पच्छिमी घाट के पहाड़ों में पाया जाता है ।

तरफ—संज्ञा स्त्री० [प्र० तरफ] १. ओर । दिशा । प्रलंग । जैसे, पूरब तरफ । पश्चिम तरफ । २. किनारा । पार्श्व । बगल । जैसे, दाहिनी तरफ । बाई तरफ । ३. पक्ष । पासदारी । जैसे,—(क) लड़ाई में तुम किसकी तरफ रहोगे ? (ख) हम तुम्हारी तरफ से बहुत कुछ कहेंगे ।

यौ०—तरफदार ।

तरफदार—वि० [प्र० तरफ+फा० दार (प्रत्य०)] पक्ष में रहने-वाला । साधी या सहायता देनेवाला । पक्षपाती । हिमायती । समर्थक ।

तरफदारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तरफ+फा० दारी (प्रत्य०)] पक्षपात । क्रि० प्र०—करना ।

तरफना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तरफना' । उ०—यानें धनि मीलनि की तिया । हसनि कछु तरफनि है हिया ।—नंद० प्र०, पृ० २६६ ।

तरफराना—क्रि० प्र० [अनु०] दे० 'तरफड़ाना' ।

तरब—संज्ञा पुं० [हि० तरपना, तरपना] सारंगी में वे तार जो तौल के नीचे एक विशेष क्रम से लगे रहते हैं और सब स्वरों के साथ गूँजते हैं ।

तर बतर—वि० [फा०] भीगा हुआ । घाई । शराबोर ।

तरबन्ना^१—संज्ञा पुं० [सं० ताल+हि० बन] ताल का बन ।

तरबन्ना^२—संज्ञा पुं० [सं० तालपत्र] दे० 'तरवन' ।

तरबहना—संज्ञा पुं० [हि० तर+बहना] धाली के आकार का तबिया पीतल का एक बरतन जो प्रायः ठाकुरजी को स्नान कराने के काम में लाया जाता है ।

तरबियत—संज्ञा स्त्री० [प्र० तबियत] १. पालन पोषण करना । देखरेख या परवरिश करना । २. शिक्षा । ३. सभ्यता और शिष्टाचार की शिक्षा (को०) ।

तरबूज—संज्ञा पुं० [फा० तरबूज, तरबुजह] एक प्रकार की बेब जो

जमीन पर फैलती है और जिसमें बहुत बड़े बड़े गोल फल
प्रगते हैं। कलौदा। कालिदा। कलिंग।

विशेष—ये फल खाने के काम में आते हैं। पके फलों को काटने
पर इनके भीतर मिल्लीदार लाल या मफेद गुंथा तथा भीठा
रस निकलता है। बीजों का रस लाल या काला होता है।
गर्मी के दिनों में तरबूज तरावड़ के लिये खाया जाता है।
पकने पर भी तरबूज के छिलके का रंग गहरा हरा होता है।
यह बहुत सेतों में, विशेषतः नदी के किनारे के रेतीले मैदानों
में जाड़े के मंत्र में बोया जाता है। संसार के प्रायः सब गरम
देशों में तरबूज होता है। यह दो तरह का होता है—एक
फसली या बागिक, दूसरा स्थायी। स्थायी पीछे केवल
अमेरिका के मेक्सिको प्रदेश में होते हैं जो कई साल तक
फलते फूलते रहते हैं।

तरबूजई—वि० सं० पु० [क्रा० तरबूज+ई (प्रत्य०)] दे० 'तरबूजिया'।

तरबूजा—सं० पु० [क्रा० तरबूज+ई (प्रत्य०)] दे० 'तरबूज'। १. ताजा फल।

तरबूजिया—वि० [हि० तरबूज] तरबूज के छिलके के रंग का।
गहरा हरा। काही।

तरबूजिया^२—सं० पु० गहरा हरा रंग।

तरबोना^१—क्रि० सं० [हि० तर+बोरना] तर करना। अच्छी तरह
भिगोना।

तरबोना^२—क्रि० अ० तर होना। भीगना।

तरबोर—वि० [हि०] दे० 'तराबोर'। उ०—बूढ़े गए तरबोर को
कहूँ खोज न पाया।—मल्लक० पु० १८।

तरभरी—सं० स्त्री० [पु०] १. तडभड़ की आवाज। २. ललबली।

तरमाची—सं० स्त्री० [हि०] दे० 'तरबाँची'।

तरमाना^१—क्रि० अ० [देश०] बिगड़ना। नाबुल होना।

तरमाना^२—क्रि० सं० किसी को नाराज या नाबुल करना।

तरमाना^३—क्रि० अ० [हि० तर+माना (प्रत्य०)] तर होना।

तरमाना^४—क्रि० सं० तर करना।

तरमानी—सं० स्त्री० [देश०] वह तरी जो जोती हुई भूमि में
आती है।

क्रि० प्र०—धाना।

तरमिरा—सं० पु० [देश०] एक प्रकार का पोषा जो प्रायः डेढ़ दो
हाथ ऊँचा होता है और पश्चिमी भारत में जो या बने के
साथ बोया जाता है। तिरा। तिररा।

विशेष—इसके बीजों से तेल निकलता है जो प्रायः जलाने के
काम में आता है।

तरमीमा—सं० स्त्री० [अ०] संशोधन। दुरुस्ती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरय्या—सं० स्त्री० [हि०] दे० 'तरई'। उ०—जो बिलाखा की
तरय्या चंद्रकला को बड़ाई करे तो क्या अचंभा है।—
शकुंतला, पु० ५१।

तरराना^१—क्रि० अ० [पु०] ऐँठना। एँठाना।

तरलंग—वि० [सं० तरलङ्ग] चपल, चंचल। उ०—भी जेहल कीना
अमर, तेँ दीना तरलंग।—बाकी० प्र०, भा० ३, पु० ७।

तरल^२—वि० [सं०] १. हिलता डोलता। चलायमान। चंचल। चल।
उ०—लखन सेत सारी डक्यो तरल तरीला कान।—बिहारी
(शब्द०)। २. अस्थिर। अणुभंगुर। ३. (पानी की तरह)
बहनेवाला। द्रव। ४. अमकीला। आस्वर। कांतिवान्। ५.
खोखला। पोला। ६. विस्तृत (को०)। ७. संपट (को०)।

तरल^३—सं० पु० १. हार के बीच की मण्डि। २. हार। ३. हीरा।
४. लोहा। ५. एक देश तथा वहाँ के निवासियों का नाम
(महाभारत)। ६. तल। पेंदा। ७. घोड़ा।

तरलता—सं० स्त्री० [सं०] १. चंचलता। २. द्रवत्व।

तरलनयन—सं० पु० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक
अक्षर में चार नगण होते हैं। उ०—नवत सुधर सखिन
सहित। यिरकि यिरकि फिरत मुदित।

तरलभाव—सं० पु० [सं०] १. पतलापन। २. चंचलता। चपलता।

तरला^१—सं० स्त्री० [सं०] १. यवागू। जो की मीड़। २. मदिरा।
३. मधुमक्षिका। सहृद की मक्खी।

तरला^२—सं० पु० [हि० तर] छाजन के नीचे का बाँस।

तरलाई^३—सं० स्त्री० [सं० तरल+हि० भाई (प्रत्य०)] १.
चंचलता। चपलता। २. द्रवत्व।

तरलायित^४—वि० [सं०] हिलाया हुआ। कंपाया हुआ। [को०]।

तरलायित^५—सं० स्त्री० लहर। तरंग। हिलोर [को०]।

तरलित—वि० [सं०] १. तरल किया हुआ। उ०—कहो कैसे मन
को समझा लूँ, भ्रंश के द्रुत आघातों सा द्युति के तरलित
उत्पातों सा, या वह प्रणय तुम्हारा प्रियतम।—इत्यलम्,
पु० २७।

तरवैछ^६—सं० स्त्री० [हि० तर+वैछ (प्रत्य०)] जुए के नीचे
की लकड़ी जो बैलों के गले के नीचे रहती है। तरवाँची।

तरवट—सं० पु० [सं०] एक क्षुप। आहृत्य। दंतकाष्ठक [को०]।

तरवड़ी—सं० स्त्री० [सं० तुला+डी (प्रत्य०)] छोटी तराजू
का पलड़ा।

तरवन—सं० पु० [सं० तालपत्र] १. कान में पहनने का एक गहना।
तरकी। २. कण्ठफूल।

तरवर^१—सं० पु० [सं० तत्वर] बड़ा पेड़। वृक्ष।

तरवर^२—सं० पु० [सं० तरवर] एक प्रकार का लंबा पेड़ जिसकी
छाल से चमड़ा सिझाया जाता है।

विशेष—यह मध्यभारत और दक्षिण में बहुत पाया जाता है।
इसे तरोता भी कहते हैं।

तरवरा^३—सं० पु० [हि०] दे० 'तरिमला'।

तरवरिया^४—सं० पु० [हि० तर वार] तलवार चलानेवाला।

तरवरिहा^५—सं० पु० [हि० तरवार] दे० 'तरवरिया'।

तरवाँची—संज्ञा स्त्री० [हि० तर+भाषा] जुए के नीचे की लकड़ी ।
मचेरी ।

तरवाँसी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'हरवाँची' ।

तरवाँ—संज्ञा पुं० [हि० तलवा] दे० 'तलवा' । उ०—घोंगुरीन
हो जाय भुजाय तहीं फिरि घाय लुभाय रहै तरवा । अपि
चायनि पूर हूँ एहिनि छूँ अपि घाय छके छवि छाव छवा ।
—घनानंद, पृ० ८ ।

तरवाई, सिरवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तर+सिर] ऊँची जमीन
और नीची जमीन । पहाड़ और घाटी ।

तरवाना^१—क्रि० प्र० [हि० तरवा+घाना] १. बैलों के तलवों
का चबते चबते घिस जाना जिससे वे संगड़ाते हैं । २. बैलों
का संघट्टाना ।

संयो० क्रि०—घाना ।

तरवाना^२—क्रि० प्र० [हि० तरवा का प्रे० रूप] तारने की प्रेरणा
करना ।

तरवारी^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तलवार' ।

तरवार^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरवर' ।

तरवारी^३—वि० [हि० तर (= नीचा, तले) + वार (प्रत्य०)]
निचली । खखार (भूमि) ।

तरवारि—संज्ञा पुं० [सं०] खट्वा का एक भेद । तलवार । उ०—रोष न
रसबा जनि खोलिए बर खोलिए तरवारि ।—दुलसी (शब्द०)

तरवारी—संज्ञा पुं० [हि० तरवार] तलवार चलानेवाला ।

तरस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बल । २. देश । ३. बानर । ४. रोष ।
५. तीर । तट ।

तरस्^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रस (= डरना) घटवा फा० तसं (= भय,
डर, खौफ)] दया । करुणा । रहम ।

क्रि० प्र०—घावा ।

मुहा०—(किसी पर) तरस जाना = दयाग्रं होना । दया करना ।
रहम करना ।

विशेष—इस शब्द का यह अर्थ विपर्यय द्वारा आया हुआ जान
पड़ता है । जो मनुष्य भय प्रकाशित करता है, उसपर दया
प्रायः की जाती है ।

तरस्^२—संज्ञा पुं० [सं०] मांस [को०] ।

तरसना^१—क्रि० प्र० [सं० त्रस्य (= घबिसाया)] किसी वस्तु के
अभाव में सचेत लिये इच्छुक और आक्रुष रहना । अभाव का
दुःख सहना । (किसी वस्तु को) न पाकर बेचैन रहना ।
जैसे,—(क) वहाँ खोप दावे दावे को तरस रहे हैं । (ख) कुछ
दिनों में तुम उन्हें देखने के लिये तरसोगे । उ०—हरसन बिनु
घँघियाँ तरस रही ।—(भीत) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

तरसना^२—क्रि० प्र० [सं० त्रस्] त्रस्त होना ।

तरसना^३—क्रि० प्र० त्रस्त करना । त्रास देना ।

तरसा—क्रि० वि० [सं० तरस्] शीघ्र । उ०—कमललोचन क्या
कल घा गए, पलट क्या कुकपाल क्रिया गई । मुखिका फिर

क्यों बन में बजी । बन रसा तरसा बरसा सुधा ।—प्रिय०,
पृ० २२८ ।

तरसाना—संज्ञा पुं० [सं०] नौका [को०] ।

तरसाना—क्रि० प्र० [हि० तरसना] १. अभाव का दुःख होना ।
किसी वस्तु को न देकर या न प्राप्त कराकर उसके लिये बेचैन
करना । २. किसी वस्तु की इच्छा और आशा उत्पन्न करके
उससे वंचित रखना । व्यर्थ ललचाना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—मारना ।

तरसि—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तरसा' । उ०—तरसि पधार हुआ
तय्यारी । धीर तणी आयी व्रतधारी ।—रा० क०, पृ० १८ ।

तरसीही^१—वि० [हि० तरसना + सीही (प्रत्य०)] तरसनेवाला ।
उ०—तिय तरसीहैं मुनि किए करि तरसीहैं मेह । बर परसीहैं
हैं रहे भर तरसीहैं मेह ।—बिहारी (शब्द०) ।

तरस्वान्—वि० [सं० तरस्वत्] १. तेज गतिवाला । वेगवान् । २. धीर ।
३. बीभार तरुण [को०] ।

तरस्वान्^२—संज्ञा पुं० १. शिव । २. गरुड़ । ३. वायु [को०] ।

तरस्वी^१—वि० [सं० तरस्विन्] [वि० स्त्री० तरस्विनी] १. दृढ़ ।
बळी । उ०—बली, मनस्वी, तेजस्वी, सूर, तरस्वी जानि ।
ऊर्ज, प्रवणि, भास्वरि, सुभट, राधे जिन करि मान ।—नंद०
प्र०, पृ० ११३ । २. वेगवान् । फुर्तीला ।

तरस्वी^२—संज्ञा पुं० १. धावक । दूत । २. नायक । धीर । ३. पवन ।
वायु । ४. गरुड़ [को०] ।

तरह—संज्ञा स्त्री० [प्र०] प्रकार । भाँति । किस्म । जैसे,—यहाँ तरह
तरह की चीजें मिलती हैं ।

मुहा०—किसी की तरह = किसी के सदृश । किसी के समान ।
जैसे,—उसकी तरह काम करनेवाला यहाँ कोई नहीं है ।

२. रचना प्रकार । ढाँचा । शैली । डील । पद्धति । बनावट ।
रूपरंग । जैसे,—इस छोट की तरह अच्छी नहीं है । ३. ढब ।
तर्ज । प्रणाली । रीति । ढंग । जैसे,—वह बहुत बुरी तरह से
पढ़ता है ।

मुहा०—तरह उड़ाना = ढंग की नकल करना ।

४. युक्ति । ढंग । उपाय । जैसे,—किसी तरह से उनसे
करवा निकालो ।

मुहा०—तरह देना = (१) खयाल न करना । भुला जाना ।
विरोध या प्रतिकार न करना । क्षमा करना । जाने देना ।
उ०—इन तरह से तरह दिए बनि भावै सार्द ।—गिरिधर
(शब्द०) । (२) टालटाल करना । ध्यान न देना ।

५. हाल । बसा । अवस्था । जैसे,—आजकल उनकी क्या
तरह है ?

६. समस्या । पद्य का एक चरख ।

मुहा०—तरह देना = प्रीति के लिये समस्या देना ।

७. न्यास । नीव । बुनियाद । ८. घटाना । धाकी । व्यवफलन ।
तफरीक । ९. वेष्टभूषा । पहनावा ।

तरहटी—संज्ञा स्त्री० [हि० तर (= नीचे) + टट (प्रत्य०)] १. नीची
भूमि । २. पहाड़ की तराई ।

तरहदार—वि० [अ० तरह + फा० दार (प्रत्य०)] १. सुंदर बनावट का। अच्छी बात या ढाँचे का। जिसकी रचना मनोहर हो। जैसे, तरहदार छोट। २. सज्जजनवाला। सीकीन। वजादार। जैसे, तरहदार यादमी।

तरहदारो—संज्ञा स्त्री० [फा०] वजादारी। सज्जन का ढंग।

तरहरी—क्रि० वि० [हि० तर + हर (प्रत्य०)] तले। नीचे। उ०—जय करि मुँह तरहर परपो इहि घर हरि बित लाइ। बिषय त्रिपा परिहरि अर्ज्यो नर हरि के गुन गाइ।—बिहारी (शब्द०)।

तरहर^१—वि० १. नीचा। तले का। नीचे का। २. निकृष्ट। बुरा।

तरहरि^(५)—क्रि० वि० [हि० तर + हरि (प्रत्य०)] नीचे।

तरहा—संज्ञा पुं० [हि० तर + हा (प्रत्य०)] १. कुछी खोदने में एक भाग जो माथे, एक हाथ की होती है। २. वह कपड़ा जिसपर मिट्टी फैलाकर कड़ा ढाखने का सींचा बनाते हैं।

तरहारि^(५)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तरहर'।

तरहेल^(५)—वि० [हि० तर + हल (प्रत्य०)] १. अधीन। निम्नस्थ। २. बग में छाया हुआ। पराजित। उ०—तो चीपड़ खेली करि दीया। जो तरहेल होय सो सीया।—जायसी (शब्द०)।

तरांधु—संज्ञा पुं० [सं० तरांधु] चौड़े पेंदे की नाव (को०)।

तराँ^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तराना'।

तराँ^२—अव्य [सं० तया] तब। उ०—मन्तो जरा त्रिवाह री, तराँ बिचारी डोल।—रा० क०, पृ० ८२।

तराँ^३—संज्ञा पुं० [देश०] पट्टा। पटसन।

तराँ^४—संज्ञा पुं० [हि० तला] १. दे० 'तला'। २. दे० 'तलवा'।

• तराई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तर (= नीचे) + घाई (प्रत्य०)] १. पहाड़ के नीचे की भूमि। पहाड़ के नीचे का वह मैदान जहाँ सीढ़ या तली रहती है। जैसे, नेपाल की तराई। २. पहाड़ी की घाटी। ३. मूँज के मुँह जो छाजन में खपड़ों के नीचे दिए जाते हैं।

तराई^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तारा] तारा। नक्षत्र।

तराई^३—संज्ञा स्त्री० [हि० तलाई] छोटा ताल। तलेया।

तराख^(५)—संज्ञा स्त्री० [फा० तराख (= काट छाँट)] दे० 'तराख'। उ०—घंघर फारि कागज करूँ, एजी कोई ऊंगली तराख कलम।—पोद्दार० अक्षि० प्र०, पृ० ६४५।

तराजू—संज्ञा स्त्री०, पुं० [फा० तराजू] रस्सियों के द्वारा एक सीधी डाँडी के छोरों से बंधे हुए दो पलकों का एक यंत्र जिससे वस्तुओं की तौल मापलूम करते हैं। तौलने का यंत्र। तुला। तकड़ी।

मुहा०—तराजू हो जाना = (१) सीर का निशाने के इस प्रकार धारदार घुसना कि उसका भाषा भाग एक ओर, और भाषा दूसरी ओर निकल रहा है। (२) दो सैनिक दलों का इस

प्रकार ठीक ठीक बराबर होना कि एक दूसरे को परास कर सके।

तराटक^(५)—संज्ञा पुं० [सं० त्राटक] दे० 'त्राटक'। उ०—त्रि सँग भूमंग तराटक नैन नैन लागि लागे।—पोद्दार० अक्षि०, पृ० ११८।

तरातर^(५)—वि० [फा० तर (= गीला)] अत्यंत गीला। या उ०—चलत पिचुका भर पिचकारी करत तरातर। प्रेमधन०, भा० १, पृ० २४।

तरात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] बिना आशा लिए नदी पार करने जुरमाना (को०)।

तराना^१—संज्ञा पुं० [फा० तरानह] १. एक प्रकार का चलता ग जिसका बोल इस प्रकार का होता है—दिर दिर ता दि ना रे ते वी मृ ता दी मृ ता ना ना दे रे ता दा रे बा नि ना ना डे रे ना ता ना ना दे रे ना ता ना ना ता ना त दिर ता रे दा नी।

विशेष—तराना हर एक राग का हो सकता है। इसमें क कभी सरगम और तबले के बोल भी मिला दिए जाते हैं। २. कोई अच्छा गाना। बढ़िया गीत।—(कव०)।

तराना^२—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तराना'।

तराना^३—क्रि० प्र० [हि० तर से नामिक धातु] दे० 'तरियाना'।

तराप^(५)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़ाक शब्द। बटुक, तोप आदि शब्द। उ०—सैन अफमान सैन सगर सुनन लागी काँ सराप ली तराप तोपलाने की।—भूषण (शब्द०)।

तरापा^(५)—संज्ञा पुं० [अनु०] हाहाकार। कुहराम। त्राहि त्राहि उ०—परी घर्मसुत शिविर तरापा। गजपुर सकल शोक काँपा।—सबलसिंह (शब्द०)।

तरापा^२—संज्ञा पुं० [हि० तरना] पानी में तैरता हुआ गहती। बेड़ा।—(सश०)।

तराबोर—वि० [फा० तर + हि० बोरना; शुद्ध रूप फा० शराबोर खूब भीगा हुआ। खूब हुवा हुआ। तराबोर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरामल—संज्ञा पुं० [हि० तर (= नीचे)] १. मूँज के वे मुँह जो छाजन में खपरेल के नीचे दिए जाते हैं। २. जुए के नी की लकड़ी।

तरामोरा—संज्ञा पुं० [देश०] सरसों की तरह का एक पौधा जिस बीजों से तेल निकलता है।

विशेष—उत्तरीय भारत में जाई की फसल के साथ इस बीज बोए जाते हैं। रबी की फसल के साथ इसके दाने एक जाते हैं। पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। तेल निकाले हुए बीजों की खली भी चोरायों को खिलाई जाती है। इ दुर्घा भी कहते हैं।

तरायल^(५)—वि० [देश०] तेज। बेगवान्। फुर्तीला। त्वरावान्। शीघ्रग। उ०—आगे आगे तरन तरायले चलत बने।—भूषण प्र०, पृ० ७३।

तरारा^१—संज्ञा पुं० [देख० या धनु०?] १. उछाव । झलांग । कुलाच ।
क्रि० प्र०—भरना ।—मारना ।

मुहा०—तरारा भरना=जल्दी जल्दी काम करना । फरटि के साथ काम करना । तरारा मारना=हींग हूकना । बड़ बड़कर बातें करना ।

२. पानी की धार जो बराबर किसी वस्तु पर गिरे ।

तरारा^२—वि० [क्रा० तर+हि० घारा (प्रत्य०)] शीला । सजल ।
घाद्रं । उ०—घाव जब मोहन रंग भरे । क्यों मो नैन तरारे
करे ।—नंद० प्र०, पृ० १५२ ।

तरालु—संज्ञा पुं० [सं०] छिछले पैसे की एक बड़ी धाव [को०] ।

तरावट—संज्ञा स्त्री० [क्रा० तर+हि० घावट (प्रत्य०)] १. गीला-
पन । नमी । २. ठंडक । शीतलता । बड़े,—छिर पर पानी
पड़ने के तरावट आ गई ।

क्रि० प्र०—घाला ।

१. क्वांठ बिस्व को स्वस्थ करनेवाला शीतल पदार्थ । शरीर
की गरमी बात करनेवाला आहार आदि । ४. स्वस्थ शोथन ।
बैठे, धी, दुप आदि ।

तरारा—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. काटने का ढंग । काठ । २. काट-
छाँट । बनावट । रचनाप्रकार ।

यौ०—तरारा खराश ।

१. ढंग । तर्ज । ४. ताव या गंजीके का वह पत्ता जो काटने
के बाव हाथ में आवे ।

तरारा खराश—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] काटछाँट । कतरव्योत । बनावट ।

तराशना—क्रि० स० [क्रा०] काटना । कतरना । कलम करना ।

तरास^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रास] दे० 'त्रास' ।

तरास^२—संज्ञा स्त्री० [क्रा० तरास] दे० 'तरास' ।

तरासना^३—क्रि० स० [सं० त्रास + ना (प्रत्य०)] धम दिखलाना
डराना । त्रस्त करना । उ०—बसक बीजु धन गरजि तरासा ।
बिरह कास होइ जीव तरासा ।—जायसी (शब्द०) ।

तरासा^४—वि० [सं० तृषा] प्यासा ।

तरासा^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] प्यासा ।

तराहि^६—अव्य० [सं० त्राहि] दे० 'त्राहि' ।

तराही^७—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तरे' ।

तरिका—संज्ञा पुं० [हि० तरना + ईका (प्रत्य०)] वह पीपा जो
प्रमुख में किसी स्थाव पर खंवर के द्वारा बाँध बिया जाता है
और लहरों के ऊपर उतराया रहता है ।—(वर्ण०) ।

विशेष—ये पीपे बट्टान आदि की सृचना के लिये बाँधे जाते हैं
और कई आकार प्रकार के होते हैं । इनमें से किसी किसी में
बंटा, सीढ़ी आदि भी खी रहती है ।

तरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नौका । नाव । २. कपड़ों का पिटारा ।
३. कपड़े का छोर । दामन ।

तरिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल में तैरनेवाली लकड़ी । नेड़ा । २.

नाव का महसूल लेनेवाला । उतराई लेनेवाला । ३. मस्लाह ।
केबट । मीनो ।

तरिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाव । नौका । २. मक्खन [को०]

तरिका^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तडित्] बिजली । विद्युत् ।

तरिकी—संज्ञा पुं० [सं० तरिकिन्] मीनो । मस्लाह [को०] ।

तरिको^३—संज्ञा पुं० [सं० ताडक] कान का एक गहना । तरकी ।
तरीना । उ०—सै कत तोरयो हार नोसरि को मोती बबरि
रहे सब जन में गयो कान को तरिको ।—सूर (शब्द०) ।

तरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरणी [को०] ।

तरिता^४—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तर्जनी उँगली । २. भाँग । ३.
गौजा ।

तरिता^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तडित्] बिजली । उ०—ऊरपे ऊपे
कोपे कडे तरिता तरपे पुनि लाल छटा में चिरी ।—पद्मवैस
(शब्द०) ।

तरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तरित्रो] बड़ी नाव । नौका । पोत ।
[को०] ।

तरित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाव । नौका [को०] ।

तरिया^६—[हि० तरना] तैरनेवाला ।

तरियाना^७—क्रि० स० [हि० तरे (= नीचे)] १. नीचे कर देना ।
नीचे डाल देना । तह मे बैठ देना । २. डाँकना । छिपाना । ३.
बटुए के पेंच में मिट्टी राख आदि गोतना जिससे धाँच पर बढ़ाने
में ससमें कालिख न अमे । तेडा लगाना ।

तरियाना^८—क्रि० प्र० तले बैठ जाना । तह मे जमना ।

तरियाना^९—क्रि० स० [क्रा० तर से तामिक धातु] तर करना ।
गोछा करना ।

तरिखन—संज्ञा पुं० [हि० तरि] १. मान का एक गहना । जो फूव
के आकार का होता है । तरकी ।

विशेष—इसका वह भाग जो कान के छेद में रहता है, ताड़ के
पत्ते को लपेटकर बनाया जाता है ।

२. कर्णफूल ।

तरिखर^{१०}—संज्ञा पुं० [सं० तर + खर] दे० 'तखर' ।

तरिहूत^{११}—क्रि० वि० [हि० तर + घेत, हुत (प्रत्य०)] नीचे ।
तले । उ०—बुधि जो गई दे हिय बोलाई । गर्व गयो तरिहूत
सिर नाई ।—बाणसी (शब्द०) ।

तरी^{१२}—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाव । नौका । २. पया । ३. कपड़ा
रखने का पिटारा । पेटो । ४. धुआँ । धूस । ५. कपड़े का
छोर । दामन ।

तरी^{१३}—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. गीलापन । घाद्रंता । २. ठंडक ।
शीतलता । ३. वह नीची भूमि जहाँ खरास का पानी बहुत
बिबों तक इकट्ठा रहता हो । कछार । ४. तराई । तरहटी ।
५. सपुष्टि । बनावट । मासबारी ।

तरी^{१४}—संज्ञा स्त्री० [हि० तर (= नीचे)] १. जूते का तला । २.
तलछट । तलौछ ।

तरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तार] कान का एक गहना । तरिवन । कर्णफूल । उ०—काने कनक तरी बर बेसरि सोहहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

तरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] चाल । घुगान । उ०—वैसे सुंदर कमल को हुंसे ग्रहण करे तैसे पिता का चरण ग्रहण किया । वैसे कमल के तरे कोमल तरियाँ होती हैं, तिन तरियों सहित कमल को हुंसे पकड़ता है, वैसे दशरथ जी की धेनुरीन को राम जी ने ग्रहण किया ।—योग०, पृ० १३ ।

तरीक^१—क्रि० वि० [देश० तड़का, तड़के] प्रातःकाल । तड़का । सबेरा । उ०—कहै साहि गोरी गरब छोड़ो पान तसार । कहि तरीक सुउंच दिन बहि अरि सद्गो सार ।—पृ० २०, ६।६३ ।

तरीक^२—संज्ञा पुं० [अ० तरीक] १. मार्ग । रास्ता । शैली । रविश । उ०—बाद बड़े हजरते बोले शाफीक, चाकिले असरारे हुक हादी तरीक ।—दक्खिनी०, पृ० २०३ । २. परंपरा । रिवाज । ३. धर्म । मजहब । ४. युक्ति । तरीकब । ५. नियम । दस्तूर ।

तरीकत—संज्ञा स्त्री० [अ० तरीकत] १. आत्मशुद्धि । अंतःशुद्धि । दिल की पवित्रता । २. ब्रह्मज्ञान । अख्यात्म । तसब्बुफ । उ०—यूँ ले निद्रा सुख सपने का जागा कन बैठे, राहु तरीकत मारव उनके मुस्तैद होकर उठे ।—दक्खिनी०, पृ० ५५ ।

तरीका—संज्ञा पुं० [अ० तरीकह] १. ङंग । विधि । रीति । प्रकार । ठब । २. चाल । व्यवहार । ३. युक्ति । उपाय । तबदीर । तरीकब ।

तरीष—संज्ञा पुं० [म०] १. सूझा गोबर । २. मोका । नाव । ३. पानी में बहुतेवाला तबता । वेड़ा । ४. समुद्र । ५. तबसाय । ६. रयग । ७. कुशल व्यक्ति (को०) । ८. सजावट (को०) । ९. सुंदर आकार या आकृति (को०) ।

• तरीषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की कन्या ।

तरु^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष । पेड़ । २. गति । वेग (को०) । ३. काठ का एक पात्र जिसमें सोम लिया जाता था (को०) । ४. एक प्रकार का चीड़ जिसके पेड़ खसिया की पहाड़ी, चटगांव और बरमा में होते हैं ।

विशेष—इसमें से जो बिरोजा या गोंद निकलता है, वह सबसे अच्छा होता है । तारपीन का तेल भी इससे बहुत अच्छा निकलता है ।

तरु^२—वि० रसक । रक्षा करनेवाला ।

तरुआ^१—संज्ञा पुं० [देश०] उबाले हुए धान का चावल । भुजिया चावल ।

तरुआ^२—संज्ञा पुं० [हि० तलवा] दे० 'तलवा' ।

तरुटी^१—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'तुटि' । उ०—मंडारा समाप्त हो गया । कोई तरुटी नहीं हुई ।—मैला०, पृ० ४८ ।

तरुण^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तरुणी] १. युवा । जवान । २. नया । नूतन ।

तरुण^२—संज्ञा पुं० १. बड़ा जीरा । स्थूल जीरक । २. एरंड । रेंड । ३. कूजा का फूल । मोतिया ।

तरुणक—संज्ञा पुं० [सं०] अंकुर (को०) ।

तरुणकवर—संज्ञा पुं० [सं०] वह कवर जो सात दिन का हो गया हो ।

तरुणतरणि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरुण सूर्य' ।

तरुणदधि—संज्ञा पुं० [सं०] पाँच दिन का दही ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार ऐसा दही खाना हानिकारक है ।

तरुणपोतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल ।

तरुणसूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न का सूर्य ।

तरुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती । उ०—भव अर्णव की तरुणी तरुणा । बरसीं तुम नयनों से करुणा ।—अर्चना०, पृ० १ ।

तरुणाई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + आई (प्रत्य०)] युवावस्था । जवानी ।

तरुणाना^१—क्रि० प्र० [सं० तरुण + आना (प्रत्य०)] जवानी पर आना । युवावस्था में प्रवेश करना ।

तरुणास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पतली लचीली हड्डी ।

तरुणिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुणिमन्] जवानी (को०) ।

तरुणी^१—वि० स्त्री० [सं०] युवती । जवान स्त्री ।

तरुणी^२—संज्ञा स्त्री० १. युवती । जवान स्त्री ।

विशेष—पावप्रकाश के अनुसार १६ वर्ष से लेकर ३२ वर्ष तक की स्त्री को तरुणी कहना चाहिए ।

२. चीकुमार । ग्वारपाठा । ३. दंती । जमालगोटा । ४. चीड़ा नामक गंधद्रव्य । ५. कूजा का फूल । मोतिया । ६. मेघ राग की एक रागिनी ।

तरुणीकटाक्षमाल—संज्ञा स्त्री० [म०] तिलक वृक्ष ।

विशेष—कवि समय के अनुसार तिलक का वृक्ष तरुणियों की कटाक्ष दृष्टि से पुष्पित होता है । अतः इसका एक नाम 'तरुणीकटाक्षमाल' है ।

तरुतुलिका—संज्ञा स्त्री० [म०] जमगावड़ ।

तरुन^१—संज्ञा पुं० [सं० तरुण] दे० 'तरुण' ।

तरुनई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तरुन + ई (प्रत्य०)] दे० 'तरुनाई' ।

तरुना^१—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'तरुण' । उ०—ऐसे बिरह बिकल कल बैन । मुनि के तरुना करना ऐन ।—नंद प्र०, पृ० ३२१ ।

तरुनाई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + हि० आई (प्रत्य०)] तरुणावस्था । जवानी ।

तरुनापा^१—संज्ञा पुं० [सं० तरुण + हि० प्रापा (प्रत्य०)] युवावस्था । जवानी । उ०—बालापन खेलत में जोयो तरुनापे गरबानी ।—सूर (शब्द०) ।

तरुनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुणी] दे० 'तरुणी' । उ०—ब्रज तरुनि रसन आनंदवन चातकी निसद भद्रभुत भस्त्रित जगत जानी ।—छानंद, पृ० ३८६ ।

तरुवाई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तरु + हि० बाह] पेड़ की भुजा । शाखा । डाल । उ०—इक संशय फल है तरु माहीं । पाँच कोटि दल है तरुबोही ।—सदल मिश्र (शब्द०) ।

तरुभुक्—संज्ञा पुं० [सं० तरुभुक्] बंदाक । बाँदा ।

तरुभुज—संज्ञा पुं० [सं० तरुभुक्] दे० 'तरुभुक्' ।

तकराग—संज्ञा पुं० [सं०] गया कोमल पत्ता । किसलय ।
तकराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. कल्पवृक्ष । २. ताड़ का वृक्ष ।
तकरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा ।
तकरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा । बंदाक ।
तकरुवर—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष ।
तकरवरियाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० तरवारि] तलवार ।
तकरवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका लता । पानड़ी ।
तकरवासिनी—वि० [सं० तकर + वासिनी] पेड़ पर रहनेवाली । उ०—
कूक उठी सहसा तकरवासिनी ! गा तू स्वागत का गाना । किसने
तुझको अंतर्धामिनि ! बतलाया उसका आना ?—वीणा,
पृ० ५८ ।

तकरसार—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।
तकरस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा ।
तकरुट, तकरुट—संज्ञा पुं० [सं०] कमल की जड़ । मसीङ्ग । मुरार ।
तरेँदा—संज्ञा पुं० [सं० तरण] १. पानी में तैरता हुआ काठ । बेड़ा ।
२. वह तैरनेवाली वस्तु जिसका सहारा लेकर पार हो सकें ।
उ०—सिंह तरेँदा जेइ गह्रा पार भयो तिहि साथ । ते पय
बूढ़े बारि ही मेंड पूछ जिनि हाथ ।—जायसी (शब्द०) ।

तरेँ—क्रि० वि० [सं० तल] नीचे । तले ।
मुहा०—(किसी के) तरे बैठना = (किसी को) पति बनाना ।
तरेँ—वि० [हिं०] दे० 'तरह' । उ०—बाने की लाज राख्यो
तुमसे है सब इलाक्यो । गलबाहियाँ आनि नाक्यो रस उस तरे
ही बाक्यो ।—ब्रज प्र०, पृ० ४४ ।

तरेटा—संज्ञा पुं० [हिं० तर + एट (प्रत्य०)] नाभि के नीचे का
हिस्सा । पेड़ू ।

तरेटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर] पर्वत के नीचे की भूमि । तराई ।
तरहटी । तलहटी । घाटी ।

तरेड़ा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'तरेरा', 'तरारा' ।
तरेरना—क्रि० सं० [सं० तज (= डाटना) + हिं० हेरना (= देखना)]
भाँखों को इस प्रकार करना जिससे क्रोध या अप्रसन्नता प्रकट
हो । दृष्टि कुपित करना । भाँख के इशारे से डाँट बताना ।
दृष्टि से असम्मति या असंतोष प्रकट करना । उ०—सुनि
बखि मन बिहसे बहुदि नयन तरेरे राम ।—मानस, १।२७८ ।

विशेष—कर्म के रूप में इस शब्द के साथ भाँख या उसके
पर्यायवाची शब्द आते हैं ।

तरेरा^१—संज्ञा [सं० तरारह] लहरों का थपेड़ा ।
तरेरा^२—संज्ञा पुं० [हिं० तरेरना] क्रुद्ध दृष्टि ।
तरेरा^३—संज्ञा पुं० [सं० तर + ईश, या देश०] कल्प वृक्ष । उ०—बंङ-
काव करंगा तरेस सी गणेश दैत ।—रघु० क०, पृ० २४६ ।
तरेनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर (= नीचे) + ऐनी (प्रत्य०)] वह पत्थर
जो हरिस और हल को मिलाने के लिये दिया जाता है ।
तरेयाङ्ग—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरई' ।
तरेखा—संज्ञा पुं० [हिं० तरे] किसी स्त्री के दूसरे पति का पुत्र ।

तरैली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरैनी' ।
तरौचा—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = नीचे + ओँच (प्रत्य०), या देश०]
१. कंधी के नीचे की लकड़ी । २. दे० 'तरौछ' ।

तरौचा—संज्ञा पुं० [हिं० तर (= नीचे)] [स्त्री० तरौची] जुए के नीचे
की लकड़ी ।

तरौछा—संज्ञा पुं० [देश०] फसल का उतना घनाब जितना हलवाहे
भादि मजदूरों को देने के लिये निकाल दिया जाता है ।

तरौई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरई' ।

तरौता—संज्ञा पुं० [सं० तरवट] एक लंबा पेड़ जो मध्यभारत और
दक्षिण भारत में पाया जाता है । इसकी छाल चमड़ा सिक्काने
के काम में आती है । इसे 'तखर' भी कहते हैं ।

तरौना^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरौना' । उ०—प्रभा तरौना लाल
की परी कपोलन आनि । कहा छपावत बतुर तिय कंत बंत
छत आनि ।—नंद० प्र०, पृ० ३३५ ।

तरौवर, तरौवर^२—संज्ञा पुं० [सं० तखवर] दे० 'तखवर' । उ०—
रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै गई साँवरे गात । काम तरौवर
साँवरी, ब्रज बनिता ही पात ।—नंद० प्र०, पृ० १८६ ।

तरौछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + ओँछ (प्रत्य०)] तलछट ।

तरौछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + ओँछी (प्रत्य०)] १. वह लकड़ी
जो हट्टे में नीचे की तरफ लगी रहती है ।—(जुलाहे) । २.
बैलगाड़ी में लगी हुई वह लकड़ी जो जुजावा के नीचे
रहती है ।

तरौटा—संज्ञा पुं० [हिं० तर + पाट] आटा पीसने की बक्की का
नीचेवाला पाट । अति के नीचे का पत्थर ।

तरौता—संज्ञा पुं० [हिं० तर + ओता (प्रत्य०)] छाजन में वे
लकड़ियाँ जो ठाठ के नीचे बी जाती हैं ।

तरौस^१—संज्ञा पुं० [हिं० तर + ओँस (प्रत्य०)] तट । तीर ।
किनारा । उ०—स्याम सुरति करि राधिका तकति तरनिजा
तीर । अंसुवनि करति तरौस को छिनक खरौंदो नीर ।—
बिहारी (शब्द०) ।

तरौना^२—संज्ञा पुं० [हिं० ताड़ + बना] १. कान में पहनने का एक
गहना जो फूल के आकार का गोल होता है । तरकी ।
(इसका वह अंग जो कान के छेद में रहता है, ताड़ के पत्ते
को गोल सपेटकर बनाया जाता है) ।

विशेष—दे० 'तरकी', 'ताड़क' ।

२. कर्णफूल नाम का आभूषण । उ०—लसत सेत सारी ढक्यो
तरल तरौना काम ।—बिहारी (शब्द०) ।

तरौना^३—संज्ञा पुं० [हिं० तर (= नीचे)] वह मोड़ा जिसपर मिठाई
का लौंवा रखा जाता है ।

तर्क^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी वस्तु के विषय में यज्ञात तत्व को
कारणोपपत्ति द्वारा निश्चित करनेवाली उक्ति या विचार ।
हेतुपूर्ण युक्ति । विवेचना । बलीब ।

विशेष—तर्क व्याय के सोलह पदार्थों (विषयों) में से एक है । जब किसी वस्तु के संबंध में वास्तविक तत्त्व ज्ञात नहीं होता, तब उस तरह के ज्ञानार्थ (किसी नियमन के पक्ष में) कुछ हेतुपूर्ण युक्ति भी जाती है जिसमें विरुद्ध निगमन की अनुपपत्ति भी दिखाई जाती है । ऐसी युक्ति को तर्क कहते हैं । तर्क में शंका का होना भी प्राक्प्रकार है, क्योंकि जब यह शंका होगी कि बात ऐसी है या वैसी, तभी वह हेतुपूर्ण युक्ति की आवश्यकता जिसमें यह निरूपित किया जायगा कि बात का ऐसा होना ही ठीक है वैसा नहीं । जैसे, शंका यह है कि आत्मा नित्य है या अनित्य । 'यहाँ आत्मा का पदार्थ रूप ज्ञात नहीं है । इसका पदार्थ रूप निश्चित करने के लिये हम इस प्रकार विवेचना करते हैं,— यदि आत्मा अनित्य होती तो अपने कर्म का फल व प्राप्त कर सकती थीर उसका आत्मव्ययम या मोक्ष न हो सकता । पर ठन सब बातों का होना प्रसिद्ध ही है । अतः आत्मा नित्य है, ऐसा मानना ही पड़ता है ।

२. चमत्कारपूर्ण वृत्ति । गृहल की बात । जोष की बात । चतुराई से भरी बात । उ०—प्यारी को मुल छोड़के गट पीछे संवारयो । तरक बात बहुत कही कुछ मूढि न संभारयो ।—सूर (अ० ८०) । ३. व्यय । ताना । उ०—ते सब तर्क बोलि मीकों तामें बहुत डेराऊँ ।—सूर (अ० ४०) ४. चारण । अनुमान (को०) । ५. निष्कार । विचारण । ऊहा । वितर्क (को०) । ६. छुट या रवतन ज्ञान के आधार पर स्थापित विचार व्यवस्था (को०) । ७. सह की संस्था (को०) । ८. कारण (को०) । ९. इच्छा । प्राप्ता (को०) । १०. न्यायशास्त्र (को०) । ११. ज्ञान (को०) । १२. अनेकवाद (को०) ।

यो०—तर्कनील—तर्क में प्रवीण । तार्किक । तर्क करनेवाला । उ०—प्राचीन हिंदू बड़े तर्कनील थे ।—हिंदु० सभ्यता पृ० ६२ ।

* **तर्क**—संज्ञा पुं० [म०] १. त्याग । छोड़ना । २. छूटना । कि० प्र०—करना ।

यो०—तर्कप्रद—प्रतिष्ठता । प्रामाण्य । तर्कनिर्देश—साधु या फकीर हो जाना ।

तर्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. तर्क करनेवाला । तर्कशास्त्री । तार्किक । २. याचक । संगत ।

तर्कण—संज्ञा पुं० [म०] [वि० तर्कणीय, तर्क] तर्क करने की क्रिया । बहुस करने का काम ।

तर्कणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विचार । विवेचना । ऊहा । २. युक्ति । दलील ।

तर्कना—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्कणा] दे० 'तर्कणा' ।

तर्कना—क्रि० प्र० [म० तर्क + ना (प्रत्यय)] तर्क करना ।

तर्कना—क्रि० प्र० [हि०] उछलना । दूदना ।

तर्कमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा ।

तर्कवितर्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊहापोह । विवेचना । सोच विचार । २. वाद विवाद । बहुस ।

कि० प्र०—करना ।

तर्कविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तर्कशास्त्र । (को०) ।

तर्कश—संज्ञा पुं० [फा०] तीर रखने का चींगा । माथा । तूणीर ।

तर्कशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह शास्त्र जिसमें ठीक तर्क या विवेचना करने के नियम धारित निरूपित हों । विद्वानों के खंडन मंडन की शैली बतानेवाली विद्या । २. न्याय शास्त्र ।

तर्कस—संज्ञा पुं० [फा० तर्कश] दे० 'तर्कश' ।

तर्कसो—संज्ञा स्त्री० [फा० तर्कश] छोटा तरकश ।

तर्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] तर्क (को०) ।

तर्काट—संज्ञा पुं० [सं०] भिक्षुक । याचक (को०) ।

तर्कातीत—वि० [सं०] तर्क से परे । उ०—तर्कातीत श्रद्धा से हटकर एक बुद्धिसंगठ, लौकिक, मानववादी नैतिक बोध का रूप लिया ।—बदी०, पृ० १०१ ।

तर्काभास—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा तर्क जो ठीक न हो । कुतर्क ।

तर्कारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धौंसे का वृक्ष । धरणी वृक्ष । २. बैत का पेड़ ।

तर्कारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरकारी' ।

तर्किण—संज्ञा पुं० [सं०] चकवैड़ ; पेंवार ।

तर्किल—संज्ञा पुं० [सं०] चकवैड़ ; पेंवार ।

तर्की—संज्ञा पुं० [सं० तर्किन्] [स्त्री० तर्किनी] तर्क करनेवाला ।

तर्की—संज्ञा स्त्री० [हि०] टरकी । पक्षी ।

तर्की—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरकी' ।

तर्कीब—संज्ञा स्त्री० [हि० तरकीब] दे० 'तरकीब' ।

तर्कु—संज्ञा पुं० [सं०] तकला । टेकुषा ।

यो०—तर्कुशाण = साम करने का पत्थर ।

तर्कु—वि० [सं०] निवेदन करनेवाला । प्रार्थी (को०) ।

तर्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] काटना (को०) ।

तर्कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तकला । टेकुषा । २. काटना (को०) ।

तर्कुपिंड, तर्कुपीठ, तर्कुपीठी—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुपिण्ड] तकले की फिरकी ।

तर्कुल—संज्ञा पुं० [सं० ताड + कुल] १. ताड़ का पेड़ । २. ताड़ का फल ।

तर्क्य—वि० [सं०] जिसपर कुछ सोच विचार करना आवश्यक हो । विचार्य । विरथ ।

तर्कु—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदुषा या चोता नामक जंतु ।

तर्क्य—संज्ञा पुं० [सं०] जवाहार नमक ।

तर्गशा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तर्कश' । उ०—ना तर्गश न धन लड़े न सिपर तलवारि ।—प्राण०, पृ० २८१ ।

तर्ज—संज्ञा पुं०, स्त्री० [म० तर्ज] १. प्रकार । किस्म । तरह । २. रीति । शैली । ढंग । डब । जैसे, बातचीत करने का तर्ज । जैसे,—इस छोट का तर्ज अच्छा बड़ी है ।

तर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्जित] १. धमकाने का कार्य । भयप्रवर्धन । २. जोष । ३. तिरस्कार । फटकार । उद्विग्नपट ।

थो०—तर्जब गजब = डीट फटकार । कोधप्रदर्शन ।

तर्जना^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तर्जब' [को०] ।

तर्जना^२—क्रि० प्र० [सं० तर्जब] डीटना । बमकाना । डपटना ।

तर्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घंगूठे के पास की उँगली । घंगूठे और मध्यमा के बीच की उँगली । प्रवेशिनी । उ०—इहाँ फुन्नुह बसिया कोह बाही । जे तर्जनी देखि मरि जाही ।—तुलसी (बन्ध०) ।

विशेष—इसी उँगली से किसी वस्तु की ओर दिखाते या इशारा करते हैं ।

तर्जनीमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा जिसमें बाएँ हाथ की मुठ्ठी बाँधकर तर्जनी और मध्यमा को फैलाते हैं ।

तर्जिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैद्य का प्राचीन नाम । तार्पिक वैद्य ।

तर्जित—वि० [सं०] १. डीटा या फटकारा हुआ । बमकाया हुआ । २. अपमानित । तिरस्कृत [को०]

तर्जुमा—संज्ञा पुं० [प्र०] आवांतर । कल्पा । अनुवाद ।

तर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] गाय का बछड़ा । बछवा ।

तर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुरंत जन्मा हुआ गाय का बछड़ा । २. धिगु । बच्चा ।

तर्णि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तरणि' ।

तर्तरीक^१—संज्ञा पुं० [सं०] बाव ।

तर्तरीक^२—वि० १. पार जानेवाला । २. पार ले जानेवाला (को०) ।

तर्दू—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोई [को०] ।

तर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्पणीय, तर्पित, तर्पी] १. तृप्त करने की क्रिया । संतुष्ट करने का कार्य । २. कर्मकांड की एक क्रिया जिसमें देव, जाति और पितरों को तुल्य करने के लिये हाथ या धरने से पानी डेते हैं ।

विशेष—मध्यमा स्नाय के पीछे तर्पण करने का विधान है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

१. यज्ञ की अग्नि का इंधन (को०) । ४. भोजन । साहार (को०) ।

५. पाँच में तेल डालना (को०) ।

तर्पणी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खिरनी का वृक्ष । २. गंगा नदी ।

तर्पणी^२—वि० तृप्ति देनेवाली ।

तर्पणीय—वि० [सं०] तृप्ति के योग्य ।

तर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पशुचारिणी स्त्रिया । स्थल कमजिबी । स्थलपशु ।

तर्पणेच्छु^१—वि० [सं०] १. तर्पण करने की इच्छा । २. तर्पण कराने की इच्छा [को०] ।

तर्पणेच्छु^२—संज्ञा पुं० शीघ्र [को०] ।

तर्पित—वि० [सं०] तृप्त किया हुआ । संतुष्ट किया हुआ ।

तर्पी—वि० [सं० तर्पित] [वि० स्त्री० तर्पिणी] १. तृप्त करनेवाला । संतुष्ट कर देनेवाला । २. तर्पण करनेवाला ।

तर्फ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरफ' । उ०—क्या हुआ पार छिप

गया किस तर्फ । एक भलक ही मुझे दिखा करके ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० २२० ।

तर्षट—संज्ञा पुं० [सं०] १. चकवेड़ । पेंवार । २. चाँद बत्सर । वर्ष ।

तर्षित—संज्ञा स्त्री० [प्र०] शिक्षा वीक्षा । उ०—बाप ही की ताबीस और तर्षित का यह बत्सर है ।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० ६१ ।

तर्बूज—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरबूज' ।

तरथोना^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरनी' ।

तरथोना^२—संज्ञा पुं० [हि० तरनी] दे० 'तरनी' । उ०—मन्त्री तरथोना ही रखी भूति खेत इक रंग । बाक बास बेसरि लखी बसि मुकुतनि के संग ।—बिहारी २०, दो० २० ।

तर्री—संज्ञा पुं० [देश०] चाबुक का फीता या डोरी जो छड़ी में बाँधी रहती है ।

तर्रीना—संज्ञा पुं० [फ्रा० तराना] एक प्रकार का यान । दे० 'तराना' तर्रीना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तरनी' ।

तर्री—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चास जिसे भैंसे बड़े प्रेम से खाती हैं ।

तर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पछिलाया । २. तृष्णा । अक्षतोष । उ०—देव शोक संदेह भय हर्ष तम तर्ष एत साधु सद्युक्ति बिच्छेदकारी ।—तुलसी (बन्ध०) । १. वेड़ा । ४. समुद्र । ५. सूर्य ।

तर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] कफ का एक भेद ।—माधव०, पृ० १८ ।

तर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्षित] १. पिपासा । व्यास । १. अभि-लाषा । इच्छा ।

तर्षित—वि० [सं०] १. व्यास । २. जो सालसा किए हो । इच्छुक ।

तर्षुल—वि० [सं०] दे० 'तर्षित' [को०] ।

तर्स—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरस' । उ०—तर्स है यह देर से, जालें बड़ी शृंगार में ।—बेला, पृ० ६७ ।

तर्ह—संज्ञा स्त्री० [प्र०] दे० 'तरह' ।

थो०—तर्ह संवाज = तर्ह अफगन = नीच डालनेवाला । बुनियाद रखनेवाला ।

तर्हदारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तरह + फा० दारी (प्रत्य०)] १. बाँकापन । छबीलापन । खासगुजा । १. हाथ माव । नाज नसरा । ३. हुस्न । सोदर्य । उ०—है गई सजावट बई तर्हदारी है । सब कहो किससे आज़कष नई धारी है ।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० १६४ ।

तर्हे^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० तर्ह] दे० 'तरह' । उ०—काशी पंडित धरो पाव बहोत तर्हे से मनाव ।—दक्खिनी०, पृ० ४६ ।

तल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे का माथ । २. पैवा । तल । ३. जल के नीचे की भूमि । ४. वह स्थान जो किसी वस्तु के नीचे पड़ता हो । जैसे, तरतल ।

मुहा०—तल करना = नीचे बसा लेना । छिपा लेना ।—(जुधारी) ।

५. पैर का तलवा । ६. हुयेली । ७. जपत । यण्ड । ८. किसी वस्तु का बाहरी केलाव । बाह्य विस्तार । पृष्ठदेश । सतह । जैसे,—सूतल, धरातल, समतल । ९. स्वरूप । स्वभाव । १०.

कानन । जंगल । ११. गड्ढा । गड़हा । १२. चमड़े का बस्ता जो बनुव की डोरी की रगड़ बचाने के लिये बाईं बांह में पहना जाता है । १३. घर की छत । पाटन । जैसे, चार तला मकान । १४. ताड़ का पेड़ । १५. मुठिया । मूठ । दस्ता । १६. बाएँ हाथ से बीणा बजाने की क्रिया । १७. गोषा । गोह । १८. कलाई । पट्टा । १९. बालिशत । बिता । २०. व्यापार । सहारा । २१. महादेव । २२. सप्त पातालों में से पहला । २३. एक तरक का नाम । २४. उद्देश्य (को०) । २५. मूल । कारण (को०) । २६. ताल । तलाब (को०) ।

तलक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताल । पोखरा । २. एक फल का नाम ३. सिंगड़ी । घंगीठी (को०) ।

तलक^२—अव्य० [हि० तक] तक । पर्यंत ।

तलकर—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर या लगान जो जमींदार ताल की वस्तुओं (जैसे, सिंघाड़ा, मछली आदि) पर लगाता है ।

तलकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ ।

विशेष—यह पंजाब, अवध, बंगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास में होता है । इसकी लकड़ी ललाई लिए घुरी होता है और बेटी के सामान बनाने तथा मकानों में लयाने के काम में आती है ।

तलकीन—संज्ञा स्त्री० [अ० तलकीन] १. शिक्षा । उपदेश । २. दीक्षा देना । गुरुमंत्र देना । पीर का मुरीद को प्रमल आदि पढ़ाना (को०) ।

तलख—वि० [फ्रा० तलख] १. कड़वा । अप्रिय । २. अशुचिकर । नागवार । उ०—तेरी जैसी राक्षसिन के हाथ में पड़कर बिबयी तलख हो गई ।—गोदान, पृ० ५७ ।

तलखी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तलखी] कड़वाहट । कटुता । कड़वापन । उ०—द्विज की तलखी नहीं है जिसमें तलख जियगानी बहू है ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५६६ ।

तलख^३—अव्य० [हि०] दे० 'तलक', 'तक' । उ०—तू आये तलग बसल ते कर इलाज । चलाउंगी मैं सब तेरा मुहको राज ।—बिक्रमनी०, पृ० १४५ ।

तलगू—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलंग] तैलंग देश की भाषा । तेलगू भाषा ।

तलखरा—संज्ञा पुं० [सं० तल + हि० घर] तहकाना ।

तलखट—संज्ञा स्त्री० [हि० तल + छटना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ के नीचे बैठे हुई मैल । तलछ । गाव ।

तलख^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तलखट' । ल०—तिमि उड़त कोठ पखी सहित बल बखी तलछन परे ।—हुम्मीर०, पृ० ४३ ।

तलछी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तलखट' । उ०—तिल तिल आर कबीर लए तलछी आरै लोग ।—कबीर० मं०, पृ० ३२५ ।

तलत्र, तलत्राण—संज्ञा पुं० [सं०] धनुर्धर का वस्तुना (को०) ।

तलना—क्रि० सं० [सं० तरण (= तिराना)] कड़कड़ाते हुए धी या तेल में डालकर पकाना । जैसे, पापड़ तलवा, घुँघनी तलना ।

संयो० क्रि०—देना ।—खिना ।

विशेष—भावप्रकाश में 'धी में भुना हुआ' के अर्थ में 'तलित' शब्द आया है, पर वह संस्कृत नहीं जान पड़ता ।

तलप^१—संज्ञा पुं० [सं० तल्प] दे० 'तल्प' । उ०—तुम जानकी, जनकपुर जाहु । कहा भानि हम संघ भरमिही, गहवर बन दुख-सिंधु अयाहु । तजि वह जनक राज भोजन सुख, कत तृण-तल्प, बिपिन फल खाहु ।—सूर०, ६ । ३४ ।

तलपट—वि० [देश०] नाख । बरबाद । चौपट ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तलपट^२—संज्ञा पुं० [सं०] काँटा । प्रायश्चय फलक ।

तलपत्त^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] बिछौने की चादर । उ०—हरि मगहि हरनछ्छ करहि तलपत्त पता धर ।—पृ० रा०, २ । ३०८ ।

तलपना—क्रि० अ० [हि०] दे० 'तलफना' । उ०—तलपन लागे भान नगल ते छिनहु होहु जो ग्यारे ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १३३ ।

तलफ—वि० [अ० तलफ] नष्ट । बर्बाद ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—मुहूरिर तलफ ।

तलफना—क्रि० अ० [हि० तड़पना अथवा अनु०] १. कष्ट या पीड़ा से अंग टपकना । छटपटाना । २. व्याकुल होना । बेचैन होना । बिकल होना ।

तलफाना—क्रि० सं० [अनु०] तड़पाना ।

तलफी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तलफी] १. जराबी । बरबादी । नाश । २. हानि ।

यौ०—हुक तलफी = स्वस्थ का मारा जाना ।

तलफफुज—संज्ञा पुं० [अ० तलफफुज] उच्चारण (को०) ।

तलब—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. खोज । तलाश । २. चाह । पाने की इच्छा । ३. आवश्यकता । माँग ।

मुहा०—तलब करना = माँगना या भेगाना ।

४. बुलावा । बुलाहट ।

मुहा०—तलब करना = बुला भेजना । पास बुलाना ।

५. तनखाह । वेतन ।

क्रि० प्र०—खाना ।—खुकाना ।—देना ।—पाना । मिलना । —खेवा ।—माँबना ।—चाहना ।

तलबगार—वि० [फ्रा०] चाहनेवाला । माँगनेवाला ।

तलबदार—वि० [फ्रा०] चाहनेवाला ।

तलबदास्त—संज्ञा पुं० [अ० तलब + फ्रा० दास्त] समन ।

तलबनामा—संज्ञा पुं० [अ० तलब + फ्रा० नामा] समन । प्रदासत में उपस्थित होने का लिखित आज्ञापत्र ।

तलबाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० तलबाना] १. वह खर्च जो गवाहों को तलब करने के लिये टिकट के रूप में प्रदासत में दाखिल किया जाता है । २. वह खर्च जो मालगुजारी समय पर व जमा करने पर जमींदार से दंड के रूप में लिया जाता है ।

विशेष—अपराधियों को जाने पीने आदि के लिये जो बेंट या खर्च जमींदार देते हैं, उसको भी तलवाना कहते हैं।

तलवी—संज्ञा स्त्री० [अ० तलव + क्रा० ई (प्रत्य०)] १. बुलाहट। २. माँग।

क्रि० प्र०—होना।

तलवेली—संज्ञा स्त्री० [हि० तलफना] किसी वस्तु के लिये आतुरता या बेचैनी। छटपटी। खोर उत्कंठा। उ०—कान्हू उठे प्रति प्रात ही तलवेली लागी। प्रिया प्रेम के रस भरे रति अंतर लागी।—सूर (शब्द०)

तलमल—संज्ञा पु० [सं०] तलछट। तरौछ। गह।

तलमलाना^१—क्रि० प्र० [देश०] तड़फड़ाना। तड़पना। बेचैन होना।

तलमलाना^२—क्रि० प्र० दे० 'तलमिलाना'।

तलमलाहट^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] व्याकुलता। तड़पने का भाव। बेचैनी।

तलमलाहट^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'तलमिलाना'।

तलमाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तलमलाना'।—(शब्द०)। उ०—लगे बिबस कई बेग पाया न धान, बी जान उसकी और लगी तलमान।—दक्खिनी०, पृ० ८७

तलव—संज्ञा पु० [सं०] गानैवाचा।

तलवकार—संज्ञा पु० [सं०] १. सामवेद की एक शाखा। २. एक उपनिषद् का नाम।

तलवा—संज्ञा पु० [सं० तल] पैर के नीचे का भाग जो चलने या लड़े होने में जमीन पर पड़ता है। पैर के नीचे की ओर का वह भाग जो एड़ी और पंजों के बीच में होता है। पादतल।

मुहा०—तलवा जुलाना = तलवे में जुलानी होना जिससे यात्रा का शक्नुन समझा जाता है। तलवे चाटना = बहुत खुशामद करना। अत्यंत सेवा शुश्रूषा में लगा रहना। तलवे छलनी होना = चलते चलते पैर घिस जाना। चलते चलते शिथिल हो जाना। बहुत दीड़ धूप की नीबत धाना। तलवे तले आँखें मलना = दे० 'तलवों से आँखें मलना'। तलवों तले मेटना = कुचलकर नष्ट करना। रौंद डालना।—(स्त्रि०)। तलवे धो धोकर पीना = अत्यंत सेवा शुश्रूषा करना। अत्यंत श्रद्धा भक्ति प्रकट करना। अत्यंत प्रेम प्रकट करना। तलवा न टिकना = पैर न टिकना। जमकर बैठना न रहना जाना। घासन न जमाना। एक जगह कुछ देर बैठे न रहना जाना। तलवा न भरना = दे० 'तलवा न टिकना'।—(स्त्रि०)। तलवों से आँखें मलना = (१) अत्यंत धीनता प्रकट करना। बहुत अधिक अधीनता दिखाना। (२) अत्यंत प्रेम प्रकट करना। (३) दे० 'तलवों तले मेटना'। तलवों से घाग लगना = क्रोध से शरीर भस्म होना। अत्यंत क्रोध बढ़ना। तलवों से मलना = पैर से कुचलना। रौंदना। कुचलकर नष्ट करना। तलवों से लगना = (१) क्रोध बढ़ना। (२) बुरा लगना। अत्यंत अग्रिय लगना। कुदून होना। बिड़ होना। तलवों से लगना, सिर में आकर दुफना = सिर से पैर तक क्रोध बढ़ना। क्रोध से

शरीर भस्म होना। तलवे सहलाना = (१) अत्यंत सेवा शुश्रूषा करना। (२) बहुत खुशामद करना।

तलवार—संज्ञा स्त्री० [सं० तरवारि] लोहे का एक लंबा धारदार हथियार जिसके आघात से वस्तुएँ कट जाती हैं। खड़्ग। घसि। कृपाण।

पर्या०—घसि। विशसन। खड़्ग। तीक्ष्णवर्मा। दुरासद। श्रीगर्भ। विजय। धर्मपाल। धर्ममाख। निस्त्रिंश। चंद्रहास। रिष्टि। करवाल। कीलेयक। कृपाण।

क्रि० प्र०—चलना। —चलाना। —मारना। —लगना। —लगाना। —करना।

मुहा०—तलवार करना = तलवार चलाना। तलवार का बार करना। तलवार कसाना = तलवार झुकाना। तलवार का खेत = लड़ाई का मैदान। युद्धक्षेत्र। तलवार का घाट = तलवार में वह स्थान जहाँ से उसका टेढ़ापन धारण होता है। तलवार का छाना = तलवार के फल में उभरा हुआ धाग। तलवार का डोरा = तलवार की धार जो पतले सूत की तरह दिखाई देती है। तलवार का पट्टा = तलवार की चौड़ी धार। तलवार का पानी = तलवार की आभा या बमक। तलवार का फल = मूठ के प्रतिरिक्त तलवार का सारा भाग। तलवार का बल = तलवार का टेढ़ापन। तलवार का मुँह = तलवार की धार। तलवार का हाथ = (१) तलवार चलाने का ढंग। (२) तलवार का धार। खड़्ग का आघात। तलवार की आँख = तलवार की चोट का सामना। तलवार की माला = तलवार का वह जोड़ जो दुबाले से कुछ दूर पर होता है। तलवारों की छाँह में = ऐसे स्थान में जहाँ अपने ऊपर चारों ओर तलवार ही तलवार बिछाई देती हो। रणक्षेत्र में। तलवार के घाट उतरना = लड़ते लड़ते मर जाना। तलवार के घाट उतारा जाना = मारा जाना। वीरगति पाना। उ०—रुहासा में बहुत से लामा और बिहानू तलवार के घाट उतारे गए हैं।—किन्नर०, पृ० ६१। तलवार खींचना = ध्यान से तलवार बाहर करना। तलवार जड़ना = तलवार मारना। तलवार से आघात करना। तलवार तोलना = तलवार को हाथ में लेकर अंदाज करना जिससे धार भरपूर बैठे। तलवार संभालना। तलवार पर हाथ रखना = (१) तलवार निकालने के लिये तैयार होना। (२) तलवार की शपथ होना। तलवार बाँधना = तलवार को कमर में लटकाना। तलवार साथ में रखना। तलवार सीतना = तलवार ध्यान से निकालना। धार करने के लिये तलवार खींचना।

विशेष—तलवार का व्यवहार सब देशों में अत्यंत प्राचीन काल से होता आया है। अनुर्वेद प्राचीन ग्रंथों को देखने से जाना जाता है कि भारतवर्ष में पहले बहुत अच्छी तलवारे बनती थीं जिनसे परधर तक कट सकता था। प्राचीन काल में खट्टर वेल, धंग, वंग, मध्यग्राम, सहस्राम, कालिजर इत्यादि स्थान खड़्ग के लिये प्रसिद्ध थे। ग्रंथों में लोहे की उपयुक्तता, खड़्गों के विविध परिमाण तथा उनके बनाने का विधान भी

दिया हुआ है। पानी देने के लिये सिखा है कि भार पर नमक या क्षार मिली बीबी मिट्टी का सेप कःके तलवार को घाग में तपावे और फिर पानी में बुझा दे। उसका घोर शुकाचार्य के पानी के अधिरिक्त रक्त, बूँद, ऊँट के दुध घासि में बुझाये का भी विधान बतलाया है। तलवार की भनवार (स्वनि) तथा फल पर घाघरे घाघ पड़े हुए चिल्लों व धनुसार तलवार के घुघ, घमुघ या घच्छे बुरे होने का निर्णय किया गया है। ऐसे निर्णय के लिये जो परीक्षा की जाती है, उसे घट्टींग परीक्षा कहते हैं। तलवार चलाने के हाथ ३२ गिनाए गए हैं। जिनके नाम ये हैं—भौठ, उध्भौठ, घाघिद्ध, घाघ्लुठ, बिघ्लुठ, घुघ, घंघांत, घमुघीयं, निघह, प्रघह, पदावकपंघ, घंघाव, मस्तक भ्रामण, भुज भ्रामण, पाण, पाव, बिबध, घुघि, उध्भमघ, घति, प्रत्याघति, घाघेघ, पानन, सरवानक-घ्लुठि, घघुता, लोठव, घोमा, रघेयं, दुधमुठिता, तियंघ प्रचार और इयं प्रचार। इसी प्रकार घट्टिक, मोठिक, महि-पाव घाघि तलवार के १७ भेद भी बतलाए गए हैं। घाघकम भी तलवारों के कई भेद होते हैं; जैसे लोड़ा, जो भीधा और घोर पर लोड़ा होता है, लोफ, जो लोधी पतली और मोधी होती है, दुधारा, जिसके दोनों ओर चार होती हैं। इसके अधिरिक्त स्थानभव से भी तलवारों के कई भेद हैं। जैसे, छिरोही, बंदरो, जुनुबी इत्यादि। एक प्रकार की बहुत पतली और लचीली तलवार उना कहलाती है जिसका तल्लि में एक एकते या कयन से सगेर सगते हैं। तलवार दुर्गा का प्रधान घल्ल है; इसी से कभी कभी तलवार का दुर्गा भी कहते हैं।

तलवारण्य—[सं०] तलवार। अग्नि [१०]।

तलवारियाँ—संज्ञा पुं० [हिं०] तलवार चलाने में निपुण व्यक्ति।

तलवारी—वि० [हिं०] तलवार। तलवार संबंधी।

तलवट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तल। पट्ट। पट्टा के नीचे भी सूत्र। पहाड़ की तराई।

तलवट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १० 'तलवट्टी'। उ०—तलवट्टी सुरतीए, रहे जोधाय मल्ले। भजन प्राण तथा मन।

तलवही—वि० [हिं०] ताल। ताल संबंधी। ताल का या ताल में होनेवाला।

तलही—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ताल ही (प्रत्य०)। ताल में रहनेवाली चिड़िया। उ०—कोर तलही, मुगाबी कोऊ कराकुल मारे।—प्रेमचम०, पृ० २६।

तलांगुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तलांगुलि पैर का घेंगूडा [को०]।

तला^१—संज्ञा पुं० [सं०] तल। १. किसी वस्तु के नीचे की सतह। पेदा। २. बूँट के नीचे का चमड़ा जो जमीन पर रहता है।

तला^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १० 'तलवाख' [को०]।

तला^३—वि० [सं०] तल। १० 'तलवा'।

तलाई^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ताल। छोटा ताल। तलेया। बावली।

तलाई^२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तल + घाट (प्रत्य०)। तलने की क्रिया या भाव।

तलाई^३—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तलाना। १. तलाने का भाव। २. तलाने की मजदूरी।

तलाउ—संज्ञा पुं० [हिं०] १० 'तलाव'।

तलाक—संज्ञा पुं० [सं०] तलाक। पति पत्नी का विधानपूर्वक संबंधत्याग।

क्रि० प्र०—देना।

तलाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] चटाई।

तलातल—संज्ञा पुं० [सं०] छात पातालों में से एक पाताल का नाम।

तलाफी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तलाफी। क्षतिपूर्ति। हानि की पूर्ति। नुकसान का बदला। तलाफ [को०]।

तलाकी—संज्ञा पुं० [हिं०] १० 'तलाक'।

तलावेली^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १० 'तलवेली'।

तलामली^२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १० 'तलावेली'।

तलामली^३—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १० 'तलमल'। उ०—बिब पहाड़ सा मानुस होवे लवा कासकर काक की बड़ी तलामली बन रही थी।—श्रीनिवास बं०, पृ० ३८१।

तलाया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ताल। तलेया। लवाई। उ०—बड़ी तलाया घाँठ जुरे वहाँ चकवे। परकी बिब है घाघु काय है चकवे।—राम० घमं०, पृ० २४२।

तलार^१—वि० [सं०] तल + हिं० धार (प्रत्य०)। १० 'तल्लार'। उ०—वे पासी में घुं जो चिकले भार। रले हैं जो परवर हर्षा लघ तलार।—कविश्री०, पृ० ३३०।

तलार^२—संज्ञा पुं० [सं०] स्थल (=तल) + रक्षक। नगररक्षक। कोतवाड।

तलार^३—संज्ञा पुं० [हिं०] नगररक्षक अधिकारी या कोतवाड। उ०—प्राचीन बिबालेकी तथा पुस्तकों में तलारक्ष और तलार अथवा नगररक्षक अधिकारी (कोतवाड) के अर्थ में प्रयुक्त किए जाते थे। सोड्डन रचित 'उदयकुंवरी कथा' में एक राजस का वर्णन करते हुए लिखा है कि बूझा बल्लन करने-वाले उसके कप के कारण वह नरक नगर के तलार के समान था।—राज० इति०, पृ० ४५६।

तलाव^१—संज्ञा पुं० [सं०] तलाव > प्रा० तलाघ > तलाव, या सं० तल्ल] वह लंबा चौड़ा गड्ढा जिसमें सामान्यतः बरसात का पानी जमा रहता है। ताल। तलाव। पोखरा। उ०—सिमिटि सिमिटि जल भरइ तलावा। जिनि सद्गुण सज्जन पंडू प्रावा।—तुलसी (शठक०)।

मुहा०—तलाव जाना = जोष जाना। पालाने जाना।

तलाव^२—वि० [हिं०] तलवा। तला हुआ। जैसे, तलाव हीय।

तलाव^३—संज्ञा पुं० तलने की क्रिया या भाव।

तलावकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] तलाव, तलाविका, प्रा० तलाव, तलाव्या, तलाव, तलाई, तलाव + की (प्रत्य०)। १० 'तलवाई'। उ०—जोवण फट्टि तलावकी, पालि व बंधव कीइ। कोला०, पृ० १२२।

तलावरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तलाव + री (= 'री' प्रत्य०)। लवाई। छोटा ताल। उ०—ताल तलावरि नरनि न जाहीं। सुकद वारवार तेनु नाहीं।—बायसी बं० (गुप्त), पृ० १४१।

तलाश—संज्ञा स्त्री० [पु०] १. खोज। ढूँढ़ना। अभ्येषण। अनुसंधान।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. आवश्यकता । चाह ।

क्रि० प्र०—होना ।

तलाशना—क्रि० स० [फा० तलाश + हि० ना (प्रत्य०)]
हूँड़ना । खोजना ।

तलाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष ।

तलाशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] गुम की हुई या छिपाई हुई वस्तु को
पाने के लिये घर-बार, चीज, वस्तु आदि की देखभाल ।
जैसे—पुलिस ने घर की तलाशी ली, तब बहुत सी चोरी की
चीजें निकलीं ।

मुहा०—तलाशी देना = गुम या छिपाई हुई वस्तु को निकालने के
लिये संदेह करनेवाले को घपना घर-बार, कपड़ा लता आदि
हूँड़ने देना । तलाशी लेना = गुम या छिपाई वस्तु को निकालने
के लिये ऐसे मनुष्य के घर-बार आदि की देखभाल करना जिस
पर उस वस्तु को छिपाने या गुम करने का संदेह हो ।

तलासी—संज्ञा स्त्री० [फा० तलाश] दे० 'तलाश' । उ०—तुलसी
बिना तलाश प्राप्त ग्रंथ ना संगी । हिंदू तुरक पै जबर लाय
जम की जो जंगी ।—तुरसी श०, पृ० १४३ ।

तलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तोड़ड़ा । २. तंग [को०] ।

तलित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तडित्' [को०] ।

तलित^१—संज्ञा पुं० [सं०] भुना हुआ मांस [को०] ।

तलित^२—वि० बी या चिकने के साथ भुना हुआ । तला हुआ ।

विशेष—यह शब्द संस्कृत नहीं जान पड़ता; संस्कृत ग्रंथों में
इसका उल्लेख नहीं मिलता । केवल भावप्रकाश में भुने हुए
मांस के लिये आया है ।

तलित^३—वि० तल युक्त [को०] ।

तलिन—वि० [सं०] १. दुबला । क्षीण । दुबल ।

यौ०—तलिनोदरी = क्षीण कटिवासी स्त्री ।

२. विरल । छितराया हुआ । अलग अलग । ३. थोड़ा । कम ।

४. साफ । स्वच्छ । शुद्ध । ५. नीचे या तल में स्थित [को०] ।

६. आच्छादित । ढका हुआ [को०] ।

तलिन^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] शय्या । सेज । पर्लंग ।

तलिम—संज्ञा पुं० [सं०] १. छत । पाटन । २. शय्या । पर्लंग ।

३. खड़ । ४. चंदवा । ५. बड़ी छुरी या छुरा [को०] । १.

जमीन का पक्का फर्श [को०] ।

तलिया^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तल] समुद्र की थाह ।—(डि०) ।

तलिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ताल] छोटा तालाब । उ०—मान-
सरोवर की कपा बकुला का जानै । उनके चित तलिया बसै,
कही कैसे मानै ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४ ।

तलियार^३—संज्ञा पुं० [देधी] कोतवाल । नगररक्षक ।

तली—संज्ञा स्त्री० [सं० तल] १. किसी वस्तु के नीचे की सतह ।

४-४८

पेंदी । २. तलछट । तलोछ । ३. पैर की एड़ी । ४. विवाह
में घर वधू के आसन के नीचे रखा हुआ रुपया पैसा ।

तलीचरैया—संज्ञा स्त्री० [हि० ताल + चरैया (= चरनेवाला)]
एक पक्षीविशेष । उ०—धोबहन, तलीचरैया, कोड़ेनी, चंबा
इत्यादि ।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० ३० ।

तलुआ^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तलवा' ।

तलुआ^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताल' ।

तलुन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बायु । २. युवा पुरुष ।

तलुन^२—वि० [वि० स्त्री० तलुनी] युवा । तरुण [को०] ।

तलुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती । तरुणी [को०] ।

तले—क्रि० वि० [सं० तल] नीचे । ऊपर का उलटा । जैसे, पेड़ के तले ।

मुहा०—तले ऊपर = (१) एक के ऊपर दूसरा । जैसे,—किताबों
को तले ऊपर रख दो । (२) नीचे की वस्तु ऊपर और
ऊपर की वस्तु नीचे । उलट पलट किया हुआ । गड़बड़ ।
जैसे,—सब कागज लगाकर रले हुए थे; तुमने तले ऊपर
कर दिए । तले ऊपर के = आगे पीछे के । ऐसे दो जिनमें से
एक दूसरे के उपरांत हुआ हो । जैसे,—ये तले ऊपर के लड़कें
हैं । इसी से लड़ा करते हैं ।—(स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसे
लड़कों में नहीं बनती ।) । तले ऊपर होना = (१) उलट
पलट हो जाना । (२) संभोग में प्रवृत्त होना । बी तले
ऊपर होना = (१) जो मचलाना । (२) जो ऊबना । चित्त
धबराना । तले की साँस तले और ऊपर की साँस ऊपर रह
जाना = (१) ठक रह जाना । स्तब्ध रह जाना । कुछ कहते
सुनते या करते धरते न बन पड़ना । (२) भीषक रह
जाना । हक्का बक्का रह जाना । चकित रह जाना । तले की
दुनिया ऊपर होना = (१) भारी उलट फेर हो जाना ।
(२) जो बाहे सो हो जाना । असंभव से असंभव बात हो
जाना । जैसे,—बाहे तले की दुनिया ऊपर हो जाय, हम सब
वहाँ न जायेंगे । (मादा बोपाए के) तले बच्चा होना =
साथ में थोड़े दिनों का बच्चा होगा । जैसे,—इस गाय के तले
एक बछड़ा है ।

तलेक्ष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] शूकर । सूअर ।

तलेटी—संज्ञा स्त्री० [सं० तल + हि० एटी (प्रत्य०)] १. पेंदी । २.
पहाड़ के नीचे का भूमि । तलहटी ।

तलेउ—वि० [सं०] १. नीचे रहनेवाला । २. हीन । तुच्छ । गया
गुजरा । ३. किसी द्वारा शासित ।

तलेचा—संज्ञा पुं० [हि० तले] इमारत में मेहराब से ऊपर का
और छत से नीचे का भाग ।

तलेटी—संज्ञा स्त्री० [हि० तलहटी] दे० 'तलेटी' । उ०—एक गाँव पहाड़
की तलेटी में तो दूसरा उसकी ढलवान पर ।—कूलो०, पृ० ७ ।

तलेया—संज्ञा स्त्री० [हि० ताल] छोटा ताल ।

तलोदर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तलोदरी] तोंदवाला [को०] ।

तलोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । भार्या ।

तलोदा—संज्ञा स्त्री० [त०] दरिया । नदी ।

तलोछ—संज्ञा स्त्री० [त० तल (= नीचे) + छि (प्रत्य०)] नीचे जमी हुई मल आदि । तलछट ।

तलोवन—संज्ञा पुं० [घ०] १. वह परिवर्तन जो मत, सिद्धांत एवं विचार में हो जाता है । २. गंग बदलना । ३. छिछोरा-पन [को०] ।

तलक—संज्ञा पुं० [त०] वन ।

तलक—वि० [फा० तलक] १. कड़वा । कटु । २. बदमजा । बुरे स्वाद का ।

तलखी—संज्ञा स्त्री० [फा० तलखी] कड़वाहट । कड़वापन ।

तलप—संज्ञा पुं० [त०] १. जटाय । पलंग । सेज । २. छटालिका । छटारी । ३. (लाश०) परनी । भार्या । जैसे, गुरुतलपग (को०) ।

तलपक—संज्ञा पुं० [त०] १. पलंग । २. वह सेवक जो पलंग पर शिग्नर आदि लगाता है [को०] ।

तलपकीट—संज्ञा पुं० [त०] मरकुग । खटमल ।

तलपज—संज्ञा पुं० [त०] क्षेपज पुत्र ।

तलपन—संज्ञा पुं० [त०] १. हाथी की पीठ पर की मांसपेशियाँ । २. हाथी की पीठ या उसका मांस [को०] ।

तलबाना—संज्ञा पुं० [फा० तलबानह] गवाहों को तलब कराने का लार्च । २० 'तलबाना' । उ०—स्टॉप, तलबाने वगैरे के हिसाब में लोगों को धोका दे दिया करता था ।—श्रीनिवास० पृ०, पृ० २१० ।

तलपल—संज्ञा पुं० [त०] हाथी का मेरुदंड, रीढ़ या पुण्ड्रबंश [को०] ।

तल्ल—संज्ञा पुं० [त०] १. चिल । गड्ढा । २. ताल । पोखरा ।

तल्लह—संज्ञा पुं० [त०] गुला ।

तल्ला^१—संज्ञा पुं० [त०] तल १ तले की परत । छतर । अलतला । २. ढिग । पास । सामीप्य । उ०—तियन को तल्ला पिय, तियन पियल्ला श्यामे दोसत प्रबल्ला भरुना भाए राजद्वार को ।—रघुराज (शब्द०) ।

तल्ला^२—संज्ञा पुं० [त० तलप] मवान का मन्त्रिल । जैसे, तीन तल्ला मकान ।

तल्लास^१—संज्ञा स्त्री० [फा० तलाश] २० 'तलाश' । उ०—फीज तल्लास कर हारी । भाए जहाँ सूप बेजारी ।—तुरसी श०, पृ० ६५ ।

तल्लिका—संज्ञा स्त्री० [त०] ताली । कुंजी

तल्ली^१—संज्ञा स्त्री० [त०] १. जूते का तला । २. नीचे की तलछट जो नदी में बैठ जाती है ।

तल्ली^२—संज्ञा स्त्री० [त०] १. तरणी । युवती । २. नौका । नाव । ३. वरगु की पत्नी ।

तल्लोन—वि० [त०] उसमें लीन । उसमें लय । दलचित [को०] ।

तल्लुआ—संज्ञा पुं० [देश०] गाढ़े की तरह का एक लपड़ा । महमूदी । तुकरी । सल्लम ।

तल्लो^१—संज्ञा पुं० [त० तल] जल के नीचे की पाट ।

तल्लकारा—संज्ञा पुं० [त०] २० 'तल्लकार' ।

तल्लार—संज्ञा स्त्री० [हि०] तला । नीचे । उ०—जिता गंज है यो जमी के तल्लार । तो यक बोल पर ते सद्द उसकू वार ।—दक्खिनी०, पृ० १५२ ।

तल्लचुर^१—संज्ञा पुं० [त० ताम्रचुरं, हि० तमचुर] मुर्गा ।

तल्ल—सर्व० [त०] तुम्हारा ।

तल्लक—संज्ञा पुं० [त०] धोखा । वचना । प्रतारणा [को०] ।

तल्लका^१—संज्ञा स्त्री [घ० तल्लकप्र] १. विश्वास । २. भाषा । ३. प्रार्थना । उ०—नहि तू मेरा संगी भया । तुलसी तल्लका ना किया ।—तुरसी श०, पृ० २४ ।

तल्लकु—संज्ञा पुं० [घ० तल्लकुप्र] १. विलंब । देर । २. ढीखापन [को०] ।

तल्लचीर—संज्ञा पुं० [त० फा० तलाशीर] तलाशीर । तीखुर ।

तल्लचीरी—संज्ञा स्त्री० [त०] कनकचूर जिसकी जड़ से एक प्रकार का तीखुर बनता है । छबीर इसी तीखुर का बनता है ।

तल्लजह—संज्ञा स्त्री० [घ०] १. ध्यान । दख ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

२. कृपादृष्टि ।

तल्लन^१—संज्ञा स्त्री० [त० तलन] १. गर्मी । तपन । २. भाग ।

तल्लन^२—सर्व० [हि० तीन] वह ।

तल्लन^३—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'स्तवन' उ०—चित्त अनेकहु विधि विवर बिल नदिनी निकास । मंत्र रूप गंगा तल्लन लगे करन रिप तास ।—पृ० रा०, १ । १५४

तल्लना^१—क्रि० घ० [त० तपन] १. तपना । गरम होना । २. ताप से पीड़ित होना । दुःख से पीड़ित होना । उ०—(क) काल के प्रताप काशी तल्ल ताप तई है ।—तुलसी शं०, पृ० २४२ । (ख) जबते न्हान गई तई ताप भई बेहाल । भली करी या नारि की नारी देखी लाल ।—शृ० सत० (शब्द०) । ३. प्रताप फैलाना । तेज पसारना । उ०—छतर गगन लग ताकर सूर तल्ल जस भाप ।—जायसी (शब्द०) । ४. क्रोध से जलना । गुस्से में खाल होना । कुड़ जाना । उ०—(क) भरत प्रसंग ज्यो कालिका सह देखि तन मे तई ।—नाभाबास (शब्द०) । (ख) महादेव बैठे रहि गए । दक्ष देखि के तेहि दुख तए ।—सूर (शब्द०) ।

तल्लना^२—क्रि० स० [त० तापन] २० 'तपाना' ।

तल्लना^३—क्रि० घ० [तल्लन] स्तुति करना ।

तल्लना^४—संज्ञा पुं० [हि० तला] हलका तला ।

तल्लना^५—संज्ञा पुं० [हि० ताना (= ढकना, मूंदना)] ढक्कन । मूंदने का साधन जो छेद या किसी वस्तु के मुँह को बंद करे ।

तल्लर^१—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'तल' । उ०—धवनी के तल्लरे भगनिज धवरे मंजा कंवरे विष मवरे । सिरियादे सिल्लरे हरि हित हिल्लरे नगाहो निवरे जो जिल्लरे ।—राम० धर्म०, पृ० १७६ ।

तल्लर^२—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'तोमर' ।

तवरक—संज्ञा पुं० [सं० तवर] एक पेड़ जो समुद्र और नदियों के तट पर होता है ।

विशेष—इसमें बमली के ऐसे फल लगते हैं जिन्हें खाने से बीषायों का हृष बढ़ता है ।

तवरना—क्रि० स० [?] कहना । उ०—वचन एक सहस्र दुय सहस्र रसना बणो । तिको फणपती गुण धकै तवरी ।—रघु० ७०, पृ० ५७ ।

तवराज—संज्ञा पुं० [सं०] तुरंजबीन । यवास शर्करा ।

तवरी—संज्ञा पुं० [सं०] त घोर न के मध्य के समस्त अक्षर समूह ।

तवल—संज्ञा पुं० [अ० तबल] तबल । उ०—तवल शत वाज कत भेरि भरे फुकिया ।—कीर्ति०, पृ० ६६ ।

तवलची(उ)—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'तबलची'—कीर्ति०, पृ० ६६ ।

तवल्ल(उ)—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'तबला' ।

तवल्लह—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'तवल' । उ०—घरै हक एक अनेक सुधान । अलकत मुँह तवल्लह मान ।—पु० २०, १ । १६ ।

तवस्सल—संज्ञा पुं० [अ० तवस्सल] सहायता । उ०—सोलह वंश के हुक्म जारी करें । जो सतगुरु तवस्सल तयारी करें ।—कबीर मं०, पृ० १३१ ।

तवस्सुत—संज्ञा पुं० [अ०] मध्यस्थता । बीच में पड़ने का कार्य । उ०—प्रापके तवस्सुत की माफत मेरी ५०० जिल्दों में से भी कुछ निकल जाय तो क्या कहना ।—प्रेम० और गोरकी, पृ० ५८ ।

तवा—संज्ञा पुं० [हि० तवना (= जलना)] १. लोहे का एक छिछला गोल बरतन जिसपर रोटी सेंकते हैं ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।

मुहा०—तवा सा मुँह=कालिख लगे हुए तवे की तरह काला मुँह । तवा सिर से बाँधना=सिर पर प्रहार सहने के लिये तैयार होना । अपने को खूब दृढ़ और सुरक्षित करना । तवे का हँसना=तवे के नीचे जमी हुई कालिख का बहुत जलते जलते लाल हो जाना जिससे घर में विवाद होने का कुशकुन समझा जाता है । तवे की बूँद=(१) क्षणस्थायी । देर तक न टिकनेवाला । नश्वर । (२) जो कुछ भी न मालूम हो । जिससे कुछ भी तुमि न हो । जैसे,—इतने से उसका क्या होता है, इसे तवे की बूँद समझो ।

२. मिट्टी या लपड़े का गोल ठिकरा जिसे चिलम पर रखकर तमाखू पीते हैं । ३. एक प्रकार की लाल मिट्टी जो हींग में मेल देने के काम में आती है । ३. तवे के आकार का साधन जो युद्ध में बचाने के विचार से छाती पर रहता था ।

तवाई(उ)^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'तवाही' । उ०—दुश्मन देख के तवाई धरना । खुदा मिल के बाइ खाना ।—बख्शनी०, पृ० ६५ ।

तवाई(उ)^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ताप] ताप ।

तवाखीर—संज्ञा पुं० [सं० तवखीर] बंशरोचन । बंसलोचन ।

तवाजा—संज्ञा स्त्री० [अ० तवाजह] १. आदर । मान । प्रावभगत । २. मेहमानदारी । दावत । ज्याफत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तवाना^१—वि० [फ्रा०] बली । मोटा ताजा । मुस्टंडा ।

तवाना^२—क्रि० स० [सं० तापन, हि० ताना] तप्त करना । गरम कराना ।

तवाना^३—क्रि० स० [हि० ताना] ठक्कन को चिपकाकर बरतन का मुँह बंद कराना ।

तवाना^४—क्रि० प्र० [हि० तार से नामिक धातु] ताव या भावेश में आना ।

तवायफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तवायफ़] वेश्या । रंडी ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द तायफ़ का बहु० है, पर हिंदी में एक-वचन बोला जाता है । कहीं कहीं तायफा भी बोला जाता है ।

तवारा—संज्ञा पुं० [अ० ताप, हि० ताव + रा (प्रत्य०)] जलन । दाह । ताप । उ०—तबते इन सबहिन सचुपायो । जवतैं हरि संदेश तुम्हारो सुनत तवारो आयो ।—सूर (शब्द०) ।

तवारीख—संज्ञा स्त्री० [अ० तवारीख़] इतिहास ।

विशेष—यह 'तारीख़' शब्द का बहुवचन है ।

तवारीखी वि० [अ० तवारीख + फ्रा० ई (प्रत्य०)] ऐतिहासिक [को०] ।

तवालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. लंबाई । दीर्घत्व । २. अधिक्य । अधिकता । अधिकई । ज्यादाती । ३. बखेड़ा । तूल तवील । अंभट ।

तविष^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । २. समुद्र । ३. व्यवसाय । ४. शक्ति ।

तविष^२—वि० १. वृद्ध । महत् । २. बलवान । दृढ़ । बली । ३. पूज्य [को०] ।

तविषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुष्पी । २. नदी । ३. शक्ति । ४. इंद्र की एक कन्या का नाम [को०] ।

तविष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति । बल । तेज [को०] ।

तवी—संज्ञा स्त्री० [हि० तवा] १. छोटा तवा । २. पतले किनारे-वाली लोहे की थाली । ३. कश्मीर की एक नदी ।

तवीयन(उ)—संज्ञा पुं० [अ० तवीष] वैद्य । चिकित्सक ।

तवीष—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । २. समुद्र । ३. सोना [को०] ।

तवेला—संज्ञा पुं० [हि० तवेला] ३० 'तवेला' ।

तवै(उ)—अव्य० [हि०] ३० 'तब' । उ०—तवै बाजि तै सेख सू पे जु आयो । कसू वख हो अंग ताको उड़ायो ।—हम्मीर०, पृ० ३८ ।

तशखीश—संज्ञा स्त्री० [अ० तशखीश] १. ठहराव । निश्चय । २. मर्ज की पहचान । रोग का निदान । ३. लगान निर्धारित करने की क्रिया या स्थिति [को०] ।

तशद्दुद—संज्ञा पुं० [अ०] १. आक्रमण । २. कठोर व्यवहार । ज्यादाती । सख्ती [को०] ।

तशफकी—संज्ञा स्त्री० [अ० तशफकी] १. डाढस । सारबना । उ०—

ऐसे कठकों की प्रेमचंद से पूरी तलापकी हासिल होती है ।—

प्रेम० धीर धोकी, पु० २१७ । २. रोगमुक्ति (को०) ।

तशरीफ—संज्ञा स्त्री० [प्र० तशरीफ] बुजुर्ग । इज्जत । महत्त्व । बड़प्पन ।

मुहा०—तशरीफ रखना = बिराजना । बैठना (आदरायक) ।
तशरीफ लाना = एवांरुण करना । घाना (आदरायक) ।
तशरीफ ले जाना = प्रस्थान करना । खला जाना ।

तशत—संज्ञा पु० [फा०] १. घाली के आकार का हलका छिछला बरतन । २. परात । सगन । ३. तबे का वह बड़ा बरतन जो पाखानों में रखा जाता है । गमला ।

तशतरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] घाली के आकार का हलका छिछला बरतन । रिकाबी ।

तशवीश—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. चिता । फिक्र । २. भय । डर ।
नास । उ०—किसी किस्म के तरदुदुध और तशवीश की गुंजाइश नहीं है । —प्रेमचंद०, भा० २, पृ० १३५ ।

तशति^५—संज्ञा पु० [फा० तशत] दे० 'तशत' । उ०—तशति निवास की आ मनि आई ।—प्राण०, पु० ५३ ।

तशते—संज्ञा पु० [प्र० तशत] दे० 'किवाड़' । उ०—सुरति बारी के तशते छोले । तब नानक बिनसे सगले छोले ।—प्राण०, पु० ३७ ।

तश्ट—वि० [सं०] १. छीला हुआ । २. कुटा हुआ । पीसकर दो दलों में किया हुआ । ३. पीटा हुआ ।

तश्टा^१—संज्ञा पु० [सं०] १. छीलनेवाला । २. छील खाकर गढ़ने-वाला । ३. विश्वकर्मा । ४. एक भावित्य का नाम ।

तश्टा^२—संज्ञा पु० [फा० तशत] तबे की एक प्रकार की छोटी तशतरी जिसका व्यवहार ठाकुर पूजन के समय मूर्तियों को नहलाने के लिये होता है ।

तश्टी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तश्टा' । एक प्रकार का बरतन । भातुपात्र । उ०—पुनि चरवा चरई तश्टी तबला आरी लोटा गावहि । सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ७४ ।

तश्वना^५—क्रि० सं० [हि० ताकना] ताकना । देखना । उ०—प्रविराज राज राजग गुर तष्व तरवकस तष्वियो ।—पु० रा०, १२ । ५४ ।

तष्वि^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तक्षिणी] नागिन । सपिणी । उ०—नयन सुकज्जल रेख, तष्वि निष्यन छवि कारिय । श्रवण सहज कटाछ, चित्त कर्षन नर नारिय ।—पु० रा०, १४, १५६ ।

तस^५—वि० [सं० तादृश, प्रा० तारिस, पुहि० तइस] तैसा । वैसा । उ०—किए जाहि छाया जसद मुसद बहद बर बात । तस मगु भयेउ न रम कहें जस भा भरतहि जात ।—मानस, २ । २१५ ।

तस^५—क्रि० वि० तैसा । वैसा । उ०—तस मति फिरी रही अस भागी ।—तुलसी (शब्द०) ।

तस^५—सर्व [सं० तत, तस्य] उसका । तत् शब्द का संबंधकारक एकवचन । उ०—इंद्रा बाहुण नासिका, ताहु

तण्ड इण्डहार । तस भव हुबह प्राहुणउ, तिण्णि सिएणा उतार ।—ढोला०, दृ० ५८० ।

तसकर—संज्ञा पु० [सं० तस्कर] दे० 'तस्कर' । उ०—संग तेहि बहुरंग तसकर, बड़ा अजुपुति कीन्ह ।—जग० बाबी, पु० ४५ ।

तसकीन—संज्ञा स्त्री० [प्र० तस्कीन] तसल्ली । डारस । दिलासा ।
तसगर—संज्ञा पु० [देश०] जुलाहों के ताने में नीलकछी के पास कई दो लकड़ियों में से एक ।

तसगीर—संज्ञा स्त्री० [प्र० तसगीर] १. संक्षेप करना । २. संक्षेप करने की क्रिया या भाव [को०] ।

तसदीक—संज्ञा स्त्री० [प्र० तसदीक] १. सचाई । २. सचाई का परीक्षा या निश्चय । समर्थन । प्रमाणों के द्वारा पुष्टि । ३. साक्ष्य । गवाही ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तसदीह^५—संज्ञा स्त्री० [प्र० तस्दीह] १. दर्दसर । २. तकलीफ दुःख । क्लेश । उ०—नहिं चून धीव सबील ही तसदीह सा ही की सही ।—सुदन (शब्द०) । ३. परेशानी । भ्रंश (को०) ।

तसदुक—संज्ञा पु० [प्र० तसदुक] १. निछावर । सदाका । २. बलिप्रदान । कुरबानी ।

तसनीफ—संज्ञा स्त्री० [प्र० तस्नीफ] ग्रंथ की रचना ।

तसबी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तस्बीर] दे० 'तसबीह' । उ०—फेरे तसबी जपे न माला ।—पलटू०, पु० ६१ ।

तसबीर—संज्ञा स्त्री० [प्र० तस्बीह] दे० 'तसबीर' । उ०—लिखे चित्तेरे चित्र में पिय विचित्र तसबीर । दरसत हग परसत हिं परसत तिय घर धीर ।—स० सप्तक, पु० ३६७ ।

तसबीरगर—संज्ञा पु० [प्र० तस्बीर + फा० गर (प्रत्य०)] चित्रकार । उ०—डोठि मिचि जात मिचि इचत ना ऐबे लोबी लिखत न तसबीर तसबीरगर पै ।—पजनेस०, पु० ७ ।

तसबीह—संज्ञा स्त्री० [प्र० तस्बीह] सुमिरिनी । माला । जपमाला (मुसल०) । उ०—मन मनि के तहें तसबी फेरइ । तब साहब के वह मन भेवइ ।—दादू (शब्द०) ।

मुहा०—तसबीह फेरना = ईश्वर का नामस्मरण या उच्चारण करते हुए माला फेरना ।

तसमा—संज्ञा पु० [फा० तस्मह] १. चमड़े की कुछ चौड़ी डोरी के आकार की लंबी धज्जी जो किसी वस्तु को बांधने या कसने के काम में आवे । चमड़े का चौड़ा फीता ।

मुहा०—तसमा खींचना = एक विशेष रूप से गले में फंदा डालकर मारना । गला घोटना । तसमा लगा न रखना = गरदन साफ उड़ा देना । साफ दो टुकड़े करना ।

२. छूते का फीता (को०) । ३. चमड़े का कोड़ा या दुर्गा (को०) ।

तसर—संज्ञा पु० [सं०] १. जुलाहों की ढरकी । २. एक प्रकार का घटिया रेशम । वि० दे० 'टसर' ।

तसरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुनाई (को०) ।

तसला—संज्ञा पु० [फा० तसत + ला (प्रत्य०)] कटोरे के आकार

का घर उससे बड़ा गहरा बरतन जो लोहे, पीतल, तामे आदि का बनता है।

तसखी—संज्ञा स्त्री० [हि० तसला] छोटा तसला।

तसलीम—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्लीम] १. सलाम। प्रणाम। २. किसी बात की स्वीकृति। हामी। जैसे,—गलती तसलीम करना।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—होना।

तसल्ली—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. ढाँस। सांखना। आश्वासन। २. व्यग्रता की निवृत्ति। व्याकुलता की शांति। धैर्य। धीरज। ३. संतोष। सब।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—होना।

मुहा०—तसल्ली दिलाना = धीरज या संतोष देना। धैर्य धारण कराना।

तसवीर^१—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्वीर] १. वस्तुओं की आकृति जो रंग आदि के द्वारा कागज, पट्टी आदि पर बनी हो। चित्र।

क्रि० प्र०—खींचना।—बनाना।—लिखना।

मुहा०—तसवीर उतारना = चित्र बनाना। तसवीर निकालना = चित्र बनाना।

२. किसी घटना का यथातथ्य विवरण।

तसवीर^२—वि० चित्र सा सुंदर। मनोहर।

तसवीस^३—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्वीस] १. बिता। सोच। फिक्र। २. भय। डर। आस। ३. व्याकुलता। चबराहट। उ०—ना तसवीस खिराज न माल खोफ न खजा न तरस जवाल।—संत २०, पृ० ११०।

तसव्वुर—संज्ञा पुं० [अ०] कल्पना। उ०—तसव्वुर से तेरे रक्त के गई हैं नींद आँखों से। मुकाबिल जिसके हो खुरशीद क्यों कर उसको स्वाब आवे।—कविता को०, भाग ४, पृ० २१।

तसाना—क्रि० स० [हि० तसाना] प्रस्त करना। डराना। उ०—हाय दर्द घनघानेंद हूँ करि की लो वियोग के ताप तसायही।—घनानंद, पृ० ६६।

तसि^४—वि० [हि० तस] वैसी। उस प्रकार की।

तसि^५—क्रि० वि० [हि० तस] तैसी। वैसी। उ०—(क) जनु चाखों निशि बामिनी दोखी। जमकि उठी तसि भीनि बतीसी।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १६१। (ख) तसि मति फिरो महइ जसि भाबी। रहसी चेरि घात जनु फाबी।—मानस, २।१७।

तसिल्लार^६—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तहसीलदार'। उ०—बड़ी बड़ी भूली पठवायो तसिल्लार तब।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ४१६।

तसी^७—संज्ञा स्त्री० [अ०] तीन बार जोता हुआ खेत।

तसीली^८—संज्ञा स्त्री० [अ० तहसील] १. तहसील। २. वसूली। प्राप्ति।

तसीलना—क्रि० स० [अ० तहसील, हि० तसील से नामिक घात] वसूल करना। पाना। उ०—बंक तसीलत किती, महाजन किती कोइ थव।—प्रेमघन०, भाग १, पृ० ५४।

तसू—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + सूक = जो की तरह का एक कवच] लंबाई की एक माप। इमारती गज का २४ वर्ग अंगुली जो १२ इंच के लगभग होता है।

तस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोर। २. अवण। कान। ३. मैनफल। मदन वृक्ष। ४. बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार के केंचु जो लंबे और सफेद होते हैं। ये ५१ हैं और बुध के पुत्र माने जाते हैं। ५. चोर नामक गंधद्रव्य। ६. कान (को०)।

तस्करता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोर का काम। चोरी। २. अवण। सुनना (को०)।

तस्करवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] चोर। पाकेटमार (को०)।

तस्करस्नायु—संज्ञा पुं० [सं०] काकनासा लता। कीवा ठोंठी।

तस्करी—संज्ञा स्त्री० [सं० तस्कर] १. चोर का काम। चोरी। २. चोर की स्त्री। ३. वह स्त्री जो चोर हो। ४. उग्र स्वभाव की स्त्री (को०)।

तस्कीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'तसकीन'। उ०—फिराके यार में होने से क्या तस्कीन होती है।—प्रेमघन०, भाग १, पृ० १६७।

तस्थु—वि० [सं०] एक ही स्थान पर रहनेवाला। स्थावर। अचल।

तस्नीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्नीफ] १. पुस्तक लेखन। किताब बनाना। २. लिखित पुस्तक। बनाई हुई कविता। ३. मनगढ़ंत या कपोलकल्पित बात (को०)।

तस्फिया—संज्ञा पुं० [अ० तस्फियाह] १. आपस का निपटारा या समझौता। २. निराय। फैसला। ३. शुद्ध करना। साफ करना। शुद्धि। सफाई। ४. दिलों की सफाई। मेल (को०)।

यौ०—तस्फिया तलब = वे बातें जिनकी सफाई होनी आवश्यक है। तस्फियानामा = वह कागज जिसमें आपस के तस्फिए की लिखापढ़ी हो।

तस्मा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तस्मह] १. चमड़े की कम चौड़ी और लंबी पट्टी। २. जूते का फीता। ३. चमड़े का कोड़ा या दुर्गा (को०)।

यौ०—तस्मापा = जिसका पाँव तस्मे से बंधा हो। तस्माबाज = (१) धूर्त। वचक। मक्कार। छली। (२) झूठकार। जुधारी। तस्माबाजी = (१) छल। कपट। (२) एक प्रकार का जुगा।

तस्मात्—अव्य० [सं०] इसलिये।

तस्य—सर्व० [सं०] उसका।

तस्लीम—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. सलाम करना। प्रणाम करना। २. स्वीकार करना। कबूल करना। ३. सौंपना। सिपुर्द करना। ४. आज्ञा का पालन करना। (को०)।

तस्वीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. चित्र। प्रतिरूप। २. चित्र बनाना। मूर्ति बनाना। ३. बहुत ही सुंदर शकल। ४. प्रतिमा। मूर्ति।

यौ०—तस्वीरकशी = चित्रण। चित्रकर्म। तस्वीरखाना = (१) वह स्थान जो चित्रों के लिये हो या जहाँ चित्र बनाए गए हों। चित्रशाला। (२) वह स्थान जहाँ बहुत सी सुंदर स्त्रियाँ हों। परीखाना। तस्वीरे बक्सी = छायाचित्र। फोटो।

तस्वीरे बयाली—चित्र या खयाल में आई हुई आकृति ।
काल्पनिक चित्र । तस्वीरे गिली—मिट्टी की मूर्ति ।
तस्वीरे नीम रख = एक तरफ से लिखा हुआ चित्र जिसमें
मुख का एक ही रक्त आए ।

तस्वीर(७)—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्वीर] दे० 'तस्वीर' । उ०—बंघे
साहि गोरी बही तरसबीर । दर्ई राज चौहान न्योते सरीर ।
—पृ० रा०, २१।११८ ।

तस्सू—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तसू' ।

तह्नी—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तही' ।

यो०—तह्ने तह्ने = वही वही । उस उस स्थान पर । उ०—जह
जह् आवत बसे बराती । तह्ने तह्ने मिट बला बहु भीती ।—
मानस, १।३३३ ।

तह्नी—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तही' ।

तह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. किसी वस्तु की मोटाई का फैलाव जो
किसी दूसरी वस्तु के ऊपर हो । परत । जैसे, कपड़े की तह,
मलाई की तह, मिट्टी की तह, चट्टान की तह । उ०—(क)
इसपर अभी मिट्टी की कई तहें चढ़ेंगी (शब्द०) । (ख)
इस कपड़े को चार पाँच तहों में लपेटकर रख दो (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—चढ़ाना ।—जमाना ।—जमाना ।—लगाना ।

यो०—तहदार = जिसमें कई परत हो । तह ब तह = एक के नीचे
एक । परत पर परत ।

मुहा०—तह करना = किसी फैली हुई (चदर आदि के आकार
की) वस्तु के भागों को कई ओर से मोड़ ओर एक दूसरे
के ऊपर फैलाकर उस वस्तु को समेटना । चौपरत करना ।
तह कर रखो—सिए रहो । मत निकालो या दो । नहीं
चाहिए । तह जमाना या बैठाना = (१) परत के ऊपर परत
बसाना । (२) भोजन पर भोजन किए जाना । तह तोड़ना =
(१) भगड़ा निबटाना । समाप्ति को पहुँचाना । कुछ बाकी
न रखना । निबटना । (२) कुएँ का सब पानी निकाल देना
जिससे जमीन दिखाई देने लगे । (किसी खोज की) तह देना =
(१) हलकी परत चढ़ाना । थोड़ी मोटाई में फैलाना या
बिछाना । (२) हलका रंग चढ़ाना । (३) धतर बनाने में
जमीन देना । आधार देना । जैसे,—बंदन की तह देना ।
तह मिलाना = जोड़ा लगाना । नर और मादा एक साथ
करना । तह लगाना = चौपरत करके समेटना ।

२. किसी वस्तु के नीचे का विस्तार । तल । पेदा । जैसे, इस
गिलास में पुखी दवा तह में आकर जम गई है ।

मुहा०—तह का सच्चा = वह कबूतर जो बराबर अपने छत्ते पर
बसा आवे, अपना स्थान न भूले । तह की बात = छिपी हुई
बात । गुप्त रहस्य । गहरी बात । (किसी बात की) तह
की पहुँचना = दे० 'तह तक पहुँचना' । (किसी बात की) तह
तक पहुँचना = किसी बात के गुप्त अभिप्राय का पता पाना ।
परार्थ रहस्य जान लेना । असली बात समझ जाना ।

३. पानी के नीचे की जमीन । तल । पाह । ४. महीन पटल ।
बरक । झिल्ली ।

क्रि० प्र०—उचड़ना ।

तहकीक—संज्ञा स्त्री० [अ० तहकीक] १. सत्य । यथार्थता । २. सच्चा
की जाँच । यथार्थ बात का अन्वेषण । खोज । अनुसंधान
२. जिज्ञासा । पूछताछ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तहकीकात—संज्ञा स्त्री० [अ० तहकीकात, तहकीक का बहु व०
किसी विषय या घटना की ठीक ठीक बातों की खोज । अनु-
संधान । अन्वेषण । जाँच । जैसे, किसी मामले की तहकीकात
किसी इल्म की तहकीकात ।

मुहा०—तहकीकात भाना = किसी घटना या मामले के संबंध
पुसिस के प्रफसर का पता लगाने के लिये भाना ।

तहखाना—संज्ञा पु० [फ्रा० तहखानह] वह कोठरी या घर व
जमीन के नीचे बना हो । भूईँद्वारा । तलगृह ।

विशेष—ऐसे घरों या कोठरियों में लोग धूप की गरमी से बच
के लिये जा रहते या घन रखते हैं ।

तहजर्द—वि० [फ्रा० तहजर्द] दे० 'तहजरज' [कौ०] ।

तहजीब—संज्ञा स्त्री० [अ० तहजीब] शिष्ट व्यवहार । शिष्टता
सम्बन्धिता ।

तहजरज—वि० [फ्रा० तहजरज] (कपड़ा आदि) जिसकी तह त
न खोली गई हो । बिल्कुल नया । ज्यों का त्यों नया रह
हुआ ।

तहनिशी—वि० [फ्रा०] तरल पदार्थ में नीचे बैठनेवाली (वस्तु)

तहनिशी—संज्ञा पु० [फ्रा०] लोहे पर सोने चाँदी की पच्चीकारी ।

तहपेच—संज्ञा पु० [फ्रा०] पगड़ो के नीचे का कपड़ा ।

तहपोशी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] साड़ी के नीचे पहनने का पाजामा [की
तहबंद]—संज्ञा पु० [फ्रा०] लुंगी [कौ०] ।

तहबाजारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तहबाजारी] वह महसूल जो स
में सोदा बेचनेवालों से जमींदार लेता है । भरी ।

तहमत—संज्ञा पु० [फ्रा० तहबंद या तहमद] कमर में लपेटा हुआ
कपड़ा । ग्रैयोछा । लुंगी । मंचला ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।—लगाना ।

तहम्मुल—संज्ञा पु० [अ०] १. सहिष्णुता । सहनशीलता । २. गर्भ
रता । संजीदगी । ३. धैर्य । सब । ४. नम्रता । नमी [कौ०] ।

तहरी—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तहरेड़ा' ।

तहरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पेटे की बरी और चावल की खिचड़ी
२. मटर की खिचड़ी । ३. कालीन बुननेवालों की ढरकी ।

तहरीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. लिखावट । लेख । २. लेखशैली । जैसे,
उनकी तहरीर बड़ी जबरदस्त होती है । ३. लिखी हुई बात
लिखा हुआ मजमून । ४. लिखा हुआ प्रमाणपत्र । लेखक
प्रमाण । ५. लिखने की उजरत । लिखाई । लिखने का मिहन
ताना । जैसे,—इसमें १) तहरीर लगेंगी । ६. गेहूँ की कच्चा
खपाई जो कपड़ों पर होती है । कट्टर की डटाई । (छोपी) ।

तहरीरी—वि० [फ्रा०] लिखा हुआ। लिखित। लेखबद्ध। जैसे, तहरीरी सबूत, तहरीरी बयान।

तहलका—संज्ञा पु० [अ० तहलकह्] १. मोत। घृत्यु। २. बरबादी। ३. खलबली। धूम। हलचल। विप्लव।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचना।

४. कोलाहल। कोहराम (को०)।

तहलील—संज्ञा स्त्री० [अ० तहलील] १. पचना। हजम होना। २. घुलना। मिलना (को०)। उ०—जो खाना तहलील करने और हारात मिटाने को लेते।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० १५६ यो०—तहवीं जहवीं।

तहवीं—अभ्य० [हि० तह्वे + वीं (प्रत्य०)] वही। उ०—(क) वंधु समेत गए प्रभु तहवीं।—मानस, ३। २४। (ख) जाएस नगर घरम अस्थान। तहवीं यह कबि कीन्ह बसाव।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३४।

तहवील—संज्ञा स्त्री० [अ० तहवील] १. सुपुंरी। २. अमानत। धरोहर। ३. किसी मद की आमदनी का रुपया जो किसी के पास जमा हो। खजाना। जमा। रोकड़। ४. फिरना (को०)। ५. फिराना (को०)। ६. प्रवेश करना। दाखिल होना (को०)। ७. किसी ग्रह का किसी राशि में प्रवेश (को०)।

यो०—तहवालदार। तहवीने आपताब=सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश। संक्रांति।

तहवीलदार—संज्ञा पु० [अ० तहवील + फ्रा० दार (प्रत्य०)] वह आदमी जिसके पास किसी मद की आमदनी का रुपया जमा होता हो। खजानची। रोकड़िया।

तहशिया—संज्ञा पु० [अ० तहशियह] किसी पुस्तक आदि पर पापत्र में टिप्पणी लिखना (को०)।

तहस नहस—वि० [देश०] विनष्ट। बरबाद। नष्ट भष्ट। ध्वस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तहसीन—संज्ञा स्त्री० [अ० तहसीन] प्रशंसा। तारीफ। इनामा। उ०—वहाँ कबरदानी और तहसीन, इससे मेरा काम न चला।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ५६।

तहसील—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. बहुत से आदिमियों से रुपया पैसा वसूल करके इकट्ठा करने की क्रिया। वसूली। उगाही। जैसे, पोत तहसील करना।

क्रि० प्र०—करना—होना।

२. वह आमदनी जो लगान वसूल करने से इकट्ठी हो। जमीन की सालाना आमदनी। जैसे,—इनकी पचास हजार की तहसील है। ३. वह व्यक्ती या कचहरी जहाँ जमींदार सरकारी मालगुजारी जमा करते हैं। तहसीलदार की कचहरी। माल की छोटी कचहरी।

तहसीलदार—संज्ञा पु० [अ० तहसील + फ्रा० दार (प्रत्य०)] १. कर वसूल करनेवाला। २. वह व्यक्ती जो किसानों से सरकारी मालगुजारी वसूल करता है और माल के छोटे मुकदमों का फैसला करता है।

तहसीलदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तहसील + फ्रा० दार + ई] १. कर

या महसूल वसूल करने का काम। मालगुजारी वसूल करने का काम। तहसीलदार का काम। २. तहसीलदार का पद।

क्रि० प्र०—करना।

तहसीलना—क्रि० सं० [अ० तहसील से नामिक धातु] उगाहना। वसूल करना (कर, लगान, मालगुजारी, बंदा आदि)।

तहाँ—क्रि० वि० [सं० तत् + स्थान, प्रा० थाण, थान] वहाँ। उस स्थान पर। उ०—तहाँ जाइ देखो बन सोभा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—लेख में अब इसका प्रयोग उठ गया है; केवल 'जहाँ का तहाँ' ऐसे दो एक वाक्यों में रह गया है।

तहाना—क्रि० सं० [फ्रा० तह से नामिक धातु] तह करना। बरी करना। लपेटना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

तहिआ—क्रि० वि० [हि०] तब। उस समय। उ०—भुज बल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहि विष्णु मनुज तनु तहिआ।—मानस, १। ३६।

तहियाँ—क्रि० वि० [सं० तदाहि] तब। उस समय। उ०—कहू कबीर कछु प्रछिलो न जहियाँ। हरि बिरबा प्रतिपालेसि तहियाँ।—कबीर (शब्द०)।

तहियाना—क्रि० सं० [फ्रा० तह] तह लगाकर लपेटना।

तहीँ—क्रि० वि० [हि० तहाँ] वही। उसी जगह। उसी स्थान पर। उ०—दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाब जहाँ पाउब तहीँ।—मानस, १। १७।

तहूँ—क्रि० वि० [सं० तदपि] तब भी। उ०—खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, तहूँ न निफल जाय।—कबीर सा०, पृ० ७।

तहोवाला—वि० [फ्रा०] नीचे ऊपर। ऊपर का नीचे, नीचे का ऊपर। उलट पलट। क्रमभंग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तहाँ—क्रि० वि० [हि० तहाँ + ओं (प्रत्य०)] तहाँ भी। उ०—तहाँ प्रतीपहि कहत है कबि कोबिब सब कोय।—मति० ग्रं०, पृ० ३७२।

तांडव—संज्ञा पु० [सं० ताण्डव] १. पुरुषों का नृत्य।

विशेष—पुरुषों के नृत्य को तांडव और स्त्रियों के नृत्य को नाच्य कहते हैं। तांडव नृत्य शिव को अत्यंत प्रिय है। इसी से कोई तंडु अर्थात् नंदी को इस नृत्य का प्रवर्तक मानते हैं। किसी किसी के अनुसार तांडव नामक ऋषि ने पहले पहल इसकी शिक्षा दी, इसी से इसका नाम तांडव हुआ।

२. वह नाच जिसमें बहुत उछल कूद हो। उदत नृत्य। ३. शिव का नाम। ४. एक वृण का नाम।

तांडवतालिक—संज्ञा पु० [सं० ताण्डवतालिक] नंदीश्वर (को०)।

तांडवप्रिय—संज्ञा पु० [सं० ताण्डवप्रिय] शंकर (को०)।

तांडवित—वि० [सं० ताण्डवित] १. नृत्यशील। २. तांडव नृत्य में मोलाई में घूमता हुआ। ३. खबर खाता हुआ। ४. कूद (को०)।

सांख्यी—संज्ञा पुं० [सं० सांख्यी] संगीत के चौदह शास्त्रों में से एक ।

सांख्य—संज्ञा पुं० [सं० सांख्य] तंडि मुनि का निकला हुआ नृत्य शास्त्र ।

सांख्य—संज्ञा पुं० [सं० सांख्य] १. सामवेद की सांख्य शाखा का अध्ययन करनेवाला । २. यजुर्वेद का एक कल्पसूत्रकार ।

सांख्य—संज्ञा पुं० [सं० सांख्य] १. तंडि मुनि के वंशज । २. सामवेद के एक ब्राह्मण का नाम ।

सांख्य—वि० [सं० सांख्य] १. श्रांत । थका हुआ । २. जिसके अंत में त हो । ३. मुरझाया हुआ । (को०) । ४. कष्टमय (को०) ।

सांख्य—वि० [सं० सांख्य] [वि० स्त्री० सांख्यी] जिसमें तंतु या तार हो । जिसमें से तार निकल सके ।

सांख्य—संज्ञा पुं० १. बुनना । २. बुना हुआ कपड़ा । ३. जाल । ४. सूत कातना । (को०) ।

सांख्यवायि, सांख्यवाय्य—स्त्री० पुं० [सं० सांख्यवायि, सांख्यवाय्य] तंतुवाय या बुनकर का पुत्र (को०) ।

सांख्यिक—वि० [सं० सांख्यिक] [स्त्री० सांख्यिकी] तंत्र संबंधी ।

सांख्यिक—संज्ञा पुं० १. तंत्र शास्त्र का जाननेवाला । यंत्र मंत्र आदि करनेवाला । मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के प्रयोग करनेवाला । २. एक प्रकार का सप्रपात ।

सांख्य—संज्ञा पुं० [सं० सांख्य] १. पान । नागवल्ली दल । २. पान का बीड़ा । ३. किसी प्रकार का सुसंभित द्रव्य जो भोजनोत्तर खाया जाय (जैन) । ४. सुपारी ।

सांख्यकरक—संज्ञा पुं० [सं० सांख्यकरक] १. पान रखने का बरतन । बट्टा । बिसहरा । २. पान के बीड़े रखने का डिब्बा । पनडिब्बा ।

• सांख्यलद—संज्ञा पुं० [सं० सांख्यलद] पान रखने और तैयार करके देनेवाला गीकर (को०) ।

सांख्यलघर—संज्ञा पुं० [सं० सांख्यलघर] सांख्यल (को०) ।

सांख्यलनियम—संज्ञा पुं० [सं० सांख्यलनियम] पान, सुपारी, लवंग, इलायची आदि खाने का नियम । (जैन) ।

सांख्यलपत्र—संज्ञा पुं० [सं० सांख्यलपत्र] १. पान का पत्ता । २. घरघरा नाम की लता जिसके पत्ते पान के से होते हैं । पिंडाल ।

सांख्यलबीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० सांख्यलबीटिका] पान का बीड़ा । बीड़ी ।

सांख्यलराग—संज्ञा पुं० [सं० सांख्यलराग] १. पान की पीक । २. मसूर ।

सांख्यलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० सांख्यलवल्ली] पान की बेल । नागवल्ली ।

सांख्यलबाहक—संज्ञा पुं० [सं० सांख्यलबाहक] पान खिलानेवाला सेवक । पान का बीड़ा लेकर चलनेवाला सेवक ।

सांख्यलबीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीड़ा (को०) ।

सांख्यलिक—संज्ञा पुं० [सं०] पान बेचनेवाला । तमोली ।

सांख्यली—संज्ञा पुं० [सं० सांख्यली] पान बेचनेवाला । तमोली

सांख्यली—वि० सांख्य संबंधी (को०)

सांख्यली—संज्ञा स्त्री० [सं० सांख्यली] पान की बेल । उ०—सांख्य

प्राहवत्सरी, दिवा, पान की बेल ।—नंद० प्र०, पृ० १०

सांख्य—संज्ञा पुं० [?] कछुवा । कच्छप ।

सांख्य—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'सांख्य' । उ०—श्रुत बिब भो ज्यों घन बिन सांख्य जटा बिन जोगी जैसे पुंछ बिन लोषर—प्रकबरी०, पृ० ५३ ।

सांख्य—अव्य० [?] तब तक । उ०—जौ असराज प्रतप्पियो सुरपूज प्रकाल ।—रा० ६०, पृ० १६ ।

सांख्य—अव्य० [सं० तदा, प्रा० तर्हि, तथा; राज० तौ] वह उ०—सज्जन प्रलया तौ लगई, जौ लख लखणे बिट्ट । डोला०, पृ० ४२० ।

सांख्य—अव्य० [सं० तावत् या प्रा० ता] १. तक । पर्यंत । पास । तक । समीप । निकट । ३. (किसी के) प्रति समझ । लक्ष्य करके । जैसे, किसी के सांख्य कुछ कहन उ०—कहु गिरिधर कविराय बात चतुरन के सांख्य । तेरहु तें तेरहु दिए बनि आवै सांख्य ।—गिरिधर (शब्द०) ४. विषय में । संबंध में । लिये । वास्ते । निमित्त । उ०—दीन्ह रूप भी जोति गोसांख्य । कीन्ह खंभ दुहुँ जग के सांख्य—जायसी (शब्द०) ।

मुहा०—घपने सांख्य = घपने को ।

विशेष—दे० 'तर्हि' ।

सांख्य—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'सांख्य' ।

सांख्य—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'सांख्य' । उ०—राम नाम सी किया हुआ दाण चुकाय । जन हरिया गुरुजान का सांख्य देह लदाय ।—राग० धर्म०, पृ० ५३ ।

सांख्य—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'सान' । उ०—जहाँ तुपक त बारि घर सेल टकरक हूँ बाँख की सांख्य चहुँ केर हुई । सुंदर० प्र०, भाग २, पृ० ८८१ ।

सांख्य—संज्ञा स्त्री० [सं० सन्तु] १. भेड़ बकरी की भेंटड़ी, या बीपा के पुट्टों को बटकर बनाया हुआ सूत । चमड़े या तनों की ब हुई डोरी । इससे वनुष की डोरी, सारंगी आदि के त बनाए जाते हैं ।

मुहा०—सांख्य सा = बहुत दुबला पतला । सांख्य बाजी और राग बूझा जरा सी बात पाकर खूब पहचान लेना । उदा०—घर । टपकी बासी साग । हम तुम्हारी जात बुनियाद से बाकिफ हैं सांख्य बाजी और राग बूझा ।—सैर कु०, पृ० ४४ ।

२. वनुष की डोरी । ३. डोरी । सूत । ४. सारंगी आदि तार । जैसे, सांख्य बाजी राग बूझा । उ०—(क) सो कुमति कहउँ केहि जाती । बाज सुराग कि गीढ़र जाती—तुलसी (शब्द०) । (ख) सेइ साधु गुरु मुनि पुरान श्रुति ब्रह्मघो राग बाजी सांख्य ।—तुलसी (शब्द०) ५. जुलाहों का राख ।

ताँबड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँत का धरणा०] ताँत ।

मुहा०—ताँबड़ी सा = ताँत की तरह दुबसा पतला ।

ताँतबा—संज्ञा पुं० [हि० ताँत] ताँत उतरने का रोग ।

ताँता—संज्ञा पुं० [सं० तति (= खेती) धरणा सं० ताति (= कम)] खेती । पंक्ति । कतार ।

मुहा०—ताँता बाँधना = पंक्ति में बड़ा होना । ताँता लगना = तार न टूटना । एक पर एक बराबर चला चलना ।

ताँति—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँत] १० 'ताँत' ।

ताँतिया—वि० [हि० ताँत] ताँत की तरह दुबला पतला ।

ताँतिया—संज्ञा पुं० [हि०] ताँत बजानेवाला । तंतुवादक । उ०—
कहीं कबीर मस्तान माता रहे, बिना कर ताँतिया नाच गावे ।—कबीर ग्रं०, भा० १, पृ० ६५ ।

ताँती—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँता] १. पंक्ति । कतार । २. बाज बज्जे । घोषाद ।

ताँती—संज्ञा पुं० जुलाहा । कपड़ा बुननेवाला ।

ताँती—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'ताँत' । उ०—उजमनी ताँती बाजन लामो, यही बिधि तृष्णी सीडी । गोरख०, पृ० १०६ ।

ताँन—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'ताँत' । उ०—गोपी रीति रही रस तानन सो सुध दुध सब बिसराई ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १५१ ।

ताँबा—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र] लाल रंग की एक धातु जो खानों में मंथक, छोटे तथा छोटे द्रव्यों के साथ मिली हुई मिलती है ।

विशेष—यह पीटने से बढ़ सकती है और इसका तार भी खींचा जा सकता है । ताँप और बिद्युत् के प्रवाह का संचार ताँबे पर बहुत अधिक होता है, इससे उसके तारों का व्यवहार टेलिग्राफ धादि में होता है । ताँबे में और दूसरी धातुओं को निश्चित मात्रा में मिलाने से कई प्रकार की मिश्रित धातुएँ बनती हैं, जैसे, रौंदा मिलाने से काँसा, जस्ता मिलाने से पीतल । कई प्रकार के विलायती सोने भी ताँबे से बनते हैं । खूब ठंडी जगह में ताँबा और जस्ता बराबर बराबर लेकर गला डाले । फिर गली हुई धातु को खूब धोटे और थोड़ा सा जस्ता और मिला दे । घोटते घोटते कुछ देर में सोने की तरह पीला हो जायगा । ताँबे की खानें ससार में बहुत स्थानों में हैं जिनमें भिन्न भिन्न धार्मिक द्रव्यों के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार की ताँबा निकलता है । कहीं धूमले रंग का, कहीं बैंगनी रंग का, कहीं पीले रंग का । भारतवर्ष में सिन्धुभूमि, हजारीबाग, जयपुर, भजमेर, कच्छ, बागपुर, मेल्लोर इत्यादि अनेक स्थानों में ताँबा निकलता है । जापान से बहुत अच्छे ताँबे के पत्तर बाहर जाते हैं ।

हिंदुओं के यहाँ ताँबा बहुत पवित्र धातु माना जाता है, अतः उसके घरवे, पंचपात्र, कलश, झारी आदि पूजा के बरतन बहुत बनते हैं । डाकटरी, हकीमी और वैद्यक दोनों मत की चिकित्साओं में ताँबे का व्यवहार अनेक रूपों में होता है । आयुर्वेद में ताँबा शोधने की विधि इस प्रकार है । ताँबे का

बहुत पतला पत्तर करके आग में तपाकर लाल कर डाले । फिर उसे कमका: तेल, महुए, काँजी, गोमूत्र और कुलवी की पीठी में तीन तीन बार बुझावे । बिना शोषा हुआ ताँबा विष से अधिक हानिकारक होता है ।

पर्या०—तम्रक । शुल्ब । म्नेच्छुमुल्ल । दृषष्ट । वरिष्ठ । उदुंबर । द्विष्ट । अंबक । तपनेष्ट । अरविद । रविसौह । रविप्रिय । रक्त । नैपालिक । मुनिपित्तल । अर्क । लोहितायम ।

ताँबा—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रमह्] मांस का वह टुकड़ा जो बाज आदि चिकारी पक्षियों के आगे खाने के लिये डाला जाता है ।

ताँबिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'ताँबी' ।

ताँबी—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँबा] १. चौड़े मुँह का ताँबे का एक छोटा बरतन । २. ताँबे की करछी ।

ताँबिकारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का लाल रंग ।

ताँम—संज्ञा पुं० [?] लव । उ०—बज्जिव निसाव गज्जिव सु तमि ।—ह० रासो, पृ० १० ।

ताँबत—संज्ञा पुं० [सं० तावत्] १० 'तावत्' । उ०—जैत फूल फल पविय बाही । ताँबत आगमपुर मों बाही ।—इंद्रा०, पृ० १४ ।

ताँवर—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हि० ताव] १. ताप । ज्वर । हृदारत । २. जोड़ा देकर आनेवाला बुझार । जूही । ३. मूर्छा । पछाड़ । घुमटा । चक्कर ।

क्रि० प्र०—माया ।

ताँवरि—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'ताँवर' । उ०—फिरत सीस बखु भा पंधियारा । ताँवरि आद परी बिकरारा ।—चित्रा०, पृ० १२३ ।

ताँवरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'ताँवर' ।

ताँवरी—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'ताँवर' । उ०—ज्यों सुक सेव पास लगि, निसि बासर हूठि बित लगायो । रीती परथी जब फल बाण्यो, उड़ि गयो तूल ताँवरी बायो ।—मूर०, १ । ३२६ ।

ताँसना—क्रि० प्र० [सं० त्रास] १. डीटना । त्रास देना । डमकाना । घाँस दिखाना । २. क्रुध्यवृद्धार करना । सताना । डीठे, सास का बह को तानना ।

ताँसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाजा । झंझ ।

ताँह—संज्ञा पुं० [सं० तह] वो । सो (बह) सर्वनाम के कमकारक का बहुवचन । उ०—घाडा हँगर वन घण्टा, ताँह मिलिजबह केम ।—ढोला०, दृ०, २१२ ।

ताँही—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'ताँबी' । उ०—जो अंतरजामी दिग बाही । का करि सके इम्र इन ताँहीं ।—नद०, प्र०, पृ० १६२ ।

ता—संज्ञा पुं० [सं०] एक भाषणात्मक प्रत्यय जो विशेषण और संज्ञा द्रव्यों के आगे लगता है । जैसे,—उत्तम, उत्तमता; अनु, अनुता; मनुष्य, मनुष्यता ।

ता—संज्ञा पुं० [प्रा०] एक । पर्यंत । उ०—(क) केस मेवावरि चिर ता पाई । अमरुहि दसब बीजु की नाई ।—जायसी

(कव्य०) । (क) : कठता हूँ इस सबब हर बार मैं । ता
यने तेरे लघु ऐ यार मैं । कविता की०, भाग ४, पृ० २६ ।

ता^३—उर्व० [सं० तद्] उर्व ।

विशेष—इस रूप में यह शब्द निमित्त के साथ ही आता है ।
जैसे,—ताकों, तासों, तापे इत्यादि ।

ता^३—वि० उर्व । उ०—तब शिव उमा गए ता ठौर ।—सुर
(चन्द०)

विशेष—इसका प्रयोग विभक्तियुक्त विशेष्य के साथ ही होता है ।

ता^३—कि० वि० [प्रा०] जब तक । उ०—करे ता भी भस्माह का
नामक करम । हमारा सभी जाय ये दहों गम ।—दक्खिनी०,
पृ० २१४ ।

ता^३—संज्ञा पु० [अनु०] तृथ का बोल । उ०—रास में रसिक बोक
आनंद भरि नाचत, गताद्रिम त्रि ता ततयेह ततयेह गति
बोले ।—मन्द० ग्रं०, पृ० १६६ ।

ताई^३—प्रथम० [सं० तावत् या फा० ता] दे० 'ताई'—३ ।
उ०—प्रवृत्त श्लोक विषय रग पीवे, घृण तृण तिनके ताई ।—
कबीर सा०, भा० १, पृ० ४५ ।

ताई^३—संज्ञा स्त्री० [सं० ताव, हि० ताय + ई (प्रत्यय०)] १. ताय ।
हरारत । हलका उबर । २. जाड़ा देकर घानेवाला बुहार ।
खुकी ।

क्रि० प्र०—घाना ।

३. एक प्रकार की छिछली कड़ाही जिसमें मालपूधा, जलेबी आदि
बनाते हैं ।

ताई^३—संज्ञा स्त्री० [हि० ताऊ का स्त्रीलिंग] बाप के बड़े भाई की
स्त्री । जेठी चाची ।

• ताई^३—प्रथम० [सं० तावत् या फा० ता] दे० 'ताई'—३ ।
उ०—भूत ज्ञानि में रहो सगई । सब जग जाने तेरे ताई ।—
कबीर सा०, पृ० १५१८ ।

ताई^३—वि० [सं० तावत्] नही । उ०—साजे सार छबीस
चिपाई । रयार हुमा रण मंटण ताई ।—रा० क०, पृ० ६५ ।

ताई^३—संज्ञा पु० [फा० ताबीज] ताबीज । जंतर । यंत्र ।

ताई^३—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. पक्षपात । तरफदारी । २. अनुमोदन ।
समर्थन । पुष्टि । उ०—आखिर मिरजा साहब झूठ क्यों
बोमते और मुंशी पक्षतर साहब इनकी ताईद क्यों करते ?—
सीर०, पृ० १२ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ताई^३—संज्ञा पु० १. सहायक कर्मचारी । नायब । २. किसी
कर्मचारी के साथ काम सीखने के लिये उम्मेदवार की तरह
काम करनेवाला व्यक्ति ।

ताई^३—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ताव' ।

तावत्—वि० [हि० उतावला] उतावला । अधीर ।

ताऊ—संज्ञा पु० [सं० तातयु] बाप का बड़ा भाई । बड़ा चाचा । ताया ।

मुहा०—बख्शिया के ताऊ=बैल । मुँह । जड़ ।

ताऊन—संज्ञा पु० [प्र०] एक घातक संक्रामक रोग जिसमें निखटी
निकलती और बुखार आता है । प्लेथ ।

ताऊस—संज्ञा पु० [प्र०] १. मोर । मयूर ।

यौ०—तस्त ताऊस=शाहजहाँ के बहुमूल्य रत्नजटित राज-
सिंहासन का नाम जो कई करोड़ की लागत से मोर के आकार
का बनाया गया था ।

२. सारंगी और सितार से मिलता जुलता एक बाजा जिसपर
मोर का आकार बना होता है ।

विशेष—इसमें सितार के से तरब मोर परदे होते हैं और यह
सारंगी की कमानी से रेतकर बजाया जाता है ।

ताऊसी—वि० [प्र०] १. मोर का सा । मोर की तरह का । २.
नहरा ऊदा । गहरा बैगनी ।

ताक^३—संज्ञा स्त्री० [हि० ताकना] १. ताकने की क्रिया । धवलोकाय ।
यौ०—ताक भाँक ।

मुहा०—ताक रखना=निगाह रखना । बिरीक्षण करते रहना ।
२. स्थिर दृष्टि । टकटकी ।

मुहा०—ताक बाँधना=दृष्टि स्थिर करना । टकटकी लगाना ।

३. किसी धवसर की प्रतीक्षा । मौका देखते रहने का काम ।
घात । जैसे,—बंदर घाम लेने की ताक में बैठा है ।

मुहा०—(किसी की) ताक में बैठना=(किसी का) पहित
चेतना । उ०—जो रहे ताकते हमारा मुँह । हम उन्हीं की
न ताक में बैठें ।—खोखे०, पृ० २७ । ताक में रहना=
उपयुक्त धवसर की प्रतीक्षा करते रहना । मौका देखते रहना ।
ताक रखना=घात में रहना । मौका देखते रहना । ताक
लगाना=घात घमाना । मौका देखने रहना ।

४. खोज । तलाश । फिराक । जैसे,—(क) किस ताक में बैठे
हो ? (ख) छसी की ताक में जाते हैं ।

ताक^३—संज्ञा पु० [प्र० ताक] दीवार में बना हुआ पक्का या खाकी
स्थान जो खोज करने के लिये होता है । छात्ता । तात्ता ।

मुहा०—ताक पर भरना या रखना=पड़ा रहने देना । काम
में न लाना । उपयोग न करना । जैसे,—(क) किताब ताक
पर रख दी और खेलने के लिये निकल गया । (ख) तुम अपनी
किताब ताक पर रखो; मुझे उसकी जरूरत नहीं । ताक पर
रहना या होना=पड़ा रहना । काम में न आना । बलब
पड़ा रहना । व्यर्थ जाना । जैसे, यह बस्तावेज ताक पर
रह जायगा; और उसकी बिगरी हो जायगी । ताक भरना=
किसी देवस्थान पर मनीषी की पूजा बढ़ाना ।—(मुसल०) ।

ताक^३—वि० १. जो संख्या में सम न हो । जो बिना खंडित हुए दो
बराबर भागों में न बँट सके । विषम । जैसे, एक, तीन, पाँच,
सात, नौ, ग्यारह आदि ।

यौ०—जुपत ताक या जूस ताक ।

२. जिसके जोड़ का दूसरा न हो । अद्वितीय । एक या अनुपम ।
जैसे, किसी फन में ताक होना । उ०—जो था अपने फन में
ताक था ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ४६ ।

ताकजुप्त—संज्ञा पुं० [प्र० ताक + ज्ञा० जुप्त] एक प्रकार का जूपा जिसमें मुट्ठी के भीतर कुछ कोड़ियाँ या घोर वस्तुएँ लेकर बुकाये हैं कि वस्तुओं की संख्या सम है या विषम। यदि बूझनेवाला ठीक बतला देता है तो वह जीत जाता है।

ताकझाँक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना + झाँकना] १. रघु रघुकर बार बार देखने की क्रिया। कुछ प्रयत्नपूर्वक दृष्टिपात। जैसे,—क्या ताक झाँक लगाए हो; धमो वे यहाँ नहीं आए हैं। २. छिपकर देखने की क्रिया। ३. निरीक्षण। देखभाल। निगरानी। ४. अभ्येक्षण। खोज।

ताकत—संज्ञा स्त्री० [प्र० ताकत] १. जोर। बल। शक्ति। २. सामर्थ्य। जैसे,—किसी की क्या ताकत जो तुम्हारे सामने आवे।

ताकतबर—वि० [प्र० ताकत + फा० बर (प्रत्यय)] १. बलवान्। बलिष्ठ। २. शक्तिमान्। सामर्थ्यवान्।

ताकना—क्रि० स० [सं० तक्ण (= विचारना)] १. सोचना। विचारना। चाहना। उ०—जो राउर प्रति मनभय ताका। जो पाइहि यह फल परिपाका।—तुलसी (शब्द०)। २. प्रयत्नपूर्वक करना। दृष्टि लगाकर देखना। टकटकी लगाना। ३. ताड़ना। समझ जाना। लखना। ४. पहले से देल रखना। (किसी वस्तु को किसी कार्य के लिये) देखकर स्थिर करना। तजबीज करना। जैसे,—(क) यह जगह मैंने पहले से तुम्हारे लिये ताक रखी है, यहीं बैठो। (ख) कोई प्रच्छा माइमी ताककर यहाँ लाओ। ५. दृष्टि रखना। रखवाली करना। जैसे,—मैं अपना घरबाव यहीं छोड़े जाता हूँ, जरा ताकते रहना।

ताकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टक्क (= एक देश या एक जाति)] एक लिपि का नाम जो नागरी से मिलती जुलती होती है।

विशेष—घटक के उस पार से लेकर सतलज और जमुना नदी के किनारे तक यह लिपि प्रचलित है। काश्मीर और कांगड़े के ब्राह्मणों में इसका प्रचार अब तक है। इसके अक्षरों को बूँडे या भूँडे भी कहते हैं।

ताकवना—क्रि० स० [हिं० दे० 'ताकना'] उ०—कायर क्षेरी ताकवे, सुरा माँगे पाव।—कबीर० सा०, सं०, पृ० २६।

ताकि—अव्य० [फा०] जिसमें। इसलिये कि। जिससे। जैसे,—यहाँ से हट जाता हूँ ताकि वह मुझे देखने न पावे।

ताकीद—संज्ञा स्त्री० [प्र०] जोर के साथ किसी बात की आज्ञा या अनुरोध। किसी को सावधान करके दी हुई आज्ञा। खूब चेताकर कही हुई बात। ऐसा अनुरोध या पादेय जिसके पालन के लिये बार बार कहा गया हो। जैसे,—मुहरिरो से ताकीद कर दो कि कल ठीक समय पर आवें। उ०—क्या तूने सब चीयों से ताकीद करके बहों कहा था कि उत्सव हो?—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० १७६।

क्रि० प्र०—करना।

ताकीद कामिल—संज्ञा स्त्री० [प्र० ताकीद + कामिल] पूर्ण चेतावनी। सावधानी। उ०—जरा इसकी ताकीद कामिल रहे कि कहीं वह बूढ़ा चला मोल्वी न घुस आए।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० ८८।

ताकोली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पीये का नाम।

ताक्षण्य, ताक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] बढ़ई का लड़का [को०]।

ताखड़—संज्ञा पुं० [प्र० ताक] दे० 'ताक'। उ०—पढ़ सुगना सत नाम, बैठ तन ताख में।—धरम०, पृ० ४३।

ताखड़ा—वि० [देश०] दे० 'तगड़ा'।

ताखड़ा—वि० [?] उत्साहित। उ०—ताखड़ा, नबीठा धोड़िया तायली। घण्टा घायल किया भाप घण घायली।—रघु० क०, पृ० १८३।

ताखड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + हिं० कड़ी] तराजू। काँटा।

ताखन—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तक्कण'। उ०—ताखन उठलिउँ जागि रे।—धरनी०, पृ० २८।

ताखा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताक'।

ताखी—वि० [प्र० ताक] १. जिसकी दोनों मोलें एक तरह की न हों। जिसकी एक मोल एक रंग या ढंग की हो और दूसरी मोल दूसरे रंग ढंग की हो। (बोड़ों, बैलों आदि के लिये। ऐसे जानवर ऐसी समझे जाते हैं)। २. साधुओं के पहनने की नोकदार एक टोपी। उ०—गुरु का सबब बोट कान में मुद्रिका, उनमुनी तिलक सिर तल ताखी।—पलटू०, भा० २, पृ० २५।

ताखीर—संज्ञा स्त्री० [प्र० ताखीर] विलंब। देर। उ०—देख नाचार कर न कुछ ताखीर।—कबीर प्र०, पृ० ३७४।

ताग—संज्ञा पुं० [हिं० तागा] दे० 'तागा'। उ०—सत रज तम तीनों ताग तोरि डारिप।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ६११।

तागड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताग + कड़ी] १. तागे में विरोध हुए सोने चाँदी के पुँछुछुओं का बना हुआ कमर में पहनने का एक गहना। करबनी। काँची। किकिछी। क्षुद्रघंटिका।

विशेष—तागड़ी सीकड़ या जजोर के आकार की भी बनती है।

२. कमर में पहनने का रंगीन बौरा। कटिसूत्र। करगता।

तागत—संज्ञा स्त्री० [प्र० ताकत] दे० 'ताकत'। उ०—तागत बिना हवास होस तुलसी में मर्क।—संत० तुलसी, पृ० १४३।

तागना—क्रि० स० [हिं० तागा + ना (प्रत्यय)] मुँह से तागा डालकर फेंकना। स्थान स्थान पर डोभ या लंगर डालना। दूर दूर की मोटी सिलाई करना। जैसे, दुलाई या रजाई तागना। उ०—ज्ञान गूदरी मुक्ति मेखना सहज सुई लै तागी।—कबीर सा०, भा० १, पृ० ४२।

तागपहनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तागा + पहनाना] एक पतली लकड़ी जिसका एक सिरा नोकदार और दूसरा चिपटा होता है। चिपटा सिरा बीच से फटा रहता है जिसमें तागा रखकर बय में पहनाया जाता है। (जुलाहे)।

तागपाट—संज्ञा पुं० [हिं० तागा + पाट (= रेशम)] एक प्रकार का गहना।

विशेष—यह रेशम के तागे में सोने के तीन ठासे या जंतर डालकर बनाया जाता है। यह विवाह में काम आता है।

मुहा०—तागपाट डालना = विवाह की रीति के अनुसार गले

पूजन आदि के पीछे बार के बड़े भाई (दुसहिन के जेठ) का बधू को तागपाट पहनाना ।

तामरी(पु) — संज्ञा स्त्री० [हि० तामड़ी] दे० 'तागड़ी'—२। उ०—
चिरगट फारि चठरा लै गयो तरी तामरी लूकी।—कबीर
प्र०, पृ० २७७।

तागा — संज्ञा पुं० [सं० ताकंय, प्रा० तागो, प० हि० तापो] १. रुई,
रेलम आदि का वह धाँस जो तकले आदि पर बटने से लंबी
रेखा के रूप में निकलता है। सूत। डोरा। धागा।

क्रि० प्र०—ढालना।—पिरोना।

मुहा०—तागा ढालना = सिलाई के द्वारा तागा फँसाना। दूर दूर
पर सिलाई करना। तागना।

२. वह कर या महसूल जो प्रति मनुष्य के हिसाब से लगे।

विशेष—मनुष्य करधनी, जनेऊ आदि पहनते हैं; इसी से यह
अर्थ लिया गया है।

तागीर(पु) — संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तगीर'। उ०—तब देसाधिपति ने
उन सौ परगना तागीर करि उनको अपने पास बुलाए।—दो
सौ बावन०, भा० १, पृ० २०१।

तागूडि(पु) — संज्ञा पुं० [अनु०] तड़तड़ शब्द। उ०—बुढ़ो छोड़ी
दल गाँज, तागूडि तबल बाँज रियातूर।—रघु०, ६०,
पृ० २१६।

ताचना(पु) — क्रि० सं० [हि० तचाना] अलाना। तपाना। उ०—
धिस्फुलिंग से जग दुख तजि तब बिरह अगिन तन ताचीं।—
बारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १३६।

ताज — संज्ञा पुं० [प्र०] १. बादशाह की टोपी। राजमुकुट।

यौ०—ताजपोशी।

२. कलगी। तुरी। ३. मोर, मुँगे आदि पक्षियों के सिर पर की
खोटी। शिखा। ४. खीवार की कंगनी या छज्जा। ५. वह
बुर्जी जिसे मकान के सिरे पर शोभा के लिये बना देते हैं। ६.
गजोंके के एक रंग का नाम। ७. आगरे का ताजमहल।

ताज(पु) २. संज्ञा पुं० [फ़ा० ताजियाना] धोड़े की मारने का चाबुक।
उ०—तीन तुलार चाँड धो बाँके। सँचरहि पोरि ताज धिनु
हकि।—जायसी (शब्द०)।

ताजक — संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक ईरानी जाति जो तुर्किस्तान के
बुखारा प्रदेश से लेकर बदख्शान, कानुल, बिलोचिस्तान, फारस
आदि तक पाई जाती है।

विशेष—बुखारा में यह जाति सर्त, अफगानिस्तान में देहान और
बिलोचिस्तान में देहवार कहलाती है। फारस में ताजक एक
साधारण शब्द सामील के लिये हो गया है।

२. ज्योतिष का एक ग्रंथ जो याचनाचार्य कृत प्रसिद्ध है।

विशेष—यह पहले अरबी और फारसी में था; राजा समरसिंह,
कोलकट आदि ने इसे संस्कृत में किया। इसमें बारह राशियों
के अनेक विभाग करके फलाफल निश्चित करने की रीतियाँ
बतलाई गई हैं। जैसे, मेष, सिंह और धनु का पित स्वभाव
और अश्वि, मकर, वृष और कन्या का वायु स्वभाव
और वैश्य, मिथुन, तुला और कुंभ का सम स्वभाव और

शूद्र वरुण; कर्कट, वृश्चिक और मीन का कफ स्वभाव और
आह्वय वरुण। इस ग्रंथ में जो संज्ञाएँ आई हैं, वे अधिकतर
अरबी और फारसी की हैं, जैसे, इकबाल योग, इतिहा योग
इत्येकाल योग, इशराक योग, गैरकबूल योग इत्यादि।

ताजकुला—संज्ञा पुं० [प्र० ताज + फ़ा० कुलाह] रत्नजटित मुकुट।
उ०—बादशाह बाबर लिखता है कि जिस समय सुलतान
महमूद राणा सांगा के हाथ कैद हुआ, उस समय प्रसिद्ध
'ताजकुला' (रत्नजटित मुकुट) और सोने की कमर पेटी
उसके पास थी।—राज० इति०, पृ० ६६७।

ताजगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ताजगी] १. शुक्ता या कुम्हलाहट का
अभाव। ताजपन। हुरापन। २. प्रफुल्लता। स्वस्थता।
निधिलता या श्रान्ति का अभाव। ३. सद्यः प्रसुप्त होने का
भाव। नयापन।

ताजदार^१—वि० [फ़ा०] १. ताज के ढग का। २. ताजवाला।

ताजदार^२—संज्ञा पुं० ताज पहननेवाला बादशाह। उ०—सत्ताईश
वंश हैं उनके ताजदार।—कबीर मं०, पृ० १३१।

ताजन—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताजियाना] १. कोड़ा। चाबुक। उ०—
लाज न भावति मोर समाजन लागे अलोक के ताजन ताहू।—
केशव प्र०, पृ० ७२। २. दंड। सजा (को०)। ३. उत्तेजना
प्रदान करनेवाली वस्तु (को०)।

ताजना—संज्ञा-पुं० [हि० ताजन] दे० 'ताजन'। उ०—तनक ताजना
लपत हो, छाड़ देत भुव भंग।—प० रासो, पृ० ११७।

ताजपोशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] राजमुकुट धारण करने या राज-
सिंहासन पर बैठने की रीति या उत्सव।

ताजबक्श—संज्ञा पुं० [प्र० ताज + फ़ा० बक्श] बादशाह बनाने-
वाला या हारे हुए बादशाह को बादशाह बनानेवाला सम्राट्
(को०)।

ताजबीबी—संज्ञा स्त्री० [प्र० ताज + फ़ा० बीबी] शाहजहाँ की
अत्यंत प्रिय और प्रसिद्ध बेगम मुमताज महल जिसके लिये
आगरे में ताजमहल नाम का मकबरा बनाया गया था।

ताजमहल—संज्ञा पुं० [प्र०] आगरे का प्रसिद्ध मकबरा जिसे शाह-
जहाँ बादशाह ने अपनी प्रिय बेगम मुमताज महल की स्मृति
में बनवाया था।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि बेगम ने एक रात को स्वप्न
देखा कि उसका गर्भस्थ शिशु इस प्रकार रो रहा है जैसा
कभी सुना नहीं गया था। बेगम ने बादशाह से कहा—'मेरा
अंतिम काल निकट आन पड़ता है। आपसे मेरी प्रार्थना है
कि आप मेरे मरने पर किसी दूसरी बेगम के साथ निकाह न
करें, मेरे लड़के को ही राजसिंहासन का अधिकारी बनावें और
मेरा मकबरा ऐसा बनवावें जैसा कहीं भूमंडल पर न हो'।
प्रसव के चौदह दिन पीछे ही बेगम का शरीर सूट गया।
बादशाह ने बेगम की अंतिम प्रार्थना के अनुसार बमुना के
किनारे यह विशाल और अनुपम अवन निमित्त कराया जिसके
ओड़ की इमारत संसार में कहीं नहीं है। यह मकबरा
बिल्कुल संगमरमर का है। जिसमें नाना प्रकार के बहुमूल्य

रंगीन पत्थरों के टुकड़े जड़कर बेल बूटों का ऐसा सुंदर काम बना है कि चित्र का भोला होता है। रंग बिरंग के फूल पत्ते पन्थीकारी के द्वारा सजित हैं। पत्तियों की नसें तक बिछाई गई हैं। इस मकबरे को बनाने में ३० वर्ष तक हजारों मजदूर और देशी विदेशी कारीगर लगे रहे। मसाला, मजदूरी आदि आवश्यक की अपेक्षा कई गुनी सस्ती होने पर भी इस इमारत में उस समय ११७३८०२४ रूपए लगे। टेबनियर नामक फ्रेंच यात्री उस समय भारतवर्ष ही में था जब यह इमारत बन रही थी। इस अनुपम भवन को देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जाता है। ठगों को दमन करनेवाले प्रसिद्ध कर्नल स्लीमन जब ताजमहल को देखने सस्त्रीक गए, तब उनकी स्त्री के मुँह से यही निकला कि 'यदि मेरे ऊपर भी ऐसा ही मकबरा बने, तो मैं आज मरने के लिये तैयार हूँ।

ताजा—वि० [फ्रा० ताजह] [वि० बी० ताजी] १. जो सुखा या कुम्ह-लाया न हो। दूरा भरा। जैसे, ताजा फूल, ताजी पत्ती, ताजी घोभी। २. (फल आदि) जो ढाल से टूटकर तुल्य आया हो। जिसे पेड़ से छलप हुए बहुत देर न हुई हो। जैसे, ताजे आम, ताजे आमकद, ताजी फलियाँ। ३. जो आत या थिल्ल न हो। जो एक मीठा न हो। जिसमें कुरती और जसाह बचा हो। स्वस्थ। प्रकुलित। जैसे,—(क) थोड़ा बलपान कर जो ताजे हो जाओगे। (ख) शरबत पी घेने से तबीयत ताजी हो गई।

घो०—मोटा ताजा = हष्ट पुष्ट।

४. दुरंत का बना। सद्यःप्रस्तुत। जैसे, ताजी पूरी, ताजी जलेबी, ताजी दवा, ताजा खाना।

मुहा०—हुक्का ताजा करना = हुक्के का पानी बदलना।

५. जो व्यवहार के लिये अभी निकाला गया हो। जैसे, ताजा पानी, ताजा दूध। ६. जो बहुत दिनों का न हो। नया। जैसे—ताजा माल।

मुहा०—(किसी बात को) ताजा करना = (१) नए सिरे से उठाना। फिर छेड़ना या चलाना। फिर से उपस्थित करना। जैसे,—दवा दबाया रुकड़ा क्यों ताजा करते हो? (२) स्मरण बिलाना। याद बिलाना। फिर चिंत में लाना। जैसे,—गम ताजा करना। (किसी बात का) ताजा होना = (१) नए सिरे से उठना। फिर छेड़ना या चलना। फिर उपस्थित होना। जैसे,—उनके घाने से मामला फिर ताजा हो गया। (२) स्मरण आना। फिर चिंत में उपस्थित होना। जैसे, गम ताजा होना।

ताजातम—वि० [फ्रा० ताजा + सं० तम (प्रत्य०)] बिल्कुल नवीन। नवीनतम। सं०—'कदी में कोयला' 'उग्र' लिखित ताजातम उपन्यास है।—कड़ी० (प्रकाशकीय), पृ० ८।

ताजि०—वि० [हि० ताजी] २० 'ताजी'। सं०—अनेक ताजि तेजि ताजि साजि साजि घानिमा।—कीर्ति०, पृ० ८४।

ताजिगौ०—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'ताजन'। उ०—हावि जगामी ताजिगौ पार कइ सेवइ राजदुमार।—बी० राघो, पृ० ६६।

ताजिया—संज्ञा पुं० [अ० ताजियह] बाँस की कमचियों पर रंग

बिरंगे कागज, पन्नी आदि चिपकाकर बनाया हुआ मकबरे के आकार का मंडप जिसमें इमाम हुसैन की दफ्न बनी होती है।

विशेष—मुहर्रम के दिनों में शीया मुसलमान इसकी आराधना करते और अंतिम दिन इमाम के मरने का शोक मनाते हुए इसे सड़क पर निकालते और एक निश्चित स्थान पर ले आकर दफन करते हैं।

मुहा०—ताजिया ठंडा होना = (१) ताजिया दफन होना। (२) किसी बड़े आदमी का मर जाना।

विशेष—ताजिया निकालने की प्रथा केवल हिन्दुस्तान के शीया मुसलमानों में है। ऐसा प्रसिद्ध है कि तैमूर कुछ जातियों का नाश करके जब करबला गया था, तब वहाँ से कुछ चिह्न लाया था जिसे वह अपनी सेना के भागे भागे लेकर चलता था। तभी से यह प्रथा चल पड़ी।

ताजियादारी—संज्ञा बी० [हि० ताजिया + फ्रा० दारी (प्रत्य०)] ताजिया के प्रति संमानप्रदर्शन। उ०—तुर्गाबाई सुन्नी मुसलमान थी। वह ताजियादारी करती थी और बाचना उनका पेशा था।—क्रांति०, पृ० ३१०।

ताजियाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० ताजियान] १. चाबुक। कोड़ा। उ०—हर नफस बोया उसे एक ताजियाना हो गया।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८५०।

ताजी^१—वि० [फ्रा० ताजी] भरबी। भरब का। भरब संबंधी।

ताजी^२—संज्ञा पुं० १. भरब का थोड़ा। उ०—सुंदर घर ताजी बँबे घुरकिन की घुरसाल।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ७३७। २. शिकारी कुत्ता।

ताजी^३—संज्ञा स्त्री० भरब की भाषा। भरबी भाषा।

ताजी^४—वि० ताजा का बी० रूप।

ताजीम—संज्ञा स्त्री [अ० ताजीम] किसी बड़े के सामने उसके आबर के लिये उठकर खड़ा हो जाना, झुककर सवाम करना इत्यादि। संमानप्रदर्शन। उ०—सिजदा सिरजनहार की मुरसिद की ताजीम।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० २८६।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

ताजीमी०—वि० [अ० ताजीमी + फ्रा० ई (प्रत्य०)] ताजीम। सं०—घोर रसुख पर करो यकीना। उन फकीर ताजीमी कीन्हा।—घट०, पृ० २११।

ताजीमी सरदार—संज्ञा पुं० [फ्रा० ताजीमी + अ० सरदार] वह सरदार जिसके घाने पर राजा या बादशाह उठकर खड़े हो जायें या जिसे कुछ आगे बढ़कर लें। ऐसा सरदार जिसकी दरबार में विशेष प्रतिष्ठा हो।

ताजीर—संज्ञा बी० [अ० ताजीर] सजा। दंड [को०]।

ताजीरात—संज्ञा पुं० [अ० ताजीरात, अ० ताजीर का बहु व०] अपराध और दंड संबंधी व्यवस्थाओं या कानूनों का संग्रह। दंडविधि। जैसे, ताजीरात हिंद।

ताजीरी—वि० [अ० ताजीर + फ्रा० ई (प्रत्य०)] १. दंड से संबंधित। २. दंड रूप में लगाया हुआ या तैनात किया हुआ (कर या पुलिस आदि)।

ताजीस्त—अर्थ [सं० ताजीस्त] जीवन भर । आजीवन । आजन्म ।
उ०—ताजीस्त सनातन्वी ही तु इस कातिल बनने ।—कबीर
मं०, पृ० ४६८ ।

ताजुषी—संज्ञा पुं० [अ० तजजुष] ३० 'तजजुष' ।

ताजुष—संज्ञा पुं० [अ० तजजुष] ३० 'तजजुष' ।

ताटक—संज्ञा पुं० [सं० ताडक] १. कान में पहनने का एक गहना ।
करनफूल । तरकी । उ०—बलि बलि जात निकट सवननि
के उलटि पलटि ताटक फँदाते ।—सतवाणी०, पृ० ५५ । २.
छप्पय के २४वें भेद का नाम । ३. एक छंद जिसके प्रत्येक
चरण में १६ और १४ के विराम से ३० मात्राएँ होती हैं
और अंत में मगण होता है । किसी किसी के अंत में एक
गुरु का ही नियम रखा है । सावनी प्रायः इसी छंद में
होती है ।

ताडका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'ताडका' [को०] ।

ताटस्थ—संज्ञा पुं० [सं० ताटस्थ] १. समीपता । निकटता । २.
तटस्थता । उदासीनता । निरपेक्षता [को०] ।

ताड़क—संज्ञा पुं० [सं० ताडक] कान का एक गहना । तरकी ।
करनफूल ।

विशेष—पहने यह गहना ताड़ के पत्तों का ही बनता था । अब
भी तरकी ताड़ के पत्तों ही की बनती है ।

ताड़—संज्ञा पुं० [सं० ताड] १. शाखारहित एक बड़ा पेड़ जो खंभे
के रूप में ऊपर की ओर बढ़ता चला जाता है और केवल
सिरे पर पत्तों कारण करता है ।

विशेष—ये पत्तों बिपटे मजबूत डंठलों में, जो चारों ओर निकले
रहते हैं, फैले हुए पर की तरह लगे रहते हैं और बहुत ही
कड़े होते हैं । इसकी लकड़ी की पीतरी बनावट सूत के ठोस
लच्छों के रूप की होती है । ऊपर सिरे हुए पत्तों के डंठलों के
मुख रह जाते हैं जिसके छाल लुरदुरी दिखाई पड़ती है । चेत
के महीने में इसमें फूल लयते हैं और वैशाख में फल, जो मादों
में लूब एक जाते हैं । फलों के भीतर एक प्रकार की गिरी
और रेशदार गूदा होता है जो खाने के योग्य होता है । फूलों
के कच्चे धंकुरों को पाखने से बहुत सा रस निकलता है जिसे
ताड़ी कहते हैं और जो भूप लगने पर नशीला हो जाता है ।
ताड़ी का व्यवहार बीच खेती के लोग मद्य के स्थान पर
करते हैं । बिना भूप लगा रस भीठा होता है जिसे नीरा
कहते हैं । महात्मा गांधी ने बीरा का प्रयोग उचित बताया
था । नीरा तथा ताड़ी दोनों में विटामिन बी प्रचुर मात्रा में
होता है । बेरी बेरी रोग में दोनों अत्यंत लाभकारी होते हैं ।
ताड़ प्रायः सब घरम पैलों में होता है । भारतवर्ष, भारत,
बरमा, सिहल, सुमात्रा, जावा आदि द्वीपसमूह तथा फारस
की खाड़ी के तटस्थ प्रदेश में ताड़ के पेड़ बहुत पाए जाते हैं ।
ताड़ की अनेक जातियाँ होती हैं । तमिल भाषा में ताल-
विलास नामक एक छंद है जिसमें ७०१ प्रकार के ताड़
गिनाए गए हैं और प्रत्येक का अलग अलग गुण बतलाया
गया है । दक्षिण में ताड़ के पेड़ बहुत अधिक होते हैं ।

मोहावरी आदि नदियों के किनारे कहीं कहीं तालवनों की
विलक्षण शोभा है । इस वृक्ष का प्रत्येक भाग किसी न किसी
काम में आता है । पत्तों से पंखे बनते हैं और छप्पर छाए
जाते हैं । ताड़ की खड़ी लकड़ी मकानों में लगती है ।
लकड़ी खोखली करके एक प्रकार की छोटी सी नाव भी
बनाते हैं । डंठल के रेशे बटाई और जाल बनाने के काम में
आते हैं । कई प्रकार के ऐसे ताड़ होते हैं जिनकी लकड़ी बहुत
मजबूत होती है । सिंहल के अफना नामक नगर से ताड़ की
लकड़ी दूर दूर भेजी जाती थी । प्राचीन काल में दक्षिण के
देशों में तासपत्र पर अक्ष लिखे जाते थे । ताड़ का रस
शोध के काम में भी आता है । ताड़ी की पुलटिस फोड़े
या घाव के लिये अत्यंत उपकारी है । ताड़ी का तिरका
भी पड़ता है । वैद्यक में ताड़ का रस कफ, पित्त, दाह
और शोथ को दूर करनेवाला और कफ, वात, कृमि,
कुष्ठ और रक्तपित्त नाशक माना जाता है । ताड़ ऊँचाई
के लिये प्रसिद्ध है । कोई कोई पेड़ तीस, चासीस हाथ तक
ऊँचे होते हैं, पर घेरा किसी का ३-७ बितों से अधिक नहीं
होता ।

पर्या०—तालद्रुम । पत्री । दीर्घतर्कध । ध्वजद्रुम । सुतराज ।
मधुरस । मदाह्य । दीर्घराक्ष । विरायु । ततराज । दीर्घपत्र ।
गुच्छपत्र । घासवद् । लेख्यपत्र । महोन्नत ।

२. ताड़न । प्रहार । ३. शब्द । छवि । घमाका । ४. घास,
घनाज के डंठल आदि की बँटिया जो मुट्ठी में धा जाय ।
जुट्टी । पूला । ५. हाथ का एक गहना । ६. मूर्ति-निर्माण-
विद्या में मूर्ति के ऊपरी भाग का नाम । ७. पहाड़ । पर्वत
[को०] ।

ताड़क—वि० [सं० ताडक] ताड़ना या धाधात करनेवाला [को०] ।

ताड़क—संज्ञा पुं० दक्षिण । जल्लाद [को०] ।

ताड़का—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडका] एक राजसी जिसे विश्वामित्र की
आज्ञा से श्री रामचंद्र ने मारा था ।

विशेष—इसकी उत्पत्ति के संबंध में क्या है कि यह सुकेतु नामक
एक वीर यज्ञ की कन्या थी । सुकेतु ने अपनी तपस्या से ब्रह्मा
को प्रसन्न करके इस बलवती कन्या को पाया था जिसे हजार
हाथियों का बल था । यह भुँद को व्याही थी । जब अगस्त्य
ऋषि ने किसी बात पर क्रुद्ध होकर सुँद को मार डाला,
तब यह अपने पुत्र मारीच को लेकर अगस्त्य ऋषि की खाने
दोड़ी । ऋषि के आग्रह से माता और पुत्र दोनों ओर राक्षस
हो गए । उसी समय से ये अगस्त्य जी के तपोवन का वास
करने लगे और उसे इन्होंने प्राणियों से शून्य कर दिया ।
यह सब व्यवस्था दशरथ से कहकर विश्वामित्र रामचंद्र जी
को लाए और उनके हाथ से ताड़का का वध कराया ।

ताड़काफल—संज्ञा पुं० [सं० ताडकाफल] बड़ी इलायची ।

ताड़कायन—संज्ञा पुं० [सं० ताडकायन] विश्वामित्र के एक पुत्र
का नाम ।

ताड़कारि—संज्ञा पुं० [सं० ताडकारि] (ताड़का के लघु) श्री रामचंद्र ।

ताड़केय—संज्ञा पुं० [सं० ताडकेय] (ताड़का का पुत्र) मारीच ।

ताड़क—संज्ञा पुं० [सं० ताड़क] १. बेत या कोड़ा मारनेवाला। २. बस्त्राद।

ताड़कात—संज्ञा पुं० [सं० ताड़कात] हथौड़े आदि से पीटकर काम करनेवाला। लोहार।

ताड़न—संज्ञा पुं० [सं० ताड़न] १. मार। प्रहार। आघात। २. डाँट डपट। छुड़की। १. आसन। दंड। ४. संतों के बगुनों को बंदन से लिखकर प्रत्येक संत को जल से वायुबीज पढ़कर मारने का विधान। ५. गुणन। १. खंड ग्रहण (की०)।

ताड़ना^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़न] १. प्रहार। मार। उ०—देख ताड़ना बिता की तुबक सर चाड़े आस हो।—कबीर सा०, पृ० ८६।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. उत्पीड़न। कष्ट।

ताड़ना^२—क्रि० प्र० १. मारना। पीटना। दंड देना। २. डाँटना। डपटना। शास्त्रित करना।

ताड़ना^३—क्रि० प्र० [सं० तर्कण (= सोचना)] १. किसी ऐसी बात को जान बिना जो जान बूझकर प्रकट न की गई हो या छिपाई गई हो। लक्षण से समझ लेना। अंदाज से मालूम कर लेना। भाँपना। लख लेना। जैसे,—मैं पहले ही ताड़ गया कि तुम इसी लिये आए हो। उ०—लिहा जोहरी ताड़ फिरा है गाहक खाली। पैकी लई समेटि दिहा गाहक को टाली।—पलटू०, भा० १, पृ० ५६।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

२. मार पीटकर भगाना। हटा देना। हाँकना।

संयो० क्रि०—देना।

ताड़नी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़नी] चाबुक। कोड़ा [की०]।

ताड़नीय—वि० [सं० ताड़नीय] दंड देने योग्य। दंडनीय।

ताड़पत्र^१—संज्ञा पुं० [सं० ताड़पत्र] ताड़क। ताड़क।

ताड़पत्र^२—संज्ञा पुं० [सं० ताड़पत्र] दे० 'तालपत्र'।

ताड़बाज—वि० [हि० ताड़ना + बाज] ताड़नेवाला। भाँपनेवाला। समझ जानेवाला।

ताड़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़ि] दे० 'ताड़ी' [की०]।

ताड़िका(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] तारा। तारिका। उ०—बरे जजरार्य भर राग मिलै। मनो नो ग्रहं ताड़िका होड मिलै।—पृ० रा०, १२।३११।

ताड़ित—वि० [सं० ताड़ित] १. मारा हुआ। जिसपर प्रहार पड़ा हो। २. जो डाँटा गया हो। जिसने छुड़की खाई हो। ३. बंडित। बासित। ४. मारकर भगाया हुआ। निकाला हुआ। हाँका हुआ।

ताड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़ी] १. एक प्रकार का छोटा ताड़। २. एक भ्रातृवर्ण।

ताड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ताड़ + ई (प्रत्यय)] ताड़ के फूलते हुए डंठलों से निकला हुआ नशीला रस जिसका व्यवहार मद्य के रूप में होता है।

विशेष—ताड़ के सिर पर फूलते हुए डंठलों या भंजुरों को छुरे जोड़ि से काट देते हैं और पास ही मिट्टी का बरतन बाँध देते हैं। दूसरे दिन सबेरे जब बरतन रस से भर जाता है, तब उसे खाँची करके रस ले लेते हैं।

ताड़ी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० तार] संतों की ताली। संतों की ध्यानावस्था। ध्यान। समाधि। उ०—ध्यान रूप होय। मरुण पाए। साध नाम ताड़ी बित जाए।—भाष्य०, पृ० १३१।

ताड़क—वि० [सं०] मारने पीटनेवाला। आघात करनेवाला [की०]।

ताड़ू—वि० [हि० ताड़ना] ताड़नेवाला। भाँपने या अनुमान करनेवाला।

ताड़्य—वि० [सं०] १. ताड़ने के योग्य। २. डाँटने डपटने लायक। ३. दंड्य। दंड के योग्य।

ताड़्यमान^१—वि० [सं०] १. जो पीटा जाता हो। जिसपर प्रहार पड़ा हो। २. जो डाँटा जाता हो।

ताड़्यमान^२—संज्ञा पुं० डोल। ठक्का।

ताड़(पु)—वि० [सं० स्तम्भ; प्रा० पड्ड; मरा० तंडा, बंडा, हि० ठंडा] ठंडा। कीतल। उ०—जिए धीहे पावस भरइ। बाबर, ताड़ो बाय। तिणु रिति मेल्ले मालबिए प्री परदेस म जाय।—ढोला०, पृ० २११।

ताणना(पु)—क्रि० प्र० [हि० तावना] १. खींचना। २. ठहराना। उ०—बाजिद ताणु बिआण पाँछ तक रहै मयथा।—रघु० उ०, पृ० ४७।

तात^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिता। बाप। २. पूज्य व्यक्ति। गुरु। ३. प्यार का एक शब्द या संबोधन जो भाई, बंधु, इष्ट मित्र, विशेषतः अपने से छोटे के लिये व्यवहृत होता है। उ०—तात जनक तनया यह सोई। अनुष जय जेहि कारन होई।—तुलसी (शब्द०)। ४. वह व्यक्ति जिसके प्रति दया का सबब हो (की०)।

तात^२—वि० [सं० तप्त, प्रा० तप्त] १. तपा हुआ। गरम। २. दुखी। घिबित। उ०—मालवणी म्हे चालिस्यो, म करि हमारा तात।—ढोला०, पृ० २७७।

तातगु^१—संज्ञा पुं० [सं०] चाचा।

तातगु^२—वि० १. पिता के लिये स्वीकार्य। २. पैतृक [की०]।

ताततुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] चाचा या अत्यंत पूज्य व्यक्ति [की०]।

तातन—संज्ञा पुं० [सं०] अन्धन पक्षी। चिड़िया।

तातनी(पु)—संज्ञा पुं० [हि० तात] दे० 'तात'। उ०—ज्ञान की काछनी ताव में तातनी, सत्त के सबब की कथा बानी।—पलटू०, भा० २, पृ० ३३।

तातरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पेड़।

तासक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पितृ तुल्य संबंधी। २. रोग। ३. जोड़े का कटा। ४. पाक। पक्वता। ५. उष्णता। गर्मी (की०)।

तासक^२—वि० १. तप्त। गरम। २. पैतृक (की०)।

ताता^१—वि० [सं० तप्त, प्रा० तप्त] [वि० स्त्री० ताती] १. तपा हुआ। गरम। उष्ण। उ०—(क) बहुत सगि बाब नेह

अब जाते । पिय बिनु सियहि तरबिहूँ ते ताते ।—मानस, २ ।
१५ । (क) मीठे प्रति कोमल हैं नीके । ताते सुरत बभोरे भी
के ।—मुर०, १०।१६६ । २. गुग । दुखवायी । कष्टदायक ।

तातायेई—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. जूय में एक प्रकार का बोल ।
२. नाचने में पैर के गिरने आदि का धनुकरण शब्द । जैसे,
तातायेई तातायेई बाचना ।

तातार—संज्ञा पुं० [फा०] मध्य एशिया का एक देश ।

विशेष—हिन्दुस्तान और फारस के उत्तर कैस्पियन सागर के
केकर बीच के उत्तर प्रांत तक तातार देश बहुलाता है ।
हिमाचल के उत्तर सदाक, यारकंद, खुतन, बुलारा, तिब्बत
आदि के निवासी तातारी कहलाते हैं । साधारणतः समस्त
पुरुष या मोघल तातारी कहलाते हैं ।

तातारी—वि० [फा०] तातार देश संबंधी । तातार देश का ।

तातारी—संज्ञा पुं० तातार देश का निवासी ।

ताति—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र । बच्चा ।

ताति—वि० [सं०] गरम । उ०—ताति बाज आगे बड़ी, छाठी
पहर मनद ।—संतवासी०, पु० १३५ ।

तातो—वि० [सं०] गरम । उ०—ताती श्वामन
विनाशो रूप होठन ।—शकुन्तला, पु० १०६ ।

तातो—वि० [सं०] जलदी । उ०—तई मुझे भी घायल ताती ।
रा० क०, पु० ३०३ ।

तातील—संज्ञा स्त्री० [ध०] तम दिन जिसमें काम काज बंद रहे ।
छुट्टी का दिन । छुट्टी ।

कि० प्र०—करना । होना ।

मुहा०—तातील मानना—छुट्टी के दिन विधान देना या आनंद
प्रमोद करना ।

तात्कालिक—वि० [सं०] तत्काल का । तुरंत का । उभी समय का ।

तात्पर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. यह भाव जो किसी वाक्य को कहकर
कहनेवाला प्रकट करना चाहता हो । २. आशय । मतलब ।
अभिप्राय ।

विशेष—कभी कभी शब्दार्थ से तात्पर्य भिन्न होता है । जैसे,
'काशी गंगा पर है' वाक्य का शब्दार्थ यह होगा कि काशी
गंगा के तट के ऊपर बसी है; पर कहनेवाले का तात्पर्य यह
है कि गंगा के किनारे बसी है ।

२. तत्परता ।

तात्पर्यवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] तात्पर्य + वृत्ति] वाक्य के अन्तिम पदों
के वाक्यार्थ को एक ही समन्वित करनेवाली वृत्ति । उ०—
पहले उन्होंने तात्पर्यवृत्ति को लिया है और बताया है कि
नैयायिकों की तात्पर्यवृत्ति बहुत समय से प्रचलित थी ।—
आचार्य, पु० १३१ ।

तात्पर्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वाक्य के निकलनेवाले अर्थ से
भिन्न अर्थ जो वक्ता या लेखक का होता है [को०] ।

तात्त्विक—वि० [सं०] तात्त्विक] १. तत्त्व संबंधी । २. तत्त्वज्ञान युक्त ।
जैसे, तात्त्विक दृष्टि । ३. यथार्थ ।

तात्स्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी के बीच में रहने का भाव । एक

वस्तु के बीच दूसरी वस्तु की स्थिति । २. एक व्यंजनात्मक
उपाधि जिसमें जिस वस्तु का कथन होता है, उस वस्तु
रहनेवाली वस्तु का ग्रहण होता है । जैसे, 'सारा घर गय
है' से अभिप्राय है कि घर के सब लोग गए हैं ।

ताथे(पु)—संब० [हि० ता + थे (प्रत्यय०)] इससे । इस कारण से
उ०—धरे ऊप जेते तिठे सर्वे जानों । लगे वार कहते न तां
बखानों ।—पु० रा०, २ । १६५ ।

ताथेई—संज्ञा स्त्री० [धनु०] दे० 'तातायेई' ।

तादर्थिक—वि० [सं०] उसके अर्थ से संबद्ध [को०] ।

तादर्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. उद्देश्य या लक्ष्य की एकता । २. अर्थ
की समानता । ३. उद्देश्य [को०] ।

तादात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक वस्तु का मिलकर दूसरी वस्तु के रूप
में हो जाना । तत्त्वकथन । अनेक संबंध ।

यौ०—तादात्म्यानुभूति = तादात्म्य की अनुभूति । तत्त्वकथन की
अनुभूति । उ०—प्रकृति है तादात्म्यानुभूति की सरल कामना की
कई संक्तियों में प्रतिबिम्बित हुई है ।—सा० समीक्षा, पु० २६० ।

तादात्म्य (राजा)—संज्ञा पुं० [सं०] कोटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार ।
यह राजा जिसका खजाना खाली रहता हो । जितना धन
राजकर आदि में मिले, उसको खर्च कर खालीवाना ।

विशेष—राजकर्म के राज्य बहुधा इसी प्रकार के होते हैं । ये
प्रबंध में व्यय करने के लिये हो धन एकत्र करते हैं ।

तादा—संज्ञा स्त्री० [ध०] तमदाय संज्ञा । गिनती । शुमार ।

तादृश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तादृशी] दे० 'तादृश' [को०] ।

तादृश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तादृशी] उसके समान । वैसा ।

तादृशी—वि० [सं०] तादृशी] तादृश । वैसी ही । उ०—जो याहू
गोम में एक वैष्णव तादृशी चर्चा करन और श्रीकृष्ण स्मरण
करन धावन है । वो तो बावब०, भा० १, पु० २६५ ।

ताधा—संज्ञा स्त्री० [दे०] दे० 'ताथायेई' । उ०—भृकुटी धनुष नैन
सर साधे वदन विकास आधाधा । खंचल खंचल चार धवलोक्ति
काम मचावति ताधा ।—सूर (श०२०) ।

तान—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ताने का भाव या क्रिया । खींच ।
कैलाव । विस्तार । जैसे, गीतों की तान । उ०—जल में
मिषि के नम घवनी ली तान तनावति ।—भारतेंदु प्र०,
भा० १, पु० ४५५ ।

यौ०—खींचतान ।

२. पाने का एक अंग । अनुकोम विलोम पति के गमन ।
मुख्यतः आदि द्वारा राग या स्वर का विस्तार । अनेक विभाग
करके सुर का खींचना । अर्थ का विस्तार । आलाप । उ०—
छूने तान बंदेबा कोम्हा । ठाके भगत तहूँ गावन लीन्हा ।—
कबीर मं०, पु० ४६६ ।

विशेष—संगीत नामोदर के मत से स्वरों से उत्पन्न तान ४६
हैं । इन ४६ तानों से भी ८३०० कूट तान निकले हैं । किसी
किसी यत्न से कूट तानों की संख्या ५०४० भी मानी गई है ।

मुहा०—तान उड़ाना = गीत गाना । ध्वजापना । तान छोड़ना =
लय को खींचकर अठके के साथ समय पर विराम देना ।

किसी पर तान तोड़ना = किसी को लक्ष्य करके खेद या क्रोधसूचक बात कहना। आक्षेप करना। बौझार छोड़ना। तान धरना, मारना, लेना = गाने में लय के साथ सुरों को खींचना। प्रलापना। तान की आन = सारांश। जुलासा। सी बात की एक बात।

३. ज्ञान का विषय। ऐसा पदार्थ जिसका बोध इंद्रियों आदि को हो। ४. कंबज का तान। — (परेरिए)। ५. भाटे का हुलड़ा। सहर। तरंग। — (लघ०)। ६. जोहे की छड़ जिसे परमंग या होदे में मजबूती के लिये लगाते हैं। (७) एक प्रकार का पेड़। (८) सूत। सूत। बागा (को०)। (९) एकरस स्वर। एक ही प्रकार का स्वर (को०)।

तानकर्म—संज्ञा पुं० [सं० तानकर्मन्] १. गाने के पहले किया जानेवाला प्रालाप। २. मूल स्वर को ग्रहण करने के लिये स्वर-साधना (को०)।

तानटप्पा—संज्ञा पुं० [हि० तान + टप्पा] संगीत। गाना बजाना। उ०—घोर पड़ी होता क्या है? वही समस्यापूर्ति, वही या तो लड़लड़ भड़भड़ घोर तानटप्पा।—कुंकुम (पृ०), पृ० २।

तानतरंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तानतरङ्ग] प्रलापकारी। लय की लहर।

तानना—क्रि० सं० [सं० तान (=विस्तार)] १. किसी वस्तु को उसकी पूरी लंबाई या चौड़ाई तक बढ़ाकर ले जाना। फैलाने के लिये जोर से खींचना। किसी वस्तु को जहाँ की तहाँ रखकर उसके किसी छोर, कोने या धँस को जहाँ तक हो सके, बलपूर्वक आगे बढ़ाना। जैसे, रस्सी तानना। उ०—एक दिन शीपवि नग्न होत है, चीर दुसासन तान।—संतवाणी० पृ० ६७।

विशेष—‘तानना’ और ‘खींचना’ में यह अंतर है कि तानने में वस्तु का स्थान नहीं बदलता। जैसे, खूँटे में बंधी हुई रस्सी तानना। पर ‘खींचना’ किसी वस्तु को इस प्रकार बढ़ाने को भी कहते हैं जिसमें वह अपना स्थान बदलती है। जैसे, गाड़ी खींचना, पंखा खींचना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—तानकर = बलपूर्वक। जोर से। जैसे, तानकर तमाचा मारना। उ०—सतगुरु मारा तानकर, सब सुरंगी बाब।—कबीर सा०, पृ० ८।

२. किसी सिमटी या लिपटी हुई वस्तु को खींचकर फैलाना। बलपूर्वक विस्तीर्ण करना। जोर से बढ़ाकर पसारना। जैसे, पाख तानना, छाता तानना, चद्दर तानकर सोना, कपड़े को तानकर झोल मिटाना।

विशेष—‘तानना’ और ‘फैलाना’ में यह अंतर है कि ‘तानना’ क्रिया में कुछ बल लगाने या जोर से खींचने का भाव है।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—तानकर सुतना = दे० ‘तानकर सोना’। उ०—जब वह जो कि भेद खो देवे, जान पाया न ताकर सुते।—बोखे०, ४-५०

पु० ४। तानकर सोना = खूब हाथ पैर फैलाकर निश्चित सोना। आराम से सोना।

३. किसी परदे की सी वस्तु को ऊपर फैलाकर बाँधना या ठहराना। छाजन की तरह ऊपर किसी प्रकार का परदा लगाना। जैसे, चँदोवा तानना, चाँदनी तानना, तंबू तानना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

४. डोरी, रस्सी आदि को एक आधार से दूसरे आधार तक इस प्रकार खींचकर बाँधना कि वह ऊपर धर में एक सीधी लकीर के रूप में ठहरी रहे। एक ऊँचे स्थान से दूसरे ऊँचे स्थान तक ले जाकर बाँधना। जैसे,—(क) यहाँ से वहाँ तक एक डोरी तान दो तो कपड़ा फैलाने का सुबीता हो जाय। (ख) जुलाहे का सूत तानना।

संयो० क्रि०—देना।

५. मारने के लिये हाथ या कोई हथियार उठाना। प्रहार के लिये भस्त्र उठाना। जैसे, तमाचा तानना, डंडा तानना। ६. किसी को हानि पहुँचाने या बंड देने के अभिप्राय से कोई बात उपस्थित कर देना। किसी के खिलाफ कोई चिट्ठी पत्री या बरखास्त आदि भेजना। जैसे,—एक बरखास्त तान देंगे, रह जाओगे।

संयो० क्रि०—देना।

७. कैदखाने भेजना। जैसे,—हाकिम ने उसे दो बरस को तान दिया। ८. ऊपर उठाना। ऊँचे ले जाना।

संयो० क्रि०—देना।

तानपूरा—संज्ञा पुं० [सं० तान + हि० पूरा] सितार के आकार का एक बाजा जिसे गवैए कान के पास लगाकर गाने के समय छेड़ते जाते हैं या उनके पास में बैठकर कोई छेड़ता जाता है।

विशेष—यह गवैयों को सुर बाँधने में बड़ा सहारा देता है; अर्थात् सुर में जहाँ विराम पड़ता है, वहाँ यह उसे पूरा करता है। इसमें चार तार होते हैं दो जोहे के घोर दो पीतल के।

तानबाज—संज्ञा पुं० [हि० तान + बाज] संगीताचार्य। उ०—गंग ते ब गुनी तानसेन ते न तानबाज, मान ते न राजा श्री न दाता बीरबर ते।—मकबरी०, पृ० ३५।

तानबान(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० ‘तानाबाना’। उ०—जोबहू तानबान नहि जानै फाट बिनै दस ठाई हो।—कबीर (अब्द०)

तानव—संज्ञा पुं० [सं०] १. तनुता। कृशता। २. स्वल्पता। लघुता। छोटाई (को०)।

तानसेन—संज्ञा पुं० [?] मकबर बावणाहू के समय का एक प्रसिद्ध गवैया जिसके जोड़ का छात्रतक कोई नहीं हुआ।

विशेष—प्रबुलफजल ने लिखा है कि इधर हजार वर्षों के बीच ऐसा गायक भारतवर्ष में नहीं हुआ। यह जाति का बाह्यछ था। कहते हैं, पहले इसका नाम बिलोचव मिश्र था। इसे संगीत से बहुत प्रेम था, पर गाना इसे नहीं आता था। जब बृहद्बान के प्रसिद्ध स्वामी हरिदास के यहाँ गया और उनका शिष्य हुआ, तब यह संगीत

में जुलूस हुआ। धीरे धीरे इसकी ख्याति बढ़ने लगी। पहले यह माट के राजा रामचंद्र बघेला के दरबार में नौकर हुआ। कहा जाता है, वहाँ इसे करोड़ों रुपए मिले। इसा-हीम लोदी ने इसे अपने यहाँ बहुत बुलाना चाहा पर यह नहीं गया। अंत में अकबर ने राजसिंहासन पर बैठने के इस वर्ष पीछे इसे अपने दरबार में संपानपूर्वक बुलाया। जिस दिन पहले पहल इसने अपना गाना बादशाह को सुनाया, बादशाह ने इसे दो लाख रुपए दिए। बादशाह के दरबार में आने के कुछ दिन पीछे यह खालियार जाकर और मुहम्मद गोस नामक एक मुसलमान फकीर से कलमा पढ़कर मुसलमान हो गया। तब से यह मियाँ तानसेन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके मुसलमान होने के संबंध में एक जनश्रुति है। कहते हैं, पहले बादशाह के सामने यह गाता ही नहीं था। एक दिन बादशाह ने अपनी कन्या को इसके सामने खड़ा कर दिया। उसके सोदर्य पर मुग्ध होने के कारण इसकी प्रतिभा विकसित हो गई और इसने ऐसा अपूर्व गाना सुनाया कि बादशाहजाही भी मोहित हो गई। अकबर ने दोनों का विवाह कर दिया।

तानसेन की मृत्यु के संबंध में भी एक अलौकिक घटना प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इसकी अद्वितीय शक्ति को देखकर दरबार के और गवैए इससे जवा करते थे और इसे मार डालने के यत्न में रहा करते थे। एक दिन सबने मिचकर यह सोचा कि यदि तानसेन दीपक राग गाये तो आपसे आप घसम हो जायगा। इस परामर्श के अनुसार एक दिन सब गवैयों ने दरबार में दीपक राग की बात छेड़ी। बादशाह को अत्यंत उत्कंठा हुई और उसने दीपक राग गाने के लिये कहा। सब गवैयों ने एक स्वर से कहा कि तानसेन के सिवा दीपक राग और कोई नहीं गा सकता। तब बादशाह ने तानसेन को आज्ञा दी। तानसेन ने बहुत कहा कि यदि आप मुझे चाहते हैं तो दीपक राग न बजायें। जब बादशाह ने ब माना तब उसने अपनी लड़की को मलार राग गाने के लिये पास ही बैठा लिया जिसमें दीपक राग के प्रचलित ध्वनि का मलार राग द्वारा शमन हो जाए। दीपक राग गाते ही दरबार के सब डुके हुए दीपक जल छटे और तानसेन भी जलने लगा। तब उसकी लड़की ने मलार राग छेड़ा। पर अपने पिता की दृष्टि देख उसका सुर बिगड़ गया और तानसेन जलकर भस्म हो गया। उसका जब खालि-घर में खे जाकर दफन किया गया। उसकी कब्र के पास एक हमली का पेड़ है। आज दिन भी गवैए इस कब्र पर जाते हैं और हमली के पत्तों की बचाते हैं। इनका विश्वास है कि इससे कंठरुप उत्पन्न होता है। गवैयों में तानसेन का यहाँ तक संमान है कि उसका नाम सुनते ही वे अपने काम पकड़ते हैं। तानसेन का बनाया हुआ एक घंघ भी मिला है।

ताना^१—संज्ञा पुं० [हि० तानना] १. कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लंबाई के बल होता है। वह तार या सूत जिसे जुलाहे कपड़े की लंबाई के अनुसार फैलाते हैं। उ०—घस जोलहा कर मरम न जाना। तिन जग घाइ पसारल ताना।—कबीर (शब्द०)।

बौ०—ताना बाना।

क्रि० प्र०—तानना।—फैलाना।

२. बरी, कालीन बुनने का करवा।

ताना^१—क्रि० स० [हि० ताव + ना (प्रत्य०)] १. ताव देना। तपाना। गरम करना। उ०—(क) कर कपोल अंतर नहि पावत प्रति उसास तन ताइए (शब्द०)। (ख) देव दिक्षावति कंचन सो तन औरन को मन तावै भगोनी।—देव (शब्द०)। २. पिघलाना। जैसे, घी ताना। ३. तपाकर परीक्षा करना (मोता आदि धातु)। ४. परीक्षा करना। जाचना। आजमाना।

ताना^३—क्रि० स० [हि० तावा, तवा] गीली मिट्टी, घाटे आदि से ठक्कन चिपकाकर किसी बरतन का मुँह बंद करना। मुँदना। उ०—तिन श्रवदन पर दोष निरतर सुनि धरि धरि तावों।—तुलसी (शब्द०)।

ताना^४—संज्ञा पुं० [अ० तघ्नह] वह लगती हुई बात जिसका अर्थ कुछ छिपा हो। आक्षेप वाक्य। बोली ठोली। व्यंग्य। कटाक्ष। २. उपालभ। गिला (को०)। ३. निदा। बुराई (को०)।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

मुहा०—ताने देना = व्यंग्य करना। बहुत बात कहना। उ०—मुँह खोल के दर्द दिल किसी से कह नहीं सकती कि हमजो-लियाँ ताने देगी।—फिमान०, भा० ३, पृ० १३३।

तानापाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ताना = पाई (= ताने का सूत फैलाने का ढाँचा)] बार बार किसी स्थान पर पाना जाना। उसी प्रकार लगातार फेरे लगाना जिस प्रकार जुलाहे ताने का सूत पाई पर फैलाने के लिये लगाते हैं।

तानाबाना संज्ञा पुं० [हि० ताना + बाना] कपड़ा बुनने में लंबाई और चौड़ाई के बल फैलाए हुए सूत।

मुहा०—ताना बाना करना = व्यर्थ इधर से उधर पाना जाना। हेरा फेरी करना।

तानारीरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तान + अरु० रीरी] साधारण गाना। राग। अलाप।

तानाशाह—संज्ञा पुं० [फा०] १. अब्दुलहसन बादशाह का दूसरा नाम। यह बादशाह स्वेच्छाचारी था। २. ऐसा शासक जो मनमाने ढंग से शासन करता हो और नासितों के हित का ध्यान न रखता हो। निरंकुश शासक। ३. स्वेच्छारी व्यक्ति। मनमाने ढंग से और जोर जबर्दस्ती काम करनेवाला आदमी।

तानाशाही—संज्ञा स्त्री० [हि० तानाशाह] स्वेच्छाचारिता। मन-मानी। जोर जबर्दस्ती। उ०—जातीय जनतांत्रिक संयुक्त मोर्चा कांग्रेसी सरकार की तानाशाही को समाप्त करने तथा देश को विदेशी हस्तक्षेप से बचाने के निमित्त खड़ा हुआ था।—नेपाल०, पृ० १८६।

तानी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ताना] कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लंबाई के बल हो।

तानी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तानना] अंगरखे या चोली आदि की

तनी । बंद । उ०—कंचुकि चूर, चूर भइ तानी । टूटे हार मोति छहरानी ।—जायसी (शब्द०) ।

तानूर—संज्ञा पु० [सं०] १. पानी का भँवर । २. वायु का भँवर ।

तानी—संज्ञा पु० [देश०] जमीन का टुकड़ा जिसमें कई खेत हों । चक ।

तान्व—संज्ञा पु० [सं०] १. तनुज । पुत्र । २. एक ऋषि का नाम जो तनु के पुत्र थे ।

ताप—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्राकृतिक शक्ति जिसका प्रभाव पदार्थों के पिघलने, भाप बनने आदि व्यापारों में देखा जाता है और जिसका अनुभव अग्नि, सूर्य की किरण आदि के रूप में इंद्रियों को होता है । यह अग्नि का सामान्य गुण है जिसकी अधिकता से पदार्थ जलते या पिघलते हैं । उष्णता । गर्मी । तेज ।

विशेष—ताप एक गुण मात्रा है, कोई द्रव्य नहीं है । किसी वस्तु को तपाने से उसकी तौल में कुछ फर्क नहीं पड़ता । विज्ञानानुसार ताप गतिशक्ति का ही एक भेद है । द्रव्य के अणुओं में जो एक प्रकार की हलचल या क्षोभ उत्पन्न होता है, उसी का अनुभव ताप के रूप में होता है । ताप सब पदार्थों में थोड़ा बहुत निहित रहता है । जब विशेष अवस्था में वह व्यक्त होता है, तब उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है । जब शक्ति के संचार में रुकावट होती है, तब वह ताप का रूप धारण करती है । दो वस्तुएँ जब एक दूसरे से रगड़ खाती हैं तब जिस शक्ति का रगड़ में व्यय होता है, वह उष्णता के रूप में फिर प्रकट होती है । ताप की उत्पत्ति कई प्रकार से होती है । ताप का सबसे बड़ा साधन सूर्य है जिससे पृथ्वी पर धूप की गरमी फैलती है । सूर्य के अतिरिक्त ताप संधर्षण (रगड़), ताड़न तथा रासायनिक योग से भी उत्पन्न होता है । जो लकड़ियों को रगड़ने से और चकमक पत्थर आदि पर हथौड़ा मारने से आग निकलते बहुतों ने देखा होगा । इसी प्रकार रासायनिक योग से अर्थात् एक विशेष द्रव्य के साथ दूसरे विशेष द्रव्य के मिलने से भी आग या गरमी पैदा हो जाती है । चूने की बली में पानी डालने से, पानी में तेजाब या पोटाश डालने से गरमी या लपट उठती है ।

ताप का प्रधान गुण यह है कि उससे पदार्थों का विस्तार कुछ बढ़ जाता है अर्थात् वे कुछ फैल जाते हैं । यदि लोहे की किसी ऐसी छड़ को जहाँ जो किसी छेद में कसकर बैठ जाती हो और उसे तपावे तो वह उस छेद में बही घुसेगी । गरमी में किसी तेज चलती हुई गाड़ी के पहिए की हाल जब ढीली मालूम होने लगती है, तब उसपर पानी डालते हैं जिससे उसका फैलाव बट जाय । रेख की साइनों के जोड़ पर जो थोड़ी सी जगह छोड़ दी जाती है, वह इसीलिये जिसमें गरमी में लाइव के लोहे फैलकर सट ब जायें । जोड़ों को जो ताप का अनुभव होता है वह उनके शरीर की अवस्था के अनुसार होता है, अतः स्पर्शेन्द्रिय द्वारा ताप का ठीक ठीक संज्ञा सब नहीं हो सकता । इसी से ताप की मात्रा नापने के लिये थर्मामीटर नाम का एक यंत्र

बनाया गया है जिसके भीतर पारा रहता है जो अधिक गरमी पाने से ऊपर चढ़ता है और गरमी कम होने से नीचे गिरता है ।

२. आँच । लपट । ३. ज्वर । बुखार ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।

यौ०—तापतिल्ली ।

४ कष्ट । दुःख । पीड़ा ।

विशेष—ताप तीन प्रकार का माना गया है—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक । वि० द० 'दुःख' । उ०—वैदिक, वैविक, भौतिक ताप । रामराज काहुहि नहि । व्यापा ।—तुलसी (शब्द०) ।

५. मानसिक कष्ट । हृदय का दुःख (जैसे, शोक, पछतावा आदि) । उ०—एकही अखंड जाप ताप कैं हरतु है ।—संतबाणी०, पृ० १०७ ।

तापक—संज्ञा पु० [सं०] १. ताप उत्पन्न करनेवाला । उ०—तापक जो रवि सोषत है नित कज उगूँ ताहि देख्यां बिकसाहीं ।—राम० धर्म०, पृ० ६२ । २. रजोगुण ।

विशेष—रजोगुण ही ताप या दुःख का प्रतिकारण माना जाता है ।

३. ज्वर । बुखार ।

तापक्रम—संज्ञा पु० [सं० ताप + क्रम] १. शरीर के तापमान का चढ़ाव उतार । २. वायुमंडल की गरमी का उतार चढ़ाव [क्रि०] ।

तापड़ना—क्रि० सं० [हि० ताप] संताप देना । उ०—सेन भगवन् तापड़े प्राप गयी खहु मग्य ।—रा० क०, पृ० १०२ ।

तापति—अव्य० [सं० तपश्चात्] उसके बाद । तपश्चात् । उ०—सुरत रस सुचेतन बालमु तापति सबे प्रसार ।—विद्यापति, पृ० २३६ ।

तापतिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि० ताप (= ज्वर) + तिल्ली] ज्वरयुक्त प्लोहा रोग । पिल्ली बढ़ने का रोग ।

तापती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य की कन्या तापी । २. एक नदी का नाम जो सतपुड़ा पहाड़ से निकलकर पश्चिम की ओर को बहता हुई खंभात की खाड़ी में गिरती है ।

विशेष—स्कंदपुराण के तापी खंड में तापती के विषय में यह कथा लिखी है । भगवत्पुत्र मुनि के शाप से वरुण संवरण नामक सोमवंशी राजा हुए । उन्होंने घोर तप करके सूर्य की कन्या तापी के विवाह किया जो अत्यंत रूपवती और तापनाशिनी थी । वही तापी के नाम से प्रवाहित हुई । जो लोग उसमें स्नान करते हैं, उनके सब पातक नष्ट जाते हैं । पाषाड़ मास में इसमें स्नान करने का विशेष माहात्म्य है । तापीखंड में तापती के तट पर गजतीर्थ, अक्षमाळा तीर्थ आदि अनेक तीर्थों का होना लिखा है । इन तीर्थों के अतिरिक्त १०८ महालिंग भी इस पुनीत नदी के तट पर भिन्न भिन्न स्थानों में स्थित बतलाए गए हैं ।

तापत्रय—संज्ञा पु० [सं०] तीन प्रकार के ताप—आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक ।

तापत्व^१—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन का एक नाम [को०]।

तापत्व^२—वि० तापती संबंधी [को०]।

तापद—वि० [सं०] कष्टदायक [को०]।

तापदुःख—संज्ञा पुं० [सं०] पार्तव्य दर्शन के अनुसार दुःख का एक भेद।

विशेष—पार्तव्य दर्शन में तीन प्रकार के दुःख माने गए हैं, तापदुःख, संस्कारदुःख और परिणामदुःख। १० 'दुःख'।

तापन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताप देनेवाला। २. सूर्य। ३. कामदेव के पाँच बाणों में से एक। ४. सूर्यकांत मणि। ५. प्रकं बुद्ध। मदार। ६. डोल नाम का बाजा। ७. एक नरक का नाम। ८. तंत्र में एक प्रकार का प्रयोग जिससे शत्रु को पीड़ा होती है। ९. सुवर्ण। सोना [को०]। १०. कष्ट देनेवाला [को०]। ११. प्रीति शत्रु [को०]। १२. जलानेवाला [को०]। १३. भर्त्सना करनेवाला [को०]। १४. अनसाद। कष्ट। विषाद [को०]।

तापन^२—वि० १. कष्टद। कष्टकारक। २. गरमी देनेवाला। ताप-कारक [को०]।

तापना^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] पवित्रता। शुद्धता [को०]।

तापना^२—क्रि० प्र० [सं० तापन] भाग की भाँच से अपने को गरम करना। अपने को भाग के सामने गरमाना। कहीं कहीं धूप लेने के अर्थ में भी बोलते हैं, जैसे, वह ताप रहा है।

विशेष—'भाग तापना' आदि प्रयोगों को देख अधिकंश लोगों ने इस क्रिया को सकर्मक माना है। पर भाग इस क्रिया का कर्म नहीं है, क्योंकि भाग नहीं गरम की जाती है, गरम किया जाता है शरीर। 'शरीर तापते हैं', 'हाथ पैर तापते हैं' ऐसा नहीं बोला जाता। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि इस क्रिया का फल कर्ता से अभ्यन्त कहीं नहीं देखा जाता, जैसे कि 'तपाना' में देखा जाता है। 'भाग तापना' एक संयुक्त क्रिया है जिसमें भाग तृतीयात पद (करण) है।

तापना^३—क्रि० सं० १. शरीर गरम करने के लिये जलाना। फूँकना। संयो० क्रि०—जालना।

२. उड़ाना। नष्ट करना। बरबाद करना। जैसे,—वे सारा धन फूँक तापकर किनारे हो गए।

यौ०—फूँकना तापना।

तापना^४—क्रि० सं० तपाना। गरम करना। उ०—तापी सब भूमि यों कृपान भासमान सों।—भूषण सं०, पृ० ४६।

तापनीय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक उपनिषद्। २. एक प्राचीन तौल जो एक निष्क के बराबर थी [को०]।

तापनीय^२—वि० सोने से युक्त। सुनहला [को०]।

तापमान—संज्ञा पुं० [सं० ताप + मान] थर्मामीटर या गरमी मापने के यंत्र द्वारा मापी गई शरीर या वायुमंडल की ऊँचा।

तापमान यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तापमान + यंत्र] उष्णता की मापना मापने का एक यंत्र। गरमी मापने का एक यंत्र। गरमी मापने का एक योजन।

विशेष—यह यंत्र पीले की एक पतली नली में कुछ दूर तक पारा भरकर बनाया जाता है। अधिक गरमी पाकर वह पारा

लकीर के रूप में ऊपर की ओर चढ़ता है और कम गरम पाकर नीचे की ओर चढ़ता है। गली हुई बरफ या बरफ के पानी में नली को रखने से पारे की लकीर जिस स्थान तक नीचे धाती है, एक चिह्न वहाँ लगा देते हैं और नीलां हूप पानी में रखने से जिस स्थान तक ऊपर चढ़ती है, दूसरे चिह्न वहाँ लगा देते हैं। इन दोनों के बीच की दूरी को १०. अथवा १८० बराबर भागों में चिह्नों के द्वारा बाँट देते हैं ये चिह्न अंश या डिग्री कहलाते हैं। यंत्र को किसी वस्तु पर रखने से पारे की लकीर जितने अंशों तक पहुँची रहती है उतने अंशों की गरमी उस वस्तु में कही जाती है।

तापयान—वि० [सं०] उष्ण। जलता हुआ [को०]।

तापला^१—संज्ञा पुं० [सं० ताप] क्रोध।—(डि०)।

तापल^२—वि० गरम। उत्तप्त। तपा हुआ। उ०—एक कहा यह जो पियारा। तापल रहस्य सरीर मभारा।—इंद्रा०, पृ० ५८।

तापव्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० तापव्यञ्जन] वे गुप्तचर या खुफिया पुलिस के आदमी जो तपस्वियों या साधुओं के वेश रहते थे।

विशेष—कोटिल्य के समय में ये समाहर्ता के अधीन होते थे ये किसानों, गोपों, व्यापारियों तथा मित्र मित्र अध्यक्षों। ऊपर छिपे रहते थे तथा शत्रु राजा के गुप्तचरों और जो बाकुओं का पता भी लगाया करते थे।

तापरिचय—संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ का नाम।

तापस^१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तापसी] १. तप करनेवाला तपस्वी। उ०—सखी! कुमार तापस कहते हैं कि प्रातिष्ठ स्वीकार करना होगा।—भारतेंदु सं०, भा० १, पृ० ६८४ २. तमाल। तेजपत्ता। ३. बमनक। शीना नामक पौधा। ४ एक प्रकार की ईँख। ५. बक। बयला।

तापस^२—वि० तपस्या या तपस्वी से संबंधित।

तापसक—संज्ञा पुं० [सं०] सामान्य या छोटा तपस्वी। वह तपस्व जिसकी तपस्या थोड़ी हो।

तापसज—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता। तेजपात।

तापसतरु—संज्ञा पुं० [सं०] द्विपोट वृक्ष। इंगुडी का पेड़। इंगुडी वृक्ष।

विशेष—तपस्वी लोग वन में इंगुडी का ही तेल काम में लाते थे, इसी से इसका ऐसा नाम पड़ा।

तापसद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] इंगुडी वृक्ष।

तापसप्रिय^१—वि० [सं०] १. जो तपस्वियों का प्रिय हो। २. जिसे तपस्वी प्रिय हों।

तापसप्रिय^२—संज्ञा पुं० १. इंगुडी वृक्ष। २. चिरोजी का पेड़।

तापसप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगूर या मुनक्का। शाल।

तापसवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'तापसतरु'।

तापसव्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० तापसव्यञ्जन] १० 'तापव्यंजन'।

तापसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तपस्या करनेवाली स्त्री। २. तपस्वी की स्त्री।

तापसेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ईल ।

तापसेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुनक्का । दास [को०] ।

तापस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तापस धर्म । तपस्या । २. वैराग्य । संन्यास [को०] ।

तापस्वेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी प्रकार की उष्णता पहुँचाकर उत्पन्न किया हुआ या ज्वरादि की उष्णता के कारण उत्पन्न पसीना । २. गरम बालू, चमक, वस्त्र, हाथ, भाग की भाँच आदि से छेँककर पसीना निकालने की क्रिया ।

तापस्स—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तापस-१' । उ०—जगम हक तापस्स मिल्यो बरबार सुदृढ मन ।—पु० रा०, १ । १४२ ।

तापहर—वि० [सं० ताप + हि० हरना] तपन या दाह को दूर करनेवाला । उ०—तापहर हृष्यवेग लग्न एक ही स्मृति में; कितना अपनाव ।—अनामिका, पु० ६६ ।

तापहरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्यंजन का नाम । एक पकवान । (भाष्यप्रकाश) ।

विशेष—उरद की बरी मिले हुए धोए ज़ाबल को हलदी के साथ घी में तले या पकावे । तल जाने पर उसमें थोड़ा जल डाल दे । जब रसा तैयार हो जाय, तब उसे बदरक घोर ह्रींग से बघारकर उतार ले ।

तापा—संज्ञा पुं० [हि० तोपना ?] १. मछली मारने का तक्ता (लकड़) । २. मुरगी का दरवा ।

तापायन—संज्ञा पुं० [सं०] बाजसनेयी खाला का एक भेद ।

तापिच्छ—संज्ञा पुं० [सं० तापिच्छ] दे० 'तापिज' ।

तापिज—संज्ञा पुं० [सं० तापिज] १. सोनामक्खी । २. श्याम तमाल ।

तापिच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] तमाल वृक्ष । उ०—बड़ी तापिच्छ खाला सी भुजाएँ—भनुज की घोर बाएँ घोर बाएँ ।—साकेत, पु० ११ ।

तापिस—वि० [सं०] १. तापयुक्त । जो तपाया गया हो । २. दुःखित । पीड़ित ।

तापिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप ?] अनाहत चक्र की एक मात्रा ।

तापी^१—वि० [सं० तापिन्] १. ताप देनेवाला । २. जिसमें ताप हो ।

तापी^२—संज्ञा पुं० बुद्धदेव ।

तापी^३—संज्ञा स्त्री० १. सूर्य की एक कन्या । दे० 'तापती' । २. तापती नदी । ३. यमुना नदी ।

तापीज—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी । माक्षिक धातु ।

तापुर—संज्ञा पुं० [पालि ?] महाबोधिसत्त्व का दूसरा नाम । उ०—नवशीलित सिद्ध बोधिसत्त्व होने की प्रतिज्ञा करते हैं और उसके बाद से उनके सिद्ध उन्हें 'तापुर' या महाबोधिसत्त्व कहकर संबोधित करते हैं ।—संपूर्ण १० अमि० अं०, पु० २१४ ।

तापेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० तापेन्द्र] सूर्य । उ०—नमो पातु तापेंद्र देव प्रतीच । नमो मे रवि रत्न रसेन्दु बीच ।—विश्राम (शब्द०)

ताप्ती^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तापती] दे० 'तापती' ।

ताप्ती^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तापता' ।

ताप्य—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी ।

तापता—संज्ञा पुं० [फ्रा० तापतह] दे० 'तापता' । उ०—छुटी न सिसुता की भलक भलकयो जीवन अंग । बीपत देह दुहन मिलि विपति तापता रंग ।—बिहारी (शब्द०) ।

तापता—संज्ञा पुं० [फ्रा० तापतह] एक प्रकार का चमकदार रेशमी कपड़ा । धूप खाँह रेशमी कपड़ा ।

ताब—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. ताप । गरमी । २. चमक । घामा । दीप्ति । ३. शक्ति । सामर्थ्य । हिम्मत । मजाल । जैसे,—उनकी क्या ताब कि आपके सामने कुछ बोलें ? ४. सहन करने की शक्ति । मन को बस में रखने की सामर्थ्य । धैर्य । जैसे,—अब इतनी ताब नहीं है कि वो घड़ी ठहर जायें ।

ताबकतोड़—क्रि० वि० [अनु०] एक के उपरांत तुरंत दूसरा, इस क्रम से । अखंडित क्रम से । लगातार । बराबर ।

ताबनाक—वि० [फ्रा०] प्रकाशमान । ज्योतिर्मय । चमकता हुआ । उ०—बचन का अजब मय यो है ताबनाक । फहमदार के गोश का जिस्म लुरक ।—दक्खिनी०, पु० २६७ ।

ताबो^१—वि० [फ्रा०] ज्योतिर्मय । प्रकाशमान । दीप्त । रोशन ।

ताबा^१—वि० [अ० ताबय] दे० 'ताबे' ।

ताबा^२—संज्ञा पुं० अधिकार । हुक । उ०—राकै वंश आया भूमि ताबा की भड़ाई ।—शिल्लर०, पु० २७ ।

ताबिश—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] गर्मी । उष्णता । तपन । उ०—तुज हुस्न के खुरशीब का तिरलोक में ताबिश पड़े ।—दक्खिनी०, पु० ३२१ ।

ताबी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० ताब] ताप । गरमी । उष्णता । उ०—मक्का भिस्त हज्ज को देखा । अबरा भाब घोर ताबी ।—घट०, पु० २११ ।

ताबीज—संज्ञा पुं० [अ० तामबीज] दे० 'ताबीज' । उ०—हीरा भुज ताबीज मैं सोहत है यह बान ।—स० सप्तक, पु० १२६ ।

ताबीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्वप्न आदि का शुभाशुभ वर्णन । उ०—इबादत में रहता है रोशन जमीर । बतावेगा ताबीर वह मद पीर ।—दक्खिनी०, पु० ३०० ।

ताबूत—संज्ञा पुं० [अ०] वह संदूक जिसमें मुरखे की लाश रखकर पाड़ने को ले जाते हैं । मुरखे का संदूक । उ०—कुरतए हसरते दीवार है या रब किस्के । नरुल ताबूत में जो फूल सने नरगिस्के ।—झीनिबास० अं०, पु० ५५ ।

ताबे^१—वि० [अ० ताबय] १. बशीभूत । अश्वीन । मातहत । जैसे,—जो तुम्हारे ताबे हो, उसे भाँख बिखाओ । २. आज्ञानुवर्ती । हुक्म का पाबंद ।

यौ०—ताबेदार ।

ताबेगम—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० ताब + अ० गम] दुःख सहने की शक्ति [को०] ।

ताबेजस्त—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० ताब + अ० जस्त] प्रेम की पीड़ा या दुःख सहने का शक्ति [को०] ।

ताम्रद्वार^१—वि० [अ० ताम्र + द्वा० (प्रत्य०)] आजा-
कारी । हुपम का पादद ।

ताम्रद्वार^२—संज्ञा पु० नौकर । सेवक । अनुचर ।

ताम्रद्वारी—संज्ञा स्त्री० [द्वा०] १. सेवकाई । नौकरी । २. सेवा ।
दहल ।

क्रि० प्र०—करना ।—बजाना ।

ताम्र^१—संज्ञा पु० [सं०] १. दोष । विकार । उ०—ऊकृत रहत
बिना पर आमे त्यागो कमल से ताम्र ।—गुलाल०, पु० १६ ।
२. मनोविकार । चिन्ता का उद्देग । व्याकुलता । बेचैनी ।
उ०—(क) मिटघो काम तनु ताम्र तुरत ही रिझई मदन
गोपाल ।—सूर (शब्द०) । (ख) तनुतमाल तर तनु
कन्हवाई दूरि करन युवतिन तनु ताम्र ।—सूर (शब्द०) ।
३. दुःख । क्लेश । व्याथा । कष्ट । उ०—देखत पय पीवत
बलराम । तातो लगत डारि तुम दोनो दावानज पीवत नहि
ताम्र ।—सूर (शब्द०) । ४. लालि । ५. इच्छा । चाहना
(पी०) । ६. पकान । क्लान्ति (की०) ।

ताम्र^२—वि० १. भीषण । डरावना । मर्यकर । २. दुःखी । व्याकुल ।
हैरान । उ०—भाँठ मुकुमार मनोहर मुराँत ताहि करति
तुम ताम्र ।—सूर (शब्द०) ।

ताम्र^३—संज्ञा पु० [सं० ताम्र] १. क्रोध । रोष । गुस्सा । उ०—
(क) सुरदास प्रभु मिलहु कृपा करि दूरि करहु मन
ताम्रहि ।—सूर (शब्द०) । (ख) सूर प्रभु जेहि सदन जात
न सोइ करति तनु ताम्र ।—सूर (शब्द०) । २. प्रयंकार ।
प्रवेष्टा । उ०—जननि कहति उठहु श्याम, बिगत जानि रजनि
ताम्र, सुरदास प्रभु कृपानु तुमको कछु खेबे ।—सूर (शब्द०)

ताम्र^४—प्रव्य० [प्राकृत] १. तब तक । २. तब । उस समय ।
उ०—ताम्र हस पायो समधि कछो भहो कशिबुत्त ।—पु०
रा०, २५ । २६३ ।

ताम्रजान—संज्ञा पु० [हि० ताम्र + जान (= सवारी)] एक
प्रकार की छोटी सुन्नी पालकी । एक हूपाकी सवारी जो काठ
की लकी कुरसी के आकार की होती है और जिसे कहार
उठाकर ले चलते हैं ।

ताम्रभास—संज्ञा पु० [हि० ताम्रजान] धूमधाम । शान शोकत ।
दिखावटी प्रदर्शन ।

ताम्रङ्गा^१—वि० [सं० ताम्र, हि० ताम्र + ङा (प्रत्य०)] तमि
के रंग का । ललाई लिए हुए घूरा । जैसे, ताम्रङ्गा रंग, ताम्रङ्गा
कबूतर ।

ताम्रङ्गा^२—संज्ञा पु० १. ऊँचे रंग का एक प्रकार का पत्थर या
नगीना । २. एक तरह का कागज । ३. खल्वाट मस्तक । गंजी
खोपड़ी । ४. स्वच्छ आकाश । ५. बहुत पकी हुई ईंट ।

ताम्रदान^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ताम्रजान' । उ०—श्री दशने-
श्वरनाथ को पुष्पाञ्जलि चढ़ाने के लिये ताम्रदान पर सवार
होकर गए ।—प्रेमघन०, भा० २, पु० १८१ ।

ताम्रना^१—क्रि० सं० [देश०] खेत जोतने के पूर्व खेत की घास
छाड़ना ।

ताम्र—संज्ञा पु० [सं०] १. पानी । २. घी ।

विशेष—यह शब्द 'ताम्रस' शब्द को संस्कृत सिद्ध करने के लिये
गढ़ा हुआ जान पड़ता है ।

ताम्रस—संज्ञा पु० [सं०] १. कमल । उ०—सियरे बदन सूखि
गए कैसे । परसत तुहिन ताम्रस जैसे ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द वेदों में आया है तथापि आर्यभाषा का
नहीं है । 'पिक' आदि के समान यह अनार्य भाषा से आया
हुआ माना गया है । शबर भाष्य में इस बात का स्पष्ट
उल्लेख है ।

२. सोना । ३. ताँबा । ४. घनूरा । ५. सारस । ६. एक
वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण, दो जगण
और एक यगण (III, ISI, ISI, ISS) होता है । जैसे,—निज
जय हेतु करी रघुवीरा । तब नुति मोरी हरी भव पीरा ।

ताम्रसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सरोवर जिसमें कमल हों । कमलों-
वाला ताल [की०] ।

ताम्रलकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी । भूधौवला ।

ताम्रलूक—संज्ञा पु० [सं० ताम्रलूक] बंग देश के प्रतर्गत एक भूभाग
जो मेदिनीपुर जिले में है । वि० दे० 'ताम्रलूक' ।

विशेष—यह परगना गंगा के मुहाने के पास पड़ता है । इस
प्रदेश का प्राचीन नाम ताम्रलूक है । ईसा की चौथी शताब्दी
से लेकर बारहवीं शताब्दी तक यह वाणिज्य का एक प्रधान
स्थल था ।

ताम्रलेट—संज्ञा पु० [अ० ताम्र ; प्लेट या टैंबलर] लोहे का गिलास या
बरतन जिसपर चमकदार रंग या लुक फेरा रहता है ।
एनेमल किया हुआ बरतन ।

ताम्रलोह—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ताम्रलेट' ।

ताम्रस^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तामसी] १. जिसमें प्रकृति के उस
गुण की प्रधानता हो जिसके अनुसार जीव क्रोध आदि नीच
वृत्तियों के बन्धीभूत होकर आचरण करता है । तमोगुण युक्त ।
उ०—(क) होइ मजन नहि ताम्रस देहा ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) विप्र साप तेँ दूनउँ भाई । ताम्रस प्रसुर देह तिन पाई ।
—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—पंचपुराण में कुछ शास्त्र ताम्रस बतलाए गए हैं । कणाद
का वैशेषिक, गौतम का न्याय, कपिल का सांख्य, जैमिनि की
मीमांसा, इन सब की गणना उक्त पुराण के अनुसार ताम्रस
शास्त्रों में की गई है । इसी प्रकार बृहस्पति का धार्वाक दर्शन,
शांख्य मुनि का बौद्ध शास्त्र, शंकर का वेदांत इत्यादि तत्त्वज्ञान
संबंधी ग्रंथ भी सांप्रदायिक दृष्टि से ताम्रस माने जाते हैं ।
पुराणों में मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, अग्नि और स्कंद ये छह
ताम्रस पुराण कहे गए हैं । सामुद्र, शंख, यम, भीमनस आदि
कुछ स्मृतियों तथा जैमिनि, कणाद, बृहस्पति, जमदग्नि,
शुक्राचार्य आदि कुछ मुनियों को भी ताम्रस कह डाला है ।
इसी प्रकार प्रकृति के तीनों गुणों के अनुसार अनेक वस्तुओं
और व्यापारों के विभाग किए गए हैं । निद्रा, भालस्य, प्रमाद
आदि से उत्पन्न सुख को ताम्रस सुख; पुरोहितार्थ, धर्मप्रति-

ब्रह्म, पशुहिंसा, लोभ, मोह, अहंकार आदि को तामस कर्म कहा है। बिष्णु सत्त्वगुणमय, ब्रह्मा रजोगुणमय और शिव तमोगुणमय माने जाते हैं। उ०—ब्रह्मा राजस गुण अधिकारी शिव तामस अधिकारी।—सूर (शब्द०)।

२. अंधकार युक्त। अंधकारमय (की०)। ३. तमस् से प्रभावित या संबद्ध (की०)। ४. अज्ञ (की०)। ५. दुष्ट। कुटिल (की०)।

तामस^२—संज्ञा पु० १. सर्प। २. लख। ३. उल्लू। ४. कोष। गुस्सा। बिड़। उ०—कहू लोको कैसे भावत है शिशु पे तामस एत ?—सूर (शब्द०)। ५. अंधकार। अंधेरा। उ०—तू मर रूप छलीक सुन हिय तामस बासा।—दीनदयाल (शब्द०)। ६. अज्ञान। मोह। ७. चौथे मनु का नाम। ८. एक पक्ष का नाम।—(वाल्मीकि रामायण)। ९. तैवीस प्रकार के केतु जो सूर्य और चंद्रमा के भीतर दृष्टिगोचर होते हैं।—(बृहत्संहिता)। वि० १०. 'तामसकीलक'। १०. तमोगुण। उ०—भूठा है संसार तो तामस परिहारी।—घरम०, पृ० ४०। ११. राहु का एक पुत्र (की०)। १२. अंधकार (की०)। १३. वह षोड़ा जिसमें तमोगुण हो (की०)।

तामसकीलक—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार के केतु जो राहु के पुत्र माने जाते हैं और संख्या में ३३ हैं।

विशेष—सूर्यमंडल में इनके वर्ण, आकार और स्थान को देखकर फल का निर्णय किया जाता है। ये यदि सूर्यमंडल में दिखाई पड़ते हैं, तो इनका फल अशुभ और अशुभमंडल में दिखाई पड़ते हैं तो शुभ माना जाता है।

तामसमय—संज्ञा पु० [सं०] कई बार की लीची हुई शराब।

तामसवाण—संज्ञा पु० [सं०] एक पक्ष का नाम।

तामसाहंकार—संज्ञा पु० [सं० तामसाहंकार] एक प्रकार का अहंकार अहंकार का एक भेद। उ०—तिहु तामसाहंकार ते दश तत्त्व उपजे आह।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० १०।

तामसिक—वि० [सं०] [वि० की० तामसिकी] १. तामसयुक्त। तमोगुणवाली। उ०—या विविध तामसिक जातें। उसको है अधिक हलाती।—परिजात, पृ० ७२। २. तमस् से उत्पन्न या तमस् से लग्न (की०)।

तामसी^१—वि० की० [सं०] तमोगुणवाली। जैसे, तामसी प्रकृति।

यौ०—तामसी लीना = असंतोष के प्रकारों में से एक (सांख्य)।

तामसी^२—संज्ञा की० [सं०] १. अंधेरी रात। २. महाकाली। ३. अटमासी। बालछड़। ४. एक प्रकार की माया विद्या जिसे शिव ने निकुंभिला यज्ञ से प्रसन्न होकर मेघनाद को दिया था।

तामा^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तांबा'।

तामि—संज्ञा की० [सं०] श्वास का नियंत्रण (की०)।

तामिर्यो—वि० [हि० तामा + र्या (प्रत्य०)] दे० 'तामिर्या'।

तामिर्या—वि० [हि० तामा + र्या (प्रत्य०)] १. तांबे के रंग का। २. तांबे का। तांबे से निर्मित।

तामिल—संज्ञा की० [तमिल; तमिष्] १. भारत के दूरस्थ दक्षिण प्रांत की एक जाति जो आधुनिक मद्रास प्रांत के अधिकतर

भाग में निवास करती है। यह द्रविड़ जाति की ही एक शाखा है।

विशेष—बहुत से विद्वानों की राय है कि तामिल शब्द संस्कृत 'द्राविड' से निकला है। मनुसंहिता, महाभारत आदि प्राचीन ग्रंथों में द्रविड़ देश और द्रविड़ जाति का उल्लेख है। मागधी प्राकृत या पाली में इसी 'द्राविड' शब्द का रूप 'दामिलो' हो गया। तामिल वर्णमाला में त, व, द आदि के एक ही उच्चारण के कारण 'दामिलो' का 'तामिलो' या 'तामिल' हो गया। शंकराचार्य के शारीरक भाष्य में 'द्रमिल' शब्द आया है। हुएनसांग नामक चीनी यात्री ने भी द्रविड़ देश को बि-मो-सो करके लिखा है। तामिल व्याकरण के अनुसार द्रमिल शब्द का रूप 'तिरमिड़' होता है। भाष्यकल कुछ विद्वानों की राय हो रही है कि यह 'तिरमिड़' शब्द ही प्राचीन है जिससे संस्कृतवालों ने 'द्रविड़' शब्द बना लिया। जैनो के 'शत्रुंजय माहात्म्य' नामक एक ग्रंथ में 'द्रविड़' शब्द पर एक बिलक्षण कल्पना की गई है। उक्त पुस्तक के मत से आदि तीर्थंकर ऋषभदेव को 'द्रविड़' नामक एक पुत्र जिस भूभाग में हुमा, उसका नाम 'द्रविड़' पड़ गया। पर भारत, मनुसंहिता आदि प्राचीन ग्रंथों से विदित होता है कि द्रविड़ जाति के निवास के ही कारण देश का नाम द्रविड़ पड़ा। (दे० द्राविड़)।

तामिल जाति अत्यंत प्राचीन है। पुरातत्त्वविदों का मत है कि यह जाति अनाय है और आर्यों के आगमन से पूर्व ही भारत के अनेक भागों में निवास करती थी। रामचंद्र ने दक्षिण में जाकर जिन लोगों की सहायता से लंका पर चढ़ाई की थी और जिन्हें वाल्मीकि ने बंदर लिखा है, वे इसी जाति के थे। उनके काले वर्ण, भिन्न प्राकृति तथा विकट भाषा आदि के कारण ही आर्यों ने उन्हें बंदर कहा होगा। पुरातत्त्ववेत्ताओं का अनुमान है कि तामिल जाति आर्यों के संसर्ग के पूर्व ही बहुत कुछ सभ्यता प्राप्त कर चुकी थी। तामिल लोगों के राजा होते थे जो किछे बनाकर रहते थे। वे हजार तक गिन लेते थे। वे नाव, छोटे मोटे जहाज, धनुष, बाण, तलवार इत्यादि बना लेते थे और एक प्रकार का कपड़ा बुनना भी जानते थे। रंगे, सीसे और जस्ते को छोड़ और सब धातुओं का ज्ञान भी उन्हें था। आर्यों के संसर्ग के उपरांत उन्होंने आर्यों की सभ्यता पूर्ण रूप से ग्रहण की। दक्षिण देश में ऐसी अनश्रुति है कि ऋषभदेव ने दक्षिण में जाकर वहाँ के निवासियों को बहुत सी विद्याएँ सिखाईं। बारह तेरह सौ वर्ष पहले दक्षिण में जैन धर्म का बड़ा प्रचार था। चीनी यात्री हुएनसांग जिस समय दक्षिण में गया था, उसने वहाँ बिगंबर जैनों की प्रचानता देखी थी।

२. द्रविड़ भाषा। तामिल लोगों की भाषा।

विशेष—तामिल भाषा का साहित्य भी अत्यंत प्राचीन है। दो हजार वर्ष पूर्व तक के काव्य तामिल भाषा में विद्यमान हैं। पर वर्णमाला नामरी लिपि की तुलना में अपूर्ण है। अनुनासिक पंचम वर्ण को छोड़ व्यंजन के एक एक वर्ण का

अक्षरों का एक ही सा है। क, ख, ग, घ, चारों का अक्षर एक ही है। व्यंजनों के इस अभाव के कारण जो संस्कृत शब्द प्रयुक्त होते हैं, वे विकृत हो जाते हैं; जैसे, 'कृष्ण' शब्द तामिल में 'किट्टिन' हो जाता है। तामिल भाषा का प्रधान ग्रंथ कवि तिळक्कुवर रचित कुरल काव्य है।

तामिल लिपि—संज्ञा स्त्री० [हि० तामिल + सं० लिपि] एक प्रकार की लिपिविशेष।

विशेष—यह लिपि मद्रास प्रान्त के जिन हिस्सों में प्राचीन द्रविड लिपि प्रचलित थी वहाँ के, तथा उत्तर प्रान्त के पश्चिमी तट अर्थात् मल्लार प्रदेश के तामिल भाषा के लोगों में ई० स० की सातवीं सताब्दी से बराबर मिलती चली जाती है। ('तामिल' शब्द की उत्पत्ति देव और जातिमुक्त 'द्रमिल' (द्रविड) शब्द से हुई है। (दे० भारतीय प्राचीन लिपि-माला, पृ० १३२।)

तामिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वरक का नाम जिसमें सदा घोर अंधकार बना रहता है। २. क्रोध। ३. द्वेष। ४. एक ध्वनि का नाम। भोग की इच्छापूर्ति में बाधा पड़ने से जो क्रोध उत्पन्न होता है उसे तामिल कहते हैं।—(भागवत)। ५. घृणा (को०)। ७. एक राक्षस (को०)।

तामी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तामि' (को०)।

तामी—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँबा] १. तबे का तसला। २. द्रव पदार्थों को नापने का एक बरतन।

तामीर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निर्माण। बनाना। रचना। इमारत का निर्माण। वास्तुक्रिया। २. सुधार। इस्लाम। ४. इमारत। ध्वन बनावट (को०)।

तमी—तामीरे कीम = (१) राष्ट्रनिर्माण। (२) जाति का निर्माण। कीम या जाति का सुधार। तामीरे मुक्त = राष्ट्रनिर्माण।

तामीरी—वि० [हि० तामीर + ई (प्रत्य०)] इस्लामी। रचनात्मक (को०)।

तामील—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. (भाषा का) पालन। जैसे, हुक्म की तामील होना।

तमी—तामीले हुक्म = भाषा का पालन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. किसी परवाने, सम्मन या वारंट का विष्पादन (को०)।

तामिसरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँबा] एक प्रकार का तामड़ा रंग जो गेहूँ के योग से बनता है।

ताम्बुल—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बुल] सोब विचार। असमंजस। उ०—हज़ूर, इन जरा जरा सी बातों पर इतना सा ताम्बुल करेये तो काम क्योंकर चलेगा?—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३०।

ताम्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताँबा। २. एक प्रकार का कोढ़। ३. अंजना या ताँबिया लाल रंग (को०)।

ताम्र—वि० १. तबे का बना हुआ। २. तबे के रंग का। तबे जैसा (को०)।

ताम्रक—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

ताम्रकर्ण—संज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिम के दिग्गज अंजन की पत्नी। अंजना।

ताम्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] तबे के बरतन बनानेवाला। तमेरा।

ताम्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताम्रकार' (को०)।

ताम्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] तमाकू का पेड़ या पीघा।

विशेष—यह शब्द पढ़ा हुआ है और कुलावरु तंत्र में आया है।

ताम्रकृमि—संज्ञा पुं० [सं०] बीर बहूटी नाम का कीड़ा।

ताम्रगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] तुल्य। तृतिया।

ताम्रचूड़—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड़] १. कुकरोथा नाम का पीघा।

२. मुरया। उ०—दूर बोला ताम्रचूड़ मभीर, कूर भी है काल निर्भर बीर।—साकेत, पृ० १६५।

ताम्रचूड़क—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड़क] हाथ की एक मुद्रा (को०)।

ताम्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तबे जैसा साव रंग (को०)।

ताम्रतुंड—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रतुण्ड] एक प्रकार का बंदर (को०)।

ताम्रत्रपुज—संज्ञा पुं० [सं०] पीतल (को०)।

ताम्रदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखदुग्दी। छोटी दुग्दी। अमर संजीवनी।

ताम्रद्र—संज्ञा पुं० [सं०] जालचंदन (को०)।

ताम्रद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] सिंहल। संका (को०)।

ताम्रधातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल खड़िया। २. ताँबा (को०)।

ताम्रपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रपत्र।

ताम्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तबे की चदर का एक टुकड़ा जिसपर प्राचीन काल में अक्षर खुदवाकर दानपत्र आदि लिखते थे। २. तबे का चदर। तबे का पत्तर।

ताम्रपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + पर्ण] लाल रंग का पत्ता। उ०—ताम्रपर्ण पीपल थे, शतमुख भरते अंबल स्वर्णिम निर्भर।—शाम्बा, पृ० ६३।

ताम्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बावली। तालाब। २. दक्षिण देश की एक छोटी नदी जो मदरास प्रांत के तिनवल्लू जिले से होकर बहती है।

विशेष—इसकी लंबाई ७० मील के लगभग है। रामायण, महाभारत तथा मुख्य मुख्य पुराणों में इस नदी का नाम आया है। अथोक के एक शिलालेख में भी इस नदी का उल्लेख है। ताम्रमी आदि विदेशी लेखकों ने भी इसकी चर्चा की है।

ताम्रपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] अथोक वृक्ष।

ताम्रपाकी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रपाकिन्] पाकर का पेड़।

ताम्रपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] तबे का बरतन (को०)।

ताम्रपादो—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी। लाल रंग की खजासू।

ताम्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लाल फूल का कचनार।

ताम्रपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल फूल की निसोत।

ताम्रपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घातकी। घब का पेड़। २. पाटल। पाटुर का पेड़।

ताम्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] अंकुश वृक्ष। टेरा। डेरा।

ताम्रफलक—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रपत्र । तबि का पत्तर [को०] ।

ताम्रमुख^१—वि० [सं० ताम्र + मुख] जिसका मुख तबि के रंग का हो

ताम्रमुख^२—संज्ञा पुं० यूरोपीय व्यक्ति ।

ताम्रमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवासा । धमासा । २. लज्जालु ।

छुईमुई । ३. किबाब । कोब । कपिकच्छु ।

ताम्रमृग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लाल हिरन [को०]

ताम्रय—संज्ञा पुं० [सं०] लाली । ललाई [को०] ।

ताम्रयुग—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + युग] ऐतिहासिक विकासक्रम में वह युग जब मनुष्य तबि की बनी वस्तुओं का व्यवहार करता था ।

ताम्रयोग—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + योग] एक प्रकार की रासायनिक दवा [को०] ।

ताम्रलिप्त—संज्ञा पुं० [सं०] भेदिनीपुर (बंगाल) जिले के तमलुक नामक स्थान का प्राचीन नाम ।

विशेष—पूर्व काल में यह व्यापार का प्रधान स्थल था । बृहत्कथा को देखने से विदित होता है कि यहाँ छे सिहल, सुमात्रा, जावा चीन इत्यादि देशों की ओर बराबर व्यापारियों के जहाज रवाना होते रहते थे । महाभारत में ताम्रलिप्त को कलिय के लगा हुआ समुद्र तटस्थ एक देश लिखा है । पाली ग्रंथ महा-वंश से पता लगता है कि ईसा से ३६० वर्ष पूर्व ताम्रलिप्त नगर भारतवर्ष के प्रसिद्ध बंदरगाहों में से था । यहीं जहाज पर चढ़कर सिहल के राजा ने प्रसिद्ध बोधिद्रुम को लेकर स्वदेश की ओर प्रस्थान किया था और महाराज अशोक ने समुद्रतट पर लड़े होकर उसके लिये मीसू बहाए थे । ईसा की पाँचवी शताब्दी में चीनी यात्री फाहियान बोद्ध धर्म की नकल आदि लेकर ताम्रलिप्त ही छे जहाज पर बैठ सिहल गया था ।

रामायण में ताम्रलिप्त का कोई उल्लेख नहीं है, पर महाभारत में कई स्थानों पर है । वहाँ के निवासी ताम्रलिप्तक भारतयुद्ध में दुर्योधन की ओर से लड़े थे । पर उनकी गिनती म्लेच्छ जातियों के साथ हुई है । यथा—शकाः किराता हरदा बर्बरा ताम्रलिप्तकाः । अन्ये च बहुवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः । (द्रोणपर्व) ।

ताम्रलेख—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताम्रपत्र' [को०] ।

ताम्रवर्ण^१—वि० [सं०] १. ताम्र रंग का । २. लाल ।

ताम्रवर्ण^२—संज्ञा पुं० १. वैद्यक के अनुसार मनुष्य के शरीर पर की चौथी त्वचा का नाम । २. पुराणों के अनुसार भारतवर्ष के अंतर्गत एक द्वीप । सिहल द्वीप । सीलोन ।

विशेष—प्राचीन काल में सिहल द्वीप इसी नाम से प्रसिद्ध था । मेघास्थनीज ने इसी द्वीप का नाम तमोवेन लिखा है ।

विशेष—दे० 'सिहल' ।

ताम्रवर्ण^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़हर का पेड़ । मरुहू । मोड़पुष्प ।

४-५१

ताम्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मजीठ । २. एक जता जो चित्रकूट प्रदेश में होती है ।

ताम्रबीज—संज्ञा पुं० [सं०] कुलधी ।

ताम्रवृंत—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रवृन्त] कुलधी ।

ताम्रवृंता—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्रवृन्ता] कुलधी ।

ताम्रवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुलधी । २. लाल चंदन का पेड़ ।

ताम्रशासन—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + शासन] ताम्रपत्र । दानपत्र ।

उ०—राजाओं तथा सामंतों की तरफ से मंदिर, मठ, ब्राह्मण साधु आदि को दान में दिए हुए गाँव, खेत, कुएँ आदि की इनमें तबि पर प्राचीन काल से ही छुटवाकर दी जाती थीं और अबतक भी जाती हैं जिनको 'दानपत्र', 'ताम्रपत्र', 'ताम्रशासन' या 'शासनपत्र' कहते हैं ।—भा० प्रा० शि०, पु० १५२ ।

ताम्रशिखी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रशिखिन्] कुक्कुट । मुरगा ।

ताम्रसार—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन का वृक्ष ।

ताम्रसारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल चंदन का पेड़ । २. लाल खैर ।

ताम्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सिहली पीपल । २. दल प्रजापति की कन्या जो कश्यप ऋषि की पत्नी थी । इससे वे ५ कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं—(१) कौबो, (२) भासी, (३) छेनी, (४) धृतराष्ट्री और (५) शुकी । (रामायण) ।

ताम्राक्षी—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोयल । २. कोमा [को०] ।

ताम्राक्ष^२—वि० लाल भालोंवाला [को०] ।

ताम्राभ^१—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन ।

ताम्राभ^२—वि० तबि का आभावाला [को०] ।

ताम्राध^१—संज्ञा पुं० [सं०] काँसा ।

ताम्राश्मा—संज्ञा पुं० [सं० ताम्राश्मन्] पथराग मणि [को०] ।

ताम्रिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ताम्रिकी] ताम्रकार [को०] ।

ताम्रिक^२—वि० [वि० स्त्री० ताम्रिकी] तबि का । ताम्रनिर्मित । तबि से बना हुआ [को०] ।

ताम्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुँजा । घुँघची ।

ताम्रिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्रिमम्] लालिमा । ललाई [को०] ।

ताम्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का बाजा । २. जलघड़ी का कटोरा । जलघड़ी का पात्र [को०] ।

ताम्रेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रमय । तबि की राख ।

ताम्रोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रोपजीविन्] ताम्रकार [को०] ।

तायँ(ु)ी—अव्य० [हि०] तक ।

ताय(ु)ी—संज्ञा पुं० [सं० ताय, हि० ताय] १. ताय । परसी । २. जलन । ३. घुप ।

ताय(ु)ी^२—सर्व० [हि०] दे० 'ताहि' । उ०—मैं लूम रो बैसुरिया, तै कह बीनो ताय ।—ब्रज० प्र०, पु० ५९ ।

सायबादः—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'तादाद' ।

सायन①—संज्ञा पुं० [प्रा० ताजियानह्] बायुक । कोड़ा । उ०—
लील गुहार बाँझ भी बकि । तरपहि तबहि तायन बिनु हकि ।
२. वृद्धि ।—जायमी ग्रं० (गुप्त), पृ० १५० ।

सायन^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्मगता । आगे बढ़नेवाला व्यक्ति ।
विकास [को०] ।

सायना②—क्रि० सं० [हि० साव] तपाना । गरम करना ।
उ०—पायन बजति उतायल तायन कीन । पुनि करि कायल
पायल हायल कीन ।—सेवक (शब्द०) ।

सायफा—संज्ञा पुं० स्त्री० [प्रा० तायफह्] १. नाचने गानेवाली वेश्याओं
और समाजियों की मंडली । २. वेश्या । रंडी । उ०—तन
मन मिलयो तायफे, छाँकी हिलियो छैल ।—बाँकी ग्रं०,
भा० २, पृष्ठ ३ ।

सायब(पु)③—[प्रा० मोबह्] तीबा करनेवाला । पश्चात्ताप करने-
वाला । उ०—गुनह से हों सब आदमी तायब ।—कबीर
ग्रं०, पृ० १३३ ।

सायल वि० [हि० ताय] तेज । तावदार । उ०—तायल तुरंगम
उड़त अनु बाब ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५ ।

साया^१—संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० ताई] बाप का बड़ा भाई ।
बड़ा भाजा ।

साया^२—वि० [हि० ताना] १. गरमाया हुआ । २. पिघलाया हुआ ।
जैसे, ताया बी ।

तार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. रूपा । चाँदी । २. (सोना, चाँदी ताँबा,
लोहा इत्यादि), धातुओं का सूत । तपी धातु को पीट और
लीचकर बनाया हुआ तामा । रस्सी या तामे के रूप में
परिणत धातु । धातुतंतु ।

विशेष धातु को पट्टे पीटकर गोम बत्ती के रूप में करते हैं ।
फिर उसे तपाकर जंती के बड़े छेद में डालते और सड़सी से
दूसरी ओर पकड़कर जोर से लीचते हैं । लीचने से धातु
लकीर के रूप में बढ़ जाती है । फिर उस छेद में से सूत या
बत्ती को निकालकर उससे और छोटे छेद में डालकर लीचते
जाते हैं जिससे वह बराबर महीन होता और बढ़ता जाता
है । लीचने में धातु बहुत गरम हो जाती है । सोने, चाँदी,
आदि धातुओं का तार गोटे, पट्टे, कारचोबी आदि बनाने के
काम आता है । सीसे और रंगे को छोड़ और प्रायः सब
धातुओं का तार लीचा जा सकता है । जरी, कारचोबी आदि
में चाँदी ही का तार काम में लाया जाता है । तार को मुनहरी
बनाने के लिये उसमें रसी दो रत्ती सोना मिला देते हैं ।

क्रि० प्र०—लीचना ।

यौ०—तारकण ।

मुहा०—तार बबकना=गोटे के लिये तार को पीटकर बिपटा
और बाँझ करना ।

३. धातु का वह तार या डोरी जिसके द्वारा बिजली की
सहायता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर समाचार भेजा
जाता है । टेलिग्राफ । जैसे,—उन दोनों गाँवों के बीच तार

लगा है । उ०—तबित तार के द्वार मिल्यो सुभ समाचार
यह ।—भारतेंद्र ग्रं०, भा० २, पृ० ८०० ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

यौ०—तारधर ।

विशेष—तार द्वारा समाचार भेजने में बिजली और चुंबक की
शक्ति काम में लाई जाती है । इसके लिये चार वस्तुएं
आवश्यक होती हैं—बिजली उत्पन्न करनेवाला यंत्र या घर,
बिजली के प्रवाह का संचार करनेवाला तार, संवाद को प्रवाह
द्वारा भेजनेवाला यंत्र और संवाद को ग्रहण करनेवाला यंत्र ।
यह एक नियम है कि यदि किसी तार के धरे में से बिजली
का प्रवाह हो रहा हो और उसके भीतर एक चुंबक हो, तो
उस चुंबक को हिलाने से बिजली के बल में कुछ परिवर्तन
हो जाता है । चुंबक के रहने से जिस दिशा को बिजली का
प्रवाह होगा, उसे निकाल लेने पर प्रवाह उलटकर दूसरी दिशा
की ओर हो जायगा । प्रवाह के इस दिशापरिवर्तन का ज्ञान
कंपास की तरह के एक यंत्र द्वारा होता है जिसमें एक सुई लगी
रहती है । यह सुई एक ऐसे तार की कुडली के भीतर रहती
है जिसमें बाहर से भेजा हुआ विद्युत्प्रवाह संचरित होता है ।
सुई के इधर उधर होने से प्रवाह के विक परिवर्तन का पता
लगता है । आजकल चुंबक की आवश्यकता नहीं पड़ती
जिस तार में से बिजली का प्रवाह जाता है, उसके बगल में
दूसरा तार लगा होता है जिसे विद्युद्घट से मिला देने से
थोड़ी देर के लिये प्रवाह की दिशा बदल जाती है । इस
समाचार किस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर आता
है, स्थूल रूप से यह देखना चाहिए । भेजनेवाले तारधर में
जो विद्युद्घटमाला होती है, उसके एक ओर का तार तंतु
पृथ्वी के भीतर गड़ा रहता है और दूसरी ओर का पानेवाले
स्थान की ओर गया रहता है । उसमें एक कुंजी ऐसी होती
है जिसके द्वारा जब चाहें तब तारों को जोड़ दें और जब चाहें
तब छलंग कर दें । इसी के माध्यम उस तार का भी संबंध
रहता है जिसके द्वारा बिजली के प्रवाह की दिशा बदल
जाती है । इस प्रकार बिजली के प्रवाह की दिशा को कर्म
इधर कभी उधर फेरने की युक्ति भेजनेवाले के हाथ
में रहती है जिससे संवाद ग्रहण करनेवाले स्थान का
सुई को वह जब जिधर चाहे, बटन या कुंजी दबाकर क
सकता है । एक बार में सुई जिस कम से दाहिने या बा
होगी, उसी के अनुसार प्रक्षर का संकेत समझा जायगा
सुई के दाहिने घूमने को डाट (बिंदु) और बाएँ घूमने को
डेंडा (रेखा) कहते हैं । इन्हीं बिंदुओं और रेखाओं के योग में
मास नामक एक व्यक्ति ने अंगरेजी वर्णमाला के सब अक्षरों
के संकेत बना लिए हैं । जैसे,—

A के लिये —

B के लिये — . .

D के लिये — — इत्यादि ।

तार के संवाद ग्रहण करने की दो प्रणालियाँ हैं—एक वर्तमान
प्रणाली, दूसरी श्रवण प्रणाली । ऊपर लिखी रीति पहली

प्रणाली के अंतर्गत है। चर प्रब अधिकतर एक खटके (Sounder) का प्रयोग होता है जिसमें सुई लोहे के टुकड़ों पर मारती है जिससे भिन्न भिन्न प्रकार के खट खट शब्द होते हैं। अभ्यास हो जाने पर इन खट खट शब्दों से ही सब प्रकार समझ लिए जाते हैं।

४. तार से घाई हुई खबर। टेलिग्राफ के द्वारा भेजा हुआ समाचार।

क्रि० प्र०—घावा।

५. सुत। तागा। तंतु। सूत्र।

यो०—तार तोड़।

मुहा०—तार तार करना = किसी बुनी या बटी हुई वस्तु को धड़ियाँ अलग अलग करना। नोचकर मून सूत अलग करना। उ०—तार तार कीन्ही कारि सारी जरतारी की।—दिनेश (शब्द०)। तार तार होना = ऐसा फटना कि धड़ियाँ अलग अलग हो जायें। बहुत ही फट जाना। १. सुतड़ी (लश०)। ७. बराबर चलता हुआ क्रम। अखंड परंपरा। सिलसिला। जैसे,—दोपहर तक लोगों के घाने जाने का तार लगा रहा।

मुहा०—तार टटना = चलता हुआ क्रम बंद हो जाना। परंपरा खंडित हो जाना। लगातार होते हुए काम का बंद हो जाना। तार बंधना = किसी काम का बराबर चला चलना। किसी बात का बराबर होते जाना। सिलसिला जारी होना। जैसे,—सबेरे से जो उनके रोने का तार बंधा, वह अब तक न टूटा। तार बांधना = (किसी बात को) बराबर करते जाना। सिलसिला जारी करना। तार लगाना = दे० 'तार बांधना'। तार ब तार = छिन्न भिन्न। अस्त व्यस्त। बेसिलसिले।

७. व्योत। सुबीता। व्यवस्था। जैसे,—जहाँ चार पैसे का तार होगा वहाँ जायेंगे, यहाँ क्यों भावेंगे।

मुहा०—तार बैठना या बंधना = व्योत होना। कार्यसिद्धि का सुबीता होना। तार लगना = दे० 'तार बैठना'। तार जमना = दे० 'तार बैठना'।

८. ठीक माप। जैसे,—(क) अपने तार का एक जुता ले लेना। (ख) यह कुरता तुम्हारे तार का नहीं है। ९. कार्यसिद्धि का योग। युक्ति। ढब। जैसे,—कोई ऐसा तार लगाओ कि हम भी तुम्हारे साथ भा जायें।

यो०—तारघाट।

१०. प्रणव। प्रोकार। ११. राम की सेना का एक बंदर जो तारा का पिता या श्रीर वृहस्पति के ग्रंथ से उत्पन्न था। १२. शुद्ध मोती। १३. नक्षत्र। तारा। उ०—रवि के उदय तार भी छीना। चर बीहड़ द्वनों महुँ लीना।—कबीर बी०, पृ० १३०। १४. सांख्य के अनुसार गौण सिद्धि का एक भेद। गुरु के विभिन्नपूर्वक वेदाभ्ययन द्वारा प्राप्त सिद्धि। १५. शिब। १६. विष्णु। १७. संगीत में एक सप्तक (सात स्वरों का समूह) जिसके स्वरों का उच्चारण कंठ से सठकर कपाख के आभ्यंतर स्थानों तक होता है। इसे उच्च भी कहते हैं। १८. धातु की पुतली। १९. झठारह अक्षरों का एक

बहुवृत्त। जैसे,—तह प्रान के नाथ प्रसन्न बिलोकी। २०. तोष। उ०—तुलसी तुपहि ऐसी कहि न बुझावे कोउ पन और कुंभर बोक प्रेम की तुला धौं ताह।—तुलसी (शब्द०)। २१. नदी का तट। तीर।

विशेष—दिशावाचक शब्दों के साथ संयोग होने पर 'तीर' शब्द 'तार' बन जाता है। जैसे दक्षिणतार।

२२. मोती की शुभ्रता या स्वच्छता (की०)। २३. सुंदर या बड़ा मोती (की०)। २४. रक्षा (की०)। २५. पारगमन। पार जाना (की०)। २६. चाँदी (की०)। २७. बीज का मांड (विशेषतः कमल का)।

तार^१—संज्ञा पुं० [सं० ताल] १. ताल। मजीरा। उ०—काहू के हाथ अधोरी, काहू के बीन, काहू के मृबग, कोऊ गहे तार।—हरिदास (शब्द०)। २. करताल नामक बाजा।

तार^२—संज्ञा पुं० [सं० तल] तल। सतह। जैसे, करतार। उ०—सोकर माँगन को बलि पै करतारहू ने करतार पसारयो।—केशव (शब्द०)।

यो०—करतार = हथेली।

तार^३—संज्ञा पुं० [हि० तारु] १. कान का एक गहना। ताटक। तरोना। उ०—श्रवणन पहिरे उलटे तार।—सूर (शब्द०)।

तार^४—संज्ञा पुं० [सं० ताल, ताड] ताड़ नामक वृक्ष। उ०—कीन्हेंसि बनखंड ओ जरि मूरी। कीन्हेंसि तरिवर तार खजूरी।—जायसी (शब्द०)।

तार^५—वि० [सं०] १. जिसमें से किरनें फूटी हों। प्रकाशयुक्त। प्रकाशित। स्पष्ट। २. निर्मल। स्वच्छ। ३. उच्च। उदात्त। जैसे, स्वर (की०)। ४. प्रति ऊँचा। उ०—जिम जिम मन प्रमले कियह तार चढंती जाइ।—ढोला०, पृ० १२। ५. तेज। उ०—माह वहि पंचमि दिवस चढ़ि चलिए तुर तार।—पु० रा० २५। २५। ६. अच्छा। उत्तम। प्रिय (की०)। ७. शुद्ध। स्वच्छ (की०)।

तार^६—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तारा'। उ०—अवल ओ मारफत हासिल न पावे। दोयम तार के दिन गुमराह होवे।—दक्खिनी०, पृ० ११४।

तार^७—अव्य० [सं० तार (= तीव्र, पतला)] किंचिन्मात्र। जरा भी। उ०—भाग्य खारा खून कर तू पाण न उर तार।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ७५।

तार^८—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताल'। उ०—बाजत खट सों पटरी तारन खारन गावत संग।—नंद० प्र०, पृ० ३८८।

तारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्र। तारा। २. धातु। ३. धातु की पुतली। ४. इंद्र का भानु एक असुर। इसने जब इंद्र को बहुत सताया, तब नारायण ने नपुंसक रूप धारण करके इसका नाश किया। (गरुडपुराण)। ५. एक असुर जिसे कार्तिकेय ने मारा था। दे० 'तारकासुर'।

यो०—तारकजित्, तारकरिपु, तारकवेरी, तारकसुदन = कार्तिकेय।

६. राम का बडका मंत्र जिसे गुरु शिष्य के कान में कहता है और

जिससे मनुष्य तर जाता है। 'ध्यों रामाय नमः' का मंत्र। ७. भिन्नाक्षी। मेलक। ८. वह जो पार उतारे। ९. कर्णधार। मन्त्राह। १०. अबसागर से पार करनेवाला। तारनेवाला। उ०—युव तारक हरि पद्म भवि साध बड़ाई पाइय।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० १२७। ११. एक वर्णवृत्त जिसके अत्येक चरण में चार सगण और एक गुरु होता है (115 115 115 115 115 115)। १२. एक वर्ण का नाम, जो संश्लेष करता है—'महाबाह्य'। उ०—यह फलपुर का महाबाह्य (तारक का आचार्य) था।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ८५। १३. गुरु। उ०—प्रया जातियी लक्ष्मण गीता मुनि विहंगा तारक ससि माध।—रघु०, क०, पृ० २५५। १४. काम (की०)। १५. महादेव (की०)। १६. हठयोग में तरने का उपाय (की०)। १७. एक उपनिषद् (की०)। १८. मुद्रण में तारे का चिह्न—*।

तारकजित—संज्ञा पु० [सं०] कार्तिकेय।

तारक टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तारक + हि० टोड़ी] एक राग जिसमें ऋषभ और कोमल स्वर लगते हैं और पंचम वज्रित होता है। (संगीत रत्नाकर)।

तारक तीर्थ—संज्ञा पु० [सं०] गया तीर्थ, जहाँ पिंडदान करने से पुरस्ते तर जाते हैं।

तारक ब्रह्म—संज्ञा पु० [सं०] राम का बडकार मंत्र। रामतारक मंत्र। 'ध्यों रामाय नमः' यह मंत्र।

तार कमानी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तार + कमानी] मनुष्य के आकार का एक औजार।

विशेष—इसमें डोरी के स्थान पर लोहे का तार लगा रहता है। इससे मीने काटे जाते हैं।

तारकश—संज्ञा पु० [फ्रा० तार + कश = (खींचनेवाला)] चातु का तार खींचनेवाला।

तारकशी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तारकश + हि० ई (प्रत्य०)] तार खींचने का काम।

तारका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नक्षत्र। तारा। उ०—सुम्हारे तर हैं अमर मर, विवाकर, शक्ति, तारकागण।—अर्चना, पृ० ८। २. कमीनिका। झील की पुतली। ३. इंद्रवारुणी। ४. नारायण नामक छंद का नाम। ५. बालि की स्त्री तापा। उ०—सुधीव को तारका मिलाई बघ्यो बालि भयमंत।—सुर (छन्द०)। ६. उत्का (की०)। ७. बृहस्पति की पत्नी का नाम (की०)।

तारका^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'ताड़का'।

तारकासुर—संज्ञा पु० [सं०] तारकासुर का बड़ा लड़का।

विशेष—यह उन तीन माइयों में से एक था जो ब्रह्मा के घर से तीन पुर (त्रिपुर) बसाकर रहते थे।

विशेष—३० 'त्रिपुर'।

तारकामय—संज्ञा पु० [सं०] शिव। महादेव।

तारकायण—संज्ञा पु० [सं०] विरबामिन के एक पुत्र का नाम।

तारकारि—संज्ञा पु० [सं०] कार्तिकेय (की०)।

तारकासुर—संज्ञा पु० [सं०] एक असुर का नाम जिसका पूरा वृत्त। शिवपुराण में दिया हुआ है।

विशेष—यह असुर तार का पुत्र था। इसने जब एक हजार व तक घोर तप किया और कुछ फल न हुआ, तब इसके मस्त से एक बहुत प्रचंड तेज निकला जिससे देवता लोग व्याकु होने लगे, यही तक कि इंद्र सिंहासन पर से खिंचने लगे देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा तारक के समीप वर देने लिये उपस्थित हुए। तारकासुर ने ब्रह्मा से दो वर मांगे पहला तो यह कि 'मेरे समान संसार में कोई बलवान् न हो दूसरा यह कि 'यदि मैं मारा जाऊँ, तो उसी के हाथ से मैं शिव से उत्पन्न हो'। ये दोनों वर पाकर तारकासुर जो प्रमाय करने लगा। इसपर सब देवता मिलकर ब्रह्मा। पास गए। ब्रह्मा ने कहा—'शिव के पुत्र के प्रतिरिक्त तार को और कोई नहीं मार सकता। इस समय हिमालय प पार्वती शिव के लिये तप कर रही हैं। जाकर ऐसा उपा रचो कि शिव के साथ उनका संयोग हो जाय'। देवताओं व प्रेरणा से कामदेव ने जाकर शिव के चित्र को चंचल किया अंत में शिव के साथ पार्वती का विवाह हो गया। जब बहुत दिनों तक शिव को पार्वती से कोई पुत्र नहीं हुआ, तो देवताओं ने घबराकर अग्नि को शिव के पास भेजा। कपो के वेश में अग्नि को देख शिव ने कहा—'तुम्हीं हमारे वी को धारण करो' और वीर्य को अग्नि के ऊपर डाल दिया उसी वीर्य से कार्तिकेय उत्पन्न हुए जिन्हें देवताओं ने अपना सेनापति बनाया। घोर युद्ध के उपरान्त कार्तिकेय के बाण ने तारकासुर मारा गया।

तारकिणी^१—वि० स्त्री० [सं०] तारों से भरी। तारकापूर्ण।

तारकिणी^२—संज्ञा स्त्री० रात्रि। रात।

तारकित—वि० [सं०] तारायुक्त। तारों से भरा हुआ। जैसे, तारकित घण्ट।

तारकी—वि० [सं० तारकिन्] [स्त्री० तारकिणी] तारकित।

तारकूट—संज्ञा पु० [सं० तार (= चाँदी) + कूट (= नकली)] चाँदी और पीतल के योग से बनी एक चातु।

तारकेश्वर—संज्ञा पु० [सं०] शिव। २. एक शिवलिंग जो कलकत्ते के पास है। ३. एक रसीधर।

विशेष—पारा, बंधक, लोहा, वंग, अभ्रक, जवासा, जवाहार, गोखरु के बीज और हड़ इन सबको बराबर लेकर बिसते हैं और फिर पेटे के पानी, पंचमूल के काढ़े और गोखरु के रस की भावना देकर प्रस्तुत औषध की दो दो रस्ती की गोलिएँ बना लेते हैं। इन गोलियों को राह में मिलाकर खाते हैं। इस औषध के सेवन से बहुमूल्य रोग दूर होता है।

तारकोल—संज्ञा पु० [प्र० टार + कोल] असकतरा। कोलतार।

तारकित—संज्ञा पु० [सं०] पवित्र दिशा का एक देश जहाँ म्लेच्छों का निवास है। (बृहत्संहिता)।

तारख^१—संज्ञा पु० [सं० तारख] नरक। (हि०)।

तारखो^७—संज्ञा पुं० [सं० तारख्य] चोड़ा । (हि०) ।

तारग^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तारक'—१० । उ०—मुक्ति पंथ का पाया भारग । बाहु राम मित्या गुरु तारग ।—राम० धर्म०, पृ० २०८ ।

तारघर—संज्ञा पुं० [हि० तार + घर] वह स्थान जहाँ से तार की खबर भेजी जाय ।

तारघाट—संज्ञा पुं० [हि० तार + घाट] कार्यसिद्धि का योग । मतलब निकलने का सुवीता । व्यवस्था । आयोजन । जैसे,—वहाँ कुछ मिलने का तारघाट होगा, तभी वह गया है ।

तारघरबी—संज्ञा पुं० [देश०] मोमबीना का पेड़ ।

विशेष—यह पेड़ छोटा होता है और चीन, जापान आदि देशों में बहुत लगाया जाता है । इसके फल में तीन बीजकोश होते हैं जो एक प्रकार के चिकने पदार्थ से भरे रहते हैं जिसे चरबी कहते हैं । चीन और जापान में इसी पेड़ की चरबी से मोमबत्तियाँ बनती हैं । चरबी के प्रतिरिक्त बीजों से भी एक प्रकार का पीला तेल निकलता है जो दवा और रोगन (वारनिश) के काम में आता है ।

तारचौ^७—संज्ञा पुं० [हि० तार (= ऊँचा) + (च = पठि करनेवाला)] तारक । तारा । उ०—तारचौ सटुलं, बाई सुतलं ।—पृ० रा०, २६ । ७० ।

तारङ्ग^७—संज्ञा पुं० [सं० तार्यं] गरुड़ । उ०—गरुत्मान, तारङ्ग, गरुड़, वैवस्वत, शक्रनील ।—नंद० प्र०, पृ० १११ ।

तारट^७—संज्ञा पुं० [सं० तारक] तारा । तरेया । उ०—सित दुकूल बिम्बुत बीजकंठी नथ तारट ।—पृ० रा०, २ । ४२४ ।

तारण^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. (दूसरे को) पार करने का काम । पार उतारने की क्रिया । २. उद्धार । निस्तार । ३. उद्धार करने या तारनेवाला व्यक्ति । ४. विष्णु । ५. साठ संवत्सरों में से एक । ६. शिव (को०) । ७. नाव । नौका (को०) । ८. विजय (को०) ।

तारण^२—वि० १. उद्धार करनेवाला । पार करनेवाला । २. पार करानेवाला ।

थी०—तारण तिरण = पार उतारनेवाला । उ०—तारण तिरण जब लग कहिए ।—कबीर प्र०, पृ० १०५ ।

तारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कश्यप की एक पत्नी जो याज्ञ और उपयाज्ञ की माता कही जाती हैं । २. नौका । नाव (को०) ।

तारतंजुल—संज्ञा पुं० [सं० तारतन्जुल] सफेद ज्वार ।

तारतर्खाना^७—संज्ञा पुं० [प्र० तहारत + फ़ा० खानह] कुछ स्थान । पवित्र स्थल । वह स्थान जहाँ पर कुछ होकर नमाज आदि पढ़ने के लिये लाया जाता है । उ०—मति सोचै पतसाह भछावे । छिण सज्या छिण तारतर्खाने ।—रा० क०, पृ० ६६ ।

तारतम^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तारतम्य' । उ०—बीषा अधिक भँब को लेखा । वो तारतम से करे बिलेखा ।—कबीर रा०, पृ० ६११ ।

तारतमिक—वि० [सं० तारतम्यिक] परस्पर न्यूनाधिक्य क्रम का या कमी बेसीबासी । क्रमबद्ध ।

तारतम्य—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तारतम्यिक] १. न्यूनाधिक्य । परस्पर न्यूनाधिक्य का संबंध । एक दूसरे से कमी बेसी का हिसाब । २. उत्तरोत्तर न्यूनाधिक्य के अनुसार व्यवस्था । कमी बेसी के हिसाब से तरतीब । ३. दो या कई वस्तुओं में परस्पर न्यूनाधिक्य आदि संबंध का विचार । गुण, परिमाण आदि का परस्पर मिलान ।

तारतम्यबोध—संज्ञा पुं० [सं०] कई वस्तुओं में से एक का दूसरे से बढ़कर होने का विचार । कई वस्तुओं में से भले बुरे आदि की पहचान । सापेक्ष संबंध ज्ञान ।

तार तार^१—वि० [हि० तार] जिसकी धज्जियाँ मलग मलग हो गई हों । टुकड़ा टुकड़ा । फटा कटा । उबड़ा हुमा ।

क्रि० प्र०—करना ।

तर तार^२—संज्ञा पुं० [सं०] साक्ष्य के अनुसार एक गौण सिद्धि । पठित आगम आदि की तर्क द्वारा युक्तियुक्त परीक्षा से प्राप्त सिद्धि ।

तारतोड़—संज्ञा पुं० [हि० तार + तोड़ना] एक प्रकार का सुई का काम जो कपड़े पर होता है । कारचोबी । उ०—दिखावै कोई गोखरू मोड़ मोड़ । कहीं सूत बूटे कहीं तारतोड़ ।—मीर हुसैन (शब्द०) ।

तारदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का काटेश्वर पेड़ । तरदी वृक्ष ।

पर्या०—लबुंरा । तीप्रा । रक्तबीजका ।

तारन^१—संज्ञा पुं० [सं० तारण] दे० 'तारण' । उ०—(क) हम तुम्ह तारन तेज बन सुंदर, नीके सों निरबद्धिये ।—बाहु०, पृ० ५५१ । (ख) जग कारन, तारन भव, भंजन बरनी मार ।—तुलसी (शब्द०) ।

तारन^२—संज्ञा पुं० [हि० तर (= नीचे ?)] १. छत की ढाल । छाजन की ढाल । २. छप्पर का वह भाग जो काँड़ियों के नीचे रहता है ।

तारना^१—क्रि० स० [सं० तारण] १. पार लगाना । पार करना । २. संसार के तलेस आदि से छुड़ाना । मयबाधा दूर करना । उद्धार करना । निस्तार करना । सद्गति देना । मुक्त करना । उ०—काहू के न तारे तिन्हें गंगा तुम तारे धीर जेठे तुम तारे तेते नम में न तारे हैं ।—पद्माकर (शब्द०) । ३. पानी को घारा देना । तरेरा देना । उ०—मनहुँ बिरह के सख घाव हिए लखि तकि तकि थरि धीरज तारति ।—तुलसी (शब्द०) । ४. तैराना ।

तारना^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडना] दे० 'ताड़ना' ।

तारनी^७^१—क्रि० स० [हि०] १. ताड़ना करना । बंड देना । पीड़ित करना । २. देखना । निरीक्षण करना ।

तारपट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की तलवार (को०) ।

तारपतन—संज्ञा पुं० [सं०] उल्कापात (को०) ।

तारपीन—संज्ञा पुं० [भं० टरपेटाइन] चीड़ के पेड़ से निकाला हुआ तेल ।

विशेष—चीड़ के पेड़ में जमीन से कोई दो हाथ ऊपर एक लोखला गड़ा काटकर बना देते हैं और उसे नीचे की ओर कुछ गहरा कर देते हैं । इसी गहरे किए हुए स्थान में चीड़ का पसेव निकलकर गोंद के रूप में इकट्ठा होता है जिसे गंधा-बिरोजा कहते हैं । इस गोंद से भबके द्वारा जो तेल निकाल लिया जाता है, उसे तारपीन का तेल कहते हैं । यह औषध के काम में आता है और बंद के लिये उपकारी है ।

तारपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का पेड़ ।

तारबर्की—संज्ञा पुं० [हि० तार + भ० बर्क + फ्रा० ई० (प्रत्य०)] बिजली की शक्ति द्वारा समाचार पहुंचानेवाला तार ।

तारमासिक—संज्ञा पुं० [सं०] रूपामन्त्री नाम की उपधातु ।

तारयिता—संज्ञा पुं० [सं० तारयितृ] [स्त्री० तारयित्री] तारने-वाला । उद्धार करनेवाला ।

तारल'—वि० [सं०] १. चपल । अंचल । अस्थिर । २. लपट । बिलासी [को०] ।

तारल'—संज्ञा पुं० विट [को०] ।

तारल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल, तेल आदि के समान प्रवाहशील होने का धर्म । प्रवत्य । २. अंचलता । चपलता । ३. लपटता । कामुकता [को०] ।

तारवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेज या जोर की आवाजवाली हवा [को०] ।

तारबिमला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रूपामन्त्री नाम की उपधातु ।

तारशुद्धिकर—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा [को०] ।

तारसार—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम ।

तारस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँचा स्वर । ऊँची आवाज [को०] ।

तारहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुंदर या बड़े मोतियों का हार । उ०—डोड़ों के चल करतल पसार, भर भर मुक्ताफल फैल स्फार, बिलराली जन में तारहार । -गुजन, पृ० ६५ । २. जमकीला हार । तेजोमय हार [को०] ।

तारहेमाभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की धातु [को०] ।

तारा'—संज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्र । सितारा ।

यौ०—तारामंडल ।

मुहा०—तारे खिलना = तारों का चमकते हुए निकलना । तारों का दिखाई देना । तारे गिनना = चिंता या आसरे में बेचैनी से रात काटना । दुःख से किसी प्रकार रात बिताना । तारे छिटकना = तारों का दिखाई पड़ना । आकाश स्वच्छ होना और तारों का दिखाई पड़ना । तारा टूटना = चमकते हुए पिंड का आकाश में वेग से एक ओर से दूसरी ओर को जाते हुए या पृथ्वी पर गिरते हुए दिखाई पड़ना । उल्कापात होना । तारा डूबना = (१) किसी नक्षत्र का अस्त होना । (२) शुक्र का अस्त होना ।

विशेष—शुक्रास्त में हिंदुओं के यहाँ मंगल कार्य नहीं किए जाते ।

तारे तोड़ खाना = (१) कोई बहुत ही कठिन काम कर दिखाना ।

(२) बड़ी चालाकी का काम करना । तारे दिखाना = प्रसूता स्त्री को छठी के दिन बाहर लाकर आकाश की ओर इसलिये तकाना जिसमें जिन, भूत आदि का डर न रह जाय ।

विशेष—मुसलमान स्त्रियों में यह रीति है ।

तारे दिखाई दे जाना = कमजोरी या दुर्बलता के कारण आँखों के सामने तिरमिराहट दिखाई पड़ना । तारा सी आँखें हो जाना = सलाई, सुजन, कीचड़ आदि दूर होने के कारण आँख का स्वच्छ हो जाना । तारों की छाँह = बड़े सवेरे । तड़के, जब कि तारों का धुंधला प्रकाश रहे । जैसे,—तारों की छाँह यहाँ से चल देंगे । तारा हो जाना = (१) बहुत ऊँचे पर हो जाना । इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाना कि तारे की तरह छोटा दिखाई दे । (२) इतनी दूर हो जाना कि छोटा दिखाई पड़े । बहुत फासले पर हो जाना ।

२. आँख की पुतली । उ०—देखि लोग सब अए सुखारे । एकटक सोचव चलत न तारे ।—मानस, १।२४४ ।

मुहा०—तयनों का तारा = दे० 'आँख का तारा' । मेरे तैनों का तारा है मेरा गोविंद प्यारा है ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

३. सितारा । भाग्य । किस्मत । उ०—ग्रीष्म के भानु सो सुमान को प्रताप देखि तारे सम तारे अए मूँदि तुरकन के ।—भुषण (शब्द०) । ४. मोती । मुक्ता [को०] । ५. छह स्वरोंवाले एक राग का नाम [को०] ।

तारा^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंत्र के अनुसार वस महाविद्याओं में से एक । २. बृहस्पति की स्त्री का नाम जिसे चंद्रमा ने उसके इच्छानुसार रख लिया था ।

विशेष—बृहस्पति ने जब अपनी स्त्री को चंद्रमा से माँगा, तब चंद्रमा ने देना अस्वीकार किया । इसपर बृहस्पति अत्यंत क्रुद्ध हुए और और युद्ध आरंभ हुआ । अंत में ब्रह्मा ने उपस्थित होकर युद्ध शांत किया और तारा को लेकर बृहस्पति को दे दिया । तारा को गर्भवती देख बृहस्पति ने गर्भस्थ शिशु पर अपना अधिकार प्रकट किया । तारा ने तुरंत शिशु का प्रसव किया । देवताओं ने तारा से पूछा—'ठीक ठीक बताओ, यह किसका पुत्र है ?' तारा ने बड़ी ढेर के पीछे बताया—'यह बस्युहंतम नामक पुत्र चंद्रमा का है ।' चंद्रमा ने अपने पुत्र को ग्रहण किया और उसका नाम बुध रखा ।

३. जैनों की एक शक्ति । ४. बालि नामक बंदर की स्त्री और सुसेन की कन्या ।

विशेष—इसने बालि के मारे जाने पर उसके माई सुग्रीव के साथ रामचंद्र के आदेशानुसार विवाह कर लिया था । तारा पंचकन्याओं में मानी जाती है और प्रातःकाल उसका नाम देने का बड़ा माहात्म्य समझा जाता है । यथा—

अहल्या द्रौपदी तारा कुंती मंदोदरी तथा ।

पंच कन्या स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥

५. सिर में बाँधने का बीरा । ५. राजा हरिश्चंद्र की पत्नी का नाम । तारामती (को०) । ६. बौद्धों की एक देवी (को०) ।

तारा^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताला' । उ०—हिय मँडार नग प्राहि जो पूँजी । खोलि जीम तारा के कूँजी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३५ ।

मुहा०—तारा मारना = ताला बंद करना । उ०—ता पाछे वह ब्राह्मण ने अपने बेटा को घर में मँदि घर की तारयो मारयो । —दो सी बावन०, भा० १, पृ० २७९ ।

तारा^१—संज्ञा पुं० [सं० ताल (= सर)] तालाब ।

ताराकुमार—संज्ञा पुं० [सं० तारा + कुमार] १. तारा का पुत्र, प्रंगव । २. चंद्रमा का पुत्र बुध जो तारा के गर्भ से उत्पन्न हुआ है ।

ताराकूट—संज्ञा पुं० [सं०] कलित ज्योतिष में वर कन्या के शुभाशुभ फल को सूचित करनेवाला एक कूट जिसका विचार विवाह स्थिर करने के पहले किया जाता है ।

ताराक—संज्ञा पुं० [सं०] तारकाक्ष देख्य ।

तारागण—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रसमूह । तारों का समूह ।

ताराग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल, बुध, गुरु, शुक और शनि इन पाँच ग्रहों का समूह । (बृहत्संहिता) ।

ताराचक्र—संज्ञा पुं० [सं० तारा + चक्र] दीक्षा मंत्र के शुभाशुभ फल का निर्णायक एक तांत्रिक चक्र (को०) ।

ताराज—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. लूटपाट । लूटमार । —(लश०) । २. नाश । ज्वंस । विनाश । बरबादी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तारात्मक नक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश में क्रांतिवृत्त के उत्तर और दक्षिण ओर के तारों का समूह जिनमें अभिंबनी, भरणी आदि हैं ।

ताराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. शिव । ३. बृहस्पति । ४. बालि । ५. सुग्रीव ।

ताराधीश—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताराधिप' ।

तारानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. बृहस्पति । ३. बालि । ४. सुग्रीव ।

तारापति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तारानाथ' ।

तारापथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश ।

तारापीड—संज्ञा पुं० [सं० तारापीड] १. चंद्रमा । २. मत्स्य पुराण के अनुसार प्रयोध्या के एक राजा का नाम । ३. काश्मीर के एक प्राचीन राजा का नाम ।

ताराभ—संज्ञा पुं० [सं०] पारद । पारा ।

ताराभूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि । रात ।

ताराभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।

तारामंडल—संज्ञा पुं० [सं० तारामण्डल] १. नक्षत्रों का समूह या घेरा । उ०—नाचते ग्रह, तारामंडल, पलक में उठ गिरते प्रतिपल ।—अनामिका, पृ० १३ । २. एक प्रकार की

घातलबाजी । ३. एक प्रकार का कपड़ा (को०) । ४. एक प्रकार का शिव का मंदिर (को०) ।

तारामंडूर—संज्ञा पुं० [सं० तारामण्डूर] वैद्यक में एक विशेष प्रकार का मंडूर जो अनेक द्रव्यों के योग से बनता है ।

तारामंडल^७—संज्ञा पुं० [सं० तारा + हि० मंडल] तारा बूटी की छपाईवाला एक वस्त्र । उ०—तारामंडल पट्टिरि भलबोला । अरे सीस सब नखत भमोला ।—जायसी ग्रं०, पृ० ८० ।

तारामती—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा हरिश्चंद्र की पत्नी जिसका तारा नाम भी है (को०) ।

तारामृग—संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र ।

तारमैत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शन मात्र से होनेवाला प्रेम (को०) ।

तारायण^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश । २. वट का पेड़ (को०) ।

तारायण^७—संज्ञा पुं० [सं० तारा + गण] तारकसमूह । तारे । उ०—तू तारायण मीली सो चंद, गोवल मीहि मिलइ ज्यु गोव्यंभ ।—बी० रासो०, पृ० ११३ ।

तारारि—संज्ञा पुं० [सं०] विटमाक्षिक नाम की उपधातु ।

ताराजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारों की श्रेणी । तारकपंक्ति । उ०—तृण, तरु से तारालि सत्य है एक असंखित ।—ग्राम्या, पृ० ७० ।

तारावर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] उत्क्रापात (को०) ।

तारावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दुर्गा (को०) ।

तारावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारकपंक्ति । तारों का समूह (को०) ।

तारि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताली' । उ०—गाल नाचै तारि दै दै देत बहुत बनाय ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१० ।

तारिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी आदि पार उतारने का भाड़ा या महसूल । उतराई । २. नदी से माल को पार करवाने और कर वसूल करनेवाला कर्मचारी । उ०—घाट पर तारिक नामक कर्मचारी नियुक्त किया जाता था जो माल को पार उतारने में सहायता करता तथा उचित टैक्स वसूल करता था ।—पू० म० भा०, पृ० १३० । ३. मत्स्य (को०) ।

तारिक^७—वि० [प्र०] १. तक करनेवाला । त्यागी । त्याग करनेवाला । छोड़नेवाला । उ०—ग्रहंकारी । धमंडी (को०) । यौ०—तारिके दुनिया = संसार से विरक्त । तारिके खज्जात = सांसारिक आनंद का त्याग करनेवाला । निस्पृह ।

तारिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताड़ी नामक मद्य ।

तारिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तारका] १. दे० 'तारका' । उ०—तारिका दुरानी, तमचुर बोले, अवन भनक परी ललिता के लाम की ।—सूर (शब्द०) । २. सिनेमा में काम करनेवाली अभिनेत्री । अभिनेत्री । ३. तारीख ।

तारिका^७—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडका] दे० 'ताड़का' । उ०—तखनि नाम तारिका ग्यान हरि परसी राम ।—पू० रा०, २।२६७ ।

तारिणी^१—वि० स्त्री० [सं०] १. तारनेवाली । उदाहर करनेवाली । २. ४८ हाथ लंबी, ५ हाथ चौड़ी और ४५ हाथ ऊँची नाव । तारिणी^२—संज्ञा स्त्री० तारा देवी । वि० दे० 'तारा' ।

सारिख—वि० [सं०] १. तारा हुआ। पार किया हुआ। २. जिसका उद्धार हुआ हो [को०]।

तारी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की बिड़िया। २. बिड़िया। ३. समाधि। ध्यान। उ०—(क) बिकल अनेक तारी तुम ही क्यों लगी रहै।—चमनन्द, पृ० २००। (ख) सुनि समाधि लागि गइ तारी।—जायसी ग्रं०, पृ० १००।

तारी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तारी'। उ०—बूटकी तारी थाप दे गऊ जिहाई वेग।—कबीर मं०, पृ० ११४।

तारी^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तारी'।

तारी—वि० [सं० तारिन्] १. उद्धार के योग्य बनानेवाला। २. उद्धार करनेवाला। उद्धारक [को०]।

तारीक—वि० [फ़ा०] १. स्याह। कासा। २. पुँवला। धँवरा। उ०—बस के तारीक अपनी छाँवों में अमाना हो गया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४६।

तारीकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. स्याही। २. धँवकार। उ०—इस्लाम के साफताब के आगे कुफ की तारीकी कभी ठहर सकती है?—भारतेंदु, भा० १, पृ० ५२६।

तारीख—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. महीने का हर एक दिन (२४ घंटों का)। तिथि।

मुहा०—तारीख टालना = तिथि बार आदि निजाना।

२. वह तिथि जिसमें पूर्व काल के किसी वर्ष में कोई विशेष घटना हुई हो, विशेषतः ऐसी जिसका उत्सव या शोक मनाया जाता हो अथवा जिसके लिये कुछ रीति ध्वजद्वारा प्रति वर्ष करना पड़ता हो। ३. नियत तिथि। किसी काम के लिये ठहराया हुआ दिन। जैसे,—कल मुकदमे की तारीख दे।

मुहा०—तारीख टालना = तारीख मुकर्रर करना। दिन नियत करना। तारीख टलना = किसी काम के लिये पहले से नियत दिन के और आगे कोई दिन नियत होना। जैसे,—उनके मुकदमे की तारीख टल गई। तारीख पड़ना = किसी काम के लिये दिन मुकर्रर होना। तिथि नियत होना।

४. इतिहास उ०—मैंने सुना है कि तारीख अकबरी में कबीर साहब और नानक साहब के विषय में अनेक बातें लिखी हैं।—कबीर मं०, पृ० ५२४।

तारीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तारीफ] १. लक्षण। परिभाषा। २. बयान। विवरण। ३. बलान। प्रशंसा। बखाबा।

कि० प्र०—करना।—होना।

४. प्रशंसा की बात। विशेषता। गुण। सिकत। जैसे,—यही तो इस वक्त में तारीफ है कि जरा भी नहीं खगती।

मुहा०—तारीफ के पुल बाँधना = बहुत अधिक प्रशंसा करना। अतिरंजित प्रशंसा करना। उ०—मुबारक कदम ने तो तारीफ के पुल ही बाँध दिए।—फिसाना०, भा० १, पृ० ३५।

तारी^४—संज्ञा स्त्री० [हि० तारी] दे० 'तारी'। उ०—बसई दुबार तारु का लेला। उसटि विस्टि जो लाव सो देला।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० २६५।

तारु^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तारु'।

तारु^२—वि० [सं०] युवा। जवान [को०]।

तारुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] यौवन। जवानी। उ०—असकता आता अभी तारुण्य है। या गुराई से मिला आरुण्य है।—साकेत, पृ० ११।

तारुण्य^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तारुणी'। उ०—तारुण्य यौव तारुण्य त्रिविध सविष यौव उन्मिय सरस। प्रतिविम्ब मुख राका दरस मुहु माधत बहुमान अस।—पृ० रा०, १।६७१।

तारु^४—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तारु'।

तारुणी^५—वि० [हि० तारना] तारनेवाला। उद्धार करनेवाला। उ०—तारुणी तट देखिहों, तारुणी अस्थाना।—दादू, पृ० १६२।

तारेख—संज्ञा पुं० [सं०] १. तारा या बालि का पुत्र अंगद। २. बृहस्पति की स्त्री तारा का पुत्र बुध। ३. मंगल ग्रह [को०]।

तार्क्य—वि० [सं०] बुना हुआ [को०]।

तार्किक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तर्कशास्त्र का जाननेवाला। २. तत्त्ववेत्ता। दार्शनिक।

तार्क्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] कथयप।

तार्क्य^२—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्य] कथय के पुत्र गरुड़।

तार्क्यज—संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन।

तार्क्य^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] पातालमण्डप की अता। छिरेंटी। छिरिहटा।

तार्क्य^४—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृप्त मुनि के गोत्रज। २. गरुड़। ३. गरुड़ के बड़े भाई अरुण। ४. चोड़ा। ५. रसांजन। ६. सर्प। ७. अश्वकर्ण वृक्ष। एक प्रकार का शालवृक्ष। ८. एक पर्वत का नाम। ९. महादेव। १०. सोना। स्वर्ण। ११. रथ। १२. पत्नी [को०]।

तार्क्यज—संज्ञा पुं० [सं०] रसोत। रसांजन।

तार्क्यध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

तार्क्यनायक—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ [को०]।

तार्क्यनाशक—संज्ञा पुं० [सं०] बाज पक्षी [को०]।

तार्क्यपुत्र, तार्क्यसुत—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ [को०]।

तार्क्यप्रसन्न—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वकर्ण वृक्ष।

तार्क्यशैल—संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन। रसोत।

तार्क्यसाम—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्यसामन्] सामवेद [को०]।

तार्क्य^५—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बबलता का नाम।

तार्क्य^६—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तार्क्य] तृण से निर्मित [को०]।

तार्क्य^७—संज्ञा पुं० १. घास का कर। २. अग्नि [को०]।

तार्क्यस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन जिसका रंग सुधापंखी होता है और गंध लहसुनी होता है [को०]।

तार्क्य^८—वि० [सं०] १. तृतीय। तीसरा। २. तृतीय संबंध रखनेवाला [को०]।

तार्क्य^९—संज्ञा पुं० तृतीय अंश या भाग [को०]।

तार्क्यीक—वि० [सं०] तृतीय [को०]।

साध्य—संज्ञा पु० [सं०] तृप्ता नामक लता से बनाया हुआ वस्त्र जिसका व्यवहार वैदिक काल में होता था ।

साध्य—वि० [सं०] १. तारने योग्य । उद्धार करने योग्य । २. पार करने योग्य । ३. जीतने योग्य [को०] ।

साध्य—संज्ञा पु० नाव आदि का बाड़ा [को०] ।

तालक—संज्ञा पु० [सं० तालक] दे० 'तडक' [को०] ।

ताल—संज्ञा पु० [सं०] १. हाथ का ताल । करतल । हथेली । २. वह शब्द जो दोनों हथेलियों को एक दूसरी पर मारने से उत्पन्न होता है । करतलध्वनि । ताली । उ०—हलुक, छटुछट, प्रतिगीत, बाद्य, ताल, नृत्य, होइये मध्व ।—वर्ण-रत्नाकर, पृ० २ । ३. नाचने या गाने में उसके काल और क्रिया का परिमाण, जिसे बीच बीच में हाथ पर हाथ मारकर सूचित करते जाते हैं । उ०—मणिगुहारी सीख दी दोल विणहि ताल ।—ढोला०, पृ० २०६ ।

विशेष—संगीत के संस्कृत ग्रंथों में ताल दो प्रकार के माने गए हैं—मार्ग और देशी । भरत मुनि के मत से मार्ग ६० हैं—चञ्चलपुट, चाचपुट, चटपितापुनक, चटपटुक, संनिपात, कंकण, कोकिलारव, राजकोलाहल, रंगविद्याधर, शचीप्रिय, पार्वतीलोचन, राजचूड़ामणि, जयश्री, वादकाकुल, कदपं, नलकुबेर, दर्पण, रतिबीन, मोक्षपति, श्रीरंग, सिंहविक्रम, दीपक, मल्लिकामोद, गजलील, चंचरी, कुहक, विजयानंद, वीरविक्रम, टंगिक, रंगारण्य, श्रीकीर्ति, वज्रमासी, चतुर्मुख, सिद्धनंदन, नदीन, चंद्रबिंब, द्वितीयक, जयमंगल, गधवं, मकरंद, त्रिभंगी, रतिताल, वसंत, जगभूष, गारुडि, कविशेखर, शेष, हरवल्लभ, भैरव, गतप्रत्यागत, मल्लताली, भैरव-मस्तक, सरस्वतीकंठाभरण, कीड़ा, निःसार, मुक्तावली, रंग-राज, भरतानंद, आदितालक, संपर्कष्टक । इसी प्रकार १२० देशी ताल गिनाए गए हैं । इन तालों के नामों में विभिन्न ग्रंथों में बिभिन्नता देखी जाती है । इन नामों में से आजकल बहुत प्रचलित हैं । संगीत में ताल देने के लिये तबले, मृदंग, ढोल और मंजीरे आदि का व्यवहार किया जाता है ।

क्रि० प्र०—देना ।—बजाना ।

यौ०—तालमेल ।

मुहा०—ताल बेताल = (१) जिसका ताल ठिकाने से न हो ।

(२) प्रवसर या बिना प्रवसर के । मौके । बेमौके । ताल से बेताल होना = ताल के नियम से बाहर हो जाना । छलक जाना । (गाने बजाने में) ।

४. अपने जंघे या बाहु पर जोर से हथेली मारकर उत्पन्न किया हुआ शब्द । कुश्ती आदि लड़ने के लिये जब किसी को ललकारते हैं, तब इस प्रकार हाथ मारते हैं ।

मुहा०—ताल ठीकना = लड़ने के लिये ललकारना ।

५. मंजीरा या झंझ नाम का बाजा । उ०—ताल भेरि मृदंग बाजत सिंधु गरजन जान ।—चरण० बानी, पृ० १२२ । ६. चरमे के पत्थर या काँच का एक पत्ता । ७. हरताल । ८.

४-५२

तालील पत्र । ९. ताड़ का पेड़ या फल । १०. बेल । बिल्वफल (अनेकार्थ०) ११. हाथियों के कान फटफटाने का शब्द । १२. लंबाई की एक माप । बिरता । १३. ताला । १४. तलवार की मूठ । १५. एक नरक । १६. महादेव । १७. दुर्गा के सिंहासन का नाम । १८. पिंगल में ढगण के दूसरे मेरु का नाम जो एक गुरु और एक लघु का होता है—५ । १९. ताड़ की ध्वजा (को०) । २०. ऊँचाई का एक परिमाण (को०) । २१. एक नृत्य (को०) ।

ताल—संज्ञा पु० [सं० ताल] वह नीची भूमि या संवा चौड़ा गड्ढा जिसमें बरसात का पानी जमा रहता है । जलाशय । पोखरा । तालाब । उ०—कीन ताल और कीन झारा । कहें होइ हंसा करे बिहारा । कबीर मं०, पृ० ५५५ ।

ताल—संज्ञा पु० [हि० तार] उपाय । दवा । उ०—वास बिकल निबला बसे सबल न छागे ताल ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ६६ ।

ताल—संज्ञा पु० [सं० ताल] क्षण । समय । उ०—ठाढी गुणी बोबाविया, राजा तिणही ताल ।—ढोला०, पृ० १०५ ।

ताल—वि० बी० [सं० उत्ताल] ऊँची । उ०—व्याकुल थीं निस्सीम सिंधु की ताल तरंगें ।—अनामिका, पृ० ५६ ।

तालकंद—संज्ञा पु० [सं० तालकन्द] ताल मूली । मूबली ।

तालक—संज्ञा पु० [सं० तालक] दे० 'तल्लुक' । उ०—हों तो एक बालक न मोहि कछु तालक पे देखो तात तुमहें को कैसी लघुताई है ।—हुनुमान (शब्द०) ।

तालक—संज्ञा पु० [सं०] १. हरताल । २. ताला । ३. गोपीचंदन । ४. ताड़ का पेड़ या फल (को०) । ५. धरहर (को०) ।

तालक—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तलक' । उ०—त्रिकुटी संधि नासिका तालक, सुमनि जाय समाई ।—प्राण०, पृ० ९४ ।

तालकट—संज्ञा पु० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार दक्षिण का एक देश जो कदाचित् बीजापुर के पास का तालीकोट हो ।

तालकाभ—संज्ञा पु० [सं०] हरा रंग (को०) ।

तालकाभ—वि० हरा (को०) ।

तालकी—संज्ञा बी० [सं०] ताड़ी । तालरस ।

तालकूटा—संज्ञा पु० [हि० ताल + कूटना] झंझ बजाकर अजन आदि गानेवाला ।

तालकेतु—संज्ञा पु० [सं०] १. वह जिसकी पताका पर ताड़ के पेड़ का चिह्न हो । २. भोध्य । ३. बलराम ।

तालकेश्वर—संज्ञा पु० [सं०] एक शोध जो कुष्ठ, फोड़ा, फुंसी आदि में दी जाती है ।

विशेष—दो मांशे हरताल में पेटे के रस, धीकुमार के रस और तिल के तेल की भावना देते हैं । फिर दो मांशे गंधक और एक मांशे पारे को मिलाकर कज्जली करते और उसमें भावना दी हुई हरताल मिलाकर फिर सब में क्रम से बकरी के दूध, नींबू के रस और धीकुमार के रस की तीन बिन भावना देते हैं । अंत में सब का गोल कतरा बनाकर उसे हाड़ी में धार

के भीतर रख बाग्रह पहर तक पकाते हैं और फिर ठंडा होने पर उतार लेते हैं।

तालकोशा—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम।

तालक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. खजूर या ताड़ की चीनी। २. तालरस। ताड़ी (को०)।

तालक्षीरक—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'तालक्षीर' (को०)।

तालखजूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताल + हि० खजूर] केतकी। उ०—तालखजूरी, तुलसी, केतकि पकरति पाइ। नंद० ग्रं०, पृ० १०५।

तालगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ी (को०)।

तालघर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम। २. उक्त देश का निवासी। ३. उक्त देश का राजा (को०)।

तालजंघ—संज्ञा पुं० [सं० तालजंघ] १. एक देश का नाम। २. उस देश का निवासी। ३. एक मधुपणी राजा जिसके पुत्रों ने राजा सगर के पिता असित को राजपुत्र किया था। ४. एक प्रकार का ग्रह (को०)। ५. महाभारत का एक पात्र या नायक (को०)।

तालजटा—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ की जटा (को०)।

तालज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] सगीत की तालों का जानकार (को०)।

तालधारक—संज्ञा पुं० [सं०] नर्तक (को०)।

तालध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसकी ध्वजा पर ताड़ के पेड़ का चिह्न हो। २. भीष्म। ३. बलराम। ४. एक पर्वत का नाम।

तालनवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र शुक्ला नवमी।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ वन रवती और तालपत्र आदि से गोरी का पूजन करती हैं।

तालपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ का पत्ता।

विशेष—प्राचीन समय में, जब कागज का आविष्कार नहीं हुआ था, ताड़ के पत्ते पर ही लिखा जाता था।

२. एक प्रकार का कान का गहना। ताटन (को०)।

तालपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूली। मुसली।

तालपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूसारणी। मूपवर्णी। मूसकानी। २. विषवा (को०)।

तालपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] बपूकचरी।

तालपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीफ। २. बपूकचरी। ३. तालमूली। मुसली। ४. सोभा। सोभा नाम का साग।

तालपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] पुडरिया। प्रौढरीक।

तालप्रलंब—संज्ञा पुं० [सं० तालप्रलंब] ताड़ की जटा (को०)।

तालबंद—संज्ञा पुं० [सं० ताल, तालिका + बंध] वह लेखा जिसमें धामदानी की हर एक मद दिखाई गई हो।

तालबद्ध—वि० [सं०] तालयुक्त (को०)।

तालवृंत—संज्ञा पुं० [सं० ताल + वृत्त (= वंछल)] ताड़। उ०—तालवृंत फल काय के दैत हृयो नंदलाल।—धनेकाथं०, पृ० १३३।

तालवेन—संज्ञा स्त्री० [सं० तालवेणु] एक प्रकार का बाजा।

तालवैताल—संज्ञा पुं० [सं० ताल + वैताल] दो देवता या यक्ष।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने इन्हें सिद्ध किया था और वे बराबर उनकी सेवा में रहते थे।

तालभंग—संज्ञा पुं० [सं० ताल + भङ्ग] गाने और बजाने में ताल स्वर की विषमता।

तालमखाना—संज्ञा पुं० [हि० ताल + मखान] १. एक पोधा जो गीली या सीढ़ी जमीन में होता है; विशेषतः पानी या दलदलों के निकट।

विशेष—इसकी पंक्तियाँ ५ या ६ अंगुल लंबी और अंगुल सवा अंगुल चौड़ी होती हैं। इसकी जड़ से चारों ओर बहुत सी टहनियाँ निकलती हैं जिनमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गूमे के पीछे की गाँठों के ऐसी गाँठें होंगी हैं। इन गाँठों पर काँटे होते हैं। इन्हीं गाँठों पर फूल या बीजों के कोशों के अंकुर होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर गाँठ के कोशों में जीरे के ऐसे बीज पड़ते हैं, जो दवा के काम में आते हैं। वैद्यक में ये बीज मधुर, शीतल, बलकारक, वीर्यवर्द्धक तथा पथरी, वातरक्त, प्रमेह आदि को दूर करनेवाले माने जाते हैं। वात और गठिया में भी तालमखाने के बीज उपकारी होते हैं। डाक्टरों ने भी परीक्षा करके इन्हें मूत्रकारक, बलकारक और जननेंद्रिय संबंधी रोगों के लिये उपकारक बताया है। तालमखाने का पोधा दो प्रकार का होता है—एक लाल फूल का, दूसरा सफेद फूल का। सफेद फूल का अधिक मिलता है। कहीं कहीं इसकी पंक्तियों का गान भी खाया जाता है।

पर्याय—कोकिलाक्ष। वाक्केधु। क्षुर। क्षुरक। मिक्षु। कांडेवु। इधुगंधा। शृगाली। शृखलि। शूरक। शृगालपंटी। बज्रास्थि। शृङ्गना। वनकंटक। वज्र। त्रिधुर। शुक्लपुष्प (सफेद तालमखाना)। छत्रक और अतिच्छत्र (तालमखाना)। २. दे० 'गखाना'।

तालमदल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा (को०)।

तालमूल—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी की ढाल।

तालमूलिका—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'तालमूली'।

तालमूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुसली।

तालमेल—संज्ञा पुं० [हि० ताल + मेल] १. ताल सुर का मिलान। २. मिलान। मेलजोल। उपयुक्त योजना। ठीक ठीक संयोग।

मुहा०—तालमेल खाना = ठीक ठीक संयोग होना। प्रकृति आदि का मेल होना। बिधि मिलना। मेल पटना। तालमेल बैठना = दे० 'तालमेल खाना'।

३. उपयुक्त व्यवहार। अनुकूल संयोग। जैसे,—तालमेल देखकर काम करना चाहिए।

तालयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तालयन्त्र] १. चीर फाड़ करने का एक प्राचीन योजन। २. ताला। ३. ताला और चाबी (को०)।

तालरंग—संज्ञा पुं० [सं० तालरङ्ग] एक प्रकार का बाजा जिससे ताल दिया जाता है।

शालिस—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ के पेड़ का मध्य। ताड़ी। उ०—ताल-
रस बलराम चाख्यो मन भयो आनंद। गोपसुत सब देखि
लीन्हें सुधि आई नंदनंद।—सूर (शब्द०)।

शालिचनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नर्तक। २. अभिनेता (को०)।

शालिध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] तालध्वजी, बलराम।

शालिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ के पेड़ों का जंगल। २. वृज
संघ के अंतर्गत एक वन जो गोवर्धन के उत्तर जमुना के
किनारे पर है। कहते हैं, यहीं पर बलराम ने धेनुकवध
किया था। उ०—सखा कहन लागे हरि सों तब। चखी
तालवन की जैसे प्रब।—सूर (शब्द०)।

शालिवाही—संज्ञा पुं० [सं०] वह बाजा जिससे ताल दिया जाय।
जैसे, मंजीरा, भाँक आदि।

शालवृंत—संज्ञा पुं० [सं० तालवृंत] १. ताड़ के पत्ते का पंखा। उ०—
ठहर प्ररी, इस हृदय में लगी बिरह की आग। तालवृंत से
घोर भी धक्क उठेगी जाग।—साकेत, पृ० २६६। २. एक
प्रकार का सोम।—(सुश्रुत)।

शालवृत्तक—संज्ञा पुं० [सं० तालवृत्तक] दे० 'तालवृत्त' (को०)।

शालव्य—वि० [सं०] १. तालु संबंधी। २. तालु से उच्चारण किया
जानेवाला वर्ण।

विशेष—इ, ई, अ, ए, ऊ, ओ, य, रा—ये वर्ण तालव्य
कहलाते हैं।

शालसंपुटक—संज्ञा पुं० [सं० ताल + सम्पुटक] ताड़ के पत्ते की बनी
हुई भाँपी जो फल आदि रखने के काम आती है। उ०—
हे तात, तालसंपुटक तनिक ले लेना। बहनों को वन उपहार
मुझे देना।—साकेत, पृ० २४६।

शालसाँस—संज्ञा पुं० [सं० ताल + साँस (= गूदा)] ताड़ के फल के
भीतर का गूदा जो खाने के काम आता है।

शालस्कन्ध—संज्ञा पुं० [सं० तालस्कन्ध] एक अस्त्र जिसका नाम
वाल्मीकि रामायण में आया है।

शालक—संज्ञा पुं० [सं० तालाङ्क] १. वह जिसका चिह्न ताड़ हो।
२. बलराम। ३. एक प्रकार का साग। ४. घारा। ५. शुष्क-
लक्षणवान् मनुष्य। ६. पुस्तक। ७. महादेव। ८. ताड़पत्र जो
लिखने के काम आता था (को०)।

शालाङ्कुर—संज्ञा पुं० [सं० तालाङ्कुर] मैनसिल।

शाला—संज्ञा पुं० [सं० तालक] लोहे, पीतल आदि की वह कल जिसे
बंद किवाड़, संदूक आदि की कुंडी में फँसा देने से किवाड़
या संदूक बिना कुंडी के नहीं खुल सकता। कपाट अवरोध
रखने का यंत्र। जंघरा। कुल्फ।

क्रि० प्र०—खुलना।—खोलना।—बंद होना।—करना।
—लगना।—लगाना।

शाली—ताला कुंडी।

मुहा०—ताला धक्कना = ताला लगाकर बंद करना। ताला
तोड़ना = किसी दूसरे की वस्तु को चुराने या छूटने के लिये
उसके घर, संदूक आदि में खगे हुए ताले को तोड़ना। ताला
भिड़ना। ताला बंद होना। ताला भेड़ना = ताला लगाना।

ताला^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ताल। उ०—बिनहीं ताला ताल
बजावे।—कबीर ग्रं०, पृ० १४०।

ताला^(२)—संज्ञा पुं० [अ० ताले] भाग्य। उ०—मेरे ताले केरा आया
सो एक बार। यकायक भाँककर देखे मुँज नार।—दक्खिनी०
पृ० २८२।

ताला^(३)—संज्ञा पुं० [देश०] उरस्त्राण। छाती का कवच। उ०—तोरत
रिपु ताले आले आले अधिर पनाले चालत हैं।—पद्माकर
ग्रं०, पृ० २७।

ताला^(४)—संज्ञा स्त्री० [?] देरी। उ०—चाहे दुरग तक तबि
ताला।—रा० क०, पृ० ३४४।

तालाकुंजी—संज्ञा स्त्री० [हि० ताला + कुंजी] १. किवाड़, संदूक,
आदि बंद करने का यंत्र।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. लड़कों का एक खेल।

तालाखुया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूरकचरी।

तालापचर—संज्ञा पुं० [म०] दे० 'तालावचर' (को०)।

तालाव—संज्ञा पुं० [हि० ताल + फा० आब, अथवा सं० तडाग, प्रा०
तलाघ, तलाब, हि० तालाब] जलाशय। सरोवर। पोखरा।

तालाबेलि^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] व्याकुलता। तड़पन। पीड़ा।
उ०—तालाबेलि होत घट भीतर, जैसे जल बिन मील।—
कबीर श०, भा० २ पृ० ६२।

तालाबेलिया—संज्ञा पुं० [हि० तालाबेलि] तड़पने या छटपटानेवाला
व्यक्ति। बिरही पुरुष। उ०—जा बट तालाबेलिया, ताको
लावो सोधि।—कबीर सा० सं०, पृ० ४०।

तालाबेली^(२)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तालाबेलि'। उ०—दादू
साहब कारण, तालाबेली मोहि।—दादू०, पृ० ३७८।

तालावचर—संज्ञा पुं० [म०] १. नर्तक। २. अभिनेता (को०)।

तालिक—संज्ञा पुं० [म०] १. फँसी हुई हथेली। २. चपत। तमाचा।
३. नत्थी या तागा जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र
या कागज बंधे हों। ४. तालपत्र या कागज का पुलिदा।
५. ताली। करतल की ध्वनि (को०)।

तालिका—संज्ञा स्त्री० [म०] १. ताली। कुंजी। २. नत्थी या तागा
जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र या कागज भलग भलग
बंधे हों। तालपत्र या कागज का पुलिदा। ३. नीचे ऊपर
लिखी हुई वस्तुओं का क्रम। नीचे ऊपर लिखे हुए नाम जिनमें
भलग भलग चीजें गिनाई गई हों। सूची। कैहरिस्त। ४.
चपत। तमाचा। ५. ताल मूली। मुसली। ६. मजीठ।

तालित—संज्ञा पुं० [सं०] १. रंगीन कपड़ा। २. बाद्य। बाजा। ३.
रस्सी। डोरी (को०)।

तालिब^(१)—संज्ञा पुं० [अ०] १. हड़नेवाला। तलाश करनेवाला।
चाहनेवाला। २. शिष्य। चेला। उ०—तालिब मतलूब को
पहुँचै तोफ करे दिल प्रवर।—कबीर सा०, पृ० ८८८।

तालिबइल्म—संज्ञा पुं० [अ०] विद्यार्थी।

तालिबा^(२)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तालिब'। उ०—कबीर

तामिना तेरा । किया दिन बीच में डेरा ।—कबीर श०,
भा० १, पृ० १४ ।

साक्षि^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्त्व] जगत् । विस्तार । (हि०) ।

साक्षिवागार—संज्ञा पुं० [हि० ताली+मारना] जहाज या नाव का
अगला भाग जो पानी काटता है । गलही ।—(जल०) ।

साक्षिश—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ [को०] ।

ताली^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लोहे की वह कील जिससे ताला
खोला और बंद किया जाता है । कुंजी । चाबी । उ०—तरक
ताली खुलै ताला ।—घट०, पृ० ३७० । २. ताली । ताल का
मध्य । ३. तालमूली । मुमली । ४. भूमावला । भूम्यामलकी ।
५. अरहर । ६. तालवल्ली लता । ७. एक प्रकार का छोटा
ताड़ जो बंगाल और बरमा में होता है । बजरबट्ट । बट्ट ।
उ०—ताली तृन्तुम केतकी खजूरी यह प्राहि ।—अनेकार्थ०,
पृ० २२ । ८. एक वस्तु । ९. मेहराब के बीचोबीच का
परवर या इंद्र । १०. दोनों फैली हुई हथेलियों को एक दूसरी
पर मारने की क्रिया । करतलों का परस्पर आघात । पपेड़ी ।
उ०—रानी नीलदेवी ताली बजाती है । तंबू फाड़कर शस्त्र
खींचे हुए कुमार सोमदेव राजपूतों के साथ आते हैं ।—भारतेंदु
प्र०, भा० १, पृ० ५४६ ।

क्रि० प्र०—पीटना ।—बजाना ।

मुहा०—ताली पीटना या बजाना = हँसी उड़ाना । उपहास
करना । ताली बज जाना = उपहास होना । निरादर होना ।
एक हाथ से ताली नहीं बजती = बैर या प्रीति एक ओर से
नहीं होती । दोनों के करने से सड़ाई भगड़ा या प्रेम का
व्यवहार होता है ।

११. दोनों हथेलियों को फैलाकर एक दूसरे पर मारने से उत्पन्न
शब्द । करतलध्वनि । १२. नृत्य का एक भेद ।

विशेष—मृदंगी बंझका ताली कहली श्रुत धुंधरी । नृत्य गीत
प्रबंध च अष्टांगो नृत्य उच्यते ।—पृ० २१०, २५ । १२ ।

ताली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ताल (= जलाशय)] छोटा ताल । तलेया ।
गड़ही । उ०—फरइ कि कोदय बालि सुसाली । मुकता प्रसन
कि संबुक ताली ।—तुलसी (शब्द०) ।

ताली^३—संज्ञा स्त्री० [द्यौ०] पैर की बिचली उंगली का पोर या
ऊपरी भाग ।

ताली^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] समाधि तारी । उ०—(क) सूखे सुधि
बुधि जान ध्यान सो लागी ताली ।—ब्रज० प्र०, पृ० १५ ।
(ख) जुग पानि नाभि ताली लगाय । रमि त्रिष्टि द्रष्टि गिरि
बंस राय ।—पृ० २१०, १ । ४८६ ।

ताली^५—संज्ञा पुं० [सं० तालिन्] सिध [को०] ।

तालीका—संज्ञा पुं० [सं० तालिका] १. माल असबाब की जम्दी ।
मकान की कुर्की । २. कुक किए हुए असबाब की फिहरिस्त ।
१. परिशिष्ट [को०] ।

तालीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तालीपत्र ।

तालीम—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिक्षा । अभ्यासार्थ उपदेश । बीछे,—
उसकी तालीम अच्छी नहीं हुई है ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—लेना । .

तालीशपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तमाल या तेजपत्ते की जाति का
एक पेड़ ।

विशेष—यह हिमालय पर सिंध से सतलज तक बोड़ा बहुत और
उससे पूर्व सिक्किम तक बहुत अधिक होता है । घासाम में
खसिया की पहाड़ियों से लेकर बरमा तक इसके पेड़ पाए
जाते हैं । इसके पत्ते एक लंबे ढंठल के दोनों ओर लगते हैं
और तेजपत्ते से लंबे होते हैं । ढंठल में खजूर की तरह चीकोर
बाने से होते हैं । इसकी लकड़ी बहुत खरी होती है । पत्ते
बाजारों में तालीशपत्र के नाम से बिकते हैं और दवा के काम
में आते हैं । वैद्यक में तालीशपत्र मधुर, गरम, कफवातनाशक
तथा गुल्म, क्षय रोग और साँसी को दूर करनेवाला माना
जाता है ।

पर्या०—घात्रीपत्र । शुकीदर । घंघिकापत्र । तुलसीछद ।
अकंबंध । पत्राख्य । करिपत्र । करिच्छद । नील । नीलांबर ।
तालीपत्र । तमाह्वय ।

२. बो डारि हाथ ऊँचा एक पोषा जो उत्तरी भारत, बंगाल तथा
समुद्र के किनारे के देशों में होता है ।

विशेष—यह भूमावला की जाति का है । इसकी सूखी पत्तियाँ
और दवा के काम में आती हैं । इसे पनिया घामला भी कहते
हैं । इसका पोषा भूमावले से बड़ा और चिलचिल से मिलता
जुलता होता है ।

तालीशपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालीशपत्र ।

तालु—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तालव्य] ताल ।

तालुकंटक—संज्ञा पुं० [सं० तालुकण्टक] एक रोग जो बच्चों के तालु
में होता है ।

विशेष—इसमें तालु में काँटे से पड़ जाते हैं और तालु घँस
जाता है । इसके कारण बच्चा स्तन बढ़ी कठिनाई से पीता
है । जब यह रोग होता है, तब बच्चे को पतले दस्त भी
आते हैं ।

तालुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताल । २. ताल का एक रोग [को०] ।

तालुका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालु की नाड़ी ।

तालुका^२—संज्ञा पुं० [सं० तमल्लुकह्] दे० 'तमल्लुका' ।

तालुज—वि० [सं०] तालु से उत्पन्न [को०] ।

तालुजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ियाल ।

तालुपाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें गरमी से तालु पक
जाता है और उसमें घाव सा हो जाता है ।

तालुपुष्पुट—संज्ञा पुं० [सं०] तालुपाक रोग ।

तालुशोष—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें तालु सूख जाता है
और उसमें फटकर घाव से हो जाते हैं ।

तालू—संज्ञा पुं० [सं० तालु] १. मुँह के भीतर की ऊपरी छत
जो ऊपरवाले दाँतों की पंक्ति से लेकर छोटी बीम या कीले
तक होती है ।

विशेष—इसका ठीका कुछ दूर तक तो कड़ी हड्डियों का होता है उसके पीछे फिर मुलायम मांस की तहों के कारण कोमल होता है, जो नाक के पीछेवाले कोण धीरे मुखविवर के बीच एक परदा सा जान पड़ता है।

मुहा०—तालू उठाना = दुरंत के जनमें हुए बच्चे के तालू को दबाकर ठीक करना। (बाइयाँ या चमारिमें यह काम करती हैं)। तालू में दाँत जमना = अष्ट आना। बुरे दिन आना।

विशेष—प्रायः क्रोध में दूसरे के प्रति लोग इस वाक्य का व्यवहार करते हैं। बच्चों को तालू में काँटा या धंक्रु सा निकल आता है जिसे तालू में दाँत निकलना कहते हैं। इसमें बच्चों को बड़ा कष्ट होता है।

तालू लटकना = रोग के कारण तालू का नीचे लटक आना। तालू से जीभ न लगाना = चुपचाप न रहना जाना। बके जाना।

२. खोपड़ी के नीचे का भाग। दिमाग।

मुहा०—तालू लटकना = (१) सिर में बहुत अधिक गरमी जान पड़ना। (२) प्यास से मुँह सूखना। जैसे,—प्यास से तालू लटकना।

३. छोड़े का एक ऐब।

तालूफाड़—संज्ञा पुं० [हि० तालू + फाड़ना] हाथियों का एक रोग जिसमें हाथी के तालू में घाव हो जाता है।

तालूर—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का भँवर [को०]।

तालूषक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तालू' [को०]।

तालेबर—वि० [प्र० ताला (= भाग्य) + का० वर (प्रत्य०)] बनादय। धनी।

ताल्लुक—संज्ञा पुं० [त० तमल्लुक] संबंध। लगाव। उ०—हमारे ताल्लुक भलेमानुस शरीरों से हैं। हमने ऐसे एक एक दके के बस दस रुपए लिए हैं।—ज्ञानदान, पृ० १२६।

ताल्लुका—संज्ञा पुं० [प्र० तमल्लुकह] दे० 'तमल्लुक'।

ताल्लुकास—संज्ञा पुं० [प्र० तमल्लुक का बहु व०] संबंध। मेल जोड़ [को०]।

ताल्लुकेदार—संज्ञा पुं० [प्र० तमल्लुकह + का० दार (प्रत्य०)] दे० 'तमल्लुकेदार'।

ताल्लुखुँद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें तालू में कमल के आकार का एक बड़ा सा धंक्रु या काँटा सा निकल आता है जिसमें बहुत पीड़ा होती है।

ताव^१—संज्ञा पुं० [सं० ताप, प्रा० ताव] १. वह गरमी जो किसी वस्तु को तपाने या पकाने के लिये पहुँचाई जाय।

क्रि० प्र०—लगना।

यो०—तावबंद। ताव भाव।

मुहा०—(किसी वस्तु में) ताव आना = (किसी वस्तु का) जितना चाहिए, उतना गरम हो जाना। जैसे,—घनी ताव नहीं आया है, पूरियाँ कड़ाही में मत डालो। ताव खाना = (१) घाँच में गरम होना। (२) आवेश में आना। क्रुद्ध हो जाना। ताव खा जाना = (१) घाँच पर चढ़े हुए कड़ाहे के बी,

चाकनी, पाग इत्यादि का आवश्यकता से अधिक गरम हो जाना। किसी पाग या पकवान आदि का कड़ाह में जल जाना। जैसे, चाकनी का ताव खा जाना, पाग का ताव खा जाना ३. किसी कोलाई, तपाई या पिचलाई हुई वस्तु का आवश्यकता से अधिक ठंडा होना। दे० 'ताव खाना'। ताव देखना = घाँच का संदाज देखना। ताव देना = (१) घाँच पर रखना। गरम रखना। (२) भाग में लाल करना। तपाना।—(धातु आदि का) ताव बिगड़ना = पकाने में घाँच का कम या अधिक हो जाना (जिससे कोई वस्तु बिगड़ जाय)। मूछों पर ताव देना = सफलता आदि के अभिमान में मूछें ऐँठना। पराक्रम, बल आदि के घमंड में मूछों पर हाथ फेरना।

२. अधिकार मिले हुए क्रोध का आवेश। घमंड लिए हुए गुस्से की झोंक।

मुहा०—ताव दिखाना = अभिमान मिला हुआ क्रोध प्रकट करना। बड़प्पन दिखाते हुए बिगड़ना। घाल दिखाना। ताव में आना = अभिमान मिले हुए क्रोध के आवेश में होना। अहंकार मिश्रित क्रोध के बस में होना। जैसे,—ताव में आकर कहीं मेरी बीजे भी न फेंक देना।

३. अहंकार का बहु-आवेश जो किसी के बढावा देने, ललकारने आदि से उत्पन्न होता है। सोली की झोंक। जैसे,—ताव में आकर इतना बंदा लिख तो दिया, पर दोगे कहीं से? ४. किसी वस्तु के तत्काल होने की धीरे इच्छा या उत्कंठा। ऐसी इच्छा जिसमें उतावलापन हो। चटपट होने की चाह या आवश्यकता। उ०—बीछुणिया साजण मिलह, बलि किड तावड ताव।—ढोला०, दृ० ५५६।

मुहा०—ताव चढ़ना = (१) प्रबल इच्छा होना। ऐसी इच्छा होना कि कोई बात चटपट हो जाय। (२) कामोद्दीपन होना। ताव पर = जब इच्छा या आवश्यकता हो, उसी समय। जकरत के मोके पर। जैसे,—तुम्हारे ताव पर तो रुपया नहीं मिल सकता।

ताव^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० ता (= संख्या)] कागज का एक तस्ता। जैसे, चार ताव कागज।

तावड़ियाँ^①—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, प्रा० ताव + डी (प्रत्य०)] घाम। धूप। उ०—सूखे जेठ मेंकार सर सीखा तावड़ियाँह। बीकी० प्र०, भा० २, पृ० १६।

तावण—वि० [सं० तावान्] तितना। उतना। उ०—तिल ज्यों घाणी पीड़िए तावण तसे तेल।—प्राण०, पृ० २५५।

तावत्—क्रि० वि० [सं०] १. उतने काल तक। उतनी देर तक। तब तक। २. उतनी दूर तक। वहाँ तक। ३. उतने परिमाण तक। उतने तक।

विशेष—यह 'यावत्' का संबंधपूरक शब्द है।

तावताँम^②—संज्ञा पुं० [हि० ताव + प्रनु० ताम] आवेश। क्रोध। गुस्सा। उ०—बागी सु तोप लाल ताव ताम।—दृ० रासी, पृ० १०८।

तावदार—वि० [हि० ताव + का० दार] १. वह (व्यक्ति)

जिसमें ताव हो। जो आवेष्ट में आकर या साहमपूर्वक काम करता हो। २. (वस्तु) जो कड़ी और सुंदरता लिए हुए हो।

तावना ④—क्रि० म० [सं० तापन] १. तपाना। गरम करना। उ०—अतन तनक ही में तापन तें तावेगो।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० १, पृ० ३७६। २. जलाना। ३. संताप पहुँचाना। दुःख पहुँचाना। बाहना।

तावयंद—संज्ञा पु० [हि० ताव + फा० बंद] वह घोष जिसके प्रयोग से चौकी का खोटापन तपान पर भी प्रकट न हो।

तावभाव—वि० थोड़ा सा। जरा सा। हलका सा।

तावरो ④—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तावरी'।

तावरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हि० ताव + री (प्रत्य०)] १. ताप। दाह। जलन। उ०—फिरत हो उतावरी लगत नही तावरी।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४८०। २. धूप। घाम। आतप। ३. बुझार। ज्वर। हुरारत। ४. गरमी से आया हुआ चक्कर। मूर्छा।

क्रि० प्र०—आया।

तावरो ④—संज्ञा पु० [हि० ताव + रा (प्रत्य०)] १. ताप। दाह। जलन। २. सूर्य की गरमी। धूप। घाम। आतप। उ०—मैं जमुना जल भरि घर आवति मो को लागे तावरो।—धुर (शब्द०) ३. गरमी से आया हुआ चक्कर। घमेर। मूर्छा।

क्रि० प्र०—घाना।

तावला—संज्ञा स्त्री० [हि० ताव] जल्दी। उतावलापन। हड़बड़ी। तावा—संज्ञा पु० [हि० ताव] १. दे० 'तवा'। २. वह कच्चा लपड़ा या पपुषा जिसके किनारे सभी मोड़े न गए हों। ३. तवा।

तावर—संज्ञा पु० [सं०] धनुष की डोरी। प्रत्यक्षा [को०]।

तावान—संज्ञा पु० [फा०] १. वह चीज जो नुकसान भरने के लिये दी या ली जाय। क्षतिपूर्ति। नुकसान का मुआवजा। २. अयंदंड। डंड।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

३. वह धन या सामान आदि जो हारा हुआ राष्ट्र विजेता को देता है [को०]।

यौ०—तावाने जग = युद्ध की क्षतिपूर्ति जो पराजित राष्ट्र को करनी पड़ती है।

तावाना ④—क्रि० स० [सं० ताप, हि० तावना] धीरे में ताप देना। धीरे में तपाना। दे० 'तावना'। उ०—ठुक ठुक करिके गड़े ठेरा बार बार तावाई। वा मूरत के रही भरोसे, पछिला धरम नसाई।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ५४।

ताविष—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'तावीष'।

ताविषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवकन्या। २. नदी। ३. पृथिवी। ४. समुद्र [को०]। ५. स्वर्ग [को०]। ६. सोना। सुवर्ण [को०]।

तावीज—संज्ञा पु० [अ० तावीज] १. यंत्र, मंत्र या कवच जो किसी सपुट के भीतर रखकर गले में या बांह पर पहना जाय। रक्षाकवच। कवच। उ०—यंत्र मंत्र जती करि लागे,

करि तावीज गले पहिराए।—कबीर सा०, पृ० ५४०। २. सोने, चांदी, ताँबे आदि का चौकोर या अठपहला, गोल या चिपटा सपुट जिसे तागे में लगाकर गले या बांह पर पहनते हैं। जंतर।

विशेष—ये सपुट यों ही गहने की तरह भी पहने जाते हैं और इनके भीतर यंत्र भी रहता है।

मुहा०—तावीज बाँधना = रक्षा के लिये देवता का मंत्र आदि लिखकर बाँधना। कवच बाँधना।

३. कब्र पर बना हुआ ईंटों या पत्थर का निशान [को०]। ४. गले का एक आभूषण [को०]।

तावीत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. स्पष्टीकरण। २. किसी बात का असली अर्थ से हटकर दूसरा अर्थ। ३. किसी बात का ऐसा अर्थ बताना जो लगभग ठीक जान पड़े। ४. स्वप्नफल कहना [को०]।

तावीष—संज्ञा पु० [सं०] १. सोना। स्वर्ण। २. स्वर्ग। ३. समुद्र।

तावीषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ताविषी' [को०]।

तावुरि—संज्ञा पु० [यूनी टारस] वृष राशि।

ताश—संज्ञा पु० [अ० तास (=तश्त या चौड़ा बरतन)] १. एक प्रकार का जरदोजी कपड़ा जिसका ताना रेशम का और बाना बादले का होता है। जरवपत। २. खेलने के लिये मोटे कागज का चौखुंटा टुकड़ा जिसपर रंगों की बूटियाँ या तसवीरें बनी रहती हैं। खेलने का पत्ता।

विशेष—खेलने के ताश में चार रंग होते हैं—हकम, चिड़ी, पान और ईंट। एक एक रंग के तेरह तेरह पत्ते होते हैं। एक से दस तक तो बूटियाँ होती हैं जिन्हें क्रमशः एक्का, दुक्की (या दुकी), तिक्की, चौकी, पंजी, छक्का, सत्ता, अट्ठा, नहला और दहला कहते हैं। इनके प्रतिरिक्त तीन पत्तों में क्रमशः गुलाम, बीबी और बादशाह की तसवीरें होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक रंग के तेरह पत्ते और सब मिलाकर बावन पत्ते होते हैं। खेलने के समय खेलनेवालों में ये पत्ते उलटकर बराबर बाँट दिए जाते हैं। साधारण खेल (रंगमार) में किसी रंग की अधिक बूटियोंवाला पत्ता उसी रंग की कम बूटियोंवाले पत्ते को मार सकता है। इसी प्रकार दहले को गुलाम मार सकता है और गुलाम को बीबी, बीबी को बादशाह और बादशाह को एक्का। एक्का सब पत्तों को मार सकता है। ताश के खेल कई प्रकार के होते हैं जैसे, ट्रंप, गन, गुलामचोर इत्यादि।

ताश का खेल पहले किस देश में निकला, इसका ठीक पता नहीं है। कोई मिस्र देश को, कोई काबुल को, कोई धरब को और कोई भारतवर्ष को इसका आदि स्थान बतलाता है। फारस और धरब में गंजीके का खेल बहुत दिनों से प्रचलित है जिसके पत्ते रुपए के आकार के गोल गोल होते हैं। इसी से उन्हें ताश कहते हैं। अकबर के समय हिंदुस्तान में जो ताश प्रचलित थे, उनके रंगों के नाम धोर थे। जैसे, धरवपति गजपति, नरपति, गढ़पति, दलपति इत्यादि। इनमें चौड़े, हाथी आदि पर सवार तसवीरें बनी होती थीं। पर आजकल जो ताश खेले जाते हैं वे यूरप से ही आते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना ।

३. ताशा का खेल । ४. कड़े कागज या दपती की चकती जिस-पर सीने का तागा लपेटा रहता है ।

ताशा—संज्ञा पुं० [घ० तास] बमड़ा मड़ा हुआ एक बाजा जो गले में लटककर दो पतली सकड़ियों से बजाया जाता है ।

विशेष—यह घूमघाम सूचित करने के लिये ही बजाया जाता है ।

तास^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. एक सुनहरे तारों का जड़ाऊ कपड़ा ।

उ०—ये तास का सब बस्त्र पहने थी और मुँह पर भी तास का नकाब पड़ा हुआ था ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० १८८ ।

२. बड़ा तश्त । पराती (को०) । ३. वह कटोरा जो जलघड़ी की नाई में पड़ता था (को०) ।

तास^२—सर्व० [हि०] दे० 'तासु' । उ०—अनल पंखि उड़ि चढ़ि आकाश, यकित मई छोर न तास ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८४८ ।

तासना^१—क्रि० घ० [हि०] १. प्यासना । २. प्यास के कारण कंठ सूख जाने से ताव खा जाना ।

तासला—संज्ञा पुं० [देश०] वह रस्सी जिसे भालुओं को नचाने के समय कलंकर उनके गले में डाले रहते हैं ।

तासा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताशा' ।

तासा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + कर्ष, अथवा देश०] तीन बार की जोती हुई भूमि ।

तासा^३—वि० [हि०] तृप्ति । प्यासा । जैसे, पियासा तासा ।

तासीर—संज्ञा स्त्री० [घ०] मसर । प्रभाव । गुण । जैसे,—दवा की तासीर, सोहबत की तासीर । उ०—जिसके दर्दे दिल में कुछ तासीर है । गर जबी भी है तो मेरा पीर है ।—कविता० को०, भा० ४, पृ० २८ ।

तासु^१—सर्व० [सं० तस्य अथवा हि० ता + सु (प्रत्य०)] उसका ।

तासू^१—सर्व० [हि०] दे० 'तासों' ।

तासों^१—सर्व० [हि० ता + सों (प्रत्य०)] उससे ।

तासों^२—सर्व० [हि०] दे० 'तासों' ।

तास्कर्य—संज्ञा पुं० [सं०] थोरी (को०) ।

ताहम—अव्य० [फ्रा०] तो भी । तिस पर भी । उ०—ताहम मेरा यह दावा जरूर है कि मेरे छंद ठीले ठीले नहीं होते ।—कुंकुम (ग्रं०), पृ० १६ ।

ताहरा^१—सर्व० [हि० तुम्हारा] तेरा । तुम्हारा । उ०—मीत हमारा अब पियारा, ताहरा रंगनी राती ।—दादू०, पृ० ५२२

ताहरी^१—सर्व० स्त्री० [हि०] दे० 'ताहरा' । उ०—करणी ताहरी सोषसी, होसी रे सिर हेलि ।—दादू०, पृ० ५३६ ।

ताहू^१—सर्व० [हि० ताहरा] तेरा । तुम्हारा । त्वदीय । उ०—माहूँ सूँ आपूँ ताहूँ छै तू नै आपूँ ।—दादू०, पृ० ६७२

ताहरी^२—सर्व० [हि० ताहरा] तिसका । उसका । उ०—बुहो पवाड सुजस ताहरी के मरसी के मारे ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८८४ ।

ताहूँ^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तहाँ' । उ०—जहाँ तोहे ताहूँ मस-लान, पड़य पेहिलम तुज्जु फरमान ।—कीर्ति०, पृ० ५८ ।

ताहि^१—सर्व० [हि० ता + हि (प्रत्य०)] उसको । उसे । उ०—काहिक सुंदरि के ताहि जान । भाकुल कए गेलि हमर परान ।—विद्यापति, पृ० १७६ ।

ताही^१—अव्य० [हि०] दे० 'ताई', 'तई' ।

ताही^२—सर्व० [हि०] दे० 'ताहि' । उ०—परम प्रेम पड़ति इक धाही । 'नंद' जयामति बरनत ताही ।—नंद० ग्रं०, पृ० ११७ ।

ताहू^१—सर्व० [हि० ताहि] तिसे भी । उसको भी । उ०—जहाँ बन्ध सों और को जपमा बधन न होय । ताहू कहत प्रतीप है कबि कोविद सब कोय ।—मति० ग्रं०, पृ० ३७३ ।

तिडुक^१—संज्ञा पुं० [? अथवा कोल (परि०)] तमाल । उ०—कालबंध, तापिच्छ पुनि, तिडुक सहज तमाल ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०३ ।

तितिड़—संज्ञा पुं० [सं० तित्तिड] १. हमली का पेड़ या फल । २. हमली की चटनी (को०) । ३. एक राक्षस (को०) ।

तितिड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिडिका] १. हमली । २. हमली की चटनी (को०) ।

तितिड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिडीक] १. हमली । २. हमली की चटनी (को०) ।

तितिड़ीक—संज्ञा पुं० [सं० तित्तिडीक] १. हमली । २. हमली की चटनी (को०) ।

तितिड़ीका—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिडीका] १. हमली । २. हमली की चटनी (को०) ।

तितिड़ीमृत—संज्ञा पुं० [सं० तित्तिडी + मृत] एक प्रकार का फुफा जो हाथ में हमली के बीज लेकर खेला जाता है (को०) ।

तितिरांग—संज्ञा पुं० [सं० तित्तिराङ्ग] इसपात । बज्रलोह ।

तितिलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिलिका] दे० 'तितिड़िका' ।

तितिली—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिली] दे० 'तितिड़ी' ।

तितिलोका—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिनीक] हमली (को०) ।

तिदिश—संज्ञा पुं० [सं० तित्तिश] टिडसी नाम की तरकारी । डेंडसी ।

तिदु^१—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू का पेड़ ।

तिदु^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तेदुपा' । उ०—आप्रतिदु रिछ बाल मंगावहु । अवर डोर ईहामृग त्यावहु ।—प० रासो० पृ० १७ ।

तिदुक—संज्ञा पुं० [सं० तित्तिदुक] १. तेंदू का पेड़ । २. कर्षप्रमाण । दो तोला ।

तिदुकतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं० तित्तिदुक तीर्थ] ब्रजमंडल के अंतर्गत एक तीर्थ ।

तिदुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिदुकी] तेंदू का पेड़ ।

तिदुकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिदुकिनी] आवतंकी । भगवत बत्नी ।

तिदुल—संज्ञा पुं० [सं० तित्तिदुल] तेंदू का पेड़ ।

तिस^१—वि० [सं० त्रिण] दे० 'तीस' । उ०—तिस सहस्र हिदुब अमू, बिस सहस्र पट्टान ।—प० रासो०, पृ० १३४ ।

विंशति^५—संज्ञा पुं० [हि० तमाला, तमारा] बचकर । उ०—घावे जोही इक्षियाँ, तन उयी मड़ा तिवाल ।—वांकी० घं०, भा० १, पृ० २३ ।

ति^६—वि० [म० त्व या त] बहु । उ०—ति न नयारि ना नागरी, प्रति पद हंसक हीन ।—केशव (शब्द०) ।

तिथ्य^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिय' । उ०—रामचरित चिता-मनि चाक । संत सुमति तिथ सुभग सिगाक ।—मानस १ । ३२ ।

तिथ्या^८—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिया' ।

तिथ्यागी^९—वि० [हि०] दे० 'रयागी' । उ०—बलि जो विक्रम दान बड़ा भट्टे । हेतिम करन तिथ्यागी कहे ।—जायसी घं०, (गुप्त), पृ० १३१ ।

तिथ्यास^{१०}—सर्व० [हि० ता] बा । उष्टे । उ०—उयों प्राया ह्यो जायसी जम सहहि तिथ्यास सहाम ।—प्राण०, पृ० २५२ ।

तिथ्याही^{११}—संज्ञा पुं० [सं० त्रिविधाह] १. तीसरा विधाह । २. वह पुरुष जिसका तीसरा व्याह हो रहा हो ।

तिथ्याह^{१२}—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + पक्ष] वह धाद जो किसी की मृत्यु के पतालीसवें दिन किया जाता है ।

तिउरी^{१३}—संज्ञा पुं० [देश०] खेसारी नाम का कदम । खेसारी ।

तिउरी^{१४}—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकाला जाता है जो जलाने के काम आता है ।

तिउरी^{१५}—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेसारी । खेसारी ।

तिउरी^{१६}—संज्ञा [हि०] दे० 'त्योरी' । उ०—तिरछी तिउरी देख तुम्हारी । प्रमथन०, भा० १, पृ० १६१ ।

तिउहारी^{१७}—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योहारी' । उ०—सखि माने तिउहार सख, गाह देवारी खेति । ह्रीं का गावो कंत बिनु, रही द्वार सिर मेलि ।—जायसी (शब्द०) ।

तिण^{१८}—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तितना' । उ०—बियो छल्लुनं धंय हत्ती प्रकारं । तिण तात के नग्न निग्रे सुधारं ।—पृ० रा०, २१ । ११६ ।

तिकट^{१९}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिकठी' । उ०—जाय तन तिकट पर झारा । वदन बन बीच ले मारा ।—संत तुरसी०, पृ० ४८ ।

तिकड़म^{२०}—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + क्रम] १. बाल । वड्यंत्र । उ०—मानों श्री छल्लुलाल जो को इसी तिकड़म के हेतु फोटं विनियम कालेज में जाकरी मिली थी ।—पोद्दार अभि० घं०, पृ० ८५ । २. तरकीब । उपाय ।

तिकड़मबाज^{२१}—वि० [हि० तिकड़म + बाज] दे० 'तिकड़मी' ।

तिकड़मी^{२२}—वि० [हि० तिकड़म] १. तिकड़मबाज । बाजाक । होखियार । २. बोखेबाज । धूर्त ।

तिकड़ी^{२३}—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + कड़ी] १. जिसमें तीन कड़ियाँ हों । २. चारपाई आदि की वह बुनावट जिसमें तीन रस्सियाँ एक साथ हों ।

तिकड़ी^{२४}—वि० तीन कड़ी या लड़ीवाली ।

तिकटिक^{२५}—संज्ञा स्त्री० [अनु०] सवारी में पशुओं को हँकने के लिये किया जानेवाला शब्द ।

विशेष—बच्चे जाँघों के बीच में एक लकड़ी से जाते हुए एकड़ लेते हैं और उसे छोड़ा मानकर तथा अपने को सवार मानकर 'तिक तिक छोड़ा' कहते हुए खेलते हैं ।

तिकानी^{२६}—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + कान] वह तिकोनी लकड़ी जो पहिए के बाहर घुरी के पास पहिए की रोक के लिये लगी रहती है ।

तिकारी^{२७}—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + कार] खेत की तीसरी जोटाई ।

तिकुरा^{२८}—संज्ञा पुं० [हि० तीन + कुरा] फसल की उपज की तीन बराबर बराबर राशियाँ जिनमें से एक जमींदार लेता है ।

तिके^{२९}—सर्व० [हि० ति] दे । उ०—वेह जिकण वार्ता छँ दोई, तिकै सदाई तीखा ।—रघु० क०, पृ० २४ ।

तिकोन^{३०}—वि० [सं० त्रिकोण] दे० 'तिकोबा' । उ०—बाँस पुराना साज सब छटपट सरल तिकोन लटोला रे ।—तुलसी (शब्द०) ।

तिकोन^{३१}—संज्ञा पुं० दे० 'त्रिकोण' ।

तिकोना^{३२}—वि० [सं० त्रिकोण] [वि० स्त्री० तिकोनी] जिसमें तीस कोने हों । तीन कोनों का । जैसे, तिकोना टुकड़ा ।

तिकोना^{३३}—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का नमकीन पकवाज । समोसा । २. तिकोनी नक्काशी बनाने की छेनी ।

तिकोना^{३४}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्योरी' ।

तिकोनिया^{३५}—वि० [हि० तिकोन + इया (प्रत्यय०)] दे० 'तिकोना' ।

तिकोनिया^{३६}—संज्ञा स्त्री० तीन कोनोंवाला स्थान ।

विशेष—यह स्थान प्रायः दो दीवारों के बीच कोने में तिकोना पत्थर या लकड़ी गड़कर बनाया जाता है जिसपर छोटे मोटे सामान रखे जाते हैं ।

तिकका^{३७}—संज्ञा पुं० [फा० तिकह] मांस की बोटी । जोष ।

मुहा०—तिकका बोटी करना = टुकड़े टुकड़े करना । बज्जी बज्जी धसग करना ।

तिककी^{३८}—संज्ञा स्त्री० [सं० तृ] १. लाल का वह पत्ता जिसपर तीन बूटियाँ बनी हों । २. गंजीके का वह पत्ता जिसपर तीन बूटियाँ हों ।

तिकख^{३९}—वि० [सं० तीक्ष्ण, प्रा० तिक्ल] १. तीखा । खोखा । तेज । २. तीव्रबुद्धि । तेज । बालाक ।

तिकखा^{४०}—वि० [हि०] तिरछा । टेढ़ा ।

तिकखे^{४१}—क्रि० वि० [हि०] तिरछे ।

तिक^{४२}—वि० [सं०] तीता । कड़ुआ । जिसका स्वाद नीम, गुरुच, चिरायते आदि के समान हो ।

तिक^{४३}—संज्ञा पुं० १. पितापापड़ा । २. सुपंख । ३. कुवज । ४. वरुण वृक्ष । ५. छह रसों में से एक ।

विशेष—तिक छह रसों में से एक है । तिक घोर कटु में भेद यह कि तिक स्वाद धरुचिकर होता है; जैसे, नीम, चिरायते आदि का; पर कटु स्वाद धरपरा और रुचिकर होता है ।

बैसे, सोंठ, मिर्च आदि का। वैद्यक के अनुसार तित्क रस ज्वरक, शिथिलकारक, शीपक, शोषक तथा मूत्र, मेद, रक्त, बसा आदि का शोषण करनेवाला है। ज्वर, जुकसी, कोढ़, मूर्च्छा आदि में यह विशेष उपकारी है। अम्लितास, गुद्वन्ध, मजीठ, कनेर, हल्दी, इन्धवन्ध, अटकटेया, अशोक, कुटकी, बरियारा, ब्राह्मी, गन्धपुरना (पुनर्नवा) इत्यादि तित्क वर्ग के अंतर्गत हैं।

तित्कन्दिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्कन्दिका] बनशट। गंधपत्र। बनकचूर।

तित्क^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पटोल। परबल। २. चिरति। चिरायता। ३. काष्ठा खैर। ४. इंगुरी। ५. नीम। ६. कुडव। कुरैया। ७. तित्क रस (को०)।

तित्क^२—वि० टीला (को०)।

तित्कान्ध—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्कान्ध] चिरायता।

तित्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुपुंजी। कटुभा कटु।

तित्कगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्कगंधा] १. बराहगंधा। बराही कंध। २. सरसों (को०)।

तित्कगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्कगंधिका] १. बराहगंधा। बराही कंध। २. सरसों (को०)।

तित्कगुंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्कगुंजा] कंधा। करंज। करंजुया।

तित्कघृत—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कई तित्क शोषणियों के योग से बना हुआ एक घृत जो हृष्ट; विषम ज्वर, गुल्म, अशं, ब्रह्मणी आदि में दिया जाता है।

तित्कतंडुला—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्कतंडुला] पिप्पली। शीपल।

तित्कता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिताई। कटुभापन। तीतापन।

तित्कतुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्कतुंडी] कटुई तुरई।

तित्कतुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्कतुंडी] कटुभा कटु। तित्ककोठी।

तित्कदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चिरसी। २. डेढ़ाचिपी।

तित्कधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] (बरीर के भीवर की कड़ई धातु, धपाए) पित्त।

तित्कपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कडोड़ा। बैलसा।

तित्कपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कचरी। पेहंडा।

तित्कपर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुध। २. हुबहुब। हरहर। ३. विद्योय। गुर्ब। ४. मुछेठी। जेठी मधु।

तित्कपुष्पा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।

तित्कपुष्पा^२—वि० जिसके फूल का स्वाद टीला हो (को०)।

तित्कफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. रीठा। विमंज फल। २. यषवित्ता जता (को०)। ३. निमंली। कटक वृक्ष (को०)।

तित्कफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अटकटेया। २. कचरी। ३. खर-बूजा। ४. यषवित्ता जता (को०)। ५. बार्ता की (को०)।

तित्कबोजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तित्ककोठी (को०)।

तित्कभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] परबल। पटोल।

तित्कयवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखिनी।

तित्करोहिणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'तित्करोहिणी'।

तित्करोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

तित्कवल्ल्भी—संज्ञा स्त्री० [स्त्री०] मूर्वा लता। मुरा। मरोड़फली। कुरनहार।

तित्कवोजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुभा कटु। तित्कलोकी।

तित्कशाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. खैर का पेड़। २. वरुण वृक्ष। ३. पत्रसुंदर शाक।

तित्कसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोहिण नाम की घास। २. खैर का पेड़।

तित्कर्तागा—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्कर्तागा] पातालगाहरी जता। छिरेटा।

तित्कता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुटकी। कटुका। २. पाठा। ३. यष-तित्कता जता। ४. खरबूजा। ५. छिकनी नाम का पौधा। नकछिकनी।

तित्कताल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुभा कटु। तित्कलोकी।

तित्किका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तित्कलोकी। २. काकमाषी। ३. कुटकी।

तित्कितरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूमड़ी या महुपर नाम का बाजा जिसे प्रायः सपेरे बजाते हैं।

तित्क^१—वि० [सं० तीक्ष्ण] १. तीक्ष्ण। तेज। २. खोला। पैना। उ०—बनु बान तित्क कुठार केशव मेखना मृगचर्म सों। रघुवीर को यह बैलिय रस बीर सात्विक चर्म सों।—केशव (शब्द०)।

तित्कता^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णता] तेजी। उ०—शूर बाजिन की खुरी भति तित्कता तिनकी हुई।—केशव (शब्द०)।

तित्कि^३—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—गणनाथ हृद्यं लिए तित्कि कर्षी। पिनाकी पिनाकं किए धाप रसी।—हु० रासो, पृ० २४।

तित्ख—वि० [सं० त्रि + कर्प] तीव्र बार का जोता हुआ। तित्खहा [खेत]।

तित्खटी^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिक्टी'।

तित्खरा—वि० [हि०] दे० 'तित्ख'।

तित्खराना^५—क्रि० प्र० [हि० तित्खराना का प्रे० कर्प] निखारने का काम दूसरे से कराना।

तित्खाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तीखा] तीखापन। तीक्ष्णता। तेजी।

तित्खारना^६—क्रि० प्र० [सं० त्रि + हि० पाखर] किसी बात को छद्म या निश्चित करने के लिये तीव्र बार पूछना। पक्का करने के लिये कई बार कहलाना।

विशेष—तीन बार कहकर जो प्रतिज्ञा की जाती है, वह बहुत पक्की समझी जाती है।

तित्खूँटा^७—वि० [हि०] दे० 'तित्खूँटा'। उ०—बेलवार सहारा छवि लुटे। बीतमताले घोर तित्खूँटे।—चक्रित प०, पृ० १७५।

तित्खूँटा—वि० [हि० तीन + खूँट] तीन कोने का। जिसमें तीन कोने हों। त्रिकोण।

तिगना^१—कि० सं० [दि०] देखना । नजर डालना । भापना ।
(दयाली) ।

तिगना^२—वि० [हि०] ३० 'तिगुना' ।

तिगुना—वि० [सं० त्रिगुण] [हि० श्री० त्रिगुणी] तीन बार अधिक ।
तीन गुना ।

तिगुचना—कि० सं० [हि०] दे० 'तिगना' ।

तिगून—संज्ञा पुं० [हि० त्रिगुना] १. तिगुना होने का भाव । २.
प्रारम्भ में जितना समय किसी चीज के गाने या बजाने में
लगाया जाय, प्राये सबकर वह चीज उसके सिद्धाई समय में
गाना । साधारण से तिगुना । जल्दी बाना या बजाना । वि०
दे० 'चोगून' ।

तिगमंस^१—संज्ञा सं० [हि०] दे० 'तिगमांशु' । उ०—मिहिर तिमिरहूर
प्रभाकर उत्तरश्चि तिमंस ।—धनेराय०, पृ० १०२ ।

तिगम^२—वि० [सं०] १. तीक्ष्ण । छरा । नेत्र । प्रखर । उ०—खोस
गए समार नया सुभ मेरे मन मे क्षण भर । जन संस्कृति का
तिगम रफीत सोदर्य स्वप्न दिगलाकर ।—ग्राम्या, पृ० ४७ ।
२. तप्त । तप्त करनेवाला (को०) ।

यौ०—तिगमकर । तिगमदीप्ति । तिगममन्यु । तिगमरश्मि ।
तिगमांशु ।

३. प्रचंड । उग्र (को०) ।

तिगम^३—संज्ञा पुं० १. वज्र । २. पिप्पली ।—(प्रनेकायं) । ३. पुत्रवंशीय
एक क्षत्रिय ।—(मत्स्य) । ४. ताप (को०) । ५. तीक्ष्णता ।
तीक्ष्णपन (को०) ।

तिगमकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिगमकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुववंशीय एक राजा जो बत्सर और
सुवीची के पुत्र थे । (भागवत) ।

तिगमज्जम—संज्ञा पुं० [सं० तिगमज्जम] धर्म (को०) ।

तिगमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्णता । तेज । उग्रता । प्रचंडता ।
उ०—परतंत्रता से साधारणों को निबल धीरे दरिद्र बना
विया है इनमें वह तिगमता, जो दिव्यी जाति में होती है,
कभी मा ही नहीं सकती ।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० २८१ ।

तिगमतेज^१—वि० [सं० तिगमतेजस्] १. तीक्ष्ण । तीक्षा । २. तेज-
वाला । प्रविष्ट होनेवाला । ३. उग्र । प्रचंड । ४. तेजस्क ।
वेबस्वी (को०) ।

तिगमतेज^२—संज्ञा पुं० सूर्य (को०) ।

तिगमदीप्ति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिगमद्युति, तिगमभास—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (को०) ।

तिगममन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

तिगममयूखमाली—संज्ञा पुं० [सं० तिगममयूखमालिन्] सूर्य (को०) ।

तिगमयातना—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचंड या असह्य पीड़ा (को०) ।

तिगमरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिगमांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिघरा^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिघट] मिट्टी का चौड़े मुँह का बरतन
जिसमें दूध दही रखा जाता है । मटकी ।

तिघिया—संज्ञा पुं० [दि०] बहाज पर के वे भादमी जो धाकाश में
नक्षत्रों को देखते हैं (लघ०) ।

तिच्छ^१—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तिच्छन^१—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तिच्छना^१—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—कनक काँच ना
भेद ज्ञान में तिच्छना । धरे ही रे पखटू ऊषी से हरि कहैं संत
के लच्छना ।—पलटू०, भा० २, पृ० ७७ ।

तिजरा—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर ।
तिजारी ।

तिजबाँसा—संज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा) + मास (= महीना)]
वह वर्षव जो किसी स्त्री को तीन महीने का गर्भ होने पर
उसके कूटुंब के लोग करते हैं ।

तिजहरा^१—संज्ञा पुं० [हि०] तीसरा पहर ।

तिजहरिया—संज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा) + पहर] तीसरा
पहर । अपराह्न ।

तिजहरी^१—संज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा) + मास (= महीना)]
तीसरा पहर । अपराह्न ।

तिजारा^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर ।

तिजारत—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाणिज्य । बानेज । व्यापार ।
रोजगार । सोदागरी ।

तिजरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिजार] तीसरे दिन आका देकर
आनेवाला ज्वर ।

तिजिया^१—संज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा)] वह मनुष्य जिसका
तीसरा विवाह हो ।

तिजिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. राक्षस (को०) ।

तिजहना^१—कि० सं० [सं० त्यजन] नचना । छोड़ना । उ०—कह
म्हारह होरा अपहरह, नहीं तो गोरी ! तिजहूँ पराए ।—बी०
रासो, पृ० ३१ ।

तिजोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ट्रेजरी] सोहे की मजबूत छोटी आलमारी,
जिसमें रुपय, गहने आदि सुरक्षित रखे जाते हैं ।

तिङी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि (= तीन)] ताण का वह पत्ता जिसमें
तीन बुटियाँ हो ।

मुहा०—तिङी करना = गायब करना । उड़ा ले जाना । तिङी
होना—(१) चुपके से चले जाना । गायब होना । (२)
भाग जाना ।

तिङीबिङी^१—वि० [दि०] तितर बितर । छितराया हुआ । अस्त-
व्यस्त ।

तिड्ड^१—संज्ञा वि० [हि०] दे० 'टिड्डो' । उ०—ऊ बालउ क धवर-
सणउ कह फाकउ कह तिड्ड ।—ढोला०, पृ०, ६६० ।

तिण^१—सर्व० [हि०] दे० 'तिन' । उ०—बहुँ दिसि दामिनि
सघन घन, पीउ तजो तिण बार ।—ढोला०, पृ० ३७ ।

तिण^२—संज्ञा पुं० [सं० तृण] तृण । तिनका ।

तिथ्या^७—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनका' । उ०—इत तिथ्या सीये कही रे पिय आप दिखाइ ।—सुंदर सं०, भा० २, पृ० ६८२ ।

तित^७—क्रि० वि० [सं० तत्ति] १. तही । वही । उ०—श्रीनिवास को निज निवास छवि का कहिये तित ।—नंद० प्र०, पृ० २०२ । २. उधर । उस ओर । उ०—जित देखो तित श्याममयी है ।—सूर (शब्द०) ।

तित^२—वि० [हिं० तीत का समासगत रूप] तित्त । तीता । जैसे, तितछोकी ।

तितस—संज्ञा पुं० [सं०] १. बलबी । २. छत्र । छाता [को०] ।

तितना^१—क्रि० वि० [सं० तत्ति, ततीनि] उतना । उसके बराबर । उ०—तब बाकी सास एक ही बेर बाकी पातरि में परोसे । तितनो ही वह सरिकिनी चरनापुत मिलाय के लीहि ।—सो सो बावन०, भा० २, पृ० १८ ।

विशेष—'तितना' के साथ आए हुए वाक्य का संबंध पूरा करने के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है । पर अब गद्य में इसका प्रचार नहीं है ।

तितर^७—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीतर' । उ०—हुकुम स्वामि छुट्टव सु हम, मनो तितर पर बाध ।—पृ० रा०, ३।४ ।

तितर बितर—वि० [हिं० तितर + अनु० बितर] १. जो इधर उधर हो गया हो । छितराया हुआ । बिखरा हुआ । जो एकत्र न हो । जैसे,—तोप की आबाज सुनते ही सब सिपाही तितर बितर हो गए । २. जो कम के लगा न हो । अल्पव्यस्त । अस्त व्यस्त । जैसे,—तुमने सब पुस्तकें तितर बितर कर दीं ।

बितरात—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पोधा जिसकी जड़ ओषध के काम में आती है ।

तितरोखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर] एक प्रकार की छोटी चिकिया ।

तितली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर, पू० हिं० तितिल (चित्रित डेनों के कारण)] १. एक उड़नेवाला सुंदर कीड़ा या फतिगा जो प्रायः बगीचों में फूलों के पराग और रस आदि पर निर्वाह करता है ।

विशेष—तितली के छद्म पैर होते हैं और मुँह से बाल के ऐसी दो सूँड़ियाँ निकली होती हैं जिनसे यह फूलों का रस चूसती है । दोनों ओर दो दो के हिसाब से चार बड़े पंख होते हैं । भिन्न भिन्न तितलियों के पंख भिन्न भिन्न रंग के होते हैं और किसी किसी में बहुत सुंदर बूँदियाँ रहती हैं । पंख के प्रतिरिक्त इसका धीर शरीर इतना सूक्ष्म या पतला होता है कि दूर से दिखाई नहीं देता । गुबरेले, रेणम के कीड़े आदि फतिगों के समान तितली के शरीर का भी कपातर होता है । झंड़े से बिकलने के ऊपरत यह कुछ दिनों तक गठितर बोले या सूँड़े के रूप में रहती है । ऐसे बोले प्रायः पोधों की पत्तियों पर बिपके हुए मिलते हैं । इन बोलों का मुँह कुतरने योग्य होता है और ये पोधों को कभी कभी बड़ी हानि पहुँचाते हैं । छद्म असली पैरों के प्रतिरिक्त इन्हें कई और पैर होते हैं । ये ही बोले कपातरित होते होते तितली के रूप में हो जाते हैं और उड़ने लगते हैं ।

२. एक घास जो गेहूँ आदि के खेतों में उगती है ।

विशेष—इसका पोधा हाथ सवा हाथ तक का होता है । पत्तियाँ पतली पतली होती हैं । इसकी पत्तियाँ धीरे धीरे बचा के काम में आते हैं ।

तितलीआ—संज्ञा पुं० [हिं० तीत + लीआ] कड़वा कद्दू ।

तितलीकी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीत + जोआ] कटु तुंबी । कड़वा कद्दू ।

तितारा^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + हिं० तार] वह सितार की तरह का एक बाजा जिसमें तीन तार लगे रहते हैं । उ०—बाजे डफ, नगारा, बीन, बासुरी सितारा चारितारा स्यों तितारा मुख लावता निसंक है ।—रघुराज (शब्द०) । २. फसल की तीसरी बार की सिंचाई ।

तितारा—वि० तीन तारवाला । जिसमें तीन तार हों ।

तितिखा—संज्ञा पुं० [अ० ततिम्मह] १. डकोसला । २. छेप । ३. लेख का वह भाग जो अंत में उसी पुस्तक के संबंध में लगा देते हैं । परिशिष्ट । उपसंहार ।

तितित्—वि० [सं०] सहनशील । क्षमाशील ।

तितित्^२—संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम ।

तितित्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरदी गरमी आदि सहने की सामर्थ्य । सहिष्णुता । २. क्षमा । क्षाति । उ०—पावें तुमसे आज शत्रु भी ऐसी शिक्षा, जिसका अर्थ हो दंड और इति दया तितिक्षा ।—साकेत, पृ० ४२२ ।

तितित्छु—वि० [सं०] क्षमाशील । क्षाति । सहिष्णु । २. त्यागने की इच्छावाला (को०) ।

तितित्छु^२—संज्ञा पुं० पुष्यंशीय एक राजा जो महामना का पुत्र था ।

तितित्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुगनू । २. बीरबहूटी [को०] ।

तितित्त्मा—संज्ञा पुं० [अ० ततिम्मह] १. बचा हुआ भाग । अवशिष्ट अंश । २. किसी ग्रंथ के अंत में लगाया हुआ प्रकरण । परिशिष्ट ।

तितिर, तितिरि—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पक्षी [को०] ।

तितिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में सात करणों में के एक । दे० 'तैतिल' । २. नाद नाम का मिट्टी का बरतन । ३. तिल की खली (को०) ।

तिती^७—क्रि० वि० [सं० तत्ति, ततीनि] उतनी । उ०—तब श्री हरि वह माया जितो । अंतरव्यान करी तहँ तिती ।—नंद० प्र०, पृ० २६७ ।

तितीर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीरने या पार करने की इच्छा । २. तर जाने की इच्छा ।

तितीर्षु—वि० [सं०] १. तीरने की इच्छा करनेवाला । उ०—कवि अल्प, उदुप मति, भव तितीर्षु दुस्तर अशर । कल्पनापुत्र में भावी द्रष्टा, निराधार ।—ग्राम्या, पृ० ५८ । २. तरने का अभिलाषी ।

तितुक्षा^१—संज्ञा पुं० [देश०] गाड़ी के पहिए का भार ।

तिते^७—वि० [सं० तत्ति] उतने (संख्यावाचक) । उ०—अंधर

माँक अमरणन बिते । देखत हूँ पट ओटनि तिते ।—नंद० प्र०,
पृ० २६८ ।

तितेक ④—वि० [हि० तितो + एक] सतना । उ०—गोकुल
गोपी गोप जितेक । कृष्ण चरित रस मगन तितेक ।—नंद०
प्र०, पृ० २५६ ।

तिते ④—क्रि० वि० [हि० तित + ई (प्रत्य०)] १. वहाँ ही ।
वहीं । २. वहाँ । ३. उधर ।

तितो ④—वि० [सं० तावत्] उस मात्रा या परिमाण का ।

तितो २—क्रि० वि० उतना ।

तितो ③—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तितो' । उ०—(क) जब सब
लोक बराबर जितो । प्रलय उदधि मधि मग्नत तितो ।—
नंद० प्र०, पृ० २७१ । (ख) जद्यपि सुंदर सुघर पुनि सगुनो
दीपक देह । तऊ प्रकाश करे तितो भरिये जित सवेह ।—
विहारी २०, श्लो० ६५८ ।

तितरि—संज्ञा पु० [बी० तितारी] १. तीतर नाम का पक्षी । २.
तितली नाम की घास ।

तितरि—संज्ञा पु० [सं०] १. तीतर पक्षी । २. यजुर्वेद की एक
शाखा का नाम । दे० 'तीतरीय' । ३. यास्क मुनि के एक
शिष्य जिन्होंने तीतरीय शाखा बजाई थी ।—(भाष्य
अनुक्रमणिका) ।

विशेष—मायवत धावि पुराणों के अनुसार वैष्णवायन के शिष्य
मुनियों ने तितर पक्षी बनकर याज्ञवल्क्य के उगले हुए
यजुर्वेद को चुंया था ।

तितरूँ—अव्य० [प०] तहाँ । उ०—महो महो जनमानस जानी
तितरूँ जाँदा है ।—घनानंद० पृ० १८१ ।

तिथि—संज्ञा पु० [सं०] १. चंद्रमा की कला के घटने या बढ़ने के
अनुसार गिने जानेवाले महीने का दिन । चांद्रमास के प्रत्येक
दिन जिनके नाम संख्या के अनुसार होते हैं ।
मिति । तारीख ।

यौ०—तिथिवक्ष । तिथिवृद्धि ।

विशेष—पक्षों के अनुसार तिथियाँ भी दो प्रकार की होती हैं ।
कृष्ण और शुक्ल । प्रत्येक पक्ष में १५ तिथियाँ होती हैं ।
जिनके नाम ये हैं—प्रतिपदा (परिषा), द्वितीया (दूब),
तृतीया (तीब), चतुर्थी (चौब), पंचमी, षष्ठी (छठ),
सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी (ग्यारस), द्वादशी
(दुघास), त्रयोदशी (तेरस), चतुर्दशी (चौदस),
पूर्णिमा या अमावस्या । कृष्णपक्ष की अंतिम तिथि अमावस्या
और शुक्लपक्ष की पूर्णिमा कहलाती है । इन तिथियों के पाँच
धर्म किए गए हैं—प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी का नाम
जया, द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी का नाम भद्रा, तृतीया
अष्टमी और त्रयोदशी का नाम जया, चतुर्थी, नवमी और
चतुर्दशी का नाम रिक्ता; और पंचमी, दशमी और पूर्णिमा
या अमावस्या का नाम पूर्णा है । तिथियों का मान नियत
होता है अर्थात् सब तिथियाँ बराबर दंडों की नहीं होती ।
२. पंद्रह की संख्या ।

तिथिकृत्य—संज्ञा पु० [सं०] विशेष तिथि पर किया जानेवाला
धार्मिक कृत्य [को०] ।

तिथिभ्रूय—संज्ञा पु० [सं०] तिथि की हानि । किसी तिथि का
गिनती में न आना ।

विशेष—ऐसा तब होता है जब एक ही दिन में अर्थात् दो
सूर्योदयों के बीच तीन तिथियाँ पड़ जाती हैं । ऐसी अवस्था
में जो तिथि सूर्य के उदयकाल में नहीं पड़ती है, उसका शाय
माना जाता है ।

तिथिदेवता—संज्ञा पु० [सं०] वह देवता जो तिथि का प्रभिष्ठाता
होता है [को०] ।

तिथिपति—संज्ञा पु० [सं०] तिथियों के स्वामी देवता ।

विशेष—भिन्न भिन्न प्रांशों के अनुसार ये प्रधिपति भिन्न भिन्न
हैं । जिस तिथि का जो देवता है, उसका उक्त तिथि को
पूजन होता है ।

तिथि	देवता	
	बृहस्पति	वसिष्ठ
१	ब्रह्मा	अग्नि
२	विष्णु	विष्णु
३	हृरि	शिव
४	यम	गणेश
५	चंद्रमा	सर्प
६	पद्मानन	षडानन
७	शक्र	सूर्य
८	वसु	महेश
९	सर्प	दुर्गा
१०	धर्म	यम
११	ईश	विश्वदेवा
१२	सविता	हृरि
१३	काम	काम
१४	कलि	शर्व
पूर्णिमा	विश्वदेवा	चंद्रमा
अमावस्या	पितर	पितर

तिथिपत्र—संज्ञा पु० [सं०] पत्र । पंचांग । जंत्री ।

तिथिप्रणी—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा ।

तिथियुग्म—संज्ञा पु० [सं०] दो तिथियों का योग [को०] ।

तिथिवृद्धि—संज्ञा बी० [सं०] वह तिथि जो दो सूर्योदयों तक
चले [को०] ।

तिथ्यर्थ—संज्ञा पु० [सं०] करण ।

तिदरी—संज्ञा बी० [हि० तीन + द्रा० दर] वह कोठरी जिसमें
तीन दरवाजे या खिड़कियाँ हों ।

तिदारी—संज्ञा पु० [देश०] जल के किनारे रहनेवाली बस्तु की
तरह की एक खिड़िया ।

विशेष—यह बहुत ठेक चढ़ती है और जमीन पर सूजी घास का
बोंसबा बचाती है । इसका सोन शिकार करते हैं ।

तिहारी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिहार] वह कोठरी जिसमें तीन बरबाड़े या चिकड़ियाँ हों ।

तिधरा—क्रि० वि० [सं० तप] उधर । उस ओर ।

तिधरि(उ)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तिधर' । उ०—जिधरि देखो नैन भरि तिधरि सिरजनहारा ।—वापु०, ६८ ।

तिधारा—संज्ञा पुं० [सं० तिधार] एक प्रकार का धूर (सेंद्रक) जिसमें पत्ते नहीं होते ।

विशेष—इसमें उँगलियों की तरह शाखाएँ ऊपर की निकलती हैं । इसे बगीचों प्रायः की बाड़ या टट्टी के लिये लगाते हैं । इसे बच्ची या नरसेज भी कहते हैं ।

तिधारीकांडवेल—संज्ञा स्त्री० [हि० तिधारी + सं० काण्डवेल] हड़बोड़ ।

तिनंगा—पुं० [हि०] दे० 'तिलंगा' । उ०—सार तिनंगा तारयो ।—पु० रा०, १०।३२ ।

तिना—सर्व० [सं० तेन (= उनसे)] 'तिस' शब्द का बहुवचन । जैसे, तिनने, तिनको, तिनसे इत्यादि । उ०—तिन कवि केशवदास सौ कीर्णों बनें सनेहु ।—केशव (शब्द०) ।

विशेष—अब पद्य में इस शब्द का व्यवहार नहीं होता ।

तिन—संज्ञा पुं० [सं० तृण] तिनका । तृण । घासफूस । उ०—हैं कपूर भविष्य रही बिलति ब हुति मुकुटाधि । छिन छिन खरो बिचन्द्रनी बखहि छाये तिन प्राणि ।—बिहारी (शब्द०)

तिनसर—संज्ञा पुं० [सं० तृण + उर या धीर (मत्स्य०)] घबरा सं० तृण+धाकर] तिनकों का डेर । तृणसमूह । उ०—उन तिन-उर भा, झुरी खरी । यह बरबा, दुख भावरि खरी ।—जायसी (शब्द०) ।

तिनक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनका' । उ०—जाब तिनक बिधि तोरि ही सीनी ।—नंद० प्र० पु० १५२ ।

तिनकना—क्रि० प्र० [प्र० चिनगारी, चिक्की, या धनु०] चिक-चिकाना । चिकना । झुलझुलाना । बिचकना । नाराज होना ।

तिनका—संज्ञा पुं० [सं० तृणक] तृण का टुकड़ा । सूखी घास या डाँटी का टुकड़ा । उ०—तिनका सौं अपने जन की गुन मानत मेव समान ।—सूर०, १।८ ।

मुहा०—तिनका दाँतों में पकड़ना या सेना = विनती करना । क्षमा या कृपा के लिये बीवतापूर्वक विनय करना । पिड़पिड़कावा हा हा खावा । तिनका तोड़ना = (१) संबंध तोड़ना । (२) बसाप सेना । बलैया सेना ।

विशेष—बच्चे को नजर न लगे, इसलिये माता कभी कभी तिनका तोड़ती है ।

तिनके चुनना = बेसुध हो जाना । अचेत होना । पागल या भावला हो जाना । (पागल प्रायः व्यर्थ के काम किया करते हैं) । उ०—रंजे फिराक में तिनके चुनने की बीबत आई ।—किसाना०, भा० ३, पृ० २१८ । तिनके चुनवाना = (१) पागल बना देना । (२) मोहित करना । तिनके का सहारा = (१) थोड़ा सा सहारा । (२) ऐसी बात जिससे कुछ थोड़ा बहुत डारस बँचे । तिनके को पहाड़ करना = छोटी बात को बड़ी कर भासना । तिनके को पहाड़ कर दिखावा = थोड़ी सी बात

को बहुत बढ़ाकर कहना । तिनके की भोट पहाड़ = छोटी सी बात में किसी बड़ी बात का झिंघा रहना । सिर से तिनका उतारना = (१) थोड़ा सा एहसान करना । २. किसी प्रकार का थोड़ा बहुत काम करके उपकार का नाम करना ।

तिनगना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तिनकना' ।

तिनगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पकवान । उ०—पेठा पाक जलेबी पेरा । बोंदपाग तिनगरी गिरीरा ।—सूर (शब्द०) ।

तिनताग(उ)—संज्ञा पुं० [हि० तीन + ताग] तीन तागे (जनेऊ) । उ०—माहान कहिए बहारत है ताका बड़ भाग । नाहित पसु प्रज्ञानता गर डारे तिन ताग ।—भीखा०, पृ० १०१ ।

तिनतिरिया—संज्ञा पुं० [देश०] मनुष्य कपास ।

तिनधरा—संज्ञा स्त्री० [देश०] तीन धार की रेती जिससे धारी के दाँत जोड़े किए जाते हैं ।

तिनपतिया—वि० [हि० तीन + पात] तीन पत्तेवाले (बेलपत्र प्रादि) ।

तिनपहल—वि० [हि० तीन + पहल] दे० 'तिनपहला' ।

तिनपहला—वि० [हि० तीन + पहल] [वि० स्त्री० तिनपहली] जिसमें तीन पहल हों । जिसके तीन पार्श्व हों ।

तिनमिना—संज्ञा पुं० [हि० तिन + मनिया] झाला जिसके बीच में सोने का जड़ाऊ जुमरु हो ।

तिनबा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस ।

विशेष—यह बरमा में बहुत होता है । घासाम धीर छोटा नाम-पुर में भी यह पाया जाता है । यह इमारतों में लगता है धीर बटाइयाँ बनाने के काम में आता है । इसके चोंचों में बरमा, मनीपुर प्रादि के लोग माठ भी पकाते हैं ।

तिनषना(उ)—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तिनकना' । उ०—मुरखी साहि गोरी महुबीर धीर । तसबी तिनषी लिए विभिन्न तीर ।—पु० रा० १३।६५ ।

तिनस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनिश' ।

तिनसुना—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश का पेड़ ।

तिनाशक—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश वृक्ष ।

तिनास—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनिश' ।

तिनि(उ)—वि० [हि०] दे० 'तीन' । उ०—तिहि नारी के पुत तनि बाळ । ब्रह्मा बिष्णु महेश्वर साजें ।—कबीर जी०, पृ० ५ ।

तिनिश—संज्ञा पुं० [सं०] सीसम की जाति का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ शमी या खैर की सी होती हैं ।

विशेष—इसकी एकड़ी मजबूत होती है धीर किवाड़, गाड़ी प्रादि बनाने के काम में आती है । इसे तिनास या तिनसुना भी कहते हैं । वैद्यक में यह कसैला धीर गरम माना जाता है । रक्तातिसार, कोढ़, दाह, रक्तविकार प्रादि में इसकी छाल, पत्तियाँ प्रादि दी जाती हैं ।

पर्या०—स्यंदन । नेमी । रथदु । अतिमुक्तक । चित्रकुट । चक्री । कतांग । चकट । रथिक । मरमगर्भ । मेधी । जलधर । घसक । तिनाशक ।

तिनुक^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनुका' । उ०—हम स्वामि काज
सामंत मरन तन तिनुक विचारो ।—पु० रा०, १२।१६८ ।

तिनुका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनका' । उ०—दूठ जाय बोट
तिनुका की रसक रहै टहराई ।—कबीर श०, भा० २, पृ० २ ।

तिनुवर^७—संज्ञा पुं० [सं० तृणवर] तिनका ।

तिनूका^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनका' । उ०—होय तिनूका
बय बय तिनका हूँ दूटे ।—गिरिधर (शब्द०) ।

तिन्नक—संज्ञा पुं० [हि० तनिक] १. तुच्छ चीज । २. छोटा
लकड़ा ।

तिन्ना—संज्ञा पुं० [सं०] १. सती नामक वर्णवृत्त । २. रोटी के
साथ खाने की रसदार वस्तु । ३. तिन्नी के घान का पोषा ।

तिन्नी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तृण, हि० तिन, धयवा सं० तृणास] एक
प्रकार का जंगली घान जो तानों में आपसे आप होता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ जड़हन का सी ही होती हैं । पोषा तीन
बार हाथ ऊँचा होता है । कातिक में इसकी बाल फूटती है
जिसमें बहुत सँवे सँवे दूँड़ होते हैं । बाल के घाने तैयार होने
पर गिरने लगते हैं, इससे बकड़ा करनेवाले या तो दूँड़के भ
धानों को भाड़ लेते हैं अथवा बहुत से पोषों के धिरों को एक
में बाँध देते हैं । तिन्नी का घान लंबा और पतला होता है ।
बाबल खाने में नीरस और कसा घमता है और अत धावि में
खाया जाता है ।

तिन्नी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] नीची । कुकुली ।

तिन्ही^३—सर्व० [हि०] दे० 'तिन' ।

तिपका—संज्ञा पुं० [हि० तीन + पट] कमखाब बुननेवालों के करने
की लहू बकड़ी जिसमें तागा सवेटा रहता है और जो दोनों
बेसरो के बीच में होती है ।

तिपतास^७—संज्ञा पुं० [सं० तृप्ति + प्राणय] । तृप्ति प्रदान करने-
वाली वस्तु । उ०—काजी सो जाँगा कनल विगास । ज्ञान
संपूरण है तिपतास ।—प्राण०, पृ० १० ।

तिपति^७—संज्ञा स्त्री० [सं० तृप्ति] दे० 'तृप्ति' । उ०—सदृम एक
रथ साजि दासि विप तिपति इवक मोघ ।—पु० रा०,
१४ । ११६ ।

तिप् तिप्—संज्ञा पुं० [अनु०] तिप् तिप् की ध्वनिपूर्वक टपकने का
भाव । उ०—घोर बेला, सिन्धी छत से घोस की तिप् तिप्
पहाड़ी काक ।—हरी बास०, पृ० ३४ ।

तिपल्ला—वि० [हि० तीन + पल्ला] १. तीन पल्लों का । जिसमें
तीन पतं या पाखं हों । २. तीन तागे का । जिसमें तीन
तागे हों ।

तिपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + पाया] १. तीन पायों की
बैठने की ऊँची चौकी । स्टूल । २. पानी के घड़े रखने की
ऊँची चौकी । ठिकठी । तिगोड़िया । ३. लकड़ी का एक
चौखटा जिसे रंगरेज काम में खाते हैं ।

तिपाड़—संज्ञा पुं० [हि० तीन + पाड़] १. जो तीन पाट जोड़कर

बना हो । उ०—दक्षिण चीर तिपाड़ को लहूंगा । पहिरि
विविध पट मोलन लहूंगा ।—सूर (शब्द०) । २. जिसमें
तीन पल्ले हों । ३. जिसमें तीन किनारे हों ।

तिपारो—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा भाड़ या पोषा
जो बरसात में आपसे आप इधर उधर जमता है । मकोय ।
परपोटा । छोटी रसमरी ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी और सिर पर मुकीकी होती हैं ।
इसमें सकेद फून गुच्छों में लगते हैं । फन संपुट के आकार
के एक भित्तीदार कोश में रहते हैं जिसमें नसों के द्वारा
कई पदल बने रहते हैं ।

तिपुर^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिपुर' । उ०—काली सुर महि-
वास तिपुर जितिय महिबासुर ।—पु० रा०, १ । ६२ ।

तिपैरा—संज्ञा पुं० [हि० तीन + पुर] वह बड़ा कूड़ा जिसमें तीन चरसे
एक साथ चल सकें ।

तिप्त^७—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—सी मुक्त तिप्त हरि वंश
पावे । साथ संगति माँह हरि लिव लावे ।—प्राण०, पृ०
२२४ ।

तिप्ति^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—तिप्ति संतोषि रहे
लिउ लाई । नानक जोती जोति मिलाई ।—प्राण०
पृ० १७७ ।

तिफली^७—संज्ञा पुं० [सं० तिपल + फा० ई (प्रत्य०)] बचपन ।
उ०—पाबद हुमा तिफली जवानी व बुढ़ापा ।—कबीर श०,
पृ० १५० ।

तिपल—संज्ञा पुं० [सं० तिपल्] बच्चा । उ०—कहे आए तिपल
मेरे नुर ऐनी । जो यक सोजन कूँ साधो होर तागा ।—
दक्खिनी०, पृ० ११५ ।

यौ०—तिपल मिजाज = बाल्य प्रकृतिवाला । तिपले प्रश्न = प्रश्न-
विदु । तिपले आतथ = चिनगारी । तिपले मकतब = निरक्षर ।
मूर्ख । अनभिज्ञ । अनाड़ी । तिपले शीरकवार = दुश्मुँहा
बच्चा । तिपलेहिदु = घाल की पुतली । कनीनिका ।

तिब—संज्ञा स्त्री० [सं०] यूनानी चिकित्सा । हकीमी [को०] ।

तिबद्धी—वि० स्त्री० [हि० तीन + बाध] (चारपाई की बुनावट)
जिसमें तीन बाध या रस्सियाँ एक साथ एक एक बार
सीधी जायें ।

तिवाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] घाटा माड़ने का छिछला बड़ा बरतन ।

तिबारा^१—वि० [हि० तीन + बार] तीसरी बार ।

तिबारा^२—संज्ञा पुं० तीन बार उतारा हुआ मद्य ।

तिबारा^३—संज्ञा पुं० [हि० तीन + बार (= दरवाजा)] [स्त्री० तिबारी]
वह घर या कोठरी जिसमें तीन द्वार हों ।

तिबारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] तीन द्वारवाला घर या कोठरी । उ०—
वह मचलती हुई बिसात के बाहर तिबारी में खली आई ।
पसि हाथ में लिप मकबर उसकी ओर देखने लगे ।—इंद्र०,
पृ० ३६ ।

तिबासी—वि० [हि० तीन + बासी] तीन दिन का बासी (बाध
पदांश) ।

तिथिक्रम(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिविक्रम' । उ०—तरेई तीर तिथिक्रम, ताकि क्या करि वे बिदिसा धमिमेची ।—बनारस, पृ० १४८ ।

तिथी—संज्ञा स्त्री० [देश०] डेसारी ।

तिथ्य—संज्ञा स्त्री० [य०] १. यूनानी चिकित्सा शास्त्र । हुकीमी । २. चिकित्सा शास्त्र [को०] ।

थी०—तिथ्ये कदीम = प्राचीन चिकित्सापद्धति । तिथ्ये जदीद = नवीन चिकित्सापद्धति या पारम्पर्य चिकित्सापद्धति ।

तिथ्यत—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + भोट] एक देश जो हिमालय पर्वत के उत्तर पड़ता है ।

विशेष—इस देश को हिंदुस्तान में थोडा कहते हैं । इसके तीन विभाग भाषे जाते हैं । छोटा तिथ्यत, बड़ा तिथ्यत और सास तिथ्यत । तिथ्यत बहुत ठंडा देश है, इससे वहाँ पेड़ पोषे बहुत कम लगे हैं । वहाँ के निवासी साधारणों के मिलते जुलते होते हैं और अधिकतर ऊँच के कंबल, कपड़े पादि बुनकर घपना निर्वाह करते हैं । देश कस्तूरी और चंदर के लिये प्रसिद्ध है । सुरा गाय और कस्तूरी रुग वहाँ बहुत पाए जाते हैं । तिथ्यत के रहनेवाले सब महायान शाखा के बौद्ध हैं । बौद्धों के घनेक मठ और महंत हैं । कैलास पर्वत और मान-सरोवर भील तिथ्यत ही में हैं । ये हिंदू और बौद्ध दोनों के तीर्थ-स्थान हैं । कुछ लोग 'तिथ्यत' को त्रिविष्टप् का अपभ्रंश बतलाते हैं । स्वतंत्र भारत ने इसे चीन को दे दिया और यह देश अब पूर्णतः चीनी शासन में है और वहाँ के प्रमुख बलाई लामो भारत में निवास करते हैं ।

तिथ्यती^१—वि० [हि० तिथ्यत] तिथ्यत संबंधी । तिथ्यत का । तिथ्यत में उत्पन्न । जैसे, तिथ्यती घादमी, तिथ्यती भाषा ।

तिथ्यती^२—संज्ञा स्त्री० तिथ्यत की भाषा ।

तिथ्यती^३—संज्ञा पुं० तिथ्यत देश का रहनेवाला ।

तिथ्यिया—वि० [य० तिथ्यियह] तिथ्य संबंधी । हुकीमी [को०] ।

तिथुवन(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिभुवन' । उ०—तुम तिथुवन तिहुँ काल बिचार बिसारव ।—तुलसी मं०, पृ० ३० ।

तिमंगल(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिमिगल' । उ०—घाठ दिसा वित हरे उवाला । ताता बाँछु तिमंगल वाला ।—रा० क०, पृ० २११ ।

तिमंजिला—वि० [हि० तीन + मंजिल] [वि० स्त्री० तिमंजिली] तीन खंडों का । तीन मरातिष का । जैसे, तिमंजिला मकान ।

तिम^१—संज्ञा पुं० [हि० टिम] नपाड़ा । डंका । दुंदुभी (हि०) ।

तिम(५)—अव्य० [हि०] दे० 'तिमि' । उ०—ता उपपर बालुक्क बीर बंधी तिम सीमह ।—पृ० रा०, १२ । ३० ।

तिमर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिमिर' । उ०—बूझ बिन सूझ पर तिमर लागी ।—तुलसी० श०, पृ० १८ ।

तिमाना—क्रि० स० [देश०] भिगोना । तर करना ।

तिमाशी—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन+माशा] १. तीन भाषे की एक

तोल । २. ४ बी की एक तोल जो पहाड़ी देशों में प्रचलित है ।

तिमिगल—संज्ञा पुं० [सं० तिमिङ्गल] १. समुद्र में रहनेवाला मत्स्य के आकार का एक बड़ा भारी वंतु जो तिमि नामक बड़े मत्स्य को भी निगल सकता है । बड़ा भारी ह्वेल । उ०—रत्न सोध के वातायन, जिनमें आता मधु मदिर सपीर । टकराती होगी प्रब उनमे तिमिगलों की भीड़ मधीर ।—कामायनी, पृ० १२ ।

तिमिगलाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दक्षिण का एक देशविभाग जिसके अंतर्गत संका आदि हैं और वहाँ के निवासी तिमिगल मत्स्य का मांस खाते हैं (बृहत्संहिता) । २. उक्त देश का निवासी ।

तिमिगिल—संज्ञा पुं० [सं० तिमिङ्गिल] दे० 'तिमिगल' [को०] ।

तिमि^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र में रहनेवाला मछली के आकार का एक बड़ा भारी वंतु ।

विशेष—लोगों का अनुमान है कि यह वंतु ह्वेल है ।

२. समुद्र । ३. घाँव का एक रोग जिसमें रात को सुभाई नहीं पड़ता । रतीषी । ४. मछली (की०) ।

तिमि(५)^२—अव्य० [सं० तद् + इव = इमि] उस प्रकार । वैधे । उ०—तिमि तिमि मारवणीतण्ड तन तरण पड बाह । डोला०, पृ० १२ ।

विशेष—इसका व्यवहार 'जिमि' के साथ होता है ।

तिमिकोश—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

तिमिचाती—संज्ञा पुं० [सं० तिमिचातिम्] मछेरा । मछुआ [को०] ।

तिमिज—संज्ञा पुं० [सं०] मोती [को०] ।

तिमित^१—वि० [सं०] १. निरबल । अचल । स्थिर । २. विलस । भीगा । धाँद । ३. शांत । धीर (की०) ।

तिमित(५)^२—वि० [सं० तम] काला । उ०—नयन सरोज दुहू बह नीर । काजर पखरि पखरि पर चीर । केहि तिमित भेज सरण तुमस ।—विद्यापति, पृ० ३७३ ।

तिमिधार—संज्ञा पुं० [सं० तम + धार] धंधकार । धंधेरा । उ०—मनो कमल मुकलित खलित छयो सघन तिमिधार ।—सं० सप्तक, पृ० ३४५ ।

तिमिध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] शंबर नामक दैत्य जिसे मारकर राम-चंद्र ने ब्रह्मा से दिव्यास्त्र प्राप्त किया था ।

तिमिमाली—संज्ञा पुं० [सं० तिमिमालिन्] समुद्र [को०] ।

तिमिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. धंधकार । धंधेरा । उ०—काल गरल है तिमिर अपारा ।—कबीर सा०, पृ० २ । २. घाँव का एक रोग ।

विशेष—इसके घनेक भेद सुश्रुत ने बतलाए हैं । घाँवों के धुंधला दिखाई पड़ना, चीजें रंग बिरंग की दिखाई पड़ना, रात को न दिखाई पड़ना आदि सब बोध इसी के अंतर्गत माने गए हैं ।

३. एक पेड़ । (वाल्मीकि०) ।

तिमिरजा—वि० बी० [सं० तिमिर+जा] अंधकार से उत्पन्न ।
उ०—सहाराई दिग्भाति तिमिरजा ओतस्विनी कराली ।
—अपभ्रंश, पृ० ५१ ।

तिमिरजाक—संज्ञा पुं० [सं० तिमिर+जाल] अंधकारसमूह । अना
अंधकार । उ०—यस स्वप्न निजा का तिमिरजाक नव
किरणों से धो लो ।—अपरा, पृ० १६ ।

तिमिरनुद्—वि० [सं०] अंधकार का नाश करनेवाला ।

तिमिरनुद्—संज्ञा पुं० सूर्य ।

तिमिरभिद्—वि० [सं०] अंधकार को भेदने या नाश करनेवाला ।

तिमिरभिद्—संज्ञा पुं० सूर्य ।

तिमिरमय—संज्ञा पुं० [सं०] १. राहु । २. ग्रहण (को०) ।

तिमिरमय—वि० अंधकारपूक्त (को०) ।

तिमिररिधु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । आस्कर ।

तिमिरारु—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिमिरारि' । उ०—होइ यहुकर
कोपी रस बैई । होइ तिमिरार ओठ जोहि बैई ।—ब्रंभा०,
पृ० ७९

तिमिरारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार का वधु । २. सूर्य ।

तिमिरारो—संज्ञा बी० [सं० तिमिरारो] अंधकार का समूह ।
संवेरा । उ०—यहुप से नैक बर बंधुबल ऐष होठ श्री फल
के कुछ कब देखि तिमिरारो ली ।—द्वैप (अव०) ।

तिमिरावलि—संज्ञा बी० [सं०] अंधकार का समूह । उ०—तिमि-
रावलि सारे दंतक के हित मैन धरे मनो दीपक ह्वे ।—
सुंदरीसंस्कृत (अव०) ।

तिमिर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिमिर' । उ०—जय गुप्त तेज
प्रचंड तिमिर पाण्डे विह्वल ।—नट०, पृ० ६ ।

तिमिरी—संज्ञा पुं० [सं० तिमिरिन्] एक कोड़ा (को०) ।

तिमिला—संज्ञा बी० [सं०] एक बाध यंत्र (को०) ।

तिमिव—संज्ञा पुं० [सं०] १. ककड़ी । फूल । २. पेठा । अफेव कुम्हड़ा ।
३. तरबूज ।

तिमो—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिमि मत्स्य । २. बछ की एक कन्या को
कश्यप की स्त्री श्रीर तिमिलों की माता थी ।

तिमीर—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम ।

तिमुहानी—संज्ञा बी० [हि० तीन+फा० मुहावा] १. वह स्थान
जहाँ तीन ओर जाके को तीन फाटक या मार्ग हों । तिर-
मुहानी । उ०—विधिव पास बाखक तिमुहानी । राम सख
सिद्ध समुहानी ।—मानस, १।४० । २. वह स्थान जहाँ तीन
ओर से तीन नदियाँ आकर मिली हों ।

तिम्भगत—वि० [?] १. अस्तमित । २. प्रखर प्रतिवाधा । उ०—
अर विम्भर सग मन हय नश्य । रहिय तिम्यगत बुद्ध हय ।
—पृ० रा०, ७।१८१ ।

तिय—संज्ञा बी० [सं० बी०] १. स्त्री । धीरत । उ०—के लख
तिय गन बदनकमल की अलकत आई ।—भारतेंदु प्र०,
भा० २, पृ० ४५५ । २. पत्नी । भार्या । जोक ।

तियतरा—वि० [सं० त्रि+अन्तर] [बी० तियतरी] वह बेटा जो
तीन बेटियों के बाव पैदा हो । तेतर ।

तियरासि—वि० [हि० तिय+राशि] कन्या राशि । उ०—ससि मीन
तीस कटि एक अंस । तियरासि कछो सुरभानुतंस ।—ह०
रासो, पृ० २२ ।

तियला—संज्ञा पुं० [सि० तिय+ला (प्रत्य०)] स्त्रियों का एक
पहनावा । उ०—ब्राह्मणियों को इच्छा भोजन करवाय सुघेर
तियले पहराय दक्षिणा दी ।—लल्लु० (अव०) ।

तियलिंग—संज्ञा पुं० [हि० तिय+लिंग] दे० 'स्त्रीलिंग' । उ०—
धारादिक तियलिंग ए, कवि भाषा के मोहि ।—पोद्दार अभि०
प्र०, पृ० ५३२ ।

तिया—संज्ञा पुं० [सं० त्रि] १. गंजीके या ठाण का वह पत्ता जिस-
पर तीन बूटियाँ होती हैं । तिकी । तिकी । २. नरकीपुर के
खेल में वह दान जो पूरे पूरे संडों के गिनने के बाद तीन
कोड़ियाँ बचने पर होता है ।

तिया—संज्ञा बी० [हि०] दे० 'तिय' । उ०—पुनि भीपर खेली
के हिया । जो तिर हेस रही सो तिया ।—जायसी प्र०
(गुप्त), पृ० ३३२ ।

तियाग—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्याग' । उ०—तीखो खाग
तियाग, जेहुन बेडो जनमियो ।—बाँकी०, भा० ३, पृ० १२ ।

तियागना—वि० सं० [सं० त्याग+ना (प्रत्य०)] त्याग करना ।
छोड़ना । उ०—मात पिता सब कुटुंब तियागे, सुरत पिया
पर लावे ।—कबीर रा०, भा० १, पृ० १०३ ।

तियागी—वि० [सं० त्यागी] त्याग करनेवाला । छोड़नेवाला ।
उ०—बलि विक्रम दानी बड़ कहे । हातिम करन तियागी
भई ।—जायसी (अव०) ।

तिरंग—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिरंगा' । उ०—फहर तिरंग चक्रदल
प्रतिपल । हुरता जन मन भय संशय, जय जय हे !—युगपथ,
पृ० ४९ ।

तिरंगा—संज्ञा पुं० [हि० तीत+रंग] तीन रंगोंवाला राष्ट्रीय
ध्वज । उ०—आज तिरंगे से दे अंबर रंग तरंगित ।—युगपथ,
पृ० ६१ ।

तिरंगा—वि० तीन रंगवाला । तीन रंगों का ।

तिरकट—संज्ञा पुं० [?] आगे का पाल । अगला पाल (लक्ष०) ।

तिरकट गावा सवाई—संज्ञा पुं० [?] आगे का धीर सबसे उपरी
सिरे पर का पाख (लक्ष०) ।

तिरकट गावी—संज्ञा पुं० [?] सिरे पर का पाल (लक्ष०) ।

तिरकट डोल—संज्ञा पुं० [?] आगे का मस्तूल (लक्ष०) ।

तिरकट तवर—संज्ञा पुं० [?] वह छोटा चौकोर आगे का पाल
जो सबसे बड़े मस्तूल के ऊपर आगे की ओर लगाया जाता
है । इसका व्यवहार बहुत बीसी हवा खचने के समय होता
है (लक्ष०) ।

तिरकट सवर—संज्ञा पुं० [?] सबसे ऊपर का पाल (लक्ष०) ।

तिरकट सवाई—संज्ञा पुं० [?] आगे का वह पाल जो उस रस्से में
बँधा रहता है जो मस्तूल के सहारे के लिये लगाया जाता
है (लक्ष०) ।

तिरकना—क्रि० प्र० [भनु०] तड़कना । चटखना । फट जाना ।

तिरकसा—वि० [सं० तिरस्] टेढ़ा ।

तिरकाना—क्रि० स० [भनु०] १. ढीला छोड़ना । —(सक०) । २. रस्सी ढीली करना । लहासी छोड़ना (लहा०) ।

तिरकुटी—संज्ञा पु० [सं० त्रिकटु] सोंठ, मिर्च, पीपल इन तीन कड़ुई औषधियों का समूह ।

तिरकुटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—झिलमिलि झलक मूर तिरकुटी महल में ।—पलटू०, पृ० ६४ ।

तिरकोन—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्रिकोण' । उ०—त्रिगुण रूप तिरकोन यंत्र बनि मध्य बिंदु शिवदानी ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४६ ।

तिरखा—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] दे० 'तृषा' ।

तिरखित—वि० [सं० तृषित] दे० 'तृषित' ।

तिरखूँटा—वि० [सं० त्रि + हि० खूँट] [वि० स्त्री० तिरखूँटी] जिसमें तीन खूँट या कोने हों । त्रिकोना ।

तिरगुण—वि० [हि०] दे० 'त्रिगुण' । उ०—नौ गुण सुत संयोग बखानूँ तिरगुण गाँठ दवानी ।—कबीर प्र०, पृ० १७५ ।

तिरच्छ—संज्ञा पु० [सं०] तिनिस वृक्ष ।

तिरछही—संज्ञा स्त्री० [हि० तिरछा] तिरछापन ।

तिरछ उड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिरछा + उड़ना] मालखंभ की एक कसरत जिसमें खेलाड़ी के शरीर का कोई भाग जमीन पर नहीं लगता, एक कंधा झुकाकर और एक पाँव उठाकर वह शरीर को चक्कर देता है । इसे छलाँग भी कहते हैं ।

तिरछन—वि० [हि०] दे० 'तिरछा' । उ०—हंस उबारें जो भ्रम टारें तरनी तिरछन सो धारिए ।—सं० दरिया०, पृ० १० ।

तिरछा—वि० [सं० तिर्यक् या तिरस्] [स्त्री० तिरछी] १. जो अपने छाधार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो । जो न बिलकुल खड़ा हो और न बिलकुल झुका हो । जो न ठीक ऊपर की ओर गया हो और न ठीक बगल की ओर । जो ठीक सामने की ओर न जाकर इधर उधर हटकर गया हो । जैसे, तिरछी लकीर ।

विशेष—'टेढ़ा' और 'तिरछा' में अंतर है । टेढ़ा वह है जो अपने लक्ष्य पर सीधा न गया हो, इधर उधर झुकता या घुमता हुआ गया हो । पर तिरछा वह है जो सीधा तो गया हो, पर जिसका लक्ष्य ठीक सामने, ठीक ऊपर या ठीक बगल में न हो । (टेढ़ी रेखा ~; तिरछी रेखा /) ।

यौ०—बाँका तिरछा = छबीला । जैसे, बाँका तिरछा जवान ।

मुहा०—तिरछी टोपी = बगल में कुछ झुकाकर सिर पर रखी टोपी । तिरछी चितवन = बिना सिर फेरे हुए बगल की ओर दृष्टि ।

४-५४

विशेष—जब लोगों की दृष्टि बचाकर किसी ओर लाकना होता है, तब लोग, विशेषतः प्रेमी लोग, इस प्रकार की दृष्टि से देखते हैं ।

तिरछी नजर = दे० 'तिरछी चितवन' । उ०—हुए एक ध्यान में जख्मी हजारों । जिधर उम यार ने तिरछी नजर की ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २६ । तिरछी बात या तिरछा वचन = कटु वाक्य । अप्रिय शब्द । उ०—हरि उदास सुनि तिरछे ।—सबल (शब्द०) ।

२. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो प्रायः अस्तर के काम में आता है ।

तिरछाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तिरछा + ई (प्रत्य०)] तिरछापन ।

तिरछाना—क्रि० प्र० [हि० तिरछा] तिरछा होना ।

तिरछापन—संज्ञा पु० [हि० तिरछा + पन (प्रत्य०)] तिरछा होने का भाव ।

तिरछी—वि० स्त्री० [हि० तिरछा] दे० 'तिरछा' ।

तिरछी—संज्ञा स्त्री० [देश०] घर-दर के वे अपरिपक्व दाने जिनकी दाल नहीं बन सकती । इनको धलगाने के बाद छूनी बनाकर रोटी बनाते हैं या जानवरों को खिला देते हैं ।

तिरछी बैठक—संज्ञा स्त्री० [हि० तिरछी + बैठक] मालखंभ की एक कसरत जिसमें दोनों पैर रस्सी की ऐंठन की तरह परस्पर गुथकर ऊपर उठते हैं ।

तिरछे—क्रि० वि० [हि० तिरछा] तिरछेपन के साथ । तिरछापन लिए हुए ।

तिरछौही—वि० [हि० तिरछा + मोही (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तिरछौहीं] कुछ तिरछा । जो कुछ तिरछापन लिए हो । जैसे, तिरछौहीं बीठ ।

तिरछौहें—क्रि० वि० [हि० तिरछौही] तिरछापन लिए हुए । तिरछेपन के साथ । यक़्ता से । जैसे, तिरछौहें ताकना ।

तिरछिका—संज्ञा पु० [सं० तृण] दे० 'तिनका' । उ०—तिरछिका झोठ सिष्ट का करता जुग देखि लुकाना ।—रामानंद०, पृ० १६ ।

तिरतालीसा—वि० [हि०] दे० 'तैतालीस' ।

तिरतिराना—क्रि० प्र० [भनु०] बूँद बूँद करके टपकना ।

तिरथ—संज्ञा पु० [सं० तीर्थ] दे० 'तीर्थ' । उ०—पहुँची भँवरिया बेद पढ़े मुनि ज्ञानी हो । दुसरि भँवरिया तिरथ, जाको निरमल पानी हो ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० ४ ।

तिरदंडी—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्रिदंडी-१' । उ०—नेम अचार करे कोउ कितनी, कवि कोबिब सब खुसख । तिरदंडी सरबंगी नागा, मरे विद्यास धो मुख ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ११ ।

तिरदश—संज्ञा पु० [सं० त्रिदश] दे० 'त्रिदश-१' । उ०—ताकी कन्या कनिमनी मोहे तिरदशे ।—प्रकवरी०, पृ० ३३४ ।

तिरदेव—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्रिदेव' । उ०—निराकार यम तहाँ ब जाई । तिरदेवन की कोन खलाई ।—कबीर सा०, पृ० ४१२ ।

तिरन—संज्ञा पुं० [हि० तिरना] तिरने की क्रिया या भाव ।
उ०—बुढ़े के दर से तिरन को उपाह करे ।—सुंदर० प्र०,
भा० २, पृ० १५५ ।

तिरना—क्रि० प्र० [सं० तरण] १. पानी के ऊपर धाना या
ठहरना । पानी में न डूबकर सतह के ऊपर रहना ।
उतराना । उ०—जब तिरिया पाहुण सुबह, पतसिय नाम
प्रवाप ।—रघु० क०, पृ० २ । २. तिरना । पेरना । ३. पार
होना । ४. तरना । मुक्त होना ।

संयो० क्रि०—जाना

तिरनी—संज्ञा स्त्री० [देश० या हि० तिरनी] १. वह डोरी जिससे
घाघरा या धोती नाभि के पास बंधी रहती है । नीची ।
तिन्नी । फुबती । २. स्त्रियों के घाघरे या धोती का वह भाग
जो नाभि के नीचे पड़ता है । उ०—बेनी सुमग बितंबनि
डोलत मंदगामिनी नारी । सूचन जचन बाँधि नाराबँध तिरनी
पर छवि भारी ।—सूर (शब्द०) ।

तिरप—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि] तृथ में एक प्रकार का ताब जिसे
जिसम या तिहाई कहते हैं । उ०—तिरप भेति चपला सी
जमकति भमकति भुषण धंभ । या छवि पर उपमा कहुं नाहीं
बिरपत बिबध धंभ ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लेना ।

तिरपटा—वि० [देश०] १. तिरछा । टेढ़ा । टिकड़िङ्गा । २.
पुश्किल । कठिन । विकट ।

तिरपटा—वि० [देश०] तिरछा ताकनेवाला । भेंगा । पेंचाठाना ।
तिरपत—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—हरिया पीके मोल कर,
सो तिरपत हो जाय ।—हरिया० बानी, पृ० ११ ।

तिरपति—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृप्ति' । उ०—पायो पानी
हुँव चौंन है तिरपति प्यास ब जाई ।—जब० भा०, पृ० ६९ ।

तिरपन—वि० [सं० त्रिपञ्चाशत्, प्रा० त्रिपण] जो गिनती में
पचास से तीन घोर अधिक हो । पचास के तीव ऊपर ।

तिरपन—संज्ञा पुं० १. पचास के तीव अधिक की संख्या का भूचक
संज्ञा जो इस प्रकार लिखा जाता है ।—५९ ।

तिरपाई—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपाथ या त्रि + पथी] तीव पाथों की
ऊँची चौकी । झूल ।

तिरपाल—संज्ञा पुं० [सं० तृण + हि० पाचना (= बिछाना)] कुस या
छरकंदों के बड़े पूसे जो छाजन में खपड़ों के नीचे बिछाते
हैं । मुड़ा ।

तिरपाल—संज्ञा पुं० [सं० टारपाथिय] रोबन चढ़ा हुआ कवच ।
राज चढ़ाया हुआ टाठ ।

तिरपित—वि० [सं० तृप्त] १. 'तृप्त' ।

तिरपुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपुटी] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—
तिरपुटिय भाज गिल कमल मूर । इह भीति ताव तप तपनि
सूर ।—पृ० रा०, १ । ४८६ ।

तिरपोजिया—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + हि० पोल (= फाटक)] वह स्थान

जहाँ बराबर के ऐसे तीन बड़े फाटक हों जिनसे होकर हाथी,
घोड़े, ऊँट इत्यादि सवारियाँ अच्छी तरह निकल सके ।

विशेष—ऐसे फाटक कियों या महुलों के सामने या बड़े बाजारों
के बीच होते हैं ।

तिरफला—संज्ञा पुं० [सं० त्रिफला] दे० 'त्रिफला' ।

तिरबेनी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिबेणी] दे० 'त्रिबेणी' ।

तिरबो—संज्ञा स्त्री० [हि० तिरना] सिध देश की एक प्रकार की
भाब का नाम ।

तिरबो—संज्ञा पुं० [हि० तरना] तिरने की क्रिया । मुक्ति-
प्राप्ति । मोक्ष । उ०—जपे समुक्त नित जाय, सागरभव तिरबो
सहज ।—रघु० क०, पृ० २ ।

तिरभंगी—वि० [हि०] दे० 'त्रिभंगी' । उ०—का बहुमाना
किति कंत धीरव तिरभंगी ।—पृ० रा०, १ । ७९७ ।

तिरमिरा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिमिर] १. दुर्बलता के कारण दृष्टि
का एक दोष जिसमें धाँखें प्रकाश के सामने नहीं ठहरती घोर
साकने में कभी भँवेरा, कभी प्रनेक प्रकार के रंग, घोर कभी
छिटकती हुई चिमसारियाँ या तारे के बिखार पड़ते हैं । २.
कमजोरी के साकने में जो तारे के छिटकते दिखाई पड़ते हैं,
उन्हें भी तिरमिरे कहते हैं । ३. दीर्घ प्रकाश या बहरी
जमक के सामने दृष्टि की अस्थिरता । तेज रोशनी में बजर
का न ठहरना । चकाचौध ।

क्रि० प्र०—लपना ।

तिरमिरा—संज्ञा पुं० [हि० तेष + मिचन] धी, तेष या चिकनाई
के छोटें जो पाबो, दुध या घोर किसी प्रव पदार्थ (जैसे, दाब,
रसा धादि) के ऊपर तैरते बिखार देते हैं ।

तिरमिराना—क्रि० प्र० [हि० तिरमिरा] (दृष्टि का) प्रकाश के
सामने न ठहरना । तेष रोशनी या जमक के सामने (धाँखों
का) झपना । चौधना । चौधियाना ।

तिरमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिमुहानी' ।

तिरलोक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोक] दे० 'त्रिलोक' । उ०—सकल
तिरलोक जो गावें ।—घड०, पृ० ३९६ ।

तिरलोकी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिरलोक] दे० 'त्रिलोकी' ।

तिरबट—संज्ञा [देश०] एक प्रकार का राग जो सराने या तिल्लाने
का एक भेद है ।

तिरवर—वि० [हि० तिरवराचा] मिलमिल । चकाचौध उत्पन्न
करनेवाला । उ०—दादू जोति जमके तिरवर ।—दादू०,
पृ० २४० ।

तिरवराना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तिरमिराना' ।

तिरवा—संज्ञा पुं० [क्रा०] सतनी दूरी जहाँ तक एक तीर जा सके ।

तिरवाही—संज्ञा पुं० [सं० तीर + वाह] मदी के तीर की भूमि ।

तिरवाह—क्रि० वि० किनारे किनारे । तट से

तिरश्चीन—वि० [सं०] १. तिरछा । २. टेढ़ा । कुटिब ।

तिरश्चीन गति—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लयुद्ध की एक गति । कुप्ती
का एक पैतरा ।

तिरसंजु^७—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसंजु] दे० 'त्रिसंजु'। उ०—तिरसंजु
येहें सङ्ग, बाक सम ए जानि।—पोद्दार अभि० सं०, पृ० ५३४।

तिरस्—अ० [सं०] अंतर्धान, तिरस्कार, आच्छादन, तिरछापन
आदि अर्थों का बोधक शब्द [को०]।

तिरसठ^१—वि० [सं० त्रिषष्ठि, प्रा० तिसष्टि] जो गिनती में साठ
से तीन अधिक हो। साठ से तीन ऊपर। उ०—तिरसठ
प्रकार की राग रागिनी छेड़ी।—कबीर सं०, पृ० ४३।

तिरसठ^२—संज्ञा पुं० १. वह संख्या जो साठ से तीन अधिक हो। २.
उक्त संख्या को सूचित करनेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा
जाता है—६३।

तिरसना^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृष्णा'। उ०—तिरसना के
बस में बहकर आबनी इसी तरह अपनी जिदधी चोपट करता
है।—पोद्दार, पृ० २८५।

तिरसा—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + हि० रस ?] वह पाख जिसका एक
सिरा चौड़ा और एक संकरा होता है (मत्त०)।

तिरसूत^७—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसुत] तीन तारों का यज्ञोपवीत।
यज्ञोपवीत। उ०—ताके परछों पाँच ब्रह्म अपने को पावे।
अर्म अनेऊ तोरि प्रेम तिरसूत बनावे।—पद्म०, भा० १,
पृ० ११३।

तिरसूल^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिशूल'। उ०—जो लोको काँटा
बुनै, साहि बोलू तू फूल। तोहि फूल को फूल है, बाको है
तिरसूल।—संतबाणी०, पृ० ४४।

तिरसूली^७—संज्ञा पुं० [हि० तिरसूल] दे० 'त्रिशूली'। उ०—महा
मोहनी मय माया मोहे तिरसूली।—नंद०, प्र०, पृ० ३८।

तिरस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] आच्छादक। परदा करनेवाला। ढाँकने-
वाला।

तिरस्करिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोट। धाड़। परदा। कनात।
बिक। ३. वह विद्या जिसके द्वारा मनुष्य अर्थग्रह हो सकता है।

तिरस्करी—संज्ञा पुं० [सं० तिरस्करिन्] [स्त्री० तिरस्करिणी] आच्छा-
दन। परदा।

तिरस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तिरस्कृत] १. अनादर। अपमान।
२. अस्मंसा। फटकार। ३. अनादरपूर्वक त्याग। ४. साहित्य
के अंतर्गत एक अर्थांतरिक जिसमें गुणान्वित वस्तु में दुर्गुण
दिखाकर उसका तिरस्कार किया जाता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तिरस्कार्य—वि० [सं०] तिरस्कार योग्य। तिरस्कृत होने लायक।

तिरस्कृत—वि० [सं०] १. जिसका तिरस्कार किया गया हो। अनादर।
२. अनादरपूर्वक त्याग किया हुआ। ३. आच्छादित। परदे
में छिपा हुआ। ४. तब के अनुसार (वह अर्थ) जिसके अर्थ
में बकार हो और अस्तक पर दो कवच और अस्त हों।

तिरस्त्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिरस्कार। अनादर। २. आच्छा-
दन। ३. वस्त्र। पहरावा।

तिरहा^१—संज्ञा पुं० [दे०] एक फलिया जो बान के फूल को नष्ट
कर देता है।

तिरहुत—संज्ञा पुं० [सं० तीरभुक्ति] [वि० तिरहुतिया] निविजा प्रवेश

जिसके अंतर्गत आजकल बिहार के दो जिले हैं—मुज-
फ्फरपुर और दरभंगा। उ०—तिरहुत देस बनीती गई।—
चट पु० ३५१।

तिरहुति—संज्ञा स्त्री० [सं० तीरभुक्ति] १. एक प्रकार का गीत जो
तिरहुत में गाया जाता है। २. दे० 'तिरहुत'।

यी०—तिरहुतिनाथ = राजा जनक। उ० देखे सुने सुपति अनेक
झूठे झूठे नाम, सबि तिरहुतिनाथ साखि देति मही है।—
सुसही सं०, पृ० ३१४।

तिरहुतिया^१—वि० [हि० तिरहुत] तिरहुत का। तिरहुत संबंधी।

तिरहुतिया^२—संज्ञा पुं० तिरहुत का रहनेवाला।

तिरहुतिया^३—संज्ञा स्त्री० तिरहुत की बोली।

तिरहुती—वि०, संज्ञा पुं०, स्त्री० [हि०] दे० 'तिरहुतिया'।

तिरहेल—वि० [सं० त्रि] क्रम में तीसरा। जो तीसरे स्थान पर हो।

तिरा—संज्ञा पुं० [दे०] एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकलता
है। एक तेलहन। तिररा।

तिरादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोत।

तिरानबे^१—वि० [सं० त्रिनवति, प्रा० तिनवह] जो गिनती में नब्बे
से तीन अधिक हो। तीन ऊपर नब्बे।

तिरानबे^२—संज्ञा पुं० १. नब्बे से तीन अधिक की संख्या। २. उक्त
संख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६३।

तिराना^१—क्रि० सं० [हि० तिरना] १. पानी के ऊपर ठहराना।
२. पानी के ऊपर चलाना। तैराना। ३. पार करना। ४.
उबारना। तारना। निस्तार करना।

तिराना^७—क्रि० सं० [हि० तिरना] पानी के ऊपर रहना।
उठराना।—उ०—पानी परधर आज तिराना।—चट०,
पृ० २३३।

तिराना^३—क्रि० अ० [सं० तीर से नामिक धातु] तीर पर या
किनारे जा जाना।

तिरावण^७—संज्ञा पुं० [हि० तिरना] तिरने की क्रिया या भाव।
उ०—सो धोदाता पखर में तिरै, तिरावण जोग।—दादू०,
पृ० ६।

तिरास—संज्ञा पुं० [सं० त्रास] दे० 'त्रास'। उ०—कई बार प्रागे गए
छप्पन जहाँ तिरास।—सहस्र० बानी ०, पृ० ३३।

तिरासना^१—क्रि० सं० [सं० त्रासन] त्रास दिखाना। डराना।
अपभ्रीत करना।

तिरासना^२—क्रि० अ० [सं० तृषिष] व्यासा होना। व्यास लगना।

तिरासी^१—वि० [सं० त्र्यसीति, प्रा० तियासीति] जो गिनती में
अस्सी से तीन अधिक हो। तीन ऊपर अस्सी।

तिरासी^२—संज्ञा पुं० १. अस्सी से तीन अधिक की संख्या। २. उक्त
संख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८३।

तिराहा—संज्ञा पुं० [हि० ती < सं० त्रि + प्रा० राह] वह स्थान जहाँ
से तीन रास्ते तीन ओर को गए हों। तिरमुहानी।

तिराही—संज्ञा स्त्री० [हि० तिराह] तिराह नामक स्थान की बनी
कटारी या तखवार।

तिरि(५) - वि० [सं० त्रि] तीन । उ०—पुनि तिहि ठाउँ परी
तिरि रेखा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६४ ।

तिरिआ(५) - संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिरिया' ।

तिरिगत्त(५) - संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिगत' । उ०—तिरिगत्त राज सामस
बुझ्यो दिविष पंग संजोगि मुप ।—पृ० रा०, ११।२४५८ ।

तिरिजिहक - संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़ ।

तिरिनः - संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तृण' ।

तिरिम - संज्ञा पुं० [सं०] शालिभेद । एक प्रकार का धान ।

तिरिय(५) - वि० [सं० तिर्यक्] वक्र । कुटिल । उ०—तिरिय
वक्र अक्षक न ऊरध वक्र प्रमान ।—पृ० रा०, ७ । १७० ।

तिरिया - संज्ञा पुं० [सं०] शालिभेद । एक प्रकार का धान ।

तिरिया - संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री । झोरत । उ०—तुम तिरिया
मति हीन तुम्हारी ।—जायसी (शब्द०) ।

यौ० - तिरिया चरितार = स्त्रियों का रहस्य या कीमल ।

तिरिया - संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बीस जो नेपाल में होता
है । इसे धोला भी कहते हैं ।

तिरिविष्टप(५) - संज्ञा पुं० [सं० त्रिविष्टप] दे० 'त्रिविष्टप' । उ०—
स्वर्ग, नाक, स्वर, शी, त्रिविष्टप, विष्ट, तिरिविष्टप होइ ।—नंद०
पृ०, पृ० १०८ ।

तिरिसना(५) - संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृष्णा' । उ०—लोभ मोह
हुंकार तिरिसना, संग लोभे कोर ।—कबीर श०, भा० ३,
पृ० ३१ ।

तिरोछन(५) - वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० तीक्ष्ण । उ०—पीषी ध्यान
छोरि के लाया । जैन तिरोछन भई अति बाँका ।—सं०
हरिया, पृ० ३ ।

तिरीआ(५) - वि० [हि०] 'तिरिआ' ।

तिरीछो(५) - वि० [हि०] दे० 'तिरिआ' । उ०—घागुन इनके अंतर
बरयो । ऊखन तनक तिरीछो करयो ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५४

तिरीट - संज्ञा पुं० [सं०] १ लोभ । लोभ । २. किरीट ।

तिरीफल - संज्ञा पुं० [सं० स्त्रीफल] इन्ता वृक्ष ।

तिरीबिरी - वि० [हि०] दे० 'तिडीबिडी' ।

तिरेदा - संज्ञा पुं० [सं० तरगढ] १ समुद्र में तैरता हुआ पीपा जो
संकेत के लिये किसी ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ पानी
छिछला होता है, चट्टानें होती हैं, या इसी प्रकार की और
कोई बाधा होती है ।

विशेष - ये पीपे कई आकार प्रकार के होते हैं । किसी किसी के
ऊपर घटा या सीटी लगी रहती है ।

२. मछली मारने की बंसी में कंटिया से हाथ डेढ़ हाथ ऊपर बाँधी
हुई पाँच छह अंगुल की लकड़ी जो पानी पर तैरती रहती है
और जिसके डूबने से मछली के फंसने का पता लगता
है । तरेदा ।

तिरै - संज्ञा पुं० [अनु०] फीसवानों का एक शब्द जिसे वे नहाते हुए
हृष्ट हाथियों की सेटाने के लिये बोलते हैं ।

तिरोजनपद - संज्ञा पुं० [सं०] कीटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार अन्य
राष्ट्र का मनुष्य । विदेशी ।

तिरोधान - संज्ञा पुं० [सं०] १. अंतर्धान । अदृश्य । गोपन । २.
आच्छादन । पर्दा । आवरण । परिधान (को०) ।

तिरोधायक - संज्ञा पुं० [सं०] झाड़ करनेवाला । छिपानेवाला ।
गुप्त करनेवाला ।

तिरोभाव - संज्ञा पुं० [सं०] १. अंतर्धान । अदृश्य । २.
गोपन । छिपाव ।

तिरोभूत - वि० [सं०] गुप्त । छिपा हुआ । अदृष्ट । अंतर्हित । गायब ।

तिरोहित - वि० [सं०] १. छिपा हुआ । अंतर्हित । अदृष्ट । उ०—
आज तिरोहित हुआ कहाँ वह मधु से पूर्ण अनंत वसंत ?—
कामायनी, पृ० १० । २. आच्छादित । ढका हुआ ।

तिरोछा - वि० [हि०] दे० 'तिरिआ' । उ०—कठिन बचन सुनि
अबन जानकी सकी न बचन सहार । तृण अंतर दै दृष्टि
तिरोछी बई नैन जलवार ।—सूर (शब्द०) ।

तिरौवा - संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिरेवा' ।

तिर्य'च' - वि० [सं० तिर्य'च] १. तिरिआ । टेढ़ा । वक्र । झाड़ा (को०)

तिर्य'च' - संज्ञा पुं० [स्त्री० तिर्य'ची] १. पक्षी । २. पशु । ३. जीव-
जगत् या वनस्पति (देव) ।

तिर्य'चानुपूर्वी - संज्ञा स्त्री० [सं० तिर्य'चानुपूर्वी] जैन शास्त्रानुसार जीव
की वह गति जिसमें उसे नियंत्रणोनि में जाते हुए कुछ काल तक
रहना पड़ता है ।

तिर्य'ची - संज्ञा स्त्री० [सं० तिर्य'ची] पशु पक्षियों की मादा ।

तिरुंग - संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिगुण' । उ०—इ कहे ठगा न कोइ,
लिप है तिगुंन गीसी ।—पलटू, भा० १, पृ० ८३ ।

तिरेव(५) - संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिदेव' । उ०—कहैं कबीर यह ज्ञान
तिरेव का ।—कबीर रे०, पृ० ३४ ।

तिरिपित(५) - वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—बिन मुँड के बहु करे अरि
तिरिपित कियो त्रिपुरारि है ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २१ ।

तिर्यक् - वि० [सं०] तिरिआ । झाड़ा । टेढ़ा ।

विशेष - मनुष्य को छोड़ पशु पक्षी आदि जीव तिर्यक् कहलाते हैं
क्योंकि लड़े होने में उनके शरीर का विस्तार ऊपर की ओर
नहीं रहता, झाड़ा होता है । इनका खाया हुआ अन्न सीधे
ऊपर से नीचे की ओर नहीं जाता, बल्कि झाड़ा होकर पेट में
जाता है ।

तिर्यक् - क्रि० वि० बक्रतापूर्वक । टेढ़ेपन के साथ (को०) ।

तिर्यक् - संज्ञा पुं० १. पशु । २. पक्षी (को०) ।

तिर्यक्ता - संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरिआपन । झाड़ापन ।

तिर्यक्त्व - संज्ञा पुं० [सं०] तिरिआपन । झाड़ापन ।

तिर्यक्पाती - वि० [सं० तिर्यक्पातिन्] [वि० स्त्री० तिर्यक्पातिनी] झाड़ा
फेलाया या रखा हुआ । बेड़ा रखा हुआ ।

तिर्यक्प्रमाण - संज्ञा पुं० [सं०] चौड़ाई (को०) ।

तिर्यक्प्रेक्षण - संज्ञा पुं० [सं०] तिरिछी चितवन (को०) ।

तिर्यक्भेद—संज्ञा पु० [सं०] दो सहारों पर टिकी हुई वस्तु का बीच में दबाव पड़ने से टूटना ।

तिर्यक्स्त्रोतस्—संज्ञा पु० [सं०] १. वह जिसका फेलाव आड़ा हो । २. जीव जिसके पेट में खाया हुआ आहार आड़ा होकर जाता हो । वह जीव जिसका आहार निगलने का नल सड़ा न हो, आड़ा हो । पशु पक्षी ।

विशेष—पुराणों में जीव सृष्टि के त्र्यम्बोतस्, तिर्यक्स्त्रोतस् आदि कई वर्ग किए गए हैं । भागवत में तिर्यक्स्त्रोतस् २८ प्रकार के मने गए हैं—(१) द्विधुर (दो खुरवाले)—गाय, बकरी, भैंस, कृष्णसार मृग, सुभर, चीखगाय, हर नामक मृग । (२) एकधुर—गदहा, घोड़ा, खच्चर, गीरमृग, शरभ, सुरागाय । (३) पंचनख—कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिल्ली, खरहा, सिंह, बंदर, हाथी, कछुवा, मेढक इत्यादि । (४) जलचर—मछली । (५) क्षेत्र—गीध, बगला, मोर, हंस, कौवा आदि पक्षी । ये सब जीव ज्ञानशून्य और तमोगुणविशिष्ट कहे गए हैं । इनके संतःकरण में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं बतलाया गया है ।

तिर्यगयन—संज्ञा पु० [सं० तिर्यक् + यन] सूर्य की वार्षिक परि-क्रमा [को०] ।

तिर्यगोक्ष—वि० [सं०] तिरछा देखनेवाला [को०] ।

तिर्यगीश—संज्ञा पु० [सं०] श्रीकृष्ण [को०] ।

तिर्यग्गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिरछी या टेढ़ी चाल । २. कर्मवश पशु योनि की प्राप्ति ।

तिर्यग्गामी^१—संज्ञा पु० [सं० तिर्यग्गामिन्] केकड़ा [को०] ।

तिर्यग्गामी^२—वि० तिरछी या टेढ़ी चाल चलनेवाला [को०] ।

तिर्यग्दिक्—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा [को०] ।

तिर्यग्दिग्—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा ।

तिर्यग्यान—संज्ञा पु० [सं०] केकड़ा ।

तिर्यग्योनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पशुपक्षी आदि जीव । ३० 'तिर्यक्स्त्रोतस्' ।

तिर्यच्—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'तिर्यक्' ।

तिलंगनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + गंगनी] एक प्रकार की मिठाई जो बीनी में तिल पागकर बनती है ।

तिलंगसा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बहुत जो हिमालय पर नेपाल से होकर पंजाब तक होता है । अफगानिस्तान में भी यह पेड़ पाया जाता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है, इमारतों में लगती है तथा हल, ऋपान का डंढा आदि बनाने के काम में आती है । शिमले के पासपास के जंगलों में इसकी लकड़ी का कोयला फूँका जाता है ।

तिलंगा^१—संज्ञा पु० [हि० तिलंगाना, सं० तैलङ्ग] १. मंगरेजी फीज का देशी सिपाही ।

विशेष—पहले पहल ईस्ट इंडिया कंपनी ने मदरास में किला बनाकर वहाँ के तिलंगियों को अपनी सेवा में भरती किया था ।

इससे मंगरेजी फीज के देशी सिपाही मात्र तिलंगे कहे जाने लगे ।

२. सिपाही । सैनिक ।

तिलंगा^२—संज्ञा पु० [हि० तीन + लंग] एक प्रकार का कनकोवा ।

तिलंगा^३—संज्ञा पु० [देश०] [जी० तिलंगी] भाग का बड़ा कण । बड़ी चिनगारी ।

तिलंगाना—संज्ञा पु० [सं० तैलंग] तैलंग देश ।

तिलंगी^१—संज्ञा पु० [सं० तैलंग] तिलंगाने का निवासी । तैलंग । सं०—नहि जालंधर बार बंग बंगी न तिलंगी—पृ० २१०, १२।१३०।

तिलंगी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + लंग] एक प्रकार की पतंग ।

तिलंगी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० तिलंगा] भाग का छोटा कण । चिनगारी

तिलंजुलि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिलांजलि' । सं०—लोक लाज की गैल को देह तिलंजुलि दान ।—श्यामा०, पृ० १० ।

तिलंतुद—संज्ञा पु० [सं० तिलन्तुव] तेली [को०] ।

तिल—संज्ञा पु० [सं०] १. प्रति वर्ष बोया जानेवाला हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा एक पीधा जिसकी छेती संसार के प्रायः सभी गरम देशों में तेल के लिये होती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ आठ दस अंगुल तक लंबी और तीन चार अंगुल चौड़ी होती हैं । ये नीचे की ओर तो ठीक आमने सामने मिली हुई खपती हैं, पर थोड़ा ऊपर चलकर कुछ अंतर पर होती हैं । पत्तियों के किनारे सीधे नहीं होते, टेढ़े मेढ़े होते हैं । फूल गिलास के आकार के ऊपर चार दलों में विभक्त होते हैं । ये फूल सफेद रंग के होते हैं, केवल मुँह पर भीतर की ओर बेगनी धब्बे दिखाई देते हैं । बीजकोष संकोचते होते हैं जिनमें तिल के बीज भरे रहते हैं । ये बीज चिपटे और लंबोतरे होते हैं । हिंदुस्तान में तिल दो प्रकार का होता है—सफेद और काला । तिल की दो फसलें होती हैं—कुवारी और चैती । कुवारी फसल बरसात में ज्वार, बाजरे, धान आदि के साथ अधिकतर बोई जाती है । चैती फसल यदि कांतिक में बोई जाय तो पुस मास तक तैयार हो जाती है ।

उद्भिद् शास्त्रवेत्ताओं का अनुमान है कि तिल का आदिस्थान अफ्रीका महाद्वीप है । वहाँ आठ नौ जाति के जंगली तिल पाए जाते हैं । पर तिल शब्द का व्यवहार संस्कृत में प्राचीन है, यहाँ तक कि जब भी किसी बीज से तेल नहीं निकाला गया था, तब तिल से निकाला गया । इसी कारण उसका नाम ही तैल (तिल से निकला हुआ) पड़ गया । अथर्ववेद तक में तिल और धान द्वारा तर्पण का उल्लेख है । आजकल भी पितरों के तर्पण में तिल का व्यवहार होता है । वैद्यक में तिल मारी, स्निग्ध, गरम, कफ-पित्त-कारक, बलवर्धक, केशों को हितकारी, स्तनों में दुध उत्पन्न करनेवाला, मलरोधक और वातनाशक माना जाता है । तिल का तेल यदि कुछ अधिक पिया जाय, तो रेशक होता है ।

पर्या०—होमनाम्य । पवित्र । पितृतर्पण । पापघ्न । पुतनाम्य । अटिल । बनोद्भूत । स्नेहफल । तैलफल ।

बौ०—तिलकुट । तिलचट्टा । तिलमुग्गा । तिलसकरी ।

२. छोटा झंझ या बाग जो तिल के परिमाण का हो ।

मुहा०—तिल की घोमल पहाड़ = किसी छोटी बात के भीतर बड़ी भारी बात । तिल का साड़ करना = किसी छोटी बात को बहुत बढ़ा देना । छोके से मासले को बहुत बढ़ा करना या बिखाना । तिल का ताड़ बनना = प्रतिरक्षित होना । उ०—अन्ना के उरसाह बनन, फिर काम प्रेरणा मिल के । भति धरं बन पागे पाए बने ताड़ के तिल के ।—कामायनी, पु० ११० । तिलचापले बाल = कुछ सफेद और कुछ काले बाल । छिचकी बाल । तिल चाटना = मुसलमानों के यहाँ बिबाह में बिबाह के समय हुस्ने का दुलहन के हाथ पर रखे हुए काले तिलों का चाटना ।

विशेष—यह टोटका इसलिये होता है जिसमें दूल्हा सदा अपनी स्त्री के साथ रहे ।

तिल तिल = थोड़ा थोड़ा । उ०—परि स्वामि धर्म सुरंग । बड़ि रहे तिल तिल धंग ।—ह० रासो, पु० १२३ । तिल बरने की जगह न होना = जरा सी भी जगह खाली न रहना । पूरा स्थान छिन्ना रहना । तिल बाँधना = सूर्यकांत गोपे से होकर पाए हुए सूर्य के प्रकाश का केंद्रीभूत होकर बिंदु के रूप में पड़ना । तिल भर = (१) जरा सा । थोड़ा सा । उ०—रहा चढ़ाउब तोरब भाई । तिल भर सुम न सकेउ जुड़ाई ।—तुलसी (शब्द०) । (२) क्षण भर । थोड़ी देर । (किसी के) तिलों से तेल निकालना = किसी से किसी प्रकार वप्या लेकर वही उसके काम में लगाया ।

१. काले रंग का छोटा बाग जो शरीर पर होता है । उ०—बिबुल रूप रसरी प्रजक तिल सु चरख टग बैल । भारी बगस गुलाब की सींचत मग्गय खेल ।—रसबीर (शब्द०) ।

विशेष—सामुद्रिक में तिलों के स्थान सेब से धौंक प्रकार के कुभाशुभ फल बतलाए जाते हैं । पुरुष के शरीर में दाहिनी ओर ओर स्त्री के शरीर में बाईं ओर का तिल अच्छा माना जाता है । हुथेली का तिल सीमांशसूचक समझा जाता है ।

४. काली बिंदी के आकार का गोदना जिसे स्त्रियाँ सोमा के लिये गाल, ठुडो आदि पर पोशाती हैं ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—लगाना ।

५. बाँझ की पुतली के बीचो बीच की गोल बिंदी जिसमें सामने पड़ी हुई वस्तु का छोटा सा प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है ।

तिलकंठी—संज्ञा स्त्री० [तं० तिलकण्ठी] विष्णुकाची । काली कोबाठोठी ।

तिलकं—संज्ञा पु० [सं०] १. वह चिह्न जिसे बीजे चंदन, कैसर आदि से मस्तक, बाहु आदि अंगों पर सांप्रदायिक संकेत या शोभा के लिये लगाते हैं । टीका । उ०—छाया तिलक बनाई करि दगध्या लोक अनेक ।—कबीर बं०, पु० ४६ ।

विशेष—भिन्न भिन्न संप्रदायों के तिलक भिन्न भिन्न आकार के होते हैं । वैष्णव बड़ा तिलक या ऊर्ध्व पुंड़ लगाते हैं जिसके संप्रदायानुसार अनेक आकृति भेद होते हैं । शैव बड़ा तिलक

या त्रिपुंड़ लगाते हैं । शाक्त लोग रक्त चंदन का बड़ा टीका लगाते हैं । वैष्णवों में तिलक का माहात्म्य बहुत अधिक है । ब्रह्मपुराण में ऊर्ध्व पुंड़ तिलक की बड़ी महिमा भाई गई है । वैष्णव लोग तिलक लगाने के लिये द्वादश अंग मानते हैं—मस्तक, पेट, छाती, कंठ, (दोनों पार्श्व) दोनों कान, दोनों बांह, कंधा, पीठ और कटि । तिलक प्राचीन काल में शृंगार के लिये लगाया जाता था, पीछे से सपासना का चिह्न समझा जाने लगा ।

क्रि० प्र०—धारण करना ।—धारना ।—लगाना ।—सारना ।

२. राजसिंहासन पर प्रतिष्ठा । राज्याभिषेक । पट्टी ।

यौ०—राजतिलक ।

क्रि० प्र०—सारना = राज्य पर अभिषिक्त करना । गद्दी या राजसिंहासन की प्रतिष्ठा देना । उ०—मिला बाइ जब अनुब मुन्दारा । जातहि राम तिलक तेहि सारा ।—मानस, ५।५४ । १. विवाह संबंध स्थिर करने की एक रीति जिसमें कन्या पक्ष के लोग वर के माथे में वही अक्षत धाबि का टीका लगाते और कुछ प्रथ्य उसके साथ लेते हैं । टीका ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।

मुहा०—तिलक देना = तिलक के साथ (धन) देना । जैसे,—उसने कितना तिलक दिया । तिलक भेजना = तिलक की सामग्री के साथ वर के घर तिलक चढ़ाने लोगों को भेजना ।

४. माथे पर पहनने का लियों का एक गहना । टीका । ५. शिरो-मण्डि । श्रेष्ठ व्यक्ति । किसी समुदाय के बीच श्रेष्ठ या उत्तम पुरुष ।

विशेष—इसका समास के अंत में प्रयोग बहुधा मिलता है । जैसे, रघुकुलतिलक ।

६. पुष्पाग की जाति का एक पेड़ जिसमें छोटे के आकार के फूल वसंत ऋतु में लक्षते हैं ।

विशेष—यह पेड़ शोभा के लिये बगीचों में लगाया जाता है । इसकी लकड़ी और छाल दवा के काम आती है ।

७. मूँज का फूल या घुमा । ८. लोघ्र वृक्ष । शोच का पेड़ । ९. मरुवक । मरुवा । १०. एक प्रकार का अश्वत्थ । ११. एक जाति का घोड़ा । घोड़े का एक भेद । १२. तिल्ली जो पेट के भीतर होती है । बलोम । १३. सोवर्चल लवण । सोबर लमक । १४. संगीत में ध्रुवक का एक भेद जिसमें एक एक चरण पचीस पचीस अक्षरों के होते हैं । १५. किसी अंग की अर्थसूचक व्याख्या । टीका । १६. एक रोग (को०) । १७. पीपल का एक प्रकार या भेद (को०) । १८. तिल का पीचा या फूल (को०) ।

तिलकं—संज्ञा पु० [तु० तिरलीक का संज्ञित रूप] १. एक प्रकार का ठोला ढाला जनाना कुरता जिसे प्रायः मुसलमान स्त्रियाँ सुचन के ऊपर पहनती हैं । उ०—तनिया न तिलक, सुचनिया पगनिया न चामें घुमराती छाँड़ि छेजिया सुचन की ।—मूषण (शब्द०) । २. शिलघत ।

तिलक कामोद—संज्ञा पु० [सं०] एक रात्रिनी जो कामोद और

विभिन्न धनका काण्डडा कामोद धोर वड्योग से मिलकर बनी है।

तिलकुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल का चूरा। २. एक मिठाई जो तिल के चूरा के पोष से बनती है।

तिलकचारी—संज्ञा पुं० [हि० तिलक + चारी] तिलक लगानेवाला। उ०—बाबू पलटू कहै तिलकचारी सोई, उचित तिल सोकर रजपूत सोई।—पद्यदू०, भा० २, पृ० १६।

तिलकना—कि० प्र० [हि० तड़कना] पीसी मिट्टी का सूखकर स्थान स्थान पर दरकना या फटना। ताल भादि की मिट्टी का सूखकर दरार के साथ फटना।

तिलकना^१—कि० प्र० [हि०] बिछलना। फिसलना। उ०—करहुव काबिस तिलकस्यइ पंथी पूगव हूर।—दोला०, पृ० २५९।

तिलक मुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंधव धादि का जीका धोर शंख चक्र धादि का आधा बिसे भक्त लोग बपाते हैं।

तिलकल्का—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का चूरा। तिलकुट।

तिलकहूक—संज्ञा पुं० [सं० तिलक + हि० हूक (प्रत्य०)] दे० 'तिलकहार'।

तिलकहार—संज्ञा पुं० [हि० तिलक + हार (प्रत्य०)] बहु मनुष्य जो कन्या के पिता के यहाँ से घर को तिलक चढ़ाने के लिये भेजा जाता है।

तिलका—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो सपण (115) होते हैं। इसे 'तिल्वा', 'तिल्वाना' और 'तिल्वा' भी कहते हैं। २. कंठ में पहुँचने का एक प्राचुरण।

तिलकार्थिक—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खेती करनेवाला व्यक्ति [को०]।

तिलकालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देह पर का तिल के आकार का काला चिह्न। तिल। २. सुख के अनुसार एक व्याधि जिसमें पुरुष की इन्द्रिय पक जाती है और इसपर काले काले दाग से पड़ जाते हैं।

तिलकावल—वि० [सं०] चिल्लों से युक्त। चिल्लोंवाला [को०]।

तिलकाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] साया। लजाठ [को०]।

तिलकट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खली। पीना।

तिलकित—वि० [सं०] १. तिलक लगाए हुए। २. जिसको तिलक लगाया गया हो। जैसे, सिद्धर तिलकित भाल। ३. चित्ती-वार। बिबीवाला [को०]।

तिलकुट—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलकट] कुटे हुए तिल जो खाँड़ की बाधनी में पगे हों।

तिलखली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + खली] तिल की खली [को०]।

तिलखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

तिलचटा—संज्ञा पुं० [हि० तिल + चटना] एक प्रकार का भोंगुर। चपड़ा।

तिलचतुर्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] साध मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी [को०]।

तिलचावली^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हि० चावली] दे० 'तिलचावली'। तिलचावली^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + चावली] तिल धोर चावली की चिचड़ी।

तिलचावली^३—वि० स्त्री० जिसका कुछ भंष सफेद और कुछ काला हो। जैसे, तिलचावली दाढ़ी।

तिलचित्रपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] तैलकंब।

तिलचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] तिलकल्क। तिलकुट।

तिलछना—कि० प्र० [धनु०] बिकल रहना। छटपटाना। बेचैन रहना।

तिलड़ा^१—वि० [हि० टी < सं० त्रि + हि० लड़] [वि० स्त्री० तिलड़ी] जिसमें तीन लड़ें हों। तीन लड़ों का।

तिलड़ा^२—संज्ञा पुं० [देश०] पत्थर गढ़नेवालों की एक खेती बिचरी टेढ़ी लकीर या चहुरदार बकाली बनाई जाती है।

तिलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तीव + लड़] तीव लड़ों की धावा बिचरी बीच में एक जुपवी लटकती है।

तिलतंडुल—संज्ञा पुं० [सं० तिल + तण्डुल] १. तिल धोर चावल। २. ऐसा मेल जिसमें मिलनेवालों का अस्तित्व स्पष्ट दिखाई दे।

यो०—तिलतंडुल ग्याय = दे० 'ग्याय'।

तिलतंडुलक—संज्ञा पुं० [सं० तिलतण्डुलक] १. भेंट। मिलन। २. भालिगन। गले से लगाना [को०]।

तिलतैल—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल [को०]।

तिलदानो—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल्वा + सं० धावीव] कपड़े की वह धेड़ी जिसमें दरजी सुई, साया, धनुषमाना धादि धोवार रखते हैं।

तिलदादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी विशेष मास की द्वादशी तिथि (जो उत्सव के लिये निश्चित हो)।

तिलधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें तिलों की गाय बनाकर दान करते हैं।

तिलपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + पट्टी] खाँड़ या गुड़ में पगे हुए तिलों का प्रमाया हुआ कतरा।

तिलपपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + पपड़ी] तिलपट्टी।

तिलपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन। २. धरम का पौध। ३. तिल का पत्ता [को०]।

तिलपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तिलपर्णी'।

तिलपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रक्त चंदन। २. एक नदी [को०]।

तिलपिज—संज्ञा पुं० [सं० तिलपिञ्ज] तिल का वह पौधा जिसमें फल नहीं लगते। बंझा तिल वृक्ष।

तिलपिचट—संज्ञा पुं० [सं०] तिलों की पीठी। तिलकुटा।

तिलपीड़—संज्ञा पुं० [सं० तिलपीड] तिल पेरनेवाला, सेली।

तिलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल का फूल। २. व्याघ्रनख। बघ-नखी। ३. नाक [को०]।

तिलपुष्पक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहेड़ा । २. तिल का फूल (को०) ।
३. नाक (क्योंकि इसकी उपमा तिल के फूल से दी जाती है) ।

तिलपेज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तिलपिज' ।

तिलफरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा झंवर सदाबहार वृक्ष ।

विशेष—यह दूध हिमालय में ५-६ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है । इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की और चमकीली होती हैं ।

तिलबद्धा—संज्ञा पुं० [देश०] बीमारों का एक रोग जिसमें गले के भीतर के मांस के बड़ जाने से वे कुछ खा पी नहीं सकते ।

तिलधर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी ।

तिलभार—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम ।—(महाभारत) ।

तिलभाषिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मलिका [को०] ।

तिलभुग्गा—संज्ञा पुं० [हि० तिल + सं० भुक्त] जौड़ मिले हुए भुने तिल को खाए जाते हैं । तिलकुठ ।

तिलभृष्ट—वि० [सं०] तिल के साथ सूना या पकाया हुआ ।

विशेष—महाभारत में तिल के साथ भुनी हुई वस्तु के खाने का निषेध है । स्मृतियों में तिल मिला हुआ पदार्थ बिना देखापित किए खाना वर्जित है ।

तिलभेष—संज्ञा पुं० [सं०] पोस्ते का वाना ।

तिलमनिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हि० मनिया] गले में पड़ना जानेवाला एक आभूषण । उ०—गले तिलमनिया पटुं बिराजित बाजुवन फुदन सुपारी गी । सं० दरिया, पृ० १७० ।

तिलमयूर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी देह पर तिल के समान काले चिह्न होते हैं ।

• तिलमापट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वस्त्र में बिलारी और करमूल में होनेवाली एक कपास ।

तिलमिल—संज्ञा स्त्री० [हि० तिलमिल] नकाचौष । तिलमिराहट ।

तिलमिलाना—क्रि० घ० [हि०] दे० 'तिलमिराना' ।

तिलमिलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० तिलमिलाना + आहट (प्रत्य०)] तिलमिलाने की क्रिया या भाव । व्याकुलता । बेचैनी ।

तिलमिली—संज्ञा स्त्री० [हि० तिलमिलाना] तिलमिलाहट ।

तिलरस—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल (को०) ।

तिलरा—संज्ञा पुं० [देश०] टेढ़ी लकीर बनाने की छेनी जिसे ऊँधरे काम में लाते हैं ।

तिलरा^२—वि०, संज्ञा पुं० [हि०] [वि० स्त्री० तिलरी] दे० 'तिलड़ा' ।

तिलरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिलड़ा' ।

तिलवट—संज्ञा पुं० [हि० तिल] तिलपट्टी । तिलपपड़ी ।

तिलवन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पोधा जो जंगलों और बगीचों में होता है ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है—एक सफेद फूल का, दूसरा नीलापन लिए पीले फूल का । इसमें लंबी फलियाँ लगती हैं । इसके बीज, फूल आदि दवा के काम में आते हैं ।

वेद्यक में तिलवन गरम और वात गुल्म आदि को हूर करनेवाली मानी जाती है । पीली तिलवन घ्रास के भ्रंजनों में पड़ती है ।

पर्या०—धजगंधा । खरपुष्पा । सुगंधिका । काबरी । तुंगी ।

तिलषा—संज्ञा पुं० [हि० तिल + वा (प्रत्य०)] तिलों का लवट ।

तिलराकरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + राकर] तिल और चीनी की बनाई हुई मिठाई । तिलपपड़ी ।

तिलशिखी—संज्ञा पुं० [सं० तिलशिखिन्] तिलमयूर [को०] ।

तिलशैल—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का पर्वताकार ढेर जो दान में दिया जाता है ।

तिलषिक—संज्ञा पुं० [?] तेली । उ०—तेली को तिलषिक कहा जाता था ।—घाय० भा०, पृ० २६२ ।

तिलसुषमा—संज्ञा पुं० [सं० तिल + सुषमा] सृष्टि के सभी उत्तम पदार्थों से बड़ा थोड़ा करके एकत्र किया गया सौंदर्यसमूह । उ०—निमित्त सबकी तिलसुषमा से, तुम निलिख सृष्टि में चिर निरुपम ।—युगांत, पृ० ५६ ।

विशेष—तिलोत्तमा नामक अप्सरा की सृष्टि ब्रह्मा ने इसी प्रकार की थी । सुंद और उपमुंड नाम के दो असुर बाई इसी तिलोत्तमा के छिये आपस में ही लड़कर मर गए ।

तिलस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल (को०) ।

तिलस्म—संज्ञा पुं० [सं० तिलस्म] १. जादू । इंद्रजाल । २. अद्भुत या अलौकिक व्यापार । कराभास । चमत्कार । ३. दृष्टिबंध (को०) ४. वह मायापद्धति विचित्र स्थान जहाँ अजीबो गरीब व्यक्ति और चीजें दिसलाई पड़ें और जहाँ जाकर आदमी खो जाय और उसे घर पहुँचने का रास्ता न मिले ।

मुद्रा०—तिलस्म तोड़ना = किसी ऐसे स्थान के रहस्य का पता लगा देना जहाँ जादू के कारण किसी की गति न हो ।

यौ०—तिलस्म बंध = तिलस्म और जादू के असर में घाया हुआ या नारस्ता । तिलस्म-बंदी = जादू के असर में आ जाना ।

तिलस्मात—संज्ञा पुं० [सं० तिलस्म का बहु ब०] मायारचित स्थान । मायाजाल (को०) ।

तिलस्माती—वि० [सं० तिलस्मात + फा० ई (प्रत्य०)] १. माया-पूर्ण । तिलस्मी । २. मायावी । जादूगर (को०) ।

तिलस्मी—वि० [सं० तिलस्म + फा० ई (प्रत्य०)] १. तिलस्म संबंधी । जादू का । २. मायानिर्मित । माया संबंधी (को०) ।

तिलहन—संज्ञा पुं० [हि० तेल + हान] फसल के रूप में बोए जानेवाले पौधे जिनके बीजों से तेल निकलता है । जैसे, तिल, सरसों, तीसी इत्यादि ।

तिलांकित दल—संज्ञा पुं० [सं०] तैलकंद ।

तिलांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलाञ्जलि] दे० 'तिलांजली' (को०) ।

तिलांजली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलाञ्जली] घृतक संस्कार का एक अंग ।

विशेष—हिंदुओं में मृतक संस्कार की एक क्रिया जो मृते के जल चुकने पर स्नान करके की जाती है। इसमें हाथ की धौली में जल भरकर घोर उसमें तिल डालकर उसे मृतक के नाम से छोड़ते हैं।

मुहा०—तिलांजली देना = बिलकुल त्याग देना। जरा भी संबंध न रखना।

तांबु—संज्ञा पुं० [सं० तिलाम्बु] तिलांजली।

त्ना—संज्ञा पुं० [प्र०] सुवर्ण। सोना [को०]।

त्ना—संज्ञा पुं० [प्र० तिलात्ना] वह तेल जो लियेप्रिय पर उसकी शिथिलता दूर करने के लिये लगाया जाय। लिगलेप। २. दे० 'तिल्ला'।

त्नाक—संज्ञा पुं० [प्र० तिलाक] १. पति-पत्नी-संबंध का भंग। स्त्री पुरुष के नाते का टूटना।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

विशेष—ईसाइयों, मुसलमानों आदि में यह नियम है कि वे आवश्यकता पड़ने पर अपनी विवाहिता स्त्री से एक विशेष नियम के अनुसार संबंध तोड़ देते हैं। उस दशा में स्त्री और पुरुष दोनों को अलग अलग विवाह करने का अधिकार हो जाता है।

यो०—तिलाकनामा।

२. परित्याग। त्याग देना। छोड़ देना। उ०—बाहि तिलाक बाहि जो खोवे।—चरण० बानी, पृ० २१०।

ताकार—वि० [प्र० तिला + फ्रा० कार (प्रत्य०)] सोने की चित्रकारीवाला। उ०—बाद मुदत के हैं देहली के किये दिन या रब। तस्त ताऊस तिलाकार मुबारक होवे।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ७४७।

तादानी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिलदानी'।

ताझ—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की लिपड़ी।

तापत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] काला जोरा।

तावा—संज्ञा पुं० [हि० तीन + लावना, लाना?] वह बड़ा कूपी जिसपर एक साथ तीन पुरवट चल सकें।

तावा—संज्ञा पुं० [प्र० तलावह] रात के समय कोतवाल आदि का शहर में गश्त लगाना। रौद।

लैगा—संज्ञा पुं० [सं० तिलिङ्ग] एक देश का नाम [को०]।

लैगा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिलंगा'।

लेत्स—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का साँप जिसे गोनस भी कहते हैं। २. भजगर [को०]।

लेया—संज्ञा पुं० [दे०] १. सरपत। २. दे० 'तेलिया' (विष)।

लेस्म—संज्ञा पुं० [प्र०] दे० 'तिलस्म' [को०]।

लेस्मात—संज्ञा पुं० [प्र० तिलस्म का बहु व०] दे० 'तिलस्मात' [को०]।

लेस्माती—वि० [प्र० तिलस्मात + फ्रा० ई (प्रत्य०)] दे० 'तिलस्माती' [को०]।

४-५५

तिलिस्मी—वि० [प्र० तिलिस्म + फ्रा० ई (प्रत्य०)] दे० 'तिलस्मी' [को०]।

तिली—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. दे० 'तिल'। २. दे० 'तिल्ली'।

तिली—संज्ञा स्त्री० [हि० तिली का संज्ञित रूप] दे० 'तिली'।

तिलेती—संज्ञा स्त्री० [हि० तेलहन + एती (प्रत्य०)] तेलहन की खूँटी जो फसल काटने पर खेत में बच जाती है।

तिलेदानी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिलदानी'।

तिलेगू—संज्ञा स्त्री० [तेलु० तेलुगु] दे० 'तेलगू'।

तिलोक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिलोक'।

तिलोकपति—संज्ञा पुं० [सं० तिलोकपति] विष्णु। उ०—तुलसी बिसोक हूँ तिलोकपति गणे नाम को प्रताप बात विदित है जग में।—तुलसी (शब्द०)।

तिलोकी—संज्ञा पुं० [सं० तिलोकी] इसकीस मात्राओं का एक उपजाति छंद जो प्लबंगम और चांद्रायण के मेल से बनता है। इसके प्रत्येक चरण के अंत में लघु गुरु होता है।

तिलोचन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिलोचन'।

तिलोत्तमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक परम कपवती अप्सरा जिसके विषय में यह कहा जाता है कि ब्रह्मा ने संसार भर के सब उत्तम पद्मों में से एक एक तिल अंश लेकर इसे बनाया था।

विशेष—इसकी उत्पत्ति हिरण्याक्ष के सुंद और उपसुंद नामक दोनों पुत्रों के नाश के लिये हुई थी जिन्होंने बहुत तपस्या करके यह वर प्राप्त कर लिया था कि हम लोग किसी दूसरे के मारने से न मरें; और यदि मरें भी तो आपस में ही लड़कर मरें। इन दोनों भाइयों में बहुत स्नेह था और इन्होंने देवताओं तथा इंद्र को बहुत तंग कर रखा था। इन्हीं दोनों में विरोध कराने के लिये ब्रह्मा ने तिलोत्तमा की सृष्टि की और उसे सुंद तथा उपसुंद के निवासस्थान विष्णु-क्षेत्र पर भेज दिया। इसी को पाने के लिये दोनों भाई आपस में लड़ मरे थे।

तिलोदक—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिल मिला धौली भर जल जो मृतक के उद्देश्य से दिया जाता है। तिलांजली। उ०—पुत्र न रहता, तो क्या होता कोन फिर देता पिंड तिलोदक।—कचण्ठा०, पृ० १६।

तिलोरि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिलोरी'। उ०—पियरि तिलोरि भाव जलहंसा। विरहा पैठि हिए कत नंसा।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३६३।

तिलोरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मैना जिसे तेलिया मैना भी कहते हैं। उ०—पेड़ तिलोरी ओ जल हंसा। हिरवय पैठ विरह लग निसा।—जायसी (शब्द०)।

तिलोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हि० घोरी (प्रत्य०)] दे० 'तिलोरी'।

तिलोहरा—संज्ञा पुं० [दे०] पटसन का रेशा।

तिलोचना—क्रि० स० [हि० तेल + ओचना (प्रत्य०)] थोड़ा

तेज लगाकर बिकना करना। उ०—पुनि पौछि गुलाब तिलोद्धि फुलेन जोगीये में बाये जोगीधनि के।—केशव ग्रं०, पृ० २०।

तिलोद्वा—वि० [हि० तेल+प्रीक्षा (प्रत्य०)] जिसमें तेल का खा स्वाद या रंग हो। जैसे, तिलोद्वा फल।

तिलोनी^५—वि० [हि० तेल] सुगंधित। उ०—प्राची तिलोनी लसे घंगिया गसि जोवा की बेसि विराजति मोहन।—जनार्दन, पृ० २१३।

तिलोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल+वरी] उदं या मूंग की वह बरी जिसमें कुछ तिल भी मिला हो।

विशेष—इसमें बमक भी पड़ा रहता है और यह भी में सबकर जाई जाती है।

तिल्य^१—संज्ञा पुं० [सं० तिल] तिल का खेड़। उ०—बिज, चड़ब, प्रलसी इनही धोर चीना के खेतों को क्रमशः तिल्य ठीकीन... कहते थे।—संपूर्णां० ग्रं०, पृ० २४७।

तिल्य^२—वि० तिल की खेती के योग्य [को०]।

तिल्लना—संज्ञा पुं० [?] तिलका नाम का वर्यवृत्त।

तिल्लार—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जिसे होवर भी कहते हैं।

तिल्ला^१—संज्ञा पुं० [सं० तिला] १. कलाबलू या बादले धाबि का नाम।

बी०—तिल्लदार।

२. पक्की छुट्टे या छाड़ी धाबि का वह धंधल जिसमें कलाबलू या बादले धाबि का काम किया हो। ३. वह सुंदर पदार्थ जो किसी वस्तु की शोभा बढ़ाने के लिये उसमें जोड़ा गया जाय। (कव०)।

बी०—बखरा तिल्ला।

तिल्ला^२—संज्ञा पुं० दे० 'तिलका' (बण्डूरा)।

तिल्लाना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तराणा'—१।

तिल्ली^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल्लक, दुबनीय प्र० तिहाब (= तिल्ली)] पेट के भीतर का प्रत्यय जो मांस की पोली गुठली के भाकार का होता है और पसलियों के नीचे पेट की जाई धोर होता है।

विशेष—इसका संबंध पाकाज्य से होता है। इसमें खाए हुए पदार्थ का विशेष रस कुछ काब सक रहता है। जबतक यह रस रहता है, जबतक तिल्ली फँसकर कुछ बड़ी हुई रहती है, फिर जब इस रस को रक्त सोख लेता है, तब वह फिर ज्यों की त्यों हो जाती है। तिल्ली में पहुँचकर रक्तकणिकाओं का रंग बेगनी हो जाता है।

ज्वर के कुछ काल तक रहने से तिल्ली बढ़ जाती है, उसमें रक्त अधिक आ जाता है और कभी कभी छूने से पीड़ा भी होती है। ऐसी अवस्था में उसे छेदने से उसमें से लाल रक्त निकलता है। ज्वर आदि के कारण बार बार अधिक रक्त भाते रहने से ही तिल्ली बढ़ती है। इस रोग में मनुष्य दिन दिन दुबला होता जाता है, उसका मुँह सूखा रहता है और पेट निकल जाता है। वैद्यक के अनुसार जब दाहकारक तथा कफकारक पदार्थों के विशेष सेवन से रुधिर कुपित होकर

कफ द्वारा प्लीहा को बढ़ाता है, तब तिल्ली बढ़ जाती है और मंदाग्नि, जीर्ण ज्वर आदि रोग साथ बग भाते हैं। जवाहार, पलाय का क्षार, शंस की चर्म आदि प्लीहा की आयुर्वेदोक्त औषध हैं। डाक्टरों में तिल्ली बढ़ने पर कुनैन तथा आर्सेनिक (संधिया) और सोडा मिली हुई दवाएँ दी जाती हैं।

पर्या०—प्लीहा। पिलही।

तिल्ली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल] तिल नाम का भक्ष या तेलहन। वि० दे० 'तिल'।

तिल्ली^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो आसाम और ब्रह्मा में ऊँची पहाड़ियों पर होता है।

विशेष—ये बाँस पचास साठ फुट तक ऊँचे होते हैं और इसमें बाँटें दूर दूर पर होती हैं, इससे ये बाँगे बचावे के काम में अधिक भाते हैं।

तिल्ली^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'हीची'।

तिल्लोतमा^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिलोत्तमा'। उ०—तिष्ठ ऊपर तिल्लोतमा वार बई सो वार।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ३३।

तिल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] जोध। लोध।

तिल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोध। २. तिल्लिष।

तिल्लारी^१—संज्ञा स्त्री० [?] झालर की तरह का वह परदा जो घोड़े के भाये पर उनकी छाँटों की मखियों से बचाने के लिये बाँधा जाता है। नुकता।

तिल्लार^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योहार'। उ०—होली तिल्लार की बसंत पञ्चमी है।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० १९८।

तिल्लाड़ी^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिलारी'।

तिल्ल^५—अव्य० [हि०] दे० 'तिलि'। उ०—उछड़ पाँणी ज्युं माछली शिव जागु तिल्ल उठुछुं भंवि।—बी० रासो०, पृ० ४७।

तिल्ल^५—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री।

तिल्ल^५—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री।

तिल्लाना^५—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तेदाना'। उ०—तब जुबदा मन किन्नु तिल्लाना।—कबीर सा०, पृ० ७४।

तिल्लार^५—अव्य० [?] वदा। तब। सब बार। इस समय। उ०—सय राव धविषि सबी तिल्लार। नृपराज एह प्रभुत तिल्लार।—पृ० रा०, २४। ३१३।

तिल्लारी^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपाठी] [स्त्री० तिल्लारिण] त्रिपाठी। वि० दे० 'त्रिपाठी'।

तिल्लारी^५—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल्लार] वह घर या कोठरी जिसमें तीन द्वार हों। उ०—फूलनि के खंभ फूलनि की तिल्लारी।—छोत०, पृ० २७।

तिल्लासा^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिवासर] तीन दिन। उ०—मन फाटें बायक बरे मिटे सगाई साक। जैसे दूध तिल्लासा को उलटि हुआ जो भाक।—कबीर (शब्द०)।

विवासी—वि० [हि०] दे० 'विवासी' ।

तिविक्रम—संज्ञा पु० [सं० त्रिविक्रम] दे० 'त्रिविक्रम' । उ०—दुख कनीज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर । बसत तिविक्रम पुर सवा, तरनि तमूजा तीर ।—भूषण बं०, पृ० १८ ।

तिथी—संज्ञा स्त्री० [देश०] बैसारी ।

तिशना^१—संज्ञा पु० [प्र० तशनीष्ट (=बुरा बला कहना)] ताना । मेहना ।

क्रि प्र०—देना ।—मारना ।

थो०—साना तिशना ।

तिशना^२—वि० [क्रा० तिशनह्] १. व्यासा । तृषित । २. प्रवृत्त । प्रसंतुष्ट ।

थो०—तिशना काम = (१) तृषित । (२) प्रसक्तमनोरथ ।
तिशना बिचर = (१) प्रसक्तकाम । (२) प्रसिलापी ।
तिशना खूँ = खून का व्यासा । बाब का गाहक । विशवत्
वीदार = दर्शन की तृषा ।

तिशनाखब—वि० [क्रा० तिशनह् खब] १. बहुत व्यासा । तृषित । २. ह्मजुक । उ०—मारखू प चरमए कोसर नहीं । तिशनाखब हूँ शरबते दीवार का ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ९ ।

तिशनाह^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' । उ०—वह तरंग तिशनाह राग बहु प्रेह कुरंती ।—पृ० रा०, १।७९७ ।

तिष^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' । उ०—जब सुखे तब ही तिष लाये ।—प्राण०, पृ० १५ ।

तिष्ठटी^१—क्रि० प्र० [सं० तिष्ठित] स्थापित । निमित्त । उ०—कोउ कहै यह काख उपावत कोउ कहै यह ईश्वर तिष्ठो ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ९१६ ।

तिष्ठद्वगु—संज्ञा पु० [सं०] वह काम जिसमें गोएँ चरकर अपने खूँटे पर या जाती हैं । संघ्या । सायंकाल । गोधूखी ।

तिष्ठद्वोम—संज्ञा पु० [सं०] एक होम या यज्ञ जिसमें पुरोहित खड़ा रहकर मातृवि प्रवान करता है [को०] ।

तिष्ठना^१—क्रि० प्र० [सं० तिष्ठ] ठहरना । उ०—चौदह भुवन एक पति होई । भूत द्रोह तिष्ठइ नहि कोई ।—तुलसी (शब्द०) ।

तिष्ठठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिस्ता नाम की नदी जो हिमाचल के पास से निकलकर नवाबगंज के पास गंगा से मिलती है ।

तिष्य^१—संज्ञा पु० [सं०] १. पुष्य नक्षत्र । २. पौष मास । ३. कलियुग । ४. अशोक के एक भाई का नाम [को०] ।

तिष्य^२—वि० १. मांगल्य । कल्याणकारी । २. मांग्यवान [को०] । ३. तिष्य नक्षत्र में उत्पन्न [को०] ।

तिष्यक—संज्ञा पु० [सं०] पौष मास ।

तिष्यकेतु—संज्ञा पु० [सं०] शिव [को०] ।

तिष्यपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी ।

तिष्यफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी [को०] ।

तिष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमलकी । २. दीप्ति । चमक [को०] ।

तिष्यन^१—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—सज्ज में पण्डर तिष्यन तेज जे सूर समाज में गान गये हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

तिष्यय^१—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—प्रसिय मुख्य दंतसिय तउन तिष्यय बाधारिय ।—पृ० रा० २।१५३ ।

तिसा^१—सर्व [सं० तस्य, पा० तिससं, प्रा० तसस, तिसस] 'ता' का एक रूप जो उसे विभक्ति लगने के पूर्व प्राप्त होता है । जैसे, तिसने, तिसको, तिससे इत्यादि ।

विशेष—यद्यपि इस शब्दप्रकार का व्यवहार गद्य में नहीं होता, केवल 'तिसपर' का प्रयोग होता है ।

मुहा०—तिस पर = (१) उसके पीछे । उसके उपरांत । (२) इतना होने पर । ऐसी अवस्था में । जैसे,—(क) हमारी बीब बी से यए, तिसपर हमी को बातें भी सुनाते हो । (ख) इतना मना किया, तिसपर भी वह बला गया ।

तिस^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष] दे० 'तृषा' । उ०—निष्ठ हितमय उचार धार्बदधन रस बरखते चातक तिस तै रे ।—प्रधानं, पृ० १६४ ।

तिसखुटी—संज्ञा स्त्री० [हि० तीसी + खूँटी] तीसी के पीछों के छोटे छोटे डंठल जो फसल कटने पर जमीन में गड़े रह जाते हैं । तीसी की खूँटी ।

तिसखुर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिसखुटी' ।

तिसटना^१—क्रि० प्र० [सं० तिष्ठ] स्थित रहना । उ०—उपारी थोड़ा संग जग, वैरी बणा बसंत । तिसटे दिन थोड़ा तिके, धाले संत असंत ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ६६ ।

तिसडी^१—वि० [हि० तिस + डी (प्रत्य०)] वैसी । उस तरह की । उ०—नारी एक वीर उमें नर में, तिसडी न खडी सुपनंतर में ।—रघु० क०, पृ० १३३ ।

तिसना^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषणा] दे० 'तृषा' ।

तिसरा^१—वि० [हि० तीसरा] [वि० स्त्री० तिसरी] दे० 'तीसरा' । उ०—सो प्रगटित निज रूप करि इहि तिसरे प्रव्याह ।—नंद० प्र०, पृ० २३१ ।

तिसराना—क्रि० प्र० [हि० तिसरा से नामिक धातु] तीसरी बार करना ।

तिसराया^१—क्रि० प्र० [हि० तिसरा] तीसरी बार ।

तिसरायत—संज्ञा स्त्री० [हि० तीसरा + आयत (प्रत्य०)] १. तीसरा होने का मास । गैर होने का मास । २. मध्यस्थ । बिचला ।

तिसरैत—संज्ञा पु० [हि० तीसरा + एत (प्रत्य०)] १. दो घादमियों के भगड़े से भलप एक तीसरा अनुष्य । तटस्थ । मध्यस्थ । २. तीसरे हिस्से का मालिक ।

तिसा^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' । उ०—ताते तिसा घनी न बिचारे । विषयन दोन हैदु प्रतिपारे ।—नंद० प्र०, पृ० २१२ ।

तिसाना^१—क्रि० प्र० [सं० तृषा] व्यासा होना । तृषित होना । उ०—देखि के बिभूति सुख उपज्यो अमृत कोऊ (चल्यो मुख साधुरी के लोचन तिसाये हैं ।—प्रिया (शब्द०) ।

तिसाया^१—वि० [हि० तिसाना] तृषित । व्यासा । उ०—बेगम ने कहिलेवाँ सल्ला में कहाया । सारा कामछानी खून मेटा का तिसाया ।—शिखर०, पृ० ५७ ।

तिसिया (संज्ञा स्त्री०) [सं० तृषित, प्रा० तिसिय] तृषित । प्यासा ।
उ०—या रहनी ते पैकंवर निपने, तिसियाँ मरे सँसारा ।
—गोरख०, पृ० २१३ ।

तिसी (संज्ञा स्त्री०) [हि० तिस + ई (प्रत्यय)] उसी । उ०—लाहो
मेता जनम गो सुय करे तिसी तोयो होई ।—बी० रासो,
पृ० ४४ ।

तिसु (संज्ञा स्त्री०) [सं० तस्य, हि० तिस] उसको । उसे । उ०—जिन
बाधिया तिसु पाया स्वादु । नानक बोले हूँ बिसमाद ।—
प्राण०, पृ० १३४ ।

तिसाँ (संज्ञा स्त्री०) [हि०] दे० 'तिस' । उ०—तक बीजो सोना तिसो
पातर बानो प्रेम ।—वाकी० प्र०, भा० २, पृ० ५ ।

तिसून—संज्ञा पुं० [?] एक दवा का नाम ।

तिसूरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + सूत] तीन तीन सूत के ताने
बाने से बुना हुआ कपड़ा ।

तिसूती—संज्ञा स्त्री० [हि०] तीन तीन सूत के ताने बाने से बुना हुआ ।

तिस्टा (संज्ञा स्त्री०) [हि०] दे० 'तृष्णा' । उ०—नहिं भोजन
नहिं ग्राम नही इंदो की तिस्टा ।—पलटू०, भा० १, पृ० ५६ ।

तिस्ना (संज्ञा स्त्री०) [हि०] दे० 'तृष्णा' । उ०—काम क्रोध
तिस्ना मद माया । पीची खोर न छाड़हि काया ।—जायसी
प्र० (गुप्त०), पृ० २०४ ।

तिसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपुष्पी ।

तिस्स—संज्ञा पुं० [सं० तिष्य] राजा अशोक के सगे भाई का नाम ।

तिह (संज्ञा स्त्री०) [हि०] तिया । स्त्री । उ०—बंदनहु बन्न ज्यो पाय
बिरल । तिह नाह पिष्य ज्यो सुभग सिल्ल ।—पु० २०, ३४६ ।

तिहत्तर—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसप्तति, पा० तिसप्तति, प्रा० तिहत्तर] जो
गिनती में सत्तर से तीन अधिक हो । तीन ऊपर सत्तर ।

तिहत्तर—संज्ञा पुं० १. सत्तर से तीन अधिक की संख्या । २. उक्त
संख्यासूचक अक्षर जो इस प्रकार लिखा जाता है—७३ ।

तिहड़ा—संज्ञा पुं० [हि० तीन + हड़ा] वह स्थान जहाँ तीन हट्टें
मिलती हैं ।

तिहरा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तेहरा' ।

तिहरा—संज्ञा स्त्री० [हि०] [स्त्री० अल्पः] तिहरी । दही जमाने या
दूध दुहने का मिट्टी का बरतन ।

तिहराना—क्रि० [हि० तेहरा] (किसी बात या काम को) तीसरी
बार करना । दो बार करके एक बार फिर धोर करना ।

तिहरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तेहरी' ।

तिहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + हार] तीन लड़कों की माला ।

तिहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ती + हड़ी] दूध दुहने या दही जमाने
का मिट्टी का छोटा बरतन ।

तिहवार—संज्ञा पुं० [सं० तिथिवार] पर्व या उत्सव का दिन । त्योहार
वि० दे० 'त्योहार' ।

तिहवारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्योहारी' ।

तिहा—संज्ञा पुं० [सं० तिहय] १. रोग । २. बावल । ३. अनुष । ४.
अच्छाई । सद्भाव [को०] ।

तिहाई—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + भाग] १. तृतीयांश । तीसरा भाग ।
तीसरा हिस्सा ।

तिहाई—संज्ञा स्त्री० खेत की उपज । फसल । (पहले खेत की उपज
का तृतीयांश काश्तकार लेता था, इसी से यह नाम पड़ा) ।
उ०—नई तिहाई के भलुमा खेतन ज्यों ऊगत ।—प्रेमधन०,
भा० १, पृ० ४४ ।

मुहा०—तिहाई काटना = फसल काटना । तिहाई मारी जाना =
फसल का न उपजना ।

तिहाड़ी—संज्ञा पुं० [हि०] १. क्रोध । तेह । २. बैर । बिगाड़ । उ०—
हित सों हित रति राम सों रिपु सों बैर तिहाड़ । उदासीन सब
सों सरल तुलसी सहज सुभाउ ।—तुलसी (शब्द०) ।

तिहानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बालिशत लंबी और तीन अंगुल चौड़ी
लकड़ी जिसका काम बूझिया बनाने में पड़ता है ।

तिहायत—संज्ञा पुं० [हि० तिहाई (= तीसरा)] दो आदमियों के भगड़े
से अलग एक तीसरा आदमी । तिसरेत । तटस्थ । मध्यस्थ ।

तिहायत (संज्ञा स्त्री०) [हि०] तीन गुना । उ०—जन रज्जब सुरता बबी
सगी तिहायत तेज ।—रज्जब० बानी, पृ० ५ ।

तिहाना (संज्ञा स्त्री०) [सं० तृषित] १. प्यासा होना । २. घृष्ट होना ।
उ०—तबहुँ तूँ किछु पीता कि रहता तिहाय ।—प्राण०,
पृ० ६८ ।

तिहारो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुम्हारा' ।

तिहारो (संज्ञा स्त्री०) [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—धीर तुम तो काहू
के घर जात आवत नाही । धीर भाज तिहारो आवनो कैसे
भयो ।—दो सी बावन०, भा० २, पृ० ६३ ।

तिहारो (संज्ञा स्त्री०) [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—हो पिय, यह कल
गीत तिहारो । महा अनिल के बान अनिवारो ।—नंद० प्र०,
पृ० ३२० ।

तिहासी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास की बीड़ी ।

तिहासी—संज्ञा पुं० [हि० तेह (= गुस्ता, ताव)] १. क्रोध । कोप ।
२. बिगाड़ । अनबन ।

तिहि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तेहि' । उ०—कालीदह सों पकरि ल्याय
नाथ्यो तिहि सिर पर ।—प्रेमधन०, भा० १, पृ० ६३ ।

तिही (संज्ञा स्त्री०) [हि०] दे० 'तेहि' । उ०—धंतरजामी साँवरो,
तिही बैर गयो भाइ ।—नंद० प्र०, पृ० १ ।

तिही (संज्ञा स्त्री०) [हि०] दे० 'तेहि' । उ०—पट्टली फनक की तिही
बानक की बनी मनमोहनी ।—नंद० प्र०, पृ० १७५ ।

तिहुँलोक—संज्ञा पुं० [हि० तीन + हूँ (प्रत्यय) + लोक] तीन लोक
स्वर्ग, मर्य, पाताल । उ०—राम रहा तिहुँलोक समाई । कर्म
भोग भी खानि रहाई ।—घट०, पृ० २२२ ।

तिहुँ—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + हूँ (प्रत्यय)] तीन । तीनों बीसे, तिहुँ लोक ।

तिहुयन (संज्ञा पुं०) [हि०] दे० 'त्रिभुवन' । उ०—करिष्य विनति
सों एं भायष जन्हि बिभु तिहुयन तीत ।—विद्यापति, पृ० १९६ ।

तिहैया—संज्ञा पुं० [हि० तिहाई] १. तीसरा भाग । तृतीयांश । २.
तबले मुदंग आदि की वे तीव्र धारें जिनमें से प्रत्येक धार

अंतिम या समबाले ताल को तीन भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग पर दी जाती है और जिसकी अंतिम बाप ठीक समय पर पड़ती है।

सिद्घ्न^५—सर्व [हि०] दे० 'तिन'। उ०—सिद्घ्न के मरत नहिं मुएउ लाज गहि बनन सिधाएउ।—प्रकवरी०, पृ० ६६।

ती^५—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री] १. स्त्री। औरत। उ०—हैं कब भावत ती इतै सखी लियाईं धेरि।—स० सप्तक, पृ० ३७६। २. जोड़। पत्नी। ३. मनोहरण छंद का एक नाम। अमरावली। नलिनी।

तीअसी—संज्ञा स्त्री [सं० तृणान्त] शाक। भाजी। तरकारी।

तीकरा—संज्ञा पुं [देश०] बीज से फूटकर निकला हुआ छंफुर। छंफुरा।

तीकुर—संज्ञा पुं [हि० तीन+कुर (=कण)] फसल की वह बंटाई जिसमें एक तिहाई भंश जमींदार और दो तिहाई काश्तकार लेता है। तिहाई।

तीक्ष्ण^५—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'।

तीक्ष्ण^५—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—आयस किय तीक्ष्ण मनिय सेस मरथ अगभीन।—प० रासो, पृ० ३।

तीक्ष्ण^१—वि० [सं०] १. तेज नोक या धारवाला। जिसकी धार या बोक इतनी चोखी हो जिससे कोई चीज कट सके। जैसे, तीक्ष्ण बाण। २. तेज। प्रखर। तीव्र। जैसे, तीक्ष्ण प्रोषण, तीक्ष्ण बुद्धि। ३. उग्र। प्रबल। तीखा। जैसे, तीक्ष्ण स्वाभाव। ४. जिसका स्वाद बहुत चटपटा हो। तेज या तीखे स्वादवाला। ५. जो (वाक्य या बात) सुनने में अप्रिय हो। कर्णकटु। जैसे, तीक्ष्ण वाक्य, तीक्ष्ण स्वर। ६. आरमत्वागी। ७. निरालस्य। जिसे आलस्य न हो। ८. जो सहन न हो। असह्य।

तीक्ष्ण^२—संज्ञा पुं [सं०] १. उत्ताप। गरमी। २. विष। जहर। ३. इस्पात। लोहा। ४. युद्ध। लड़ाई। ५. मरण। मृत्यु। ६. शास्त्र। ७. समुद्री नमक। करकच। ८. मुष्कक। मोखा। ९. वस्त्रनाभ। बख्ताग। १०. चण्ड। चाब। ११. महामारी। मरी। १२. यवक्षार। जवाक्षार। १३. सफेद कुशा। १४. कुंदुर गोंद। १५. योगी। १६. उद्योतिष में मूल, भार्वा, ज्येष्ठा, अश्विनी और रेवती नक्षत्रों में बुध की गति।

तीक्ष्णकंटक—संज्ञा पुं [सं० तीक्ष्णकण्टक] १. धतूरे का पेड़। २. बबूल का पेड़। ३. इंगुदी का पेड़। ४. करील का पेड़।

तीक्ष्णकंटका—संज्ञा स्त्री [सं० तीक्ष्णकण्टका] एक प्रकार का वृक्ष जिसे कंकारी कहते हैं।

तीक्ष्णकन्द—संज्ञा पुं [सं० तीक्ष्णकन्द] पलांडू। प्याज।

तीक्ष्णक—संज्ञा पुं [सं०] १. मोखा वृक्ष। २. सफेद सरसों।

तीक्ष्णकर्मा^१—संज्ञा पुं [सं० तीक्ष्णकर्मम्] उसाही व्यक्ति [को०]।

तीक्ष्णकर्मा^२—वि० उसाही [को०]।

तीक्ष्णकल्क—संज्ञा पुं [सं०] तुंबुर वृक्ष।

तीक्ष्णकान्ता—संज्ञा स्त्री [सं० तीक्ष्णकान्ता] काशिकापुराण के अनुसार तारा देवी का नाम।

विशेष—इनका ध्यान कृष्णवर्णी, लंबोदरी और एक जटाधारिणी है। इनके पूजन से अमीष्ट का सिद्ध होना माना जाता है।

तीक्ष्णक्षीरो—संज्ञा स्त्री [सं०] बंसलोचन।

तीक्ष्णगंध—संज्ञा पुं [सं० तीक्ष्णगन्ध] १. सहिजन का पेड़। २. साबुलसी। ३. लोबान। ४. छोटी इलायची। ५. सफेद तुलसी। ६. कुंदुर नामक गंधद्रव्य।

तीक्ष्णगंधक—संज्ञा पुं [सं० तीक्ष्णगन्धक] सहिजन।

तीक्ष्णगंधा—संज्ञा स्त्री [सं० तीक्ष्णगन्धा] १. श्वेत वन। सफेद वन। २. कंबारी का वृक्ष। ३. राई। ४. जीवंती। ५. छोटी इलायची।

तीक्ष्णतंडुला—संज्ञा स्त्री [सं० तीक्ष्णतण्डुला] पिप्पली। पीपल।

तीक्ष्णता—संज्ञा स्त्री [सं०] तीक्ष्ण होने का भाव। तीव्रता। तेजी।

तीक्ष्णताप—संज्ञा पुं [सं०] महादेव। शिव।

तीक्ष्णतेज—संज्ञा पुं [सं०] दे० 'तीक्ष्णतेज'।

तीक्ष्णतेज—संज्ञा पुं [सं०] १. राल। २. सेहूड़ का वृक्ष। ३. मदिरा। शराब। ४. सरसों का तेल।

तीक्ष्णत्व—संज्ञा पुं [सं०] दे० 'तीक्ष्णता'। उ०—इन दोनों के साधारण धर्म कपिलत्व या तीक्ष्णत्व के होने पर यह उपचार होता है कि अग्नि माणवक है।—संपूर्णा०, अमि० प्र०, पृ० ३३६।

तीक्ष्णदंत—संज्ञा पुं [सं० तीक्ष्णदन्त] वह जानवर जिसके दाँत बहुत तेज या नुकीले हों।

तीक्ष्णदंष्ट्र^१—संज्ञा पुं [सं०] बाघ।

तीक्ष्णदंष्ट्र^२—वि० तेज दाँतवाला। जिसके दाँत तेज हों।

तीक्ष्णदृष्टि—वि० [सं०] जिसकी दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्म बात पर पड़ती हो। सूक्ष्मदृष्टि।

तीक्ष्णधार^१—संज्ञा पुं [सं०] खड्ग।

तीक्ष्णधार^२—वि० जिसकी धार बहुत तेज हो।

तीक्ष्णपत्र^१—संज्ञा पुं [सं०] १. तुंबुर। धनिया। २. एक प्रकार का गन्ना।

तीक्ष्णपत्र^२—वि० जिसके पत्तों में तेज धार हो।

तीक्ष्णपुष्प—संज्ञा पुं [सं०] लवंग। लोंग।

तीक्ष्णपुष्पा—संज्ञा स्त्री [सं०] केतकी।

तीक्ष्णप्रिय—संज्ञा पुं [सं०] जी।

तीक्ष्णफल^१—संज्ञा [सं०] तुंबुर। धनिया।

तीक्ष्णफल^२—वि० जिसका फल कड़ुभा हो [को०]।

तीक्ष्णफला—संज्ञा स्त्री [सं०] राई।

तीक्ष्णबुद्धि—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि बहुत तेज हो। कुशाग्र बुद्धिवाला। बुद्धिमान्।

तीक्ष्णमंजरी—संज्ञा स्त्री [सं० तीक्ष्णमञ्जरी] पान का पौधा।

तीक्ष्णमार्ग—संज्ञा पुं [सं०] तखवार [को०]।

तीक्ष्णमूल^१—संज्ञा पुं [सं०] १. कुसुमज। २. सहिजन।

तीक्ष्णमूल^२—वि० जिसकी जड़ में बहुत तेज गंध हो।

लोखारिम^१—संज्ञा पुं० [सं०] सुयं ।

लोखारिम^२—वि० जिसकी धार में बहुत तेज हो ।

लोखारस^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. यवसार । जलसार । २. शोरा ।

लोखारस^२—वि० जिसपर रसवाला हो ।

लोखारसौह—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ ।

लोखारशूक^१—संज्ञा पुं० [सं०] यन्त्र । जो ।

लोखारशूक^२—वि० जिसमें हड्डि पैने हों [को०] ।

लोखारशृंग—वि० [सं० लोखारशृङ्ग] जिसमें सींग पैने या नुकीले हों [को०] ।

लोखारसार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहा [को०] ।

लोखारसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोखार का पेड़ ।

लोखारशु—संज्ञा पुं० [सं०] सुयं ।

लोखार—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रक्त । २. कैलाश । ३. मयंककाशी मुख । ४. बड़ी मायकोगनी । ५. अत्यम्लपर्णी जता । ६. मिर्च । ७. बौक । ८. तारा देवी का एक नाम ।

लोखारानि—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रबल जटारानि । २. धनीयुं रोग ।

लोखाराम—वि० [सं०] जिसका अंगला घाग पैने या नुकीला हो । पैनी लोकवाला ।

लोखारयस—संज्ञा पुं० [सं०] हथपात जोड़ा ।

लोख^१—वि० [हि०] दे० 'लोख' । उ०—धनिन प्रबल दन मनयज बीज । जो खन नील सेतु भल तीव्र ।—विद्यापति, पृ० १६६

लोखन^१—वि० [सं० लोखन] दे० 'लोख' ।

लोखर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'लोखुर' ।

लोखर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'लोखुर' ।

लोखा^१—वि० [सं० लोखा] [वि० स्त्री० लोखी] १. जिसकी धार या नोक बहुत तेज हो । तीक्ष्ण । २. तेज । तीव्र । प्रखर । ३. उग्र । प्रवह । जैसे, लोखा स्वभाव । ४. जिसका स्वभाव बहुत उग्र हो । जैसे,—(क) तुम लो बड़े तीये दिखलाई पड़ते हो । (ख) यह लड़का बहुत लोखा हाया । ५. जिसका स्वाद बहुत तेज या चरपरा हो । जो वाक्य या बात सुनने में अप्रिय हो । ७. खोखा । बाँझा । अन्ध । जैसे,—यह कपड़ा उससे लोखा पड़ता है ।

लोखा^२—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिट्ठिया ।

लोखापन—संज्ञा पुं० [हि० लोखा + पन] पैनापन । तीक्ष्णता [को०] ।

लोखी—संज्ञा स्त्री० [हि० लोखा] रेशम के रेशमालों का काठ का एक जोड़ार जिसके बाज में गज डालकर उसपर रेशम फेरते हैं ।

लोखुर—संज्ञा पुं० [सं० लोखुर] हजारी की जाति का एक प्रकार का पीछा जो पूर्व, मध्य तथा दक्षिण भारत में अधिकता से होता है ।

विशेष—मछली तरह जोती हुई जमीन में जाड़े के धारों में इसके कद गाड़े जाते हैं और बीच बीच में बराबर सिखाई की जाती है । पुस माघ में इसके पत्ते भड़ने लगते हैं और तब यह पक्का समझा जाता है । कुछ समय इसकी जड़ खोदकर

पानी में खूब धोकर कूटते हैं और इसका सत्त निकालते हैं जो बड़िया मीठे की तरह होता है । यही सत्त बाजारों में लोखुर के नाम से बिकता है और इसका व्यवहार कई तरह की मिठाइयाँ, लड्डू, सेब, जलेबी आदि बनाने में होता है । हिंदू लोग इसकी गणना 'फलाहार' में करते हैं । इसे पानी में घोबकर दूध में छोड़ने से दूध बहुत गाढ़ा हो जाता है, इसलिये लोग इसकी खीर भी बनाते हैं । अब एक प्रकार का लोखुर विज्ञान से भी जाता है जिसे परावृत्त कहते हैं । वि० दे० 'परावृत्त' ।

लोखुर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'लोखुर' ।

लोखन^१—वि० [हि०] दे० 'लोख' । उ०—उत्तमांग नहि सिधु-क्षिय करत न लोखन दंत ।—प० रासो, पृ० २ ।

लोखन^२—वि० [हि०] दे० 'लोख' । उ०—कनक कामिनी बड़ी दाज है लोखन धारा । तब बचिहै तरबूज रहै खूरी से धारा ।—बलरू०, भा० १, पृ० ५३ ।

लोखनता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० लोखनता] दे० 'लोखनता' ।

लोखे^१—वि० [हि०] दे० 'लोख' । उ०—दूरि तें दूर नजीक तें लोखे हि आते से आकी है लोखे तें लोखी ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० १५७७ ।

लोख—संज्ञा स्त्री० [सं० लोखी] १. प्रत्येक पक्ष की तीसरी तिथि । २. हरतालिका तृतीया । भादों सुदी तीज । वि० दे० 'हरतालिका' । उ०—इंद्रायति मन प्रेम पियारा । पहुँचा आह तीज तेवहारा ।—इंद्रा०, पृ० ६० ।

लोखना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'लोखना' । उ०—मुख राजा अपढ़ अयाण हूँ किम चालुं एकलो ? या गह गोरी लोख पराण ।—बी० रासो, पृ० ८६ ।

लोखी^१—संज्ञा पुं० [हि० लोखी] मुसलमानों में किसी के मरने के दिन से तीसरा दिन ।

लोखी—इस दिवस मृतक के संबंधी गरीबों को रोटियाँ बाँटते और कुछ पाठ कराते हैं ।

लोखी—वि० [वि० स्त्री० लोखी] तीसरा । तृतीय । उ०—के दिन सिरज यो सही, लोखी कोई नहि ।—रज्जब०, पृ० ३ ।

लोखीपन^१—संज्ञा पुं० [हि० लोखी + पन (प्रत्यय०)] तीसरी अवस्था । उ०—लोखीपन में कुटुंब भयो तब अति अभिमान बढ़ायो रे ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६६ ।

लोखी^२—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'लोखी' । उ०—लोखी रानी है मनपोई । लज्जा कारण न भाते कोई ।—कबीर सा०, पृ० ५५० ।

लोखी^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'लोखी' । उ०—लोखी करसण सुनियो, धानरहा नूँ बाग ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६३ ।

लोखी^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'लोखी' । उ०—मंत्र सकली मंत्र सूँ, ज्यों लोखी से जाय ।—रा० क०, पृ० १७६ ।

तीव(५)१—वि० [सं० तित्त] दे० 'तीता' । उ०—करिष्य विनति सी
एँ बायब बनिह बिनु विहुमन तीत ।—विद्यापति, पृ० १६६ ।

तीतना(५)१—क्रि० प्र० [हि०] भीतना । गीला होना । उ०—
प्रसकहि तीतल तेंहि मति सोभा । धनिकुल कमल वेदल मुख
लोभा ।—विद्यापति, पृ० ३१६ ।

तीतर—संज्ञा पुं० [सं० तित्तिर] एक प्रसिद्ध पक्षी जो समस्त एशिया
और यूरोप में पाया जाता है और जिसकी एक जाति अमेरिका
में भी होती है ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है और केवल सोने के समय
को छोड़कर बराबर इधर उधर चलता रहता है । यह बहुत
तेज दौड़ता है और भारत में घायः कपास, गेहूँ या चावल
के खेतों में बाज में फँसकर पकड़ा जाता है । इसका घोंसला
जमीन पर ही होता है और इसके घंटे चिकने और बबेदार
होते हैं । लोग इसे बड़बड़े के घिये पालते, इसका शिकार करते
और मांस खाते हैं । बंदक में इसके मांस को खचिकारक,
सधु, बीर्य-बल-वर्धक, कपास, मधुर, ठंडा और श्वास, कास,
ज्वर तथा निदोषनाशक माना है । भावप्रकाश के अनुसार
काले तीतर के मांस की अपेक्षा चितकबरे तीतर का मांस
अधिक उराम होता है ।

तीता^१—वि० [सं० तित्त] १. बिड़का स्वास तीखा और जरपरा
हो । तित्त । बीधे, मिषं ।

विशेष—यद्यपि प्राचीनों ने तित्त और कटु में भेद माना है, पर
प्राक्कल साधारण बोलचाल में 'तीता' और 'कटुप्रा' दोनों
'अम्ल' का एक ही अर्थ में व्यवहार होता है । कुछ प्रांतों में
केवल 'कटुप्रा' शब्द का व्यवहार होता है और उससे तात्पर्य
भी बहुधा एक ही रस का होता है । जिन प्रांतों में 'तीता'
और 'कटुप्रा' दोनों शब्दों का व्यवहार होता है, वहाँ भी इन
दोनों में कोई विशेष भेद नहीं माना जाता ।

२. कटुप्रा । कटु ।

तीता^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. खोतने बोलने की जमीन का गीलापन ।
२. ऊसर भूमि । ३. डेकी या रहट का अगला भाग । ४.
ममीरे के भाग का एक नाम ।

तीता^३—वि० [हि०] भीगा हुआ । भीखा । नम ।

तीति(५)१—वि० बी० [हि० तीव] तित्त । उ०—भाजू हसनि काजि
जब बँसखि तीति होइति मधु आमिनि रे ।—विद्यापति,
पृ० ६५ ।

तीतिर(५)१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीतर' । उ०—.....तीतिर को
भीमक के वास्ते धुमाया करते हैं ।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० ४१ ।

तीती(५)१—वि० [हि०] दे० 'तीता' । उ०—उद्यव और सुनी है
कथा घब, पाप है स्याम वहाँ कोऊ तीती ।—नट०, पृ० ३५ ।

तीतुरी(५)१—संज्ञा पुं० [हि० तीतर] दे० 'तीतर' ।

तीतुरी(५)१—संज्ञा बी० [हि०] दे० 'तल्ली' ।

तीतुरी(५)२—संज्ञा बी० [हि० तीतर] माया तीतर । तीसरी ।
उ०—हंसा हरेई बाजि । तीतुरिय ताँकी साजि ।—ह० रासो,
पृ० १२५ ।

तीतुल(५)१—संज्ञा पुं० [हि०] [बी० तीतुली] दे० 'तीतर' ।

तीन^१—वि० [सं० त्रीणि] जो दो और एक हो । जो गिनती में
चार से एक कम हो ।

तीन^२—संज्ञा पुं० १. दो और चार के बीच की संख्या । दो और एक
का जोड़ । २. उक्त संख्यासूचक शंक जो इस प्रकार लिखा
जाता है - ३ ।

यौ०—तीन तग = जनेऊ । यज्ञोपवीत । उ०—ना में तीन तग
गलि मीऊँ । ना में सुनत करि बोरौऊँ ।—सुंदर० प्र०,
भा० १ (भू०), पृ० ४८ ।

मुहा०—तीन बाँच करना = इधर उधर करना । धुमास फिरास
या हुल्लास की बात करना ।

तीन^३—संज्ञा पुं० सरयूपारी बाह्याणों में तीन गोत्रों का एक वर्ग ।

विशेष—सरयूपारी बाह्याणों में खोलहू गोत्र होते हैं जिनमें से
तीन गोत्रवालों का उत्तम वर्ग है और तेरह गोत्रवालों का
दूधरा वर्ग है ।

मुहा०—तीन तेरह करना = बितर बितर करना । इधर उधर
खितरावा या अलग अलग करना । उ०—कियो तीव तेरह
धरै चौका चौका जाय ।—हर्षचंद्र (शब्द०) । न तीव में, न
तेरह में = जो किसी भिन्नता में न हो । बिधे कोई पुछता न
हो । उ०—कुँप कान नाम कहाँ पैये मोतें जानराय बूझु हुन
मारे हैं न तेरह न तीन में ।—हनुमान (अव्व०) ।

तीन^४—संज्ञा बी० [हि०] तिन्नी का भाव ।

तीनपान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत मोटा रस्सा जिसकी
मोटाई कम से कम एक फुट होती है (लख०) ।

तीनपाम—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीनपाव' ।

तीनलकी—संज्ञा बी० [हि० तीन + लकी] गले में पहनने की एक
प्रकार की माला जिसमें तीन लकड़ियाँ होती हैं । तिलकी ।

तीनि(५)१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीन'

तीनि(५)२—वि० [हि०] दे० 'तीन' । उ०—बर बरनी, ठरबी
रंग भीनी । दासी बीनि तोनि सत दीनी ।—तंब० प्र०,
पृ० २२१ ।

तीनी—संज्ञा बी० [हि० तिन्नी] तिन्नी का भाव ।

तीपड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] रेण्मी कपड़ा बुननेवालों का एक धोजार
जिसके नीचे ऊपर दो लकड़ियाँ जगी रहती हैं जिन्हें बेसर
कहते हैं ।

तीमार—संज्ञा बी० [फ़ा०] रोगी की देखभाल । सेवा शुश्रूषा [को०] ।

तीमारदार—वि० [फ़ा०] परिचर्या करनेवाला । उ०—पड़प पर
बीमार तो कोई न हो तीमारदार । और अगर मर जाइए तो
नोहाइयाँ कोई न हो ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४७१ ।

तीमारदारी—संज्ञा बी० [फ़ा०] रोगियों की सेवा शुश्रूषा का काम ।

तीय(५)१—संज्ञा बी० [सं० बी०] बी । औरत । नारी । उ०—पति
देवता तीय जगधन धन गजत वेद पुराव ।—भारतेंदु प्र०,
भा० १, पृ० ६७६ ।

तीय(५)२—वि० [सं० तृतीय] तीसरा ।

सीया^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'तीय' ।

सीया^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'सिक्की' या 'तिङ्गी' ।

सीरंदाज—संज्ञा पुं० [फ्रा० सीरंदाज] वह जो तीर बनाता हो । तीर बनानेवाला ।

सीरंदाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० सीरंदाजी] तीर बनाने की विद्या या क्रिया ।

सीर^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी का किनारा । कूल । तट । उ०—
बिच बिच कथा बिचिन बिभागा । जनु सरि तीर तीर बन
बागा ।—मानस, १।४० ।

२. पास । समीप । निकट ।

विशेष—इस अर्थ में इसका उपयोग विभक्ति का खोप करके
क्रियाविशेषण की तरह होता है ।

१. सीसा नामक धातु । ४. रंग । ५. गंगा का तट (को०) । ६.
एक प्रकार का बाण (को०) ।

तीर^२—संज्ञा पुं० [फ्रा०] बाण । शर । उ०—तीरों उबर तीर
सहि, सेलें उपर सेज ।—हम्मीर०, पृ० ४८ ।

विशेष—यद्यपि पंचदशी आदि कुछ प्राधुनिक ग्रंथों में तीर शब्द
बाण के अर्थ में आया है, तथापि यह शब्द वास्तव में है
फारसी का ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—छोड़ना ।—फेंकना ।—लगना ।

मुहा०—तीर चलाना=मुक्ति भिड़ाना । रंग ढंग लगाना ।
जैसे,—तीर तो गहरा चलाया था, पर खाली गया । तीर
फेंकना=दे०='तीर चलाना' । लगे तो तीर नहीं तो तुक्का=
कार्यसिद्धि पर ही साधन की उपयोगिता है ।

सीर^३—संज्ञा पुं० [?] जहाज का मस्तूल ।

सीर^४—वि० [हि० तिरना (= पार करना)] पारंगत । जानकार ।
उ०—बावसाह करे जिकीर सच्च हिंदु फकीर । ब्रह्मज्ञान मे
तीर रगधीर आए हैं ।—दक्खिनी०, पृ० ५० ।

सीरकस^५—संज्ञा पुं० [फ्रा० सीरकस] तरकस । उ०—लिए
लगाइ तीरकस भारे ।—हम्मीर०, पृ० ३० ।

सीरकारी^६—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० सीर+कारी] बाणों की वर्षा ।
उ०—भई तीरकारी छुटे नाख बानं । परी सीर की धुंध
सुभई न जानं ।—पु० रा०, १।४५१ ।

सीरगर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह जो तीर बनाता हो । तीर बनानेवाला
कारीगर । उ०—गुरु कीन्हों इक्कीमवों ताहि तीरगर जान ।
—मनविरक्त०, पृ० २६७ ।

सीरज—संज्ञा पुं० [सं०] किनारे पर का वृक्ष (को०) ।

सीरण—संज्ञा पुं० [सं०] करंज ।

सीरथ—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थ] दे० 'तीर्थ' । उ०—तीरथ बनादि
पंचगंगा ममीकनिकादि सात आवरण मध्य पुन्य कपी वसी
है ।—भारतेंदु प्र० भा० १, पृ० २८१ ।

विशेष—तारथ के योगिक शब्दों के लिये दे० 'तीर्थ' के
योगिक शब्द ।

तीरथपति^७—संज्ञा पुं० [हि० तीरथ+पति] तीर्थराज । प्रयाग ।

उ०—माघ मकर गत रवि जब होई । तीरथपतिहि प्राय सब
कोई ।—मानस, १।४४ ।

तीरभुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा, गंडकी और कोशिकी इन तीन
नदियों से घिरा हुआ तिरहुत देश ।

तीरवर्ती—वि० [सं० तीरवर्तिन्] १. तट पर रहनेवाला । किनारे
पर रहनेवाला । २. समीप रहनेवाला । पास रहनेवाला ।
पड़ोसी । ३. तीरस्थ । तीर पर स्थित ।

तीरस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी के तीर पटुआया हुआ मरणासन्न
व्यक्ति ।

विशेष—अनेक जातियों में यह प्रथा है कि रोगी जब मरने को
होता है, तब उसके संबंधी पहले ही उसे नदी के तीर पर ले
जाते हैं; क्योंकि धार्मिक दृष्टि से नदी के तीर पर मरना
अधिक उत्तम समझा जाता है ।

२. तीर पर स्थित । तीर पर बसा हुआ ।

तीरा^८—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीर' ।

तीराट—संज्ञा पुं० [सं०] लोभ ।

तीरित—वि० [सं०] निर्णय किया हुआ । तै किया हुआ (को०) ।

तीरित^२—संज्ञा पुं० १. कार्य की पूर्णता या समाप्ति । २. रिखत या
अन्य साधनों से दंडित होने से बचना (को०) ।

तीरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । महादेव । २. शिव की स्तुति ।

तीर्य—वि० [सं०] १. जो पार हो गया हो । उत्तीर्ण । २. जो
सीमा का उल्लंघन कर चुका हो । ३. जो भीगा हुआ
हो । तरबतर ।

तीर्यपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूल । मुसली ।

तीर्यपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तीर्यपदा' ।

तीर्यप्रतिज्ञा—वि० [सं०] जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हो (को०) ।

तीर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त-जिसके प्रत्येक चरण में एक
नगण और एक गुरु (॥१५) होता है । इसको 'सती', 'सिन्हा'
और 'तरणिका' भी कहते हैं । जैसे, नगपती । बनसती । शिव
कहो । मुख सही ।

तीर्थकर—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थकर] १. जैनियों के उपास्य देव जो
देवताओं से भी श्रेष्ठ और सब प्रकार के दोषों से रहित,
मुक्त और मुक्तिदाता माने जाते हैं । इनकी मूर्तियाँ दिगंबर
बनाई जाती हैं और इनकी प्राकृति प्रायः बिलकुल एक ही
होती है । केवल उनका वर्ण और उनके सिंहासन का आकार
ही एक दूसरे से भिन्न होता है ।

विशेष—गत उत्सर्पिणी में बीबीस तीर्थकर हुए थे जिनके नाम ये
हैं—१. केवलज्ञानी । २. निर्वाणी । ३. सागर । ४. महाशय ।
५. विमलनाथ । ६. सर्वानुभूति । ७. श्रीधर । ८. दत्त ।
९. दामोदर । १०. सुतेज । ११. स्वामी । १२. भुविभुवत ।
१३. सुमति । १४. शिवगति । १५. अस्ताग । १६. नेमीश्वर ।
१७. अनल । १८. यशोधर । १९. कृतार्थ । २०. जितेश्वर ।
२१. शुद्धमति । २२. शिवकर । २३. स्वयंभू और । २४.
संप्रति । वर्तमान अवसर्पिणी के प्रारंभ में जो बीबीस तीर्थकर
हो गए हैं उनके नाम ये हैं—

१. ऋषभदेव । २. अजितनाथ । ३. संभवनाथ । ४. अग्निर्नन्दन ।
५. सुमतिनाथ । ६. पद्मप्रभ । ७. सुपाश्वर्चनाथ । ८. चन्द्रप्रभ ।
९. सुबुधिन्याथ । १०. शीतलनाथ । ११. श्रेयांसनाथ । १२.
वासुपूज्य स्वामी । १३. विमलनाथ । १४. अनन्तनाथ । १५.
धर्मनाथ । १६. शांतिनाथ । १७. कुंतुनाथ । १८. अमरनाथ ।
१९. मल्लिनाथ । २०. मुनि सुवत । २१. नमिनाथ । २२.
नेमिनाथ । २३. पार्श्वनाथ । २४. महावीर स्वामी । इनमें से
ऋषभ, वासुपूज्य और नेमिनाथ की मूर्तियाँ योगाभ्यास
में बैठी हुई और बाकी सब की मूर्तियाँ खड़ी बनाई
जाती हैं ।

२. विष्णु (को०) । ३. शास्त्रकर्ता (को०) ।

तीर्थकुन्—संज्ञा पु० [सं० तीर्थकुन्] १. जैनियों के देवता । जिन ।
२. शास्त्रकार ।

तीर्थ^१—संज्ञा पु० [सं०] १. वह पवित्र वा पुण्य स्थान जहाँ धर्म-
भाव से लोग यात्रा, पूजा या स्नान आदि के लिये जाते
हैं । जैसे, हिंदुओं के लिये काशी, प्रयाग, जगन्नाथ,
गया, द्वारका आदि; अथवा मुसलमानों के लिये मक्का
और मदीना ।

विशेष—हिंदुओं के शास्त्रों में तीर्थ तीन प्रकार के माने गए हैं—
(१) जंगम; जैसे, ब्राह्मण और साधु आदि; (२) मानस;
जैसे, सत्य, क्षमा, दया, दाव, संतोष, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, धैर्य, मधुर
भाषण आदि; और (३) स्थावर; जैसे, काशी, प्रयाग, गया
आदि । इस शब्द के अंत में 'राज', 'पति' अथवा इसी
प्रकार का और शब्द लगाने से 'प्रयाग' अर्थ निकलता है,—
तीर्थराज या तीर्थपति = प्रयाग । तीर्थ जाने अथवा वहाँ से लौट
जाने के समय हिंदुओं के शास्त्रों में सिर मुँहाकर आदर करने
और ब्राह्मणों को भोजन कराने का भी विधान है ।

२. कोई पवित्र स्थान । ३. हाथ में के कुछ विशिष्ट स्थान ।

विशेष—बाह्ये हाथ के अंगुष्ठ के ऊपरी भाग ब्रह्मतीर्थ, अंगुष्ठ
और तर्जनी का मध्य भाग पितृतीर्थ, कनिष्ठा अंगुली के नीचे
का भाग प्राजापत्य तीर्थ और अंगुलियों का अगला भाग देव-
तीर्थ माना जाता है। इन तीर्थों से क्रमशः प्राध्वमन, पिंडदान,
पितृकार्य और देवकार्य किया जाता है ।

४. शास्त्र । ५. यज्ञ । ६. स्थान । स्थल । ७. उपाय । ८. अवसर ।
९. नारीरज । रजस्वला का रक्त । १०. अवतार । ११.
धरणीमृत । देव-स्नान-जल । १२. उपाध्याय । गुरु । १३.
मंत्री । अमात्य । १४. योनि । १५. दर्शन । १६. घाट । १७.
ब्राह्मण । विप्र । १८. निधान । कारण । १९. अग्नि । २०.
पुण्यकाल । २१. संन्यासियों की एक उपाधि । २२. वह जो
तार दे । तारनेवाला । २३. वैराग्य को त्यागकर परस्पर
उचित व्यवहार । २४. ईश्वर । २५. माता पिता । २६.
प्रतिधि । मेहुमान । २७. राष्ट्र की अठारह संपत्तियाँ ।

विशेष—राष्ट्र की इन अठारह संपत्तियों के नाम हैं,—(१)
मंत्री, (२) पुरोहित, (३) युवराज, (४) भूपति, (५)
द्वारपाल, (६) अंतर्वेसिक, (७) कारागाराध्यक्ष, (८) प्रव्य-

४-५६

संचयकारक, (९) कृष्याकृत्य अर्थ का विनियोजक, (१०)
प्रवेष्टा, (११) नगराध्यक्ष, (१२) कार्य निर्माणकारक,
(१३) धर्मध्यक्ष, (१४) समाध्यक्ष, (१५) दंडपाल, (१६)
दुर्गपाल, (१७) राष्ट्रांतपाल और (१८) अटवीपाल ।

२८. मार्ग । पथ (को०) । २९. जलाशय (को०) । ३०. साधना ।
माध्यम (को०) । ३१. स्रोत । मूल (को०) । ३२. मंत्रणा ।
परामर्श । जैसे कृततीर्थ = जो मंत्रणा कर चुका हो । ३३.
वात्सल्य और उत्कर के बीच का वेदी का पथ (को०) ।

तीर्थ^२—वि० १. पवित्र । पावन । पूत । २. मुक्त करनेवाला ।
रक्षक (को०) ।

तीर्थक^१—संज्ञा पु० [सं०] १. ब्राह्मण । उ०—युवांगचांग कहते हैं कि
मिथ्यादृष्टि के तीर्थक भी ऐसा ही कहते हैं ।—संपूर्ण० अग्नि०
सं०, पु० ३५४ । २. तीर्थकर । ३. वह जो तीर्थों की यात्रा
करता हो ।

तीर्थक^२—वि० १. पवित्र । २. पूज्य (को०) ।

तीर्थकर्मडलु—संज्ञा पु० [सं० तीर्थकर्मडलु] वह कर्मडल जिसमें
तीर्थजल हो (को०) ।

तीर्थकर—संज्ञा पु० [सं०] १. विष्णु । २. जिन । ३. शास्त्रकार (को०) ।

तीर्थकाक—संज्ञा पु० [सं०] १. तीर्थ का कीटा । २. अत्यंत लोभी
व्यक्ति (को०) ।

तीर्थकुन्—संज्ञा पु० [सं०] १. जिन । २. शास्त्रकार (को०) ।

तीर्थचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीर्थयात्रा (को०) ।

तीर्थदेव—संज्ञा पु० [सं०] शिव । महादेव ।

तीर्थपति—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तीर्थराज' ।

तीर्थपाद—संज्ञा पु० [सं०] विष्णु ।

तीर्थपादीय—संज्ञा पु० [सं०] वैष्णव ।

तीर्थपुरोहित—संज्ञा पु० [सं०] तीर्थ का पंडा (को०) ।

तीर्थयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पवित्र स्थानों में दर्शन स्नानादि के लिये
जाना । तीर्थान्न ।

तीर्थराज—संज्ञा पु० [सं०] प्रयाग ।

तीर्थराजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी (को०) ।

तीर्थराजो—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी ।

विशेष—काशी में सब तीर्थ हैं, इसी से यह नाम पड़ा है ।

तीर्थवाक—संज्ञा पु० [सं०] सिर के बाल (को०) ।

तीर्थवायस—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'तीर्थकाक' (को०) ।

तीर्थविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीर्थ में करणीय कार्य । जैसे,
क्षीरकर्म (को०) ।

तीर्थशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] घाट तक जानेवाली पत्थर की
सीढ़ियाँ (को०) ।

तीर्थशौच—संज्ञा पु० [सं०] तीर्थस्थल पर घाट आदि का परिष्कार
करने या कराने की क्रिया (को०) ।

तीर्थसेनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

तीर्थसेवी—वि० [सं० तीर्थसेविन्] धार्मिक यात्रा से तीर्थ में रहने-वाला [को०] ।

तीर्थसेवी^२—संज्ञा पुं० बगुला [को०] ।

तीर्थोदन—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थयात्रा ।

तीर्थिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीर्थ का ग्रहण । पंथा । २. घोड़ों के अनुसार बौद्धधर्म का विद्वेगी ब्राह्मण । ३. तीर्थकर ।

तीर्थिया—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थ + हि० इया (प्रत्य०)] तीर्थकरों को माननेवाला, जेनी ।

तीर्थभूत—वि० [सं०] १. पवित्र । शूद्र । २. पूज्य [को०] ।

तीर्थोद्क—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थ का पवित्र जल [को०] ।

तीर्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रुद्र का नाम । २. सहपाठी ।

तीर्थ्य^२—वि० तीर्थ से संबंधित [को०] ।

तीर्न—संज्ञा पुं० [सं० तीर्ण] दे० 'तीर्ण' ।

तील^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिल' । उ०—उलटि तील तेज चरंगे नीर चरंगे बाई । नाह बिंद पाँटी पड़िगा मजवा कही न जाई । —रामानंद०, पृ० १५ ।

तीलखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

तीला—संज्ञा पुं० [फा० तीर] तिबका । विक्षेपतः बड़ा तिनका ।

तीली—संज्ञा स्त्री० [फा० ती (= बार)] १. बड़ा तिनका । छीक । २. धातु आदि का पतला, पर कड़ा तार । ३. करघे में डरकी की वह सीक जिसमें नरी पहनाई जाती है । ४. तीलियों की वह कुँची जिससे जुलाहे घुत साफ करते हैं । ५. पड़वों का वह छोड़ा जिससे वे रेशम सपेटते हैं । इसमें लोहे का एक तार होता है जिसके एक सिरे पर लकड़ी का एक गोल टुकड़ा लगा रहता है ।

तीव^७—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री । घोरत ।

तीवह^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तीव' । उ०—तीवह कंवज सुगंध धरीक । समुद्र महुरि सोई तन चाक ।—जायसी (शब्द०) ।

तीवर्ना—संज्ञा पुं० [सं० तेमन (= व्यंजन)] १. पकवान । २. रक्षितार तरकारी ।

तीवर—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. व्याघ्र । शिकारी । ३. घोवर । बछुपा । ४. एक वंशसंकर अंत्यज आनि ।

विशेष—यह ब्रह्मवेदतं पुराण के अनुसार राजपूत माता घोर क्षत्रिय पिता के गर्भ से तथा पराक्षर के मत के राजपूत माता घोर क्षत्रिय पिता के गर्भ से उत्पन्न है । कुछ लोग तीवर घोर घीवर की एक ही मानते हैं । स्मृति के अनुसार तीवर को स्पर्श करने पर स्नान करने की आवश्यकता होती है ।

तीव्र^७—वि० [सं०] १. अतिशय । अत्यंत । २. तीक्ष्ण । तेज । ३. बहुत गरम । ४. निराला । बेहद । ५. कटु । कड़वा । ६. दुःसह । असह्य । न सहने योग्य । ७. प्रचंड । ८. तीखा । ९. वेगयुक्त । तेज । १०. कुछ ऊँचा घोर आने स्थान से बड़ा हुवा (स्वर) ।

विशेष—संगीत में ५ स्वरों—आषम, गांधार, मध्यम, धैवत और निषाद के तीव्र रूप होते हैं । वि० दे० 'कोमल' ।

तीव्र^२—संज्ञा पुं० १. मोहा । २. इस्पात । ३. नदी का किनारा । ४. शिव । महादेव ।

तीव्रकंठ—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रकण्ठ] सूरन । जमीकंद । झोल ।

तीव्रकंठ—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रकण्ठ] सूरन [को०] ।

तीव्रगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तीव्रगन्धा] प्रजवायन । यवानी ।

तीव्रगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तीव्रगन्धिका] दे० 'तीव्रगंधा' ।

तीव्रगति^२—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं०] वायु । हवा ।

तीव्रगति^२—वि० तेज आसवाला [को०] ।

तीव्रगामी—वि० [सं० तीव्रगामिन्] [वि० स्त्री० तीव्रगामिनी] तेज गतिवाला । तेज आस का ।

तीव्रज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] धूप का फूल जिसके खुने से जोय कहते हैं, करीर में जाव हो जाता है ।

तीव्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीव्र का भाव । तीक्ष्णता । तेजी । तीखापन । प्रखरता ।

तीव्रद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

तीव्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रबन्ध] तमोगुण [को०] ।

तीव्रवेदना—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यधिक पीड़ा । अत्यंत दुःख [को०] ।

तीव्रसविग—वि० [सं०] धृक् निश्चयवाला । अटल [को०] ।

तीव्रसब—संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

तीव्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पड़व स्वर की चार ध्रुतियों में से पहली ध्रुति । २. मयकारिणी । सुरासानी प्रजवायन । ३. राई । ४. घोंटर दूध । ५. तुपसी । ६. बड़ी मालकेंबनी । ७. कुटकी । ८. तरवी दूध ।

तीव्रानंद—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रानन्द] महादेव । शिव [को०] ।

तीव्रानुराग—संज्ञा पुं० [सं०] १. बैबियों के अनुसार एक प्रकार का प्रतिचार । परस्त्री या परपुरुष के अत्यंत अनुराग करना घपका काम की वृद्धि के लिये पछीम, कस्तूरी आदि खाया । २. अत्यधिक प्रेम [को०] ।

तीस^७—वि० [सं० त्रिषति, पा० तीसा] जो बिनती में उनबीस के साथ घोर इकतीस के पहले हो । जो बस का तिगुना हो । बीस घोर बस ।

तीस^७—तीसों दिन या तीस दिव = सप्ताह । हप्ताह । तीसमार चाँ = बहुत बीर । बड़ा बहादुर (व्यंग्य) ।

तीस^२—संज्ञा पुं० बस की तिगुनी संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—३० ।

तीस^३—संज्ञा पुं० [?] धामलकी । उ०—रंजि बिपन बाटिका तीस द्रुम छाँह रखति तर ।—पृ० रा०, २५ । ३ ।

तीसना^७—वि० प्र० [हि०] दे० 'टीसना' ।

तीसर^७—वि० [हि०] दे० 'तीसरा' । उ०—तब शिव तीसर नयन उधारा । चितवत काम अयउ जरि छारा ।—मानस, १।८७ ।

तीसरा^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तीसरा] खेत की तीसरी जुताई ।

तीसरा—वि० [हि० तीन + सरा (प्रत्य०)] १. क्रम में तीस के स्थान पर पड़नेवाला । जो दो के उपरांत हो । जिसके पहले दो और हों । उ०—दूसरे तीसरे पाँचमें सातमें आठमें तो भला पाइयो कीजिए।—ठाकुर०, पृ० २ । २. जिसका प्रस्तुत विषय से कोई संबंध न हो । संबंध रखनेवालों से भिन्न, कोई और । जैसे,—न हमारी बात, न तुम्हारी बात, तीसरा जो कहे, वही हो ।

थौ०—तीसरा पहर=दोपहर के बाद का समय । दिन का तीसरा पहर । अपराह्न ।

तीसवाँ—संज्ञा पुं० [हि० तीस + वाँ (प्रत्य०)] क्रम में तीस के स्थान पर पड़नेवाला । जो उनतीस के उपरांत हो । जिसके पहले उनतीस और हों ।

तीसी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० अतसी] अतसी नामक तेलहन । वि० दे० 'अतसी' ।

तीसी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तीस + ई (प्रत्य०)] १. फल आदि गिनने का एक मान जो तीस गणितों अर्थात् एक सौ पचास का होता है । २. एक प्रकार की छेनी जिससे लोहे की थालियों आदि पर नकाशी करते हैं ।

तीहा^१—संज्ञा पुं० [सं० तुष्टि ?] १. तसल्ली । आश्वासन । २. धैर्य । धीरता । ३. संतोष ।

तीहा^२—संज्ञा पुं० [हि० तिहाई] तिहाई । जैसे, भाषा तीहा ।

विशेष—इसका प्रयोग समास हो में होता है ।

तुं०—संब० [हि०] दे० 'तुम' । उ०—तुं धाता करतार तुं धरता धरता देव ।—पू० रा०, १।२।१।

तुंग^१—वि० [सं० तुङ्ग] १. उन्नत । ऊँचा । उ०—सारा पर्वत गाम तुंग सरल सवाहरित देवदास्यों से ठँका था ।—किन्नर०, पृ० ४२ । २. उग्र । प्रबल । उ०—तुंग फकीर बाहु सुल्तान सिर सिर हुकुम चलावे ।—प्राण०, पृ० २६३ । ३. प्रभाव । मुख्य ।

तुंग^२—संज्ञा पुं० १. पुन्नाग वृक्ष । २. पर्वत । पहाड़ । ३. नारियल । ४. किजक । कमल का केसर । ५. शिव । ६. बुध ग्रह । ७. ग्रहों की उच्च राशि । दे० 'उच्च' । ८. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और दो गुण होते हैं । जैसे,—न नग गद्ग बिहारी । कहत अहि पियारी । ९. एक छोटा भाड़ या पेड़ जो सुलेमान पहाड़ तथा पच्छिमी हिमालय पर कुमाऊँ तक होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी, छाल और पत्ती रंगने और चमड़ा सिक्काने के काम में आती है । इसकी लकड़ी से यूरोप में तस-वीरों के नक्काशीदार चीखटे आदि भी बनते हैं । हिमालय पर पहाड़ी लोग इसकी टहनियों के टोकरे भी बनाते हैं । यह पेड़ समक या समाक जाति का है । इसे भामी, दरेंगड़ी और परंडी भी कहते हैं ।

१०. सिहासन (को०) । ११. बतुर या निपुण व्यक्ति (को०) । १२. भूष । झुंड । समूह (को०) ।

तुंगक—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गक] १. पुन्नाग वृक्ष । नागकेसर । २. महा-भारत के अनुसार एक तीर्थ ।

विशेष—पहले यहीं सारस्वत मुनि ऋषियों की वेद पढ़ाया करते थे । एक बार जब वेद नष्ट हो गए, तब अंगिरा के पुत्र ने एक 'मोक्ष्म' शब्द का उच्चारण किया । इस शब्द के उच्चारण के साथ ही भूला हुआ सब वेद उपस्थित हो गया । इस घटना के उपलक्ष्य में इस स्थान पर ऋषियों और देवताओं ने बड़ा भारी यज्ञ किया था ।

तुंगता—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गता] उंचाई ।

तुंगत्व—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गत्व] उच्चता । ऊँचाई ।

तुंगनाथ—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गनाथ] हिमालय पर एक शिवलिंग और तीर्थस्थान ।

तुंगनाभ—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गनाभ] सुश्रुत के अनुसार एक कीड़ा जो विषैले जंतुओं में गिनाया गया है । इसके काटने से जलन और पीड़ा होती है ।

तुंगनास—वि० [सं० तुङ्गनास] लंबी नाकवाला (को०) ।

तुंगबाहु—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गबाहु] तखवार के ३२ हाथों में से एक ।

तुंगबीज—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गबीज] पारा (को०) ।

तुंगभद्र—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गभद्र] मतवाला हाथी ।

तुंगभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गभद्रा] दक्षिण की एक नदी जो सहाद्रि पर्वत से निकलकर कृष्णा नदी में जा मिली है ।

तुंगमुख—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गमुख] गंगा (को०) ।

तुंगरस—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गरस] एक प्रकार का गंधद्रव्य (को०) ।

तुंगला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी भाड़ी जो पश्चिमी हिमालय में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है ।

विशेष—गढ़वाल में लोग इसकी पत्तियों का तमाकू या सुरती के स्थान पर व्यवहार करते हैं । इसके फल खट्टे होते हैं और इमली की तरह काम में लाए जाते हैं ।

तुंगवेणा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गवेणा] महामारत के अनुसार एक नदी जिसका नाम महानदी, (वेणु गंगा) आदि के साथ आया है । कदाचित् यह तुंगभद्रा का दूसरा नाम हो ।

तुंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गा] १. वंशलोचन । २. शमी वृक्ष । ३. तुंग नामक वर्णवृक्ष । ४. मैसूर की एक नदी (को०) ।

तुंगारण्य—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गारण्य] भौसी से ६ कोस मोड़छा के पास का एक जंगल । इस स्थान पर एक मंदिर है और मेला लगता है । यह बेतवा नदी के तट पर है । उ०—नदी बेतवा तोर जहँ तीरथ तुंगारण्य । नगर मोड़छो तहँ बसे घरनी तल में धन्य ।—कैशव (शब्द०) ।

तुंगारन्न^(१)—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गारण्य] दे० 'तुंगारण्य' ।

तुंगारि—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गारि] सफेद कनेर का पेड़ ।

तुंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गिनी] महा शतावरी । बड़ी सतावर ।

तुंगिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गिमन्] तुंगता । ऊँचाई (को०) ।

तुंगी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गी] १. हलदी । २. रात्रि । ३. बनतुनसी । बबई । ममरी ।

तुंगी^२—वि० [सं तुङ्गिन्] ऊँचा [को०] ।

तुंगी^३—संज्ञा पुं० ऊँचाई पर स्थित ग्रह [को०] ।

तुंगीनास—संज्ञा पुं० [सं तुङ्गीनास] दे० 'तुंगनास' ।

तुंगीपति—संज्ञा पुं० [सं तुङ्गीपति] चंद्रमा ।

तुंगीश—संज्ञा पुं० [सं तुङ्गीश] १. शिव । २. कृष्ण । ३. सूर्य ।

तुंज^१—संज्ञा पुं० [सं तुञ्ज] १. वज्र । २. धापात । घक्का [को०] ।

३. आक्रमण [को०] । ४. राजस [को०] । ५. दान देना [को०] ।

६. दबाव । दाब [को०] ।

तुंज^२—वि० दुष्ट । फितरती । हानिकर [को०] ।

तुंजाल—संज्ञा पुं० [सं तुरङ्ग + जाल] एक प्रकार का जाल जो घोड़ों के ऊपर उन्हें मक्खियों आदि से बचाने के लिये डाला जाता है । इसके नीचे फुँदने भी लगते हैं ।

तुंजीन—संज्ञा पुं० [सं तुञ्जीन] काश्मीर देश के कई प्राचीन राजाओं का नाम जिनका वर्णन राजतरंगिणी में है ।

तुंड—संज्ञा पुं० [सं तुण्ड] १. मुख । मुँह । उ०—दो दो टुं रह दंड दबाकर निज तुंडो मे ।—साकेत, पृ० ४१३ । २. चंचु । चोंच । ३. निकला हुआ मुँह । धूयन । ४. तलवार का धगला हिस्सा । खंग का धग भाग । उ०—फुट्टन कपाल कहे गज मुंड । तुट्टन कहे तरवागिन तुंड ।—सुवन (शब्द०) । ५. शिव । महादेव । ६. एक राक्षस का नाम । ७. हाथी की सूँड़ [को०] । ८. हथियार की नोक [को०] ।

तुंडकेरिका—संज्ञा स्त्री० [सं तुण्डकेरिका] कपास वृक्ष ।

तुंडकेरी—संज्ञा स्त्री० [सं तुण्डकेरी] १. कपास । २. कुंदक । बिबाफल ।

तुंडकेशरी—संज्ञा पुं० [सं तुण्डकेशरी] मुख का एक रोग जिसमें तालु की जड़ में सूजन होती घोर दाह पीड़ा आदि उत्पन्न होती है ।

तुंडनाय^१—संज्ञा पुं० [सं तुण्ड + नाय] तुंडनाद । तुंडावनि । बिबाफल । उ०—तुंडनाय मुनि गरजत गुंजरत भौर ।—शिवर०, पृ० ३३१ ।

तुंडला^१—संज्ञा स्त्री० [सं तुण्डल ?] पीपर । उ०—कोला, कृष्णा, मागधी, तिगम, तुंडला होइ ।—नंद० प्र०, पृ० १०४ ।

तुंडि—संज्ञा स्त्री० [सं तुण्डि] १. मुँह । २. चोंच । ३. बिबाफल । ४. नाभि ।

तुंडिक—वि० [सं तुण्डिक] तुंडवाला । धूयनवाला [को०] ।

तुंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं तुण्डिका] १. टोटी । २. चोंच । ३. बिबाफल । कुंदक । ४. नाभि [को०] ।

तुंडिकेरी—संज्ञा स्त्री० [सं तुण्डिकेरी] १. कपास वृक्ष । २. तालु में अत्यधिक सूजन का होना [को०] ।

तुंडिकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं तुण्डिकेशी] कुंदक ।

तुंडिभ—वि० [सं तुण्डिभ] १. तोदल । जिसका पेट बड़ा हो । २. तुंदिल । जिसकी नाभि उभरी हुई हो [को०] ।

तुंडिल—वि० [सं तुण्डिल] १. तोंदवाला । निकले हुए पेटवाला ।

२. जिसकी नाभि निकली हुई हो । निकली हुई ठोंडवाला । ढोंह । ३. बकवासी । मुँहजोर ।

तुंडी^१—वि० [सं तुण्डिन्] १. मुँहवाला । चोंचवाला । ३. धूयनवाला । ४. सूँड़वाला ।

तुंडी^२—संज्ञा पुं० १. गणेश । उ०—हरिहर विधि रवि शक्ति समेता । तुंडी ते उपजत सब तेता ।—निश्चल (शब्द०) । २. शिव के वृषभ का नाम । नंदी [को०] ।

तुंडी^३—संज्ञा स्त्री० १. नाभि । ढोड़ी । २. एक प्रकार का कुम्हड़ा [को०] ।

तुंडीगुदपाक—संज्ञा पुं० [सं तुण्डीगुदपाक] एक रोग जिसमें बच्चों की गुदा एक जाती है घोर नाभि में पीड़ा होती है ।

तुंडीरमंडल—संज्ञा पुं० [सं तुण्डीरमण्डल] दक्षिण के एक देश का नाम । उ०—पुनि तुंडीर मंडल इक देसा । तहँ बिलमंगल ग्राम सुवेसा ।—रघुराज (शब्द०) ।

तुंद^१—संज्ञा पुं० [सं तुन्द] पेट । उदर ।

तुंद^२—वि० [फा०] १. तेज । प्रचंड । घोर । २. आवेगपूर्ण । पुरजोश [को०] । ३. क्रुद्ध । क्रुपित [को०] ।

यौ०—तुंदमिजाज=दे० 'तुंदखू' ।

४. शीघ्र । त्वरित । तेज । जैसे,—हवा का तुंद भौंका ।

यौ०—तुंदरपतार, तुंदरी = झुतगामी । बहुत तेज चलनेवाला ।

तुंदकूपिका—संज्ञा स्त्री० [सं तुन्दकूपिका] नाभि का गड्ढा [को०] ।

तुंदकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं तुन्दकूपी] नाभि का गड्ढा [को०] ।

तुंदखू—वि० [फा० तुंदखू] कड़े मिजाज का । गुस्सैल । क्रोधी । उ०—उस तुंदखू सनम से जब से लगा है मिलने । हर कोई मानता है मेरी दिलावरी को ।—कविता की०, भा० ४, पृ० ४८ ।

तुंदबाद—संज्ञा स्त्री० [फा०] आंधी । झकड़ । भौंकावात [को०] ।

तुंदर—संज्ञा पुं० [फा०] १. बादल की गरज । मेघगर्जन । २. मधुर स्वरवाली एक प्रसिद्ध चिट्ठिया । बुलबुल [को०] ।

तुंदि—संज्ञा पुं० [सं तुन्दि] १. नाभि । २. एक गंधर्व का नाम । ३. उदर । पेट [को०] ।

तुंदिक—वि० [सं तुन्दिक] १. तोंदवाला । बड़े पेटवाला । तुंदिल । २. बड़ा । विशाल [को०] ।

तुंदिकफला—संज्ञा स्त्री० [सं तुन्दिकफला] खीरे की बेल ।

तुंदिकर—संज्ञा पुं० [सं तुन्दिकर] नाभि । ढोड़ी [को०] ।

तुंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं तुन्दिका] नाभि ।

तुंदित—वि० [सं तुन्दित] दे० 'तुंदिक' [को०] ।

तुंदिभ—वि० [सं तुन्दिभ] दे० 'तुंदिक' [को०] ।

तुंदिल^१—वि० [सं तुन्दिल] तोंदवाला । बड़े पेटवाला ।

तुंदिल^२—संज्ञा पुं० गणेश जी [को०] ।

तुंदिलफला—संज्ञा स्त्री० [सं तुन्दिलफला] १. खीरा । २. ककड़ी [को०] ।

तुंदिलित—वि० [सं तुन्दिलित] तोंदवाला । तोंदियल [को०] ।

तुंदिखीकरण—संज्ञा पुं० [सं० तुन्दिखीकरण] फुलाना । बढ़ा करना [को०] ।

तुंदी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दी] नाभि ।

तुंदी^२—वि० [सं० तुन्दिन्] दे० 'तुंदिक' [को०] ।

तुंदी—संज्ञा स्त्री० [का०] १. तीव्रता । तेजी । २. भावेग । जोश । ३. स्वभाव की तीव्रता । बदमिजाजी । ४. लिंग का उत्पान । ५. कोप । गुस्सा [को०] ।

तुंदैल—वि० [हिं० तुंढ + ऐल (प्रत्य०)] दे० 'तुंदैला' ।

तुंदैला—वि० [सं० तुन्द + हिं० ऐला (प्रत्य०)] तौंदवाला । बड़े पेटवाला । संबोदर ।

तुंढ—संज्ञा पुं० [सं० तुम्ब] १. लोकी । लोवा । घीया । २. लोवे का सुखा फल । तूँबा । ३. भाविला [को०] ।

तुंढर—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बर] १. दे० 'तुंढर' । २. एक वाद्ययंत्र । ताम्रपूरा । उ०—विसव जंत सुर सुद्ध तंत्र तुंढर जुत सो है । ह० रासो, पृ० १ ।

तुंढरु—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बरु] एक गंधर्व ।

तुंढरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बरी] एक प्रकार का घन्न [को०] ।

तुंढरी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तूँबी' ।

तुंढवन—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो दक्षिण दिशा में है ।

तुंढा—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बा] [स्त्री० प्रत्या० तुंढी] १. कड़ुआ कद्दू । गोल कड़ुआ घीया । २. कड़ू कद्दू की खोपड़ी का पात्र । ३. एक प्रकार का जंगली धान जो नदियों या तालों के किनारे आपसे आप होता है । ४. दुधार गाय [को०] । ५. दुध का वर्तन [को०] ।

तुंढार—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बार] तूँबी [को०] ।

तुंढि—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बि] लोकी [को०] ।

तुंढिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बिका] दे० 'तुंढी' । उ०—पानी माहि तुंढिका बूड़ी पाहन तिरत न लागी बेर ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ५१३ ।

तुंढी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बी] १. छोटा कड़ुआ कद्दू । छोटा कड़ुआ घीया । तितलोकी । २. गोल कद्दू का खोपड़ा । गोल घीए का बना हुआ पात्र ।

तुंढुक—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बुक] कद्दू का फल । घीया ।

तुंढुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बुरी] १. धनिया । २. कुतिया ।

तुंढुरु—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बुरु] १. धनिया । २. एक प्रकार के पीछे का बीज जो धनिया के आकार का पर कुछ कुछ फटा हुआ होता है ।

विशेष—इसमें बड़ी माल होती है । मुँह में रखने से एक प्रकार की चुमचुनाहट होती है और लार गिरती है । दाँत के दर्द में इस बीज को लोग दाँत के नीचे दबाते हैं । वैद्यक में यह गरम, कड़ुआ, चरपरा, अग्निदीपक तथा कफ, बात, मूल आदि को दूर करवेवाला माना जाता है । इसे बंगाल में नैपाखी बधिया कहते हैं ।

एक गंधर्व जो चैत के महीने में सूर्य के रथ पर रहते हैं ।

विशेष—ये विष्णु के एक प्रिय पार्श्वचर और संगीत विद्या में अति निपुण हैं ।

४. एक विन उपासक का नाम । ५. तानपूरा [को०] ।

तुंदियाना—क्रि० प्र० [हिं० तोंद से नामिक भाव] तौंद का बढ़ना ।

तुंदैला—वि० [हिं० तोंदे + ऐला (प्रत्य०)] बड़े पेटवाला । तौंदियल ।

तुंढकी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तूँबकी' ।

तुंढकी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी अंदर से सफेद, नर्म और चिकनी निकलती है ।

विशेष—इस पेड़ की लकड़ी मकानों में लगती है । इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं ।

तुंढर^१—संज्ञा पुं० [हिं०] एक गंधर्व तुंढरु । उ०—जोगनी जोगमाया जगी नारद तुंढर निहस्सिया । दस एक रुद्र दारिद्र गत दानव तामर हस्सिया ।—पृ० रा०, २ । १३० ।

तुंढरी^१—संज्ञा [सं० तुम्ब + हिं० री० (प्रत्य०)] दे० 'तूँढरी' ।

तुम्^१—सर्व० [हिं०] दे० 'तुव' । उ०—संज्ञा आवे गोत्र पुनि, छेम धाम तुम् नाम ।—नंद० प्र०, पृ० ८६ ।

तुम्बना^१—क्रि० प्र० [हिं० बूबा, चुबना] १. चुना । टपकना । २. गिर पड़ना । खड़ा न रह सकना । ठहरा न रहना । उ०—निकरे सी निकाई निहारे नई रति रूप लुभाई तुई सी परे ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) । ३. गर्मरात होना । बन्ना गिर पड़ना ।

संयो क्रि०—पड़ना ।

तुम्बर^१—संज्ञा पुं० [सं० तुवरी] घरद्वार । घाढ़की । उ०—घोर बाँवर, सीधो, नए वासन में बूरा तुम्बर आदि सर्व सामान घर में हतो सो हरिवंस जी को सर्व बस्तु दिरगई ।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० ७५ ।

तुम्भार^१—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्भारे' । उ०—नाथ तुम्भारे कुशल कुशल अब लेखिहि ।—प्रकबरी०, पृ० ३३७ ।

तुई^१—सर्व० [हिं०] दे० 'तू' । उ०—अबहि बारि तुई पेम न खेला । का जानसि कस होइ दुहेला,—जायसी प्र०, पृ० ७४ ।

तुई^२—सर्व० [हिं०] दे० 'तू' ।

तुई^३—सर्व० [हिं० तू] तुम्हे । तुम्हको । उ०—भूलि कुरंगिनी कसि जई मनहुँ सिध तुई डीठ ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २३४ ।

तुई^४—संज्ञा स्त्री० [?] कपड़े पर बुनी हुई एक प्रकार की बेल जिसे दुष्ट स्त्रियाँ छपटों पर लगाती हैं ।

तुई^५—सर्व० [हिं०] दे० 'तू' ।

तुक^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० टुक (= टुकड़ा)] १. किसी पद्य या गीत का कोई खंड । कड़ी । २. पद्य के चरण का अंतिम अक्षरों का परस्पर मेल । अक्षरमैत्री । अंत्यानुपास । काफिया ।

यो०—तुकबंदी ।

मुहा०—तुक जोड़ना = (१) वाक्यों को जोड़कर और चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल मिलाकर पद्य बड़ा करना । (२)

महा पद्य बनाना । मही कविता करना । तुक बैठाना = दे० 'तुक जोड़ना' ।

तुक^२—संज्ञा पुं० [सं० तृक] मेल । सामंजस्य । जैसे,—घावकी बात का कोई तुक नहीं है ।

तुकना—क्रि० सं० [प्रनु०] एक अनुकरण शब्द जो 'तुकना' शब्द के साथ बोलचाल में आता है । उ०—तक के तुक के उर पावनि को ललित के द्विज देवन सापनि को ।—रघुराज (शब्द०) ।

तुकतुकाना—क्रि० अ० [हि०] तुक जोड़ते हुए कविता का अभ्यास करना । मही तुकें जोड़ना ।

तुकबंद—संज्ञा पुं० [हि० तुक + बंद (= बांधना)] तुक बांधनेवाला । तुककड़ । उ०—बहुत से तुकबंद प्रत्येक युग में रहते हैं और जीवन पर्यंत इसी भ्रम में बने रहते हैं कि वे कवि हैं ।—काव्यशास्त्र, पृ० ७ ।

तुकबंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० तुक + फा० बंदी] १. तुक जोड़ने का काम । मही कविता करने की क्रिया । २. महा पद्य । मही कविता । ऐसा पद्य जिसमें काव्य के गुण न हों । उ०—बहुत दिनों के बाद आज मेरी जब पुरानी तुकबंदियाँ संग्रह के रूप में सामने आ रही हैं ।

तुकमा—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुक्मह्] घुंटी फँसाने का फंदा । मुद्दे ।

तुकांत—संज्ञा पुं० [हि० तुक + सं० अन्त] पद्य के दो चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल । अस्यानुप्रास । काफिया ।

तुका—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुक्कह्] वह तीर जिसमें गीसी न हो । वह तीर जिसमें गीसी के स्थान पर घुंटी सी बनी हो । उ०—काम के तुका से फूल डोलि डोलि डारे मन श्रीरे किये डारे ये कवचन की डारे री ।—कविद (शब्द०) ।

तुकार—संज्ञा पुं० [हि० तू + सं० कार] अक्षिष्ट संबोधन । मध्यम पुरुष वाचक अक्षिष्ट सर्व० का प्रयोग । 'तू' का प्रयोग जो अपमानजनक समझा जाता है ।

मुहा०—तू तुकार करना = अक्षिष्ट शब्द से संबोधन करना । 'तू' आदि अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करना ।

तुकारना—क्रि० सं० [हि० तुकार] तू तू करके संबोधन करना । अक्षिष्ट संबोधन करना । उ०—धारी हो कर जिन हरि को वदन, धुवारी । वारी वह रसना जिन बोल्यो तुकारी ।—सूर (शब्द०) ।

तुककड़—संज्ञा पुं० [हि० तुक + अकड़ (प्रत्य०)] तुक जोड़नेवाला । तुकबंदी करनेवाला । मही कविता बनानेवाला ।

तुककल—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तुक्कह्] एक प्रकार की बड़ी पतंग जो मोटी डोर पर उड़ाई जाती है ।

तुकका—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुक्कह्] १. वह तीर जिसमें गीसी के स्थान पर घुंटी सी बनी होती है । २. टीला । छोटी पहाड़ी । टेकरी । ३. सीधी खड़ी वस्तु ।

मुहा०—तुफका सा = सीधा उठा हुआ । ऊपर उठा हुआ । जैसे,—जब देखो तब रास्ते में तुफका सी बैठी रहती है ।

तुक्ख^④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुक्ख' । उ०—ज्ञान कथे बहुभेष बनारि इही बात सब तुक्ख ।—पद्म०, भा० ३, पृ० ११ ।

तुक्खार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुखार' [को०] ।

तुख—संज्ञा पुं० [सं० तुष] १. भूसी । छिलका । उ०—भटकत पट भटितता भटकत ज्ञान गुमान । सटकत बितरन तें बिहरि फटकत तुख अभिमान ।—तुलसी (शब्द०) । २. घंटे के ऊपर का छिलका । उ०—घंठ फोरि किय चंदुमा तुख पर नीर निहारि । यहि चंगुल चातक चतुर डारेउ बाहर बारि ।—तुलसी (शब्द०) ।

तुखार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का प्राचीन नाम जिसका उल्लेख अथर्ववेद पारश्विष्ट, रामायण, महाभारत इत्यादि में है ।

विशेष—प्रचिकांश ग्रंथों के मत से इसकी स्थिति हिमालय के उत्तरपश्चिम में होनी चाहिए । यहाँ के छोड़े प्राचीन काल में बहुत प्रचलमाने जाते थे ।

२. तुखारुदेश का निवासी ।

विशेष—हरिवंश के अनुसार जब महर्षियों ने वेणु का मंथन किया था, तब इस अधर्मरत असभ्य जाति की उत्पत्ति हुई थी; पर उत्कृष्ट प्रपं में इस जाति का निवासस्थान विषय पर्वत लिखा है जो श्री प्रपं के विरुद्ध पड़ता है ।

३. तुखार देश का घोड़ा । ४. घोड़ा । उ०—(क) तीख तुखार चाँड़ भो बाँके । तरपहि तबहि तायन बिनु हाँके ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १५० । (ख) आना काटर एक तुखार । कहा सो फेरी भा असवार ।—जायसी (शब्द०) ।

तुखार^२—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुषार' ।

तुखम—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुख्म] १. बीज । दाना । २. गुठली (को०) ।

३. घंटा (को०) । ४. संतान । झीलाद (को०) । ५. वीर्य (को०) ।

यौ०—तुखमपाणी = बीजारोपण । खेत में बीज बोना । तुखम-रेजी = बीज बोना ।

तुखमी—वि० [फ्रा० तुख्मी] १. जो बीज बोकर उत्पन्न किया गया हो । २. देशी धाम जो कलमी न हो (को०) ।

तुगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन ।

तुगाक्षीरो—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन ।

तुम—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक राजपि का नाम जो अश्विनी कुमारी के उपासक थे ।

विशेष—इन्होंने द्वीपांतरों के जन्तुओं की परास्त करने के लिये अपने पुत्र भुज्यु को जहाज पर चढ़ाकर समुद्रपथ से भेजा था । मार्ग में जब एक बड़ा तूफान आया और वायु नौका को उलटने लगी, तब भुज्यु ने अश्विनीकुमारों की स्तुति की । अश्विनीकुमारों ने संतुष्ट होकर भुज्यु को सेना सहित अपनी नौका पर लेकर तीन दिनों में उसके पिता के पास पहुँचा दिया ।

तुम्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुम के वंश का पुरुष । तुम वंशज । २. तुम के पुत्र भुज्यु ।

तुम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी । जल (को०) ।

तुच^④—संज्ञा पुं० [सं० त्वच्] चमड़ा । छाल । उ०—बहु चील नोचि सै जात तुच मोद मढ़यो सबको हियो ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २६५ ।

तुषा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वषा] दे० 'त्वषा'। उ०—भाषे तन बाँधी बड़ि भाई। सपं तुषा छाती लपटाई।—शकुंतला, पृ० १३६।

तुषु^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तुष] दे० 'त्वषा'। उ०—घोखि नाक जिम्मा तुषु काना। पीचो इंद्रि ज्ञान प्रधाना।—सं० दरिया, पृ० २९।

तुच्छ^१—वि० [सं०] १. भीतर से खाली। खोखला। निःसार। शून्य। २. क्षुद्र। नाचीज। सं०—जिन्हें तुच्छ कहते हैं, उनसे भागा क्यों, तस्कर ऐसा?—साकेत, पृ० ३८८। ३. छोटा। छोटा। नीच। ४. प्रल्प। थोड़ा। ५. क्षीय। उ०—छिप्र सु सरवर तुच्छ लघु राजा रंभा सोइ।—घनेकार्य०, पृ० ६८। ६. छोटा हुआ। त्यक्त (को०)। ७. गरीब। दरिद्र (को०)। ८. दयनीय। दुखी (को०)।

तुच्छ^२—संज्ञा पुं० १. सारहीन झिलका। सूखी। २. तृप्तिया। ३. नील का पोषा।

तुच्छक^१—संज्ञा पुं० [सं०] काँधे घोर हरे रंग का मरकत या पन्ना जो शुद्ध या निम्न कोटि का माना जाता है।

तुच्छक^२—वि० शून्य। खाली। रिक्त (को०)।

तुच्छता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हीनता। नीचता। २. मोक्षापन। क्षुद्रता। ३. प्रल्पता।

तुच्छव्य—वि० [सं०] दयाशून्य। निर्दय (को०)।

तुच्छना^५—वि० [सं० तलण] झीलना। तराटना। उ०—चट्टमान तुच्छ ठहुर बहिय।—पृ० रा०, १।२७।

तुच्छस्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. हीनता। क्षुद्रता। २. मोक्षापन।

तुच्छद्र—संज्ञा पुं० [सं०] रेश का पेड़।

तुच्छधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] सूसी। तुष (को०)।

तुच्छधान्यक—संज्ञा पुं० [सं०] सूसी। तुष।

तुच्छप्राय—वि० [सं०] महत्त्वहीन (को०)।

तुच्छवित^५—वि० [सं० तुच्छ + वित] तुच्छ। बगल। उ०—इकसौ इक अधिक मय तुमहें तिनमें तुच्छवित।—ब्रज० सं०, पृ० ११०।

तुच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पोषा। २. तृप्तिया। ३. गुजराती इलायची। छोटी इलायची। ४. कृष्ण पक्ष की षष्ठ्यंश तिथि (को०)।

तुच्छातिवृत्त—वि० [सं०] छोटे से छोटा। पर्यंत हीन। पर्यंत क्षुद्र।

तुच्छीकरण—संज्ञा पुं० [सं० तुच्छ] तुच्छ होने या करने की क्रिया या भाव।

तुच्छीकृत—वि० [सं० तुच्छ] तुच्छ किया हुआ। उ०—समस्त भावों को तुच्छीकृत करना।—मेघन०, भा० २, पृ० १०६।

तुच्छय—वि० [सं०] रिक्त। शून्य। व्यर्थ (को०)।

तुछ^५—वि० [सं० तुच्छ] दे० 'तुच्छ'। उ०—तुछ बुद्धि भट्ट देखत भुर्यो कवि सुमंति कहै का बरन।—पृ० रा०, ६।६५।

तुज^१—वि० [सं०] दुष्ट। कष्टप्रद (को०)।

तुज^२—संज्ञा पुं० दे० 'तुज' (को०)।

तुज^५—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्ह'। उ०—जिम्ने जम्न डारा है तुज कूँ, बिसर गया उनका ध्यान जू।—दक्खिनी०, पृ० १४।

तुजनू^५—सर्व० [पं०] तुम्हें। तुम्हको। उ०—मैं तैडी सटकन फँसा क्या तुजनू कीया।—घनानंद, पृ० १७८।

तुजीह—संज्ञा स्त्री० [हि०] अनुष। कमान।

तुजुक—संज्ञा पुं० [तु० तुजुक] १. सज्जा। सजावट। २. प्रबंध। व्यवस्था। इतिजाम। ३. सैन्य-सज्जा। फौज की तरतीब। ४. राजसभा की सजावट। उ०—सूषन भनत तहाँ सरखा सिवाजी गाजी, तिनको तुजुक देखि नेकहू न लरजा।—सूषण सं०, पृ० ४४। ५. धारमचरित्। जैसे, तुजुक जहाँगीरी।

तुम्ह—सर्व० [प्रा० तुज्म] 'तू' शब्द का वह रूप जो उसे प्रथमा और षष्ठी के धातिरिक्त और विभक्तियाँ लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे, तुम्हको, तुम्हसे, तुम्हपर, तुम्हमें।

तुम्हें—सर्व० [हि० तुम्ह] 'तू' का कर्म और संप्रदान रूप। तुम्हको।

तुम्ह—सर्व० [हि०] तुम्हारा। तेरा। साल्हु कुँवर सुहिणइ मिलइ, सुँहरि सउ बर तुम्ह।—ढोखा०, पृ० ४४।

तुट^५—वि० [सं० श्रुट (=द्रटना)] टूटका। नैद्यमान। जरा सा।

तुटना^५—क्रि० घ० [हि०] दे० 'तूटना'। उ०—तुटै बंत जारी। करै गै बिहारी। परे सुमि पानं। कचं कूट जानं।—पृ० रा०, १।१४१।

तुटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची (को०)।

तुटितुट—संज्ञा पुं० [सं०] गिब।

तुटुम—संज्ञा पुं० [सं०] मूषक। मूँ। बूढ़ा (को०)।

तुट्टना^५—क्रि० घ० [हि० द्रटना] दे० 'तूटना'। उ०—दरिया दधि किय मयन मोम फट्टिय यह तुट्टिय।—पृ० रा०, १।६३६।

तुट्टना^५—क्रि० घ० [सं० तुष्ट, घा० तुष्ट + स (प्रत्यय)] तुष्ट करना। प्रसन्न करना। राखी करना।

तुट्टना^५—क्रि० घ० तुष्ट होना। प्रसन्न होना। राखी होना।

तुठना^५—क्रि० घ० [हि०] दे० 'तूटना'। उ०—स्नेह तुठी राजा प्रीतगी मेलही।—बी० रासो, पृ० ४८।

तुङ्गाण^५—क्रि० वि० [सं० स्वरित?] भीष्ट। उ०—प्रखई माघी-दास री, तिण बेला तुङ्गाण।—रा० क०, पृ० ३३३।

तुङ्गाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तुङ्गाना] दे० 'तुङ्गाई'।

तुङ्गाना—क्रि० स० [हि० तोड़ना का प्रे० रूप] तोड़ने का काम कराना। तोड़ने में प्रवृत्त करना। तोड़ने देना।

तुङ्गाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तुङ्गाना] १. तोड़ने की क्रिया या भाव। २. तोड़ने की क्रिया या भाव। ३. तोड़ने की मजदूरी।

तुङ्गाना—क्रि० स० [हि० तोड़ने का प्रे० रूप] १. तोड़ने का काम कराना। तुङ्गाना। २. बंधी हुई रस्सी आदि को तोड़ना। बंधन छुड़ाना। जैसे,—चोड़ा रस्सी तुङ्गाकर भागा। ३. प्रलय करना। संबंध तोड़ना। जैसे, बच्चे को माँ से तुङ्गाना। ४. एक बड़े सिक्के को बराबर मूल्य के कई छोटे छोटे सिक्कों से

बचलना । भुनाना । जैसे, रुपया तुलाना । ५. धाम कम कराना । मुख्य घटवाना ।

तुलुम—संज्ञा पुं० [सं० तुलम्] तुलही । विणुल ।

तुलुयि—संज्ञा पुं० [सं०] तुल का पेड़ ।

तुलरा^५—वि० [हि० तोतला] [वि० बी० तुलरी] दे० 'तोतला' । उ०—मन मोहन की तुलरी बोलन भुनिमन हुरत मुहँसि मुसकनियाँ ।—सूर (शब्द०) ।

तुलराना^५—क्रिया प्र० [हि० तुलरा + ना (प्रत्य०)] दे० 'तुलवाना' । उ०—अबगुन नहि उपकंठ रहत है अरु बोलत तुलरात री ।—सूर (शब्द०) ।

तुलरानि^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] तुलवाने की क्रिया या भाव ।

तुलरानी^५—संज्ञा स्त्री० [हि० तुलरा + ई (प्रत्य०)] तोतली । तुलवाती हुई । उ०—जननि वषट् सुनि तुलत उठे हरि कहत बात तुलरानी ।—नंद० प्र०, पृ० ३३७ ।

तुलरी^५—वि० बी० [हि०] दे० 'तुलसी' । उ०—काब हूँ प्राब सुषा सींचति आरस भरि बोलनि तुलरी ।—चनानंद, पृ० ४३ ।

तुलरीही^५—वि० [हि० तुलरा + होही (प्रत्य०)] दे० 'तोतला' ।

तुलजा—वि० [हि०] दे० 'तोतला' । उ०—मा के तन्मय सर से मेरे जीवन का तुलजा उपक्रम ।—पद्मव, पृ० १०६ ।

तुलजान—संज्ञा स्त्री० [हि० तुलजाना] तुलवाने की क्रिया या भाव ।

तुलजाना—क्रि० प्र० [सं० तुल (=दूटना) या अनु०] शब्दों और वस्तुओं का अस्पष्ट उच्चारण करना । एक एककर दूटे फूटे शब्द बोलना । साफ न बोलना । शब्द बोलने में वण्ठों ठीक ठीक मुँह से न निकालना । जैसे,—बच्चों का तुलजाना बहुत प्यारा लगता है । उ०—आगति प्रसूती मीठी बानी तुलजान की ।—शकुंतला०, पृ० १४० ।

तुलजी—वि० बी० [हि०] दे० 'तोतली' । उ०—कर पद से चलते देख उन्हें सुनकर तुलजी बाणी रसाल ।—सागरिका, पृ० ११३ ।

तुलही^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुलही' ।

तुलु लुल^५—संज्ञा पुं० [अनु०] बच्चों का एक खेल । उ०—मखत कबहुँ भाबरि कबहुँ तुलु लुल मल ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४७८ ।

तुलही^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तुलु] १. टोंटीदार छोटी घंटी । छोटी सी झारी जिसमें टोंटी लगी हो । २. एक वाद्य । तुलही ।

तुल—सर्व० [सं० तुल] तुल । उ०—तिहि बंस बली धनगैस तुल ।—पृ० २०, ३, ३२ ।

तुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृतिया । नीला थोथा । २. अग्नि (को०) । ३. परस्पर (को०) ।

तुल्यक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुल्य' ।

तुल्यजन—संज्ञा पुं० [सं० तुल्यजन] तृतिया । नीला थोथा ।

तुल्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पीथा । २. छोटी इलायची ।

तुल्य^५—वि० [सं०] आघातकारी । पीड़ादायी । कष्टकर जैसे,—ममंतुद । असंतुद ।

तुल्य^५—संज्ञा पुं० [?] दुःख । उ०—कदन, विधुर, अक, वृष, तुल्य, गहन, ब्रजिन पुनि आहि ।—नंद० प्र०, पृ० १०० ।

तुलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यथा देने की क्रिया । पीड़न । २. व्यथा । पीड़ा । उ०—रुपाष्टि करि तुलन मिटावा । सुमन माल पहिराय पठावा ।—विश्वाम० (शब्द०) । ३. तुलाने या गणने की क्रिया ।

तुलन—संज्ञा पुं० [सं० तुलन] एक बहुत बड़ा पेड़ जो साधारणतः सारे उत्तरीय भारत में सिंध नदी से लेकर तिकिम घोर भूटान तक होता है ।

विशेष—इसकी ऊँचाई चालीस से लेकर पचास सठ हाथ तक और लपेट दस बारह हाथ तक होती है । पत्तियाँ इसकी नीम की तरह खंबी खंबी पर बिना कटाव की होती हैं । शिथिल में यह पेड़ पत्तियाँ झाड़ता है । बसंत के आरंभ में ही इसमें नीम के फूल की तरह के छोटे छोटे फूल गुच्छों में लगते हैं जिनकी पेंसुडिया सफेद पर बीच की पुंडिया कुछ बड़ी और पीले रंग की होती है । इन फूलों से एक प्रकार का पीला बसंती रंग निकलता है । ऊँचे हुए फूलों को लोग इकट्ठा करके सुखा लेते हैं । सुखने पर केवल कड़ी कड़ी पुंडिया सरसो के दाने के आकार की रह जाती है जिन्हें साफ करके कूट डालते या उबाल डालते हैं । तुल की लकड़ी लाल रंग की और बहुत मजबूत होती है । इसमें बीमक और घुन नहीं लगते । मेज कुरसी आदि सजावट के सामान बनाने के लिये इस लकड़ी की बड़ी माँग रहती है । आसाम में चाय के बकस भी इसके बनते हैं ।

तुलक—वि० [फ्रा० तुलुक] दे० 'तुलुक' ।

यौ०—तुलक मिजाज = दे० 'तुलुकमिजाज' । तुलकमिजाजी = दे० 'तुलुकमिजाजी' । तुलकहवास = दे० 'तुलुकहवास' ।

तुलकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तुलकना' । उ०—स्त्रियाँ प्रायः तुलक जाने का कारण सब बातों में निकाल लेती हैं ।—कंकाल, पृ० १६५ ।

तुलकामौज—संज्ञा पुं० [?] छोटा समुद्र । (लघ०) ।

तुलकी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तुलुक + ई (प्रत्य०)] एक तरह की खस्ता रोटी ।

तुलतुनी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. वह बाजा जिसमें तुलतुन शब्द निकले । २. सारंगी ।

तुनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तुल] तुल का पेड़ ।

तुनीर—संज्ञा पुं० [सं० तुणीर] दे० 'तुणीर' । उ०—हिम की हुरष मखधरनि की नीर भो री, जियरो मखन तीरपन की तुनीर भो ।—भिखारी० प्र०, पृ० १०१ ।

तुलुक—वि० [फ्रा०] १. सूक्ष्म । बारीक । २. अल्प । थोड़ा । ३. मृदुल । नाजुक । ४. क्षीण । दुबला पतला [को०] ।

यौ०—तुलुकजफ = (१) छिछोरा । लोफर । (२) अकुलीन । कमीना । (३) पेट का हलका । जो भेष खोल दे । (४) जो थोड़ी सी शराब पीकर बहक जाय । (५) जो किसी

बड़े आदमी की निकटता या ऊँचा पद पाकर घमंड के कारण आदमी न रहे। तुनुकदिल = बहुत छोटे दिल का। अनुदार।

तुनुकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तुनुकना'। उ०—अंकुर ने तुनुककर कहा।—इत्यसम्, पृ० १६५।

तुनुकमिजाज—वि० [क्रा० तुनुकमिजाज] बिड़बिड़ा। शीघ्र क्रोध में आनेवाला। छोटी छोटी बातों पर अग्रसन्न होनेवाला। उ०—पिछलगुर्गों की खुशामद ने हमें इतना अभिमान की ओर तुनुकमिजाज बना दिया है।—गोदान, पृ० १५।

तुनुकमिजाजी—संज्ञा स्त्री [क्रा० तुनुकमिजाजी] छोटी बातों पर शीघ्र अग्रसन्न होने का भाव। बिड़बिड़ापन।

तुनुकसत्र—वि० [क्रा० तुनुक + घ० सत्र] घातुर। स्वरावान्। बेसन्न। जलबबाज [को०]।

तुनुकहवास—वि० [क्रा० तुनुक + घ० हवास] तीक्ष्णबुद्धि [को०]।

तुन्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुन्न का पेड़। २. फटे हुए कपड़े का टुकड़ा।

तुन्न—वि० १. कटा या फटा हुआ। छिन्न। २. पीड़ित [को०]। ३. कुमा हुआ [को०]। ४. माहृत। शायल [को०]।

तुन्नवाय—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़ा सीनेवाला। दरजी।

तुन्नसेवनी—संज्ञा पुं० [सं०] जरहि। वह जो घाव को सीने का काम करता हो [को०]।

तुपक—संज्ञा स्त्री [तु० तोप का अर्थान् रूप] १. छोटी तोप। उ०—तुपक तोप जराबाज करारे। अरि भरि माऊ गंज गुजारे।—हम्मीर०, पृ० ३०। २. बंदूक। कड़ावीन।

क्रि० प्र०—चलना। घुटना।

तुफंग—संज्ञा स्त्री [तु० तोप, हि० तुपक; अथवा क्रा० तुफंग] १. बंदूक। तुपक। हुवाई बंदूक। उ०—कोदड़ बंद करकटि निषंग। डक बंद मुसुंडी ले तुफंग।—मुबान०, पृ० ३८। २. वह लंबी नली जिसमें मिट्टी या घाटे की गोखियाँ, छोटे तीर आदि डालकर फूँक के ओर से चलाए जाते हैं।

द्यौ०—तुफंग अंदाज = बंदूकची। निशानेबाज। तुफंगची = (१) बंदूक चलावेवाला। (२) बंदूक रखनेवाला। (३) निशानची। तुफंगेतहपुर = कारतूसी बंदूक। तुफंगे दहनपुर = टोपीदार बंदूक। तुफंगे सीजनी = कारतूसी बंदूक जिसमें घोड़ा नहीं होता।

तुफ—अव्य० [क्रा० तुफ] विकार। धिक् [को०]।

तुफक—संज्ञा स्त्री [क्रा० तुफक] बंदूक। तुफंग। तुपक।

तुफान—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूफान'।

तुफानी—वि० [हि०] दे० 'तूफानी'। उ०—सासु बुरी घर ननव तुफानी देखि सुहाग हमार जरे।—पलटू०, भा० १, पृ० ७९।

तुफैल—संज्ञा पुं० [अ० तुफैल] द्वारा। कारण। बरिया।

द्यौ०—तुफैल से = के द्वारा।—की कृपा से।

तुफैली—संज्ञा पुं० [अ० तुफैली] १. वह व्यक्ति जो बिना निमंत्रण

के अथवा किसी निमंत्रित व्यक्ति के साथ किसी के यहाँ जाय। २. अश्रित व्यक्ति। वह जो किसी के सहारे हो [को०]।

तुबक—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'तुपक'। उ०—दल समूह तजि चलिसे तुबक नही तुर तंच—पु० रा०, २५।६१।

तुभना—क्रि० प्र० [सं० स्तुभ, स्तोभ (= स्तब्ध रहना, ठक रहना)] स्तब्ध रहना। ठक रह जाना। अचल रह जाना। उ०—टरति न टारे यह छबि मन से चुपी। स्याम सचन पीतांबर दामिनि, अंघ्रियाँ चातक हैं बाप तुमी।—सुर (सन्द०)।

तुम—सर्व० [सं० त्वम्] 'तू' शब्द का बहुवचन। वह सर्वनाम जिसका व्यवहार उस पुरुष के लिये होता है जिससे कुछ कहा जाता है। जैसे,—तुम यहाँ से चले जाओ।

विशेष—संबंध कारक की छोड़ देप सब कारकों की विभक्तियों के साथ शब्द का यही रूप बना रहता है; जैसे, तुमने, तुमको, तुमसे, तुममें, तुमपर। संबंध कारक में 'तुम्हारा' होता है। विष्टा के विचार से एकवचन के लिये भी बहुवचन 'तुम' का ही व्यवहार होता है। 'तू' का प्रयोग बहुत छोटी या बच्चों के लिये ही होता है।

मुहा०—तुम जानो तुम्हारा काम जाने = अब जिम्मेदारी तुम्हारी है। मन में जो आए सो करो। उ०—मीर तरफ इस वक्त ध्यान न बटाओ। आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने।—सीर०, पृ० २८।

तुमडिया—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'तुमड़ी'। उ०—हरी बेल की कोरी तुमडिया सब तीरथ कर आई। जगसाय के बरसन करके, प्रजह न गई कड़वाई।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४६।

तुमड़ी—संज्ञा स्त्री [सं० तुम्बर + हि० ई (प्रत्य०)] १. कड़ू गोख कद्दू का सूखा फल। गोल बीए का सूखा फल। २. सूखे गोख कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ पात्र जिसमें प्रायः सासु पायी पीते हैं। ३. सूखे कद्दू का बना हुआ एक बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है। महुवर।

विशेष—यह बाजा कद्दू के खोखले पेट में नरकट की दो नलियाँ घुसाकर बजाया जाता है। सपेरे इसे प्रायः बजाते हैं।

तुमकना—क्रि० प्र० [अनु०] बिछाई देना। प्रकट होना। उ०—एक झोंका वायु से से, सिर हिलाकर तुमक जाना।—हिमकि०, पृ० ६४।

तुमतड़ाक—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'तुमतराक'।

तुमतराक—संज्ञा पुं० [क्रा० तुमतराक] १. वैभवा। शान्तोक्त। २. धूमधाम। तड़कभड़क। अहंकार। घमंड [को०]।

तुमरा—सर्व० [हि०] [स्त्री० तुमरी] दे० 'तुम्हारा'।

तुमरी—संज्ञा स्त्री [हि० तुमरी] दे० 'तुमड़ी'।

तुमरू—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बुरु] दे० 'तुंबुर'।

तुमल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुमल'।

तुमहिये—सर्व० [हि० तुम] तुम ही। तुम्हीं। उ०—रीकि

हैंसि हाथी हमें सब कोऊ बेत, कहा रीकि हैंसि हाथी एक
तुमहीरे बेत हो ।—सूषण प्र०, पृ० ३३ ।

तुमही—सर्व० [तुम + ही (प्रत्य०)] तुमको ।

तुमाना—कि० सं० [हि० तुमाना का प्रे० रूप] तुमने का काम
कराना । दबी या जमकर बैठी हुई रुई को पुलपुली करके
फैलाने के लिये नोचवाना ।

तुमार^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुमार' । उ०—ये झूलहि सब
हथियार हय गय लोग बाग तुमार ।—मीरा प्र०, पृ० ४४ ।

तुमारा^५—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—ताते बलिहै
प्रहार तुमारा । हतना बचन धर्म कहैं हारा ।—कबीर सा०,
पृ० ४५५ ।

तुमुची—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिट्ठिया ।

तुमुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'तुमुल' । २. छिनियों की एक जाति
जिसका उल्लेख मत्स्य पुराण में है ।

तुमुक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेना का कोलाहल । सेना की धुम ।
मझाई की हलचल । २. सेना की बिड़ल । गहरी मुठभेड़ । ३.
बहेरे का पेड़ ।

तुमुल^२—वि० [सं०] १. हलचल उत्पन्न करनेवाला । २. घोरगुल से
युक्त । ३. भयंकर । तीव्र । उ०—संग दादुर भीगुर बदन
धुमि मिलि स्वर तुमुल मचावही ।—बारहेंठ प्र०, भा० १,
पृ० २१८ । ४. अनेक छिनियों के मेक के ध्वनित (को०) ।
५. झुंझ (को०) । ६. घबराया हुआ । श्वन्न (को०) ।

तुम्ह^३—सर्व० [हि०] दे० 'तुम' । उ०—जब तुम्ह सुवा कीन्ह है
केरा । गाढ़ न जाइ विरीतम केरा ।—जायसी प्र० (गुप्त),
पृ० २७२ ।

तुम्ह^५—सर्व० [हि० तुम] तुम्हारा । उ०—प्राबहु सामि सुलच्छता
जीब बसे तुम्ह नाव ।—जायसी प्र०, पृ० १०१ ।

तुम्हारा^५—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—दुष्ट दमन तुम्हरो
अवतार । हे अद्भुत अजरामर कुमार ।—नय० प्र०, पृ० ३१२ ।

तुम्हारा—सर्व० [हि० तुम] [स्त्री० तुम्हारी] 'तुम' का संबंध
कारक का रूप । उसका जिससे बोलनेवाला बोलता है । जैसे,
तुम्हारी पुस्तक कहाँ है ? ।

मुहा०—तुम्हारा सिर = दे० 'सिर' ।

तुम्हें—सर्व० [हि० तुम] 'तुम' का वह विभक्तियुक्त रूप जो उसे
कर्म धीर संप्रदान में प्राप्त होता है । तुमको ।

तुया^१—सर्व० [हि०] दे० 'तु' । उ०—नाहो कैता जनम गो तुय करे
तिथी बोधी होई ।—बी० रासो, पृ० ४४ ।

तुया^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोय' । उ०—क्षेत्र उत्पत ते तुया ।
—भोरक०, पृ० १५६ ।

तुरंग^१—वि० [सं० तुरङ्ग] जल्दी चलनेवाला ।

तुरंग^२—संज्ञा पुं० १. घोड़ा । उ०—नयड तुरंग तुरंग मन, बहुरि
तुरंग तुरंग ।—अनेकार्थ०, पृ० १३३ । २. चित्र । ३. सात
की संख्या ।

तुरंगक—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गक] १. बड़ी तोरई । २. घोड़ा (को०) ।
तुरंगकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गकान्ता] घोड़ी (को०) ।

यौ०—तुरंगकांतामुख = बाढवाबख ।

तुरंगगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गगन्धा] अश्वगंधा । असगंध (को०) ।

तुरंग गौड़—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्ग + गौड़] गौड़ राग का एक भेद ।
यह वीर या रौद्र रस का राग है ।

तुरंगद्विषणी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गद्विषणी] भैंस । महिषी (को०) ।

तुरंगद्वेषिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गद्वेषिणी] भैंस । महिषी ।

तुरंगप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गप्रिय] जी । यव ।

तुरंगब्रह्मचर्य—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गब्रह्मचर्य] वह ब्रह्मचर्य जो स्त्री के
न मिलने तक हो (को०) ।

तुरंगम^१—वि० [सं० तुरङ्गम] जल्दी चलनेवाला ।

तुरंगम^२—संज्ञा पुं० १. घोड़ा । २. चित्त । ३. एक वृत्त का नाम
जिसके प्रत्येक चरण में दो नवरा धीरे दो गुरु होते हैं । इसे
तुग धीरे तुगा भी कहते हैं । उ०—न नग गह बिहारी ।
कहत अहि पियारी ।—(अब्द०) ।

तुरंगमी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गमी] १. असगंध । २. घोड़ी (को०) ।

तुरंगमी^२—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमिन्] घुड़सवार । अश्वारोही (को०) ।

तुरंगमुख—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमुख] [स्त्री० तुरंगमुखी] (घोड़े का
सा मुँहवाला) किन्वर । उ०—गावै गीत तुरंगमुख, जलरख
अब बटियाहि ।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ६ ।

तुरंगमेध—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमेध] अश्वमेध (को०) ।

तुरंगयम—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गयम] जी । यव (को०) ।

तुरंगयायी—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गयायिन्] घुड़सवार (को०) ।

तुरंगरक्ष—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गरक्ष] सार्विस (को०) ।

तुरंगलीलक—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गलीलक] संगीत एक ताल में (को०) ।

तुरंगवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गवक्त्र] (घोड़े का सा मुँहवाला)
किन्वर ।

तुरंगवदन—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गवदन] (घोड़े का सा मुँहवाला)
किन्वर ।

तुरंगशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गशाला] घोड़ सार । अस्तबल ।

तुरंगसाही—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गसाहिन्] घुड़सवार (को०) ।

तुरंगस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गस्कन्ध] १. घोड़ों की सेना । २.
घोड़ों का समूह (को०) ।

तुरंगस्थान—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गस्थान] घुड़साख । अस्तबल (को०) ।

तुरंगारि—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गारि] १. कबेर । करवीर । २.
भैंसा (को०) ।

तुरंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गिका] देवदाजी । धधरबेल । बंदाख ।

तुरंगारूढ—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गारूढ] घुड़सवार । अश्वारोही (को०) ।

तुरंगी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गी] १. अश्वगंधा । असगंध । २.
घोड़ी (को०) ।

तुरंगी^२—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गिन्] घुड़सवार (को०) ।

तुरंज—संज्ञा पुं० [फ्रा०। प्र० तुरंज] १. बकोतरा नींबू। २. बिजौरा नींबू। लट्टी। ३. सूई से काढ़कर बनाया हुआ पान या कलगी के आकार का वह सूटा जो धर्मरत्नों के मोड़ों और पीठ पर तथा दुषाले के कोनों पर बनाया जाता है। कुंज।

तुरंजबीन—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. एक प्रकार की चीनी जो प्रायः ऊंटकटारे के पीछों पर मोस के साथ बुरासान बेल में जमती है। २. नींबू के रस का सर्बत।

तुरंत—क्रि० वि० [सं० तुर(=वेग, जल्दी)] जल्दी से। अत्यंत शीघ्र। तत्क्षण। भटपट। फौरन। बिना विलंब के। उ०—रघुपति चरन नाह सिद्ध चलेउ तुरंत अनंत। धंगद बील मयंद नल संघ सुमट हनुमंत।—मानस, १।७४।

तुरंता—संज्ञा पुं० [हि० तुरंत] १. गाँजा (जिसका नशा तुरंत पीते ही बढ़ता है)। २. सतू। (जिसे तत्काल खाया जा सकता है)।

तुरंग०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुरंग'। उ०—तुरंग चपल चंद्रमंडल बिकल बेला, कुंद है बिकल जहाँ नीच गति बारिह।—मति० प्र०, पृ० ४१७।

तुरंज०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुरंज-२'। उ०—गलगल तुरंज सदा-फर फरे। नारंग प्रति राते रस भरे।—जायसी प्र० पृ० १३।

तुर१—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र। जल्द। उ०—बहु बाबि डारे समर में तुर में तुरंगहि दपटि कै।—पद्माकर प्र०, पृ० २०।

तुर२—वि० १. वेगवान्। शीघ्रगामी। २. दृढ़। सबल (को०)। ३. चायक। छाहृत (को०)। ४. धनी (को०)। ५. अधिक। प्रचुर (को०)।

तुर३—संज्ञा पुं० वेग। क्षिप्रता [को०]।

तुर४—संज्ञा पुं० [सं० तर्क] १. वह लकड़ी जिसपर जुआहे कपड़ा बुनकर लपेटते जाते हैं। २. वह बेचन जिसपर गोटा बुनकर लपेटते जाते हैं।

तुर५—संज्ञा पुं० [? सं० तुरग > तुरग, तुर] घोड़ा। अश्व। तुरग। उ०—माघ बहि पंचमि विवस बहि चलिह तुर उार।—पृ० २।, २५। २२३।

तुरई१—संज्ञा स्त्री [सं० तुर(=तुरही बाजा)] एक बेल जिसके लंबे फलों की तरकारी बनाई जाती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गोख कटावदार कद्दू की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। यह पोषा बहुत दिनों तक नहीं रहता। इसे पानी की विशेष आवश्यकता होती है, इससे यह बरसात ही में विशेषकर बोया जाता है और बरसात ही तक रहता है। बरसाती तुरई छप्परों या टट्टियों पर फैलाई जाती है, क्योंकि भूमि में फैलाने से पत्तियों और फलों के सड़ जाने का डर रहता है। गरमी में भी लोग बजारियों में इसे बोते हैं और पानी से तर रखते हैं। गरमी से बचाने पर यह बेल जमीन ही में फैलती और फलती है। तुरई के फूल पीले रंग के होते हैं और संघ्या के समय खिलते हैं। फल लंबे लंबे होते हैं जिनपर लंबाई के बल उमरी हुई नसों की सीधी लकीर समान अंतर पर होती हैं।

मुद्रा०—तुरई का फूल सा = हलकी या छोटी मोटी चीज की

तरह जल्दी खतम या खर्च हो जानेवाला। इस प्रकार बटपट चुक जाने या खर्च हो जानेवाला कि मालूम न हो। जैसे,—तुरई के फूल से ये भी खप देसते देखते उठ गए।

२. उक्त बेल का फल।

तुरई२—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'तुरही'।

तुरक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुक'।

तुरकटा—संज्ञा पुं० [तु० तुक + हि० टा (प्रत्य०)] मुसलमान। (घृणासूचक शब्द)।

तुरकाना—संज्ञा पुं० [तु० तुक] १. तुकों या मुसलमानों की बस्ती। २. दे० 'तुक'। उ०—पाथर पूजत हिंदु भुलाना। मुरषा पूज भूले तुरकाना।—कबीर सा०, पृ० ८२०।

तुरकाना—संज्ञा पुं० [तु० तुक] [स्त्री० तुरकानी] १. तुकों का सा। तुकों के ऐसा। २. तुकों का देश या बस्ती।

तुरकानी१—वि० स्त्री० [तु० तुक + हि० आनी (प्रत्य०)] तुकों की सी।

तुरकानी२—संज्ञा स्त्री० तुकों की स्त्री।

तुरकिन—संज्ञा स्त्री० [तु० तुक + हि० इन (प्रत्य०)] १. तुकों की स्त्री। २. तुक जाति की स्त्री। ३. मुसलमानिन। मुसलमान स्त्री।

तुरकिस्तान—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुर्किस्तान'।

तुरकी१—वि० [तु० तुकी] १. तुक देश का। जैसे, तुरकी घोड़ा, तुरका सिपाही। २. तुक बेल 'बंधी'।

तुरकी२—संज्ञा स्त्री० तुकों की भाषा। तुर्किस्तान की भाषा।

तुरक०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुक'। उ०—राए बधिघई संत हृष रोस, लज्जाइम निब मनहि मन, अस तुरकक असलान गुणह। कीर्ति०, पृ० १८।

तुरग१—वि० [सं०] तेज चलनेवाला।

तुरग२—संज्ञा पुं० [स्त्री० तुरगी] १. घोड़ा। २. चिरा।

तुरगगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरगगन्धा] अश्वगंधा। असगंध।

तुरगदानव—संज्ञा पुं० [सं०] केशी नामक वृक्ष जो कंस की भाजा से कृष्ण को मारने के लिये घोड़े का रूप धारण करके गया था।

तुरगब्रह्मचर्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्रह्मचर्य जो केवल स्त्री के न मिलने के कारण ही हो।

तुरगलीलक—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत दामोदर के अनुसार एक ताल का नाम।

तुरगारोही—संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार [को०]।

तुरगारोही—संज्ञा पुं० [सं० तुरगारोहिन्] घुड़सवार [को०]।

तुरगी१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घोड़ी। २. अश्वगंधा।

तुरगी२—संज्ञा पुं० [सं० तुरगिन्] अश्वारोही। घुड़सवार।

तुरगुला—संज्ञा पुं० [देश०] लटकन जो कान के कण्ठफूल नामक गहने में लटकाया जाता है। झुमका। लोलक।

तुरगोपचारक—संज्ञा पुं० [सं०] साईस [को०]।

तुरण१—वि० [सं०] वेगवान्। शीघ्रगामी [को०]।

तुरण२—संज्ञा पुं० शीघ्रता। वेग [को०]।

सुरस—प्रथम [सं० सुर] शीघ्र । चटपट । उत्पन्न । उ०—दुनी रिश-
बल सुरत पचावे ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० १, पृ० १६२ ।

सौ०—सुरत फुरत = चटपट ।

सुरसुरा—सं० [सं० स्वरा] [स्त्री० तुरतुरी] १. तेज । जल्दबाज ।
२. बहुत जल्दी बल्दी बोलनेवाला । बल्लू! बल्दी बात
करनेवाला ।

सुरसुरिया—वि० [हि०] दे० 'तुरतुरा' ।

सुरसा—प्रथम [हि०] दे० 'तुरत' । उ०—कद्वि सुवीर बढि
तुरसा ।—प० रासो, पृ० ८३ ।

सुरन—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तुरण' । उ०—सहसा, सत्वर, रभ,
तुरा, तुरन बय के साध ।—नद० ग्रं०, पृ० १०० ।

सुरना—संज्ञा पु० [सं० तुरग] तुरगावस्था । जवाना । उ०—बासा
काबा तुरना काता, बिजये कात न आय ।—कबीर श०,
पृ० ४८ ।

सुरनापन—संज्ञा पु० [हि० तुरनापन (प्रत्य०)] तुरगावस्था ।
जवाना । उ०—सुरनापन गइ बीत बुडापा धान तुलाने ।
कापन लागे सीस चबड दोड चरन पिराने ।—कबीर श०
पृ० ३ ।

सुरपई—संज्ञा स्त्री० [हि० सुरपना] एक प्रकार की चलाई । सुरपन ।
सुरपन—संज्ञा स्त्री० [हि० सुरपना] एक प्रकार की चलाई जिसमें
जोड़ों को पहले लबाई के बल टाँके डालकर मिला लेते हैं;
फिर निकले हुए छोर को मोड़कर तिरछे टाँकों से जमा देते
हैं । लुढ़ियावन । बलिपा का उलटा ।

सुरपना—क्रि० सं० [हि० तर (= नीचे) + पर (= ऊपर) + ना
(प्रत्य०)] तुरपन को सिलाई करना । लुढ़ियाना ।

सुरपाना—क्रि० सं० [हि० तुरपना का प्रे० रूप] दे० 'तुरपाना' ।

सुरपाना—क्रि० सं० [हि० तुरपना का प्रे० रूप] तुरपने का काम
दूसरे से कराना ।

सुरबत—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरंत] कब । उ०—धाममाँ तुरबत प
मेरे धारियाणा हो गया ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५० ।

सुरम—संज्ञा पु० [सं० तुरम] तुरही ।

सुरमती—संज्ञा स्त्री० [तु० तुरमता] एक चिड़िया जो बाज की तरह
शिकार करती है । यह बाज से छोटी होती है ।

सुरमनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] नारियल रंग की रेशी ।

सुरय—संज्ञा पु० [सं० तुरग] [स्त्री० तुरी] घोड़ा । उ०—सायक
बाप तुरय बनि जनि हो लिंग सबै तुम जाहू ।—सुर
(शब्द०) ।

सुररा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तुरा' । उ०—नापर तुररा सुमत
प्रति कहत सोभ नवि नाथ ।—पृ० रा०, १ । ७५२ ।

सुरल—संज्ञा पु० [सं० तुरग] घोड़ा । उ०—पणिया गजा तखी मिर
वाती । मिसवा तुरल रबी धममाँनी ।—रा० क०, पृ० २२५ ।

सुरस—संज्ञा स्त्री० [देश० ?] डाल । उ०—तुरस फटि कठि
गुरब मुहुक करि रेष रिवेधर ।—पृ० रा०, ५ । ५१ ।

सुरसी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुबसी' । उ०—हरि बरन
सुरसिय माल । धन पति सुवक् विमाल ।—पृ० रा०,
२ । ३११ ।

सुरही—संज्ञा स्त्री० [सं० तुर] फूँककर बजाने का एक बाजा जो
मुँह की ओर पतला ओर पीछे की ओर चौड़ा होता है ।
उ०—बाबत ताज मृदग आभ ठफ, तुरही तान नफीरी ।—
कबीर श०, भा० २, पृ० १०८ ।

विशेष—यह बाजा पीतल आदि का बनता है और टेढ़ा सीधा
कई प्रकार का होता है । पहले यह सड़ाई में नगाड़े आदि के
साथ बजता था । अब इसका व्यवहार विवाह आदि में
होता है ।

सुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्वरा] 'स्वरा' । उ०—तीखी सुरा
तुमसी कहनो पै हिए उपमा नो समाज न आपो । मानो प्रतच्छ
परबब की नम लोक लसी कपि यों धुकि घायो ।—तुलसी
ग्रं० पृ० १६६ ।

सुरा—संज्ञा पु० [सं० तुरग] घोड़ा ।

सुराई—संज्ञा स्त्री० [सं० तुराई] १. तूलिका (= गद्दा) । रुई
मरा हुआ गुदगुदा बिछाने की चीज । सोपक । उ०—(क) नींद
बहुत प्रिय सोज तुराई । लखन भूप कपट सतुराई ।—तुलसी
(शब्द०) । (ख) विविध यवन, उपधान, तुराई । छोरकेन मृदु
बिसद सुहाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) कुस किसलय साधरी
सुहाई । प्रभु संग मजु मनोज तुराई ।—तुलसी (शब्द०) ।

सुराट—संज्ञा पु० [सं० तुरग] घोड़ा । (हि०) ।

सुराना—क्रि० प्र० [सं० तुर] घबराना । घातुर होना ।

सुराना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तुराना' ।

सुराना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तुराना' । उ०—फिरत फिरत सब
चरन तुराने ।—कबीर श०, पृ० २३० ।

सुरायण—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार का यज्ञ जो चैत्र शुक्ला ५
और वैशाख शुक्ला ५ को होता है । २. असंभ । विरति ।
अनामक्ति (को०) ।

सुराव—संज्ञा पु० [हि० तुरा] जन्दी । शीघ्रता । उ०—गवना
चाला तुराव लगी है । जो कोउ रोवे वाको न हँस रे ।—
कबीर श०, भा० २, पृ० ६८ ।

सुरावत्—वि० [सं० स्वरावत्] [स्त्री० सुरावती] वेगवाला । वेगयुक्त ।

सुरावती—वि० स्त्री० [सं० स्वरावती] वेगवाली । झोंक के साथ बहने-
वाली । उ०—(क) विषम विषाद सुरावति धारा । अथ
अम भँवर अवत अपारा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) अमृत
सरोवर सरित अपारा । ठाहै कूल सुरावति धारा ।—शं०
दि० (शब्द०) ।

सुरावध—वि० [हि० तुरा] स्वरावान् । शीघ्रतायुक्त । उ०—
सामंत सितुग तुरग सुरावध रावध धावध अग्नि करे ।—
पृ० रा०, १३१३३० ।

सुरावान्—वि० [सं० स्वरावान्] दे० 'सुरावत्' ।

सुराषाट्—संज्ञा पु० [सं०] इन्द्र ।

तुरासाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र । २. विष्णु (को०) ।

तुरि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुरी' (को०) ।

तुरि^२—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—सात जनम तुरि घर
वसी एक वसत प्रकलंक ।—पृ० रा०, २३।३० ।

तुरित—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तुरत' । उ०—गंगाजल कर कलस
सी तुरित मंगाइय हो ।—तुम्सी० प्र०, पृ० ३ ।

तुरिय^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुरग' । उ०—पषरेत तुरिय
पषरेत गज्ज । नर कस्मे वगतर सिलह सज्ज ।—पृ०
रा०, १।४४१ ।

तुरिय^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुरीय' । उ०—सुखित भई
तिहि खिन सब ऐसै । तुरिय अवस्था पाइ मुनि जैसे ।—नंद०
प्र०, पृ० ३०२ ।

तुरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरीय' । उ०—ओम प्रनसूत
घर वो बरे भीहरे माहि । सुंदर साक्षा स्वरूप तुरिया
विशेषिये ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ५६८ ।

तुरिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तोरिया' ।

तुरियातीत^१—वि० [सं० तुरीय + तसीन] जो तुरीयावस्था से
आगे हो । अतुल्य अवस्था से आगेवाला । उ०—तुरियातीत
हैं चित्त जब इक धयो रैन दिन मगन है प्रेम पावो ।—पलटू०,
भा० २, पृ० २६ ।

तुरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जुआहों का तोरिया या तोड़िया नाम
का प्रोजार । २. जुआहों की कूची । हथेली । ३. चित्रकार
की तूलिका (को०) । ४. वसुदेव की एक पत्नी का
नाम (को०) ।

तुरी^२—वि० वेगवाली ।

तुरी^३—संज्ञा स्त्री० [प्र० तुरय (= घोड़ा)] १. घोड़ी । उ०—तुरी
घठारह लाख अमीरी बलख की । दिया मंद ने छोड़ आस
सब लसक की ।—पलटू०, भा० २, पृ० ७६ । २.
लगाम । बाग ।

तुरी^४—संज्ञा पुं० [हि०] १. घोड़ा । २. सवार । अश्वारोही ।

तुरी^५—संज्ञा स्त्री० [प्र० तुरी] १. फूलों का गुच्छा । २. मोती की
लकड़ी का झुंडा जो पगड़ी से कान के पास लटकाया
जाता है ।

तुरी^६—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरही' ।

तुरी^७—संज्ञा पुं० [सं० तुरीय] चौथी अवस्था । उ०—प्रेम तेल
तुरी बरी, भयो ब्रह्म उंजियार ।—दरिया० बानी, पृ० ६७ ।

तुरीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तुरीयन्त्र] वह यंत्र जिससे सूर्य की गति
जानी जाती है ।

तुरीय—वि० [सं०] अतुल्य । अतीत ।

विशेष—वेद में वाणी या वाक् के चार भेद किए गए हैं—
परा, परमंती, मध्यमा और बैखरी । इसी बैखरी वाणी को
तुरीय भी कहते हैं । सायण के अनुसार जो वादात्मक वाणी
मूषाचार से उठती है और जिसका निरूपण नहीं हो सकता
है, उसका नाम परा है । जिसे केवल योगी लोग ही जान

सकते हैं, वह परमंती है । फिर जब वाणी बुद्धिगत होकर
बोलने की इच्छा उत्पन्न करती है, तब उसे मध्यमा कहते हैं ।
अंत में जब वाणी मुंह में आकर उच्चरित होती है, तब
उसे बैखरी या तुरीय कहते हैं ।

वेदांतियों ने प्राणियों की चार अवस्थाएं मानी हैं—जाग्रत,
स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय । यह चौथी या तुरीयावस्था मोक्ष
है जिसमें समस्त भेदज्ञान का नाश हो जाता है और आत्मा
अनुपहित चैतन्य या ब्रह्मचैतन्य होती है ।

तुरीयवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] चौथे वर्ण का पुरुष । शूद्र ।

तुरीयावस्था—संज्ञा पुं० [सं० तुरीय + अवस्था] वेदांतियों के अनुसार
चार अवस्थाओं में से अंतिम । वि० दे० 'तुरीय' । उ०—इसी
प्रकार तुरीयावस्था (चतुर्थ) नाम की कविता में उन्होंने
ब्रह्मानुभूति का वर्णन इस प्रकार किया है ।—चित्तमणि,
भा० २, पृ० ७२ ।

तुरुक^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुर्क' ।

तुरुकिनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तुरुक] तुर्क जाति की स्त्री । तुरकित ।
उ०—वरप नाच तुरुकिनी आन किस्तु काहु न आवइ ।—
कीर्ति०, पृ० ४२ ।

तुरुप^१—संज्ञा पुं० [प्र० टूप] ताण का खेल जिसमें कोई एक रंग
प्रधान मान लिया जाता है । इस रंग का छोटे से छोटा पत्ता
दूसरे रंग के बड़े से बड़े पत्ते को मार सकता है ।

तुरुप^२—पुं० [प्र० टूप (= सेना)] १. सवारों का रिसाखा । २. सेना
का एक खंड । रिसाखा ।

तुरुप^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरपन' । उ०—कसमसे कसे उकसेक
से उरोजन पे उपटति कंधुकी की तुरुप तिरछी वेख ।—
पद्मनेस०, पृ० ४ ।

तुरुपना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तुरपना' ।

तुरुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुर्क जाति । तुर्किस्तान का रहनेवाला
मनुष्य ।

विशेष—भागवत, विष्णुपुराण आदि में तुरुष्क जाति का नाम
आया है जिससे अभिप्राय हिमाचल के उत्तर पश्चिम के
निवासियों ही से जान पड़ता है । उक्त पुराणों में तुरुष्क
राजगण के पृथ्वी भोग करने का उल्लेख है । कथासरित्सागर
और राजतरंगिणी में भी इस बात का उल्लेख है ।

२. वह देश जहाँ तुरुष्क जाति रहती हो । तुर्किस्तान । ३. एक
गंधद्रव्य । लोबान । ४. तुर्किस्तान का घोड़ा ।

तुरुष्कगोड़—संज्ञा पुं० [सं० तुरुष्क + गोड़] दे० 'तुरंगगोड़' ।

तुरुही—संज्ञा स्त्री० [सं० तुर प्रत्यय + तूर्य] दे० 'तुरही' ।

तुरै^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुरय' । उ०—जोबन तुरै हाथ गहि
लीजै । जहाँ जाइ तहाँ जाइ न दीजै ।—जायसी प्र० (गुप्त),
पृ० २३४ ।

तुरैया^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरई' । उ०—सदा तुरैया फूले
नहीं, सदा न साहुन होय ।—शुक्ल अभि० प्र०, पृ० १५६ ।

तुर्क—संज्ञा पुं० [तु०] १. तुर्किस्तान का निवासी । २. रुम का
निवासी । टर्की का रहनेवाला ।

तुर्कचीन—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क + चीन] सूर्य [को०] ।

तुर्कमान—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुर्क] १. तुर्क जाति का मनुष्य । २. तुर्की घोड़ा जो बहुत बलिष्ठ और साहसी होता है ।

तुर्करोज—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क + फ्रा० रोज] सूर्य [को०] ।

तुर्कसवार—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क + फ्रा० सवार] एक विशेष प्रकार का सवार ।

विशेष—ऐसे सवारों को सिर से पैर तक तुर्की पहनावा पहनाया जाता था ।

तुर्कानी—संज्ञा पुं० [हि० तुर्क] दे० 'तुर्किन' । उ०—मुनत करा मुसलमानहि कीन्हा । तुर्कानी को का कर दोन्हा ।—कबीर सा०, पृ० ८२२ ।

तुर्किन—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्क + हि० इन (प्रत्य०)] १. तुर्क जाति की स्त्री । उ०—गू भोसी थी तो तुर्किन, बन गई महीरिन । लुदाराम, पृ० १४ । तुर्क की स्त्री ।

तुर्किनी—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्क + हि० इनी (प्रत्य०)] दे० 'तुर्किन' ।

तुर्किस्तान—संज्ञा पुं० [तु० फ्रा०] तुर्की का देश । तुर्की । टर्की [को०] ।

तुर्की—वि० [फ्रा० तुर्क] तुर्किस्तान का । तुर्किस्तान में होनेवाला । जैसे,—तुर्की घोड़ा ।

तुर्की—संज्ञा स्त्री० १. तुर्किस्तान की भाषा । २. तुर्की की सी ऐंठ । धकड़ । गर्व ।

मुहा०—तुर्की समाप्त होना—धमंज जाता रहना । जेली निकल जाना ।

तुर्की—संज्ञा पुं० १. तुर्किस्तान का यादमी । २. तुर्किस्तान का घोड़ा ।

तुर्की टोपी—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्की + हि० टोपी] एक प्रकार की टोपी जो साध, गोख, ऊँची और ऋग्नेदार होती है ।

विशेष—इस टोपी को तुर्क भाग पहनते थे । इसी से इसका नाम तुर्की टोपी पड़ा ।

तुर्क(उ)—अर्थ [हि०] दे० तुर्क । उ०—जो धनइच्छा होय मम तुर्क होव है नाश । कबीर सा०, पृ० २३८ ।

यो०—तुर्क पुर्क=बलवी में । शीघ्रतापूर्वक ।

तुर्करी—संज्ञा पुं० [फ्रा०] प्रंशुष का भारनेवाला भाग जो सामने साधी भोक की ओर होता है । हुता ।

यो०—अफंगी तुर्करी बात का बतवण्ड । प्रलाप ।

तुर्क—वि० [सं०] बोधा । चतुर्थ ।

यो०—तुर्क गोक = एक कालगूँचक यंत्र । तुर्कवाट = चार साल का बछड़ा ।

तुर्क—संज्ञा पुं० तुर्कियास्थ (को०) ।

तुर्कबाह—संज्ञा पुं० [सं०] चार वर्ष की बछिया या बछड़ा [को०] ।

तुर्क—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ज्ञान जिसमें मुक्ति हो जाती है । तीर्थ ज्ञान ।

तुर्कश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्थाश्रम । सन्यासाश्रम ।

तुर्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. घुंघरासे बालों की लट जो माथे पर हो । काकुल ।

यो०—तुर्क तरार = सुंदर बालों की लट ।

२. पर या कुँदना जो पगड़ी में लगाया या लौंसा जाता है । कलगी । गोथवारा । ३. बावले का गुच्छा जो पगड़ी के ऊपर लगाया जाता है ।

मुहा०—तुर्क यह कि = उसपर भी इतना और । सबके उपरांत इतना यह भी । जैसे,—वे घोड़ा तो ले ही गए; तुर्क यह कि खर्च भी हम दें । किसी बात पर तुर्क होना = (१) किसी बात में कोई और दूसरी बात मिलाई जाना । (२) यथार्थ बात के प्रतिरिक्त और दूसरी बात भी मिलाई जाना । हाशिया बढ़ाना ।

४. फूलों की लड़ियों का गुच्छा जो दूल्हे के कान के पास लटकता रहता है । ५. ठोपी भाँवि में लगा हुआ कुँदना । ६. पक्षियों के सिर पर निकले हुए परों का गुच्छा । बोटी । लिखा । ७. हाशिया । किनारा । ८. मकान का छज्जा । ९. मुँहासे का वह पल्ला जो उसके ऊपर निकला होता है । १०. गुलतुर्क । मुर्मकेश नाम का फूल । बटाघारी । ११. कोड़ा । चाबुक ।

मुहा०—तुर्क करना = (१) कोड़ा मारना । (२) कोड़ा मारकर घोड़े को बढ़ाना ।

१२. एक प्रकार की बुलबुल जो ८ या ९ अंगुल लंबी होती है । विशेष—यह जाड़े भर भारतवर्ष के पूर्वीय भागों में रहती है, पर गरमी में चीन और साइबेरिया की ओर चली जाती है ।

१३. एक प्रकार का बड़ेर । डुबकी ।

तुर्क—संज्ञा पुं० [अनु० तुर्क तुर्क (= पानी डालने का शब्द)] भाँग भाँवि का घूँट । चुसकी ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

मुहा०—तुर्क बढ़ाना या जमाना = भाँग पीना ।

तुर्क—वि० [फ्रा० तुर्क] मनोला । प्रयुक्त ।

तुर्कशि—वि० [सं०] १. कुर्तीला । क्षिप्र । २. विजेता । शत्रुओं को बट या क्षतिग्रस्त करनेवाला [को०] ।

तुर्कसु—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ययाति के एक पुत्र का नाम जो देवयानी के यम से उत्पन्न हुआ था ।

विशेष—राजा ययाति ने विषय भोग से तृप्त न होकर जब इससे हमका जीवन मँगा था, तब इससे देने से साफ इनकार कर दिया था । इसपर राजा ययाति ने इसे शाप दिया था कि तू अश्विनियों प्रतिलोमाचारियों आदि का राजा होकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगेगा । विष्णुपुराण के अनुसार तुर्कसु का पुत्र दुषा बाहु, बाहु का गोघानु, गोघानु का त्रैलोक्य, त्रैलोक्य का करंघम और करंघम का मरुत । मरुत की कोई संतति न थी, इससे उसने पुत्रवंशीय दुष्यंत को पुत्र रूप से ग्रहण लिया ।

तुर्क—वि० [फ्रा०] १. लट्ठा । २. रुखा (को०) । ३. कड़ा (को०) । ४. अप्रसन्न (को०) । ५. कुट्ट । कुपित (को०) ।

तुर्करु—वि० [फ्रा०] तीखे मिजाजवाला । बदमिजाज । उ०—तुर्करुई छोड़ दे प्री तल्लगोई तर्क कर ।—कविता की०, भा० ४, पृ० १० ।

तुलसी—संज्ञा स्त्री० [क्रा० तुल + हि० आई (प्रत्य०)] दे० 'तुलसी' ।

तुलसीना—क्रि० प्र० [क्रा० तुल से नामिक वातु] लट्टा हो जाना ।

तुलसी—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. लट्टाई । अम्बता । २. लट्टा । अम्ब-सम्बता (को०) ।

तुलसीद्वी—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] चोड़े के हाँठों में कीट या मेल जमने का रोव ।

तुल(५)—वि० [सं०] दे० 'तुल्य' उ०—'हरीचंद' स्वामिनि यधि-रामिनि तुल न जगत में जाकी ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८० ।

तुलक—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का सलाहकार । राजमंत्री (को०) ।

तुलकना(५)—क्रि० प्र० [सं० तुल] बराबरी करना । समता करना । उ०—बंदलबा यहु में न मबाकवि कोने भी काम कना तुलकी ।—धकवरी०, पृ० ३५१ ।

तुलसी(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुलसी' । उ०—घरि घरि तुलसी बैस पुराण ।—बी० रासो, पृ० ८१ ।

तुलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वजन । तोल । २. तोलना । ३. तुलना करना । समावता दिखाना (को०) ।

तुलना—क्रि० प्र० [सं० तुल] १. तोलना । तराजू पर अंदाजा जाना । मान का कूता जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. तोल या माप में बराबर उतरना । तुल्य होना । उ०—सात सर्ग अपवर्ग तुल्य धरिय तुला इक अंग । तुले न ताहि सकल मिलि जो सुख सब सतसंग ।—तुलसी (शब्द०) । ३. किसी आधार पर इस प्रकार ठहरना कि आधार के बाहर निकला हुआ कोई भाग अधिक बोझ के कारण किसी ओर को झुका न हो । ठीक अंदाज के साथ टिकना । जैसे, किसी कील पर छड़ी आदि का तुलकर टिकना । बाइसिकिल पर तुलकर बैठना । ४. किसी अस्त्र आदि का इस प्रकार हिसाब से बलाया जाना कि वह ठीक लक्ष्य पर पहुँचे और उतना ही आघात पहुँचावे जितना इष्ट हो । सधना । जैसे, तुलकर तलवार का मारना । ५. नियमित होना । बंधना । अंदाज होना । बँधे हुए मान का अभ्यास होना । उ०—जैसे, दूकान-दारी के हाथ तुल्य हुए होते हैं; बितना उठाकर दे देते हैं, वह प्रायः ठीक होता है । ६. भरना । पूरित होना । ७. पाड़ी के पहिए का आँगा जाना । ८. उद्यत होना । उताऊ होना । किसी काम या बात के लिये बिलकुल तैयार होना । जैसे,—वे इस बात पर तुल्य हुए हैं, कभी न मानेंगे ।

मुहा०—किसी काम या बात पर तुलना = (१) कोई काम करने के लिये उद्यत होना । (२) जब पकड़ लेना । हठ करना । उ०—तोखे के लिये भला किसकी, तुल्य गए कह तुलसी हुई बातें ।—चोखे०, पृ० ३२ । तुलसी हुई बातें कहना = ठिकाने की बातें कहना । पक्की बातें कहना । उ०—तोखने के लिये भला किसकी । तुल्य गए कह तुलसी हुई बातें ।—चोखे०, पृ० ३२ ।

तुलना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दो या अधिक वस्तुओं के गुण, माप आदि के एक दूसरे से घट बढ़ होने का विचार । मितान । तारतम्य ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. सादृश्य । समता । बराबरी । जैसे,—इसकी तुलना उसके साथ नहीं हो सकती । ३. उपमा । ४. तोल । वजन । ५. तुलना । गिनती । ६. उठाना । साधना (को०) । ७. प्राकना । कूटना । अंदाज लगाना या करना (को०) । ८. परीक्षण करना (को०) ।

तुलनात्मक—वि० [सं०] तुलना विषयक । जिसमें दो वस्तुओं की समानता दिखाई जाए । उ०—मानस, मानुषी, विकासशास्त्र हैं तुलनात्मक, सापेक्ष ज्ञान ।—युगांत, पृ० १० ।

तुलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुल] तराजू या कटि की डाँड़ी में सूई के दोनों तरफ का बोझ ।

तुलबुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] जल्दीबाजी ।

तुलवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तोलना, तुलना] १. तोलने की मजदूरी । २. पहिए को आँघने की मजदूरी ।

तुलवाना—क्रि० सं० [हि० तोलना] [संज्ञा तुलवाई] १. तोल कराना । वजन कराना । २. गाड़ी के पहिए की धुरी में घों, तेज आदि दिलाना । आँगवाना ।

तुलसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरकस । तूणीर । (को०) ।

तुलसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक छोटा भाड़ या पोषा जिसकी पत्तियों से एक प्रकार की तीक्ष्ण गंध निकलती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ एक अंगुल से दो अंगुल तक लंबी और लंबाई लिए हुए गोख काट की होती हैं । फूल मंजरी के रूप में पतली सीकों में लगते हैं । अंकुर के रूप में बीज से पहले दो दल फुटते हैं । उद्भिद् शास्त्रवेत्ता तुलसी को पुदीने की जाति में गिनते हैं । तुलसी अनेक प्रकार की होती है । गरम देशों में यह बहुत अधिक पाई जाती है । अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका में इसके अनेक भेद मिलते हैं । अमेरिका में एक प्रकार की तुलसी होती है जिसे ज्वर बढ़ी कहते हैं । फसली बुखार में इसकी पत्ती का काढ़ा पिलाया जाता है । भारत वर्ष में भी तुलसी कई प्रकार की पाई जाती है; जैसे, गंध-तुलसी, श्वेत तुलसी या रामा, कृष्ण तुलसी या कृष्णा, बंबरी तुलसी या ममरी । तुलसी की पत्ती मिर्च आदि के साथ ज्वर में दी जाती है । वैद्यक में यह गरम, कड़ई, दाहकारक, दीपन तथा कफ, वात और कुष्ठ आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है ।

तुलसी को वैष्णव पर्यंत पवित्र मानते हैं । शालग्राम ठाकुर की पूजा बिना तुलसीपत्र के नहीं होती । चरण्याश्रुत आदि में भी तुलसीपत्र बाधा जाता है । तुलसी की उत्पत्ति के संबंध में ब्रह्मवैवर्त पुराण में यह कथा है—तुलसी नाम की एक गोपिका गोबोक में राधा की सखी थी । एक दिन राधा ने उसे कृष्ण के साथ विहार करते देख आप दिया कि तू मनुष्य शरीर धारण कर । आप के अनुसार तुलसी धर्मपूज राधा की कन्या हुई । उसके रूप की तुलना किसी से नहीं

हो सकती थी, इससे उसका नाम 'तुलसी' पड़ा। तुलसी ने बन में जाकर घोर तप किया और ब्रह्मा से इस प्रकार वर माँगा—'मैं कृष्ण की रति के कभी तृप्त नहीं हुई हूँ। मैं उन्हीं की पति रूप में जाना चाहती हूँ। ब्रह्मा के कृपाबलुपर तुलसी ने पंचचूड़ नामक राक्षस से विवाह किया। पंचचूड़ को वर मिला था कि बिना उसकी स्त्री का सतीत्व भंग हुए उसकी पुष्टि न होगी। जब पंचचूड़ ने संपूर्ण देवताओं को परास्त कर दिया, तब सब लोग विष्णु के पास गए। विष्णु ने पंचचूड़ का का घायल करके तुलसी का सतीत्व नष्ट किया। इसपर तुलसी ने नारायण को बाप दिया कि 'तुम पंचचूर हो जाओ'। जब तुलसी नारायण के पैर पर पिरकर बहुत रोने लगी, तब विष्णु ने कहा, 'तुम यह शरीर छोड़कर चक्षुषी के समान मेरी प्रिया होगी। तुम्हारे शरीर के पंखों नदी घोर कण से तुलसी बन होया।' तब से बराबर शाबघाम ठाकुर की पूजा होने लगी और तुलसी-बन उनके मस्तक पर चढ़ने लगा। वैष्णव तुलसी की बकरी की माँबा और कठी धारण करते हैं। बहुत से लोग तुलसी शाबघाम का विवाह बड़ी धूमधाम से करते हैं। कार्तिक मास में तुलसी की पूजा घर घर होती है, क्योंकि कार्तिक की प्रभावस्था तुलसी के उत्पन्न होने की तिथि मानी जाती है।

२. तुलसीदल।

तुलसीचौरा—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्गाकार उठा हुआ स्थान जिसमें तुलसी लगाई जाती है। तुलसी पूजाघर।

तुलसीदल—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसीपत्र। तुलसी के पत्रों का पत्ता।

विशेष—वैष्णव इसे अत्यंत पवित्र मानते हैं और ठाकुर पर बढ़ाकर प्रसाव के रूप में अर्पण में बाँटते हैं। कहीं कहीं कथा बातां प्राप्ति में जाने के लिये और प्रसाद रूप में तुलसीदल बाँटा जाता है। कहीं कहीं मंदिरों और साधुओं वैरागियों की घोर से भी तुलसीदल निमंत्रण रूप में समारोहों के अवसर पर भेजा जाता है।

तुलसीदाना—संज्ञा पुं० [हिं० तुलसी + फा० दाना] एक गहना।

तुलसीदास—संज्ञा पुं० [सं० तुलसी + दास] उत्तरीय भारत के सर्वप्रधान भक्त कवि जिनके 'रामचरितमानस' का प्रचार हिंदुस्तान में घर घर है।

विशेष—ये जाति के सरगुपारीय ब्राह्मण थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये पतिभोज के दुबे थे। पर तुलसीचरित नामक एक ग्रंथ में, जो गोस्वामी जी के किसी शिष्य का लिखा हुआ माना जाता है और अत्यंत छद्म नहीं है, इन्हें गाना का विश्व लिखा है। (यह ग्रंथ अब प्रकाशित हो गया है)। वेणीमाधवदास कृत गोसाईंचरित नामक एक ग्रंथ भी है जो अब नहीं मिलता। उसका उल्लेख शिवसिंह ने अपने शिवसिंह शरोज में किया है। कहते हैं, वेणीमाधवदास कवि गोसाईं जी के साथ प्रायः रहा करते थे।

माभा जी के भक्तमाल में तुलसीदास जी की प्रशंसा पाई है;

जैसे—कवि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो। रामचरित-रस-मधुरहत प्रहृतिनि प्रतपारी।

भक्तमाल की टीका में प्रियादास ने गोस्वामी जी का कुछ वृत्तान्त लिखा है और वही जोक में प्रसिद्ध है। तुलसीदास जी के जन्मसंवत् का ठीक पता नहीं लगता। पं० रामगुलाम द्विवेदी मिरजापुर में एक प्रसिद्ध रामभक्त हुए हैं। उन्होंने जन्मकाव्य संवत् १५८६ बतलाया है। शिवसिंह ने १५८३ लिखा है। इनके जन्मस्थान के संबंध में भी मतभेद है, पर अधिकांश प्रमाणां से इनका जन्मस्थान चित्रकूट के पास राजापुर नामक ग्राम ही ठहरता है, जहाँ अद्यतक इनके हाथ की लिखी रामायण का कुछ अंश रक्षित है। तुलसीदास के माता पिता के संबंध में भी कहीं कुछ लेख नहीं मिलता। ऐसा प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम घाटमाराम दुबे और माता का तुलसी था। प्रियादास ने अपनी टीका में इनके संबंध में कई बातें लिखी हैं जो अधिकतर इनके माहात्म्य और भक्तकार को प्रकट करती हैं। उन्होंने लिखा है कि गोस्वामी जी युवावस्था में अपनी स्त्री पर अत्यंत आसक्त थे। एक दिन स्त्री बिना कुछे बाप के घर चली गई। ये स्नेह से व्याकुल होकर रात को उसके पास पहुँचे। उसने इन्हें धिक्कारा—'यदि तुम इतना प्रेम राम से करते, तो न जाने क्या हो जाते'। स्त्री की बात इन्हें गम गई और ये चट विरक्त होकर काफी चले आए। यहाँ एक प्रेन मिला। उसने हनुमान जी का पता बताया जो नित्य एक स्थान पर ब्राह्मण के वेश में कथा सुनने जाया करते थे। हनुमान् जी से साक्षात्कार होने पर गोस्वामी जी ने रामचंद्र के दर्शन की प्रार्थना प्रकट की। हनुमान् जी ने इन्हें चित्रकूट जाने की आज्ञा दी, जहाँ इन्हें दो राजकुमारों के रूप में राम और लक्ष्मण जाते हुए दिखाई पड़े। इसी प्रकार की और कई कथाएँ प्रियादास ने लिखी हैं; जैसे, दिल्ली के बादशाह का इन्हें बुलाना और कैद करना, बंदरों का उत्थात करना और बादशाह का तंग आकर छोड़ना, इत्यादि।

तुलसीदास जी ने चैत्र शुक्ल ६ (रामनवमी), संवत् १६३१ को रामचरित मानस लिखना प्रारंभ किया। संवत् १६८० में काशी में घसीघाट पर इनका शरीरांत हुमा, जैसा इस कोहे से प्रकट है—संबत सोलह सौ घसी घसी गंग के तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर। कुछ लोगों के मत से 'शुक्ला सप्तमी' के स्थान पर 'श्यामा तीज अग्नि' पाठ चाहिए क्योंकि इसी तिथि के अनुसार गोस्वामी जी के मंदिर के वर्तमान अधिकारी बराबर सोधा दिया करते हैं, और यही तिथि प्रामाणिक मानी जाती है। रामचरितमानस के प्रतिरिक्त गोस्वामी जी की लिखी और पुस्तकें ये हैं—बोहावली, गीतावली, कवितावली या कविता रामायण, विनयपत्रिका, रामाज्ञा, रामजला नह्यु, बरवे रामायण, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, वैराग्य संदीपनी, कृष्णगीतावली। इनके प्रतिरिक्त हनुमानबाहुक आदि कुछ स्तोत्र भी गोस्वामी जी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

तुलसीदेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनतुलसी। बबई। बबरी। ममरी।

तुलसीपत्र—संज्ञा पु० [सं०] तुलसी की पत्ती ।

तुलसीबास—संज्ञा पु० [हि० तुलसी + बास (=महक)] एक प्रकार का महीन धान जो घगहन में तैयार होता है ।

विशेष—इसका बावल बहुत सुगंधित होता है और कई साल तक रह सकता है ।

तुलसीवन—संज्ञा पु० [सं०] १. तुलसी के वृक्षों का समूह । तुलसी का जंगल । २. वृंदावन ।

तुलसी विवाह—संज्ञा पु० [सं०] विष्णु की मूर्ति के साथ तुलसी के विवाह करने का एक उत्सव ।

विशेष—हिंदू परिवारों की धार्मिक महिलाएँ कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में मीढमपंचक एकादशी से पूर्णिमा तक यह उत्सव मनाती हैं ।

तुलसी वृंदावन—संज्ञा पु० [सं०] तुलसीचौरा [को०] ।

तुलह^७—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला + हि० ह (स्वा० प्रत्य०)] तुला । तराजू । उ०—तुलह न तोली गजह न मापी, पहज न सेर बढ़ाई ।—कबीर प्र०, पृ० १५३ ।

तुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सादृश्य । तुलना । मिलाव । २. गुरुत्व नापने का यंत्र । तराजू । काँटा ।

यौ०—तुलाबंद ।

३. मान । तोल । ४. धनाज आदि नापने का बरतन । मांड । ५. प्राचीन काल की एक तोल जो १०० पल या पाँच सेर के लगभग होती थी । ६. ज्योतिष की बारह राशियों में से सातवीं राशि ।

विशेष—मोटे हिसाब से दो नक्षत्रों और एक नक्षत्र के चतुर्थांश अर्थात् सवा दो नक्षत्रों की एक राशि होती है । तुला राशि में बिना नक्षत्र के शेष ३० दंड तथा स्वाती और विशाखा के आध ४५-४५ दंड होते हैं । इस राशि का आकार तराजू लिए हुए मनुष्य का सा माना जाता है ।

७. सत्यासत्यनिर्णय की एक परीक्षा जो प्राचीन काल में प्रचलित थी । बादी प्रतिवादी आदि की एक दिव्य परीक्षा । वि० ६० 'तुलापरीक्षा' । ८. वास्तु विद्या में स्तंभ (खंभे) के विभागों में से चौथा विभाग ।

तुलाई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला = कई] वह दोहरा कपड़ा जिसके भीतर कई भरी हो । कई से बरा दोहरा कपड़ा जो धोने के काम में आता है । दुलाई । उ०—तपन तेज तपता तपन तुल लाई माह । सिसिर सीत क्योंहुँ न चटें बिन लपटे टियनाह ।—विहारी (शब्द०) ।

तुलाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तुलना] १. तोलने का काम या भाव । २. तोलने की मजदूरी ।

तुलाई^३—संज्ञा स्त्री० [हि० तुलाना] गाड़ी के पहियों को जो गाने या धुरी में चिकना दिलवाने की क्रिया ।

४-५८

तुलाकूट—संज्ञा पु० [सं०] १. तोल में कसर । २. तोल में कसर करनेवाला । डाँड़ी मारनेवाला मनुष्य ।

तुलाकोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तराजू की डाँड़ी के दोनों छोर जिनमें पलके की रस्सी बंधी रहती है । २. एक तोल का नाम । ३. अर्जुन संख्या । ४. तूपुर । ५. स्तंभ का सिरा या छोर (को०) ।

तुलाकोटी—संज्ञा स्त्री० । [सं०] ३० 'तुलाकोटि' [को०] ।

तुलाकोश—संज्ञा पु० [सं०] १. तुलापरीक्षा । २. तराजू रखने का स्थान (को०) ।

तुलाकोष—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'तुलाकोश' ।

तुलादंड—संज्ञा पु० [सं० तुलादण्ड] तराजू की डाँड़ी या डाँड़ी [को०]

तुलादान—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें किसी मनुष्य की तोल के बराबर द्रव्य या पदार्थ का दान होता है । यह सोलह महादानों में से है । तीर्थों में इस प्रकार का दान प्रायः राजा महाराजा करते हैं ।

तुलाधर—संज्ञा पु० [सं०] १. तराजू की डाँड़ी । २. तराजू का पलड़ा [को०] ।

तुलाधर—संज्ञा पु० [सं०] १. व्यापारी । सीदागर । २. तुला राशि । ३. सूर्य [को०] ।

तुलाधार^१—संज्ञा पु० [सं०] १. तुला राशि । २. तराजू की रस्सी जिसमें पलके बंधे रहते हैं । ३. बनियाँ । बणिक् । ४. काशी का रहनेवाला एक बणिक् जिसने महर्षि जाजलि को उपदेश दिया था ।—(महाभारत) । ५. काशीनिवासी एक व्यापक जो सदा माता पिता की सेवा में तत्पर रहता था ।

विशेष—कृतबोध नामक एक व्यक्ति जब इसके सामने आया, तब इसने उसका समस्त पूर्ववृत्तांत कह सुनाया । इसपर उस व्यक्ति ने भी माता पिता की सेवा का व्रत ले लिया ।—(बृहद्भर्मपुराण) ।

तुलाधार^२—वि० तुला को धारण करनेवाला ।

तुलना^७—वि० ध० [हि० तुलना (= तोल में बराबर घाना)] आ पहुँचना । समीप घाना । निकट घाना । उ०—(क) समुद्र लोक धन चड़ी बिद्वाना । जो दिन डरें सो आइ तुलना ।—जायसी (शब्द०) । (ख) अपने काल आपु ही बोख्यो इनको मीठु तुलानी ।—सूर (शब्द०) ।

तुलना^१—वि० सं० [हि० तुलना] १. तुलबाना । तोलाना । २. बराबर होना । पूरा छतरना । ३. गाड़ी के पहियों को धोना । गाड़ी के पहियों की धुरी में चिकना दिवाना ।

तुलापरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मयुक्तों की एक परीक्षा जो प्राचीन काल में अग्निपरीक्षा, बिषपरीक्षा आदि के समान प्रचलित थी । दोषी या निर्दोष होने की दिव्य परीक्षा ।

विशेष—स्पृतियों में तुलापरीक्षा का बहुत ही विमृत विधान दिया हुआ है । एक खुले स्थान में यज्ञकाष्ठ की एक बड़ी सी तुला (तराजू) खड़ी की जाती थी और चारों ओर

तीरण आदि बहि जाते थे। फिर मंत्रपाठपूर्वक देवताओं का पूजन होता था और अभियुक्त को एक बार तराजू के पलड़े पर बैठाकर मिट्टी आदि से तोल लेते थे। फिर उसे उतारकर दूसरी बार तोलते थे। यदि पलड़ा कुछ मुक जाता था तो अभियुक्त को दोषी समझते थे।

तुलापुरुषकुण्ड—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत।

विशेष—इसमें पित्त्याक (तिल की खली), मात, मट्ठा, जल और सत्तू इनमें से प्रत्येक को क्रमशः तीन तीन दिन तक खाकर पंद्रह दिनों तक रहना पड़ता है। यम ने इसे २१ दिनों का व्रत लिखा है। इसका पूरा विधान याज्ञवल्क्य, हारीत आदि स्मृतियों में मिलता है।

तुलापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुलाभार' [को०]।

तुलापुरुषदान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुलादान'।

तुलाप्रमाह—संज्ञा पुं० [सं०] तराजू के पलड़ों की रस्सी [को०]।

तुलाप्रमाह—संज्ञा पुं० [सं०] तुलाप्रमाह।

तुलाबीज—संज्ञा पुं० [सं०] चुंबकी के बीज जो तोल के काम में आते हैं। गुंजाबीज।

तुलाभजानी—संज्ञा स्त्री० [पुं०] बंकर दिग्विजय के अनुसार एक नदी और नगरी का नाम।

तुलाभार—संज्ञा पुं० [सं०] सोने जवाहरात का एक पुरुष के तोल का मान जो दान किया जाता था [को०]।

तुलामान—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहु मंदाज या मान जो तोलकर किया जाय। २. बाट। बटखरा।

तुलामानांतर—संज्ञा पुं० [सं० तुलामानान्तर] तोल में अंतर डालना। कम तोल के बटखरे रखना। हलके बाट रखना।

विशेष—कोटिल्य ने इस अपराध के लिये २०० पण दंड लिखा है।

तुलायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तुलायन्त्र] तराजू।

तुलायष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तराजू की दंडो [को०]।

तुलाया—संज्ञा पुं० [हिं० तुलना] १. बहु लकड़ी जिसके बल गाड़ी खड़ी करके धुरी में तेल बिया जाता है और पहिया निकाला जाता है। २. बहु लकड़ी जिसके सहारे घोंगटे समय गाड़ी खड़ी की जाती है।

तुलासूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तराजू के पलड़ों की रस्सी [को०]।

तुलाहीन—संज्ञा पुं० [सं०] कम तोलमा। ढाड़ी मारना।

विशेष—चाणक्य ने तोल की कमी में कमी का चार गुना जुरमाना लिखा है।

तुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जुलाहों की कूँची। २. चित्र बनाने की कूँची।

तुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खंजन की तरह की एक छोटी चिड़िया।

तुलित—वि० [सं०] १. तुला हुआ। २. बराबर। समान।

तुलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] साल्मसी हुल। सेमर का पेड़।

तुलिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का फल।

तुली^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुलि'।

तुली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला] छोटा तराजू। काँटा।

तुली^३—संज्ञा स्त्री० [?] तंबाकू। सुरती।

तुलुव—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण के एक प्रदेश का प्राचीन नाम जो सह्याद्रि और समुद्र के बीच में माना जाता था। प्रायः इस प्रदेश को उत्तर कनाडा कहते हैं।

तुलू—संज्ञा स्त्री० [कन्नड़] कर्नाटक में प्रचलित एक उपभाषा।

तुलू—संज्ञा पुं० [प्र० तुलुप्र] सूर्य या किसी नक्षत्र का उदय होना।

तुलुजो—संज्ञा स्त्री० [प्र० तुलुतुल] बंधी हुई चार जो कुछ दूर पर जाकर पड़े (जैसे, पेशाब की)।

क्रि० प्र०—बंधना।

तुल्य—वि० [सं०] १. समान। बराबर। २. सहज। समरूप। उसी प्रकार का। ३. उपयुक्त। युक्त [को०]। ४. अभिन्न [को०]।

तुल्यकक्ष—वि० [सं०] समान। बराबरी का। उ०—राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में इस सहभाव को तुल्यकक्ष कहकर काव्य को दूसरे प्रकार के लेखों से अलग किया है।—पा० सा० सि०, पु० १।

तुल्यकर्मक—संज्ञा पुं० [सं०] (व्यक्ति) जिनका उद्देश्य समान हो [को०]।

तुल्यकाल—वि० [सं०] समकालिक। एक ही समय का [को०]।

तुल्यकालीय—वि० [सं०] समकालिक। एक ही समय का [को०]।

तुल्यकुल्य^१—वि० [सं०] समान कुल का [को०]।

तुल्यकुल्य^२—संज्ञा पुं० रिश्तेदार। संबंधी [को०]।

तुल्यगुण—वि० [सं०] १. समान गुणवाला। २. समान रूप से अच्छा [को०]।

तुल्यजातीय—वि० [सं०] एक ही जाति का। समान [को०]।

तुल्यजोगिता^(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुल्ययोगिता'। उ०—तुल्यजोगिता तहें घरम जहें बरग्यन की एक।—भूषण प्र०, पु० २७।

तुल्यतर्क—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा अनुमान जो सत्य के निकट हो [को०]।

तुल्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बराबरी। समता। २. सादृश्य।

तुल्यदर्शन—वि० [सं०] समान दृष्टि से देखनेवाला। सबके प्रति एक दृष्टि रखनेवाला [को०]।

तुल्यनामा—वि० [सं० तुल्यनामन्] एक ही नाम का। समान नाम का [को०]।

तुल्यपान—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजाति के लोगों के साथ मिल जुलकर खाना पीना।

तुल्यप्रधानव्यंग्य—संज्ञा पुं० [सं० तुल्यप्रधानव्यङ्ग्य] वह व्यंग्य जिसमें वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ बराबर हो।

तुल्ययोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें कई प्रस्तुतों या अप्रस्तुतों का अर्थात् बहुत से उपमानों का एक ही अर्थ बतलाया जाय। जैसे,—(क) अपने धर्म के आनि के जीवन वृषति प्रवीन। स्तन, मन, नैन, नितंब को बड़ो इजाफा

कीन ।—बिहारी (शब्द०) । यही स्तन, मन, नयन, नितम्ब इन प्रसिद्ध उपमेयों का 'इबाफा होना' एक ही धर्म कहा गया है । (क) लखि तेरी सुकुमारता परी या जग माहि । कमल, गुलाब कठोर से किहि को भासत नाहि (शब्द०) । यही कमल और गुलाब इन दोनों उपमानों का एक ही धर्म कठोरता कहा गया है ।

तुल्ययोगी—वि० [सं० तुल्ययोगिन्] समान संबंध रखनेवाला ।

तुल्यरूप—वि० [सं०] समरूप । सदृश । एक बैसा [को०] ।

तुल्यलक्षणा—वि० [सं०] समान लक्षण युक्त [को०] ।

तुल्यवृत्ति—वि० [सं०] समान पेशेवाला [को०] ।

तुल्यशः—क्रि० वि० [सं०] तुल्यतापूर्वक । तुल्यतापूर्वक [को०] ।

तुल्य—वि० [सं० तुल्य] दे० 'तुल्य' ।

तुल्यलक्ष—संज्ञा पु० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

तुल्य—सर्व० [हि०] दे० 'तुल्य' ।

तुल्य^१—सर्व० [हि०] दे० 'तुल्य' । उ०—धिर रहहु राव हम उच्छरे, न डरि न डरि प्रब सेल तुल्य ।—ह० रासो, पृ० ५३ ।

तुल्य^२—वि० [सं०] १. कसेला । २. बिना दाढ़ी मोछ का । शमश्रुहीन ।

तुल्य^३—संज्ञा पु० [सं०] १. कसेला रस । कषाय रस । २. घरहर । ३. एक पोषा जो नदियों और समुद्र के तट पर होता है ।

विशेष—इसके फल इसकी के समान होते हैं जिनके खाने से पशुओं का दूध बढ़ता है ।

तुल्यराजनाल—संज्ञा पु० [सं०] लाल उवार । लाल जुम्हरी ।

तुल्यरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोपीचंदन । २. घाड़की । घरहर ।

तुल्यरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुल्यरिका' ।

तुल्यरीशिख—संज्ञा पु० [सं० तुल्यरीशिख] चकवेंड का पेड़ । पेंवार ।

तुल्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूँबी ।

तुल्यार—संज्ञा पु० [देश०] एक झाड़ जो पश्चिम हिमालय में होता है । इसकी छाल से रस्सियाँ बनाई जाती हैं । पुश्नी ।

तुल्य—संज्ञा पु० [सं०] १. घन के ऊपर का छिलका । भूसी । उ०—घानंदघन, इनको सिल ऐसे जैसे तुल्य लै फटके ।—घनानंद, पृ० ५४३ । २. घंटे के ऊपर का छिलका । ३. बहेड़े का पेड़ ।

तुल्यग्रह—संज्ञा पु० [सं०] घग्नि ।

तुल्यधान्य—संज्ञा पु० [सं०] छिलकायुक्त घनाज [को०] ।

तुल्यसार—संज्ञा पु० [सं०] घग्नि [को०] ।

तुल्यबु—संज्ञा पु० [सं० तुल्यबु] एक प्रकार की काँजी जो भूसी सहित कूटे हुए जो को सड़ाकर बनती है ।

विशेष—वैद्यक में यह अग्निदीपक, पाचक, हृदयवाही और तीक्ष्ण मानी गई है ।

तुल्यग्न—संज्ञा पु० [हि०] तुलानल [को०] ।

तुल्यनल—संज्ञा पु० [सं०] १. भूसी की भाग । घासफूस की भाग । करसी की भाग । २. भूसी या घास फूस की भाग में भस्म होने की क्रिया जो प्रायश्चित्त के लिये की जाती है ।

विशेष—कुमारिल भट्ट तुल्यग्न में ही भस्म होकर मरे थे ।

तुल्यार^१—संज्ञा पु० [सं०] १. हवा में मिली भाप को सरसी से जलकर और सूक्ष्म जलकण के रूप में हवा से अलग होकर गिरती और पहाड़ों पर जमती दिखलाई देती है । घाला । २. हिम । बरफ । ३. एक प्रकार का कपूर । चीनियाँ कपूर । ४. हिमालय के उत्तर का एक देश जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे । ५. तुल्यार देश में बसनेवाली जाति जो एक जाति की एक लाला थी । ६. घोस (को०) । ७. हलकी वर्षा । फुही (को०) । ८. तुल्यार देश का घोड़ा (को०) ।

तुल्यार^२—वि० घूने में बरफ की तरह ठंडा ।

तुल्यारकण—संज्ञा पु० [सं०] घोस की बूँदें । हिमकण [को०] ।

तुल्यारकर—संज्ञा पु० [सं०] १. हिमकर । चंद्रमा । २. कपूर (को०) ।

तुल्यारकाल—संज्ञा पु० [सं०] शीत ऋतु । जाड़ा [को०] ।

तुल्यारकिरण—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा [को०] ।

तुल्यारगिरि—संज्ञा पु० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुल्यारगौर^१—संज्ञा पु० [सं०] कपूर ।

तुल्यारगौर^२—वि० १. तुल्यार जैसा श्वेत । हिम सा धावल । २. तुल्यार पड़ने से श्वेत [को०] ।

तुल्यारद्युति—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा [को०] ।

तुल्यारपर्वत—संज्ञा पु० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुल्यारपाषाण—संज्ञा पु० [सं०] १. घोला । २. बरफ ।

तुल्यारमर्षि—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा ।

तुल्यारतु^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] ठंडक का मौसम । शीतकाल [को०] ।

तुल्याररश्मि—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा ।

तुल्यारशिखरी—संज्ञा पु० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुल्यारशैल—संज्ञा पु० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुल्यारशु—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा ।

तुल्यारद्रि—संज्ञा पु० [सं०] हिमालय पर्वत ।

तुल्यारावृत्त—वि० [सं० तुल्यार + आवृत्त] हिम से घिरा हुआ । हिम से ढंका हुआ । उ०—तुल्यारावृत्त अंधेरा पव था । हिम गिर रहा था । तारों का पता नहीं; भयानक शीत और निर्जन निशीथ ।—भाकाश०, पृ० ३५ ।

तुल्यार—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार के गणदेवता जो संख्या में १२ हैं । मन्वंतरों के अनुसार इनके नाम बदला करते हैं । २. बिम्बु । ३. एक स्वर्ग का नाम । (बौद्ध) ।

तुल्यार—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपदेवियों का एक वर्ग, जिनकी संख्या बारह या छत्तीस मानी जाती है [को०] ।

तुल्यार—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'तुल्यार' ।

तुल्यार—संज्ञा पु० [सं०] १. छिलके समेत कूटे हुए जो को पानी में सड़ाकर बनाई हुई काँजी । तुल्यारु । २. भूसी को सड़ाकर सड़क किया हुआ जल ।

तुल्यार—वि० [सं०] १. तोषप्राप्त । तुल्य । संतुष्ट । उ०—तुल्यार तुम्हीं में उन्हें देखकर रही, रहूँगी ।—साकेत, पृ० ४०५ । २. राजी । प्रसन्न । खुश ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तुष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] संतोष । प्रसन्नता ।

तुष्टना^(५)—क्रि० घ० [सं० तुष्ट] प्रसन्न होना । उ०—(क) धर पर कम तुष्टत धरकामा । प्रेम से प्रगट होत ततकाला ।—विश्राम (शब्द०) (ख) नाम लेइ जेहि युवति को नहि सुहाइ सुनि ताम् । राम जानकी के कहे तुष्टत तेहि पर धाम् ।—विश्राम (शब्द०) ।

तुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संतोष । तृप्ति । २. प्रसन्नता ।

विशेष—सांख्य में नौ प्रकार की तुष्टियाँ मानी गई हैं, चार प्राध्यात्मिक और पाँच बाह्य । प्राध्यात्मिक तुष्टियाँ ये हैं—(१) प्रकृति—आत्मा को प्रकृति से भिन्न मानकर सब कार्यों का प्रकृति द्वारा होना मानने से जो तुष्टि होती है, उसे प्रकृति या प्रगुष्टि कहते हैं । (२) उपादान—संन्यास से विवेक होता है, ऐसा ममभ संन्यास से जो तुष्टि होती है, उसे उपादान या सलिलतुष्टि कहते हैं । (३) काल—काल पाकर प्राप ही विवेक या मोक्ष प्राप्त हो जायगा, इस प्रकार तुष्टि को कालतुष्टि या मोक्षतुष्टि कहते हैं । (४) भाग्य—भाग्य में होगा तो मोक्ष हो जायगा, ऐसी तुष्टि को भाग्यतुष्टि या वृष्टितुष्टि कहते हैं ।

इसी प्रकार इन्द्रियों के विषयो से विरक्ति द्वारा जो तुष्टि होती है, वह पाँच प्रकार से होती है; जैसे, यह समझने से कि, (१) प्रजन करने में बहुत कष्ट होता है, (२) रक्षा करना और कठिन है, (३) विषयों का नाश हो ही जाता है, (४) ज्यो ज्यो भोग करते हैं, त्यो त्यो इच्छा बढ़ती ही जाती है और (५) बिना दूसरे को कष्ट दिए सुख नहीं मिल सकता । इन पाँचों के नाम क्रमशः पार, सुषार, पारापार, अनुत्तमांश और उत्तमांश हैं ।

इन नौ प्रकार की तुष्टियों के विपर्यय से बुद्धि की अशक्ति उत्पन्न होती है । वि० दे० 'अशक्ति' ।

३. कस के घाट भाइयों में से एक ।

तुष्टु—संज्ञा पुं० [सं०] कान में पहनने का एक गहना । कण्ठमणि [को०] ।

तुष्ट्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

तुस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुष' ।

तुसाँदे^(५)—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—रहै वा तुसाँदे लाल कछु ना कहैवा है ।—नट०, पु० ६३ ।

तुसाडी^(५)—सर्व० [पुं०] घापकी । उ०—की की खूबी कहै तुसाडी हो हो हो होरी है ।—घनानंद, पु० १७६ ।

तुसाद—संज्ञा पुं० [सं० तुषार] 'तुषार' । उ०—पुस भास तुसार पायो कपि जाइ जनाइया ।—गुलाब०, पु० ८४ ।

तुसी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुस] अन्न के ऊपर का छिलका । सूसी । उ०—ऐसी को ठाली बैठी है तोसी मूँड़ पिरावै । झूठी बात तुसी सी बिनु कम फटकत हाथ न पावै ।—सूर (शब्द०) ।

तुस्त—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धूल । गदं । २. सूसी [को०] ।

तुस्त—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुष' । उ०—सत्य असत्य कहो कद एकै गुंवन तुस्त निकारो ।—राम० धर्म०, पु० ३७५ ।

तुह^(५)—सर्व० [हि०] दे० 'तुम' । उ०—जो तुह मिलहु भुनीसा । सुनतिउं सिक तुम्हारि धरि सीसा ।—म १ । ५१ ।

तुहफा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोहफा' । उ०—तुहफे, घूस बंदे के ऐसे बम के गोले चलाए ।—भारतेंदु प्र०, भा० पु० ४७६ ।

तुहमत—संज्ञा स्त्री० [घ०] दे० 'तोहमत' ।

तुहारा—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' ।

तुहाले^(५)—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—जग में तुहाले जोई, हुवो न कोई फेर हुवै ।—रघु० क०, पु० १ ।

तुहि^(५)—सर्व० [हि०] तू + हि (प्रत्य०)] तुम्हको ।

तुहिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाला । कुहरा । तुषार । २. हि बरफ । ३. चंद्रतेज । चाँदनी । ४. शीतलता । ठंडक । कपूर [को०] । ५. भोस [को०] ।

तुहिनकण—संज्ञा पुं० [सं०] भोसकण । तुषार [को०] ।

तुहिनकर—संज्ञा पुं० [पुं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत । उ०—समा सुनि तुहिनगिरि गबनें तुरत निकेत ।—मानस, १ । १७ ।

तुहिनगु—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुचिनद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनरुचि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनरौल—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुहिनशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बरफ का टुकड़ा । बरफ ।

तुहिनांशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर ।

तुहिनाचल—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत । उ०—गए स तुहिनाचल गेहा । गावहि मंगल सहित सनेहा ।—मान १ । ६४ ।

तुहिनाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुही^(५)—सर्व० [हि०] दे० 'तुहि' । उ०—घाप को साफ कर त साई ।—केशव० धमी०, पु० ६ ।

तुम्हें—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हें' ।

तूँ—सर्व० [सं० त्वम्] दे० 'तू' ।

तूँअर^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोमर' । उ०—अर्नेगपाल तूँ तहाँ दिली बसाई आनि ।—पु० रा०, १ । १७० ।

तूँगा^(५)—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग] फौज का समूह । उ०—तूँगा बरवा लगे, पूगा पुरा प्रवेश ।—रा० क०, पु० २६७ ।

तूँगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पुष्पी । भूमि । २. वाव । नोका ।

तूँब^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूँबा' । उ०—जुग तूँब की परम सोनित मय भाई ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पु० ४१५ ।

तूँबड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूँबा' ।

तूबना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तुम्ना' ।

तूबा—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बक] १. कहुआ गोल कद्दू। कहुआ गोल बीया। सितलीकी। उ०—मन पवन दुइ तूबा करिही जुग जुग सारव साजो।—कबीर ग्रं०, पृ० ३२६।

विशेष—इस कद्दू को खोखला करके कई कामों में लाते हैं; बरतन बनाते हैं; सितार आदि बाजों में ध्वनिकोष बनाने के लिये लगाते हैं आदि।

२. कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ बरतन जिसे प्रायः साधु अपने साथ रखते हैं। कर्मडल।

तूबी—संज्ञा स्त्री० [हि० तूबा] १. कहुआ गोल कद्दू। २. कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ बरतन।

मुहा०—तूबी लगाना = बात से पीड़ित या सूजे हुए स्थान पर रक्त या वायु को खींचने के लिये तूबी का व्यवहार करना।

विशेष—तूबी के भीतर एक बत्ती जलाकर रख दी जाती है जिससे भीतर की वायु हलकी पड़ जाती है। फिर जिस भंग पर उसे लगाना होता है, उसपर घाटे की एक पतली सोई रख कर उसके ऊपर तूबी उलटकर रख देते हैं जिससे उस भंग के भीतर की वायु तूबी में खिंच आती है। यदि कुछ रक्त भी निकालना होता है, तो उस स्थान को जिसपर तूबी लगानी होती है, नश्वर से पाछ देते हैं।

तू—सर्व० [सं० त्वम्] एक सर्वनाम जो उस पुरुष के लिये आता है जिसे संबोधन करके कुछ कहा जाता है। मध्यमपुरुष एक वचन सर्वनाम। जैसे,—तू यहाँ से चला जा।

विशेष—यह शब्द अशिष्ट समझा जाता है, अतः इसका व्यवहार बड़ों और बराबरवालों के लिये नहीं होता, छोटी या नीचों के लिये होता है। परमात्मा के लिये भी 'तू' का प्रयोग होता है।

मुहा०—तू तड़ाक, तू तुकार, तू तू में में करना = कहा सुनी करना। अशिष्ट शब्दों में विवाद करना। गाली गलौज करना। कुवाक्य कहना।

यो०—तू तुकार = अशिष्ट विवाद। कहा सुनी। कुवाक्य। उ०—प्रत्यक्ष धिक्कार और तू तुकार की मूसलाधार वृष्टि होती।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० २६८।

तू^२—संज्ञा स्त्री० [धनु०] कुत्तों को बुलाने का शब्द। जैसे—'भाव तू...तू...'। उ०—दूर दूर करे तो बाहिरे, तू तू करे तो जाय।—कबीर सा० सं०, पृ० २१।

तूख—संज्ञा पुं० [सं० तुष = तिनका] का वह टुकड़ा जिसे गोबर को बनाते हैं। सींक। खरका। उ०—छ्वावति न छाहि, छुए नाहक ही 'नाहीं' कहि, नाह गल माहें बाहें मेखे सुखरुख सी।... तीली दीठि तूख सी, पतूख सी, अररि भंग, ऊख सी मरुरि मुख लागति मरुख सी।—देव (शब्द०)।

तूखा^१—वि० [हि०] दे० 'तुच्छ'। उ०—बलबी बादसाही सील बाही तेग तूखा।—निखर०, पृ० २०।

तूफ^१—सर्व० [हि०] दे० 'तुफ'। उ०—दीनानाथ तूफ बिन कुछ री कियन जाय पुकार कहाँ।—रघु० क०, पृ० ६८।

तूटना—क्रि० प्र० [सं० त्रुट] 'टूटना'। उ०—तुटें तूट बाहें। बतें दंत मोह।—पृ० रा०, ७। १२०।

तूटना^१—क्रि० प्र० [सं० तुष्ट, प्रा० तुट्ट] तुष्ट होना। संतुष्ट होना। तृप्त होना। अष्टाना। उ०—राधे ब्रजनिधि मीत पै हित के हाथन तूठि।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १७। २. प्रसन्न होना। राखी होना।

तूटना^२—क्रि० सं० प्रसन्न करना। संतुष्ट करना।

तूण—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीर रखने का बोंगा। तरकश।

यो०—तूणधर, तूणधार = धनुर्धर।

२. चामक नामक वृक्ष का नाम।

तूणद्वेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] बाण। तीर।

तूणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूणीर। तरकश [को०]।

तूणी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरकश। निषंग। २. नील का पीषा। ३. एक वातरोग जिसमें मूत्राशय के पास से बर्द उठता है और गुदा और पेड़ तक फैलता है।

तूणी^२—वि० [सं० तूणिन्] तूणधारी। जो तरकश लिए हो।

तूणी^३—संज्ञा पुं० [सं० तूणीक ?] तुन का पेड़।

तूणीक—संज्ञा पुं० [सं०] तुन का पेड़।

तूणीर—संज्ञा पुं० [सं०] तूण। निषंग। तरकश।

तूत—संज्ञा पुं० [फ्रा०] एक पेड़ जिसके फल खाए जाते हैं।

विशेष—यह पेड़ मझोले आकार का होता है। इसके पत्ते फालसे के पत्तों से मिलते जुलते, पर कुछ लंबोतरे और मोटे दल के होते हैं। किसी किसी के सिरे पर फाँकों भी कटी होती हैं। फूल मंजरी के रूप में लगते हैं जिनसे प्रागे चलकर कीड़ों की तरह बड़े बड़े फल होते हैं। इन फलों के ऊपर महीन ढाने होते हैं जिनपर रोइयाँ सी होती हैं। इनके कारण फलों की आकृति और भी कीड़ों की सी जान पड़ती है। फलों के मेख से तूत कई प्रकार के होते हैं; किसी के फल छोटे और गोल, किसी के लंबे किसी के हरे, किसी के लाल या काले होते हैं। मीठी जाति के बड़े तूत को शहतूत कहते हैं। तूत योरप और एशिया के अनेक भागों में होता है। भारतवर्ष में भी तूत के पेड़ प्रायः सर्वत्र—काश्मीर से सिक्किम तक—पाए जाते हैं। अनेक स्थानों में, विशेषतः पंजाब और काश्मीर में, तूत के पेड़ों की परियों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। रेशम के कीड़े उनकी पत्तियाँ खाते हैं। तूत की लकड़ी भी बजनी और मजबूत होती है और खेती तथा सजावट के सामान, नाव आदि बनाने के काम आती है। तूत शिशिर ऋतु में पत्ते झाड़ता है और चैत तक फूलता है। इसके फल प्रसाद में एक जाते हैं।

तूतही—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुतही'।

मुहा०—तूतही का सा मुँह निकल आना = (१) चेहरे पर दुर्बलता की प्रतीति होना। (२) लज्जित होना। उ०—एक—तूतही का सा मुँह निकल आया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३०६।

तूतिया—संज्ञा पुं० [सं० तुत्य] नीला घोषा।

तूती—[फ्रा०] १. छोटी जाति का शुक या तोता जिसकी चोंच

पीली, मरदान बैंगनी धीरे धीरे होते हैं। उ०—के बाँ से बजाई तूती के पास।—बनिसनी०, पृ० ८५। २. कनेरी नाम की छोटी सुंदर चिड़िया जो कनारी द्वीप से आती है और बहुत अच्छा बोलती है। इसे लोग पिंजरों में पालते हैं। ३. मटमैले रंग की एक छोटी चिड़िया जो बहुत सुंदर बोलती है।

विशेष—(१) इसे लोग पिंजरों में पालते हैं। जाड़े में यह सारे भारत में पाई जाती है, पर गर्मी में उत्तर काश्मीर, तुर्किस्तान आदि की ओर चली जाती है। यह घास फूस से कटोरे के आकार का बोंसला बनाकर रहती है।

विशेष—(२) उर्दू में तूती शब्द का प्रयोग पुंलिंगवत् होता है।

मुहा०—तूती का पढ़ना = तूती का मीठे सुर में बोलना। किसी की तूती बोलना = किसी की खूब बोलती होना। किसी का खूब प्रभाव डमना। नक्कार खाने में तूती की आवाज कौन सुनता है = (१) बहुत मीठे माइ या शोरगुल में कहीं हुई बात नहीं सुनाई पड़ती। (२) बड़े बड़े लोगों के सामने छोटी की बात कोई नहीं सुनता।

४. मुँह से बजाने का एक प्रकार का बाजा। ५. मिट्टी की छोटी टोंटीदार घरिया जिससे लड़के खेलते हैं।

तूँ^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुम'।

तूँ^२—संज्ञा पुं० [सं०] सेमल का पेड़ [को०]।

तूँ^३—संज्ञा पुं० [फ्रा०] दे० 'तूता' [को०]।

तूँ^४—संज्ञा पुं० [फ्रा० तूँड] १. ढेर। ढेरी। राशि। २. सीमा का चिह्न। हथबंदी। ३. मिट्टी का बहुरीला जिसपर तीर, बंदूक आदि से निशाना लगाना सीखा जाता है। ४. पुस्ता। टीला [को०]। ५. बहुरीला जिसपर बैठकर तीरंदाज निशाना लगाते हैं [को०]। ६. बहुरीला जिसपर चाँदमारी का अभ्यास किया जाता है [को०]।

तूँ^५—संज्ञा पुं० [सं० तुन्नक] १. तुन का पेड़। वि० दे० 'तुना'। २. तूल नाम का जाल कपड़ा।

तूँ^६—संज्ञा पुं० [सं० तूण] दे० 'तूण'।

तूँ^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूण'। उ०—तू न ललति कसि तूल कटि सजि प्रसुन धनु बान।—स० सप्तक, पृ० ३८४।

तूना—क्रि० प्र० [हि० तूना] १. तूना। टपकना। २. लड़ा न रह सकना। गिरना। ३. गर्भपात होना। गर्भ गिरना।

विशेष—दे० 'तुमना'।

तूनी—संज्ञा स्त्री० [बेल०] मूत्राशय और पक्वाशय में उठनेवाली पीड़ा। उ०—स्त्री पुरुषों के गुह्य स्थल में पीड़ा करे उस रोग को तूनी कहते हैं।—माधव०, पृ० १४४।

तूनीर^८—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूनीर'। उ०—उपासंग तूनीर पुनि हथुषी तून निषंग।—घनेकार्थ०, पृ० ३६।

तूफान—संज्ञा पुं० [फ्रा० तूफान] १. डुबानेवासी बाढ़। २. वायु के वेग का उपद्रव। ऐसा घंघड़ जिसमें खूब धूल उठे, पानी बरसे, बादल गरजे तथा इसी प्रकार के और उत्पात हों। आंधी।

क्रि० प्र०—माना।—उठना।

३. आपत्ति। ईति। प्रलय। आपत। ४. हल्लागुल्ला। बावैल ५. भगड़ा। बखेड़ा। उपद्रव। बंगा। फसाव। हलचल। जैसे थोड़ी सी बात के लिये इतना तूफान खड़ा करने की जरूरत ?।

क्रि० प्र०—उठना।—खड़ा करना।

६. ऐसा कलंक या दोषारोपण जिससे कोई मारी उपद्रव हो। झूठा दोषारोपण। तोहमत।

क्रि० प्र०—उठना।—उठाना।

मुहा०—तूफान जोड़ना या बाँधना = झूठा कलंक लगाना। १. दोषारोपण करना। तूफान बनाना = दे० 'तूफान जोड़ना'।

तूफानी—वि० [फ्रा० तूफानी] १. तूफान खड़ा करनेवाला। ऊर्ध्व उपद्रवी। बखेड़ा करनेवाला। फसावी। २. झूठा का लगानेवाला। तोहमत जोड़नेवाला। ३. उग्र। प्रचंड प्रबल।

तूवा^९—संज्ञा पुं० [देश०] स्वर्ग का एक वृक्ष जिसके फल परम स्वादि माने जाते हैं। उ०—धीरे तूवा वृक्ष तथा कल्पवृक्षों की व सुगंधि आती थी।—कबीर मं०, पृ० २१२।

तूमा^{१०}—सर्व० [हि०] दे० 'तुम'। उ०—तब वह लरिकिनी ब्रजवासी के द्विग आयकें पूछ्यों, जो तूम कौन हो?—सी बावन, भा० २, पृ० ३८।

तूमड़ी—संज्ञा स्त्री० [दे० तूबा + डी (प्रत्य०)] १. तूँबी। २. तूँ का बना हुआ एक प्रकार का बाजा जिसे सँपरे बजा करते हैं।

विशेष—तूँबी का पतला सिरा थोड़ी दूर से काट देते। धीरे नीचे की ओर एक छेद करके उसमें दो जीभियाँ पतली नलियों में लगाकर डाल देते हैं और छेद को मोम बंद कर देते हैं। नलियों का कुछ भाग बाहर निकला रहता है। एक नली में स्वर निकालने के सात छेद बनाते हैं जि पर बजाते वक्त उँगलियाँ रखते जाते हैं।

तमतड़ाक—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तुमतराक] १. लड़क भड़क। शोकित। घान बान। २. ठसक। बनावट।

तूम तनाना—संज्ञा पुं० [प्रत्य०] अधिक आलाप। स्वर को प्रत्यभि जींचने की क्रिया। उ०—सम करो, होली के दिन तुम्हा नजर दिला दूँगा, मगर भाई, इतना याद रखो कि व पक्का गाना गाया और निकाले गए। तूम तनाना की मत बाँध देना।—काया०, पृ० २६५।

तूमना—क्रि० सं० [सं० स्तोम (= ढेर) + ना (प्रत्य०)] १. रई या के जमे हुए लच्छों की नोच नोचकर छुड़ाना। उँगली से रई। प्रकार खींचना कि उसके रेशे अलग अलग हो जायें। रई गाले के सटे हुए रेशों को कुछ अलग अलग करना। उधेड़न बिथूरना। २. घज्जी घज्जी करना। उ०—सदियों का दै तमिल तूम, धुन तुमने काते प्रकाश सूत।—युगांत, पृ० ५४ ३. मलना। बलना। ४. बात का उधेड़ना। रहस्य खोलना सब भेद प्रकट करना।

तूमर^{११}—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बा] दे० 'तूँबा'। उ०—ताली और तिस बाल सेही और तूमर माल।—मीला० ख०, पृ० ५६।

तूमरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तूमरी' । उ०—सीस जय कर तूमरी, लिये बुल्लि बर बोय ।—प० राखों, पृ० ७० ।

तूमा^१—संज्ञा पुं० [सं० तूमक] दे० 'तूबा' । उ०—तूमा तीन भारती बनायो बोये नीर अरि हाथ लगायो ।—गुलाब०, पृ० ५७ ।

तूमार—संज्ञा पुं० [प्र०] बात का अर्थ विस्तार । बात का बतंगड़ ।
क्रि० प्र०—बाधना ।

तूमरिया सूत—संज्ञा पुं० [हि० तूमना + सूत] खूब महीन कता हुआ सूत । ऐसा सूत जो तूमी हुई कढ़ी से काता गया हो ।

तूया—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों ।

तूर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बाजा । नगाड़ा । उ०—तोरन तोरन तूर बजे बर भावत भाँटिन गावति ठाढ़ी ।—केशव (शब्द०) । २. तुरही नाम का बाजा । सिंघा ।

तूर^२—वि० शीघ्रता करनेवाला । जल्दबाज [को०] ।

तूर^३—संज्ञा पुं० हरकारा [को०] ।

तूर^४—संज्ञा स्त्री० [फा० तूल (= खंवाई)] १. गज डेढ़ गज लंबी एक लकड़ी जो जुलाहों के करघे में लगी रहती है और जिसमें तानी लपेटी जाती है । इसके दोनों सिरों पर दो चूर और चार छेद होते हैं । २. वह रस्सी जिसे जनानी पालकी के चारों ओर इसलिये बाँधते हैं जिसमें परदा हुआ से उड़ने न पावे । चौबंदी ।

तूर^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तूबरी] धरहर ।

तूर^६—संज्ञा पुं० [प्र०] शाम या सीरिया का एक पहाड़ जिसपर हजरत मुसा ने ईश्वर का जल्वा देखा था ।

यौ०—कोह तूर = तूर नामक पहाड़ ।

तूरज^१—संज्ञा पुं० [सं० तूर्य] दे० 'तूर्य' ।

तूरण^१—क्रि० वि० [सं० तूर्य] दे० 'तूर्य' ।

तूरंत—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी ।

तूरन^१—संज्ञा पुं० [सं० तूर्य] दे० 'तूर्य' । उ०—नंदवास की कृति संपूरन । भक्ति मुक्ति पावे सोइ तूरन ।—नंद० प्र०, पृ० २१५ ।

तूरना^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

तूरना^२—क्रि० सं० [हि०] दे० 'छोड़ना' । उ०—छंभु सतावन हैं जग को है कठोर महा सबको मद तूरत ।—शंभु (शब्द०) ।

तूरना^३—संज्ञा पुं० [सं० तूर] तुरही । उ०—साकत सराब के विबाह के उछाह कसू डोलि लोल ब्रूमत सबद डोल तूरना ।—तुलसी (शब्द०) ।

तूरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेग । गति [को०] ।

तूरा^२—संज्ञा पुं० [सं० तूर] तुरही नाम का बाजा । उ०—निसि दिन बाजहि मादर तूरा । रहस कूद सब भरे सँवूरा ।—जायसी (शब्द०) ।

तूरान—संज्ञा पुं० [फा०] फारस के उत्तरपूर्व पड़नेवाला मध्य एशिया का सारा भूभाग जो तुर्क, तातारी, मुगल आदि जातियों का निवासस्थान है । हिमालय के उत्तर अल्टाई पर्वत का प्रदेश ।

विशेष—फारस या ईरानवासियों का तूरानियों के साथ बहुत प्राचीन काल से मगड़ा बसा भाता था । यह तूरानी जाति वही थी जिसे भारतवासी लक कहते थे । अफरासियाब नामक तूरानी बादशाह से ईरानियों का युद्ध होना प्रसिद्ध है । प्राचीन तूरानी अग्नि की उपासना करते थे और पशुओं की बलि चढ़ाते थे । ये धर्मों की अपेक्षा असभ्य थे । इनके उत्पातों से एक बार सारा युरोप और एशिया तंग था । बंगेज ली, तैमूर, उसमान आदि इसी तूरानी जाति के अंतर्गत थे ।

तूरानी^१—वि० [फा०] तूरान देश का । तूरान संबंधी ।

तूरानी^२—संज्ञा पुं० तूरान देश का निवासी ।

तूरि—संज्ञा पुं० [सं० तूर] दे० 'तूरि' । उ०—सुनो प्रयाण के बिषाण तूरि भेरि बज उठे ।—युगपथ, पृ० ८८ ।

तूरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] बतूरे का पेड़ ।

तूरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तूर] तूर्य । तूरही ।

तूरु^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूर' । उ०—जस मारइ कह बाजा तूरु । सूरि देखि हँसा बंसूरु ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २१५ ।

तूर्य^१—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र । जल्दी । तूरंत । उ०—तू तूर्य और हो पूर्य सकल, नव नवोमियों के पार उतर ।—गीतिका, पृ० ७ ।

तूर्य^२—वि० फुर्तीला । बेगवान् [को०] ।

तूर्य^३—संज्ञा पुं० स्वरण । वेग । फुर्ती [को०] ।

तूर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बावल जिसे स्वरितक भी कहते हैं ।

तूर्यि^१—वि० [सं०] फुर्तीला । तेज [को०] ।

तूर्यि^२—संज्ञा स्त्री० वेग । गति [को०] ।

तूर्य^४—क्रि० वि० [सं०] तुरत । तत्काल । शीघ्र ।

तूर्य^५—वि० फुर्तीला । तेज [को०] ।

तूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुरही । सिंघा । २. मृदंग [को०] ।

तूर्यओघ—संज्ञा पुं० [सं०] बाधवृद्ध [को०] ।

तूर्यखंड, तूर्यगंड—संज्ञा [सं० तूर्यखण्ड, तूर्यगण्ड] एक प्रकार का मृदंग [को०] ।

तूर्यमय—वि० [सं०] संगीतात्मक [को०] ।

तूर्य—क्रि० वि० [सं०] तुरत । शीघ्र ।

तूर्ययाण—वि० [सं०] १. फुर्तीला । वेग । २. विजेता । ३. सर्वोच्च । श्रेष्ठ [को०] ।

तूर्यि—वि० [सं०] तूर्ययाण [को०] ।

तूल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. धाकाण । २. तूल का पेड़ । शहतूत । ३. कपास, मदार, सेमर आदि के डोहों के भीतर का घूमा । कढ़ी । उ० । उ०—(क) जेहि माकतगिरि मेह उड़ाहीं । कहहु तूल केहि लेखे माहीं ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) व्याकुल फिरत भवन बन जहँ तहँ तूल धाक बधराई ।—सूर (शब्द०) । ४. घास या तूल का सिरा [को०] । ५. फूल या पीपों का गुल्म [को०] । ६. बतूरा [को०] ।

तूल^२—संज्ञा पुं० [हि०] तूल = एक पेड़ जिसके फूलों से कपड़े रंगते हैं ।

है। १. सुती कपड़ा जो, चटकीले लाल रंग का होता है।

२. गहरा लाल रंग।

तूल^{७३}—वि० [सं० तुल्य] तुल्य। समान। उ०—तबपि संकोच समेत कवि कहहि सीय सम तूल।—तुलसी (शब्द०)।

तूल^{७४}—संज्ञा पु० [प्र०] १. लंबेपन का विस्तार। लंबाई। दीर्घता।

शी०—तूल धजं = लंबाई और चौड़ाई। तूल तकेल = लंबा चौड़ा। विस्तृत।

मुहा०—तूल खींचना = किसी बात या कार्य का आवश्यकता से बहुत बढ़ाना। जैसे—(क) अगह का काम बहुत तूल खींच रहा है। (ख) उन लोगों का झगड़ा बहुत तूल खींच रहा है। तूल देना = किसी बात को आवश्यकता से बहुत बढ़ाना। जैसे,—हर एक बात को तूल देने की तुम्हारी आदत है। उ०—अफसरों ने कहा जुवा के लिये बातों को तूल न दो।—फिसाना, भा० ३, पृ० १७६। तूल पकड़ना = है 'तूल-खींचना'।

२. बिलंब। देर। तवालत (को०)। ३. डेर (को०)।

तूलक—संज्ञा पु० [सं०] रुई (को०)।

तूलकामुक, तूलचाप, तूलधनुष—संज्ञा पु० [सं०] धुनकी (को०)।

तूलत—संज्ञा ली० [हि० तुलना] जहाज की रेलिंग या कटहरे की छड़ में लगी हुई एक खूँटी जिसमें किसी उतारे जानेवाले भारी बोझ में बंधी रस्सी इसलिये अटकती जाती है जिसमें बोझ धीरे धीरे नीचे जाय, एक दम से न गिर पड़े।—(लश०)।

तूलतबील—वि० [प्र०] बहुत लंबा। उ०—वेगम—बड़ा तूल तबील किस्सा है कोई कहीं तक बयान करें।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ७२।

तूलता—संज्ञा ली० [सं० तुल्यता] समता। बराबरी।

तूलना^{७५}—क्रि० सं० [हि० तुलना] १. धुरी में तेल देने के लिये पहिए को निकालकर गाड़ी को किसी लकड़ी के सहारे पर ठहराना। २. पहिए की धुरी में तेल या चिकना देना।

तूलना^{७६}—क्रि० प्र० [हि० तुलना] तुल्य होना। तुलित होना। उ०—सु मध्य सीस फूलयं, दिनेस तेज तूलयं।—ह० रासो, पृ० २४।

तूलनालिका, तूलनाली—संज्ञा ली० [सं०] पूनी (को०)।

तूलपटिका, तूलपटी—संज्ञा ली० [सं०] रजाई (को०)।

तूलपिचु—संज्ञा पु० [सं०] रुई (को०)।

तूलफजूल—संज्ञा पु० [प्र० तूल + फजूल] व्यर्थ विबाध। अनावश्यक झंझट। उ०—यदि बिना तूलफजूल किए ही जमीन नकदी हो रही है तो सोशलिस्ट पार्टी में जाने की क्या जरूरत है।—मैला०, पृ० १५३।

तूलमतूल—क्रि० वि० [सं० तुल्य या प्र० तूल (=लंबाई)] धामने सामने। बराबरी पर। उ०—कंत पियारे भेट देखी तूलम तूल होइ। भर बयस दुह हेंड मुहमद निति सरबरि करै।—आयसी (शब्द०)।

तूलबली—संज्ञा ली० [सं०] नील।

तूलवृक्ष—संज्ञा पु० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमर का पेड़।

तूलशर्करा—संज्ञा ली० [सं०] कपास का बीज। बिलौला।

तूलसेवन—संज्ञा पु० [सं०] रुई से सूत कातने का काम।

तूला—संज्ञा ली० [सं०] १. कपास। २. दिए की बत्ती (को०)।

तूलि—संज्ञा ली० [सं०] तूलिका (को०)।

तूलिका—संज्ञा ली० [सं०] १. चित्रकारों की कुँची जिससे वे चित्र करते हैं। तसवीर बनानेवालों की कलम। २. रुई की बत्ती (को०)। ३. रुई का गद्दा (को०)। ४. बरमा (को०)। ५. ब का साँचा (को०)।

तूलिनी—संज्ञा ली० [सं०] १. लक्ष्मणकंद। २. सेमर का पेड़।

तूलिफला—संज्ञा ली० [सं०] सेमर का पेड़।

तूली—संज्ञा ली० [सं०] १. नील का वृक्ष या पौधा। २. र भरने की कुँची। ३. लकड़ी का एक औजार जिसमें कुँची के रूप में लड़े लड़े रेशे जमाए रहते हैं और जिससे जुला फैलाया हुआ सूत बैठते हैं। जुलाहों की कुँची। ४. दिए न बत्ती या बाती (को०)।

तूल^{७७}—संज्ञा पु० [हि०] है 'तूबा'। उ०—कटि केस वेस म उई दूब। कट मुंड परे ज्यों बेलि तूब।—सुबान०, पृ० २२

तूवर—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'तुवरक'।

तूवरक—संज्ञा पु० [सं०] १. डूँड़ा बैल। बिना सींग का बैल। २. बिना दाढ़ी मोँछ का मनुष्य। हिजड़ा। ३. कबाय रस कसैला रस। ४. भरहर।

तूवरिका—संज्ञा ली० [सं०] १. भरहर। २. गोपीबंदन।

तूवरी—संज्ञा ली० [सं०] दे० 'तुवरिका'।

तूब—संज्ञा पु० [सं०] कपड़े का किनारा (को०)।

तूष्णी^{७८}—वि० [सं० तूष्णीम् (अव्य०)] मौन। चुप।

तूष्णी^{७९}—संज्ञा ली० मौन। सामोशी। चुप्पी। उ०—बचकता, अपमान, अमान, अलाभ मुजंग भयानक तूष्णी।—केशव (शब्द०)।

तूष्णी^{८०}—क्रि० वि० चुपचाप। बिना बोले हुए (को०)।

तूष्णीक—वि० [सं०] मौनावलंबी। मौन साधनेवाला।

तूष्णीदंड—संज्ञा पु० [सं० तूष्णीदण्ड] ऐसा दंड जो गुप्त रूप से दिया जाय (को०)।

तूष्णीभाव—संज्ञा पु० [सं०] मौनभाव। चुप्पी (को०)।

तूष्णी युद्ध—संज्ञा पु० [सं०] कौटिल्य कथित वह युद्ध जिसमें पक्षों के द्वारा शत्रु के मुख्य व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर लिया जाय।

तूष्णीशील—संज्ञा पु० [सं०] चुप रहनेवाला। चुप्पा। बहुत कम बोलनेवाला (को०)।

तूस^{८१}—संज्ञा पु० [सं० तूष] भूसी। भूसा। उ०—जे दिन बीन रे तिहें ते बड़ित ते सब सुषत नम न तूस।—अकबरी०, पृ० ३१८।

तूस^२—संज्ञा पुं० [तिब्बती धोष] [वि० तूसी] १. एक प्रकार का बहुत उत्तम ऊन जो हिमालय पर काश्मीर से लेकर नेपाल तक पाई जानेवाली एक पहाड़ी बकरी के शरीर पर होता है। पशम। पशमीना। उ०—तूस तुराई में दुरे दूरो जाय न त्यागि।—राम० धर्म०, पृ० २३४।

विशेष—यह पहाड़ी बकरी हिमालय पर बहुत ऊँचाई तक, बर्फ के निकट तक, पाई जाती है। यह ठंडे से ठंडे स्थानों में रह सकती है और काश्मीर से लेकर मध्य एशिया में घलटाई पर्यंत तक मिलती है। इसके शरीर पर घने मुलायम रोयों की बड़ी मोटी तह होती है जिसके भीतरी ऊन को काश्मीर में घसली तूस या पशम कहते हैं। यह दुशाखों में बिया जाता है। खालिस तूस का भी खाल बनता है जिसे तूसी कहते हैं। ऊपर के ऊन या रोएँ से या तो रस्सियाँ बटी जाती हैं या पट्टू नाम का कपड़ा बुना जाता है। तूसवाली बकरियाँ सदाख में जाड़े के दिनों में बहुत उतरती हैं और मारी जाती हैं।

२. तूस के ऊन का जमाया हुआ कंबल या नमदा।

तूस^३—संज्ञा पुं० [हि०] भय। त्रास। उ०—अधम गीत मुसे झडर, त्रिविध कुकवि विण तूस।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ७६।

तूसदान—संज्ञा पुं० [पुर्त० कारदूश + दान (प्रत्य०)] कारतूस।

तूसना^१—क्रि० सं० [सं० तृष्ट] १. संतुष्ट करना। तृप्त करना। २. प्रसन्न करना।

तूसना^२—क्रि० प्र० संतुष्ट होना।

तूसा—संज्ञा पुं० [सं० तुष] चोकर। भूषी।

तूसी^१—वि० [हि० तूम] तूस के रंग का। स्लेट या करंज के रंग का करंजई।

तूसी^२—संज्ञा पुं० एक रंग जो करंज या स्लेट के रंग की तरह का होता है।

विशेष—यह रंग हड़, माछफल और कसीस से बनता है।

तूस्त—संज्ञा पुं० [भं०] १. धूल। रेणु। रज। २. अणु। कणिका। ३. जटा। ४. चाप। धनुष। ५. पाप (को०)।

तुंड—वि० [सं० तुण्ड] १. आहत। २. दुःखी। ३. मारा हुआ। निहत (को०)।

तुहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आघात, कष्ट या दुःख देना। २. बध (को०)।

तृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप ऋषि।

तृत्ताक—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

तृख—संज्ञा पुं० [सं०] जातीफल। जायफल।

तृखा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] दे० 'तृषा'।

तृखावंत—वि० [सं० तृषा, हि० तृखा + वंत] दे० 'तृषावंत'। उ०—जैसे भूखे प्रीत अनाज, तृखावंत जल सेती काज।—दक्खिनी०, पृ० ४४।

तृगुणता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिगुण + ता (प्रत्य०)] दे० 'त्रिगुणता'। ४-५९

उ०—तन परिहरि मन दै तुष पद हैं लोक तृगुणता छोनी।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५८१।

तृच—संज्ञा पुं० [सं०] तीन छंदोंवाला पद्य (को०)।

तृजग—वि० [सं० त्रियंक्] दे० 'त्रियंक्'। उ०—तृजग जोनि गत गीध जनम भरि खरि खाइ कुजंतु जियो हों।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—तृजग जोनि = त्रियंक् योनि।

तृण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह उद्भिद् जिसकी पेड़ी या कांड में छिलके और हीर का भेद नहीं होता और जिसकी पत्तियों के भीतर केवल समानांतर (प्रायः लंबाई के बल) नसें होती हैं, जाल की तरह बुनी हुई नहीं। जैसे, दूब, कुश, सरपत, मूँज, बाँस, ताड़ इत्यादि। घास। उ०—ऊसर बरसे तृण नहि जामा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—तृण की पेड़ी या कांडों के तंतु इस प्रकार सीधे क्रम से नहीं बैठे रहते कि उनके द्वारा मंडलांतर्गत मंडल बनते जायें, बल्कि वे बिना किसी क्रम के इधर उधर तिरछे होकर ऊपर की ओर गए रहते हैं। अधिकांश तृणों के कांडों में प्रायः गठिं छोड़ी छोड़ी दूर पर होती हैं और इन गठिं के बीच का स्थान कुछ पोला होता है। पत्तियाँ अपने मूल के पास डंडल को खोली की तरह लपेटे रहती हैं। पृथ्वी का अधिकांश तल छोटे तृणों द्वारा आच्छादित रहता है। अर्क-प्रकाश नामक वैद्यक ग्रंथ में तृणगण के अंतर्गत तीन प्रकार के बाँस, कुश, काँस, तीन प्रकार की दूब, गाँडर, नरकट, गूँदी, मूँज, डाम, मोया इत्यादि माने गए हैं।

मुहा०—तृण गहना या पकड़ना = हीनता प्रकट करना। गिड़-गिड़ाना। तृण गहाना या पकड़ाना = नम्र करना। विनीत करना। बशीभूत करना। उ०—बहो तो ताको तृण गहाय के जीवत पायन पारो।—सूर (शब्द०)। (किसी वस्तु पर) तृण टूटना = किसी वस्तु का इतना सुंदर होना कि उसे नजर से बचाने के लिये उपाय करना पड़े। उ०—भाजु की बानिक पै तृण टूटत है कही न जाय कछु स्याम तोहि रत।—स्वा० हरिदास (शब्द०)।

विशेष—स्त्रियाँ बच्चे पर से नजर का प्रभाव दूर करने के लिये टोटके की तरह पत्र-पत्रिका तोड़नी हैं।

तृणवत् = तिनके बराबर। अत्यंत तुच्छ। कुछ भी नहीं। तृण बराबर या समान = दे० 'तृणवत्'। उ०—अस कहि खला महा अभिमानी। तृण समान सुषीर्वाहि जानी।—तुलसी (शब्द०)। तृण तोड़ना = किसी सुंदर वस्तु को देख उसे नजर से बचाने के लिये उपाय करना। उ०—(क) गयि महामनि मोर मंजुल अंग सब तृण तोरहीं।—तुलसी (शब्द०) (ख) स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरसत छवि जननी तृण तोरी।—तुलसी (शब्द०)। (किसी से) तृण तोड़ना = संबंध तोड़ना। नाता मिटाना। उ०—भुजा छुड़ाइ तोरि तृण ज्यों हित करि प्रभु निठुर हियो।—सूर (शब्द०)।

२. तिनका (की०) । ३. कर पात (की०) ।

तृणक—संज्ञा पुं० [सं०] घास की सराब पत्ती [की०] ।

तृणकर्पा—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि ।

तृणकांड—संज्ञा पुं० [सं० तृणकारण्ड] घास का डेर [की०] ।

तृणकीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] घासवाली जमीन [की०] ।

तृणकुंकुम—संज्ञा पुं० [सं० तृणकुंकुम] एक मुगंधित घास । रोहित घास ।

तृणकुटी, तृणकुटीर, तृणकुटीरक—संज्ञा पुं० [सं०] घास फूस की बनी मईया या भोपड़ी [की०] ।

तृणकूट—संज्ञा पुं० [सं०] घास का डेर [की०] ।

तृणकूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कूची या छोटी झाड़ू [की०] ।

तृणकूर्म—संज्ञा पुं० [सं०] गोल कद्दू ।

तृणकेतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तीलुर ।

तृणकेतु—संज्ञा पुं० दे० [सं०] 'तृणकेतुक' ।

तृणकेतुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँस । २. ताड़ का पेड़ ।

तृणगोधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गिरगिट [की०] ।

तृणगौर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तृणकुंकुम' [की०] ।

तृणग्रन्थी—संज्ञा स्त्री० [सं० तृणग्रन्थी] स्वर्णजिबंती ।

तृणग्राही—संज्ञा पुं० [सं० तृणग्राही] एक रत्न का नाम । नीलमणि ।

तृणचर^१—वि० [सं०] तृण चरनेवाला (पशु) ।

तृणचर^२—संज्ञा पुं० [सं०] गोमेदक मणि ।

तृणजंभा—वि० [सं० तृणजम्भन] घास चरने योग्य । घास चरनेवाला ।
—संपूर्णा० ग्राम० श्रं०, पृ० २४८ ।

तृणजलायुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तृणजलोका' ।

तृणजलोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जोंक ।

तृणजलोका न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] तृणजलोका के समान ।

विशेष—इस वाक्य का प्रयोग नैवायिक लोग उस समय करते हैं उन्हें जब आत्मा के एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में जाने का दर्शात देना होता है । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार जोंक जल में बहते हुए तिनके के अंत तक पहुँच जब दूसरा तिनका घाम लेती है, तब पहले की छोड़ देती है । इसी प्रकार आत्मा जब दूसरे शरीर में जाती है, तब पहले को छोड़ देती है ।

तृणजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वनस्पति जिसमें घास और शाक आदि गृहीत हैं [की०] ।

तृणज्योतिस्—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष्मती सत्ता ।

तृणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तृणवत्ता । निरर्थकता । २. धनुष [की०] ।

तृणद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ का पेड़ । २. सुपारी का पेड़ ।

३. खजूर का पेड़ । ४. केतकी का पेड़ । ५. नारियल का पेड़ । ६. हितारा ।

तृणधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिन्नी का आवल । मुन्यन्न । तिन्नी का धान । २. सावा ।

तृणध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँस । २. ताड़ का पेड़ ।

तृणनिब—संज्ञा पुं० [सं० तृणनिम्ब] चिरायता ।

तृणप—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्व का नाम ।

तृणपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इक्षुदमं नामक तृण ।

तृणपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] इक्षुदमं नामक तृण [की०] ।

तृणपीड—संज्ञा पुं० [सं० तृणपीड] एक प्रकार की लड़ाई । हाथों के द्वारा लड़ाई ।

तृणपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृणकेशर । २. ग्रंथिपर्णी । गठित्रन ।

तृणपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिदूरपुष्पी नामक घास ।

तृणपूलिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गर्भपात [की०] ।

तृणपूलो—संज्ञा स्त्री० [सं०] नरकट की चटाई [की०] ।

तृणप्राय—वि० [सं०] तृणवत् । तिनके जैसा । तुच्छ [की०] ।

तृणबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० तृणबिन्दु] दे० 'तृणबिंदु' [की०] ।

तृणमत्कुण—संज्ञा पुं० [सं०] जमानत देनेवाला । जामिन [की०] ।

तृणमणि—संज्ञा पुं० [सं०] तृण की आकर्षिक करनेवाला मणि । कहूँबा ।

तृणमय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तृणमयी] घास का बना हुआ ।

तृणराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. खजूर । २. ताड़ । ३. नारियल ।

तृणवत्—वि० [सं०] तिनके के समान । अत्यंत तुच्छ [की०] ।

तृणबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० तृणबिन्दु] एक ऋषि जो महाभारत के काल में थे और जिनसे पांडवों से वनवास की अवस्था में भेंट हुई थी ।

तृणवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तृणद्रुम' [की०] ।

तृणशय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास का बिछोना । चटाई । साधरी ।

तृणशाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ । २. बाँस का पेड़ [की०] ।

तृणशीत—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोहिस घास जिसमें से नीबू की सी मुगंध आती है । २. जलपिप्पली ।

तृणशीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक मुगंधित घास [की०] ।

तृणशून्य^१—वि० [सं०] बिना तृण का । तृण से रहित ।

तृणशून्य^२—संज्ञा पुं० १. महिला । २. केतकी ।

तृणशूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सत्ता का नाम ।

तृणशोपक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।

तृणषट्पद—संज्ञा पुं० [सं०] बरें । ततैया [की०] ।

तृणसंवाह—संज्ञा पुं० [सं०] पवन [की०] ।

तृणसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कदली । केला ।

तृणसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का सिंह । २. कुल्हाड़ी [की०] ।

तृणस्पर्श परीषद्—संज्ञा पुं० [सं०] दर्भादि कठोर तृणों को बिछाकर लेटने और उनके गड़ने की पीड़ा को सहने की क्रिया । (जैन) ।

तृणहर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] घास फूस की भोपड़ी [की०] ।

तृणाञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० तृणाञ्जन] एक प्रकार का गिरगिट (की०)।
 तृणाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घास फूस की ऐसी भाग जो जल्दी
 बुझ जाय। २. जल्दी बुझनेवाली भाग। ३. घास फूस की भाग
 से घपराधी को जलाकर दिया जानेवाला बह (की०)।

तृणाढ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का तृण जो घोषध के
 काम में आता है। पर्व तृण। २. जंगल जो तृणबहुल
 हो (की०)।

तृणाग्न—संज्ञा पुं० [सं०] तृणधान्य। तिन्नो (की०)।

तृणाम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] जवण तृण। नोनिया। समलोनी।

तृणारणि न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] तृण और घरणी रूप स्वतन्त्र
 कारणों के समान व्यवस्था।

विशेष—अग्नि के उत्पन्न होने में तृण और घरणी दोनों कारण
 तो हैं पर परस्पर निरपेक्ष अर्थात् प्रलग प्रलग कारण हैं।
 हैं। घरणी से आग उत्पन्न होने का कारण दूसरा है और तृण
 में आग लगने का कारण दूसरा।

तृणावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. चक्रवात। बवंडर। २. एक दैत्य
 का नाम।

विशेष—इसे कंस ने मयुरा से श्रीकृष्ण को मारने के लिये
 मोकुल भेजा था। यह चक्रवात (बवंडर) का रूप धारण
 करके आया था और बालक कृष्ण को ऊपर उड़ा ले गया
 था। कृष्ण ने ऊपर जाकर जब इसका गला दबाया तब यह
 गिरकर चूर चूर हो गया।

तृणेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० तृणेंद्र] ताड़ का पेड़।

तृणेंद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] बलवजा। सागे बागे।

तृणोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कर्षल। ऊँचल तृण।

तृणोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] मुख्यन्। तिन्नो धान। पसही।

तृणोल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास फूस की मशाल।

तृणौक—संज्ञा पुं० [सं० तृणौकस्] घास फूस की भोपड़ी (की०)।

तृणौषध—संज्ञा पुं० [सं०] एलुवा। एलुवालुक नामक गंधद्रव्य।

तृण—वि० [सं०] १. काटा हुआ। २. कटा हुआ (की०)।

तृण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास या तिनकों का ढेर (की०)।

तृतिय०—वि० [हिं०] दे० 'तृतीय'। उ०—तृतीय प्रतीप ब्रह्मा-
 नहीं, तर्ह कविकुल सिरमौर।—भूषण प्र०, पृ० ८।

तृतिया०—वि० [हिं०] दे० 'तृतीया'। उ०—तृतिया अनुमपना
 कही, हौ न गई पछिताय।—मति० प्र०, पृ० २६०।

तृतीय—वि० [सं०] तीसरा।

तृतीय^२—संज्ञा पुं० १. किसी वर्ग का तीसरा अंजन वर्ण। २. संगीत
 का एक मान।

तृतीयक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। तिजार।
 यौ०—तृतीयक ज्वर = तिजरा।

२. तीसरी बार होनेवाली स्थिति (की०)। ३. तीसरा क्रम (की०)।

तृतीयप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुरुष और स्त्री के अतिरिक्त एक
 तीसरी प्रकृतिवाला। नपुंसक। बलीब। हिजड़ा।

तृतीय सवन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निष्टोम आदि यज्ञों का तीसरा
 सवन जिसे साय सवन भी कहते हैं। दे० 'सवन'।

तृतीयांश—संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा भाग।

तृतीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रत्येक पक्ष का तीसरा दिन। तीज।
 २. व्याकरण में करण कारक।

तृतीया तत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] तत्पुरुष समास का एक भेद।

तृतीया नायिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तृतीया + नायिका] नायिकामेद
 के अनुसार अथवा या सामान्या नायिका। दे० 'नायिका'।
 उ०—वास्तव में पश्चिमीय सभ्यता अभी बाला और तृतीया
 नायिका वा वेश्या-वृत्ति-धारणी है।—प्रेमघन०, भा० २,
 पृ० २५६।

तृतीयाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा आश्रम। वानप्रस्थ।

तृतीयो—वि० [सं० तृतीयन्] १. तीसरे का हुकदार। जिसे
 किसी संपत्ति का तृतीयांश पाने का स्वत्व हो (स्मृति)।
 २. तीसरी श्रेणी प्राप्त करनेवाला (की०)।

तृन^१०—संज्ञा पुं० [सं० तृण] दे० 'तृण'।

मुहा०—तृन सा गिनता = कुछ न समझना। तृन घोट पहार छपाना =
 (१) असंभव कार्य के लिये प्रयत्न करना। (२) निष्फल
 चेष्टा करना। उ०—मैं तृन सो गन्यो तीनहू लोकनि, तू तृन
 घोट पहार छपावे।—मति० प्र०, पृ० ४३४। तृन तोड़ना =
 दे० 'तृण तोड़ना'। उ०—भूलत में लोट पोटा होत दोऊ रंग
 भरे निरखि छबि नददास बलि बलि तृन तोरे।—नंद० प्र०,
 पृ० ३७७।

तृन०^२—वि० [हिं०] दे० 'तीन'। उ०—तृन भंख बृत्तिक के हला-
 नद। ससि बीस नंद भज भंम मंद।—ह० रातो, पृ० १४।

तृन जोक०—संज्ञा स्त्री० [हिं० तृन + जोक] तृणजलीका। दे० 'तृण-
 जलीकान्याय'। उ०—ज्यो तृन जोक तृनन अनुसरे। आगे
 गहि पाछे परिहरे।—नंद० प्र०, पृ० २२२।

तृनदुमा०—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृणदुम'। उ०—ताल लहरी,
 तृनदुमा, केतकि पकरति पाइ।—नंद० प्र०, पृ० १०५।

तृनावर्त०—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृणावर्त'। उ०—पुनि जब एक
 बरष को भयो, तृनावर्त उड़ि लैन भ गयो।—नंद० प्र०,
 पृ० ३१०।

तृपन्—संज्ञा पुं० [सं०] १. चद्रमा। २. छाया (की०)।

तृपतना०—वि० [सं० तृप्ति] तृप्त होना। संतुष्ट होना।
 मथाना। उ०—निरवधि मधु की धारा प्राहि। सु को उ तृपतै
 पीवत ताहि।—नंद० प्र०, पृ० २७६।

तृपता०—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'। उ०—दाहू जब मुख माहँ मेलिये,
 सबही तृपता होइ।—दाहू, पृ० १८७।

तृपति०^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृप्ति'। उ०—भोजन करे तृपति
 सो होई। गुह्य शिष्य भावे किन कोई।—सुंदर० प्र०, भा०
 १, पृ० ३६।

तृपक्ष^१—वि० [सं०] १. प्रसन्न। खुश। २. संतुष्ट। ३. बेचैन।
 व्याकुल (की०)।

तृपक्ष—संज्ञा पुं० उपन । पत्थर [को०] ।

तृपक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लता । २. त्रिफला ।

तृपित—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' ।

तृप्त—वि० [सं०] १. तुष्ट । प्रसादा हुआ । जिसकी इच्छा पूरी हो गई हो । २. प्रसन्न । खुश ।

तृप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इच्छा पूरी होने से प्राप्त शांति और आनन्द । संतोष । उ०—[फलित वृथा भाजन अवलोकित सूने सबन अज्ञान । तिहि नालन कबहुँ कैसेतु तृप्ति न पावत प्रान । —सूर (शब्द०) । २. प्रमत्तता । खुशी ।

तृप्पना—वि० सं० [सं० तृप्ति] तृप्त करना । संतुष्ट करना । उ०—उवाच नित्य माल तृप्पय तृपति, अति सुदेव न इवेद जुत । —पृ० रा०, २४ । २७६ ।

तृप्—संज्ञा पुं० [सं०] १. घृत । घी । २. पुरोडाश । ३. तृप्त करनेवाला । तपन ।

तृप्—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणं जाति [को०] ।

तृप्नी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिवेणी' । उ०—पावन परम वेणि, मधन मध तृप्नी । —नंद० प्र०, पृ० ३४८ ।

तृभंगी—वि० [हि०] दे० 'त्रिभंगी' । उ०—धरै टेढ़ी पाग, चंद्रिका टेढ़ी टेढ़े लसै तृभंगी लाल । —नंद० प्र०, पृ० ३५० ।

तृषना—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष्णा] दे० 'तृष्णा' । ल०—जोगी दुखिया जगम दुखिया तपसी का दुख हुआ हो । आसा तृषना सबको व्यापे कोई महल न सूना हो । —कबीर श०, भा० १, पृ० १६ ।

तृषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० तृषित, तृष्य] १. प्यास । २. इच्छा । अभिलाषा । ३. लोभ । लालच । ४. कलिहारी । करियारी ।

तृषाभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट में जल रहने का स्थान । क्लोम ।

तृषाय—वि० [सं० तृषित] तृषित । प्यासा । उ०—सग रहै सोई [पये, नहि फिरे तृषाया बहर । —वरिया० बानी, पृ० ३१ ।

तृषालु—वि० [सं०] प्यासा । पिपासित । तृपंत । तृषार्त ।

तृषावंत—वि० [सं० तृषावान् का बहुव०] प्यासा । उ०—तृषावंत जिमि पाय प्रयूपा । —तुलसी (शब्द०) ।

तृषार्त—वि० [सं०] प्यास से व्याकुल । प्यासा [को०] ।

तृषवान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तृषावती] प्यासा ।

तृषास्थान—संज्ञा पुं० [सं०] क्लोम ।

तृषाह—संज्ञा पुं० [सं०] पानी [को०] ।

तृषाहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौफ ।

तृषित—वि० [सं०] १. प्यासा । उ०—तृषित बारि बिनु जो तनु रथ गा । मुए करै का सुधा तड़ागा । —तुलसी (शब्द०) । २. अभिलाषी । इच्छुक ।

तृपितोत्तरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसनपर्णी । पटसन ।

तृपु—वि० [सं०] १. लोभी । इच्छुक । २. वेगवान् । सिप्र [को०] ।

तृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति के लिये व्याकुल करनेवाली इच्छा । लोभ । लालच । २. प्यास ।

तृष्णाकुल—वि० [सं० तृष्णा + व्याकुल] प्यास से विकल । तृषित । उ०—तृष्णाकुल होंगे प्रिय आश्रो । सलिल स्नेह मिल मधुर पिलाओ । —गीतिका, पृ० ४४ ।

तृष्णाक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] १. इच्छा का समाप्त होना । २. मानसिक शांति । चित्त की स्थिरता । ३. संतोष ।

तृष्णारि—संज्ञा पुं० [सं०] पितृपापडा ।

तृष्णार्त—वि० [सं० तृष्णा + भातं] प्यास से कातर । तृष्णा से भातं । उ०—दूर हो दुरित जो जग जागा तृष्णार्त ज्ञान । —गीतिका, पृ० ७० ।

तृष्णालु—वि० [सं०] १. प्यासा । २. लालची । लोभी ।

तृष्य—वि० [सं०] इच्छा करने योग्य । चाहने लायक [को०] ।

तृष्य—संज्ञा पुं० १. लोभ । लालच । २. प्यास [को०] ।

तृसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + संधि] तीन काल । तीन पहर । उ०—सभीं सार्धं सोइबा मर्क जागिबा तृसंधि देणा पहरा । —गोरख०, पृ० ८६ ।

तृसालवाँ—वि० [सं० तृषा] तृषालु । प्यासा । उ०—प्रहर बहै तृसालवाँ, सलै काँटा मागा । —गोरख०, पृ० ११२ ।

तैदुस—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डुस] डेड़सी नाम की तरकारी ।

तै—प्रत्यय [सं० तम् (प्रत्यय०)] १. से । द्वारा । उ०—रज तें रजनी दिन भयो पूरि गयो असमान । —गोपाल (शब्द०) । २. से (अधिक) । उ०—(क) को जग मंद मज्जिन मति मो नैं । —तुलसी (शब्द०) । (ख) नैना तेरे जपज ते है खंजन ते अति नार्थ । —सूर (शब्द०) । (ग) चपला तें चमकत अति प्यारी कहा करोगी श्यामहि । —सूर (शब्द०) ।

विशेष—कही कहीं 'अधिक' 'बढ़कर' आदि शब्दों का लोप करके भी 'तै' से अपेक्षाकृत आधिक्य का अर्थ निकालते हैं । वि० दे० 'से' ।

३ (किसी काल या स्थान) से । उ०—औतक तें पिय चित चढी कहै चढीहैं स्थोर । —बिहारी (शब्द०) ।

विशेष—दे० 'से' ।

तैतरा—संज्ञा पुं० [देश०] बेलगाड़ी में फड़ के गोचे लगी हुई लकड़ी ।

तैतालिस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तैतालीस' ।

तैतालिसवाँ—वि० [हि०] दे० 'तैतालीसवाँ' ।

तैतालीस—वि० [सं० त्रिचवारिंशत्, पा० त्रिचत्तालीसा] जो गिनती में बयालिस से एक अधिक और चौतालीस से एक कम हो । चालीस और तीन ।

तैतालीस—संज्ञा पुं० चालीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—४३ ।

तैतालीसवाँ—वि० [हि० तैतालीस + वाँ] क्रम में तैतालीस के स्थान पर पड़नेवाला । जिसके पहले बयालिस और हों ।

तैतिस—वि०, संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तैतीस' ।

तैतिसवाँ—वि० [हि०] दे० 'तैतीसवाँ' ।

तैतीस—वि० [सं० त्रयस्त्रिंशत्, पा० त्रितिसति, प्रा० तिसीसा] जो गिनती में तीस से तीन अधिक हो । तीस और तीन ।

उ०—नौ खेलें तैंतीस तीन । तेज वेद विष संग लीन ।—
कबीर ज०, भा० २, पृ० ११५ ।

तैंतीस^२—संज्ञा पु० तीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—३३ ।

तैंतीसवाँ—वि० [हि० तैंतीस + वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में तैंतीस के स्थान पर पड़े । जिसके पहले बत्तीस और हों ।

तेंदुआ^१—संज्ञा पु० [देश०] बिल्ली या चीते की जाति का एक बड़ा हिंसक पशु जो अफ्रीका तथा एशिया के घने जंगलों में पाया जाता है ।

विशेष—बल और भयंकरता आदि में शेर और चीते के उपरांत इसी का स्थान है । यह चीते से छोटा होता है और चीते की तरह इसकी गरदन पर भी भयाल नहीं होता । इसकी लंबाई प्रायः चार पाँच फुट होती है और इसके शरीर का रंग कुछ पीलापन लिए भूरा होता है । इसके शरीर पर काले काले गोल धब्बे या चिट्ठियाँ होती हैं । इस जाति का कोई कोई जानवर काले रंग का भी होता है ।

तेंदुआ^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तेंदू' ।

तेंदू—संज्ञा पु० [सं० तित्तु] १. मझोले आकार का एक वृक्ष जो भारतवर्ष, लंका, बरमा और पूर्वी बंगाल के पहाड़ी जंगलों में पाया जाता है ।

विशेष—यह पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है तब इसके हीर की लकड़ी बिलकुल काली हो जाती है । वही लकड़ी आबनूस के नाम से बिकती है । इसके पत्ते लंबोतरे, नोकदार, खुरदुरे और मधुवे के पत्तों की तरह पर उससे नुकीले होते हैं । इसकी छाल काली होती है जो जलाने से चिड़चिड़ाती है ।

पर्या०—कालस्कंध । शितिशारथ । केदु । तित्तु । तित्तुल । तित्तुकी । नीलसार । प्रतिमुक्तक । कालसार ।

२. इस पेड़ का फल जो नींबू की तरह का हरे रंग का होता है और पकने पर पीला हो जाता और खाया जाता है ।

विशेष—वैद्यक में इसके कच्चे फल को स्निग्ध, कसैला, हलका, मलरोषक, शीतल, अरुचि और वात उत्पन्न करनेवाला और पक्के फल को भारी, मधुर, स्वादु, कफकारी और पित्त, रक्त रोग और वात का नाशक माना है ।

३. सिंध और पंजाब में होनेवाला एक प्रकार का तरबूज जिसे 'दिलपसंद' भी कहते हैं ।

ते^१—अव्य० [हि०] दे० 'तै' । उ०—के कुदरत ते पैदा किया यक रतन ।—दक्खिनी०, पृ० ११७ ।

ते^२—सर्व० [सं० ते] वे । वे लोग । उ०—(क) पलक नयन फनिमनि जेहि भाँती । ओगवहि जननि सकल दिन राती । ते सब फिरत विपिन पदचारी । कंद मूल फल फूल छहारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) राम कथा के ते अधिकारी । जिनको सतसंगति प्रति प्यारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

तेह^१—सर्व० [हि० ते] उसे । उ०—कवि ती तेह पाहन सम माने । नहिन पखान पखान बखाने ।—नंद० अं० पृ० ११८ ।

तेहसा^१—वि० [हि०] दे० 'तेईस' ।

तेहसा^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तेईस' ।

तेहसवाँ^१—वि० [हि०] दे० 'तेईसवाँ' ।

तेईस—[सं० त्रिविंशति, पा० तेवीसति, प्रा० तेवीस] जो गिनती में बीस से तीन अधिक हो । बीस और तीन ।

तेईस^२—संज्ञा पु० बीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—२३ ।

तेईसवाँ—वि० [हि० तेईस + वाँ (प्रत्य०)] क्रम में तेईस के स्थान पर पड़नेवाला । जिसके पहले बाईस और हों ।

तेउं—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यों' । उ०—मुहमद बारि परेम की, जेउं भावे तेउं खेलु ।—जायसी अं० (गुप्त), पृ० १६१ ।

तेक^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तेग' । उ०—तेक लोकि तथ्यो तुरी ।—पु० रा०, ७।१००५ ।

तेखना^१—क्रि० अ० [सं० तीक्ष्ण, हि० तेहा] बिगड़ना । क्रुद्ध होना । नाराज होना । उ०—उ० (क) सुभ बोल्यो तबै भेम सों तेखि कै । लाल नैना धरे बक्रता देखि कै ।—गोपाल (शब्द०) । (ख) हनुमान या कोन बलाय बसी कछु पूछे ते ना तुम तेखियो री । हित मानि हमारो हमारे कहे भला मो मुख की छवि देखियो री ।—हनुमान (शब्द०) । (ग) मोही को झूठी कहो भगरो करि सोह करो तब और ऊ तेखी । बैठे हैं बोक बगीचे मे जायके पाई परों अब आइके देखी ।—रघुराज (शब्द०) ।

तेखना^२—क्रि० अ० [हि०] प्रसन्न होना । उमंग में आना । उ०—डारत अतर लगाइ अरगजा रंगिली समधिनि तेखि ।—पृ० ३८० ।

तेखी^१—वि० [हि० तीखा] क्रोधयुक्त । क्रुद्ध । उ०—दिस लंक अंगद आद द्वादस, तहकिया तेखी ।—रघु० २०, पृ० १६१ ।

तेग—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तेग] तलवार । खग । उ०—(क) जो रनसूर तेग तजि देव । तो हमहुं तुम्हरो मत लेव ।—विश्राम (शब्द०) । (ख) बरनै दीनदयाल हरषि जो तेग चलैही । हँही जीते जसो, लरे सुरलोकहि पैही ।—दीनदयाल (शब्द०) ।

तेगा—संज्ञा पु० [फ्रा० तेग] १. खाँड़ा । खंग (अस्त्र) । उ०—तेगा ये दग मोत के पानि पवार सुघाट । अंजन बाढ़ दिए बिना करत चौगुनी काट ।—रसनिधि (शब्द०) । २. किसी मेहराब के नीचे के भाग या दरवाजे को ईंट पत्थर मिट्टी इत्यादि से बंद करने की क्रिया । ३. कुपती का एक दीव या पेंच जिसे कमरतेगा भी कहते हैं ।

तेज^१—संज्ञा पु० [सं० तेजस्] दीप्ति । कांति । चमक । दमक । आभा । उ०—जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं ।—तुलसी (शब्द०) । २. पराक्रम । जोर । बल । ३. वीर्य । उ०—पतित तेज जो भयो हमारो कहो देव को धारी ।—रघुराज (शब्द०) । ४. किसी वस्तु का सार भाग । तत्व । ५. ताप । गर्मी । ६. पित्त । ७. सोना । ८. तेजी । प्रचंडता । उ०—(क) तेज कृणानु शेष महि शेषा । अथ अवनुन घन घनी घनेसा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) यन सो अचल शील, अमिल से चलबिता, जल सो अमल तेज कैसो गायो है ।—

कैवल्य (शब्द०) । ६. प्रताप । रोष दाह । १०. मन्त्रन ।
नैम । ११. सत्त्वगुण से उत्पन्न लिंगशरीर । १२. मज्जा ।
१३. पाँच महाभूतों में से तीसरा सूत जिसमें ताप और प्रकाश
होता है । अग्नि ।

विशेष—सांख्य में इसका गुण शब्द, स्पर्श और रूप माना गया
है । न्याय या वैशेषिक के अनुसार यह दो प्रकार का होता
है—नित्य और अनित्य । परमाणु रूप में यह नित्य और
कर्म रूप में अनित्य होता है । शरीर, इंद्रिय और विषय के
भेद से अनित्य तेज तीन प्रकार का होता है । शरीर तेज वह
तेज है जो सारे शरीर में व्याप्त हो । जैसा, आदित्यलोक
में । इंद्रिय तेज वह है जिससे रूप आदि का ग्रहण हो ।
जैसा, नेत्र में । विषय तेज चार प्रकार का है—भौम, दिव्य,
प्रोद्यं और आकरज । भौम वह है जो लकड़ी आदि जलाने
से हो ; दिव्य वह है जो किसी देवी शक्ति प्रयत्न या आकाश
में दिखाई दे ; जैसे, बिजली ; प्रोद्यं वह है जो उदर में
रहता है और जिससे भोजन आदि पचता है ; और आकरज
वह है जो खनिज पदार्थों में रहता है, जैसा सोने में । शरीर
में तेज रहने से साहस और बल होता है, खाद्य पदार्थ पचते
हैं और शरीर सुंदर बना रहता ।

१४. बोधे का वेग या चलने की तेजी ।

विशेष—यह तेज दो प्रकार का है—सततोत्थित और अयोत्थित ।
सततोत्थित तो स्वामानिक है और अयोत्थित वह है जो चाबुक
आदि मारने से उत्पन्न होता है ।

१५. तीक्ष्णता (को०) । १६. तीक्ष्ण चार (को०) । १७. दिव्य
ज्योति (को०) । १८. उग्रता (को०) । १९. अधोरता (को०) ।
२०. प्रभाव (को०) । २१. प्राणभय की भी स्थिति में प्रपमान
आदि न सहने की प्रकृति (को०) । २२. उष्ण प्रकाश (को०) ।
२३. भेजा (को०) । २४. दूसरों को अभिभूत करने की शक्ति
(को०) । २५. सत्त्वगुण से उत्पन्न लिंग शरीर (को०) । २६.
रजोगुण (को०) । २७. तेजोमय व्याक्त (को०) । २८. आस्र की
स्वच्छता (को०) ।

तेज^१—वि० [क्रा० तेज] १. तीक्ष्ण धार का । जिसकी धार पैनी
हो । उ०—यह चाकू बड़ा तेज है । २. चलने में शीघ्रगामी ।
उ०—यद्यपि तेज रोहाल वर लगी न पल की वार । तउ
मैंको घर की भयो पैकी कोस हजार ।—बिहारी (शब्द०) ।
३. चटपट काम करनेवाला । फुरतीला । जैसे,—यह नौकर
बड़ा तेज है । ४. तीक्ष्ण । तीखा । भालदार । जैसे, तेज
सिरका । ५. महुंगा । गरी । बहुमूल्य । उ०—आजकल
कपड़ा बहुत तेज है । ६. उग्र । प्रचंड ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

७. चटपट अधिक प्रभाव करनेवाला । जिसमें भारी घसर हो ।
जैसे, तेज जहर । ८. जिसकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण हो । जैसे,
यह लड़का बहुत तेज है । ९. बहुत अधिक बल या चपल ।
१०. उग्र । प्रचंड । जैसे, तेज मिजाज ।

तेज^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ताजो'-१' । उ०—काबिली उर
तेज रोम रोमी पंजाबी ।—पृ० रा०, ११।५ ।

तेजधारी—वि० [सं० तेजोधारिन्] तेजस्वी । जिसके चेहरे पर ते
हो । प्रतापी । उ०—तेज न रहेगा तेजधारियों का न
को भी मंगल मयंक मंद मंद पड़ जायेंगे ।—इतिहा
पृ० ६२७ ।

तेजन—संज्ञा पु० [सं०] १. बाँस । २. मूँज । ३. रामसर । सरपर
४. बीत करने या तेज उत्पन्न करने की क्रिया या भाव ।

तेजनक—संज्ञा पु० [सं०] शर । सरपत ।

तेजना^३—क्रि० सं० [सं० श्याज्य] दे० 'तजना' । उ०—तेजि कुम
बेकार, सुमति गहि लीजिए ।—घरम०, पृ० ४१ ।

तेजनाख्य—संज्ञा पु० [सं०] मूँज ।

तेजनी—संज्ञा पु० [सं०] १. मूर्वा २. मालकंगनी । ३. चठप । चार
४. तेजबल । ५. चटाई (को०) । ६. गुच्छा (को०) । ७. घ
की मयाल (को०) ।

तेजपत्ता—संज्ञा पु० [सं० तेजपत्र] दारचीनी की जाति का एक पेड़
लंका, दारजिलिंग, काँगड़ा, जयतिषा और खासी की पहाड़ि
में होता है और जिसकी पत्तियाँ दाल तरकारी आदि
मसाले की तरह डाली जाती हैं । जिस स्थान पर कुछ सा
तक अच्छी वर्षा होती हो और पीछे कड़ी धूप पड़ती हो व
यह पेड़ अच्छी तरह बढ़ता है ।

विशेष—जयतिषा और खासी में इसकी खेती होती है । पद
सात सात फुट की दूरी पर इसके बीज बोए जाते
और जब पौधा पाँच वर्ष का हो जाता है तब उसे दू
स्थान पर रोप देते हैं । उस समय तक छोटे पौधों की र
की बहुत आवश्यकता होती है । उन्हें धूप आदि से बच
के लिये झाड़ियों की छाया में रखते हैं । रोपने के पाँच व
बाद इसमें काम माने योग्य पत्तियाँ निकलने लगती हैं । प्रा
वर्ष कृष्णार से अगहन तक और कहीं कहीं फागुन तक इस
पत्तियाँ तोड़ी जाती हैं । साधारण वृक्षों से प्रति वर्ष छ
पुराने तथा दुबल वृक्षों से प्रति दूसरे वर्ष पत्तियाँ ली जा
हैं । प्रत्येक वृक्ष से प्रति वर्ष १० से २५ सेर तक पत्ति
निकलती हैं । वृक्ष से प्रायः छोटी छोटी डालियाँ काट
जाती हैं और धूप में सुखाई जाती हैं । इसके बाद पत्ति
भलग कर ली जाती हैं और उसी रूप में बाजार में बिका
हैं । ये पत्तियाँ शरीर के पत्तियों की तरह पर उनसे का
होती हैं और सुगन्ध होने के कारण दाल तरकारी आ
मे मसाले की तरह डाली जाती हैं । इन पत्तियों से ए
प्रकार का सिरका तैयार होता है । इसे हरे के साथ मि
कर इनसे रंग भी बनाया जाता है । तेजपत्ते के फूल भी
फम लोग के फूलों और फलों की तरह होते हैं, लकड़ी लाल
लिए हुए सफेद होती है और उससे मेज कुरसी आदि बनत
हैं । कुछ लोग दारचीनी और तेजपत्ते के पेड़ को एक
समझते हैं पर वास्तव में ये दोनों एक ही जाति के पर भल
भलग पेड़ हैं । तेजपत्ते के किसी किसी पेड़ से भी पतल
छाल निकलती है जो दारचीनी के साथ ही मिला दी जात
है । इसकी छाल से एक प्रकार का तेल भी निकलता ।

जिससे साबुन बनाया जाता है। पत्तियों और छाल का व्यवहार औषध में भी होता है। वैद्यक में इसे लघु, उष्ण, क्लृप्त और कफ, वात, कंठ, घाम तथा ग्रन्थि का नाशक माना है।

पर्या०—गंधजात। पत्र। पत्रक। त्वक्पत्र। वरांग। भृंग। चोष। उत्कट। तमालपत्र।

तेजपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता। एक जंगली वृक्ष का पत्ता जो सुगंधित होता है और इसी लिये मसाले में पड़ता है। इसके वृक्ष सिलहट की पहाड़ियों पर बहुत होते हैं। इसे तेजपत्ता और तेजपात भी कहते हैं।

तेजपात—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तेजपत्ता'।

तेजबल—संज्ञा पुं० [सं० तेजोवती] एक कटिदार जंगली वृक्ष जो प्रायः हरिद्वार और उसके पास के प्रांतों में अधिकता से होता है।

विशेष—इसकी छाल लाल मिर्च की तरह बहुत चरपरी होती है और कहीं कहीं पहाड़ी लोग दाल मसाले आदि में इसकी जड़ का मिर्च की तरह व्यवहार भी करते हैं। इसकी छाल या जड़ बबाने से दाँत का दर्द मिट जाता है। वैद्यक में इसे गरम, चरपरा, पाचक, कफ और वातनाशक, तथा श्वास, खाँसी, हिचकी और बवासीर आदि को दूर करनेवाला माना है।

पर्या०—तेजवती। तेजस्विनी। तेजन्या। लघुवल्कला। परिजाता। भीता। तित्ता। तेजनी। विडालघ्नी। सुतेजसी।

तेजमान—वि० [हि०] दे० 'तेजवान्'। उ०—वै सिंहासन वै सूरज के समान तेजमान, बंद समान सीतल सुभाव।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८६।

तेजय^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तेज'। उ०—तेजय जल सब सिधुमद एक।—कबीर सा०, पृ० २६।

तेजल—संज्ञा पुं० [सं०] चातक। पपीहा।

तेजवंत—वि० [हि० तेज + वंत] दे० 'तेजवान'। उ०—तेजवंत लघु गनिय न रानी।—तुलसी (शब्द०)।

तेजवरण^५—वि० [सं० तेज + हि० वरण] ज्योतिर्मय। उ०—तेजवरण चंदा अधिकारी।—कबीर सा०, पृ० १००।

तेजवान—वि० [सं० तेजोवान्] [वि० स्त्री० तेजवती] १. जिसमें तेज हो। तेजस्वी। उ०—मघवा मही में तेजवान सिवराज वीर, कोटि करि सकल सपच्छ किए सैल है।—भूषण ग्रं०, पृ० ४६। २. वीर्यवान। ३. बली। ताकतवाला। ४. कांतिमान्। चमकीला।

तेजस्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तेज'।

यौ०—तेजस्कर। तेजस्काम = शक्ति प्रताप आदि की इच्छावाला।

तेजस^५—संज्ञा पुं० [सं० तेजस्] तेज। उ०—बिस्व तेजस पराग आरणा, इनमें सार न जाना।—कबीर सा०, भा० २, पृ० ६६।

तेजसा^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तेजस्] अनाहत चक्र की दूसरी मात्रा। उ०—द्वादश दक्ष १२ द्वादश माला १२ क स ग ब ङ ख छ ज ऋ ऌ ऒ ठ—बहिर्मात्रा २१ उद्गायी १—तेजसा २—।—कबीर ग्रं०, पृ० ११३।

तेजसि^५—वि० [हि०] दे० 'तेजसी'। उ०—तेजसि हाते महाबली, तेजम तेज अपार।—रा० क०, पृ० १३०।

तेजसी^५—वि० [हि० तेजस्वी] तेजयुक्त। उ०—रिपु तेजसी अकेल भवि लघु करि गनिय न ताहु। अजहुं देत दुःख रवि लशिहि सिर अबशेषित राहु।—तुलसी (शब्द०)।

तेजस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] तेज बढ़ानेवाला। जिससे तेज की वृद्धि हो।

तेजस्व—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

तेजस्वत्—वि० [सं०] तेजस्वी। तेजयुक्त।

तेजस्वान्—वि० [सं० तेजस्वत्] दे० 'तेजस्वत्' [को०]।

तेजस्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेजस्वी होने का भाव।

तेजस्विनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी।

तेजस्विनी^२—वि० स्त्री० [सं०] तेजयुक्त [को०]।

तेजस्वी^१—वि० [सं० तेजस्विन्] [स्त्री० तेजस्विनी] १. कांतिमान्। तेजयुक्त। जिसमें तेज हो। २. प्रतापी। प्रतापवाला। प्रभावशाली।

तेजस्वी^२—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के एक पुत्र का नाम।

तेजहत—वि० [सं० तेजो + हत] तेजहीन। जिसमें तेज न हो। उ०—निशाचर तेजहत रहे जो वन्य जन।—गीतिका, पृ० १७०।

तेजा—संज्ञा पुं० [फ्रा० तेज] १. चूने आदि से बना हुआ एक प्रकार का काला रंग जिससे रंगरेज लोग मोरपंखी रंग बनाते हैं। २. महुँगी। तेजी।

तेजाब—संज्ञा पुं० [फ्रा० तेजाब] [वि० तेजाबी] किसी क्षार पदार्थ का अम्ल सार जो द्रावक होता है। जैसे, गंधक का तेजाब, शोरे का तेजाब नमक का तेजाब, नीबू का तेजाब आदि।

विशेष—किसी चीज का तेजाब तरल रूप में होता है और किसी का रवे के रूप में, पर सब प्रकार के तेजाब पानी में घुल जाते हैं, स्वाद में थोड़े या बहुत खट्टे होते हैं और क्षारों का गुण नष्ट कर देते हैं। किसी घातु पर पड़ने से तेजाब उसे काटने लगता है। कोई कोई तेजाब बहुत तेज होता है और शरीर में जिस स्थान पर लग जाता है उसे बिलकुल जला देता है। तेजाब का व्यवहार बहुधा औषधों में होता है।

तेजाबी—वि० [फ्रा० तेजाबी] तेजाब संबंधी।

यौ०—तेजाबी सोना = दे० 'सोना'।

तेजारत्ता—संज्ञा स्त्री० [अ० तिजारत] दे० 'तिजारत'।

तेजारती—वि० [हि०] दे० 'तिजारती'।

तेजाली^५—संज्ञा पुं० [फ्रा० ताजी] तेज छोड़ा। उ०—त्याग किया तेजाली शक्तियो करस जंम।—नंट०, पृ० १६६।

तेजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी।

तेजित—वि० [सं०] १. पैना किया हुआ। तेज किया हुआ। २. उत्तेजित किया हुआ [को०]।

तेजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेजवत्।

तेजिष्ठ—वि० [सं०] तेजस्वी ।

तेजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तेजी] १. तेज होने का भाव । तीक्ष्णता २. तीव्रता । प्रबलता । ३. उग्रता । प्रचंडता । ४. क्षीघ्रता । बल्वी । ५. महीनी । गरानी । मंदी का चलटा । ६. सफर का महीना या मास (की०) ।

जौ०—तेजी का चाँद = सफर महीने का चाँद ।

तेजेयु—संज्ञा पुं० [सं०] रोदास राजा के एक पुत्र का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में आया है ।

तेजो—संज्ञा पुं० [सं०] तेजस् का समासगत रूप, जैसे तेजोबल, तेजोमय ।

तेजोबोज—संज्ञा पुं० [सं०] पञ्जा (की०) ।

तेजोभंग—संज्ञा पुं० [सं० तेजोभङ्ग] अपमान । तिरस्कार (की०) ।

तेजोभीरु—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाया । परछाईं (की०) ।

तेजोमंडल—संज्ञा पुं० [सं० तेजोमण्डल] सूर्य, चंद्रमा आदि प्राकाशीय पिंडों के चारों ओर का मंडल । छटामंडल ।

तेजोमंथ—संज्ञा पुं० [सं० तेजोमन्थ] गनियारी का पेड़ ।

तेजोमय—वि० [सं०] १. तेज से पूर्ण । जिसमें खूब तेज हो । जिसमें बहुत आभा, कांति या उज्योति हो । उ०—तेजोमय स्वामी तहँ सेवक हूँ तेजोमय ।—सुंदर० प्र० भा० १, पृ० ३० ।

तेजोमूर्ति—वि० [सं०] तेजयुक्त । तेज से परिपूर्ण (की०) ।

तेजोमूर्ति—संज्ञा पुं० सूर्य (की०) ।

तेजोरूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्म । २. जो प्रगति या तेज रूप हो ।

तेजोवत्—वि० [सं०] ३० 'तेजस्वत्' (की०) ।

तेजोवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गजराजनी । २. चण्ड । ३. माल-कौन्ती । तेजबल ।

तेजवान्—वि० [सं० तेजोवत्] [स्त्री० तेजोवती] १. तेजनाला । २. उत्साही (की०) ।

तेजोबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० तेजोबिन्दु] मज्जा ।

तेजोवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] छोटी घरणी का वृक्ष ।

तेजोहत—वि० [सं०] जिसका तेज समाप्त हो गया हो (की०) ।

तेजोह—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तेजबल । २. चण्ड ।

तेटकौ—क्रि० वि० [हि० तेता] ३० 'तेतिक' । उ०—जाकी जितनी रच्यो विधाता ताकी आवै तेटकी ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ८३३ ।

तेडंडिक—वि० [सं० त्रिदण्ड] त्रिदंड धारण करनेवाला ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २१४ ।

तेड़ना—क्रि० स० [राज०] ३० 'टेरना' । उ०—पिगल राजा पाठबड़, डोला तेड़न काज ।—डोला०, दू० ८१ ।

तेड़ा—वि० [हि०] ३० 'टेढ़ा' । उ०—भाजैवाँ तेड़ा मड़ाँ, वेड़ाँ तणो बिसल ।—रा० रू०, पृ० १३७ ।

तेण—सर्व० [हि० ते] उस । उ०—हणै कुंभणैसा जोधहर श्रीहवाँ, करै कुंण तेण परमाण कावा ।—रघु० क०, पृ० २६ ।

तेण—सर्व० [सं० तेन; प्रा० तेण, तेण] १. तिससे । उ०—कारण से । इसलिये । इससे । उ०—तेण न राखी सासर भजे स माकू बाल ।—डोला०, दू० ११ ।

तेवना—वि० [हि०] ३० 'तितना' । उ०—मास षट बिहार तेत निमिष हूँ न जाने रस नंददास प्रभु संग रैन रंग जागरी ।—नंद० प्र०, पृ० ३६५ ।

तेता—वि० पुं० [सं० तावत्] [स्त्री० तेती] उतना । उसी कदर उसी प्रमाण का । उ०—(क) हरि हर विधि रवि क्षी समेता । सुंडी ते उपजत सब तेता ।—निष्कल (शब्द०) (ख) जेती संपति कृपन के तेती नू मत जोर । बढ़त जा उयो ज्यो उरज ह्यो ह्यो होत कठोर ।—बिहारी (शब्द०)

तेतालीस—वि० [हि०] ३० 'तेतालीस' ।

तेतालीस—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'तेतालीस' ।

तेतिक—वि० [हि० तेता] उतना ।

तेती—वि० स्त्री० [हि०] ३० 'तेता' । उ०—किताहि बुझावै का कं तिहि घर तेती मागि ।—नंद० प्र०, पृ० १३७ ।

तेतीस—वि० संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'तेतीस' ।

तेतो—वि० [हि०] ३० 'तेता' ।

तेथ—अव्य० [सं० तत्र] तहाँ । उ०—जेथ तेथ प्राणी जलै लाल ददी लाय ।—बाँकी प्र०, भा० ३, पृ० ६० ।

तेन—संज्ञा पुं० [सं०] गीत का आरंभिक स्वर (की०) ।

तेनु—सर्व० [सं० तत्] उमने । उ०—घरमान नाम कायथ सुधर तेनु चरित लिखे सबै ।—पु० रा०, १६/२३ ।

तेम—संज्ञा पुं० [सं०] गीला होना । घाट होना । घाटता (की०) ।

तेम—अव्य० [हि०] ३० 'तिमि' । उ०—योग ग्रंथ माँहे लिखे मैं समुझाये तेम ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ४१ ।

तेमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यंजन । पका हुआ भोजन । २. गोल करने की क्रिया (की०) । ३. घाटता । गीलापन (की०) ।

तेमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चूल्हा (की०) ।

तेमरू—संज्ञा पुं० [हि०] तेंदू का वृक्ष । आबूस का पेड़ ।

तेयागना—क्रि० स० [हि०] ३० 'श्यागना' । उ०—हमारे कहं का मतलब यह है कि सब कोई भेदभाव तेयाग के, एव होकर के परमारण कारज मैं सहजोग दीजिए ।—मैला० पृ० २६ ।

तेर—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'तेरह' । उ०—सय तेर परे हि सयन कोस तीन रन अद्व पर ।—पु० रा०, ६/२०६ ।

तेरज—संज्ञा पुं० [देश०] खतियोनी का गोशवारा ।

तेरना—क्रि० स० [हि०] ३० 'टेरना' । उ०—पूनम तिथि मंगल दिनह, गृह तेरिय प्राजान । आसन छंडि सु भय दिय, बहु आदर सनमान ।—पु० रा०, ४/६१ ।

तेरपन—वि० [हि०] ३० 'तिरपन' । उ०—सत्रासे तेरपन सेर सीकर न बसायो ।—शिवर०, पृ० ४८ ।

तेरवा—वि० [हि०] ३० 'तेरहवा' ।

तेरस—संका श्री० [सं० त्रयोदश] किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि ।
त्रयोदशी ।

तेरसि(५)—संज्ञा की० [सं० त्रयोदशी] दे० 'तेरस' । उ०—तेरसि
तिथि ससि सम्मर पथ निशि दसमि दसा मोरि भेलि ।—विद्या
पति, पृ० १७८ ।

तेरह^१—वि० [स० त्रयोदश, प्रा० तेहह, अष्टमा० तेरस] जो गिनती में दस से तीन अधिक हो। दस और तीन। उ०—कासी नगर भरा सब भारी। तेरह उतरे औजस्य पारी।—बट०, प० २६३।

तेरह^२—नं० ५० दस से तीन अधिक की संख्या और उस संख्या का सूचक प्रक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१३।

तेरहवाँ—वि० [हि० तेरह + वाँ (प्रत्य०)] दस और तीन के स्थान-
वाला। क्रम में तेरह के स्थान पर पड़नेवाला। जिसके पहले
बारह और हों।

तेरही—संका जी० [हि० तेरह + ईं (प्रत्य०)] किसी के मरने के दिन से अथवा प्रेतकर्म की तेरहवीं तिथि, जिसमें पिंडदान और ब्राह्मणभोजन करके दाह करनेवाला और मृतक के घर के लोग शुद्ध होते हैं।

तेरा'—सर्व० [सं० ते (= तव) + हि० रा (प्रत्य०)] [जी० तेरी]
 मध्यम पुरुष एकवचन की षष्ठी का सूचक सर्वनाम शब्द।
 मध्यम पुरुष एकवचन संबंध कारक सर्वनाम। तू का संबंध
 कारक रूप। उ०—तू नहि मानन देति आली री मन तेरी
 मानबे को करत। - नद० ग्रं०, प० ३६८।

मुहा०—तेरी सी = तेरे साथ या मतलब की बात । तेरे अनुकूल बात । उ०—बकसीस ईस जी की लीस होत देखियत, रिस काहे लगति कहत तो ही तेरी सी ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—शिशु समाज में इसका प्रयोग बड़े या बराबरवाले के साथ नहीं होता बल्कि अपने से छोटे के लिये होता है।

तेरा पुत्र—बि० [हि०] १० 'तेरह' । ७०—चंद्रमा मिथुन को तेरा १३
 अस, मनि लग्न में देह होगी ।—ह० रासो०, पृ० ३० ।

तेरिज—संज्ञा पु० [प्र० तिराज ?] १. बुनासा । स्पष्ट । २. सार । संक्षेप । उ०—तत्त को तेरिज बेरिज बुधि की।—धरनी०, प० ४ ।

तेरुस(५१) — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्योरुस' ।

तेरुस^३—संज्ञा स्त्री० ३० [हि०] 'तेरस' ।

तेरु(५) —वि० [द्वि० तैरना] तैरनेवाला । उ०—इसो तेरु कवण
फाड भावे उदध, लछीवर कवण नरपाव लाभै ।—रघु० ७०,
प० २६७ ।

तेरे।—**श्रव्य०** [हि० ते] से । उ०—(क) तब प्रभु कह्यो पवनसुत
तेरे । जनकसुतहि जावहु ढिग मेरे।—**विश्राम (शब्द०)** ।
(ख) यहि प्रकार सब वृक्षन तेरे । भेटि भेटि पूछैं प्रभु
हेरे।—**विश्राम (शब्द०)** ।

तेरो७—सर्व० [हि०] दे० 'तेरा' । उ०—तेरो मुख बांदा बकोर मेरे नैना । —(शब्द०) ।

तेलंग—बंका पु० [हि०] दे० 'तेलंग' । उ०—तेलंगा बंगा बोख
कलिंगा राधापुत्ते मडोया ।—कीर्ति०, पु० ४८ ।

तेल—संका पु० [सं० तैल] १. वह चिकना तरल पदार्थ जो बीजों वनस्पतियों आदि से किसी विशेष क्रिया द्वारा निकाला जाता है अथवा आपसे आप निकलता है। यह सब पानी से हलका होता है, उसमें घुल नहीं सकता, अमकोहल में घुल जाता है। अधिक सरदी पाकर प्रायः जम जाता है और अग्नि के संयोग से धूँसा देकर जल जाता है। इसमें कुछ न कुछ गंध भी होती है। चिकना। रोगन।

विशेष—तेल तीन प्रकार का होता है—मसृण, उड़ जानेवाला और खनिज। मसृण तेल वनस्पति और जंतु दोनों से निकलता है। वनस्पत्य मसृण वह है जो बाजों या दानों आदि को कोल्हू में पेरकर या दबाकर निकाला जाता है, जैसे, तिल, सरसों, नीम, शरी, रेड़ी, कुसुम आदि का तेल। इस प्रकार का तेल दीया जलाने, साबुन और बानिष बनाने, सुगंधित करके सिर या शरीर में लगाने, खाने की चीजें तलने, फलों आदि का प्रचार डालने और इसी प्रकार के और दूसरे कामों में आता है। मशीनों के पुरजों में उन्हे घिसने से बचाने के लिये भी यह डाला जाता है। सिर में लगाने के बमेली, बेले आदि के जो सुगंधित तेल होते हैं वे बहुधा तिल के तेल की जमीन देकर ही बनाए जाते हैं। भिन्न भिन्न तेलों के गुण आदि भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के वृक्षों से भी आपसे आप तेल निकलता है जो पीछे से साफ कर लिया जाता है, जैसे,—ताड़पीन आदि। जतुज तेल जानवरों की शरबी का तरल अण है और इसका व्यवहार प्रायः औषध के रूप में ही होता है। जैसे, साँप का तेल, धनेस का तेल, मगर का तेल आदि। उड़ जानेवाला तेल वह है जो वनस्पति के भिन्न भिन्न अणों से भभके द्वारा उतारा जाता है। जैसे अजवायन का तेल, ताड़पीन का तेल, मोम का तेल, हींग का तेल आदि। ऐसे तेल हवा लगने से सूख या उड़ जाते हैं और इन्हे जलाने के लिये बहुत अधिक गरमी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के तेल के शरीर में लगने से कभी कभी कुछ जलन भी होती है। ऐसे तेलों का व्यवहार विजायती औषधों और सुगंधों आदि में बहुत अधिकता से होता है। कभी कभी बारनिष या रंग आदि बनाने में भी यह काम आता है। खनिज तेल वह है जो केवल खानों या जमीन में खोदे हुए बड़े बड़े गड्ढों में से ही निकलता है। जैसे, मिट्टी का तेल (देखो 'मिट्टी का तेल' और 'पेट्रोलियम') आदि। आजकल सारे संसार में बहुधा रोशनी करने और मोटर (इंजिन) चलाने में इसी का व्यवहार होता है।

प्रायुर्वेद में सब प्रकार के तेलों को वायुनाशक माना है। वैद्यक के अनुसार शरीर में तेल मलने से कफ और वायु का नाश होता है, धातु पृष्ठ होती है, तेज बढ़ता है, जमका मुलायम रहता है, रंग सिलता है और चित्त प्रसन्न रहता है। पैर के तलवों में तेल मलने से मच्छी तरह नींद आती है और मस्तिष्क

तथा नेत्र ठंडे रहते हैं। सिर में तेल लगाने से सिर का दर्द दूर होता है, मस्तिष्क ठंडा रहता है, और बाल काले तथा घने रहते हैं। इन सब कामों के लिये वैद्यक में सरसों या तिल के तेल को अधिक उत्तम और गुणकारी बतलाया है। वैद्यक के अनुसार तेल में तली हुई खाने की चीजें विदाही, गुरुपाक, गरम, पित्तकर, त्वचादोष उत्पन्न करनेवाली और वायु तथा दृष्टि के लिये ग्रहितकर मानी गई हैं। साधारण सरसों आदि के तेल में अनेक प्रकार के रोग दूर करने के लिये तरह तरह की औषधियाँ पकाई जाती हैं।

कि० प्र०—जलना ।—जलाना ।—निकलना ।—निकाखना ।
—पेरना ।—मलना ।—लगाना ।

मुद्दा०—तेल में हाथ डालना = (१) अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिये खोलते हुए तेल में हाथ डालना । (प्राचीन काल में सत्यता प्रमाणित करने के लिये खोलते हुए तेल में हाथ डालने की प्रथा थी) । (२) विकट शपथ खाना । झाल का तेल निकालना = दे० 'झाल' के मुद्दावरे ।

२. विवाह की एक रस्म जो साधारणतः विवाह से दो दिन और कहीं कहीं चार पाँच दिन पहले होती है। इसमें वर को वधू का नाम लेकर और वधू को वर का नाम लेकर हल्दी मिला हुआ तेल लगाया जाता है। इस रस्म के उपरान्त प्रायः विवाह संबंध नहीं छूट सकता। उ०—अभ्युदयिक करवाय आद्य विधि सब विवाह के चारा। कृति तेल मायन करवैह व्याह विधान अपारा ।—रघुराज (शब्द०) ।

मुद्दा०—तेल उठाना या चढ़ाना = तेल की रस्म पूरी होना ।
उ०—तिरिया तेल हमीर हठ चढे न दूजी बार ।—कोई कवि (शब्द०) । तेल चढ़ाना = तेल की रस्म पूरी करना ।
उ०—प्रथम हरहि बदन करि मंगल गायहि । करि कुलरीति कलस घषि तेल चढावहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

तेलगू—संज्ञा स्त्री० [तेलगु] आंध्र राज्य की भाषा ।

तेल चलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तेल + चलाना] देशी छोट की छपाई में मिठाई नाम की क्रिया । वि० दे० 'मिठाई' ।

तेलवाई—संज्ञा पुं० [हि० तेल + वाई (प्रत्य०)] १. तेल लगाना । तेल मलना । २. विवाह का एक रस्म जिसमें वधू पक्षवाले जनबासे में वर पक्षवालों के लगाने के लिये तेल भेजते हैं ।

तेलसुर—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है ।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी कड़ो और सफेदी लिए पीली होती है। यह वृक्ष चटगाँव और मिलहट के जिलों में बहुत होता है। इसकी लकड़ी से प्रायः नावें बनाई जाती हैं ।

तेलहँड़ा—संज्ञा पुं० [हि० तेल + हड़ा] [स्त्री० अत्पा० तेलहंडी] तेल रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन ।

तेलहँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तेल + हँड़ी] तेल रखने का मिट्टी का छोटा बरतन ।

तेलहन—संज्ञा पुं० [हि० तेल + हि० हन (प्रत्य०)] वे बीज जिनसे तेल निकलता है। जैसे, सरसों, तिल, मलसी, इत्यादि ।

उ०—तिरगुन तेल खुआवै हो तेलहन संसार । कोइ न बचे जोगी जती फेरे बारंबार ।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ३६ ।

तेलहा—वि० [हि० तेल + हा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तेलही] १. तेलयुक्त । जिसमें तेल हो । जिसमें से तेल निकल सकता हो । २. तेल-वाला । तेल संबंधी । ३. जिसमें चिकनाई हो । ४. तैल निमित । तेल से बना हुआ ।

तेला—संज्ञा पुं० [देश०] तीन दिन रात का उपवास । उ०—जिसे कतल का हुक्म हो तेला अर्थात् तीन उपवास करे जिसमें परलोक सुधरे ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

तेलिन—संज्ञा स्त्री० [हि० तेली-का स्त्री०] १. तेली की स्त्री । तेली जाति की स्त्री । २. एक बरसाती कीड़ा ।

विशेष—यह कीड़ा जहाँ शरीर से छू जाता है वहाँ छाले पड़ जाते हैं ।

तेलियर—संज्ञा पुं० [देश०] काले रंग का एक पक्षी जिसके सारे शरीर पर सफेद बुँदकियाँ या बिंदियाँ होती हैं ।

तेलिया^१—वि० [हि० तेल] तेल की तरह चिकना और चमकीला । चिकने और चमकीले रंगवाला । तेल के से रंगवाला । जैसे,—तेलिया प्रमीवा ।

तेलिया^२—संज्ञा पुं० [हि० तेल + दया (प्रत्य०)] १. काला, चिकना और चमकीला रंग । २. इस रंग का घोड़ा । ३. एक प्रकार का बबूल । ४. एक प्रकार की छोटी मछली । ५. कोई पदार्थ, पशु या पक्षी जिसका रंग तेलिया हो । ६. सींगिया नामक विष ।

तेलियाकंद—संज्ञा पुं० [सं० तेलकन्द] एक प्रकार का कंद ।

विशेष—यह कंद जिस भूमि में होता है वह भूमि तेल से सींची हुई जान पड़ती है। वैद्यक में इसे लोह को पतला करनेवाला चरपरा, गरम तथा वात, अपस्मार, विष और सूजन आदि को दूर करनेवाला, पारे को बाँधनेवाला और तत्काल देह को सिद्ध करनेवाला माना है ।

तेलियाकत्था—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + कत्था] एक प्रकार का कत्था जो भीतर से काले रंग का होता है ।

तेलियाकाकरेजी—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + काकरेजी] कालापन लिए गहरा ऊदा रंग ।

तेलियाकुमैत—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + कुमैत] १. घोड़े का एक रंग जो अधिक कालापन लिए लाल या कुमैत होता है । २. वह घोड़ा जिसका रंग ऐसा हो ।

तेलियागर्जन—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + सं० गर्जन] दे० 'गर्जन' ।

तेलियापखान—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + सं० पाषाण] एक प्रकार का काला और चिकना पत्थर । उ०—नही चद्रमणि जो द्रवै यह तेलिया पखान ।—दीनदयाल (शब्द०) ।

तेलियापानी—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + पानी] बहुत खारा और स्वाद में बुरा मासूम होनेवाला पानी, जैसे प्रायः पुराने कुओं से निकलता रहता है ।

तेलियासुरंग—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + सुरंग] दे० 'तेलिया कुमैत' ।

तेलियासुहागा—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + सुहागा] एक प्रकार का सुहाया जो देखने में बहुत चिकना होता है ।

तेली—संज्ञा पुं० [हि० तेल + ई (प्रत्य०)] [जी० तेलिन] हिंदुओं की एक जाति जिसकी गणना शूद्रों में होती है।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति कोटक स्त्री और कुम्हार पुरुष से है। इस जाति के लोग प्रायः सारे भारत में फैले हुए हैं और सरसों, तिल आदि पेरकर तेल निकालने का व्यवसाय करते हैं। साधारणतः द्विज लोग इस जाति के लोगों का घृषा दृषा जल नहीं गृहण करते।

मुहा०—तेली का बेल = हर समय काम में लगा रहनेवाला व्यक्ति।

तेलौंचो—संज्ञा स्त्री० [हि० तेल + ओची (प्रत्य०)] पत्थर, काँच या लकड़ी आदि की बह छोटी प्याली, जिसमें शरीर में लगाने के लिये तेल रक्खते हैं। मालिया।

तेवर—संज्ञा स्त्री० [दे०] सात दीर्घ प्रत्यय १४ लघु मात्राओं का एक ताल जिसमें तीन मात्रा त और एक खाली रहता है। इसके

+ ३
तबले के बोल ये हैं—बिन् बिन् धाके, बिन् बिन् धा, बिन्
१ +
तिन् ताकेटे बिन् बिन् धा। धा।

तेवड^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यो'। उ०—जेवड साहिब तेवड हाती वे दे करे रजाई।—प्राण०, पृ० १२३।

तेवड^२—वि० [हि०] दे० 'तेहरा'। उ०—बधू लीजै गड़ा बंका भाई, दोवर कोट अरु तेवड खाई।—कबीर ग्रं०, पृ० २०८।

तेवन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रीड़ा। २. वह स्थान, विशेषतः वन आदि जहाँ आमोदप्रमोद और क्रीड़ा हो। विहार। उपवन। ३. नजरबाग। पार्श्व बाग।

तेवन^२—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यो'। उ०—बैसे श्वान मयावन राजित तेवन लागी संसारी।—कबीर मं०, पृ० ३६१।

तेवर—संज्ञा पुं० [हि० तेह (= क्रोध)] १. कुपित दृष्टि। क्रोध भरी चितवन।

मुहा०—तेवर घाना = मूर्खी घाना। चक्कर घाना। उ०—यह कहकर बड़ी बेगम को तेवर घाया और घड़ से गिर पड़ी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६०६। तेवर चढ़ना = दृष्टि का ऐसा हो जाना जिससे क्रोध प्रकट हो। तेवर चढ़ा लेना या तेवर चढ़ाना = क्रुद्ध होना। दृष्टि को ऐसा बना लेना जिससे क्रोध प्रकट हो। उ०—क्यों न हम भी आज तेवर लें चढ़ा। हैं बुरे तेवर दिखाई दे रहे।—चोखे०, पृ० ५२। तेवर तनना = दे० 'तेवर चढ़ना'। उ०—भाल भाग्य पर तने हुए थे तेवर उसके।—साकेत, पृ० ४२३। तेवर बदलना या बिगड़ना = (१) बेमुरीवत हो जाना। (२) खफा हो जाना। उ०—अगर स्त्रियों की हँसी की आवाज कभी मरदानों में जाती तो वह तेवर बदले घर में घाता।—सेवासदन, पृ० २०८। (३) मृत्युबिह्वल प्रकट होना। तेवर बुरे नजर घाना या दिखाई देना = अनुराग में अंतर पड़ना। प्रेम भाव में अंतर आ जाना। तेवर पर बल पड़ना = दे० 'तेवर बुरे नजर घाना या दिखाई देना'। उ०—अरु हमें सिरखी निगाहों

का नहीं। देखिए अब बल न तेवर पर पड़े।—चोखे०, पृ० ५२। तेवर मैले होना = दृष्टि से खेद, क्रोध या उदासीनता प्रकट होना। तेवर सहना = क्रोध या क्रोध सहना। क्रोध का विरोध न करना। उ०—जो पड़े मिर पर रहें सहते उसे, पर न धीरों के बुरे तेवर सहें।—सुभते० पृ० १६।

२. थोड़ा। थूकुटी।

तेवरसी—संज्ञा स्त्री० [दे०] १. ककड़ी। २. खीरा। ३. फूट।

तेवरा—संज्ञा पुं० [दे०] दून में बजाया हुआ रूपक ताल। (संगीत)।

तेवराना^१—क्रि० प्र० [हि० तेवर + घाना (प्रत्य०)] १. भ्रम में पड़ना। संदेह में पड़ना। सोच में पड़ना। २. विस्मित होना। आश्चर्य करना। दे० 'तेवराना'। ३. मूर्च्छित हो जाना। बेहोश हो जाना।

तेवराना^२—संज्ञा पुं० [हि० तेवारी] तिवारियों की बस्ती।

तेवरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्योरी'।

तेवहार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योहार'। उ०—सखि मानहि तेवहार सब, गाइ देवारी खेलि।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५७।

तेवान^१—संज्ञा पुं० [दे०] मोच। चिता। फिकर। उ०—मन तेवान के राख भूरा। नाहि उबार जीउ डर पूरा।—जायसी (शब्द०)।

तेवान^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तावान'। उ०—गयो मजपा भूलि भूले, गयो बिसरि तेवान।—जग० शा०, पृ० १४।

तेवाना^१—क्रि० प्र० [दे०] सोचना। चिन्ता करना। उ०—(क) सँवरि सेज धन मन भइ संका। ठाढ़ि तेवानि टेककर लंका।—जायसी (शब्द०)। (ख) रहौ लजाय तो पिय बलै कहौ तो कहै मोहि डीठ। ठाढ़ि तेवानी का करौ भारी डोड बसीठ।—जायसी (शब्द०)।

तेवारी^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिवारी'।

तेह^१—संज्ञा पुं० [सं० तक्षय, हि० तेखना] १. क्रोध। गुस्सा। उ०—हम हारी के के हहा पावन पारगो योह। तेह कहा मजहू किए तेह तरेरे त्योह।—बिहारी (शब्द०)। २. घमंकार। घमंड। ताव। उ०—प्रावै तेह वण भूप करहि हठ पुनि पाछे पछिजैह। अवधकिणोर समान और बर जन्म प्रयंत न पैहै।—रघुराज (शब्द०)। ३. तेजी। प्रचंडता। उ०—शेष भार खाइके उतारे फन हू ते भूमि कमठ बराह छोड़ि मार्ग क्षिति जेह को। आनु सितभानु तारा मंडल प्रतीचि उवै सोखै सिधु बाडव तरणि तजे तेह को—रघुराज (शब्द०)।

तेहज^१—सर्व० [हि० ते] उसी को। उ०—दादू तेहज लीजिए रे, साबो सिरजनहार।—दादू० बानी, पृ० ५८।

तेहनौ—सर्व० [हि० ते] उसका। उ०—ते पुर प्राणी तेहनौ अविचल सदा रहंत।—दादू०, पृ० ५८४।

तेहवार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योहार'। उ०—'हरीचंद' दुख भेटि काम को चर तेहवार मनायो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४३२।

तेहरा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + हार] तीन लड़की सिकड़ी, करघनी या जंजीर जिसे स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं। उ०—जेहर, तेहर, पाँच विछुवन छबि उपजायल।—नंद० प्र०, पृ० ३८६।

तेहरा—वि० पुं० [हि० तीस + हरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तेहरी]
१. तीन परत किया हुआ। तीन भपेट का। २. जिसकी एक माय तीन प्रतिमा हो। जो एक साथ तीन हो। उ०—
दोहरे तेहरे जोहर सुपणु जाने जान।—बिहारी (शब्द०)।
३. जो दो बार होकर फिर तीसरी बार किया गया हो। जैसे, तेहरी मेहनत।

विशेष—इस धर्म में इस शब्द का व्यवहार ऐसे ही कामों के लिये होता है जो पहले दो बार करने पर भी उत्तम रीति से या पूर्ण न हुए हों।

४. निगुना। (क०)।

तेहराना—क्रि० सं० [हि० तेहरा] १. नीचे लपेट या परत का करना। २. किसी काम की उसकी कृति आदि दूर करने अथवा उसे बिलकुल ठीक करने के लिये तीसरी बार करना।

तेहराव—संज्ञा पुं० [हि० तेहरा + भाव (प्रत्य०)] तीसरी बार की किया या भाव।

तेहवार—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + वार] दे० 'त्योहार'।

तेहा—संज्ञा पुं० [हि० तेह] १. क्रोध। गुस्सा। २. झुंझकार। गेली। अभिमान। घमंड।

यौ०—तेहेदार। तेहेबाज।

तेहातेह—क्रि० वि० [हि० तेह] तेह पर तेह। गूब गहरे में। उ०—जोई प्रहर रेणु के मिलिया तेहातेह। धन नहि घरतो हूँ रङ्गी, कंन सुहावी मेह।—ढोला०, दू० ५८४।

तेहि०—सर्व० [सं० ते] उसकी। उसे। उ०—छबि सो छत्रीले छेन भेटि तेहि छितहि उड़ावत।—नंद० प्र०, पृ० ३६।

तेही—संज्ञा पुं० [हि० तेह + ई (प्रत्य०)] १. गुस्सा करनेवाला। जिसमें क्रोध हो। क्रोधी। २. अभिमान। घमंडी।

तेही(यु०)—सर्व० [हि० ते + ही] उमे। उमी की।

तेहीज(यु०)—सर्व० [हि० तेही + ज] उसी की। उ०—घरघ दल गाड़घो रहई, जोग मोरज्यो होई तेहीज लाय।—बी० रासो, पृ० ४६।

तेहेदारी—संज्ञा पुं० [हि० तेहा + फा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तेही'।

तेहेबाजा—संज्ञा पुं० [हि० तेहा + फा० बाज (प्रत्य०)] दे० 'तेही'।

तैतिडीक—वि० [सं० तैन्तिडीक] तितित्ती या हमली की काँजी से बनाया हुआ या तैयार किया हुआ (को०)।

तै०—क्रि० वि० [हि० तै] से। दे० 'ते' उ०—कुंज ते कहै सुनि कंत को गमन लखि आगमन तैसो मनहरन गोपाल को।—पद्याकर (शब्द०)।

तै०—सर्व० [सं० त्वम्] तू। उ०—त्रिय संग सरहि न भट रिपु भगनी। बक सम आता तै सम भगनी।—गोपाल (शब्द०)।

तैवाकीस—वि० दे० [हि०] तैवाकीस।

तैतीस—वि० [हि०] दे० 'तैतीस'। उ०—छुसी तैतीस जब कटे मुज बीम। धरि माक दमसीस मन राउ रानी।—पलटू० भा० २, पृ० १०८।

तै०—क्रि० वि० [सं० तत्] उतना। उस कदर। उस मात्रा का। जैसे,—घर बी नंबर के बाद कहिये तै नंबर के बाद घापका ताश निकले।—रामकृष्ण वर्मा (शब्द०)।

तै०—संज्ञा पुं० [ध०] १. समाप्ति। खात्मा।

यौ०—तै तमाम = अंत। समाप्ति।

२. चुकता। बेबाकी (को०)। ३. निर्णय। फैसला। निबटारा। (को०)। ४. रास्ता चलना। जैसे, मंजिल तै कर ली। उ०—बहुतों ने राहतै की सँभले न पाव फिर भी।—बेला, पृ० ६०।

तै०—वि० १. जिसका निबटेरा या फैसला हो चुका हो। निर्णित। २. जो पूरा हो चुका हो। समाप्त। जैसे, झगडा तै करना। रास्ता तै करना।

तै०—संज्ञा पुं० [फा० तह] दे० 'तह'।

तैकायन—संज्ञा पुं० [सं०] तिक अपि ये वंशज या शिष्य।

तैक्त—संज्ञा पुं० [सं०] तित्त का अभाव। तीतापन। चरपराहट। तिताई। निक्तत्व।

तैक्ष्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीक्ष्णता। तीक्ष्ण का भाव। २. भयंकरता (को०)। ३. पेनापन (को०)। ४. निर्भयता (को०)।

तैखाना(यु०)—संज्ञा पुं० [फा० तहखानह] दे० 'तहखाना'।

तैजस—संज्ञा पुं० [सं०] १. धातु, शक्ति अथवा इसी प्रकार का और कोई चमकीला पदार्थ। २. धी। ३. पराक्रम। ४. बहुत तेज चलनेवाला घोड़ा। ५. सुमति के एक पुत्र का नाम। ६. जो स्वयंप्रकाश और सूर्य आदि का प्रकाशक हो, भगवान्। ७. वह शारीरिक शक्ति जो आहार को रस तथा रस को धातु में परिणत करती है। ८. एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है। ९. राजस अवस्था में प्राप्त झुंझकार जो एकादश इंद्रियों और पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति में सहायक होता है और जिसकी सहायता के बिना झुंझकार कभी सात्त्विक या तामसी अवस्था प्राप्त नहीं करता।

विशेष—दे० 'झुंझकार'।

१०. जंगम (को०)।

तैजस—वि० [सं०] १. तेज से उत्पन्न। तेज संबंधी। जैसे, तैजस पदार्थ। २. चमकीला। श्रुतिमान (को०)। ३. प्रकाश से परिपूर्ण (को०)। ४. उत्तेजित। उत्साही (को०)। ५. शक्तिशाली। साहसी (को०)। ६. राजसी वृत्तिवाला। राजगुणी (को०)।

तैजसवर्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदी सोना गजाने की धरिया। मूषा।

तैजसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजविप्ली।

तैतिक्ष्—वि० [सं०] धैर्यवान्। सहनशील (को०)।

तैडे(यु०)—सर्व० [राज०] तेरा। उ०—नागर तट तैडे देखे बिन बेकलियाँ दिख नू।—नट०, पृ० १२६।

तैविर—संज्ञा पुं० [सं० तीवर] तीतर।

तैत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्यारह करणों में से चौथा करण ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इस करण में जन्म लेनेवाला कलाकृशस, रूपवान्, वक्ता, गुणी, सुशील और कामी होता है ।

२. देवता । ३. गैडा ।

तैत्तिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीतरों का समूह । २. तीतर । ३. गैडा ।

तैत्तिरि—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद के प्रवर्तक एक ऋषि का नाम जो वैशंपायन के बड़े भाई थे ।

तैत्तिरिक्—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पकड़नेवाला [को०] ।

तैत्तिरीय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कृष्ण यजुर्वेद की छियासी शाखाओं में से एक ।

विशेष—यह आत्रेय अनुक्रमणिका और पाणिनि के अनुसार तित्तिरि नामक ऋषि प्रोक्त है । पुराणों में इसके संबंध में लिखा है कि एक बार वैशंपायन ने ब्रह्महत्या की थी । उसके प्रायश्चित्त के लिये उन्होंने अपने शिष्यों को यज्ञ करने की आज्ञा दी । और सब शिष्य तो यज्ञ करने के लिये तैयार हो गए, पर याज्ञवल्क्य तैयार न हुए । इसपर वैशंपायन ने उनसे कहा कि तुम हमारी शिष्यता छोड़ दो । याज्ञवल्क्य ने जो कुछ उनसे पढ़ा था वह सब उगल दिया; और उस वगन को उनके दूसरे सहपाठियों ने तीतर बनकर चुग लिया ।

२. इस शाखा का उपनिषद् ।

विशेष—यह तीन भागों में विभक्त है । पहला भाग संहितोपनिषद् या शिक्षावल्ली कहलाता है; इसमें व्याकरण और षड्वैतवाद संबंधी बातें हैं । दूसरा भाग आनंदवल्ली और तीसरा भाग भृगुवल्ली कहलाता है । इन दोनों संमिलित भागों को वावणी उपनिषद् भी कहते हैं । तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्मविद्या पर उत्तम विचारों के अतिरिक्त श्रुति, स्मृति और इतिहास संबंधी भी बहुत सी बातें हैं । इस उपनिषद् पर शंकराचार्य का बहुत अच्छा भाष्य है ।

तैत्तिरीयक—संज्ञा पुं० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी या पढ़नेवाला ।

तैत्तिरीयारण्यक—संज्ञा पुं० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक ग्रंथ जिसमें वानप्रस्थों के लिये उपदेश है ।

तैत्तिल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तैतिल' ।

तैनात—वि० [अ० तद्व्ययुत] किसी काम पर लगाया या नियत किया हुआ । मुकर्रर । नियत । नियुक्त जैसे,—भीड़ भाड़ का इंतजाम करने के लिये दम सिपाही वहाँ तैनात किए गए थे ।

तैनाती—संज्ञा स्त्री० [हि० तैनात + ई (प्रत्य०)] किसी काम पर लगने की क्रिया या भाव । नियुक्ति । मुकर्ररी ।

तैमित्य—संज्ञा पुं० [सं०] जड़ता [को०] ।

तैमिर—संज्ञा पुं० [सं०] घालि का एक रोग [को०] ।

विशेष—इस रोग में आँखों में धुंधलापन आ जाता है ।

तैया—संज्ञा पुं० [देश०] मिट्टी का वह छोटा बरतन जिसमें छीपी कपड़ा छापने के लिये रंग रखते हैं । ग्रहर ।

तैयार—वि० [अ०] १. जो काम में आने के लिये बिलकुल उपयुक्त हो गया हो । सब तरह से दुरुस्त या ठीक । तैस । जैसे, कपड़ा (सिलकर) तैयार होना, मकान (बनकर) तैयार होना, फल (पककर) तैयार होना, गाड़ी (जुतकर) तैयार होना, आदि ।

मुहा०—गला तैयार होना = गले का बहुत सुरीला और रस-युक्त होना । ऐसा गला होना जिससे बहुत अच्छा गाना गाया जा सके । हाथ तैयार होना = कला आदि में हाथ का बहुत अभ्यस्त और कुशल होना । हाथ का बहुत मंज जाना ।

२. उद्यत । तत्पर । मुस्तैद । जैसे,—(क) हम तो सबेरे से चलने के लिये तैयार थे, आप ही नहीं आए । (ख) जब देखिए तब आप लड़ने के लिये तैयार रहते हैं । ३. प्रस्तुत । उपस्थित । मौजूद । जैसे,—इस समय पचास रुपये तैयार हैं, बाकी कल ले लीजिएगा । ४. हूँट पुष्ट । मोटा ताजा । जिसका शरीर बहुत अच्छा और सुडोल हो । जैसे, यह घोड़ा बहुत तैयार है । ५. संपूर्ण । मुकम्मल (को०) । ६. समाप्त । खत्म (को०) । ७. पक्व । पुस्ता (को०) । ८. कटिबद्ध । आमादा (को०) । ९. सुसज्जित । आरास्ता (को०) ।

तैयारी—संज्ञा स्त्री० [हि० तैयार + ई (प्रत्य०)] १. तैयार होने की क्रिया या भाव । दुस्तैदी । संपूर्णता । २. तत्परता । मुस्तैदी । ३. शरीर की पुष्टता । मोटाई । ४. धूमधाम । विशेषतः प्रबंध आदि के संबंध की धूमधाम । जैसे,—उनकी बरात में बड़ी तैयारी थी । ५. सजावट । जैसे,—आज तो आप बड़ी तैयारी से निकले हैं । ६. समाप्ति । खारिज (को०) । ७. प्रयोग के काबिल होना (को०) । ८. रचना । निर्माण । सृष्टि (को०) ।

तैयों^७—सर्व० [सं० त्वम् हि० तैं] तुमसे । उ०—तूँ आप कारण कारण है तेरा ही कीना होया सभ कुछ है । तैयो कुछ छपिया नहीं ।—प्राण०, पृ० २०२ ।

तैयो—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तऊ' । उ०—सहस्र अठामी मुनि जो जेव तैयो न घंटा बाजै । कहहि कबोर सुपय के जेए घंट मगन ह्वै गाजै ।—कबीर (शब्द०) ।

तैरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का धूप जिसकी पत्तियों आदि को बंधक में तित्त और जलनाशक माना है ।

पर्या०—तैर । तैरणी । कुनीली । रागद ।

तैरना—क्रि० अ० [सं० तरण] १. पानी के ऊपर ठहरना । उतराना । जैसे, लकड़ी या काग आदि का पानी पर तैरना । २. किसी जीव का अपने अंग संचालित करके पानी पर चलना । हाथ पैर या और कोई अंग हिलाकर पानी पर चलना । पैरना । तरना ।

विशेष—मछलियाँ आदि जलजंतु तो सदा जल में रहते और विकरते ही हैं; पर इनके अतिरिक्त मनुष्य को छोड़कर बाकी अधिकांश जीव जल में स्वभावतः बिना किसी दूसरे की सहायता या शिक्षा के आपसे आप तैर सकते हैं । तैरना कई तरह से होता है और उसमें केवल हाथ, पैर, शरीर का कोई अंग

अथवा शरीर के सब अंगों को हिलाना पड़ता है। मनुष्य को तैरना सीखना पड़ता है और तैरने में उसे हाथों और पैरों अथवा केवल पैरों की गति देनी पड़ती है। मनुष्य का साधारण तैरना प्रायः मंडक के तैरने की तरह का होता है। बहुत से लोग पानी पर चुपचाप चित भी पड़ जाते हैं और बराबर तैरते रहते हैं। कुछ लोग तरह तरह के दूसरे आसनो से भी तैरते हैं। साधारण चीपायों को तैरने में अपने पैरों को प्रायः वैसी ही गति देनी पड़ती है जैसी स्थल पर चलने में, जैसे, घोड़ा, गाय, हाथी, कुत्ता आदि। कुछ चीपाएँ ऐसे भी होते हैं जिन्हें तैरने में अपनी पूँछ भी हिलानी पड़ती है, जैसे, ऊद-बिलाव, गंधबिलाव आदि। कुछ जानवर केवल अपनी पूँछ और शरीर के पिछले भाग को हिलाकर ही बिलकुल मछलियों की तरह तैरते हैं, जैसे, ह्वेल। ऐसे जानवर पानी के ऊपर भी तैरते हैं और घंटर भी। जिन पक्षियों के पैरों में जालियाँ होती हैं, वे जल में अपने पैरों की सहायता से चलने की भाँति ही तैरते हैं, जैसे, बत्तक, राजहंस आदि। पर दूसरे पक्षी तैरने के लिये जल में उसी प्रकार अपने पर फटकटाते हैं जिस प्रकार उड़ने के लिये हवा में। साँप, अजगर आदि रेंगनेवाले जानवर जल में अपने शरीर को उसी प्रकार हिलाते हुए तैरते हैं जिस प्रकार वे स्थल में चलते हैं। कछुएँ आदि अपने चारों पैरों या सहायता से तैरते हैं। बहुत से छोटे छोटे कीड़े पानी की सतह पर दीड़ते अथवा चित पड़कर तैरते हैं।

तैरय^(७)—संज्ञा पुं० [सं० तय] तैरा। उ०—पंच सबी मिलो बड़ो छह पाइ। तैरय लिखी सबी मोहि सुणाई।—बी० रासो, पृ० ७४।

तैराई—संज्ञा स्त्री० [हि० तैरना + ई (प्रत्य०)] १. तैरने की क्रिया या भाव। २. वह धन जो तैरने के बदले में मिले।

तैराक^१—वि० [हि० तैरना + प्राक (प्रत्य०)] तैरनेवाला। जो अच्छी तरह तैरना जानता हो।

तैराक^२—संज्ञा पुं० तैरने में कुशल व्यक्ति।

तैराना—क्रि० सं० [हि० तैरना का प्रे० रूप] १. दूसरे को तैरने में प्रवृत्त करना। तैरने का काम दूसरे से कराना। २. घुसाना। घंसाना। गोदना। जैसे,—घोर ने उसके पेट में छुरी तैरा दी।

तैरू^(७)—वि० [हि० तैरना] तैराक। तैरनेवाला। उ०—दरिया गुरू तैरू मिलाकर दिया पैले पार।—संतवाणी०, पृ० १२।

तैर्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] वह कृत्य जो तीर्थ में किया जाय।

तैर्य^२—वि० तीर्थ संबंधी।

तैर्यिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. शास्त्रकार। जैसे, कपिल, कणाद आदि। २. साधु। संत (को०)। ३. तीर्थस्थान का पवित्र जल (को०)।

तैर्यिक^२—वि० १. पवित्र। २. तीर्थ से आनेवाला। तीर्थ से संबद्ध। ३. तीर्थों अथवा मंदिरों में जानेवाला (को०)।

तैर्यगवतिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

तैर्यग्योन—वि० [सं०] तिर्यक् योनि संबंधी (को०)।

तैलंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकलिंग] १. दक्षिण भारत का एक प्राचीन

देश जिसका विस्तार श्रीशैल से चोल राज्य से मध्य तक था। इसी देश की भाषा तेलुगु कहलाती है।

विशेष—इस देश में कालेश्वर, श्रीशैल और श्रीमेश्वर नामक तीन पहाड़ हैं जिनपर तीन शिवलिंग हैं। कुछ लोगों का मत है कि इन्हीं तीनों शिवलिंगों के कारण इस देश का नाम त्रिलिंग पड़ा है; इसका नाम पहले त्रिकलिंग था। महाभारत में केवल कलिंग शब्द आया है। पीछे से कलिंग देश के तीन विभाग हो गए थे जिसके कारण इसका नाम त्रिकलिंग पड़ा। उड़ीसा के दक्षिण से लेकर मद्रास के और आगे तक का समुद्रतटस्थ प्रदेश तैलंग या तिलंगाना कहलाता है।

२. तैलंग देश का निवासी।

यौ०—तैलंग ब्राह्मण।

तैलंगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिलंगा'।

तैलंगी^१—संज्ञा पुं० [हिं० तैलंग + ई (प्रत्य०)] तैलंग देशवासी।

तैलंगी^२—संज्ञा स्त्री० तैलंग देश की भाषा।

तैलंगी^३—वि० तैलंग देश संबंधी। तैलंग देश का।

तैलपाता—संज्ञा स्त्री० [सं० तैल म्पाता] स्वधा जिसमें मुख्यतः तिल की आहुति दी जाती है (को०)।

तैल—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल, मरसों आदि को घेरकर निकाला हुआ तेल। २. किसी प्रकार का तेल। ३. धूप। गुग्गुल (को०)।

तैलकंद—संज्ञा पुं० [सं० तैल कन्द] तेलियाकंद।

तैलकल्कज—संज्ञा पुं० [सं०] खली (को०)।

तैलकार—संज्ञा पुं० [सं०] तेली (जाति)।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति कोटक जाति की स्त्री और कुम्हार पुरुष से बतलाई गई है। दे० 'तेली'।

तैलकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] खली।

तैलकीट—संज्ञा पुं० [सं०] तेलिन नाम का कीड़ा।

तैलक्षीम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वस्त्र जिसकी राज का प्रयोग धाव पर होता है (को०)।

तैलचित्र—संज्ञा पुं० [सं० तैल + चित्र] तैल रंगों से बना हुआ चित्र।

तैलचौरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तैलचट्टा (को०)।

तैलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] तेल का भाव या गुण।

तैलद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काठ का एक प्रकार का बड़ा पात्र जो प्राचीन काल में बनाया जाता था और जिसकी लंबाई आदमी की लंबाई के बराबर हुमा करती थी।

विशेष—इसमें तेल भरकर चिकित्सा के लिये रोगी लिटाए जाते थे और सड़ने से बचाने के लिये घृत शरीर रखे जाते थे। राजा दशरथ का शरीर कुछ समय तक तैलद्रोणी में ही रखा गया था।

तैलधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] धान्य का एक वर्ग जिसके अंतर्गत तीनों प्रकार की सरसो, दोनों प्रकार की राई, लस और कुसुम के बीज हैं।

तैलपर्यंक—संज्ञा पुं० [सं०] गठिवन।

तैलपर्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का चंदन । २. साल चंदन । ३. एक प्रकार का वृक्ष ।

तैलपर्यायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तैलपर्याय [को०] ।

तैलपर्याय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सलई का गोंद । २. चंदन । ३. शिलारस या तुलसी नाम का गंधद्रव्य ।

तैलपा, तैलपायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेलचट्टा । चपड़ा [को०] ।

तैलपाती—संज्ञा पुं० [सं० तैलपायिन्] १. भींगुर । चपड़ा (कीड़ा) । २. सलवार [को०] ।

तैलपिञ्ज—संज्ञा पुं० [सं० तैलपिञ्ज] सफेद तिल [को०] ।

तैलपिपीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चीटी ।

तैलपिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] खली ।

तैलपीत—वि० [सं०] जिसने तेल पिया हो [को०] ।

तैलपूर—वि० [सं०] (दीपक) जिसमें तेल भरने की आवश्यकता न हो [को०] ।

तैलप्रदीप—संज्ञा पुं० [सं०] तेल का दीपक [को०] ।

तैलफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंगुदी । २. बहेड़ा । ३. तिलका ।

तैलबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० तैल + बिंदु] किसी संक्षिप्त उक्ति को बढ़ा बढ़ाकर कहना । उ०—किसी संक्षिप्त उक्ति को खूब बढ़ाकर ग्रहण करना तैलबिंदु कहा गया है ।—संपूर्णा० ग्रं०, पृ० २६३ ।

तैलभाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली का पेड़ ।

तैलमात्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेल की बत्ती । पलीता ।

तैलयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तैलयन्त्र] कोलू ।

तैलरंग—संज्ञा पुं० [सं० तैल + रङ्ग] एक प्रकार का रंग जो तेल में मिलाकर बनाया जाता है और जिस रंग से तैलचित्र बनते हैं ।

तैलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी । शतमूली ।

तैलसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] शीतल चीनी । कबाब चीनी ।

तैलस्फटिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंबर नामक गंधद्रव्य । २. तुण-मणि । कहरबा ।

तैलस्यन्दा—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलस्यन्दा] १. गोकर्णी नाम की लता । मुरहटी । २. काकोली नाम की ओषधि ।

तैलांबुका—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलाम्बुका] तेलचट्टा । चपड़ा [को०] ।

तैलाक्त—वि० [सं०] जिसमें तेल लगा हो । तैलगुक्त । उ०—उड़ती भीनी तैलाक्त गंध, फूली सरसों पीली पीली ।—ग्राम्या, पृ० ३५ ।

तैलाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस या तुलसी नाम का गंधद्रव्य ।

तैलागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] अंगूर की लकड़ी ।

तैलाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरें । मिड़ ।

तैलाभ्यंग—संज्ञा पुं० [सं० तैलाभ्यङ्ग] शरीर में तेल मलने की क्रिया । तेल की मालिश ।

तैलिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] तिलों से तेल निकालनेवाला । तेली ।

तैलिक^२—वि० तेल संबंधी ।

तैलिक यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तैलिक यन्त्र] कोलू । उ०—समर तैलिक यंत्र तिल तमीचर निकर पेरि डारे सुमट घालि घानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

तैलिन—संज्ञा पुं० [सं० तैलिनम्] तिल का खेत [को०] ।

तैलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बत्ती ।

तैलिशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ तेल पेरने का कोलू चलता हो ।

तैली—संज्ञा पुं० [सं० तैलिन्] तेली ।

तैलीन—संज्ञा पुं० [सं० तैलिनम्] तिल का खेत [को०] ।

तैलीशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलिन्शाला] तेल पेरने का स्थान [को०] ।

तैल्वक^१—वि० [सं०] लोथ की लकड़ी से बना हुआ ।

तैल्वक^२—संज्ञा पुं० [सं०] लोथ ।

तैश—संज्ञा पुं० [सं०] आवेशयुक्त क्रोध । गुस्सा ।

मुहा०—तैश दिखाना = ऐसा कार्य करना जिससे कोई क्रुद्ध हो । क्रोध बढ़ाना । तैश में घाना = क्रुद्ध होना । बहुत कुपित होना ।

तैष—संज्ञा पुं० [सं०] चांद्र पौष मास । पौष मास की पूर्णिमा के दिन तिथ्य (पुष्य) नक्षत्र होता है, इसी से उसका नाम तैष पड़ा है ।

तैषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्य नक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी । पूष की पूर्णिमा ।

तैसा—वि० [सं० तादृश, प्रा० तद्वत्] दे० 'तैसा' । उ०—पवन जाइ तहें पहुँचे जहा । मारा तैस दृष्टि भुईं बहा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२६ ।

तैसई^१—वि० [हि० तैस + ई (प्रत्य०)] तैसे ही । वैसे ही । उसी प्रकार के । उ०—तैसई मंत्री अरु सब पुरुष प्रधान ।—प्रेमचन०, भा० १, पृ० ७० ।

तैसहो^१—वि० [हि० तैस + हो (प्रत्य०)] दे० 'तैसई' । उ०—बरिहै विजैश्री भाष हैं कहैं श्यामसुंदर तैसही ।—प्रेमचन०, भा० १, पृ० ११६ ।

तैसा—वि० [सं० तादृश, प्रा० तद्वत्] उस प्रकार का । 'वैसा' का पुराना रूप ।

तैसील^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तहसील' । उ०—मिलिके बादिसाहूँ का अमल कौ उठाया । ऊ तीन बरस होगा तैसील कूँ न आया ।—शिलार०, पृ० २३ ।

तैसे—क्रि० वि० [हि०] दे० 'वैसे' ।

तैसों^१—वि० [हि०] दे० 'वैसा' । उ०—रंग रंगीले संग सखा गन रंगीली नव बधु तैसोंई जम्पी रंगीली बसंत रागु ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६७ ।

तैसो^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तैसे' । उ०—अंगनि में कीनो मृगमद अंगराग तैसो आनन छोड़ाय लीनो श्याम रंग सारी में ।—मति० ग्रं०, पृ० ३१३ ।

तैयों^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'थैं' ।

तौघर^७—संज्ञा पुं० [हि०] १. दे० 'तोमर'। उ०—सब मंत्री परधान भान पर। गए वही पावासर तौघर।—पृ० रा०, १।४६४। २. तोमर नामक ध्वज।

तौद—संज्ञा स्त्री० [सं० तुद-तुन्दिल] पेट के भागे का बड़ा हुमा भाग। पेट का फुलाव। मर्यादा से अधिक फूलना या भागे की ओर बढ़ा हुमा पेट।

क्रि० प्र०—निकलना।

मुहा०—तौद पचकना = (१) मोटाई दूर होना। (२) शोखी निकल जाना।

तौदल—वि० [हि० तोद + ल (प्रत्यय)] तौदवाला। जिसका पेट भागे की ओर बड़ा ओर लूब फुला हुमा हो।

तौदा^१—संज्ञा पुं० [दे०] तालाब से पानी निकलने का मार्ग।

तौदा^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० तोदा] १. वह टीला या मिट्टी की दीवार, जिसपर तीर या बंदूक चलाने का अभ्यास करने के लिये निशाना लगाते हैं। २. डेर। राशि। (क्व०)।

तौदियल—वि० [हि०] दे० 'तोदल'।

तौदी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुदी] नाम। डोटी।

तौदीला—वि० [हि०] दे० [वि०] आ० तोदीली] दे० 'तोदल'।

तौदूमल—वि० [हि० तोदु + मल] दे० 'तोदल'। उ०—तौद बना लो, नहीं उल्लू बनाकर निकाल दिए जाओगे या किसी तौदूमल को पकटो।—काया०, पृ० २५१।

तौदेल—वि० [हि० तौद + ऐल] दे० 'तोदल'।

तौन^७—सर्व० [हि०] दे० 'तीन'। उ०—होत दीधं (जो) भंत है हरि सम सब चल तोन।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३३।

तौबा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूबा'।

तौबी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तूबी'।

तौर^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोमर'। उ०—सहं तोर तीवन ताकिये, रन विरद जिनके बाँकिये।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ७।

तो^७—सर्व० [म० सब] तेरा।

तो^७—अव्य० [म० तद्] तब। उस वृत्ता में। जैसे,—(क) यदि तुम कहो तो मैं भी पत्र लिख दूँ। (ख) अगर वे मिलें तो उनसे भी कह देना। उ०—जो प्रभु अवसि पार गा वहहू। तो पद पदुम पखारन कहहू।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—पुरानी हिंदी में इस शब्द का, इस अर्थ में प्रयोग प्रायः 'जो' के साथ होता था।

तो^१—अव्य० [म० तु] एक अव्यय जिसका व्यवहार किसी शब्द पर जोर देने के लिये अथवा कभी कभी यो ही किया जाता है। जैसे,—(क) आप चले तो सही, मैं सब प्रबंध कर दूँगा। (ख) जरा बैठो तो। (ग) हम गए तो थे, पर वे ही नहीं मिले। (घ) देखो तो कैसी बहार है?

तो^१—सर्व० [सं० तव] तुम्हें। तु का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के समय प्राप्त होता है, जैसे, तोको।

तो^१—क्रि० प्र० [हि० हतो (= था)] था। (क्व०)। उ०—काल

करम दिगपाल सकल जग जाय जासु करतल तो।—तुलसी (शब्द०)।

तोइ^७—संज्ञा पुं० [सं० तोय] पाना। जल। उ०—बीठ डोरने मोर दिय छिरक रूप रस तोइ। मथि मो घट प्रीतम लिए मन नवनीत बिलोइ।—रसनिधि (शब्द०)।

तोइ^७—अव्य० [सं० ततः + प्रवि] फिर भी। उ०—मार तोइण कणमणइ साल्ह कुमर बहु साठ।—ढोला०, पृ० ६०५।

तोई^१—संज्ञा स्त्री० [दे०] १. अंग्रे या कुरते आदि में कमर पर लगी हुई पट्टी या गोट। २. चादर या दोहर आदि की गोट। ३. लहंगे का नेफा।

तोई^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोय'। उ०—जो लगे तोई डोले बोले, तो लगे मागा माही।—पलटू०, भा० ३, पृ० ७६।

तोऊ^७—अव्य० [हि०] दे० 'तऊ'। उ०—तोऊ दुसंग पाइ बहिमुख ह्वै रह्यो है।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० १५३।

तोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिशु। अव्यय। लड़का या लड़की। २. श्रीकृष्णचंद्र की एक सभा का नाम।

तोकक—संज्ञा पुं० [म०] चातक [को०]।

तोकना^७—क्रि० प्र० [?] उठाना। उ०—तेक तोकि तब्यी तुरी।—पृ० रा०, ७। १०५।

तोकरा—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की लता जो अफीम के पौधों पर लिपटकर उन्हें मुखा देती है।

तोकवन्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तोकवती] पुत्रवान [को०]।

तोका^७—सर्व० [हि० तो + को] तुम्हको। तुम्हें। उ०—प्रो विधि रूप दीन्ह है तोका।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६१।

तोका^७—सर्व० [हि० तो + को] तुम्हको। तुम्हें। उ०—करसि बियाह धरम है तोका।—जायसी ग्रं०, पृ० ११५।

तोकम—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकुर। २. जो का नया प्रकुर। हरा और कच्चा जो। ४. हरा रंग। ५. बादल। मेघ। ६. कान का मेल।

तोख^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोष' या 'संतोष'। उ०—विरिरा होइ कंत कर तोखू। किरिरा किहें पाव धनि मोखू।—जायसी ग्रं०, पृ० ३३४।

तोखना^७—क्रि० प्र० [हि० तोख] प्रसन्न करना। संतुष्ट करना। उ०—तिय ताकी पतिवरता अहै। पति ही पोख्यो तोख्यो चहै।—नंद० ग्रं० पृ० २१२।

तोखार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुखार'। उ०—पौवरि तजहु देहु पग पेरी भावा बाँक तोखार।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३०८।

तोगा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोक'। उ०—ज्ञातिपुत्र सिद्ध ने एयंस का बना एक महामूल्यवान तोगा पहना था।—वैशाली०, पृ० १२४।

तोछ^७—वि० [हि०] दे० 'तुच्छ'। उ०—सेना तोछ तपस्या सम्बल।—रा० क०, पृ० ६५।

तोटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण जिसके प्रत्येक चरण में चार

सगण (॥३ ॥३ ॥३ ॥३) होते हैं। जैसे,—ससि सों ससियाँ
बिनती करतीं। टुक मंथ न हो पग तो परतीं। हरि के पद
अंकमि हूँ न दे। छिन तो टक साथ निहारन दे। २.
शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्यों में से एक। इनका एक
नाम नंदीश्वर भी था।

तोड़का—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोटका'। उ०—घोषघ घनेक जंत्र
मंत्र तोड़कादि किये बादि भए देवता मनाए अधिकारि है।—
तुलसी (जगन्नाथ)।

तोड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोटा'। उ०—सोबा सतगुरु सूर् किया
राम नाम धन काज। राम न कोई छेहड़ो तोड़ा सबही भाज।
—राम० धर्म०, पृ० ५२।

तोठाँठ—सर्व० [हि० तो + ठा (प्रत्य०)] तुम्हारा। उ०—हुवभू
सूर तोठाँ गीव सोला की लिषावटि।—सिखर०, पृ० १०६।

तोड़—संज्ञा पुं० [हि० तोड़ना] १. तोड़ने की क्रिया या भाव
(कृ०)। २. किले की दीवारों आदि का वह धंस जो गोले की
मार से टूट फूट गया हो। ३. नदी आदि के जल का तेज
बहाव। ऐसा बहाव जो सामने पड़नेवाली चीजों को तोड़
फोड़ दे। ४. कुश्ती का वह पेंच जिससे कोई दूसरा पेंच
रद्द हो। किसी दाय से बचने के लिये किया हुआ दाँव।
५. किसी प्रभाव आदि को नष्ट करनेवाला पदार्थ या कार्य।
प्रतिकार। मारक। जैसे,—अगर वह तुम्हारे साथ कोई
पाजीपन करे तो उसका तोड़ हमसे पूछना।

यौ०—तोड़ जोड़। तोड़ फोड़।

६. दही का पानी। ७. बार। दफा। भौक। जैसे,—पहुँचते ही
वे उनके साथ एक तोड़ लड़ गए।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग ऐसे ही कार्यों के
लिये होता है जो बहुत आवेशपूर्वक या तत्परता के साथ किए
जाते हैं।

तोड़क—वि० [हि० तोड़ + क (प्रत्य०)] तोड़नेवाला। जैसे, जाति
पाँत तोड़क मंडल।

तोड़ जोड़—संज्ञा पुं० [हि० तोड़ + जोड़] १. दाँव पेंच। चाल।
मुक्ति। २. अपना मतलब साधने के लिये किसी को मिलाने
और किसी को अलग करने का कार्य। चट्टे बट्टे लड़ाकर
काम निकालना।

क्रि० प्र०—भिड़ाना।—लगाना।

तोड़न—संज्ञा पुं० [सं० तोड़नम्] १. फाड़ना। विभाजित करना।
२. चियड़े चियड़े करना। ३. आघात या चोट पहुँचाना।

तोड़ना—क्रि० स० [हि० टूटना] १. आघात या भटके से किसी
पदार्थ के दो या अधिक खंड करना। भग्न, विभक्त या खंडित
करना। टुकड़े करना। जैसे, गन्ना तोड़ना, लकड़ी तोड़ना,
रस्सी तोड़ना, दीवार तोड़ना, दावात तोड़ना, बरतन तोड़ना,
बंधन तोड़ना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार प्रायः कड़े पदार्थों
के लिये अथवा ऐसे मुलायम पदार्थों के लिये होता है जो
सूत के रूप में लंबाई में कुछ दूर तक खसे गए हों।

४-६१

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

यौ०—तोड़ा मरोड़ी।

२. किसी वस्तु के अंग को अथवा उसमें लगी हुई किसी दूसरी
वस्तु को मोच या काटकर, अथवा और किसी प्रकार से अलग
करना। जैसे, पत्ती फूल या फल तोड़ना, (कोट में लगा हुआ)
बटन तोड़ना, जिल्द तोड़ना, रीत तोड़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

मुहा०—तोड़ना = मार डालना। समाप्त कर देना। उ०—
उस बाज ने कबूतर को पकड़कर तोड़ डाला।—कबीर मं०,
पृ० ४८५।

३. किसी वस्तु का कोई अंग किसी प्रकार खंडित, भग्न या बेकाम
करना। जैसे, मशीन का पुरजा तोड़ना, किसी का हाथ या
पैर तोड़ना। ४. खेत में हल जोतना (कृ०)। ५. सेंच
लगाना। ६. किसी स्त्री के साथ प्रथम समागम करना। किसी
का कुमारीत्व भंग करना। ७. बल, प्रभाव, महत्व, विस्तार
आदि घटाना या नष्ट करना। क्षीण, दुर्बल या अशक्त करना।
जैसे,—(क) बीमारी ने उन्हें बिलकुल तोड़ दिया। (ख) युद्ध
ने उन दोनों देशों को तोड़ दिया। (ग) इस कुएँ का पानी
तोड़ दो। ८. खरीदने के लिये किसी चीज का दाम घटाकर
निश्चित करना। जैसे, वह तो १५०) माँगता था पर मैंने
तोड़कर १००) पर ही ठीक कर लिया। ९. किसी संगठन,
व्यवस्था या कार्यक्षेत्र आदि को न रहने देना अथवा नष्ट कर
देना। किसी चलते काम, कार्यालय आदि को सब धिन के
लिये बंद करना। जैसे, महकमा तोड़ना, कंपनी तोड़ना, पद
तोड़ना, स्कूल तोड़ना। १०. किसी निश्चय या नियम आदि
को स्थिर या प्रचलित न रखना। निश्चय के विरुद्ध आचरण
करना अथवा नियम का उल्लंघन करना। बात पर स्थिर न
रहना। जैसे, ठेका तोड़ना, प्रतिज्ञा तोड़ना। ११. दूर
करना। अलग करना। भिटा देना। बना न रहने देना। जैसे,
संबंध तोड़ना, गर्व तोड़ना, दोस्ती तोड़ना, सगाई तोड़ना।
१२. स्थिर या दृढ़ न रहने देना। कायम न रहने देना।
जैसे, गवाह तोड़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—कलम तोड़ना = दे० 'कलम' के मुहा०। कमर तोड़ना
= दे० 'कमर' के मुहा०। किला या गढ़ तोड़ना = दे० 'गढ़' के
मुहा०। तिनका तोड़ना = दे० 'तिनका' के मुहा०। पैर
तोड़ना = दे० 'पैर' के मुहा०। मुँह तोड़ना = दे० 'मुँह' के
मुहा०। रोटियाँ तोड़ना = दे० 'रोटी' के मुहा०। सिर तोड़ना
= दे० 'सिर' के मुहा०। हिम्मत तोड़ना = दे० 'हिम्मत'
के मुहा०।

तोड़फोड़—संज्ञा स्त्री० [हि० तोड़ना + फोड़ना] नष्ट करने की
क्रिया। नष्ट करना। खराब करना।

तोड़मरोड़—संज्ञा स्त्री० [हि० तोड़ना + मरोड़ना] १. तोड़ने मरोड़ने
का कार्य। २. गलत अर्थ लगाना। कुतर्क से भिन्न अर्थ सिद्ध
करना।

तोड़र^७—संज्ञा पुं० [हि० तोड़ा] एक ग्राम्यण का नाम । उ०—
मुद्रिक तोड़र गए उतारी ।—०, हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० १६५ ।

तोड़वाना—क्रि० सं० [हि० तोड़ना प्रे० रूप] दे० 'तुड़वाना' ।

तोड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० तोड़ना] १. सोने चाँदी आदि की लच्छेदार और चौड़ी जंजीर या सिकड़ी जिसका व्यवहार ग्राम्यण की तरह पहनने में होता है ।

विशेष—ग्राम्यण के रूप में बना हुआ तोड़ा कई आकार और प्रकार का होता है, धीरे धीरे, हाथों या गले में पहना जाता है । कभी कभी सिपाही लोग अपनी पगड़ी के ऊपर चारों ओर भी तोड़ा लपेट लेते हैं ।

२. रुपए रखने की टाट आदि की धैली जिसमें १०००) ६० आते हैं ।

विशेष—बड़ी धैली भी जिसमें २०००) ६० आते हैं, 'तोड़ा' ही कहलाती है ।

मुहा०—(किसी के आगे) तोड़े उलटना या गिनना = (किसी को) नेकड़ों, हजारों रुपए देना । बहुत सा द्रव्य देना ।

३. नदी का किनारा । तट । ४. वह मैदान जो नदी के संगम आदि पर बाढ़, मिट्टी जमा होने के कारण बन जाता है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

५. घाटा । घटी । कमी । टोटा । उ०—तो लाना के लिये दूध का तोड़ा थोड़ा ही है ।—मान०, भा० ५, पृ० १०२ ।

क्रि० प्र०—घाना ।—पड़ना ।

६. रस्सी आदि का टुकड़ा । ७. उतना नाच जितना एक बार में नाचा जाय । नाच का एक टुकड़ा । ८. हल की वह लंबी लकड़ी जिसके आगे जूमा लगा होता है । हरिम ।

तोड़ा^२—संज्ञा पुं० [सं० तूण्ड या टोंटा] नारियल की जटा की वह रस्सी जिसके ऊपर सूत बुना रहता था और जिसकी सहायता से पुरानी चाल की तोड़दार बंदूक छोड़ी जाती थी । फलीता । पलीता । उ०—तोड़ा सुलगत नड़े रहै थोड़ा बंदूकन ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५२४ ।

यौ०—तोड़ेदार बंदूक—वह बंदूक जो तोड़ा या फलीता दागकर छोड़ी जाय । आजकल इस प्रकार की बंदूक का व्यवहार उठ गया है । दे० 'बंदूक' ।

तोड़ा^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. मिसरी की तरह की बहुत साफ की हुई चीनी जिससे धोला बनाते हैं । कंद । २. वह लोहा जिसे चकमक पर मारने से आग निकलती है । ३. वह भेंस जिसने अभी तक तीन से अधिक बार बच्चा न दिया हो । तीन बार तक ब्याई हुई भेंस ।

तोड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुड़ाई' ।

तोड़ाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तुड़ाना' ।

तोड़ियाँ—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'तोड़ो' ।

तोड़ो—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सरसों ।

तोण^७—संज्ञा पुं० [सं० तूण] निर्बंग । तरकस ।

तोता^१—संज्ञा पुं० [फा० तोदह् या तूदह् (= डेर)] १. डेर । समूह । उ०—घर घर उनही के जुड़े बदनामी के तोत । बाजत जे हित खेत तैं नेकनाम कब होत ।—(शब्द०) । २. खेल (कव०) ।

तोत^७—संज्ञा पुं० [?] कपट । उ०—पातमाह सुणत दुख पायो एक हज़र तोत उपजायो ।—रा० क०, पृ० ३०८ ।

तोतई^१—वि० [हि० तोता+ई (प्रत्य०)] सुगो जैसा । तोते के रंग का सा । धानी ।

तोतई^२—संज्ञा पुं० वह रंग जो तोते के रंग का सा हो । धानी रंग ।

तोतरंगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की विड़िया जो पितपित्ता की सी होती है ।

तोतरा^१—वि० [हि०] दे० 'तोतला' ।

तोतरा^२—वि० [हि०] दे० 'तोतला' ।

तोतराना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तुतलाना' । उ०—पूछत तोतरात बात मातहि अदुराई । अतिसै सुख जाते तोहि मोहि कछु समुझाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

तोतरि^७—वि० स्त्री० [हि० तोतराना] दे० 'तोतला' । उ०—सरिकाई लटपट अग सेना । तोतरि बात मात संग बोला ।—घट०, पृ० ३७ ।

तोतला^१—वि० [हि० तुतलाना] १. वह जो ततलाकर बोलता हो स्पष्ट बोलनेवाला । जैसे, तोतला बालक । २. जिसमें उच्चारण स्पष्ट न हो । जैसे, तोतली जवान ।

तोतलाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तुतलाना' ।

तोतली^१—वि० [हि० तोतलाना] दे० 'तोतला' । उ०—खिला हुआ मुख कंज, मंजु दशनाबली, अरुण अधर, कलकंठ तोतली काकली ।—शकु०, पृ० ४८ ।

तोता^२—संज्ञा पुं० [फा०] १. एक प्रसिद्ध पक्षी जिसके शरीर का रंग हरा और चोंच का लाल होता है । कीर । सुभ्रा ।

विशेष—इसकी दुम छोटी होती है और पैरों में दो आंग्रे और दो पीछे इस प्रकार चार उंगलियाँ होती हैं । ये आंग्रियों की बोली की बहुत अच्छी तरह नकल करते हैं, इसलिये लोग इन्हें घर में पालते हैं और 'राम राम' या छोटे मोटे पद सिखलाते हैं । ये फल या मुलायम अनाज खाते हैं । तोते की छोटी, बड़ी सेकड़ों जातियाँ होती हैं जिनमें से अधिकांश फलाहारी और कुछ मांसाहारी भी होती हैं । तोते साधारण छोटी विड़ियों से लेकर तीन फुट तक की लंबाई के होते हैं । कुछ जातियों के तोतों का स्वर तो बहुत मधुर और प्रिय होता है और कुछ का बहुत कटु तथा अप्रिय । इनमें नर और मादा का रंग प्रायः एक सा ही होता है । अमेरिका में बहुत अधिक प्रकार के तोते पाए जाते हैं । हीरामन, कातिक, नूरी, काकातुआ आदि तोते की जाति के ही हैं । तीतर, मुरगे, मोर, कबूतर आदि पक्षी जिस स्थान पर बहुत दिनों तक पाले जाते हैं यदि कभी लड़कर इधर उधर चले जाय तो प्रायः फिर लौटकर उसी स्थान पर आ जाते हैं पर साधारण तोते छूट जाने पर फिर

अपने पालनेवाले के पास प्रायः नहीं आते। इसलिये तोतों की बेमुरोबती मसहूर है।

मुहा०—हाथों के तोते उड़ जाना = बहुत चबरा जाना। सिर पीटा जाना। तोते की तरह झल्लें फेरना या बदलना = बहुत बेमुरोबत होना। तोते की तरह पढ़ना = बिना समझे बूके रटना। तोता पालना = किसी दोष, दुर्व्यसन या रोग को जान बूझकर बढ़ाना। किसी बुराई या बीमारी से बचने का कोई प्रयत्न न करना।

यौ०—तोताचरम। तोताचरमी।

२. बंदूक का घोड़ा।

तोताचरम—संज्ञा पुं० [फ्रा०] तोते की तरह झल्लें फेर लेनेवाला। वह जो बहुत बेमुरोबत हो।

तोताचरमी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तोताचरम + ई० (प्रत्य०)] बेमुरोबती। बेवफाई।

मुहा० तोताचरमी करना = बेमुरोबत होना। बेवफाई करना। उ०—यकीन नहीं आता कि आज्ञा न आएँ और ऐसी तोताचरमी करें।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २८।

तोतापंखी—वि० [हि० तोता + पंख + ई (प्रत्य०)] तोते के पंखों जैसे पीत वर्ण का। पीताम्बर। उ०—तोतापंखी किरनों में हिलती बालों की टहनी। यहीं बैठ कहती थी तुमसे सब कहना अनकहनी।—ठंडा०, पृ० २०।

तोती—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तोता] १. तोते की मादा। उ०—बोलहि सुक सारिक पिक तोती। हरिहर चातक पोत कपोती।—नंद० प्र०, पृ० ११६। २. रखी हुई स्त्री। उपपत्नी। रखनी। सुरैतिन। (कव०)।

तोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह छड़ी या चाबुक आदि जिसकी सहायता से जानवर हाँके जाते हैं।

तोत्रवेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु के हाथ का दंड।

तोथी०—अभ्य० [हि०] वही। उ०—लाहो लेता जनम गो तुम करे तिसी तोथी होई।—बी० रासो, पृ० ४४।

तोद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीड़ा। व्यथा। उ०—आनंदधन रस बरसि बढ़ायो जनम जनम को तोद।—घनानंद, पृ० ४८६। २. सूर्य (की०)। ३. चलाना। हाँकना (की०)।

तोद्—वि० पीड़ा पहुँचानेवाला। कष्टदायक।

तोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. तोत्र। चाबुक, कोड़ा, चमोटी आदि। २. व्यथा। पीड़ा। ३. एक प्रकार का फलदार पेड़ जिसके फल को वैद्यक में कसेला, मीठा, रुखा तथा कफ और वायुनाशक माना है।

तोदरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] फारस में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा कंटीला पेड़ जिसमें पतले खिलकेवाले फूल लगते हैं।

विशेष—इसके बीज भटकटैया के बीजों की तरह बपटे पर उससे कुछ बड़े होते हैं और औषध के काम में आने के कारण भारत के बाजारों में आकर बिकते हैं। ये बीज तीन प्रकार के होते हैं—साख, सफेद और पीले। तीनों प्रकार के बीज

बहुत रक्तशोधक, पोष्टिक और बलवर्धक समझे जाते हैं। कहते हैं, इनके सेवन से शरीर का रंग खूब निखरता है और चेहरे का रंग खाल हो जाता है।

तोदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का खाल (संगीत)।

तोन०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूण'। उ०—हनुमान हृष्य संदेश सु कथ्यं। धरे पिटु तोनं लखी बीर सध्यं।—पृ० रा०, २।२६७।

तोनि०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूण'। उ०—कर लग्न धनुष कटि लसे तोनि।—ह० रासो०, पृ० १२।

तोप—संज्ञा स्त्री० [तु०] एक प्रकार का बहुत बड़ा मल जो प्रायः दो या चार पहियों की गाड़ी पर रखा रहता है और जिसमें ऊपर की ओर बंदूक की नली की तरह एक बहुत बड़ा नल लगा रहता है। इस नल में छोटी गोलीयाँ या मेलों आदि से भरे हुए गोल या लंबे गोले रखकर युद्ध के समय शत्रुओं पर चलाए जाते हैं। गोले चलाने के लिये नल के पिछले भाग में बारूद रखकर पलीते आदि से उसमें भाग लगा देते हैं। उ०—छुटहि तोप घनघोर सबै बंदूक चलावे।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५४०।

विशेष—तोपें छोटी, बड़ी, मैदानी, पहाड़ी और जहाजी आदि अनेक प्रकार की होती हैं। प्राचीन काल में तोपें केवल मैदानी और छोटी हुमा करती थीं और उनको खींचने के लिये बैल या घोड़े जोते जाते थे। इसके प्रतिरिक्त घोड़ों, ऊँटों या हाथियों आदि पर रखकर चलाने योग्य तोपें अलग हुमा करती थीं जिनके नीचे पहिए नहीं होते थे। आजकल पाश्चात्य देशों में बहुत बड़ी बड़ी जहाजी, मैदानी और किले तोड़नेवाली तोपें बनती हैं जिनमें से किसी किसी तोप का गोला ७५-७५ मील तक जाता है। इसके प्रतिरिक्त बाइसकिलों, मोटरों और हवाई जहाजों आदि पर से चलाने के लिये अलग प्रकार की तोपें होती हैं। जिनका मुँह ऊपर की ओर होता है, उनसे हवाई जहाजों पर गोले छोड़े जाते हैं। तोपों का प्रयोग शत्रु की सेना नष्ट करने और किले या मोरचेबंदी तोड़ने के लिये होता है। राजकुल में किसी के जन्म के समय अथवा इसी प्रकार की और किसी महत्वपूर्ण घटना के समय तोपों में खाली बारूद भरकर केवल शब्द करते हैं।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—छूटना।—छोड़ना।—दगना।—दागना।—भरना।—मारना।—सर करना।

यौ०—तोपची। तोपखाना।

मुहा०—तोप कीलना = तोप की नाली में लकड़ी का कुंदा खूब कसकर ठोक देना जिससे उसमें से गोला न चलाया जा सके। [प्राचीन काल में मोका पाकर शत्रु की तोपें अथवा भागने के समय स्वयं अपनी ही तोपें इस प्रकार कील दी जाती थीं।] तोप की सलामी उतारना = किसी प्रसिद्ध पुरुष के आगमन पर अथवा किसी महत्वपूर्ण घटना के समय बिना गोले के केवल बारूद भरकर शब्द करना। तोप के मुँह पर छोड़ना = बिल्कुल निराश्रित छोड़ देना। खतरे के स्थान पर छोड़ना। उ०—फिर तुम उस बेचारी को अकेली तोप के मुँह पर छोड़ आए हो।—रति०, पृ० ४४। तोप के मुँह पर रखकर

उड़ाना = बहुत कठिन संघ या प्राणदंड देना। तोप के मुहरे पर उड़ा देना = ३० 'तोप के मुहरे पर रखकर उड़ाना'। ३०— ऐसी बंद औरतों को तोप के मुहरे पर उड़ा दे बस।—सैर कु० पृ० १८। तोप दम करना = ३० 'तोप के मुहरे पर रखकर उड़ाना'। किसी पर या किसी के सामने तोप लगाना = किसी वस्तु को उड़ाने के लिये तोप का मुहरे उसकी ओर करना।

शोषखाना—संज्ञा पु० [फ्रा० तोप + खानह] १. वह स्थान जहाँ तोपें और उनका कुल सामान रहता हो। २. गोलियों और सामान की गाड़ियों आदि के सहित युद्ध के लिये सुसज्जित चार से आठ तोपों तक का समूह।

शोषची—संज्ञा पु० [फ्रा० तोप + ची (प्रत्य०)] तोप चलानेवाला। वह जो तोप में गोला भरकर चलाता हो। गोलंदाज।

शोषचीनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'शोषचीनी'।

शोषका—संज्ञा पु० [देश०] १. एक प्रकार का कद्दतर। २. एक प्रकार की मक्खी।

शोषना—क्रि० सं० [देश०] नीचे ढबाना। ढांकना। छिपाना।

शोषवाना—क्रि० सं० [हि० शोषना प्रे० रूप] तोपने का काम दूसरे से कराना। ढांकवाना। छिपवाना।

शोषा—संज्ञा पु० [हि० शूरपना] एक टाँके में ली हुई सिलाई।

मुहा०—शोषा भरना = टाँके लगाना। सीना। सीधी सिलाई करना।

शोषाई—संज्ञा स्त्री० [हि० शोषना] १. तोपने की क्रिया या भाव। २. तोपने की मजदूरी।

शोषाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'शोषवाना'।

शोषास—संज्ञा पु० [देश०] भाड़ू देनेवाला। भाड़ू बरदार।

शोषी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'शोषी'।

शोफ(५)—संज्ञा पु० [फ्रा० तुफ (अभ्य०)] दुःख। पश्चात्ताप। अफसोस। उ०—तालिब मतलूब को पहुँचे तोफ करे दिल अंधर।—कबीर सा०, पृ० ८८८।

शोफगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तोहफा] तोफा या उम्दा होने का भाव। खूबी। प्रशंसापन।

शोफाँ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'शोष'। उ०—दो तोफाँ वही गोला रोहना मोरछा दोला।—बिकी० मं०, भा० ३, पृ० १२७।

शोफाँ—वि० [म० तोहफा] बढ़िया।

शोफाँ—संज्ञा पु० दे० 'तोहफा'।

शोफान(५)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तूफान'। उ०—साहिब वह कहाँ है कहाँ फिर नहीं है, हिंदू और तुर्क शोफान करता।—सं० दरिया, पृ० २७।

शोषड़ा—संज्ञा पु० [फ्रा० तोबरा या तुबर] चमड़े या टाट आदि का वह पैला जिसमें दाना भरकर बोई के खाने के लिये उसके मुहरे पर बाँध देते हैं।

क्रि० प्र०—बढ़ाना।

मुहा०—शोषड़ा बढ़ाना = बोलने से रोकना। मुहरे बंद करना।

शोषा—संज्ञा स्त्री० [म० तोबहा] अपने किए पापों या दुष्कृत्यों आदि का स्मरण करके पश्चात्ताप करने और भविष्य में वैसा पाप या दुष्कृत्य न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा। किसी कार्य को विशेषतः अनुचित कार्य को भविष्य में न करने की शपथपूर्वक दृढ़ प्रतिज्ञा। उ०—लखे जग लोक दुखदाई। नम्र शोषा हाथ हाई।—संत तुरसी०, पृ० ४४।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार कभी कभी किसी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति घृणा प्रकट करने के समय भी होता है।

मुहा०—शोषा तिल्ला करना या मचाना = रोते, चिल्लाते या दीनता दिखलाते हुए शोषा करना। शोषा तोड़ना = प्रतिज्ञा भंग करना। जिस काम से शोषा कर चुके हों, उसे फिर करना। शोषा करके (कोई बात) कहना = अभिमान छोड़कर अथवा ईश्वर से डरकर (कोई बात) कहना। शोषा बुलवाना = किसी को इतना तंग या विवश करना कि उसे शोषा करनी पड़े। पूर्ण रूप से परास्त करना। ची बुलवाना।

शोम—संज्ञा पु० [सं० शोम] समूह। डेर। न०—(क) जातुधान दावन परावन को दुर्ग अयो महामीन वास तिमि शोमनि को थल भो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दिनकर के उदय शोम तिमिर फटत।—तुलसी (शब्द०)। (ग) चहुँ धाँ तें महा तरपे बिजुरी तम शोम में आजु तमासे करे।—किशोर (शब्द०)।

शोमड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तूमड़ी'।

शोमर—संज्ञा पु० [सं०] १. भाले की तरह एक प्रकार का अस्त्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था। इसमें लकड़ी के डंडे में धागे की ओर लोहे का बड़ा फल लगा रहता था। शपला। शपल। २. बारह मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में एक गुरु और एक लघु होता है। जैसे, तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल। कोप्यो समर श्रीराम। चले विशिख निसित निकाम।—तुलसी (शब्द०)। ३. एक देश का नाम जिसका उल्लेख कई पुराणों में है। ४. इस देश का निवासी। ५. राजपूत क्षत्रियों का एक प्राचीन राजवंश जिसका राज्य दिल्ली में आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक था।

विशेष—प्रसिद्ध राजा अलंगपाल (पृथ्वीराज के नाना) इसी वंश के थे। पीछे से तोमरों ने कन्नौज को अपना राजनगर बनाया था। कन्नौज में इस वंश के प्रसिद्ध राजा जयपाल हुए थे। आजकल इस वंश के बहुत ही कम क्षत्रिय पाए जाते हैं।

शोमरग्रह—संज्ञा पु० [सं०] शोमरधारी सैनिक [को०]।

शोमरधर—संज्ञा पु० [सं०] १. 'शोमरग्रह'। २. अग्नि [को०]।

शोमरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुवरिका'।

शोमरी(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. दे० 'तूमड़ी'। २. कदुआ कदु।

शोमा(५)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तूबा'। उ०—मेहर का जामा और शोमा भी मेहर का। मेहर का आया इस दिल को पिलाए।—मल्ल०, पृ० ३१।

शोय—संज्ञा पु० [सं०] १. जल। पानी। पूर्वाषाढा नक्षत्र।

तोय^१—ध्वज [हि० तो] तो भी। फिर भी। उ०—बहुधाणी
कुल बल्लही, बियो न बल्लै कोय। बाड न घट्टै खूँब की
सीस पलटै तोय।—रा० क०, पृ० ११६।

तोय^१—सर्व० [हि० तो] दे० 'तुम्हें'। उ०—मैं पठई वृषभानु के,
करनि सगाई तोय।—नंद० प्र० पृ० १६५।

तोयकर्म—संज्ञा पुं० [सं० तोयकर्मन्] तर्पण।

तोयकाम^१—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बेंत जो जल के समीप
उत्पन्न होता है। बानीर।

तोयकाम^२—वि० १. जल चाहनेवाला। २. प्यासा [को०]।

तोयकुम्भ—संज्ञा पुं० [सं० तोयकुम्भ] सेवार।

तोयकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत।

विशेष—इसमें जल के सिवा घीर कुछ आहार ग्रहण नहीं किया
जाता। यह व्रत एक महीने तक करना होता है।

तोयक्रीड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तोयक्रीडा] जल में खेल करना। जल-
क्रीडा [को०]।

तोयगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल [को०]।

तोयचर—संज्ञा पुं० [सं०] जलचर [को०]।

तोयडिंब—संज्ञा पुं० [सं० तोयडिम्ब] घोला। पत्थर। करका।

तोयडिम्भ—संज्ञा पुं० [सं० तोयडिम्भ] दे० 'तोयडिंब' [को०]।

तोयद^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. नागरमोषा। ३.
बी। ४. वह जो जल दान करता हो (जलदान का माहा-
त्म्य बहुत अधिक माना जाता है)।

तोयद^२—वि० जल देनेवाला।

तोयदागम—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु। बरसात।

तोयदात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] शरद ऋतु [को०]।

तोयधर—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

तोयधार—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। २. मोषा। ३. वर्षा [को०]।

तोयधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। सागर। २. चार की
संख्या [को०]।

तोयधिप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] लौंग।

तोयनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। सागर। २. चार की
संख्या [को०]।

तोयनीबी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

तोयपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] करेला।

तोयपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपिप्पली।

तोयपुष्पो—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष। पाँडर।

तोयप्रधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष। पाँडर [को०]।

तोयप्रसादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तोयप्रसादनफल'।

तोयप्रसादनफल—संज्ञा पुं० [सं०] निर्मली।

तोयफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरबूज या ककड़ी आदि की बेल।

तोयमल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र का फेन [को०]।

तोयमुष्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाघ। २. मोषा।

तोययंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तोययन्त्र] १. जलघड़ी। २. फीवारा [को०]।

तोयरस—संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्रता। नमी [को०]।

तोयराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. बरुण [को०]।

तोयराशि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. तालाब या झील [को०]।

तोयवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] करेले की बेल।

तोयवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार।

तोयवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल का किनारा। तीर। तट [को०]।

तोयव्यतिकर—संज्ञा पुं० [सं०] संगम। जैसे, नदियों का [को०]।

तोयशुक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीपी [को०]।

तोयशूक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार [को०]।

तोयसर्पिका—संज्ञा पुं० [सं०] मेंढक [को०]।

तोयसूचक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में वह योग जिसमें वर्षा
होने की सूचना मिले। २. मेंढक [को०]।

तोयांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं० तोयाञ्जलि] दे० 'तोयकर्म' [को०]।

तोयाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाडव अग्नि [को०]।

तोयात्मा—संज्ञा पुं० [सं० तोयात्मन्] ब्रह्म [को०]।

तोयाधार—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्करिणी। तालाब।

तोयाधिवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष।

तोयालय—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर [को०]।

तोयाशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. झील। २. कुम्भी कूप। ३. जल-
संग्रह [को०]।

तोयेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. बरुण। २. शतभिषा नक्षत्र। ३. पूर्वा-
षाढा नक्षत्र।

तोयोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा [को०]।

तोय^१—संज्ञा पुं० [सं० तुवर] शरहर।

तोय^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोड़'। उ०—प्रादि बहुमाण
रजपूती का तोर। पाछे मुसलमान बादसाही का जोर।—
शिवर०, पृ० ५५।

तोय^३—वि० [हि०] दे० 'तेरा'।

तोय^४—संज्ञा स्त्री० [प्र० तोर] तोर। तरीका। ढंग। उ०—
तो राखे सिर पर तिको, तज जबरी रा तोर।—बाँकी०
प्र०, भा० २, पृ० ११५।

तोयई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरई'।

तोयकी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की वनस्पति जो भारत के
गरम प्रदेशों और लंका में प्रायः घास के साथ होती है।

विशेष—पश्चिमी भारत में प्रकाल के दिनों में गरीब लोग इसके
दानों आदि की रोटियाँ बनाकर खाते थे।

तोयण—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी घर या नगर का बाहरी फाटक।
बहिर्द्वार। विशेषतः वह द्वार जिसका ऊपरी भाग मंडपाकार
तथा मालामों और पताकामों आदि से सजाया गया हो।
उ०—स्वच्छ सुंदर और विस्तृत घर बने; ईद्रघनुवाकार
तोयण हैं तने।—साकेत, पृ० ३। २. वे मासाएँ आदि जो

सजावट के लिये खंभों और दीवारों आदि में बाँधकर लटकवाई जाती हैं। बंधनवार। ३. शोवा। गला। ४. महादेव।

शोरखमाल—संज्ञा पुं० [सं०] प्रवृत्तिका पुरी।

शोरखस्कटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्योधन की उस सभा का नाम जो उसने पांडवों की मय दानववाली सभा देखकर ईर्ष्यावश बनवाई थी।

शोरन^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोरण'।

शोरन तेगा^२—संज्ञा पुं० [हि०] तोड़ना + तेगा [एक प्रकार का तेगा। उ०—शोरन के तेगा तोरन तेगा सकल सुवेगा अधिर भरे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८।

शोरना^३—क्रि० स० [हि०] दे० 'तोड़ना'। उ०—काहे को लगायो सवेहिया रे भव तोरलो न जाय।—पलदू०, पृ० ८२।

शोरय^४—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—खुले सुभाय मोरयं, लखी वरस तोरयं।—ह० रासो, पृ० १३।

शोरश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० शोरश्रवस्] शृंगिरा ऋषि का एक नाम।

शोराँ^५—सर्व० [हि०] दे० 'तोरा'। उ०—नानक बगोयद जी तोराँ तिरा आकरा पारवाक।—कबीर म०, पृ० ४११।

शोरा^६—संज्ञा पुं० [फा०] तुरह, तुरा। कलगी।

शोरा^७—सर्व० [हि०] दे० 'तेगा'। उ०—प्रलकाउर मुरि मुरि गा तोरा।—जायसी ग्रं०, पृ० १४३।

शोराई^८—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वरा + हि० ई (प्रत्य०)] वेग। शीघ्रता। तजी।

शोरादार^९—वि० [हि०] तोड़ा (= प्रासुषण) + फा० वार] तोड़ेदार। मध्ययुग के वे ताजीमी सरदार या मनसबदार, जिन्हें बादशाह सम्मानार्थ पैरो में पहनने के लिये सोने के तोड़े या कड़े प्रदान करता था। ओष्ठ। प्रतिष्ठित। उ०—तोरादार सकल तिहारे मनसबदार।—भूषण ग्रं०, पृ० २७७।

शोराना^{१०}—क्रि० स० [हि०] दे० 'तुड़ाना'।

शोरावती^{११}—वि० [हि०] वेगवाली। उ०—विषम विषाद शोरावति धारा। मय भ्रम भँवर प्रवृत्त अपारा।—तुलसी (शब्द०)।

शोरावान्^{१२}—वि० [सं० त्वरावत्] [वि० स्त्री०] तोरावती] वेगवान्। तेज।

शोरिया^{१३}—संज्ञा स्त्री० [सं० तूरी] गोटा किनारी आदि बुननेवालों का लकड़ी का वह छोटा बेलन जिसपर वे बुना हुआ गोटा पट्टा और किनारी आदि बराबर सपेटते जाते हैं।

शोरिया^{१४}—संज्ञा स्त्री० [हि०] तोरना (= तोड़ना) + इया (प्रत्य०)] १. वह गाय या भैंस जिसका बच्चा मर गया हो और जिसका दूध दूहने के लिये कोई युक्ति करनी पड़ती हो।

शोरिया^{१५}—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सरसों। तोरी।

तोरी^{१६}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरई'।

तोरी^{१७}—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों।

तोरी^{१८}—सर्व० [हि०] दे० 'तेरा'। उ०—कहे धर्मदास कर जोरी। खलो जहूँ देस है तोरी।—धरम० म०, पृ० ६।

तोली^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. तोला (तोल) जो ८० रस्ती के बराबर होता है। २. तोल। वजन।

तोली^२—संज्ञा पुं० [देश०] नाव का डंडा। (लख०)।

तोली^३—वि० [हि०] दे० 'तुल्य'। उ०—साने कोने भावे बुरूप बोल मने पाबोल आपन तोल।—विद्यापति, पृ० १२०।

तोलीक—संज्ञा पुं० [सं०] तोला (तोल)। बारह भांशे का वजन।

तोलीन^४—संज्ञा पुं० [सं०] १. तोलने की क्रिया। २. उठाने की क्रिया।

तोलीन^५—संज्ञा स्त्री० [सं०] उतोलन] वह लकड़ी जो छत के नीचे सहारे के लिये लगाई जाती है। चाड़।

तोलीना—क्रि० स० [हि०] दे० 'तोलना'। उ०—लोचन मृग सुमग जोर राग रूप मए भोर भोह भनुष शर कटाक्ष सुरात व्याध तोले री।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—तोल तोलकर बोलना = दे० 'तोल तोलकर बोलना'।

उ०—मत. वक्ता अपनी बातों को तोल तोलकर नहीं बोलता।—शैली, पृ० ४६।

तोलवाना—क्रि० स० [हि०] दे० 'तोलवाना'।

तोला—संज्ञा पुं० [सं०] तोलक] १. एक तोल जो बारह भांशे या छानबे रस्ती की होती है। २. इस तोल का बाट।

तोलाना—क्रि० स० [हि०] दे० 'तोलाना'।

तोलि^६—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोला'। उ०—पंच तोलि पंच मुहरे सु मानि।—ह० रासो, पृ० ६०।

तोलिषा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोलिया'।

तोली—वि० [हि०] तुलना] तुली हुई। उ०—यह प्राँख कहीं कुछ बोली। यह हुई ध्याम की तोली।—प्रचना, पृ० २४।

तोल्य^७—वि० [सं०] जिसे तोला जाय [को०]।

तोल्य^८—संज्ञा पुं० तोलना। तोलने की क्रिया [को०]।

तोवाली^९—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—अथ भूप दररी तोवाली धरनी मोहे रूप उद्योत।—रघु० क० पृ० २४६।

तोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिसा। २. हिसा करनेवाला। हिसक।

तोशक—संज्ञा स्त्री० [तु०] दोहरी चादर या झोल में रूई, तारियल की जटा आदि भरकर बनाया हुआ गुदगुदा बिछोना। हलका गद्दा।

यौ०—तोशकखाना।

तोशकखाना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोशाखाना'।

तोशदान—संज्ञा पुं० [फा०] तोशदान] १. वह धैली आदि जिसमें मार्ग के लिये यात्री, विशेषतः सैनिक अपना जलपान आदि या दूधपरी आवश्यक चीजें रखते हैं। २. चमड़े का वह छोटा बक्स या थैली जो सिपाहियों की पेटों में लगी रहती है और जिसमें कारतूस रहता है।

तोशल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोषल'। उ०—विदित है बल वज्र शरीरता विकटता शल तोशल कूट की।—प्रिय०, पृ० ३१।

तोशा^१—संज्ञा पुं० [क्रा० तोशह्] १. वह साध पदार्थ जो यात्री मार्ग के लिये अपने साथ रख लेता है।

यौ०—तोशे आकबत = पुण्य। चर्माचरण (जिसमें परलोक बने)। २. साधारण खाने पीने की चीज। जैसे, तोशा से भरोसा।

तोशा^२—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का गहना जिसे गाँव की स्त्रियाँ बहि पर पहनती हैं।

तोशाखाना—संज्ञा पुं० [तु० तोषक + क्रा० खानह्] वह बड़ा कमरा या स्थान जहाँ राजाओं और अमीरों के पहनने के बढ़िया कपड़े और गहने आदि रहते हों। वस्त्रों और आभूषणों आदि का भंडार। उ०—जो राजा अपने वस्त्र या खजाने, तोशे-खाने को कभी नहीं सम्हालते, जो राजा अपने बड़ों की धरोहर शस्त्रविद्या को जड़ मूल से भूल गए, उनके जीव पर धिक्कार है।—श्रीनिवास० प्र०, पृ० ८५।

तोष^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. छपाने या मन भरने का भाव। तुष्टि। संतोष। तृप्ति। २. प्रसन्नता। प्रानंद। ३. भागवत के अनुसार श्वायम्भुव मन्वन्तर के एक देवता का नाम। ४. श्रीकृष्ण-चंद्र के एक सखा नाम।

तोष^२—वि० [सं० तष] प्रत्य। छोड़ा।—(प्रनेकार्यं)।

तोषक—वि० [सं०] संतुष्ट करनेवाला। तोष देने या तृप्त करनेवाला। तोषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृप्ति। संतोष। २. संतुष्ट करने की क्रिया या भाव।

तोषणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

तोषना^१—क्रि० प्र० [सं० तोष] १. संतुष्ट करना। तृप्त करना। उ०—प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना।—मानस, १।७७। २. संतुष्ट होना। तृप्त होना।

तोषपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें राज्य की ओर से जागीर मिलने का उल्लेख रहता है। बलिशानामा।

तोषल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंस के एक असुर मल्ल का नाम जिसे धनुर्यज्ञ में श्रीकृष्ण ने मार डाला था। २. मूसल।

तोषार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुषार'। उ०—तुलक तोषारहि चलल हाट भनि हेडा संगह।—कीर्ति०, पृ० ४८।

तोषित—वि० [सं०] जिसका तोष हो गया हो, भयवा जिसे तृप्त किया गया हो। तुष्ट। तृप्त।

तोषी—वि० [सं० तोषिन्] १. जिससे संतुष्ट हुआ जाय। २. संतुष्ट करनेवाला। प्रसन्न करनेवाला। (विशेषतः समासांत में प्रयुक्त)।

तोस^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोष'। उ०—सूर घपाए खुज्रबाँ ती डरपावे तोस।—रा० ६०, पृ० ७६।

तोसक^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोषक'। उ०—गुन कर पलंग जाग कर तोसक सुरत तकिया सगावो। जो सुल चाहो सोई सतमहल बहुर दुख नहि पावो।—कबीर श०, भा० १, पृ० १०।

तोसदान—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोषदान'। उ०—तोसदान चकमक पचहा गोवीन भरावी।—ब्रेमचन०, भा० १, पृ० १३।

तोसय^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तोषक'। उ०—गरम कम तोसयं डके पलंग पोसयं।—पृ० रा०, १७। ५४।

तोसक^२—संज्ञा पुं० [सं० तोषल] दे० 'तोषल'।

तोसा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोशा'। उ०—कुछ गाँठ खरबी मिहर तोसा खैर खुबीहा पीर बे।—रै० बानी, पृ० ३३।

तोसाखाना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोशाखाना'। उ०—तेरे काज गजी गज चारिक, भरा रहै तोसाखाना।—संतवाणी०, पृ० ७।

तोसागार^१—संज्ञा पुं० [हि० तोस + सं० सागार] दे० 'तोशाखाना'।

तोसौ^१—सर्व [हि० तो + सौ] प्रुक्से। उ०—छहो तोसौ नंद लाहिले ऋगरींगी। मेरे संग की दूरि जाति है महुकी पटक के डग-रौंगी।—नंद० प्र०, पृ० ३६१।

तोहफगी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तोहफह + क्रा० गी (प्रत्य०)] भलाई। अच्छापन। उम्हगी।

तोहफा^१—संज्ञा पुं० [प्र० तोहफह] सीगात। उपायन। बेंट। उपहार।

तोहफा^२—वि० अच्छा। उत्तम। बढ़िया।

तोहमत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] मिथ्या अभियोग। वृथा लगाया हुआ दोष। झूठा कलंक।

क्रि० प्र०—जोड़ना।—देना।—धरना।—नगाना।—लेना।

मुहा०—तोहमत का घर या हट्टी = वह कार्य या स्थान जिसमें वृथा कलंक लगने की संभावना हो।

तोहमती—वि० [प्र० तोहमत + क्रा० ई (प्रत्य०)] झूठा अभियोग लगानेवाला।

तोहरा^१—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—हमह संग सब तोहरे प्रायब।—कबीर सा०, पृ० ५३१।

तोहार^२—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा'।

तोहि^१—सर्व० [हि० तू या तै] १. तुझको। तुझे। २. तुम्हारा। उ०—हिव मालवणी वीनबह, हूँ प्रिय दासी तोहि।—ढोला०, पृ० ३४१।

तोहे^१—सर्व० [हि०] दे० 'तोहि'। उ०—वरण भलि नहि तुष रीति एहि मति तोहे कलंक लागल।—बिद्यापति, पृ० २३०।

तौ^१—प्रथ्य० [हि०] दे० 'तउ'। उ०—तौ लौ रहि प्यारी औ लौ लाल ही ले आऊँ।—नंद० प्र०, पृ० ३७१।

तौ^२—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यों'। उ०—ऐसे प्रभु वे कीन हँकारे। तौ तौ बड़ें गुपाल पियारे।—नंद० प्र०, पृ० १६२।

तौकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तौसना'।

तौबर^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोमर'। उ०—लोहाया तौबर प्रमंग मुहर सम्ब सामंत।—पृ० रा०, ४। १६।

तौसा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हि० ताव + ऊष्म, हि० ऊमस, घीस] वह प्यास जो धूप खा जाने के कारण लगे और किसी भाँति न बुझे।

तौसना—क्रि० प्र० [हि० तौस] १. गरमी से झुनस जाना। गरमी के कारण संतप्त होना। २. प्यासा होना। पिपासित होना।

तौसा^२—सं० पुं० [सं० ताप, हि० ताव + सं० ऊष्म, हि० ऊमस, घीस] अधिक ताप। कड़ी गरमी।

सौ(१) —कि० वि० [हि०] दे० 'तो' ।

सौ^२ —कि० प्र० [हि० हती] या । उ०—वेऊ आए द्वारे हँ हुती
अगवारे और द्वारे अगवारे कोऊ तो न तिहि काल में ।—
पद्माकर (च०) ।

सौक —संज्ञा पु० [प्र० तोक] १. हँसुली के आकार का घने में पहनने
का एक प्रकार का गहना । यह पटरी की तरह कुछ चौड़ा
होता है और इसके नीचे घुंघरू आदि लगे होते हैं ।

विशेष—प्रायः मुसलमान लोग अपने बच्चों को इसी प्रकार का
चांदी का घेरा या गंडा भी पहनाते हैं जिसमें ताबीज आदि
बंधी होती है । कभी कभी यह केवल मंगल पूरी करने के
लिये भी पहनाया जाता है ।

२. इसी आकार की पर तोल में बहुत भारी बुत्ताकार पटरी
या मंडरा जिसे अपराधी या पागल के गले में इसलिये पहना
देते हैं जिसमें वह अपने स्थान से हिल न सके ।

३. इसी प्रकार का वह प्राकृतिक चिह्न जो पक्षियों आदि के गले
में होता है । हँसुनी । ४. पट्टा । अपराध । ५. कोई गोल
घेरा या पदार्थ ।

सौकीर —संज्ञा स्त्री० [प्र० सौकीर] समान । प्रतिष्ठा । इज्जत ।
उ०—इस सत्यगुरु की खादिम सौकीर मे देखो ।—कबीर
मं०, पृ० ४६७ ।

सौके गुलामी —संज्ञा पु० [प्र० सौकेगुलामी] गुनाम होने की
विवेकात् (को०) ।

सौखिक —संज्ञा पु० [सं०] धनुराशि ।

सौचा —संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार का गहना जिसे कहीं कहीं देहाती
स्त्रियाँ मिर पर पहनती हैं ।

सौजा^१ —संज्ञा पु० [प्र० सौजी] वह द्रव्य जो खेतिहरों को विवाहादि
में लक्ष्मं करने के लिये पेशगी दिया जाता है । बियाही ।

सौजा^२ —वि० हाथ उधार । दस्तगर्दा ।

सौजी —संज्ञा स्त्री० [दे०] ताजियासरी । सुहरम मनाना । उ०—
सौजी और निमाज न जानूँ ना जानूँ धरि रोजा ।—मल्लूक,
पृ० ७ ।

सौतातिक —वि० [सं०] कुमारिल भट्ट से संबद्ध या संबंध रखनेवाला ।

विशेष—कुमारिल भट्ट का विशेषण तुतात या तुतातित या ।

सौतातित —संज्ञा पु० [सं०] १. जैनियों का भेद । २. कुमारिल भट्ट
का एक नाम ।

सौतिक —संज्ञा पु० [सं०] १. मुक्ता । मोती । ३. मोती का
सीप । मुक्ति ।

सौन^१ —संज्ञा स्त्री० [दे०] वह रस्सी जिससे गैया दुहने के समय
उसका बछड़ा उसके अगले पैर से बाँध दिया जाता है ।

सौन^२ —संब० [सं० ते] वह । सो । उ०—उनकी छाया सबको भाई ।
तोन छाँह सब घटहि समाई ।—कबीर सा०, पृ० ६१० ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दो वाक्यों का संबंध पूरा करने के
लिये 'जोन' के साथ होता है ।

सौन(१) —संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तूण' । उ०—बड़ि नरिद कमधज्ज
तोन तन सज्जन वारो ।—पृ० रा०, २६।१६ ।

सौना^१ —वि० [हि० ताना] जिससे कोई चीज तई या मूँची जाय ।

सौनी^१ —संज्ञा स्त्री० [हि० तवा का स्त्री० अल्पा० रूप] रोटी सेंकने का
छोटा तवा । तई । तबी ।

सौनी^२ —संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तोन' ।

सौनी^३ —सर्व० [हि०] दे० 'तीन' ।

सौफ(१) —संज्ञा पु० [प्र० सौफ] चक्कर । परिक्रमा । उ०—बहुते
सौफ जाय तब वायफ ना देव जाय पहाड़ समुंदर ।—कबीर
सा०, पृ० ८८८ ।

सौफीक —संज्ञा स्त्री० [प्र० सौफीक] १. संयोगात् किसी वस्तु का
सुगमतापूर्वक प्राप्त हो जाना । २. देवकृपा । ईश्वरानुग्रह ।
३. शक्ति । सामर्थ्य । ३. हीसला । उमंग । ५. योग्यता ।
पात्रता (को०) ।

सौफीर(१) —संज्ञा स्त्री० [प्र० सौफीर] अधिकता । प्रचुरता । उ०—
रख अपने पनह गुनह ब सौफीर ।—कबीर मं०, पृ० ४२२ ।

सौबा —संज्ञा स्त्री० [प्र०] दे० 'सौबा' ।

सौरंगिक —संज्ञा पु० [सं० सौरङ्गिक] साईस (को०) ।

सौर^१ —संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ ।

सौर^२ —संज्ञा पु० [प्र०] १. चालढाल । चालचलन ।

यौ०—सौर तरीक या सौर तरीका = चाल चलन ।

मुहा०—सौर बेतौर होना = रंग ढंग खराब होना । लक्षण
बिगडना ।

२. अवस्था । दशा । हालत ।

मुहा०—सौर बेतौर होना = अवस्था बिगडना । दशा खराब होना ।

विशेष—उक्त दोनों अर्थों में इस शब्द का व्यवहार प्रायः
बहुवचन में होता है ।

३. तरीका । तर्ज । ढंग । ४. प्रकार । अति । तरह ।

सौर^३ —संज्ञा पु० [दे०] मयानी मयने की रस्सी । नेत्री ।

सौतश्रवस —संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का साम (गान) ।

सौरात —संज्ञा पु० [हि०] दे० 'सौरेत' ।

सौरायणिक —संज्ञा पु० [सं०] वह जो सूरायण यज्ञ करता हो ।

सौरि(१) —संज्ञा स्त्री० [हि० सौरि] घुमेर । घुमरी । चक्कर ।

सौरीत —संज्ञा पु० [हि०] दे० 'सौरेत' । उ०—उसका समाचार
सौरीत में उत्पत्ति की पुस्तक में है ।—कबीर मं०, पृ० ४२ ।

सौरुष्किक —वि० [सं०] तुरुष्क देश या जाति संबंधी (को०) ।

सौरूप —संज्ञा पु० [सं०] कामरूप में प्राप्त एक प्रकार का चंदन (को०) ।

सौरेत —संज्ञा पु० [इब०] यहूदियों का प्रधान धर्मग्रंथ जो हजारत
मुसा पर प्रकट हुआ था । इसमें सृष्टि और आदम की उत्पत्ति
आदि विषय हैं । उ०—जिसमें बनी इसराईल इस नियम पर
चले और इस नियमावली का नाम सौरेत पुस्तक ठहरा ।
—कबीर मं०, पृ० १६७ ।

तौर्य—संज्ञा पु० [सं०] १. ढोल मँजीरा आदि बाजे । २. ढोल मँजीरा आदि बजाना ।

तौर्यत्रिक—संज्ञा पु० [सं०] नाचना, गाना और बाजे बजाना आदि काम ।

विशेष—मनु ने इसे कामज व्यसन कहा है और त्याज्य बतलाया है ।

तौल^१—संज्ञा पु० [सं०] १. तराजू । २. तुला राशि ।

तौल^२—संज्ञा स्त्री० १. किसी पदार्थ के गुहत्व का परिमाण । भार का मान । वजन । २. 'गुहत्व' ।

विशेष—भारत की प्रधान तौल ये हैं—

४ छटाँक = १ पाव

१६ छटाँक = १ सेर

५ सेर = १ पंसेरी

८ पंसेरी या ४० सेर = १ मन

इनसे अन्न, तरकारी आदि भारी और अधिक मान में होने वाली चीजें तौली जाती हैं । हुलकी और थोड़ी चीजें तौलने के लिये इससे छोटी तौल यह है—

८ चावल = १ रत्ती

८ रत्ती = १ माशा

१२ माशा = १ तोला

५ तोला = १ छटाँक

उपर्युक्त तौलों का प्रचलन अब बंद हो गया है । अब तौल दशमिक प्रणाली पर चल रही है, जिसमें वजन क्विंटल, किलो ग्राम या ग्रामों में किया जाता है । इसमें सबसे अधिक वजन की तौल क्विंटल है और सबसे कम वजन की तौल मिलीग्राम ।

२. तौलने की क्रिया या भाव ।

तौलना—क्रि० सं० [सं० तौलन] १. किसी पदार्थ के गुहत्व का परिमाण जानने के लिये उसे तराजू या कटि आदि पर रखना । वजन करना । जोखना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

मुहा०—तौल तौलकर कदम धरना = सावधानी के साथ चलना ।

इस प्रकार धीरे चलना कि चलने में एक विशेषता आ जाय ।

उ०—कुछ नाज व अदा से तौल तौलकर कदम धरती है ।—

फिसाना०, भा० ३, पृ० २११ । किसी का तौलना = किसी की खुशामद करना ।

२. समझ बुझकर व्यवहार करना । ऐसा व्यवहार करना कि किसी प्रकार की गलती न हो ।

मुहा०—तौल तौलकर बोलना = अत्यंत सावधानी के साथ बोलना । ऐसे बोलना कि किसी प्रकार की गलती न हो जाय ।

३. किसी अस्त्र आदि को चलाने के लिये हाथ को इस प्रकार ठीक न करना कि वह अस्त्र अपने लक्ष्य पर पहुँच जाय । साधना ।

उ०—लोचन भृगु सुभग जोर राग रूप अणु और भीह धनुष शर कटाक्ष सुरति व्याध तौले री ।—सूर (चन्द०) ।

४—६२

४. जो या अधिक वस्तुओं के गुण, मान आदि का परस्पर तुलना करके विचार करना । तारतम्य जानना । मिलान करना । उ०—गए सब राज केते जग माँह जो बाहु बली बल बोलत है ।—सं० दरिया, पृ० ६३ । ५. गाड़ी का पहिया धौंगना । गाड़ी के पहिए में तेल देना ।

तौलवाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'तौलाई' ।

तौलवाना—क्रि० सं० [हि० तौलना का प्रे० रूप] तौलने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को तौलने में प्रवृत्त करना । तौलाना ।

तौला—संज्ञा पु० [हि० तौलना] १. दूध नापने का मिट्टी का बरतन । २. अनाज तौलनेवाला मनुष्य । बया । ३. तंबिया । ४. मिट्टी का कमोरा । ५. महुए की शराब ।

तौलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तौल + आई (प्रत्य०)] १. तौलने की क्रिया या भाव । २. वह धन जो तौलने के बदले में दिया जाय । तौलने की मजदूरी ।

तौलाना—क्रि० सं० [हि० तौलना का प्रे० रूप] तौलने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को तौलने में प्रवृत्त करना ।

तौलिक—संज्ञा पु० [सं०] चित्रकार ।

तौलिकिक—संज्ञा पु० [सं०] चित्रकार ।

तौलिया—संज्ञा स्त्री० [अ० टाबेल] एक विशेष प्रकार का मोटा झंझा जिससे स्नान आदि करने के उपरान्त शरीर पोंछते हैं ।

तौली^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार का मिट्टी की छोटी प्याली । २. मिट्टी का चौड़े मुँह का बड़ा बरतन जिसमें अनाज आदि, विशेषतः गुड़, रखते हैं ।

तौली^२—संज्ञा पु० [सं० तौलन] १. तौलनेवाला । २. तुलाराशि [को०] ।

तौलैया^१—संज्ञा पु० [हि० तौलना + ऐया (प्रत्य०)] अनाज तौलनेवाला मनुष्य । बया ।

तौलैया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तौलाई] तौलने का काम ।

तौल्य—संज्ञा पु० [सं०] १. वजन । भार । २. समता । सादृश्य ।

तौषार^१—संज्ञा पु० [सं०] १. तुषार का जल । पाले का पानी । २. हिम । पाला [को०] ।

तौषार^२—वि० [वि० स्त्री० तौषारी] बर्फीला । हिमयुक्त [को०] ।

तौसन—संज्ञा पु० [प्रा०] घोड़ा । अश्व । तुरंग । उ०—तौसने उमरे लौ दम भर नहीं रुकता 'रसा' ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८५० ।

तौसना^१—क्रि० प्र० [हि० तीस] गरमी से बहुत व्याकुल होना । उ०—नाम से बिलात बिललात अकुलात प्रति तात तात तौसियत भीसियत झारहीं ।—तुलसी (चन्द०) ।

तौसना^२—क्रि० सं० गरमी पहुँचाकर व्याकुल करना ।

तौहीद—संज्ञा स्त्री० [अ०] एकेश्वरवाद । उ०—कहे तीहीद क्या हैं मुँह कहो अब ।—दक्खिनी०, पृ० ११६ ।

तौ०—तौहीदपरस्त = एकेश्वरवादी ।

तौहीन—संज्ञा स्त्री० [प्र०] अपमान । अप्रतिष्ठा । बेइज्जती ।

यो०—तौहीने अदामत = न्यायालय का अपमान ।

तौहीनी०—संज्ञा स्त्री० [प्र० तौहीन] दे० 'तौहीन' ।

तौहू०—अव्य० [हि० तह] तब भी । तो भी । तिसपर भी ।

उ०—पानी माहीं घर करै, तौहू मरे पियास ।—कबीर सा०, पृ० ५ ।

त्यक्त—वि० [सं०] छोड़ा हुआ । त्यागा हुआ । जिसका त्याग कर दिया गया हो । उ०—निकल गए सारे कंठक से व्यथा प्राप ही त्यक्त हुई ।—साकेत, पृ० ०७६ ।

त्यक्तजीवित—वि० [सं०] १. जो प्राण छोड़ने की तत्पर हो । मरने को तैयार । २. बड़े से बड़ा खतरा उठाने को तैयार [को०] ।

त्यक्तप्राण—वि० [सं०] दे० 'त्यक्तजीवित' [को०] ।

त्यक्तलज्ज—वि० [सं०] जिसने लज्जा त्याग दी हो । निर्लज्ज । बेहया [को०] ।

त्यक्तविधि—वि० [सं०] नियमों का अतिक्रमण करनेवाला । नियम न माननेवाला [को०] ।

त्यक्तव्य—वि० [सं०] जो छोड़ने योग्य हो । त्यागने योग्य ।

त्यक्तश्री—वि० [सं०] भाग्यहीन । अभाग [को०] ।

त्यक्ता—वि० [सं०] त्यागनेवाला । जिसने त्याग किया हो ।

त्यक्ताग्नि—वि० [सं०] गृहाग्नि का परित्याग करनेवाला (ब्राह्मण) ।

त्यक्तात्मा—वि० [सं०] त्याक्तात्मन्] निराशा । हताश [को०] ।

त्यग्नायि—संज्ञा पुं० [सं०] त्याग्नायिम्] एक प्रकार का साम ।

त्यजण०—संज्ञा पुं० [सं०] त्यजनीय] त्याग । उ०—शब्दं स्पर्शं रूपं त्यजणं । त्यो रसगंधं नाही भजणं ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३७ ।

त्यजन—संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ने का काम । त्याग ।

त्यजनीय—वि० [सं०] जो त्यागने योग्य हो । त्याज्य ।

त्यज्यमान—वि० [सं०] जिसका त्याग कर दिया गया हो । जो छोड़ दिया गया हो ।

त्यांतिक०—प्रत्य० [?] तब तब (टीका०) । उ०—पग्यो न दिल प्रभुरे पद पकज, असित न त्यांतिक भरे ।—रघु० क०, पृ० १८ ।

त्याँ०—सर्व० [सं० तत्] दे० 'तिस' । उ०—ज्या की जोड़ी बीछड़ी त्याँ निसि नीद न आई ।—ढोला०, दू० ५८ ।

त्याँहा०—सर्व० [सं० तत्] 'तू' सर्वनाम के कर्मकारक का रूप । उ०—कबीर कहै हर पलडी, रयणि न भेलत त्याँहा ।—ढोला०, दू० ७१ ।

त्या०—प्रत्य० [सं० तत्] से । उ०—किसे बिधाने कहता मेरा जाये तन तू सब त्या न्यारा ।—दक्खिनी०, पृ० ६६ ।

त्याग—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ पर से अपना स्वत्व हटा लेने अथवा उसे अपने पास से अलग करने की क्रिया । उत्सर्ग ।

क्रि० प्र०—करना ।

यो०—त्यागपत्र ।

२. किसी बात को छोड़ने की क्रिया । जैसे असत्य का त्याग ।

३. संबंध या लगाव न रखने की क्रिया । ४. विरक्ति आदि के कारण सांसारिक विषयों और पदार्थों आदि को छोड़ने की क्रिया ।

विशेष—हिंदुओं के धर्मग्रंथों में इस प्रकार के त्याग का बहुत कुछ माहात्म्य बतलाया गया है । त्याग करनेवाला मनुष्य निष्काम होकर परोपकार के तथा अन्याय शुभ कर्म करता रहता है और विषय वासना या सुखोपभोग आदि से किसी प्रकार का संबंध नहीं रहता । ऐसा मनुष्य मुक्ति का अधिकारी समझा जाता है । गीता में त्याग को संन्यास की ही एक विशेष अवस्था माना है । उसके अनुसार काम्य धर्म का परित्याग तो संन्यास है और कर्मों के फल की छाया न रखना त्याग है । मनु के अनुसार संसार की और सब चीजें तो त्याज्य हो सकती हैं, पर माता, पिता, स्त्री और पुत्र त्याज्य नहीं हैं ।

५. दान । ४. कन्यादान (हि०) ।

त्यागना—क्रि० सं० [सं० त्याग] छोड़ना । तजना । पुष्ट करना । त्याग करना । उ०—ना त्यागलो काम ना त्यागलो क्रोध ।—प्राण०, पृ० ११६ ।

संयो० क्रि०—देना ।

त्यागपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पत्र जिसमें किसी प्रकार के त्याग का उल्लेख हो । २. इस्तीफा । ३. तिलाकनामा ।

त्यागवान्—वि० [सं० त्यागवान्] [वि० स्त्री० त्यागवती] जिसने त्याग किया हो अथवा जिसमें त्याग करने की शक्ति हो । त्यागी ।

त्यागी—वि० [सं० त्यागिन्] जिसने सब कुछ त्याग दिया हो । स्वार्थ या सांसारिक सुख को छोड़नेवाला । विरक्त ।

त्याजक—वि० [सं०] तजनेवाला । त्यागी [को०] ।

त्याजन—संज्ञा पुं० [सं०] त्याग । त्याग करना [को०] ।

त्याजना०—क्रि० सं० [सं० त्याजन] त्यागना । उ०—अति उमंग भ्रंग भ्रंग भरे रंग, सुकर मुकर निरखत नहि त्याजे ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८० ।

त्याजित—वि० [सं०] १. जिससे त्याग कराया गया हो या छुड़वाया गया हो । २. जिसका अपमान कराया गया हो । ३. छोड़ा हुआ । त्यक्त [को०] ।

त्याज्य—वि० [सं०] त्यागने योग्य । जो छोड़ देने योग्य हो ।

त्यारी—वि० [हि०] दे० 'तैयार' । उ०—एक कटे एक पड़े एक कटने की तयार । भड़े रहैं कैंते सुमन मीता, तेरे द्वार ।—रसनिधि (शब्द०) ।

त्यारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तैयारी' । उ०—बाजराज बारण रथा, धवर, समाज धर्मा । हाजर तिणुबारी हुषा, तयारी करे तमाम ।—रघु० क०, पृ० ६३ ।

त्यारे०—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारे' । उ०—बितीया के बोलत बोलने रे, तयारे बिरत दस भास ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६३३ ।

लुहिन—वि० [हि०] दे० 'ल्यो'। उ०—करनहरी लेमकन, बाँध गव बात न बोले। बसे जगै केहरी, लुहिन बोले लग तोले।

—रा० क०, पृ० १५७।

ल्यो—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ल्यो'।

ल्योरसा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ल्योरस'।

ल्यो—क्रि० वि० [सं० लृ + एवम् या हि०] १. उस प्रकार। उस तरह। उस भाँति। उ०—ये बलि या बलि के धरानि में आनि चढ़ी कछु माधुरई सी। ज्यों पदमाकर माधुरी ल्यों कुच दोउन की चढ़ती उनई सी। ज्यों कुच ल्यों ही नितंब चढ़े कछु ज्यों ही नितंब ल्यों चातुरई सी। जानी न ऐसी चढ़ाचढ़ि में किह्विही कटि बीच ही लूटि लई सी।—पदमाकर (शब्द०)। २. उसी समय। तत्काल। जैसे,—ज्यों मैं वहाँ पहुँचा ल्यों वह उठकर चल दिया।

विशेष—इसका व्यवहार 'ज्यों' के साथ संबंध पुरा करने के लिये होता है।

ल्यो^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० तन] धोर। तरफ। उ०—साबर बारहि बार सुभाय चितै तुम ल्यो हमरो मन मोहैं। पूछति ग्रामबधू सिय सों कही साबरे से सखि रावरे को हैं।—तुलसी (शब्द०)।

ल्योरसा—संज्ञा पु० [हि० (ति) + वरस] १. पिछला तीसरा वर्ष। वह वर्ष जिसे बीते दो बरस हो चुके हों। जैसे,—हम ल्योरस वहाँ गए थे। २. आगामी तीसरा वर्ष। वह वर्ष जो दो वर्षों के बाद आनेवाला हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कभी कभी विशेषण के रूप में भी होता है। जैसे, ल्योरस साल।

ल्योरी—संज्ञा स्त्री० [हि० त्रिकुटी, सं० त्रिकूट (=चक्र)] धवलोकन। चितवन। दृष्टि। निगाह।

मुहा०—ल्योरी चढ़ना या बदलना = दृष्टि का ऐसी अवस्था में हो जाना जिससे कुछ क्रोध भलके। आँखें चढ़ना। ल्योरी में बल पड़ना = ल्योरी चढ़ना। ल्योरी चढ़ाना या बदलना = आँखें चढ़ाना। आँखें चढ़ाना। दृष्टि या आकृति से क्रोध के चिह्न प्रकट करना। ल्योरी में बल डालना = ल्योरी चढ़ाना।

ल्योहार—संज्ञा पु० [सं० तिथि + वार] वह दिन जिसमें कोई बड़ा धार्मिक या जातीय उत्सव मनाया जाय। पर्व दिन। जैसे, हिंदुओं के ल्योहार—वसहरा, दीवासी, होली आदि, मुसलमानों के ल्योहार—इद, शब बरात आदि; ईसाइयों के ल्योहार, बड़ा दिन, गुडफ्राइडे आदि।

मुहा०—ल्योहार मनाना = पर्व या उत्सव के दिन धार्मिक प्रमोद करना।

ल्योहारी—संज्ञा स्त्री० [हि० ल्योहार + ई० (प्रत्यय)] वह धन जो किसी ल्योहार के उपलक्ष में छोटी, लड़कियों या नौकरों आदि को दिया जाता है।

ल्यो—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ल्यो'।

ल्योनार—संज्ञा पु० [हि०, (देश०)] १. ढंग। तर्ज। उ०—(क) पाए हैं मनुहारि हित बारि अपूर बहार। लखि जीके नीके चुनच वे पीके ल्योनार।—शृ० सत० (शब्द०)। (ख) रही

गुही बेनी लखें गुहिबे के ल्योनार। लागे नीर चुषावने नोठि सुलाए बार।—बिहारी (शब्द०)। किसी कार्य को विशेष कुशलता के साथ करने की योग्यता।

ल्योर—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ल्योरी'। उ०—(क) द्योसक ते पिय चित चढ़ी कहीं चढ़ी है ल्योर।—बिहारी (शब्द०)। (ख) तेह तरेरो ल्योर करि कत करियत दुग सोल। लीक नहीं यह पीक की लूति मणि भूचक कपोल।—बिहारी (शब्द०)।

ल्योराना—क्रि० घ० [हि० ताँवर] माथा घूमना। सिर में चक्कर घाना।

ल्योरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ल्योरी'।

ल्योरस—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ल्योरस'।

ल्योहार—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ल्योहार'।

ल्योहारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ल्योहारी'।

ल्यंग—संज्ञा पु० [सं० लङ्ग] एक प्राचीन नगर का नाम जो पहले राजा हरिश्चंद्र का राजनगर था।

ल्यंबक^(१)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ल्यंबक'। उ०—नयी सिर नाग सुमंडिय जंग, धुरे सुर जोरय ल्यंबक संग।—पृ० रा०, २४।२२८।

ल्यंबकसखा^(१)—संज्ञा पु० [सं० ल्यंबक + सखा] शिव के मित्र। कुबेर। उ०—गुह्यक पति ल्यंबक सखा राजराज पुनि सोइ।—अनेकार्य०, पृ० २१।

ल्यंबकी^(१)—संज्ञा स्त्री० [राज० ल्यंबक] छोटा नगाड़ा। उ०—उभय सहस बाजित। डोल ल्यंबकी सुमत गुर।—पृ० रा०, २४।३२०।

ल्यंबक^(१)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ल्यंबक'। उ०—कलस बंक ल्यंबक लोह संकर बर बंघी।—पृ० रा०, २४।४५।

ल्यंबगल^(१)—संज्ञा पु० [राज० ल्यंबक] नगाड़ा। उ०—ल्यंबगल रिणतूर बिहरी बाजिया।—रघु० क०, पृ० ६३।

ल्यो^(१)—वि० [सं०] १. तीन। २. रक्षा करनेवाला। रक्षक (समासार्थ में प्रयुक्त)।

ल्यो^(२)—प्रत्यय० एक प्रत्यय जो सप्तमी विभक्ति के रूप में प्रयुक्त होता है।

ल्यो^(३)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ल्यो'। उ०—चंद्र ब्रह्म नख मंडि ल्यो सुनि श्रवनि धारहि।—पृ० रा०, पृ० ३६।

ल्यो^(४)—वि० [हि०] दे० 'ल्यो'। उ०—मरन काल ल्यो लोक में, अमर न दीये कोय।—कबीर सा०, पृ० ६६२।

ल्योकाल^(१)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ल्योकाल'। उ०—साही उर असुहावतो, राजावाँ रखवाल। जाँ जसराज प्रतिययो, ताँ सुर पूज ल्योकाल।—रा० क०, पृ० १६।

ल्योकुटाचल—संज्ञा पु० [सं० त्रिकूट + अचल] लंकास्थित त्रिकूट पर्वत। उ०—विर जोषाणी धेरियो फिर ल्योकुटाचल कीस।—रा० क०, पृ० ५७।

ल्यो^(५)—संज्ञा पु० [सं० त्रि] दे० 'तीन'। उ०—उछोरी री पोसाक ल्यो, जीवन मूली जाण।—बाँकी० घं०, भा० २, पृ० २२।

त्रयस④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिदश' । उ०—सत्रियाँ रा ऋतसीस कुम, त्रयस कोइ तेतीस । बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १०५ ।

त्रन④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तृन' ।

मुहा०—त्रन तोरना = दे० 'तृण तोड़ना' ('तृण' में) । उ०— तोरि त्रन तरुनिय कहत । चरनि सही तुम मार ।—पृ० २, १०६४ ।

त्रपित④—वि० [हि०] दे० 'तृप्ति' । उ०—उमा त्रपति रुधिरं अई धनि सूरन भुज दंड ।—पृ० २, २५७४४ ।

त्रपत्त④—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—तन ग्रीध महासद मन त्रपत्त । पूरिया रहै नित सगतपथ ।—रा० ६०, पृ० ७४ ।

त्रपनाना④—वि० [सं० तर्पण] तर्पण । संव्या करनेवाले । उ०— तो पंडित प्राये वेद भुलाये षटक रमाये त्रपनाये ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २३७ ।

त्रपवर④—वि० [सं० त्रपा] लज्जालु । लज्जाशील । उ०—कि करे न तसकर त्रपवर अदुध इष्ट मस्तहु सुमन ।—पृ० २, १०१३३ ।

त्रपा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० त्रपमान] १. लज्जा । लाज । शर्म । हया । उ०—ही लज्जा ब्रीडा त्रपा सकुच न कर बिनु काज । पिय प्यारे पै चलिय बलि प्रोपध खात कि लाज ।—नंददास (शब्द०) । २. छिनाल स्त्री । पुंश्चली ।

यो०—त्रपारंढा = १. छिनाल स्त्री । २. वेश्या । रंडी । ३. कीर्ति । यश ।

त्रपा^२—वि० लज्जित । शर्मिदा । उ०—भवधनु दलि जानकी विवाही भये बिहाल त्रपा हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रपानिरस्त—वि० [सं०] निलज्ज । धृष्ट [को०] ।

त्रपाहीन—वि० [सं०] निलज्ज । धृष्ट [को०] ।

त्रपारंढा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रपारंढा] वेश्या । रंडी [को०] ।

त्रपित—वि० [सं०] १. लज्जित । शर्मिदा । २. लज्जालु । लज्जा-शील [को०] । ३. विनीत । विनम्र [को०] ।

त्रपिष्ठ—वि० [सं०] अत्यंत तृप्त । परिवृत्त [को०] ।

त्रपु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सीसा । २. राँगा ।

त्रपुकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खीरा । २. ककरी ।

त्रपुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची ।

त्रपुल—संज्ञा पुं० [सं०] राँगा ।

त्रपुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. राँगा । २. खीरा ।

त्रपुषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ककड़ी । २. खीरा ।

त्रपुस—संज्ञा पुं० [सं०] १. राँगा । २. ककड़ी ।

त्रपुसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ककड़ी । २. खीरा । ३. बड़ा । इंद्रायन ।

त्रप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जमी हुई श्लेष्मा या कफ ।

त्रप्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] मट्टा [को०] ।

त्रषाट④—संज्ञा पुं० [हि०] नगारा । उ०—दसबल सज दुगम चक्रिय सुत दशरथ तहक तबल पत रुहत त्रषाट ।—रघु० ६०, पृ० ११६ ।

त्रभंगी④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिभंगी' । उ०—त्रभंगी छंदं १ वु चंदं गुन बहि बंदं गुन सोई ।—पृ० २, २४ । २४८ ।

त्रभवण④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिभुवन' । उ०—भुवण त रहिगी विले, त्रभवण हंडी राख ।—रा० ६०, पृ० ३६१ ।

त्रभुयण④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिभुवन' । उ०—प्राप्तस त निज गरज अब, मज त्रभुयण सूपाल ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४० ।

त्रमाला④—संज्ञा पुं० [हि० त्रवागल] नगाड़ा । उ०—रिण बलवंत रूप परमसंता प्रतिपाला । तूभ भुजा हरितण तहक बाज त्रमाला ।—रघु० ६०, पृ० ४ ।

त्रय^१—वि० [सं०] १. तीन । उ०—महाधोर त्रय ताप न जरई ।—तुलसी (शब्द०) । २. तीसरा ।

त्रय④^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिया' । उ०—त्रय जोरे कर हू को बील संभरि वै राह ।—पृ० २, २५ । ७३० ।

त्रयदेव④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिदेव' । उ०—अब मैं तुम किहों चिताई । त्रयदेवन की उत्तरति आई ।—कबीर सा० पृ० ८१७ ।

त्रयबिसत—वि० [सं० त्रयोविंशति] तेईस । तेईसवाँ । उ०—अ सुनि त्रयबिसत अघ्याइ । द्विज अरु द्विजपतिनि के भाइ —नंद० ग्रं०, पृ० ३०० ।

त्रयलोकी④—वि० [हि० त्रिलोकी] त्रिलोकपति । तीनों लोकों के स्वामी । उ०—रामचंद्र वर्णन करूँ, त्रयलोकी है नाथ ।—कबीर सा०, पृ० ८१३ ।

त्रयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीन वस्तुओं का समूह । त्रिगुह तीखट । जैसे, ब्रह्मा, विष्णु और महेश । उ०—(क) वे त्रयी अरु राजसिरी परिपूरनता शुभ योगमई है ।—केशव (शब्द०) । (ख) किधो सिंगार सुखमा सुप्रेम मिले चले जग चित बित लेन । अद्भुत त्रयी किधो पठई है विधि मग लोगन सुख देन ।—तुलसी (शब्द०) । २. सोमराजी लता । ३. दुर्गा । ४. वह स्त्री जिसका पति और बच्चे जीवित हो (को०) । ५. बुद्धि । समझ (को०) ।

त्रयोतनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. शिव (को०) ।

त्रयोधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक धर्म, जैसे, ज्योतिष्योम यज्ञ आदि ।

त्रयोमय—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. परमेश्वर ।

त्रयीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण ।

त्रयीविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रयो + विद्या] ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ये तीन वेद । उ०—ऊपर की पंक्तियों से त्रयीविद्या अथवा प्रथम तीन वेदों के दर्शन एवं कर्मकांड के सिद्धांतों की संक्षिप्त विवेचना की गई ।—सं० दरिया, (धुं०) पृ० ५५ ।

त्रयोदश—वि० [सं०] १. तेरह । २. तेरहवाँ (को०) ।

त्रयोदशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि । तेरस ।

विशेष—पुराणानुसार यह तिथि धार्मिक कार्य करने के लिये बहुत उपयुक्त है ।

त्रयाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पंद्रहवें द्वापर के एक व्यास का नाम ।

त्रयारुणि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो भागवत के अनुसार लोमहर्षण ऋषि के शिष्य थे ।

त्रयैव—वि० [सं० तृषि] तृषायुक्त । प्यासा ।

त्रष्टा—संज्ञा पुं० [?] दे० 'तष्टा' (तष्टरी) । उ०—त्रष्टा घर आधार भर्त के बहुत खिलौना । परिमा टमरी अंतरधान रूपे के सोना ।—सूदन (शब्द०) ।

त्रस'—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैन मत के अनुसार एक प्रकार के जीव । इन जीवों के चार प्रकार हैं—(क) द्वीन्द्रिय अर्थात् दो इंद्रियोंवाले जीव । (ख) त्रीन्द्रिय अर्थात् तीन इंद्रियोंवाले जीव । (ग) चतुर्न्द्रिय अर्थात् चार इंद्रियोंवाले जीव और (घ) पंचेन्द्रिय अर्थात् पाँच इंद्रियोंवाले जीव । २. जंगल । वन । ३. जंगम । ४. त्रसरेणु ।

त्रस'—वि० त्रसल । जंगम [को०] ।

त्रसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भय । डर । २. उद्वेग ।

त्रसना^१—क्रि० घ० [सं० त्रसन] भय से कपि उठना । डरना । लौक खाना । उ०—(क) कछु राजत सूरज प्रकल खरे । जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे । चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसे । चोर चकोर चिता सो लसे ।—केशव (शब्द०) । (ख) नवल अनंगा होय सो मुग्धा केशवदास । खेले बोले बाल विधि हँसे त्रसे सबिलास ।—केशव (शब्द०) ।

त्रसर—संज्ञा पुं० [सं०] जोलाहो की डरकी । तसर ।

त्रसरेणु^१—संज्ञा पुं० [सं०] वह चमकता हुआ कण जो छेद में से घाती हुई धूप में नाचता या घूमता दिखाई देता है । सूक्ष्म कण ।

विशेष—मनु के अनुसार एक त्रसरेणु तीन परमाणुओं से मिलकर और वैश्व के अनुसार तीस परमाणुओं से मिलकर बना होता है ।

त्रसरेणु^२—संज्ञा स्त्री० पुराणानुसार सूर्य की एक स्त्री का नाम ।

त्रसरैनि^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रसरेणु' । उ०—बद चकोर की चाह करे, घनभानंद स्वाति पपीहा को भावे । त्यों त्रसरैनि के ऐन बसी रवि, भीन पे भीन ह्वे सागर भावे ।—घनानंद, पृ० ६५ ।

त्रसाना^१—क्रि० स० [हिं० त्रसना] डरवाना । घमकाना । भय दिखाना । उ०—(क) सूर श्याम बाधे ऊखल गहि माता डरत न प्रति हि त्रसायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) जाको शिव व्यावत निसि बासर सहसासन जेहि गावे हो । सो हरि राधा बदन चंद को नैन चकोर त्रसावे हो ।—सूर (शब्द०) ।

त्रसित^१—वि० [सं० त्रस्त] १. भयभीत । डरा हुआ । उ०—सब प्रसंग महिसुरन सुनाई । त्रसित पर्यो प्रवनी धकुलाई ।—(शब्द०) । २. पीड़ित । सताया हुआ । उ०—सीत त्रसित कहँ अग्नि समाना । रोग त्रसित कहँ भीषणि जाना ।—गोपाब (शब्द०) ।

त्रसितो^१—क्रि० घ० [हिं० त्रसना] भय खाना । डरना । उ०—त्रसितो सदाई नटनागर गुरु बन ते ।—नट०, पृ० ५८ ।

त्रसीग^१—वि० [सं० त्रासक ?] जबरदस्त । उ०—राजा सिंहख दीपरे तोते बीच त्रसीग ।—बाँकी० घं०, भा० ३, पृ० ७२ ।

त्रसुर—वि० [सं०] भीर । डरपोक ।

त्रस्त—वि० [सं०] १. भयभीत । डरा हुआ । उ०—एक बार मुनिवर कौशिक के तप से सुरपति त्रस्त हुआ ।—शकुं०, पृ० २ । २. पीड़ित । दुःखित । जिसे कष्ट पहुँचा हो । ३. चकित । जिसे आश्चर्य हुआ हो ।

त्रस्तु—वि० [सं०] दे० 'त्रसुर' [को०] ।

त्रहकना^१—क्रि० घ० [सं० त्राहि] त्राहि त्राहि करना । त्रस्त होना । उ०—मरे यों लुहानं अभंगं जुवान । असम्बत जोरं त्रहकैति धोरं ।—पृ० रा०, ४।३० ।

त्राटक^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताटक' । उ०—त्राटंकन की उपमा हतनी । जु कही कवि चंद सुरंग घनी ।—पृ० रा०, २।७६ ।

त्राटक—संज्ञा पुं० [सं०] योग के षट्कर्मों में से छठा कर्म या साधन । इसमें अनिमेष रूप से किसी विदु पर दृष्टि रखते हैं ।

त्राटिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं० त्राटक] योगियों की एक क्रिया । उ०—चंद्र अगनि का त्राटिका नाम ।—गोरख०, पृ० २४६ ।

त्राण^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षा । बचाव । हिफाजत । २. रक्षा का साधन । कवच ।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार योगिक शब्दों के अंत में होता है । जैसे, पादत्राण, अंगत्राण ।

३. त्रायमाण लता ।

त्राण^२—वि० जिसकी रक्षा की गई हो । रक्षित [को०] ।

त्राणक—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षक ।

त्राणकर्ता—वि० पुं० [सं० त्राणकर्तृ] रक्षा करनेवाला । रक्षक [को०] ।

त्राणकारी—वि० [सं० त्राणकारिन्] रक्षा करनेवाला । रक्षक [को०] ।

त्राणदाता—संज्ञा पुं० [सं० त्राण + दातृ] त्राण देनेवाला । रक्षा करनेवाला । त्राणक । त्राता । उ०—दयाशील त्राणदाता के मिलने से ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० ३६७ ।

त्राणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाण लता ।

त्राण—वि० [सं०] बचाया हुआ । रक्षित [को०] ।

त्रातव्य—वि० [सं०] रक्षा करने के योग्य । बचाने के लायक ।

त्राता—संज्ञा पुं० [सं० त्रातृ] रक्षक । बचानेवाला । उ०—तप बल रचै प्रपंच बिधाता । तप बल विष्णु सकल जगत्राता ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रातार—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षक । उ०—मोक्षप्रदा घर भर्ममय मथुरा मम त्रातार ।—गोपाल (शब्द०) ।

विशेष—संस्कृत में यह त्रातृ (त्राता) शब्द का बहुवचन रूप है ।

त्रायुष'—संज्ञा पुं० [सं०] रागे का बना हुआ बरतन या घोर कोई पदार्थ ।

प्रापुष^१—वि० रागे का बना हुआ [को०] ।

प्रायंती—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रायन्ती] प्रायमाण लता

प्रायन^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'प्राण' । उ०—ताइन खेदन प्रायन खेवन बहु बिधि कर ले उपाई ।—१० बानी, पृ० १६ ।

प्रायमाण^३—संज्ञा पुं० [सं०] बनफले की तरह की एक प्रकार की लता जो जमीन पर फैलती है ।

विशेष—इसमें बीच बीच में छोटी छोटी बंभियाँ निकलती हैं जिनमें कसेले बीज होते हैं । इन बीजों का व्यवहार औषध में होता है । वैद्यक में इन बीजों को शीतल, दस्तावर और त्रिदोषनाशक माना है ।

पर्या०—मनुष्य । भवनी । गिरिजा । देवबाला । बलमन्त्र । पालिनी । भयनाशिनी । रक्षिणी ।

प्रायमाण^४—वि० रक्षक । रक्षा करनेवाला ।

प्रायमाणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रायमाण लता ।

प्रायमाणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रायमाण' ।

प्रायवृत्त—संज्ञा पुं० [सं० प्रायवृत्त] गंडीर या गुंडिरी नामक साग ।

प्रास—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डर । भय । उ०—जम की सब प्रास बिनास करी मुख ते निज नाम उचारन में ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० १, पृ० २८२ । २. तकलीफ । ३. मर्ण का एक दोष ।

प्रासक—संज्ञा पुं० १. डरानेवाला । भयभीत करनेवाला । २. निषारक । दूर करनेवाला । उ०—त्रिविध ताप प्रासक त्रिपुहानी । राम स्वरूप सिंधु समुहानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

प्रासकर—संज्ञा पुं० [सं०] भयोत्पादक । प्रासक [को०] ।

प्रासद^५—वि० [सं०] प्रासकर । दुःखद । उ०—नाटकों में प्रासद (दुःखी = ट्रेजेडी) और हासद (सुखांत) का भेद किया जाता है ।—स० शास्त्र, पृ० १२६ ।

प्रासदायी—वि० [सं० प्रासदायिन्] भयोत्पादक । डरानेवाला [को०] ।

प्रासदी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रासद+हि० ई (प्रत्य०)] दुःख से पूर्ण रचना विशेषतः नाटक जो दुःखांत हो ।

प्रासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रासनीय] १. डराने का कार्य । २. डरानेवाला । भय दिखानेवाला ।

प्रासना—क्रि० स० [सं० प्रासन] डराना । भय दिखाना । प्रास देना । उ०—काहे को कलह नाध्यो दाखण दाबिनि बाँध्यो कठिन लकुट ले प्रारयो मेरो भैया ?—सूर (शब्द०) ।

प्रासमान—वि० [सं० प्रास + मान्] प्रस्त । भीत । उ०—जोगी जती प्रास जो कोई । सुनतहि प्रासमान भा सोई ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११५ ।

प्रासा^६—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'पृषा' । उ०—करहा पाणी खंच पिउ प्रासा घणा सहेसि ।—ढोला०, पृ० ४२६ ।

प्रासिका^७—वि० [सं० प्रासक] प्रास देनेवाली । दुःखद । उ०—दिवंत जोति नासिका । सु गति कीर नासिका ।—पृ० रा०, २५ । १४४ ।

प्रासित^८—वि० [सं०] १. भयभीत । डराया हुआ । २. जिसे कष्ट पहुंचाया गया हो । प्रस्त ।

प्रासिनी^९—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रासिन्] डरानेवाली । भयदायिनी । उ०—दुर्मंद दुरंत घनं दम्पुर्षी की प्रासिनी निकल, चली जा तू प्रतारण के कर से ।—लहर, पृ० ५८ ।

प्रासी—वि० [सं० प्रासिन्] डरानेवाला । प्रासक [को०] ।

प्राहि—अव्य० [सं०] बचाओ । रक्षा करो । प्राण दो । उ०—दाखण तप जब कियो राजसुत तब कियो सुरलोक । प्राहि प्राहि हरि सों सब भाव्यो दूर करो सब शोक ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—प्राहि प्राहि करना = दया या अभयदान के लिये गिड़गिड़ाना । दया या रक्षा के लिये प्रार्थना करना । प्राहि मचना = रक्षा के लिये चीख पुकार होना । विपत्ति में पड़े हुए लोगों के मुँह से प्राहि प्राहि की पुकार मचना । प्राहि प्राहि होना = दे० 'प्राहि प्राहि मचना' ।

त्रिषक^{१०}—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्र्यंशक' । उ०—त्रिनयन, त्रिषक, त्रिपुर धरि ईस, उमारति होई ।—तंद० ग्रं०, पृ० १२ ।

त्रिश—वि० [सं०] तीसवाँ ।

त्रिशन्—वि० [सं०] तीस ।

त्रिशत्पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कोई का फून । कुमुदिनी ।

त्रिशांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ का तीसवाँ भाग । किसी चीज के तीस भागों में से एक भाग । २. एक राशि का तीसवाँ भाग (या डिग्री) जिसका विचार फलित ज्योतिष में किसी बालक का जन्मफल निकालने के लिये होता है ।

विशेष—फलित ज्योतिष में मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन और कुंभ ये छह राशियाँ विषम और वृष, कर्क, कन्या, बृश्चिक, मकर और मीन ये छह राशियाँ सम मानी जाती हैं । त्रिशांश का विचार करने में प्रत्येक विषम राशि के ५, ५, ८, ७ और ५ त्रिशांशों के क्रमशः मंगल, शनि, बृहस्पति, बुध और शुक्र अधिपति या स्वामी माने जाते हैं और सम ५, ७, ८, ५, और ५ त्रिशांशों के स्वामी ये ही पाँचों ग्रह विपरीत क्रम से—अर्थात् शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनि और मंगल माने जाते हैं । अर्थात्—प्रत्येक विषम राशि के

१ से ५ त्रिशांश तक के अधिपति	—मंगल
६ " १० " " " "	—शनि
११ " १८ " " " "	—बृहस्पति
१९ " २५ " " " "	—बुध
२६ " ३० " " " "	—शुक्र

माने जाते हैं । पर सम राशियों में त्रिशांशों और ग्रहों के क्रम उलट जाते हैं और प्रत्येक राशि के

१ " ५ त्रिशांश तक के अधिपति	—शुक्र
६ " १२ " " " "	—बुध
१३ " २० " " " "	—बृहस्पति
२१ " २५ " " " "	—शनि
२६ " ३० " " " "	—मंगल

माने जाते हैं । प्रत्येक ग्रह के त्रिशांश में जन्म का प्रथम प्रलय फल माना जाता है । जैसे—मंगल के त्रिशांश में जन्म

हीने का फल स्त्रीविजयी, धनहीन, कोयी और अधिमानी प्रादि होना और बुध के त्रिशांश में जन्म होने का फल बहुत धनवान् और सुखी होना माना जाता है ।

-वि० [सं०] तीन ।

विशेष—इसका व्यवहार यौगिक शब्दों में, प्रारंभ में, होता है । जैसे, त्रिकाल, त्रिकुट, त्रिकला प्रादि ।

१—संज्ञा बी० [हि०] दे० 'त्रिय' । उ०—राजमती तुं भोवकुमार तो सम त्रि नहीं इणोई संसार ।—बी० रासो, पृ० ४६ ।

चिरी०—संज्ञा बी० [त्रिप्रक्षर] प्रोम् । गोरख संप्रदाय का मंत्र विशेष । उ०—त्रिप्रचिरी त्रिकोटो जपीला ब्रह्मकुंड निजधान । गोरख०, पृ० १०२ ।

ट—संज्ञा पु० [सं० त्रिकण्ट] दे० 'त्रिकण्टक' ।

टक^१—संज्ञा पु० [सं० त्रिकण्टक] १. गोलक । २. त्रिशूल । ३. तिथारा ध्वज । ४. जवासा । ५. टेंगरा मछली ।

टक^२—वि० जिसमें तीन कटि या नोकें हों ।

१—संज्ञा पु० [सं०] १. तीन का समूह । जैसे, त्रिकमय, त्रिकला, त्रिकुटा और त्रिभेद । २. रीढ़ के नीचे का भाग जहाँ कुल्हे की हड्डियाँ मिलती हैं । ३. कमर । ४. त्रिकला । ५. त्रिभेद । ६. त्रिप्रह्वानी । ७. तीन रूप सैकड़े का सूद या लाभ प्रादि (मनु) ।

२—वि० १. तेहरा । तिथुना । त्रिविध । २. तीन का रूप लेने-वाला । तीन के समूह में होनेवाला । ३. तीन प्रतिशत । ४. तीसरी बार होनेवाला (को०) ।

कुद्^१—संज्ञा पु० [सं०] १. त्रिकूट पर्वत । २. विष्णु । (विष्णु । ने एक बार बाराह का अवतार धारण किया था, इसी से उनका यह नाम पड़ा) । ३. दस दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

कुद्^२—वि० जिसे तीन शृंग हों ।

कुभ—संज्ञा पु० [सं०] १. उदान वायु जिससे डकार और छींक आती है । २. नौ दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

ट—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्रिकण्ट' ।

टु—संज्ञा पु० [सं०] सोंठ, मिर्च और पीपल ये तीन कटु वस्तुएँ ।

विशेष—वैद्यक में इन तीनों के समूह को दीपन तथा खाँसी, साँस, कफ, मेह, मेघ, प्लीपद और पीनस प्रादि का नाशक माना है ।

टुक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'त्रिकटु' ।

त्रप—संज्ञा पु० [सं०] त्रिकला, त्रिकुटा और त्रिभेद । अर्थात् हठ, बहेड़ा और धाँवला; सोंठ, मिर्च और पीपल तथा मोथा, चीता और बायबिडंग इन सब का समूह ।

त्रि—वि० [सं० त्रिकर्मन्] वह जो पढ़े, पढ़ाए, यज्ञ करे और दान दे । त्रिज ।

त्रि^१—संज्ञा पु० [सं०] १. तीन मात्राओं का शब्द । प्युत । २.

वोहे का एक भेद जिसमें ६ गुरु और ३० लघु अक्षर होते हैं । जैसे,—अति अघात जो सरितवर, जो रुप सेतु कराहि । यदि पिपीलिका परम लघु, बिन अम पारहि जाहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रिकल^१—वि० जिसमें तीन कलाएँ हों ।

त्रिकलिंग—संज्ञा पु० [सं० त्रिकलिङ्ग] दे० 'तैसंग' ।

त्रिकशूल—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का वातरोग जिसमें कमर की तीनों हड्डियों, पीठ की तीनों हड्डियों और रीढ़ में पीड़ा उत्पन्न हो जाती है ।

त्रिकस्थान—पु० [सं० त्रिक+स्थान] दे० 'त्रिक^२' । उ०—बायु गुदा में स्थित होने से त्रिकस्थान, हृदय, पीठ इनमें पीड़ा होती है ।—माधव०, पृ० ११४ ।

त्रिकांड^१—संज्ञा पु० [सं० त्रिकाण्ड] १. अमरकोष का दूसरा नाम । (अमरकोष में तीन कांड हैं, इसी से उसका यह नाम पड़ा) । २. निरुक्त का दूसरा नाम । (निरुक्त में भी तीन कांड हैं, इसी से उसका यह नाम पड़ा) ।

त्रिकांड^२—वि० जिसमें तीन कांड हों ।

त्रिकांडी^१—वि० [सं० त्रिकाण्डीय] जिसमें तीन कांड हों । तीन कांडोवाला ।

त्रिकांडी^२—संज्ञा बी० जिस ग्रंथ में कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों का वर्णन हो अर्थात् वेद ।

त्रिका—संज्ञा बी० [सं०] १. कुएँ पर का वह चौखटा जिसमें गराड़ी लगी होती है । २. कुएँ का ढक्कन (को०) ।

त्रिकाय—संज्ञा पु० [सं०] बुद्धदेव ।

त्रिकार्षिक—संज्ञा पु० [सं०] सोंठ, अतीस और मोथा इन तीनों का समूह ।

त्रिकाल—संज्ञा पु० [सं०] १. तीनों समय—भूत, वर्तमान और भविष्य । २. तीनों समय—प्रातः, मध्याह्न और सायं ।

त्रिकालज्ञ^१—संज्ञा पु० [सं०] भूत, वर्तमान और भविष्य का जाननेवाला व्यक्ति । सर्वज्ञ ।

त्रिकालज्ञ^२—वि० तीनों कालों की बातों को जाननेवाला । उ०—त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हारि ।—मानस, १।१६ ।

त्रिकालज्ञता—संज्ञा बी० [सं०] तीनों कालों की बातें जानने की शक्ति या भाव ।

त्रिकालदर्शी०—वि० [हि०] दे० 'त्रिकालदर्शी' । उ०—तुम्ह त्रिकालदर्शी मुनिमाया । विस्व बदर जिमि तुम्हरे हाया ।—मानस, २।१२५ ।

त्रिकालदर्शक^१—वि० [सं०] तीनों कालों को जाननेवाला । त्रिकालज्ञ ।

त्रिकालदर्शक^२—संज्ञा पु० ऋषि ।

त्रिकालदर्शिता—संज्ञा बी० [सं०] तीनों कालों की बातों को जानने की शक्ति या भाव । त्रिकालज्ञता ।

त्रिकालदर्शी^१—संज्ञा पु० [सं० त्रिकालदर्शिन] तीनों कालों की बातों को देखनेवाला या जाननेवाला व्यक्ति । त्रिकालज्ञ ।

त्रिकाक्षदर्शी^२—वि० तीनों काँसों को बातों की जाननेवाला ।
त्रिकाक्ष (को०) ।

त्रिकूट—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'त्रिकूट' ।

त्रिकुटा^१—संज्ञा पु० [सं० त्रिकुट] सोंठ, मिर्च और पीपल इन तीनों वस्तुओं का समूह ।

त्रिकुटा^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—त्रिकुटा ध्यान तीन गुण त्यागे ।—प्राण०, पृ० २ ।

त्रिकुटाग्रचल^३—संज्ञा पु० [सं० त्रिकूट + प्रचल] त्रिकूट पर्वत ।
उ०—संपातरा सुण वयण सारा गहर नद गाजे । चित्त बाव त्रिकुटा ग्रचल चढ़िया, कुववा काजे ।—रघु० क०, पृ० १६२ ।

त्रिकूटिनी—वि० स्त्री० [सं० त्रिकूट] तीन कूट या चोटीवाली ।
उ०—यंत्रों यंत्रों तंत्रों की धी वह त्रिकूटिनी माया सी ।—छाकेत, पृ० ३८८ ।

त्रिकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिकूट] त्रिकूट चक्र का स्थान । दोनों ओहों के बीच के कुछ ऊपर का स्थान । उ०—पूरन कुंभक रेचक कहूँ । उलट ध्यान त्रिकुटी को धरूँ ।—विश्राम- (शब्द०) ।

त्रिकुल—संज्ञा पु० [सं०] पितृकुल, मातृकुल और श्वशुरकुल ।

त्रिकूट—संज्ञा पु० [सं०] १. तीन शृंगोंवाला पर्वत । वह पर्वत जिसकी तीन चोटियाँ हों । २. वह पर्वत जिसपर लंका बसी हुई मानी जाती है । देवीमागवत के अनुसार यह एक पीठस्थान है और यहाँ रूपसुंदरी के रूप में भगवती निवास करती है । उ०—गिरि त्रिकूट एक सिंधु मैफारी । विधि निमित्त दुग्ध भति भारी ।—तुलसी (शब्द०) । ३. सेवा नमक । ४. एक कल्पित पर्वत जो सुमेरु पर्वत का पुत्र माना जाता है ।

विशेष—वामन पुराण के अनुसार यह क्षीरोद समुद्र में है । यहाँ देववि रहते हैं और विद्याधर, किन्नर तथा गंधर्व आदि क्रीड़ा करने आते हैं । इसकी तीन चोटियाँ हैं । एक चोटी सोने की है जहाँ सूर्य आश्रय लेते हैं और दूसरी चोटी चाँदी की जिसपर चंद्रमा आश्रय लेते हैं । तीसरी चोटी बरफ से ढकी रहती है और वैदूर्य, इंद्रनील आदि मणिओं की प्रभा से चमकती रहती है । यही उसकी सबसे ऊँची चोटी है । नास्तिकों और पापियों को यह नहीं बिल्लाई देता ।

त्रिकूटलवण—संज्ञा पु० [सं०] समुद्री नमक (को०) ।

त्रिकूटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक शैली ।

त्रिकूर्चक—संज्ञा पु० [सं०] सुश्रुत के अनुसार फोड़े आदि चीरने का एक सास्त्र जिसका व्यवहार बालक, वृद्ध, भोर, राजा आदि की भ्रष्टाचिकित्सा के लिये होना चाहिए ।

त्रिकोटी^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—त्रिधाचिरी त्रिकोटी जपीला ब्रह्मकुंड निज धाम ।—मोरख०, पृ० १०२ ।

त्रिकोण—संज्ञा पु० [सं०] १. तीन कोने का क्षेत्र । त्रिभुज का क्षेत्र । जैसे, \triangle \triangleright । २. तीन कोनेवाली कोई वस्तु । ३. तीन कोटियोंवाली कोई वस्तु । ४. योगिनी । भग । ५. कामरूप के अंतर्गत एक तीर्थ जो सितपीठ माना जाता है । ६. जन्मकुंडली में लग्नस्थान से पौषर्षा और नवी स्थान ।

त्रिकोणक—संज्ञा पु० [सं०] तीन कोण का पिंड । त्रिकोना पिंड ।

त्रिकोणचंटा—संज्ञा पु० [सं० त्रिकोण चण्टा] लोहे की मोटी सलाख का बना हुआ एक प्रकार का त्रिकोना बाजा जिसपर लोहे के एक दूसरे टुकड़े से आघात करके ताल देते हैं । इसका आकार ऐसा है—)

त्रिकोणफल—संज्ञा पु० [सं०] सिंघाड़ा । पानीफल ।

त्रिकोणभवन—संज्ञा पु० [सं०] जन्मकुंडली में लग्न से पौषर्षा और नवी स्थान । दे० 'त्रिकोण' ।

त्रिकोणमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित शास्त्र का वह विभाग जिसमें त्रिभुज के कोण, बाहु, वर्ग, विस्तार आदि की नाप निकालने की रीति तथा उनसे संबंध रखनेवाले अन्य अनेक सिद्धांत स्थिर किए जाते हैं ।

विशेष—भाजकल इसके अंतर्गत त्रिभुज के अतिरिक्त त्रिभुज और बहुभुज के कोण नापने की रीतियाँ तथा बीजगणित संबंधी बहुत सी बातें भी आ गई हैं ।

त्रिचार—संज्ञा पु० [सं०] जवाहार, सज्जी और सुहागा इन तीनों लारों का समूह ।

त्रिचुर—संज्ञा पु० [सं०] ताल मलाना ।

त्रिख—संज्ञा पु० [सं०] खीरा ।

त्रिखा^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' ।

त्रिखित^६—वि० [हि०] दे० 'तृषित' । उ०—त्रिखित लोचन जुगल पान हित अमृतवपु विमल वृंदाविपिन भूमिचारी ।—भरतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५४ ।

त्रिगंग—संज्ञा पु० [सं० त्रिगङ्गा] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम ।

त्रिगंधक—संज्ञा पु० [सं० त्रिगन्धक] दे० 'त्रिजातक' ।

त्रिगंभीर—संज्ञा पु० [सं० त्रिगम्भीर] वह जिसका सस्व [आचरण], स्वर और नाभि गंभीर हो । लोगों का विश्वास है कि ऐसा पुरुष सदा सुखी रहता है ।

त्रिगढ़^७—संज्ञा पु० [सं० त्रि + गढ़] ब्रह्मांड । सहस्रार । उ०—कूढ़ भ्रम कपट की भ्रष्ट कूँ छाँड़ि दे त्रिगढ़ सिर बाय अनहद तूरा ।—राम० घमं०, पृ० १३७ ।

त्रिगण—संज्ञा पु० [सं०] 'त्रिवर्ग' ।

त्रिगर्त—संज्ञा पु० [सं०] उत्तर भारत के उस प्रांत का प्राचीन नाम जिसमें आजकल पंजाब के जालंधर और कांगड़ा आदि नगर हैं । २. इस देश का निवासी ।

त्रिगर्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिनाल स्त्री । पुंश्चली । वह स्त्री जिसे पुरुषप्रसंग की इच्छा हो ।

त्रिगर्तिक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'त्रिगत' ।

त्रिगामी^८—वि० [सं० त्रि + गामिन्] तीन लोकों में बहनेवाली । त्रिपथगा । उ०—त्रिपथी त्रिगामी विराजंत रंगा । महा जग लोक नर नारि रंगा ।—पु० रा०, १ । १६२ ।

त्रिगुण^१—संज्ञा पु० [सं०] सत्त्व, रज, और तम इन तीनों गुणों

का समूह । तीन मुख्य प्रकृतियों का समूह । दे० 'त्रुण' ।

उ०—त्रिगुण अतीत वैसे, प्रतिबिम्ब मिटि जात ।—संत-बाणी०, पु० ११५ ।

त्रिगुण^१—वि० [सं०] १. तीन गुना । त्रिगुना । २. तीन भागोंवाला । जिसमें तीन भागे हों (को०) । ३. सत, रज, तम इन तीन गुणोंवाला (को०) ।

त्रिगुण^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा । २. माया । तंत्र में एक प्रसिद्ध बीज ।

त्रिगुणात्परा—वि० [सं० त्रिगुणात् + परा] त्रिगुणों से परा । उ०—इस अग्निदेवता का निवास है त्रिगुणमयी यह निखिल सृष्टि । पर प्रथम चरम आलोकधाम त्रिनयन की त्रिगुणात्परा दृष्टि ।—अग्नि०, पु० ४० ।

त्रिगुणात्मक—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० त्रिगुणात्मिका] तीनों गुणयुक्त । जिसमें तीनों गुण हों । उ०—नारी के नयन ! त्रिगुणात्मक ये सन्निपात किसको प्रमत्त नहीं करते ।—लहर, पु० ७१ ।

त्रिगुणित—वि० [सं०] तीन गुना किया हुआ । त्रिगुना किया हुआ (को०) ।

त्रिगुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेल का पेड़ ।

विशेष—बेल के पत्ते तीन तीन एक साथ होते हैं इसी से इसका यह नाम पड़ा ।

त्रिगुण^३—वि० [सं० त्रिगुण] सत, रज, तम इन तीनों गुणोंवाला । उ०—कह्यो पूरन ब्रह्म व्यावो त्रिगुण मिथ्या भेष ।—पोद्दार अभि० सं०, पु० ३१८ ।

त्रिगूढ—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगूढ] स्त्रियों के देश में पुरुषों का वृत्त्य ।

त्रिगूढक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगूढक] दे० 'त्रिगूढ' ।

त्रिगगन^४—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + गण] तीन का समुदाय । उ०—बहु विवेक कल मान ताल मंढे त्रिगगन सुर ।—पु० रा०, २५ । १५७ ।

त्रिघंटा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिघंटा] एक कल्पित नगर जो हिमालय की चोटी पर अवस्थित माना जाता है । कहते हैं, यहाँ विद्याधर आदि रहते हैं ।

त्रिघट—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + घट] स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप तीन शरीर । उ०—युगनि युगनि युगनि युगा त्रिघट उषटित तुरिय उत्तंगा ।—सुन्दर० सं०, भा० १, पु० ८३४ ।

त्रिघाई^५—क्रि० वि० [देश०] त्रिघाई । बार बार । उ०—नखे नह नंदो त्रिघाई त्रिघाई ।—पु० रा०, २५ । २२४ ।

त्रिधाना^६—क्रि० प्र० [सं० तृप्त] तृप्त होना । संतुष्ट होना । उ०—नखे कर बेताल त्रिघाई । नारख नह करे किछकाई ।—पु० रा०, १६ । २१४ ।

त्रिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनीकुमारों का रथ ।

त्रिचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० त्रिचक्षु] महादेव ।

त्रिचित्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की गार्हपत्याग्नि ।

त्रिजग^७—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजग] आकाश अनेकाले अंतु । पशु तथा कीड़े मकोड़े । त्रिजग । उ०—(क) त्रिजग देव नर जो

तनु बरजें । तहें तहें राम भजन अनुसरजें ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) यहि विधि जीव चराचर जेते । त्रिजग देव नर असुर समेते । अखिल विश्व यह मम उपजाया । सब पर मोरि चराचर दाया ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रिजग^८—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजगत्] तीनों लोक—स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल । उ०—किहू विधि त्रिपथगामिनि त्रिजग पावनि प्रसिद्ध भई भले ।—पद्माकर (शब्द०) ।

त्रिजगत—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजगत्] आकाश, पाताल और पृथ्वी ये तीनों लोक (को०) ।

त्रिजगती—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश, पाताल और पृथ्वी ये तीनों लोक (को०) ।

त्रिजट—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव । शिव । २. एक ब्राह्मण का नाम जिसको बनयात्रा के समय रामचंद्र जी ने बहुत सी गार्ह दान दी थीं ।

त्रिजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विभीषण की बहुत बड़ी अक्षौ-वाटिका में जानकी जी के पास रहा करती थी । २. बेल का पेड़ ।

त्रिजटी^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजटिन् या त्रिजट] महादेव । शिव ।

त्रिजटी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिजटा' ।

त्रिजङ्ग—संज्ञा पुं० [हि०] १. कटारी । २. तखवार ।

त्रिजमा^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रियामा' । उ०—सैही त्रिजमा राय सरेखा । वहिनी रात कि मूरत देखा ।—इंद्रा०, पु० १० ।

त्रिजात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिजातक' ।

त्रिजातक—संज्ञा पुं० [सं०] इषायची (फल), दारचीनी (खाल) और तेजपत्ता (पत्ता) इन तीन प्रकार के पदार्थों का समूह जिसे त्रिगुंघि भी कहते हैं । यदि इसमें नायकेसर भी मिला दिया जाय तो इसे चतुर्जातक कहेंगे ।

विशेष—वैद्यक में इसे रेचक, कृष्ण, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, मुह की दुर्गंध दूर करनेवाला, हृलका, पित्तवर्धक, क्षीरक तथा वायु और बिषनाशक माना है ।

त्रिजामा^४—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रियामा] रात्रि । रजनी । उ०—(क) युध चारे अए सब रैनियाम । अति दुसह बिधा तनु करी काम । यहि से दयाइ मानो विरंचि । सब रैन त्रियामा कीन्ह संचि ।—गुमान (शब्द०) । (ख) छनवा छपा तमस्विनी तमी तमिश्रा होय । निशिषी सदा विभावरी रात्रि त्रियामा सोय ।—नंददास (शब्द०) ।

त्रिजीवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन राशियों अर्थात् ९० अंशों तक फैले हुए चाप की ज्या ।

त्रिज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वृत्त के केंद्र से परिधि तक बिधी हुई रेखा । व्यास की आधी रेखा ।

त्रिङ्गना^५—क्रि० प्र० [प्र० तङ्क; राज० तिङ्कणो; हि० तङ्कना] दे० 'तङ्कना' । उ०—जिणि दीहे तिल्ली त्रिङ्क,

हिरणी कालह गाय । तद्दिहारी गोरङ्गी, पङ्कत कालह
धाम ।—डोमो०, पू० २८२ ।

त्रिषु०—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तृण' । उ०—मीठ सहस्ती मत्स्यो
लक्ष्य गिरे त्रिणमत् ।—रा० क०, पु० ११५ ।

त्रिषुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष ।

त्रिषुत—पुं० [सं०] साम गान की एक प्रणाली जिसमें एक विशेष
प्रकार से उसकी (३×६) सत्ताईस आवृत्तियाँ करते हैं ।

त्रिषुचिकेत—संज्ञा पु० [सं०] १. यजुर्वेद के एक विशेष भाग का
नाम । २. उस भाग के अनुयायी । ३. नारायण । ४. अग्नि
(की०) ।

त्रिषुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी ।

विशेष—यह माना जाता है कि पुरुष पति प्राप्त करने के पूर्व
कन्या का संबंध सोम, गंधर्व और अग्नि से होता है ।

त्रितंत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रितन्त्रिका] दे० 'त्रितंत्री' (की०) ।

त्रितंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रितन्त्रिका] कच्छपी बीणा की तरह की
प्राचीन काल की एक प्रकार की बीणा जिसमें तीन तार लगे
होते थे ।

त्रित—संज्ञा पु० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जो ब्रह्मा के मानस-
पुत्र माने जाते हैं । २. गौतम मुनि के तीन पुत्रों में से एक
जो अपने दोनों भाइयों से अधिक तेजस्वी और विद्वान् थे ।

विशेष—एक बार ये अपने भाइयों के साथ पशुसंग्रह करने के
लिये जंगल में गए थे । वहाँ दोनों भाइयों ने इनके संग्रह किए
हुए पशु छीनकर और इन्हें भकेला छोड़कर घर का रास्ता
लिया । वहाँ एक भेड़िए को देखकर ये डर के मारे दौड़ते
हुए एक गहरे घाँघे कुएँ में जा गिरे । वही इन्होंने सोमयाग
प्रारंभ किया जिसमें देवता लोग भी आ पहुँचे । उन्हीं देवताओं
ने उस कुएँ से इन्हें निकाला । महामारत में लिखा है कि
सरस्वती नदी इसी कुएँ से निकली थी ।

त्रितय—संज्ञा पु० [सं०] धर्म, धर्म और काम इन तीनों का समूह ।

त्रितय—वि० जिसके तीन भाग हों । तेहरा (की०) ।

त्रिताप—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'ताप' ।

त्रितिया०—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृतीया' । उ०—त्रितिया सों,
सप्तमी की एक वचन कबिराह ।—पोद्दार अभि० ग्रं०,
पृ० ५३० ।

त्रितिया०—वि० [हि०] दे० 'तृतीय' । उ०—त्रितिया कीभा बाय
बंछेज ।—प्राण०, पृ० ३६ ।

त्रिदंड—संज्ञा पु० [सं० त्रिदण्ड] १. संन्यास आश्रम का चिह्न,
बाँस का एक डंडा जिसके सिरे पर दो छोटी छोटी लकड़ियाँ
बँधी होती हैं । २. मन, वचन और कर्म का संयम (की०) ।
३. दे० 'त्रिदंडी' (की०) ।

त्रिदंडी—संज्ञा पु० [सं० त्रिदण्डिन्] १. मन, वचन और कर्म तीनों को
दमन करने या वश में रखनेवाला व्यक्ति । २. संन्यासी ।
परिवाजक । २. यज्ञोपवीत । जनेऊ ।

त्रिदण्ड—संज्ञा पु० [सं०] बेल का डण्ड ।

त्रिदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोधापवी । हंसपवी ।

त्रिदलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार . का बूहर जिसे चर्मक
या सातला कहते हैं ।

त्रिदश—संज्ञा पु० [सं०] १. देवता । उ०—(क) कंदर्प दर्प दुर्गम द
उमारजन गुन भवन हर । तुलसीस त्रिलोचन त्रिगुन पर नि
मथन जय त्रिदशवर ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) निरा
बरखत कुसुम त्रिदश जन सूर सुमति मन फूल ।—
(शब्द०) । २. जीव ।

त्रिदशगुरु—संज्ञा पु० [सं०] देवताओं के गुरु, बृहस्पति ।

त्रिदशगोप—संज्ञा पु० [सं०] बोरबहूटी नाम का कीड़ा ।

त्रिदशदीर्घिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गगा । आकाशगंगा ।

त्रिदशपति—संज्ञा पु० [सं०] इंद्र ।

त्रिदशपुंगव—संज्ञा पु० [सं० त्रिदशपुङ्गव] विष्णु (की०) ।

त्रिदशपुरुष—संज्ञा पु० [सं०] लोग ।

त्रिदशमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिदशमञ्जरी] तुलसी ।

त्रिदशवधू, त्रिदशवतिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षरा ।

त्रिदशवर्त्म—संज्ञा पु० [सं० त्रिदशवर्त्मन्] आकाश (की०) ।

त्रिदशश्रेष्ठ—संज्ञा पु० [सं०] १. अग्नि । २. ब्रह्मा (की०) ।

त्रिदशसर्वप—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार की सरसों । देवसर्वप ।

त्रिदशांकुरा—संज्ञा पु० [सं० त्रिदशाङ्कुरा] वज्र ।

त्रिदशाचार्य—संज्ञा पु० [सं०] इंद्र ।

त्रिदशाध्यक्ष—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'त्रिदशायन' ।

त्रिदशायन—संज्ञा पु० [सं०] विष्णु ।

त्रिदशायुध—संज्ञा पु० [सं०] वज्र ।

त्रिदशारि—संज्ञा पु० [सं०] असुर ।

त्रिदशालय—संज्ञा पु० [सं०] १. स्वर्ग । २. सुमेरु पर्वत ।

त्रिदशाहार—संज्ञा पु० [सं०] अमृत ।

त्रिदशेश्वरी—संज्ञा पु० [सं०] दुर्गा ।

त्रिदालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चामरकषा । सातला ।

त्रिदिनस्पृश—संज्ञा पु० [सं०] वह तिथि जो तीन दिनों को स
करती हो । अर्थात् जिसका थोड़ा बहुत अंश तीन दिनों
पड़ता हो ।

विशेष—ऐसे दिन में स्नान और दानादि के प्रतिरिक्त और न
शुभ कार्य नहीं करना चाहिए ।

त्रिदिव—संज्ञा पु० [सं०] १. स्वर्ग । उ०—अनुज ! रहना उमि
तुमको यही है, यहाँ जो है त्रिदिव में भी नहीं है ।—साहे
पृ० ६५ । २. आकाश । ३. सुप्त ।

त्रिदिवाधीश—संज्ञा पु० [सं०] १. इंद्र । २. देवता (की०) ।

त्रिदिवि०—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्रिदिव' । उ०—स्वर्ग, ना
स्वर, द्यौ, त्रिदिव, दिव, तिरिविष्टप होइ ।—चंद० प
पृ० १०८ ।

त्रिदिवेश—संज्ञा पु० [सं०] १. देवता । २. इंद्र (की०) ।

त्रिदिवोद्ववा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ी इलायची । २. गंगा ।

त्रिदिवोका—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदिवोकस्] देवता [स्त्री०] ।

त्रिदृश—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

त्रिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों देवता ।

त्रिदोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष ।
२. 'दोष' । उ०—गवयस्तु त्रिदोष ज्यों दूरि करे बर । त्रिदोष
सिर त्यों रघुनन्दन के घर ।—केशव (शब्द०) । २. वात,
पित्त और कफ जनित रोग, सन्निपात । उ०—योवन ज्वर
जुवती कुपत्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय ।—तुलसी
(शब्द०) ।

त्रिदोषज^१—वि० [सं०] तीनों दोषों अर्थात् वात, पित्त और कफ से
उत्पन्न ।

त्रिदोषज^२—संज्ञा पुं० [सं०] सन्निपात रोग ।

त्रिदोषजा—वि० स्त्री० [सं०] २. 'त्रिदोषज' । उ०—पूर्वोक्त त्रिदो-
षजा प्रथमरी विशेष करके बालकों के होती है ।—माधव०,
पृ० १८० ।

त्रिदोषना^१—क्रि० प्र० [सं० त्रिदोष] १. तीनों दोषों के कोप
में पड़ना । उ०—कुलहि लजावै बाल बालिस बजावै गाल
कैषी कर काल वषा तमकि त्रिदोषे है ।—तुलसी (शब्द०) ।
२. काम क्रोध और लोभ के फंदों में पड़ना । उ०—(क)
कालि की बात बालि को सुधि करी समुक्ति हिताहित छोड़ि
करोखे । कछो कुरोघित को न मानिए बड़ी हानि जिय जानि
त्रिदोषे ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रिधनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की रागिनी ।

त्रिधन्वा—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार सुधन्वा राजा के एक
पुत्र का नाम ।

त्रिधर्मा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिधर्मस्] महादेव । शिव ।

त्रिधा^१—क्रि० वि० [सं०] तीन तरह से । तीन प्रकार से ।

त्रिधा^२—वि० [सं०] तीन तरह का ।

यौ०—त्रिधात्व = तीन प्रकारकता । तीन प्रकार का होना ।

त्रिधातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणेश । २. सोना, चाँदी और ताँबा ।

त्रिधाम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिधामन्] १. विष्णु । २. शिव । ३. भगिन ।
४. मृत्यु । ५. स्वर्ग । ६. व्यास मुनि (स्त्री०) ।

त्रिधामूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर जिसके अंतर्गत ब्रह्मा, विष्णु,
और महेश तीनों हैं ।

त्रिधारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा नागरमोया । गुँदला । २. कसेक
का पेड़ ।

त्रिधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीन धारावाला सेतु । २. स्वर्ग,
मर्त्य और पाताल तीनों लोकों में बहनेवाली, गंगा ।

त्रिधाविशेष—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार सूक्ष्म, मातापितृज
और महाभूत तीनों प्रकार के रूप धारण करनेवाला, शरीर ।

त्रिधासर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] देव, तिर्यग् और मानुष ये तीनों सर्ग
जिसके अंतर्गत सारी सृष्टि आ जाती है ।

विशेष—दे० 'सर्ग' ।

त्रिन^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तृण' । उ०—पक्षतल इन कहँ बलह
कीट त्रिन सरिस जवनचय ।—भारतेंदु प्र०, भा० १,
पृ० ५४० ।

त्रिनयन^१—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

त्रिनयन^२—वि० जिसकी तीन आँखें हों । तीन नेत्रोंवाला ।

त्रिनयना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

त्रिनवत—वि० [सं०] तिरानबेवा [स्त्री०] ।

त्रिनवति—वि०, स्त्री० [सं०] तिरानवे । नब्बे और तीन [स्त्री०] ।

त्रिनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

त्रिनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव । शिव । २. सोना । स्वर्ण ।

त्रिनेत्रचूडामणि—संज्ञा पुं० [सं० त्रिनेत्रचूडामणि] चंद्रमा [स्त्री०] ।

त्रिनेत्ररस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस ।

विशेष—यह गोबे हुए पारे, गंधक और फूँके हुए तबे को
बराबर बराबर भागों में लेकर एक विशेष क्रिया से तैयार
किया जाता है और जो सन्निपात रोग में दिया जाता है ।

त्रिनेत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाराहीकंद ।

त्रिनैत^१—वि० [सं० त्रियंक् + नेत्र] त्रियंक् नेत्रवाला । उ०—चट्टायी
भोजराज पहारें त्रिनैत ।—पृ० रा०, २५ । २१८ ।

त्रिनैत^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिनयन' । उ०—अरि अरि नैन त्रिनैत
मनावे । प्रीड़ा विप्रलब्ध सु कहावे ।—नंद० प्र०, पृ० १५४ ।

त्रिन्न^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तृण' । उ०—पेट काज तर, तुंग ।
त्रिन्न परि घर पर डारें ।—पृ० रा०, १ । ७६४ ।

त्रिपंखो^१—संज्ञा पुं० [हि०] एक प्रकार का ढिगख गीत । उ०—मंद
सुकवि दण भेल, गीत त्रिपंखो गुण इणी ।—रघु० क०,
पृ० १९० ।

त्रिपंच—वि० [सं० त्रिपञ्च] तिगुना पाँच अर्थात् पंद्रह [स्त्री०] ।

त्रिपंचार्श—वि० [सं० त्रिपञ्चाश] तिरपनवाँ [स्त्री०] ।

त्रिपटु—संज्ञा पुं० [सं०] १. काँच । शीशा । २. ललाट की तीन आड़ी
रेखाएँ या बल [स्त्री०] ।

त्रिपत—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—बरंगी राल बरमास सूर
वरें । त्रिपत पंखाल पिल खुल ताला ।—रघु० क०, पृ० २० ।

त्रिपताक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह माया या ललाट जिसमें तीन बल
पड़े हों । २. हाथ की एक मुद्रा जिनमें तीन उँगलियाँ फैली
हों [स्त्री०] ।

त्रिपति^१—वि० [सं० तृप्त > त्रिपति त्रिपति] दे० 'तृप्त' । उ०—
त्रिय त्रिधाइ पुरन भए त्रिपति उमापति मुँड ।—पृ०
रा०, २५।७४४ ।

त्रिपति^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तृप्ति] दे० 'तृप्ति' । उ०—न हिय राख
कहु छिन त्रिपति ।—पृ० रा०, १ । ४८४ ।

त्रिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेल का पेड़ जिसके पत्ते एक साथ तीन
तीन लगे होते हैं । २. पलाश का पेड़ [स्त्री०] ।

त्रिपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलाश का वृक्ष । ढाक का पेड़ । २.
तुलसी, कुँब और बेल के पत्तों का समूह ।

त्रिपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घरघर का पेड़। २. त्रिपथिया घास।

त्रिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गों का समूह। उ०—कर्मठ कठमसिया कहैं जाबी ज्ञान विहीन। तुलसी त्रिपथ विहायगो रामकुमारे दीन।—सुबसी (शब्द०)। २. तीनों लोकों (आकाश, पाताल और मर्त्य लोक) के मार्ग (को०)। ३. वह स्थान जहाँ तीन पथ मिलते हैं। तिराहा (को०)।

त्रिपथगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। उ०—मानो मूल यात्रा त्रिपथगा की तीन बारा हो बह्यो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७०।

विशेष—हिंदुओं का विश्वास है कि स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकों में गंगा बहती है, इसीलिये इसे त्रिपथगा कहते हैं।

त्रिपथगामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। दे० 'त्रिपथगा'।

त्रिपथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'त्रिपथगा'। उ०—पथ बेख रही तरंगिणी, त्रिपथा सी वह संग रंघिणी।—साकेत, पृ० ३६३। २. मयुरा (को०)।

त्रिपद्^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपद] १. त्रिपदी। २. त्रिभुज। ३. वह जिसके तीन पद या अक्षर हों। ४. यज्ञों की वेदी नापने की प्राचीन काज की एक नाप जो प्रायः तीन हाथ से कुछ कम होती थी। ५. विष्णु (को०)। ६. उबर (को०)।

त्रिपद्^२—वि० [सं० त्रिपद] १. तीन पैरोंवाला। २. तीन पाएवाला। ३. तीन अक्षरवाला। ४. तीन पदों का (शब्दसमूह) (को०)।

त्रिपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायत्री।

विशेष—गायत्री में केवल तीन ही पद होते हैं इसलिये इसका यह नाम पड़ा।

२. हंसपदी। लाल रंग का लज्जु।

त्रिपदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. त्रिपदी की तरह का पीतल आदि का वह चौखटा जिसपर देवपूजन के समय शंख रखते हैं। २. त्रिपदी। ३. संकीर्ण राग का एक भेद। (संगीत)।

त्रिपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हंसपदी। २. त्रिपदी। ३. हाथी की पलान बांधने का रस्सा। ४. गायत्री। ५. त्रिपदी के आकार का शंख रखने का धातु का चौखटा। ६. गोधापदी लता (को०)।

त्रिपल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के चार चोड़ों में से एक।

त्रिपरिक्रान्त^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपरिक्रान्त] १. वह ब्राह्मण जो यज्ञ करे, पढ़े पढ़ावे और दान दे। २. वह व्यक्ति जिसने काम, क्रोध और लोभ को जीत लिया हो (को०)।

त्रिपरिक्रान्त^२—वि० जो हवन की परिक्रमा करे (को०)।

त्रिपर्य—संज्ञा पुं० [सं०] पलास का पेड़। किशुक वृक्ष।

त्रिपर्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] पलास का पेड़।

त्रिपर्यिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शालपर्णी। २. बनकपास। ३. एक प्रकार की पिठवन लता।

त्रिपर्यी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का क्षुप जिसका कंद औषध में काम आता है। २. शालपर्णी। ३. बनकपास।

त्रिपथ^३—संज्ञा पुं० [?] विविध प्राणायाम रेचक, पुरक, कुंभक।

उ०—ताड़ी लागी त्रिपथ पलटिये छूटें होई पसारी।—कबीर ग्रं०, पृ० २२८।

त्रिपाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौप (को०)।

त्रिपाठी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपाठि] १. तीन वेदों का जाननेवाला पुरुष। त्रिवेदी। २. ब्राह्मणों की एक जाति। त्रिवेदी। तिवारी।

त्रिपाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सूत जो तीन बार भिगोया गया हो (कर्मकांड)। बरकल। छाख।

त्रिपात्, त्रिपात—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपाद' (को०)।

त्रिपाद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. उबर। सुखार। २. परमेश्वर।

त्रिपादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. त्रिपदी। २. हंसपदी लता। लाल रंग का लज्जालू।

त्रिपाप—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का चक्र जिसके अनुसार किसी मनुष्य के किसी वर्ष का शुभाशुभ फल जाना जाता है।

त्रिपिंड—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपिण्ड] पारंगत आद्य में पिता, पितामह और प्रपितामह के उद्देश्य से दिए हुए तीनों पिंड (कर्मकांड)।

त्रिपिटक—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् बुद्ध के उपदेशों का बड़ा संग्रह जो उनकी मृत्यु के उपरांत उनके शिष्यों और अनुयायियों ने समय समय पर किया और जिसे बौद्ध लोग अपना प्रधान धर्मग्रंथ मानते हैं।

विशेष—यह तीन भागों में, जिन्हें पिटक कहते हैं, विभक्त है।

इनके नाम ये हैं—सुत्रपिटक, विनयपिटक, अभिधर्मपिटक।

सुत्रपिटक में बुद्ध के साधारण छोटे और बड़े ऐसे उपदेशों का संग्रह है जो उन्होंने भिक्ष भिक्ष बटनाओं और भवसरों पर किए थे।

विनयपिटक में भिक्षुओं और आचार्यों आदि के आचार के संबंध की बातें हैं। अभिधर्मपिटक में बिस्व, वैदिक धर्म और निर्वाण का वर्णन है।

यही अभिधर्म बौद्ध दर्शन का मूल है। यद्यपि बौद्ध धर्म के महायान, हीनयान और मध्यमयान नाम के तीन यानों का पता चलता है और इन्हीं के अनुसार त्रिपिटक के भी तीन संस्करण होने चाहिए,

तथापि आजकल मध्ययमान का संस्करण नहीं मिलता। हीन-यान का त्रिपिटक पाली भाषा में है और बर्मा, स्याम तथा

लंका के बौद्धों का यह प्रधान और माननीय ग्रंथ है। इस यान के संबंध का अभिधर्म से पुण्य कोई दर्शन ग्रंथ नहीं है। महा-

यान के त्रिपिटक का संस्करण संस्कृत में है और इसका प्रचार नेपाल, तिब्बत, सूटान, आसाम, चीन, जापान और साइबेरिया

के बौद्धों में है। इस यान के संबंध के चार दार्शनिक संप्रदाय हैं जिन्हें सौत्रांतिक, माध्यमिक, योगाचार और वैशेषिक कहते

हैं। इस यान के संबंध के मूल ग्रंथों के कुछ अंश नेपाल, चीन, तिब्बत और जापान में अबतक मिलते हैं। पहले पहल

महात्मा बुद्ध के निर्वाण के उपरांत उनके शिष्यों ने उनके उपदेशों का संग्रह राजगृह के समीप एक गुहा में किया था।

फिर महाराज अशोक ने अपने समय में उसका दूसरा संस्करण बौद्धों के एक बड़े संघ में कराया था। हीनयान-

बाबे अपना संस्करण इसी की बतलाते हैं। तीसरा संस्करण कनिष्क के समय में हुआ था जिसे महायानवाले अपना कहते हैं। हीनयान और महायान के संस्करण के कुछ वाक्यों के मिलान से अनुमान होता है कि ये दोनों किसी पंथ की छाया हैं जो अब लुप्तप्राय हैं। त्रिपिटक में नारायण, जनार्दन शिव, ब्रह्मा, वरुण और शंकर आदि देवताओं का भी उल्लेख है।

त्रिपिताना^१—क्रि० घ० [सं० तृप्ति + पाना (प्रत्य०)] तृप्ति पाना। तृप्त होना। भ्रष्टा जाना। उ०—(क) कैसे तृप्तावन्त जल भ्रष्टवन्त वह तो पुनि ठहरात। यह धातुर छवि से उर भारति नेकु वहीं त्रिपितात।—सूर (शब्द०)। (ख) जे वटरस मुख भोग करत हैं ते कैसे करि जात। सूर सुनो सोचन हरि रस तजि हम सों क्यों त्रिपितात।—सूर (शब्द०)।

त्रिपिताना^२—क्रि० स० तृप्त करना। संतुष्ट करना।

त्रिपिब—संज्ञा पुं० [सं०] वह जसी, पानी पीने के समय जिसके दोनों काम पानी से छू जाते हों। ऐसा बकरा मनु के अनुसार पितृकर्म के लिये बहुत उपयुक्त होता है।

त्रिपिष्टप—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुंड्र] भस्म की तीन घाड़ी रेखाओं का तिलक जो शैव या शाक्त लोग जलाट पर लगाते हैं। उ०—गौर जरीर भूति भलि भाषा। भाल विशाल त्रिपुंड्र विराजा।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।—रमाना।—लगाना।

त्रिपुंड्र—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुण्ड्र] त्रिपुंड्र।

त्रिपुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोखरू का पेड़। २. मटर। ३. खेसारी। ४. तीर। ५. ताला। ६. एक हाथ की लंबाई (को०)। ७. किनारा। तट (को०)। ८. बाण (को०)। ९. छोटी या बड़ी एला या इलायची (को०)। १०. मल्लिका (को०)। ११. एक प्रकार का फोड़ा (को०)। १२. ताल। तलैया (को०)।

त्रिपुट^१—वि० [सं०] त्रिभुजाकार (को०)।

त्रिपुटक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेसारी। २. फोड़े का एक आकार।

त्रिपुटक^२—वि० त्रिकोना या त्रिभुजाकार (फोड़ा)।

त्रिपुटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बेल का पेड़। २. छोटी इलायची। ३. बड़ी इलायची। ४. निसोय। ५. कनफोड़ा बेल। ६. मोतिया। ७. तान्त्रिकों की एक देवी जो अभीष्टदात्री मानी गई है।

त्रिपुटी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निसोय। २. छोटी इलायची। ३. तीन वस्तुओं का समूह। जैसे, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान; ध्याता, ध्येय और ध्यान; द्रष्टा, दृश्य और दर्शन आदि। उ०—ज्ञाता, ज्ञेय पर ज्ञान जो ध्याता, ध्येय पर ध्यान। द्रष्टा, दृश्य पर दृश्य जो त्रिपुटी शब्दशब्द।—कबीर (शब्द०)।

त्रिपुटी^२—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुटिन्] १. रेंड का पेड़। २. खेसारी।

त्रिपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाणासुर का एक नाम। २. तीनों लोक। ३. चंदेरी नगर।—(हि०)। ४. महाभारत के अनुसार वे तीनों नगर जो तारकासुर के तारकाक्ष, कमलाक्ष और विशुम्भाक्षी नाम के तीनों दैत्यों ने मय दानव से अपने लिये बनाए थे।

विशेष—इनमें से एक नगर सोने का और स्वर्ण में था, दूसरा

अंतरिक्ष में चाँदी का था और तीसरा मर्त्यलोक में लोहे का था। जब उक्त तीनों असुरों का अत्याचार और उपद्रव बहुत बढ़ गया तब देवताओं के प्रार्थना करने पर शिव जी ने एक ही बाण से उन तीनों नगरों को नष्ट कर दिया और पीछे से उन तीनों 'राक्षसों' को मार डाला।

त्रिपुरभाराति—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुर + भाराति] कामारि। महादेव।

त्रिपुरभाराती(१)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुर + भाराति] दे० 'त्रिपुर भाराति'। उ०—जबपि सती पूछा बहु भाती। तबपि न कहेउ त्रिपुर भाराती।—मानस, १।५७।

त्रिपुरछन—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

त्रिपुरदहन—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

त्रिपुरदाहक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुर + दाहक] दे० 'त्रिपुरदहन'। उ०—त्रिपुरदाहक शिव भद्रवट पर था।—प्रा० भा० सं०, पु० १०८।

त्रिपुरभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक रस जो सन्निपात रोग में दिया जाता है।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है—काली मिर्च ४ भर, सोंठ ४ भर, शुद्ध तेलिया सोहागा ३ भर, और शुद्ध सींगी मोहरा १ भर लेते हैं और इन सब चीजों को पीसकर पहले तीन दिन तक नीबू के रस में फिर पाँच दिन तक अदरक के रस में और तब तीन दिन तक पान के रस में अच्छी तरह सरल करके एक एक रत्ती की गोलीयाँ बना लेते हैं। यह गोली अदरक के रस के साथ ही जाती है।

त्रिपुरभैरवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

त्रिपुरमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मल्लिका।

त्रिपुरहर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव (को०)।

त्रिपुरसुंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपुरसुन्दरी] दुर्गा (को०)।

त्रिपुरांतक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुरांतक] शिव। महादेव।

त्रिपुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामाख्या देवी की एक मूर्ति।

त्रिपुरारि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

त्रिपुरारि रस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, तांबे, गंधक, सोहे, अभ्रक आदि के योग से बनाया जाता है। इसका व्यवहार पेट के रोगों को नष्ट करने के लिये होता है।

त्रिपुरारी(१)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिपुरारि'। उ०—मुनि सन बिदा मणि त्रिपुरारी। चले भवन संग दलकुमारी।—मानस, १।४८।

त्रिपुरासुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपुर'।

त्रिपुरुष^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिता, पितामह और प्रपितामह। २. संपत्ति का वह भोग जो तीन पीढ़ियों अलग अलग करें। एक एक करके तीन पीढ़ियों का भोग।

त्रिपुरुष^२—वि० जिसकी लंबाई उतनी हो जितनी तीन पुरुषों के मिलने पर होती है (को०)।

त्रिपुव—संज्ञा पुं० [सं०] १. ककड़ी । २. बीरा । ३. गेहूँ ।

त्रिपुवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काला विसोष ।

त्रिपुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक योग जो पुनर्वसु, उत्तराषाढा, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद और विशाखा इन नक्षत्रों, रवि, मंगल और शनि इन तिथियों में से किसी एक नक्षत्र एक बार और एक तिथि के एक साथ पड़ने से होता है ।

विशेष—इस योग में यदि कोई मरे तो उसके परिवार में दो यादमी और मरते हैं और उसके संबंधियों को अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं । इसमें यदि कोई हानि हो तो वैसी ही हानि और दो बार होती है और यदि लाभ हो तो वैसा ही लाभ और दो बार होता है । बालक के जन्म के लिये यह योग आरब्ध योग समझा जाता है ।

त्रिपूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'त्रिपूरुष' [को०] ।

त्रिपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के मत से पहले वासुदेव ।

त्रिपौरुष—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'त्रिपूरुष' ।

त्रिपौलिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'तिरपौलिया' ।

त्रिप्त^१—वि० [हि०] ३० 'तृप्त' । उ०—सुनत सुनत तन त्रिप्त भई ।—केशव० प्रसी०, पृ० १० ।

त्रिप्तासना^२—कि० सं० [सं० तृप्ति] तृप्त करना । संतुष्ट करना । उ०—अन्नित नाम भोजन त्रिप्तासै । गुर के शब्द कबल पर गासै ।—प्राण०, पृ० १८२ ।

त्रिप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में विद्या, देश और काल संबंधी प्रश्न ।

त्रिप्रस्तुत—संज्ञा पुं० [सं०] यह हाथी जिसके मस्तक, कपोल और नेत्र इन तीनों स्थानों से मद झड़ता हो ।

त्रिप्लक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन देश का नाम जिसका उल्लेख वैदिक ग्रंथों में आया है ।

त्रिफला—संज्ञा पुं० [सं०] १. घाबले, हड़ और बहेड़े का समूह ।

विशेष—यह घाबलों के लिये हितकारक, अग्निदीपक, रुचिकारक, सारक तथा कफ, पित्त, मेह, कुष्ठ और विषमज्वर का नाशक माना जाता है । इससे बेंचक में अनेक प्रकार के घृत आदि बनाए जाते हैं ।

पर्या०—त्रिफली । फलत्रय । फलत्रिक ।

२. यह त्रूलों जो इन तीनों फलों से बनाया जाता है ।

विशेष—यह त्रूलों बनाते समय एक भाग हड़, दो भाग बहेड़ा और तीन भाग घाबला लिया जाता है ।

त्रिबंक^१—वि० [सं० त्रि + हि० बंक] तीन जगह से टेढ़ा । उ०—बंक दासी सँग बैठि चित्तु त्रिबंक भो ।—नट०, पृ० ३३ ।

त्रिबंक^२—संज्ञा स्त्री० तीन जगह से टेढ़ी, कुम्भा । उ०—हम सुधी को टेढ़ी गनी गनिका वा त्रिबंक को अंक धरो सो बरी ।—नट०, पृ० ३१ ।

त्रिबलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिबली' ।

त्रिबली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वे तीन बल जो पेट पर पड़ते हैं । इन बलों की गणना सौंवर्य में होती है । उ०—त्रिबली पा पहुँ ललित, रोम राखी मन मोहै ।—ह० रासो, पृ० २५ । २. मिश्रणी (को०) ।

त्रिबलीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । २. मलद्वार । पुषा ।

त्रिबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुद्र के एक अनुचर का नाम । २. तलवार का एक हाथ ।

त्रिविद्धि^१—वि० [हि०] ३० 'त्रिविध' । उ०—बहैं बहुभाति त्रिविद्धि समीर ।—ह० रासो, पृ० २३ ।

त्रिविध^२—वि० [हि०] ३० 'त्रिविध' । उ०—हरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ।—भारतेन्दु प्र०, भा० १, पृ० २८२ ।

त्रिबीज—संज्ञा पुं० [सं०] सौंवा (को०) ।

त्रिबीणी^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'त्रिवेणी' । उ०—तत्तु त्रिबीणी खुलै दुष्माक ।—प्राण०, पृ० १११ ।

त्रिवेनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'त्रिवेणी' ।

त्रिभंग^१—वि० [सं० त्रिभङ्ग] तीन जगह से टेढ़ा । जिसमें तीन जगह बल पड़ते हों । उ०—जैसे को तैसो मिले तब ही जुरत सनेह । ज्यों त्रिभंग तनु स्याम को कुटिल कूबरी देह ।—पद्याकर (शब्द०) ।

त्रिभंग^२—संज्ञा पुं० लड़े होने की एक मुद्रा जिसमें पेट कमर और गरदन में कुछ टेढ़ापन रहता है ।

विशेष—प्रायः श्रीकृष्ण के ध्यान में इस प्रकार लड़े होकर बंसी बजाने की भावना की जाती है ।

त्रिभंगी^३—वि० [सं० त्रिभङ्गिन्] तीन जगह से टेढ़ा । तीन मोड़ का । त्रिभंग । उ०—करो कुबत जग कुटिलता, तजौ न बीन दयाल । दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल ।—बिहारी (शब्द०) ।

त्रिभंगी^२—संज्ञा पुं० १. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद जिसमें एक गुरु, एक लघु और एक प्लुत मात्रा होती है । २. शुद्ध राग का एक भेद । ३. एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं और १०, ८, ८, ६, मात्राओं पर यति होती है । जैसे,—परसत पद पावन, शोक नसावन, प्रगट भई तप पुंज सहो । ४. गणात्मक दण्डक का भेद जिसके प्रत्येक चरण में ६ गण, २ सगण, मगण, मगण, सगण और अंत में एक गुरु होता है अर्थात् प्रत्येक चरण में ३४ मसर होते हैं । जैसे,—सजल जलद तनु जसत विमल तनु अम कण त्यों फलकों हैं उमगो है बुंद मनो है । झुव युग मटकनि फिर सटकनि प्रतिमिष नैनन जो है हरषो है ह्वं मन मोहै । ५. ३० 'त्रिभंग' ।

त्रिभंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिभण्डी] निसोष ।

त्रिभ^१—वि० [सं०] तीन नक्षत्रों से युक्त । जिसमें तीन नक्षत्र हों ।

त्रिभ^२—संज्ञा पुं० चंद्रमा के हिसाब से रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रयुक्त आश्विन; अतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद

नक्षत्रयुक्त माद्रमास; और पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी और हस्त नक्षत्रयुक्त फाल्गुन मास ।

त्रिभग(७)—वि० [हि०] दे० 'त्रिमंग' । उ०—मुरली सुर नट बाव त्रिभग उर धायत कंबी ।—पृ० रा०, २ । ४२६ ।

त्रिभजीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की आधी रेखा । त्रिज्या ।

त्रिभज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिभजीया । त्रिज्या ।

त्रिभद्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहवास । स्त्रीप्रसंग [को०] ।

त्रिभुवन(७)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन] दे० 'त्रिभुवन' । उ०—कर्म सूत तैं बली नाहि त्रिभुवन में कोई ।—नंद० प्र०, पृ० १७६ ।

त्रिभुक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] तिरहुत या मिथिला देश ।

त्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] तीन भुजाओं का क्षेत्र । वह त्रयातल जो तीन भुजाओं या रेखाओं से घिरा हो । जैसे, \triangle ∇ ।

त्रिभुवन—संज्ञा पुं० [सं०] तीन लोक अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और वाताल ।

त्रिभुवनगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । उ०—तुम्ह त्रिभुवनगुरु देव बलाना । धाम जीवन पाँवर का जाना ।—मानस, १ ।

त्रिभुवननाथ—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन + नाथ] जगदीश । परमेश्वर । उ०—त्यों सब त्रिभुवननाथ ताड़का मारो सहसुत ।—केशव (शब्द०) ।

त्रिभुवनराई(७)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन + राज] तीन लोकों का स्वामी ।

त्रिभुवनराई(७)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवनराज] तीन लोकों का स्वामी उ०—हम तीनों हैं त्रिभुवन राई ।—कबीर सा०, पृ० १८३ ।

त्रिभुवनसुंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिभुवनसुन्दरी] १. दुर्गा । २. पार्वती ।

त्रिभूम—संज्ञा पुं० [सं०] तीन खंडोंवाला मकान । तिमहला घर ।

त्रिभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] क्षितिज वृत्त पर पड़नेवाले क्रांतिवृत्त का ऊपरी मध्य भाग ।

त्रिमंडला—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिमण्डला] एक प्रकार की जहरीली मकड़ी ।

त्रिमद—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मोया, बीता और बायबिडंग इन तीनों चीजों का समूह । २. परिवार, विद्या और धन इन तीनों कारणों से होनेवाला अविभाज्य ।

त्रिमधु—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋग्वेद के एक ग्रंथ का नाम । २. वह व्यक्ति जो विधिपूर्वक उक्त ग्रंथ पढ़े । ३. ऋग्वेद का एक यज्ञ । ४. घी, सहव और चीनी इन तीनों का समूह ।

त्रिमधुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिमधु' ।

त्रिमास—वि० [सं०] दे० 'त्रिमासिक' ।

त्रिमास—वि० [सं०] त्रिमासिक [को०] ।

त्रिमासिक—वि० [सं०] तीन मात्राओं का । तीन मात्राओंवाला । जिसमें तीन मात्राएँ हों । प्लुत ।

त्रिमार्गगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

त्रिमार्गगाभिगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

त्रिमार्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा । २. त्रिमुहानी ।

त्रिमुंड—संज्ञा पुं० [सं० त्रिमुण्ड] १. त्रिखिरा राक्षस । २. ज्वर । बुखार ।

त्रिमुकुट—संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियाँ हों । त्रिकूट ।

त्रिमुक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. शाक्यमुनि । २. गायत्री अपने की बीबीस मुद्राओं में से एक मुद्रा ।

त्रिमुखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिमुखी' ।

त्रिमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुढ़ की माता, मायादेवी ।

विशेष—महायान शाखा के बौद्ध देवीरूप से इनकी उपासना करते हैं ।

त्रिमुनि—संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि ये तीनों मुनि ।

त्रिमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिमुहानी' ।

त्रिमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता । २. सूर्य ।

त्रिमूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्म की एक शक्ति । २. बौद्धों की एक देवी ।

त्रिमृत—संज्ञा पुं० [सं०] निसोष ।

त्रिमृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिमृत' ।

त्रियंग(७)—वि० [सं० त्रि + अङ्ग] तीन रूप का । तीन तरह का । उ०—तही चिट्टियें बंति ऊमल मत्त । तही अत्र रंग त्रियंगे डरतें ।—पृ० रा०, १६।१४६ ।

त्रिय(७)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिया' । उ०—एहि कर नामु सुमिरि संसारा । त्रिय चढ़िहुँ पतिव्रत असिधारा ।—मानस, १।६७ ।

त्रियडंडी(७)—वि० [हि०] दे० 'त्रिडंडी' । उ०—एक डंडी बुडंडी त्रिय-डंडी भगवान हूवा ।—गोरख०, पृ० १३२ ।

त्रियलोक(७)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिलोक' । उ०—एकै सतगुरु सूर सम तिमिर हरे त्रियलोक ।—रज्जव०, पृ० १६ ।

त्रियव—संज्ञा पुं० [सं०] एक परिमाण जो तीन जो के बराबर या एक रत्ती के लगभग होता है ।

त्रियष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] पितृपापड़ा । शाहतरा ।

त्रियन(७)—वि० [हि०] दे० 'तीन' । उ०—त्रियन बरस त्रिय मास दिन त्रिय घटी पल उन्न ।—पृ० रा०, २३।१३ ।

त्रिया(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] औरत । स्त्री ।

यौ०—त्रियाचरित्र = स्त्रियों का छल कपट जिसे पुरुष सहज में नहीं समझ सकते ।

त्रियाड(७)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिया' । उ०—जलधर बिन यों मेदिनी । यों पतिहीन त्रियाड ।—पृ० रा०, २५।४४ ।

त्रियाजीत(७)—वि० [हि० त्रिया + जीत] स्त्री के वश में न आनेवाला उ०—त्रियाजीत ते पुरिषागता मिलि भानंत ते पुरिषागता । गोरख०, पृ० ७६ ।

त्रियासीत(७)—वि० [सं० त्रि + असीत] तीन अर्थात् त्रिगुण से परे । उ०—त्रियासीत की श्रेणी जिनको वेद सबसे बढ़कर बतलाता है ।—कबीर मं०, पृ० १२६ ।

त्रियान—संज्ञा पु० [सं०] बीड़ों के तीन प्रधान भेद या ज्ञान—महा-
यान, हीनयान और मध्यमयान ।

त्रियामक—संज्ञा पु० [सं०] पाप ।

त्रियामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि ।

विशेष—रात के पहले चार दंडों और अंतिम चार दंडों की
गिनती दिन में की जाती है, जिससे रात में केवल तीन ही
पहर बच रहते हैं । इसी से उसे त्रियामा कहते हैं ।

२. यमुना नदी । ३. हलदी । ४. नील का पेड़ । ५. कासा
निसोव ।

त्रियासंग—संज्ञा पु० [हि० त्रिया + संग] स्त्रीप्रसंग । सहवास ।
उ०—राजयोग के चित्त ये जाने बिरला कोय । त्रियासंग मति
कीबियहु जो ऐसा नहि होय ।—सुंदर सं०, भा० १,
पृ० १०४ ।

त्रियुग—संज्ञा पु० [सं०] १. विष्णु । २. वसंत, वर्षा और शरद ये
तीनों ऋतुएँ । ३. सत्ययुग, द्वापर और त्रेता ये तीनों युग ।

त्रियूह—संज्ञा पु० [सं०] सफेद रंग का घोड़ा ।

त्रियोदश—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'त्रयोदश' । उ०—रवि अग्रयन अंस
षष्ठ बीस मानि । ससि जन्म त्रियोदस अंस ज्यानि ।—ह०
रासो, पृ० २६ ।

त्रियोनि—संज्ञा पु० [सं०] एक मुकुटमा जो क्रोध, लोभ और मोह के
कारण होता है [को०] ।

त्रिरत्न—संज्ञा पु० [सं०] बुद्ध, धर्म और संघ का समूह । (बौद्ध) ।

त्रिरश्मि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिकोण' ।

त्रिरसक—संज्ञा पु० [सं०] वह मदिरा जिसमें तीन प्रकार के रस
या स्वाद हों ।

• त्रिरात्रि—संज्ञा पु० [सं०] १. तीन रात्रियों (और दिनों) का
समय । २. एक प्रकार का व्रत जिसमें तीन दिनों तक उपवास
करना पड़ता है । ३. गण त्रिरात्र नामक योग ।

त्रिराज—संज्ञा पु० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम [को०] ।

त्रिरूप—संज्ञा पु० [सं०] धर्ममेव यज्ञ के लिये एक विशेष प्रकार
का घोड़ा ।

त्रिरूप—वि० तीन रंगों या प्राकृतियोंवाला [को०] ।

त्रिरेख—संज्ञा पु० [सं०] शंख ।

त्रिरेख—वि० तीन रेखाओंवाला । जिसमें तीन रेखाएँ हों ।

त्रिल—संज्ञा पु० [सं०] नगण, जिसमें तीनों बरुं लघु होते हैं ।

त्रिलघु—संज्ञा पु० [सं०] १. नगण, जिसमें तीनों बरुं लघु होते
हैं । २. वह पुरुष जिसकी गर्दन, जीव और मूर्ध्निय छोटी
हो । पुरुष के लिये ये लक्षण शुभ माने जाते हैं ।

त्रिलवण—संज्ञा पु० [सं०] सेंधा, सौंभर और सोबर (काला)
नमक ।

त्रिलिंग—संज्ञा पु० [हि० त्रैलंग] त्रैलंग शब्द का बनावटी
संस्कृत रूप ।

त्रिलोक—संज्ञा पु० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक ।
यो०—त्रिलोकनाथ । त्रिलोकपति ।

त्रिलोकनाथ—संज्ञा पु० [सं०] १. तीनों लोकों का मालिक या
रक्षक, ईश्वर । २. राम । ३. कृष्ण । ४. विष्णु का कोई
अवतार । ५. सूर्य ।

त्रिलोकपति—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'त्रिलोकनाथ' ।

त्रिलोकमणि—संज्ञा पु० [?] सूर्य । उ०—निरबीज करुं राक्षस
निकर, मेढूँ फिकर त्रिलोकमणि ।—रघु० क०, पृ० ४८ ।

त्रिलोकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'त्रिलोक' ।

त्रिलोकीनाथ—संज्ञा पु० [हि० त्रिलोकी + नाथ] ३० 'त्रिलोकनाथ' ।

त्रिलोकेश—संज्ञा पु० [सं०] १. ईश्वर । २. सूर्य ।

त्रिलोचन—संज्ञा पु० [सं०] शिव । महादेव ।

त्रिलोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिलोचनी' ।

त्रिलोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा । २. व्यभिचारिणी (को०) ।

त्रिलोह—संज्ञा पु० [सं०] सोना, चाँदी और लौ ।

त्रिलोहक—संज्ञा पु० [सं०] त्रिलोह [को०] ।

त्रिलोह—संज्ञा पु० [सं०] त्रिलोह [को०] ।

त्रिलोही—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की मुद्रा
जो सोने, चाँदी और लौ को मिलाकर बनाई जाती थी ।

त्रिवट—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'त्रिवण' ।

त्रिवण—संज्ञा पु० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो दोपहर के
समय गाया जाता है ।

विशेष—इसे कुछ लोग द्विडोल राग का पुत्र मानते हैं ।

त्रिवर्णी—संज्ञा स्त्री० [?] एक संकर रागिनी जो संकराभरण, जयश्री
और नरनारायण के मेल से बनती है ।

त्रिवर्ग—संज्ञा पु० [सं०] १. धर्म, धर्म और काम । २. त्रिकला ।
३. त्रिकुटा । ४. बुद्धि, स्थिति और क्षय । ५. सत्त्व, रज
और तम ये तीनों गुण । ६. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये
तीनों प्रधान जातियाँ । ७. सुगति । ८. गायत्री ।

त्रिवर्णी—संज्ञा पु० [सं०] त्रिवर्ण [को०] ।

त्रिवर्णी—वि० तीन रंगवाला [को०] ।

त्रिवर्णक—संज्ञा पु० [सं०] १. गोलरू । २. त्रिकला । ३. त्रिकुटा ।
४. काला, लाल और पीला रंग । ५. ब्राह्मण, क्षत्रिय और
वैश्य ये तीनों प्रधान जातियाँ ।

त्रिवर्ण—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनकपास ।

त्रिवर्त—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का मोती ।

विशेष—कहते हैं, जिसके पास यह मोती होता है उसको बरिद
कर देता है ।

त्रिवर्त्मा—वि० [सं० त्रिवर्त्मन्] तीन मार्गों से जानेवाला । [को०] ।

त्रिवर्त्मा—संज्ञा पु० जीव [को०] ।

त्रिवल्लि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिवली' ।

त्रिवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिवली' ।

त्रिबली—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिबली' ।

त्रिवलय—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत प्राचीन काष का एक प्रकार का बाजा जिसपर बमड़ा मड़ा होता था ।

त्रिवार—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम ।

त्रिबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिवार के ३२ हाथों में से एक हाथ ।

त्रिविक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. बामन का अवतार । २. विष्णु ।

त्रिविद्—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने तीनों वेद पढ़े हों ।

त्रिविध—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो तीनों वेदों का ज्ञाता हो [को०] ।

त्रिविध^१—वि० [सं०] तीन प्रकार का । उ०—त्रिविध साय नासक त्रिमुहानी । राय स्वरूप विष्णु समुहानी ।—तुलसी (जन्म०)

त्रिविध^२—क्रि० वि० [सं०] तीन प्रकार के ।

त्रिविमत—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसमें देवता, ब्राह्मण और गुरु के प्रति बहुत श्रद्धा और शक्ति हो ।

त्रिविष्टप—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । २. तिम्रस देश ।

त्रिविस्तीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसका जलाट, कमर और छाती ये तीनों भंग जायें हों ।

विशेष—ऐसा मनुष्य भाग्यवान् समझा जाता है ।

त्रिवृत^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिवृत] १. एक प्रकार का यज्ञ । २. निसोष ।

त्रिवृत^२—संज्ञा स्त्री० तीन लड़ों की करघनी [को०] ।

त्रिवृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिवृता' ।

त्रिवृत्करण—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि, जल और पृथ्वी इन तीनों तत्वों में से प्रत्येक में शेष दोनों तत्वों का समावेश करने प्रत्येक को अलग अलग तीन भागों में विभक्त करने की क्रिया ।

विशेष—इस विचारपद्धति के अनुसार प्रत्येक तत्व में शेष तत्वों भी समावेश माना जाता है । उदाहरण के लिये अग्नि को लीजिए । अग्नि में अग्नि, जल और पृथ्वी का समावेश माना जाता है; और इन तीनों तत्वों के अस्तित्व के प्रमाणस्वरूप अग्नि की लज्जाई, सफेदी और काश्मिया अवस्थित की जाती है । अग्नि की लज्जाई उसमें अग्निवैद्य के होने का, सफेदी उसमें जल के होने का और उसमें की कालिमा उसमें पृथ्वी तत्व होने का प्रमाण माना जाता है । आयोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक के चौथे खंड में इसका पूरा विवरण दिया हुआ है । जान पड़ता है, उस समय तक लोगों को केवल तीन ही तत्वों का ज्ञान हुआ था और पीछे के जब और जो तत्वों का ज्ञान हुआ तब तत्वों के पंचीकरणवाली पद्धति निकली ।

त्रिवृत्त—वि० [सं०] त्रिगुण ।

त्रिवृत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिवृत्ता' ।

त्रिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोष ।

त्रिवृत्पर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरहर । हिलमोचिका ।

त्रिवृत्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद । २. प्रणव ।

त्रिवृष—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ग्यारहवें द्वापर के व्यास का नाम ।

त्रिवेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीन नदियों का संगम । २. तीन नदियों की मिली हुई धारा । ३. गंगा, यमुना और सरस्वती का संगमस्थान जो प्रयाग में है ।

विशेष—यह तीर्थस्थान माना जाता है और वाकली तथा मकर संक्रांति भादि के अवसरों पर यहाँ स्नान करनेवालों की बहुत भीड़ होती है ।

४. हठयोग के अनुसार इडा, पिंगला और सुषुम्ना इन तीनों वादियों का संगम स्थान ।

त्रिवेणु—संज्ञा पुं० [सं०] रथ के अगले भाग के एक भंग का नाम ।

त्रिवेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद । २. इन तीनों वेदों में बतलाए हुए क्रम । ३. वह जो इन तीनों का ज्ञाता हो ।

त्रिवेदी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिवेदिन्] १. ऋक्, यजु और साम इन तीन वेदों का जाननेवाला । २. ब्राह्मणों का एक भेद ।

त्रिवेदी^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'त्रिवेदी' ।

त्रिवेदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोष ।

त्रिशंकु—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कु] १. बिल्ली । २. जुगनू । ३. एक पहाड़ का नाम । ४. पपीहा । ५. एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा का नाम जिन्होंने सशरीर स्वर्ग जाने की कामना से यज्ञ किया था पर जो इंद्र तथा दूसरे देवताओं के विरोध करने के कारण स्वर्ग न पहुँच सके ।

विशेष—रामायण में लिखा है कि सशरीर स्वर्ग पहुँचने की कामना से त्रिशंकु ने अपने गुरु वशिष्ठ से यज्ञ कराने की प्रार्थना की पर वशिष्ठ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार न की । इस-पर वह वशिष्ठ के पुत्रों के पास गए; पर उन लोगों ने भी उनकी बात न मानी, उल्टे उन्हें शाप दिया कि तुम बाँडाल हो जाओ । तदनुसार राजा बाँडाल होकर विश्वामित्र की शरण में पहुँचे और हाथ जोड़कर उनसे अपनी अधिप्राया प्रकट की । इसपर विश्वामित्र ने बहुत से ऋषियों को बुलाकर उससे यज्ञ करने के लिये कहा । ऋषियों ने विश्वामित्र के कोप से डरकर यज्ञ आरंभ किया जिसमें स्वयं विश्वामित्र अध्वर्यु बने । जब विश्वामित्र ने देवताओं को उनका हविर्भाग देना चाहा तब कोई देवता न आया । इसपर विश्वामित्र बहुत विषाई और केवल अपनी तपस्या के बल से ही त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने लगे । जब इंद्र ने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग की ओर धाते हुए देखा तब उन्होंने वहीं से उन्हें मर्त्यलोक की ओर लौटाया । त्रिशंकु जब उछटे होकर नीचे गिरने लगे तब बड़े और से चिल्लाए । विश्वामित्र के उन्हें आकाश में ही रोक दिया और क्रुद्ध होकर दक्षिण की

घोर दूसरे सप्तवियों घोर नक्षत्रों की रचना प्रारंभ की। सब वैद्यता व्यथित होकर विश्वामित्र के पास पहुँचे। तब विश्वामित्र ने उनसे कहा कि मैंने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग पहुँचाने की प्रतिज्ञा की है। अतः अब वह जहाँ के तहाँ रहेंगे घोर हमारे बनाए हुए सप्तवि घोर नक्षत्र उनके चारों घोर रहेंगे। देवताओं ने उनकी यह बात स्वीकार कर ली। तब से त्रिशंकु वही आकाश में नीचे सिर किए हुए लटके हैं घोर नक्षत्र उनकी परिक्रमा करते हैं। लेकिन हरिवंश में लिखा है कि महाराज त्र्याम्बक का सत्यव्रत नामक एक पुत्र बहुत ही पराक्रमी राजा था। सत्यव्रत ने एक पराई स्त्री को घर में रख लिया था। इससे पिता ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम चाँडाल हो जाओ। तबनुसार सत्यव्रत चाँडाल होकर चाँडालों के साथ रहने लगे। जिस स्थान पर सत्यव्रत रहते थे उससे पास ही विश्वामित्र ऋषि भी वन में तपस्या करते थे। एक बार उस प्रांत में बारह वर्षों तक वृष्टि ही न हुई, इससे विश्वामित्र की स्त्री अपने बिचले लड़के को गले में बाँधकर सी गायों को बेचने निकली। सत्यव्रत ने उस लड़के को ऋषिपत्नी से लेकर उसे पालना प्रारंभ किया, तभी से उस लड़के का नाम गालव पड़ा। एक बार मांस के अभाव के कारण सत्यव्रत ने वशिष्ठ की कामधेनु गौ को मारकर उसका मांस विश्वामित्र के लड़कों को खिलाया था घोर स्वयं भी खाया था। इसपर वशिष्ठ ने उनसे कहा कि एक तो तुमने अपने पिता को भ्रष्ट किया, दूसरे अपने गुरु की गौ मार डाली घोर तीसरे उसका मांस स्वयं खाया घोर ऋषिपुत्रों को खिलाया। अब किसी प्रकार तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। सत्यव्रत ने ये तीन महापातक किए थे, इसी से वह त्रिशंकु कहलाए। उन्होंने विश्वामित्र की स्त्री घोर पुत्रों की रक्षा की थी इसलिये ऋषि ने उनसे वर माँगने के लिये कहा। सत्यव्रत ने सशरीर स्वर्ग जाना चाहा। विश्वामित्र ने पहले तो उनकी यह बात मान ली, पर पीछे से उन्होंने सत्यव्रत को उनके पैतृक राज्य पर अभिषिक्त किया घोर स्वयं उनके पुरोहित बने। सत्यव्रत ने केकय वंश की सतरथा नामक कन्या से विवाह किया था जिसके गर्भ से प्रसिद्ध सत्यव्रती महाराज हरिश्चंद्र ने जन्म लिया था। ऐतिहासिक उपनिषद् के अनुसार त्रिशंकु अनेक वैदिक मंत्रों के ऋषि थे।

६. एक तारा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह वही त्रिशंकु है जो इंद्र के डकैलने पर आकाश से गिर रहे थे घोर जिन्हे मार्ग में ही विश्वामित्र ने रोक दिया था।

त्रिशंकुज—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कुज] त्रिशंकु के पुत्र, राजा हरिश्चंद्र।

त्रिशंकुयाजी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कुयाजिन्] त्रिशंकु को यज्ञ कराने-वाले, विश्वामित्र ऋषि।

त्रिशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इच्छा, ज्ञान, घोर क्रिया रूपी तीनों ईश्वर शक्तियाँ। २. महत्त्व जो त्रिगुणात्मक है। बुद्धितत्त्व। ३. तांत्रिकों की काली, तारा घोर त्रिपुरा ये तीनों

देवियाँ। ४. गायत्री।

यौ०—त्रिशक्तिधृत्।

त्रिशक्तिधृत्—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर। २. विजिगीषु राजा का एक नाम।

त्रिशत—वि० [सं०] तीन सौ [को०]।

त्रिशरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध। २. धर्मियों के एक आचार्य का नाम।

त्रिशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़, चीनी घोर मिली इन तीनों का समूह।

त्रिशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्तमान अत्रसपिणी के बीबीस तीर्थ-करों में से अंतिम तीर्थकर वर्धमान या महावीर स्वामी की माता का नाम।

त्रिशाल—वि० [सं०] जिसमें आगे की घोर तीन शाखाएँ निकली हों।

त्रिशालपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बेख का पेड़।

त्रिशाल—संज्ञा पुं० [सं०] तीन कमरोंवाला मकान [को०]।

त्रिशालक—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार वह इमारत जिसके उत्तर घोर घोर कोई इमारत न हो।

विशेष—ऐसी इमारत अच्छी समझी जाती है।

त्रिशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिशूल। २. किरिट। ३. रावण के एक पुत्र का नाम। ४. बेल का पेड़। ५. तामस नामक मन्वंतर के इंद्र के नाम।

त्रिशिखर—वि० जिसकी तीन शिखाएँ हों। तीन चोटियोंवाला।

त्रिशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियाँ हों। त्रिकूट पर्वत।

त्रिशिखला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालाकंद नाम की लता अथवा उसका कंद (मूल)।

त्रिशिखी—वि० [सं०] ३० 'त्रिशिख'।

त्रिशिर—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशिरस्] १. रावण का एक भाई जो खर-दूषण के साथ दंडक वन में रहा करता था। २. कुबेर। ३. एक राक्षस जिसका उल्लेख महाभारत में है। ४. स्वष्टा प्रजापति के पुत्र का नाम। हरिवंश के अनुसार उवरपुरुष।

विशेष—इसे दानवों के राजा बाण की सहायता के लिये महादेव जी ने उत्पन्न किया था घोर जिसके तीन सिर, तीन पैर, छह हाथ घोर नौ भालें थीं।

त्रिशिरा—संज्ञा पुं० [त्रिशिरस्] ३० 'त्रिशिर'।

त्रिशोर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन चोटियोंवाला पहाड़। त्रिकूट। स्वष्टा प्रजापति के पुत्र का नाम।

त्रिशोर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशूल।

त्रिशुच—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म, जिसका प्रकाश स्वर्ग, अंतरिक्ष घोर पृथिवी तीनों स्थानों में है। २. वह जिसे दैहिक, दैविक घोर भौतिक तीनों प्रकार के दुःख हों।

त्रिशूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का अस्त्र जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं। यह महादेव जी का अस्त्र माना जाता है।

यौ०—त्रिशूलधर = महादेव ।

२. दैहिक, वैदिक और भौतिक दुःख । ३. तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिसमें झंगूटे की कनिष्ठा उँगली के साथ मिलाकर बाकी तीनों उँगलियों को फैला देते हैं ।

त्रिशूलधात—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ जहाँ स्नान और तपण करने से गणपत्य देह प्राप्त होती है ।

त्रिशूलधारी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशूलधारिन्] शिव (को०) ।

त्रिशूली—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशूलिन्] त्रिशूल को धारण करनेवाला, महादेव ।

त्रिशूली—संज्ञा स्त्री० दुर्गा ।

त्रिशृंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशृङ्ग] १. त्रिशूट पर्वत जिसपर सँका बसी थी । २. त्रिकोण ।

त्रिशृंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिशृङ्गी] टेगना नचली जिसके सिर पर तीन कटे होते हैं ।

त्रिशोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीव, जिसे प्राणदैहिक, प्राणभौतिक, प्राणध्यात्मिक ये तीन प्रकार के शोक होते हैं । २. कएव ऋषि के एक पुत्र का नाम ।

त्रिश्रुतिमध्वम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विकृत स्वर ।

विशेष—यह संक्षेपनी नाम की श्रुति से आरम्भ होता है । इसमें बार श्रुतियाँ होती हैं ।

त्रिपरण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल । त्रिकाल ।

त्रिषष्ठ—वि० [सं०] तिरसठवाँ । क्रम में तिरसठ के स्थान पर पड़नेवाला ।

त्रिषष्ठि—संज्ञा स्त्री [सं०] माठ और तीन की सूचक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६३ ।

त्रिषष्ठि^२—वि० साठ और तीन । तिरसठ (को०) ।

त्रिषा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' । उ०—अमर भेद साहिब कहि बीजे । त्रिषा बुझाय अमीरस पोजे ।—कबीर सा०, पृ० ११२ ।

त्रिषाली^१—वि० [हि० त्रिषा] तृषातुर । प्यासा । उ०—पिछल्या रहे त्रिषाली अगल्यों प्राव मिल ।—नट०, पृ० १६८ ।

त्रिषित^१—वि० [हि०] दे० 'तृषित' । उ०—आतुर गति मनो खंद छंद भए धावत त्रिषित अकोरी ।—नंद० प्र०, ३३२ ।

त्रिषु—संज्ञा पुं० [सं०] तीन बाणों तक की दूरी का स्थान ।

त्रिषुक—संज्ञा पुं० [सं०] तीन बाणोंवाला धनुष ।

त्रिषुपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिसुपर्ण' ।

त्रिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की वैदिक अग्नि ।

त्रिष्टुप—संज्ञा पुं० [सं० त्रिष्टुप्] दे० 'त्रिष्टुप्' ।

त्रिष्टुभ्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं ।

विशेष—इसका गोत्र कोशिक, वर्ण लोहित, स्वर धेवत, देवता इंद्र और उत्पत्ति प्रजापति के मांस के मानी जाती है । इसके

सुमुखी, इंद्रवज्रा, सपेंद्रवज्रा, कीर्ति, वारुणी, माला, शाला, हुंसी, माया, जाया, बाला, आर्द्रा, अद्वा, प्रेमा, रामा, रघोदता, बोधक, ऋद्धि और सिद्धि या बुद्धि आदि प्रधान भेद हैं ।

त्रिष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो अथर्वतृति यज्ञ के पहले और पीछे किया जाता है ।

त्रिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] तीन पहियोंवाला रथ या गाड़ी ।

त्रिसंक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिशंकु' । उ०—कमल भवाज त्रिसंक बहु बष चम आदि सदैव । ह्रीं हि हलंत कदापि नहि, आइ करे जो बंध ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३४ ।

त्रिसंगम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसङ्गम] १. तीन नदियों के मिलने का स्थान । त्रिवेणी । २. किसी प्रकार की तीन चीजों का मेल ।

त्रिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसन्धि] एक प्रकार का फूल जो लाल, सफेद और काला तीन रंगों का होता है । इसे फगुनिया भी कहते हैं । वैद्यक में इसे रुचिकारक और कफ, खाँसी तथा त्रिदोष का नाशक माना है ।

पर्या०—सांध्यकुसुमा । संधिवरुली । सदाफल । त्रिसंध्यकुसुमा । कांडा । सुकुमारा । संधिजा ।

त्रिसंध्य—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसन्ध्य] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल ।

विशेष—जो तिथि त्रिसंध्यव्यापिनी, अर्थात् सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक रहती है वह सब कार्यों के लिये ठीक मानी जाती है ।

त्रिसंध्यकुसुम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसन्ध्यकुसुम] दे० 'त्रिसंधि' ।

त्रिसंध्यव्यापिनी—वि० स्त्री० [सं० त्रिसन्ध्यव्यापिनी] (वह तिथि) जो बराबर सूर्योदय से सूर्यास्त तक हो ।

विशेष—ऐसी तिथि शुद्ध और सब कामों के लिये ठीक मानी जाती है ।

त्रिसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसन्ध्या] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों संध्यए ।

त्रिसप्तति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सत्तर और तीन का जोड़ । तिहत्तर । २. तिहत्तर की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—७३ ।

त्रिसप्ततितम—वि० [सं०] तिहत्तरवाँ । जो क्रम में तिहत्तर के स्थान पर हो ।

त्रिसप्त^१—संज्ञा पुं० [सं०] सौठ, मुड़ और हड़ इन तीनों का समूह ।

त्रिसप्त^२—वि० जिसकी तीनों भुजाएँ बराबर हों (ज्या०) ।

त्रिसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेसारी । २. तीन लड़ियों का मोतियों का हार (को०) । ३. दूध में मिलाकर पका हुआ तिल और चावल (को०) ।

त्रिसरैनु^१—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसरेणु] दे० 'त्रिसरेणु' । उ०—उपवत भ्रमत फिरत गहि चैनु । जैसे जालरंध त्रिसरैनु ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७० ।

त्रिसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] सख, रज और तम चीनों गुणों का संघ । सृष्टि ।

त्रिसका^१—संज्ञा स्त्री० [?] त्रिरेखा । त्रिपुंड्र । उ०—मन माया कालच लियी, त्रिमलो नियाँ लिलाट ।—बांकी० प्र०, भा० २, पृ० ३६ ।

त्रिसामा^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसामन्] परमेश्वर ।

त्रिसामा^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] घागवत के अनुसार एक नदी जो महेंद्र पर्वत से निकलती है ।

त्रिसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिशंकरा' ।

त्रिसुगंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसुगन्धि] हलदीबी, इलायची और तेजपात इन तीनों सुगन्धित मसालों का समूह ।

त्रिसुख^१—वि० [सं० त्रि + सुख] तीनों तरह से सुख । उ०—सकै सु सुख त्रिसुख तो स्वर्गपितृगं हि पावही ।—पद्माकर प्र०, पृ० १५ ।

त्रिसुपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋग्वेद के तीन विशिष्ट मंत्रों का नाम । २. यजुर्वेद के तीन विशिष्ट मंत्रों का नाम ।

त्रिसुपर्णिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो त्रिसुपर्ण का ज्ञाता हो ।

त्रिसूल^१—संज्ञा पुं० [हि० त्रिसूल] चित्ता या क्रोधावेश में ललाट पर उभड़ जानेवाली त्रिसूल की आकृति की रेखा । उ०—माथि त्रिसूल नक सल, कोई विण्णटा कज्ज ।—ढोला०, पृ० २१६ ।

त्रिसौपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिसुपर्णिक । २. परमेश्वर । परमात्मा ।

त्रिस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० त्रिस्कन्ध] ज्योतिष शास्त्र जिसके संहिता, तंत्र और होरा ये तीन स्कंध हैं ।

त्रिस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायत्री । २. महाभारत के अनुसार एक राक्षसी जिसके तीन स्तन थे ।

त्रिस्तवन—संज्ञा पुं० [सं०] तीन दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

त्रिस्ताषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वमेध यज्ञ की वेदी जो साधारण वेदी से त्रिगुनी बड़ी होती थी ।

त्रिस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी, गया और प्रयाग ये तीन पुराण स्थान ।

त्रिस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों स्थानों में रहनेवाला, परमेश्वर ।

त्रिस्पृशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की एकादशी ।

विशेष—यह उस समय होती है जब एक ही सायन दिन में उदयकाल के समय षोड़ी सी एकादशी और रात के अंत में त्रयोदशी होती है । ऐसी एकादशी बहुत सतम और पुण्य मान्य के लिये प्रयुक्त मानी जाती है ।

त्रिस्तन—संज्ञा पुं० [सं०] सबरे, दोपहर और मध्याह्न तीनों समय का स्नान ।

विशेष—यह स्नान अश्वमेध यात्रा में रहनेवाले के लिये आवश्यक है । कई प्राचीनग्रंथों में भी त्रिस्तन करवा पड़ता है ।

त्रिलोता—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिलोतस] १. गंगा । उ०—अस्म त्रिपुंड्रक क्षीयिषी वरुंत बुद्धि उदार । मनो त्रिलोता सोतश्रुति बंधत सगी लिलार ।—केशव (शम्भू०) । २. उत्तर बंगाल की एक बड़ी नदी जिसे त्रिस्ता कहते हैं ।

त्रिहायण—वि० [सं०] जिसकी अवस्था तीन वर्ष की हो [को०] ।

त्रिहायणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रौपदी ।

त्रिहंस^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिरहुत' ।

त्री^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिया' । उ०—गुण गजबंध तथा कव गावे । दुरस परायण त्री दरसावे ।—रा० क०, पृ० १६ ।

त्री^२—वि० [हि०] दे० 'त्रि' । उ०—त्री अस्थान निरंतरि निरधार । तहें प्रभु बैठे सन्नय सार ।—शङ्कर, पृ० ६७५ ।

त्रीकुटा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिकुटा' । उ०—मोथा और पटोल दल आनी । त्रिकला औ त्रीकुटा समानी ।—इंद्रा०, पृ० १५१ ।

त्रीगुण^१—वि० [सं० त्रिगुण] त्रिगुण । उ०—इंद्र बीराइ बल इंद्र जोर । त्रीगुन विलास तन हरत रोर ।—पृ० १०, ६।८० ।

त्रीघटना^१—क्रि० प्र० [हि० घटना] घटित होना । होना । उ०—पायरी घड़ी यों के त्रीघट लोह ।—बी० रासो, पृ० ६४ ।

त्रीछन^१—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—प्रगिनि तत्तुसुर ऊपर बहई । त्रीछन बाल पवन कर बहई ।—सं० दरिया, पृ० २५ ।

त्रीजह^१—वि० [सं० तृतीय] दे० 'तीसरा' । उ०—त्रीजह पुहरि उलांघियउ, आउ बलारउ घट्ट ।—ढोला०, पृ० ४२४ ।

त्रीस^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' । उ०—भूल नहीं त्रीस ऊछली ।—बी० रासो, पृ० ६७ ।

त्रीयाँ^१—वि० [सं० त्रि] तीनों । उ०—माक मारइ पहिपड़ा, जउ पहिरइ सोवन्न । दंती बूझइ मोतियाँ, त्रीयाँ हेक बरन्न ।—ढोला०, पृ० ४७५ ।

त्रुगटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—त्रुगुणी त्रुगटी मनकर अरघा संपट ध्यान धरीजै ।—रामानंद०, पृ० २७ ।

त्रुगुणी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिगुणी' । उ०—त्रुगुणी त्रुगटी मनकर अरघा संपट ध्यान धरीजै ।—रामानंद०, पृ० २७ ।

त्रुटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमी । कसर । न्यूनता । २. अभाव । ३. भूल । चूक । ४. वचनभंग । ५. छोटी इलायची । एला । ६. संशय । सदेह । ७. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम । ८. समय का एक अत्यंत सूक्ष्म विभाग जो दो क्षण के बराबर और किसी के मत से प्रायः चार क्षण के बराबर होता है ।

त्रुटित—वि० [सं०] १. कटा या टूटा हुआ । २. जिसपर आघात लगा हो । ३. बाधित ।

त्रुटिबीज—संज्ञा पुं० [सं०] अरई । कण्ठ । घुरिया ।

त्रुटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रुटि' ।

त्रुटी^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रुटि' । उ०—त्रुटी परे है या मेरा मैया बीबरो तह दूख पावे ।—सं० प्र०, पृ० १५१ ।

श्रुतना(७)—क्रि० घ० [हि०] दे० 'दूटना'। उ०—संदेश उ जिन पाठवइ, मरिख्यऊं हीया फूटि। पारेवा का भूल जिये, पड़ि नई प्राणि नूटि।—दोला०, दू० १४३।

त्रेटकु(७)†—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्राटक'। उ०—त्रेटकु भेष न खेटकु कोई।—प्राण०, पु० ११०।

त्रेटना(७)†—क्रि० घ० [सं० त्रुटि] तोड़ना। खोट मारना। उ०—कटक काल फिरि कदे न त्रेटे।—प्राण०, पु० १०६।

त्रेता—संज्ञा पु० [सं०] १. चार युगों में से दूसरा युग जो १२६६०० वर्ष का होता है।

विशेष—पुराणानुसार इस युग का जन्म अथवा प्रारंभ कार्तिक शुक्ला नवमी को होता है। इस युग में पुण्य के तीन पाद और पाप का एक पाद होता है। और सब लोग धर्मरक्षण होते हैं। पुराणानुसार इस युग में मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष तथा मनु के अनुसार तीन सौ वर्ष होती है। परशुराम और रघुवंशी राम के अवतार का इसी युग में होना माना जाता है।

मुहा०—त्रेता के बीजों में मिलना = सत्यानाश होना। नष्ट होना। (एक शाप)।

२. दक्षिण, गार्हपत्य और ब्राह्मणीय, ये तीनों प्रकार की अग्नियाँ। ३. जुए में तीन कौड़ियों का अथवा पासे के उस भाग का चित पड़ना जिसपर तीन बिंदियाँ हों।

त्रेताग्नि—संज्ञा पु० [सं०] दक्षिण, गार्हपत्य और ब्राह्मणीय ये तीनों प्रकार की अग्नियाँ।

त्रेतायुग—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'त्रेता'।

त्रेतायुगाद्य—संज्ञा पु० [सं०] कार्तिक शुक्ला नवमी, जिस दिन त्रेता का जन्म या प्रारंभ होना माना जाता है।

विशेष—इसकी गणना पुण्य तिथियों में है।

त्रेताग्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रिया जो दक्षिण, गार्हपत्य और ब्राह्मणीय तीनों प्रकार की अग्नियों से हो।

त्रेधा—क्रि० वि० [सं०] तीन प्रकार से अथवा तीन भागों में [को०]।

त्रेन(७)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तृण'। उ०—नैहर नेह नहि त्रेन तन तोरो। पुष्प पलंग पर प्रेम प्रति जोरो।—सं० हरिया, पु० १७२।

त्रै—वि० [सं० त्रय] तीन। उ०—ज्यों प्रति प्यासो पावै मन में गंगाजल। प्यास न एक बुझाय बुझै त्रै ताप बल।—केशव (शब्द०)।

यौ०—त्रैकालिक।

त्रैकटक—संज्ञा पु० [सं० त्रैकटक] दे० 'त्रिकटक'।

त्रैककुद्—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'त्रिककुद्'।

त्रैककुम्भ—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'त्रिककुम्भ'।

त्रैकालज्ञ—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'त्रिकालज्ञ'।

त्रैकालिक—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० त्रैकालिकी] वह जो त्रिकाल में होता हो। तीनों कालों में या सदा होनेवाला।

त्रैकाक्ष्य—संज्ञा पु० [सं०] १. तीन काक्ष—भूत, वर्तमान और

अविध्यत्। २. सूर्योदय, अपराह्न और सूर्यास्त। ३. तीन का समुद्। ४. तीन दशाएँ—उत्पत्ति, रक्षण और विनाश [को०]।

त्रैकूटक—संज्ञा पु० [सं०] कलचुर राजवंश के समय का एक प्राचीन राजवंश।

त्रैकोणिक—संज्ञा पु० [सं०] १. वह जिसके तीन पाद हों। त्रिपहला २. वह जिसके तीन कोण हों।

त्रैकोन(७)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्रिकोण'। उ०—मध्यचरण त्रैकोन है अमृत कलश कहैं देल।—भारतेन्दु खं०, भा० २, पु० ३३।

त्रैगर्त—संज्ञा पु० [सं०] १. त्रिगर्त देश का रहनेवाला। २. त्रिगर्त देश का राजा।

त्रैगुणिक—वि० [सं०] १. तेहरा। तीनगुना। २. तीन गुणों से संबंधित [को०]।

त्रैगुण्य—संज्ञा पु० [सं०] त्रिगुण का धर्म या भाव। सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों का धर्म या भाव।

त्रैसा(७)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्रेता'। उ०—त्रेता राम रूप दशरथ गृह रावन कुलहि सँवारयो।—दो सौ बावन०, भा० १, पु० १६२।

त्रैदशिक^१—संज्ञा पु० [सं०] उँगली का अगला भाग, जो तीर्थ कहलाता है।

त्रैदशिक^२—वि० १. ईश्वरीय। २. देवताओं से संबंधित [को०]।

त्रैध—वि० [सं०] तेहरा। तिगुना [को०]।

त्रैधातवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

त्रैपन(७)—वि० [हि०] दे० 'त्रिपन'। उ०—हबसीह संग त्रैपन हजार। कर धरै कहुर कर्ता बजार।—पु० रा०, १३। १७।

त्रैपूर—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'त्रिपूर'।

त्रैपुरुष—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्रैपुरुषी] पुरुषों की तीन पीढ़ी तक चलनेवाला [को०]।

त्रैफल—संज्ञा पु० [सं०] चक्रवर्त्त के अनुसार वैद्यक में एक प्रकार का घृत जो त्रिफला आदि के संयोग से बनाया जाता है और जिसका व्यवहार प्रदर आदि रोगों में होता है।

त्रैबलि—संज्ञा पु० [सं०] एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है।

त्रैमातुर—संज्ञा पु० [सं०] लक्ष्मण।

विशेष—लक्ष्मण जी सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे पर सुमित्रा ने चरु का जो घंश खाया था वह पहले कौशल्या और केकयी को दिया गया था और उन्हीं दोनों से सुमित्रा को मिला था, इसीलिये लक्ष्मण का नाम त्रैमातुर पड़ा।

त्रैमासिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्रैमासिकी] हर तीसरे महीने होनेवाला। जो हर तीसरे महीने हो। जैसे, त्रैमासिक पत्र।

त्रैमास्य—संज्ञा पु० [सं०] तीन महीने का समय [को०]।

त्रैयंबक^१—संज्ञा पु० [सं० त्रैयंबक] एक प्रकार का होम।

त्रैयंबक^२—वि० [सं०] त्र्यंबक संबंधी। जैसे, त्रैयंबक बलि।

त्रैयंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रैयंबिका] गायत्री।

त्रैराशिक—संज्ञा पु० [सं०] गणित की एक क्रिया जिसमें तीन ज्ञात राशियों की सहायता से चौथी अज्ञात राशि का पता लगाया जाता है।

त्रैलोक्य—संज्ञा पु० [सं०] इंद्र [को०]।

त्रैलोक्य—संज्ञा पु० [हि०] १० 'त्रैलोक्य'।

त्रैलोक्य—संज्ञा पु० [सं०] १. स्वर्ग मर्यं और पाताल ये तीनों लोक। २. २१ माताओं का कोई छंद।

त्रैलोक्यकर्ता—संज्ञा पु० [सं० त्रैलोक्यकर्तृ] शिव [को०]।

त्रैलोक्यचिन्तामणि—संज्ञा पु० [सं० त्रैलोक्यचिन्तामणि] १. वैद्यक में एक प्रकार का रस जो सोने, चांदी और अन्नक के मेल से बनाया जाता है।

विशेष—इसका व्यवहार लय, लासी, प्रमेह, जीर्णंज्वर और उन्माद आदि रोगों में किया जाता है।

२. वैद्यक में एक प्रकार का रस जो हीरे, सोने और मोती के संयोग से बनाया जाता है।

त्रैलोक्यनाथ—संज्ञा पु० [सं०] राम [को०]।

त्रैलोक्यबन्धु—संज्ञा पु० [सं० त्रैलोक्यबन्धु] सूर्य [को०]।

त्रैलोक्यविजया—संज्ञा स्त्री० [सं०] भंग।

त्रैलोक्यसुन्दर—संज्ञा पु० [सं० त्रैलोक्यसुन्दर] वैद्यक में एक प्रकार रस जो पारे, अन्नक, लोहे आदि के संयोग से बनाया जाता है।

विशेष—इसका व्यवहार शोथ, पांडू और ज्वरातिसार आदि रोगों में होता है।

त्रैवर्गिक—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० त्रैवर्गिकी] वह कर्म जिससे धर्म, धर्म और काम इन तीनों की साधना हो।

• **त्रैवर्ण्य**—वि० [सं०] ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों से संबंधित [को०]।

त्रैवर्णिक—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० त्रैवर्णिका] ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों जातियों का धर्म।

त्रैवर्णिक—वि० [सं०] तीन वर्णों संबंधी।

त्रैवर्षिक—वि० [सं०] तीन वर्ष का [को०]।

त्रैवार्षिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्रैवार्षिकी] जो तीन वर्षों में प्रत्येक बार तीसरे वर्ष हो। तीन वर्ष संबंधी।

त्रैविक्रम—संज्ञा पु० [सं०] [वि० त्रैविक्रमी] त्रिषणु।

त्रैविद्य—संज्ञा पु० [सं०] १. तीनों वेदों को जाननेवाला मनुष्य। २. तीनों वेद [को०]। ३. तीन वेदों का अध्ययन [को०]। ४. तीन वेदों को जाननेवाले ब्राह्मणों की मंडली [को०]।

त्रैविष्टप—संज्ञा पु० [सं०] स्वर्ग में रहनेवाले देवता।

त्रैविष्टपेय—संज्ञा पु० [सं०] देवता [को०]।

त्रैवैदिक—वि० [सं०] तीन वेदों संबंधी [को०]।

त्रैशंकव—संज्ञा पु० [सं० त्रैशंकव] त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चंद्र [को०]।

त्रैसप्त—वि० [सं० त्रि+हि० सात] तीन और सात का योग। इस। उ०—त्रैसप्त अंगुल अक्षर त्रैसानु।—प्राण, पृ० ८८।

त्रैसानु—संज्ञा पु० [सं०] हरिवंश के अनुसार तुर्वंसु वंश के राजा गोभानु के पुत्र का नाम।

त्रैस्वर्य—संज्ञा पु० [सं०] उदात्त अनुदात्त, और स्वरित तीनों प्रकार के स्वर।

त्रैहायण—संज्ञा पु० [सं०] तीन वर्ष का समय [को०]।

त्रोटक—संज्ञा पु० [सं०] १. नाटक का एक भेद जिसमें ५, ७, ८ या ९ अंक होते हैं और प्रत्येक अंक में विप्लव रहता है। यह नाटक शृंगाररसप्रधान होता है और इसका नायक कोई दिव्य मनुष्य होता है। २. एक राग का नाम (संगीत)।

त्रोटकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी (संगीत)।

त्रोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कायफल। २. बौब। ३. एक प्रकार की चिड़िया। ४. एक प्रकार की मछली।

त्रोटो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. टोंटी। २. दे० 'त्रोटि'।

त्रोण—संज्ञा पु० [सं०] तरकश।

त्रोतल—वि० [सं०] तोतला। जो बोलने में तुतलाता हो।

त्रोत्र—संज्ञा पु० [सं०] १. घल। २. चाबुक। ३. एक प्रकार का रोग।

त्रोदश—वि० [हि०] ३० 'त्रयोदश'। उ०—त्रोदश रातिन सो मत कियक।—कबीर सा०, पृ० २६५।

त्र्यंगट—संज्ञा पु० [सं० त्र्यङ्गट] १. ईश्वर। २. चंद्रमा। ३. छीका। सिकहर।

त्र्यंगुल—वि० [सं० त्र्यङ्गुल] जिसकी लंबाई तीन अंगुल हो [को०]।

त्र्यंजन—संज्ञा पु० [सं० त्र्यञ्जन] कालांजन, रसांजन और पुष्पांजन ये तीनों अंजन। काला सुरमा, रसीत और बे फूल जो अंजनों में मिलाए जाते हैं, जैसे, चमेली, तिल, नीम लोण, अगस्त्य इत्यादि।

त्र्यंबक—संज्ञा पु० [सं० त्र्यम्बक] १. शिव। महादेव। २. ग्यारह रुद्रों में से एक रुद्र।

त्र्यंबकसख—संज्ञा पु० [सं० त्र्यम्बकसख] कुबेर।

त्र्यंबका—संज्ञा स्त्री० [सं० त्र्यम्बका] दुर्गा, जिसके सोम, सूर्य और अनल ये तीनों नेत्र माने जाते हैं।

त्र्यंबुक—संज्ञा पु० [सं० त्र्यम्बुक] एक प्रकार की मलिका [को०]।

त्र्यक्ष—संज्ञा पु० [सं०] १. शिव। महादेव। २. एक दैत्य जिसका उल्लेख भागवत में है।

त्र्यक्ष—वि० [सं०] जिसकी तीन आँखें हों। तीन नेत्रवाला।

त्र्यक्षक—संज्ञा पु० [सं०] शिव। महादेव [को०]।

त्र्यक्षर—वि० [सं०] दे० 'त्र्यक्षरक'।

त्र्यक्षरक—वि० [सं०] तीन अक्षरों का। जिसमें तीन अक्षर हों।

त्र्यक्षरक—संज्ञा पु० [सं०] १. प्रणव। २. तंत्र में वह यंत्र जिसमें तीन अक्षर हों। ३. एक प्रकार का वैदिक छंद।

त्र्यक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी का नाम।

त्र्यधिपति—संज्ञा पु० [सं०] तीन लोकों के स्वामी, विष्णु।

त्र्यध्वगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

अमृतयोग—संज्ञा पु० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का योग

जो कुछ विभिन्न तिथियों, नक्षत्रों और वारों के संयोग से होता है।

विशेष—यदि रवि या मंगलवार को प्रतिपदा, षष्ठी या एकादशी तिथि और स्वाती, ज्येष्ठा, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, अश्लेषा या मूल नक्षत्र हो, शुक्र अथवा सोमवार को द्वितीया, सप्तमी या द्वादशी तिथि और मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद या उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र हो, बुधवार को तृतीया, अष्टमी या त्रयोदशी तिथि और मृगशिरा, अश्लेषा, पुष्य, ज्येष्ठा, भरणी, अभिजित या अश्विनी नक्षत्र हो, बृहस्पतिवार को चतुर्थी, नवमी या चतुर्दशी तिथि और उत्तराषाढा, विशाखा, अनुराधा, मघा या पुनर्वसु नक्षत्र हो अथवा शनिवार को पंचमी, षष्ठी, अमावस्या या पूर्णिमा तिथि और रोहिणी, हस्त या चनिष्ठा नक्षत्र हो तो अशुभ योग होता है। यह योग यात्रा के लिये बहुत उत्तम समझा जाता है और इससे व्यतीपात आदि का दोष भी नष्ट हो जाता है।

वरार—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन सदस्यों की शासक सभा। वि० दे० 'वकाबरा'।

विशेष—मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लुक ने तीन सभ्यों से ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी का तात्पर्य लिया है।

शीत—वि० [सं०] क्रम में तिरासी के स्थान पर पड़नेवाला। तिरासीवा।

शीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रस्ती और तीन का जोड़। तिरासी। २. तिरासी की सूचक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—८३।

शीति—वि० प्रस्ती और तीन। तिरासी [को०]।

श्र—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिकोण। त्रिभुज [को०]।

श्र—वि० तीन कोणवाला [को०]।

स्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिकोण।

ह—संज्ञा पुं० [सं०] तीन दिन। तीन दिनों का समूह [को०]।

हस्पर्श—संज्ञा पुं० [सं०] वह सावन दिन जिसे तीन तिथियाँ स्पर्श करती हों।

हस्पृश—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो तीन सावन दिनों को स्पर्श करती हो।

विशेष—ऐसी तिथि विवाह या यात्रा आदि के लिये निषिद्ध है पर स्नान दान आदि के लिये अच्छी मानी जाती है।

हिकारिरस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जिसमें प्रधानतः पारा, गंधक, तूतिया और शंख पड़ता है।

विशेष—इसका व्यवहार तिजारी ज्वर में होता है।

हीन—संज्ञा पुं० [सं०] तीन दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

हैदिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह गृहस्थ जिसके यहाँ तीन प्रवर हों। त्रिप्रवर हों शीत। २. मघा, बहारा और मूंगा।

विशेष—इन तीनों को यज्ञ में जाने का अधिकार नहीं है।

हय—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार के पक्षी।

हिक—संज्ञा पुं० [सं०] हर तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। तिजारी।

व्याहिक—वि० तीन दिनों में होनेवाला।

व्युषण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'व्यूषण' [को०]।

व्यूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सौंठ, पीपल और मिर्च। त्रिकुटा। २. चरक के अनुसार एक प्रकार का घृत जो इन औषधियों के मेल से बनाया जाता है।

व्योदशी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रयोदशी'। उ०—कृष्ण पक्ष तिथि व्योदशी, भीमवार जुल जानि।—ब्रज०, पृ० १२।

त्वं—सर्व० [सं० त्वम्] तू। तुम। उ०—तत् पद त्वं पद और असी पद, बाब लच्छ पहिचाने।—कबीर श०, पृ० ६६।

त्वमय—वि० [सं०] चमड़े या छाल का बना हुआ [को०]।

त्वक्—संज्ञा पुं० [सं०] १. छिलका। छाल। २. त्वचा। चमड़ा। जाल। उ०—कीमलता त्वक् जानत है पुनि, मोलत है मुल सबब उचारो।—संतवाणी०, पृ० १११। ३. पाँच भागों में से एक जो सारे शरीर के ऊपरी भाग में व्याप्त है।

विशेष—इसके द्वारा स्पर्श होता है तथा कड़े और नरम, ठंडे और गरम आदि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। हमारे यहाँ प्राचीन ऋषियों ने इसे वायु के सत्वांश से उत्पन्न माना है और इसका देवता वायु बतलाया है।

४. दारचीनी।

त्वक्कंदुर—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्कंदुर] धाव [को०]।

त्वक्क्षीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वक्क्षीरी'।

त्वक्क्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन।

त्वक्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरीय वृक्ष। क्षीर कंचुकी।

त्वक्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े को काटना [को०]।

त्वक्तरंगक—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्तरङ्गक] कुरी [को०]।

त्वक्पंचक—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्पञ्चक] बड़, गूलर, अश्वत्थ, सीरिस और पाकर ये पाँचों वृक्ष।

विशेष—वैद्यक में इन पाँचों की छाल का समूह शीतल, लघु, तिक्त तथा त्रण और शोथ आदि का नाशक माना जाता है।

त्वक्पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपत्ता। २. दारचीनी [को०]।

त्वक्पत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हिगुपत्री। २. कदलीस्तंभ। केले का पेड़।

त्वक्पर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वक्पत्री' [को०]।

त्वक्पाक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें पित्त और रक्त के कुपित होने से शरीर में कुँसियाँ निकल आती हैं।

त्वक्पाण्ड्य—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े का क्लृप्त [को०]।

त्वक्पुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेहूँ रोग। २. रोमांच। रोएँ लड़े हो जाना।

त्वक्पुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वक्पुष्प'।

त्वक्पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वक्पुष्प'।

त्वक्सार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँस। २. दारचीनी। ३. सन का वृक्ष।

त्वक्सारभेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा चेंच ।
 त्वक्सारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन ।
 त्वक्सुगंध—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्सुगन्ध] नारंगी [को०] ।
 त्वक्सुगंधा—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्सुगन्धा] १. एलुवा । २. छोटी हलायची ।
 त्वगङ्कुर—संज्ञा पुं० [सं० त्वगङ्कुर] रोमांच ।
 त्वग्—संज्ञा पुं० [सं०] 'त्वक्' का समासगत रूप [को०] ।
 त्वगाक्षोरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन ।
 त्वगेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वगिन्द्रिय] स्पर्शेंद्रिय [को०] ।
 त्वगंध—संज्ञा पुं० [सं० त्वगन्ध] नारंगी का पेड़ ।
 त्वग्ज—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोम । रोमाँ । २. रक्त । लहू ।
 त्वग्जल—संज्ञा पुं० [सं०] पसीना [को०] ।
 त्वग्दोष—संज्ञा पुं० [सं०] कोढ़ । कुष्ठ ।
 त्वग्दोषापहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची । बाबची ।
 त्वग्दोषारि—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद ।
 त्वग्दोषी—संज्ञा पुं० [सं० त्वग्दोषिन्] कोढ़ी । जिसे कुष्ठ रोग हो ।
 त्वग्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा काटना । चमड़े को छीलकर निकालना [को०] ।
 त्वक्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमड़ा । २. छाल । बत्कल । ३. दारचीनी । ४. साँप की कँचुली । ५. त्वक् इंद्रिय । ६. 'त्वक्' ।
 त्वक्—संज्ञा पुं० [सं०] १. दारचीनी । २. तेजपत्ता । ३. छाल [को०] ।
 त्वचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. छाल से ढाँकना । २. छाल उतारना [को०] ।
 त्वच्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्वक् । चमड़ा । चमड़ा ।
 त्वच्चापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपत्ता । २. दारचीनी । ३. छाल [को०] ।
 त्वचिसार—संज्ञा पुं० [सं०] बाँस ।
 त्वचिसुगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वचिसुगन्धा] छोटी हलायची ।
 त्वदीय—सर्व० [सं०] [स्त्री० त्वदीया] तुम्हारा ।
 त्वन्निःसृत—वि० [सं० त्वत् + निःसृत] तुम से निकला हुआ । उ०—
 सुख चला है सबित त्वन्निःसृत नेह प्रमिय ।—स्वासि,
 पु० ३४ ।
 त्वम्—सर्व० [सं०] तुम [को०] ।
 त्वर—क्रि० वि० [सं०] शीघ्रतापूर्वक । वेग से [को०] ।
 त्वरण—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'त्वेरा' [को०] ।
 त्वरणीय—वि० [सं०] जिस शीघ्रता से किया जाय । जिसके करने के लिये शीघ्रता की प्रपेक्षा हो [को०] ।
 त्वरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेग । शीघ्रता [को०] ।
 त्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्रता । जल्दी ।
 त्वरारोह—संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर [को०] ।
 त्वरावान्—वि० [सं० त्वरावत्] [वि० स्त्री० त्वरावती] १. शीघ्र-

गामी । २. शीघ्रता करनेवाला । काम को जल्दी करनेवाला ।
 ३. फुर्तीला । तेज [को०] ।
 त्वरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्वेरा' ।
 त्वरित—वि० [सं०] वि० स्त्री० त्वरिता । तेज ।
 त्वरित—क्रि० वि० शीघ्रता से । उ०—त्वरित धारती ला, उतार लूँ । पद द्रगंभु से मैं पखार लूँ ।—साकेत, पु० ३१० ।
 त्वरितक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल जिसे तृणं भी कहते हैं ।
 त्वरितगति—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वणंभुत्ता का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नगण, जगण, नगण और एक गुरु होता है । इसका दूसरा नाम 'प्रवृत्तगति' भी है । जैसे,—निज नग खोजत हर लू । पर्यसित लक्ष्मी वरलू । (शब्द) २. तेज बाल ।
 त्वरिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी जिसकी पूजा युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये की जाती है ।
 त्वलाग—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का साँप ।
 त्वष्टा—संज्ञा पुं० [सं० त्वष्ट] १. विश्वकर्मा । विष्णुपुराण के अनुसार ये सूर्य के सात सारथियों में से एक हैं । २. महादेव । शिव । ३. एक प्रजापति का नाम । ४. बड़ई । ५. वृत्रासुर के पिता का नाम । ६. बारह आदित्यों में से ग्यारहवें आदित्य जो माल के अधिष्ठाता देवता माने जाते हैं । ७. एक वैदिक देवता जो पशुओं और मनुष्यों के गर्भ में बीर्य का विभाग करनेवाले माने जाते हैं । ८. सूत्रधर नाम की वणंसंकर जाति । ९. चित्रा नक्षत्र के अधिष्ठाता देवता का नाम ।
 त्वष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मनु के अनुसार एक संकर जाति । २. बड़ई का धंधा [को०] ।
 त्वष्टर—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वष्ट] ३० 'त्वष्टा' । उ०—हे त्वष्टर । इसको संतान हो ।—हिंदु० सभ्यता, पु० ८१ ।
 त्वच्चा—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्वच्ची] त्वच्चा से संबंधित [को०] ।
 त्वष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।
 त्वष्ट्रा—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्वष्टा (विश्वकर्मा) का बनाया हुआ हथियार, वज्र । २. वृत्रासुर का एक नाम । ३. चित्रा नक्षत्र ।
 त्वष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा का एक नाम । जो सूर्य को व्याही थी और जिसके गर्भ से अश्विनीकुमार का जन्म हुआ था । २. चित्रा नक्षत्र ।
 त्विष्टपति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।
 त्विष्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीव्र धाँधोलन । २. प्रचंडता । ३. चक्काहट । परेशानी । ४. वाणी । ५. सर्व्व । ६. प्रभा । चमक [को०] ।
 त्विषापति—संज्ञा पुं० [सं० त्विषामपति] सूर्य [को०] ।
 त्विषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभा । दीप्ति । तेज ।
 त्विषामीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. धाक का पेड़ ।

स्ववि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किरण । २. शक्ति (की०) ३. चमक । प्रभा (की०) । ४. प्रोज । तेज । प्रताप (की०) ।

स्वेद्य—वि० [सं०] तेजस्वी । चमकता हुआ । आभासय (की०) ।

स्वेद्य—वि० [सं०] डरावना । भयावना (की०) ।

स्सरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. तलवार का मूठ । २. सर्प ।

स्सरुमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार की लड़ाई (की०) ।

स्सारुक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तलवार चलाने में निपुण हो ।

य

य—हिन्दी वर्णमाला का सत्रहवाँ व्यंजन वर्ण और तवर्ग का दूसरा प्रकार । इसका उच्चारण स्थान दंत है ।

यंका—संज्ञा पुं० [?] बिलमुकता ।

यंङ—संज्ञा पुं० [देश०; सं० स्थण्डिल, प्रा० यंङिल] भूमि । स्थान । प्रदेश । उ०—गुन गंठि कम्बि प्राप् सु यंङ । दिव्य प्रवैत इव्य सीधीय यंङ ।—पु० रा०, ६१ । २४६७ ।

यंङा—वि० [हि० ठंङा] भीतल । ठंङा । उ०—चित्त सूँ शिव जब मिले तब तनु यंङा होय । 'तुका' मिलना जिन्हासूँ ऐसा बिरला कोय ।—बिहारी०, पु० १०६ ।

यंङिल—संज्ञा पुं० [सं० स्थण्डिल, प्रा० यंङिल] यज्ञ की बैरी ।

यंथा—संज्ञा पुं० [देश० ?] तुरय (ताता येई इत्यादि) । उ०—मंथन करि चाले नहीं पड़ि पड़ि राखे धंथ । धंथ करत पग परत नहि कठिन प्रेम की पंथ ।—ब्रज० प्र०, पु० १४० ।

यंथ—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० यंथ, यंथ] १. स्तंभा । स्तंभ । उ०—राजकुल कीर्ति यंथ धिर ।—कानन०, पु० २ । २. सहारा टेक । ३. राजपुत्रों का मेघ ।

यंथन—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० यंथण] सहारा । टेक । उ०—धरती यंथन उचित प्रकाशा । ता पर सूर करै परकासा ।—धरम०, पु० १७ ।

यंथा—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० यंथ] स्तंभा । यंथ । यंथ । उ०—माटी की भीत पवन का यंथा, गुन प्रोगुन से जाया ।—वरिया० बानी, पु० ६५ ।

यंथी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भी] १. लड़ी लकड़ी । २. बाँड़ । सहारे की बल्ली । धुनी ।

यंथ—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० यंथ] स्तंभा । उ०—जंघन को कबली सम जानै । अथवा कवक यंथ सम जावे ।—सूर (सम्भ०) ।

यंथन—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन] १. रुकावट । ठहराव । २. तंत्र के छद्म प्रयोगों में से एक । दे० 'स्तंभन' । ३. वह शोध जो शरीर से विकलनेवाली वस्तु (जैसे, मल, मूत्र, शुक इत्यादि) को रोक रहे ।

यौ०—जलयंथन = वह मंत्रप्रयोग जिसके द्वारा जल का प्रवाह या बरसना बाधित रोक दिया जाय । महियंभन = धरती को स्थिर रखना । पुच्छी को रोकना । पुच्छी को रोकना या बहाना । उ०—अमरित पय नित लबहि बच्छ महियंभन जावहि । हिदुहि मधुर न देहि कटुक तुरकहि न पिमावहि ।—प्रकाशरी०, पु० ३३३ ।

४-१५

यंभनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भनी] योग में एक तत्व या धारणा । योग की धारणाओं में से प्रथम धारणा । उ०—पहिनी । धारणा यंभनी, बुद्धी द्वावण होय । तीजी बहिनी जानिए चौथि भ्रामिनी सोय ।—प्रह्लाद०, पु० ८६ ।

यंभा—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] दे० 'यंभा' उ०—जल की भीत भीत जल भीतर, पवन भवन का यंभा री ।—संत तुरसी०, पु० २३४ ।

यंभित—वि० [सं० स्तम्भित] १. रुका हुआ । ठहरा हुआ । अड़ा हुआ । २. अचल । स्थिर । ३. भय या आश्चर्य से निश्चल । ठक ।

यंभिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भिनी] योग की एक धारणा । उ०—यह येक यंभिनी एक द्वाविणी एक सु बहिनी कहिए । पुनि येक भ्रामिणी येक शोधणी सद्गुरु बिना न सहिए ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पु० ५२ ।

यंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भी, प्रा० यंभ, यंभ + ई (प्रत्य०)] बाँड़ । सहारे का स्तंभा । दे० 'यंभी' । उ०—निकसि गइ यंभी डहि परा मंदिर, रलि गया चिकड़ गारा ।—संतवाणी०, भा० २, पु० ८ ।

यंभना—वि० यं० [सं० स्तम्भन] दे० 'यंभना' ।

यंभवाना—वि० सं० [हि० यंभना] दे० 'यंभवाना' ।

यंभाना—वि० सं० [सं० स्तम्भन] दे० 'यंभाना' ।

यं—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षण । २. मंगल । ३. भय । ४. पर्वत । ५. भयस्कक । ६. एक व्याधि । ७. भक्षण । आहार ।

यंङ—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाँव, ठाँई] १. ठाँव । जगह । २. डेर । घटासा ।

यंङली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'येजो' ।

यंक—संज्ञा पुं० [सं० स्था] दे० 'यंक' ।

यकन—संज्ञा स्त्री० [हि० यकना] दे० 'यकान' ।

यकना—वि० यं० [सं० स्तम्भ वा स्था + करण < √कृ, प्रा० यकन अथवा देण०] १. परिश्रम करते करते और परिश्रम के योग्य ब रहना । मिहनत करते करते हार जावा । जैसे, चलते चलते या काम करते करते थक जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. ऊब जाना । हिरान हो जाना । जैसे,—कहते कहते थक गए पर वह नहीं मानता ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१. बुढ़ापे से अशक्त होता। बुढ़ापे के कारण काम करने के योग्य न रहना। जैसे,—थक वे बहुत थक गए, घर ही पर रहते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

४. मंढा पड़ जाना। थलता न रहना। बीमा पड़ जाना। ठोसा होना या रुक जाना। जैसे, कारबार का थक जाना, रोजगार का थक जाना। ५. मोहित होकर अचल हो जाना। मुग्ध होना। सुमाना। उ०—(क) थके नयन रघुपति छवि देखी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) थके नारि नर भेम पियासे।—तुलसी (शब्द०)।

थकरा—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] थकावट। थकान।

थकरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] स्थियों के बाल झाड़ने की लस की कुँची।

थकान—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] थकने का भाव। थकावट। थिल्लता।

थकाना—क्रि० स० [हि० थकना] १. थ्रांत करना। थिल्ल करना। परिश्रम कराते कराते अशक्त कराना। २. हराना। संयो० क्रि०—डालना।—देना।

थका मँझा—वि० [हि० थकना] परिश्रम करते करते अशक्त। थ्रांत। श्रमित।

थकार—संज्ञा पु० [सं०] 'थ' प्रक्षर या वर्ण।

थकावा—संज्ञा पु० [हि० थकना] थकावट। थिल्लता।

थकावट—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] थकने का भाव। थिल्लता। क्रि० प्र०—घाना।

थकाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना + हाहट (प्रत्य०)] दे० 'थकावट'। उ०—रोने से उसके चेहरे पर जो थकाहट छप गई थी, उसने उसकी शोभा और भी निर्मल कर रखी थी।—शराबी, पृ० ३२।

थकित—वि० [हि० थकना अथवा सं० स्था (= स्थिर) + कृत] १. थका हुआ। थ्रांत। थिल्ल। २. मोहित। मुग्ध। उ०—थकित भई गोपी लल्लि स्थायिहि।—सुर (शब्द०)।

थकिया—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] १. किसी गाड़ी चीज की जमी हुई मोटी तह। २. गली हुई बालु का जमा हुआ सौदा।

यौ०—थकिया की चाँदी = गलाकर साफ की हुई चाँदी।

थकैनी—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] दे० 'थकावट'।

थकीही—वि० [हि० थकना] [वि० स्त्री० थकीही] कुछ थका हुआ। थकामँदा। थिल्ल। उ०—दग थिरकोई अथलुले तेह थकीहे डार। सुरत सुखित सी देखियत दुखित गरम के भार।—बिहारी (शब्द०)।

थकना^७—क्रि० प्र० [प्रा० थक] दे० 'थकना'। उ०—सबै सेल फिर थक कहै काहू न रखायब।—ह० रासो, पृ० ५५।

थका—संज्ञा सं० [सं० स्था + क, बँग० थकना (= ठहरना)] [स्त्री० थक्की, थकिया] १. किसी गाड़ी चीज की जमी हुई मोटी तह। जमा हुआ कतरा। थंडी। जैसे, दही का थका,

खून का थका। २. गली हुई बालु का जमा हुआ कतरा। जैसे, चाँदी का थका।

थगित—वि० [प्रा० थक, हि० थकित] १. ठहरा हुआ। रुका हुआ। २. थिल्ल। ठोसा। मंद।

थट, थट्ट—संज्ञा पु० [देशी० थट्ट] थूथ। समूह। ठट्ट। कुँड। उ०—(क) इसक समय आलेट, राव खेलन बन आए। सकल सुभट थट संग, बीर बाने जु बनाए।—ह० रासो, पृ० १३। (ख) रहै सुभट थट्ट प्रथिराज संग।—पृ० रा०, १। ३।

थेह—संज्ञा पु० [देशी०] समूह। थूथ। कुँड।

थड़ा—संज्ञा पु० [सं० स्थल] १. बैठने की जगह। बैठक। २. ठूकान की गद्दी।

थणुसुत^७—संज्ञा पु० [सं० स्थाणु (= स्थि), प्रा० थणु, थारु हि० थणु + सं० सुत] स्थि के पुत्र। १. गणेश। २. कार्तिकेय। स्कंद।

थप्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० थाप्ती] दे० 'थाप्ती'।

थप्तिहारी—संज्ञा पु० [हि० थाप्ती + हार (प्रत्य०)] वह जिसके पास थाप्ती रखी हो।

थप्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० थाप्ती] डेर। राशि। थटाला। जैसे, कपड़ों की थप्ती।

थथोलना—क्रि० स० [हि० टटोलना] हुँडना। खोजना।

थन—संज्ञा पु० [सं० स्तन, प्रा० थण] १. नाथ, भैंस, बकरी इत्यादि चौपायों का स्तन। चौपायों की चूची। उ०—घंठा पाले काछुई, बिन थन राखै पोख।—संतवाणी०, पृ० २२। २. स्त्रियों का स्तन। उ०—उठे थन थोर बिराजत बाम। धरें मनु हाटक सालिगराम।—पृ० रा०, २१। २०।

थनइका—संज्ञा पु० [हि० थन] दे० 'थनेल'।

थनकुदी—संज्ञा पु० [देश०] एक छोटी नीले रंग की चमकीली थिड़िया जो कीड़े मकोड़े खाती है। इसका रंग बहुत सुंदर होता है।

थनगन—संज्ञा पु० [बरमा] एक बड़ा पेड़ जो बरमा, बरार और मलाबार में बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत में लगती है।

थनटुट्ट—संज्ञा स्त्री० [हि० थन + टूटना] वह स्त्री जिसके स्तन में दूध घाना बंद हो गया हो।

थनथाई—वि० [सं० स्तनस्थानीय] एक ही स्तन जिनका स्थान हो। एक स्तन का दूध पीनेवाला। धायभाई। सगोत्रीय। कोका। उ०—करि सलाम हुस्सेन घना बंधी दिसि बाई। सजरा बंधे कंठ सहं सज्जे थनथाई।—पृ० रा०, ७। १३४।

थनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तन] १. स्तन के आकार की थैलियाँ जो बकरियों के गले के नीचे लटकती हैं। गलबना। २. हाथियों के कान के पास थन के आकार का निकला हुआ मांस का झंझुर जो एक ऐब समझा जाता है। ३. घोड़े की लिमेंब्रिय में थन के आकार का लटकता हुआ मांस जो एक ऐब समझा जाता है।

थनुा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'थन'।

थनेला—संज्ञा पुं० [हि० थन + एला (प्रत्य०)] [स्त्री० थनेली] १. एक प्रकार का फोड़ा जो स्त्रियों के स्तन पर होता है। इसमें सूजन और पीड़ा होती है और बाव हो जाता है। २. गुबरेले की बाति का कीड़ा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह गाय, भैंस आदि के धन में डंक मार देता है जिससे दूध सूख जाता है।

थनेल—संज्ञा पुं० [हि० थान] १. गाँव का मुखिया। २. वह आदमी जो जमींदार की ओर से गाँव का लगान वसूल करे।

थनेल—संज्ञा स्त्री० [हि० थन + ऐल (प्रत्य०)] वह जिसका धन भारी हो (गाय आदि)।

थनेला—संज्ञा पुं० [हि० थन + एला (प्रत्य०)] दे० 'थनेला'।

थनेली—संज्ञा स्त्री० [हि० थन + ऐली (प्रत्य०)] दे० 'थनेला'।

थन—संज्ञा पुं० [सं० स्थान] दे० 'थान'। उ०—देव काल संजोग तपे ठिली घर थनो।—पु० रा०, १। ७०२।

थपकना—क्रि० स० [अनु० थप थप] १. प्यार से या आराम पहुँचाने के लिये किसी के शरीर पर धीरे धीरे हाथ मारना। हाथ से धीरे धीरे ठोंकना। जैसे, सुलाने के लिये बच्चे को थपकना। २. धीरे धीरे ठोंकना। जैसे, चापी से गन्ध थपकना। ३. पुष्कारना या धम दिलासा देना। ४. किसी का क्रोध ठंडा करना। शांत करना।

थपका—संज्ञा पुं० [हि० थपकना] दे० 'थपकी'।

थपकी—संज्ञा स्त्री० [हि० थपकना] १. किसी के शरीर पर (प्यार से या आराम पहुँचाने के लिये) हथेली से धीरे धीरे पहुँचाया हुआ आघात। २. हाथ से धीरे धीरे ठोंकने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना। उ०—थपकी देने लगीं तरंगें मार थपके।—साकेत, पु० ४१३।—लगाना।

२. हाथ के झटके से पहुँचाया हुआ कड़ा आघात। ३. जमीन को पीटकर खोद करने की मुँगरी। ४. चापी। ५. बोलियों का मुँगरा या डंडा जिससे वे बोते समय भारी कपड़ों को पीटते हैं।

थपकी—संज्ञा स्त्री० [अनु० थप थप] १. दोनों हथेलियों को एक दूसरे से जोर से टकराकर ध्वनि उत्पन्न करने की क्रिया। ताली।

क्रि० प्र०—पीटना।—बजाना।

मुहा०—थपकी पीटना या बजाना = जोर जोर से हँसी करना। उपहास करना। दिखवायी उड़ाना।

२. बाखी बजने का शब्द। ३. बेसन की पूरी जिसमें हींग, जीरा और नमक पड़ा रहता है।

थपथपी—संज्ञा स्त्री० [अनु० थप थप] दे० 'थपकी'।

थपन—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन] स्थापन। ठहराने या जमाने का काम। उ०—उभये थपन धिर थपेउ थपनहार केसरीकुमार बल अपनी सँभारिये।—तुलसी (शब्द०)।

थौ०—थपनहार = स्थापित या प्रतिष्ठित करनेवाला।

थपना—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन] १. स्थापित करना। बैठाना। ठहराना। जमाना। २. प्रतिष्ठित करना।

थपना—क्रि० प्र० १. स्थापित होना। जमना। ठहरना। २. प्रतिष्ठित होना।

थपना—क्रि० स० [अनु० थप थप] धीरे धीरे पीटना या ठोंकना।

थपना—संज्ञा पुं० १. पत्थर, लकड़ी आदि का खोखार या टुकड़ा जिससे किसी वस्तु की पीटें। पीटना। २. चापी।

थपरा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'थप्पड़'।

थपना—क्रि० स० [थपना] स्थापित कराना। स्थित कराना। उ०—जगन्नाथ कहें दीन्ह थपाई। तब हम बल बँदवारे भाई।—कबीर सा०, पु० १६२।

थपुआ—संज्ञा पुं० [हि० थपना (= पीटना)] छाजन का वह खपड़ा जो चोड़ा, खोरस और चिपटा हो। अर्थात् नाखी के आकार का न हो वैसे कि नरिया होती है।

विशेष—खपरेल में प्रायः थपुआ और नरिया दोनों का मेल होता है। दो थपुओं के जोड़ के ऊपर नरिया छोड़ी करके रखी जाती है।

थपेटा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'थपेड़ा'।

थपेड़ना—क्रि० स० [हि०] थपेड़ा देना। थपेड़ा लगाना।

थपेड़ा—संज्ञा पुं० [अनु० थप थप] १. हथेली से पहुँचाया हुआ आघात। थप्पड़। २. एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के बार बार वेग से पड़ने का आघात। धक्का। टक्कर। जैसे, नदी के पानी का थपेड़ा। उ०—थपकी देने लगीं तरंगें मार थपके।—साकेत, पु० ४१३।

क्रि० प्र०—लगाना।—मारना।

थपेड़ी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'थपकी'।

थप्पा—संज्ञा पुं० [अनु०] थप् का सा शब्द। उ०—थप्प थप्प थन-बार कह सुनि रोमांचिष संग।—कीर्ति०, पु० ८४।

थप्पड़—संज्ञा पुं० [अनु० थप थप] १. हथेली से किया हुआ आघात। तमाचा। भापड़। थपेट।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

मुहा०—थप्पड़ कसना, देना, लगाना = तमाचा मारना। भापड़ मारना।

२. एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के बार बार वेग से पड़ने का आघात। धक्का। जैसे, पानी के हिलोर का थप्पड़, हवा के झोंके का थप्पड़। ३. दाढ़ या फुंसियों का छूना। चकसा।

थप्पण—क्रि० [सं० स्थापन, प्रा० थप्पण] स्थापित करनेवाला। बसानेवाला। रक्षा करनेवाला। उ०—साहा ऊथप थप्पणो, पद्म तरनाहुँ पत्र।—रा०, रु०, पु० १०।

थप्पन—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, प्रा० थप्पण] स्थापन। स्थापित करना। उ०—तुपति को थप्पन उथप्पन समर्थ सनुसाल सुत करे करतूति चिरा आह की।—मति० प्र०, पु० ३७२।

थप्परि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, प्रा० थप्पण] न्यास। धरोहर। उ०—राज सुनो चालुक कहै है थप्परि इह कंष। राति परी जुष नहि करै प्राप्त करै फिर जुद्ध।—पु० रा०, १। ४९१।

थप्पा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बह्मण।

धरि—वि०, संज्ञा पु० [सं० स्थरि, प्रा० धरि] दे० 'स्थरि'।—
सायवधम बोद्धा, पु० १२८।

धम—संज्ञा पु० [सं० स्तम्भ, प्रा० धंभ] १. खंभा। साट। स्तम्भ।
धूमि। उ०—धरती पैठि मगन धम रोपी इस बिधि बन
बैठ वेलो।—रामानंद०, पु० १५। २. केवों की पेड़ी। ३.
छोटी छोटी पुरियाँ और हलुया जिसे देवी को बड़ाने के लिये
लियाँ ले जाती हैं।

धमकाना—क्रि० स० [हि० धमकना या ठमकना का प्रे० रूप]
स्तम्भित करना। रोकना। उ०—साँस को धमका कर सारे
बदन को कड़ा किया और जंभाई ली।—नई०, पु० ६६।

धमकारी—वि० [सं० स्तम्भकारिन्] स्तम्भ करनेवाला। रोकने-
वाला। उ०—मन बुधि धित धरुंकार दखै इन्द्रिय प्रेरक
धमकारी।—सूर (शब्द०)।

धमना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भन (= धमकना)] १. धमकना। ठहरना।
चलना न रहना। जैसे, गाड़ी का धमना, कोल्हू का धमना।
२. जारी न रहना। बंद हो जाना। जैसे, मेह का धमना,
भाँसुओं का धमना। ३. धीरज धरना। सन्न करना। ठहरा
रहना। उतावला न होना। जैसे,—घोड़ा धम आघो, चलते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

धमुआ—संज्ञा पु० [हि० धामना] नाव के डंडे का हस्ता।

धम्मा—संज्ञा पु० [सं० स्तम्भ] [सं० धंमी] दे० 'धंम'। उ०—(क)
धम्मा के वलि लागई अहि सिर पर अगनि प्रेगाक।—प्राण०,
पु० २४४। (ख) काम बिरहु की त्राठी बाधा। बिरहु
अग्नि की धम्मी बाधा।—प्राण०, पु० १५२।

धर—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तर] तह। परत।

धर—संज्ञा पु० [सं० स्थल] १. दे० 'धल'। उ०—एहि धर बनी
कीड़ा गजमोचन और अमंत कथा लुति गई।—सूर०, १।९।
२. बाघ की माँद।

धरक—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धरि'।

धरकना—क्रि० प्र० [अनु० धर धर + करना] धरना। डर से
काँपना। उ०—बंक हग बदन मयंक बारे धंक धरि अग
मे ससंक परयंक धरकत है।—देव (शब्द०)।

धरकाना—क्रि० स० [हि० धरकना] डर से काँपना।

धरकुलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० बाली] दे० 'धरकुलिया'।

धर धर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] डर से काँपने की मुद्रा।

मुद्रा—धर धर करना—डर से काँपना।

धर धर—क्रि० वि० काँपने की पूरी मुद्रा के साथ। जैसे,—बहु डर
के मारे धर धर काँपने लगा। उ०—धर धर काँपहि पुर नर
नारी।—तुलसी (शब्द०)।

धरधर काँपनी—संज्ञा स्त्री० [हि० धरधर + काँपना] एक छोटी
बिड़िया जो बैठने पर काँपती हुई मालूम होती है।

धरधराट—संज्ञा स्त्री० [हि० धरधराणा] धरधराट। काँपकपी।
उ०—धरधराट उप्पनी तज्यो अकठोठ कामकृत।—पु०
रा०, ६१। १८०।

धरधराना—क्रि० प्र० [अनु० धर धर] १. डर के मारे काँपना। २.

काँपना। उ०—सारी जल बीच प्यारी पीतम के अंक लागी
चंद्रमा के चार प्रतिबिंब ऐसी धरधरात।—शृंगारसुधाकर
(शब्द०)।

धरधराट—संज्ञा स्त्री० [हि० धरधराणा] काँपकपी जो डर के
कारण हो।

धरधरी—संज्ञा स्त्री० [अप० धर धर] काँपकपी जो डर के कारण हो।
क्रि० प्र०—घूटना।—सगन।

धरधर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'धर धर'। उ०—धरधर
काहर जाइ रमकि।—प० रासो, पृ० ४२।

धरना—क्रि० स० [सं० धुवं, हि० धुरना] हथौड़ी आदि से धातु पर
चोट लगाना।

धरना—संज्ञा पु० सुनारों का एक औजार जिससे वे पत्ती की नक्काशी
बनाते हैं।

धरना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तर, प्रा० स्थर, धर] फैलना। उ०—
कारी बटा डरावनी आई। पापनि साँपनि सी धरि छाई।—
नंद० प्र०, पु० १६१।

धरपना—क्रि० स० [सं० स्थापन] स्थापित करना। प्रतिष्ठित
करना। स्थापना। उ०—दरिया साँचा सूरमा, धरि दल
चाले चूर। राज धरपिया राम का, नगर बसा धरपुर।—
दरिया० बानी, पु० १३। (ख) बंधन जाल जुक्त जम दीनी,
कीनी काल धरपना।—सुरसी० श०, पु० २२६।

धरमस—संज्ञा पु० [अ०] एक प्रकार का पात्र जिसमें वस्तुओं का
तापमान देर तक सुरक्षित रहता है।

धरसना—क्रि० प्र० [सं० धसन] धरना। काँपना। घास पाना।
उ०—धनधानंद कीन अनीसी बसा मति आवरी बावरी हँ
धरसे।—रसखान०, पृ० ५३।

धरहरना—क्रि० प्र० [देसी धरहर] हिलना हुलना। धरधराना।
काँपना। उ०—ताजन पर कलंगी धरहरई। दुपगन दलदल
सोभा करई।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ७०५।

धरहराना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धरधराना'।

धरहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० धरहरना] काँपकपी जो डर के कारण
हो। उ०—खरी निदाची दुपहरी तपनि भरी बन गेह। हहा
धरी यह कहि कहा परी धरहरी देह।—स० सप्तक, पृ० २७६

धरहाई—संज्ञा स्त्री० [देरा०] एहसान। निहोरा।

धरि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थली] १. बाघ आदि की माँद। पुर। उ०—
सिंह धरि जाने बिन जावली जंगल भठी, हठी गज एविल
पठाय करि भटक्यो।—भूषण प्र०, पृ० १२। २. स्थली।
आवास स्थान। रहने की जगह। उ०—जौ लगि केरि मुकुति
है परी न पिजर माहँ। जाँचें बेधि धरि आपनि है अहाँ बिभू
वनीह।—पद्मनाभत, पृ० ३७३।

धरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थायिका] दे० 'बाली'।

धरि—संज्ञा पु० [सं० स्थल] दे० 'धल'।

धरिलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० धारी] छोटी बाली।

धरिहट—संज्ञा पु० [देरा० धाक] बघों की बस्ती।

बदहटी—संज्ञा स्त्री० [देश० बाक] बाक जाति की बोली । उ०—
भीतरी मधेश की निचली तलहटी में 'बदहटी' बोली है, जिसे
बाक लोग बोलते हैं ।—नेपाल, पृ० ६८ ।

बर्द्ध—वि० [बर्द्ध] तृतीय । तीसरा ।

थर्माभोट—संज्ञा पुं० [थर्म] सरसी गरमी नापने का यंत्र । दे०
'तापमान' ।

थराना—क्रि० प्र० [धनु० धरधर] डर के मारे कांपना । दहलना ।
जैसे,—बहु शेर को देखते ही थरा उठा ।

थंयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

थल—संज्ञा पुं० [सं० स्थल] १. स्थान । जगह । ठिकाना । उ०—
सुमति भूमि थल हृदय प्रगाध । वेद पुरान खनि घन साधु ।
—मानस, १ । ३६ ।

मुहा०—थल बैठना या थल से बैठना = (१) आराम से बैठना ।
(२) स्थिर होकर बैठना । शांत भाव से बैठना । जमकर
बैठना । आसन जमाकर बैठना ।

२. सूखी धरती । वह जमीन जिसपर पानी न हो । जल का
छलटा । जैसे,—(क) माघ पर से उत्तर कर थल पर आना ।
(ख) दुर्योधन को जल का थल और थल का जल दिखाई
पड़ा । ३. थल का मार्ग ।

थी०—थलचर । थलवेड़ा । जलथल ।

४. ऊँची धरता या टीला जिसपर बाढ़ का पानी न पहुँच सके ।
५. वह स्थान जहाँ बहुत सी रेत पड़ गई हो । सूड़ । थली ।
रेगिस्तान । जैसे,—थर परसर । ६. बाघ की माँद । चुर ।
७. बादले का एक प्रकार का गोल (चवन्नी के बराबर का)
साज जिसे बच्चों की टोपी आदि पर जब चाहें तब टाँक
सकते हैं । ८. फोड़े का जाल और सूजा हुआ घेरा । ग्रन्थंजल ।
जैसे, फोड़े का थल बाँधना ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

थलफना—क्रि० प्र० [सं० स्थूल, हि० धूला, धुलधुला] १. कसा या
तना न रहने के कारण झोल जाकर हिलना या फूलना पक्-
कना । झोल पड़ने के कारण ऊपर नीचे हिलना । उ०—थोँद
थलकि बर बाध, मनो मृदंग मिलावनो ।—नंद० प्र०, पृ०
३३४ । २. मोटाई के कारण शरीर के मांस का हिलने डोलने
में हिलना । थलथल करना ।

थलचर—संज्ञा पुं० [सं० स्थलचर] पृथ्वी पर रहनेवाले जीव ।
उ०—जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव
जहाना ।—मानस, १।३।

थलचारी—वि० [सं० स्थलचारिन्] भूमि पर चलनेवाले ।

थलज—वि० [सं० स्थल + ज] स्थल पर उत्पन्न । उ०—थलज
जलज भलमलत सलित बहु भँवर उड़ावै । उड़ि उड़ि परत
पराग कसू खनि कहत न आवै ।—नंद० प्र०, पृ० २६ ।

थलथल—वि० [सं० स्थूल, हि० धूला] मोटाई के कारण झूलता या
हिलता हुआ ।

मुहा०—थलथल करना = मोटाई के कारण किसी वस्तु का

झूल झूलकर हिलना । जैसे,—चलने में उसका पैर थलथल
करता है ।

थलथलाना—क्रि० [हि० धूला] मोटाई के कारण शरीर के मांस
का झूलकर हिलना ।

थलपति—संज्ञा पुं० [सं० स्थल + पति] राजा । उ०—लवम नमन
मन लगे सब थलपति तायो ।—तुलसी (शब्द०) ।

थलवेड़ा—संज्ञा पुं० [हि० थल + वेड़ा] नाव या जहाज ठहरने की
जगह । नाव लगने का घाट ।

मुहा०—थलवेड़ा लगना = ठिकाना लगना । आश्रय मिलना ।
थल वेड़ा लगाना = ठिकाना लगाना । आश्रय दूँ देना ।
सहारा देना ।

थलभारी—संज्ञा पुं० [हि० थल + भारी] पालकी के कहारों की एक
बोली जिससे वे पिछले कहारों को प्रागे रेतीले मैदान का होता
सुचित करते हैं ।

थलराना—क्रि० प्र० [हि० धूलराना] प्रसन्न करना । धनुकुल बनाना ।
उ०—नेह नबोड़ा नारि कौं बारि बाध का न्याय । बलराए
पै पाइए, नीपीड़े न रसाय ।—नंद० प्र०, पृ० १४१ ।

थलरुह^(५)—वि० [सं० स्थलरुह] धरती पर उत्पन्न होनेवाले जंतु वृक्ष
आदि । उ०—जल थलरुह फल फूल सलिल सब करत पेम
पहुनाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

थलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थालिका] थाली । टाठी ।

थली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थली] १. स्थान । जगह । जैसे, पर्वतथली,
वनथली । २. जल के नीचे का तल । ३. ठहरने या बैठने की
जगह । बैठक । उ०—थली में कोई सरदार था, उसके पास
एक वैष्णव साधु आ गया ।—कबीर सा०, पृ० ६७२ । ४.
परती जमीन । ५. बालू का मैदान । रेतीली जमीन । ६. ऊँची
जमीन या टीला ।

थलई—संज्ञा पुं० [सं० स्थपति, प्रा० थलई] मकान बनानेवाला
कारीगर । ईंट पत्थर की जोड़ाई करनेवाला मिस्त्री । राज ।
मेमार ।

थवन—संज्ञा पुं० [देश०, या सं० स्थापन] दुर्लभित की तीसरी बार
अपने पति के घर की यात्रा ।

थसकना—क्रि० प्र० [देश०] नीचे की ओर लबना । थसकना ।

थलना—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हि० थपना] जुलाहों के उपयोग
में आनेवाला ककड़ी मिट्टी का एक गोला जिसमें लगी हुई
लकड़ी के छेद में चरखी की लकड़ी पड़ी रहती है । इस चरखी
के घूमने से नारी बरी जाती है (जुलाहे) ।

थह—संज्ञा पुं० [देशी] निवास । निलय । स्थान । गुफा । माँद ।
उ०—(क) कानन सदन संभरत कूह कलह पापेठ । थह सुतो
वर जगयो सिमु दंपति घटि पेट ।—पृ० रा०, १७।४ । (ख)
जागै नह वह मै जितै सभ हाथल साहुल ।—बाँकी० प्र०,
भा० १, पृ० १३ ।

थहण^(५)—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, प्रा० थल, प्रथवा देशी थह]
स्थान । उ०—कमठ पीठ कलमलिय थहण डलमलिय सुभर
बिर ।—रघु० क०, पृ० ४२ ।

बहना—क्रि० स० [हि० बाह] बाह लेना । पता लगाना ।
उ०—यथा बाह बहो नहिं बाई । यह बीरे बह बीर रहाई ।
—कबीर (शब्द०) ।

बहुरना—क्रि० प्र० [अनु०] कपना । बहुराना । उ०—उत गोल
कपोलन पे प्रति मोल अमोल लनी मुक्ता यहरे ।—प्रेमघन०,
भा० १, पृ० १३२ ।

बहुराना—क्रि० प्र० [अनु० बर बर] १. दुर्बलता या मय से ग्रंथों
का कपना । कमजोरी या बर से बदन का कपना ।
२. कपना ।

बहुराना—क्रि० स० [हि० बाह] १. गहराई का पता लगाना ।
बाह लेना । उ०—(क) सूर कही ऐसो को निमुवन आवे
धिषु यहाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) तुलसी तीरहि के
बले समय पाइबी बाह । बाह न जाइ यहाइबी सर सरिता
अबगाह ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—बालना ।—देना ।—लेना ।

२. किसी की विद्या बुद्धि या भीतरी अभिप्राय आदि का पता
लगाना ।

बहुराना—क्रि० स० [हि० ठहराना] जहाज को ठहराना ।

बाँग—संज्ञा स्त्री० [हि० बाण] चोरी या डाकुओं का गुप्त स्थान ।
चोरी के रहने की जगह । २. खोज । पता । सुराग (विशेषतः
चोर या लोई हुई वस्तु आदि का) ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

१. भेद । गुप्त रूप से लगा हुआ किसी बात का पता । जैसे,—
बिना बाँग के चोरी नहीं होती । ४. सहारा । आश्रय स्थान ।
उ०—अति उमगी री धान प्रीति नदी सु अगाध जल । धार
माँक ये प्राण, बरस बाँग बिन नाहि कल ।—ब्रज० प्र०,
पृ० ४ ।

बाँगी—संज्ञा पुं० [हि० बाँग] १. चोरी का माल मोल लेने या
अपने पास रखनेवाला आदमी । २. चोरी का भेदिया । चोरी
की चोरी के लिये ठिकाने आदि का पता देनेवाला अनुषंग ।
३. चोरी के माल का पता लगानेवाला आदमी । जासूस ।
४. चोरी का झूठा रखनेवाला आदमी । चोरी के गोल
का सरदार ।

बाँगीदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० बाँग + दार] बाँग का काम ।

बाँटा—वि० [देश०] शीतल । प्रसन्न । ठंडा । उ०—पेठ पेठ ज्यौरा
पिसण स्यौरा कइबा बैण । जग जाँवु देखै जले नहिं बाँटा है
नेण ।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ७६ ।

बाँणो—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० बाण] स्थान । ठिकाना ।
उ०—बाँणो आयो राय आपणो ।—बी० रासो, पृ० १०७ ।

बाँभे—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] १. खंभा । २. धूनी । बाँड़ । उ०—
याम नाहि उठि सके न धूनी ।—जायसी प्र०, पृ० १५७ ।

बाँभना—क्रि० स० [हि० बाँभ] दे० 'बामना' ।

बाँभा—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] खंभा । स्तंभ । उ०—कोई सज्जन

बाबिया, बाँह की जोती बाट । यामा नाचर बर हँसइ बेर
सागी बाट ।—ढोला०, पृ० ५४१ ।

बाँवला—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हि० थल] वह घेरा या गड्ढा जहाँ
कोई पोषा लगा हो । धाला । भालवाल । उ०—संताकों
धोका के बर तुलसी का बाँवला होता है ।—प्रा० भा० प
पृ० २० ।

बा—क्रि० प्र० [सं० स्था] है शब्द का भूतकाल । एक शब्द जिस
भूतकाल में होना सूचित होता है । रहा । जैसे,—बहू
समय वहाँ नहीं था ।

बिरोध—इस शब्द का प्रयोग भूतकाल के भेषों के कर बनाने
भी संयुक्त रूप से होता है । जैसे, आता था, आया था, ।
रहा था, इत्यादि ।

बाइल—वि० [सं० स्थायी ?] थाई । स्थायी । उ०—हावनि
भावनि करति मनसिज मन उपजाइ । दाइल वह थाइल का
पाइल पाइ बजाइ ।—स० सतक, पृ० ३६५ ।

थाई^१—वि० [सं० स्थायिन्, स्थायी] बना रहनेवाला । स्थि
रहनेवाला । न मिटने या जानेवाला । बहुत दिनों
चलनेवाला ।

थाई^२—संज्ञा पुं० १. बैठने की जगह । बैठक । अथाई । २. गीत ।
प्रथम पद जो गाने में बार बार कहा जाता है । प्रवृत्त
स्थायी ।

थाईभाव—संज्ञा पुं० [सं० स्थायी भाव] दे० 'स्थायी भाव' । उ०—र
हासी घर सोक पुनि क्रोध उछाह सुजान । भय निबा बिस्म
सवा, थाईभाव प्रमान ।—केशव प्र०, भा० १, पृ० ३१ ।

थाउं—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, हि० ठाँउ, ठाँव] उ०—ऊँचो
अपरंपर थाउ । अमर अजोनी सचि तलत पाउ ।—प्राण
पृ० २५२ ।

थाक^१—संज्ञा पुं० [सं० स्था] १. गाँव की सरहद । ग्रामसीमा ।
थोक । ढेर । समूह । झटाला । राशि । उ०—मधु, मेघ
पकवान, मिठाई, घर घर तै ले निकसी थाक ।—नंद० प्र०
पृ० ३६० । ३. सीमा । हद्द । उ०—मेरे कहीं थाकु गोर
को नवनिधि मंदिर यामहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

थाका^२—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] थकावट ।

क्रि० प्र०—लगना ।

थाकना—क्रि० प्र० [सं० स्था, बंग० थाका] १. शक्ति न रहना
थक जाना । शिथिल होना । रुकना । उ०—थाकी गति ग्रंथ
की, मति परि गई मंद सुखि भाँकरी सी हँके देह ला
पियराय ।—हरिश्चंद्र—(शब्द०) । २. रुकना । ठहरना
उ०—जग जलबूझ तहाँ लगि लाकी । मोरि नाव खेवक बि
थाकी ।—जायसी (शब्द०) । ३. स्तंभित होना । ठगा
होना । धारण्यवन्तित होना । उ०—रतन अमोलक परा
कर रहा जोहरी थाक ।—दरिया० बानी, पृ० १८ ।

थाका—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थका' । उ०—थाका होय सचि
के हाँहा ।—कबीर सा०, पृ० १५७८ ।

थाकि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० यकना] यकाबट । सीधिल्य ।

थाकु^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थाक' ।

थागना^१—क्रि० प्र० [देश०] रुकना । थाकना । उ०—अपणो घर की गम नहीं पर घर थागे काय । हंस हंस की गम जसे काया काय की पाय ।—राम० धर्म०, पृ० ७२ ।

थाट^१—संज्ञा पुं० [हि०] संगीत में रागों का आधार । दे० 'ठाट' ।

थाटा^१—संज्ञा पुं० [देश०] कामना । मनोरथ । उ०—रिख्या बाट करे जो राख थाट संपूरण थावे ।—रघु० क० पु० ६५ ।

थाटनहार—वि० [हि० ठाटना (= बनाना)] ठाठने (बनाने सेवारने) वाला । उ०—थाटनद्वारा एको सौई एक ही रीति एक ते भाई ।—प्राण०, पृ० ४६ ।

थात^१—वि० [सं० स्थातृ, स्थाता] जो बैठ या ठहरा हो । स्थित । उ०—जै पिक बिच बतीस वज्रकन एक जलज पर यात ।—सूर (शब्द०) ।

थाति—संज्ञा स्त्री० [हि० यात] १. स्थिरता । ठहराव । ठिकान । रहन । उ०—सगुन ज्ञान विराग मक्ति सुसाधनन की पाति । खाजि विकल बिलोकि कलि अच ऐगुनन की याति ।—तुलसी (शब्द०) । २. दे० 'याती' ।

थाती—संज्ञा स्त्री० [हि० यात] १. समय पर काम थाने के लिये रखी हुई वस्तु । २. वह वस्तु जो किसी के पास इस विश्वास पर छोड़ दी गई हो कि वह माँगने पर दे देगा । धरोहर । उ०—बुद्ध बरदान भूप सन याती । माँगहु आज जुड़ावहु छाती ।—तुलसी (शब्द०) । ३. संचित धन । इकट्ठा किया हुआ धन । रक्षित द्रव्य । जमा । पूँजी । गय । ४. दूसरे का धन जो किसी के पास इस विचार से रखा हो कि वह माँगने पर दे देगा । धरोहर । प्रमानत । उ०—बारहि बार जलावत हाथ सो का मेरी छाती में याती बरी है ।—(शब्द०) ।

थाथी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'याती' । उ०—कहीं कबीर जतन करो साधो, सतगुरु की थाथी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४८ ।

थान—संज्ञा पुं० [सं० स्थान] १. जगह । ठौर । ठिकाना । २. रहने या ठहरने की जगह । डेरा । निवासस्थान । ३. किसी देवी देवता का स्थान । देवल । बैसे, माई का थान । उ०—इह गोपेसुर थान प्रपूरज । नित प्रति निसा ऊतरै सोरज ।—पृ० रा०, १ । १६८ । ४. वह स्थान जहाँ बोई या बोपाए बाँधे जायें ।

मुहा०—थान का टर्रा=(१) वह घोड़ा जो खूँटे से बँधा बँधा नटखटी करे । घुड़साल में उपद्रव करनेवाला । (२) वह जो घर पर ही या पड़ोस में ही अपना जोर दिखाया करे, बाहर कुछ न बोले । अपनी गली में ही शेर बननेवाला । थान का सच्चा=सीधा बोड़ा । वह घोड़ा जो कहीं से छूटकर फिर अपने खूँटे पर आ जाय । थान में थाना=(बोई का) धूल में लोटना । अच्छे थान का घोड़ा=अच्छी जाति का घोड़ा । प्रसिद्ध स्थान का घोड़ा ।

५. वह बास जो घोड़े के नीचे बिछाई जाती है । ६. कपड़े गोटे आदि का पूरा टुकड़ा जिसकी संवार्ई बँधी हुई होती है । बैसे,

मारकीस का थान, पोटे का थान । ७. संख्या । घण्ट । बैसे, एक थान घण्टरफी, चार थान गहने, एक थान कलेजी । ८. लिवेंद्रिय (बाजाक) ।

थानक—संज्ञा पुं० [सं० स्थानक] १. स्थान । जगह । २. नगर । ३. थाबंला । थाला । भास बास । ४. फेन । बबूला । भाग । ५. देवस्थान । देवल । उ०—राजन मन अकित भयो सुनि थानक की बिद्धि ।—पृ० रा०, १।४०१ ।

थानपती^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थानपति] स्थान का अधिकारी । स्वामी । उ०—तहँ मिले धीतम फिर नहीं बिछोहा । तहँ थानपती निज महसी सोहा ।—प्राण०, पृ० १६० ।

थाना—संज्ञा पुं० [सं० स्थानक, प्रा० थाण, हि० थान] १. भट्टा । टिकने या बैठने का स्थान । उ०—पुण्यभूमि पर रहे पापियों का थाना क्यों ?—साकेत, पृ० ४१६ । २. वह स्थान जहाँ अपराधों की सूचना दी जाती है और कुछ सरकारी सिपाही रहते हैं । पुलिस की बड़ी चौकी ।

मुहा०—थाने बढ़ना=थाने में किसी के विरुद्ध सूचना देना । थाने में इतला करना । थाना बिठाना=पहरा बिठाना । चौकी बिठाना ।

३. बाँसों का समूह । बाँस की कोठी ।

थानापति—संज्ञा पुं० [सं० स्थानपति] ग्रामदेवता । स्थानरक्षक । देवता ।

थानी^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थानिन्] १. स्थान का स्वामी । वह जिसका स्थान हो । २. दिक्पाल । लोकपाल । ३. घरवाला । स्वामी । पति । उ०—तेरा थानी क्यों मुझ गह क्यों न राखा बाहि । सहजो बहुतक मिल छुटै चौरासी के माहि ।—सहजो०, पृ० २३ ।

थानी^२—वि० संपन्न । पूरुं ।

थानु^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु] धिब ।

थानुसुत—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु + सुत, प्रा० थाणु + सं० सुत] बिब जी के पुत्र गणेश । गजानन । उ०—धोरे धोरे मदन कपोल फूले पूले पूले, बोलें जल थल बल थानुसुत नाखे हैं ।—केशव श०, भा० १, पृ० १३१ ।

थानेत—संज्ञा पुं० [हि० थान] दे० 'थानैत' ।

थानेदार—संज्ञा पुं० [हि० थाना + प्रा० दार] थाने का वह अफसर या प्रधान जो किसी स्थान में शांति बनाए रखने और अपराधों की छानबीन करने के लिये नियुक्त रहता है ।

थानेदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० थाना + प्रा० दारी] थानेदार का पद या कार्य ।

थानैत—संज्ञा पुं० [हि० थान + ऐत (प्रत्य०)] १. किसी स्थान का अधिकारी । किसी चौकी या मण्डे का मालिक । २. किसी स्थान का देवता । ग्रामदेवता ।

थाप—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन] १. तबले, घुँदंग आदि पर पूरे पंजे का आघात । थपकी । ठोंक । उ०—सुदृढ़ मार्ग पर भी हुत लय में तथा मुरज की थापें हैं ।—साकेत, पृ० ३७२ ।

क्रि० प्र०—देना ।—जमाना ।

२. यप्पड़ । तमाचा । पूरे पंजे का आघात । जैसे, शेर की थाप, पहलवानों की थाप ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लमाना ।

३. वह चिह्न जो किसी वस्तु के भरपूर बैठने से पड़े । एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के दाब के साथ पड़ने से बना हुआ निशान । छाप । जैसे, दीवार पर गीले पंजे का थाप, बालु पर पैर की थाप ।

क्रि० प्र०—देना ।—पड़ना ।—लगना ।

४. स्थिति । जमाव । ५. किसी की ऐसी स्थिति जिसमें लोग उसका कहना मानें, भय करें तथा उसपर श्रद्धा विश्वास रखें । महत्त्वस्थापन । प्रतिष्ठा । मर्यादा । बाक । साक । उ०—कहू पदमाकर मुमहिमा मही में भई महादेव देवन में बाढ़ी धिर थाप है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—होना ।

६. मान । कदर । प्रमाण । जैसे,—उनकी बात की कोई थाप नहीं । ७. पंचायत । ८. शपथ । सौगंध । कसम ।

मुहा०—किसी की थाप देना = किसी की कसम खाना । शपथ देना ।

थापयि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापना, प्रा० थावयि] स्थिरता । स्थापना । स्थैर्य । शांति । उ०—थापयि पाई थिति भई, सतगुरु सोही धीर । कबीर होरा बणजिया, मानसरोवर तीर ।—कबीर ग्रं०, पृ० २८ ।

थापन—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन] १. स्थापित करने की क्रिया । जमाने या बैठाने की क्रिया । २. किसी स्थान पर प्रतिष्ठित करने का कार्य । रखने का कार्य । उ०—कहेउ जनक कर जोरि कीन मोहि थापन । रघुकुल तिलक मुमाल सदा तुम उथपन थापन ।—तुलसी (शब्द०) ।

थापनहार—वि० [सं० स्थापन, हि० थापन + हार] स्थापन या थापन करनेवाला । प्रतिष्ठित करनेवाला । उ०—अथपन थापन-हारा ।—धरनी०, पृ० ४२ ।

थापना^१—क्रि० स० [सं० स्थापन] १. स्थापित करना । जमाना । बैठाना । जमाकर रखना । उ०—सिग थापि बिधिवत करि पूजा । सिव समान प्रिय मोहि न हुआ ।—मानस, ६।२ । २. किसी गीली सामग्री (मिट्टी, गोबर आदि) को हाथ या सोंचे से पीट अथवा दबाकर कुछ बनाना । जैसे, उपले थापना, लपड़े थापना, ईंट थापना ।

थापना^२—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापना] १. स्थापन । प्रतिष्ठा । रखने या बैठाने का कार्य । उ०—जहाँ लगी तीरथ देखहु जाई । इनहीं सब थापना थपाई ।—कबीर मं०, पृ० ४७० । २. मूर्ति की स्थापना या प्रतिष्ठा । जैसे, दुर्गा की थापना । उ०—करिहो इहाँ संभु थापना । मोरे हृदय परम कल्पना ।—मानस, ६।२ । ३. नवरात्र में दुर्गापूजा के लिये घटस्थापना ।

थापरा^१—संज्ञा पुं० [हि० थाप + र (प्रत्य०)] दे० 'थप्पड़' ।

थापरा—संज्ञा पुं० [दे०] छोटी नाब । डोंगी (लख०) ।

थापा^१—संज्ञा पुं० [हि० थाप] १. हाथ के पंजे का वह चिह्न जो किसी गीली वस्तु (हलदी, मेहदी, रंग आदि) से पड़ी हुई हथेली को जोर से दबाने या मारने से बन जाता है । पंजे का छापा ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।—लगाना ।

विशेष—पूजा या मंगल के अवसर पर स्त्रियाँ इस प्रकार के चिह्न दीवार आदि पर बनाती हैं ।

२. गाँव में देवी देवता की पूजा के लिये किया हुआ चंदा । पुजोरा । १. खलियान में अनाज की राशि पर गीली मिट्टी या गोबर से ढाला हुआ चिह्न जो इसलिये ढाला जाता है जिसमें यदि कोई चुरावे तो पता लग जाय । चाँकी । ४. वह सोंचा जिसमें रंग आदि पोतकर कोई चिह्न अंकित किया जाय । छापा । ५. वह सोंचा जिसमें कोई गीली सामग्री दबाकर या ढालकर कोई वस्तु बनाई जाय । जैसे, ईंट का थापा, सुनारों का थापा । ६. डेर । राशि । उ०—सिद्धि दरब आगि के थापा । कोई जरा, जार, कोई तापा ।—जायसी (शब्द०) । ७. नेपालियों की एक जाति ।

थापा—संज्ञा [सं० स्थापना, हि० थाप] आघात । थपकी । थाप । थप्पड़ । उ०—जहाँ जहाँ दुख पाइया गुरु को थापा सोय । जबही सिर टक्कर लगे तब हरि सुमिरन होय ।—मल्लक०, पृ० ४० ।

थपिया—संज्ञा स्त्री० [हि० थापना] दे० 'थापी' ।

थापी—संज्ञा स्त्री० [हि० थापना] १. काठ का चिपटे और चौड़े सिरे का डंडा जिससे कुम्हार कच्चा बड़ा पीटते हैं । २. वह चिपटी मुँगरी जिससे राज या कारीगर चक् पीटते हैं । ३. थपकी । हथेली से किया हुआ आघात । थाप । उ०—कबीर साहब ने उस गाय को थापी दिया ।—कबीर मं०, पृ० ११४ ।

थाम^१—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंम] १. खंभा । स्तंभ । २. मस्तूल (लख०) ।

थाम^२—संज्ञा स्त्री० [हि० थामना] थामने की क्रिया या अंग । पकड़ ।

थामना—क्रि० स० [सं० स्तम्भन या स्तम्भन, प्रा० थंन (= रोकना)] १. किसी चलती हुई वस्तु को रोकना । यति या वेग प्रवृद्ध करना । जैसे, चलती गाड़ी को थामना, बरसते मेह को थामना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. गिरने, पड़ने, लुढ़कने आदि न देना । गिरने पड़ने से बचाना । जैसे, गिरते हुए को थामना, डूबते हुए को थामना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

३. पकड़ना । ग्रहण करना । हाथ में लेना । जैसे, छड़ी थामना । उ०—इस किताब को थामो तो मैं दूसरी निकाल दूँ ।—

संयो० क्रि०—लेना ।

४. सहारा देना । सहायता देना । मदद देना । संभालना । जैसे,—
पंचायत के गेहूँ ने धान लिया, वहीं तो धान के बिना बड़ा
कष्ट होता ।

संयो० क्रि०—लेना ।

५. किसी कार्य का भार ग्रहण करना । अपने ऊपर कार्य का
भार लेना । जैसे,—जिस काम को तुम ने धारा है उसे पूरा
करो । ६. पहले में करना । चौकसी में रखना । हिरासत
में करना ।

धाव्हा—संज्ञा पु० [सं० स्तम्भ] १. आधार । संज्ञा । टेक । उ०—
बाँव सूरज कियो तारा गगन लियो बनाय । धाव्हा धूनी
बिना देखी, रसि लियो ठहराय ।—जग० स०, भा० २,
पृ० १०६ ।

धाव्हा—क्रि० स० [देश०] दे० 'धामना' ।

धाव—संज्ञा पु० [सं० धाव, प्रा० धाव] दे० 'धामना' । उ०—भयकंत
धरनि धाव सिद्ध निहाय । हलहलिय द्विग द्विग धाव ।
धुर धुर धुरि जुटिन भविषि । बिसि ब बिसि राज पसरत
किति ।—पु० रा०, १ । ६२५ ।

धायी—वि० [सं० धायी] दे० 'धायी' ।

धारा—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'धाल' । उ०—भावना धार
हवास के हावनि यो हित मूरति हेरि उतारति ।—चनानंद,
पृ० १४८ ।

धारा—संज्ञा पु० [देश०] ठोकर । धावात । उ०—हृयजुर धारन,
धार फुटि गिरि समुद्र पंक हुव ।—प० रासो, ७४ ।

धारा—सर्व० [हिं० विहारा] तुम्हारा । उ०—अनमेलु पाणी
तिजु कहित (१) गोरी धारा जनम की बात ।—बी० रासो,
पृ० १४ ।

धारी—संज्ञा स्त्री० [सं० धारी] दे० 'धाली' ।

धारू—संज्ञा पु० [देश०] एक जंगली जाति जो नैपाल की तराई में
पाई जाती है ।

विशेष—यह पूर्व से पश्चिम तक बसी हुई है और अपने रीति-
रिवाज, जादू टोना आदि कठिण विश्वास से बंधी हुई है ।
इसे लोग पुरानी जनजाति मानते हैं और वर्णव्यवस्था में
इनका स्थाननाम शूद्र का रखते हैं ।

धाव्हा—संज्ञा पु० [हिं० धाली] बड़ी धाली । कैसे या पीतल का बड़ा
खिछला बरतन ।

धाला—संज्ञा पु० [सं० धाल, हिं० धाल] १. वह घेरा या गड्ढा जिसके
भीतर पीसा लगाया जाता है । धावला । धालवाला । २.
कुंडी जिसमें ताला लगाया जाता है (धाल) । ३. फोड़े का
घेरा । फोड़े की सुजन । घण का घेरा ।

धालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० धालिका] दे० 'धाली' । उ०—सोरह
सिगार किए पीतल की ध्यान दिए, हाव किए मंगलमय
कवक धालिका ।—भारतेंदु स०, भा० २, पृ० २६८ ।

धालिका—संज्ञा [हिं० धाला] धूल का धाला । धालवाल ।
उ०—पुरजन पूजोपहार सोभित ससि बबल धार मंजन
सबभार धालि कल्प धालिका ।—तुलसी (धाल)

४-६६

धाली—संज्ञा स्त्री० [सं० धाली (= बटलोई)] १. कैसे या
पीतल का गोल खिछला बरतन जिसमें खाने के लिये मोजन
रखा जाता है । बड़ी तश्तरी ।

मुहा०—धाली का बैगन = लाभ और हानि बैगन कभी इस पक्ष,
कभी उस पक्ष में होनेवाला । अस्थिर सिद्धांत का । बिना पेंदी
का लोटा । उ०—जबरन होंगे उनकी न कहिए । यह धाली
के बैगन है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १६ । धाली जोड़ =
कटोरे के सहित धाली । धाली और कटोरे का जोड़ा । धाली
फिरना = इतनी भीड़ होना कि यदि उसके बीच धाली फेंकी
जाय तो वह ऊपर ही ऊपर फिरती रहे नीचे न गिरे । भारी
भीड़ होना । धाली बजना = साँप का बिच उतारने का मंत्र
पढ़ा जाना जिसमें धाली बजाई जाती है । धाली बजाना =
(१) साँप का बिच उतारने के लिये धाली बजाकर मंत्र
पढ़ना । (२) बच्चा होने पर उसका डर दूर करने के लिये
धाली बजाने की रीति करना ।

२. नाच की एक गत जिसमें थोड़े से घेरे के बीच नाचना
पड़ता है ।

धौ—धाली कटोरा = नाच की एक गत जिसमें धाली और
परबंद का मेल होता है ।

धाव—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'धाव' ।

धावर—संज्ञा पु० [सं० धावर] दे० 'धायर' । उ०—नर पशु कीट
पतंग में धावर जंगम मेल ।—स० सप्तक, पृ० १७८ ।

धाह—संज्ञा स्त्री० [सं० धा] १. नदी, ताल, समुद्र इत्यादि के नीचे
की जमीन । जलाशय का तलभाग । धरती का वह तल
जिसपर पानी हो । गहराई का अंत । गहराई की हद ।
जैसे,—जब धाह मिले तब तो लोटे का पता लगे ।

क्रि० प्र०—पाना ।—मिलना ।

मुहा०—धाह मिलना = जल के नीचे की जमीन तक पहुँच हो
जाना । पानी में घेर टिकने के लिये जमीन मिल जाना ।
हबते को धाह मिलना = निराश्रय को आश्रय मिलना । संकट
में पड़े हुए मनुष्य को सहायता मिलना ।

२. कम गहरा पानी । जैसे,—जहाँ धाह है वहाँ तो हलकर पार
कर सकते हैं । उ०—वरण झूठे हो जमुना धाह हुई ।—
अरू (शब्द०) । ३. गहराई का पता । गहराई का अंशाज ।

क्रि० प्र०—पाना ।—मिलना ।

मुहा०—धाह लगना = गहराई का पता चलना । धाह लेना =
गहराई का पता लगाना ।

४. अंत । पार । सीमा । हद । परिमिति । जैसे,—उनके धन की
धाह नहीं है । ५. संख्या, परिमाण आदि का अनुमान । कोई
वस्तु कितनी या कहाँ तक है इसका पता । जैसे,—उनकी
बुद्धि की धाह इसी बात से मिल गई ।

क्रि० प्र०—पाना ।—मिलना ।—लगना ।

मुहा०—धाह लेना = कोई वस्तु कितनी या कहाँ तक है इसकी
जाँच करना ।

१. किसी बात का पता जो प्रायः गुप्त रीति से लगाया जाय।
अप्रत्यक्ष प्रयत्न से प्राप्त अनुसंधान। भेद। जैसे,—इस बात की
याह जो कि वह कहीं तक देने को तैयार है।

क्रि० प्र०—पाना।—लेना।

मुहा०—मन की याह=अंतःकरण के गुप्त अभिप्राय की जान-
कारी। चिन्ता की बात का पता। संकल्प या विचार का पता।
उ० कुटिल जनन के मनन की मिलति न कहै याह।—
(शब्द०)।

थाहना—क्रि० सं० [हि० थाह] १. थाह लेना। गहराई का पता
चलना। २. अंदाज लेना। पता लगाना।

थाहरी—वि० [हि० थाह] १. छिछला। जो गहरा न हो। जिसमें
जल गहरा न हो। उ०—सरसराह जमुना गहो प्रति थाहरो
सुभाय। मानहु हरि निज पाव ते दीनो ताहि दबाय।—
सुकवि (शब्द०)।

थिएटर—संज्ञा पुं० [अंग०] १. रंगभूमि। रंगशाला। २. नाटक का
प्रभिनय। नाटक का तमाशा। उ०—बलब, कमेटी, थिएटर
घोर होठलों में।—प्रेमचन्द, भा० २, पृ० ७५।

थिगली—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकली] वह टुकड़ा जो किसी फटे हुए
कपड़े या घोर किसी वस्तु का छेद बंद करने के लिये टाँका
या लगाया जाय। चकती। पैबंद।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—थिगली लगाना=ऐसी जगह पहुँचकर काम करना
जहाँ पहुँचना बहुत कठिन हो। जोड़ तोड़ भड़ाना। युक्ति
लगाना। बादल में थिगली लगाना=(१) अत्यंत कठिन
काम करना। (२) ऐसी बात कहना जिसका होना
असंभव हो।

थित^५—वि० [सं० स्थित] १. ठहरा हुआ। २. स्थापित। रखा
हुआ। उ०—भए परम में थित सब द्विजजन प्रजा काज निज
लागे।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २७२।

थिति^५—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] १. ठहराव। स्थायित्व। २.
विश्राम करने या ठहरने का स्थान। ३. रहारस। रहन।
४. बने रहने का भाव। रक्षा। उ०—ईश रजाइ सीस सब
ही के। उत्तपति धिति, लय विषदु अमी के।—सुलसी
(शब्द०)। ५. अवस्था। दशा।

थितिभाव^५—संज्ञा पुं० [सं० स्थिति भाव] दे० 'स्थायी भाव'।

थिबाऊ—संज्ञा पुं० [देश०] दाहिने धंग का फड़कना आदि जिसे ठग
लोग अशुभ समझते हैं (ठग)।

थियेटर—संज्ञा पुं० [अंग०] १. वह मकान जहाँ नाटक का अभिनय
दिखाया जाता है। नाट्यशाला। नाटकघर। २. अभिनय।
नाटक।

थियोसोफिस्ट—संज्ञा पुं० [अंग०] थियोसोफी के सिद्धांत को माननेवाला।

थियोसोफी—संज्ञा स्त्री० [अंग०] ईश्वरीय ज्ञान जो किसी देवी शक्ति
अथवा प्रत्मा के प्रकाश से हुआ हो।

थिर^१—वि० [सं० स्थिर] १. जो चलता या हिलता डोलता न हो।

ठहरा हुआ। अचल। २. जो अचल न हो। शांत। बीर।
जो एक ही अवस्था में रहे। स्थायी। दृढ़। टिकाऊ।

थिर^५—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरा] स्थिरा। पुष्पी। उ०—
चूर हुआ कर सूर यके। छल पेख वृंदारक व्योम छके।
रा० क०, पृ० ३६।

थिरक—संज्ञा पुं० [हि० थरकना] नृत्य में चरणों की चं-
गति। नाचने में पैरों का हिलना डोलना या उठ
घोर गिराना।

थिरकना—क्रि० प्र० [सं० अस्थिर+करण] १. नाचने में पैरों
छल छल पर उठाना घोर गिराना। नृत्य में अंगसंचा-
करना। जैसे, थिरक थिरककर नाचना। २. अंग मटा-
कर नाचना। ठमक ठमककर नाचना।

थिरकौही^१—वि० [हि० थिरकना+घोही (प्रत्य०)] थिरकनेवाला
थिरकता हुआ।

थिरकौही^२—वि० [सं० स्थिर] ठहरा हुआ। रुका हुआ। उ०—
थिरकौही मधुबुल बेह बँकोही दार। सुरत सुलित सी देखिय
दुलित गरभ के भार।—बिहारी (शब्द०)।

थिरचर—संज्ञा पुं० [सं० स्थिर+चल] स्थावर घोर जंघम। उ०—
तान सेत चित की चोपन सो मोहै वृंदावन के थिर च-
—ब्रज० प्र०, पृ० १५९।

थिरजीह^५—संज्ञा पुं० [सं० स्थिरजिह्व] मछली।

थिरता^५—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरता] १. ठहराव। अचलत्व।
स्थायित्व। अचंचलता। ३. शांति। बीरता।

थिरताई^५—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिर+ताति (दे० प्रत्य०)]
दे० 'थिरता'।

थिरथानी^५—संज्ञा पुं० [सं० स्थिर+स्थान] थिर स्थानवा
लोकपाल आदि। उ०—सुकुत सुमन तिल मोद बासि बि
जतन जंघ भरि कानी। सुल सनेह सब दियो बसरपाहि
खेलेल थिरथानी।—सुलसी (शब्द०)।

थिरथिरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बुलबुल जो जाड़े के दि-
में सारे भारतवर्ष में दिखाई पड़ता है।

थिरना—क्रि० प्र० [सं० स्थिर, हि० थिर+ना (प्रत्य०)] १. पा-
या घोर किसी द्रव पदार्थ का हिलना डोलना बंद होना
हिलते डोलते या सहाराते हुए जल का ठहर जाना। जल
क्षब्ध न रहना। २. जल के स्थिर होने के कारण जल
धुलें हुई वस्तु का तल में बैठना। पानी का हिलना, घूम
आदि बंद होने के कारण उसमें मिली हुई चीज का पेंदे
जाकर जमना। ३. मेल आदि नीचे बैठ जाने के कारण
का स्वच्छ हो जाना। ४. मेल, धूल, रेत आदि के नी-
चे बैठ जाने के कारण साफ चीज का जल के ऊपर
जाना। निथरना।

थिरा^५—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरा] पुष्पी।

थिराना^१—क्रि० सं० [हि० थिरना] १. पानी आदि का हिल-
डोलना बंद करना। क्षुब्ध जल को स्थिर होने देना।

धुली हुई मल आदि को नीचे बैठने देकर पानी को साफ करना । ४. किसी वस्तु को जल में धोकर धीरे उसमें मिली हुई मल, धूल, रेत आदि को नीचे बैठकर साफ करना । विचारना ।

थिराना^१—क्रि० प्र० दे० 'थिरना' । उ०—बोठन कों रूप गुन बोठ बरमत फिरें, पल न थिरात रीति नेह की नई नई ।—देव० ।

थी^१—क्रि० प्र० [हि०] 'ही' के सूतकाल 'था' का बी० ।

थी^२—प्रत्य [देश०] से । उ०—इंद्रसिध दक्षणा यो भायी ।—रा० क०, पृ० २५ ।

थीकरा—संज्ञा पु० [सं० स्थित + कर] किसी भावना के समय रक्षा या सहायता का भार जिसे गवि का प्रत्येक समय मनुष्य भारी भारी से अपने ऊपर लेता है ।

थीजना—क्रि० प्र० [सं० स्या] टिक जाना । प्रचल होना । स्थिर रहना । उ०—मन तुम तन मेडरात है नहि थीजै हा हा । घनानद, पृ० ३६७ ।

थोता—संज्ञा पु० [सं० स्थिति] सत्य । वस्तुस्थिति । उ०—थीत चीहें नही पथल पूजता फिरे करम प्रनेक करि नरक लीगहा ।—सं० दरिया, पृ० ८३ ।

थोता—संज्ञा पु० [सं० स्थित, हि० थित] १. स्थिरता । शांति । २. कल । चैन । उ०—थीतो परे नहि थीतो चबैयन देखत पीठि दे डोठि कै पैनी ।—देव (शब्द०) ।

थोती—संज्ञा बी० [सं० स्थिति, प्रा० थिह] सतोष । ढाढ़स । स्थिरता । उ०—टेकू पियास, बांधु जिय थीती ।—जायसी प्र०, पृ० १५२ ।

थीथी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] स्थिरता । २. धर्म । धीरज । इतमीनान ।

थीन—वि० [प्रा० थीण, थिएण] घन । स्त्यान । कठिन । जमा हुआ । उ०—सुमटं सुसरं कुषटं सु कीन उलधवे समेजी धृतं जान थीनं ।—पृ० रा०, २५ । ५५५ ।

थीर^१—वि० [सं० स्थिर] स्थिर । ठहरा हुआ । बडोल । उ०—(क) उलथहि मानिक मोती होरा । दरब देखि मन होइ न थीरा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पियरे मुख श्याम शरीरा । कहैं रहत नहीं पल थीरा—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० १२६ ।

थुँदला^१—वि० [अनु०] थुलथुल । फूला हुआ । भड़ा । उ०—मोटा तन ब थुँदला थुँदला मू ब कुचवी भाखि ब मोटे भोंठ मुखवर की आमद आमद है ।—भारतेन्दु प्र०, भा० २, पृ० ७८९ ।

थी०—थुँदला थुँदला = थुलथुल ।

थुकवाना—क्रि० स० [हि० थुकना] दे० 'थुकाना' ।

थुकराई—वि० बी० [हि० थुक + हाई (प्रत्य०)] ऐसी (बी) जिसे सब लोग थूकें । जिसकी सब निंदा करते हों ।

थुकाई—संज्ञा बी० [हि० थुकना] थुकने का काम ।

थुकाना—क्रि० स० [हि० थुकना का प्र० रूप] १. थुकने की क्रिया दूसरे से कराना । दूसरे को थुकने की प्रेरणा करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. मुँह में ली हुई वस्तु को गिरवाना । उगलवाना । जैसे,—बच्चा मुँह में मिट्टी लिए है, जल्दी थुकाओ । ३. थुड़ी थुड़ी कराना । निंदा कराना । तिरस्कार कराना । जैसे,—क्यों ऐसी चाल चलकर गली गली थुकाते फिरते हो ।

थुकायला^१—वि० [हि० थुक + लायल (प्रत्य०)] जिसे सब लोग थूकें । जिसे सब लोग धिक्कारें । तिरस्कृत । निन्द्य ।

थुकेला^१—वि० [हि० थुक] दे० 'थुकायल' ।

थुस्का^१—संज्ञा स्त्री० [हि० थुक] निंदा । घृणा । धिक्कार ।

थी०—थुक्का थुक्की = परस्पर निंदा, धिक्कार या घृणा ।

थुक्का फजीहत—संज्ञा स्त्री० [हि० थुक + प्र० फजीहत] निंदा और तिरस्कार । थुड़ी थुड़ी । धिक्कार ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

थुक्की—संज्ञा बी० [हि० थुक] रेशम के ताने को थुक लगाकर सुलझाने की क्रिया (जुलाहे) ।

थुड़ी—संज्ञा बी० [अनु० थू थू (= थुकने का शब्द)] घृणा । और तिरस्कारसूचक शब्द । धिक्कार । लानत । फिट । जैसे,—थुड़ी है तुमको ।

मुहा०—थुड़ी थुड़ी करना = धिक्कारना । निंदा और तिरस्कार करना ।

थुत—वि० [सं० स्तुत, स्तुत्य, प्रा० थुष, थुत] श्लाघ्य । स्तुत्य । प्रशंसनीय । उ०—कनकज जैचंद मात भयी संभरि बहिनी सुत । तिन पदंत दुज पठिय थार जर और थपिय थुत ।—पृ० रा०, १।६९० ।

थुति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तुति] स्तवन । प्रार्थना । स्तुति । उ०—जोरि हस्थ थुति मंत्र फिरयो परदक्षि लगि पय । रुबिर नयन आरक्त कंठ लग्यो सु मुक्ति भय ।—पृ० रा०, १।१०८ ।

थुत्कार—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'थूत्कार' ।

थुथना—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'थूथन' ।

थुथराई^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] मुँह लटकना । तुलना में न्यूनता माना । उ०—जान महा गरुडे गुन में घन आनंद हेरि रस्यो थुथराई । पैने कटाच्छनि भोज मनोज के बानन बीच बिषी मुथराई ।—रसखान; पृ० १०४ ।

थुथराना—क्रि० प्र० [हि० थोड़ा] थोड़ा पड़ना ।

थुथाना—क्रि० प्र० [हि० थूथन] थूथन फुलाना । मुँह फुलाना । नाराज होना ।

थुथलाना—क्रि० प्र० [अनु०] थलथलाना । कंपित होना । झुलाना । भ्रमक पड़ना । उ०—रामनाथ क्रोध में थुथला गया ।—मत्स्यपुराण, पृ० ८१ ।

थुनो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० थूनी] टेक । सहारा । थूनी । उ०—अति पूरब पूरे पुण्य रूपी कुल भटल थुनो ।—सूर (शब्द०) ।

थुनेर—संज्ञा पु० [सं० स्थूल, हि० थून] गठिवन का एक भेद ।

थुन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूल] थूनी । लंबा । चाँड़ ।

धुपरना—क्रि० [सं० स्तूप, द्वि० धूप] मङ्गुवे की बालों का डेर मगाकर बसाना जिसमें उनमें कुछ गरमी या जाय । बँधवाना । घीसाना ।

शुपरा—संवा ५० [सं० स्तूप] मङ्गु के बालों का डेर जो धोसने के लिये हवाकर रखा जाय ।

धुरना—क्रि० स० [सं० धुर्बण (= मारना)] १. कूटना । २. मारना । पीटना ।

थुरह्या—वि० [हि० थोड़ा + हाथ] [वि० जी० थुरह्यी] १. जिसके हाथ छोटे हों । जिसकी हथेली में कम जोर पावे । २. किसी को कुछ देते समय जिसके हाथ में थोड़ी वस्तु पावे । किरायत करनेवाला । उ०—कन देवो सौप्यो समुर बह्म थुरह्यी जानि । कप रह्यते लगि लग्यो माँगन सब जग जानि ।—बिहारी (कव्य०) ।

थुलना—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी ऊनी कपड़ा या कंबल ।

धुलमा—संख्या पु० [दिश०] दे० 'धुलना' ।

थुली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूल, हि० थूला] किसी वस्तु के मोटे कण जो बलने से होते हैं। बलिया।

शुद्धा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप] दे० 'शुद्धा' ।

थूक—संज्ञा पुं० [हि० थूक] दे० 'थूक' ।

थूकना—क्रि० प्र० [हि०] ६० 'थूकना' ।

धूँधी—संका जी० [दा०] दे० 'धूँधी' । उ०—नतमस्तक हो धूँधी
को भरती में देकर, सूँघ सूँघकर कूड़े के ढेरों के मंदर
किया न अर्चन ।—दीप ज०, पृ० १६६ ।

धू - प्रथम • [सप्तमः] १. धूकने का शब्द । वह ध्वनि जो जोर से धूकने में मुँह से निकलती है । २. घुणा और तिरस्कार सूचक शब्द । धिक् । छिः । जैसे, — धू धू ! कोई ऐसा काम करता है ? उ०—बकरी भेड़ा, मछली लायी, काहे गाय चराई । खबर मास सब एक पाँडे धू तोरी बम्हताई ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६२ ।

मुहा ०—थू थू करना = घृणा प्रकट करना । धिः धिः करना ।

विचकारना । थू थू होना = चारों ओर से छिः छिः होना ।

निदा होना। थू थू थुदा = लड़कों का एक वाक्य जिसे वे खेल में उस समय बोलते हैं जब समझते हैं कि वे बेईमानी होने के कारण हार रहे हों।

शूक—संका पुं० [अनु० पू पू] बह गाढ़ा और कुछ कुछ लसीलार रस जो मुँह के भीतर जीभ तथा ग्रांस की ग्रन्थियों से छूटता है। णीघन । ललार । लार ।

विशेष—मनुष्य तथा और उन्नत स्तन्य जीवों में जीवों के अगले भाग तथा मुँह के भीतर की मांसल क्रियाओं में पाने की तरह उभरे हुए (प्रत्यंत) सूक्ष्म खेप होते हैं जिसमें एक प्रकार का गाढ़ा सा रस भरा रहता है। यह रस भिन्न जंतुओं में भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। मनुष्य आदि प्राणियों के थूक के भाग में ऐसे रासायनिक द्रव्यों का भंडार होता है जो भोजन के साथ मिलकर पाचन में सहायता देते हैं।

मुद्दा०—यूक उद्घाटना = व्यर्थ की बकबात करना । यूक विखोला =

अर्थ बचना । अनुचित प्रभाव करना । धूक लगाना ।
हराना । नीचा दिखाना । जून लگانा । हिरान और
करना । धूक लगाकर छोड़ना = नीचा दिखाकर छोड़
(विरोधी को) तंग और लज्जित करके छोड़ना । बंड वे
छोड़ना । धूक लगाकर रखना = बहुत सेतकर रखन
जोड़ जोड़कर इकट्ठा करना । कंजूसी से जमा करना ।
एसा से संचित करना । धूर्को सतनू सामना = कंजूसी
क्रियायत के मारे बोड़े से सामान से बहुत बड़ा काम क
चलना । बहुत बोड़ी सामग्री लगाकर बड़ा कार्य पूरा क
चलना । धूक है = बिक है ! जानत है !

थूकना—क्रि० अ० [हि० थुक + ना (प्रत्यय०)] १. मुँह से ।
मिकासना या फेकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

मुहा०—किसी (व्यक्ति या वस्तु) पर न धूकना = अत्यंत च
करना। जरा भी पसंद न करना। अत्यंत तुच्छ समझ
ध्यान तक न देना। जैसे,—हम तो ऐसी चीज पर धूकें
नहीं। धूककर चाटना=(१) कहकर मुकर जाना। न
करके न करना। प्रतिज्ञा करके पूरा न करना। (२) बि
सी हुई वस्तु को लीटा लेना। एक बार देकर फिर ले लेना

थूकना^१—क्रि० स० १. मुँह में ली हुई वस्तु को गिराना । उगलन
 जैसे,—पान थूक दो ।

संयो० क्रि०—वेना ।

मुहा०—धुक देना = तिरस्कार कर देना । घृणापूर्वक स
देना ।

२. बुरा कहना । धिक्कारना । निंदा करना । तिरस्कृत करना
जैसे,—इसी बाल पर लोग तुम्हें थुक्ते हैं ।

थूणी—बंका की० [वि० स्तूप] दे० 'बूनी' । उ०—तिहि सः
मटल थूणी सुथप्प । गणनाथ पूजि सुभ सँज जप्प ।—
रासो, पृ० १५ ।

थूत्कार—संज्ञा पु० [सं०] थूकने का शब्द । थू थू करना [को०] ।

थूकृत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'थूतकार' ।

थूथन—संज्ञा पु० [देश०] लंबा निकला हुआ मुँह । जैसे, सुढ़ा धोरे, ऊँट, बैल आदि का ।

शूथनी—संज्ञा की [हि० शूथन] १. लंबा निकला हुआ मुँह । २. सुप्तर, घोड़े, बैल आदि का ।

मुद्दा०—यूयनी फैलाना=नाक भी बढ़ाना । मुँह फुलान
नाराज होना ।

२. हाथी के मुँह का एक रोग जिसमें उसके तालू में घाव आता है।

शूथरा—वि० [देश०] धूयन के ऐसा निकसा हुआ मुँह । बुरा चेहरा
भद्दा चेहरा ।

ग्रथुना—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ग्रथन' ।

थून्—संज्ञा जी० [सं० स्फुरा] धूनी । चाड़ि । खंभा । उ०—
प्रमोद परस्पर प्रगट्ट संपद्वि । वतु हिरण्य गुनप्राप्त धून् नि
रोपद्वि ।—तुलसी (कव्य०) ।

धून^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का मोटा पोंडा वा गन्ना जो मबरास में होता है। मबरासी पोंडा।

धूना—संज्ञा पुं० [दे०] मिट्टी का मोटा जिसमें परेता खोसकर सूत या रेशम फेरते हैं।

धूना—संज्ञा स्त्री० [हि० धून] दे० 'धूनी'।

धूनिया—संज्ञा स्त्री० [हि० धून + इया (प्रत्य०)] दे० 'धूनी'।
उ०—बीरह पंद्रह सालवाने लड़के भलाड़ा गोड़ चुके थे, छप्पर की धूनिया पकड़े हुए बैठक कर रहे थे।—काले०, पृ० ३।

धूनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूल] १. लकड़ी आदि का गड़ा हुआ खड़ा बस्ता। खंभा। स्तंभ। यम। २. वह खंभा जो किसी बौद्ध को रोकने के लिये नीचे से लगाया जाय। बाड़। सहारे का खंभा। उ०—बाद सूरज कियो तारा, गगन लियो बनाय। बाम्ह धूनी बिना देखो, राख लियो ठहराय।—जग० श०, भा० २, पृ० १०६।

क्रि० प्र०—लगाना।

१. वह गड़ी हुई लकड़ी जिसमें रस्ती का फंदा लगाकर मथानी का बंडा घटकाते हैं।

धूनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूल] दे० 'धूनी'।

धूनी—संज्ञा स्त्री० [दे०] साँप का बिज दूर करने के लिये गरम लोहे से काटे हुए स्थान को बागने की युक्ति।

धूर^१—संज्ञा पुं० [दे०] समूह। कोठी (बाँस की)। उ०—प्रपिराज प्रबोधिय बार धर हंकि साह उप्पर परिय। जानै कि अग्नि उजान बन बंस धूर दब प्रज्जरिय।—पु० रा०, १३। १४०।

धूर^२—संज्ञा पुं० [सं० तुवर] धरहर। तूर। तोर।

धूरना^१—क्रि० स० [सं० धूर्ण (=मारना)] १. कटना। वलित करना। २. मारना। पीटना। उ०—धूरत करि रिस जबहि होति सतहर सम सूरत। धूरत पर बल सूरि ह्वय महुँ पूरि गकरत।—गोपाल (शब्द०)। ३. ठूसना। कस कर भरना। ४. खूब कस कर खाना। ठूस ठूस कर खाना।

धूरना^२—क्रि० स० [सं० धुट्] दे० 'ठोड़ना'।

धूला^१—वि० [सं० स्थूल] १. मोटा। भारी। २. महा। उ०—अबराहमि बचनादि देवता मन न आवि, सुखम न धूल पुनि एक ही न दोह है।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ७६।

धूला—वि० [सं० स्थूल] [वि० स्त्री० धूलि, धूली] मोटा ताजा। उ०—करतार करे यहि कामिनि के कर कोमलता कलता मुनि के। लघु वीरध पातरि धूलि तहीं सुसमाधि टरे मुनि के।—तोष (शब्द०)।

धूली—संज्ञा स्त्री० [हि० धूला (=मोटा)] १. किसी घनाब का दला हुआ मोटा कण। बलिया। २. सूजी। ३. पकाया हुआ बलिया जो गाय को बच्चा बनने पर दिया जाता है।

धूला^२—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप, प्रा० धूप, धूव] १. मिट्टी आदि के ढेर का बना हुआ टीला। ढूह। २. गीली मिट्टी का पिंडा या सोंडा। ठीमा। मेसी। भीषा। ३. मिट्टी का ढूहा जो सरहद के निशान के लिये उठाया जाता है। सीमासूचक स्तूप। ४.

ढूह के आकार का काला रंगा हुआ पिंडा जिसे पीने का तंबाकू बेचनेवाले अपनी दुकानों पर बिज्जू के लिये रखते हैं। ५. वह बौद्ध जो कपड़े में बँधी हुई राख के ऊपर लूसी निकालकर बहाने के लिये रखा जाता है। ६. मिट्टी का सोंडा जो बौद्ध के लिये डेकली की बाड़ी लकड़ी के छोर पर बोपा जाता है।

धूला^३—संज्ञा स्त्री० [अनु० धू धू] धुड़ी। बिकार का लब्ध।

धूह—संज्ञा पुं० [दे०] मबन का लिलार। मकान की ऊँची छत।—दे०, पृ० १६५।

धूह—संज्ञा पुं० [सं० स्थूल] दे० 'धूहर'।

धूहर—संज्ञा पुं० [सं० स्थूल (=धूनी)] एक छोटा पेड़ जिसमें लचीली टहनियाँ नहीं होतीं, गाँठों पर से गुल्मी या डंडे के आकार के डंडल निकलते हैं। उ०—धूहरों से सटे हुए पेड़ धीरे धीरे, गौरज से धूम से जो लगे हैं किनारे पर।—पाचार्य०, पृ० १६८।

विशेष—किसी जाति के धूहर में बहुत मोटे दल के लंबे पत्ते होते हैं और किसी जाति में पत्ते बिल्कुल नहीं होते। काँटे भी किसी में होते हैं किसी में नहीं। धूहर के डंडलों और पत्तों में एक प्रकार का कड़वा दूध भरा रहता है। निकले हुए डंडलों के सिरे पर पीले रंग के फूल लगते हैं, जिनपर आबरुपत्र या बिजली नहीं होती। पुं० और स्त्री० पुष्प अलग अलग होते हैं। धूहर कई प्रकार के होते हैं—जैसे, काँटेवाला धूहर, तिबारा धूहर, बीधारा धूहर, नागफनी, खुरासानी धूहर, बिलायती धूहर, इत्यादि। खुरासानी धूहर का दूध बिपला होता है। धूहर का दूध घोषण के काम में आता है। धूहर के दूध में सानी हुई बाजरे के आटे की गोली देने से पेट का दर्द दूर होता है और पेट साफ हो जाता है। धूहर के दूध में मिर्गोई हुई बने की बाल (आठ या दस बाने) खाने से अच्छा जुलाब होता है और गरमी का रोग दूर होता है। धूहर की राख से निकाला हुआ खार भी दवा के काम में आता है। काँटेवाले धूहर के पत्तों का लोग अचार भी डालते हैं। धूहर का कोयला बाकव बनाने के काम में आता है। वैद्यक में धूहर रेचक, तीक्ष्ण, अग्निवीपक, कटु तथा शूल, गुल्म, अण्ठी, वायु, उन्माद, सूजन इत्यादि को दूर करनेवाला माना जाता है। धूहर को सेहूँ भी कहते हैं।

पर्या०—स्तुही। समंतगुप्ता। नागदू। महाबुला। सुषा। बज्जा। मोहूँडा। सिहूँडा। दंडबुलक। स्नुक्। स्नुषा। गुड। गुडा। कृष्णसार निस्त्रिपत्रिका। नेत्रारि। काँडेवाल। सिंहतुंड। काँडरोहक।

धूहा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप, धूव] १. ढूह। घटाला। २. टीला।

धूही—संज्ञा स्त्री० [हि० धूहा] १. मिट्टी की ढेरी। ढूह। २. मिट्टी के खंभे जिसपर गराड़ी वा चिरनी की लकड़ी ठहराई जाती है।

धूहर—वि० [दे०] बका हुआ। आंत। सुस्त। हिरान।

धूँ—सर्व० बहु० [सं० धूम] धुम या धाप। उ०—जुँ वे जाणउ तूँ करउ, राजा बाइस दीध। डोला०, पृ० ६।

येह येह^१—वि० [अनु०] दे० 'येई येई'। उ०—लाग मान येह येह करि उबटत घटत ताल घुदंग गँगीर।—सूर० (शब्द०)।

येई येई—वि० [अनु०] तालसूचक लुप्त का लब्ध धीर मुद्रा । धिरक धिरककर नाचने की मुद्रा धीर ताल ।

क्रि० प्र०—करना ।

येक—संज्ञा पु० [हि० टेक, ठेक, येक (= स्तंभ, खंभा)] (मा०) स्तरीररूपी स्तंभ । स्तरीर । उ०—सत कोटि तीरथ भूमि परिकरमा करि नवावै येक हो ।—कबीर सा०, पृ० ४११ ।

येगली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'यिगली' । उ०—पाँच तल के गुदड़ी बनाई । यदि सुरज दुइ येगली लगाई ।—कबीर सा०, भा० २, १४० ।

येघा—संज्ञा पु० [देश०] सहारा । प्रदलंबन । उ०—गगन गरज मेघा, उठए धरनि येघा । पंचसर हिय डोल सालि ।—विद्यापति, पृ० १३५ ।

येटा—वि० [देश०] प्रारंभ का । प्रसली । मुख्य । उ०—मैं मल भङ्ग हूँ बाजरा बाहर जासी येटा ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ३४ ।

येवा—संज्ञा पु० [देश०] १. भेंगूठी का नगीना । २. किसी वायु का वह पत्र जिसपर मुहर लोदी जाती है । ३. भेंगूठी का वह धर जिसमें नगीना जड़ा जाता है ।

येवा—संज्ञा संज्ञा पु० [देश०] खेत में मचान के ऊपर का छप्पर ।

ये ये—वि० [सं०] बाय का अनुकरणार्थक एक शब्द । दे० 'येई येई' ।

येरज—संज्ञा पु० [सं० स्थेयं] कठोरता । स्थिरता । दृढ़ता । उ०—ए हरि सोहर येरज जत से सब कहत अनि गेखि सून संकेता रे ।—विद्यापति, पृ० २६० ।

येला—संज्ञा पु० [सं० स्थल (= कपड़े का धर)] [स्त्री० अल्पा० यैली] १. कपड़े टाट आदि को सीकर बनाया हुआ पात्र जिसमें कोई वस्तु भरकर बंद कर सकें । बड़ा कोश । बड़ा बटुआ । बड़ा कीसा ।

मुहा०—येला करना = मारकर ढेर कर देना । मारते मारते ढोला कर देना ।

२. रूप्यों से भरा हुआ येला । तोड़ा । उ०—बोल्यो बनबारी दम खोलि येला बीजिए जू लीजिए जू ग्राम ग्राम चरन पठाए हैं ।—प्रियावास (शब्द०) । ३. पायजामे का वह भाग जो जूथे से घुठने तक होता है ।

यैली—संज्ञा स्त्री० [हि० यैला] १. छोटा येला । कोश । कीसा । बटुआ । २. रूप्यों से भरी हुई यैली । तोड़ा ।

मुहा०—यैली खोलना = यैली में से निकालकर रफ़ा देना । उ०—तब आनिय ब्योहरिया बोली । तुरत देउं मैं यैली खोली ।—तुलसी (शब्द०) ।

यैलीदार—संज्ञा पु० [हि० यैली + फ्रा० दार] १. वह आदमी जो खजाने में रफ़ा उठाता है । २. तहकीलदार । शोकरिया ।

यैलीपति—संज्ञा पु० [हि० यैली + सं० पति] पूँजीपति । रफ़ावाला । मालदार । उ०—पालायेँट में खुद यैलीपतियों का बहुमत था ।—भा० ६० क०, पृ० २६४ ।

यैलीबरदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० यैली + फ्रा० बरदार] यैली उठाकर पहुँचाने का काम । यैलियों की डोमई ।

यैलीशाही—संज्ञा स्त्री० [हि० यैली + फ्रा० शाही] पूँजीवाद ।

थोई—संज्ञा स्त्री० [सं० तुय] दे० 'तोंद' । उ०—थोई बलकि बर पास, मनो पदंग मिलावनो ।—नंद० प्र०, पृ० १३४ ।

थोंदिया—संज्ञा स्त्री० [हि० तोंद का स्त्री० अल्पा०] दे० 'तोंद' । उ०—उज्ज्वल तन, थोरी सी थोंदिया, राते धंवर सोई ।—नंद० प्र०, पृ० ३४१ ।

थो—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'था' । उ०—का जानै तुम कहा लिख्यो थो जाको फल मैं पायो ।—नट०, पृ० २१ ।

थोक—संज्ञा पु० [सं० स्तोमक, प्र० थोक्क, हि० थोक] १. ढेर । राशि । झटाला । २. समूह । झुंड । जत्था ।

मुहा०—थोक करना = इकट्ठा करना । जमा करना । उ०—हुम चढ़ि काहे न टेरो कान्हा गैया दूरि गई ।.. बिहरत फिरत सकल बन महियाँ एकइ एक भई । छाड़ि खेल सब दूरि जात हैं बोले जो सके थोक कई ।—सुर (शब्द०) । थोक की थोक = ढेर की ढेर । बहुत सी । उ०—वह यह भी जानते थे कि मेरी थोक की थोक डाक बिनी डाकखाने में जमा हो रही है ।—किन्नर०, पृ० ५४ ।

३. बिक्री का इकट्ठा माल । इकट्ठा बेचने की चीज । खुबरा का उलटा । जैसे,—हुम थोक के खरीदार हैं । ४. जमीन का टुकड़ा जो किसी एक आदमी का हिस्सा हो । थक । ५. इकट्ठी वस्तु । कुल । ६. वह स्थान जहाँ कई गाँवों की सीमाएँ मिलती हो । वह जगह जहाँ कई सरहदें मिलें ।

थोकदार—संज्ञा पु० [हि० थोक + फ्रा० दार] इकट्ठा माल बेचने-वाला व्यापारी ।

थोड़—वि० [सं० स्तोक] दे० 'थोड़ा' । उ०—बहुल कौडि कनिक थोड़, धीवक पेंचो दीध घोंड़ ।—कीर्ति०, पृ० ६८ ।

थोड़ा—वि० [सं० स्तोक, पा० थोघ + डा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० थोड़ी] जो मात्रा या परिमाण में अधिक न हो । ग़ून । अल्प । कम । तनिक । जरा सा । जैसे,—(क) थोड़े दिनों से वह बीमार हैं । (ख) मेरे पास अब बहुत थोड़े रूपए रह गए हैं ।

थो—थोड़ा थोड़ा = कम कम । कुछ कुछ । थोड़ा बहुत = कुछ । कुछ कुछ । किसी कदर । जैसे,—थोड़ा बहुत रफ़ा उनके पास जरूर है ।

मुहा०—थोड़ा थोड़ा होना = सज्जित होना । संकुचित होना । हेठ पड़ना ।

थोड़ा—क्रि० वि० अल्प परिमाण या मात्रा में । जरा । तनिक । जैसे,—थोड़ा चलकर देख लो ।

मुहा०—थोड़ा ही = नहीं । बिल्कुल नहीं । जैसे,—हम थोड़ा ही जायेंगे, जो जाय उससे कहो ।

विशेष—बोलचाल में इस मुहा० का प्रयोग ऐसी जगह होता है जहाँ उस बात का खंडन करना होता है जिसे समझकर दूसरा कोई बात कहता है ।

थोताः—वि० [हि०] दे० 'थोथा' । उ०—'तुका' सज्जन तिन पूँ कहिये
जियनी प्रेम दुनाय । कुर्जन तेरा मुख काला थोता प्रेम बटाव ।
—दक्खिनी०, पृ० १०८ ।

थोती—संज्ञा स्त्री० [देश०] बीपायों के मुँह का अगला भाग ।
धूधन ।

थोथ—संज्ञा स्त्री० [हि० थोथा] १. खोलसापन । निःसारता ।
२. तौब । पेटी ।

थोथरः—वि० [हि० थोथ + र(प्रत्य०)] खोलला । थोथरा । उ०—
हते मरी मुख थोथर भए गेल जनिक माओल साँप ठाम बैसलें
भुवन भमिम । मरी गेल सबे साप ।—विद्यापति, पृ० ४०२ ।

थोथरा—वि० [हि० थोथ + रा(प्रत्य०)] [वि० स्त्री० थोथरी] १. धुन
या कीड़ों का साया हुआ । खोलला । खाली । २. निःसार ।
जिसमें कुछ तत्त्व न हो । ३. निकम्मा । व्यर्थ का । जो किसी
काम का न हो । उ०—(क) मत छोखी बट थोथरा ता बर बैठो
फूलि ।—वरण० बानी, भा० २, पृ० २०४ । (ख) अनुमो मूठी
थोथरी निरगुन सच्चा नाम ।—हरिया० बानी, पृ० २२ ।

थोथा^१—वि० [देश०] [वि० स्त्री० थोथी] १. जिसके भीतर कुछ
सार न हो । खोलला । खाली । पोला । जैसे, थोथा बना
बाजे बना । उ०—बहुत मिले मोहि नेत्री धर्मी प्रात करे
असनाना । आतम छोड़ पषाने पूजे तिन का थोथा जाना ।—
कबीर श०, भा० १, पृ० २७ । २. जिसकी भार तेज न
हो । कुंठित । गुठला । जैसे, थोथा तीर । ३. (सप) जिसकी
पूँछ कट गई हो । बाडा । बे दुम का । ४. भद्दा । बेढंगा ।
व्यर्थ का । निकम्मा ।

मुहा०—थोथी कथनी = व्यर्थ की बात । निःसार बात । उ०—
करनी रहनी दड़ गहो थोथी कथनी डारो ।—वरण०
बानी, भा० २, पृ० १७० । थोथी बात = (१) मही बात ।
(२) व्यर्थ की बात । व्यर्थ का प्रलाप ।

थोथा^२—संज्ञा पुं० बरतन ढालने का मिट्टी का साँचा ।

थोथी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास ।

थोपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० थोपना] चपत । धोल ।

थो०—गनेस थोपड़ी = लड़कों का एक खेल जिसमें जो धोर
होता है उसकी आँखें बंद करके उसके सिर पर सब लड़के
बारी बारी चपत लगाते हैं । यदि चपत लगानेवाला लड़का
ठीक ठीक बतला देता है कि किसने पहले चपत लगाई तो वह
पहले चपत लगानेवाला लड़का धोर हो जाता है ।

थोपना—क्रि० सं० [सं० स्थापन, हि० थापन] १. किसी गोली चीज
(जैसे, मिट्टी, आटा आदि) की मोटी तह ऊपर से जमाना
या रखना । किसी गीली वस्तु का जोड़ा यों ही ऊपर ढाल
देना या जमा देना । पानी में सनी हुई वस्तु के लोंके को
किसी दूसरी वस्तु पर इस प्रकार फैलाकर ढालना कि वह
उसपर चिपक जाय । छोपना । जैसे,—बड़े के मुँह पर
मिट्टी छोप दो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. तबे पर रोटी बनाने के लिये यों ही बिना मड़े हुए गीला आटा

फैला देना । ३. मोटा लेप चढ़ाना । लेव चढ़ाना । ४.
धारोपित करना । मत्थे मढ़ना । लपाना । जैसे, किसी पर
बोव थोपना । ५. आक्रमण आदि से रक्षा करना । बचाना ।
दे० 'छोपना' ।

थोपी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० थोपना] चपत । धोल । चपेट । थोपड़ी ।

थोपड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] धूधन । जानवरों का निकला हुआ
लंबा मुँह ।

थोथ रखना—क्रि० सं० [लस०] जहाज को धार पर चढ़ाना ।

थोभड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] धूही । शीघार । मिति । उ०—देखो
जोयी करामातड़ी मनसा महल बछाया । बिन थाभा बिन
थोभड़ी आसमान ठहराया ।—राम० धर्म०, पृ० ४९ ।

थोरी^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. केले की पेड़ी के बीच का भाग । २.
धूहर का पेड़ ।

थोर^२—वि० [हि० थोड़ा] थोड़ा । स्वरूप । छोटा । उ०—उठे धन
थोर विराजत बाम । बरे मनु हाटक सालिगराम ।—पृ०
रा०, २१।२० ।

थौ०—थोरथनी = छोटे छोटे स्तनोंवाली । उ०—रोम राज राबी
भ्रमहि थोरथनी दुँडि बाल । उत्तकंठा उत्तकंठ की ते पुज्यो
प्रतिपाल ।—पृ० रा०, २५।७२५ ।

थोरा^३—वि० [हि०] दे० 'थोड़ा' ।

थोरिक^३—वि० [हि० थोरा + एक] थोड़ा सा । तनिक सा ।

थोरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक हीन जनार्थ जाति ।

थोरी^२—वि० स्त्री० [थोरा का स्त्री० प्रत्या०] दे० 'थोड़ा' ।

थोरो, थोरी—वि० [हि०] दे० 'थोड़ा' । उ०—पाछे उन बंशीबानन
के तें थोरो द्रव्य आवन लाग्यो ।—धो सी बावन०, भा० १,
पृ० १२८ । (ख) महो महरि सब बंधन थोरी । सुंदर सुत
पर भयो न थोरी ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५१ ।

थोलः—वि० [हि०] दे० 'थोड़ा' । उ०—काहु कापल काहु धोल,
काहु सबल काहु धोल ।—कीर्ति०, पृ० २४ ।

थोहर^३—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'धूहर' । उ०—सुभा हरइ थोहर
सुभा, सुभा कहत कल्याण । सुभा जु सोमावान हरि, धोर
न दूजो जान ।—नंद० ग्रं०, पृ० ७० ।

थौंदि^३—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्द या तुण्ड] तौब । पेट । उ०—किहूयै
कटारीन सो थौंदि फारी । तहीं दूसरें आनिके सीस मारी ।
—सुजान०, पृ० २१ ।

थ्यौं^३—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'था' । उ०—सवाव सात सुरतां लुबाए
ताला के जात में क्यौं थ्यौं ?—दक्खिनी०, पृ० ३८८ ।

थ्यावस^३—संज्ञा पुं० [सं० थ्येयस] १. स्थिरता । ठहराव । २. धीरता ।
धैर्य । उ०—(क) बिन पावस तो इन्हें थ्यावस है न सु क्यौं
करिये सब सो परसैं । बहरा बरसैं ऋतु मे धिरि के नित ही
धौलियां उधरी बरसैं ।—आनंदवन (शब्द०) । (ख) उयों
कहुलाय मसूसनि कमस क्यौं हैं कहुँ सो धरे नहिं थ्यावस ।—
आनंदवन (शब्द०) ।

६—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला में अठारहवाँ व्यंजन जो तबले का तीसरा वर्ण है। इसका उच्चारण स्थान दंतमूल है; दंतमूल में जिह्वा के अगले भाग के स्पर्श से इसका उच्चारण होता है। यह व्यंजन है और इसमें संवार, नाद और घोष नामक बाह्य प्रत्यक्ष हैं।

दंग—वि० [फा०] विस्मित। चकित। आश्चर्यान्वित। स्तब्ध। हक्का बक्का।

क्रि० प्र०—रह जाना।—होना।

दंग^२—संज्ञा पु० १. चबराहट। भय। डर। उ०—जब रथ साजि बड़ी रण सम्मुख जाय न जानो दंग। राघव सेन समेत सँवारों करी वधिरमय दंग।—सूर(शब्द०)। २. द० 'दंगा'।

दंगा^३—संज्ञा पु० [दे०] अग्निकण। उ०—इक राहु बाहु लागी असुर निरसहाय आकार नब। अवरंग प्रची पर उलटियो, दंग प्रगटयो आणु दब।—रा० क०, पु० २०।

दंगाई—वि० [हि० दंगा + ई (प्रत्य०)] १. दंगा करनेवाला। उपद्रवी लड़ाका। भगड़ाल। २. प्रचंड। उग्र। ३. दंगली। बहुत लंबा। लंबा चौड़ा। भारी।

दंगल—संज्ञा पु० [फा०] १. मलों का युद्ध। पहलवानों की वह कुश्ती जो जोड़ बद्धकर हो और जिसमें जीतनेवाले को इनाम प्राप्ति मिले। २. मल्लाड़। मल्लयुद्ध का स्थान।

मुहा०—दंगल में उतरना = कुश्ती लड़ने के लिये मल्लाड़े में जाना। ३. जमावड़ा। समूह। समाज। दल। उ०—सावन नित संतन के घर में, रति मति सियवर में। नित वसंत नित होरी मंगल, जैसी बस्ती तैसोइ जंगल, दल बावल से जिनके दंगल पगे रटे की भर में।—देवस्वामी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—जमाना।—बाँधना।

४. बहुत मोटा गढ़ा या तोपक। उ०—(क) झूलकार हाथ धोकर सामने बैठ जाते थे, वह दंगल पर रहता था, जाना एक बड़ी सी कुर्सी पर चुना जाता था।—शिवप्रसाद (शब्द०)। (ख) बावर्ची जब छुट्टी पाता हो... किसी बड़े दंगल पर पाँव फैला कर संबा पड़ जाता।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

दंगली—वि० [फा० दंगल] १. युद्ध करनेवाला। लड़ाका। प्रचण्ड-कर। उ०—भूषण भनत तेरी करगळ दंगली।—भूषण प्र०, पु० ४५। २. दंगल में कुश्ती लड़नेवाला। दंगल जीतनेवाला।

दंगबारा—संज्ञा पु० [हि० दंगल + बारा] वह सहायता जो किसी गाँव के किसान एक दूसरे को हल बैल प्रादि देकर देते हैं। जिता। हरसीत।

दंगा—संज्ञा पु० [फा० दंगल] १. भगड़ा। बछेड़ा। उपद्रव। उ०—खेलन बाग बालकन संग। जब तब करिय सखन ते दंगा।—विद्याभ। (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—दंगा फसाव।

२. गुल गपाड़ा। हुल्लड़। खोर। गुल। उ०—खीस पर रंगा हँसे भुजन भुजंगा हँसे हाँस ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में।—पद्माकर (शब्द०)।

दंगाई—वि० [हि० दंगा] दे० 'दंगई'।

दंगैत—वि० [हि० दंगा + एत या येत (प्रत्य०)] १. दंगा करने-वाला। उपद्रवी। २. बागी। बलबाई।

दंड—संज्ञा पु० [सं० दण्ड] १. डंडा। सोंटा। लाठी।

विशेष—स्मृतियों में धर्म्य और वर्ण के अनुसार दंड धारण करने की व्यवस्था है। उपनयन संस्कार के समय मेखला प्रादि के साथ ब्रह्मचारी को दंड भी धारण कराया जाता है। प्रत्येक वर्ण के ब्रह्मचारी के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के दंडों की व्यवस्था है। ब्राह्मण को बेल या पलाश का दंड केशांत तक ऊँचा, क्षत्रिय को बरगद या खैर का दंड ललाट तक और वैश्य को गूलर या पलाश का दंड नाक तक ऊँचा धारण करना चाहिए। गृहस्थों के लिये मनु ने बाँस का डंडा या छड़ी रखने का आदेश दिया है। संन्यासियों में कुटीचक और बहूचक को त्रिदंड (तीन दंड), हंस को एक वेणुदंड और परमहंस को भी एक दंड धारण करना चाहिए। ऐसा नियुक्तिधु में उल्लेख है। पर किसी किसी ग्रंथ में यह भी लिखा है कि परमहंस परम ज्ञान को पहुँचा हुआ होता है अतः उसे दंड प्रादि धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं। राजा लोग शासन और प्रतापसुचक एक प्रकार का राजदंड धारण करते थे।

मुहा०—दंड ग्रहण करना = संन्यास लेना। विरक्त या संन्यासी हो जाना।

२. डंडे के आकार की कोई वस्तु। जैसे, मुजदंड, शुभादंड, वैतसदंड, दण्डदंड इत्यादि। ३. एक प्रकार की कसरत जो हाथ पैर के पंजों के बल से ही होकर की जाती है।

क्रि० प्र०—करना।—पेलना।—मारना।—लगाना।

यौ०—दंडपेल। चकदंड।

४. सूँ में परीं धीरे लेटकर किया हुआ प्रणाम। दंडवत्।

यौ०—दंड प्रणाम।

५. एक प्रकार का नृत्य। दे० 'दंडनृत्य'। ६. किसी अपराध के प्रति-कार में अपराधी को पहुँचाई हुई पीड़ा या हानि। कोई मूल नुक या बुरा काम करनेवाले के प्रति वह कठोर व्यवहार जो उसे ठीक करने या उसके द्वारा पहुँची हुई हानि को पूरा कराने के लिये किया जाय। शासन और परिशोध की व्यवस्था। सजा। तदार्थक।

विशेष—राज्य चलाने के लिये साम, दान, भेद और दंड ये चार नीतियाँ शास्त्र में कही गई हैं। अपने देश में प्रजा के शासन के लिये जिस दंडनीति का राजा आश्रय लेता है उसका विस्तृत

वर्णन स्पृति ग्रंथों में है। ऐसे दंड की तीन श्रेणियाँ मानी गई हैं—उत्तम साहस (भारी दंड, बैसे, बच, सर्वस्वहरण, देव-निकाश, अंगच्छेद इत्यादि); मध्यम साहस और प्रथम साहस। अग्निपुराण तथा अर्थशास्त्र में अन्य देशों के प्रति काम में लाई जानेवाली दंडविधि का भी उल्लेख है; जैसे, लुटना, भाग लगाना, आघात पहुँचाना, बस्ती उखाड़ना इत्यादि।

७. अर्थदंड। वह धन जो अपराधी से किसी अपराध के कारण लिया जाय। जुर्माना। डंड।

क्रि० प्र०—लगाना।—लेना।—लेना।

मुद्दा०—दंड डालना = (१) जुर्माना करना। अर्थदंड लगाना। (२) कर लगाना। महसूल लगाना। दंड पढ़ना = हानि होना। नुकसान होना। घाटा होना। जैसे,—बड़ी किसी काम की न निकली, उसका खपया दंड पड़ा। दंड भरना = (१) जुर्माना देना। (२) दूसरे के नुकसान को पूरा करना। दंड भोगना या भुगताना = (१) सजा अपने ऊपर लेना। दंड सहना। (२) जान बूझकर व्यर्थ कष्ट उठाना। दंड सहना = नुकसान उठाना। घाटा सहना।

विशेष—स्पृतियों में अर्थदंड की भी तीन श्रेणियाँ हैं,—प्रथम साहस ढाई सौ पण तक; मध्यम साहस पाँच सौ पण तक और उत्तम साहस एक हजार पण तक।

८. दमन। शासन। दश। दमन।

विशेष—संन्यासियों के लिये तीन प्रकार के दंड रहे गए हैं,—(१) वाग्दंड—बाणी को बध में रखना; (२) मनोदंड—मन को बंधन न होने देना, अधिकार में रखना और (३) कायदंड—शरीर को कष्ट का अभ्यास कराना। संन्यासियों का त्रिदंड इन्हीं तीन दंडों का सूरचक चिह्न है।

९. ध्वजा या पताका का बाँस। १०. तराजू की डंडी। डंडी। ११. मयानी। १२. किसी वस्तु (जैसे, करछी, चम्मच आदि) की डंडी। १३. हल की लंबी लकड़ी। हल में लगनेवाली लंबी लकड़ी। हरिस। १४. जहाज या नाव का मस्तूल। १५. एक योग का नाम। १६. लंबाई की एक माप जो चार हाथ की होती थी। १७. हरिवंश पुराण के अनुसार इक्ष्वाकु राजा के सी पुत्रों में से एक जिनके नाम के कारण दंड-कारण्य नाम पड़ा। वि० दे० 'दंडक'—४। १८. कुबेर के एक पुत्र का नाम। १९. (दंड देनेवाला) यम। २०. बिष्णु। २१. शिव। २२. शैना। फीज। २३. धरव। थोड़ा। २४. साठ पल का काल। चौबीस मिनट का समय। २५. वह प्रांगण जिसके पूर्व और उत्तर कोठरियाँ हों। २६. सूर्य का एक पार्श्वचर। सूर्य का एक अनुचर (की०)। २७. वर्ष। वर्षा। अग्निमान (की०)। २८. बाघ बजाने की एक प्रकार की लकड़ी (की०)। २९. कमल की नाव। जैसे, कमलदंड। ३०. राजा के हाथ का दंड जो शासन का प्रतीक होता है (की०)। ३१. डंड। पतवार (की०)।

४-१७

दंडक—संज्ञा पु० [सं० दण्डक] वह प्राण जो सरकारी जुर्माना देने के लिये लिया गया हो।

दंडकदंड—संज्ञा [सं० दण्डकदंड] बरछी कंद। सेमर का मुसला।

दंडक—संज्ञा पु० [सं० दण्डक] १. डंडा। २. दंड देनेवाला पुरुष। शासक। ३. छंदों का एक वर्ग। वह छंद जिसमें वर्णों की संख्या २१ से अधिक हो।

विशेष—दंडक दो प्रकार का होता है, एक गणात्मक, दूसरा मुक्तक। गणात्मक वह है जिसमें वर्णों का बंधन होता है अर्थात् किस वर्ण के उपरांत फिर कौन सा वर्ण आना चाहिए, इसका नियम होता है। जैसे, कुसुमस्तक, त्रिशंगी, नीलचक्र इत्यादि। उ०—(नीलचक्र)। जानि के समै भवाल, रामराज साज साजि ता समै भकाज काज कैकई जु कीन। भूप तैं हुराय बैन राम सीय बंधु युक्त बोलिके पठाय बैनि कानन सुधीन। —(च०द०)। मुक्तक वह है जिसमें केवल अक्षरों की बिगड़ी होती है अर्थात् जो वर्णों के बंधन से मुक्त होता है। किसी किसी में कहीं कहीं लघु गुण का नियम होता है। द्वितीय काव्य में जो कवित्त (मनहर) और चनाक्षरी छंद अधिक व्यवहृत हुए हैं वे इसी मुक्तक के अंतर्गत हैं। उ०—(मनहर कवित्त)। आनंद के कंद जग जयावन जगतबंद बरधनंद के निबाहेई निबहिए। कहे पद्माकर पवित्र पन पालिबे कौं बीरे, चक्रपाणि के चरित्रन कौं बहिए। —पद्माकर प्र०, पु० २३८।

४. इक्ष्वाकु राजा के पुत्र का नाम।

विशेष—ये शुक्राचार्य के शिष्य थे। इन्होंने एक बार गुरु की कन्या का कीमती अंग किया। इसपर शुक्राचार्य ने शाप देकर इन्हें इनके पुर के सहित भस्म कर दिया। इनका देश जंगल हो गया और दंडकारण्य कहलाने लगा।

५. दंडकारण्य। ६. एक प्रकार का वातरोग जिसमें हाथ, पैर, पीठ, कमर आदि अंग स्तब्ध होकर पैंत से जाते हैं। ७. शुद्ध राग का एक भेद। ८. हल में लगनेवाली एक लंबी लकड़ी। हरिस (की०)।

दंडकर्म—संज्ञा पु० [सं० दण्डकर्मन्] दंड देने का काम। दंड। सजा (की०)।

दंडकल—संज्ञा पु० [सं० दण्डकल] एक छंद का नाम जिसमें सीस मात्राएँ होती हैं (की०)।

दंडकला—संज्ञा बी० [सं० दण्डकला] एक छंद जिसमें १०, ८ और १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं। इसमें जगण न आना चाहिए। जैसे—कल कूलनि ल्यावे, हरिहि सुनावे, है या लायक भोगन की। अरु सब गुन पूरी, स्वादन करी, हरनि अनेकन रोगन की।

दंडका—संज्ञा बी० [सं० दण्डका] दंडक वन। दंडकारण्य (की०)।

दंडकाक—संज्ञा पु० [सं० दण्डकाक] काला और बड़े आकारवाला कीड़ा। डोम कीड़ा (की०)।

दंडकारण्य—संज्ञा पु० [सं० दण्डकारण्य] वह प्राचीन वन जो

विषय सर्वतः से लेकर गोदावरी के किनारे तक फैला था। इस क्षण में श्रीरामचन्द्र वनवास के काल में बहुत दिनों तक रहे थे। यहीं शूर्पणखा के नाक कान कटे थे और सीताहरण हुआ था।

दंडकी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डकी] डोलक।

दंडखेदी—संज्ञा पुं० [सं० दण्डखेदिन्] वह मनुष्य जो राज्य से दंड पाने के कारण कष्ट में हो। दंड से दुःखी व्यक्ति।

विशेष—प्राचीन काल में मित्र मित्र अपराधों के लिये हाथ पैर काटने, अंग जलाने आदि का दंड दिया जाता था जिसके कारण दंडित व्यक्ति बहुत दिनों तक कष्ट में रहने थे। कोटिल्य ने ऐसे व्यक्तियों के कष्ट का उपाय करने की भी व्यवस्था की थी।

दंडगौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डगौरी] एक अप्सरा का नाम।

दंडग्रहण—संज्ञा पुं० [सं० दण्डग्रहण] संन्यास आश्रम जिसमें दंड ग्रहण करने का विधान है।

दंडघ्न—संज्ञा पुं० [सं० दण्डघ्न] १. डंडे से मारनेवाला। दूसरे के शरीर पर आघात पहुँचानेवाला। २. दंड को न माननेवाला। राजा या शासन जिस दंड की व्यवस्था करे उसका भंग करनेवाला।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि चोर, परस्त्रीगामी, दुष्ट वचन बोलनेवाले, साहसिक, दंडघ्न इत्यादि जिस राजा के पुर में न हों वह इंद्रलोक को पाता है।

दंडचारी—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेनापति (कोटि०)। २. सेना का एक विभाग (को०)।

दंडछदन—संज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा जिसमें विभिन्न प्रकार के बर्तन रखे जाते हैं (को०)।

दंडदक्का—संज्ञा पुं० [सं० दण्डदक्का] दमाघात। नगाड़ा। धोसा।

दंडताम्री—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डताम्री] वह जनतरंग बाजा जिसमें तबिल की कटोरियाँ काम में लाई जाती हैं।

दंडदास—संज्ञा पुं० [सं० दण्डदास] वह जो दंड का ऋण न दे सकने के कारण दास हुआ हो। वह जो जुर्माने का खयाल नोकरी करके चुकाता हो।

दंडदेवकुल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डदेवकुल] न्यायालय। मर्यादा (को०)।

दंडदेवार—वि० [सं० दण्ड + हि० देवार = देनेवाला] दंड देनेवाला। क्षमताशाली। उ०—समर सिंघ मेवार दंडदेवार अजर अर। दोली पति अर्नग सरन छोड़ी सुजोह लरि।—पृ० रा०, ७:२४।

दंडधर—वि० [सं० दण्डधर] डंडा रखनेवाला।

दंडधर^२—संज्ञा पुं० १. यमराज। २. शासनकर्ता। ३. संन्यासी। ४. छड़ी बरदार। द्वाररक्षक। उ०—जहाँ बूढ़े करणिक, दंडधर, कंचुकी और बाहक तस्परसा से इधर उधर घूमते।—वै० न० पृ० ६४।

दंडधार^१—वि० [सं० दण्डधार] डंडा रखनेवाला।

दंडधार^२—संज्ञा पुं० १. यमराज। २. राजा। ३. एक राजा का नाम जो महाभारत में दुर्योधन की ओर था और अर्जुन से लड़कर

मारा गया था। ४. पांचालवंशीय एक योद्धा जो पांडवों की ओर से लड़ा था और कर्ण के हाथ से मारा गया था।

दंडधारण—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डधारण] कोटिल्य के अनुसार वह भूमि या प्रदेश जहाँ प्रबंध और शासन के लिये सेना रखनी पड़े।

दंडधारी—वि० संज्ञा पुं० [सं० दण्डधारिन्] दे० दंडधर (को०)।

दंडन—संज्ञा पुं० [सं० दण्डन] [वि० दंडनीय, दंडित, दंड्य] दंड देने की क्रिया। शासन।

दंडना(पु०)—क्रि० स० [सं० दण्डन] दंड देना। शासित करना। सजा देना। उ०—मुशल मुग्ध हनत, त्रिविध कर्मणि गनत, मोहि दंडत धर्मदुत हारे।—सूर (शब्द०)।

दंडनायक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डनायक] १. सेनापति। २. दंड-विधान करनेवाला राजा या हाकिम। ३. सूर्य के एक अनुचर का नाम।

दंडनीति—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डनीति] १. दंड देकर अर्थात् पीड़ित करके शासन में रखने की राजाओं की नीति। सेना आदि के द्वारा बलप्रयोग करने की विधि। २. दुर्गा का एक रूप (को०)।

दंडनीय—वि० [सं० दण्डनीय] दंड देने योग्य।

दंडनेता—संज्ञा पुं० [सं० दण्डनेतृ] १. नृप। राजा। २. यमराज। ३. हाकिम (को०)।

दंडप—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप] नरेश। राजा (को०)।

दंडपांशुल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपांशुल] दंडधर। छड़ी बरदार। द्वारपाल (को०)।

दंडपांसुल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपांसुल] दे० 'दंडपांशुल'।

दंडपाणि—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाणि] १. यमराज। २. काशी में भैरव की एक मूर्ति।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि पूर्णभद्र नामक एक यक्ष को हरिकेश नाम का एक पुत्र था जो महादेव का बड़ा भक्त था। एक बार जब इसने घोर तप किया तब महादेव पार्वती सहित इसके पास आए और बोले तुम काशी के दंडधर हो। वहाँ के दुष्टों का शासन और साधुओं का पालन करो। संभ्रम और उद्वेग नाम के मेरे दो गण तुम्हारा सहायता के लिये सदा तुम्हारे पास रहेंगे। बिना तुम्हारी पूजा किए कोई काशी में मुक्ति नहीं पा सकेगा।

३. पुलिस। नगररक्षक कर्मचारी (को०)।

दंडपात—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपात] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रोगी को बीद नहीं आती और वह इधर उधर पाण्डु की तरह घूमता है।

दंडपारुष्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपारुष्य] १. मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लुक भट्ट के मतानुसार दूसरे के शरीर पर हाथ, डंडे आदि से आघात करने, धूल मिला आदि फेंकने का दुष्ट कार्य। मार पीट। २. राजाओं के सात व्यसनों में से एक।

दंडपाल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाल] दे० 'दंडपालक'।

दंडपालक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपालक] १. डण्डोधार। दरबान। द्वारपाल। २. एक प्रकार की मछली। दंडिका मछली।

दंडपाशक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाशक] १. दंड देनेवाला प्रधान कर्मचारी । २. पातक । जल्माद ।

दंडपाशक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाशक] पुलिस का अधिकारी ।
उ०—पाल, परमार, गहड़वाल तथा प्रतिहार लेखों में पुलिस अधिकारी के लिये दंडिक, दंडपाशक या दंडशक्ति का प्रयोग किया गया है ।—पू० म० भा०, पृ० ११० ।

दंडप्रणाम—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप्रणाम] भूमि में डंडे के समान पड़कर प्रणाम करने की मुद्रा । दंडवत् । सादर अभिवादन ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

दंडप्रनाम^७—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप्रणाम] दे० 'दंडाणाम' ।
उ०—दंडप्रनाम करत मुनि देखे । मुरनिमंत भाग्य निज लेखे ।—मानस, २ । २०५ ।

दंडबालधि—संज्ञा पुं० [सं० दण्डबालधि] हाथी ।

दंडभंग—संज्ञा पुं० [सं० दण्डभङ्ग] शासन या आदेश का उल्लंघन ।
दंडाज्ञा का व्यवहार न होना [को०] ।

दंडभय—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + भय] दंड या सजा का डर ।

दंडभृत्^१—वि० [सं० दण्डभृत्] डंडा रखनेवाला । डंडा चलाने या घुमानेवाला ।

दंडभृत्^२—संज्ञा पुं० १. कुम्हार । कुंभकार । २. यमराज [को०] ।

दंडमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमत्स्य] एक प्रकार की मछली जो
देखने में डंडे या साँप के आकार की होती है । नाम मछली ।

दंडमाणव—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमाणव] दे० 'दंडमाणव' ।

दंडमाथ—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमाथ] सीधा रास्ता । प्रधान पथ ।

दंडमान^७—वि० [सं० दण्ड + हि० मान (प्रत्य०)] दंड पाने योग्य ।
सजा के लायक । दंडनीय । उ०—अदंडमान दीन एवं दंडमान भेदवै ।—केशव (शब्द०) ।

दंडमानव—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमानव] वह जिसे दंड देने की अधिक आवश्यकता पड़ती हो । बालक । लड़का ।

दंडमुख—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमुख] सेनानायक । सेनापति [को०] ।

दंडमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डमुद्रा] १. तंत्र की एक मुद्रा जिसमें
मुट्ठी बाँधकर बीच की उँगला ऊपर की खड़ी करते हैं । २.
साधुओं के दो चिह्न दंड और मुद्रा ।

दंडयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डयात्रा] सेना की चढ़ाई । २.
दिग्विजय के लिये प्रस्थान । ३. बरयात्रा । बारात ।

दंडयाम—संज्ञा पुं० [सं० दण्डयाम] १. यम । २. दिन । ३.
अगस्त्य मुनि ।

दंडरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डरी] एक प्रकार की ककड़ी । डंगरी फल ।

दंडवत्—संज्ञा पुं० । स्त्री० [सं० दण्डवत्] साष्टांग प्रणाम । पृथ्वी
पर गेटकर किया हुआ नमस्कार ।

दंडवत्^७—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्' । उ०—मुनि
कहैं राम दंडवत् कीन्हा । आशिरवाद बिप्र वर दीन्हा ।—
तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—पूरब में इस शब्द को पुल्लिङ्ग बोलते हैं पर दिल्ली की
ओर यह शब्द स्त्रीलिङ्ग बोला जाता है ।

दंडवध—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवध] प्राणदंड । फाँसी की सजा ।

दंडवासी—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवासीन्] १. द्वारपाल । दरवान । २.
गाँव का हाकिम या मुखिया ।

दंडवाही—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवाहिन्] राजा की ओर से नगररक्षा
विभाग का व्यक्ति । पुलिस का कर्मचारी [को०] ।

दंडविकल्प—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविकल्प] निर्धारित दो प्रकार के
दंड (जुर्माना या सजा) में से किसी एक को चुन लेने की
सूट [को०] ।

दंडविधान—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविधान] दे० 'दंडविधि' ।

दंडविधि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डविधि] अपराधों के दंड से संबंध
रखनेवाला नियम या व्यवस्था । जुर्म और सजा का कानून ।

दंडविष्कम्भ—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविष्कम्भ] वह खंभा जिसमें दही
दूध मथने की रस्मी बाँधी जाय [को०] ।

दंडवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवृक्ष] 'धूहर । सेंदुड़ ।

दंडव्यूह—संज्ञा पुं० [सं० दण्डव्यूह] १. सेना की डंडे के आकार की
स्थिति ।

विशेष—इस व्यूह में आगे अलाव्यक्ष, बीच में राजा, पीछे
सेनापति, दोनों ओर से हाथी, हाथियों की बगल में घोड़े और
घोड़ों की बगल में पैदल सिपाही रहते थे । मनुस्मृति में इस
व्यूह का उल्लेख है । अग्निपुराण में इसके सर्वतोवृत्ति,
तिर्यग्वृत्ति आदि अनेक भेद बतलाए गए हैं ।

२. कीटिल्य के अनुसार पक्ष, कक्ष तथा उरस्य में सेना की
समान स्थिति ।

दंडशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + शास्त्र] दंड देने का विधान या
कानून [को०] ।

दंडसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डमग्धि] कीटिल्य के अनुसार वह
संधि जो सेना या लड़ाई का सामान लेकर की जाय । अपने
से कम शक्ति या बलवाले राजा से धन लेकर की जानेवाली
संधि ।

दंडस्थान—संज्ञा पुं० [सं० दण्डस्थान] १. वह स्थान जहाँ दंड
पढ़ाया जा सकता है ।

विशेष—मनु ने दंड के लिये दस स्थान बतलाए हैं—(१) उपस्थ,
(२) उदर, (३) जिह्वा, (४) दोनों हाथ, (५) दोनों पैर,
(६) भ्रूज, (७) नाक, (८) कान, (९) घन और (१०)
देह । अपराध के अनुसार राजा नाक, कान आदि काट सकता
है या घन हरण कर सकता है ।

२. कीटिल्य के मत से वह जनपद या राष्ट्र जिसका शासन केंद्र
द्वारा होता हो ।

दंडहस्त—संज्ञा पुं० [सं० दण्डहस्त] १. तार का फून । २. द्वार-
रक्षक । द्वारपाल [को०] । ३. यमराज [को०] ।

दंडा—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] दे० 'डंडा' ।

दंडाकरण^७—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य] दे० 'दंडकारण्य' ।

उ०—परे पाद बन परबत माहीं । दंडाकरन बीक बन बाहीं ।
—जायसी (शब्द०) ।

दंडाक्ष—संज्ञा पु० [सं० दण्डाक्ष] महाभारत के अनुसार ब्या नदी के किनारे का एक तीर्थ ।

दंडाक्ष्य—संज्ञा पु० [सं० दण्डाक्ष्य] बृहत्संहिता के अनुसार वह भवन जिसके दो पार्श्वों में से एक उत्तर और दूसरा पूर्व की ओर हो ।

दंडाजिन—संज्ञा पु० [सं० दण्डाजिन] १. साधु संन्यासियों के धारण करने का दंड और मृगधर्म । २. झूठमूठ का घाईबर । बोखेबाजी का डकोसला । कपटवेश ।

दंडादंडि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डादण्डि] डंडों की मारपीट । लठ्ठबाजी । लाठी की लड़ाई ।

दंडाधिप—संज्ञा पु० [सं० दण्ड + अधिप] दंड देने का प्रमुख अधिकारी (को०) ।

दंडाध्यक्ष—संज्ञा पु० [सं० दण्ड + अध्यक्ष] दंडाधिकारी । न्यायाधीश । उ०—दंडाध्यक्ष या प्राचीन न्यायकारणिक का उल्लेख नहीं मिलता ।—पू० म० भा०, पृ० १०८ ।

दंडानीक—संज्ञा पु० [सं० दण्ड + घनीक] सेना की टुकड़ी या विभाग (को०) ।

दंडापतानक—संज्ञा पु० [सं० दण्ड + पतानक] एक प्रकार की वातव्याधि जिसमें कफ और वात के विगड़ने से अनुष्य का शरीर सूखे काष्ठ की तरह जड़ हो जाता है । उ०—देह को दंड के समान तिरछा कर दे यह दंडापतानक कष्ट साध्य है । माधव०, पृ० १३८ ।

दंडापूपन्याय—संज्ञा पु० [सं० दण्ड + अपूपन्याय] एक प्रकार का न्याय या दण्डित कथन जिसके द्वारा यह सूचित किया जाता है कि जब किसी के द्वारा कोई बहुत कठिन कार्य हो गया तब उसके साथ ही लगा हुआ सहज और सुलभ कार्य अवश्य ही हुआ होगा । जैसे, यदि डंडे में बंधा हुआ अपूप भयान् मालपुत्रा कहीं रखा हो और पीछे मालूम हो कि डंडे को बूढ़े ला गए तो यह अवश्य ही समझ लेना चाहिए कि बूढ़े मालपुत्र को पहले ही ला गए होंगे ।

दंडायमान—वि० [सं० दण्डायमान] डंडे की तरह सीधा खड़ा । खड़ा । उ०—यह कीतुक देखने के उपरांत विष्णु महाराज देवी की स्तुति करने को दंडायमान हुए । हे महामाया ! सम्बिदानंदकपिणी । मैं तुमको नमस्कार करता हूँ ।—कबीर मं० पृ० २१४ ।

क्रि० प्र०—होना ।

दंडार—संज्ञा पु० [सं० दण्डार] १. अनुष । २. मदगल हाथी । ३. नाव । ४. स्पंदन । ५. कुम्हार का चाक (को०) ।

दंडार्ह—संज्ञा पु० [सं० दण्डार्ह] दंड देने योग्य । दंडपाणी । दंड पाने योग्य (को०) ।

दंडालय—संज्ञा पु० [सं० दण्डालय] १. न्यायालय जहाँ से दंड का विचार हो । २. वह स्थान जहाँ दंड दिया जाय । जैसे, जेल-

खाना । ३. एक छंद जिसे दंडकला भी कहते हैं । इ० 'दंडकला' ।

दंडाससिका—संज्ञा पु० [सं० दण्ड + अससिका] हुआ । कालरा (को०) ।
दंडावतानक—संज्ञा पु० [सं० दण्ड + अवतानक] इ० 'दंडापतानक' (को०) ।

दंडाहत्—वि० [सं० दण्डाहत्] डंडे से मारा हुआ ।

दंडाहत—संज्ञा पु० छाछ । मट्ठा ।

दंडिक—संज्ञा पु० [सं० दण्डिक] १. नगररक्षक कर्मचारी । २. दंडबर । छड़ी बरदार । ३. एक प्रकार का मत्स्य (को०) ।

दंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डिका] १. बीस प्रसरों की एक वर्गवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में एक रंगण के उपरांत एक जगण, इस प्रकार गणों का जोड़ा तीस बार आता है और अंत में गुरु लघु होता है । इसे दण्ड और गड़का भी कहते हैं । जैसे,—रोज रोज राजगैब तें लिए गुपाल ग्वाल तीन सात । बायु खेवनार्थ प्रातः बाग जात प्राब ले सुफूल पात । २. घटिका । छड़ी (को०) । ३. कतार । पंक्ति (को०) । ४. रज्जु । डोरी (को०) । ५. मोटी की लर, द्वार आदि (को०) ।

दंडित—वि० पु० [सं० दण्डित] दंड पाया हुआ । जिसे दंड मिला हो । सजायापता । २. जिसका शासन किया गया हो । शासित । उ०—पंडित गण मंडित गुण दंडित मनि देखिए ।—केशव (शब्द०) ।

दंडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डिनी] दंडोरपला । एक प्रकार का साग ।

दंडिमुंड—संज्ञा पु० [सं० दण्डिमुण्ड] शिव का एक नाम (को०) ।

दंडी—संज्ञा पु० [सं० दण्डिन्] १. दंड धारण करनेवाला व्यक्ति । २. यमराज । ३. राजा । ४. द्वारपाल । ५. वह संन्यासी जो दंड और कमंडलु धारण करे ।

विशेष—ब्राह्मण के अतिरिक्त और किसी को दंडी होने का अधिकार नहीं है । यद्यपि पिता, माता, स्त्री, पुत्र आदि के रहते भी दंड लेने का निषेध है, तथापि लोग ऐसा करते हैं । मंत्र देने के पहले गुरु शिष्य होनेवाले के सब संस्कार (अन्न-प्राशन आदि) फिर से करते हैं । उसकी शिक्षा मुँड़ दी जाती है और अनेक उतारकर भस्म कर दिया जाता है । पहना नाम भी बदल दिया जाता है । इसके उपरांत दशाक्षर मंत्र देकर गुरु गेरुवा वस्त्र और दंड कमंडलु देते हैं । इन सबको गुरु के प्राप्त कर शिष्य दंडी हो जाता है और जीवनपर्यंत कुछ नियमों का पालन करता है । दंडी लोग गेरुवा वस्त्र पहनते हैं, सिर मुड़ाए रहते हैं और कभी कभी भस्म और रुद्राक्ष भी धारण करते हैं । दंडी लोग अग्नि और वातु का स्पर्श नहीं करते, इससे अपने हाथ के रसोई नहीं बना सकते । किसी ब्राह्मण के घर से पका भोजन माँगकर खा सकते हैं । दंडियों के लिये दो बार भोजन करने का निषेध है । इन सब नियमों का बारह वर्ष तक पालन करके अंत में दंड को जल में फेंककर दंडी परमहंस आश्रम को प्राप्त करता है । दंडियों के लिये विष्णु हनु की उपासना की व्यवस्था है । जिससे यह उपासना न हो सके वे शिव आदि की उपासना

कर सकते हैं। मरने पर दंडियों के सब का बाह नहीं होता, या तो सब मिट्टी में गाड़ दिया जाता है या नदी में फेंक दिया जाता है। काशी में बहुत से दंडी दिखाई पड़ते हैं।

६. सूर्य के एक पार्श्वचर का नाम। ७. जिन देव। ८. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ९. दमनक वृक्ष। दोने का पोषा। १०. मंजुश्री। ११. शिव। महादेव। १२. नाविक। केवट (को०)। १३. संस्कृत के प्रसिद्ध कवि जिनके बनाए हुए दो ग्रंथ मिलते हैं 'दशकुमारचरित' और 'काव्यादर्श'। ऐसा प्रसिद्ध है कि दंडी ने तीन ग्रंथ लिखे थे दशकुमारचरित (गद्यकाव्य), काव्यादर्श (लक्षण ग्रंथ) और अर्वाचिमुंदरी कथा, पर तीसरे का पता बहुत दिनों तक नहीं लगा था। इधर उक्त ग्रंथ प्राप्त हो गया है और प्रकाशित भी है। अनेक लोगों का मत है कि ईसा की छठी शताब्दी में दंडी हुए थे। 'शंकर-दिग्विजय' में 'बाणमयूरदंडि मुक्यान्' से ज्ञात होता है कि ये बाण और मयूर के समकालीन थे। इतना तो निश्चय है कि ये कालिदास और शुद्धक आदि के पीछे के हैं। इनकी वाच्य-रचना आश्चर्यपूर्ण है।

दंडोत^५—संज्ञा की० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—बंवन सबही सुरन की बिधि हू को दंडोत। कर्मन की फल देतु हैं इनकी कहा उदोत।—अज० प्र०, पृ० ७२।

दंडोत्पल—संज्ञा पु० [सं० दण्डोत्पल] एक पोषे का नाम जिसे कुछ लोग गुमा, कुछ लोग कुकरोबा और कुछ लोग बड़ी सहदेया समझते हैं।

दंडोत्पला—संज्ञा की० [सं० दण्डोत्पला] दे० 'दंडोत्पल'।

दंडोपनत—वि० [सं० दण्ड + उपनत] कोटिल्य के अनुसार पराजित और अधीन (राजा)।

दंडोत^५—संज्ञा की० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—सनमुख मंजुलि जाइ करी दंडोत सबन कहूँ। कुसुमंजलि सिर मंडि रूप नैवेद समुह सहूँ।—पृ० रा०, ६।५८।

दंड्य—वि० [सं० दण्ड्य] दंड पाने योग्य। जिसे दंड देना उचित हो।

दंत—संज्ञा पु० [सं० दन्त] १. दाँत। उ०—दंत कषाडघा नहूँ रंग्या। चाखउ सखी होखी खेलबा जाई।—बी० रासो, पृ० ६८।

यौ०—दंतकथा। दंत चिकित्सक = दाँत की चिकित्सा करने-वाला। दंतचिकित्सा = दाँत का इलाज।

२. ३२ की संख्या। ३. गाँव के हिस्सों में बहुत ही छोटा हिस्सा जो पाई से भी बहुत कम होता है। (कोड़ियों में दाँत के चिह्न होते हैं इसी से यह संख्या बनी है)। ४. कुंज। ५. पहाड़ की चोटी। ६. बाण का सिरा या नोक (को०)। ७. हाथी का दाँत (को०)।

यौ०—दंतकार।

दंतक—संज्ञा पु० [सं० दन्तक] १. दाँत। २. पहाड़ की चोटी। ३. पहाड़ से निकलनेवाला एक प्रकार का पत्थर। ४. बीवाल में लगी हुई खूँटी (को०)।

दंतकथा—संज्ञा की० [सं० दन्तकथा] ऐसी बात जिसे बहुत दिनों से

जोग एक दूसरे से सुनते बचे आए हों; तथा जिसका कोई और पुष्ट प्रमाण न हो। सुनी सुनाई बात। अनुभूति। उ०—इति वेद वदंति न दंतकथा। रवि आतप भिन्न न चिन्म यया।—तुलसी (शब्द०)।

दंतकर्षण—संज्ञा पु० [सं० दन्तकर्षण] बंभीरी नीबू।

दंतकार—संज्ञा पु० [सं० दन्तकार] १. वह व्यक्ति जो हाथीदाँत का काम करता हो। २. दाँत बनानेवाला चिलरी। दंत चिकित्सक डाक्टर।

दंतकाष्ठ—संज्ञा पु० [सं० दन्तकाष्ठ] दंतुवन। दंतून। मुहारी।

दंतकाष्ठक—संज्ञा पु० [सं० दन्तकाष्ठक] आहूत्य वृक्ष। तरवट का पेड़।

दंतकुली—संज्ञा की० [सं० दन्त + कुल (= समुदाय)] दाँतों की पंक्ति। उ०—दंतकुली मंगुली करी कोपरी कपाली। बीच छेत बिरहरी, फरी बिहरी किरमाली।—रा० क०, पृ० २५१।

दंतकूर—संज्ञा पु० [सं० दन्तकूर] युद्ध। संग्राम।

दंतक्षत—संज्ञा पु० [सं० दन्तक्षत] कामशास्त्र के अनुसार कामकेलि में नायक नायिका द्वारा प्रेमोन्माद में एक दूसरे के अक्षर और कपोल में लगा हुआ दाँत काटने का चिह्न। दाँत काटने का निशान (को०)।

दंतचर्च—संज्ञा पु० [सं० दन्तचर्च] दाँत पर दाँत बजाकर बिसने की क्रिया। दाँत किरकिराना।

विशेष—निद्रा की अवस्था में बच्चे कभी कभी दाँत किरकिराते हैं जिसे जोग अशुभ समझते हैं। रोगी के पक्ष में यह और भी बुरा समझा जाता है।

दंतघात—संज्ञा पु० [सं० दन्तघात] दे० 'दंताघात'।

दंतच्छद—संज्ञा पु० [सं० दन्तच्छद] मोठ। घोंठ।

दंतच्छदोपमा—संज्ञा की० [सं० दन्तच्छदोपमा] बिबाफल। कुंदक।

दंतक्षत^५—संज्ञा पु० [सं० दन्तक्षत] दे० 'दंतक्षत'।

दंतच्छद^५—संज्ञा पु० [सं० दन्तच्छद] दंतच्छद।

दंतच्छद^२—संज्ञा पु० [सं० दन्तक्षत] दे० 'दंतक्षत'।

दंतजात—वि० [सं० दन्तजात] १. (बच्चा) जिसे दाँत निकल आए हों। २. दाँत निकलने योग्य (काल)।

विशेष—गर्भोपनिषद् में लिखा है कि बच्चे को सातवें महीने में दाँत निकलना चाहिए। यदि उस समय दाँत न निकलें तो अशोच लगता है।

दंतजाह—संज्ञा पु० [सं० दन्तजाह] दाँतों की लड़ (को०)।

दंतताल—संज्ञा पु० [सं० दन्तताल] एक प्रकार का प्राचीन बाजा जिससे ताल दिया जाता है।

दंतदर्शन—संज्ञा पु० [सं० दन्तदर्शन] क्रोध या बिड़बिड़ाहट में दाँत निकालने की क्रिया।

विशेष—महाभारत (वन पर्व) में लिखा है कि युद्ध में पहले दाँत दिखाए जाते हैं फिर शब्द करके वार किया जाता है।

दंतधावन—संज्ञा पु० [सं० दन्तधावन] दे० 'दंतधावन' (को०)।

दंतधावन—संज्ञा पु० [सं० दन्तधावन] १. दाँत धोने या साफ करने

का काम । दातुन करने की क्रिया । २. दंतौन । दातुन । ३. सिर का पेड़ । दादिर बुल । ४. करज का पेड़ । ५. मौलसिरी ।

दंतपत्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपत्र] कान का एक गहना ।

विशेष—संभवतः जो हाथी दाँत का बनता रहा हो ।

दंतपत्रक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपत्रक] १. कुंठ पुष्प । २. कान का एक आभूषण । दंतपत्र (को०) ।

दंतपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपत्रिका] १. कान का एक आभूषण । २. कुंठ का पुष्प । ३. कंघी (को०) ।

दंतपवन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपवन] दाँत शुद्ध करने की क्रिया । दंतप्रावन । २. दंतुवन । दातन ।

दंतपांचालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपाञ्चालिका] हाथीदाँत की बनी पुतली (को०) ।

दंतपात—संज्ञा पुं० [वि० दन्तपात] दाँतों का गिरना (को०) ।

दंतपार—संज्ञा स्त्री० [हि० दंत + उपारना] दाँत की पीड़ा । दाँत का दर्द ।

दंतपालि—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपालि] तलवार की मूठ । तलवार का कांजा या दस्ता (को०) ।

दंतपाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपाली] दाँत की जड़ । मसूड़ा (को०) ।

दंतपुष्ट—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपुष्ट] मसूड़ों का एक रोग, जिसमें वे सूज जाते हैं और दर्द करते हैं ।

दंतपुर—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपुर] प्राचीन कलिंग राज्य का एक नगर जहाँ पर राजा ब्रह्मदत्ता ने बुद्धदेव का एक दंत स्थापित करके उसके ऊपर एक बड़ा मंदिर बनवाया था ।

विशेष—यह दंतपुर कहाँ था, इसके संबंध में मतभेद है । डाक्टर राजेंद्रलाल का मत है कि मेदिनीपुर जिले में जलेश्वर से छह कोस दक्षिण जो दाँतन नामक स्थान है वही बोद्धों का प्राचीन दंतपुर है । सिंहली बोद्धों के 'दाठावंश' नामक ग्रंथ में दंतपुर के संबंध में बहुत सा वृत्तांत दिया हुआ है ।

दंतपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपुष्प] १. कतक । निर्मली । २. कुंठ का फूल ।

दंतप्रक्षालन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तप्रक्षालन] दे० 'दंतपवन' (को०) ।

दंतप्रवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं० दन्तप्रवेष्ट] हाथी के दाँत का आवरण (को०) ।

दंतफल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तफल] १. कतक फल । निर्मली । २. कपिश । कैथ ।

दंतफला—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तफला] विप्वली ।

दंतबीज—संज्ञा पुं० [सं० दन्तबीज] वह जिसके बीज दाँत के सद्यः हों । दाड़िम । अनार (को०) ।

दंतबीजक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तबीजक] दे० 'दंतबीज' (को०) ।

दंतभाग—संज्ञा पुं० [सं० दन्तभाग] १. हाथी के सिर का वह अग्र भाग जहाँ से उसके दाँत निकलते हैं । २. दाँतों का हिस्सा (को०) ।

दंतमध्य—संज्ञा पुं० [सं० दन्तमध्य] दे० 'दंतान्तर' (को०) ।

दंतमांस—संज्ञा पुं० [सं० दन्तमांस] मसूड़ा ।

दंतमूल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तमूल] १. दाँत की जड़ । २. दाँत का एक रोग ।

दंतमूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तमूलिका] दाँती बुल । जमालगोटे का पेड़ ।

दंतमूलीय—वि० [सं० दन्तमूलीय] दंतमूल से उद्धारण किया जावे-वाला (वर्ण) । जैसे, तवर्ण ।

विशेष—व्याकरण के अनुसार स्वर वर्ण लू और ल, य, द, ध, न तथा ल और स व्यंजन दंतमूलीय कहे जाते हैं ।

दंतलेखक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तलेखक] दाँतों को रंगने का व्यवसाय करके अपनी जीविका अर्जित करनेवाला व्यक्ति (को०) ।

दंतलेखन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तलेखन] एक प्रस्न जिससे दाँत की जड़ के पास मसूड़ों को चीरकर मवाद आदि निकालते हैं जिससे दाँत की पीड़ा दूर होती है । दंतशर्करा नामक रोग में इस प्रस्न का प्रयोग होता है ।

दंतवक्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवक्र] कर्ष देश का राजा, जो बुद्धशर्मा का पुत्र था । यह शिशुपाल का भाई लगता था और श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया था ।

दंतवर्ण—वि० [सं० दन्तवर्ण] जमकदार । घोपदार ।

दंतवल्क—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवल्क] दाँत की जड़ के ऊपर का मांस । मसूड़ा ।

दंतवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवस्त्र] घोष्ठ । श्रोत ।

दंतबीज—संज्ञा पुं० [सं० दन्तबीज] अनार ।

दंतबीणा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तबीणा] १. बाद्यविशेष । एक प्रकार का बाजा । २. (शीतादि के कारण) दाँतों का बजना (को०) ।

यौ०—दंतबीणोपवेशाचार्य = शीत या ठंडक जिसके कारण दाँत बजने लगते हैं ।

दंतवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवेष्ट] १. हाथी के दाँत के ऊपर का मढ़ा हुआ छत्ता । २. मसूड़ा । ३. दाँतों में होनेवाला एक रोग (को०) ।

दंतवैदर्भ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवैदर्भ] दाँत का एक रोग । किसी बाहरी आघात से दाँत का हिलना या टूटना ।

दंतशंकु—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशंकु] चीर काढ़ का एक घोजार जो जो के पत्तों के प्रकार का होता था (सुश्रुत) । दाँत को उखाड़ने का यंत्र ।

दंतशठ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशठ] १. वे वृक्ष जिनके फल खाने से खटाई के कारण दाँत गुठले हो जायें । जैसे, कैथ, कमरल, छोटी नारंगी, जंभीरी नीबू, इत्यादि । २. खट्टापन । खटाई ।

दंतशठा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तशठा] खट्टी नोनिया । प्रमलोनी । २. चुक । चूक ।

दंतशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तशर्करा] दाँतों का एक रोग जो मेल जमकर बैठ जाने के कारण होता है ।

दंतशाण—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशाण] मिस्सी । स्थियों के दाँत पर लगाने का रंगीन मंजन ।

दंतशूल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशूल] दाँत की पीड़ा ।

दंतशोफ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशोफ] दाँत के मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा । दंताबुध ।

दंतशिशु—वि० [सं० दन्तशिशु] दाँतों में उलझा या बिपका हुआ [को०] ।

दंतहर्ष—संज्ञा पुं० [सं० दन्तहर्ष] दाँतों की वह टीस जो अधिक ठंडी या खट्टी वस्तु खाने से होती है । दाँतों का खट्टा होना ।

दंतहर्षक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तहर्षक] जंभीरी नीबू ।

दंतहीन—वि० [सं० दन्तहीन] बिना दाँत का । जिसके मुँह में दाँत न हो [को०] ।

दंतांतर—संज्ञा पुं० [सं० दन्त + अन्तर] दाँतों के बीच का अंतर या स्थान [को०] ।

दंताघात—संज्ञा पुं० [सं० दन्ताघात] १. दाँत का आघात । २. वह जिससे दाँत को आघात पहुँचे—नीबू ।

दंताज—संज्ञा पुं० [सं० दन्ताज] १. दाँत की जड़ या संधि में पड़ने-वाले कीड़े । २. दाँत का रोग जो इन कीड़ों के कारण होता है ।

दंतादंति—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तादन्ति] एक दूसरे को दाँत से काटने की क्रिया या लड़ाई ।

दंतायुध—संज्ञा पुं० [सं० दन्तायुध] वह जिसका अस्त्र दाँत हो । सूअर । जंगली सूअर ।

दंतार—वि० [हि० दाँत + आर (प्रत्य०)] बड़े दाँतोंवाला ।

दंतार—संज्ञा पुं० हाथी ।

दंतारा—वि०, संज्ञा पुं० [हि० दंतार] दे० 'दंतार' ।

दंताबुध—संज्ञा पुं० [सं० दन्ताबुध] मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा ।

दंताल—संज्ञा पुं० [हि० दन्तार] हाथी ।

दंतालय—संज्ञा पुं० [सं० दन्ता + आलय] मुख । मुँह [को०] ।

दंतालि—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तालि] दाँतों की पंक्ति । दाँतों की पाँत [को०] ।

दंतालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तालिका] लगाम ।

दंताली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्ताली] लगाम ।

दंतावल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तावल] हाथी ।

दंतावली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त + अवली] दाँतों की पंक्ति । 'दंतालि' [को०] ।

दंताहल^५—संज्ञा पुं० [सं० दन्ताहल] हाथी ।—(हि०) ।

दंति—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिन्] हाथी । उ०—सदा दंति के कुंभ को जो बिचारे ।—भारतेंदु शं०, भा० १, पृ० १४२ ।

दंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तिका] दंती । जमालगोटा ।

दंतिजा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तिजा] दंती बूझ । दंती [को०] ।

दंतिदंत—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिदन्त] हाथीदाँत ।

दंतीबीज—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिबीज] जमालगोटा ।

दंतिमद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिमद] हाथी का मद । हाथी के गंड-स्थल का जाब [को०] ।

दंतियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० दाँत + इया (प्रत्य०)] छोटे छोटे दाँत । दंतिलकत्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिलकत्र] हाथी की तरह मुखावाले-गजामन । गणेश [को०] ।

दंती—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्ती] अंडे की जाति का एक पेड़ ।

विशेष—दंती दो प्रकार की होती है—एक लघुदंती और दूसरी बृहदंती । लघुदंती के पत्ते गूलर के पत्तों के ऐसे होते हैं और बृहदंती के एरंड या अंडी के से । इसके बीच बस्तावर होते हैं और जमालगोटे के स्थान पर ओषध में काम आते हैं । वैद्यक में दंती, कटु, उष्ण और तुषा, शूल, बवासीर, फोड़े आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है । दंती के बीच अधिक मात्रा में देने से बिष का काम करते हैं ।

पर्या०—शीघ्रा । निकुंभी । नागस्फोट । दंतिनी । उपषिस्ता । भद्रा । रक्षा । रेवती । अनुकूला । निःशल्या । विशल्या । मधुपुष्पा । एरंडफला । तरुणी । एरंडपत्रिका । बिसोधनी । कुंभी । उदुंबरदला । प्रत्यक्षपर्णी ।

दंती^२—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिन्] १. हस्ती । हाथी । गज । उ०—
झलते ये श्रुति तालवृत्त दंती रह रहकर ।—साकेत, पृ० ४१४ । २. गणेश । गजामन । ३. पर्वत । ४. सोम । चंद्रमा [को०] । ५. व्याघ्र । मृगाधिप [को०] । ६. कोइ । अंकोर । गोद [को०] । ७. श्वान । कुत्ता [को०] ।

दंती^३—वि० दाँतवाला । जिसके दाँत हों [को०] ।

दंतुर^१—वि० [सं० दन्तुर] जिसके दाँत प्रागे निकले हों । दंतुला । दाँतु । २. ऊबड़ खाबड़ । नीचा ऊँचा [को०] । ३. खुला हुआ । आवरणरहित [को०] ।

दंतुर^२—संज्ञा पुं० १. हाथी । २. सूअर ।

दंतुरच्छद—संज्ञा पुं० [दन्तुरच्छद] जंभीरी नीबू । बिजौरा नीबू ।

दंतुरित—वि० [सं० दन्तुरित] १. आवेष्टित । ढका हुआ । २. 'दंतुर' [को०] ।

दंतुल—वि० [सं० दन्तुल] २. 'दंतुर' [को०] ।

दंतोलूखलिक—संज्ञा पुं० [सं० दन्त + उलूखलिक] एक प्रकार के संन्यासी जो ओखली आदि में कूटा हुआ अन्न नहीं खाते । ये या तो फल खाते हैं या छिलके सहित अनाज के दानों को दाँत के नीचे कुचलकर खाते हैं ।

दंतोलूखली—संज्ञा पुं० [सं० दन्त + उलूखलिन्] २. 'दंतोलूखलिक' ।

दंतोष्ठय—वि० [सं०] (वर्ण) जिसका उच्चारण दाँत और ओठ से हो ।

विशेष—ऐसा वर्ण 'व' है ।

दंत्य—वि० [सं० दन्त्य] १. दाँत संबंधी । २. (वर्ण) जिसका उच्चारण दाँत की सहायता से हो । जैसे, तवर्ण । ३. दाँतों का हितकारी (ओषध) ।

दंद्^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन, दन्द्दहमान्] किसी पदार्थ से निकलती हुई गरमी, वैसी तपी हुई भूमि पर मेघ का पानी पड़ने से निकलती है या खानों के भीतर पाई जाती है ।

क्रि० प्र०—आना ।—निकलना ।

दं—संज्ञा पुं० [सं० दन्ध प्रा० दं] १. लड़ाई भगड़ा। उपद्रव। हलचल। २. युद्ध। संघर्ष। संग्राम। उ०—भाज हनो जैचंद दंघ ज्यों मिटै ततखिन।—पु० रा० ६१। १४६। ३. हल्ला गुल्ला। झोरगुल। ४. दुःख। मानसिक उथल पुथल। उ०—(क) रोहिणि माता उबर प्रगट भए हुरन भक्त के दंघ।—भारतेन्दु प्र०, भा० २, पृ० ५१३। (ख) ख्यागहू संसय जम कर दंघ। सुक्ति परहि तब भवजल फंघ।—दरिया० बानी, पृ० ३।

क्रि० प्र०—घबाना।

दंघना—संज्ञा पुं० [सं० दन्ध] दे० 'दंघ'। उ०—फूले पशु पंछी सब, देखि ताप कटे तब, फूले सब ग्वाल बाल कटे दुल दंघना—नंद० प्र०, पृ० ३७६।

दंघन—वि० [सं० दघन] नाश करनेवाला। दूर करनेवाला। हनन करनेवाला।

दंघरा—संज्ञा पुं० [सं० दन्धरा] दाँत। दंत [को०]।

दंघशूक—संज्ञा पुं० [सं० दघशूक] १. सर्प। २. राक्षस विशेष। ३. कीट। कीड़ा (को०)। ४. एक प्रकार का नरक।

दंघशूक—वि० हिंसक। काटनेवाला [को०]।

दंघहर—वि० [सं० दन्धहर] दंघ को दूर करनेवाला। मानसिक शांति पहुँचानेवाला। उ०—परसति मंद सुगंध दंघहर विपिन विपिन में।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ६।

दंघहमान—वि० [सं० दन्धहमान] दहकता हुआ।

दंघा—संज्ञा पुं० [देश०] ताल देने का एक प्रकार का पुराना बाजा।

दंघान—संज्ञा पुं० [फ्रा०] दाँत [को०]।

यो०—दंघानसाज = दंतचक्रितसक। दाँत बनानेवाला।

दंघाना—क्रि० प्र० [हि० दंघ] १. गरम लगना। गरमी पहुँचाना हुआ मायूम होना। जैसे, रुई का दंघाना, बंद कोठरी का दंघाना। २. किसी गरम चीज के पासपास होने से गरम होना। जैसे, रखाई या कंबल के नीचे दंघाना।

दंघाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० दंघानह] [वि० दंघानेदार] दाँत के आकार की उभरी हुई वस्तुओं की पंक्ति। शंकु या कंगूरे के रूप में निकली हुई चीजों की कतार, जैसी कंधी या घारे घाबि में होती है।

दंघानेदार—वि० [फ्रा०] जिसमें दंघाने हों। जिसमें दाँत की तरह निकले हुए कंगूरों की पंक्ति हो।

दंघाल—संज्ञा पुं० [हि० दंघ + आक (प्रत्य०)] छाला। फफोला।

दंघी—वि० [सं० दन्धी, हि० दंघ] भगड़ाव। उपद्रवी। बखेड़ा करनेवाला। हुज्जती। उ०—कलियुग मधे जुग चारि रबीला चूकिला चार बिचार। धरि धरि दबी धरि धरि बादी धरि धरि कथणहार।—घोरल०, पृ० १२३।

दंघु—संज्ञा पुं० [सं० दन्ध] दे० 'दंघ'। उ०—प्रब हो कंठ फाँव गिब कीन्हा। दंघु के फाँव बाहु का कीन्हा।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १७०।

दंघुली—वि० [सं० तुन्दिल] दे० 'तुन्दिल'। उ०—विद्यावरी दंघुल

पेट उसपर साँप की सपेट। बिचन करत है सपेट पकड़ केट काम की।—दक्खिनी०, पृ० ४४।

दंपत—संज्ञा पुं० [सं० दम्पती] दे० 'दंपति'। उ०—छाँड़त ना पल एकी प्रकेले, न पीड़त है परजंक पै दंपत।—मट०, पृ० ३४।

दंपति—संज्ञा पुं० [सं० दम्पती] दे० 'दंपती'।

दंपती—संज्ञा पुं० [सं० दम्पती] स्त्री पुरुष का जोड़ा। पति पत्नी का जोड़ा।

दंपा—संज्ञा स्त्री० [हि० दम्पकना] बिजली। उ०—चोयते चकोर चहूँ धोर जानि चंदमुखी जो न होती डरनि वसन दुति दंपा की।—पूरबी (शब्द०)।

दंभ—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ] [वि० दंभी] १. महत्त्व दिखाने या प्रयोजन सिद्ध करने के लिये झूठा आडंबर। बोखे में डालने के लिये ऊपरी दिखावट। पाखंड। उ०—प्रासन मार दंभ धर बैठे मन में बहुत गुमाना।—कबीर प्र०, पृ० ३३८। २. झूठी ठसक। अभिमान। घमंड। ३. झठला। शाठ्य (को०)। ४. शिव का एक नाम (को०)। ५. इंद्र का बज्र (को०)।

दंभक—संज्ञा पुं० [सं० दम्भक] पाखंडी। ठकोसलेबाज। प्रतारक।

दंभन—संज्ञा पुं० [सं० दम्भन] पाखंड करना। ठोंग करना [को०]।

दंभान—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ का बहुव०] दे० 'दंभ'।

दंभी—वि० [सं० दम्भिन्] १. पाखंडी। आडंबर रखनेवाला। ठकोसलेबाज। २. झूठी ठसकवाला। अभिमानी। घमंडी।

दंभोक्ति—संज्ञा पुं० [सं० दम्भोक्ति] इंद्रास्त्र। वज्र। उ०—मस्त मातंग बल संग दंभोक्ति दल काछिनी लाल गजमाल सोही।—सूर (शब्द०)।

दंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह चाव जो दाँत काटने से हुआ हो। दंतक्षत। २. दाँत काटने की क्रिया। दंसन। ३. साँप या धीर किसी विषले जंतु के काटने का घाव। जैसे, सर्पदंश। ४. आक्षेपवचन। बोझार। व्यंग्य। कटुक्ति। ५. द्वेष। बैर।

क्रि० प्र०—रखना।

६. दाँत। ७. विषले जंतुओं का डंक। ८. जोड़। संघि। प्रंघि (को०)। ९. एक प्रकार की सब्जी जिसके टंक विषले होते हैं। डाँस। बगदर। उ०—मसक दंश बीते हिम आसा।—तुलसी (शब्द०)।

पर्या०—वनमक्षिका। गोमक्षिका। भमराक्षिका। पोशुर। दुष्टमुख। क्रूर।

१०. वर्म। बकतर। ११. एक असुर।

विशेष—इसकी कथा महाभारत में इस प्रकार लिखी है—सत्ययुग में दंघ नामक एक बड़ा प्रतापी असुर रहता था। एक दिन वह भृगु मुनि की पत्नी को हर ले गया। इसपर भृगु ने उसे शाप दिया कि 'तू मल मूत्र का कीड़ा हो जा'। शाप से डरकर जब असुर बहुत गिड़गिड़ाने लगा तब भृगु ने कहा—'मेरे वंश में जो राम (परशुराम) होंगे वे शाप से तुझे मुक्त करेंगे'। वह असुर शाप के अनुसार कीट हुआ।

कण्ठ जब परशुराम से प्रत्यक्षता प्राप्त कर रहे थे तब एक दिन कण्ठ के जंघे पर सिर रखकर परशुराम खो गए। ठीक उसी समय वह कीड़ा आकर कण्ठ की जीभ में काटने लगा। कण्ठ ने गुरु का विश्वास भंग होने के डर से जीभ नहीं हटाई। जब जीभ में से रक्त की धारा निकली तब परशुराम की नींव टूटी और उन्होंने उस कीड़े की ओर ताका। उनके ताकते ही उस कीड़े ने उसी रक्त के बीच अपना कीट शरीर छोड़ा और अपने पूर्व रूप में आ गया।

दंशक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो काट खाए। दाँत के काटने-वाला। २. डाँस नाम की मच्छी जो बड़े जोर से काटती है। ३. इवान। कुता (को०)। ४. मयक। मच्छक (को०)।

दंशक^२—वि० दंशन करनेवाला।

दंशन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दंशित, दंशी] १. दाँत के काटना। डसना। जैसे, सर्पदंशन। उ०—घोर पीठ पर हो दुरंत दंशनों का प्रास।—लहर, पृ० ५६।

कि० प्र०—करना।

२. बर्न। बकतर।

दंशना^३—क्रि० सं० [सं० दंश + हि० ना (प्रत्य०)] काटना। डसना।

दंशनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कीट (को०)।

दंशभीरु—संज्ञा पुं० [सं०] महिष। भैंसा।

विशेष—भैंसों को मच्छक और डाँस बहुत लगते हैं।

दंशभीरुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दंशभीरु' (को०)।

दंशमूल—संज्ञा पुं० [सं०] सर्वज्वर का पैर। शोभाजन।

दंशवदन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बगुला। बक (को०)।

दंशित—वि० [सं०] १. दाँत से काटा हुआ। २. बर्न से व्याख्यात। बकतर से टका हुआ।

दंशी^१—वि० [सं० दंशिन] [वि० स्त्री० दंशिनी] १. दाँत से काटनेवाला। डसनेवाला। २. आक्षेप करनेवाला। कटूक्ति कहनेवाला। ३. डेवो। बैर या कसर रखनेवाला।

दंशी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा दंश। छोटा डाँस।

दंशक—वि० [सं०] डंसनेवाला। डंक मारनेवाला। दंशक।

दंशेद—वि० [सं०] १. दे० 'दंशक'। २. हाविकारक (को०)।

दंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत।

दंष्ट्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मोटे दाँड। स्थूल दाँत। बाड़। चौधर। २. विष्णु नाम का पोषा जिसमें रोईदार छत्र लगते हैं। वृश्चिकाबी।

यौ०—दंष्ट्राकराज = व्यंकर दाँतोंवाला। दंष्ट्रादंठ = बाराह या शूकर का दाँत। दंष्ट्रावक्षविष। दंष्ट्रा विष। दंष्ट्राविषा।

दंष्ट्रानखविष—संज्ञा पुं० [सं०] वह अंतु जिसके बक और दाँत में विष हो। जैसे, बिल्ली, कुत्ता, बंदर, मेढक, छिपकली इत्यादि।

दंष्ट्रायुध—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका अस्त्र दाँत हो। शूकर। सुभर।

४-६८

दंष्ट्राल^१—वि० [सं०] बड़े बड़े दाँतोंवाला।

दंष्ट्राज^२—संज्ञा पुं० १. एक राजस का नाम। २. शूकर। बाराह।

दंष्ट्राविष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प। साँप (को०)।

दंष्ट्राविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तरह की मकड़ी (को०)।

दंष्ट्रास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दंष्ट्रायुध' (को०)।

दंष्ट्रिक—वि० [सं०] दंष्ट्रावाला। दंष्ट्राल (को०)।

दंष्ट्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दंष्ट्रा' (को०)।

दंष्ट्री^१—वि० [सं० दंष्ट्रिन] १. बड़े बड़े दाँतोंवाला। २. दाँतों से काटनेवाला (को०)। ३. मांसभक्षक। मांसाहारी। (को०)।

दंष्ट्री^२—संज्ञा पुं० १. सुभर। २. साँप। ३. लकड़बग्घा (को०)। ४. वह अंतु जिसके दाँत बड़े हों। बड़े दाँतोंवाला अंतु (को०)।

दंस^३—संज्ञा पुं० [सं० दंश] दे० 'दंश'।

दंडवत्^४—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—पद्मावती के बरसन आसा। दंडवत् कीन्ह मंडप चहुँ पासा।—जायसी ग्रं०, पृ० २३२।

दंसना^५—क्रि० प्र० [हि० डटना] डटना। समीप होना। सटना।

दंसिया—संज्ञा स्त्री० [सं० दंस, हि० दाँत + दया (प्रत्य०)] छोटे छोटे दाँत। दूध के दाँत। उ०—प्रसन घर पर दंसियन की जोती। जपाकुसुम मणि अनु बिबि मोती।—नंद० ग्रं०, पृ० २४६।

दंसी^६—संज्ञा पुं० [सं० दंसी] हाथी। दंती। उ०—सुदृष्टि तंतं पती, मज्जनियं दंसी।—पृ० रा०, १। ६५१।

दंतुरच्छद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तुरच्छद] बिजौरा नीबू।

दंतुरियाँ, **दंतुरी**—संज्ञा स्त्री० [हि० दाँत] बच्चों के छोटे छोटे दाँत।

दंतुला—वि० [सं० दंतुर] [वि० स्त्री० दंतुली] जिसके दाँत घाने निकलें हों। बड़े बड़े दाँतोंवाला।

दंतुली—संज्ञा स्त्री० [सं० दंत] बच्चे का छोटा दाँत। उ०—बाबू-कृष्ण के छोटे छोटे नख दूध के दाँतों के लिये दूध की दंतुली का प्रयोग कितना सुंदर है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १७२।

दंठ—संज्ञा पुं० [सं० दंठ] दूध। दधिन। दध। उ०—दंठ दाधी मालति सुनत, अति बाण्यो विहि ठाई।—हिंदी प्रेमगाथा० पृ० २१३।

दंठरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दंठ, हि० दाँत] दंठाज के सूखे डंठलों में से दाना आकृति के लिये छेदे डंठों से रोबवाने का काम।

कि० प्र०—माखना।

दंठारि^७—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दाघाग्नि'।

दंठल—संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटे आकार की गानेवाली बिड़ियाँ उ०—सबेरे सबेरे नहीं घासी भुल-बुल, न श्यामा सुरीली, न फुलकी, न देहल।—हरी वास०, पृ० ३६।

दं^८—वि० [सं०] १. उत्पन्न करनेवाला। २. देनेवाला। दाता।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार स्वतंत्र रूप से नहीं होता;

बल्कि किसी काम के अंत में जोड़ने से होता है। जैसे, सुखद (सुख देनेवाला), जलद (जल देनेवाला, जल) आदि।

द^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। पहाड़। २. दान। ३. दाता।

द^२—संज्ञा स्त्री० १. भार्या। कन्या। स्त्री। २. रक्षा। ३. खंडन।

दह^१—संज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। उ०—बहए बुलिए बुलि भमरि ककनाकर आहा दह आह की भेल।—विद्यापति, पृ० ११८।

दह^२—संज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। उ०—प्राह दहम में काह मसावा। करत नीक फलु धनइस पावा।—मानस, २।१६३।

दह^३—संज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। उ०—धीरज धरति सगुन बन रहत सो नाहिन। बर किसोर धनु धोर दहइ नहि बाहिन।—तुलसी प्र० पृ० ५४।

दह^४—वि० [हि०] दे० 'दह्यारी'।

दह^५—संज्ञा पुं० [सं० दाय] दे० 'दायजा'।

दह^६—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दिति का पुत्र। दे० 'दैत्य'। उ०—नगर अजुआ रामहि राजा। लेह दहत बाँध सब साजा।—कबीर सा०, पृ० ८०४।

दह^७—वि० [हि०] [वि० स्त्री० दह्यारी] दे० 'दह्यारी'। उ०—(क) दूध दही नहि लेव री कहि कहि पचिहारी। कहति सूर कोऊ बर नाही कह्यो गई दह्यारी।—सूर (शब्द०)। (ख) प्राखु भरव हित दुष्ट मंजारी। मो परि उचरि चरी दह्यारी।—नंद० प्र०, पृ० १४८।

दह^८—संज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। (स्त्रियों की बोलचाल में आश्रय एवं खेद आदि का व्यंजक)। उ०—भोर के आए दोऊ भइया। कीमो नहिन कलेऊ दहया।—नंद० प्र०, पृ० २५५।

दह^९—संज्ञा पुं० [सं० देव, प्रा० दहव] दे० 'देव'। उ०—बेरि एक दहव दहिन जलो होए, निरधन धन जके बरब मोजे गोए।—विद्यापति, पृ० ३५४।

दई—संज्ञा पुं० [सं० देव] १. ईश्वर। विधाता। उ०—गई करि जाहु दई के निहोरे।—दास (शब्द०)।

यौ०—दईमारा।

मुहा०—दई का घाला = ईश्वर का मारा हुआ। अभाग। कम-बलत। उ०—जननी कहति, दई की घाली। काहे को हस-राती।—सूर (शब्द०)। दई का मारा = दे० 'दईमारा'। दई दई = हे देव! हे देव। रक्षा के लिये ईश्वर की पुकार। उ०—(क) दई दई घालसी पुकारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) वीरध साँस न लेहि दुख, सुख सोईहि न भूल। दई दई क्यों करत है, दई दई सो कबूल।—बिहारी (शब्द०)।

२. देव संयोग। अष्ट। प्रारम्भ।

दईआर, दईजारा—वि० [हि०] [वि० स्त्री० दईजारी] अभाग। दईमारा। (स्त्रियाँ)।

दईव^१—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दे० 'दैत्य'। उ०—कीन्हैस राकस भूत परीता। कीन्हैस भोकस देव दईता।—जायसी (शब्द०)।

दईमारा—वि० [हि० दई + मारना] [वि० स्त्री० दईमारी] का मारा हुआ। जिसपर ईश्वर का कोप हो। अमंदाग्य। कमबलत। उ०—फीहा फीहा करी या दईमारे को।—श्रीपति (शब्द०)।

दईमारो^१—वि० [हि०] दे० 'दईमारा'।

दउ^१—वि० [सं० दधि + दध] दे० 'डेढ़'। उ०—दउक व मारुकी, निहूँ बरसोरिउ कंत। उणुरउ जोवन बहि तूँ किउँ जोवनवंत।—डोला०, पृ० ४५०।

दउरना—क्रि० प्र० [हि० दीकना] दे० 'दीकना'।

दउरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दीरा'।

दक—संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।

दकन—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दकन] दक्षिण भारत। दक्षिणी भाग। २. दक्षिण दिक्। दक्षिण।

दकार—संज्ञा पुं० [सं०] तबग का तीसरा अक्षर 'द'।

दकार्गल—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार भूमि के नीचा ज्ञान करानेवाली एक विद्या। वि० दे० 'दयामंगल' [क]

दकियानूस—संज्ञा पुं० [यू० से प्र० दकियानूस] रोम देश का अत्याचारी सम्राट जो सन् ३५ ई० में सिंहासन पर बैठा।

दकियानूसी—वि० [प्र० दकियानूसी] १. दकियानूस के समय पुराना। २. बहुत ही पुराना। कृद्विस्त। जर्जर। नि० उ०—हम आप क्या पुरातन दकियानूसी वृत्ति का देकर या अति प्रगतिवाद का बहाना करके इस जागर स्वागत न करेंगे?—कुंकुम (भू०), पृ० ११।

दकीक—वि० [प्र० दकीक] मुश्किल। कठिन। गूढ़। उ०—सख्त मुश्किल मयक दकीक। या पानी का वाँ इक प्रमीक।—दक्खिनी०, पृ० ३४५।

दकीका—संज्ञा पुं० [प्र० दकीकह] १. कोई बारीक बात। २. उपाय।

मुहा०—कोई दकीका बाकी न रहना = कोई उपाय बरखना। सब उपाय कर चुकना। जैसे,—मुझे नुकसान में तुमने कोई दकीका बाकी नहीं रखा।

३. क्षण। लहजा।

दक्काक—वि० [प्र० दक्काक] १. कूटनेवाला। पीसनेवाला। करनेवाला। १. गूढ़ या सूक्ष्म बातों को कहनेवाला।

दक्खणा—वि० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्खण] दक्षिण दिशा में दक्षिणी। उ०—घोड़ी घोरंग साहू नूँ उर निस दिवस। मन लग्यो दक्खण मूलक, सरक न सके सरीर।—रा पृ० १६६।

दक्खिन^१—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्खण] [वि० दक्षि] १. वह दिशा जो सूर्य की ओर मुँह करके सड़े होने से हाथ की ओर पड़ती है। उसार के सामने की दिशा। २. जिधर तुम्हारा पैर है वह दक्खिन है।

विरोध—यद्यपि संस्कृत 'दक्षिण' शब्द विशेषण है पर

शब्द दक्षिण विशेषण के रूप में नहीं आता। दक्षिण ओर, दक्षिण दिशा आदि वाक्यों में भी दक्षिण विशेषण नहीं है।

२. दक्षिण दिशा में पड़नेवाला प्रदेश। ३. भारतवर्ष का वह भाग जो दक्षिण की ओर है। विध्य और नर्मदा के आगे का देश।

दक्षिण^२—क्रि० वि० दक्षिण की ओर। दक्षिण दिशा में। जैसे,—उनका गाँव यहाँ से दक्षिण पड़ता है।

दक्षिणी^१—वि० [हि० दक्षिण] १. दक्षिण का। जो दक्षिण दिशा में हो। जैसे, नदी का दक्षिणी किनारा। २. जो दक्षिण के देश का हो। दक्षिण देश में उत्पन्न। दक्षिण देश संबंधी। जैसे, दक्षिणी आदमी, दक्षिणी बोली, दक्षिणी सुगरी। दक्षिणी मिर्च।

दक्षिणी^२—संज्ञा पुं० दक्षिण देश का निवासी।

दक्षिणी^३—संज्ञा स्त्री० दक्षिण देश की भाषा।

दक्ष^१—वि० [सं०] १. जिसमें किसी काम को चटपट सुगमतापूर्वक करने की शक्ति हो। निपुण। कुशल। चतुर। होशियार। जैसे,—वह सितार बजाने में बड़ा दक्ष है। २. दक्षिण। दाहिना। उ०—(क) दक्ष दिशि रुचिर वारीश कन्या।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दक्ष भाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललितार्थ।—तुलसी (शब्द०)। ३. साधु। सच्चा। ईमानदार। सत्यवक्ता (को०)।

दक्ष^२—संज्ञा पुं० १. एक प्रजापति का नाम जिनसे देवता उत्पन्न हुए।

विशेष—ऋग्वेद में दक्ष प्रजापति का नाम आया है और कहीं कहीं ज्योतिष्मण के पिता कहकर उनकी स्तुति की गई है। दक्ष प्रजिति के पिता थे, इससे वे देवताओं के आविर्भाव कहे जाते हैं। जहाँ ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति का यह क्रम बतलाया गया है कि सबसे पहले ब्रह्माण्डपति ने कर्मकार की तरह कार्य किया, प्रसत् से सत् उत्पन्न हुआ, उत्तानपद् से भू और स्रु से बिछाए हुए, वहीं यह भी लिखा है कि 'प्रदिति से दक्ष जन्मे और दक्ष से प्रदिति जन्मी'। इस विलक्षण वाक्य के संबंध में निरुक्त में लिखा है कि 'या तो दोनों ने समान जन्म-लाभ किया, अथवा देवधर्मानुसार दोनों की एक दूसरे से उत्पत्ति और प्रकृति हुई।' शतपथ ब्राह्मण में दक्ष को सृष्टि का पालक और पोषक कहा गया है। हरिवंश में दक्ष को विष्णुस्वरूप कहा गया है। महाभारत और पुराणों में जो दक्ष के यज्ञ की कथा है उसका वर्णन वैदिक ग्रंथों में नहीं मिलता, हाँ, रुद्र के प्रभाव के प्रसंग में कुछ उसका आभास सा मिलता है। मत्स्यपुराण में लिखा है कि पहले मानस सृष्टि हुआ करती थी। दक्ष ने जब देखा कि मानस द्वारा प्रजावृद्धि नहीं होती है तब उन्होंने मैथुन द्वारा सृष्टि का विधान चलाया।

शकटपुराण में दक्ष की कथा इस प्रकार है—ब्रह्मा ने सृष्टि की कामना से धर्म, रुद्र, मनु, भृगु तथा सनकादि को मानस-पुत्र के रूप में उत्पन्न किया। फिर बाह्येष्टों से दक्ष को और बाएँ भ्रंशु से दक्षपत्नी को उत्पन्न किया। इस पत्नी से

दक्ष को सोलह कन्याएँ उत्पन्न हुई—अदा, मैत्री, दया, क्षांति, सुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, मूर्ति, तितिक्षा, ह्ये, स्वाहा, स्वधा और सती। दक्ष ने इन्हें ब्रह्मा के मानसपुत्रों में बाँट दिया। रुद्र को दक्ष की सती नाम की कन्या प्राप्त हुई। एक बार दक्ष ने अश्वमेध यज्ञ किया जिसमें उन्होंने अपने सारे जामाताओं को बुलाया पर रुद्र को नहीं बुलाया। सती बिना बुलाए ही अपने पिता का यज्ञ देखने गईं। वहाँ पिता से अपमानित होने पर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। इसपर महादेव ने क्रोध होकर दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दिया और दक्ष को शाप दिया कि तुम मनुष्य होकर ध्रुव के वंश में जन्म लोगे। ध्रुव के वंशज प्रचेतामण ने जब घोर तपस्या की तब उन्हें प्रजासृष्टि करने का वर मिला और उन्होंने कटकन्या मारिषा के गर्भ से दक्ष को उत्पन्न किया। दक्ष ने चतुर्विध मानस सृष्टि की। पर जब मानस सृष्टि से प्रजावृद्धि न हुई तब उन्होंने वीरण प्रजापति की कन्या असिमनी को ग्रहण किया और उससे सहस्र पुत्र और बहुत सी कन्याएँ उत्पन्न कीं। उन्हीं कन्याओं से कश्यप आदि ने सृष्टि चलाई। और पुराणों में भी इसी प्रकार की कथा कुछ हेर फेर के साथ है।

२. अत्रि ऋषि। ३. महेश्वर। ४. शिव का वेल। ५. ताम्रपुङ्ख। मुरगा। ६. एक राजा जो उशीनर के पुत्र थे। ७. विष्णु। ८. बल। ९. वीर्य। १०. अग्नि (को०)। ११. नायक का एक भेद जो सभी प्रेयसियों में समान भाव रखता हो (को०)। १२. शक्ति। योग्यता। उपयुक्तता (को०)। १३. लोटा या कुरा स्वभाव (को०)।

दक्षकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सती। वि० दे० 'दक्ष'। २. अश्विनी आदि तारा।

दक्षकतुल्यंसी—संज्ञा पुं० [सं० दक्षकतुल्यंसी] १. महादेव। २. महादेव के वंश से उत्पन्न वीरभद्र जिन्होंने दक्ष का यज्ञ विध्वंस किया था।

दक्षजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दक्षकन्या'।

यौ०—दक्षजापति = (१) शिव। महेश्वर। (२) चंद्रमा (को०)।

दक्षणी—वि० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण'। उ०—दक्षण अवन सु सुरत ऋतु, उपजे गए न नरक।—ह० रासो, पृ० ३०।

दक्षतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दक्षकन्या' (को०)।

दक्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निपुणता। योग्यता। कमाल।

दक्षदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा।

दक्षन^(१)—वि० [सं० दक्षिण] दाहिना। दाहिनी ओर का। उ०—मेढ़ हूँ के ऊपर दक्षन पाव आनि।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ४२।

दक्षनायन^(२)—वि० [सं० दक्षिणायन] दे० 'दक्षिणायन'। उ०—भावे दक्षनायन हूँ, भावे उत्तरायन हूँ, भावे देह सर्प सिंह बिजमुली हनंत हूँ।—सुंदर०, प्र०, भा० २, पृ० ६४२।

दक्षविहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गीत।

दक्षसावर्णि—संज्ञा पुं० [सं०] नवें मनु का नाम।

दक्षिण—संज्ञा पु० [सं०] देवता । सुर ।

दक्षिण—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्ष + ण] दे० 'दक्षकन्या' [को०] ।

दक्षिण—संज्ञा पु० [सं० दक्षिण] मुरली का धंसा [को०] ।

दक्षिण—वि० स्त्री० [सं०] कुशल । निपुण ।

दक्षिण—संज्ञा स्त्री० १. पृथ्वी । २. गंगा का एक नाम [को०] ।

दक्षिण—संज्ञा पु० [सं०] १. वैजयंती । २. वीर । ३. गृह [को०] ।

दक्षिण—वि० [सं०] १. दक्षिण । दाहिना । बायाँ का उलटा । अप-सम्य । २. इस प्रकार प्रवृत्त जिससे किसी का कार्य सिद्ध हो । अनुकूल । ३. साधु । ईमानदार । सच्चा [को०] । ४. उस ओर का जिसमें सूर्य की ओर मुँह करके सड़े होने से दाहिना हाथ पड़े । उत्तर का उलटा ।

यौ०—दक्षिणापथ । दक्षिणायन ।

५. निपुण । वक्ष । चतुर ।

दक्षिण—संज्ञा पु० १. दक्षिण की दिशा । उत्तर के सामने की दिशा । २. काव्य या साहित्य में वह नायक जिसका अनुराग अपनी सब नायिकाओं पर समान हो । ३. प्रदक्षिण । ४. तंत्रोक्त एक आचार या मार्ग ।

विशेष—कुलाख्य तंत्र में लिखा है कि सबसे उत्तम तो वेदमार्ग है, वेद से अग्रे वेदग्रन्थ मार्ग है, वेदग्रन्थ से अग्रे वेद वेदमार्ग है, वेद के अग्रे दक्षिण मार्ग है, दक्षिण से अग्रे वाम मार्ग है और वाम मार्ग से भी अग्रे मित्रांत मार्ग है ।

५. विष्णु । ६. शिव का एक नाम [को०] । ७. दाहिना हाथ या पार्श्व [को०] । ८. दे० 'दक्षिणाग्नि' । ९. रथ के दाहिनी ओर का अश्व [को०] । १०. दक्षिण का प्रदेश [को०] ।

दक्षिणाक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंत्रसार के अनुसार तान्त्रिकों की एक देवी । २. दुर्गा [को०] ।

दक्षिणागोल—संज्ञा पु० [सं०] विपुल रेखा से दक्षिण पड़नेवाली राक्षसी, जो छह हैं—तुला, बुध, मकर, कुंभ और मीन ।

दक्षिणापथ—संज्ञा पु० [सं०] मलयपथ । मलयानिल ।

दक्षिण मार्ग—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार की तान्त्रिक साधना । २. पितृयान [को०] ।

दक्षिणस्थ—संज्ञा पु० [सं०] रथवाह । रथ हँकनेवाला [को०] ।

दक्षिण—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्षिण दिशा । २. वह वन जो बाह्यो या पुरोहितों को यज्ञादि कर्म कराने के पीछे दिया जाता है । वह वन जो किसी शुभ कार्य आदि के समय बाह्यो को दिया जाय ।

कि० प्र०—देना ।—लेना ।

विशेष—पुराणों में दक्षिण को यज्ञ की पत्नी बतसाया है । ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि कार्तिकी पूर्णिमा की रात को जो एक बार रास महोत्सव हुआ उसी में श्रीकृष्ण के दक्षिणा से दक्षिण की उत्पत्ति हुई थी ।

१. पुरस्कार । भेट । ४. वह नायिका जो नायक के अन्य स्त्रियों से संबंध करने पर भी उससे बराबर वैसी ही प्रीति रखती हो ।

दक्षिणाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिण+अग्नि] यज्ञ में गार्हपत्याग्नि से दक्षिण ओर स्थापित अग्नि ।

दक्षिणाग्र—वि० [सं०] जिसका अग्रभाग अंश दक्षिण की ओर हो । दक्षिणाभिमुख [को०] ।

दक्षिणाचल—संज्ञा पु० [सं०] मलयगिरि पर्वत । मलयानिल ।

दक्षिणाचार—संज्ञा पु० [सं०] १. सदाचार । शुद्ध और उत्तम आचरण । २. तान्त्रिकों में एक प्रकार का आचार जिसमें अपने प्रापको शिव मानकर पंचतत्त्व से शिव की पूजा की जाती है । यह आचार वामाचार से भेद और प्रायः वैदिक माना जाता है ।

दक्षिणाचारी—संज्ञा पु० [सं०] दक्षिणाचारिन् १. विष्णुदाचारी । धर्मशील । सदाचारी । २. वह तान्त्रिक जो दक्षिणाचार में दीक्षित हो ।

दक्षिणापथ—संज्ञा पु० [सं०] विष्णुपर्वत के दक्षिण ओर का वह प्रदेश जहाँ से दक्षिण भारत के लिये रास्ते जाते हैं ।

दक्षिणापरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नैऋत कोण ।

दक्षिणाप्रवण—संज्ञा पु० [सं०] वह स्थान जो उत्तर की अपेक्षा दक्षिण की ओर अधिक नीचा या ढालुप्राय हो ।

विशेष—मनु के अनुसार आठ आदि के लिये ऐसा ही स्थान उपयुक्त होता है ।

दक्षिणामूर्ति—संज्ञा पु० [सं०] तंत्र के अनुसार शिव की एक मूर्ति ।

दक्षिणाभिमुख—वि० [सं०] दक्षिण की ओर मुँह किए हुए । जिसका मुख दक्षिण दिशा की ओर हो ।

दक्षिणायन—वि० [सं०] दक्षिण की ओर । सुमध्यरेखा से दक्षिण की ओर । जैसे, दक्षिणायन सूर्य ।

दक्षिणायन—संज्ञा पु० १. सूर्य की कर्क रेखा से दक्षिण मकर रेखा की ओर गति । २. वह छह महीने का समय जिसमें सूर्य कर्क रेखा से चलकर बराबर दक्षिण की ओर बढ़ता रहता है ।

विशेष—सूर्य २१ जून को कर्क रेखा अर्थात् उत्तरीय अयनसीमा पर पहुँचता है और फिर वहाँ से दक्षिण की ओर बढ़ने लगता है और प्रायः २२ दिसंबर तक दक्षिणी अयन सीमा मकर रेखा तक पहुँच जाता है । पुराणानुसार जिस समय सूर्य दक्षिणायन हों उस समय कुम्भा, तालाब, मंदिर आदि न बनवाना चाहिए और न देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए । तो भी भैरव, बराह, त्रिसह आदि की प्रतिष्ठा की जा सकती है ।

दक्षिणावर्त—वि० [सं०] जिसका घुमाव दाहिनी ओर को हो । जो दाहिनी ओर घूमा हुआ हो ।

दक्षिणावर्त—संज्ञा पु० एक प्रकार का शंख जिसका घुमाव दाहिनी ओर को होता है ।

दक्षिणावर्तकी—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणावर्तकी] दे० 'दक्षिणावर्तवती' ।

दक्षिणावर्तवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिणावर्तकी नाम का पौधा ।

दक्षिणावह—संज्ञा पु० [सं०] दक्षिण से आनेवाली हवा ।

दक्षिणारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा ।

दक्षिणारापति—संज्ञा पुं० [सं०] १. यम । २. मंगलग्रह ।

दक्षिणी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दक्षिण + ई (प्रत्य०)] दक्षिण देश की भाषा ।

दक्षिणी^२—संज्ञा पुं० दक्षिण देश का निवासी ।

दक्षिणी^३—वि० दक्षिण देश का । दक्षिण देश संबंधी ।

दक्षिणीय—वि० [सं०] १. दक्षिण का । दक्षिण संबंधी । दक्षिण देश का । २. जो दक्षिणा का पात्र हो ।

दक्षिण्य—वि० [सं०] दे० 'दक्षिणीय' [को०]

दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण' ।

दक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' । उ०—ब्राह्मणन को दान दक्षिणा दें श्री गोकुल आए ।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० १३६ ।

दक्षिनी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दक्षिणी] दे० 'दक्षिणी' ।

दक्षिन—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण; फ्रा० दकन] दे० 'दक्षिण' ।

दक्षमा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दक्षमह] वह स्थान जहाँ पारसी अपने मुरदे रखते हैं ।

विशेष—पारसियों में यह प्रथा है कि वे शव को जलाते या गाड़ते नहीं हैं बल्कि उसे किसी बिलिष्ट एकान्त स्थान में रख देते हैं जहाँ नील कीप आदि उसका मांस खा जाते हैं । इस काम के लिये वे थोड़ा सा स्थान पचीस तीस फुट ऊँची दीवार से चारों ओर से घेर देते हैं, जिसके ऊपरी भाग में जंगला सा लगा रहता है । इसी जंगले पर शव रख दिया जाता है । जब उसका मांस नील कीप आदि खा लेते हैं तब हड्डियाँ जंगले में से नीचे गिर पड़ती हैं । नीचे एक भाग होता है जिससे ये हड्डियाँ निकाल ली जाती हैं । भारत में निवास करनेवाले पारसियों के लिये इस प्रकार की व्यवस्था बंबई, सुरत आदि कुछ नगरों में है ।

दखल—संज्ञा पुं० [फ्रा० दखल] १. अधिकार । कब्जा ।

क्रि० प्र०—करना ।—में भाना ।—में लाना ।—होना ।

यौ०—दखलविहानी । दखलनामा । दखलकार ।

२. हस्तक्षेप । हस्त डालना । उ०—मुख दखल देई बिन जाने । गह्वर अपलता मुख दस्थाने ।—विश्राम (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।

३. पहुँच । प्रवेश । जैसे,—घाघ भंगरेजी में भी कुछ दखल रखते हैं ।

क्रि० प्र०—रखना ।

दखलविहानी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दखल + फ्रा० विहानी] किसी वस्तु पर किसी की अधिकार दिला देना । कब्जा दिलवाना ।

दखलनामा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दखल + फ्रा० नामह] वह पत्र विशेषतः सरकारी आज्ञापत्र जिसमें किसी व्यक्ति के लिये किसी पदार्थ पर अधिकार कर लेने की आज्ञा हो ।

दक्षिणापथ^१—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिणापथ, प्रा० दक्षिणापथ, दक्षिणापथ] दक्षिण देश । उ०—उत्तर भाष न जाइयह,

जिहाँ स सीत भगवत । ता भइ सुरिज डरपतउ, ताकि चलह दक्षिणापथ ।—ढोला०, पृ० ३०१ ।

दखिन^१—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्षिण] दे० 'दक्षिण' । उ०—देखि दखिन दिसि हय हिहिनाही ।—तुलसी (शब्द०) ।

दखिनहरा^१—संज्ञा पुं० [हि० दखिन + हारा] दक्षिण से आनेवाली हवा । दक्षिण की ओर से आती हुई हवा ।

दखिनहा^१—वि० [हि० दखिन + हा (प्रत्य०)] दक्षिण का । दक्षिणी ।

दखिना^१—संज्ञा पुं० [हि० दखिन + घा (प्रत्य०)] दक्षिण से आनेवाली हवा ।

दखील^१—वि० [फ्रा० दखील] अधिकार रखनेवाला । जिसका दखल या कब्जा हो ।

दखीलकार^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० दखील + फ्रा० कार] वह भसामी जिसने किसी जमींदार के खेत या जमीन पर कम से कम बारह वर्ष तक अपना दखल रखा हो ।

दखीलकारी^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दखील + फ्रा० कार] १. दखीलकार का पद या व्यवस्था । २. वह जमीन जिसपर दखीलकार का अधिकार हो ।

दखली^१—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दखली, दखल] दे० 'दखल' । उ०—अहर पयोहर, दुइ नयण मीठा जेहा मखल । ढोला एही माहई, जाणे मीठी दखल ।—ढोला०, पृ० ४७० ।

दगंबर^१—संज्ञा पुं० [हि० दिगंबर] दे० 'दिगंबर' । उ०—दया दगंबर नामु एकु मनि एको आदि भनूप ।—प्राण०, पृ० २१२ ।

दगइल^१—वि० [हि० दगल] दे० 'दगल' ।

दगड़^१—संज्ञा पुं० [? या सं० दक्का + हि० ड (प्रत्य०)] लड़ाई में बजाया जानेवाला बड़ा ढोल । जंगी ढोल ।

दगड़ना^१—क्रि० प्र० [?] सखी बात का विश्वास न करना ।

दगड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० दगड़] दे० 'दगड़' ।

दगदगा^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० दगदग] १. डर । भय । २. संदेह । शक । ३. एक प्रकार की कंडील ।

दगदगाना^१—क्रि० प्र० [हि० दगना] दमदमाना । चमकना । उ०—ज्यों ज्यों प्रति कृतता बढ़ति त्यों त्यों दुति सरसात । दगदगात त्यों ही कनक ज्यों ही बाहत जात ।—गुमान (शब्द०) ।

दगदगाना^२—क्रि० प्र० चमकाना । चमक उत्पन्न करना ।

दगदगाहट^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दगदगाना + हट (प्रत्य०)] चमक । दमक ।

दगदगी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दगदगा] दे० 'दगदगा' ।

दगध^१—संज्ञा पुं० [सं० दग्ध] दे० 'दाह' । उ०—वेम का लुबुध दगध पे साधा ।—जायसी श्रं०, पृ० ६४ ।

दगध^२—वि० दे० 'दग्ध' । उ०—ग्यान दगध जोगिद कुलट कैरव भगि पार्न ।—पृ० रा०, २५:१२१ ।

दगधना^१—क्रि० प्र० [सं० दग्ध, हि० दगध + ना (प्रत्य०)] जलना । उ०—बज्र भगनि बिरहिन हिय आरा । सुलग सुलग दगधि भइ आरा ।—जायसी (शब्द०) ।

द्वगवना^१—क्रि० स० १. जलाना । १. बहुत दुःख देना । कष्ट पहुँचाना ।

द्वगना^१—क्रि० प्र० [सं० दग्ध, हि० दग्ध + ना (प्रत्य०)] १. (बंदूक या तोप आदि का) फूटना । चलना । जैसे,—बंदूक आप ही आप दग गई । २. जलना । दग्ध होना । कुलस आना । उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्वामी कुंजबिहारी की कटाछ कोटि काम दगे ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) । ३. दागा जाना । दागना का अकर्मक रूप ।

द्वगना^२—क्रि० स० दे० 'दागना' । उ०—(क) बिचपर स्वास सरिस छगे तन सीतल बन बात । अनलहु सों सरसै दगे द्विमकर कर धन गात ।—भू० सत (शब्द०) । (ख) जे तब होत दिखा-दिली भई प्रमी इक धाँक । दगे तिराछी दीठ सब हूँ बीछी की डीक ।—बिहारी (शब्द०) ।

द्वगना^३—क्रि० प्र० [प्र० दाग] १. दागा जाना । अंकित होना । चिह्नित होना । २. प्रसिद्ध होना । मशहूर होना । उ०—लोक वेद हूँ लो दगो नाम मले को पोच । घमंराज जस गाज पवि कहत सकोच न सोच ।—तुलसी (शब्द०) ।

द्वगरा^१—संज्ञा पुं० [दे० 'देश'] दे० 'दगरा' ।

द्वगरा^२—संज्ञा पुं० [?] १. देर । विलंब । उ०—घोरहि ते कांहु करत तोसों भगरो ।... सब कोऊ जात मधुपुरी बेचन कोने दियो दिखावहु कयरो । अंचल ऐंचि ऐंचि राखत हो जान देहु सब होत है दगरो ।—सूर (शब्द०) । २. डगर । रास्ता । उ०—बहु जो झंडित मेंड बनी दगरे के भाहीं ।—श्रीधर पाठक (शब्द०) ।

द्वगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह वही जिसपर मलाई या साड़ी न हो ।

द्वगल^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दगला' । उ०—सौर सुपेती मंदिर राती । दगल चीर पहरिहु बहु भाँती ।—जायसी (शब्द०) ।

द्वगल^२—संज्ञा पुं० [प्र० दगल] १. धोखा । फरेब । मक्कर । २. छोटा सोना या चाँदी (को०) ।

द्वगलफसल—संज्ञा पुं० [प्र० दगल + फल] फसल या हि० फंसाना] धोखा । फरेब ।

द्वगला—संज्ञा पुं० [देश०] मोटे बल का बना हुआ या रुईदार धाँवरखा । भारी लबाटा ।

द्वगली—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दगली' । उ०—मुई मेरी माई हो खरा सुखाला । पहिरो नहीं दगली लगे न पाला ।—कबीर बं०, पृ० ३०६ ।

द्वगवाना—क्रि० स० [हि० दागना का प्रे० रूप] दागने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को दागने में प्रवृत्त कराना । उ०—उठि भोरहि तोपन दगवायो । दीनन को बहु दग्ध लुटायो ।—रघुराज (शब्द०) ।

द्वगहा^१—वि० [हि० दाग + हा (प्रत्य०)] १. जिसके दाग लगा हो । दागवाला । २. जिसके सफेद दाग हों ।

द्वगहा^२—वि० [हि० दाग (= प्रेतकर्म) + हा (प्रत्य०)] जिसने प्रेत-क्रिया की हो । प्रेतकर्मकर्ता ।

द्वगहा^३—वि० [हि० दग्ध + हा (प्रत्य०)] जो दागा हुआ हो । जो दग्ध किया गया हो ।

द्वगा—संज्ञा स्त्री० [प्र० दगा] छल । कपट । धोखा ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—खाना ।

धौ०—दगाबाज । दगादार ।

द्वगासी—वि० [फ्रा० दगा] दगाबाज । धोखेबाज । उ०—छल बल करि नहि काहु पकरत दीरि दगासी ।—चनानंद०, पृ० ५६९ ।

द्वगादगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दगा] धोखेबाजी । उ०—सजनी निपट भचेत है दगादगी समुझै न । चित बित परकर बैत है लगालगी करि नैन ।—स० सप्तक, पृ० २३४ ।

द्वगादार—वि० [फ्रा० दगा + दार] धोखेबाज । छली । उ०—(क) पूरे दगादार भेरे पातक अपार तोहि गंगा के कछार में पछार छार करिहो ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) छबीले तेरे नैन बड़े हैं दगादार ।—गीत (शब्द०) ।

द्वगादारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दगादार + ई] दे० 'दगादगी' ।

द्वगाबाज^१—वि० [फ्रा० दगाबाज] छली । कपटी । धोखा देनेवाला । उ०—(क) कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) नाम तुलसी पे मोड़े भाग ते भयो है दास, किए मंगीकार एते बड़े दगाबाज को ।—तुलसी (शब्द०) ।

द्वगाबाज^२—संज्ञा पुं० छली मनुष्य । धोखा देनेवाला आदमी ।

द्वगाबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दगाबाजी] छल । कपट । धोखा । उ०—सुहृद समाज दगाबाजी ही को सोदा सुत जब जाको काज तब मिले पाय परि सो ।—तुलसी (शब्द०) ।

द्वगार्गल—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार की विद्या, जिसके अनुसार किसी निर्जल स्थान के ऊपरी सतह आदि देखकर, भूमि के नीचे पानी होने प्रयत्न न होने का ज्ञान होता है ।

विशेष—बृहत्संहिता में लिखा है कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में रक्तवाहिनी शिराएँ होती हैं उसी प्रकार पृथ्वी में जलवाहिनी शिराएँ होती हैं और इन्हीं शिराओं के किसी स्थान पर होने प्रयत्न न होने का ज्ञान वृक्षों आदि को देखकर हो सकता है । जैसे, यदि किसी निर्जल स्थान में जामुन का पेड़ हो तो समझना चाहिए कि उससे तीन हाथ की दूरी पर उत्तर की ओर दो पुरसे नीचे पूर्ववाहिनी शिरा है; यदि किसी निर्जल स्थान में गूलर का पेड़ हो तो उससे पश्चिम तीन हाथ की दूरी पर उड़ दो पुरसे नीचे अच्छे जल की शिरा होगी, इत्यादि ।

द्वगैल^१—वि० [प्र० दाग + एल (प्रत्य०)] १. दागदार । जिसमें दाग हो । २. जिसमें कुछ छोट वा दोष हो ।

द्वगैल^२—संज्ञा पुं० [प्र० दगा] दगाबाज । छली । उ०—सात कोस भीनों बलि आए । भए दगैलन के मन आए ।—लाल (शब्द०) ।

द्वगना^३—क्रि० प्र० [हि० दग्ध] दे० 'दगना' । उ०—तोप तुपक चहर सब दग्ध ।—ह० रासी, पृ० १४५ ।

द्वन्द्व^१—वि० [सं०] १. जथा या जलाया हुआ । २. दुःखित । जिसे कष्ट पहुँचा हो । जैसे, दग्धहृदय । ३. कुम्हलाया हुआ । म्लाव । जैसे, दग्ध आनन । ४. अशुभ । जैसे, दग्ध योग । ५. क्षुद्र । तुच्छ । विह्वल । जैसे, दग्धदेह, दग्धउदर, दग्धजठर । ६. शुष्क । नीरस । वेस्वाव (को०) । ७. बुभुक्षित । क्षुधाग्रस्त (को०) । ८. चतुर । चालाक । विदग्ध (को०) ।

द्वन्द्व^२—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे कर्तृण भी कहते हैं ।

द्वन्द्वकाक—संज्ञा पुं० [सं०] डोम कीवा ।

द्वन्द्वमन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्वमन्त्र] तंत्र के अनुसार वह मन्त्र जिसके मूर्धा प्रदेश में वल्लि घोर वायुयुक्त वर्ण हों ।

द्वन्द्वरथ—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के सारथी चित्ररथ गंधर्व का एक नाम । विशेष—दे० 'चित्ररथ' ।

द्वन्द्वरुह—संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष ।

द्वन्द्वरुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रुद्ध नामक वृक्ष ।

द्वन्द्ववर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] रोहिण्य नाम की घास ।

द्वन्द्वप्रण—संज्ञा पुं० [सं०] जलने का घाव (को०) ।

द्वन्द्वव्य—वि० [सं०] जलाने लायक । कष्ट देने योग्य (को०) ।

द्वन्धा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य के अस्त होने की दिशा । पश्चिम । २. एक प्रकार का वृक्ष जिसे क्रुद्ध कहते हैं । ३. कुछ विशिष्ट राशियों से युक्त कुछ विशिष्ट तिथियाँ । जैसे—मीन घोर घन की अष्टमी । वृष घोर कुंभ की चौथ । मेष घोर कर्क की छठ । कन्या घोर मिथुन की नौमी । वृश्चिक घोर सिंह की दशमी । मकर घोर तुला की द्वादशी ।

विशेष—द्वन्धा तिथियों में वेदारंभ, विवाह, स्त्रीप्रसंग, यात्रा या वाणिज्य आदि करना बहुत हानिकारक माना जाता है ।

द्वन्धा^२—वि० [सं० द्वन्धा] १. जलानेवाला । २. दुःख देनेवाला । (को०) ।

द्वन्धाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] पिगल के अनुसार ऋ, हु, र, म और य ये पाँचों अक्षर, जिनका छंद के आरंभ में रखना वर्जित है । उ०—दीर्घो भूष न छंद के आदि ऋ हु र म य कोई । द्वाधाक्षर के दोष तें छंद बोधयुत होइ ।—(शब्द०) ।

द्वन्धाह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष ।

द्वन्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'द्वन्धा' २. जला हुआ अन्न या भात (को०) ।

द्वन्धित^१—वि० [सं० दग्ध + हि० इत (प्रत्य०)] दे० 'दग्ध' । उ०—बोले गिरा मधुर शक्ति करी विचारी । होवे प्रबोध जिससे दुख दग्धितों का ।—प्रिय०, पृ० ११६ ।

द्वन्धेष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध + इष्टका] जली और कुलसी हुई ईंट । भावार्थ (को०) ।

द्वन्द्व—वि० [सं०] [वि० स्त्री० वदनी] ...तक पहुँचने या जाननेवाला ...तक गहरा या ऊँचा । (समासांत में प्रयुक्त) । जैसे, उरुद्वन्द्व, जानुद्वन्द्व, गुरुद्वन्द्व आदि ।

द्वन्द्वक—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. भटके या दबाव से लगी हुई चोट । २. धक्का । ठोकर । ३. दबाव ।

द्वन्द्वकना^१—क्रि० ध० [धनु०] १. ठोकर या धक्का खाना । २. दब जाना । लचकना । ३. भटका खाना ।

द्वन्द्वकना^२—क्रि० सं० १. ठोकर या धक्का लगाना । २. दवाना । लचकाना । ३. भटका देना ।

द्वन्द्वका—संज्ञा पुं० [हि० द्वन्द्वकना] धक्का । ठोकर । उ०—हलका सा धक्का लगा तो गाड़ीवान की नींव लुन गई ।—रति०, पृ० ६२ ।

द्वन्द्वना—क्रि० ध० [देश०] गिरना । पड़ना । उ०—गगन उड़ाइ गयो ले श्यामहि भाइ धरनि पर प्राप दन्धो री ।—सूर (शब्द०) ।

द्वन्द्वना—संज्ञा पुं० [देश०] ठोकर । धक्का । दन्धका । उ०—तबै बाल-बच्चे फिरँ खात दन्धे ।—पद्माकर प्र०, पृ० ११ ।

द्वन्द्व^१—वि० [सं० दक्ष] चतुर । निष्णात । कुशल । उ०—सापबस मुनिबधू मुक्तकृत विप्रहित यज्ञरक्षन दन्ध पन्धकर्ता ।—तुलसी प्र०, पृ० १ ।

द्वन्द्व—संज्ञा पुं० [सं० दक्ष, प्रा० दन्ध] दे० 'दक्ष' । उ०—जननी प्रथम दन्धगृह आई ।—मानस, १ ।

यौ०—दन्धकुमारी । दन्धसुत=दक्ष प्रजापति के पुत्र । उ०—दन्धसुतन्हि उपदेसेन्हि आई ।—मानस, १ । दन्धसुता ।

दन्धकुमारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्ष + कुमारी] दक्ष प्रजापति की कन्या, सती । उ०—मुनि सन विद्या मागि विपुरारी । बले भवन संग दन्धकुमारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

दन्धना—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' ।

दन्धसुता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षसुता] दक्ष की कन्या, सती ।

दन्धिन^१—संज्ञा पुं०, क्रि० वि०, वि० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण' । उ०—दन्धिन पिय हूँ वाम बस बिसराई तिय धान । एकै बासर के विरह लागे बरष बितान ।—बिहारी (शब्द०) ।

दन्धिननायक^१—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण + नायक] दे० 'दक्षिणनायक' ।

दन्धिना—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' । उ०—दन्धिना देत नंद पग लागत, आसिस देत गरग सब द्विजवर ।—नंद० प्र०, पृ० ३७१ ।

दन्धना, दन्धिना^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' । उ०—(क) भोजन कर जिजमान बिमाये । दन्धना कारण जाय भड़े ।—संत तुरसी०, पृ० १८६ । (ख) तुमहि मिलैगो बीरा दन्धिना भरि भरि ओरी लू ।—नंद० प्र०, पृ० ३३६ ।

दन्धनाह—संज्ञा पुं० [ध० दन्धनाह] झूठा । बेईमान । प्रत्याचारी ।

दन्धमना^१—क्रि० ध० [सं० दग्ध, प्रा० दधम] दे० 'दहन' । उ०—दुज्जर काय सु कहत राज मन माहि समझाई । कामज्वाला मों बढ़िय तुमहि तिन के दुख दधमों ।—पृ० रा०, १ । ४१६ ।

दट^१—क्रि० ध० [सं० दष्ट, प्रा० दट्ट (=कटा हुआ)] दब जाना । हेट पड़ना । उ०—तरह मदन रत तरणी, देख दिस दरप जाय दट ।—रघु० क०, पृ० १६ ।

दटना^१—क्रि० ध० [हि० डटना] दे० 'डटना' ।

द्वन्द्वक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दग्धोत्पल] सहदेई नाम का पौधा ।

दशकका—संज्ञा पुं० [धनु०] दरेरा । उ० एक एक हटके, देत दशके, सेन दशके ओन बहै ।—सुखान०, पृ० ३१ ।

दडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कंडुक । गेंद । तडी । उ०—बोध पाछ दडी जेम धाणियो गिरब एम । उठे महीराव जाण, नीब हूँ उलास ।—रघु० क०, पृ० १६६ ।

दहक—संज्ञा स्त्री० [धनु०] दहाड़ । गरज ।

दहकना—क्रि० प्र० [धनु०] दहाड़ना । गरजना ।

दहोकना—क्रि० प्र० [धनु०] दहाड़ना । गरजना । बाध, सड़, धावि का बोलना ।

दड़—वि० [सं० दड, प्रा० दड] पक्का । मजबूत । दड़ । उ०—जरे राव के रावत जोर दड़ ।—ह० रासो, पृ० १६ ।

दड़—वि० [सं० दड़, प्रा० दड] दे० 'दड़' । उ०—सर्व व्यूह आकार सज्जे सभारं । बड़ फल पुंछ रचे भित्त सारं ।—पृ० रा०, १।६३६ ।

दाढ़ियल—वि० [हि० दाढ़ी + इयल (प्रत्य०)] दाढ़ीवाला । जो दाढ़ी रहे हो ।

दणयर, दणियर—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, प्रा० बिणयर] सूर्य । दिनकर । उ०—माक सी देखी नहीं, धणमुक दोय नयणीह । थोड़ो सो भोले पड़इ, दणयर जगहंताह ।—ढोला०, दृ० ४७८ ।

दत्त—संज्ञा पुं० [सं० दत्त (= दान)] दे० 'दान' उ०—देतो मड़व पसाव दत्त, बीर गोड़ बछराज ।—बांकी० प्र०, भा० १, पृ० ७६ ।

दतना—क्रि० प्र० [हि० दटना] दे० 'दटना' । उ०—केसव केसहु देखन की तिन्हें भोरहीं भोरी हूँ धानि दती हो । पान लवावत ही तिनसों तुम राति कहा सतराति हनी हो ।—केशव प्र०, भा० १, पृ० ७१ ।

दतधन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दतुधन' ।

दतारा—वि० [हि० दाँत + दार (प्रत्य०)] १. दाँतवाला । जिसमें दाँत हों । दाँतदार । २. बड़े बड़े या बड़ दाँतोंवाला (हाथी, गूकर आदि) ।

दतिया—संज्ञा स्त्री० [हि० दाँत + द्या (प्रत्य०)] दाँत का स्त्रीलिंग और अल्पायक रूप । छोटा दाँत ।

दतिया—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का पहाड़ी तोवर जो बहुत सुंदर होता है । इसकी लाल अच्छे धामों पर बिकती है । नीलमोर । २. एक पुराना राज्य ।

दतिसुत—संज्ञा पुं० [सं० दतिसुत] बंथ । राजस (हि०) ।

दतुधन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दतुधन' ।

दतुधन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दतुधन' । उ०—दतुधन करी न जाय नहीं धब जाय नहाई ।—पलटू०, भा० १, पृ० ३२ ।

दतुधन—संज्ञा स्त्री० [हि० दाँत + धन (प्रत्य०)] धनवा धावन । १. नीम या बकूल आदि की काटी हुई छोटी टहनी जिसके एक सिरे की दाँतों से कुबलकर कुँबी की तरह बनाते और उससे दाँत साफ करते हैं । दातुन ।

क्रि० प्र०—करना ।

२. दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।

यी०—दतुधन कुत्ता=दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया ।

दतून—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दतुधन' ।

दतौन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दतुधन' ।

दत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. दत्तानेय । २. धैरियों के नौ वासुदेवों में से एक । ३. एक प्रकार के बंगाली कामस्थों की उपाधि । ४. दान । ५. दत्तक ।

दत्त—वि० १. दिया हुआ । प्रदत्त । २. दान किया हुआ । ३. सुरक्षित । रक्षित (को०) ।

दत्तक—संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रविधि से बनाया हुआ पुत्र । वह जो वास्तव में पुत्र न हो, पर पुत्र मान लिया गया हो । गोद लिया हुआ लड़का । सुतबन्ना ।

विशेष—स्मृतियों में जो औरस और क्षेत्रज के प्रतिरिक्त दत्त प्रकार के पुत्र गिनाए गए हैं, उनमें दत्तक पुत्र भी है । इसमें से कलिपुत्र में केवल दत्तक ही को ग्रहण करने की व्यवस्था है, पर मिथिला और उसके आसपास कृत्रिम पुत्र का भी ग्रहण प्रचलित होता है । पुत्र के बिना पितृश्राद्ध से उद्धार नहीं होता इससे शास्त्र पुत्र ग्रहण करने की आज्ञा देता है । पुत्र आदि होकर मर गया हो तो पितृश्राद्ध से तो उद्धार हो जाता है पर पिछा पानी नहीं मिल सकता इससे उस व्यवस्था में भी पिछा पानी देने और नाम चलाने के लिये पुत्र ग्रहण करना आवश्यक है । किंतु यदि मृत पुत्र का कोई पुत्र या पोत्र हो तो दत्तक नहीं लिया जा सकता । दत्तक के लिये आवश्यक यह है कि दत्तक लेनेवाले को पुत्र, पोत्र, प्रपोत्र आदि न हो । दूसरी बात यह है कि प्राधान प्रदान की विधि पूरी हो, अर्थात् लड़के का पिता यह कहकर अपने पुत्र को समर्पित करे कि मैं इसे देता हूँ और दत्तक लेनेवाला यह कहकर उसे ग्रहण करे 'वर्माय त्वां परितृप्तानि, सन्तत्ये त्वां परितृप्तानि । द्विजों के लिये हवन आदि भी आवश्यक है । वह पुत्र जिसपर उसका असली पिता भी अधिकार रहे और दत्तक लेनेवाला भी 'दामुष्यायण' कहलाता है । ऐसा लड़का दोनों की संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है और दोनों के कुल में विवाह नहीं कर सकता है ।

दत्तक लेने का अधिकार पुरुष ही को है, अतः स्त्री यदि गोद ले सकती है तो पति की अनुमति से ही । विधवा यदि गोद लेना चाहे तो उसे पति की आज्ञा का प्रमाण देना होगा । वशिष्ठ का बचन है कि 'स्त्री पति की आज्ञा के बिना न पुत्र दे और न ले । नंद पंडित ने तो दत्तक मोमांसा में कहा है कि स्त्री को गोद लेने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वह जाप होय आदि नहीं कर सकती । पर दत्तकचंद्रिका के अनुसार विधवा को यदि पति आज्ञा दे गया हो तो वह गोद ले सकती है । बंधवेष और काशी प्रदेश में स्त्री के लिये पति की अनुमति अनिवार्य है, और वह इस अनुमति के अनुसार पति के जीते जी या मरने पर गोद ले सकती है । महाराष्ट्र देश के पंडित वशिष्ठ के बचन का यह अभिप्राय निकालते हैं कि पति की अनुमति की आवश्यकता उस अवस्था

में हैं जब दत्तक पति के सामने लिवा जाय; पति के मरने पर विधवा पति के कुटुंबियों के अनुमति लेकर दत्तक ले सकती है।

कैसा लड़का दत्तक लिया जा सकता है, स्तुतियों में इस संबंध में कई नियम मिलते हैं—

(१) सीमक, बलिष्ठ आदि के एकलौते या जेठे लड़के को गोद लेने का विवेक किया है। पर कलकत्ते को छोड़ और दूसरे हाइकोर्टों ने ऐसे लड़के का गोद लिया जाना स्वीकार किया है।

(२) लड़का सजातीय हो, दूसरी जाति का न हो। यदि दूसरी जाति का होया तो उसे केवल खाना कपड़ा मिलेगा।

(३) सबसे पहले तो भतीजे या किसी एक ही गोत्र के सपिठ को लेना चाहिए, उसके अभाव में भिन्न गोत्र सपिठ, उसके अभाव में एक ही गोत्र का कोई दूरस्थ संबंधी जो समाजोत्तमों के अंतर्गत हो, उसके अभाव में कोई सगोत्र।

(४) द्विजातियों में लड़की का लड़का, बहिन का लड़का, भाई, चाचा, मामा, मामी का लड़का गोद नहीं लिया जा सकता। नियम यह है कि गोद लेने के लिये जो लड़का हो वह 'पुत्र-व्यायावह' हो अर्थात् ऐसा हो जिसकी माता के साथ दत्तक लेनेवाले का वियोग या समागम हो सके।

दत्तक विषय पर अनेक ग्रंथ संस्कृत में हैं जिनमें नंद पंडित की 'दत्तक मीमांसा' और दैवानंद मट्ट तथा कुबेर कृत 'दत्तक-चंद्रिका' सबसे अधिक मान्य हैं।

मुहा०—दत्तक लेना = किसी दूसरे के पुत्र को गोद लेकर अपना पुत्र बनाना।

दत्तचित्ता—वि० [सं०] जिसने किसी काम में लूब भी लगाया हो। जिसने लूब चित्ता लगाया हो।

दत्ततीर्थकृत—संज्ञा पु० [सं०] गत उत्सर्पिणी के आठवें अर्हत (बौद्ध)।

दत्तदृष्टि—वि० [सं०] जिसकी आंखें किसी वस्तु पर टिकी हों [को०]।

दत्तशुल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लड़की जिसे प्राप्त करने के लिये शुल्क के रूप में कोई द्रव्य दिया गया हो [को०]।

दत्तस्थानपाकर्म—संज्ञा पु० [सं०] कीटिहय के अनुसार कोई भी व किसी को देखकर फिर लौटाना। एक बार दान करके फिर वापस माँगना या लेना।

दत्तहस्त—वि० [सं०] जिसे हाथ का सहारा दिया गया हो [को०]।

दत्ता—संज्ञा पु० [सं० दत्त] दे० 'दत्तात्रेय'।

दत्तात्रेय—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि जो पुराणानुसार विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक माने जाते हैं।

विशेष—मार्कंडेय पुराण में इनकी उत्पत्ति के संबंध में जो कथा लिखी है वह इस प्रकार है—एक कोढ़ी ब्राह्मण की बी बड़ी पतिव्रता और स्वामियक्त थी। एक बार वह ब्राह्मण एक जेम्बा पर आसक्त हो गया। उसके आक्रानुसार उसकी पतिव्रता स्त्री उसे अपने कंधे पर बैठा कर झेंधेरी रात में उस जेम्बा के घर लगी। रास्ते में सांख्य ऋषि उपस्था कर रहे थे; झेंधेरी

में कोढ़ी ब्राह्मण का पैर उन्हें लग गया। उन्होंने क्षाप्त किया कि जिसका पैर मुझे लगा है सूर्य निकलते निकलते वह मर जायगा। सती स्त्री ने अपने पति की रक्षा करने और वैश्य से बचने के लिये कहा कि जाओ सूर्य उदय ही न होगा। जब सूर्य का उदय न हुआ और पृथ्वी के नाश की संभावना हुई तब सब देवता मिलकर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने उन्हें अग्नि मृत्ति की स्त्री धनसूया के पास जाने की संमति दी। देवताओं के प्रार्थना करने पर धनसूया ने जाकर ब्राह्मण पत्नी को समझाया और कहा कि तुम सूर्योदय होने को तुम्हारे पति के मरते ही मैं उन्हें फिर सजीव कर दूंगी और उनका शरीर भी नीरोग हो जायगा। इस-पर वह मान गई, तब सूर्य उदय हुआ और पुत्र ब्राह्मण को धनसूया ने फिर जीवित कर दिया। देवताओं ने प्रसन्न होकर धनसूया से वर माँगने के लिये कहा। धनसूया ने कहा—ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों मेरे गर्भ से जन्म ग्रहण करें। ब्रह्मा ने इसे स्वीकार किया; और तदनुसार ब्रह्मा ने सोम बनकर, विष्णु ने दत्तात्रेय बनकर, और महेश्वर ने दुर्वास बनकर धनसूया के घर जन्म लिया। हेतुवराज ने जब अग्नि को बहुत कष्ट पहुँचाया था तब दत्तात्रेय क्रुद्ध होकर सातवें ही दिन गर्भ से निकल आये थे। ये बड़े भारी योगी थे और सदा ऋषिकुमारों के साथ योगमाधव किया करते थे। एक बार ये अपने साथियों और संसार के छुटकारा पाने के लिये बहुत समय तक एक सरोवर में ही डूबे रहे फिर भी ऋषिकुमारों ने उनका संग न छोड़ा, वे सरोवर के किनारे उनके आसरे बैठे रहे। अंत में दत्तात्रेय उन्हें छलने के लिये एक छुंबरी को साथ लेकर सरोवर से निकले और मद्यपाव करने लगे। पर ऋषिकुमारों ने यह समझकर तब भी उनका संग न छोड़ा कि ये पूर्ण योगीश्वर हैं, इनकी आसक्ति किसी विषय में नहीं है। भागवत के अनुसार इन्होंने चौबीस पदार्थों से अनेक शिक्षाएँ ग्रहण की थीं और उन्हीं चौबीस पदार्थों को वे अपना गुरु मानते थे। वे चौबीस पदार्थ थे हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चंद्रमा, सूर्य, कबूतर, बज्रगर, सागर, पतंग, मधुकर (मोँरा और मधुमक्खी), हाथी, मधुहारी (मधुसंग्रह करनेवाली), हरिन, मछली, पिंगवा जेम्बा, गिद्ध, बाजक, कुमारी कन्या, बाण बनानेवाला, छाप, मकड़ी और तिल्ली।

दत्ताप्रदानिक—संज्ञा पु० [सं०] व्यवहार में मट्टहार प्रकार के विवाह पदों में से पाँचवाँ विवाह पद। किसी दान किंवा पुत्र पदार्थ को अन्यायपूर्वक फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न।

दत्तावधान—वि० [सं० दत्त + अवधान] दत्तचित्त। सावधान। उ०—भारत साम्राज्य को भी दत्तावधान होना पड़ा है...। प्रेमचन०, भा० २. पृ० २२२।

दत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान [को०]।

दत्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] सगाई का पत्रका होना।

दत्तेय—संज्ञा पु० [सं०] दंड।

दत्तोपनिषद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम ।

दत्तोक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] पुलस्त्य मुनि का एक नाम ।

दत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. दान । २. सोना ।

दत्त्रिम^१—वि० [सं०] दान में प्राप्त । दानस्वरूप मिला हुआ [को०] ।

दत्त्रिम^२—संज्ञा पुं० [सं०] दत्तक पुत्र ।

दत्त्रेय^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दत्तात्रेय] दे० 'दत्तात्रेय' । उ०—प्यास जग्य दत्त्रेय बुद्ध नारद सुमुनीवर ।—सुजान०, पृ० १ ।

दद्वन—संज्ञा पुं० [सं०] दान । देने की क्रिया ।

दद्वनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दद्वन + हि० ई (प्रत्य०)] दान । उ०—हरिचम हरि चरणा नित बाँटिहि ज्ञान प्यान की दद्वनी ।—भीष्मा० श०, पृ० ६ ।

दद्वमर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़ ।

दद्वरा—संज्ञा पुं० [दे०] छानने का कपड़ा । छात्रा । साफी ।

दद्वरी—संज्ञा पुं० [दे०] १. पके हुए सम्राट्ट के पत्ते पर का दाग । २. दे० 'धरबन' । ३. उत्तर प्रदेश का एक स्थान जहाँ पशुओं का मेला लगता है ।

ददा—संज्ञा पुं० [हि० दादा] दे० 'दादा' । उ०—यह विनोद देसत धरनीधर मात पिता बलभद्र ददा रे ।—सूर (शब्द०) ।

ददिऔर, ददिऔरा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ददिहाल' ।

ददिता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० ददितृ] देनेवाला । दान देनेवाला । दाता [को०] ।

ददियाल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ददिहाल' ।

ददिया ससुर—संज्ञा पुं० [हि० दाया + ससुर] श्वसुर का पिता । ससुर का बाप ।

ददिया सास—संज्ञा स्त्री० [हि० दादी + सास] सास की सास । ददिया ससुर की स्त्री ।

ददिहाल—संज्ञा पुं० [हि० दादा + घालम] १. दादा का कुल । २. दादा का घर ।

ददोड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ददोरा' ।

ददोरा—संज्ञा पुं० [हि० दाद] मच्छर, बरें आदि के काटने या खुजलाने आदि के कारण चमड़े के ऊपर थोड़े से घेरे के बीच में पड़ी हुई थोड़ी सी सूजन जो चप्टी की तरह दिखाई देती है । चकत्ता । चटखर । उ०—बसन फटे उपटे सुबुक बिबुक ददोरे हाथ । चिहुँटव सुमन गुलाब को अब मम जाय बलाय ।—स० सप्तक, पृ० २६१ ।

ददुदुर—संज्ञा पुं० [सं० ददुर] दे० 'दादुर' । उ०—करें सोर मिल्ली चनं ददुदुरं मे । तहाँ बाल लीला करे काम संगे ।—ह० रासो, पृ० २० ।

दद्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाद का रोग । २. कछुपा ।

यौ०—दद्व विनाश ।

दद्व क—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दद्व' [को०] ।

दद्वुज्ज—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रमदं । चकबैड़ ।

दद्वुय—वि० [सं०] दद्व रोग से पीड़ित [को०] ।

दद्व—संज्ञा पुं० [सं०] दाद रोग ।

दद्वुण—वि० [सं०] दे० 'दद्वुण' [को०] ।

दध^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दधि] दे० 'दधि' ।

दध^२—वि० [सं०] धारण करनेवाला । ग्रहण करनेवाला [को०] ।

दध^३—संज्ञा पुं० भाग । हिस्सा । अंश [को०] ।

दध^(४)—संज्ञा पुं० [सं० उदधि, हि० दधि] सागर । समुद्र । उ०—प्रभु चिरत सुण हुष परी प्रफुल्लत, धधे धणसंका । दध बीच बाग असोक देखो, लखी गड़ संका ।—रघु० क०, पृ० १६२ ।

दध^(५)—वि० [सं० दध] धनुष । वर्जित । उ०—आदि चरण में दध धरार गण धनुष गुणगाव ।—रघु० क०, पृ० १२ ।

दधना^(६)—क्रि० प्र० [सं० दहन] जलना । दहना ।

दधसार^(७)—संज्ञा पुं० [सं० दधिसार] दे० 'दधिसार' ।

दधि^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. दही । जमाया हुआ दूध । २. बत्न । कपड़ा ।

दधि^२—पुं० [सं० उदधि] समुद्र । सागर ।

विशेष—इस अर्थ में दधि शब्द का प्रयोग सूरदास ने बहुत किया है ।

दधिकारो—संज्ञा पुं० [सं० दधि + कदमं > हि० काँधो (= कीचड़)] जन्माष्टमी के समय होनेवाला एक प्रकार का उत्सव, जिसमें लोग हलदी मिला हुआ दही एक दूसरे पर फेंकते हैं । उ०—यशुमति भाग सुहागिनी जिन आयो हरि सो पूत । करहु ललन की भारती री अब दधिकावो सुत ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—कहते हैं, श्रीकृष्णजन्म के समय गोपों और गोपिकाओं ने आनंद में मग्न होकर हलदी मिला दही एक दूसरे पर इतना अधिक फेंका था कि शोकुल की गलियों में दही का कीचड़ सा हो गया था ।

दधिका, दधिकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक देवता जो घोड़े के आकार के माने जाते हैं । २. घोड़ा । अश्व ।

दधिकूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फटे हुए दूध का वह अंश जो पानी निकलने पर बच जाता है । छेना ।

दधिचार—संज्ञा पुं० [सं०] मथानी ।

दधिज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधिजात' ।

दधिजात^१—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन । मक्खनीठ ।

दधिजात^२—संज्ञा पुं० [सं० उदधि + जात (= उत्पन्न)] चंद्रमा । उ०—देखो मैं दधिजात ।—सूर (शब्द०) ।

दधित्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कपित्थ । कैव ।

दधित्थाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] जोबान ।

दधिदान—संज्ञा पुं० [सं० दधि + दान] दही का कर । दही पर लगनेवाला कर । उ०—कृष्ण के दधिदान माँगने पर गोपियों की क्रुभण से उत्पन्न, बाण्युद्ध करने, धमकी देने और बदले में धमकी पाने का अवसर मिलता है ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १११ ।

दधिदानी—वि० [सं० दधिदान] दही का दान या कर देनेवाला ।

उ०—कब को मयो रे छोटा दधिवाती ।—मकवरी०, पृ० ४१ ।

नु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार बान के सिने कल्पित गी जिसकी कल्पना बही के मटके में की जाती है ।

नी—संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें दही रखा हो । दही रखने का बर्तन [को०] ।

मा—संज्ञा पुं० [सं० दधिनामन्] कैव का पेड़ ।

पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद अपराजिता ।

पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम ।

पु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पकवान जो दही में फेंटे हुए साबि बान के चूर्ण को पी में तलने से बनता है ।

स—संज्ञा पुं० [सं०] कैव । कपिश्य ।

ड—संज्ञा पुं० [सं० दधिमण्ड] दही का पात्र ।

डोद—संज्ञा पुं० [सं० दधिमण्डोद] पुराणानुसार दही का समुद्र ।

थन—संज्ञा पुं० [सं० दधिमन्थन] दही को मथने की क्रिया [को०] ।

थाना—संज्ञा पुं० [सं० दधिमन्थन] दही बिलोने या मथने का काम । उ०—सो ता दिन में वह ब्रजवासिनी जब दधिमन्थन को बैठती तब ही श्री गोबर्धननाथ जी का पास आइ बिराजते ।—श्री सी बावन०, भा० २, पृ० ६ ।

ख—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामचंद्र जी की सेना का एक बंदर जो सुग्रीव का मामा और मधुवन का रक्षक था । रामायण के अनुसार यह सुग्रीव का ससुर था । २. फनवाले साँपों में श्रेष्ठ एक नाग का नाम [को०] ।

र—संज्ञा पुं० [देश०] जीवतिका की जाति की एक लता अर्कपुष्पी । अंबाहुली ।

शेष—इस लता के पत्ते खड़े और पान के आकार के होते हैं । इसकी डंठियों भाँति में से दूध निकलता है और इसमें सुर्यमुखी की तरह के फूल लगते हैं । इसका व्यवहार औषध में होता है ।

कत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधिमुल' [को०] ।

र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधिमंड' [को०] ।

ग—संज्ञा पुं० [सं०] बंदर । बानर [को०] ।

पय—संज्ञा पुं० [सं०] घृत । पी [को०] ।

मय—संज्ञा पुं० [सं० दधि + सम्भव] मक्खन । नवनीत । नैवू ।

गर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दही का समुद्र ।

र—संज्ञा पुं० [सं०] नवनीत । मक्खन ।

त—संज्ञा पुं० [सं० उदधि + सुत] १. कमल । उ०—देखो मैं दधिसुत में दधिजात । एक प्रचंडी देखि सबी रो रिपु मैं रिपु जु समात ।—सूर०, १०।१७२ २. मुक्ता । मोती । उ०—दधिसुत जाये नंद दुवार । निरखि नैन अवभयी मनमोहन रटत बैह कर बारंबार ।—सूर०, १०।१७३ ३. उदुपति । चंद्रमा । उ०—(क) राखे दधिसुत क्यों न दुरावति । हों तु कहति कृष्णानु बंदिनी काँई जीव सदावति ।—सूर०, १०।१७४ ।

(क) दधिसुत जात हों उहि देस । झारिका है त्याग सुंदर सकल भुवन नरेस ।—सूर०, १०।४२६४ ।

यौ०—दधिसुत सुत = चंद्रमा का पुत्र, दूध, अर्थात् विद्वान् । पंडित । उ०—जिनके हरि बाहन नहीं दधिसुत सुत जेहि नाहि । तुबसी ते नर तुच्छ हैं बिना समीर उड़ाहि ।—स० सप्तक, पृ० २१ ।

४. आसंचर दैत्य । उ०—विष्णु बचन अपला प्रतिहारा । तेहि ते आपुन दधिसुत मारा ।—विश्राम (शब्द०) । ५. विष । जहर उ०—नहि विभूति दधिसुत न कंठ यह भृगमद चंदन चरचित तन ।—सूर (शब्द०) ।

दधिसुत^२—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन । नवनीत ।

दधिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं० उदधिसुता] सीप । उ०—दधिसुता सुत अवलि ऊपर इंद्र आयुध जानि—सूर (शब्द०) ।

यौ०—दधिसुता सुत = सीप का पुत्र—मोती । मुक्ता ।

दधिस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] दही की मलाई ।

दधिस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] तक्र । छाछ । मट्ठा ।

दधी^५—संज्ञा पुं० [सं० उदधि] दे० 'उदधि' । उ०—रिछं बानरायं, मय सो सहायं । हनुम्मान तायं, दधी सीस आयं ।—पृ० रा०, २।२४ ।

दधीच^५—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधीचि' । उ०—जीत महीपति हाइनहीं मई जोत दधीच के हाइन ही मैं ।—मति० प्र०, पृ० ३६२ ।

यौ०—दधीचास्थि = दे० 'दधीचस्थि' ।

दधीचि—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि जो यास्क के मत से अथर्व के पुत्र थे और इसी लिये दधीचि कहलाते थे । किसी पुराण के मत से ये कर्दम ऋषि की कन्या और अथर्व की पत्नी कांति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और किसी पुराण के मत से ये शुक्राचार्य के पुत्र थे ।

विशेष—वेदों और पुराणों में इनके संबंध में अनेक कथाएँ हैं, जिनमें से विशेष प्रसिद्ध यह है कि इंद्र ने इन्हें मधुविद्या सिखाई थी और कहा था कि यदि तुम यह विद्या बतलाओगे तो हम तुम्हें मार डालेंगे । इसपर अश्विभुगल ने दधीचि का सिर काटकर भलग रख दिया और उनके घड़े पर घोड़े का सिर लगा दिया और तब उनसे मधुविद्या सीखी । जब इंद्र को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने आकर उनका घोड़ेवाला सिर काट डाला । इसपर अश्विभुगल ने उनके घड़े पर फिर वही मनुष्यवाला पहला सिर लगा दिया । एक बार वृत्रासुर के उपद्रव से बहुत दुःखित होकर सब देवता इंद्र के पास गए । उस समय निश्चित हुआ कि दधीचि की हड्डियों के बने हुए अस्त्र के प्रतिरिक्त और किसी अस्त्र से वृत्रासुर मारा न जा सकेगा । इसलिये इंद्र ने दधीचि से उनकी हड्डियाँ माँगी । दधीचि ने अपने पुराने कबू और हत्याकारी इंद्र को भी विमुक्त छोड़ना उचित न समझा और उनके लिये अपने प्राण त्याग दिए । तब उनकी हड्डियों से अस्त्र बनाकर वृत्रासुर मारा गया । सभी से दधीचि का बड़ा भारी शान्ति होना प्रसिद्ध है । महाभारत में यह भी लिखा है कि जब दध

वे हरिद्वार में बिना बिज जी के यज्ञ किया था, तब इन्होंने दक्ष को बिज जी के निर्मानित करने के लिये बहुत समझाया था, पर इन्होंने नहीं माना, इसलिये वे यज्ञ छोड़कर चले गए थे। एक बार दधीचि बड़ी कठिन तपस्या करने लगे। उस समय इंद्र ने डरकर इन्हें तप से भ्रष्ट करने के लिये असंबुधा नामक अप्सरा भेजी। एक बार जब वे सरस्वती तीर्थ में तपस्या कर रहे थे तब असंबुधा उनके सामने पहुँची। उसे देखकर दक्षका बीर्य स्थलित हो गया जिससे एक पुत्र हुआ। इसी से उस पुत्र का नाम सारस्वत हुआ।

दधीक्यस्थि—संज्ञा पुं० [सं० दधीचि + अस्थि] १. इंद्रास्त्र। वज्र। २. हीरा। हीरक।

दध्न्—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध ग्रंथों में से एक ग्रंथ।

दध्यानी—संज्ञा पुं० [सं०] सुदर्शन वृक्ष। मदनमस्त।

दध्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] दही की मलाई।

दध्युत्तरक, दध्युत्तरग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दध्युत्तर' [को०]।

दन—संज्ञा पुं० [सं० दिन] दिवस। दिन (दि०)।

दनकर—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, प्रा० दिण्यर, दण्यर] दिनकर। सूर्य (दि०)।

दनगा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत का छोटा टुकड़ा।

दनद्वाना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. दनदन शब्द करना। २. प्रानंद करना। खुशी मनाना।

दनमणि—संज्ञा पुं० [सं० दिनमणि] धूमणि। सूर्य (दि०)।

दनादन—क्रि० वि० [प्रनु०] दनदन शब्द के साथ। जैसे,—बनादन तोरें सुटने लगीं।

दनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष की एक कन्या जो कश्यप को व्याही थी।

विशेष—इसके पालीस पुत्र हुए थे जो सब दानव कहलाते हैं। उनके नाय वे हैं—विप्रचिति, शंबर, मधुचि, पुलोमा, असिलोमा, कैली, दुर्जय, अयःसिरी, अश्वशिरा, अश्वशंकु, गगनमूर्धा, स्वर्मानु, अश्व, अश्वपति, वृषभर्षा, अजक, अश्वघ्रीव, सुक्म, तुहुंड, एकपद, एकचक्र, विरुपाक्ष, महोदर, निचंद्र, निकुंभ, कुजट, कपट, शरभ, सलभ, सूर्य, चंद्र, एकाक्ष, अमृतप, प्रसंब, नरक, बातापी, शठ, गविष्ठ, बनायु और दीर्घबिह्व। इनमें जो चंद्र और सूर्य नाम प्राप्त हैं, वे देवता चंद्र और सूर्य से मिले हैं।

दनु—संज्ञा पुं० एक दानव का नास जो श्री दानव का लड़का था।

विशेष—इंद्र द्वारा नस्त एवं पीड़ित इस राक्षस को राम और लक्ष्मण ने मारा था। शिरविहीन कबंध की प्राकृति का होने से इसका एक नाम दनुकबंध भी है।

दनुज—संज्ञा पुं० [सं०] दनु से उत्पन्न, असुर। राक्षस।

दनुजदक्षिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

दनुजघटि—संज्ञा पुं० [दनुजघटि] घुर। देवता [को०]।

दनुजपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दनुज' [को०]।

दनुजराय—संज्ञा पुं० [सं० दनुज + हि० राय] दानवों का राजा हिरण्यकशिपु।

दनुजारि—संज्ञा पुं० [सं०] दानवों के शत्रु।

दनुजारी—संज्ञा पुं० [सं० दनुजारि] दनुजों के शत्रु। विष्णु। उ०—बीरहि पंग मिले दनुजारी।—मानस, १।१३६।

दनुजेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० दनुजेंद्र] दानवों का राजा,—रावण।

दनुजेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिरण्यकशिपु। २. रावण।

दनुजसंभव—संज्ञा पुं० [सं० दनु-संभव] दनु से उत्पन्न, दानव।

दनुजसून—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दनुजसंभव'।

दनु—संज्ञा स्त्री० [सं० दनु] दे० 'दनु'।

दन्न—संज्ञा पुं० [प्रनु०] 'दक्ष' शब्द जो तोप आदि के छूटने प्रयत्न इसी प्रकार के और किसी कारण से होता है।

दपट—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँट के साथ प्रनु०] बुझकी। डपट। डाँटने या डपटने की क्रिया।

दपटना—क्रि० प्र० [हि० डाँटना के साथ प्रनु०] किसी को डराने के लिये बिगड़कर जोर से कोई बात कहना। डाँटना। बुझकना।

दपु—संज्ञा पुं० [सं० दप] दप। अहंकार। अभिमान। शेखी। घमंड। उ०—सात दिवस गोवर्धन राख्यो इंद्र गयो दपु छोड़ि।—सूर (शब्द०)।

दपेट—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दपट'।

दपेटना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दपटना'।

दप्प—संज्ञा पुं० [सं० दप, प्रा० दप्प] दे० 'दप'।

दफतर—संज्ञा पुं० [फा० दफतर] दे० 'दफतरी'।

दफतरी—संज्ञा पुं० [फा० दफतरी] दे० 'दफतरी'।

दफतरीखाना—संज्ञा पुं० [फा० दफतरीखाना] दे० 'दफतरीखाना'।

दफती—संज्ञा स्त्री० [प्र० दफती] कागज के कई तख्तों को एक में बाँध कर बनाया हुआ गत्ता जो प्रायः जिल्द बाँधने आदि के काम में आता है। गत्ता। कुट। बसली।

दफदर—संज्ञा पुं० [हि० दफतर] दे० 'दफतरी'। उ०—तबलक तल दया को दफदर, संत कचहरी भारी।—बरनी० बानी, पृ० ३।

दफन—संज्ञा पुं० [प्र० दफन] १. किसी चीज को जमीन में गाड़ने की क्रिया। २. मुरदे को जमीन में गाड़ने की क्रिया।

दफनाना—क्रि० प्र० [प्र० दफन + आना] १. जमीन में दबाया। गाड़ना। २. (लाश०) किसी दुर्घटनद्वारा, कटुता आदि को पूरी तरह भुसा देना।

दफरा—संज्ञा पुं० [देश०] काठ का वह टुकड़ा या इसी प्रकार का और कोई पदार्थ जो किसी नाव के दोनों ओर इसलिये लगा दिया जाता है कि जिसमें किसी बूखरी नाव की टक्कर से उसका कोई बंग टूट न जाय। हौंस (लश०)।

दफराना—क्रि० प्र० [देश०] १. किसी नाव को किसी बूखरी नाव के साथ टक्कर मड़ने से बचाया। २. (पाव) लड़ा करना।—(लश०) ३. बचाया। रखा कराया।

दशम—संज्ञा पुं० [का० दश वा दशम] दे० 'दश' । उ०—बैठ से लेकर दफले और सुसिद्ध तक सभी प्रकार के बाजे थे ।
—काश्या०, पु० १७३ ।

दफा^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० दफप्रह्] १. बार । बेर । जैसे,—(क) हम तुम्हारे यहाँ कम दो दफा गए थे । (ख) उसे कई दफा समझाया मगर उसने नहीं माना । २. किसी कर्मचारी कीताब का वह एक अंश जिसमें किसी एक अपराध के संबंध में व्यवस्था हो । घारा ।

मुद्दा—दफा खाना=अभियुक्त पर किसी दफा के नियमों को चढाना । अपराध का दण्ड आरोपित करना । जैसे—फौज-दारी में आज उसपर चोरी की दफा लग गई ।

१. दर्जा । क्सास । श्रेणी । कक्षा । उ०—किस दफे में पढ़ते हो मेरा ?—रंगभूमि, भा० २, पु० ४६६ ।

दफा^२—वि० [प्र० दफप्रह्] दूर किया हुआ । हटाया हुआ । तिरस्कृत । जैसे,—किसी तरह इसे यहाँ से दफा करो ।

मुद्दा—दफा दफान करना = तिरस्कृत करके दूर कराना या हटाना ।

दफादार—संज्ञा पुं० [प्र० दफप्रह् (= समूह) + का० दार] फौज का वह कर्मचारी जिसकी अधीनता में कुछ सिपाही हों ।

विशेष—सेना में दफादार का पद प्रायः पुलिस के जमादार के पद के बराबर होता है ।

दफादारी—संज्ञा स्त्री० [हि० दफादार + ई (प्रत्य०)] १. दफादार का पद । २. दफादार का काम ।

दफोना—संज्ञा पुं० [प्र० दफोना] गड़ा हुआ धन या खजाना ।

दफतर—संज्ञा पुं० [का० दफतर] १. स्थान जहाँ किसी कारखाने आदि के संबंध की कुल लिखा पकी और लेन देन आदि हो । आफिस । कार्यालय । २. बड़ा भारी पत्र । लंबी चौड़ी चिट्ठी । ३. सविस्तर वृत्तांत । चिट्ठा ।

दफतरी—संज्ञा पुं० [का० दफतर] १. किसी दफतर का वह कर्मचारी जो वहाँ के कागज आदि पुस्त करता और रजिस्ट्रों आदि पर कल खींचता अथवा इसी प्रकार के और काम करता हो । २. किताबों की जिस बंधनेवाला । जिल्दसाज । जिल्दबंद ।

यौ०—दफतरीखाना ।

दफतरीखाना—संज्ञा पुं० [का० दफतरीखानह्] वह स्थान जहाँ किताबों की जिल्द बंधती हो अथवा दफतरी बैठकर अपना काम करते हों ।

दफती—संज्ञा स्त्री० [प्र० दफतीन] दे० 'दफती' ।

दफतीन—संज्ञा स्त्री० [प्र०] दफती [स्त्री] ।

दबंग—वि० [हि० दबाव या दबाना] प्रभावशाली । दबाववाला । जिसका लोगों पर रोबदाब हो । जैसे,—वे बड़े दबंग आदमी हैं, किसी से नहीं डरते ।

दबंगपन—संज्ञा पुं० [हि० दबंग + पन] दबबाना । रोबदाब । उ०—बाहिए कुछ दबंगपन रखना । दब बहुत दाब में न आएँ हम ।
—शुभते०, पु० ३६ ।

दब—संज्ञा स्त्री० [हि० दबना] बड़ों के प्रति संकोच या डर । दे०

'दाब' । उ०—कहा करों कछु बनि नहि भावै अति गुरबब की दब री ।—बनारस, पु० १३३ ।

यौ०—दबगर ।

दबक—संज्ञा स्त्री० [हि० दबकना] दबने या छिपने की क्रिया या भाव । २. सिकुड़न । शिकन । ३. बातु आदि को जंबा करने के लिये पीटने की क्रिया ।

यौ०—दबकगर ।

दबकगर—संज्ञा पुं० [हि० दबक + गर (प्रत्य०)] दबका (तार) बनानेवाला ।

दबकना^१—क्रि० प्र० [हि० दबना] १. भय के कारण किसी लँकरे स्थान में छिपना । डर के मारे छिपना । जैसे,—(क) कुत्ते को देखकर बिल्ली का बच्चा घालमारी के नीचे दबक रहा । (ख) सिपाही को देखकर चोर कोने में दबक रहा । २. लुकना । छिपना । जैसे,—शेर पहले से ही झाड़ी में दबका बैठा था, हिरन के आते ही उसपर झपट पड़ा ।

क्रि० प्र०—जाना ।—रहना ।

दबकना^२—क्रि० स० किसी बातु को हथौड़ी से चोट लगाकर बड़ाना या चौड़ा करना । पीटना ।

दबकना^३—क्रि० स० [सं० दपं ?] डौटना । डपटना । डुबकना । उ०—दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक, मगन मही में एक, गगन उड़ात हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

दबकनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दबना] भापी का वह हिस्सा जिसके द्वारा उसमें हवा बसती है ।

दबकबाना—क्रि० स० [हि० दबकना का प्रे० रूप] दबकाने का काम किसी दूसरे से कराना । दूसरे को दबकाने में प्रवृत्त करना ।

दबका—संज्ञा पुं० [हि० दबकना (= तार आदि पीटना)] कामदानी का सुनहला या खपहला छिपटा तार ।

दबकाना—क्रि० स० [हि० दबकना का सक० रूप] १. छिपाना । डौटना । घाड़ में करना । २. डौटना ।—(ब००) ।

दबकी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] सुराही की तरह का मिट्टी का एक बर्तन जिसमें पानी रखकर चरबाहे और खेतितर खेत पर ले जाया करते हैं ।

दबकी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दबकना] दबकने या छिपने की क्रिया या भाव ।

मुद्दा—दबकी मारना = छिप जाना । प्रदृश्य हो जाना ।

दबके का सलमा—संज्ञा पुं० [?] चमकीला सलमा । दबके का बना हुआ सलमा जो बहुत चमकीला होता है ।

दबकैया—संज्ञा पुं० [हि० दबकना + ऐया (प्रत्य०)] सोने चाँदी के तारों को पीटकर बड़ाने, खपटा और चौड़ा करनेवाला । दबकगर ।

दबगर^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. डाल बनानेवाला । २. चमके के कुम्भे बनानेवाला ।

द्वयगर^२—संज्ञा पुं०, वि० [हि० दब (= दाब) + गर] दाब या आघात में पड़ा हुआ। अधिकार माननेवाला।

द्वयदानी—क्रि० प्र० [हि० दवाना] दवाना। अधिकार में करना। उ०—इत तुलसी छवि तुलसी छोटति परिमल लपटे। इत कसोद आमोद गोद भरि भरि सुख दबटै।—नंद० पं०, पृ० १२।

द्वयदुसक—वि० [हि० दवाना + दुसना] डरपोक। सब से दबने और डरनेवाला।

द्वयदवा—संज्ञा पुं० [प्र०] रोबदाब। आतंक। प्रताप।

द्वयना—क्रि० प्र० [सं० दमन] १. भार के नीचे धाना। बोझ के नीचे पड़ना। जैसे, आदमियों का मकान के नीचे दबना। २. ऐसी अवस्था में होना जिसमें किसी धोर से बहुत जोर पड़े। दाब में धाना। ३. (किसी भारी शक्ति का सामना होने अथवा दुर्बलता आदि के कारण) अपने स्थान पर बंठकर रहना। पीछे हटना। ४. किसी के प्रभाव या आतंक में आकर कुछ कह न सकना अथवा अपने इच्छानुसार आचरण न कर सकना। दबाव में पड़कर किसी के इच्छानुसार काम करने के लिये विवश होना। जैसे,—(क) कई कारणों से वे हमसे बहुत दबते हैं। (ख) आप तो उनसे कमजोर नहीं हैं, फिर क्यों दबते हैं। ५. अपने गुणों आदि की कमी के कारण किसी के मुकाबले में ठीक या अच्छा न जंचना। जैसे,—यह मामला इस कंठे के सामने दब जाती है। ६. किसी बात का अधिक बढ़ या फैल न सकना। किसी बात का वहाँ का तहाँ रह जाना। जैसे, खबर दबना, मामला दबना। उ०—नाम सुनत ही तूँ गयो तब धीरे मन धीरे। दबै नहीं चित चढ़ि रह्यो धबहुँ चढ़ाए तयोर।—बिहारी (शब्द०)। ७. उमड़ न सकना। शांत रहना। जैसे, बलवा दबना, क्रोध दबना। ८. अपनी चीज का अनुचित रूप से किसी दूसरे के अधिकार में चला जाना। जैसे,—हमारे सो रुपए उनके यहाँ दबे हुए हैं। ९. ऐसी अवस्था में आ जाना जिसमें कुछ बस न चल सके। जैसे,—वे आजकल रुपए की तंगी से दबे हुए हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

१०. भीमा पड़ना। मंद पड़ना।

मुहा०—दबी आवाज = भीमी आवाज = दह आवाज जिसमें कुछ जोर न हो। दबी जवान से कहना = अस्पष्ट रूप से कहना। किसी प्रकार के भय आदि के कारण साफ साफ न कहना बल्कि इस प्रकार कहना जिससे केवल कुछ ध्वनि व्यक्त हो। दबे दबाए रहना = शांतिपूर्वक या चुपचाप रहना। उपद्रव या कार्रवाई न करना। दबे पाँव या पैर (चलना) = इस प्रकार (चलना) जिसमें किसी को कुछ घाहट न लगे।

११. संकोच करना। झंपना।

द्वयमो—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बकरा जो हिमालय में होता है।

द्वयवाना—क्रि० स० [हि० दबना का प्रे० रूप] दवाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को दवाने में प्रयुक्त कराना।

द्वयस—संज्ञा पुं० [?] अहाज पर की रसद तथा दूसरा सामान। अहाजी गोदाम में का माल।

द्वय—वि० [हि० दबना] दबाव में पड़ा हुआ। भार से दबा हुआ। विवश।

द्वयार्ह—संज्ञा स्त्री० [हि० दवाना] अनाज निकालने के लिये बालों या डंठलों को बैलों के पैरों से रोंदवाने का काम।

द्वयारु—वि० [हि० दवाना] १. दवानेवाला। २. जिस (गाड़ी आदि) का अगला हिस्सा पिछले हिस्से की अपेक्षा अधिक बोलस हो। बम्बू।

द्वयाना—क्रि० स० [सं० दमन] [संज्ञा, दाब, दबाव] १. ऊपर से भार रखना। बोझ के नीचे लाना (जिसमें कोई चीज नीचे की धोर घँस जाय अथवा इसपर उच्चर हट न सके)। जैसे, पत्थर के नीचे किताब या कपड़ा दवाना। २. किसी पदार्थ पर किसी धोर से बहुत जोर पहुँचाना। जैसे, उँगली से काग दवाना, रस निकालने के लिये नीबू के टुकड़े को दवाना, हाथ या पैर दवाना। ३. पीछे हटना। जैसे,—राज्य की सेना शत्रुओं को बहुत दूर तक दबाती चली गई। ४. जमीन के नीचे गाड़ना। दफन करना।

संयो० क्रि०—देना।

५. किसी मनुष्य पर इतना प्रभाव डालना या आतंक जमाना कि जिसमें वह कुछ कह न सके अथवा विपरीत आचरण न कर सके। अपनी इच्छा के अनुसार काम कराने के लिये दबाव डालना। जोर डालकर विवश करना। जैसे,—(क) कल बातों बातों में उन्होंने मुझे इतना दबाया कि तुम कुछ बोल ही न सके। (ख) उन्होंने दोनों आदमियों को दबाकर आपस में मेल करा दिया। ६. अपने गुण या महत्व की अधिकता के कारण दूसरे को मंद या मात कर देना। दूसरे के गुणों या महत्व का प्रकाश न होने देना। जैसे,—इस सई इमारत ने आपके मकान को दबा दिया।

संयो० क्रि०—देना।—रखना।

७. किसी बात को उठने या फैलने न देना। जहाँ का तहाँ रहने देना। ८. उमड़ने से रोकना। दमन करना। शांत करना। जैसे, बलवा दवाना, क्रोध दवाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

८. किसी दूसरे की चीज पर अनुचित अधिकार करना। कोई काम निकालने के लिये अथवा बेईमानी से किसी की चीज अपने पास रखना। जैसे,—(क) उन्होंने हमारे सो रुपए दबा लिए। (ख) आपने उनकी किताब दबा ली।

संयो० क्रि०—बैठना।—रखना।—लेना।

१०. भौंक के साथ बढ़कर किसी चीज को पकड़ लेना।

संयो० क्रि०—लेना।

११.—ऐसी अवस्था में ले जाना जिसमें मनुष्य असहाय, दीन या विवश हो जाय। जैसे,—आजकल रुपए की तंगी ने उन्हें दबा दिया।

द्वयवा—संज्ञा पुं० [दे०] युद्ध की सामग्री में लकड़ी का एक प्रकार

का बहुत बड़ा संदूक जिसमें कुछ आदमियों को बैठाकर तुल्य रूप से सुरंग खोदने प्रयत्न इसी प्रकार का घोर कोई उपद्रव करने के लिये जानु के किन्ने में उतार देते हैं।

दाव—संज्ञा पुं० [हि० दवाना] १. दवाने की क्रिया। चाँप।

क्रि० प्र०—दावना।—में दाना या पड़ना।

२. दवाने का भाव। चाँप। ३. रोव।

क्रि० प्र०—दावना।—मानना।—में दाना या पड़ना।

खिला—संज्ञा पुं० [देश०] खुरपी या लुचनी के आकार का लकड़ी का बना हुआ हुलवाइयों का एक जोर जिससे वे बेसन आदि सुगते, सोबा बनाते या चीनी की चाखनी आदि फेटते हैं।

बीज—वि० [फ्रा वीज] जिसका बल मोटा हो। गाढ़ा। संगीन।

बीर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. लिखनेवाला। मुंशी। २. एक प्रकार के महाराष्ट्र ब्राह्मणों की उपाधि।

बूचना—क्रि० स० [हि० बबोचना] ३० 'बबोचना'। उ०—पंजे से दबूच बाँच से चमड़ी मोचकर—।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० २०।

बूसा—संज्ञा पुं० [देश०] १. जहाज का पिछला भाग। पिछल। २. बड़ी नाव का पिछला भाग जहाँ पतवार लगी रहती है। ३. जहाज का कमरा।—(लक्ष०)।

बेरना—क्रि० स० [हि० दवाना] ३० 'दबोरना'।

बेला—वि० [हि० दवाना + एला (प्रत्य०)] १. दबा हुआ। जिसपर दबाव पड़ा हो। २. जल्दी जल्दी होनेवाला (काम)। (लक्ष०)।

बैल—वि० [हि० दवाना + ऐल (प्रत्य०)] दबनेवाला। दबू। दबैला। उ०—सुख सौ लाज सिधारी सुरग कों काहू की हौ न दबैल।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४०१।

बैला—वि० [हि० दवाना + एला (प्रत्य०)] १. जिसपर किसी का प्रभाव या दबाव हो। दबाव में पड़ा हुआ। किसी के दबनेवाला। दबू।

बोचना—क्रि० स० [हि० दवाना] १. किसी को सहसा पकड़कर दबा लेना। बर दवाना। जैसे—बिल्ली ने तोते को जा दबोचा। २. छिपाना।

संयो० क्रि०—लेना।

बोरना^५—क्रि० स० [हि० दवाना] अपने सामने ठहरने न देना। दवाना। उ०—दबकि दबोरे एक बारिचि में बोरे एक मगन मही में एक यमन उड़ात हैं।—पुलसी (जम्ब०)।

बोस—संज्ञा स्त्री० [देश०] चकमक पत्थर।

बोसना—क्रि० स० [देश०] सराब पीना।

बोसा—संज्ञा पुं० [हि० दवाना + बोस (प्रत्य०)] लकड़ी का वह कुंडा जिसे पानी में भिगाए हुए नील के ठंडलों आदि को दवाने के लिये ऊपर से रख देते हैं।

बोनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दवाना + बोनी (प्रत्य०)] १. कसेरों का बोहे का जोर जिससे वे बरतनों पर फूल पड़े आदि

उभारते हैं। २. बोजनी के ऊपर की ओर लगी हुई लकड़ी (बोसाहे)।

दब^५—संज्ञा पुं० [सं० दब्य, प्रा० दब्य] दब्य। दब। संपत्ति। सामान। उ०—जो मिलत मुहि भाइ। देउं बन बंवर दबू।

—पृ० रा०, १२। ११७।

दबू^१—वि० [हि० दवाना + ऊ (प्रत्य०)] दबनेवाला। दबैला।

दभ^१—वि० [सं०] १. मरप। चोड़ा। कम। २. कुंठ। घसीटण।

दभ^२—संज्ञा पुं० सागर। समुद्र। उदधि (की०)।

दमंगल—संज्ञा पुं० [फ्रा० दंगल ? या हि० दमगल] बसेड़ा। उपद्रव। युद्ध। उ०—बिबि हते वीर महाबल गह बाल हत दमंगल। बिल प्रभव कैकवा दवारे, गजे सुर गहरं।—रघु० क०, पृ० १५२।

दमंकना^५—क्रि० प्र० [हि० दमकना] चमकना। उ०—बहु कृपान तरवारि चमंकहि। अनु बहु विधि दामिनी दमंकहि।—मानस, ६। ८६।

दमसा—संज्ञा पुं० [हि० दाम + संस] मोल ली हुई जायदाद।

दम^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बंद जो दमन करने के लिये दिया जाता है। सजा। २. बाह्येन्द्रियों का दमन। इन्द्रियों को बल में रखना और चित्त को बुरे कामों में प्रवृत्त न होने देना। ३. कीचड़। ४. घर। ५. एक प्राचीन महर्षि जिनका उल्लेख महाभारत में है। ६. पुराणानुसार मरुत राजा के पौत्र जो बभ्रु की कन्या इंद्रीना के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

विशेष—कहते हैं कि ये ती वर्ष तक माता के गर्भ में रहे थे। इनके पुरोहित ने समझा था कि जिसकी जननी को ती वर्ष तक इस प्रकार इन्द्रियदमन करना पड़ा है वह बाह्य स्वयं भी बहुत ही दमनशील होगा। इसी लिये उसने इनका नाम दम रखा था। ये वेद वेदांगों के बहुत अच्छे ज्ञाता और अनुविद्या में बड़े प्रवीण थे।

७. बुद्ध का एक नाम। ८. भीम राजा के एक पुत्र और दमयंती के एक भाई का नाम। ९. विष्णु। १०. दवाव।

दम^२—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. साँस। दवाव।

क्रि० प्र०—दाना।—चलना।—जाना।—लेना।

मुहा०—दम घटकना = साँस रुकना, विशेषतः मरने के समय साँस रुकना। दम उलटना = ३० 'दम घटकना'। दम उलटना = (१) व्याकुलता होना। चबराहट होना। जो चबरावा। (२) ३० 'दम घुटना'। दम खाना = ३० 'दम लेना'। दम खिचना = ३० 'दम घटकना'। दम खींचना = (१) छुप रह जाना। न बोखना। (२) साँस खींचना। साँस ऊपर चढ़ाना। दम घुटना = हवा की कमी के कारण साँस रुकना। साँस न मिया जा सकना। दम घोटना = (१) साँस न लेने देना। किसी को साँस लेने से रोकना। (२) बहुत कष्ट देना। दम घोटकर मारना = (१) गला दबाकर मारना। (२) बहुत कष्ट देना। दम चढ़ना = ३० 'दम फूलना'। दम चुराना = जान बूझकर साँस रोकना।

विशेष—यह क्रिया विशेषतः मक्कार जानवर करते हैं। बंदर मार खाने के समय इसलिये दम चुराता है कि जिसमें मारने

बाधा कहे गुरवा समझ ले । जोमड़ी कभी कभी अपने आप को मरी हुई जतलाने के लिये दम चुराती है । साब चढ़ाने के समय बच्चा को जोड़े भी साँस रोककर बैठ फुजा लेते हैं जिसमें पेटी या बंद झण्डी तरह न कसा जा सके ।

दम दूटना = (१) साँस बंद हो जाना । प्राण निकलना । (२) दोड़ने या तैरने आदि के समय इतना अधिक हाँफने लगना कि जिसमें आगे दोड़ा या तैरा न जा सके । दम तोड़ना = मरते समय झटके से साँस लेना । अंतिम साँस लेना । दम पचना = निरंतर परिश्रम के कारण ऐसा अभ्यास होना जिसमें साँस न फूले ।—(कुपतीबाज) । दम फूलना = (१) अधिक परिश्रम के कारण साँस का जल्दी जल्दी चलना । हाँफना । (२) दमे के रोग का दौरा होना । दम बंद करना = बलपूर्वक किसी को बोलने आदि के रोकना । दम बंद होना = भय या घातक आदि के कारण बिलकुल थप रह जाना । दम भरना = (१) किसी के प्रेम प्रपञ्च मित्रता आदि का पक्का आरोसा रखना और समय समय पर अधिमानपूर्वक उसका वर्णन करना । जैसे,—(क) वे उनकी मुहब्बत का दम भरते हैं । (ख) हम आपकी दोस्ती का दम भरते हैं । (२) परिश्रम या दोड़ने आदि के कारण साँस फूलने लगता और थकावट आ जाना । परिश्रम के कारण थक जाना । जैसे,—इतनी सीढ़ियाँ चढ़ने में हमारा दम भर गया । (३) भाव का हाथ या लकड़ी मुँह पर रखकर साँस खींचना । इस क्रिया से उसका क्रोध शांत होता प्रपञ्च भोजन पचता है (कलंदर) । (४) किसी को कुशती लड़ाकर थकाना (पहलवानों की परीक्षा) । दम मारना = (१) विश्राम करना । सुस्ताना । (२) बोलना । कुछ कहना । बूँ करना । जैसे,—आपकी क्या मजाल जो इस बात में दम भी मार सकें । (३) हस्तक्षेप करना । दखल देना । जैसे,—इस जगह कोई दम मारनेवाला भी नहीं है । दम लेना = विश्राम करना । ठहरना । सुस्ताना । दम साधना = (१) श्वास की गति को रोकना । साँस रोकने का अभ्यास करना । जैसे, प्राणायाम करनेवालों का दम साधना, गोता लगानेवालों का दम साधना । (२) थप होना । मौन रहना । जैसे,—(क) इस मामले में अब हम भी दम साधेंगे । (ख) स्वर्णों का नाम सुनते ही आप दम साध गए ।

२. नके आदि के लिये साँस के साथ धुँआँ खींचने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—खींचना ।

मुहा०—दम मारना = गंजि या चरस आदि को बिलम पर रखकर उसका धुँआँ खींचना । दम लगना = गंजि या चरस का धुँआँ खींचना । दम लगाना = दे० 'दम मारना' ।

३. साँस खींचकर जोर से बाहर फेंकने या फूँकने की क्रिया ।

मुहा०—दम मारना = मंत्र आदि की सहायता से आड़ फूँक करना । दम फूँकना = किसी चीज में मुँह से हवा भरना । दम भरना = कबूतर के पोटे में हवा भरना ।

४. लड़ता समय जिसका एक बार साँस लेने में लगता है । समयहा । पल ।

मुहा०—दम के दम = जरा भर । बोड़ी देर । जैसे,—वे यहाँ दम के दम बैठे, फिर चले गए । दम पर दम = बहुत बोड़ी बोड़ी देर पर । हर दम । बराबर । जैसे,—दम पर दम उन्हें कै आ रही है । दम बरस = दे० 'दम पर दम' ।

५. प्राण । जान । जी ।

मुहा०—दम उलझना = जी मबराना । व्याकुल होना । दम खाना = विक करना । तंग करना । दम खुश होना = दे० 'दम सुखना' । दम चुराना = जी चुराना । जान बचाना । किसी बहाने से काम करने से अपने आपको बचाना । दम नाक में या नाक में दम खाना = बहुत अधिक हुली होना । बहुत तंग या परेशान होना । दम नाक में या नाक में दम करना प्रपञ्च खाना = बहुत कष्ट या दुःख देना । बहुत तंग या परेशान करना । दम निकलना = मृत्यु होना । मरना । (किसी पर) दम निकलना = किसी पर इतना अधिक प्रेम होना कि उसके वियोग में प्राण निकलने का सा कष्ट हो । बहुत अधिक आसक्ति होना । जैसे,—उसी को देखकर जीते हैं जिसपर दम निकलता है । दम पर आ बनना = (१) जान पर आ बनना । प्राणभय होना । (२) आपत्ति आना । आकत खाना । (३) हिरानी होना । अप्रसन्न होना । दम फड़क उठना या जाना = किसी चीज की सुंदरता या गुण आदि देखकर बिल का बहुत प्रसन्न होना । जैसे,—उसकी कसरत देखकर दम फड़क गया । दम फड़कना = वित्त का व्याकुल होना । बेचैनी होना । दम फना होना = दे० 'दम सुखना' । जैसे,—(क) देने के नाम तो उनका दम फना हो जाता है । दम में दम खाना = मबराना या भय का दूर होना । बिल स्थिर होना । दम में दम रहना या होना = प्राण रहना । जिवन्ती रहना । दम सुखना = बहुत अधिक भय के कारण बिलकुल थप हो जाना । बहुत डर के कारण साँस तक न लेना । प्राण सुखना । भय के मारे स्तब्ध होना । जैसे,—उन्हें देखते ही लड़के का दम सूख गया ।

६. वह शक्ति जिससे कोई पदार्थ अपना अस्तित्व बनाए रखता और काम देता है । जीवनी शक्ति । जैसे,—(क) इस छाते में अब बिलकुल दम नहीं है । (ख) इस मकान में कुछ दम तो है ही नहीं, तुम इसे लेकर क्या करोगे ।

यौ०—दमदार = (१) जिसमें जीवनी शक्ति बधेष्ट हो । (२) मजबूत । दृढ़ ।

७. व्यक्तित्व । जैसे, आपके ही दम से ये सब बातें हैं ।

मुहा०—(किसी का) दम गनीमत होना = (किसी के) जीवित रहने के कारण कुछ न कुछ अच्छी बातों का होता रहना । गई बोटी दशा में भी किसी के कार्यों का ऐसा होना जिसमें उसका आवर हो सके । जैसे,—इस सहर में अब तो और कोई पंडित नहीं रहा, पर फिर भी आपका दम गनीमत है ।

८. खंसीत में किसी स्वर का ढेर तक उच्चारण ।

मुहा०—दम भरना = किसी स्वर का ढेर तक उच्चारण करते रहना ।

यौ०—दमसाज = वह आदमी जो किसी गवैए के गाने के समय उसकी सहायता के लिये स्वर भरता रहे ।

६. पकाने की वह क्रिया जिसमें किसी साध पदार्थ को बरतन में बड़ाकर घोर उसका मुँह बंद करके भाप पर बड़ा देते हैं । इस प्रकार बरतन के अंदर की भाप बाहर नहीं निकलने पाती और उस पदार्थ के पकने में भाप से बहुत सहायता मिलती है ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

यौ०—दम बूल्हा । दम घालू । दम पुस्त ।

मुहा०—दम करना = किसी चीज को बरतन में रखकर घोर भाप रोकने के लिये उसका मुँह बंद करके भाप पर बड़ा देना । दम खाना = किसी पदार्थ का बंद मुँह के बरतन में भीतरी भाप की सहायता से पकाया जाना । दम देना = किसी व्यवपकी चीज को पूरी तरह से पकाने के लिये उसे हलकी भाँप पर रखकर उसका मुँह बंद कर देना जिसमें वह धन्धी तरह से पक जाय । दम पर खाना = किसी पदार्थ के पकने में केवल इतनी कसर रह जाना कि थोड़ा दम देने से वह धन्धी तरह पक जाय । पक कर तैयारी पर खाना । थोड़ी ढेर भाप बंद करके छोड़ देने की कसर रहना । दम होना = भाप से पकना ।

१०. धोखा । छल । फरेब । जैसे,—भाप तो इसी तरह लोगों को दम देते हैं ।

यौ०—दम झोसा = छल कपट । दम दिलासा = वह बात जो केवल फुसलाने के लिये कही जाय । झूठी भाषा । दम पट्टी = (१) धोखा । फरेब । (२) दे० 'दम दिलासा' । दमबाज = (१) धोखा देनेवाला । (२) फुसलाने या बहकानेवाला ।

मुहा०—दम देना = बहकाना । धोखा देना । फुसलाना । दम में खाना = धोखे में पढ़ना । फरेब में खाना । खाल में फँसना । दम खाना = फरेब में खाना । धोखे में पढ़ना । दम में खाना = (१) बहकाना । फुसलाना । (२) धोखा देना । झोसा देना ।

११. तलवार या छुरी आदि की बाड़ । बार ।

यौ०—दमदार = धोखा । तेज । पैना । बारबार ।

दम^३—संज्ञा पु० [देश०] दरी बुननेवालों की एक प्रकार की तिकोनी कमाची जिसमें सबा सबा गज की तीन लकड़ियाँ एक साथ बँधी रहती हैं । ये करवे में पड़ी रहती हैं और उसमें जोती बँधी रहती हैं जो पैर के अंगूठे में बाँध दी जाती है । बुनने के समय इसे पैर से नीचे दबाते हैं ।

दम^४—संज्ञा पु० [देश०] झोपड़ा । छप्पर । ब०—ये अपनी बस्ती को बिस् कहते थे और उनके भीतर इनके झोपड़े दम और पूः कहलाते थे ।—प्रा० भा० प०, पृ० २६ ।

दमक^१—संज्ञा बी० [हि० दमक का घनु०] दमक । दमकमाहट । छुति । घामा ।

४-७०

दमक^२—संज्ञा पु० [सं०] दमनकर्ता । दबाने, रोकने या शांत करनेवाला ।

दमकना—क्रि० प्र० [हि० दमकना का घनु०] १. दमकना । दम-खमाना । उ०—गजमोतिन से पूरे माँगा । लाल हिरा पुनि दमके माँगा ।—कबीर सा०, पृ० ४५८ । २. ज्वलित होना । सुलगना ।

दमकर्ता—संज्ञा पु० [सं० दमकर्तृ] दमन करनेवाला । स्वामी । शासक [को०] ।

दमकल—संज्ञा बी० [हि० दम + कल] १. वह यंत्र जिसमें एक या अधिक ऐसे नल लगे हों, जिनके द्वारा कोई तरल पदार्थ हवा के दबाव से, ऊपर भयबा और किसी घोर मौक से फँका जा सके । पंप

विशेष—ऐसे यंत्रों में एक लज्जाना होता है जिसमें नल भयबा और कोई तरल पदार्थ धरा रहता है, और इसमें एक घोर पिचकारी और दूसरी घोर साधारण नल लगा रहता है । जब पिचकारी चलती है तब लज्जाने में का पदार्थ घोर से दूसरे नल के द्वारा बाहर निकलता है ।

२. उक्त सिद्धांत पर बना हुआ वह यंत्र जिसकी सहायता से मकानों में लगी हुई भाप बुझाई जाती है । पंप । ३. उक्त सिद्धांत पर बना हुआ वह यंत्र जिसकी सहायता से कुएँ से पानी निकालते हैं । पंप । ३० 'दमकल' ।

दमकला^१—संज्ञा पु० [हि० + कल] १. दमकल के सिद्धांत पर बना हुआ वह बड़ा पात्र जिसमें लगी हुई पिचकारी के द्वारा बड़ी बड़ी महफिलों में लोगों पर गुलाबजल भयबा रंग आदि छिड़का जाता है । २. जहाज में वह यंत्र जिसकी सहायता से पाल खड़ा करते हैं । ३. दे० 'दमकल' ।

दमकला^२—संज्ञा पु० [हि० दम] दे० 'दमचूल्हा' ।

दमखम—संज्ञा पु० [फ्रा० दमखम] १. दृढ़ता । मजबूती । उ०—कवि दूसरे के सामने दमखम से उपस्थित होते थे ।—आचार्य०, पृ० २०३ । २. जीवनी शक्ति । प्राण । ३. तलवार की धार और उसका झुकाव ।

दमगल्ल^१—संज्ञा पु० [हि०] लड़ाई । दमंगल । हलचल । युद्ध । उ०—सुर असुर दमगल लल सकल, एक प्रबल ऊयल पयल चल ।—रघु० क०, पृ० २२१ ।

दमघोष—संज्ञा पु० [सं०] वेदि देश के प्रसिद्ध राजा शिशुपाल के पिता का नाम जो दमघंती के भाई थे । इनका दूसरा नाम अतुश्रुवा भी है ।

दमघा—संज्ञा पु० [देश०] खेत के कोने पर बनी हुई वह मजान जिस-पर बैठकर खेतिहर अपने खेत की रखवाली करता है ।

दमचूल्हा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का मोहे का बना हुआ गोल चूल्हा जिसके बीच में एक जाखी या झरना होता है ।

विशेष—इस जाखी के नीचे एक घोर बड़ा छिद्र होता है । इसकी जाखी पर कुछ कोयले रखकर उसकी बीवार पर पकाने का बरतन रखते हैं और नीचे के छिद्र से उसमें हवा

की जाती है जिससे भाग सुलझती रहती है और जानी में से उसकी राख नीचे गिरती रहती है।

दमजोड़ा—संज्ञा पुं० [?] तलवार।—(हिं०)।

दमड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दाम + डा (प्रत्य०)] सपना। धम। दाम।
—(बाजाक)।

क्रि० प्र०—सपना।

मुहा०—दमड़े करना = बेचकर दाम खड़ा करना।

दमड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दमिण (= धन) या दाम + डी (प्रत्य०)]
१. पैसे का घाटवी भाग।

विशेष—कहीं कहीं पैसे के चौथे भाग को भी दमड़ी कहते हैं।

मुहा०—दमड़ी के तीन होना = बहुत सस्ता होना। कीड़ियों के मोल होना। दमड़ी की बुलबुल टका हसकाई = कम दाम की चीज पर धन्य सचं अधिक पड़ जाना। उ०—तिनककर कहा ऊह। दमड़ी की बुलबुल टका हसकाई हम अपने आप पी लेंगे।—फिसाना०, भा० १, पृ० २२६।

२. बिलचिल पत्ती।

दमथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. आत्मनियंत्रण या दमन। दम।
२. दंड। सजा [को०]।

दमथु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दमथ'।

दमदमा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दमदमह] १. वह किलेबंदी जो लड़ाई के समय पैलों या बीरों में धूल या बालू भरकर की जाती है। मोरचा। घुस।

क्रि० प्र०—बाधना।

२. धोखा। जाल। फरेब। दिखावा [को०]।

दमदमा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दमदमह] नगाड़ा। धौसा। उ०—उसके बहने दमदमा, बाएँ उसी के बंब है।—संत तुरसी०, पृ० ४०।

दमदार—वि० [फ्रा०] १. जिसमें जीवनी शक्ति यथेष्ट हो। जानदार।
२. दृढ़। मजबूत। ३. जिसमें दम या सौस अधिक समय तक रह सके। जैसे,—इस हारमोनियम की भाथी बहुत दमदार है। ४. जिसकी धार बहुत तेज हो। चोखा।

दमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दबाने या रोकने की क्रिया। २. दंड जो किसी को दबाने के लिये दिया जाता है। ३. इन्द्रियों की बचलता को रोकना। नियंत्रण। दम। ४. विष्णु। ५. महादेव। शिव। ६. एक ऋषि का नाम। दमयंती इन्हीं के यहाँ उत्पन्न हुई थी। उ०—पटरानी सों के मता, सै परिजन कछु साथ। घाश्रम गयो नरेश तब जहाँ दमन मुनिनाथ।—गुमान (शब्द०)। ७. एक राक्षस का नाम। उ०—दमन नाम निरघर अति घोरा। गर्जत भाषत बचन कठोरा।—रामायण-मेघ (शब्द०)। ८. दीना। ९. कुंद। १०. वध। हनन [को०]। ११. रथ का चालक। सारथी [को०]। १२. योद्धा। युद्धकर्ता। सैनिक [को०]। १३. हरिभक्तिविलास में वर्णित एक पूजनोत्सव जिसमें चैत्र शुक्ल द्वादशी को विष्णु को दीना समर्पित किया जाता है।

दमन—वि० १. दमन करनेवाला। दमनकर्ता। २. शांत [को०]।

दमन—संज्ञा स्त्री० [सं० दमयंती] दे० 'दमयंती'। उ०—
दमनहि नलहि जो हंस मेरावा। तुम्ह हिरामन सार्व कहावा।
—जायसी (शब्द०)।

दमनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक छंद का नाम जिसमें छंद नवण, एक लघु और एक गुरु होता है। २. दीना।

दमनक—वि० दमन करनेवाला। दमनशील।

दमनशील—वि० [सं०] जिसकी प्रकृति दमन करने की हो। दमन करनेवाला।

दमना—क्रि० प्र० [फ्रा० दम] धकना। दम लेना। उ०—फिरता फिरता जो दमता है बाबा, कीन रखे तेरे तन कू पू।—
दक्खिनी०, पृ० १५।

दमना—क्रि० स० [सं० दमन] दमन करना। वश में लाना।

दमना—संज्ञा पुं० [सं० दमनक] द्रोणलता। बीना। उ०—दमना क मज्जरी शालिक परिमल।—वर्य०, पृ० २०।

दमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप, जिसे अग्निदमनी कहते हैं।

दमनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दमन] संकोच। लज्जा। उ०—सील सनी सज्जनीन समीप गुलाब कछु दमनी दरसावै।—गुलाब (शब्द०)।

दमनीय—वि० [सं०] १. दमन होने के योग्य। जो दमन किया जा सके। २. जो दबाया जा सके। जो खंडित किया जा सके। जो दबाकर बड़ाया जा सके। उ०—कुँवर मनोहर विषय बड़ि कीरति अति कमनीय। पावनहार विरंचि अनु रचेउ न धनु दमनीय।—तुलसी (शब्द०)।

दमपुल्ल—वि० [फ्रा० दमपुल्ल] (वह खाद्य पदार्थ) जो दम देकर पकाया गया हो।

दमबाज—वि० [फ्रा० दम + बाज] दम देनेवाला। फुसलानेवाला। बहाना करनेवाला।

दमबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दम + बाजी] बहानेबाजी। दम देने या फुसलाने का काम। धोखेबाजी।

दमयंतिका—संज्ञा स्त्री [सं० दमयंतिका] मदनवान वृक्ष।

दमयंती—संज्ञा स्त्री [सं० दमयंती] १. राजा नल की स्त्री जो विदर्भ देश के राजा भीमसेन की कन्या थी। वि० दे० 'नल'। २. एक प्रकार का बेला। मदनवान।

दमयिता—संज्ञा पुं० [सं० दमयितृ] १. दमन करनेवाला। दमकर्ता।
२. विष्णु। ३. शिव [को०]।

दमरक—संज्ञा स्त्री [देश०] दे० 'चमरक'।

दमरक—संज्ञा स्त्री [देश०] दे० 'चमरक'। उ०—कहि बान छटेरन छोट गजी, कहि दमरक चमरक तकला है।—राम० धर्म०, पृ० ६२।

दमरी—संज्ञा स्त्री [हिं० दमड़ी] दे० 'दमड़ी'। उ०—पैसा दमरी नाहि हमारे। केहि कारणें भौहि राय हँकारे।—कबीर सा०, पृ० ४८५।

दमयंती—संज्ञा स्त्री [हिं० दमयंती] दे० 'दमयंती'। उ०—छो

उपकार करो बिना भाई । दमबंती क्यों नलहि मिलाई ।—
हिंदी प्रेम भाषा०, पृ० २२० ।

दमसाज—संज्ञा पुं० [प्रा०] बहु आदमी जो किसी गवैए के गाने के
समय उसकी सहायता के लिये केवल स्वर भरता है ।

दमा—संज्ञा पुं० [प्रा० दमह] एक प्रसिद्ध रोग । श्वास । साँस ।

विशेष—इस रोग में श्वासवाहिनी बाड़ी के अंतिम भाग में, जो
फेफड़ों के पास होता है, आकुंचन और एंठन के कारण साँस
लेने में बहुत कष्ट होता है, खाँसी आती है और कफ रककर
बड़ी कठिनाता से धीरे धीरे निकलता है । इस रोग के रोगी
को प्रायः अत्यंत कष्ट होता है, और लोगों का विश्वास है कि
यह रोग कभी अच्छा नहीं होता । इसी लिये इसके संबंध में
एक कहावत बन गई है कि दमा दम के साथ जाता है ।

दमाग—संज्ञा पुं० [प्र० दमाग] दे० 'दिमाग' [को०] ।

दमाह—संज्ञा पुं० [सं० जामाह] कन्या का पति । जवाई । जामाता ।
उ०—ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के आलिय दमाह हैं
मदानियाँ ससुर के ।—ठाकुर०, पृ० २६ ।

दमादम—क्रि० वि० [प्र०] १. दम दम शब्द के साथ । २. लगा-
तार । बराबर ।

दमान—संज्ञा पुं० [देश०] दामन । पाल की चादर (लश्०) ।

दमानक—संज्ञा स्त्री० [देश०] तोपों की बाड़ । उ०—देव सूत पितर
करम लख काल ग्रह मोहि पर औरि दमानक सी दई है ।—
तुलसी । (शब्द०) । (क) निज सुमट धीरन संग ले खु
दमानकें वाली मली ।—पद्माकर प्र०, पृ० २३ ।

दमास—संज्ञा पुं० [हि० दमामा] दे० 'दमामा' । उ०—जीव जँजाले
पड़ि रह्य, जमहि दमाम बजाय ।—कबीर सा०, सं०, पृ० ७४ ।

दमामा—संज्ञा पुं० [प्रा० दमामह] नगाड़ा । नक्कारा । डंका । बीसा ।

दमारि^५—संज्ञा पुं० [सं० दावानल] १. जंगल की आग । बन की
आग । २. दमड़ी । उ०—अधरम आठों गाँठि न्याव बिनु
योगम सुबा । एकमि दमारि गुलाम भाष को भयो मसूदा ।—
पल्लव० बानी, पृ० ११२२ ।

दमावति^५—संज्ञा स्त्री० [सं० दमयन्ती] दे० 'दमयन्ती' । उ०—राजा
नल कहै जैसे दमावति ।—जायसी (शब्द०) ।

दमावती^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दमावति' ।

दमाह—संज्ञा पुं० [हि० दमा] दैतों का एक रोग जिसमें वे हाँफने
लगते हैं ।

दमित—क्रि० [सं०] १. जिसका दमन किया गया हो । उ०—कवि
सामाजिक प्रतिबंधों के विरुद्ध अपनी दमित वृत्तियों का प्रका-
शन करता है ।—नया०, पृ० ३ । २. पराजित । परासुत ।
विजित (को०) ।

दमी^१—क्रि० [सं० दमिन्] दमनशील ।

दमी^२—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] एक प्रकार का जेबी या सफरी नैचा ।
दम लवाने का नैचा ।

दमी^३—क्रि० [प्रा० दम] १. दम लगानेवाला । कण खींचनेवाला ।

२. गाँजा पीनेवाला । गंजिड़ी । जैसे,—दमी पार किसके । दम
लगाके किसके । (कहा०) ।

दमी^४—क्रि० [हि० दमा] जिसे दमे का रोग हो । दमे के रोगवाला ।

दमुना—संज्ञा पुं० [सं० दमुनस्] १. मग्न । प्राण । २. शुक्र का एक
नाम (को०) ।

दमैया^५—क्रि० [हि० दमन + ऐया (प्रत्य०)] दमन करनेवाला ।
उ०—तुलसी तेहि काल कृपाल बिना दूमो कौन है दावन
दुःख दमैया ।—तुलसी (शब्द०) ।

दमोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० दाम + मोड़ा (प्रत्य०)] दाम । मूल्य ।
कीमत । (दलाखी) ।

दमोदर—संज्ञा पुं० [सं० दामोदर] दे० 'दामोदर' ।

दम्य^१—क्रि० [सं०] १. दमन करने योग्य । जो दमन किया जा सके ।
२. बैल जो बधिया करने योग्य हो ।

दम्य^२—संज्ञा पुं० बैल जो धुरा चारण कर सके । पुष्ट बैल (को०) ।

दयंत^३—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दे० 'दैत्य' । उ०—(क) देव दयंतहि
भूतहि प्रेतहि कालहु सो कहैं न डरे जू ।—सुंदर० प्र०,
भा० १, पृ० ३५ । (ल) कीन्हैसि राकस भूत परैता । कीन्हैसि
भोकस देव दयंता ।—जायसी प्र० (गुप्त०), पृ० १२३ ।

दय—संज्ञा पुं० [सं०] दया । कृपा । करुणा ।

दयत^५—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दैत्य' । उ०—मो नाम दुँड बीसल
जपति साप देह संभिय दयत ।—पु० रा०, १।५६१ ।

दयत^२—संज्ञा पुं० [सं० दयित] दे० 'दयित' । उ०—सुहृद दयत,
बल्लभ, सखा प्रीतम परम सुजान ।—नंद० प्र०, पृ० ८६ ।

दयनीय—क्रि० [सं०] दया करने योग्य । कृपा करने योग्य ।

दयनीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी दशा जिसे देखकर देखनेवाले के
मन में दया उत्पन्न हो । उ०—ऐसी दयनीयता हुई है क्या ।
फूली है, मोतरी रई है क्या ।—भारतना, पृ० १६ ।

दया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मन का वह दुःखपूर्ण वेग जो दूसरे के कष्ट
को दूर करने की प्रेरणा करता है । सहानुभूति का भाव ।
करुणा । रहम ।

क्रि० प्र०—प्राना ।—करना ।

यौ०—दया दृष्टि ।

विशेष—जिसके प्रति दया की जाती है उसके वाचक शब्द के साथ
'पर' विभक्ति लगती है । जैसे, किसी पर दया प्राना, किसी
पर (या किसी के ऊपर) दया करना । सिद्धाचार के रूप में
भी इस शब्द का व्यवहार बहुत होता है । जैसे, किसी ने पूछा
'भाप भच्छी तरह' ? उत्तर मिलता है—'भापकी दया से' ।

२. दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो धर्म को व्याही गई थी ।

दयाकर—क्रि० [सं०] दया करनेवाला । दयालु । कृपालु । उ०—
सुनु सर्वज्ञ कृपा सुल सिधो । दीन दयाकर भारत बंधो ।—
मानस, ७।१८ ।

दयाकर^२—संज्ञा पुं० शिव (को०) ।

दयाकूट—संज्ञा पुं० [सं०] दुःखदेव ।

दयाकृष्ण—संज्ञा पु० [सं०] बुद्धदेव ।

दयादृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के प्रति करुणा या अनुग्रह का भाव । रहम या मेहरबानी को मजर ।

दयानन्द सरस्वती—संज्ञा पु० [सं० दयानन्द सरस्वती] आर्यसमाज के संस्थापक जिनका समय सन् १८२४ से १८८३ तक है । वि० दे० 'आर्यसमाज' ।

दयानन्द—संज्ञा स्त्री० [य०] सत्यनिष्ठा । ईमान ।

दयानन्दद्वार—वि० [य० दयानन्द + क्रा० द्वार] ईमानद्वार । सच्चा ।

दयानन्दद्वारी—संज्ञा स्त्री० [य० दयानन्द + क्रा० द्वारी] ईमानद्वारी । सच्चाई ।

दयाना—वि० य० [हि० दया + ना (प्रत्य०)] दयालु होना । कृपालु होना । उ०—आत्म कारण भूप तब मुनिसों कछो सुनाई । मुनिवर दई उपासना परम दयालु दयाई ।—गुमान (शब्द०) ।

दयानिधान—संज्ञा पु० [सं०] दया का सञ्चालन । वह जिसमें बहुत अधिक दया हो । बहुत दयालु पुरुष ।

दयानिधि—संज्ञा पु० [सं०] दया का सञ्चालन । वह जिसके चित्त में बहुत दया हो । बहुत दयालु पुरुष । २. ईश्वर का एक नाम । उ०—दयानिधि तेरी शक्ति लखि न परे ।—सूर (शब्द०) ।

दयापात्र—संज्ञा पु० [सं०] वह जो दया के योग्य हो । वह जिसपर दया करना उचित हो ।

दयामण्ड—वि० [सं० दयावत्, बहु व० दयावन्त, देशी दयावण, दयावन्न, हि० दयावना] दया के योग्य । दयनीय । उ०—पहिली होय दयामण्ड रवि घायमण्ड जाइ ।—ढोला०, पृ० ५४६ ।

दयामय^१—वि० [सं०] १. दया से पूर्ण । दयालु ।

दयामय^२—संज्ञा पु० ईश्वर का एक नाम ।

दयार^१—संज्ञा पु० [सं० दयदार] देवदार का पेड़ ।

दयार^२—संज्ञा पु० [य०] प्रांत । प्रदेश ।

दयार^३—वि० [सं० दयालु, हि० दयाल] दे० 'दयालु' । उ०—आवागवन नसावे हो, पुत्र होवे दयार ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८० ।

दयार्द्र—वि० [सं०] दया से भीगा हुआ । दयापूर्ण । दयालु ।

दयाल—वि० [सं० दयालु] दे० 'दयालु' ।

दयाल^१—संज्ञा पु० [देश०] एक चिड़िया जो बहुत अच्छा बोलती है ।

दयाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दया] दे० 'दयालुता' । उ०—जिनपर संत दयाली कीन्हा । भगम बूझ कोइ बिरसे खीन्हा ।—घट०, पृ० २१८ ।

दयालु—वि० [सं०] जिसमें दया का भाव अधिक हो । बहुत दया करनेवाला । दयावान् ।

दयालुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दयालु होने का भाव । दया करने की प्रवृत्ति ।

दयावन्त—वि० [सं० दयावन् का बहुव०] दयायुक्त । दयालु ।

दयावती^१—वि० स्त्री० [सं०] दया करनेवाली ।

दयावती^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] आत्म स्वर की तीन श्रुतियों में से पहली श्रुति ।

दयावना—वि० पु० [हि० दया + घावना] [वि० स्त्री० दयावनी] दया के योग्य । दया का पात्र । दोन । उ०—देवी देव दानव दयावने है जोरै हाथ, बापुरे बर्राक और राजा राना राक को ।—तुलसी (शब्द०) ।

दयावान्—वि० [सं० दयावत्] [वि० स्त्री० दयावती] जिसके चित्त में दया हो । दयालु ।

दयावीर—संज्ञा पु० [सं०] वह जो दया करने में वीर हो । वह जो दूसरे का दुःख दूर करने के लिये प्राण तक दे सकता हो ।

विशेष—साहित्य या काव्य में वीर रस के अंतर्गत युद्धवीर, दानवीर आदि जो चार वीर गिनाए गए हैं उनमें दयावीर भी है ।

दयाशील—वि० [सं०] दयालु । कृपालु ।

दयासागर—संज्ञा पु० [सं०] जिसके चित्त से अनाप दया हो । अर्थात् दयालु अनुष्य ।

दयित^१—वि० [सं०] १. प्यारा । प्रिय । उ०—दयित, देखते देव भक्ति को, निरखते नहीं नाथ व्यक्ति जो ।—साकेत, पृ० ३११ ।

दयित^२—संज्ञा पु० [सं०] पति । वत्सल ।

दयिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियतमा । पत्नी । स्त्री । उ०—इष्टा दयिता वत्सला प्रिया प्रेयसी होइ ।—अनेक०, पृ० ५६ ।

दर^१—संज्ञा पु० [सं०] १. संज्ञा । २. गङ्गा । ३. गुफा । ४. कंदरा । ५. फाड़ने की क्रिया । विचारण । जैसे, पुरंदर । ६. दर । भय । खौफ । उ०—(क) भववारिधि मंदर; परमं दर । बारय, सारय संवृति दुस्तर ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दर जु कहत कवि शख की दर ईश्वर को नाम । दर डरते राखी कुँवर मोहन गिरधर श्याम ।—नंददास (शब्द०) । (ग) साध्वस दर आतंक भय भीत भीर भी नास । डरत सहचरी सकुच तें गई कुँवर के पास ।—नंददास (शब्द०) ।

दर^२—संज्ञा पु० [सं० दल] सेना । समूह । दल । उ०—(क) पलटा अनु वर्षा ऋतुराजा । अनु असाढ़ भावै दर साधा ।—आयसी (शब्द०) । (ख) दूधन कहा आय जहै राजा । बड़ा तुर्क भावै दर साधा ।—आयसी (शब्द०) ।

दर^३—संज्ञा पु० [क्रा०] द्वार । दरवाजा । उ०—माया नटिब लकुटि कर खीने कोटिक नाच नचावै । दर दर लोभ लागि लै डोलति नाना स्वाँच करावै ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—दर दर मारा मारा फिरना = कार्यसिद्धि या पेट पालने के लिये एक घर से दूसरे घर फिरना । दूरदाशस्त होकर धुमना ।

दर^४—संज्ञा पु० [सं० दर, हि० दल, धर घण्टा फा० दर] १. जगह । स्थान । २. वह स्वाँच जहाँ तुलाहे ताने की बँडियाँ बाँधे हैं ।

दर^५—संज्ञा स्त्री० १. नाव । बिस । २. बड़े,—कावच की दर कावच

बहुत बड़ नहीं है। २. प्रमाण। ठीक ठिकाना। जैसे,—उसकी बात की कोई दर नहीं। ३. कदर। प्रतिष्ठा। महत्त्व। महिमा। उ०—सिर केतु मुहाबन फरहरे जेहि खसि पर दस बरहरे। सुरराज केतु की दर हरे बादब जोधा डर हरे।—सोपाल (शब्द०)।

दर^१—वि० [सं०] किंचित्। थोड़ा। जरा सा।

दर^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दार (= लकड़ी)] ईख। इजु। ऊख। उ०—कारन ते कारण है नीका। जया कंठ ते दर रस फीका।—विश्राम (शब्द०)।

दरकंटिका—संज्ञा स्त्री० [दरकण्टिका] सतावरी। सतावर नामक शोधधि।

दरक^१—वि० [सं०] डरनेवाला। डरपोक। भीर।

दरक^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दरकना] १. जोर या बाव पड़ने से पड़ा हुआ दरार। चीर। २. दरकने की क्रिया।

दरकच—संज्ञा स्त्री० [हि० बोरा + प्रनु० कच] १. वह चोट जो जोर से रगड़ या ठोकर खाने से लगे। २. वह चोट जो कुचल जाने से लगे।

क्रि० प्र०—लगना।

दरकचाना—क्रि० सं० [हि० दर + कचरना] थोड़ा कुचलना। इतना कुचलना जितने में कोई वस्तु कई खंड हो जाय पर चूर्ण न हो।

दरकटो—संज्ञा स्त्री० [हि० दर (= भाव) + कटना] पहले से किसी वस्तु की दर या निशं काट देने की क्रिया। दर की मुकरंदी। भाव का ठहराव।

दरकना—क्रि० प्र० [सं० दर (= फाड़ना)] बाव या जोर पड़ने से फटना। चिरना। बिखीरना होना। जैसे, कपड़ा दरकना, छाती दरकना। उ०—क्यों धीं दान्यों लीं हियो दरकव नहि नैदलाव।—बिहारी (शब्द०)।

दरका—संज्ञा पुं० [हि० दरकना] १. शिगाफ। दरार फटने का चिह्न। २. वह चोट जिससे कोई वस्तु दरक या फट जाय। उ०—लखी बियोगिनि दाढ़िमन, कंटक धंय निदान। फुलत नबिन बरको लखो शुक्लमुख किशुकवान।—गुमान (शब्द०)।

दरकाना^१—क्रि० सं० [हि० दरकना] फाड़ना। उ०—ढीठ सेंगर कम्हाई मोरी धांगी दरकाई रे।—(गीत)।

दरकाना^२—क्रि० प्र० फटना। उ०—पुलकित धंय धंगिया दरकानी उर भानैव भंखल फहरात।—दूर (शब्द०)।

दरकार—वि० [फ्रा०] आवश्यक। अपेक्षित। जरूरी।

दरकिनार—क्रि० वि० [फ्रा०] मलय। मलहदा। एक ओर। दूर।

मुहा०—...तो दर किनार = ...कुछ बर्बा नहीं। दूर की बात है। बहुत बड़ी बात है। जैसे,—उसे कुछ देना तो दरकिनार में उससे बात भी नहीं करना चाहता।

दरकूच—क्रि० वि० [फ्रा०] बराबर यात्रा करता हुआ। मंजिल दरमंजिल। उ०—(क) रामचंद्र जी की जमु राज्यजी विभीषण की, रावण की भीषु दरकूच बलि घाई है।—

केशव। (शब्द०)। (क) दस सहस्र बाजे दराब साजे धर बराबो संग लै। दरकूच आवत है बसो मन माह जंग उमंग लै।—सुदन (शब्द०)।

दरक^३—संज्ञा पुं० [दे० ?] ऊँट। उ०—दिन लाक बटे हँवर दरक। जवनान पई निस दिवस जवक।—रा० क०, पु० ७३।

दरखत^३—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरख्त] दे० 'दरखत'।

दरखास्त—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दरखास्त] १. निवेदन। किसी बात के लिये प्रार्थना।

क्रि० प्र०—करना।

२. प्रार्थनापत्र। निवेदनपत्र। वह लेख जिसमें किसी बात के लिये विनती की गई हो।

मुहा०—दरखास्त गुजरना = दे० 'दरखास्त पड़ना'। दरखास्त देना = प्रार्थनापत्र उपस्थित करना। कोई ऐसा लेख भेजना या सामने रखना जिसमें किसी बात के लिये प्रार्थना की गई हो। दरखास्त पड़ना = प्रार्थनापत्र उपस्थित किया जाना। किसी के ऊपर दरखास्त पड़ना = किसी के विश्व राजा या हाकिम के यहाँ आवेदनपत्र देना।

दरख्त—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरख्त] पेड़। वृक्ष।

दरगाह^३—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दरगाह] दरबार। सभा। उ०—बादरा तणों बणियो बदन धर बीणा दरगह बसे।—रघु० क०, पु० ४६।

दरगाह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. चौखट। देहरी। २. दरबार। कचहरी। उ०—बड़ी मदन दरगाह में तेरे नाम कमान।—रसनिधि (शब्द०)। ३. किसी सिद्ध पुरुष का समाधि-स्थान। मकबरा। मजार। जैसे, पीर की दरगाह। ४. मठ। मंदिर। तीर्थस्थान।

दरगुजर—वि० [फ्रा० दरगुजर] १. मलय। बाज। बंचित।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—दरगुजर करना = टालना। हटाना।

२. मुझाफ। क्षमाप्राप्त।

मुहा०—दरगुजर करना = जाने देना। छोड़ देना। दंड आदि न देना। मुझाफ करना।

दरगुजरना—क्रि० प्र० [फ्रा० दरगुजर + हि० ना (प्रत्य०)] १. छोड़ना। त्यागना। बाज आना। २. जाने देना। दंड आदि न देना। क्षमा करना। मुझाफ करना।

दरगाह^४—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरगाह] दरबार। दरगाह। उ०—सहबादे निज धंग सनाहे मणि खाग दरगह माहे।—रा० क०, पु० १५।

दरज—संज्ञा स्त्री० [सं० दर (= दराज)] दरार। शिगाफ। दरार। वह खाली जगह जो फटने या दरकने से पड़ जाय। उ०—घटोह में दया के दरजी, तो दरज मिलावहि हो।—धरम०, पु० ४८।

यो०—दरजबंदी = दीवार की दरारों को चूना गारा भरकर बंद करने का काम।

दरजन—संज्ञा पुं० [दं० दर्जन, हि० दर्जन] १० 'दर्जन' ।
दरजा—संज्ञा पुं० [पं० दर्जह, हि० दरजा] १० 'दर्जा' ।
दरजा—संज्ञा पुं० [हि० दरजा] लोहा ढालने का एक औजार ।
दरजिन—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'दर्जिन' ।
दरजी—संज्ञा पुं० [फ्रा० दर्जी] १० 'दर्जी' । उ०—द्य दरजी बननी
 सुई रसम बोरे जाव ।—स० समक, पृ० १२२ ।
दरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. दलने या पीसने की क्रिया । २. प्वंस ।
 विनाश ।
दरणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रवाह । धारा । २. भौर । भावत ।
 ३. तरंग । लहर । ४. तोड़ना । खंडन [को०] ।
दरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १० 'दरणि' ।
दरन्, दरद—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पर्वत । पहाड़ । २. बंधा । बंध ।
 बाँध । ३. प्रपात । ऊटना । ४. डर । भय । ५. हृदय । ६.
 स्नेह्य जाति [को०] ।
दरध—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंदरा । गुफा । २. गर्त । गड्ढा । ३. चारे
 की तलाश करना । ४. पलायन [को०] ।
दरद—संज्ञा पुं० [फ्रा० दर्द] १. पीड़ा । व्यथा । कष्ट । उ०—दरद
 दवा दोनों रहै पीतम पास तयार ।—रसनिधि (शब्द०) ।
 २. दया । करुणा । तर्प । सहानुभूति । उ०—माई नेकहु न
 दरद करति हिलकिन हरि रोवै ।—सूर (शब्द०) ।
विशेष—दे० 'दर्द' ।
दरद—वि० [मं०] मयदायक । मयंकर ।
दरद—संज्ञा पुं० १. काश्मीर और हिंदूकुश पर्वत के बीच के प्रदेश
 का प्राचीन नाम ।
विशेष—बृहत्संहिता में इस देश की स्थिति ईशान कोण में
 बतलाई गई है । पर आजकल जो 'दरद' नाम की पहाड़ी
 जाति है वह लहास, गिलगित, चिवाल, नागर हंजा आदि
 स्थानों में ही पाई जाती है । प्राचीन यूनानी और रोमन
 लेखकों के अनुसार भी इस जाति का निवासस्थान हिंदूकुश
 पर्वत के पासपास ही निश्चित होता है ।
 २. एक स्नेह्य जाति, जिसका उल्लेख मनुस्मृति, हरिवंश आदि
 में है ।
विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि पौंड्रक, ओड्र, द्राविड, कांबोज,
 यवन, शक, पारद, पल्लव, चीन, किरात, वरद और सप्त पहले
 क्षत्रिय थे, पीछे संस्कारविहीन हो जाने और ब्राह्मणों का
 वर्णन न पाने से शूद्रत्व को प्राप्त हो गए । आजकल जो
 वरद नाम की जाति है वह काश्मीर के पासपास लहास
 से लेकर नागरहंजा और चिवाल तक पाई जाती है । इस
 जाति के लोग अधिकांश मुसलमान हो गए हैं । पर इनकी
 भाषा और रीति नीति की ओर ध्यान देने से प्रकट होता
 है कि ये आर्यकुलोत्पन्न हैं । यद्यपि ये लिखने पढ़ने में मुसल-
 मान हो जाने के कारण फारसी अक्षरों का व्यवहार करते
 हैं, तथापि इनकी भाषा काश्मीरी से बहुत मिलती जुलती है ।
 ३. ईशुर । सिगरक । हिगुल ।

दरदमंद—वि० [फ्रा० दर्दमंद] १. दुःखी । दर्दवाला । २. बयालु ।
 जो दूसरे को दुःखी देखकर स्वयं दुःख का अनुभव करे ।
 उ०—करन कुबेर कसि कीरति कंमल करि तासै बंद भरव
 दरदमंद बाना था ।—अकबरी०, पृ० १४४ ।
दरदर—क्रि० वि० [फ्रा० दर दर] १. डार डार । दरबाजे दरबाजे ।
 उ०—माया नटिन लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै ।
 दर दर लोभ लागि लै डोले नामा स्वाँग करावै ।—सूर
 (शब्द०) । २. स्थान स्थान पर । जगह जगह । उ०—दर
 दर देखो दरीखानन में बौरि बौरि दुरि दुरि शशिनी ली
 हमकिदमकि उठै ।—पद्माकर (शब्द०) ।
दरदरी—वि० [हि०] दे० 'दरदरा' ।
दरदरा—वि० [सं० दरण (= दलना)] [वि० स्त्री० दरदरी] जिसके
 कण स्थूल हों । जिसके रवे महीन न हों, मोटे हों । जिसके
 कण टटोलने से मालूम हों । जो खूब बासीक न पिसा हो ।
 जैसे, दरदरा आटा, दरदरा जूत ।
दरदराना—क्रि० सं० [सं० दरण] १. किसी वस्तु को इस प्रकार
 हलके हाथ से पीसना या रगड़ना कि उसके मोटे मोटे रवे या
 टुकड़े हो जायें । बहुत महीन न पीसना, थोड़ा पीसना ।
 जैसे,—मिचं थोड़ा दरदरा कर ले आधो, बहुत महीन पीसने
 का काम नहीं । † २. जोर से बात काटना ।
दरदरी—वि० स्त्री० [हि० दरदरा] मोटे रवे की । जिसके रवे
 मोटे हों ।
दरदरी—संज्ञा [सं० धरित्री] पृथ्वी । जमीन । धरती (दि०) ।
दरदवंत—वि० [फ्रां० दर्द + हि० वंत (प्रत्य०)] १. कृपालु ।
 दयालु । सहानुभूति रखनेवाला । उ०—सज्जन हो या बात
 को करि देखो जिय गोर । बोलनि चितबनि चलनि वह
 दरदवंत की ओर ।—रसनिधि (शब्द०) । २. दुःखी । जिसके
 पीड़ा हो । पीड़ित । उ०—लेउ न मजतू गोर डिग कोऊ लेलै
 नाम । दरदवंत को नेक तो लेन देहु विश्राम ।—रस-
 निधि (शब्द०) ।
दरदवंद—वि० [फ्रा० दर्दमंद] १. व्यथित । पीड़ित । जिसके
 दर्द हो । २. दुःखी । क्षिप्त ।
दरदारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दर्द से युक्त होने का भाव । वेदना ।
 दर्द । उ०—पीकी मोहि लहर उठत छुटत रैन नाहीं । कहु
 कहैं करमन की रेख हिय की दरदारी ।—तुलसी० श०, पृ० ६ ।
दरदाखान—संज्ञा पुं० [फ्रा०] दालान के बाहर का दालान ।
दरदी—वि० [फ्रा० दर्द, हि० दरद + ई (प्रत्य०)] जिसे दुःख मिला
 हो । दुःखी । पीड़ित । उ०—मीरा कहती है मतवाली,
 बरबी को दरदी पहचाने । दरद और दरदी के रिश्तों को,
 पगली मीरा क्या जाने ।—हिमंत०, पृ० ७६ ।
दरद—संज्ञा पुं० [फ्रा० दर्द] दे० 'दर्द' या 'दर्द' ।
दरदी—वि० [सं० दरिद्र] निर्धन । कंगाल । उ०—बेहृष्य दरदी
 ब्रह्म ज्यों प्रचल सचल सिर दिष्यइय । रंगार वेम वेमहकरन ।
 जिति किति अभिलषई ।—पु० रा०, १२ । ६६ ।
दरन—संज्ञा पुं० [सं० दरण] दे० 'दरण' ।

दरना—कि० स० [सं० दरख] १. चलना । चुरा करना । पीसना ।
२. ध्वस्त करना । नष्ट करना ।

दरप^५—संज्ञा पु० [सं० दरप] दे० 'दरप' । उ०—तरह मयल रत
तणी देखि दिस दरप जाय दट ।—रघु० क०, पु०

दरपक^५—संज्ञा पु० [सं० दरपक] दे० 'दरपक' । उ०—तोहि पाइ कान्ह
प्यारी होइसी विराजमान ऐसे जैसे लोने संग दरपक रति है ।
—कविरा०, पु० ५३ ।

दरपन—संज्ञा पु० [सं० दरपण] [श्री० अल्पा० दरपनी] मुँह देखने
का शीशा । आईना । मुकुर । भारसी ।

दरपना^५—कि० अ० [सं० दरपण] १. ताब में घाना । क्रोध करना ।
२. गर्व या अहंकार करना । धमंड करना ।

दरपनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दरपन] मुँह देखने का छोटा शीशा ।
छोटा आईना ।

दरपरदा—कि० वि० [फ० दरपदह] चुपके चुपके । आड़ में ।
छिपाकर ।

दरपित—वि० [सं० दरपित] दे० 'दरपित' ।

दरपेश—कि० वि० [फ्रा०] आगे । सामने ।

मुहा०—दरपेश होना = उपस्थित होना । सामने घाना । जैसे,
मानस दरपेश होना ।

दरखंद—संज्ञा पु० [फ्रा०] १. दरवाजा । बड़ा दरवाजा । २. पर-
कोटा । बारबीबारी । ३. दो राशियों के मध्य का अंतर [को०] ।

दरखंदी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. किसी चीज की दर या भाव निश्चित
करने की क्रिया । २. लगान आदि की निश्चित की हुई दर ।
३. अलग अलग दर या विभाग आदि निश्चित करने की क्रिया ।

दरख—संज्ञा पु० [सं० दरख] १. धन । दीवत । २. घातु । ३. मोटी
किनारदार चादर ।

दरखदर—कि० वि० [फ्रा०] डार डार । दर दर । उ०—उनकी
असल जानै नहीं । दिस दर बदर हूँ कुंफर ।—तुरसी० श०,
पु० २७ ।

दरखदी—वि० [सं० दरख] १. दरखरा । २. ऐसा रास्ता जिसमें
ठीकरे पड़े हों (कहारों की बोली) ।

दरखर^१—संज्ञा स्त्री० [देखी दरखर (= शीघ्र)] उठावली । हड़-
बड़ी । जल्दबाजी । शीघ्रता । उ०—अहो हरि आए महा
हरखर में, कहा बनि भावे टहल दरखर में । साधु सिरमनि
घर में साधन धोखे बस परखर में ।—चनानंद, पु० ४४० ।

दरखराना^१—कि० स० [हि० दरखर] १. दरखरा करना । बोझ
पीसना । २. किसी को इस प्रकार डरा देना कि वह किसी
बात का खंडन न कर सके । खबरा देना । ३. दबाना । दबाव
डालना ।

दरखराना^५—कि० अ० [देखी दरखर, हि० दरखर] १. शीघ्रता
करना । हड़बड़ी करना । २. छटपटाना । आकुल होना
(लाफ०) । उ०—देखन की हम दरखरात, प्रान मिलन
अरखरात सिधिल होति अंगलि गतिमति सितहीं करति गवन ।
—चनानंद, पु० ४२० ।

दरखहरा—संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार का मछ जो कुछ मनस्पृष्टियों
को सड़ाकर बनाया जाता है ।

दरखी—संज्ञा पु० [फ्रा० दरखान] दे० 'दरखान' ।

दरखा—संज्ञा पु० [फ्रा० दर] १. कबूतरों, मुरगियों आदि के रखने
के लिये काठ का खानेदार संयुक्त, जिसके एक एक खाने में एक
एक पक्षी रखा जाता है । २. दीवार, पेड़ आदि में बह खोंडरा
या कोटर जिसमें कोई पक्षी या जीव रहता है ।

दरखान—संज्ञा पु० [फ्रा०, मि० सं० द्वारखान्] इपोंदीवार । द्वारपाल ।

दरखानी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] दरखान का काम । द्वारपाल का कार्य ।

दरखार—संज्ञा पु० [फ्रा०] [वि० दरबारी] १. वह स्थाव जहाँ
राजा या सरदार मुसाहूरों के साथ बैठते हैं । २. राजसभा ।
कचहरी । उ०—करि मज्जन सरयू जल गए भूप दरबार ।
—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—दरबारदार (१) दे० 'दरबारी' । (२) कुशामदी ।
बापलूस । दरबारदारी । दरबार आम । दरबार सास ।
दरबार वृत्ति ।

मुहा०—दरबार करना = राजसभा में बैठना । दरबार खुला =
दरबार में जाने की आज्ञा मिलना । दरबार बंद होना =
दरबार में जाने की रोक होना । दरबार बाधना = बूस
बाधना । रिश्वत मुकदर करना । मुँह भरना । दरबार
खगना = राजसभा के सभासदों का इकट्ठा होना ।

३. महाराज । राजा (रजवाड़ों में प्रयुक्त) । ४. प्रभुत्तर में
सिक्कों का मंदिर जिसमें 'प्र' साहब' रखा हुआ है । ५.
दरबाजा । द्वार । उ०—तब बोलि उठयो दरबार बिलासी ।
द्विजद्वार लसे जमुनातटवासी ।—केशव (शब्द०) ।

दरबारदारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. दरबार में हाजरी । राजसभा
में उपस्थिति । २. किसी के यहाँ बार बार जाकर बैठने और
खुशामद करने का काम ।

क्रि० प्र०—करना ।

दरबारविलासी^५—संज्ञा पु० [फ्रा० दरबार + सं० बिलासी]
द्वारपाल । दरबान । उ०—तब बोलि उठयो दरबारविलासी ।
द्विजद्वार लसे जमुनातटवासी ।—केशव (शब्द०) ।

दरबारवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दरबार + सं० वृत्ति] राजा द्वारा प्राप्त
होनेवाली वृत्ति । राज्य द्वारा दी हुई जीविका । उ०—निरथ
दरबारवृत्ति पानेवाले हिंदी कवियों के प्रतिरिक्त कुछ अन्य
कवि भी अकबरी दरबार द्वारा संमानित तथा पुरस्कृत हुए
थे ।—अकबरी०, पु० ३२ ।

दरबाद साहब—संज्ञा पु० [फ्रा० दरबार + अ० साहब] प्रभुत्तर
स्थित सिक्कों का प्रसिद्ध तीर्थस्थल गुजरात जहाँ उनका धर्म-
ग्रंथ 'गुरुप्र' साहब' रखा हुआ है ।

दरबारी^१—संज्ञा पु० [फ्रा०] राजसभा का सभासद । दरबार में
बैठनेवाला आदमी ।

दरबारी^१—वि० दरबार का । दरबार के योग्य । दरबार से
रखनेवाला । जैसे, दरबारी पोशाक ।

दरबारी कान्हड़ा—संज्ञा पु० [फ्रा० दरबारी + हि० कान्हड़ा] एक

राग जिसमें कुछ ऋषभ के प्रतिरिक्त बाकी सब कोमल स्वर लगते हैं ।

दरबी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्बी] करछी । कलछी । करछुल ।

दरम—संज्ञा पुं० [सं० दर्म] दे० 'दर्म' ।

दरम—संज्ञा पुं० [?] बंदर । उ०—कपि शास्त्राभ्युग बलीमुख कील दरम मंगूर । बानर मकंद पल्लव हरि तिन कहें मजु मन-कूर ।—नंददास (शब्द०) ।

दरमंद—वि० [फ्रा० दरमंदह] आशिष । निःसहाय । बेकस । उ०—आत्मिक तो दरमंद जगाया बहुत उमेद जवाब न पाया ।—दे० बानी, पृ० ५५ ।

दरमन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] इलाक़ । शीपच ।

यौ०—दरवादरमन = उपचार ।

दरमदा—वि० [फ्रा० दरमदह] आचार । असहाय । संकटग्रस्त । उ०—दरमदा ठाढ़ी तुम दरबार । तुम दिन सुरत करे को मेरी दरसन दीखे खोल किबार ।—कबीर श०, भा० २, पृ० २० ।

दरमा—संज्ञा स्त्री० [देश०] बाँस की वह चटाई जो बंगाल में फ़ोपड़ियों की दीवार बनाने में काम आती है ।

दरमा—संज्ञा पुं० [सं० दारिम] धनार ।

दरमाहा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरमाह] मासिक वेतन ।

दरमियान—संज्ञा पुं० [फ्रा०] मध्य । बीच ।

दरमियान—क्रि० वि० बीच में । मध्य में ।

दरमियानी—वि० [फ्रा०] बीच का । मध्य का ।

दरमियानी—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. मध्यस्थ । बीच में पड़नेवाला व्यक्ति । दो प्रादमियों के बीच के झगड़े का निबटेरा करने-वाला मनुष्य । २. दलाल ।

दरम्यान—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरमियान] दे० 'दरमियान' । उ०—प्रबल देखो ये कथा, उठे नाम न था, नाम दरम्याने पैदा हुआ चल, चल, चल ।—दक्खिनी०, पृ० ५७ ।

दरया—संज्ञा पुं० [फ्रा० दर्या] दे० 'दरिया' ।

दरयाब—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरयाब] दे० 'दरियाब' । उ०—ऐसे सब खलक तेँ सकल सकलिल रह्यो, राव मैं सख्त जैसेँ खलिल दरयाब मैं ।—मति० श०, पृ० ३६८ ।

दररना—क्रि० स० [देश०] दे० 'दरना' ।

दररना—क्रि० स० [हि० दरेर] दे० 'दरेरना' ।

दरराना—क्रि० स० [अनु०] हड़बड़ी या तेजी से जाना ।

दरराना—क्रि० स० [हि०] दे० 'दरदराना' ।

दरबाजा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरबाजह] १. द्वार । मुहाना ।

मुहा०—दरबाजे की मिट्टी खोद खालना या ले खालना = बार बार दरबाजे पर जाना । दरबाजे पर इतनी बार जाना जाना कि उसकी मिट्टी खुद जाय ।

२. किबाड़ । कपाट ।

क्रि० प्र०—खटखटाना ।—खोलना ।—बंद करना ।—मेड़ना ।

दरवा—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्वा] १. सीप का फन ।

यौ०—दरवीकर = सीप । फनवाला सीप ।

२. करछुल । पीना । ३. खँडसी । बस्तपनाह । बस्वना ।

दरवेश—संज्ञा पुं० [फ्रा०] [स्त्री० दरवेशी] फकीर । साधु ।

दरवेशी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] फकीरी । साधुता (स्त्री०) ।

दररा—संज्ञा पुं० [सं० दर्श] दे० 'दर्श' ।

दरशन—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दर्शन' ।

दरशना—क्रि० प्र०, क्रि० स० [सं० दर्शन] दे० 'दरसना' ।

दरशाना—क्रि० प्र०, क्रि० स० [सं० दर्शन] दे० 'दरसना' ।

दरस—संज्ञा पुं० [सं० दर्श] १. देखादेखी । दर्शन । दीवार । उ०—दरस परस मज्जन भव पाना ।—सुलसी । (शब्द०) ।

यौ०—दरस परस ।

२. भेट । मुलाकात । ३. कप । खिच । सुंदरता ।

दरसन—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दर्शन' ।

दरसना—क्रि० प्र० [सं० दर्शन] दिखाई पड़ना । देख पड़ना । देखने में आना । दृष्टिगोचर होना । उ०—भी नारद की दरसे मति सी । सोपे तमसा अपकीरति सी ।—केशव (शब्द०) ।

दरसना—क्रि० स० [सं० दर्शन] देखना । लखना । उ०—(क) बन राम शिला दरसी जहहीं ।—केशव । (शब्द०) । (ख) नर बंध भए दरसे तह मोरे ।—केशव । (शब्द०) ।

दरसनिया—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] विस्फोटक, महामारी आदि बीमारियों की शांति के लिये पूजा आदि करनेवाला । भाड़ फूँक आदि करनेवाला ।

दरसनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] दर्पण । शीशा । आईना । उ०—नकुल सुंदरसन दरसनी छेमकरी चकचाव । दस दिसि देखत सगुन सुम पूजहि मन अभिलाष ।—सुलसी (शब्द०) ।

दरसनीय—वि० [सं० दर्शनीय] दे० 'दर्शनीय' ।

दरसनी हुंड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] १. वह हुंड़ी जिसके भुगलान की मिति को दस दिन या उससे कम दिन बाकी हों । (इस प्रकार की हुंड़ी बाजार में दरसनी हुंड़ी के नाम से बिकती थी । २. कोई ऐसी वस्तु जिसे दिखाते ही कोई वस्तु प्राप्त हो जाय ।

दरसाला—क्रि० स० [सं० दर्शन] १. दिखलाना । दृष्टिगोचर करना । उ०—अकित जानि जननी जिय रघुपति वपु बिराट दरसायो ।—रघुराज (शब्द०) । २. प्रकट करना । स्पष्ट करना । समझाना । उ०—रामायन भागवत सुनाई । दीन्ही जक्ति राह दरसाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

दरसाना—क्रि० प्र० दिखाई पड़ना । देखने में आना । दृष्टिगोचर होना । उ०—(क) शाही में भव बदन में सेत बार दरसाहि । रघुराज (शब्द०) । (ख) प्रमुदित करहि परस्पर बाता । सबि तब अमर स्याम दरसाता ।—रघुराज (शब्द०) ।

दरसाबना—क्रि० स० [हि० दरसाना] दे० 'दरसाना' ।

दरहाज—क्रि० वि० [फ्रा० दर+प्र० हाज] मधी । इसी समय ।

उ०—दाढ़ कारणि कंत के सरा दुस्रो बेहाल । मोरी मेरा
मिहार करि, वे बरसन बरहाल ।—दाढ़०, पु० ६२ ।

दर्राँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० दारो] १. हँसिया । बास या फसल
काटने का औजार ।

मुहा०—दर्राँसी पड़ना=कटौनी पड़ना । कटाई प्रारंभ होना ।
२. दे० 'दर्राँसी' ।

दर्राँ—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरेंह; तुल० सं० दरा (= गुफा)] दे०
'दर्राँ' । उ०—खेबरा का दरा सों बार धाँकी का इराबा ।—
शिकार०, पु० ५१ ।

दर्राई—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. बखने की मजदूरी । २. बखने
का काम ।

दराज^१—वि० [फ्रा० दराज] बड़ा । भारी । संबा । सीधे ।

दराज^२—क्रि० वि० [फ्रा०] बहुत । अधिक ।

दराज^३—संज्ञा स्त्री० [हि० दरार] दरज । शिगाफ । दरार ।

दराज^४—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रावर] मेज में लवा हुआ संद्रुकनुमा
जाना जिसमें कुछ वस्तु रखकर ताला लगा सकते हैं ।

दरार—संज्ञा स्त्री० [सं० दर] बहु खाली जगह जो किसी चीज के
फटने पर लकीर के रूप में पड़ जाती है । शिगाफ । उ०—
(क) अबहुं अबनि बिहरत दरार मिस को अबसर सुधि
कीन्हें ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सुमिरि सनेह सुमित्रा
सुत को दरकि दरार न धाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

दरारना^(५)—क्रि० प्र० [हि० दरार + ना (प्रत्य०)] फटना ।
बिधीरुं होना । उ०—बाजहि भेरि नफीर अपारा । सुनि
कादर उर जाहि दरारा ।—तुलसी (शब्द०) ।

दरारा—संज्ञा पुं० [हि० दरना] दररा । चक्का । रगड़ा । उ०—
दल के दरारे हुते कमठ करारे कूटे केरा कैछे पात बिहराने
फन सेस के ।—भूषण (शब्द०) ।

दरिहा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरिहह] फाड़ खानेवाला जंतु । मांसभक्षक
वनजंतु । जंघे, घेर, कुत्ता, आदि ।

दरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दरी' [को०] ।

दरित—वि० [सं०] १. मर्याद । डरपोक । भीत । २. विदीर्ण ।
फटा हुआ [को०] ।

दरिद्र^१—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र] १. कंगाली । निर्धनता । गरीबी । २.
कंगाल । निर्धन ।

दरिद्र^२—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दरिद्र] दे० 'दरिद्र' ।

दरिद्र^३—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दरिद्रा] जिसके पास निर्वाह
के लिये ध्येष्ट वन न हो । निर्धन । कंगाल ।

द्यौ०—दरिद्र नारायण = कंगाल । भिक्षुक ।

दरिद्र^४—संज्ञा पुं० १. निर्धन मनुष्य । कंगाल आदमी । २. दारिद्र्य ।
कंगाली ।

दरिद्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंगाली । निर्धनता ।

४-७१

दरिद्राण—संज्ञा पुं० [सं०] गरीबी । वनहीनता [को०] ।

दरिद्रायक—वि० [सं०] वनहीन । कंगाल [को०] ।

दरिद्रित—वि० [सं०] दे० 'दरिद्रायक' ।

दरिद्रो^१—वि० [सं० दरिद्रित, अथवा सं० दरिद्र + हि० ई (प्रत्य०)]
दे० 'दरिद्र' ।

दरिया^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. नदी । २. समुद्र । सिंधु । उ०—
उ०—(क) तजि आस भो दास रघूपति को दसरथ के दानि
ब्या दरिया ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दरिया दधि
किय मथन भोम फटिय सह तुटिय ।—पु० रा०, १।६१६ ।

द्यौ०—दरियाबिल = उदार ।

दरिया^२—संज्ञा पुं० [हि० दरना] दलिया ।

दरिया^३—संज्ञा पुं० [देरा०] विष्णु पंथी एक संत ।

द्यौ०—दरियादासी ।

दरियाई^१—वि० [फ्रा०] १. नदी संबंधी । २. नदी में रहनेवाला ।
जैसे, दरियाई बोझा । ३. नदी के निकट का । ४. समुद्र
संबंधी ।

दरियाई^२—संज्ञा स्त्री० पतंग को दूर से जाकर हुआ में छोड़ने की
क्रिया । झोली । छुड़िया ।

क्रि० प्र०—देना ।

दरियाई^३—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दाराई] एक प्रकार की रेशमी पतली
साटन । उ०—सच है, और तुम्हारी कविता ऐसी है जैसे
सफेद फल पर गोबर का चोंच, सोने की सिकड़ी में लोहे की
घंटी और दरियाई की भोंगिया में मूँज की बखिया ।—
भारतेंदु प्र०, भा० १, पु० ३७७ ।

दरियाई^४—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दरिया] एक तरह की तलवार ।
उ०—दिपती दरियाई दोनों धाई भटनि चलाई प्रति उमही ।
—पद्याकर प्र०, पु० २८ ।

दरियाई बोझा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरियाई + हि० बोझा] गंडे की
तरह का मोटी खाल का एक जानवर जो अफ्रीका में
नदियों के किनारे की दलदलों और झाड़ियों में रहता है ।

विशेष—इसके पैरों में खुर के आकार की चार चार उँगलियाँ
होती हैं । मुँह के भीतर डढ़े और कंटीले दाँत होते हैं ।
शरीर लमटा, मोटा, भारी और बेढंगा होता है । कमड़े पर
बाल नहीं होते । नाक फूली और उभरी हुई तथा पूँछ और
खाल छोटी होती हैं । यह जानवर पोथों की जड़ों और
कस्सों को खाकर रहता है । दिन भर तो यह झाड़ियों और
दलदलों में छिपा रहता है, रात को खाने पीने की खोज में
निकलता है और खेती आदि को हानि पहुँचाता है । पर
यह नदी से बहुत दूर नहीं जाता और जरा सा सटका या
अप्य होते ही नदी में जाकर मोता मार लेता है । यह बेर
तक पानी में नहीं रह सकता, सौ से लेने के लिये सिर निका-
सता है और फिर डूबता है । यह निर्जन स्थानों में गोल
बाँधकर रहता है ।

कभी कभी लोग इसका शिकार गड्डे खोदकर करते हैं। रात को जब यह जंतु गड्डों में गिरकर फँस जाता है तब लोग इसे मार डालते हैं। इसके चमड़े से एक प्रकार का लचीला और मजबूत चाबुक बनता है जिसे 'करबस' कहते हैं। मिस्र देश में इस चाबुक का प्रचार है। वहाँ की प्रजा इसकी मार से बहुत डरती है। पहले नील नदी के किनारे दरियाई मोड़े बहुत मिलते थे, पर अब शिकार होने के कारण बहुत कम हो चले हैं।

दरियाई नारियल—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरियाई + हि० नारियल] एक प्रकार का नारियल जो अफ्रीका, अमेरिका आदि में समुद्र के किनारे किनारे होता है।

विशेष—इसकी गिरी ओर छिलका मूकने पर पत्थर की तरह कड़ा हो जाता है। इसकी गिरी दवा के काम में आती है। लोपड़े का पात्र बनता है जिसे संन्यासी या फकीर अपने पास रखते हैं।

दरियाउ—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरियाउ] दे० 'दरियाब'।

दरियादासी—संज्ञा पुं० [हि० दरियादास + ई] निर्गुण उपासक साधुओं का एक संप्रदाय जिसे दरिया साहब नामक एक व्यक्ति ने चलाया था। कहते हैं, इस संप्रदाय के लोग प्राये हिंदू आधे मुसलमान होते हैं। संत दरिया के संप्रदाय का अनुयायी।

दरियादिल—वि० [फ़ा०] [अ० दरियादिली] उदार। दानी। फेयाज।

दरियादिली—संज्ञा अ० [फ़ा०] उदारता।

दरियाफा—वि० [फ़ा० दरियाफा] दे० 'दरियाफत'। उ०—आपुको खूब दरियाफ कीजें।—पलटू०, पृ० ५६।

• **दरियाफत**—वि० [फ़ा० दरियाफत] ज्ञात। मालूम। जिसका पता लगा हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दरियाय—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरियाय] दे० 'दरियाब'। उ०—हिब से वेदि पठान पग घर दल दलमलि दरियाय बहाऊँ।—अकबरी०, पृ० ६७।

दरियाबरामद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'दरियाबरार'।

दरियाबरार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह भूमि जो किसी नदी की धारा हट जाने से निकल आती है और जिसमें खेती होती है।

दरियाबार—वि० [फ़ा०] अत्यंत बरसनेवाला। उदार। बरसालू [अ०]।

दरियाबुर्द—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह भूमि जिसे कोई नदी काटकर लाराब कर दे जिससे वह खेती के योग्य न रहे।

दरियाब—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरियाब] १. दे० 'दरिया'। उ०—सन समुद्र मन लहर है नैन कहर दरियाब। बेसर भुजा सिकंदरी कहत न भाव, न भाव।—(प्रचलित)। २. समुद्र। सिंधु। उ०—पक्का मतो करिकै मलिच्छ मनसब छोड़ि मक्का ही मिस उतरत दरियाब है।—भूवण (शब्द०)।

दरी—संज्ञा अ० [सं०] १. गुफा। खोह। २. पहाड़ के बीच वह जगह

या नीचा स्थान जहाँ कोई नदी बहती या गिरती हो।

यो०—दरीभृत्। दरीमुख।

दरी—संज्ञा अ० [सं० स्तर, स्तरी (= फैलाने की वस्तु)] मोटे घुत्तों का बना हुआ मोटे बल का बिछीना। स्तरांची।

दरी—वि० [सं० दरिन्] १. फाड़नेवाला। बिदीर्ण करनेवाला। २. डरनेवाला। डरपोक। कायर।

दरी—संज्ञा अ० [फ़ा०] फारसी भाषा की एक साखा का नाम [अ०]।

दरीखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दर + खाना] जगह पर जिसमें बहुत से द्वार हों। बारहदरी। उ०—दर दर देखो दरीखानन में दीरि, दीरि दुरि दुरि दामिनी सी दमकि दमकि रठै।—पद्माकर (शब्द०)।

दरीगूह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दरी'। उ०—...ये मंदिर पाषाणखंडों को काट काटकर दरीगूहों के रूप में बने थे।—आ० भा०, पृ० ५६३।

दरीचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरीचह] [अ० दरीची] १. सिड़की। करोला। २. छोटा द्वार। चोर दरवाजा। उ०—दरीचा तू इस बाब का मुज की खोल। मिल उस गार तू क्यूँ गहूँ मुज कूँ खोल।—दक्कनी, पृ० ८४। ३. सिड़की के पास बैठने की जगह।

दरीची—संज्ञा अ० [फ़ा० दरीचह] १. करोला। सिड़की। २. सिड़की के पास बैठने की जगह। उ०—(क) मुँदि दरीचिन दे परदा सिबरीन करोखन रोंकि छपायो।—गुमान (शब्द०)। (ख) तैसेई मरीचिका दरीचिन के बेवे ही में छपा की छपीली छवि छहरति ततकाल।—द्विजदेव (शब्द०)।

दरीचा—संज्ञा पुं० [?] १. पान दरीचा। पान की सट्टी। वह जगह जहाँ बहुत से तंबोली बेचने के लिये पान लेकर बैठते हैं। २. बाजार। उ०—आसिक अमली साब सब, पलक दराबे जाइ। साहेब दर दीदार में, सब मिलि बैठे जाइ।—दादू०, पृ० १३१।

दरीभृत्—संज्ञा पुं० [सं० दरीभृत्] पर्वत। पहाड़।

दरीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुफा का मुँह। २. राम की सेना का एक बंदर। ३. गुफा के समान मुखवाला (अ०)।

दरुदा—संज्ञा अ० [फ़ा० दकव] दुष्मा। शुभकामना। कृपा। उ०—ये बंदे को पंदा किया दम का बिया दकदा।—कबीर सा०, पृ० ८८७।

दरुन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] आत्मा। हृदय। चित्त। कव [अ०]।

दरुना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दकना] वह फोड़ा या घाव जिसका मुँह भीतर हो। उ०—दादू हरदम माहि बिबान कहूँ दकनै दरद सों। दरद दकनै जाइ, जब देखो दीदार को।—दादू०, पृ० ५६।

दरुनी—वि० [फ़ा०] भीतरी। आंतरिक। उ०—बरोनी सब तमाशा यह जो देखो। न जाने यह दरुनी खेल घट का।—कबीर मं०, पृ० ३७६।

दर्रेली—संज्ञा अ० [सं० दर + यन्त्र] अनाव दसने का छोटा यंत्र। चक्की।

द्वैत—संज्ञा पुं० [सं० द्वैत] विष्णु का शब्द । पञ्चजम्य [को०] ।

द्वैक—संज्ञा पुं० [सं० द्वैक] बकाहन का वृक्ष ।

द्वैग—संज्ञा पुं० [सं० द्वैग] कमी । कसर । कोर कसर । जैसे—
हैं मैं इस काम के करने में द्वैग ब कर्कषा ।

द्वैर—संज्ञा पुं० [सं० द्वैर] दे० 'द्वैरा' । उ०—दरिया जो कहे
वरियान द्वैर में तोरि जबीर के तानतु है ।—सं० दरिया,
पृ० १५ ।

द्वैरना—क्रि० सं० [सं० द्वैर] १. रगड़ना । पीसना । २.
रगड़ते हुए चक्का देना ।

द्वैरा—संज्ञा पुं० [सं० द्वैरा] १. रगड़ा । धक्का । उ०—तापर
सहि न जाय कसखानिधि मन को दुसह द्वैरो ।—तुलसी
(शब्द०) । २. मेंह का आवा । ३. बहाव का बोर । तोड़ ।

द्वैस^१—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वैस] एक प्रकार की छोट । फूलदार छपा
हुआ एक महीन कपड़ा ।

द्वैस^२—वि० [सं० द्वैस] तैयार । बना बनाया । सजा सजाया ।

द्वैस^३—संज्ञा, पुं० [सं० द्वैस] दे० 'द्वैस' । उ०—हंसा देस तहाँ
जा पहुँचे देखो पुरुष द्वैस ।—कबीर० मं०, भा० ३,
पृ० ४६ ।

द्वैसी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वैसी] दुहस्ती । तैयारी । मरम्मत ।

द्वैया—संज्ञा पुं० [सं० द्वैया] १. दलनेवाला । वह जो दले । २.
घातक । विनाशक । उ०—दशरथ को नंदन दुःख द्वैया ।
—(शब्द०) ।

द्वैग—संज्ञा पुं० [सं० द्वैग] झूठ । असत्य । गलत । मिथ्या ।
उ०—(क) हों द्वैग जो कहों सूर उगी पच्छिम दिसि । हों
द्वैग जो कहों ईव उगीमि कुहुँ निसि ।—पु० रा०, १४ ।
१३६ । (ख) मेरी बात जो कोई जाने द्वैग । कभी केर
उसको न होबे फरोग ।—कबीर मं०, पृ० १३४ ।

यौ०—द्वैग हलफ़ी ।

द्वैगहलफ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वैगहलफ़ी] १. सब बोलने की
कसम खाकर भी झूठ बोलना । २. झूठी गवाही देने
का जुर्म ।

द्वैगा—संज्ञा पुं० [सं० द्वैगा] दे० 'द्वैगा' । उ०—सो
बा घरगने में एक म्लेच्छ द्वैगा रहे ।—दो सो बावन०
भा० १, पृ० २४२ ।

द्वैद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वैद' [को०] ।

द्वैर—क्रि० वि० [सं० द्वैर] दे० 'द्वैर' ।

द्वैग—संज्ञा पुं० [सं० द्वैग] दे० 'द्वैग' ।

द्वैज—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वैज] दे० 'द्वैज' ।

द्वैज—वि० [सं०] लिखा हुआ । कागज पर चढ़ा हुआ । प्रकृत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

द्वैज—संज्ञा पुं० [सं० द्वैज] बारह का समूह । इकट्ठी
बारह वस्तुएँ ।

द्वैज—संज्ञा पुं० [सं० द्वैज] १. ऊँचाई निचाई के क्रम के

विचार से निश्चित स्थान । ओछी । कोटि । बर्ग । जैसे,—
बहु अवल दज के पाजी है । २. पढ़ाई के क्रम में ऊँचा नीचा
स्थान । जैसे,—तुम किस दज में पढ़ते हो ।

मुहा०—दजा उतारना = ऊँचे दज से नीचे दज में कर देना । दर्जा
चढ़ना = नीचे दज से ऊँचे दज में जाना । दर्जा चढ़ाना =
नीचे दज से ऊँचे दज में करना ।

क्रि० प्र०—चढ़ावा ।—चढ़ाना ।

४. किसी वस्तु का विभाग जो ऊपर नीचे के क्रम से हो । खंड ।
जैसे, आखमारी के दज । मकान के दज ।

दजा^२—क्रि० वि० गुणित । गुना । जैसे,—वह चीज उससे हजार दज
अच्छी है ।

दजिन—संज्ञा स्त्री० [सं० दजिन] दे० 'दजिन' (प्रत्यय०)] १. दर्जी
जाति की स्त्री । २. दर्जी की स्त्री । ३. सीने का व्यवसाय
करनेवाली स्त्री ।

दर्जी—संज्ञा पुं० [सं० दर्जी] १. कपड़ा सीनेवाला । वह जो कपड़े
सीने का व्यवसाय करे । २. कपड़े सीनेवाली जाति का पुरुष ।
मुहा०—दर्जी की सूई = हर काम का भादमी । ऐसा भादमी जो
कई प्रकार के काम कर सके, या कई बातों में योग दे सके ।

दर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीड़ा । व्यथा ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—दर्द उठना = दर्द उत्पन्न होना । (किसी अंग का)
दर्द करना = (किसी अंग का) पीड़ित या व्यथित होना ।
दर्द खाना = कष्ट सहना । पीड़ा सहना । जैसे,—उसने दर्द
खाकर नहीं जना ? दर्द लगना = पीड़ा प्रारंभ होना ।

२. दुःख । तकलीफ़ । जैसे, दूसरे का दर्द समझना ।

मुहा०—दर्द खाना = तकलीफ़ मानना होना । जैसे,—बय्या
निकालते दर्द खाता है ।

३. सहानुभूति । कल्याण । दया । तस । रहम ।

क्रि० प्र०—माना ।—लगना ।

मुहा०—दर्द खाना = तरस खाना । दया करना ।

४. हानि का दुःख । खो जाने या हाथ से निकल जाने का कष्ट ।
जैसे,—उसे पैसे का दर्द नहीं ।

यौ०—दर्दनाक । दर्दमंद । दर्दजिगर = दर्दिल । दर्दिल = मन-
स्ताप । मनोव्यथा । दर्दसर = (१) शिरःपीड़ा । (२)
अंकुश का काम । दर्दगम = पीड़ा भरी दुःख । कष्टसमूह ।
उ०—मुझको शायर न कहो मीर कि साहब मैंने । दर्दगम
कितने किए जमा तो दीवान किया ।—कविता की०, भा० ४,
पृ० १२२ ।

दर्दनाक—वि० [सं०] कष्टजनक । दर्द पैदा करनेवाला [को०] ।

दर्दमंद—वि० [सं०] [संज्ञा दर्दमंदी] १. जिसे दर्द हो । पीड़ित ।
दुःखी । २. जो दूसरे का दर्द समझे । जिसे सहानुभूति हो ।
दयावान् ।

दर्दर—वि० [सं०] दूटा हुआ । फटा हुआ ।

दर्दर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुछ कुछ झंझित कलश । २. एक वाद्य ।
बदुर । ३. बदुर नामक पर्वत [को०] ।

दर्पराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पेड़ का नाम । २. एक प्रकार का व्यंजन [को०] ।

दर्परीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेड़क । बादुर । २. मेघ । बादल । ३. बाघ । बाजा । ४. एक प्रकार का विशेष बाघ । जैसे, बंशी [को०] ।

दर्पवन्द—वि० [फ्रा० दर्पमंद] दे० 'दर्पमंद' । उ०—लड़े दर्पवन्द दरवेश दरगाह में खेर धी मेहर मौजूद मक्का ।—कबीर० रे०, पृ० ४० ।

दर्दी—वि० [फ्रा० दर्द + हि० ई (प्रत्य०)] १. दुःखी । पीड़ित । २. जो दूसरे का दर्द समझे । दयावान् । जैसे, बेदर्दी ।

दर्दु—संज्ञा पुं० [सं०] दाह । दग्ध [को०] ।

दर्दुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेड़क ।

यौ०—दर्दुरोदना = यमुना नदी ।

२. बाघल । ३. भञ्जक । भबरक । ४. पश्चिमी घाट पर्वत का एक भाग । मलय पर्वत से लगा हुआ एक पर्वत । ५. उक्त पर्वत के निकट का देश । ६. प्राचीन काल का एक बाजा [को०] । ७. एक प्रकार का चावल [को०] । ८. घोंसे की ध्वनि । नगाड़े की आवाज [को०] । ९. राक्षस [को०] । ११. ग्राम, जिला या प्रांतसमूह [को०] ।

दर्दुरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेड़क । बादुर । २. एक बाघ । दर्दुर ।

दर्दुरच्छदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाही बूटी ।

दर्दुरपुट—संज्ञा पुं० [सं०] बंशी आदि वाद्यों का मुख [को०] ।

दर्दुरा, दर्दुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०] ।

दर्ह, दर्म—संज्ञा पुं० [सं०] दाद नामक रोग ।

दर्हण, दर्मण—वि० [सं०] दाद का रोगी । जिसे दर्ह रोग हुआ हो [को०] ।

* **दर्प**—संज्ञा पुं० [सं०] १. घमंड । अहंकार । अभिमान । गर्व । ताव । उ०—कंदर्प गुणं दर्पं दयन उमारवन गुन भवन हर ।—तुलसी (शब्द०) । २. मन । अहंकार के लिये किसी के प्रति कोप । ३. उद्वेगता । अस्वस्थपन । ४. दबाव । आतंक । रोष । ५. कस्तूरी । ६. ऊष्मा । ताप । गर्मी [को०] । ७. उर्मय । उरसाह [को०] ।

यौ०—दर्पकल = गर्व के कारण मुकुर । गर्वभरी बात कहने-वाला । दर्पच्छिद = गर्व को नष्ट करनेवाला । दर्पद = विष्णु का एक नाम । दर्पहर = दे० 'दर्पच्छिद' । दर्पहा = विष्णु ।

दर्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दर्प करनेवाला व्यक्ति । २. कामदेव । मनोज । ३. दर्प । अहंकार [को०] ।

दर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आईना । भारसी । मुँह देखने का शीशा । वह कालो प्रतिबिम्ब के द्वारा मुँह देखने के लिये सामने रखा जाता है । २. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद । ३. चक्षु । भाल । ४. संदीपन । उद्दीपन । उभारने का कार्य । उत्तेजना । ५. एक पर्वत का नाम जो कुबेर का निवास-स्थान माना जाता है [को०] ।

दर्पन—संज्ञा पुं० [सं० दर्पण] दे० 'दर्पण' ।

दर्पना—क्रि० प्र० [सं० दर्पण] ताव में आना । दर्पना । गर्वयुक्त होना । उ०—रत्न मद मत्त निसावर बपी । बिरत प्रसिंह जनु एहि विधि अपी ।—मानस, ६ । ६६ ।

दर्पमय क्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रसिकता या रंगीलेपव के खेल । नाच रंग आदि ।

दर्पहा—संज्ञा पुं० [सं० दर्पहन्] विष्णु का एक नाम [को०] ।

दर्पित—वि० [सं०] गर्वित । अहंकार से भरा हुआ । उ०—रघुबीर बल दपित विभीषणु घालि नहि ठाकहु गने ।—मानस, ६।६३ ।

दर्पी—वि० [सं० दर्पित्] [वि० स्त्री० दर्पिणी] घमंडी । अहंकारी ।

दर्ब—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] १. द्रव्य । घन । उ०—कछुक दर्ब दे संघि कै, फेरि देहु हिंदुमान ।—प० रासो, पृ० १०५ । २. बातु (सोना, चाँदी इत्यादि) ।

दर्बी—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] द्रव्य । घन । उ०—मासा वासा मनसा लाय । पर दर्बी न हरे न पर घरि जाय ।—प्राण०, पृ० १०१ ।

दर्बान—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरबान] दे० 'बरबान' ।

दर्बार—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरबार] दे० 'दरबार' ।

दर्बारी—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरबारी] दे० 'दरबारी' ।

दर्बि—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रव्य] दे० 'द्रव्य' । उ०—हृय गय मानिन दर्बि दिव, घादर बहु रुप किस ।—प० रासो, पृ० १३१ ।

दर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का कुश । डाम । डामुस । २. कुश । ३. कुश निमित्त मयसन । कुशासन । उ०—प्रस कहि लवणसिंधु तट जाई । बैठे कवि सब दर्भ डसाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—दर्भकुसुम = दर्भपुष्प । एक कीट । दर्भचीर = कुश का परिधान । दर्भपत्र । दर्भपुष्प । दर्भलवण । दर्भसंस्तर । दर्भसुषी = दर्भकुर ।

दर्भकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] कुशध्वज । राजा जनक के भाई का नाम ।

दर्भट—संज्ञा [सं०] गुप्त गृह । भीतरी कोठरी ।

दर्भपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] काँस ।

दर्भपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।

दर्भलवण—संज्ञा पुं० [सं०] कुश वा घास काटने का एक औजार [को०] ।

दर्भसंस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] कुश का घासन या कुश का बिछौना [को०] ।

दर्भाकुर—संज्ञा पुं० [सं० दर्भाकुर] डाम का गोफा जो सुई की तरह नुकीला होता है [को०] ।

दर्भासन—संज्ञा पुं० [सं०] कुशासन । कुश का बना हुआ बिछावन ।

दर्भाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] मूँज ।

दर्भि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

विशेष—महामारत के अनुसार इन्होंने ऋषि ब्राह्मणों के उपहार के लिये दर्भकील नामक एक तीर्थ स्थापित किया था । इनका एक नाम दर्भी भी है ।

दर्भी—संज्ञा पुं० [सं० दर्भिन्] दे० 'दर्भि' ।

दर्भेयिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुश का निचला भाग या डंडा [को०] ।

मिथ्या—कि० वि० [क्रा० दरमियान] दे० 'दरमियान' । उ०—बहुन पर हैं उनके गुन कहे कहे । कलाम घाते हैं दमियाँ कैसे कैसे । प्रेमचन०, भा० २, पृ० ४०७ ।

मियान—संज्ञा पुं० [क्रा० दरमियान] दे० 'दरमियान' ।

मियानी—वि०, संज्ञा पुं० [क्रा० दरमियानी] दे० 'दरमियानी' ।

मि—संज्ञा पुं० [क्रा० दरिया] दे० 'दरिया' । उ०—एक मछली सारे दर्या को गंदा कर डालती है ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ११७ ।

मिउ—संज्ञा पुं० [हि० दरियाव] दे० 'दरिया' ।—कूदाहि जहर कहुर दर्याउ में ।—पद्माकर प्र०, पृ० १४ ।

मिली—संज्ञा स्त्री० [क्रा० दरियादिली] उदारता । हृदय की विशालता । उ०—धीर दर्यादिली खुदा के घर से इसी को मिली है ।—प्रेमचन०, भा० १, पृ० ८६ ।

मिस्त—वि० [क्रा० दरियापस्त] ज्ञात । मालूम । दरियापस्त । उ०—इस वक्त मुझसे यहाँ आने का सबब दर्यापस्त करेगा तो मैं इससे क्या जबाब दूँगा ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३२ ।

मि० प्र०—करना ।—होना ।

मि—संज्ञा पुं० [क्रा० दरिया] दे० 'दरिया' ।

मि—संज्ञा पुं० [फा०] १. पहाड़ी रास्ता । बहु सँकरा मार्ग जो पहाड़ों के बीच से होकर जाता हो । घाटी । २. दरार । दरज ।

२—संज्ञा पुं० [सं० दरना] १. मोटा घाटा । २. कंकरीली मिट्टी जो सड़कों या बगीचों की रवियों पर डाली जाती है । ३. दरार । शिगाफ । दरज ।

मि—संज्ञा स्त्री० [फा० दरान (= संवा)] लकड़ी का एक औजार जिससे लकड़ी सीधी की जाती है ।

मि—कि० प्र० [प्रनु० दड़ दड़, भड़ भड़] बड़बड़ाना । बेधड़क चला जाना । बिना रुकावट या डर के चला जाना ।

विशेष—इस क्रिया के उन्हीं रूपों का प्रयोग होता है जिनसे कि० वि० का भाव प्रकट होता है, जैसे, दर्वाकर=बड़ बड़ाकर । बेधड़क । दरता हुआ=बड़बड़ाता हुआ । बेधड़क । उ०—बहु दरता हुआ दरबार में आ पहुँचा । दरना=बड़बड़ाता हुआ । बेधड़क । उ०—द्वारपालों की बात सुनी मनसुनी कर हरि सब समेत दरनि वहाँ चले गए, जहाँ तीन ताड़ लंबा भति मोटा महादेव का वनुष बरा था ।—तल्लू (सम्ब०) ।

मु—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] द्रव्य । धन । संपत्ति । उ०—सहस्र धेनु कंचन बहु हीरा । अगनित द्रव्य दियो रूप वीरा ।—रसरत्न, पृ० १६ ।

मि—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिंसा करनेवाला मनुष्य । २. राजस । ३. एक जाति जिसका नाम दरद, किरात आदि के साथ महाभारत में आया है । इस जाति का निवासस्थान पंजाब के उत्तर का प्रदेश था । ४. वह देश जहाँ उक्त जाति बसती थी । ५. सर्प का कण (की०) । ६. भाषात । ओट । सति (की०) । ७. करछुल । दर्वा (की०) ।

दर्बट—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाँव का चौकीदार । गोदहत । २. द्वाररक्षक । द्वारपाल (की०) ।

दर्बरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र । २. वायु । ३. एक प्रकार का बाजा ।

दर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उषीनर की पत्नी का नाम ।

दर्बि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दर्वा' (की०) ।

दर्बि—वि० [सं० दर्प] दर्पयुक्त । गरबीला । गर्वयुक्त । उ०—बहु दर्बि सरिष गुमान । साबंत लखि परिवान ।—प० रासो, पृ० ५२ ।

दर्बिक—संज्ञा पुं० [सं०] डोम्रा । चमचा । कलछुल । दर्बी (की०) ।

दर्बिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घाँस में लगाने का वह काजल जो बी से भरे दीये में बत्ती जलाकर जमाया या पारा जाता है । २. बनगोभी । गोजिया । ३. चमचा । डोम्रा (की०) ।

दर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] करछी । चमचा । डोम्रा । २. साँप का फन । यौ०—दर्वाकर ।

दर्वाकर—संज्ञा पुं० [सं०] फनवाला साँप ।

दर्वेसा—संज्ञा पुं० [क्रा० दरवेश] दे० 'दरवेश' । उ०—जोगी जंगम धीर संग्यासी, डीगंवर दर्वेस ।—कबीर० प्र०, भा० १, पृ० ६ ।

दर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १. दर्शन । अवलोकन । २. सूर्य और चंद्रमा का संगम काल । अमावस्या तिथि । ३. द्वितीया तिथि ।

यौ०—दर्शपति ।

३. वह यज्ञ या कृत्य जो अमावस्या के दिन किया जाय ।

यौ०—दर्शपौर्णमास ।

४. प्रत्यक्ष प्रमाण । आक्षुष प्रमाण (की०) । ५. द्रव्य (की०) ।

दर्शक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] १. जो देखे । दर्शन करनेवाला । देखनेवाला । २. दिखानेवाला । लखानेवाला । बतानेवाला । जैसे, मार्गदर्शक । ३. द्वाररक्षक । द्वारपाल (जो लोगों को राजा के पास ले जाकर उसके दर्शन कराता है) । ४. निरीक्षक । निगरानी रखनेवाला । प्रधान ।

दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह बोध जो दृष्टि के द्वारा हो । आक्षुष ज्ञान । देखादेखी । साक्षात्कार । अवलोकन ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—दर्शन देना=देखने में आना । अपने को दिखाना । प्रत्यक्ष होना । दर्शन पाना=(किसी का) साक्षात्कार होना ।

विशेष—हिंदी काव्य में नायक नायिका का परस्पर दर्शन चार प्रकार का माना गया है—प्रत्यक्ष, चित्र, स्वप्न और श्रवण । २. भेंट । मुलाकात । जैसे,—चार महीने पीछे फिर आपके दर्शन कर्हेगा ।

विशेष—प्रायः बड़ों के ही प्रति इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है ।

३. वह शास्त्र जिससे तत्त्वज्ञान हो । वह विद्या जिससे तत्त्वज्ञान हो । वह विद्या जिससे पदार्थों के धर्म, कार्य-कारण-संबंध आदि का बोध हो ।

विरोध—प्रकृति, आत्मा, परमात्मा, जगत् के नियामक बर्मे, जीवन के अंतिम लक्ष्य इत्यादि का जिस शास्त्र में निरूपण हो उसे दर्शन कहते हैं। विशेष से सामान्य की ओर आंतरिक दृष्टि को बराबर बढ़ाते हुए सृष्टि के अनेकानेक व्यापारों का कुछ तर्कों या नियमों में संतर्भाव करना ही दर्शन है। धार्य में अनेक प्रकार के देवताओं आदि की सृष्टि के विविध व्यापारों का कारण मानकर मनुष्य जाति बहुत काल तक संतुष्ट रही। पीछे अधिक व्यापक दृष्टि प्राप्त हो जाने पर युक्ति और तर्क की सहायता से जब जोग संसार की उत्पत्ति, स्थिति आदि का विचार करने लगे तब दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति हुई। संसार की प्रत्येक सभ्य जाति के बीच इसी क्रम से इस शास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। पहले प्राचीन धर्म अनेक प्रकार के यज्ञ और कर्मकांड द्वारा इंद्र, वरुण, सविता इत्यादि देवताओं को प्रसन्न करके स्वर्गप्राप्ति आदि के प्रयत्न में लगे रहे, फिर सृष्टि की उत्पत्ति आदि के संबंध में उनके मन में प्रश्न उठने लगे। इस प्रकार के संशयपूर्ण प्रश्न कई वेदमंत्रों में पाए जाते हैं। उपनिषदों के समय में ब्रह्म, सृष्टि, मोक्ष, आत्मा, इन्द्रिय, आदि विषयों की चर्चा बहुत बढ़ी। गाथा और प्रश्नोत्तर के रूप में इन विषयों का प्रतिपादन विस्तार से हुआ। बड़े बड़े गुरु दार्शनिक सिद्धांतों का आभास उपनिषदों में पाया जाता है। 'सर्वं ज्ञात्विदं ब्रह्म', 'तत्त्वमसि' आदि वेदांत के महावाक्य उपनिषदों के ही हैं। छादोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक में उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को सृष्टि की उत्पत्ति समझाकर कहा है कि 'हे श्वेतकेतु ! तू ही ब्रह्म है'। बृहदारण्यकोपनिषद् में मूर्त और अमूर्त, मर्त्य और अमृत ब्रह्म के दोहरे रूप बतलाए गए हैं। उपनिषदों के पीछे सूत्र रूप में इन तर्कों का ऋषियों ने स्वतंत्रतापूर्वक निरूपण किया और छह दर्शनों का प्रादुर्भाव हुआ जिनके नाम ये हैं—सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा (पूर्वमीमांसा), और वेदांत (उत्तरमीमांसा)। इनमें से सांख्य में सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम का विस्तार के साथ जितना विवेचन है उतना और किसी में नहीं है। सांख्य आत्मा को पुरुष कहता है और उसे अकर्ता, साक्षी और प्रकृति से भिन्न मानता है, पर आत्मा एक नहीं अनेक है, अतः सांख्य में किसी विशेष आत्मा अर्थात् परमात्मा या ईश्वर का प्रतिपादन नहीं है। जगत् के मूल में प्रकृति को मानकर उसके सत्व, रज और तम इन तीन गुणों के अनुसार ही संसार के सब व्यापार माने गए हैं। सृष्टि की प्रकृति की परिणामपरंपरा मानने के कारण यह मत परिणामवाद कहलाता है। सृष्टि संबंधी सांख्य का यह मत इतिहास, पुराण आदि में सर्वत्र गृहीत हुआ है। योग में क्लेश, कर्म-विपाक और आशय से रहित एक पुरुषविशेष या ईश्वर माना गया है। संबंधाधारण के बीच जिस प्रकार के ईश्वर की भावना है वह यही योग का ईश्वर है। योग में किसी मन पर विशेष तर्क वितर्क या आग्रह नहीं है; मोक्षप्राप्ति के निमित्त यम, नियम, प्राणायाम, समाधि इत्यादि के अभ्यास द्वारा ध्यान की परमावस्था की प्राप्ति के साधनों का ही विस्तार के साथ वर्णन है। न्याय में युक्ति या तर्क करने की

प्रणाली बड़े विस्तार के साथ स्थिर की गई है, जिसका उपयोग पंडित लोग शास्त्रार्थ में बराबर करते हैं। खंडन मंडन के नियम इसी शास्त्र में मिलते हैं, जिनका मुख्य विषय प्रमाण और प्रमेय ही है। न्याय में ईश्वर नित्य, इच्छाज्ञानादि गुणयुक्त और कर्ता माना गया है। बीच कर्ता और मोक्षा दोनों माना गया है। वैशेषिक में द्रव्यों और उनके गुणों का विशेष रूप से निरूपण है। पृथ्वी, जल आदि के अतिरिक्त दिक्, काल, आत्मा और मन भी द्रव्य माने गए हैं। न्याय के समान वैशेषिक ने भी जगत् की उत्पत्ति परमाणुओं से बतलाई है। न्याय से इसमें बहुत कम भेद है। इसी से इसका मत भी न्याय का मत कहलाता है। ये दोनों सृष्टि का कर्ता मानते हैं इसी से इनका मत धारमवाद कहलाता है। पूर्वमीमांसा में वैदिक कर्मसंबंधी वाक्यों के अर्थ निश्चित करने तथा विरोधों का समाधान करने के नियम निरूपित हुए हैं। इसका मुख्य विषय वैदिक कर्मकांड की व्याख्या है। उत्तरमीमांसा या वेदांत अत्यंत उच्च कोटि की विचार-पद्धति द्वारा एकमात्र ब्रह्म को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादानकारण बतलाता है अर्थात् जगत् और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित करता है। इसी से इसका मत विवर्तवाद और भ्रमेतवाद कहलाता है। भाष्यकारों ने इसी सिद्धांत को लेकर आत्मा और परमात्मा की एकता सिद्ध की है। जितना यह मत विद्वानों को ग्राह्य हुआ, जितनी इसकी चर्चा संसार में हुई, जितने अनुयायी संप्रदाय इसके खड़े हुए उतने और किसी दार्शनिक मत के नहीं हुए। भरत, फारस आदि देशों में यह सूफी मत के नाम से प्रकट हुआ। आजकल योरोप और अमेरिका आदि में भी इसकी ओर विशेष प्रवृत्ति है। भारतवर्ष के इन छह प्रधान दर्शनों के अतिरिक्त 'सर्वदर्शनसंग्रह' में चार्वाक, बौद्ध, आर्हत, नकुलीश, पाशुपत, शैव, पुण्ड्रिज, रामानुज, पाणिनि और प्रत्यभिज्ञा दर्शन का भी उल्लेख है।

योरोप में यूनान या यवन देश ही इस शास्त्र के विवेचन में सबसे पहले मगसूर हुआ। ईसा से पाँच छह सौ वर्ष पहले से वहाँ दर्शन का पता लगता है। सुकरात, प्लेटो, अरस्तू इत्यादि बड़े बड़े दार्शनिक वहाँ हो गए हैं। आधुनिक काल में दर्शन की योरोप में बड़ी उन्नति हुई है। प्रत्यक्ष ज्ञान का विशेष आश्रय लेकर दार्शनिक विचार की अत्यंत विशद प्रणाली वहाँ निकली है।

४. नेत्र । ५. शीर्ष । ६. बुद्धि । ७. धर्म । ८. दर्पण । ९. वरुण । १०. यज्ञ । ११. इन्द्र (को०) । १२. उपलब्धि (को०) । १३. शास्त्र (को०) । १४. परीक्षण । निरीक्षण (को०) । १५. प्रदर्शन । दिखाना (को०) । १६. उपस्थिति या विद्यमानता (न्यायालय में) (को०) । १७. राय । सलाह । विचार (को०) । १८. नीयत (को०) ।

दर्शनगृह—संज्ञा पु० [सं०] १. समाधान । २. वह स्थान जहाँ लोग कुछ देखने या सुनने के लिये बैठें (को०) ।

दर्शनपथ—संज्ञा पु० [सं०] दृष्टि का पथ । जहाँ तक दृष्टि जाय । क्षितिज (को०) ।

दर्शनप्रविभू—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रतिभू या जामिन जो किसी को समय पर उपस्थित कर देने का भार अपने ऊपर ले। वह यादगी जो किसी को हाजिर कर देने का जिम्मा ले।

दर्शनप्रतिभाष्य ऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो दर्शन प्रतिभू की साक्ष पर लिया गया हो।

दर्शनीय—वि० [सं०] १. देखने योग्य। देखने लायक। २. सुंदर। मनोहर। ३. न्यायालय में न्यायाधीश के समक्ष उपस्थिति योग्य (को०)।

दर्शनी हुंड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'दरसनी हुंड़ी'।

दर्शयिता—वि० [सं० दर्शयितृ] १. दिखानेवाला। प्रदर्शक। २. निर्देश करनेवाला। बतानेवाला। जैसे, पथदर्शयिता।

दर्शयिता—संज्ञा पुं० १. द्वाररक्षक। द्वारपाल। २. निर्देशक (को०)।

दर्शाना—क्रि० सं० [हि०] ३० 'दरसाना'।

दर्शित—वि० [सं०] १. दिखलाया हुआ। ३. प्रकाशित। प्रकटित। ३. प्रमाणित।

दर्शी—वि० [सं० दर्शिन] १. देखनेवाला। २. विचार करनेवाला। ३. अनुभूत करनेवाला।

दस—संज्ञा पुं० [सं०] शिक्षा। नसीहत। उपदेश। उ०—जो पढ़ते दस जब थे लुई साल, मस्जिद के दरमियान तस्ती कतें ले।—दक्कनी०, पृ०, ११५।

दर्शनीय(पु)—वि० [सं० दर्शनीय] देखने योग्य। दर्शनीय। उ०—रम्य सुपेसल भव्य पुनि दर्शनीय रमनीय।—अनेकार्य०, पृ० ६६।

दल—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी वस्तु के उन दो सम खंडों में से एक, जो एक दूसरे से स्वभावतः जुड़े हुए हों पर जरा सा दबाव पड़ने से अलग हो जायें। जैसे चने, अरहर, मूँग, उरद, मसूर, चिएँ इत्यादि के दो दल जो चक्की में चलने से अलग हो जाते हैं। २. पोखों का पत्ता। पत्र। जैसे, तुलसीदल। ३. तमाल-पत्र। ४. फूल की पंखड़ी। उ०—जय जय अमल कमलदल लोचन।—हरिश्चंद्र(शब्द०)। ५. समूह। झुंड। गरोह। ६. गुट। चक्र। जैसे,—वह दूसरे के दल में है। ७. सेना। फौज। जैसे, शत्रुदल। ८. मयूरपुच्छ। उ०—दल कहिए त्व को कटक, दल पत्रन को नाम, दल बरही के खं ब सिर धरे स्याम अभिराम।—अनेकार्य०, पृ० १३५। ९. पटरी के आकार की किसी वस्तु की मोटाई। परत की तरह फैली हुई किसी चीज की मोटाई। १०. अस्त्र के ऊपर का आच्छादन। कोष। म्यान। १०. वन। ११. जल में होनेवाला एक तृण। ११. घंटा। टुकड़ा। खंड (को०)। १२. किसी का आधा अंश। अर्ध (को०)। १३. वृक्षविशेष (को०)। १४. इक्ष्वाकुवंशी परीक्षित राजा के एक पुत्र जिनकी माता मंझकराज की कन्या थी (को०)।

दलक^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दलक] गुदड़ी। उ०—बैठा है इस दलक बिच धापे धाप छिपाय। साहुब जा तन लख परे प्रगट सिफात दिखाय।—रसनिधि (शब्द०)।

दलक^२—संज्ञा पुं० [हि० दलकवा] राजगीरों का एक छोटा जिससे

नक्कासी साफ की जाती है। यह छुरी के आकार का होता है परंतु सिरे पर चिपटा होता है।

दलक^३—संज्ञा [हि० दलकना] १. वह कंप जो किसी प्रकार के घाघात से उत्पन्न हो और कुछ देर तक बना रहे। धर-थराहट। धमका। जैसे, डोलक की दलक। २. रह रहकर उठनेवाला दर्द। टीस। चमक।

दलकन—संज्ञा स्त्री० [हि० दलकना] १. दलकने की क्रिया या भाव। दलक। २. झटका। घाघात। उ०—मंद बिसंद अमेरा दलकन पाइय सुख भ्रुकभोरा रे।—तुलसी (शब्द०)।

दलकना^१—क्रि० प्र० [सं० दलन] १. फट जाना। दरार खाना। चिर जाना। उ०—तुलसी कुलिस की कठोरता रोहि दिन दलक दली।—तुलसी (शब्द०)। २. थरना। कांपना। उ०—महाबली बलि को दबतु दलकत भूमि तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकत है।—तुलसी (शब्द०)। ३. चौकना। उद्विग्न हो उठना। उ०—(क) दलक उठेड सुनि बचन कठोर। अनु छुइ गयो पाक बरतोर।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कैकेई अपने करमन को सुमिरत हिय मैं दलक उठी।—देवस्वामी (शब्द०)।

दलकना(पु)^२—क्रि० सं० [सं० दलन] डराना। भीत कर देना। भय से कंपा देना। उ०—सूरजदास सिंह बलि अपनी सीन्हीं दलक शृगालहि।—सूर (शब्द०)।

दलकपाट—संज्ञा पुं० [सं०] हरी पंखड़ियों का वह कोश जिसके भीतर कली रहती है।

दलकोमल—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। पंकज (को०)।

दलकोश—संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का पोषा।

दलगंजन^१—वि० [सं० दलगञ्जन] श्रेष्ठ वीर। सेना को मारनेवाला। भारी वीर।

दलगंजन^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान।

दलगंध—संज्ञा पुं० [सं० दलगन्ध] सप्तपर्ण वृक्ष। छितवन। सतिवन।

दलगर्जन(पु)—वि० [सं० दलगञ्जन] ३० 'दलगंजन'। उ०—अंग अंग लच्छन बसहि जे बरनी बत्तीस। दलगर्जन दुर्जन दसन दलपति पति दिल्लीस।—रसरतन, पृ० ८।

दलधुसरा^१—संज्ञा पुं० [हि० दाल + धुसड़ना] एक प्रकार की रोटी, जिसमें पिसी हुई दाल नमक मसाले के साथ भरी रहती है।

दलधंभय—वि० [सं० दल + स्तम्भन] सेना को रोकनेवाला। बड़ती हुई सेना को रोक देनेवाला। दल का स्तम्भन करनेवाला। उ०—दाह सूर सुमट दलधंभय रोपि रह्यो रन माहीं रे। जाकी साखि सकल जग बोले टेक टली कहूँ नाहीं रे।—सुंदर रत्न०, भा० २, पृ० ८७९।

दलधंभन—संज्ञा पुं० [हि० दल + धामना] कमलाब धुननेवालों का भोजन जो बांस का होता है और जिसमें अंकुश और नक्शा बंधा रहता है।

दलद(पु)^१—संज्ञा पुं० ३० [सं० दारिद्र्य] 'दारिद्र्य'। उ०—दोषो वन

कीकी दलदल, कीकी गात कुटंब । गनका सूँ राखी गुसट रसिया सोखूँ रंग । —कीकी० प्र०, भा० २, पृ० १२ ।

दलदल—संज्ञा स्त्री० [सं० दलदल (= नदीतट का कीचड़)] १. कीचड़ । पंक । बहला । २. वह जमीन जो गहराई तक गीली हो और जिसमें पैर नीचे को घँसता हो ।

विशेष—कहीं कहीं पूरब में यह शब्द पु० भी बोला जाता है ।

मुहा०—दलदल में फँसना = (१) कीचड़ में फँसना । (२) ऐसी कठिनाई में फँस जाना जिससे निकलना दुस्तर हो । मुश्किल या दिक्कत में पड़ना । (३) जल्दी खतम या सँभ होना । अनिर्णीत रहना । झट्टाई में पड़ना । उ०—दोनों दलों की दलदलों में दलपति का चुनाव भी दलदल में फँसा रहा ।—बदरीनारायण चौधरी (शब्द०) । ४. बुझी स्त्री (पालकी के कहार) ।

दलदला—वि० [हि० दलदल] [वि० स्त्री० दलदली] जिसमें दलदल हो । दलदलवाला । जैसे, दलदला मैदान, दलदली धरती ।

दलदार—वि० [हि० दल + फा० दार] जिसका दल मोटा हो । जिसकी तह या परत मोटी हो । जैसे, दलदार गूदा । दलदार घाम ।

दलने—संज्ञा पु० [सं०] [वि० दलित] १. पीसकर टुकड़े टुकड़े करने की क्रिया । चूर चूर करने का काम । २. विनाश । संहार । ३. विदारण । उ०—या विधि वियोग ब्रज बावरो भयो है सब, बाढत उदेग महा अंतर दलन को ।—भगवानन्द०, पृ० ५०३ ।

दलन—वि० दलनेवाला । नष्ट करनेवाला । विनाशकारी । नाशक । उ०—साहि का खलन दिली दल का दनन भफजल का मलन शिवराज प्राया सरजा ।—सूषण प्र०, पृ० ११६ ।

दलना—क्रि० सं० [सं० दलन] १. रगड़ या पीसकर टुकड़े टुकड़े करना । मलकर चूर चूर करना । चूरा करना । खंड खंड करना । २. रौंदना । कुचलना । मलना । खूब खाना । मसलना । मोड़ना । उ०—पर अकाज भगि तनु परिहरही । जिमि हिम उपल कृषि दलि गरही ।—मानस, १।४ ।

संयो० क्रि०—डालना ।—मारना ।

१. चक्की में डालकर अनाज आदि के दानों को दलों या कई टुकड़ों में करना । जैसे, दान दलना । ४. नष्ट करना । ध्वस्त करना । जीतना । उ०—केतिक देश दल्यो भुज के बल ।—सूषण (शब्द०) ।

यो०—बलना मलना । उ०—भुजबल रिपुदल दलि मलि देखि दिवस कर अंत ।—तुलसी (शब्द०) ।—मलना दलना ।

५. मोड़ना । भटके से खंडित करना । उ०—(क) दलि गृण प्राण निष्ठापरि करि करि लैहूँ मातु बलीया ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सोई हूँ ब्रूकत राजसभा धनुकेँ दल्यो हूँ दलिहूँ बल ताको ।—तुलसी (शब्द०) ।

दलनि—संज्ञा स्त्री० [हि० दलना] दलने की क्रिया या ठंठ ।

दलनिर्मोक—संज्ञा पु० [सं०] भोजन का पेड़ ।

दलनिहार—वि० [सं० दलनि + हि० हारा (प्रत्य०)] विध्वंस करनेवाला । नष्ट करनेवाला । भित्त करनेवाला । उ०—कलि नाम कामतरु राम की । दलनिहार दारिद्र दुकान पुन दोष घोर बन घाम को ।—तुलसी प्र०, पृ० ५३७ ।

दलनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंकड़ । मिट्टी का टुकड़ा । डेला [को०] ।

दलप—संज्ञा पु० [सं०] १. दलपति । मंडली या सेना का नायक । २. सोना । स्वर्ण । ३. शास्त्र । आयुध [को०] । ४. शास्त्र [को०] ।

दलपति—संज्ञा पु० [सं०] १. किसी मंडली या समुदाय का प्रधान । मंडली का मुखिया । अगुवा । सरदार । २. सेनापति । उ०—दलगर्जन दुर्जनदलन दलपतिपति दिल्लीस ।—रसरतन, पृ० ८ ।

यो०—दलपतिपति = सेनापतियों का अधीनकार ।

दलपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी जिसके फूल पत्ते के आकार के होते हैं ।

विशेष—केतकी या केवड़े की मंजरी बहुत कोमल पत्तों के कोश के भीतर रहती है । सुगंध के लिये इन्हीं पत्तों का व्यवहार होता है ।

दलधंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० दल + हि० धाँधना] गुटबाजी । दल या गुट बनाने का काम ।

दलबल—संज्ञा पु० [सं०] लाव लभकर । फीज । उ०—कछु मारे कछु बायल कछु गढ़ चले पराह । गर्जहि भालु बलीमुख रिपु दलबल बिचलाह ।—मानस, ६।४६ ।

दलबा—संज्ञा पु० [हि० दलना] तीतरबाजों, बटेरबाजों आदि का वह निर्बल पक्षी जिसे वे दूसरे पक्षियों से लड़ाकर और मार खिलाकर उन पक्षियों का साहस बढ़ाते हैं ।

दलबादल—संज्ञा पु० [हि० दल + बादल] १. बादलों का समूह । बादलों का झुंड । २. भारी सेना । ३. बहुत बड़ा साम्रज्य । बड़ा भारी सेना ।

मुहा०—दलबादल खड़ा होना = बड़ा भारी साम्रज्य या सेना गढ़ना ।

दलमलना—क्रि० सं० [हि० दलना + मलना] १. मसल डालना । मोड़ डालना । उ०—यो दलमलियत निरदई दई कुसुम से गात । कर भर देखी घरधरा अजौ न उर ते जात ।—बिहारी (शब्द०) । २. रौंदना । कुचलना । उ०—रतमस राबन सकल सुभट प्रबंध भुजबल दलमले ।—मानस, ६।६४ । ३. विनष्ट कर देना । मार डालना ।

दलमलित—वि० [हि० दलना + मलना] सटाई हुई । कुचली हुई । पीड़ित । उ०—प्रजा दुखित दलमलित गएउ फटि फुटि पठान दल ।—अकबरी०, पृ० ६८ ।

दलराय—संज्ञा पु० [सं० दल + राय, प्रा० राय] दे० 'दलपति' । उ०—बाबदार निरखि रिसानो कीह दलराय, जैसे गढ़वार अढ़वार गजराज को ।—सूषण प्र०, पृ० ६ ।

दलवाना—कि० सं० [हि० दलना का प्रे० रूप] १. दलने का काम करवाना। मोटा छोटा पिसवाना। जैसे, बाल दलवाना। २. रीखवाया। ३. नष्ट कराना। अस्त कर देना।

दलबाल(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० दलपात्र] देवापति। फौज का सरदार।

दलबोटक—संज्ञा पुं० [सं०] कुट्टबीमवम् में वलित काव का एक पाधु-वण। एक कर्णपुष्पण [को०]।

दलवैया—संज्ञा पुं० [हि० दलना + वैया (प्रत्य०)] १. दलनेवाला। २. दलने मलनेवाला। जीतनेवाला।

दलसायसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी। अथे तुलसी [को०]।

दलसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कैमुआ। बंका। कन्बू।

दलस्त्रि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पोषा जिसके पत्तों में काटे हों। जैसे, नागफनी। २. पत्तों का काटा। ३. काँडा।

दलसूसा—संज्ञा स्त्री० [सं० दलशसा या दलस्वसा] दल की शिरा। पराँ की नस।

दलहन—संज्ञा पुं० [हि० बाल + मन] वह मन जिसकी बाल बनाई जाती हैं जैसे, चवा, घरहर, मुँग, सरस, मसूर इत्यादि।

दलहरा—संज्ञा पुं० [हि० बाल + हारा (प्रत्य०)] बाल बेचनेवाला। वह जो बाल बेचने का रोजगार करता हो।

दलहा—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हि० बालहा] बाबा। घासबाघ।

दलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दलना] १. नक्की से बाल आदि दरने का काम। उ०—जब तक धाँखें थीं, सिलाई करती रही। जब से धाँखें गई दलाई करती हूँ।—काया०, पृ० ५३६। २. दलने की मजदूरी। दराई।

दलाई लामा—संज्ञा पुं० [ति०] तिब्बत के सबसे बड़े लामा या धर्म-गुरु जो वहाँ के सर्वप्रभुतासंपन्न शासक भी होते हैं।

दलाटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जंगली तिल। २. गेहूँ। ३. बापकेसर। ४. सिरिस। ५. कुंद। ६. गजकण्ठी। एक प्रकार का पत्ता। ७. गाव। फेन [को०]। ८. खाई। परिखा [को०]। ९. तीव्र वायु। धंधवायु। बौंदर [को०]। १०. ग्राममुख्य। गाँव का प्रधान [को०]।

दलाढ्य—संज्ञा पुं० [सं०] नदी तट का कीचड़। पंक [को०]।

दलादली—संज्ञा स्त्री० [सं० दलन का द्विवचन (मुहाविष्ट की भाँति)] मिश्रित। संघर्ष। होड़। उ०—उसे इस दोनों बलों की दलादली ने दल मलकर समाप्त कर डाला।—मेमन०, भा० २, पृ० ३०७।

दलाना—संज्ञा पुं० [हि० दाबाव] दे० 'दाबाव'।

दलाना—कि० सं० [हि० दलना] दे० 'दलवाना'।

दलामल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बोरे का पोषा। २. मखे का पोषा। ३. मैक्फस का पेड़।

दलामल—संज्ञा पुं० [सं०] लोनिया घास। घमलोनी।

दलारा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का झूलनेवाला बिस्तर जिसका व्यवहार जहाज पर अस्ताह लोग करते हैं।

दलाक—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा दलाबी] १. वह व्यक्ति जो सीधा मोल लेने या बेचने में सहायता दे। मिचबई। मध्यस्थ। २.

स्त्री पुष्य का अनुचित संयोग करानेवाला। कुटना। ३. बाटों की एक जाति।

दलाकत—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिल्ल। पता। जलण। उ०—दलाकत यो सही कुरान सू है। कबी इस्लाम के ईमान पुं है।—दक्कनी०, पृ० १६३।

दलाकी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. दलास का काम।

क्रि० प्र०—करवा।

२. वह द्रव्य जो बाल को मिश्रता है। उ०—अस्ति हाट बैठि तू बिर तूँ हरि नग निमंछ लेहि। काम कोष मख कोष मोह तू सकल दलाकी हैहि।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

दलाहय—संज्ञा पुं० [सं०] लेखपत्र।

दलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी का टुकड़ा। डेवा [को०]।

दलिक—संज्ञा पुं० [सं०] काठ। लकड़ी। [को०]।

दलित—वि० [सं०] १. मीठा हुआ। मसका हुआ। मसित। २. रीखा हुआ। कुचका हुआ। ३. खंडित। टुकड़े टुकड़े किया हुआ। ४. बिनष्ट किया हुआ। ५. जो बचा रखा गया हो। बचाया हुआ। जैसे,—घारत की दलित जातिरों की सब उठ रही हैं।

दलिहर—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य दरिद्र] १. दरिद्रता। परीबी। उ०—घाय चाहें तो एक दिव में हमारा दलिहर दूर कर सकते हैं।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३७। २. कुड़ा करकट। गंदगी। ३. दरिद्र। गरीब। बलहीन।

दलिद्र—संज्ञा पुं० [सं० दरिद्र] दे० 'दरिद्र'।

दलिया—संज्ञा पुं० [हि० दलना। तुल० फा० दलीदह] दलकर कई टुकड़े किया हुआ घनाज। जैसे, मैहें का दलिया।

दलो—वि० [सं० दलित्] १. जिसमें दल या मोटाई हो। २. जिसमें पत्ता हो। पत्तेवाला।

दलीप—संज्ञा पुं० [सं० दिलीप] दे० 'दिलीप'।

दलील—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तर्क। हक्ति। २. बहुष। बाल-विवाद।

क्रि० प्र०—करना।—माना।

दलेगधि—संज्ञा पुं० [सं० दलेदग्धि] समपत्तीं वृक्ष।

दलेपंज—संज्ञा पुं० [हि० दलना + पंजा] १. वह थोड़ा जिसकी कमर उब गई हो। वह थोड़ा जो जबाब न रह गया हो। २. उबती हुई कमर का धावमी।

दलेक—संज्ञा स्त्री० [सं० दल] सिपाहियों का वह दंड जिसमें हुपियार धोर कपड़े आदि सबकी कमर में बांधकर उन्हें रहवाते हैं। वह कवायब को सजा की तरह पर की जाय। उ०—दिल जले दय बने रहेंगे हो, क्यों न हो दिल दलेक में मेरा।—बोले०, पृ० १४।

मुहा०—दलेक बोचना = सजा की तरह पर कवायब देने की आज्ञा देना।

दले—कि० सं० [दे०] मुँह बाधो। लामो (हाथीपानों की बोली)।

दशै—दशै दशै दशै—पानी पीओ (हाथीबानों की बोली) ।
 दशैया—संज्ञा पुं० [हि० दशना] १. चलने या पीसनेवाला । २. नाक करनेवाला । मारनेवाला । उ०—मंदर बिसंद मंदगति के दशैया, एक पल में दशैया, पर दल बनलानि के ।—मति० सं०, पृ० ३११ ।
 दशम—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतारण । बोला । २. पाप । ३. चक्र ।
 दक्षि—संज्ञा पुं० [सं०] १. दक्ष का पक्ष । दक्षिण । २. दक्ष का एक नाम (को०) ।
 दक्षाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दक्षाल' । उ०—जिन्हें हम व्यापारी न कहकर दक्षाल कहेंगे ।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० २६३ ।
 दक्षाला—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षालह] कुटनी । दूती ।
 दक्षाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दक्षाली' ।
 दक्षैगारा—संज्ञा पुं० [सं० दक्ष + गारा] १. वर्षा ऋतु के प्रारंभ में होनेवाली झड़ी । उ०—बिहरत हिया करहु पिउ देका । दीठि दक्षैगारा मेरवहु दका ।—जायसी । (शब्द०) । २. वर्षा के प्रारंभ में पानी का कहीं कहीं एकत्र होकर धीरे धीरे बहना । (बुंदेल०) ।
 दक्षैरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दक्षरी' ।
 दक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वन । जंगल । २. दशमि । वह प्राग जो वन में घापसे घाप लग जाती है । दवारि । दाबा । उ०—यई सहुमि सुनि बचन कठोरा । भुगो देखि जनु दक्ष बट्टे घोरा ।—तुलसी (शब्द०) । ३. दक्षिण । प्राग । उ०—(क) आजु धयोध्या जल नहि धचवों ना मुख देखौ नाई । सूरदास राघव के बिछुरे मरौ भवन दक्ष लाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) राकापति बोटन जगें तारागण समुदाय । सकल गिरिन दक्ष लाइए रवि बिनु राति न जाय ।—तुलसी (शब्द०) ।
 दक्षै—दक्षभक्ष = एक तृण । एक घास का नाम । दक्षदहन = दाशमि । दशमि ।
 दक्षै—दे० 'दक्षै' ।
 दक्षै—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाह । जलन । २. संताप । परिताप । दुःख ।
 दक्षदक्ष—वि० [सं० दक्ष + दक्ष, प्रा० दक्ष] दाशमि में जला हुआ । उ०—तहाँ सु भेंबतर रिणव दक्ष, कस तन भंग सुरंग । दक्षदक्ष जनु हुंम कोइ के कोइ भूत भुधंग ।—पृ० १०, १, १७ ।
 दक्षन—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दक्षन, प्रा० दक्ष] दक्षन करनेवाला । नाक करनेवाला । उ०—प्राणनाथ सुंदर सुजानमनि दीनबंधु जन धारति दक्षन ।—तुलसी (शब्द०) ।
 दक्षन—संज्ञा पुं० [सं० दक्षनक] बीना नामक पोषा । उ०—गह्व गुलाब, मंजु भोगरे, दक्षन फूले, बेले असबेले सिले चंपक चमन में ।—भुवनेश (शब्द०) ।
 दक्षनपापका—संज्ञा पुं० [सं० दक्षनपपंट] पितपापका ।
 दक्षना—संज्ञा पुं० [सं० दक्षनक] दे० 'दक्षन' ।

दक्षना—वि० सं० [सं० दक्ष] जलाना । उ०—धीधन दक्ष दक्षरिया कुंज कुटीर । तिमि तिमि सकत तबनिधहि बाढ़ी पीर ।—रहीम (शब्द०) ।
 दक्षनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षन] फसल के सूखे छंटकों को पैलों से रौंदाकर बाना झाड़ने का काम । दक्षरी । मिसाई । मंडाई ।
 दक्षरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षरि] दे० 'दक्षरि' । उ०—धीधन दक्ष दक्षरिया कुंज कुटीर । तिमि तिमि सकत तबनिधहि बाढ़ी पीर ।—रहीम । (शब्द०) ।
 दक्षरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दक्षरि] धाग । धमि । ज्वाला । ताप । उ०—जो मन की दक्षरी बुझि पावे, तब बट में परखे कुछ पावे ।—दरिया सा०, पृ० ३३ ।
 दक्षरि—संज्ञा पुं० [सं० दाशमि] दे० 'दाशमि' । उ०—प्रतिधि पूज्य प्रियतम पुराणि के । कामव जन दारिद दक्षरि के ।—मानस०, १, ३९ ।
 दक्षै—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] १. वह वस्तु जिससे कोई रोग या व्याध दूर हो । दक्षैष । दक्षैद । उ०—दरद दक्षै बीनों रहैं पीतम पास तयार ।—रसनिधि (शब्द०) ।
 दक्षै—दक्षालाना । दक्षदाक । दक्षदपन । दक्षदरमन ।
 दक्षै—दक्ष को न मिलना = थोड़ा सा भी न मिलना । अप्राप्य होना । दुर्लभ होना । दक्षै देना = दक्षै पिलाना ।
 २. रोग दूर करने का उपाय । उपचार । चिकित्सा । जैसे,—धन्ने वैद्य की दक्षै करो ।
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
 ३. दूर करने की युक्ति । मिटाने का उपाय । जैसे,—शक की कोई दक्षै नहीं । ४. अपरोक्ष या प्रतिकार का उपाय । ठीक रखने की युक्ति । दुस्त करने की तदबीर । जैसे,—उसकी दक्षै यही है कि उसे दो बार खरी छोटी सुना दो ।
 दक्षै—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्ष] १. दशमि । वन में लगनेवाली प्राग । उ०—कामन मूखर बारि बयारि महा बिष व्याधि दक्षै परि घेरे ।—तुलसी (शब्द०) । २. दक्षिण । प्राग । उ०—(क) जल्यो दक्षै सो तत दक्षै दुति मूरिखवा जर ।—गोपाल (शब्द०) । (ख) तथा सो तपत बरामंडल धसंडल धीर भारतंड मंडल दक्षै सो होत धीर तें ।—वेणी (शब्द०) ।
 दक्षै—संज्ञा स्त्री० [प्रा० दक्ष + हि० ई (प्रत्य०)] दे० 'दक्ष' ।
 दक्षैखाना—संज्ञा पुं० [हि० दक्षै + प्रा० खाना] दे० 'दक्षैखाना' ।
 दक्षैखाना—संज्ञा पुं० [प्रा०] १. वह जगह जहाँ दक्षै बिकती हो । २. धौषवाचय । चिकित्सालय ।
 दक्षैगनि—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षगनि] दे० 'दाशमि' । उ०—कहा दक्षैगनि के पिछे, कहा बरें गिरि बीर ।—मति० सं०, पृ० ३४७ ।
 दक्षैगि—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षगनि] दशमि । दाशमि ।
 दक्षैगि—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षगनि] दे० 'दाशमि' ।
 दक्षैगि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वन में लगनेवाली प्राग । दाशमि ।

द्वारा^१—संज्ञा स्त्री० [द० दावात] जिसने की स्वाही रखने का बरतन ।
मसिधान । मसिदानी ।

द्वारा^२—संज्ञा पुं० [क्रा० दवा] शीघ्र । उ०—रैचिक ताहि न
भावे, कहै कहानी जेत । परम दवात कहै जेत, बुद्ध होइ तेहि
तेत ।—इंद्रा०, पृ० १३ ।

द्वारा^३—संज्ञा पुं० [क्रा० दवा + सं० दर्पण] शीघ्र । चिकित्सा ।
उ०—बिना दवा दर्पण के गृहणी स्वरग बली धाँसे भाती घर ।
—माय्या, पृ० २५ ।

द्वारा^४—वि० [सं० द्वादश] दे० 'द्वादश' । उ०—मैथमादन बाद
द्वादस याजिय कीस, समाजिय कीतरा ।—रघु० क०,
पृ० १५८ ।

द्वारा^५—संज्ञा पुं० [देश० ? या हि०] एक प्रकार का वस्त्र । एक
प्रकार की उत्तम कोटि की तलवार । उ०—(क) सज्जे हयंद
जे भरे सान, गज्जे सुभट्ट ले लै दवान ।—सुजान०, पृ० १७ ।
(ख) लै दवान बाव धांसमान धु गरजियो । दवान लै
दवान की कृपान हीय सजियो ।—सुजान०, पृ० १० ।

द्वारा^६—संज्ञा पुं० [सं०] दवागि ।

द्वारा^७—क्रि० वि० [द०] नित्य । हमेशा । सदा । उ०—एक शत
उस सवि में यह भी की कि भाँसी का राज्य रामचंद्र राव के
कुटुंब में दवाम के लिये रहेगा, चाहे बारिस और संतान हों,
चाहे गोजव हों अथवा गोद लिए हुए हों ।—भाँसी०, पृ० १० ।

द्वारा^८—संज्ञा पुं० [द०] वित्यता । स्थायित्व । हमेशगी ।

द्वामी—वि० [द०] जो बिरकाल तक के लिये हो । स्थायी । जो
सदा बना रहे । जैसे, दवामी बंदोबस्त ।

द्वामी बंदोबस्त—संज्ञा पुं० [क्रा०] जमीन का वह बंदोबस्त जिसमें
सरकारी मालगुजारी सब दिन के लिये मुकर्रर कर दी जाय ।
भूमिकर का वह प्रबंध जिसमें कर सब दिन के लिये इस
प्रकार नियत कर दिया जाय कि उसमें पीछे घटती बढ़ती न
हो सके ।

द्वारा^९—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] दे० 'द्वार' । उ०—पवराबियो सुभ
प्रात । छल हूँ मुरबर छात । दल कर्मेश साह दवार । मन
रहे सांम उबार ।—रा० क०, पृ० ३० ।

द्वारा^{१०}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'द्वारि' ।

द्वारि—संज्ञा स्त्री० [सं० दवागि, हि० दवागि] वनाग्नि । दावानल ।
उ०—हाथ न कोऊ तलास करे ये पलासन कीने दवारि
लगाई ।—नरेश (शब्द०) ।

द्वारा^{११}—संज्ञा पुं० [सं० द्विदश, राज० द्वाला (= दो चरणों-
वाला)] छंद । उ०—विषम सम विषम सम दवाले वेद तुक,
ठीक गुर प्रंत तुक बहुस ठाला ।—रघु० क०, पृ० ५० ।

द्वारा^{१२}—संज्ञा पुं० [सं० दावागि, हि० दवारि] [प्राग की लपट]
आय का पुंज । उ०—आगी अग्नि का दव्वार । तपती भाय
ताता सार ।—राम० धर्म०, पृ० १६८ ।

द्वारा^{१३}—वि० [सं०] दे० 'दस' ।

द्वारा^{१४}—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठ] रावण (जिसके दस कंठ वा
धिर थे) ।

द्वारा^{१५}—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजहा] रावण के संहारक, श्री
रामचंद्र । उ०—आजु बिराजत राज है दशकंठजहा को ।—
सुलसी (शब्द०) ।

द्वारा^{१६}—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजित्] रावण को जीतनेवाले,
श्रीराम ।

द्वारा^{१७}—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठारि] (रावण के शत्रु) श्री
रामचंद्र ।

द्वारा^{१८}—संज्ञा पुं० [सं० दश + स्कन्ध, हि० कंध] रावण ।

द्वारा^{१९}—संज्ञा पुं० [सं० दशकंधर] रावण ।

द्वारा^{२०}—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस का समूह । दस की डेरी । २. दस
वर्षों का समूह । दस साल का निर्धारित काल ।

द्वारा^{२१}—संज्ञा पुं० [सं० दशकर्मन्] गर्माधान से लेकर विवाह तक
के दस संस्कार, जिनके नाम ये हैं—गर्माधान, पुंछण, सीमंतोन्नयन,
जातकरण, निष्कामण, नामकरण, धनप्राशन,
चूड़ाकरण, उपनयन और विवाह ।

द्वारा^{२२}—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत कवि दंडी का लिखा
एक गद्यात्मक काव्य ।

द्वारा^{२३}—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कुछ विशेष वृक्ष,
जिनके नाम ये हैं—मिसोड़ा, करंज, बेल, पीपल, कदंब, नीम,
बरगद, गुलर, बाबला और इमली ।

द्वारा^{२४}—संज्ञा स्त्री० [सं०] दरताल के ग्यारह भेदों में से एक
(संगीत) ।

द्वारा^{२५}—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार इन दस अंगुष्ठों का
वृक्ष—गाय, बकरी, ऊँटनी, मँड़, चँस, घोड़ी, खी, हयनी,
हिरनी और सदही ।

द्वारा^{२६}—संज्ञा [सं० दशगात्र] दे० 'दशगात्र' ।

द्वारा^{२७}—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर के दस प्रधान अंग । २. मृतक
संबंधी एक कर्म जो उसके मरने के पीछे दस दिनों तक होता
रहता है ।

विशेष—इसमें प्रतिदिन पिंडदान किया जाता है । पुराणों में
लिखा है कि इसी पिंड के द्वारा कम कम से प्रेत का सरार
बनता है और दशवें दिन पूरा हो जाता है । जैसे, पहले
पिंड से सिर, दूसरे से भाल, कान, नाक इत्यादि ।

द्वारा^{२८}—संज्ञा पुं० [सं०] जो राजा की ओर से बस ग्रामों का
अधिपति या शासक बनाया गया हो ।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि राजा पहले प्रत्येक ग्राम का
एक मुखिया या शासक नियुक्त करे, फिर उससे अधिक प्रतिष्ठा
और योग्यता के किसी मनुष्य को बस ग्रामों का अधिपति
नियत करे, इसी प्रकार बीस, शत, सहस्र आदि तक के
ग्रामों के शासक नियुक्त करने का विधान लिखा है ।

द्वारा^{२९}—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशग्रामपति' [को०] ।

द्वारा^{३०}—संज्ञा पुं० [सं० दशग्रामिन्] दे० 'दशग्रामपति' [को०] ।

द्वारा^{३१}—संज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

द्वारा^{३२}—संज्ञा स्त्री० [सं०] सी । शत ।

दशहरा—संका पु० [सं०] शरीर के दस हिस्से—२ काव, २ घाँव, २ नाक, १ मुँह, १ गुद, १ निग और १ ब्रह्मांड ।

दशधर्म—संका पु० [सं०] मनुस्मृति में निविष्ट धर्म के दस लक्षण जो मानव मान के बिन्दे करणीय हैं ।

दशधा—वि० [सं०] १. दस प्रकार का । २. दस के स्थान का । दसम । दसवीं । उ०—विश्वमंगल आचार सर्वानंद दसधा के आचार ।—चक्रमाल (श्री०), पृ० ४११ ।

दशधा—क्रि० वि० दस प्रकार ।

दशन—संका पु० [सं०] १. दाँत । २. दाँत से काटना । दाँतों से काटने की क्रिया । ३. कवच । धर्म । ४. बिस्तर । मोटी ।

यो०—दशनच्छद । दशनवासस् = होंठ । दशनपद = संत क्षत का स्थान प्रथवा चिह्न । दशनबीज ।

दशनच्छद—संका पु० [सं०] होंठ । घोष्ठ ।

दशनबीज—संका पु० [सं०] धनार ।

दशनाशु—संका पु० [सं०] दाँतों की चमक । दाँतों की दमक [को०] ।

दशनाड्य—संका की० [सं०] लोनिया झाक ।

दशनाम—संका पु० [सं०] संन्यासियों के दस भेद जो ये हैं—१. तीर्थ, २. आश्रम, ३. वन, ४. अरण्य, ५. मिरि, ६. पर्वत, ७. सागर, ८. सरस्वती, ९. भारती और १०. पुरी ।

दशनामी—संका पु० [हि० दशनाम] संन्यासियों का एक वर्ग जो मठवादी शंकराचार्य के शिष्यों से बना है ।

विशेष—शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्य थे—पद्मपाद, हुस्तामलक, मंडन और तोटक । इनमें से पद्मपाद के दो शिष्य थे—तीर्थ और आश्रम; हुस्तामलक के दो शिष्य—वन और अरण्य, मंडन के तीन शिष्य—मिरि, पर्वत और सागर । इसी प्रकार तोटक के तीन शिष्य—सरस्वती, भारती और पुरी । इन्हीं दस शिष्यों के नाम से संन्यासियों के दस भेद बने । शंकराचार्य ने चार मठ स्थापित किए थे, जिनमें इन दस शिष्यों की शिष्यपरंपरा चली जाती है । पुरी, भारती और सरस्वती की शिष्य परंपरा शृंगेरी मठ के अंतर्गत है; तीर्थ और आश्रम शाखा मठ के अंतर्गत, वन और अरण्य गोवर्धन मठ के अंतर्गत तथा मिरि, पर्वत और सागर जोशी मठ के अंतर्गत हैं । प्रत्येक दशनामी संन्यासी इन्हीं चार मठों में से किसी न किसी के अंतर्गत होता है । यद्यपि दशनामी ब्रह्म या निगुंण उपासक प्रसिद्ध हैं, तथापि इनमें से बहुतेरे शैवमत की दीक्षा लेते हैं ।

दशनोच्छिष्ट—संका पु० [सं०] १. अधर । घोष्ठ । २. अधरकुंठन । ३. निश्वास । श्वास । ४. दाँतों द्वारा स्पृष्ट कोई वस्तु [को०] ।

दशपंचतपा—संका पु० [पु० दशपञ्चतपस] दशियों का निग्रह करते हुए पंचांग तपस्या करनेवाला तपस्वी [को०] ।

दशप—संका पु० [सं०] ३० 'दशपामपति' ।

दशपारमिताधर—संका पु० [सं०] बुद्धदेव ।

दशपुर—संका पु० [सं०] १. कैवटी मोखा । २. मालवे का एक प्राचीन

विभाग जिसके अंतर्गत दस नगर थे । इसका नाम मेघवृत्त में आया है ।

दशपेय—संका पु० [सं०] आश्वलायन श्रौतसूत्र के अनुसार एक प्रकार का यज्ञ ।

दशबल—संका पु० [सं०] बुद्धदेव ।

विशेष—बुद्ध की दस बल प्राप्त थे, जिनके नाम ये हैं—दान, शील, क्षमा, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, बल, उपाय, प्रणिधि और ज्ञान ।

दशबाहु—संका पु० [सं०] शिव । महादेव । पंचमुख [को०] ।

दशभुजा—संका की [सं०] दुर्गा का एक नाम ।

दशभूमिग—संका पु० [सं०] (दान आदि दस भूमियों या बलों को प्राप्त करनेवाले) बुद्धदेव ।

दशभूमोश—संका पु० [सं०] बुद्धदेव ।

दशम—वि० [सं०] दसवीं ।

यो०—दशमवशा । दशमद्वार । दशमभाव । दशमलव ।

दशमदशा—संका की० [सं०] साहित्य के रसनिरूपण में वियोगी की वह दशा जिसमें वह प्राण त्याग देता है ।

दशमद्वार—संका पु० [सं०] ब्रह्मरंध्र । उ०—दशमद्वार से प्राण को त्याग श्री रामचम को प्राप्त हुए ।—चक्रमाल (श्री०), पृ० ४५५ ।

दशमभाव—संका पु० [सं०] फलित ज्योतिष में एक जन्मलग्नांश । कुंडली में ज्ञान से दसवीं घर ।

विशेष—इस घर से वित्त, कर्म, ऐश्वर्य आदि का विचार किया जाता है ।

दशमलव—संका पु० [सं०] वह भिन्न जिसके हर में दस या उसका कोई घात हो (गणित) ।

दशमहाविद्या—संका की० [सं०] ३० 'महाविद्या' [को०] ।

दशमांश—संका पु० [सं०] दसवाँ हिस्सा । दसवाँ भाग ।

दशमाल—संका पु० [सं०] एक प्राचीन जनपद । एक प्रदेश का प्राचीन नाम ।

दशमाक्षिक—संका पु० [सं०] दशमाल देश ।

दशमास्थ—वि० [सं०] माता के गर्भ में दस महीने तक रहनेवाला [को०] ।

दशमिकभरणांश—संका पु० [सं०] अंकगणित की एक क्रिया जिसके द्वारा प्रत्येक भिन्न या भग्नांश इस रूप में लाया जाता है कि उसका हर दस का कोई गुणित अंक हो जाता है । दशमलव ।

दशमी^१—संका की० [सं०] १. चांद्रमास के किसी पक्ष की दसवीं तिथि । २. विपुलावस्था । उ०—दशमी रानी है दिस दायक । सब राखी की सो है नायक ।—कबीर सा०, पृ० ३५० । ३. मरणावस्था ।

दशमी^२—वि० [सं० दशमिन्] [वि० की० दशमिनी] बहुत बूढ़ । बहुत पुराना । बलायु की अवस्थावाला ।

दशमुख^१—संका पु० [सं०] राक्षस ।

श्री०—दशमुलक = राम ।

दशमुल^२—संज्ञा पुं० [सं० दस + मुल] १. दसों दिवसों । २. त्रिवेध (महा के ४ मुल; विष्णु का १ और महेश के ५ मुल) ।

उ०—दशमुल मुल जोई गजमुल मुल की ।—राम चं०, पु० १ ।

दशमूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशमूत्रक' ।

दशमूत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] इन दस जीवों का मूत्र जो वैद्यक में काम आता है—१. हाथी, २. बैल, ३. ऊँट, ४. गाय, ५. बकरा, ६. भेडा, ७. घोड़ा, ८. बंदहा, ९. पुरुष, और १०. स्त्री ।

दशमूल—संज्ञा पुं० [सं०] दस पेड़ों की छाल या जड़ जो दवा के काम आती है ।

विशेष—सरिषन (शाकपर्णी), पिठवन (पुष्पिपर्णी), छोटी कटाई, बड़ी कटाई, और मोलक ये लघुमूल और बेल, सोना-पाठा (श्वोनाक), गंधारी, गवियारी और पाठा बृहन्मूल कहलाते हैं । इन दोनों के योग को दशमूल कहते हैं । दशमूल काष्ठ, श्वास और सन्निपात उदर में उपकारी माना जाता है ।

दशमूलीसंग्रह—संज्ञा पुं० [सं० दशमूलीयसङ्ग्रह] ये दस बीजों को प्राग से बचने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को घर में रखनी चाहिए ।

विशेष—चंद्रगुप्त मौर्य के समय में निम्नलिखित दस बीजों को घर में रखने के लिये प्रत्येक व्यक्ति राजनिगम के द्वारा वाच्य था,—पानी से भरे हुए पाँच बड़े, (२) पानी से भरा हुआ एक मटका, (३) सीढ़ी, (४) पानी से भरा हुआ बाँस का बरतन, (५) फरसा या कुल्हाड़ी, (६) सुप, (७) मंजुषा, (८) खूँटा आदि बछाड़ने का औजार, (९) मशक और (१०) हलादि । इन दसों बीजों का नाम दशमूलीसंग्रह था । जो लोग इसके रखने में प्रमाद करते थे उनको १४ पण जुरमाना देना पड़ता था ।

दशमेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मकुंडली में दशम भाव का अधिपति (ज्योतिष) । २. सिद्ध संप्रदाय के दसवें गुरु श्रीशिदसिंह ।

दशमौलि—संज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

दशयोगभंग—संज्ञा पुं० [सं० दशयोगभङ्ग] कलित ज्योतिष में एक नक्षत्रवैध जिसमें विवाह आदि शुभकर्म नहीं किए जाते ।

विशेष—जिस नक्षत्र में सूर्य हो और जिस नक्षत्र में कर्म होने-वाला हो, दोनों नक्षत्रों के जो स्थान धनुमाक्रम में हों उन्हें जोड़ लीजिए । यदि जोड़ पंद्रह, चार, ग्यारह, उन्नीस, सत्ताइस, अठारह या बीस भावे तो दशयोगभंग होगा ।

दशरथ—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय एक प्राचीन राजा जिनके पुत्र श्रीरामचंद्र थे । ये देवताओं की ओर से कई बार असुरों से लड़े थे और उन्हें परास्त किया था ।

विशेष—इस शब्द के प्रागे पुत्र वाचक शब्द लगने से 'राम' अर्थ होता है ।

दशरथसुत—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र ।

दशरथिमशाल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । धनुमाली [को०] ।

दशरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस रातें । २. एक यज्ञ जो दस रात्रियों में समाप्त होता था ।

दशरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत में नाट्यशास्त्र पर आचार्य बर्नजय का लिखा हुआ महत्त्वपूर्ण ग्रंथ ।

दशरूपसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु जिन्होंने दस अवतार धारण किया था [को०] ।

दशवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दशवक्त्र] दे० 'दशमुल' ।

दशवदन—संज्ञा पुं० [सं०] दशमुल ।

दशावाजी—संज्ञा पुं० [सं० दशावाजिन्] चंद्रमा ।

दशावाहु—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव ।

दशवीर—संज्ञा पुं० [सं०] एक सत्र या यज्ञ का नाम ।

दशशिर—संज्ञा पुं० [सं० दश + शिरस्] रावण ।

दशशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. रावण । २. चलाए हुए अस्त्रों को निष्फल करने का एक अस्त्र ।

दशशीश^(५)—संज्ञा पुं० [सं० दशशीर्ष] दे० 'दशशीर्ष' ।

दशसीस^(५)—संज्ञा पुं० [सं० दशशीर्ष] रावण । दशमुल ।

दशस्यंदन^(५)—संज्ञा पुं० [सं० दशस्यन्दन] दशरथ नामक राजा ।

दशहरा^१—संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ शुक्ला दशमी तिथि जिसे गंगा दश-हरा भी कहते हैं ।

विशेष—इस तिथि को गंगा का जन्म हुआ था अर्थात् गंगा स्वर्ग से मर्त्यलोक में आई थीं । इसी से यह अत्यंत पुराण तिथि मानी जाती है । कहते हैं, इस तिथि को गंगास्नान करने से दसों प्रकार के धीरे जन्म जन्मांतर के पाप धुएँ होते हैं । यदि इस तिथि में हस्तनक्षत्र का योग हो या यह तिथि मंगलवार को पड़े तो यह और भी अधिक पुण्यजनक मानी जाती है । दश-हरे को लोग गंगा की प्रतिमा का पूजन करते हैं और सोने चांदी के अलंकरण बनाकर भी गंगा में डालते हैं ।

२. विजयादशमी ।

दशहरा^२—संज्ञा श्री० [सं०] गंगा, जो दस प्रकार के पापों का हरण करती है [को०] ।

दशांग—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्ग] पूजन में सुगंध के विभिन्न अलाने का एक धूप जो दस सुगंध द्रव्यों के मेल से बनता है ।

विशेष—यह धूप कई प्रकार से चिन्ब चिन्न द्रव्यों के मेल से बनता है । एक रीति के अनुसार दस द्रव्य ये हैं—शिलारस, गुग्गुल, चंदन, जटामासी, सोबान, राल, खस, नख, भीमसेनी कपूर और कस्तूरी । दूसरी रीति के अनुसार मधु, नागरमोथा, धो, चंदन, गुग्गुल, अमर, शिलाजतु, सलाई का धूप, गुड़ और पीसी सरसों । तीसरी रीति गुग्गुल, गंधक, चंदन, जटामासी, सतावरि, सज्जी, खस, धो, कपूर और कस्तूरी ।

दशांग क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्गक्वाथ] दस औषधियों का काढ़ा ।

विशेष—इस काढ़े में विम्बांकित १० औषधियाँ प्रयुक्त होती हैं—(१) बहूसा, (२) गुचं, (३) पित्तपापड़ा, (४) चिरायता, (५) नीम की छाल, (६) जलमंग, (७) हड़, (८) बहेड़ा, (९) छाँवला, और (१०) कुलथी । इनके क्वाथ में मधु डालकर पिलाने से अम्लपित्त नष्ट होता है ।

दशांगुल^१—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्गुल] खरबूजा । डंगरा ।

वशांतुल—वि० जो संवाद में वस प्रयुक्त का हो। वस प्रयुक्त के परि-
भाषावाला [को०]।

दशमोऽध्यायः—अंश ५० [१०० दशमोऽध्यायः] बुद्ध्या ।

दशान्तर—अंश पु० [सं० दशान्तरा] शरीर प्रपञ्चा जीव की विभिन्न
दशा [को०] ।

पूरा—संक्षेप की० [सं०] १. व्यवस्था । स्थिति या प्रकार । हालत ।
 देखे,—(क) रोनी की बत्ती धक्की बही है । (ख) पहले
 मैंने इस मकान को धक्की बत्ती में देखा था । २. मनुष्य के
 जीवन की व्यवस्था ।

जिन्होंने—मानव जीवन की वस बसाएँ मानी गई हैं—(१) गर्भवास, (२) जन्म, (३) बाल्य, (४) कीमर, (५) पौष, (६) जीवन, (७) स्थाविर्य, (८) जरा, (९) प्राणरोध और (१०) नाश ।

३. साहित्य में रस के अंतर्गत विरही की प्रवस्था ।

विशेष—ये अक्षरस्वायं बस हैं—(१) अभिलाष, (२) चिन्ता, (३) स्मरण, (४) गुरुकथन, (५) उद्योग, (६) प्रलाप, (७) उन्माद, (८) व्याधि, (९) जड़ता और (१०) मरण ।

४. फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में प्रत्येक ग्रह का नियत भोगकाल ।

विशेष—वशा निकामने में कोई मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष की मानकर चलते हैं और कोई १०८ वर्ष की। पहली रीति के अनुसार निर्धारित वशा विशेषतः और दूसरी के अनु-
निर्धारित अष्टोत्तरी कहलाती है। आयु के पूरे काम में प्रत्येक ग्रह के योग के लिये वर्षों की घलन घलन संख्या नियत है—वैशे, अष्टोत्तरी रीति के अनुसार सूर्य की वशा ९ वर्ष, चंद्रमा की १५ वर्ष, मंगल की ८ वर्ष, बुध की १७ वर्ष, शनि की १० वर्ष, बृहस्पति की १६ वर्ष, राहु की १२ वर्ष और शुक्र की २१ वर्ष मानी गई है। वशा जन्मकाल के नक्षत्र के अनुसार मानी जाती है। वैशे, यदि जन्म कृत्तिका, रोहिणी या मूलशिरा नक्षत्र में होगा तो सूर्य की वशा होगी; चित्रा, पुष्यसु, पुष्य या धरमेष्ठा नक्षत्र में होगा तो चंद्रमा की वशा; मघा, पूर्वाषाढाशुनी या उत्तराषाढाशुनी में होगा तो मंगल की वशा; हस्त, चित्रा, स्वाती या बिहासा में होगा तो बुध की वशा; अनुराधा, ज्येष्ठा या मूल नक्षत्र में होगा तो शनि की वशा; पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, अभिजित् या अवध नक्षत्र में होगा तो बृहस्पति की वशा; मघिष्ठा, अश्लेषा या पूर्व भाद्रपद में होगा तो राहु की वशा और उत्तर भाद्रपद, रेवती, अश्विनी या मर्यादा नक्षत्र होगा तो शुक्र की वशा होगी। प्रत्येक ग्रह की वशा का फल घलन घलन निश्चित है—वैशे, सूर्य की वशा में बिरा को उद्देग, धनहानि, बन्ध, विवेकमयन, बन्ध, राजकीडा इत्यादि। चंद्रमा की वशा में ऐश्वर्य, राजसम्मान, रत्नवाहन की प्राप्ति इत्यादि।

अत्येक ग्रह के नियत भोक्ता या दशा के अंतर्गत भी एक एक ग्रह का भोक्ता नियत है जिसे मंतर्दशा कहते हैं। रवि की दशा को जीजिए को ६ वर्ष की है। शन ११ वर्षों के बीच सूर्य की अपनी दशा ४ महीने की, चंद्रमा

को १० महीने की, मंगल की ५ महीने की, बुध की ११ महीने
२० दिन की, शनि की ९ महीने २० दिन की, वृहस्पति
की १ वर्ष २० दिन की, राहु की ५ महीने की, कुक की
१ वर्ष २ महीने की है। इन अंतर्यामियों के स्वयं की स्वयं
प्रलय निश्चित हैं—वैसे, सूर्य की दशा में सूर्य की अंतर्यामि
का फल राजदंड, मन्त्रताप, विदेशवसन इत्यादि; सूर्य की दशा
में चंद्र की अंतर्यामि का फल अनुवाह, रोषवादि, विरावाह
इत्यादि।

ऊपर जो द्वादश बतलाया गया है, वह नाशत्रिकी दशा का है। इसके प्रतिरिक्त योगिनी, वासिकी, वाग्नित्री, मुकुंदा, पताकी, हूरबीरी इत्यादि धोर भी दशाएँ हैं पर ऐसा निष्ठा है कि कलियुग में नाशत्रिकी दशा ही प्रधान है।

५. दीए की बत्ती । ६. बिता । ७. कपड़े का छोर । बस्तांत ।

दशार्क—संज्ञा पु० [सं०] १. कपड़े का छोर या प्रबल । २. दीपक । चिराग ।

दशाकर्षी—संज्ञा पु० [सं० दशाकर्षिन्] दे० 'दशाकर्ष' [को०] ।

दशाक्षर—संज्ञा पु० [सं०] एक वर्णिक वृत्त [को०] ।

दशाधिपति—संज्ञा पु० [सं०] १. कलित ज्योतिष में दशाओं के अधिपति ग्रह । २. दस सैनिकों या सिपाहियों का व्यूहसर । कमादार । (महाभारत) ।

दशानन—सं० पुं० [सं०] रावण ।

दशानिक—संज्ञा पुं० [सं०] जमाखगोटा :

दशापवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध आदि में दान किए जानेवाले वस्त्रसङ्ग ।

दशापाक—पंका पु० [सं०] भाग्य का परिपाक । भाग्यफल का पूर्ण
होना को० ।

दशमय—प्रं० पु० [सं०] रुद्र ।

दशारुद्धा—संज्ञा श्री० [सं०] कैशिका नाम की लता जो मासवा में होती है और जिससे कपड़े रंगे जाते हैं।

दशार्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु पर्वत के पूर्व दक्षिण की ओर स्थित उस प्रदेश का प्राचीन नाम जिससे होकर बसान नदी बहती है।

विशेष—मेघदूत से पता चलता है कि बिदिशा (प्राचीनक बिलसा) इसी प्रदेश की राजधानी थी। टालमी ने इस प्रदेश का नाम दोसारन (Dosaron) लिखा है।

२. उक्त देश का निवासी या राजा । ३. तंत्र का एक ब्रह्माक्षर मंत्र । ३. जैन पुराण के अनुसार एक राजा ।

बिरोध—इस राबा ने तीर्थंकर के दर्शन के निमित्त जाकर अभिमान किया था। तीर्थंकर के प्रवाप से उसे वहाँ १६,७७,७२,१६,००० हंटर और ११,३७,०५,७२,८०,००,००,००० इन्द्राणि दी दिखाई पड़ीं और उसका गर्व पूर्ण हो गया।

दशार्घ्या—संज्ञा श्री० [सं०] घसान नदी श्री विष्णुपत्तन से निकल कर बुंदेलखंड के कुछ भाग में बहती हुई कालपी के पास जमुना में मिल जाती है।

दशार्द्ध, दशार्ध—संका पु० [सं०] १. दस का आधा पचि। २. कुदरेव। जो दसवली से युक्त है।

दशह—संका पु० [सं०] १. कोट्युबंसीय घृष्ट राजा का पुत्र । २. राजा दुषिण का पौत्र । ३. दुषिणबंसीय पुरुष । ४. दुषिण-बंकिनी का अविभूत देव ।

दशावतार—संका पु० [सं०] भगवान् विष्णु के दश अवतार जो इस प्रकार हैं,—(१) मत्स्य, (२) कच्छप, (३) वाराह, (४) नृसिंह, (५) बामन, (६) परशुराम, (७) राम, (८) कृष्ण (९) बुद्ध और (१०) कल्कि ।

दशावरा—संका जी० [सं०] दस सभ्यों की शासक सभा । दस पंचों की राजसभा ।

विशेष—ऐसी सभा जो व्यवस्था दे, उसका पालन मनु ने आवश्यक लिखा है । गौतम ने दशावरा के दस सभ्यों का विभाग इस प्रकार बताया है कि चार तो भिन्न भिन्न वेदों के, तीन भिन्न भिन्न धर्मों के और तीन भिन्न भिन्न धर्मों के प्रतिनिधि हों । बौद्धायन ने धर्मों के तीन ज्ञाताओं के स्थाव पर भीमावक, धर्मपाठक और ज्योतिषी रखे हैं ।

दशाधिपाक—संका पु० [सं०] दे० 'दशापाक' ।

दशारथ—संका पु० [सं०] पंचमा जिसके रथ में दस घोड़े लगते हैं ।

दशारथमेध—संका पु० [सं०] १. काशी के अंतर्गत एक तीर्थ ।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि राजर्षि दिवोदास की सहायता से ब्रह्मा ने इस स्थान पर दस अश्वमेध यज्ञ किए थे । पहले यह तीर्थ वज्रसरोवर के नाम से प्रसिद्ध था । ब्रह्मा के यज्ञ के पीछे दशारथमेध कहा जाने लगा । ब्रह्मा ने इस स्थान पर दशारथमेधेश्वर नामक शिवलिंग भी स्थापित किया था । जो लोग इस तीर्थ में स्नान करके उक्त शिवलिंग का दर्शन करते हैं उनके सब पाप छूट जाते हैं ।

२. प्रयाग के अंतर्गत त्रिवेणी के पास यह घाट या तीर्थस्थान जहाँ यानी जल भरते हैं । लोगों का विश्वास है कि इस स्थान का जल विगड़ता नहीं ।

दशास्थ—संका पु० [सं०] दशमुख । राक्षस ।

दशाह—संका पु० [सं०] १. दस दिन । २. घृतक के कृत्य का दसवाँ दिन ।

विशेष—गृह्यसूत्रों में घृतक कर्म तीन ही दिनों का माना गया है । पहले दिन शमशान कृत्य और अस्थिसंक्षय, दूसरे दिन कड्याव, और प्रादि और तीसरे दिन सपिंडीकरण । स्मृतियों में पहले दिन के कृत्य का दस दिनों तक विस्तार किया है जिसमें प्रत्येक दिन एक एक पिंड एक एक धर्म की पूति के लिये दिया जाता है । पर प्यारहवें दिन के कृत्य में धर्म भी द्वितीयाह्निककल्प का पाठ होता है ।

दशी—संका पु० [सं० दक्षिण] दस गीर्षों का शासक । उ०—दश ग्रामों के शासक को 'दक्षी' कहा जाता था ।—आदि०, पु० १११ ।

दशोचन—संका पु० [सं० दक्षा (= दीप की बत्ती) + इन्धन] प्रदीप । दीपक । दीया [को०] ।

दशैर—संका पु० [सं०] दसक जीव । दस प्राणी [को०] ।

दशेरक—संका पु० [सं०] १. मर प्रवेश । मर देह । २. मर देह का निवासी । ३. उष्ट्र । जेट । युवा ऊँट । ४. गर्भ । गर्व [को०] ।

दशेरक—संका पु० [सं०] दे० 'दशेरक [को०] ।

दशेश—संका पु० [सं०] दस पावों का अधिपति । दक्षी [को०] ।

दश—संका पु० [का०] अंगस । विद्यावान् । बल । उ०—फिरते ही फिरते दश विद्या के विवर गए । वे प्राक्कि की हृय जमाये विवर गए ।—कविता को०, भा० ४, पु० १५ ।

दशिन—संका पु० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण' ।

दशिना—संका, जी० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' । उ०—पुत्र विप्रहि दशिना करि दीन्हा । देवत ताहि नैन हरि लीन्हा—हिंदी प्रेमगाथा०, पु० २१२ ।

दष्ट—वि० [सं०] बिसे बिसे में दसा हो या काट लिया हो । काटा हुआ । उ०—चेतनाहीन मन मानता स्वार्थ धन । दष्ट ज्यों हो सुमन छिन्न छल तनु पान ।—पीतिका, पु० ५५ ।

दसैन—संका पु० [सं० दक्ष] दे० 'दक्ष' । उ०—परमानंद ठी नंदनंदन, दसैन, कुंड मुसकावत ।—पोद्दार अभि० प्र०, पु० २३५ ।

दस—वि० [सं० दश] १. पाँच का दूना । जो बिनती में नी के एक अधिक हो । २. कई । बहुत से । जैसे,—(क) दस घावमी जो कहें उसे मानना चाहिए । (ख) वहाँ दस तरह की चीजे देखने को मिलेंगी ।

दस—संका पु० १. पाँच की दूनी संख्या । २. उक्त संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१० ।

दस—संका जी० [सं० दिक्षु, प्रा० दिक्षु, राक्ष० दस] घोर । तरफ । बिशा । उ०—घाव घरा दस ऊनम्यउ, काशी धरु सखारह । उवा चयु देसी भोलंबा, कर कर लंबी बाह ।—डोला०, पू० २७१ ।

दसही—वि० [सं० दशम] दशम । दसवाँ । इस की संख्याबाला । उ०—दसईं द्वार न लोमत कोई । तब लोले जब मरमी होई ।—इंद्रा०, पु० ४६ ।

दसकंध—संका पु० [सं० दशस्कन्ध, हि० दसकंध] राक्षस । उ०—मसकरूप दसकंधपुर निसि कपि घर घर देखि ।—तुलसी०, प्र० पु० ८६ ।

यौ०—दसकंधपुर = संका ।

दसखत—संका पु० [का० दस्तखत] दे० 'दस्तखत' ।

दसगुना—वि० [सं० दशगुणित] किसी संख्या या परिमाण का दश प्रतिशत अधिक । उ०—होत दसगुनी अंकु है दिई एक ज्यों बिहु । दिई दिठोला यों बड़ी भानन प्राभा इंदु ।—मति० प्र०, पु० ४५१ ।

दसगून—वि० [हि० दशगुना] दे० 'दशगुना' । उ०—राम नाम को अंक है, सब साधन है सूच । अंक गए कुछ हाथ नहि अंक रहे दसगु ।—अंतवाणी०, पु० ७१ ।

दसठौन—संका पु० [सं० दश + स्थान] बच्चा जन्मने के समय की एक रीति, जिसके अनुसार प्रसूता स्त्री दसवें दिन गह्वर सोरी के घर से दूसरे घर में जाती है ।

दसता—संका पु० [का० दस्तानह] हाथ के पंखों की रक्षा के लिये बना हुआ लोह कवच । उ०—माथे टोप सनाह सन, कर

दसरा दिन का। मावड़िया सोये नहीं, सूर्य हँसो साथ।—
बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० २०।

दसन^(५)—संज्ञा पुं० [सं० दशन] दे० 'दशन'। उ०—जो चित्त चढ़े
नाममहिमा जिस गुणवन पावन पथ के। तो तुलसीहि तारिही
विघ्न ज्यों दसन सोरि जमनव के।—तुलसी प्र०, पृ० ५०७।
यौ०—दसनबसन = दातों का वस्त्र धर्यात् छोठ धोर धर।
उ०—नैननि के तारनि में राखी प्यारे पूतरी के, मुरली ज्यों
माह राखी दसनबसन में।—केशव० प्र०, भा० १, पृ० २८।
दसन^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पंजाब,
विष, राजपूताने और मैसूर में पाई जाती है। इसकी छाल
कमड़ा सिक्काने के काम में आती है। दसरनी।

दसन^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. विनयन। लय। नाच। २. हटा देना।
बहिष्करण। निष्कासन। ३. लेपण। फेंकना [को०]।

दसना^१—क्रि० प्र० [हि० दासना] बिछना। बिछाया जाना।
जँबाया जाना।

दसना^२—क्रि० प्र० बिछाना। बिस्तर फैलाना। उ०—बिबेक सों
अनेकधा बड़े अनूप आसने। अनर्थ घर्थ आदि दै विनय किए
धने धने।—केशव (शब्द०)।

दसना^३—संज्ञा पुं० [हि०] बिछोना। बिस्तर।

दसना^४—क्रि० प्र० [सं० दशन या दशन] दे० 'दशन'।

दसनामी—संज्ञा पुं० [हि० दशनाम] दे० 'दशनामी'। उ०—लेकिन
दंडी पाखंडी नहीं निर्द्वंद्व स्वच्छंद धनपूत सर्व वणुसंगम गिरि,
पुरी, भारती और दसनामी और उदासीन भी।—किन्नर०,
पृ० १०१।

दसनावलि—संज्ञा स्त्री० [सं० दशनावलि] दातों की पंक्ति।
उ०—खिल उठी बल दसनावलि आज, कुंद कलियों में
कोमल आभ।—गुंजन, पृ० ४८।

दसभरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० दस + महना] एक प्रकार की बर-
साती बड़ी नाव जिसमें दस तकते लंबाई के बल लगे होते हैं।

दसमाथ^(५)—संज्ञा पुं० [हि० दस + माथ] रावण। उ०—सुनु
दसमाथ ! नाथ साथ के हमारे कपि हाथ लंका लाइ है तो
रहैगो हुयेरी सी।—तुलसी (शब्द०)।

दसमी—संज्ञा स्त्री० [सं० दशमी] दे० 'दशमी'।

दसरंग—संज्ञा पुं० [हि० दस + रंग] मलखम की एक कसरत।

विशेष—इस कसरत में कमरपेटा करके जिघर का पैर मलखम
को लपेटे रहता है उधर के हाथ को सीधी पकड़ से मलखम
में खपेटकर और दूसरे हाथ को भी पीछे से फँसाकर सवारी
बाँधते हैं तथा धीरे धीरे अनेक प्रकार की मुद्राएँ करते हुए नीचे
ऊपर लटकते हैं।

दसरथ^(५)—संज्ञा पुं० [सं० दसरथ] दे० 'दसरथ'। उ०—क्यों न
सँभारहि मोहि, दयासिधु दसरथ के।—तुलसी प्र०, पृ० ६०।

दसरथ^(५)—संज्ञा पुं० [सं० दसरथ] दे० 'दसरथ'।

यौ०—दसरथसुत = रामचंद्र। उ०—सोइ दसरथसुत भगत हित
कोसल पति भगवान।—मानस, १।११८।

दसरनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी। वि० दे०
'दसन'।

दसरान—संज्ञा पुं० [हि० दस + रान ?] कुम्भी का एक पेश।

दसराहा—संज्ञा पुं० [सं० दशहरा] विजया दशमी उ०—डोका
रहिसि विवारियत मिबिसि दई कह मैलि। पूवन हुइस ज
भाहुणउ, दसराहा लय देखि।—डोका०, पृ० २७१।

दसर्वा^१—वि० [सं० दशम] जिसका स्थान नौ धीरे वस्तुओं के
उपरांत पड़ता हो। जो क्रम में नौ धीरे वस्तुओं के पीछे हो।
गिनती के क्रम में जिसका स्थान दस पर हो। जैसे, दसवाँ
लड़का।

दसर्वा^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दशमान'।

दसस्यंदन^(५)—संज्ञा पुं० [सं० दस + स्यन्दन] दशरथ। उ०—
अनमे राम जगत के जीवन, अनि कौसल्या अनि दसस्यंदन।
—धनानंद०, पृ० ५५१।

दसांग—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्ग] दे० 'दशांग'।

दसा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दशा] दे० 'दशा'।

दसा^२—संज्ञा पुं० [हि० दस] अगरवाल वैश्यों के दो प्रधान भेदों
में से एक।

दसारन—संज्ञा पुं० [सं० दशाणं] एक देश। दे० 'दशाणं'।

दसारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बड़िया जो पानी के किनारे
रहती है।

दसी—संज्ञा स्त्री० [सं० दशा] १. कपड़े के छोर पर का सूत।
छोर। २. कपड़े का पल्ला। पान का धाबल। उ०—जाता
है जिस जान दे, तेरी दसी न जाय।—कबीर (शब्द०)।
३. बैनगाड़ी की पटरी। ४. कमड़ा छीलने का औजार। रापी।
५. पता। निशान। चिह्न।

दसेंदू—संज्ञा पुं० [देश०] केंदू। तेंदू का पेड़।

दसेरक, दसेरुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशेरक'।

दसौं—संज्ञा स्त्री० [सं० दसमी, हि० दसई] दशमी तिथि।

दसोतरा^१—वि० [सं० दशोत्तर] दस ऊपर। दस अधिक। जैसे,
दसोतरा सी धर्यात् एक सी दस।

दसोतरा^२—संज्ञा पुं० सी में दस। सैकड़ा पीछे दस का भाग।

दसौंधी—संज्ञा पुं० [सं० दास (= दानपत्र) + दशुक (= स्तुतिगायक,
भाट)] बंदियों या चारणों की एक जाति जो अपने का
ब्राह्मण कहती है। ब्रह्मजट्ट। भाट। राबाओं की बंशावली
और प्रशंसा करनेवाला पुरुष। उ०—(क) राजा रहा दृष्टि
करि धौंधी। रहि न सका तब भाट दसौंधी।—जायस
(शब्द०)। (ख) दैस दैस तें डाढ़ी प्राप मनबांछित फल पायो।
को कहि सकै दसौंधी सनकी भयो सबन मन भायो।—
सूर (शब्द०)।

दस्तंदाज—वि० [फा० दस्तंदाज] हुस्तक्षेप करनेवाला। बाधा देने-
वाला। छेड़छाड़ करनेवाला [को०]।

दस्तंदाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० दस्तंदाजी] किसी काम में हाथ डालने
की क्रिया। किसी होते हुए काम में छेड़छाड़। हुस्तक्षेप।
दलल।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

